॥ श्रीहरिः ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

गीताप्रेस गोरखपुर

॥ श्रीहरि: ॥

1985

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीलिङ्गमहापुराण

[सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सम्पादकीय निवेदन

पुराण भारतीय सनातन संस्कृतिकी अमूल्य निधि हैं। ये अनन्त ज्ञानराशिके भण्डार हैं। पुराणोंमें वेदोंके अर्थोंका उपबृंहण—विस्तार हुआ है, अतः इनकी वेदवत् प्रतिष्ठा है, वेदवत् प्रामाण्य है। पुराणोंको पंचम वेद कहा गया है—'इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते' (श्रीमद्भागवत १।४।२०)। पुराणोंकी महिमामें कहा गया है कि जो बातें वेदोंमें प्राप्त नहीं होतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं। इसीलिये पुराणोंके श्रवण एवं पठनका विशेष माहात्म्य है। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

वेद प्रभुसम्मित वचन हैं, किंतु पुराण सुहृत्सम्मित हैं, पुराण आज्ञा नहीं देते, अपितु सच्चे मित्रकी भाँति कल्याणकारी बातोंका सत्परामर्श प्रदान करते हैं। पुराणोंका यह अपूर्व वैशिष्ट्य है कि इसमें वेदोंके गूढ़तम अर्थोंको आख्यान-शैलीमें कथानकके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। अतः रोचक होनेसे ये अधिक सुगम एवं सहज ग्राह्य हैं, यथा—वेदोंमें 'सत्यं वद'—सत्य बोलोका उपदेश है। पुराणमें इसी उपदेशको महाराज हरिश्चन्द्रके आख्यानके माध्यमसे समझाया गया है, इसी कारण पुराणोंको विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। पुराणोंमें न केवल मानवमात्रके कल्याणकी बातें आयी हैं, अपितु जीवमात्रके कल्याणकी बातें हैं। वास्तवमें पुराण सच्चे अर्थोंमें पारमार्थिक कल्याणके सर्वोत्कृष्ट साधन हैं।

पुराण संख्यामें अठारह हैं, जो श्रीमद्भागवत, श्रीदेवीभागवत, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन्हीं अठारह महापुराणोंमें श्रीलिङ्गमहापुराणका भी परिगणन है। अन्य महापुराणोंके समान ही सर्गादि पंचलक्षणोंका निरूपण, भक्ति, ज्ञान, सदाचारकी महिमा तथा जीवका श्रेयः-सम्पादन और उसे भगवन्मार्गमें प्रतिष्ठित करा देना लिङ्गमहापुराणका तात्पर्य-विषयीभूत अर्थ है। श्रीहरिके पुराणमय विग्रहमें लिङ्गपुराणको भगवान्‌का गुल्फदेश माना गया है—'लैङ्गं तु गुल्फकम्।' (पद्मपुराण)

इस पुराणका यह नाम इसलिये दिया गया है कि इसमें परमात्मा परमशिवको लिङ्गी—निर्गुण-निराकार अर्थात् अलिङ्ग कहा गया है। यह परमात्मा अव्यक्त प्रकृतिका मूल है, लिङ्गका अर्थ है अव्यक्त अर्थात् प्रकृति—'अलिङ्गं लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।३।१) 'लिङ्ग' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—सबको अपनेमें लीन रखनेवाला या विश्वके सभी प्राणि-पदार्थोंका उद्भावक, परिचायक चिह्न अथवा सम्पूर्ण विश्वमय परमात्मा—'लयनाल्लिङ्गमुच्यते।' (लिङ्गपुराण पू० १।१९।१६) प्रकृति-पुरुषात्मक समग्र विश्वरूपी वेदी या वेर तो महादेवी पार्वती हैं और लिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है—'लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।' लिङ्गसे लिङ्गीका ख्यापन ही लिङ्गमहापुराणका विषय है। इसी विषय-वस्तुका प्रतिपादन लिङ्गपुराणमें विस्तारसे विविधरूपोंमें हुआ है।

लिङ्गपुराण दो भागोंमें विभक्त है—पूर्वभागमें एक सौ आठ अध्याय हैं और उत्तरभागमें पचपन अध्याय हैं। इसके पूर्वभागमें माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप, योगसाधना, भगवान् शिवकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन, भक्तियोगका माहात्म्य, भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव आदि अवतारोंकी कथा, ज्योतिर्लिङ्गके प्रादुर्भावका आख्यान, अट्ठाईस व्यासों तथा अट्ठाईस शिवावतारोंकी कथा, लिङ्गार्चन-विधि तथा लिङ्गाभिषेककी महिमा, भस्म एवं रुद्राक्ष-

धारणकी महिमा, शिलादपुत्र नन्दीश्वरके आविर्भावका आख्यान, भुवनसन्निवेश, ज्योतिश्चक्रका स्वरूप, सूर्य-चन्द्रवंश-वर्णन, शिवभक्ततण्डीप्रोक्त शिवसहस्रनामस्तोत्र, शिवके निर्गुण एवं सगुण स्वरूपका निरूपण, शिवपूजाकी महिमा, पाशुपतव्रतका उपदेश, सदाचार, शौचाचार, द्रव्यशुद्धि एवं अशौच-निरूपण, अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य, दक्षपुत्री सती एवं हिमाद्रिजा पार्वतीका आख्यान, भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहकी मांगलिक कथा तथा शिवभक्त उपमन्युकी शिवनिष्ठा आदि विषयोंका वर्णन है।

उत्तरभागमें भगवद्गुणगानकी महिमा, विष्णुभक्तोंके लक्षण, लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी (दरिद्रा)-के प्रादुर्भावका रोचक वृत्तान्त, दरिद्राके निवासयोग्य स्थान, द्वादशाक्षर मन्त्रकी महिमा, पशुपाशविमोचन, भगवान् शिव एवं पार्वतीकी विभूतियोंका निदर्शन, शिवकी अष्टमूर्तियोंकी कथा, शिवाराधना, शिवदीक्षा-विधान, तुलापुरुष आदि षोडश महादानोंकी विधि, जीवच्छ्राद्धका माहात्म्य तथा मृत्युंजय-मन्त्र-विधान आदि विषय विवेचित हैं। अन्तमें लिङ्गमहापुराणके श्रवण-मनन एवं पाठकी फलश्रुति निरूपित है। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी इस पुराणकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

'जो मनुष्य इस सम्पूर्ण लिङ्गपुराणको आदिसे अन्ततक पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा द्विजोंको सुनाता है, वह परमगति प्राप्त करता है। उस महात्माकी श्रद्धा मुझ (ब्रह्मा)-में, नारायणमें तथा भगवान् शिवमें हो जाती है।' 'लैङ्गमाद्यन्तमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि॥ द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्। ××× मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः॥' (लिङ्गपुराण, उत्तर०, अ० ५५)

इस प्रकार सम्पूर्ण लिङ्गपुराण विशेष रूपसे शिवोपासनामें पर्यवसित है। इसमें भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुका अभेदत्व प्रतिपादित हुआ है। इसमें आयी स्तुतियाँ अत्यन्त गेय तथा कण्ठ करने योग्य हैं। इसके आख्यान बड़े ही रोचक और भगवद्भक्तिको स्थिर करनेवाले हैं। इस पुराणमें सदाचारधर्मकी बड़ी प्रतिष्ठा वर्णित है और नित्यकर्मोंके सम्पादनकी बड़ी महिमा आयी है। इसमें आये सुभाषित बड़े ही ग्राह्य और कल्याणकारक हैं।

एक उपदेशमें बताया गया है कि सभी शास्त्रोंके बार-बार आलोडन तथा पुनः पुनः विचार करनेके बाद यही निश्चित होता है कि सदा नारायणका ध्यान करना चाहिये—'आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥ इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।' (उत्तरभाग ७। १०-११) इस प्रकार लिङ्गपुराण बहुत ही उपयोगी है तथा इसके उपदेश अत्यन्त उपकारक हैं।

पं० लक्ष्मीधरविरचित 'कृत्यकल्पतरु' नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थ है, उसमें लिङ्गपुराणके नामसे सोलह अध्याय प्राप्त हैं, जो वर्तमानमें उपलब्ध लिङ्गपुराणसे अतिरिक्त हैं, इन सोलह अध्यायोंमें अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य तथा यहाँके शिवायतनों एवं लिङ्गोंकी महिमा प्रतिपादित है। लिङ्गपुराण-परिशिष्टके नामसे उन्हें भी मूल तथा हिन्दी अनुवादके साथ इसमें दिया जा रहा है।

सम्पूर्ण श्रीलिङ्गमहापुराणका हिन्दी अनुवाद वर्ष २०१२ ई० के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। तभीसे सुधीजनोंकी यह भावना थी कि भाषा-टीकासहित मूल लिङ्गमहापुराणका भी प्रकाशन किया जाय। इसी दृष्टिसे मूल संस्कृत तथा उसका हिन्दी अनुवादके साथ पुस्तकरूपमें इसका प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है, प्रेमी पाठकोंको इससे प्रसन्नता होगी और वे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

श्रीहरि:

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

पूर्वभाग

उत्तरभाग

श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट

चित्र-सूची

(रेखा-चित्र)

ॐ नमः शिवाय

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीलिङ्गमहापुराण

[पूर्वभाग]

पहला अध्याय

देवर्षि नारदजीका नैमिषारण्य-आगमन, श्रीसूत-शौनक-संवादमें लिङ्गमहापुराणका उपक्रम

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमः शिवाय ॥

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ १

नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशे शङ्करं सङ्गमेश्वरे।
हिरण्यगर्भे स्वर्लीने ह्यविमुक्ते महालये ॥ २

रौद्रे गोप्रेक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा।
विघ्नेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे ॥ ३

हिरण्यगर्भे चन्द्रेशे ईशान्ये च त्रिविष्टपे।
शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः ॥ ४

नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वा नारदं हृष्टमानसाः।
समभ्यर्च्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥ ५

सोऽपि हृष्टो मुनिवरैर्दत्तं भेजे तदासनम्।
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुखासीनो वरासने ॥ ६

चक्रे कथां विचित्रार्थां लिङ्गमाहात्म्यमाश्रिताम्।
एतस्मिन्नेव काले तु सूतः पौराणिकः स्वयम् ॥ ७

जगाम नैमिषं धीमान् प्रणामार्थं तपस्विनाम्।
तस्मै साम च पूजाञ्च यथावच्चक्रिरे तदा ॥ ८

॥ श्रीगणेशजीको नमस्कार है ॥
॥ भगवान् शिवको नमस्कार है ॥

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्तके कारणीभूत [कारक] ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपात्मक प्रधान-पुरुषाधीश परमात्मा सदाशिवको नमस्कार है ॥ १ ॥

मुनि नारद शैलेश, संगमेश्वर, हिरण्यगर्भ, स्वर्लीन, अविमुक्त, महालय, रौद्र, गोप्रेक्षक, श्रेष्ठ पाशुपत, विघ्नेश्वर, केदार, गोमायुकेश्वर, हिरण्यगर्भ, चन्द्रेश, ईशान्य, त्रिविष्टप तथा शुक्रेश्वर आदि तीर्थस्थानोंमें भगवान् शंकरकी यथोचित आराधना करके नैमिषारण्य पहुँचे ॥ २—४ ॥

नारदजीको देखकर नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले ऋषियोंके मनमें अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने नारदजीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करके उनके लिये उचित आसन प्रदान किया ॥ ५ ॥

उन नारदजीने भी मुनियोंके द्वारा प्रदत्त उस आसनको सहर्ष स्वीकार किया और उन मुनियोंसे भलीभाँति पूजित होकर तथा उस उत्तम आसनपर सुखपूर्वक विराजमान होकर वे लिङ्गमाहात्म्यसे सम्बद्ध विचित्र रहस्योंवाली कथा सुनाने लगे ॥ ६½ ॥

इसी समय पुराणोंके ज्ञाता परम बुद्धिमान् सूतजी तपस्वी मुनियोंको प्रणाम करनेकी कामनासे नैमिषारण्य तीर्थमें पधारे। नैमिषारण्यवासी ऋषियोंने व्यासजीके

नैमिषेयास्तु शिष्याय कृष्णद्वैपायनस्य तु।
अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत॥ ९
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं रोमहर्षणम्।
अपृच्छंश्च ततः सूतमृषिं सर्वे तपोधनाः॥ १०
पुराणसंहितां पुण्यां लिङ्गमाहात्म्यसंयुताम्।

नैमिषेया ऊचुः

त्वया सूत महाबुद्धे कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥ ११
उपासितः पुराणार्थं लब्धा तस्माच्च संहिता।
तस्माद्भवन्तं पृच्छामः सूत पौराणिकोत्तम॥ १२
पुराणसंहितां दिव्यां लिङ्गमाहात्म्यसंयुताम्।
नारदोऽप्यस्य देवस्य रुद्रस्य परमात्मनः॥ १३
क्षेत्राण्यासाद्य चाभ्यर्च्य लिङ्गानि मुनिपुङ्गवः।
इह सन्निहितः श्रीमान् नारदो ब्रह्मणः सुतः॥ १४
भवभक्तो भवांश्चैव वयं वै नारदस्तथा।

अस्याग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि॥ १५
सफलं साधितं सर्वं भवता विदितं भवेत्।
एवमुक्तः स हृष्टात्मा सूतः पौराणिकोत्तमः॥ १६
अभिवाद्याग्रतो धीमान्नारदं ब्रह्मणः सुतम्।
नैमिषेयांश्च पुण्यात्मा पुराणं व्याजहार सः॥ १७

सूत उवाच

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणञ्च जनार्दनम्।
मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिङ्गं स्मराम्यहम्॥ १८
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्॥ १९

शिष्य उन सूतजीकी सम्यक् प्रकारसे स्तुति तथा पूजा की॥ ७-८½॥

तत्पश्चात् अपनी कथाओंसे रोमांचित कर देनेवाले सूतजीको अतिविश्वस्त विद्वान् जानकर उन मुनियोंकी उनसे पुराण सुननेकी इच्छा हो गयी॥ ९½॥

तब सभी तपस्वी ऋषियोंने मुनिवर सूतजीसे लिङ्गमाहात्म्यसे युक्त पुण्यदायिनी पुराणसंहिताके विषयमें पूछा॥ १०½॥

नैमिषारण्यवासी ऋषि बोले—महान् बुद्धिवाले हे सूतजी! पुराणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपने श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीकी उपासना की तथा उनसे पुराणसंहिता प्राप्त भी की है॥ ११½॥

अतएव पौराणिकोंमें उत्तम हे सूतजी! लिङ्ग-माहात्म्यसे युक्त दिव्य पुराणसंहिता (लिङ्गपुराण)-के विषयमें हम आपसे पूछ रहे हैं॥ १२½॥

ब्रह्माके पुत्र श्रीमान् मुनिश्रेष्ठ नारदजी भी परमेश्वर रुद्रदेवके पावन क्षेत्रोंमें जाकर वहाँ उनके लिङ्गोंकी पूजा-अर्चना सम्पन्न करके अब यहाँ विराजमान हैं॥ १३-१४॥

शिवभक्त, आप, हम मुनिगण तथा नारदजी यहाँ उपस्थित हैं। इन मुनिके आगे आप पवित्र लिङ्गपुराणकी कथा कहनेमें समर्थ हैं। आपने सब कुछ सफलतापूर्वक सिद्ध कर लिया है। आपको तो सब कुछ विदित होगा॥ १५½॥

मुनियोंके इस प्रकार कहनेपर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका मन प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो गया। सर्वप्रथम ब्रह्माजीके पुत्र देवर्षि नारद तथा नैमिषारण्यवासी मुनियोंका अभिवादन करके बुद्धिमान् तथा पुण्यात्मा सूतजीने लिङ्गपुराण कहना आरम्भ किया॥ १६-१७॥

सूतजी बोले—शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा मुनीश्वर व्यासजीको नमस्कार करके लिङ्गपुराणकी कथा कहनेके लिये मैं इस पुराणमें प्रतिपादित विषयका स्मरण करता हूँ॥ १८॥

शब्दब्रह्म ही इसका शरीर है—यह साक्षात्

अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम्॥ २०
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥ २१
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ २२

प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात्।
पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्॥ २३
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिङ्गरूपिणम्।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्ये लिङ्गोद्भवं शुभम्॥ २४

शब्दब्रह्म (स्वस्वरूप)-का प्रकाशक है। अकारादि-क्षकारान्त वर्ण ही इसके अवयव हैं, अनेक रूपोंमें स्थित होनेपर भी यह अव्यक्त है, परात्पर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म होनेपर यह अकार, उकार तथा मकारात्मक स्थूल शरीरवाला है, ऐसे स्वयं-प्रकाश्य शब्दब्रह्म ॐकारका ऋग्वेद मुख है, सामवेद इसकी जिह्वा है, यजुर्वेद इसकी महाग्रीवा है तथा अथर्ववेद इसका हृदय है, यह व्यापक है, यह प्रकृति तथा पुरुषसे अतीत एवं प्रलय तथा उत्पत्तिसे रहित है॥ १९—२१॥

जो तमोगुणसे युक्त होनेपर कालरुद्र, रजोगुणसे युक्त होनेपर हिरण्यगर्भस्वरूप, सत्त्वगुणसे आविष्ट होनेपर सर्वव्यापी विष्णुरूप तथा गुणोंसे रहित होनेपर महेश्वरस्वरूपमें प्रकट होता है॥ २२॥

प्रकृत्याश्रित होकर जो महत्, अहंकार तथा पंच-तन्मात्रात्मक (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध)—सात रूपोंमें, तदनन्तर दस इन्द्रियों, पाँच महाभूतों तथा मन इत्यादि षोडश रूपोंमें, पुनः इन षोडश रूपों और अव्यक्त, ध्याता (जीव) एवं ध्येय (शिव) इत्यादिको लेकर छब्बीस रूपोंमें व्यक्त होते हैं, जो पितामह ब्रह्माके भी पिता हैं, उन सृष्टि-पालन तथा संहाररूप लीलाके लिये लिङ्गस्वरूप धारण करनेवाले महेश्वर शिवको प्रणाम करके शुभकारक लिङ्गोद्भवकी कथासे युक्त लिङ्गपुराणका मैं यथोचितरूपसे वर्णन करूँगा॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

लिङ्गपुराणका परिचय तथा इसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन

सूत उवाच

ईशानकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य महात्मना।
ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैङ्गमुत्तमम्॥ १
ग्रन्थकोटिप्रमाणं तु शतकोटिप्रविस्तरे।
चतुर्लक्षेण सङ्क्षिप्ते व्यासैः सर्वान्तरेषु वै॥ २
व्यस्तेऽष्टादशधा चैव ब्रह्मादौ द्वापरादिषु।
लिङ्गमेकादशं प्रोक्तं मया व्यासाच्छ्रुतञ्च तत्॥ ३

सूतजी बोले—ईशानकल्पमें लिङ्गके प्रादुर्भाव आदिसे सम्बद्ध वृत्तान्तोंको आश्रित करके महात्मा ब्रह्माने सर्वप्रथम श्रेष्ठ लिङ्गपुराणकी उद्भावना की॥ १॥

सौ करोड़ विस्तारवाले पुराणसमुच्चयमें एक करोड़ श्लोकोंवाला यह लिङ्गपुराण सभी मन्वन्तरोंमें विभिन्न व्यासोंके द्वारा चार लाख श्लोकोंमें संक्षिप्त किया गया॥ २॥

वही बृहद् पुराणसंहिता प्रत्येक द्वापरयुगमें

अस्यैकादशसाहस्रे ग्रन्थमानमिह द्विजाः।
तस्मात् सङ्क्षेपतो वक्ष्ये न श्रुतं विस्तरेण यत्॥ ४

चतुर्लक्षेण सङ्क्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु।
अत्रैकादशसाहस्त्रैः कथितो लिङ्गसम्भवः॥ ५

सर्गः प्राधानिकः पश्चात्प्राकृतो वैकृतानि च।
अण्डस्यास्य च सम्भूतिरण्डस्यावरणाष्टकम्॥ ६

अण्डोद्भवत्वं शर्वस्य रजोगुणसमाश्रयात्।
विष्णुत्वं कालरुद्रत्वं शयनं चाप्सु तस्य च॥ ७

प्रजापतीनां सर्गश्च पृथिव्युद्धरणं तथा।
ब्रह्मणश्च दिवारात्रमायुषो गणनं पुनः॥ ८

सवनं ब्रह्मणश्चैव युगकल्पश्च तस्य तु।
दिव्यञ्च मानुषं वर्षमार्षं वै ध्रौव्यमेव च॥ ९

पित्र्यं पितॄणां सम्भूतिर्धर्मश्चाश्रमिणां तथा।
अवृद्धिर्जगतो भूयो देव्याः शक्त्युद्भवस्तथा॥ १०
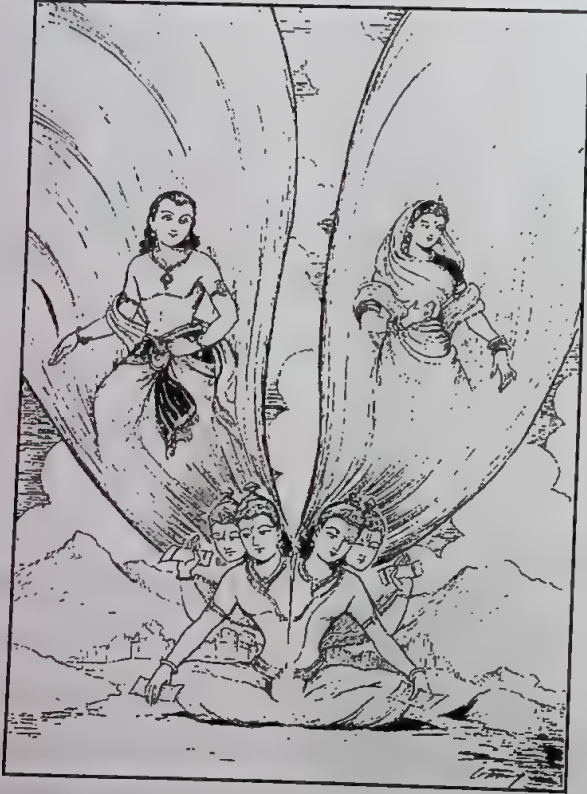
स्त्रीपुम्भावो विरिञ्चस्य सर्गो मिथुनसम्भवः।
आख्याष्टकं हि रुद्रस्य कथितं रोदनान्तरे॥ ११

ब्रह्मविष्णुविवादश्च पुनर्लिङ्गस्य सम्भवः।
शिलादस्य तपश्चैव वृत्रारेर्दर्शनं तथा॥ १२

ब्रह्मपुराणादि अठारह पुराणोंके रूपमें व्यासजीद्वारा विभक्त होती है, उनमें ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण कहा गया है, जिसका श्रवण मैंने व्यासजीसे किया है॥ ३॥

हे विप्रो! [चार लाख श्लोकोंमें संक्षेपके पश्चात्] इस ग्रन्थमें श्लोकोंकी संख्या मात्र ग्यारह हजार है। अतः मैं संक्षेपमें ही इसका वर्णन कर रहा हूँ; क्योंकि मैं इसे विस्तारसे नहीं सुन सका हूँ॥ ४॥

विभिन्न मन्वन्तरोंमें अनेक व्यासोंद्वारा चार लाख श्लोकोंमें संक्षिप्त किये गये इस लिङ्गपुराणमेंसे वैवस्वत मन्वन्तरमें श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने ग्यारह हजार श्लोकोंमें लिङ्गपुराणका वर्णन किया है॥ ५॥

इसमें सर्वप्रथम प्राधानिक तदनन्तर प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका वर्णन किया गया है। इस अण्डकी उत्पत्ति तथा अण्डके आठ आवरणोंका इसमें वर्णन है॥ ६॥

सदाशिवके ही रजोगुणके समाश्रयणसे अण्डके मध्यसे ब्रह्मारूपमें, (सत्त्वके आश्रयसे) विष्णुरूपमें, (तमोगुणके आश्रयसे) कालरुद्ररूपमें प्रादुर्भावका तथा अन्तमें उन्हीं सदाशिवका ही प्रलयकालीन जलराशिमें (नारायणके रूपमें) शयनका वर्णन किया गया है॥ ७॥

इस पुराणके अन्तर्गत प्रजापतियोंकी सृष्टि, पृथ्वीके उद्धारकी कथा तथा ब्रह्माके दिन-रात और उनकी आयुकी गणनाका वर्णन किया गया है॥ ८॥

इसमें ब्रह्माकी उत्पत्ति तथा उनके युग एवं कल्प वर्णित हैं। दिव्य वर्ष, मानुष वर्ष, आर्षवर्ष, ध्रौव्यवर्ष तथा पित्र्यवर्षका इसमें वर्णन है। पितरोंकी उत्पत्ति, आश्रमियोंके धर्म, सृष्टि-विस्तारकी प्रारम्भिक दशामें सृष्टिके त्वरित अभीष्ट विकासके अभाव तथा शक्तिस्वरूपा देवीके उद्भवका वर्णन इसमें किया गया है॥ ९-१०॥

मनु तथा शतरूपाकी उत्पत्तिरूपमें ब्रह्माके स्त्री-पुरुष भावका वर्णन, मैथुनी सृष्टिका वर्णन तथा रुद्रके रुदनके पश्चात् उनके आठ नामोंका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ११॥

ब्रह्मा-विष्णुके विवाद तथा उसके बाद शिवलिङ्गके प्राकट्यका वर्णन इसमें विद्यमान है। शिलादकी तपस्या

प्रार्थनायोनिजस्याथ दुर्लभत्वं सुतस्य तु।
शिलादशक्रसंवादः पद्मयोनित्वमेव च॥ १३

भवस्य दर्शनञ्चैव तिष्येष्वाचार्यशिष्ययोः।
व्यासावताराश्च तथा कल्पमन्वन्तराणि च॥ १४

कल्पत्वं चैव कल्पानामाख्याभेदेष्वनुक्रमात्।
कल्पेषु कल्पे वाराहे वाराहत्वं हरेस्तथा॥ १५

मेघवाहनकल्पस्य वृत्तान्तं रुद्रगौरवम्।
पुनर्लिङ्गोद्भवश्चैव ऋषिमध्ये पिनाकिनः॥ १६

लिङ्गस्याराधनं स्नानविधानं शौचलक्षणम्।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्॥ १७

भुवि रुद्रालयानां तु संख्या विष्णोर्गृहस्य च।
अन्तरिक्षे तथाण्डेऽस्मिन् देवायतनवर्णनम्॥ १८

दक्षस्य पतनं भूमौ पुनः स्वारोचिषेऽन्तरे।
दक्षशापश्च दक्षस्य शापमोक्षस्तथैव च॥ १९

कैलासवर्णनञ्चैव योगः पाशुपतस्तथा।
चतुर्युगप्रमाणञ्च युगधर्मः सुविस्तरः॥ २०

सन्ध्यांशकप्रमाणञ्च सन्ध्यावृत्तं भवस्य च।
श्मशाननिलयश्चैव चन्द्ररेखासमुद्भवः॥ २१

उद्वाहः शङ्करस्याथ पुत्रोत्पादनमेव च।
मैथुनातिप्रसङ्गेन विनाशो जगतां भयम्॥ २२

शापः सत्या कृतो देवान् पुरा विष्णुञ्च पालितम्।
शुक्रोत्सर्गस्तु रुद्रस्य गाङ्गेयोद्भव एव च॥ २३

ग्रहणादिषु कालेषु स्नाप्य लिङ्गं फलं तथा।
क्षुब्दधीचविवादश्च दधीचोपेन्द्रयोस्तथा॥ २४

तथा उन्हें वृत्रारि (इन्द्र)-का दर्शन इस पुराणमें वर्णित है॥ १२॥

शिलाद तथा इन्द्रका संवाद, शिलादद्वारा अयोनिज पुत्रके लिये की गयी प्रार्थना, ऐसे पुत्रका दुर्लभत्व तथा कमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति इस पुराणमें वर्णित हैं॥ १३॥

कलियुगोंमें आचार्य तथा शिष्यको शिवके दर्शन, व्यासोंके अवतार, कल्प, मन्वन्तर, कल्पका स्वरूप, भेदक्रमसे कल्पोंके आख्यान, कल्पोंमें वाराहकल्पमें विष्णुके वाराहावतारकी कथा आदिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें है॥ १४-१५॥

मेघवाहन कल्पका वृत्तान्त, रुद्रगरिमा, ऋषियोंके मध्य शिवलिङ्गका उद्भव, लिङ्गकी उपासना-स्नानविधि, शौचाचारका लक्षण, वाराणसीका माहात्म्य तथा क्षेत्रमाहात्म्य आदिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें उपलब्ध है॥ १६-१७॥

पृथ्वीपर शिवालयों तथा विष्णुके मन्दिरोंकी संख्याका वर्णन और अन्तरिक्ष तथा इस ब्रह्माण्डमें देवालयोंका वर्णन इसमें है॥ १८॥

स्वारोचिष मन्वन्तरमें दक्षप्रजापतिका पृथ्वीपर पतन, दक्षको प्रदत्त शाप तथा उस शापसे दक्षकी मुक्ति इस लिङ्गपुराणमें वर्णित है॥ १९॥

कैलासका वर्णन, पाशुपतयोगका वर्णन, चारों युगोंके स्वरूप एवं प्रमाणका वर्णन तथा युगधर्मका वर्णन लिङ्गपुराणमें विस्तारके साथ उपलब्ध है॥ २०॥

चारों युगोंके सन्ध्याकालमानका वर्णन, शिवजीके सन्ध्याताण्डवका वर्णन, शंकरजीके श्मशानवासका वर्णन तथा चन्द्रमाकी कलाओंकी उत्पत्तिका वर्णन इस पुराणमें किया गया है॥ २१॥

इस लिङ्गपुराणमें शंकरजीका विवाह, तत्पश्चात् पुत्ररूपमें श्रीगणेशजीकी उत्पत्ति, दीर्घकालीन कामोपभोग-प्रसंगसे जगत‍्के विनाशका भय, सतीके द्वारा प्रदत्त शाप, प्राचीनकालमें शिवजीद्वारा त्रिपुरवध करके देवताओं तथा विष्णुकी रक्षा, शिवजीका शुक्रोत्सर्ग तथा कार्तिकेयकी उत्पत्ति आदि वर्णित है॥ २२-२३॥

ग्रहण आदि कालोंमें लिङ्गके अभिषेकका विधान तथा उसका फल, क्षुप् तथा दधीच और दधीच तथा विष्णुका विवाद इस पुराणमें वर्णित है॥ २४॥

उत्पत्तिर्नन्दिनाम्ना तु देवदेवस्य शूलिनः।
पतिव्रतायाश्चाख्यानं पशुपाशविचारणा॥ २५

प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं निवृत्त्यधिकृता तथा।
वसिष्ठतनयोत्पत्तिर्वासिष्ठानां महात्मनाम्॥ २६

मुनीनां वंशविस्तारो राज्ञां शक्तेर्विनाशनम्।
दौरात्म्यं कौशिकस्याथ सुरभेर्बन्धनं तथा॥ २७

इस लिङ्गपुराणमें देवाधिदेव शूलधारी शिवजीका नन्दीश्वर नामसे प्रादुर्भाव, पतिव्रताका आख्यान, पशु (जीव) तथा पाश (बन्धन)-की मीमांसा, आसक्तिके स्वरूपका ज्ञान, निवृत्तिकी योग्यताप्राप्ति, वसिष्ठके पुत्रोंकी उत्पत्ति, महात्मा वसिष्ठपुत्रों तथा मुनियों और राजाओंका वंशविस्तार, वसिष्ठपुत्र शक्तिका विनाश, विश्वामित्रकी दुर्भावना तथा उनके द्वारा वसिष्ठकी सुरभिधेनुका बलात् अधिग्रहण आदि वर्णित किये गये हैं॥ २५—२७॥

सुतशोको वसिष्ठस्य अरुन्धत्याः प्रलापनम्।
स्नुषायाः प्रेषणञ्चैव गर्भस्थस्य वचस्तथा॥ २८

पराशरस्यावतारो व्यासस्य च शुकस्य च।
विनाशो राक्षसानाञ्च कृतो वै शक्तिसूनुना॥ २९

देवतापरमार्थं तु विज्ञानञ्च प्रसादतः।
पुराणकरणञ्चैव पुलस्त्यस्याज्ञया गुरोः॥ ३०

वसिष्ठके पुत्रशोक, अरुन्धतीके विलाप, उनकी पुत्रवधूके प्रेषण, गर्भस्थित शिशुके वचनोद्गार, पराशर-व्यास तथा शुकदेवके अवतार, शक्तिपुत्र पराशरके द्वारा किये गये राक्षसध्वंस, देवताओंके गूढ़ रहस्यरूप विशिष्ट ज्ञान तथा गुरु पुलस्त्यके आज्ञानुसार उनके कृपाप्रसादसे [पराशरद्वारा विष्णु]-पुराणकी रचनासे सम्बन्धित विषयोंका वर्णन किया गया है॥ २८—३०॥

भुवनानां प्रमाणञ्च ग्रहाणां ज्योतिषां गतिः।
जीवच्छ्राद्धविधानञ्च श्राद्धार्हाः श्राद्धमेव च॥ ३१

भुवनोंकी परिमिति, ग्रहों-नक्षत्रोंकी गति, जीवच्छ्राद्धकी विधि, श्राद्धके अधिकारी पात्रों तथा श्राद्धके विषयमें इस पुराणमें वर्णन है॥ ३१॥

नान्दीश्राद्धविधानञ्च तथाध्ययनलक्षणम्।
पञ्चयज्ञप्रभावश्च पञ्चयज्ञविधिस्तथा॥ ३२

रजस्वलानां वृत्तिश्च वृत्त्या पुत्रविशिष्टता।
मैथुनस्य विधिश्चैव प्रतिवर्णमनुक्रमात्॥ ३३

भोज्याभोज्यविधानञ्च सर्वेषामेव वर्णिनाम्।
प्रायश्चित्तमशेषस्य प्रत्येकञ्चैव विस्तरात्॥ ३४

इस पुराणमें नान्दीश्राद्धके विधान, वेदाध्ययनका स्वरूप, ब्रह्मयज्ञ-पितृयज्ञ-दैवयज्ञ-भूतयज्ञ-नृयज्ञ—इन पाँच महायज्ञोंके प्रभाव तथा इन पाँच महायज्ञोंके करनेकी विधिका वर्णन किया गया है। रजस्वला स्त्रियोंके सदाचार, उस सदाचार-पालनसे विशिष्ट पुत्रकी प्राप्ति, प्रत्येक वर्णोंके अनुसार मैथुनके नियम, सभी वर्णोंके लिये अलग-अलग भोज्य तथा अभोज्यके विधिविधान और समस्त पापोंके प्रायश्चित्तके विषयमें पृथक्-पृथक् रूपसे विस्तारसे वर्णन किया गया है॥ ३२—३४॥

नरकाणां स्वरूपञ्च दण्डः कर्मानुरूपतः।
स्वर्गिनारकिणां पुंसां चिह्नं जन्मान्तरेषु च॥ ३५

नानाविधानि दानानि प्रेतराजपुरं तथा।
कल्पं पञ्चाक्षरस्याथ रुद्रमाहात्म्यमेव च॥ ३६

नरकोंके स्वरूप, कर्मानुसार दण्डके विधान, स्वर्ग और नरक प्राप्त करनेवाले पुरुषोंमें दूसरे जन्मोंमें प्रकट होनेवाले चिह्न, अनेक प्रकारके दानों, यमपुरी, पंचाक्षर मन्त्रकी मीमांसा तथा रुद्रमाहात्म्यका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ३५-३६॥

वृत्रेन्द्रयोर्महायुद्धं विश्वरूपविमर्दनम्।
श्वेतस्य मृत्योः संवादः श्वेतार्थे कालनाशनम्॥ ३७

इन्द्र-वृत्रासुरके महासंग्रामका वर्णन, विश्व-रूपके वधका निरूपण, श्वेतमुनि तथा कालका संवाद,

देवदारुवने शम्भोः प्रवेशः शङ्करस्य तु।
सुदर्शनस्य चाख्यानं क्रमसंन्यासलक्षणम्॥ ३८

श्रद्धासाध्योऽथ रुद्रस्तु कथितं ब्रह्मणा तदा।
मधुना कैटभेनैव पुरा हृतगतेर्विभोः॥ ३९

ब्रह्मणः परमं ज्ञानमादातुं मीनता हरेः।
सर्वावस्थासु विष्णोश्च जननं लीलयैव तु॥ ४०

रुद्रप्रसादाद्विष्णोश्च जिष्णोश्चैव तु सम्भवः।
मन्थानधारणार्थाय हरेः कूर्मत्वमेव च॥ ४१

सङ्कर्षणस्य चोत्पत्तिः कौशिक्याश्च पुनर्भवः।
यदूनाञ्चैव सम्भूतिर्यादवत्वं हरेः स्वयम्॥ ४२

भोजराजस्य दौरात्म्यं मातुलस्य हरेर्विभोः।
बालभावे हरेः क्रीडा पुत्रार्थं शङ्करार्चनम्॥ ४३

नारस्य च तथोत्पत्तिः कपाले वैष्णवाद्धरात्।
भूभारनिग्रहार्थे तु रुद्रस्याराधनं हरेः॥ ४४

वैन्येन पृथुना भूमेः पुरा दोहप्रवर्तनम्।
देवासुरे पुरा लब्धो भृगुशापश्च विष्णुना॥ ४५

कृष्णत्वे द्वारकायां तु निलयो माधवस्य तु।
लब्धो हिताय शापस्तु दुर्वासस्याननाद्धरेः॥ ४६

वृष्ण्यन्धकविनाशाय शापः पिण्डारवासिनाम्।
एरकस्य तथोत्पत्तिस्तोमरस्योद्भवस्तथा॥ ४७

एरकालाभतोऽन्योन्यं विवादे वृष्णिविग्रहः।
लीलया चैव कृष्णेन स्वकुलस्य च संहतिः॥ ४८

एरकास्त्रबलेनैव गमनं स्वेच्छयैव तु।
ब्रह्मणश्चैव मोक्षस्य विज्ञानं तु सुविस्तरम्॥ ४९

श्वेतमुनिकी रक्षाके लिये शिवद्वारा कालके संहारका इसमें वर्णन है॥ ३७॥

देवदारुवनमें कल्याणकारी भगवान् शम्भुके प्रवेश, सुदर्शनके आख्यान एवं क्रमसंन्यासके लक्षणका वर्णन इस पुराणमें किया गया है॥ ३८॥

शिव-प्राप्ति श्रद्धाद्वारा ही साध्य है—इस सिद्धान्तका ब्रह्माद्वारा निरूपण, मधु-कैटभ-संसर्गसे नष्ट ज्ञानवाले ब्रह्माको परम ज्ञान प्रदान करनेके लिये शिवप्रादुर्भाव, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपमें अवतार तथा सभी अवस्थाओंमें लीलापूर्वक विष्णुकी उत्पत्तिका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें उपलब्ध है॥ ३९-४०॥

भगवान् शंकरकी कृपासे श्रीकृष्ण तथा कामदेवके रूपमें प्रद्युम्नके प्रादुर्भाव एवं समुद्रमन्थनके समय मथानी-धारणके लिये भगवान् विष्णुके कूर्मावतारका वर्णन इस पुराणमें है॥ ४१॥

संकर्षणकी उत्पत्ति, चण्डिकाके रूपमें कौशिकीके प्रादुर्भाव, यदुवंशियोंकी उत्पत्ति, स्वयं विष्णुके यदुकुलमें प्रादुर्भाव, श्रीकृष्णके मामा भोजराज (कंस)-के दुर्भाव, बालरूपमें श्रीकृष्णकी लीलाओं तथा पुत्रके लिये शंकरजीकी पूजाका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४२-४३॥

विष्णुरूप शिवसे कपालमें जलकी उत्पत्ति तथा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये विष्णुद्वारा शंकरजीकी की गयी आराधनाका वर्णन इस पुराणमें है॥ ४४॥

प्राचीनकालमें वेनपुत्र पृथुके द्वारा गोरूप पृथ्वीके दोहन तथा देवासुरसंग्राममें कृष्णके द्वारा प्राप्त किये गये भृगु-प्रदत्त शाप, द्वारकापुरीमें कृष्णरूपमें विष्णुके निवास, लोक-कल्याणके लिये विष्णुके द्वारा स्वीकार किये गये दुर्वासाप्रदत्त शापका वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४५-४६॥

वृष्णि तथा अन्धक वंशोंके विनाशके लिये पिण्डारकक्षेत्रवासी यादवोंको दिये गये शाप, मूसल तथा एरकाकी उत्पत्ति, एरका घास ले-लेकर आपसमें एक-दूसरेपर प्रहार करनेसे वृष्णिवंशियोंके विनाश, अपनी ही लीलासे श्रीकृष्णके द्वारा अपने ही कुलके विनाश, उसी एरकारूपी अस्त्रके प्रभावसे श्रीकृष्णके इच्छापूर्वक अपने धामके लिये प्रयाण तथा कृष्णरूपी ब्रह्मकी प्रयाणलीलाके

पुरान्धकाग्निदक्षाणां शक्रेभमृगरूपिणाम्।
मदनस्यादिदेवस्य ब्रह्मणश्चामरारिणाम्॥ ५०

हलाहलस्य दैत्यस्य कृतावज्ञा पिनाकिना।
जालन्धरवधश्चैव सुदर्शनसमुद्भवः॥ ५१

विष्णोर्वरायुधावाप्तिस्तथा रुद्रस्य चेष्टितम्।
तथान्यानि च रुद्रस्य चरितानि सहस्रशः॥ ५२

हरेः पितामहस्याथ शक्रस्य च महात्मनः।
प्रभावानुभवश्चैव शिवलोकस्य वर्णनम्॥ ५३

भूमौ रुद्रस्य लोकञ्च पाताले हाटकेश्वरम्।
तपसां लक्षणञ्चैव द्विजानां वैभवं तथा॥ ५४

आधिक्यं सर्वमूर्तीनां लिङ्गमूर्तेर्विशेषतः।
लिङ्गेऽस्मिन्नानुपूर्व्येण विस्तरेणानुकीर्त्यते॥ ५५

एतज्ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेपं कीर्तयेत्तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ ५६

रहस्यका विस्तृत वर्णन इस लिङ्गपुराणमें किया गया है॥ ४७—४९॥

इन्द्र बने हुए त्रिपुरासुर, गजरूपी अन्धकासुर, मृगरूपी यज्ञाग्नि, दक्ष, कामदेव, देवताओंके आदिदेव ब्रह्मा, हलाहल विष, दैत्य एवं अन्य असुरोंके शिवकृत दमनका वर्णन तथा जालन्धरवध एवं सुदर्शनकी उत्पत्तिका वर्णन भी इस पुराणमें प्राप्त है॥ ५०-५१॥

इस लिङ्गपुराणमें भगवान् विष्णुको श्रेष्ठ आयुधकी प्राप्ति, रुद्रके क्रिया-कलाप तथा उनके अन्य हजारों चरित्रोंका वर्णन किया गया है॥ ५२॥

विष्णु-ब्रह्मा तथा महात्मा इन्द्रके अनुभव एवं प्रभावका वर्णन तथा शिवलोकका भी वर्णन है। भूमिष्ठ रुद्रलोक, पातालस्थ हाटकेश्वर, तपोंके लक्षण एवं द्विजोंके वैभवका निरूपण भी इस पुराणमें किया गया है॥ ५३-५४॥

भगवान् शंकरके विग्रहोंकी व्यापकता तथा उनकी लिङ्गमूर्तिकी विशेषता इस पुराणमें वर्णित है। इस लिङ्गमहापुराणमें पूर्वोक्त विषयोंका प्रायः क्रमिक रूपसे वर्णन किया गया है। इसे जानकर जो मनुष्य लिङ्ग-पुराणकी इस संक्षिप्त अनुक्रमणिकाका कीर्तन (पाठ) करता है, वह सभी पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है॥ ५५-५६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽनुक्रमणिकावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अनुक्रमणिकावर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अलिङ्ग एवं लिङ्गतत्त्वका स्वरूप, शिवतत्त्वकी व्यापकता, महदादि तत्त्वोंका विवेचन, जगत्की उत्पत्तिका क्रम तथा महेश्वर शिवकी महिमा

सूत उवाच

अलिङ्गो लिङ्गमूलं तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते।
अलिङ्गः शिव इत्युक्तो लिङ्गं शैवमिति स्मृतम्॥ १

प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिङ्गमुत्तमम्।
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्॥ २

अगुणं ध्रुवमक्षय्यमलिङ्गं शिवलक्षणम्।
गन्धवर्णरसैर्युक्तं शब्दस्पर्शादिलक्षणम्॥ ३

सूतजी बोले—वह निर्गुण ब्रह्म शिव (अलिङ्ग) ही लिङ्ग (प्रकृति)-का मूल कारण है तथा स्वयं लिङ्गरूप (प्रकृतिरूप) भी है। लिङ्ग (प्रकृति)-को भी शिवोद्भासित जाना गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिसे रहित, अगुण, ध्रुव, अक्षय, अलिङ्ग (निर्गुण) तत्त्वको ही शिव कहा गया है तथा शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धादिसे संयुक्त प्रधान प्रकृतिको ही उत्तम लिङ्ग कहा गया है॥ १—३॥

जगद्योनिं महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मं द्विजोत्तमाः।
विग्रहो जगतां लिङ्गमलिङ्गादभवत् स्वयम्॥ ४

हे श्रेष्ठ विप्रो! वह जगत्का उत्पत्तिस्थान है, पंचभूतात्मक अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायुसे युक्त है, स्थूल है, सूक्ष्म है, जगत्का विग्रह है तथा यह लिङ्गतत्त्व निर्गुण परमात्मा शिवसे स्वयं उत्पन्न हुआ है॥ ४॥

सप्तधा चाष्टधा चैव तथैकादशधा पुनः।
लिङ्गान्यलिङ्गस्य तथा मायया विततानि तु॥ ५

उस अलिङ्ग अर्थात् निर्गुण परमात्माकी मायासे सात, आठ तथा फिर ग्यारह इस तरह कुल छब्बीस रूपवाले लिङ्गतत्त्व इस ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं॥ ५॥

तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्मकम्।
एकस्मात् त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम्॥ ६

एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु।
अलिङ्गञ्चैव लिङ्गञ्च लिङ्गालिङ्गानि मूर्तयः॥ ७

यथावत् कथिताश्चैव तस्माद् ब्रह्म स्वयं जगत्।
अलिङ्गी भगवान् बीजी स एव परमेश्वरः॥ ८

उन्हीं माया-वितत लिङ्गोंसे उद्भूत तीनों प्रधान देव शिवात्मक हैं। उन तीनोंमें एक ब्रह्मासे यह जगत् उत्पन्न हुआ, एक विष्णुसे जगत्की रक्षा होती है तथा एक रुद्रसे जगत्का संहार होता है। इस प्रकार शिवतत्त्वसे यह विश्व व्याप्त है। वह परमात्मा निर्गुण भी है तथा सगुण भी है। लिङ्ग अर्थात् व्यक्त तथा अलिङ्ग अर्थात् अव्यक्तरूपमें कही गयी सभी मूर्तियाँ शिवात्मक ही हैं; इसलिये यह ब्रह्माण्ड साक्षात् ब्रह्मरूप है। वही अलिङ्गी अर्थात् अव्यक्त तथा बीजी भगवत्तत्त्व परमेश्वर है॥ ६—८॥

बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते।
बीजयोनिप्रधानानामात्माख्या वर्तते त्विह॥ ९

वह परमात्मा बीज (ब्रह्मा) भी है, योनि (विष्णु) भी है तथा निर्बीज (शिव) भी है और बीजरहित वह शिव जगत्का बीज अर्थात् मूल कारण कहा जाता है। बीजरूप ब्रह्मा, योनिरूप विष्णु तथा प्रधानरूप शिवकी इस जगत्में अपनी-अपनी विश्व, प्राज्ञ तथा तैजस अवस्थाकी संज्ञा भी है॥ ९॥

परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः।
विशुद्धोऽयं तथा रुद्रः पुराणे शिव उच्यते॥ १०

यह विशुद्ध मुनिरूप परब्रह्म परमात्मा रुद्र नित्यबुद्धस्वभावके कारण पुराणोंमें 'शिव' कहे गये हैं॥ १०॥

शिवेन दृष्टा प्रकृतिः शैवी समभवद् द्विजाः।
सर्गादौ सा गुणैर्युक्ता पुरा व्यक्ता स्वभावतः॥ ११

हे विप्रो! शिवकी दृष्टिमात्रसे प्रकृति 'शैवी' हो गयी तथा सृष्टिके समय अव्यक्त स्वभाववाली वह प्रकृति गुणोंसे युक्त हो गयी॥ ११॥

अव्यक्तादिविशेषान्तं विश्वं तस्याः समुच्छ्रितम्।
विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता॥ १२

अव्यक्त तथा महत्तत्त्वादिसे लेकर स्थूल पंचमहाभूतपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् उसी प्रकृतिके अधीन है। अतः विश्वको धारण करनेवाली शैवीशक्ति प्रकृति ही अजा नामसे कही गयी है॥ १२॥

तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां बहुप्रजाम्।
जनित्रीमनुशेते स्म जुषमाणः स्वरूपिणीम्॥ १३

रक्तवर्णा अर्थात् रजोगुणवाली, शुक्लवर्णा अर्थात् सत्त्वगुणवाली तथा कृष्णवर्णा अर्थात् तमोगुणवाली एवं

तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च।
अजा जनित्री जगतां साजेन समधिष्ठिता॥ १४

प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च।
अजाज्ञया प्रधानस्य सर्गकाले गुणैस्त्रिभिः॥ १५

सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम्।
व्यक्तसृष्टिं विकुरुते चात्मनाधिष्ठितो महान्॥ १६

महतस्तु तथा वृत्तिः सङ्कल्पाध्यवसायिका।
महतस्त्रिगुणस्तस्मादहङ्कारो रजोऽधिकः॥ १७

तेनैव चावृतः सम्यगहङ्कारस्तमोऽधिकः।
महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च॥ १८

अहङ्काराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम्।
सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम्॥ १९

तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तितः।
स्पर्शमात्रं तथाकाशात्तस्माद्वायुर्महान् मुने॥ २०

तस्माच्च रूपमात्रं तु ततोऽग्निश्च रसस्ततः।
रसादापः शुभास्ताभ्यो गन्धमात्रं धरा ततः॥ २१

आवृणोद्धि तथाकाशं स्पर्शमात्रं द्विजोत्तमाः।
आवृणोद्रूपमात्रं तु वायुर्वाति क्रियात्मकः॥ २२

बहुविध प्रजाओंकी उत्पत्ति करनेवाली अजास्वरूपिणी उस प्रकृतिकी प्रेमपूर्वक सेवा करता हुआ यह बद्ध जीव उसका अनुसरण करता है॥ १३॥

दूसरे प्रकारका अनासक्त जीव प्रकृतिके भोगोंको भोगकर और उसकी असारता तथा क्षणभंगुरताको समझकर उस मायाका परित्याग कर देता है। परमेश्वरके द्वारा अधिष्ठित वह अजा अनन्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिकर्त्री है॥ १४॥

सृष्टिके समयमें तीन गुणोंसे युक्त अजरूप पुरुषकी आज्ञासे उसमें अधिष्ठित मायासे वह महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ॥ १५॥

सृष्टि करनेकी इच्छासे युक्त होकर उस अधिष्ठित महत्तत्त्वने स्वतः अव्यय तथा अव्यक्त पुरुषमें प्रविष्ट होकर व्यक्त सृष्टिमें विक्षोभ उत्पन्न किया॥ १६॥

उस महत्तत्त्वसे संकल्प-अध्यवसायवृत्तिरूप सात्त्विक अहंकार उत्पन्न हुआ तथा उसी महत्तत्त्वसे त्रिगुणात्मकरूप रजोगुणकी अधिकतावाला राजस अहंकार उत्पन्न हुआ और उस रजोगुणसे सम्यक् प्रकारसे आवृत तमोगुणकी अधिकतावाला तामस अहंकार भी उसी महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुआ है तथा उसी अहंकारसे सृष्टिको व्याप्त करनेवाली शब्द, स्पर्श आदि तन्मात्राएँ भी उत्पन्न हुई हैं॥ १७-१८॥

महत्तत्त्वजन्य उस तामस अहंकारसे शब्द तन्मात्रावाले अव्यय आकाशकी उत्पत्ति हुई और बादमें शब्दके कारणरूप उस अहंकारने शब्दयुक्त आकाशको व्याप्त कर लिया। हे विप्रो! इसी प्रकार तन्मात्रात्मक भूतसर्गके विषयमें कहा गया है। हे मुने! उस आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रावाला महान् वायु उत्पन्न हुआ। पुनः उस वायुसे रूपतन्मात्रावाले अग्निकी उत्पत्ति हुई तथा अग्निसे रसतन्मात्रावाले जलका प्रादुर्भाव हुआ। फिर रसतन्मात्रावाले उस जलसे गन्धतन्मात्रावाली कल्याणमयी पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई॥ १९—२१॥

हे श्रेष्ठ विप्रो! आकाश स्पर्शतन्मात्रावाले वायुको आवृत किये रहता है तथा रूपतन्मात्रावाले अग्निको आच्छादित करके यह क्रियाशील वायु बहता रहता है॥ २२॥

आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षाद्विभावसुः।
आवृण्वाना गन्धमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः॥ २३

क्ष्मा सा पञ्चगुणा तस्मादेकोना रससम्भवाः।
त्रिगुणो भगवान् वह्निर्द्विगुणः स्पर्शसम्भवः॥ २४

अवकाशस्ततो देव एकमात्रस्तु निष्कलः।
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्च परस्परम्॥ २५

वैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्सम्प्रवर्तते।
सर्गस्तथाप्यहङ्कारादेवमत्र प्रकीर्तितः॥ २६

पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्यस्य पञ्च कर्मेन्द्रियाणि तु।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं मनश्चैवोभयात्मकम्॥ २७

महदादिविशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति च।
जलबुद्बुदवत्तस्मादवतीर्णः पितामहः॥ २८

स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगतः प्रभुः।
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्॥ २९

अण्डं दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः।
आपो दशगुणेनैव तद्बाह्ये तेजसा वृताः॥ ३०

तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः॥ ३१

आकाशेनावृतो वायुरहङ्कारेण शब्दजः।
महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम्॥ ३२

सप्ताण्डावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः।
कोटिकोटियुतान्यत्र चाण्डानि कथितानि तु॥ ३३

साक्षात् अग्निदेव रसतन्मात्रावाले जलको आच्छादित किये रहते हैं तथा सभी रसोंसे युक्त जलतत्त्व गन्धतन्मात्रावाली पृथ्वीको आच्छादित किये रहता है॥ २३॥

इस प्रकार पृथ्वी पाँच (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) गुणोंसे, गन्धरहित शेष चार गुणोंसे जल, भगवान् अग्नि तीन गुणोंसे तथा स्पर्शसमन्वित वायु दो गुणोंसे युक्त हुए और अन्य अवयवोंसे रहित आकाशदेव मात्र एक गुणवाले हुए। इस प्रकार तन्मात्राओंके पारस्परिक संयोगवाला भूतसर्ग कहा गया है॥ २४-२५॥

राजस, तामस तथा सात्त्विक सर्ग साथ-साथ प्रवृत्त होते हैं, किंतु यहाँपर तामस अहंकारसे ही सर्गका होना बताया गया है॥ २६॥

शब्द-स्पर्श आदिको ग्रहण करनेके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा उभयात्मक मन इस जीवके लिये बनाये गये हैं॥ २७॥

महत्तत्त्वादिसे लेकर पंचमहाभूतपर्यन्त सभी तत्त्व अण्डकी उत्पत्ति करते हैं। वह परमात्मा ही पितामह ब्रह्मा, शंकर तथा विश्वव्यापी प्रभु विष्णुके रूपमें उस अण्डसे जलके बुलबुलेकी भाँति अवतीर्ण हुआ। ये सभी लोक तथा उनके भीतरका यह सम्पूर्ण जगत् उस अण्डमें सन्निविष्ट था॥ २८-२९॥

वह अण्ड अपनेसे दस गुने जलसे बाहरसे व्याप्त था और जल बाहरसे अपनेसे दस गुने तेजसे आवृत था॥ ३०॥

तेज अपनेसे दस गुने वायुसे बाहरसे आवृत था और वायु अपनेसे दस गुने आकाशसे बाहरसे आवृत था॥ ३१॥

शब्दजन्य वायुको आवृत किये हुए वह आकाश तामस अहंकारसे आवृत है। शब्द-हेतु आकाशको आवृत करनेवाला वह तामस अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है और वह महत्तत्त्व स्वयं अव्यक्त प्रधानसे आवृत है॥ ३२॥

उस अण्ड (ब्रह्माण्ड)-के ये सात प्राकृत आवरण कहे गये हैं। कमलासन ब्रह्माजी उसकी आत्मा हैं। इस सृष्टिमें करोड़ों-करोड़ों अण्डों (ब्रह्माण्डों)-की स्थितिके विषयमें कहा गया है॥ ३३॥

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः।
सृष्टाः प्रधानेन तदा लब्ध्वा शम्भोस्तु सन्निधिम्॥ ३४

लयश्चैव तथान्योऽन्यमाद्यन्तमिति कीर्तितम्।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः॥ ३५

प्रधान (प्रकृति) ही सदाशिवके आश्रयको प्राप्त करके इन करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें सर्वत्र चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु और शिवका सृजन करती है। अन्तमें शम्भुका सहयोग प्राप्तकर वहीं प्रधान लय भी करती है। इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध आदि (सृष्टि) तथा अन्त (प्रलय)-के विषयमें कहा गया है। इस सृष्टिकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाले वे ही एकमात्र महेश्वर हैं॥ ३४-३५॥

सर्गे च रजसा युक्तः सत्त्वस्थः प्रतिपालने।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात्॥ ३६

वे ही महेश्वर क्रमपूर्वक तीन रूपोंमें होकर सृष्टि करते समय रजोगुणसे युक्त रहते हैं, पालनकी स्थितिमें सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तथा प्रलयकालमें तमोगुणसे आविष्ट रहते हैं॥ ३६॥

आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता परिपालकः।
तस्मान्महेश्वरो देवो ब्रह्मणोऽधिपतिः शिवः॥ ३७

सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मको यतः।
एतदण्डे तथा लोका इमे कर्ता पितामहः॥ ३८

वे ही भगवान् शिव प्राणियोंके सृष्टिकर्ता, पालक तथा संहर्ता हैं। अतएव वे महेश्वर ब्रह्माके अधिपतिरूपमें प्रतिष्ठित हैं, जिस कारणसे भगवान् सदाशिव भव, विष्णु, ब्रह्मा आदि रूपोंमें स्थित हैं तथा सर्वात्मक हैं, इसी कारण वे ही ब्रह्माण्डवर्ती इन लोकोंके रूपमें तथा इनके कर्ता पितामहके रूपमें कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

प्राकृतः कथितस्त्वेष पुरुषाधिष्ठितो मया।
सर्गश्चाबुद्धिपूर्वस्तु द्विजाः प्राथमिकः शुभः॥ ३९

हे द्विजो! पुरुषाधिष्ठित यह प्राथमिक ईश्वरकृत अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न तथा कल्याणकारी प्राकृत सर्ग मैंने तुम्हें सुनाया है॥ ३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्राकृतप्राथमिकसर्गकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'प्राकृतप्राथमिकसर्गकथन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

ब्रह्माजीकी आयुका परिमाण, कालका स्वरूप, कल्प, मन्वन्तर एवं युगादिका मान तथा ब्रह्माजीद्वारा विभिन्न लोकोंकी संरचना

सूत उवाच

अथ प्राथमिकस्येह यः कालस्तदहः स्मृतम्।
सर्गस्य तादृशी रात्रिः प्राकृतस्य समासतः॥ १

सूतजी बोले—ब्रह्माकी प्राकृत सृष्टिका जो समय है, वही उनका दिन है तथा उतने ही परिमाणकी उनकी रात्रि है॥ १॥

दिवा सृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः।
औपचारिकमस्यैतदहोरात्रं न विद्यते॥ २

वे ब्रह्मा दिनमें सृष्टि करते हैं तथा रातमें प्रलय करते हैं। ब्रह्माका अहोरात्र उत्पत्ति-प्रलयरूपात्मक है, मनुष्योंके दिन-रातके समान सूर्योदयास्तवाला नहीं है॥ २॥

दिवा विकृतयः सर्वे विकारा विश्वदेवताः।
प्रजानां पतयः सर्वे तिष्ठन्त्यन्ये महर्षयः॥ ३

रात्रौ सर्वे प्रलीयन्ते निशान्ते सम्भवन्ति च।
अहस्तु तस्य वै कल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता॥ ४

दिनमें सभी प्रकारकी वैकारिक सृष्टि, समस्त देवता, सभी प्रजापतिगण तथा अन्य महर्षि लोग विद्यमान रहते हैं तथा रातमें ये सभी विलीन हो जाते हैं। रातकी समाप्तिपर वे सभी पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। ब्रह्माका एक दिन ही एक कल्प कहा जाता है तथा उसी प्रकार उनकी रात भी एक कल्पके मानके तुल्य कही गयी है॥ ३-४॥

चतुर्युगसहस्रान्ते मनवस्तु चतुर्दश।
चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणां कृतं द्विजाः॥ ५

तावच्छती च वै सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु।
त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात्॥ ६

एक हजार चतुर्युगीकी अवधिमें चौदह मनु उत्पन्न होते हैं। हे विप्रो! सत्ययुगका काल चार हजार दिव्य वर्षोंका है और उस सत्ययुगके चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश होते हैं। उसी प्रकार क्रमसे त्रेतायुगकी सन्ध्या तीन सौ वर्षकी, द्वापरकी सन्ध्या दो सौ वर्षकी तथा कलियुगकी सन्ध्या एक सौ वर्षकी होती है॥ ५-६॥

अंशकः षट्शतं तस्मात् कृतसन्ध्यांशकं विना।
त्रिद्व्येकसाहस्रमितौ विना सन्ध्यांशके न तु॥ ७

इस प्रकार सत्ययुगके सन्ध्यांशकको छोड़कर अन्य तीन युगोंके कुल सन्ध्यांशक छः सौ वर्षके होते हैं तथा इन त्रेता, द्वापर और कलिके सन्ध्या-सन्ध्यांशकको छोड़कर इनका नियत समय क्रमशः तीन हजार, दो हजार तथा एक हजार वर्षोंका होता है॥ ७॥

त्रेताद्वापरतिष्याणां कृतस्य कथयामि वः।
निमेषपञ्चदशका काष्ठा स्वस्थस्य सुव्रताः॥ ८

मर्त्यस्य चाक्ष्णोस्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला।
कला त्रिंशतिको विप्रा मुहूर्त इति कल्पितः॥ ९

हे सुव्रत ऋषियो! अब मैं आप लोगोंको त्रेता, द्वापर, कलियुग तथा सत्ययुगके कालमान बताता हूँ। स्वस्थ मनुष्यके नेत्रके पन्द्रह निमेषके समयको एक काष्ठा कहते हैं और तीस काष्ठाकी एक कला होती है। हे विप्रो! तीस कलाको मिलाकर एक मुहूर्त कहा जाता है॥ ८-९॥

मुहूर्तपञ्चदशिका रजनी तादृशं त्वहः।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः॥ १०

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु स स्मृतः॥ ११

पन्द्रह मुहूर्तकी एक रात होती है तथा उसी प्रकार पन्द्रह मुहूर्तका एक दिन होता है। मनुष्योंका एक कृष्णपक्ष पितरोंके एक दिनके बराबर होता है तथा शुक्लपक्ष उनकी स्वप्नसम्बन्धी रातके समान होता है। मनुष्योंके तीस महीनेका समय पितरोंके एक मासके बराबर माना गया है॥ १०-११॥

शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते॥ १२

मनुष्योंके तीन सौ साठ महीनोंका समय पितरोंका एक संवत्सर (वर्ष) माना जाता है॥ १२॥

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि वै॥ १३

दश वै द्व्यधिका मासाः पितृसंख्येह संस्मृता।
लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः॥ १४

मानवीय मानसे सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित जो १०० वर्ष होते हैं, यहाँ वे ही पितरोंके तीन वर्ष कहे गये हैं। जैसे लौकिक मानसे बारह मासका एक मानववर्ष होता है,

एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैङ्गेऽत्र पठ्यते।
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः॥ १५
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते विशेषतः॥ १६
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
मानुषं तु शतं विप्रा दिव्यमासास्त्रयस्तु ते॥ १७
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः।
त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु॥ १८
दिव्यः सम्वत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः॥ १९
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः।
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु॥ २०
अन्यानि नवतीश्चैव ध्रौवः संवत्सरस्तु सः।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ २१
वर्षाणां तच्छतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः।
त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ २२
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥ २३
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम्।
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते॥ २४
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि सुव्रताः।
अथ संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः॥ २५
कृतस्याद्यस्य विप्रेन्द्रा दिव्यमानेन कीर्तितम्।
सहस्राणां शतान्यासंश्चतुर्दश च संख्यया॥ २६
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम्।
तथा दशसहस्राणां वर्षाणां शतसंख्यया॥ २७
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य च।
सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु॥ २८
विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तु द्वापरस्य च।
तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया॥ २९
षष्टिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु।
एवं चतुर्युगः काल ऋते सन्ध्यांशकात्स्मृतः॥ ३०

उसी प्रकार पितृमानसे बारह मासका एक पितृवर्ष होता है। लिङ्गपुराणमें इस प्रकार दिव्य अहोरात्र तथा दिव्य वर्षका विभागपूर्वक वर्णन किया गया है॥ १३—१५॥

सूर्यका उत्तरकी ओर संक्रमण [उत्तरायण—सूर्यका मकरराशिसे मिथुनराशितक] ही देवताओंका दिवस तथा सूर्यका दक्षिणकी ओर संक्रमण [दक्षिणायन—कर्कराशिसे धनुराशितक] ही देवोंकी रात्रि होती है। विशेषतया ये दिव्य अहोरात्र कहे गये हैं॥ १६॥

मनुष्योंके तीस वर्षोंका काल देवताओंके एक महीनेके समयके बराबर होता है। हे विप्रो! मनुष्योंका एक सौ वर्ष देवताओंके तीन माह तथा दस दिनके बराबर माना गया है॥ १७$^{1}/_{2}$॥

मनुष्योंके तीन सौ साठ वर्षोंका कालमान देवताओंके एक वर्षके समयके तुल्य कहा गया है॥ १८$^{1}/_{2}$॥

मनुष्योंके कालप्रमाणके अनुसार उनके तीन हजार तीस वर्ष सप्तर्षियोंके एक वर्षके बराबर माने गये हैं॥ १९$^{1}/_{2}$॥

मनुष्योंके नौ हजार नब्बे वर्षोंको मिलाकर वह एक ध्रौव्य वर्ष (ध्रुव वर्ष) होता है॥ २०$^{1}/_{2}$॥

मनुष्योंका जो छत्तीस हजार वर्षोंका समय है, वही देवताओंका सौ वर्ष कहा जाता है॥ २१$^{1}/_{2}$॥

कालगणनाके विद्वान् मनुष्योंके तीन लाख साठ हजार वर्षोंके समयको देवताओंके एक हजार वर्षोंके बराबर कहते हैं॥ २२-२३॥

देवताओंके ही कालप्रमाणसे युगोंकी संख्या कल्पित की गयी है। हे सुव्रत ऋषियो! सर्वप्रथम सत्ययुग, इसके बाद त्रेता, फिर द्वापर और अन्तमें कलियुग—ये चार युग कहे गये हैं। अब मानुषीवर्ष-प्रमाणसे इनका काल बताया जाता है॥ २४-२५॥

हे विप्रवरो! प्रथम कृतयुगका कालमान देवताओंके प्रमाणसे बताया जा चुका है। वह कृतयुग मानुषी वर्षसे चौदह लाख चालीस हजार वर्षोंका है तथा त्रेतायुगका कालप्रमाण दस लाख अस्सी हजार वर्षोंका, द्वापरयुगका कालमान सात लाख बीस हजार वर्षोंका तथा कलियुगका समय तीन लाख साठ हजार वर्षोंका कहा गया है। इस

नियुतान्येव षट्त्रिंशन्निरंशानि तु तानि वै।
चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया॥ ३१

विंशतिश्च सहस्राणि सन्ध्यांशश्च चतुर्युगः।
एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः॥ ३२

कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरन्तरमुच्यते।
मन्वन्तरस्य संख्या च वर्षाग्रेण प्रकीर्तिता॥ ३३

त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु॥ ३४

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा लैङ्गेऽस्मिन् कीर्तिता द्विजाः॥ ३५

चतुर्युगस्य च तथा वर्षसंख्या प्रकीर्तिता।
चतुर्युगसहस्रं वै कल्पश्चैको द्विजोत्तमाः॥ ३६

निशान्ते सृजते लोकान् नश्यन्ते निशि जन्तवः।
तत्र वैमानिकानां तु अष्टाविंशतिकोटयः॥ ३७

मन्वन्तरेषु वै संख्या सान्तरेषु यथातथा।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा॥ ३८

कल्पेऽतीते तु वै विप्राः सहस्राणां तु सप्ततिः।
पुनस्तथाष्टसाहस्रं सर्वत्रैव समासतः॥ ३९

कल्पावसानिकांस्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते।
महर्लोकात्प्रयान्त्येते जनलोकं जनास्ततः॥ ४०

कोटीनां द्वे सहस्रे तु अष्टौ कोटिशतानि तु।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः॥ ४१

कल्पार्धसंख्या दिव्या वै कल्पमेवन्तु कल्पयेत्।
कल्पानां वै सहस्रन्तु वर्षमेकमजस्य तु॥ ४२

वर्षाणामष्टसाहस्रं ब्राह्मं वै ब्रह्मणो युगम्।
सवनं युगसाहस्रं सर्वदेवोद्भवस्य तु॥ ४३

सवनानां सहस्रं तु त्रिविधं त्रिगुणं तथा।
ब्रह्मणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मनः प्रभोः॥ ४४

प्रकार सन्ध्या तथा सन्ध्यांशको छोड़कर चारों युगोंका काल छत्तीस लाख वर्ष कहा गया है। चारों युगोंके सन्ध्यांशका काल तीन लाख साठ हजार वर्ष होता है॥ २६—३१ $^{1}/_{2}$॥

इकहत्तर कृत-त्रेतादि चतुर्युगोंके कालसे कुछ अधिक कालको एक मन्वन्तर कहा जाता है और आगे दिये गये वर्षोंसे मन्वन्तरकी संख्या कही गयी है॥ ३२-३३॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! मनुष्यवर्षसे तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्षोंका काल सभी मनुओंका होता है; हे द्विजो! ऐसा इस लिङ्गपुराणमें बताया गया है॥ ३४-३५॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चतुर्युगकी भी वर्षसंख्या कही गयी है। एक हजार चतुर्युगोंका काल एक कल्प कहा गया है॥ ३६॥

ब्रह्माजी दिनके आरम्भमें जगत्‌की रचना करते हैं तथा रात्रिमें प्राणियोंका संहार होता है। उनमें देवताओंकी संख्या अट्ठाईस करोड़ है। यह संख्या मन्वन्तरोंमें तीन सौ बानबे करोड़ होती है। हे ब्राह्मणो! कल्प व्यतीत होनेपर यह संख्या अठहत्तर हजार होती है॥ ३७—३९॥

प्रलयकाल उपस्थित होनेपर कल्पके अन्तमें विद्यमान देवताओंको छोड़कर महर्लोकमें निवास करनेवाले लोग जनलोकमें चले जाते हैं॥ ४०॥

आधे दिव्य (देव) कल्पकी वर्षसंख्या दो हजार आठ सौ बासठ करोड़ सत्तर लाख है; इसीसे कल्पकी संख्या ज्ञात होती है। हजार कल्पोंका काल ही ब्रह्माजीका एक वर्ष है॥ ४१-४२॥

ब्रह्माके आठ हजार वर्षोंका काल (आठ हजार ब्राह्म वर्ष) ब्रह्माका एक युग होता है। सभी देवोंके उत्पत्तिकर्ता ब्रह्माका एक हजार युग विष्णुके एक दिनके बराबर होता है॥ ४३॥

विष्णुके नौ हजार दिनोंका समय कालात्मा प्रभु ब्रह्मस्वरूप रुद्रके एक दिनका समय कहा गया है॥ ४४॥

भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रम्भः क्रतुः पुनः।
ऋतुर्वह्निर्हव्यवाहः सावित्रः शुद्ध एव च॥ ४५

उशिकः कुशिकश्चैव गान्धारो मुनिसत्तमाः।
ऋषभश्च तथा षड्जो मज्जालीयश्च मध्यमः॥ ४६

वैराजो वै निषादश्च मुख्यो वै मेघवाहनः।
पञ्चमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्ज्ञान एव च॥ ४७

मनः सुदर्शो बृंहश्च तथा वै श्वेतलोहितः।
रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपकः॥ ४८

एवं कल्पास्तु संख्याता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
कोटिकोटिसहस्राणि कल्पानां मुनिसत्तमाः॥ ४९

गतानि तावच्छेषाणि अहर्निश्यानि वै पुनः।
परान्ते वै विकाराणि विकारं यान्ति विश्वतः॥ ५०

विकारस्य शिवस्याज्ञावशेनैव तु संहृतिः।
संहृते तु विकारे च प्रधाने चात्मनि स्थिते॥ ५१

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ।
गुणानाञ्चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता॥ ५२

साम्ये लयो गुणानान्तु तयोर्हेतुर्महेश्वरः।
लीलया देवदेवेन सर्गास्त्वीदृग्विधाः कृताः॥ ५३

असंख्याताश्च सङ्क्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात्।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः॥ ५४

हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः।
प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु॥ ५५

गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा।
अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यान्तं नास्ति चात्मनः॥ ५६

पितामहस्याथ परः परार्धद्वयसम्मितः।
दिवा सृष्टं तु यत्सर्वं निशि नश्यति चास्य तत्॥ ५७

भूर्भुवः स्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च।
रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजङ्गमे॥ ५८

हे मुनिश्रेष्ठो! भवोद्भव, तप, भव्य, रम्भ, क्रतु, ऋतु, वह्नि, हव्यवाह, सावित्र, शुद्ध, उशिक, कुशिक, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, मज्जालीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मुख्य, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, आकूति, ज्ञान, मन, सुदर्श, बृंह, श्वेतलोहित, रक्त, पीतवासा, असित एवं सर्वरूपक—ये तैंतीस संख्यावाले कल्प उस अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके होते हैं॥ ४५—४८१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार ब्रह्माके दिन-रातमें हजारों करोड़ कल्प बीत गये तथा शेष अभी व्यतीत होंगे॥ ४९१/२॥

महाप्रलयके समय सम्पूर्ण सृष्टिका लय हो जाता है और पश्चात् शिवकी आज्ञासे प्रलयका भी प्रलय हो जाता है॥ ५०१/२॥

इस प्रकार सबका प्रलय हो जानेपर तथा प्रकृतिके परमात्मामें स्थित हो जानेपर केवल प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष—ये दो ही रह जाते हैं॥ ५११/२॥

हे विप्रो! इस प्रकार गुणोंकी ही विषमतासे सृष्टि तथा गुणोंके ही साम्यसे प्रलय होते हैं और उन दोनोंका हेतु वे ही महेश्वर हैं॥ ५२१/२॥

उन देवाधिदेवने अपनी लीलासे इस प्रकारकी असंख्य सृष्टि की है। वे सर्ग प्रधानसे अन्वधिष्ठित होते हैं॥ ५३१/२॥

इस प्रकार असंख्य कल्प, अनगिनत पितामह (ब्रह्मा) तथा असंख्य विष्णु उत्पन्न होते हैं; किंतु वे महेश्वर मात्र एक हैं॥ ५४१/२॥

प्रकृति अपनी लीलासे प्राकृत सर्गकी रचना करती है और उस परमात्माकी वृत्ति तीन प्रकारके गुणों (सत्-रज-तम)-वाली है। उस अप्राकृतका अपना न कोई आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है॥ ५५-५६॥

ब्रह्माकी आयु [पर] दो परार्ध है। उस ब्रह्माके द्वारा दिनमें जो भी सृजित होता है, वह सब कुछ रातमें नष्ट हो जाता है॥ ५७॥

भूः, भुवः, स्वः, महः—ये लोक नष्ट हो जाते हैं; किंतु इनसे ऊपरके लोकोंका नाश नहीं होता है। समस्त चर-अचरके अनन्त समुद्रमें विनष्ट हो जानेपर रात्रिमें

सुष्वापाम्भसि यस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः।
शर्वर्यन्ते प्रबुद्धो वै दृष्ट्वा शून्यं चराचरम्॥ ५९

ब्रह्माजी उसी जलराशिमें शयन करते हैं; इसीलिये उन्हें नारायण कहा जाता है॥ ५८½॥

प्रलयकालीन रातके बीतनेपर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी उठे और चराचर जगत्को शून्य देखकर उन्होंने सृष्टि करनेका विचार किया॥ ५९½॥

स्रष्टुं तदा मतिञ्चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
उदकैराप्लुतां क्ष्मां तां समादाय सनातनः॥ ६०

पूर्ववत् स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः।
नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः॥ ६१

उन सनातन ब्रह्माने वाराहका रूप धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीको निकालकर उसे पुनः पूर्वकी भाँति स्थापित कर दिया और उसपर नदी, नद तथा समुद्रोंको उन प्रभुने पूर्वकी भाँति पुनः कर दिया॥ ६०-६१॥

कृत्वा धरां प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविवर्जिताम्।
धरायां सोऽचिनोत् सर्वान् गिरीन् दग्धान् पुराग्निना॥ ६२

ब्रह्माजीने प्रयत्नपूर्वक पृथ्वीतलपर दबे हुए तथा उठे भागोंको ठीक करके उन्हें समतल किया और उन्होंने पूर्वकालमें अग्निसे दग्ध सभी पर्वतोंको धरापर पुनः पूर्ववत् बना दिया॥ ६२॥

भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्।
स्रष्टुञ्च भगवान् चक्रे तदा स्रष्टा पुनर्मतिम्॥ ६३

इस प्रकार भगवान् ब्रह्माने जब भूः आदि चारों लोकोंकी पूर्वकी भाँति रचना कर ली, तब उन सृष्टिकर्ताने पुनः सृष्टि करनेका विचार किया॥ ६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सृष्टिप्रारम्भवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सृष्टिप्रारम्भवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा पंचपर्वा अविद्याकी सृष्टि, नौ प्रकारकी सृष्टि (नवविध सर्ग)-की संरचना, मरीचि आदि ऋषियोंकी उत्पत्ति, मनु-शतरूपाका प्रादुर्भाव तथा दक्षप्रजापतिकी कन्याओंका वंशवर्णन

सूत उवाच

यदा स्रष्टुं मतिं चक्रे मोहश्चासीन्महात्मनः।
द्विजाश्चाबुद्धिपूर्वं तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ १

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! जब ब्रह्माजीने अबुद्धिपूर्वक अर्थात् सम्यक् विचार किये बिना सृष्टिरचनाका विचार किया, तब उन अव्यक्तजन्मा महात्मा ब्रह्माको मोहने व्याप्त कर लिया॥ १॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयम्भुवः॥ २

उन स्वयम्भूसे प्रथम तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तामिस्र (क्रोध) तथा अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) नामवाली—ये पाँच प्रकारकी [पंचपर्वा] अविद्याएँ उत्पन्न हो गयीं॥ २॥

अविद्यया मुनेर्ग्रस्तः सर्गो मुख्य इति स्मृतः।
असाधक इति स्मृत्वा सर्गो मुख्यः प्रजापतिः॥ ३

ब्रह्माजीका वह मुख्य [प्रथम] सर्ग (सृष्टि) अविद्यासे ग्रस्त कहा गया है, तब उन्होंने इस प्रथम

अभ्यमन्यत सोऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृताः।
त्रिधा कण्ठो मुनेस्तस्य ध्यायतो वै ह्यवर्तत॥ ४

प्रथमं तस्य वै जज्ञे तिर्यक्स्त्रोतो महात्मनः।
ऊर्ध्वस्त्रोतः परस्तस्य सात्त्विकः स इति स्मृतः॥ ५

अर्वाक्स्त्रोतोऽनुग्रहश्च तथा भूतादिकः पुनः।
ब्रह्मणो महतस्त्वाद्यो द्वितीयो भौतिकस्तथा॥ ६

सर्गस्तृतीयश्चैन्द्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते।
तिर्यग्योन्यः पञ्चमस्तु षष्ठो दैविक उच्यते॥ ७

सप्तमो मानुषो विप्रा अष्टमोऽनुग्रहः स्मृतः।
नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥ ८

पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा।
सनातनं मुनिश्रेष्ठा नैष्कर्म्येण गताः परम्॥ ९

मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया॥ १०

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मज्ञा ब्राह्मणोत्तमाः।
ब्रह्मवादिन एवैते ब्रह्मणः सदृशाः स्मृताः॥ ११

सङ्कल्पश्चैव धर्मश्च ह्यधर्मो धर्मसन्निधिः।
द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ १२

ऋभुं सनत्कुमारञ्च ससर्जादौ सनातनः।
तावूर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ॥ १३

सर्गको सृष्टि-विस्तारका असाधक मानकर वृक्षादिरूप (वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध्, तृणरूप—पाँच प्रकारका सर्ग) मुख्यसर्गका सृजन किया, तदनन्तर ध्यानपूर्वक मनन करते हुए उन ब्रह्माजीका कण्ठ (चिन्तन) त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज तथा तमोगुणसे युक्त) हो गया॥ ३-४॥

पहले उन महात्मा ब्रह्माने तिर्यक्स्त्रोत पशु आदि उत्पन्न किये, तत्पश्चात् उन्होंने ऊर्ध्वस्त्रोतकी रचना की, जो सात्त्विकरूप कहा गया। इसके अनन्तर अर्वाक्स्त्रोत (मनुष्य आदि), पुनः सत्त्व, तमप्रधान अनुग्रह-सर्ग, तदुपरान्त भूतादिकोंका सर्ग रचा गया॥ $५^{१}/_{२}$॥

ब्रह्माजीद्वारा रचित पहला सर्ग महत्तत्त्वादिका है, दूसरा भौतिक सर्ग है, जो भूततन्मात्राओंका है, तीसरा ऐन्द्रियसर्ग है [ये बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुए तीन सर्ग प्राकृत सर्ग हैं] और चौथा मुख्य सर्ग वृक्ष आदिका कहा जाता है। तिर्यक् योनिवाले पशु-पक्षियोंवाला सर्ग पाँचवाँ सर्ग है तथा छठा देवताओंकी सृष्टिवाला [ऊर्ध्वस्त्रोताओंका] देवसर्ग कहा जाता है॥ ६-७॥

सातवाँ [अर्वाक्स्त्रोताओंका] सर्ग मनुष्योंका, आठवाँ अनुग्रहसर्ग है, [ये पाँच वैकृतसर्ग हैं] नौवाँ कौमार सर्ग कहा जाता है। हे विप्रो! प्राकृत तथा वैकृत ये ही नौ सर्ग हैं; जिनमें प्रारम्भके तीन सर्ग प्राकृत हैं तथा पाँच सर्ग वैकृत हैं तथा नौवाँ कौमारसर्ग प्राकृत तथा वैकृत दोनों है॥ ८॥

तदुपरान्त भगवान् ब्रह्माने सनक, सनन्दन तथा सनातन [एवं सनत्कुमार] मुनि उत्पन्न किये। ये श्रेष्ठ मुनिगण निष्काम कर्मयोगसे परमपदको प्राप्त हुए॥ ९॥

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी योगविद्यासे मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ—इन ऋषियोंको उत्पन्न किया। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ब्रह्माजीके ये नौ [मानस] पुत्र ब्रह्मको जाननेवाले थे। ये ब्रह्मवादी ऋषि ब्रह्माके ही तुल्य कहे गये हैं। संकल्प, धर्म तथा अधर्म भी उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी ये बारह सन्तानें कहलायीं॥ १०—१२॥

उन सनातन ब्रह्माने आदिमें ऋभु तथा सनत्कुमारको

कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ।
वक्ष्ये भार्याकुलं तेषां मुनीनामग्रजन्मनाम्॥ १४

समासतो मुनिश्रेष्ठाः प्रजासम्भूतिमेव च।
शतरूपां तु वै राज्ञीं विराजमसृजत् प्रभुः॥ १५

स्वायम्भुवात्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा।
लेभे पुत्रद्वयं पुण्या तथा कन्याद्वयं च सा॥ १६

उत्तानपादो ह्यवरो धीमान् ज्येष्ठः प्रियव्रतः।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वाकूतिः प्रसूतिश्चानुजा स्मृता॥ १७

उपयेमे तदाकूतिं रुचिर्नाम प्रजापतिः।
प्रसूतिं भगवान् दक्षो लोकधात्रीं च योगिनीम्॥ १८

दक्षिणासहितं यज्ञमाकूतिः सुषुवे तथा।
दक्षिणा जनयामास दिव्या द्वादशपुत्रिकाः॥ १९

प्रसूतिः सुषुवे दक्षाच्चतुर्विंशति कन्यकाः।
श्रद्धां लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं तुष्टिं मेधां क्रियां तथा॥ २०

बुद्धिं लज्जां वपुः शान्तिं सिद्धिं कीर्तिं महातपाः।
ख्यातिं शान्तिं च सम्भूतिं स्मृतिं प्रीतिं क्षमां तथा॥ २१

सन्नतिं चानसूयां च ऊर्जां स्वाहां सुरारणिम्।
स्वधां चैव महाभागां प्रददौ च यथाक्रमम्॥ २२

श्रद्धाद्याश्चैव कीर्त्यन्तास्त्रयोदश सुदारिकाः।
धर्मं प्रजापतिं जग्मुः पतिं परमदुर्लभाः॥ २३

उपयेमे भृगुर्धीमान् ख्यातिं तां भार्गवारणिम्।
सम्भूतिञ्च मरीचिस्तु स्मृतिं चैवाङ्गिरा मुनिः॥ २४

प्रीतिं पुलस्त्यः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः।
क्रतुश्च सन्नतिं धीमान् अत्रिस्ताञ्चानुसूयकाम्॥ २५

ऊर्जां वसिष्ठो भगवान् वरिष्ठो वारिजेक्षणाम्।
विभावसुस्तथा स्वाहां स्वधां वै पितरस्तथा॥ २६

उत्पन्न किया था। अग्रजन्मा वे दोनों दिव्य पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा ब्रह्माके ही समान थे॥ १३$^{1}/_{2}$॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! अब मैं उन अग्रजन्मा मुनियोंकी भार्याओंका कुल तथा प्रजाओंकी उत्पत्तिका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ १४$^{1}/_{2}$॥

भगवान् ब्रह्माने स्वायम्भुव मनु तथा रानी शतरूपाका सृजन किया। उस अयोनिजा तथा पुण्यशालिनी रानी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र एवं दो कन्याएँ* उत्पन्न कीं॥ १५-१६॥

उनमें बुद्धिसम्पन्न प्रियव्रत ज्येष्ठ तथा उत्तानपाद कनिष्ठ पुत्र थे। श्रेष्ठ गुणोंवाली आकूति ज्येष्ठ तथा प्रसूति छोटी कन्या थी॥ १७॥

रुचि नामक प्रजापतिने आकूतिको तथा दक्षप्रजापतिने जगद्धात्री योगमयी प्रसूतिको भार्याके रूपमें ग्रहण किया॥ १८॥

आकूतिने दक्षिणासहित यज्ञ नामक पुत्रको जन्म दिया और दक्षिणाने दिव्य बारह कन्याओंको उत्पन्न किया॥ १९॥

प्रसूतिने दक्षप्रजापतिसे श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति, ख्याति, शान्ति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, देवताओंके लिये अरणिरूपा स्वाहा तथा स्वधा—इन तपोमयी चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया तथा इन महाभाग्यवती कन्याओंको आगे बताये गये क्रमके अनुसार महात्माजनोंको समर्पित कर दिया॥ २०—२२॥

श्रद्धासे लेकर कीर्तिपर्यन्त तेरह परम दुर्लभ सुन्दर कन्याओंने प्रजापति धर्मको पतिरूपमें प्राप्त किया। बुद्धिसम्पन्न भृगुने ख्यातिको, भार्गव शुक्राचार्यने अरणि [शान्ति]-को, मरीचिने सम्भूतिको तथा मुनि अंगिराने स्मृतिको पत्नीरूपमें ग्रहण किया॥ २३-२४॥

पुण्यात्मा पुलस्त्यने प्रीतिको, मुनि पुलहने क्षमाको, बुद्धिसम्पन्न क्रतुने सन्नतिको, अत्रिने उस अनसूयाको, श्रेष्ठ वसिष्ठने कमलके समान नेत्रोंवाली ऊर्जाको,

* यहाँ मनुकी दो पुत्रियाँ कही हैं, जबकि भागवत आदिमें **'तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे'** मनुकी तीन पुत्रियाँ प्रसिद्ध हैं। लिङ्गपुराणका वर्णन ईशानकल्पका आख्यान है और भागवतका वर्णन श्वेतवाराहकल्पका है। पुराणपठित (पुराणोक्त) सभी आख्यान सत्य हैं, कल्पभेदसे ही भिन्नताकी प्रतीति है।

पुत्रीकृता सती या सा मानसी शिवसम्भवा।
दक्षेण जगतां धात्री रुद्रमेवास्थिता पतिम्॥ २७

अर्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकाण्डजः।
विभजस्वेति चाहादौ यदा जाता तदाभवत्॥ २८

तस्याश्चैवांशजाः सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा।
एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा॥ २९

स्त्रीलिङ्गमखिलं सा वै पुंलिङ्गं नीललोहितः।
तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा दक्षमालोक्य सुव्रताम्॥ ३०

भजस्व धात्रीं जगतां ममापि च तवापि च।
पुन्नाम्नो नरकात्त्राति इति पुत्री त्विहोक्तितः॥ ३१

प्रशस्ता तव कान्तेयं स्यात्पुत्री विश्वमातृका।
तस्मात्पुत्री सती नाम्ना तवैषा च भविष्यति॥ ३२

एवमुक्तस्तदा दक्षो नियोगाद् ब्रह्मणो मुनिः।
लब्ध्वा पुत्रीं ददौ साक्षात् सतीं रुद्राय सादरम्॥ ३३

धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिताः वै त्रयोदश।
तासु धर्मप्रजां वक्ष्ये यथाक्रममनुत्तमम्॥ ३४

कामो दर्पोऽथ नियमः सन्तोषो लोभ एव च।
श्रुतस्तु दण्डः समयो बोधश्चैव महाद्युतिः॥ ३५

अप्रमादश्च विनयो व्यवसायो द्विजोत्तमाः।
क्षेमं सुखं यशश्चैव धर्मपुत्राश्च तासु वै॥ ३६

धर्मस्य वै क्रियायां तु दण्डः समय एव च।
अप्रमादस्तथा बोधो बुद्धेर्धर्मस्य तौ सुतौ॥ ३७

तस्मात् पञ्चदशैवैते तासु धर्मात्मजास्त्विह।
भृगुपत्नी च सुषुवे ख्यातिर्विष्णोः प्रियां श्रियम्॥ ३८

भगवान् अग्निने स्वाहादेवीको तथा पितरोंने स्वधादेवीको पत्नीरूपमें स्वीकार किया॥ २५-२६॥

दक्षप्रजापतिकी शिवसम्भवा (शिवांगसम्भूता) मानसी पुत्री सती, जो सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली हैं, ने भगवान् रुद्रको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ २७॥

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने शिवजीको अर्धनारीश्वर देखकर कहा कि आप स्त्री-पुरुषका विभाग कीजिये, तब शिवजीकी देहसे सतीजी अलग हो गयीं॥ २८॥

उन्हीं सतीके अंशसे तीनों लोकमें सभी स्त्रियोंकी उत्पत्ति हुई है तथा ग्यारह प्रकारके रुद्र भी उन शिवके अंशसे उत्पन्न हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण स्त्रीजातिके रूपमें वे सतीजी तथा पुरुषजातिके रूपमें नीललोहित शिवजी अधिष्ठित हैं॥ २९ १/२॥

भगवान् ब्रह्माने सुव्रता सतीको देखकर पुनः दक्षप्रजापतिकी ओर देखकर उनसे कहा कि ये सती हमारी, आपकी तथा सम्पूर्ण जगत्की धात्री हैं, अतएव इनकी सेवा करो। पुन्नामक नरकसे पुत्री ही रक्षा करती है, यहाँपर ऐसी ही उक्ति है॥ ३०-३१॥

यह परम सुन्दरी एवं प्रशस्त तथा विश्वकी जननी आपकी ही पुत्री है। अतएव अबसे यह सती नामसे तुम्हारी पुत्री होगी॥ ३२॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दक्षप्रजापतिने उनके आदेशसे पुत्रीरूपमें प्राप्त उन साक्षात् सतीको आदरपूर्वक भगवान् रुद्रको सौंप दिया॥ ३३॥

प्रजापति धर्मकी श्रद्धा आदि जिन तेरह पत्नियोंका वर्णन किया जा चुका है, उनसे तथा धर्मसे उत्पन्न उत्तम सन्तानोंके विषयमें अब मैं यथाक्रम कह रहा हूँ॥ ३४॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, समय, महान् द्युतिसम्पन्न बोध, अप्रमाद, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश—इन पुत्रोंको उन तेरह पत्नियोंने प्रजापति धर्मसे उत्पन्न किया था। धर्मके दो पुत्र दण्ड तथा समय उनकी क्रिया नामक पत्नीसे उत्पन्न हुए और अप्रमाद तथा बोध नामक ये दो पुत्र धर्मकी बुद्धि नामक पत्नीसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन तेरह पत्नियोंसे धर्मके ये पन्द्रह पुत्र उत्पन्न

धातारञ्च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ।
प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेः सुषुवे सुतौ॥ ३९

पूर्णमासं तु मारीचं ततः कन्याचतुष्टयम्।
तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टिः कृषिश्चापचितिस्तथा॥ ४०

क्षमा च सुषुवे पुत्रान् पुत्रीं च पुलहाच्छुभाम्।
कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमाः॥ ४१

तथा कनकपीतां स पीवरीं पृथिवीसमाम्।
प्रीत्यां पुलस्त्यश्च तथा जनयामास वै सुतान्॥ ४२

दत्तोर्णं वेदबाहुञ्च पुत्रीं चान्यां दृषद्वतीम्।
पुत्राणां षष्टिसाहस्त्रं सन्नतिः सुषुवे शुभा॥ ४३

क्रतोस्तु भार्या सर्वे ते बालखिल्या इति श्रुताः।
सिनीवालीं कुहूञ्चैव राकां चानुमतिं तथा॥ ४४

स्मृतिश्च सुषुवे पत्नी मुनेश्चाङ्गिरसस्तथा।
लब्धवानुभावमग्निञ्च कीर्तिमन्तञ्च सुव्रताः॥ ४५

अत्रेर्भार्यानसूया वै सुषुवे षट् प्रजास्तु याः।
तास्वेका कन्यका नाम्ना श्रुतिः सा सूनुपञ्चकम्॥ ४६

सत्यनेत्रो मुनिर्भव्यो मूर्तिरापः शनैश्चरः।
सोमश्च वै श्रुतिः षष्ठी पञ्चात्रेयास्तु सूनवः॥ ४७

ऊर्जा वसिष्ठाद्वै लेभे सुतांश्च सुतवत्सला।
ज्यायसी पुण्डरीकाक्षान् वासिष्ठान् वरलोचना॥ ४८

रजः सुहोत्रो बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शुक्र इत्येते मुनेर्वै सप्त सूनवः॥ ४९

यश्चाभिमानी भगवान् भवात्मा
पैतामहो वह्निरसुः प्रजानाम्।
स्वाहा च तस्मात् सुषुवे सुतानां
त्रयं त्रयाणां जगतां हिताय॥ ५०

हुए। भृगुकी पत्नी ख्यातिने 'श्री' (लक्ष्मी)-को जन्म दिया, जो भगवान् विष्णुकी परम प्रिया हुईं तथा धाता एवं विधाता नामक दो पुत्र भी उत्पन्न हुए, जो मेरुपर्वतके जामाता बने। मरीचिकी प्रभूति नामक पत्नीने पूर्णमास तथा मारीच नामक दो पुत्रों तथा तुष्टि, दृष्टि, कृषि एवं अपचिति नामक चार पुत्रियोंको जन्म दिया; इनमें तुष्टि ज्येष्ठ थी॥ ३५—४०॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! क्षमाने पुलहमुनिसे कर्दम, वरीयांस तथा सहिष्णु नामक तीन पुत्र तथा स्वर्णसदृश कान्तिवाली और पृथ्वीके समान क्षमाशील पीवरी नामकी एक पुत्रीको उत्पन्न किया था॥ ४१ ॥

पुलस्त्यऋषिने अपनी प्रीति नामक पत्नीसे दत्तोर्ण तथा वेदबाहु नामक पुत्रों तथा एक अन्य दृषद्वती नामक पुत्रीको उत्पन्न किया। क्रतुकी प्रिय पत्नी सन्नतिने साठ हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया; वे सभी बालखिल्य नामसे प्रसिद्ध हुए। हे सुव्रतो! अंगिरामुनिकी पत्नी स्मृतिसे सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति—इन चार कन्याओं तथा प्रिय स्वभाववाले कीर्तिमान् पुत्र अग्निकी उत्पत्ति हुई॥ ४२—४५॥

अत्रिकी भार्या अनसूयाने छः सन्ततियोंको जन्म दिया था। उनमें श्रुति नामधारिणी एक कन्या थी। सत्यनेत्र, मुनिर्भव्य, मूर्तिराप, शनैश्चर एवं सोम—ये पाँच पुत्र हुए, जो आत्रेय कहलाये। सभी सन्तानोंमें श्रुति छठी थी॥ ४६-४७॥

सुन्दर नेत्रोंवाली तथा पुत्रोंके प्रति स्नेहभाव रखनेवाली महिमामयी वसिष्ठपत्नी ऊर्जाने कमलके समान नेत्रवाले सात पुत्र उत्पन्न किये। रज, सुहोत्र, बाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र मुनि वसिष्ठसे हुए॥ ४८-४९॥

परम अभिमानी, रुद्ररूप, ब्रह्माके पुत्र तथा प्रजाओंके प्राणस्वरूप जो भगवान् अग्नि हैं, उनसे स्वाहाने तीनों लोकोंके कल्याणार्थ तीन पुत्र उत्पन्न किये॥ ५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्रजासृष्टिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'प्रजासृष्टिवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अग्नि तथा पितरोंके वंशका वर्णन, ब्रह्माजीसे रुद्रोंका प्रादुर्भाव, परमेष्ठी सदाशिवकी महिमा

सूत उवाच

पवमानः पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृताः।
निर्मथ्यः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः॥ १

शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहा पुत्रास्त्रयस्तु ते।
पुत्रैः पौत्रैस्त्विहैतेषां संख्या सङ्क्षेपतः स्मृता॥ २

विसृज्य सप्तकं चादौ चत्वारिंशन्नवैव च।
इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु च॥ ३

सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतः स्मृताः।
प्रजानां पतयः सर्वे सर्वे रुद्रात्मकाः स्मृताः॥ ४

अयज्वानश्च यज्वानः पितरः प्रीतिमानसाः।
अग्निष्वात्ताश्च यज्वानः शेषा बर्हिषदः स्मृताः॥ ५

मेनां तु मानसीं तेषां जनयामास वै स्वधा।
अग्निष्वात्तात्मजा मेना मानसी लोकविश्रुता॥ ६

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजामुमाम्।
गङ्गां हैमवतीं जज्ञे भवाङ्गाश्लेषपावनीम्॥ ७

धरणीं जनयामास मानसीं यज्ञयाजिनीम्।
स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना॥ ८

पितरोऽमृतपाः प्रोक्तास्तेषां चैवेह विस्तरः।
ऋषीणाञ्च कुलं सर्वं शृणुध्वं तत्सुविस्तरम्॥ ९

वदामि पृथगध्यायसंस्थितं वस्तदूर्ध्वतः।
दाक्षायणी सती याता पार्श्वं रुद्रस्य पार्वती॥ १०

पश्चाद्दक्षं विनिन्द्यैषा पतिं लेभे भवं तथा।
तां ध्यात्वा ह्यसृजद्रुद्राननेकान्नीललोहितः॥ ११

सूतजी बोले—अग्निके वे तीन पुत्र पवमान, पावक तथा शुचि नामसे विख्यात हुए। अरणी आदिमें घर्षणसे पवमान, विद्युत्‌से पावक तथा सूर्य-प्रभासे शुचिका आविर्भाव हुआ। ये तीनों स्वाहाके पुत्र हैं। अब यहाँ पुत्रों तथा पौत्रोंको मिलाकर इनकी संख्या संक्षेपमें बतायी जाती है॥ १-२॥

आदिमें सप्तकका त्याग करके कुल उनचास अग्नियाँ कही गयी हैं। ये यज्ञोंमें आराधित की जाती हैं॥ ३॥

ये सभी तपस्वी, व्रतधारी, प्रजाओंके पति तथा रुद्रस्वरूप कहे गये हैं॥ ४॥

अयज्वा तथा यज्वा—ये दो प्रकारके प्रसन्न मनवाले पितर हैं। उनमें यज्वा (यज्ञ करनेवाले) पितरोंको अग्निष्वात्त तथा अयज्वा पितरोंको बर्हिषद कहा जाता है॥ ५॥

स्वधाने उन अग्निष्वात्त पितरोंसे मेना नामक मानसी कन्या उत्पन्न की। अग्निष्वात्त पितरोंकी वह मानसी पुत्री मेना लोकमें अतीव प्रसिद्ध हुई॥ ६॥

मेनाने मैनाक, क्रौञ्च, उसकी अनुजा उमा तथा शिवजीके अंग-श्लेषके कारण (मस्तकपर विराजमान रहनेके कारण) जगत्‌को पवित्र करनेका गुण रखनेवाली हैमवती गंगाको उत्पन्न किया॥ ७॥

कमलके समान मुखवाली मेरुराजपत्नी स्वधाने यज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त रहनेवाली धरणी नामक मानसी पुत्रीको जन्म दिया। यहाँ अमृतपान करनेवाले पितरों तथा ऋषियोंके कुलका विस्तार दिया जा रहा है; आप लोग उसे विस्तारपूर्वक सुनिये॥ ८-९॥

अब मैं आप सबसे पूर्वनिरूपित विषयका पुनः पृथक् अध्यायमें वर्णन करता हूँ। दक्षकन्या सतीका विवाह रुद्रके साथ हुआ और वे उनके साथ चली गयीं। फिर इन्हीं सतीने दक्षके यज्ञका विध्वंस करके अपना देहत्याग कर दिया। इसके बाद पार्वतीरूपमें पुनः शिवजीको पतिके रूपमें प्राप्त किया॥ १०½॥
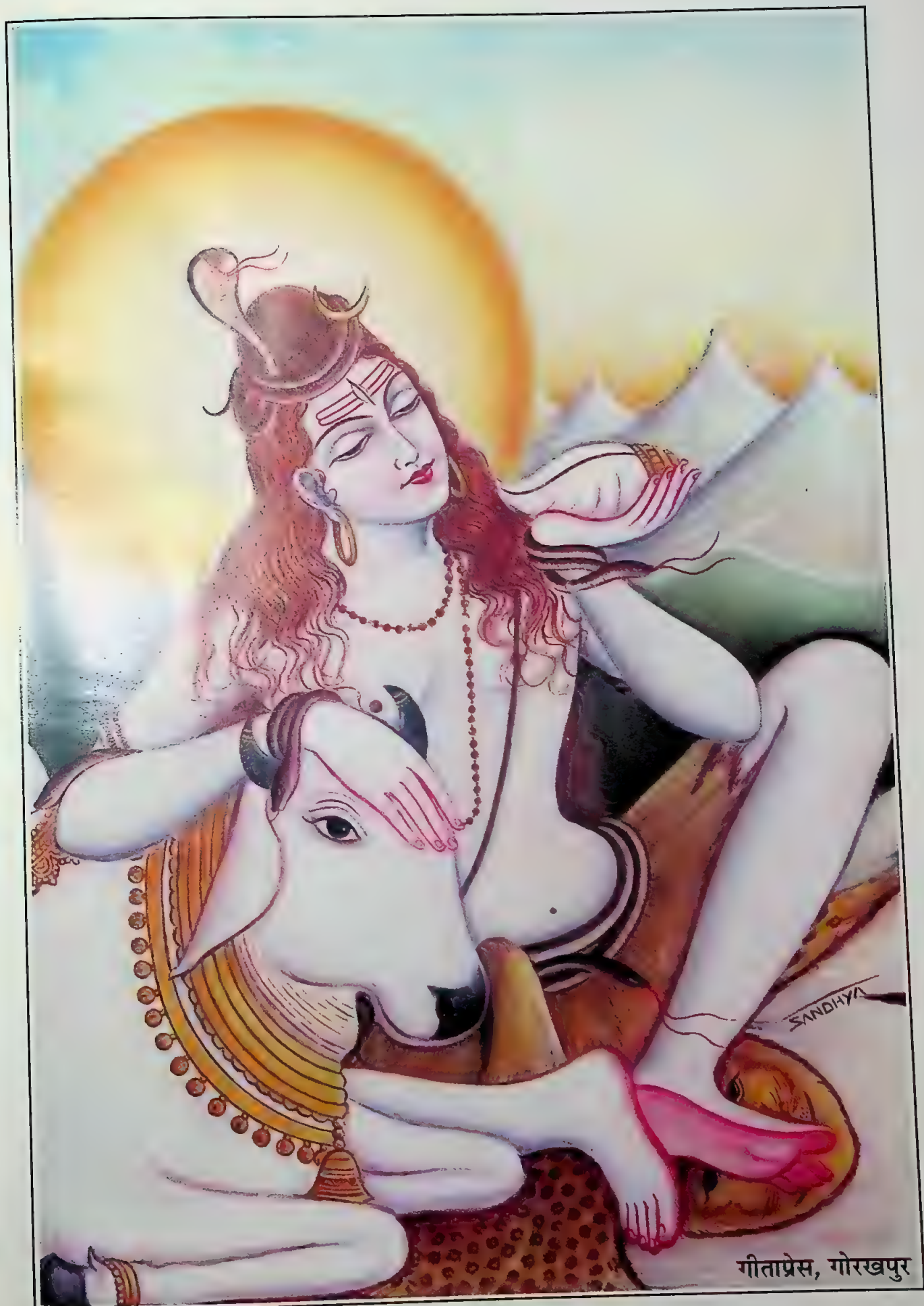
जगत्‌की रक्षाके लिये भगवान्‌का हलाहलपान

हैमवती भगवती उमा

ब्रह्मा तथा विष्णुके समक्ष लिङ्गरूप महामहेश्वरका प्राकट्य

ब्रह्मा तथा विष्णुद्वारा भगवान् शिवका स्तवन

ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार
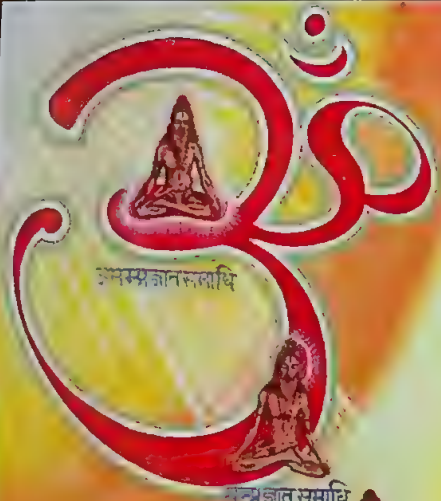
योगसाधनाके आठ अंग

दिव्य कैलासधाममें परिकरोंसहित विराजमान भगवान् उमा-महेश्वर
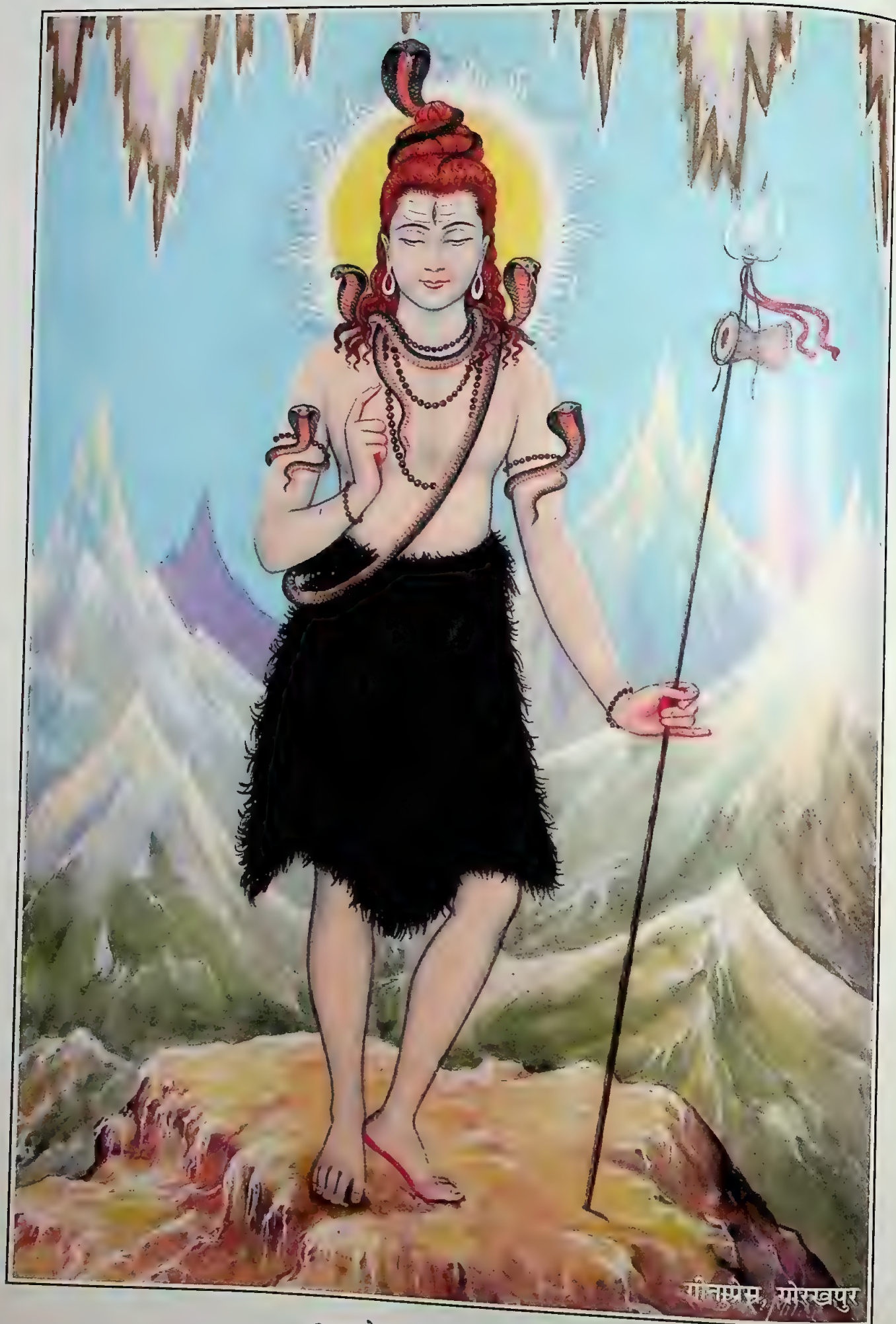
आशुतोष भगवान् सदाशिव

आत्मनस्तु समान् सर्वान् सर्वलोकनमस्कृतान्।
याचितो मुनिशार्दूला ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात्॥ १२

तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत्।
तान्दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्॥ १३

जरामरणनिर्मुक्तान् प्राह रुद्रान् पितामहः।
नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रा नीललोहिताः॥ १४

सर्वज्ञाः सर्वगा दीर्घा ह्रस्वा वामनकाः शुभाः।
हिरण्यकेशा दृष्टिघ्ना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः॥ १५

निर्द्वन्द्वा वीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः।
एवं स्तुत्वा तदा रुद्रान् रुद्रं चाह भवं शिवम्।
प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान् कनकाण्डजः॥ १६

नमोऽस्तु ते महादेव प्रजा नार्हसि शङ्कर।
मृत्युहीना विभोः स्त्रष्टुं मृत्युयुक्ताः सृज प्रभो॥ १७

ततस्तमाह भगवान् नहि मे तादृशी स्थितिः।
स त्वं सृज यथाकामं मृत्युयुक्ताः प्रजाः प्रभो॥ १८

लब्ध्वा ससर्ज सकलं शङ्कराच्चतुराननः।
जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चराचरम्॥ १९

शङ्करोऽपि तदा रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यधिष्ठितः।
स्थाणुत्वं तस्य वै विप्राः शङ्करस्य महात्मनः॥ २०

निष्कलस्यात्मनः शम्भोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः।
शं रुद्रः सर्वभूतानां करोति घृणया यतः॥ २१

हे मुनिशार्दूलो! उन (पार्वती)-का ध्यान करके ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर नीललोहित महादेवजीने क्षण-भरमें लीलापूर्वक अपने ही तुल्य तथा समस्त लोकोंके वन्दनीय अनेक रुद्र उत्पन्न कर दिये। उन रुद्रोंने सभी चौदह भुवनोंको पूर्णरूपेण व्याप्त कर लिया॥ ११-१२१/२॥

जरा-मरणसे मुक्त तथा निर्मल आत्मावाले उन विविध नीललोहित रुद्रोंको देखकर पितामह ब्रह्माजीने उनसे कहा॥ १३१/२॥

हे त्रिनेत्रधारी नीललोहित महादेवो! आप सभीको नमस्कार है। आप सभी सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं, दीर्घ-ह्रस्व-वामन (बौना)-रूप धारण करनेवाले हैं, शुभ हैं, हिरण्यकेश हैं, दृष्टिघ्न हैं, नित्य हैं, चेतनायुक्त हैं, निर्मल आत्मावाले हैं, द्वन्द्वरहित हैं, वीतराग हैं, विश्वकी आत्मा हैं तथा शिवजीके आत्मज हैं। इस प्रकार उन रुद्रोंकी अनेकविध स्तुति करके कनकाण्डज (हिरण्यगर्भ) भगवान् ब्रह्माने शिवजीकी प्रदक्षिणाकर उन भवरूप शिवसे कहा॥ १४—१६॥

हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे प्रभो! हे शंकर! आपने तो अमर प्रजाओंको उत्पन्न कर दिया; ऐसी मृत्युहीन प्रजाकी सृष्टि उचित नहीं है। अतएव हे विभो! अब आप मरणधर्मा प्रजाओंका सृजन करनेकी कृपा करें॥ १७॥

तब भगवान् शंकरने ब्रह्मासे कहा—हे प्रभो! उस प्रकारकी (मरणधर्मा) सृष्टि करनेकी मेरी स्थिति नहीं है। अतएव आप ही मृत्युसे युक्त रहनेवाली प्रजाका अपने इच्छानुसार सृजन कीजिये॥ १८॥

भगवान् शंकरकी ऐसी आज्ञा प्राप्तकर चतुरानन ब्रह्माने जरा-मरणसे युक्त इस सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत्की रचना की॥ १९॥

भगवान् शंकर भी उस समय रुद्रों (रुद्रात्मक सृष्टिके सृजन)-से निवृत्त आत्मावाले होकर अधिष्ठित हो गये। हे विप्रो! निष्कल आत्मावाले तथा अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले उन महात्मा शंकरका

शङ्करश्चाप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया।
वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते॥ २२

अणोस्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमात्।
वैराग्याज्जायते पुंसो विरागो दर्शनान्तरे॥ २३

विमुख्यो विगुणत्यागो विज्ञानस्याविचारतः।
तस्य चास्य च सन्धानं प्रसादात् परमेष्ठिनः॥ २४

धर्मो ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं शङ्करादिह।
स एव शङ्करः साक्षात् पिनाकी नीललोहितः॥ २५

ये शङ्कराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः।
न गच्छन्त्येव नरकं पापिष्ठा अपि दारुणम्॥ २६

आश्रिताः शङ्करं तस्मात्प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम्।

ऋषय ऊचुः

मायान्ताश्चैव घोराद्या ह्यष्टाविंशतिरेव च॥ २७

कोटयो नरकाणान्तु पच्यन्ते तासु पापिनः।
अनाश्रिताः शिवं रुद्रं शङ्करं नीललोहितम्॥ २८

आश्रयं सर्वभूतानामव्ययं जगतां पतिम्।
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥ २९

स्थाणुत्व हो गया। इसीलिये वे भगवान् रुद्र दयार्द्र होकर सभी प्राणियोंका कल्याण करते हैं॥ २०-२१॥

भगवान् शंकरकी आत्मा बिना प्रयत्नके ही कल्याण करनेवाली है। वे योगविद्याके द्वारा वैराग्यमें स्थित रहते हैं। विरक्त पुरुषकी मुक्तिको ही कल्याण कहा जाता है॥ २२॥

स्वल्प विषयोंका त्याग करके प्राणी सांसारिक भयसे मुक्त होकर क्रमसे वैराग्यको प्राप्त होता है और उस वैराग्यसे उस विरागी पुरुषको अन्तमें शिवजीका साक्षात् दर्शन प्राप्त होता है॥ २३॥

संसारनिवर्तक आत्मानात्मविवेकरूप विशिष्ट ज्ञानका विचार किये बिना जो क्षणिक विषयत्याग है, वह ज्ञानरहित होनेसे अस्थायी है, अतएव विमुख्य [अप्रशंस्य] है। उस सत्, असत् वस्तु-विवेकरूप विचार तथा इस (सांसारिक) विषयोंके त्यागका एक साथ होना परमेष्ठी सदाशिवके कृपाप्रसादसे ही सम्भव है॥ २४॥

इस लोकमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य शिवजीकी कृपासे प्राप्त होते हैं। वे कल्याण करनेके कारण शंकर हैं, पिनाक नामक धनुष धारण करनेके कारण पिनाकी हैं तथा उनका कण्ठ नीला एवं देह लाल होनेके कारण नीललोहित हैं॥ २५॥

जो प्राणी शंकरजीका आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् उनके शरणागत होते हैं, वे सभी मुक्ति प्राप्त करते हैं। भगवान् शंकरके आश्रित महान् पापी भी अत्यन्त भयावह नरकको नहीं प्राप्त होते हैं। वे शिवजीके शाश्वत पदको पा जाते हैं। इस विषयमें कोई भी संदेह नहीं है॥ २६½॥

ऋषिगण बोले—अहंकार (घोर)-से लेकर मायापर्यन्त विभिन्न प्रकारके कुल अट्ठाईस करोड़ नरक हैं; उनमें जाकर पापी प्राणी अपने द्वारा किये गये कर्मोंके फल भोगते हैं। ये वही प्राणी होते हैं, जो शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, सभी प्राणियोंके आश्रय, अव्यय, जगत्पति, विराट् पुरुष, परमात्मा, पुरुहूत,

तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥ ३०

पुरुष्टुत, तमोगुणकी प्रधानता होनेपर कालरुद्ररूप, रजोगुणकी प्रधानता होनेपर ब्रह्मारूप, सत्त्वगुणकी प्रधानता होनेपर सर्वव्यापी विष्णुरूप तथा गुणरहित होनेपर महेश्वर-रूप भगवान् महादेवजीका आश्रय ग्रहण नहीं किये होते हैं॥ २७—३०॥

केन गच्छन्ति नरकं नराः केन महामते।
कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥ ३१

हे महामते! अब हम लोगोंकी यह सुननेकी उत्कट अभिलाषा है कि किन-किन कर्मोंके करने अथवा न करनेसे मनुष्य नरकको प्राप्त होते हैं॥ ३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शङ्करमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शंकरमाहात्म्यवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

माहेश्वरयोगका प्रतिपादन, अट्ठाईस व्यासों तथा चौदह मनुओंकी नामावली, विभिन्न युगोंमें हुए माहेश्वरयोगावतारोंका वर्णन

सूत उवाच

रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि भवस्यामिततेजसः।
प्रभावं शङ्करस्याद्यं सङ्क्षेपात् सर्वदर्शिनः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] अब मैं संक्षेपमें अमित तेजवाले, सर्वतत्त्वदर्शी भगवान् शंकरके रहस्य तथा श्रेष्ठ प्रभावका वर्णन करूँगा॥ १॥

योगिनः सर्वतत्त्वज्ञाः परं वैराग्यमास्थिताः।
प्राणायामादिभिश्चाष्टसाधनैः सहचारिणः॥ २

करुणादिगुणोपेताः कृत्वापि विविधानि ते।
कर्माणि नरकं स्वर्गं गच्छन्त्येव स्वकर्मणा॥ ३

सभी तत्त्वोंको जाननेवाले, परम वैराग्यको प्राप्त, प्राणायाम आदि योगके आठ साधनोंसे युक्त तथा करुणा आदि गुणोंसे सम्पन्न बड़े-बड़े योगिजन नानाविध कर्म करके भी अपने कर्मानुसार नरक तथा स्वर्गमें जाते हैं॥ २-३॥

प्रसादाज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।
योगेन जायते मुक्तिः प्रसादादखिलं ततः॥ ४

भगवान् शंकरकी अनुकम्पासे ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञानसे योगमें प्रवृत्ति होती है और योगसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार उन्हीं शिवजीकी कृपासे सब कुछ सिद्ध होता है॥ ४॥

ऋषय ऊचुः

प्रसादाद् यदि विज्ञानं स्वरूपं वक्तुमर्हसि।
दिव्यं माहेश्वरञ्चैव योगं योगविदां वर॥ ५

ऋषिगण बोले—हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! शिवजीकी कृपासे ही यदि विशिष्ट ज्ञान तथा योग होता है, तो उस ज्ञानस्वरूप दिव्य माहेश्वरयोगका आप वर्णन कीजिये॥ ५॥

कथं करोति भगवान् चिन्तया रहितः शिवः।
प्रसादं योगमार्गेण कस्मिन् काले नृणां विभुः॥ ६

विभुतासम्पन्न तथा चिन्तारहित भगवान् शिव योगमार्गके द्वारा किस प्रकार तथा किस कालमें प्राणियोंके ऊपर अनुग्रह करते हैं?॥ ६॥

रोमहर्षण उवाच

देवानाञ्च ऋषीणाञ्च पितॄणां सन्निधौ पुरा।
शैलादिना तु कथितं शृण्वन्तु ब्रह्मसूनवे॥ ७

सूतजी बोले—प्राचीनकालमें देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंकी सन्निधिमें शिलादपुत्र नन्दीके द्वारा ब्रह्मापुत्र सनत्कुमारसे जिस योगके विषयमें कहा गया था, उसे आपलोग सुनें॥ ७॥

व्यासावताराणि तथा द्वापरान्ते च सुव्रताः।
योगाचार्यावताराणि तथा तिष्ये तु शूलिनः॥ ८
तत्र तत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः शमभाजनाः।
प्रशिष्या बहवस्तेषां प्रसीदत्येवमीश्वरः॥ ९
एवं क्रमागतं ज्ञानं मुखादेव नृणां विभोः।
वैश्यान्तं ब्राह्मणाद्यं हि घृणया चानुरूपतः॥ १०

ऋषय ऊचुः

द्वापरे द्वापरे व्यासाः के वै कुत्रान्तरेषु वै।
कल्पेषु कस्मिन् कल्पे नो वक्तुमर्हसि चात्र तान्॥ ११

सूत उवाच

शृण्वन्तु कल्पे वाराहे द्विजा वैवस्वतान्तरे।
व्यासांश्च साम्प्रतं रुद्रांस्तथा सर्वान्तरेषु वै॥ १२
वेदानाञ्च पुराणानां तथा ज्ञानप्रदर्शकान्।
यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि सर्वावर्तेषु साम्प्रतम्॥ १३
क्रतुः सत्यो भार्गवश्च अङ्गिराः सविता द्विजाः।
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः॥ १४
सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुङ्गवः।
शततेजाः स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः॥ १५
तरक्षुश्चारुणिर्धीमांस्तथा देवः कृतञ्जयः।
ऋतञ्जयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः॥ १६
वाचःश्रवाः मुनिः साक्षात्तथा शुष्मायणिः शुचिः।
तृणबिन्दुर्मुनी रुक्षः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः॥ १७
जातूकर्ण्यो हरिः साक्षात् कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
व्यासास्त्वेते च शृण्वन्तु कलौ योगेश्वरान् क्रमात्॥ १८
असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्वान्तरेषु च।
कलौ रुद्रावताराणां व्यासानां किल गौरवात्॥ १९
वैवस्वतान्तरे कल्पे वाराहे ये च तान् पुनः।
अवतारान् प्रवक्ष्यामि तथा सर्वान्तरेषु वै॥ २०

ऋषय ऊचुः

मन्वन्तराणि वाराहे वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
तथैव चोर्ध्वकल्पेषु सिद्धान् वैवस्वतान्तरे॥ २१

रोमहर्षण उवाच

मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यस्ततः स्वारोचिषो द्विजाः।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ २२

हे सुव्रत ऋषियो! द्वापरके अन्तमें व्यासके अवतार, योगाचार्योंके अवतार तथा कलियुगमें शिवजीके अवतार, प्रभुके पवित्र अन्तःकरणवाले चार शिष्य और बहुतसे प्रशिष्य हुए—वे सब महेश्वरकी कृपासे ही योगमें प्रवृत्त हुए॥ ८-९॥

इस प्रकार वह ज्ञान क्रमशः शिष्य-परम्पराके माध्यमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंको भगवान् शिवकी कृपासे उनके मुखसे प्राप्त हुआ॥ १०॥

ऋषिगण बोले—प्रत्येक द्वापरमें, किन-किन कल्पोंमें तथा किन मन्वन्तरोंमें कौन-कौन व्यास हुए हैं? आप उनके विषयमें हमलोगोंको बताइये॥ ११॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! वर्तमान वाराह कल्प तथा वैवस्वत मन्वन्तरमें एवं अन्य मन्वन्तरोंमें भी जो व्यास तथा रुद्र हुए हैं, उन सभी ज्ञानप्रदर्शक महात्माओंके विषयमें वेदों तथा पुराणोंके अनुसार मैं यथाक्रम कहता हूँ; आपलोग सुनिये॥ १२-१३॥

हे द्विजो! क्रतु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, बुद्धिसम्पन्न शतक्रतु, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, मुनिवर त्रिवृत, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, तरक्षु, बुद्धियुक्त अरुणि, देव, कृतंजय, ऋतंजय, भरद्वाज, कविश्रेष्ठ गौतम, साक्षात् मुनिस्वरूप वाचःश्रवा, परम पावन शुष्मायणि, मुनि तृणबिन्दु, रुक्ष, शक्ति, शक्तिपुत्र पराशर, जातूकर्ण्य तथा साक्षात् विष्णुस्वरूप मुनि कृष्णद्वैपायन—ये अट्ठाईस व्यास हुए। इसी प्रकार कलियुगमें क्रमसे जो योगेश्वर हुए, कल्पोंमें तथा सभी मन्वन्तरोंमें महेश्वरके जो असंख्य अवतार हुए, कलिमें विशेष महिमाके कारण रुद्रों तथा व्यासोंके जो अवतार हुए एवं श्वेतवाराह कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें तथा अन्य मन्वन्तरोंमें जो अवतार हुए—उन सभीके विषयमें मैं आप लोगोंको बताऊँगा; आप सब सुनें॥ १४—२०॥

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] सर्वप्रथम आप वाराह कल्प तथा अन्य कल्पोंके मन्वन्तरोंका वर्णन कीजिये। तत्पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तरमें हो चुके सिद्धोंके विषयमें बताइये॥ २१॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! आदिमनु स्वायम्भुव मनु हैं, उनके बाद स्वारोचिष मनु हुए। इसी प्रकार

वैवस्वतश्च सावर्णिर्धर्मः सावर्णिकः पुनः।
पिशङ्गश्चापिशङ्गाभः शबलो वर्णकस्तथा॥ २३

औकारान्ता अकाराद्या मनवः परिकीर्तिताः।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः॥ २४

कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुधूम्रश्च द्विजोत्तमाः।
अपिशङ्गः पिशङ्गश्च त्रिवर्णः शबलस्तथा॥ २५

कालन्धुरस्तु कथिता वर्णतो मनवः शुभाः।
नामतो वर्णतश्चैव वर्णतः पुनरेव च॥ २६

क्रमसे उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, धर्म, सावर्णिक, पिशंग, अपिशंगाभ, शबल तथा वर्णक—ये अकारसे लेकर औकारपर्यन्त चौदह स्वरोंके रूपवाले चौदह मनु कहे गये हैं। हे उत्तम ब्राह्मणो! श्वेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कापिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुधूम्र, अपिशंग, पिशंग, त्रिवर्ण शबल तथा कालन्धुर—ये चौदह वर्ण (रंग) उन पवित्र मनुओंके कहे गये हैं। इस प्रकार वे चौदह मनु स्वायम्भुव आदि नामोंसे, अकार आदि वर्णोंसे तथा श्वेत आदि वर्णों (रंगों)-से अभिहित किये गये हैं॥ २२—२६॥

स्वरात्मानः समाख्याताश्चान्तरेशाः समासतः।
वैवस्वत ऋकारस्तु मनुः कृष्णः सुरेश्वरः॥ २७

सप्तमस्तस्य वक्ष्यामि युगावर्तेषु योगिनः।
समतीतेषु कल्पेषु तथा चानागतेषु वै॥ २८

सभी मन्वन्तराधिपति संक्षेपमें स्वरात्मक कहे गये हैं। ये वर्तमान सुरेश्वर वैवस्वत मनु ऋकाररूप, कृष्णवर्ण तथा क्रममें सातवें हैं। बीते हुए तथा अनागत कल्पोंमें युगके आवर्तनोंपर आनेवाले योगिरूप उस वैवस्वत मनुके बारेमें मैं बताता हूँ॥ २७-२८॥

वाराहः साम्प्रतं ज्ञेयः सप्तमान्तरतः क्रमात्।
योगावतारांश्च विभोः शिष्याणां सन्ततिस्तथा॥ २९

वर्तमान कल्पको श्वेतवाराह कल्प जानना चाहिये। अब मैं इस कल्पके सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें महेश्वरके योगावतारों तथा शिष्यों-प्रशिष्योंका वर्णन करता हूँ॥ २९॥

सम्प्रेक्ष्य सर्वकालेषु तथावर्तेषु योगिनाम्।
आद्ये श्वेतः कलौ रुद्रः सुतारो मदनस्तथा॥ ३०

सुहोत्रः कङ्कणश्चैव लोगाक्षिर्मुनिसत्तमाः।
जैगीषव्यो महातेजा भगवान् दधिवाहनः॥ ३१

ऋषभश्च मुनिर्धीमानुग्रश्चात्रिः सुबालकः।
गौतमश्चाथ भगवान् सर्वदेवनमस्कृतः॥ ३२

वेदशीर्षश्च गोकर्णो गुहावासी शिखण्डभृत्।
जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा॥ ३३

महाकायमुनिः शूली दण्डी मुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीशो जगद्गुरुः॥ ३४

सभी कालोंमें तथा युगावर्तनोंमें योगावतारोंको भलीभाँति समझकर उन्हें बताता हूँ। आदि कलि अर्थात् स्वायम्भुव मनुके प्रथम कलिमें रुद्रका 'श्वेत' नामक अवतार हुआ; इसके बाद हे श्रेष्ठ मुनियो! क्रमसे सुतार, मदन, सुहोत्र, कंकण, लोगाक्षि, जैगीषव्य, महातेजस्वी भगवान् दधिवाहन, ऋषभ, मुनि, मेधासम्पन्न उग्र, अत्रि, सुबालक, सभी देवोंके वन्दनीय भगवान् गौतम, वेदशीर्ष, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डभृत्, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली, महाकायमुनि, शूली, दण्डधारी मुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा तथा जगद्गुरु नकुलीश—ये अट्ठाईस योगाचार्य अवतरित हुए॥ ३०—३४॥

वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मनः।
योगाचार्यावतारा ये सर्वावर्तेषु सुव्रताः॥ ३५

व्यासाश्चैवं मुनिश्रेष्ठा द्वापरे द्वापरे त्विमे।
योगेश्वराणां चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः॥ ३६

हे सुव्रतो! सभी युगावर्तोंमें महेश्वरके जो योगाचार्यावतार हुए हैं, वे वैवस्वत मन्वन्तरमें भी भलीभाँति कहे गये हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरमें ये व्यास भी हुए हैं। उन योगेश्वरोंमें सभीके चार-चार शिष्य हुए, जो काम-क्रोधादि विकारोंसे रहित थे॥ ३५-३६॥

श्वेतः श्वेतशिखण्डी च श्वेताश्वः श्वेतलोहितः।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा॥ ३७

श्वेत, श्वेतशिखण्डी, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि,

विशोकश्च विकेशश्च विपाशः पापनाशनः।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः॥ ३८
सनकश्च सनन्दश्च प्रभुर्यश्च सनातनः।
ऋभुः सनत्कुमारश्च सुधामा विरजास्तथा॥ ३९
शङ्खपा द्वैरजश्चैव मेघः सारस्वतस्तथा।
सुवाहनो मुनिश्रेष्ठो मेघवाहो महाद्युतिः॥ ४०
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः।
वाल्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः॥ ४१
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ ४२
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च॥ ४३
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥ ४४
कश्यपोऽप्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः।
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥ ४५
वाचःश्रवा सुधीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः।
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोगाक्षिः कुथुमिस्तथा॥ ४६
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः।
प्लक्षो दाल्भ्यायणिश्चैव केतुमान् गोपनस्तथा॥ ४७
भल्लावी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥ ४८
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहकः॥ ४९
उलूको विद्युतश्चैव मण्डूको ह्याश्वलायनः।
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च॥ ५०
कुशिकश्चैव गर्भश्च मित्रः कौरुष्य एव च।
शिष्यास्त्वेते महात्मानः सर्वावर्तेषु योगिनाम्॥ ५१
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥ ५२
शिष्याः प्रशिष्याश्चैतेषां शतशोऽथ सहस्रशः।
प्राप्य पाशुपतं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः॥ ५३
देवादयः पिशाचान्ताः पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतित्वात्सर्वेशो भवः पशुपतिः स्मृतः॥ ५४
तेन प्रणीतो रुद्रेण पशूनां पतिना द्विजाः।
योगः पाशुपतो ज्ञेयः परावरविभूतये॥ ५५

शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विशोक, विकेश, विपाश, पापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनन्द, दिव्यशक्तिसम्पन्न सनातन, ऋभु, सनत्कुमार, सुधामा, विरजा, शंखपा, द्वैरज, मेघ, सारस्वत, मुनिवर सुवाहन, महातेजस्वी मेघवाह, कपिल, आसुरि, मुनि पंचशिख तथा महायोगी वाल्कल—ये सभी धर्मात्मा तथा महान् ओजस्वी शिष्य हुए। इसी क्रममें पुनः पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, सर्व, सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ, विरजा, अत्रि, देवसद, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल, वाचःश्रवा, सुधीक, श्यावाश्व, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोगाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, विद्वान् बर्बरी, कबन्ध, कुशिकन्धर, प्लक्ष, दाल्भ्यायणि, केतुमान्, गोपन, भल्लावी, मधुपिंग, श्वेतकेतु, तपोनिधि, उशिक, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भ, प्रवाहक, उलूक, विद्युत्, मण्डूक, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्भ, मित्र तथा कौरुष्य नामवाले शिष्य भी हुए। सभी युगावर्तोंमें योगाचार्योंके ये महात्मा शिष्य कहे गये हैं। ये सब विमल आत्मावाले, सिद्ध, ब्रह्मनिष्ठ, ज्ञान तथा योगमें निरत रहनेवाले भस्म-विभूषित शरीरवाले तथा शैवी दीक्षासे सम्पन्न हैं॥ ३७—५२॥

इनके भी सैकड़ों-हजारों शिष्य तथा प्रशिष्य पाशुपत योग प्राप्तकर शिवलोकके अधिकारी हुए॥ ५३॥

देवतासे लेकर पिशाचपर्यन्त सभी प्राणी पशु कहे गये हैं, उनका पति अर्थात् स्वामी होनेके कारण सर्वेश्वर शिवको पशुपति कहा जाता है॥ ५४॥

हे द्विजो! सभीको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेहेतु उन पशुपति रुद्रके द्वारा प्रवर्तित योग 'पाशुपतयोग' के नामसे जाना जाता है॥ ५५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शरीरमें स्थित योगस्थानों (चक्रों)-का वर्णन, योगका स्वरूप, अष्टांगयोगका वर्णन, विषयभोगोंकी निस्सारता, प्राणायामकी महिमा, सदाशिवके ध्यानका स्वरूप

सूत उवाच

सङ्क्षेपतः प्रवक्ष्यामि योगस्थानानि साम्प्रतम्।
कल्पितानि शिवेनैव हिताय जगतां द्विजाः॥ १

गलादधो वितस्त्या यन्नाभेरुपरि चोत्तमम्।
योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः॥ २

सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते।
एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः॥ ३

प्रसादस्य स्वरूपं यत्स्वसंवेद्यं द्विजोत्तमाः।
वक्तुं न शक्यं ब्रह्माद्यैः क्रमशो जायते नृणाम्॥ ४

योगशब्देन निर्वाणं माहेशं पदमुच्यते।
तस्य हेतुर्ऋषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः॥ ५

ज्ञानेन निर्दहेत्पापं निरुध्य विषयान् सदा।
निरुद्धेन्द्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति॥ ६

योगो निरोधो वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसत्तमाः।
साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये॥ ७

यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा।
तृतीयमासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम्॥ ८

प्रत्याहारः पञ्चमो वै धारणा च ततः परा।
ध्यानं सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः॥ ९

तपस्युपरमश्चैव यम इत्यभिधीयते।
अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिनां वराः॥ १०

सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
नियमस्यापि वै मूलं यम एव न संशयः॥ ११

सूतजी बोले—हे द्विजो! अब मैं भगवान् शंकरके द्वारा जगत्के हितार्थ कल्पित किये गये योगस्थानोंका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ १॥

गलेसे नीचे तथा नाभिसे ऊपरका वितस्ति (बारह अँगुल) परिमाणवाला [हृत्कमल नामक] स्थान योगके लिये उत्तम स्थान है। इसी प्रकार नाभिसे नीचे मूलाधार नामक तथा दोनों भृकुटियोंके मध्यमें आवर्त [आज्ञाचक्र] नामक स्थान भी योगस्थान है॥ २॥

जीवको परमार्थ तत्त्वका ज्ञान प्राप्त होना ही योग कहा जाता है और चित्तकी एकाग्रता सर्वदा उन्हीं शिवके अनुग्रहसे होती है॥ ३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उस अनुग्रहका स्वरूप स्वसंवेद्य है अर्थात् स्वानुभूतिका विषय है। ब्रह्मा आदि भी उस स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकते। मनुष्य धीरे-धीरे उस स्वरूपको योगके माध्यमसे जान लेता है॥ ४॥

योगसाधनासे प्राप्त निर्वाण माहेश्वर पद कहा जाता है। उस निर्वाणका हेतु रुद्रका ज्ञान हो जाना ही है और वह ज्ञान उन्हींकी कृपासे होता है॥ ५॥

जो सभी इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके उस ज्ञानसे पापोंको जला डालता है, इन्द्रियोंकी वृत्तियोंपर नियन्त्रण रखनेवाले उस प्राणीको योगकी सिद्धि अवश्य होती है॥ ६॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चित्तकी वृत्तियोंपर नियन्त्रण करना ही योग है। सिद्धिप्राप्तिके लिये इस योगके आठ प्रकारके साधन यहाँ बताये गये हैं॥ ७॥

पहला साधन यम, दूसरा नियम, तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवाँ प्रत्याहार, छठाँ धारणा, सातवाँ ध्यान तथा आठवाँ साधन समाधि कहा गया है॥ ८-९॥

तपमें प्रवृत्ति तथा विषय-भोगोंसे निवृत्तिको यम कहते हैं। यमकी साधना करनेवालोंमें श्रेष्ठ हे मुनियो! यमका प्रथम हेतु अहिंसा है। पुनः सत्य, अस्तेय (चोरी

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम्।
अहिंसैषा समाख्याता या चात्मज्ञानसिद्धिदा॥ १२

दृष्टं श्रुतं चानुमितं स्वानुभूतं यथार्थतः।
कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम्॥ १३

नाश्लीलं कीर्तयेदेवं ब्राह्मणानामिति श्रुतिः।
परदोषान् परिज्ञाय न वदेदिति चापरम्॥ १४

अनादानं परस्वानामापद्यपि विचारतः।
मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं समासतः॥ १५

मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा।
ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥ १६

इह वैखानसानां च विदाराणां विशेषतः।
सदाराणां गृहस्थानां तथैव च वदामि वः॥ १७

स्वदारे विधिवत्कृत्वा निवृत्तिश्चान्यतः सदा।
मनसा कर्मणा वाचा ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥ १८

मेध्या स्वनारी सम्भोगं कृत्वा स्नानं समाचरेत्।
एवं गृहस्थो युक्तात्मा ब्रह्मचारी न संशयः॥ १९

अहिंसाप्येवमेवैषा द्विजगुर्वग्निपूजने।
विधिना तादृशी हिंसा सा त्वहिंसा इति स्मृता॥ २०

स्त्रियः सदा परित्याज्याः सङ्गं नैव च कारयेत्।
कुणपेषु यथा चित्तं तथा कुर्याद्विचक्षणः॥ २१

न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह भी यमके आधार हैं। नियमका भी मूल यही यम है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ १०-११॥

सभी प्राणियोंमें आत्मवत् दृष्टि रखकर उनके हितके लिये प्रवृत्त रहनेको अहिंसा कहा गया है। इस अहिंसासे आत्मज्ञानकी सिद्धि प्राप्त होती है॥ १२॥

जैसा देखा गया हो, सुना गया हो, अनुमान किया गया हो तथा स्वयं अनुभव किया गया हो—उसे ठीक उसी तरहसे दूसरोंको कष्ट न पहुँचाते हुए कह देना ही 'सत्य' कहा जाता है॥ १३॥

ब्राह्मण तथा वेद ऐसा कहते हैं कि अश्लील बातें नहीं करनी चाहिये और दूसरोंके दोष जानकर भी उसे अन्य व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये॥ १४॥

विपत्तिकालमें भी विचारपूर्वक मन, वचन तथा कर्मसे दूसरोंका द्रव्य न लेना ही संक्षेपमें अस्तेय (चोरी न करना) कहा जाता है॥ १५॥

यतियों, ब्रह्मचारियों तथा विशेष रूपसे पत्नीरहित संन्यासियोंके द्वारा मन, वचन तथा कर्मसे मैथुनमें प्रवृत्ति न रखना—उनके लिये ब्रह्मचर्य कहा गया है। पत्नीयुक्त गृहस्थोंके (ब्रह्मचर्यके) विषयमें मैं अब आपलोगोंको बताता हूँ। मन, वाणी तथा कर्मसे परनारीमें सदा भोगकी प्रवृत्ति न रखते हुए अपनी पत्नीके साथ उचित समयपर प्रसंग करना ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ १६—१८॥

यद्यपि अपनी स्त्री भोगकालमें पवित्र होती है, फिर भी उसके साथ संभोगके अनन्तर स्नान कर लेना चाहिये। ऐसा करनेवाला पवित्रात्मा गृहस्थ निःसंदेह ब्रह्मचारी ही कहा जाता है॥ १९॥

[जैसे शास्त्रविहित स्वदाराप्रवृत्त गृहस्थ ब्रह्मचारी ही है, ठीक वैसे ही] द्विज, गुरु, अग्नि (यज्ञ), पूजनके निमित्त शास्त्रविहित की गयी हिंसा भी अहिंसा ही मानी जाती है॥ २०॥

स्त्रियोंका सदैव त्याग करना चाहिये। उनके सान्निध्यसे बचना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको स्त्रियोंमें वही वृत्ति रखनी चाहिये, जैसी चित्तवृत्ति शवमें रखी जाती है॥ २१॥

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु बहिर्भूमौ यथामतिः।
तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः॥ २२

जमीनपर मल तथा मूत्रके त्यागके समय जैसी मनःस्थिति होती है, वैसी ही मनोदशा अपनी पत्नीके साथ संभोगकालमें बनानी चाहिये, फिर अन्यकी तो बात ही क्या!॥ २२॥

अङ्गारसदृशी नारी घृतकुम्भसमः पुमान्।
तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत्॥ २३

स्त्री प्रज्वलित अंगारके समान तथा पुरुष घीके घड़ेके समान होता है, अतएव दूरसे ही नारियोंका संसर्ग छोड़ देना चाहिये॥ २३॥

भोगेन तृप्तिर्नैवास्ति विषयाणां विचारतः।
तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनसा कर्मणा गिरा॥ २४

विषयोंके भोगसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं होती, अतएव विचारपूर्वक मन, वाणी तथा कर्मसे भोगोंके प्रति विरक्तिका भाव रखना चाहिये॥ २४॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ २५

विषयोंके उपभोगसे कामनाओंकी शान्ति कभी भी नहीं होती है। यह कामना आहुति डालनेपर अग्निकी भाँति पुनः बढ़ती ही जाती है॥ २५॥

तस्मात्त्यागः सदा कार्यस्त्वमृतत्वाय योगिना।
अविरक्तो यतो मर्त्यो नानायोनिषु वर्तते॥ २६

अतः योगीको अमृतत्व-प्राप्तिके निमित्त भोगोंका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि मनुष्य वैराग्य-वृत्ति न रखनेके कारण अनेक योनियोंमें जन्म लेता रहता है॥ २६॥

त्यागेनैवामृतत्वं हि श्रुतिस्मृतिविदां वराः।
कर्मणा प्रजया नास्ति द्रव्येण द्विजसत्तमाः॥ २७

श्रुतियों तथा स्मृतियोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हे मुनीश्वरो! त्यागसे ही अमृतत्वकी प्राप्ति सम्भव है। कर्मसे, सन्तानसे तथा द्रव्य आदि किसी भी साधनसे अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ २७॥

तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनोवाक्कायकर्मणा।
ऋतौ ऋतौ निवृत्तिस्तु ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥ २८

इसीलिये सद्‌गृहस्थ प्राणीको चाहिये कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा विषयोंसे राग-निवृत्ति करें; क्योंकि ऋतुकालको छोड़कर समागमकी अनाकांक्षाको भी ब्रह्मचर्य कहा गया है॥ २८॥

यमाः सङ्क्षेपतः प्रोक्ता नियमांश्च वदामि वः।
शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः॥ २९

व्रतोपवासमौनं च स्नानं च नियमा दश।
नियमः स्यादनीहा च शौचं तुष्टिस्तपस्तथा॥ ३०

[हे मुनियो!] मैंने संक्षेपमें यमोंके विषयमें बता दिया और अब आपलोगोंसे नियमोंका वर्णन करता हूँ। शौच, यज्ञ, तप, दान, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, व्रत, उपवास, मौन तथा स्नान—ये दस प्रकारके नियम हैं॥ २९ $^{1}/_{2}$॥

जपः शिवप्रणीधानं पद्मकाद्यं तथासनम्।
बाह्यमाभ्यन्तरं प्रोक्तं शौचमाभ्यन्तरं वरम्॥ ३१

आकांक्षाराहित्य, शुचिता, सन्तुष्टि, तप, जप एवं भगवान् शिवसे सम्बन्ध स्थापित करना तथा पद्मासन आदि—ये नियम हैं॥ ३० $^{1}/_{2}$॥

बाह्यशौचेन युक्तः संस्तथा चाभ्यन्तरं चरेत्।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं कर्तव्यं शिवपूजकैः॥ ३२

स्नानं विधानतः सम्यक् पश्चादाभ्यन्तरं चरेत्।
आदेहान्तं मृदालिप्य तीर्थतोयेषु सर्वदा॥ ३३

अवगाह्यापि मलिनो ह्यन्तश्शौचविवर्जितः।
शैवला झषका मत्स्याः सत्त्वा मत्स्योपजीविनः॥ ३४

सदावगाह्यः सलिले विशुद्धाः किं द्विजोत्तमाः।
तस्मादाभ्यन्तरं शौचं सदा कार्यं विधानतः॥ ३५

आत्मज्ञानाम्भसि स्नात्वा सकृदालिप्य भावतः।
सुवैराग्यमृदा शुद्धः शौचमेवं प्रकीर्तितम्॥ ३६

शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टा नैवाशुद्धस्य सिद्धयः।
न्यायेनागतया वृत्त्या सन्तुष्टो यस्तु सुव्रतः॥ ३७

सन्तोषस्तस्य सततमतीतार्थस्य चास्मृतिः।
चान्द्रायणादिनिपुणस्तपांसि सुशुभानि च॥ ३८

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः।
वाचिकश्चाधमो मुख्य उपांशुश्चोत्तमोत्तमः॥ ३९

मानसो विस्तरेणैव कल्पे पञ्चाक्षरे स्मृतः।
तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्कायकर्मणा॥ ४०

शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता।
निग्रहो ह्यपहृत्याशु प्रसक्तानीन्द्रियाणि च॥ ४१

विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः।
चित्तस्य धारणा प्रोक्ता स्थानबन्धः समासतः॥ ४२

शुचिता बाह्य तथा आभ्यन्तर-भेदसे दो प्रकारकी कही गयी है, उसमें भी आन्तरिक शुचिता श्रेष्ठ है। साधकको बाह्य पवित्रतासे युक्त होकर आन्तरिक पवित्रताके लिये प्रयास करना चाहिये॥ ३१½॥

शिवपूजकोंको चाहिये कि वे विधिपूर्वक भस्मस्नान, जलस्नान तथा मन्त्रस्नान सम्पन्न करनेके पश्चात् आभ्यन्तर शुचिताका सम्पादन करें; क्योंकि सम्पूर्ण शरीरमें पवित्र मृत्तिकाका लेपन करके सर्वदा पवित्र तीर्थके जलमें अवगाहन करनेवाला भी अन्तःशौचके बिना मलिन ही रहता है॥ ३२-३३½॥

हे द्विजोत्तमो! सदा जलमें रहनेपर भी शैवाल, झषक (मगरमच्छ), मत्स्य और मत्स्यजीवी (मछुआरे) क्या कभी पवित्र हुए हैं? इसीलिये सदा विधिपूर्वक आन्तरिक पवित्रताका सम्पादन करना चाहिये॥ ३४-३५॥

शरीरपर एक बार श्रद्धापूर्वक वैराग्यरूपी मृत्तिकाका लेपन करके आत्म-ज्ञानरूपी जलमें स्नान करके शुद्ध हो जानेको अन्तःशौच कहा गया है। शुद्ध पुरुषको ही सिद्धियाँ मिलती हैं, अशुद्ध पुरुषको कभी नहीं मिलतीं॥ ३६½॥

जो व्रती पुरुष न्यायपूर्वक अर्जित किये गये धनसे संतुष्ट रहता है और गये धनके विषयमें चिन्तन नहीं करता, वह सन्तोषी कहा जाता है। चान्द्रायण आदि व्रतोंका निपुणतापूर्वक आचरण करना शुभ तप कहा गया है॥ ३७-३८॥

प्रणवका जप स्वाध्याय कहा जाता है और वह जप तीन प्रकारका कहा गया है। वाचिक जप अधम, उपांशु (मन्द स्वरात्मक) जप मुख्य (उत्तम) तथा मानस जप उत्तमोत्तम है, जो पंचाक्षर कल्पमें विस्तारसे बताये गये हैं। इस प्रकार मन, वचन तथा शारीरिक क्रियाओंसे शिवका प्रणीधान और गुरुके प्रति निश्चल तथा प्रतिष्ठित भक्तिको शिव-ज्ञान कहा गया है। विषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंको शीघ्र ही उनसे हटाकर इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेको संक्षेपमें प्रत्याहार कहा गया है और हृदय आदि स्थानोंमें चित्तको रोकनेकी क्रिया संक्षेपमें धारणा कही गयी है॥ ३९—४२॥

तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानं च समाधिश्च विचारतः।
तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययान्तरवर्जितम्॥ ४३

स्वस्थचित्ततासे उसी धारणाकी स्थिरता ही ध्यान है, जो विचारणापूर्वक समाधिमें परिणत हो जाता है। ध्येय विषयमें चित्तकी एकाग्रता ही ध्यान है और इस स्थितिमें चित्त अन्य वृत्तियोंसे रहित हो जाता है॥ ४३॥

चिद्भासमर्थमात्रस्य देहशून्यमिव स्थितम्।
समाधिः सर्वहेतुश्च प्राणायाम इति स्मृतः॥ ४४

चैतन्यस्वरूप ध्येयमात्रसे भासित होनेवाला और इस प्रकार देहशून्यताकी स्थितिको प्राप्त वह ध्यान ही समाधि है और प्राणायामको इन समस्त ध्यान-समाधि आदिका हेतु कहा गया है॥ ४४॥

प्राणः स्वदेहजो वायुर्यमस्तस्य निरोधनम्।
त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा॥ ४५

अपने शरीरसे जायमान वायु ही प्राण है और उसे रोकनेको यम कहते हैं। द्विजोंने मन्द, मध्य तथा उत्तम—ये तीन प्रकारके यम बतलाये हैं॥ ४५॥

प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः।
प्राणायामस्य मानं तु मात्राद्वादशकं स्मृतम्॥ ४६

नीचो द्वादशमात्रस्तु उद्घातो द्वादशः स्मृतः।
मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः॥ ४७

मुख्यस्तु यस्त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशन्मात्र उच्यते।
प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकश्च यथाक्रमम्॥ ४८

प्राण और अपान वायुका निरोध ही प्राणायाम कहलाता है। मन्द प्राणायामका मान बारह मात्राओंका कहा गया है। बारह लघु अक्षरोंके उच्चारणकालतक प्राणवायुको रोकना मन्द प्राणायाम या द्वादशमात्रात्मक प्राणायाम बताया गया है। उसके दुगुने उच्चारणकाल अर्थात् चौबीस मात्राओंके समयतक प्राणवायुके निरोधनको मध्यम प्राणायाम कहते हैं। इसी प्रकार तीन गुने उच्चारणकाल अर्थात् छत्तीस मात्राओंके उच्चारणकालतक प्राणवायुको रोकनेको उत्तम प्राणायाम कहा जाता है। मन्द, मध्य तथा उत्तम प्राणायाम शरीरमें क्रमशः प्रस्वेद (पसीना), कम्पन तथा उत्थान (ऊपर उठनेकी क्रिया) उत्पन्न करनेवाले हैं॥ ४६—४८॥

आनन्दोद्भवयोगार्थं निद्राघूर्णिस्तथैव च।
रोमाञ्चध्वनिसंविद्धस्वाङ्गमोटनकम्पनम् ॥ ४९

आनन्दकी उत्पत्ति करनेवाले योगकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले प्राणायामसे निद्रा, घूर्णन, रोमांच तथा ध्वनिसे व्याप्त कम्पन शरीरके अंगोंमें उत्पन्न हो जाता है॥ ४९॥

भ्रमणं स्वेदजन्या सा संविन्मूर्छा भवेद्यदा।
तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः॥ ५०

जब निरन्तर प्राणायामके अभ्याससे [उत्पन्न उष्णतावश] स्वेदबिन्दु [पसीना] झलकने लगे, संविन्मूर्च्छा—ज्ञानमयी उन्मनी अवस्था आने लगे, सहसा शरीर हलका होकर प्लवन [जलमें तैरने-जैसी स्थिति]-जैसी अवस्थाका अनुभव करे, तब इस सुशोभन अवस्थाको उत्तमोत्तम प्राणायाम कहा गया है॥ ५०॥

सगर्भोऽगर्भ इत्युक्तः सजपो विजपः क्रमात्।
इभो वा शरभो वापि दुराधर्षोऽथ केसरी॥ ५१

सगर्भ तथा अगर्भ—यह दो प्रकारका होता है। जपसहित प्राणायाम सगर्भ तथा जपरहित प्राणायाम अगर्भ कहा जाता है। हाथी, शरभ* तथा सिंह अत्यन्त

* आठ पैरवाला जीव, जो सिंहसे भी बलवान् होता है—'**अष्टपादः शरभः सिंहघाती।**'

गृहीतो दम्यमानस्तु यथास्वस्थस्तु जायते।
तथा समीरणोऽस्वस्थो दुराधर्षश्च योगिनाम्॥ ५२
न्यायतः सेव्यमानस्तु स एवं स्वस्थतां व्रजेत्।
यथैव मृगराड् नागः शरभो वापि दुर्मदः॥ ५३
कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परमादरात्।
तथा परिचयात्स्वास्थ्यं समत्वं चाधिगच्छति॥ ५४
योगादभ्यसते यस्तु व्यसनं नैव जायते।
एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणो विनिर्दहेत्॥ ५५
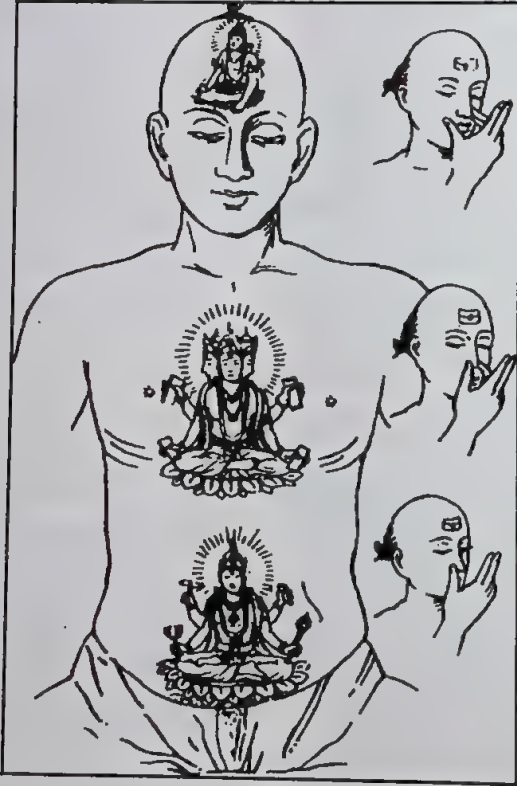
मनोवाक्कायजान् दोषान् कर्तुर्देहं च रक्षति।
संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः॥ ५६
दोषात्तस्माच्च नश्यन्ति निःश्वासस्तेन जीर्यते।
प्राणायामेन सिध्यन्ति दिव्याः शान्त्यादयः क्रमात्॥ ५७
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथा क्रमात्।
आदौ चतुष्टयस्येह प्रोक्ता शान्तिरिह द्विजाः॥ ५८
सहजागन्तुकानां च पापानां शान्तिरुच्यते।
प्रशान्तिः संयमः सम्यग्वचसामिति संस्मृता॥ ५९
प्रकाशो दीप्तिरित्युक्तः सर्वतः सर्वदा द्विजाः।
सर्वेन्द्रियप्रसादस्तु बुद्धेर्वै मरुतामपि॥ ६०
प्रसाद इति सम्प्रोक्तः स्वान्ते त्विह चतुष्टये।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च॥ ६१

दुराधर्ष होते हैं। जैसे उन्हें पकड़कर उनका दमन किये जानेपर वे अस्वस्थ हो जाते हैं, उसी प्रकार यह दुराधर्ष प्राणवायु भी योगियोंके द्वारा वशमें किये जानेपर अस्वस्थ हो उठता है अर्थात् अव्यवस्थित हो जाता है॥ ५१-५२॥

नियमपूर्वक अभ्यास किये जानेपर वह वायु उसी प्रकार स्वस्थताको प्राप्त हो जाता है, जैसे मतवाले सिंह, हाथी तथा शरभ अभ्यासपूर्वक युक्तिसे दमित किये जानेपर अपने अधीन हो जाते हैं॥ ५३॥

जैसे नियमतः नियन्त्रण करनेपर शनैः-शनैः अपनी उग्रताको त्यागकर ये सिंहादि आदरपूर्वक वशमें हो जाते हैं, वैसे ही यह प्राणवायु भी शनैः-शनैः अभ्याससे अपनी अस्वस्थताको छोड़कर समत्वभावको प्राप्त हो जाता है॥ ५४॥

जो पुरुष योगपूर्वक अभ्यास करता है, उसके चित्तमें व्यसन उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार सतत अभ्यास करनेपर प्राणायामसे उस योगीके मन-वचन तथा कर्मसे जायमान सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और इस प्राणायामसे इसे करनेवाले उस बुद्धिमान् योगीके देहकी भलीभाँति रक्षा भी होती है॥ ५५-५६॥

उस प्राणायामके सतत अभ्याससे सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। साथ ही श्वास (प्रश्वास)-की गति भी न्यून होती जाती है। इस प्रकार प्राणोंके [श्वासोंके] नियन्त्रणसे क्रमशः दिव्य शान्ति आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं॥ ५७॥

हे द्विजो! अब मैं क्रमसे शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसादका वर्णन करूँगा। आरम्भमें इन चारोंमेंसे यहाँ पहले शान्तिके विषयमें कहता हूँ। सहज तथा आगन्तुक पापोंका नाश शान्ति कहा जाता है तथा वाणीपर भली-भाँति संयम प्रशान्ति कहा गया है॥ ५८-५९॥

हे द्विजो! सभी तरहसे सर्वदा प्रकाशकी स्थितिको दीप्ति कहा गया है। सभी इन्द्रियों, बुद्धि तथा प्राणवायु आदिकी प्रसन्नताको इस चतुष्टयमें 'प्रसाद' कहा गया है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल,

नागः कूर्मस्तु कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।
एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः॥ ६२

प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मृतः।
अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च॥ ६३

व्यानो व्यानामयत्यङ्गं व्याध्यादीनां प्रकोपकः।
उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽयं प्रकीर्तितः॥ ६४

समं नयति गात्राणि समानः पञ्च वायवः।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तु सः॥ ६५

कृकलः क्षुतकायैव देवदत्तो विजृम्भणे।
धनञ्जयो महाघोषः सर्वगः स मृतेऽपि हि॥ ६६

इति यो दशवायूनां प्राणायामेन सिध्यति।
प्रसादोऽस्य तुरीया तु संज्ञा विप्राश्चतुष्टये॥ ६७

विस्वरस्तु महान् प्रज्ञा मनो ब्रह्मा चितिः स्मृतिः।
ख्यातिः संवित्ततः पश्चादीश्वरो मतिरेव च॥ ६८

बुद्धेरेताः द्विजाः संज्ञा महतः परिकीर्तिताः।
अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति॥ ६९

विस्वरो विस्वरीभावो द्वन्द्वानां मुनिसत्तमाः।
अग्रजः सर्वतत्त्वानां महान् यः परिमाणतः॥ ७०

यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यतः।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदां वराः॥ ७१

सर्वकर्माणि भोगार्थं यच्चिनोति चितिः स्मृता।
स्मरते यत्स्मृतिः सर्वं संविद्वै विन्दते यतः॥ ७२

ख्यायते यत्त्विति ख्यातिर्ज्ञानादिभिरनेकशः।
सर्वतत्त्वाधिपः सर्वं विजानाति यदीश्वरः॥ ७३

देवदत्त तथा धनंजय—इनकी जो प्रसन्नता है, उसे मरुतोंका प्रसाद कहा गया है॥ ६०—६२॥

जो वायु प्रयाण करता है, इसी कारण उस वायुको प्राणवायु कहा गया है। जो वायु आहार आदिको नीचेकी ओर क्रमसे ले जाता है, उसे अपान, सभी अंगोंमें जो वायु व्याप्त रहता है उसे व्यान तथा व्याधि आदिका प्रकोपक जो वायु मर्मोंमें उद्वेजन पैदा करता है उसे उदान एवं जो वायु गात्रोंमें समता करता है, उसे समान वायु कहा गया है। इस प्रकार ये पाँच वायु हुए। इसी तरह उद्गार (डकार आदि)-के समय क्रियाशील वायुको नाग, उन्मीलन-अवस्थामें क्रियाशील वायुको कूर्म, छींक आदिमें आनेवाली वायुको कृकल, जम्हाईमें क्रियाशील वायु देवदत्त तथा महाघोष करनेवाले वायुका नाम धनंजय है, वह मरनेपर भी सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है॥ ६३—६६॥

हे विप्रो! जो इन दस वायुओंको प्राणायामसे सिद्ध कर लेता है, वह शान्ति आदि चतुष्टयके प्रसादकी प्राप्ति कर लेता है। इन वायुओंका प्रसाद ही (शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसाद नामक सिद्धियोंमें चतुर्थ प्रसाद नामक सिद्धिको) 'तुरीया' सिद्धि कहा जाता है॥ ६७॥

विस्वर, महान्, प्रज्ञा, मन, ब्रह्मा, चिति, स्मृति, ख्याति, संवित्, ईश्वर तथा मति—ये सब महत्तत्त्वस्वरूप बुद्धिके नाम हैं। हे विप्रो! इस बुद्धिका प्रसाद प्राणायामसे ही सिद्ध होता है॥ ६८-६९॥

हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनियो! यह बुद्धि शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंका उपतापन न होनेसे विस्वर, सभी तत्त्वोंके पहले उत्पन्न होनेसे महान्, प्रमाणोंका आश्रय होनेसे प्रज्ञा, मनन करनेसे मन तथा बृहत् होने एवं वृद्धि करनेसे ब्रह्मा—ऐसी कही गयी है॥ ७०-७१॥

जो भोगोंके लिये समस्त कर्मोंका चयन करती है, उसे चिति कहा गया है। जो स्मरण करती है, उसे स्मृति तथा जो जानती है, उसे संवित् कहा गया है॥ ७२॥

ज्ञान आदि अनेक उपायोंसे प्रतिष्ठित करनेसे ख्यातिसंज्ञक तथा सभी तत्त्वोंका स्वामी एवं सब कुछ

मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मतिमतां वराः।
अर्थं बोधयते यच्च बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते॥ ७४

अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति।
दोषान् विनिर्दहेत्सर्वान् प्राणायामादसौ यमी॥ ७५

पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत्।
विषयान् विषवद् ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ ७६

समाधिना यतिश्रेष्ठाः प्रज्ञावृद्धिं विवर्धयेत्।
स्थानं लब्ध्वैव कुर्वीत योगाष्टाङ्गानि वै क्रमात्॥ ७७

लब्ध्वासनानि विधिवद्योगसिद्ध्यर्थमात्मवित्।
अदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते॥ ७८

अग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा।
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे॥ ७९

सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये।
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते॥ ८०

नाचरेद्देहबाधायां दौर्मनस्यादिसम्भवे।
सुगुप्ते तु शुभे रम्ये गुहायां पर्वतस्य तु॥ ८१

भवक्षेत्रे सुगुप्ते वा भवारामे वनेऽपि वा।
गृहे तु सुशुभे देशे विजने जन्तुवर्जिते॥ ८२

अत्यन्तनिर्मले सम्यक् सुप्रलिप्ते विचित्रिते।
दर्पणोदरसङ्काशे कृष्णागरुसुधूपिते॥ ८३

नानापुष्पसमाकीर्णे वितानोपरि शोभिते।
फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते॥ ८४

समासनस्थो योगाङ्गान्यभ्यसेद्धृषितः स्वयम्।
प्रणिपत्य गुरुं पश्चाद्भवं देवीं विनायकम्॥ ८५

योगीश्वरान् सशिष्यांश्च योगं युञ्जीत योगवित्।
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्धासनं तु वा॥ ८६

जाननेके कारण ईश्वर संज्ञावाली बुद्धि कही गयी है। हे मतिमानोंमें श्रेष्ठ मुनियो! माननेके कारण मति कही गयी है एवं अर्थको जानने तथा बोध करानेसे बुद्धि कही गयी है॥ ७३-७४॥

इस बुद्धिका भी प्रसाद प्राणायामसे सिद्ध होता है। योगीको प्राणायामके द्वारा सभी दोषोंको दग्ध कर डालना चाहिये॥ ७५॥

हे यतिश्रेष्ठ विप्रो! योगीको चाहिये कि वह धारणासे पापोंको तथा प्रत्याहारसे विषयोंको विष समझकर दग्ध कर डाले। ध्यानके द्वारा [काम-क्रोधादि] अनीश्वर गुणोंको जला डाले तथा समाधिसे बुद्धिकी वृद्धि करे। उत्तम स्थान प्राप्त करके तथा उचित आसनोंमें होकर आत्मवित् योगीको विधिपूर्वक योगके आठों अंगोंका क्रमसे अभ्यास करना चाहिये। समुचित स्थान तथा समयके विना योगसिद्धि नहीं होती है॥ ७६—७८॥

अग्निके समीप, जलमें, सूखे पत्तोंके ढेरवाले स्थानोंमें, जन्तुओंसे व्याप्त जगहपर, श्मशानपर, जीर्ण गोशालामें, चौराहेपर, शोरगुलवाले स्थानमें, डरावने स्थानमें, पत्थरों तथा वल्मीक मिट्टीके ढेरपर, अपवित्र स्थानपर, दुष्टोंके आतंकवाले स्थानपर, मच्छर आदिसे युक्त स्थानपर तथा देहबाधा और दौर्मनस्य (मानसिक कष्ट) उत्पन्न करनेवाले स्थानपर योगका अभ्यास नहीं करना चाहिये। अपितु अत्यन्त गुप्त (एकान्त), पवित्र तथा रमणीक स्थानपर, पर्वतकी गुफामें, शिवक्षेत्रमें, एकान्तमें, शिव-उद्यानमें, वनमें, पवित्र घरमें, जन्तुओंसे रहित तथा निर्जन स्थानमें योग-साधन करना चाहिये॥ ७९—८२॥

अत्यन्त स्वच्छ, भलीभाँति लिपे हुए, विशेष रूपसे चित्रित, दर्पणके समान स्वच्छ, कृष्ण अगरुके धूपसे सुगन्धित, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे मण्डित, ऊपरसे चँदोवा आदिसे अलंकृत, फल-पल्लवोंसे सुशोभित तथा कुश और फूलसे युक्त दिव्य स्थानमें ठीक आसनसे बैठकर प्रसन्नतापूर्वक योगके अंगोंका अभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् गुरु, शिव, पार्वती, गणेश तथा शिष्योंसहित योगीश्वरोंको प्रणाम करके स्वस्तिक अथवा

समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथापि वा।
समं दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ॥ ८७

संवृतास्योपबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः॥ ८८

किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ ८९

तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन छादयेत्।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा शिवध्यानं समभ्यसेत्॥ ९०

ॐकारवाच्यं परमं शुद्धं दीपशिखाकृतिम्।
ध्यायेद्वै पुण्डरीकस्य कर्णिकायां समाहितः॥ ९१

नाभेरधस्ताद्वा विद्वान् ध्यात्वा कमलमुत्तमम्।
त्र्यङ्गुले चाष्टकोणं वा पञ्चकोणमथापि वा॥ ९२

त्रिकोणं च तथाग्नेयं सौम्यं सौरं स्वशक्तिभिः।
सौरं सौम्यं तथाग्नेयमथवानुक्रमेण तु॥ ९३

आग्नेयं च ततः सौरं सौम्यमेवं विधानतः।
अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीनां चतुष्टयम्॥ ९४

गुणत्रयं क्रमेणैव मण्डलोपरि भावयेत्।
सत्त्वस्थं चिन्तयेद्रुद्रं स्वशक्त्या परिमण्डितम्॥ ९५

नाभौ वाथ गले वापि भ्रूमध्ये वा यथाविधि।
ललाटफलिकायां वा मूर्ध्नि ध्यानं समाचरेत्॥ ९६

द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु।
दशारे वा षडस्रे वा चतुरस्रे स्मरेच्छिवम्॥ ९७

कनकाभे तथाङ्गारसन्निभे सुसितेऽपि वा।
द्वादशादित्यसङ्काशे चन्द्रबिम्बसमेऽपि वा॥ ९८

विद्युत्कोटिनिभे स्थाने चिन्तयेत्परमेश्वरम्।
अग्निवर्णेऽथ वा विद्युद्वलयाभे समाहितः॥ ९९

अर्ध पद्मासन (सिद्धासन) बाँधकर योगीको योग-साधनमें प्रवृत्त हो जाना चाहिये॥ ८३—८६॥

बुद्धिमान् योगीको इस प्रकार दोनों जानु बराबर करके अथवा एक जानुमें स्थित होकर वृषण तथा लिङ्गको दोनों पार्ष्णि (एड़ियों)-के बीच करके दृढ़ आसन लगाकर तथा मुखको बन्द करके सिरको कुछ ऊँचा उठाकर दाँतोंका परस्पर स्पर्श बचाते हुए, सभी ओरसे दृष्टिको रोककर, उन्मीलित नेत्रोंसे अपने नासिकाग्रपर दृष्टि केन्द्रित करके तथा वक्षःस्थलको आगेकी ओर उन्नतकर तमोगुणको रजोगुणसे तथा रजोगुणको सत्त्वगुणसे आच्छादित करना चाहिये। इस प्रकार केवल सत्त्वगुणमें स्थित होकर शिवध्यानका अभ्यास करना चाहिये॥ ८७—९०॥

समाहितचित्त होकर साधकको परम शुद्ध दीपशिखाकी आकृतिवाले तथा ओंकार नामसे अभिहित उस परमात्माका अपने हृदयकमलकी कर्णिकामें ध्यान करना चाहिये अथवा विद्वान् साधकको नाभिसे तीन अंगुल नीचे अष्टकोणात्मक, पंचकोणात्मक अथवा त्रिकोणात्मक उत्तम कमलका ध्यान करके उसमें क्रमानुसार अपनी शक्तियोंसहित अग्निमण्डल, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल अथवा सूर्य-चन्द्र-अग्निमण्डल अथवा अग्नि, सूर्य, चन्द्रमण्डलका विधिवत् ध्यान करते हुए अग्निके नीचे धर्म आदि चतुष्टय (धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य)-की कल्पना करके मण्डलोंके ऊपर सत्त्व, रज तथा तमकी भावना करते हुए पार्वतीसे सुशोभित सत्त्वस्थित रुद्रका चिन्तन करना चाहिये॥ ९१—९५॥

इसी प्रकार नाभि, कण्ठ, भ्रूमध्य, ललाटपट्ट अथवा मस्तकमें विधिके अनुसार शिवका ध्यान करना चाहिये॥ ९६॥

क्रमानुसार द्विदल, षोडशदल, द्वादशदल, दशदल, षड्दल अथवा चतुर्दल कमलमें शंकरजीका ध्यान करना चाहिये॥ ९७॥

स्वर्णकी आभावाले तथा अंगारके सदृश, महाश्वेत, द्वादश सूर्यके समान दीप्त, चन्द्रबिम्बके सदृश, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभावाले, अग्निवर्णके सदृश, विद्युत्-वलयके

वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा।
नीललोहितबिम्बे वा योगी ध्यानं समभ्यसेत्॥ १००

महेश्वरं हृदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम्।
चन्द्रचूडं ललाटे तु भ्रूमध्ये शङ्करं स्वयम्॥ १०१

दिव्ये च शाश्वतस्थाने शिवध्यानं समभ्यसेत्।
निर्मलं निष्कलं ब्रह्म सुशान्तं ज्ञानरूपिणम्॥ १०२

अलक्षणमनिर्देश्यमणोरल्पतरं शुभम्।
निरालम्बमतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम्॥ १०३

कैवल्यं चैव निर्वाणं निःश्रेयसमनूपमम्।
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भवमद्भुतम्॥ १०४

महानन्दं परानन्दं योगानन्दमनामयम्।
हेयोपादेयरहितं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शिवम्॥ १०५

स्वयं वेद्यमवेद्यं तच्छिवं ज्ञानमयं परम्।
अतीन्द्रियमनाभासं परं तत्त्वं परात्परम्॥ १०६

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः।
अद्वयं तमसश्चैव परस्तात्संस्थितं परम्॥ १०७

मनस्येवं महादेवं हृत्पद्मे वापि चिन्तयेत्।
नाभौ सदाशिवं चापि सर्वदेवात्मकं विभुम्॥ १०८

देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम्।
कन्यसेनैव मार्गेण चोद्घातेनापि शङ्करम्॥ १०९

क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनापि सुव्रतः।
उत्तमेनापि वै विद्वान् कुम्भकेन समभ्यसेत्॥ ११०

द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान् हृदि नाभौ समाहितः।
रेचकं पूरकं त्यक्त्वा कुम्भकं च द्विजोत्तमाः॥ १११

साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम्।
एकीभावं समेत्यैवं तत्र यद्रससम्भवम्॥ ११२

तुल्य आभावाले उन-उन स्थानोंमें साधकको समाहितचित्त होकर परमेश्वरका चिन्तन करना चाहिये॥ ९८-९९॥

करोड़ों वज्रकी प्रभावाले अथवा पद्मरागके सादृश्यवाले अथवा नीललोहित बिम्ब (सूर्यबिम्ब)-तुल्य स्थानमें योगीको शिवध्यान करना चाहिये॥ १००॥

हृदयप्रदेशमें महेश्वरका, नाभिकमलमें सदाशिवका, ललाटमें चन्द्रचूडका, भ्रूमध्यमें साक्षात् शंकरका तथा दिव्य शाश्वत स्थान मूर्धामें शिवका ध्यान करना चाहिये॥ १०१ $^{1}/_{2}$॥

वे शिव निर्मल हैं, कला अथवा अवयवसे रहित हैं, ब्रह्मरूप हैं, शान्त हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, लक्षणोंसे रहित हैं, अनिर्देश्य हैं, अणुसे भी सूक्ष्म हैं, कल्याणकारी हैं, आश्रयरहित हैं, तर्कोंसे परे हैं, उत्पत्ति तथा विनाशसे रहित हैं, मोक्षस्वरूप हैं, परम गति हैं, कल्याणरूप हैं, उपमारहित हैं, अमृतस्वरूप हैं, अविनाशी हैं, पुनर्भवरहित ब्रह्मस्वरूप हैं, अद्भुत हैं, महानन्द हैं, परानन्द हैं, योगानन्द हैं, व्याधिरहित हैं, त्याग तथा ग्रहणसे रहित हैं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर हैं, कल्याणमय हैं, स्वयंवेद्य हैं, अवेद्य हैं, परम ज्ञानयुक्त हैं, इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे हैं, आभाससे परे हैं, परम तत्त्व हैं, परात्पर हैं, सभी उपाधियोंसे मुक्त हैं, विचारणापूर्वक ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले हैं, एकरूप हैं तथा तमसे भी बढ़कर परम रूपमें स्थित हैं। ऐसे महादेवका हृदयकमलमें ध्यान करना चाहिये तथा नाभिमें सर्वदेवात्मक प्रभु सदाशिवका ध्यान करना चाहिये॥ १०२—१०८॥

विद्वान् तथा सुव्रत साधकको चाहिये कि वह शरीरके भीतर सुषुम्णा मार्गसे क्रमशः बारह मात्रात्मक मन्द कुम्भक, चौबीस मात्रात्मक मध्यम कुम्भक तथा छत्तीस मात्रात्मक उत्तम कुम्भकके द्वारा कल्याणप्रद, शुद्ध, देवस्वरूप तथा ज्ञानसम्पन्न प्रभु शंकरका ध्यान करे॥ १०९-११०॥

हृदयकमल तथा नाभिकमलमें ध्यान केन्द्रित करके बुद्धिमान् साधकको बत्तीस मात्रात्मक रेचक करना चाहिये। अथवा हे उत्तम द्विजो! रेचक तथा पूरक छोड़कर केवल कुम्भकमें ही स्थिर रहकर समरसतापूर्वक अपने हृदयमें साक्षात् शिवका ध्यान करना चाहिये॥ १११ $^{1}/_{2}$॥

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् साक्षात्समरसे स्थितः।
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणम्॥ ११३

इस प्रकार समरसमें स्थित विद्वान् साधक ईश्वर तथा जीवके ऐक्यको प्राप्त होकर उस रसजनित ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति कर लेता है॥ ११२½॥

बारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, बारह धारणाओंका एक ध्यान होता है तथा बारह ध्यानोंकी एक समाधि कही जाती है॥ ११३½॥

ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते।
अथवा ज्ञानिनां विप्राः सम्पर्कादेव जायते॥ ११४

प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्यं चिराद्वा ह्यचिराद् द्विजाः।
योगान्तरायास्तस्याथ जायन्ते युञ्जतः पुनः॥ ११५

नश्यन्त्यभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः॥ ११६

हे विप्रो! यह योगसिद्धि ज्ञानियोंके समागमसे अथवा प्रयत्न करनेसे प्राप्त होती है। वे दोनों साधन समान ही हैं। यह सिद्धि पूर्वजन्मके योगाभ्यासी साधकको शीघ्र तथा नवीनाभ्यासी साधकको विलम्बसे प्राप्त होती है। हे द्विजो! योगसाधनकी अवधिमें बार-बार विघ्न भी उत्पन्न होते हैं, किंतु वे विघ्न निरन्तर अभ्यास करनेसे तथा गुरुके सान्निध्यसे नष्ट भी हो जाते हैं॥ ११४—११६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽष्टाङ्गयोगनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अष्टांगयोगनिरूपण' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

योगसाधनाके अन्तराय (विघ्न), योगसे प्राप्त होनेवाली विघ्नरूप विभिन्न सिद्धियाँ तथा ऐश्वर्य, गुणवैतृष्ण्य तथा वैराग्यसे पाशुपतयोगकी प्राप्ति

सूत उवाच

आलस्यं प्रथमं पश्चाद् व्याधिपीडा प्रजायते।
प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहानवस्थितिः॥ १

अश्रद्धादर्शनं भ्रान्तिर्दुःखं च त्रिविधं ततः।
दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता॥ २

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] योगसाधनके कालमें पहले आलस्य तथा बादमें व्याधिपीड़ा उत्पन्न होती है, इसी प्रकार प्रमाद, संशय, चित्तकी अनवस्थिति, अश्रद्धादर्शन, भ्रान्ति, त्रिविध दुःख, दौर्मनस्य (मनमें असत्संकल्प-विकल्पका होना), निषिद्ध विषयोंमें मनका लगना—ये कुल दस प्रकारके विघ्न* साधकके योगाभ्यासमें उत्पन्न होते हैं॥ १-२½॥

दशधाभिप्रजायन्ते मुनेर्योगान्तरायकाः।
आलस्यं चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्कायचित्तयोः॥ ३

व्याधयो धातुवैषम्यात् कर्मजा दोषजास्तथा।
प्रमादस्तु समाधेस्तु साधनानामभावनम्॥ ४

शरीर तथा चित्तके भारीपनके कारण योगमें प्रवृत्त न होना ही आलस्य है। धातुवैषम्य (न्यूनाधिक्य)-के कारण क्रियासे होनेवाले तथा वात-पित्त आदि दोषोंसे होनेवाले विकार ही व्याधियाँ हैं। समाधिके साधनोंका अनुष्ठान न करना प्रमाद है॥ ३-४॥

* पातंजलयोगसूत्रमें योगके अन्तराय इस प्रकार बताये गये हैं—**व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।** (पातंजलयोगप्रदीप समाधिपाद ३०) अर्थात् व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व—ये चित्तके नौ विक्षेप [योगके विघ्न] हैं।

इदं वेत्युभयस्पृक्तं विज्ञानं स्थानसंशयः।
अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः॥ ५

लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबन्धनात्।
अश्रद्धाभावरहिता वृत्तिर्वै साधनेषु च॥ ६

साध्ये चित्तस्य हि गुरौ ज्ञानाचारशिवादिषु।
विपर्ययज्ञानमिति भ्रान्तिदर्शनमुच्यते॥ ७

अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य सन्निधौ।
दुःखमाध्यात्मिकं प्रोक्तं तथा चैवाधिभौतिकम्॥ ८

आधिदैविकमित्युक्तं त्रिविधं सहजं पुनः।
इच्छाविघातात्सङ्क्षोभश्चेतसस्तदुदाहृतम् ॥ ९

दौर्मनस्यं निरोद्धव्यं वैराग्येण परेण तु।
तमसा रजसा चैव संस्पृष्टं दुर्मनः स्मृतम्॥ १०

तदा मनसि सञ्जातं दौर्मनस्यमिति स्मृतम्।
हठात्स्वीकरणं कृत्वा योग्यायोग्यविवेकतः॥ ११

विषयेषु विचित्रेषु जन्तोर्विषयलोलता।
अन्तराया इति ख्याता योगस्यैते हि योगिनाम्॥ १२

अत्यन्तोत्साहयुक्तस्य नश्यन्ति न च संशयः।
प्रनष्टेष्वन्तरायेषु द्विजाः पश्चाद्धि योगिनः॥ १३

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सर्वे तेऽसिद्धिसूचकाः।
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता॥ १४

वार्ता तृतीया विप्रेन्द्रास्तुरीया चेह दर्शना।
आस्वादा पञ्चमी प्रोक्ता वेदना षष्ठिका स्मृता॥ १५

स्वल्पषट्सिद्धिसन्त्यागात्सिद्धिदाः सिद्धयो मुनेः।
प्रतिभा प्रतिभावृत्तिः प्रतिभाव इति स्थितिः॥ १६

यह करूँ अथवा वह करूँ—इन दोनों स्थितियोंसे मिश्रित अनिश्चिततापूर्ण विज्ञानको स्थानसंशय कहा गया है। समाधि-अवस्थाको पाकर भी भवबन्धनके कारण योगीके चित्तका (लक्ष्यमें) न ठहर पाना अनवस्थित-चित्तत्व है॥ ५½॥

योगके साधन, साध्य, गुरु, ज्ञान, आचार तथा भगवान् शिव आदिमें चित्तकी सद्भावरहित वृत्तिका नाम अश्रद्धा है॥ ६½॥

समाधिके समीप पहुँचकर अज्ञानताके कारण अनात्मपदार्थोंमें आत्मज्ञानरूप विपरीत ज्ञान रखना भ्रान्तिदर्शन कहा जाता है॥ ७½॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—ये तीन प्रकारके सहज दुःख बताये गये हैं। इच्छा-विघातके कारण चित्तमें उत्पन्न विक्षोभ ही दुःख कहा गया है॥ ८-९॥

परम वैराग्यके द्वारा दौर्मनस्यको नियन्त्रित करना चाहिये। तमोगुण तथा रजोगुणसे मिला हुआ यह मन दुर्मन कहा गया है। इसलिये ऐसे मनमें उत्पन्न होनेवाला दूषित भाव दौर्मनस्य कहा गया है॥ १०½॥

योग्य तथा अयोग्य जानते हुए भी अयोग्य विषयोंके प्रति हठपूर्वक आसक्ति रखना ही विषय-लोलता है। योगियोंके योगसाधनमें इन्हें विघ्नरूप कहा गया है। अत्यन्त उत्साहसे युक्त होकर अभ्यास करनेवाले साधककी ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२½॥

हे द्विजो! इन विघ्नोंके समाप्त हो जानेके उपरान्त योगीके योगसाधनमें नानाविध उपसर्ग (उपद्रव) उत्पन्न होते हैं। वे सभी उपसर्ग भी असिद्धिसूचक हैं॥ १३½॥

हे विप्रेन्द्रो! प्रतिभा पहली सिद्धि, श्रवणा दूसरी सिद्धि, वार्ता तीसरी सिद्धि, दर्शना चौथी सिद्धि, आस्वादा पाँचवीं सिद्धि तथा वेदना छठी सिद्धि कही गयी है॥ १४-१५॥

इन प्रतिभा आदि स्वल्प षट् सिद्धियोंके आकर्षणसे मुक्त मुनिको अणिमादि सिद्धियाँ अभिलषित सिद्धि प्रदान करती हैं, प्रत्येक पदार्थविषयक अवबोधात्मक

बुद्धिर्विवेचना वेद्यं बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते।
सूक्ष्मे व्यवहितेऽतीते विप्रकृष्टे त्वनागते॥ १७

सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु।
श्रवणात्सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः॥ १८

ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि।
स्पर्शस्याधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता॥ १९

दर्शनाद्दिव्यरूपाणां दर्शनं चाप्रयत्नतः।
संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नास्वादो ह्यप्रयत्नतः॥ २०

वार्ता च दिव्यगन्धानां तन्मात्रा बुद्धिसंविदा।
विन्दन्ते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभवनं द्विजाः॥ २१

जगत्यस्मिन् हि देहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम्।
औपसर्गिकमेतेषु गुणेषु गुणितं द्विजाः॥ २२

सन्त्याज्यं सर्वथा सर्वमौपसर्गिकमात्मनः।
पैशाचे पार्थिवं चाप्यं राक्षसानां पुरे द्विजाः॥ २३

याक्षे तु तैजसं प्रोक्तं गान्धर्वे श्वसनात्मकम्।
ऐन्द्रे व्योमात्मकं सर्वं सौम्ये चैव तु मानसम्॥ २४

प्राजापत्ये त्वहङ्कारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम्।
आद्ये चाष्टौ द्वितीये च तथा षोडशरूपकम्॥ २५

चतुर्विंशत्तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके।
चत्वारिंशत् पञ्चमे तु भूतमात्रात्मकं स्मृतम्॥ २६

गन्धो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च।
प्रत्येकमष्टधा सिद्धं पञ्चमे तच्छतक्रतोः॥ २७

वृत्तिको प्रतिभा कहते हैं, विवेचनापूर्वक वेद्य वस्तुको जिससे जाना जाय, वह बुद्धि कही गयी है। अतीत (भूत), अनागत (भविष्य), सूक्ष्म, अदृष्ट, दूरस्थ, अत्यन्त समीप (वर्तमान) पदार्थोंका सर्वदा एवं सर्वत्र ज्ञान प्रदान करनेवाली प्रतिभासिका वृत्ति ही प्रतिभा है॥ १६-१७$^{१}/_{२}$॥

सभी शब्दों, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत आदि स्वरों तथा गुह्य ध्वनियोंका बिना किसी प्रयासके श्रवण होकर उनका यथार्थ ज्ञान हो जाना श्रवणासिद्धि है और स्पर्शकी जो अनुभूति है, वह वेदनासिद्धि कही गयी है॥ १८-१९॥

बिना किसी प्रयत्नके दिव्य रूपोंका भी नेत्रेन्द्रियसे दिखायी पड़ना दर्शनासिद्धि है और दिव्य रसोंका सहज रूपमें बिना किसी प्रयत्नके ठीक-ठीक ज्ञान होना आस्वादासिद्धि है। इसी तरह बुद्धिके द्वारा दिव्य गन्धोंका भी ठीक-ठीक गन्धतन्मात्राके रूपमें अनुभव कर लेना वार्तासिद्धि है॥ २०$^{१}/_{२}$॥

हे द्विजो! इस योगजनित धर्मरूप संसर्गसे योगीलोग इस जगत्में ब्रह्मलोकपर्यन्त जो सब कुछ है, उसे अपने देहमें स्थित देखते हैं। हे द्विजो! आगे बताये जानेवाले आठ गुण वृद्धिक्रमसे गुणित होकर संख्यामें चौंसठ गुणोंके बराबर हो जाते हैं॥ २१-२२॥

हे द्विजो! साधकको अपने इन औपसर्गिक अर्थात् विघ्नकारी गुणोंका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। पिशाचलोकमें पार्थिव गुण, राक्षसलोकमें जल-सम्बन्धी गुण, यक्षलोकमें तेजसम्बन्धी गुण, गन्धर्वलोकमें वायुसम्बन्धी गुण, इन्द्रलोकमें व्योमात्मक अर्थात् आकाशसम्बन्धी गुण, सोमलोकमें मनसम्बन्धी गुण, प्रजापतिलोकमें अहंकारसम्बन्धी गुण तथा ब्रह्मलोकमें सर्वोत्तम बोधगुण कहे गये हैं॥ २३-२४$^{१}/_{२}$॥

पहले पार्थिवमें आठ गुण, दूसरे जलमें सोलह गुण, तीसरे तेजमें चौबीस गुण, चौथे वायुमें बत्तीस गुण तथा पाँचवें आकाशमें चालीस गुणवाले ऐश्वर्य विद्यमान हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द पूर्वोक्त पंचमहाभूतोंकी तन्मात्राएँ कही गयी हैं। इन्द्रसम्बन्धी व्योमात्मक गुणपर्यन्त

तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्तथैव च।
चतुःषष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः॥ २८

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्।
लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम्॥ २९

स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनं तथा।
नानाजातिस्वरूपं च चतुर्भिर्देहधारणम्॥ ३०

पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गन्धसंयुतः।
एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिवं महत्॥ ३१

जले निवसनं यद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः।
इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः॥ ३२

यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रास्य जलदर्शनम्।
यद्यद्वस्तु समादाय भोक्तुमिच्छति कामतः॥ ३३

तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणां देहधारणम्।
भाण्डं विनाथ हस्तेन जलपिण्डस्य धारणम्॥ ३४

अव्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम्।
एतत् षोडशकं प्रोक्तमाप्यमैश्वर्यमुत्तमम्॥ ३५

देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम्।
लोकं दग्धमपीहान्यददग्धं स्वविधानतः॥ ३६

जलमध्ये हुतवहं चाधाय परिरक्षणम्।
अग्निनिग्रहणं हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः॥ ३७

भस्मीभूतविनिर्माणं यथापूर्वं सकामतः।
द्वाभ्यां रूपविनिष्पत्तिर्विना तैस्त्रिभिरात्मनः॥ ३८

चतुर्विंशात्मकं ह्येतत्तैजसं मुनिपुङ्गवाः।
मनोगतित्वं भूतानामन्तर्निवसनं तथा॥ ३९

इन पाँचोंमें प्रत्येक आठ-आठके वृद्धिक्रमसे बताये जा चुके हैं॥ २५—२७॥

हे उत्तम द्विजो! इसी प्रकार मनसम्बन्धी अड़तालीस गुण तथा अहंकारसम्बन्धी छप्पन गुण और अन्तमें चौंसठ गुणात्मक ब्राह्म अर्थात् बुद्धिसम्बन्धी ब्रह्मके ऐश्वर्यको साधक प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

जो योगी ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी लोकोंमें औपसर्गिक अर्थात् योगविघ्नोंको विचारपूर्वक उनका परित्याग कर देता है, वह परम सुखी हो जाता है॥ २९॥

शरीरकी स्थूलता, ह्रस्वता, बालकपन, वृद्धता, यौवन, अनेकविध रूप धारण करना, बिना पार्थिव अंशके शेष चार तत्त्वोंसे देह धारण करना तथा नित्य सुगन्धिसे युक्त रहना—ये आठ प्रकारके महान् पार्थिव गुण कहे गये हैं॥ ३०-३१॥

पृथ्वीपर रहनेकी भाँति जलमें निवास करना, उससे बाहर आनेकी सामर्थ्य रखना, इच्छा होनेपर स्वयं सम्पूर्ण समुद्रका पान करनेमें समर्थ होना तथा उससे किसी प्रकारका प्रतिकूल प्रभाव न पड़ना, इस जगत्में जहाँ भी इच्छा करे, वहाँ जलका दर्शन कर लेना, जिस-जिस वस्तुका भक्षण किया जाय, उसे अपनी इच्छाके अनुसार रसयुक्त बना देना, तेज, वायु, आकाश—इन तीनोंसे देह धारण करना, बिना पात्रके हाथसे जलपिण्डका धारण करना तथा शरीरमें व्रण आदिका न होना—इन आठ तथा पूर्वोक्त पार्थिव गुणोंको मिलाकर—ये सोलह गुणात्मक आप्य (जलसम्बन्धी) उत्तम ऐश्वर्य कहे गये हैं॥ ३२—३५॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! देहसे अग्निका निर्माण, अग्निके तापका भय न होना, दग्धलोकको भी अपने योगविधानसे अदग्धतुल्य अर्थात् पूर्ववत् कर देना, जलके भीतर अग्नि स्थापित करके उसे वैसे ही बनाये रखना, हाथसे आग पकड़ लेना, स्मरणमात्रसे अग्नि प्रकट कर देना, भस्म हुए पदार्थको इच्छापूर्वक पहलेकी भाँति कर देना तथा उन तीनों (पृथ्वी, जल, तेज)-के बिना दो तत्त्वों अर्थात् वायु और आकाशसे अपनी देह धारण करना—ये चौबीस गुणवाले तैजस ऐश्वर्य हैं॥ ३६—३८½॥

पर्वतादिमहाभारस्कन्धेनोद्वहनं पुनः।
लघुत्वं च गुरुत्वं च पाणिभ्यां वायुधारणम्॥ ४०

अङ्गुल्यग्रनिघातेन भूमेः सर्वत्र कम्पनम्।
एकेन देहनिष्पत्तिर्वातैश्वर्यं स्मृतं बुधैः॥ ४१

छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणां च दर्शनम्।
आकाशगमनं नित्यमिन्द्रियार्थैः समन्वितम्॥ ४२

दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम्।
तन्मात्रलिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम्॥ ४३

ऐन्द्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः।
यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः॥ ४४

सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम्।
कामानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम्॥ ४५

संसारदर्शनं चैव मानसं गुणलक्षणम्।
छेदनं ताडनं बन्धं संसारपरिवर्तनम्॥ ४६

सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा।
प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमाहङ्कारिकमुत्तमम्॥ ४७

अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च।
प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्तनम्॥ ४८

असादृश्यमिदं व्यक्तं निर्माणं च पृथक् पृथक्।
संसारस्य च कर्तृत्वं ब्राह्ममेतदनुत्तमम्॥ ४९

एतावत्तत्त्वमित्युक्तं प्राधान्यं वैष्णवं पदम्।
ब्रह्मणा तद्गुणं शक्यं वेत्तुमन्यैर्न शक्यते॥ ५०

विद्यते तत्परं शैवं विष्णुना नावगम्यते।
असंख्येयगुणं शुद्धं को जानीयाच्छिवात्मकम्॥ ५१

मनकी गति प्राप्त कर लेना अर्थात् जहाँ मनकी इच्छा हो वहाँ चले जाना, अन्य प्राणियोंके अन्तर्मनमें निवास करना, पर्वत आदि महाभार कंधेपर धारण करके चलना, हलका तथा भारी होनेकी सामर्थ्य रखना, हाथोंसे वायु पकड़ लेना, अंगुलिके अग्रभागसे आघात करके पृथ्वीमें सर्वत्र कम्पन उत्पन्न कर देना, केवल आकाश तत्त्वसे देह धारण करना—ये वातसम्बन्धी ऐश्वर्य विद्वानोंके द्वारा कहे गये हैं॥ ३९—४१॥

शरीरकी छाया न होना, इन्द्रियोंका प्रत्यक्ष दर्शन होना, आकाशमें गमन करना, इन्द्रियोंके अर्थका ज्ञान, दूरसे ही शब्दोंको सुननेकी क्षमता रखना, सभी शब्दोंके ज्ञानमें पारंगत होना, तन्मात्राओंके स्वरूपका ज्ञान तथा सभी प्राणियोंको साक्षात् देखनेमें समर्थ होना—ये ऐन्द्र ऐश्वर्य अर्थात् आकाशसम्बन्धी ऐश्वर्य हैं। इन समस्त पाँच प्रकारके ऐश्वर्योंसे युक्त साधक कायव्यूहसामर्थ्यवान् कहा जाता है॥ ४२-४३१/२॥

किसी भी अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति, जहाँ भी जानेकी इच्छा हो, वहाँ पहुँच जाना, सभी जगह अपना शक्तिप्राबल्य प्रदर्शित करना अर्थात् अपने प्रभावसे सभीको पराभूत कर देना, सभी गुप्त पदार्थोंको देख लेना, अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करना, सभीको अपने वशमें कर लेना, सभीको प्रिय लगना, सम्पूर्ण जगत्को देखनेकी सामर्थ्य रखना—ये सब मानस गुणोंके लक्षण हैं॥ ४४-४५१/२॥

छेदन, ताड़न, बन्ध, संसारपरिवर्तन, सर्वभूतप्रसाद, मृत्यु तथा कालका जय—ये प्रजापतिसम्बन्धी श्रेष्ठ आहंकारिक ऐश्वर्य कहे गये हैं॥ ४६-४७॥

बिना कारण जगत्की सृष्टि, अनुग्रह, प्रलय, अधिकार, लोकवृत्तका प्रवर्तन, असादृश्य, पृथक्-पृथक् व्यक्त निर्माण तथा संसारका कर्तृत्व—यह उत्तम ब्राह्म ऐश्वर्य है॥ ४८-४९॥

ये ब्राह्म ऐश्वर्यके तत्त्व कहे गये हैं और ये ही प्रधानसम्बन्धी वैष्णव पद हैं। ब्रह्माके बिना उस गुणको अन्य कोई नहीं जान सकता है॥ ५०॥

उस वैष्णवपदसे भी परे शैवपद है, जिसे विष्णु

व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्तिताः।
निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु॥ ५२

नाशातिशयतां ज्ञात्वा विषयेषु भयेषु च।
अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्तितः॥ ५३

वैतृष्ण्यं पुरुषे ख्यातं गुणवैतृष्ण्यमुच्यते।
वैराग्येणैव सन्त्याज्याः सिद्धयश्चौपसर्गिकाः॥ ५४

औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्।
निरुद्ध्यैव त्यजेत्सर्वं प्रसीदति महेश्वरः॥ ५५

प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण वै।
अथवानुग्रहार्थं च लीलार्थं वा तदा मुनिः॥ ५६

अनिरुद्ध्य विचेष्टेद्यः सोऽप्येवं हि सुखी भवेत्।
क्वचिद्भूमिं परित्यज्य ह्याकाशे क्रीडते श्रिया॥ ५७

उद्गिरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः।
क्वचिच्छ्रुते तदर्थेन श्लोकबन्धं करोति सः॥ ५८

क्वचिद्दण्डकबन्धं तु कुर्याद् बन्धं सहस्रशः।
मृगपक्षिसमूहस्य रुतज्ञानं च विन्दति॥ ५९

ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च हस्तामलकवद्भवेत्।
बहुनात्र किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्रशः॥ ६०

उत्पद्यन्ते मुनिश्रेष्ठा मुनेस्तस्य महात्मनः।
अभ्यासेनैव विज्ञानं विशुद्धं च स्थिरं भवेत्॥ ६१

भी नहीं जानते हैं। असंख्य गुणोंवाले शुद्ध शिवात्मक तत्त्वको कौन जान सकता है अर्थात् कोई नहीं जान सकता॥ ५१॥

चौंसठ गुणात्मक ये ऐश्वर्य व्यवहारकालमें सिद्धि कहे जाते हैं, किंतु समाधिकालमें ये ही उपसर्ग अर्थात् विघ्न कहे गये हैं। इन्हें प्रयत्नपूर्वक परम वैराग्यसे रोकना चाहिये॥ ५२॥

भय उत्पन्न करनेवाले विषय-भोगोंकी अवश्यम्भावी नश्वरता जानकर सबका अश्रद्धासे त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेवाला विरक्त कहा जाता है॥ ५३॥

पुरुषमें वितृष्णा नामसे प्रसिद्ध भावको ही गुणवैतृष्ण्य कहा जाता है। औपसर्गिक अर्थात् विघ्नरूप सिद्धियोंका वैराग्यके द्वारा परित्याग कर देना चाहिये॥ ५४॥

चित्तको विषयभोगोंसे हटाकर भुवनोंमें समस्त विघ्नरूप ब्राह्म ऐश्वर्योंका परित्याग करनेसे महेश्वर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार साधकके परम वैराग्यसे शिवके प्रसन्न होनेपर उसे विमल मुक्ति प्राप्त होती है अथवा जो योगी सांसारिक प्राणियोंके कल्याणार्थ या लीलाके निमित्त इन सिद्धियोंका त्याग नहीं करता, वह भी सुखी ही रहता है॥ ५५-५६ $^{1}/_{2}$॥

कभी भूमि छोड़कर अपनी प्रबल शक्तिसे आकाशमें क्रीडा करता है और कभी सूक्ष्म अर्थात् सामान्य लोगोंके लिये अबोधगम्य वेदार्थोंको संक्षेपमें उच्चारित करता है॥ ५७ $^{1}/_{2}$॥

वह कभी कोई प्रसंग सुनकर उसके अर्थसे श्लोक-रचना कर डालता है। कभी दण्डक छन्दमें और इसी प्रकार हजारों प्रकारके छन्दोंमें काव्यरचना करता है॥ ५८ $^{1}/_{2}$॥

उसे मृग तथा पक्षिवर्गकी ध्वनियोंका ज्ञान हो जाता है। यहाँतक कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त समग्र संसार उस योगीके लिये हस्तामलकतुल्य हो जाता है॥ ५९ $^{1}/_{2}$॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! अधिक क्या कहा जाय; उस महात्मा योगीमें हजारों प्रकारके विज्ञान उत्पन्न हो जाते

तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित्।
देवबिम्बान्यनेकानि विमानानि सहस्रशः॥ ६२

हैं। सतत अभ्यासके द्वारा ही यह विशुद्ध विज्ञान सदा स्थिर रहता है॥ ६०-६१॥

योगी सभी तेजसम्पन्न देवताओंके बिम्ब तथा हजारों प्रकारके विमानोंको देखनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है॥ ६२॥

पश्यति ब्रह्मविष्णवीन्द्रयमाग्निवरुणादिकान्।
ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्रशः॥ ६३

वह ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण आदि देवताओं, ग्रहों, नक्षत्रों, तारों तथा हजारों भुवनोंको देख लेता है॥ ६३॥

पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थः स पश्यति।
आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाचलनेन तु॥ ६४

वह पातालके तलमें स्थित पदार्थोंको भी आत्मविद्यारूप स्वस्थ तथा अचल दीपकसे समाधिस्थ होकर देखता है॥ ६४॥

प्रसादामृतपूर्णेन सत्त्वपात्रस्थितेन तु।
तमो निहत्य पुरुषः पश्यति ह्यात्मनीश्वरम्॥ ६५

वह साधक प्रसादरूप अमृतसे पूर्ण सत्त्वपात्रमें स्थित उस आत्मविद्यारूप प्रदीपसे अज्ञानान्धकारको नष्ट करके अपने भीतर साक्षात् ईश्वरका दर्शन करता है॥ ६५॥

तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च।
वैराग्यमपवर्गश्च नात्र कार्या विचारणा॥ ६६

उसी परमेश्वरकी कृपासे धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य तथा मोक्ष सुलभ हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं करना चाहिये॥ ६६॥

न शक्यो विस्तरो वक्तुं वर्षाणामयुतैरपि।
योगे पाशुपते निष्ठा स्थातव्यं च मुनीश्वराः॥ ६७

हे मुनीश्वरो! शिवकी महिमाका विस्तृत वर्णन हजारों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। अतएव पाशुपतयोगमें निष्ठापूर्वक रहना चाहिये तथा उसीमें सदा मनको स्थिर रखना चाहिये॥ ६७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगान्तरायकथनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'योगान्तरायकथन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

योगसिद्धिप्राप्त पुरुषोंके लक्षण, साधुधर्मका स्वरूप, भगवान् शिवके साक्षात्कारके उपायोंका वर्णन तथा भक्तिभावमें श्रद्धाकी महत्ता

सूत उवाच

सतां जितात्मनां साक्षाद् द्विजातीनां द्विजोत्तमाः।
धर्मज्ञानां च साधूनामाचार्याणां शिवात्मनाम्॥ १

दयावतां द्विजश्रेष्ठास्तथा चैव तपस्विनाम्।
संन्यासिनां विरक्तानां ज्ञानिनां वशगात्मनाम्॥ २

सूतजी बोले—हे उत्तम ब्राह्मणो! संत, जितेन्द्रिय, साक्षात् द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), धर्मज्ञ, साधु, आचार्य, शिवात्मा, दयावान्, तपस्वी, संन्यासी, वैराग्य-परायण, ज्ञानी, मनपर नियन्त्रण रखनेवाले, दानी, उदार, मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यवादी, अलुब्ध,

दानिनां चैव दान्तानां त्रयाणां सत्यवादिनाम्।
अलुब्धानां सयोगानां श्रुतिस्मृतिविदां द्विजाः॥ ३

श्रौतस्मार्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तदन्ते ये लभन्त्युत॥ ४

सायुज्यं ब्रह्मणो यान्ति तेन सन्तः प्रचक्षते।
दशात्मके ये विषये साधने चाष्टलक्षणे॥ ५

न क्रुध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः।
सामान्येषु च द्रव्येषु तथा वैशेषिकेषु च॥ ६

ब्रह्मक्षत्रविशो यस्माद्युक्तास्तस्माद् द्विजातयः।
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः॥ ७

श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्मज्ञ उच्यते।
विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः॥ ८

क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते।
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः॥ ९

यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्।
एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः॥ १०

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ॥ ११

कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ।
धारणार्थे महान् ह्येष धर्मशब्दः प्रकीर्तितः॥ १२

अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते।
अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते॥ १३

अधर्मश्चानिष्टफलो ह्याचार्यैरुपदिश्यते।
वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः॥ १४

सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते।
स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थापयत्यपि॥ १५

योगपरायण, श्रुतियों तथा स्मृतियोंके वेत्ता, श्रुतियों तथा स्मृतियोंका अनुकरण करनेवालोंका विरोध न करनेवाले लोगोंपर महेश्वर प्रसन्न रहते हैं॥ १—३½॥

सत् शब्दका अर्थ ब्रह्म होता है। जो अन्तमें उस ब्रह्मको पा लेते हैं, वे ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होते हैं, इसीलिये ऐसे महात्मा संत कहे जाते हैं॥ ४½॥

दस इन्द्रियोंके विषयभोगोंमें तथा पूर्ववर्णित आठ प्रकारके ऐश्वर्यरूप साधनोंकी अप्राप्तिसे जो न तो क्रोध करते हैं और न उनकी प्राप्तिसे हर्षका अनुभव करते हैं, वे जितात्मा कहे गये हैं॥ ५½॥

सामान्य तथा विशेष पदार्थोंके साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका सम्बन्धविशेष होनेसे ही ये द्विजाति कहे गये हैं॥ ६½॥

स्वर्ग आदिका सुख प्रदान करनेवाले श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित वर्णाश्रम-धर्मका ज्ञान रखनेसे व्यक्ति धर्मज्ञ कहा जाता है॥ ७½॥

विद्याकी साधना करनेके कारण गुरुका हित करनेवाला ब्रह्मचारी साधु तथा विहित कर्मोंकी साधना करनेवाला गृहस्थ साधु कहा जाता है। वनमें तपस्याकी साधना करनेसे वैखानस साधु एवं योगकी साधना करने तथा यतिधर्ममें परायण होनेसे व्यक्ति यति साधु कहा जाता है। इस प्रकार अपने-अपने आश्रमोंके धर्मोंका साधन करनेसे गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा यति—ये सभी साधु कहे गये हैं॥ ८—१०½॥

धर्म तथा अधर्म—ये दोनों शब्द क्रियाके वाचक कहे गये हैं। कुशल कर्मको धर्म तथा अकुशल कर्मको अधर्म कहा गया है॥ ११½॥

महत्तायुक्त यह धर्म शब्द धारणके अर्थमें कहा गया है तथा अधारण (धारण न करने)-को उद्देश्य करके कृत कर्म अधर्म कहा जाता है॥ १२½॥

जिससे अभीष्टकी प्राप्ति हो, उसे आचार्यलोग धर्म कहते हैं तथा जिससे अनिष्ट फलकी प्राप्ति हो, उसे आचार्यलोग अधर्म कहते हैं॥ १३½॥

वृद्ध, निर्लोभी, जितेन्द्रिय, दम्भ न करनेवाले, पूर्ण विनम्र, सरल स्वभाववाले लोगोंको आचार्य कहा जाता है॥ १४½॥

जो स्वयं आचरण करता है तथा सभीको आचारमें

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते।
विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रौतं स्मरणात्स्मार्तमुच्यते॥ १६

इज्या वेदात्मकं श्रौतं स्मार्तं वर्णाश्रमात्मकम्।
दृष्ट्वानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापि गूहति॥ १७

यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं लैङ्गेऽत्र पठ्यते।
ब्रह्मचर्यं तथा मौनं निराहारत्वमेव च॥ १८

अहिंसा सर्वतः शान्तिस्तप इत्यभिधीयते।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च॥ १९

वर्तते त्वसकृद्वृत्तिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता।
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं क्रमात्॥ २०

तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम्।
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्॥ २१

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः।
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः॥ २२

शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्मः साधुरुच्यते।
मायाकर्मफलत्यागी शिवात्मा परिकीर्तितः॥ २३

निवृत्तः सर्वसङ्गेभ्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः।
असक्तो भयतो यस्तु विषयेषु विचार्य च॥ २४

अलुब्धः संयमी प्रोक्तः प्रार्थितोऽपि समन्ततः।
आत्मार्थं वा परार्थं वा इन्द्रियाणीह यस्य वै॥ २५

न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैव तु लक्षणम्।
अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषु तथेष्टान्नाभिनन्दति॥ २६

नियोजित करता है एवं शास्त्रोंके अर्थोंका परिशीलन करता है; वह आचार्य कहा जाता है॥ १५१/२॥

वेदोंका श्रवण करनेसे श्रौत तथा शास्त्रोंके अर्थोंका स्मरण करनेसे स्मार्त कहा जाता है। वेदविहित यज्ञ आदि करनेवाला श्रौत तथा वर्णाश्रमसम्बन्धी नियमोंका पालन करनेवाला स्मार्त कहा जाता है॥ १६१/२॥

किसीके द्वारा पूछनेपर देखे गये अनुरूप (कथनयोग्य) तथा अननुरूप (कथनके अयोग्य) विषयको बिना छिपाये अभिव्यक्त करनेको लिङ्गपुराणके अनुसार सत्य कहा गया है॥ १७१/२॥

ब्रह्मचर्य, मौन, निराहार, अहिंसा तथा सर्वविध शान्तिको तप कहा गया है॥ १८१/२॥

जो पुरुष सदा अपने ही हित तथा अहितकी भाँति सभी प्राणियोंके हिताहितका ध्यान रखता है; उसकी यह निरन्तर बनी रहनेवाली वृत्ति पूर्णतः दया कही गयी है॥ १९१/२॥

क्रमसे न्यायपूर्वक अर्जित अभीष्टतम द्रव्य गुणीको ही दिया जाना चाहिये। दाताके द्वारा प्रदत्त दानका यही लक्षण है। वह दान भी कनिष्ठ, मध्यम तथा श्रेष्ठ—तीन प्रकारका होता है। करुणापूर्वक सभी प्राणियोंके निमित्त धनका विभाग करना मध्यम दान है॥ २०-२११/२॥

श्रुतियों तथा स्मृतियोंसे विहित वर्णाश्रमसम्बन्धी तथा शिष्टाचारके अनुकूल जो धर्म है, वह साधुधर्म कहा जाता है॥ २२१/२॥

मायायुक्त कर्मफलका त्याग करनेवाला शिवात्मा कहा जाता है तथा सभी आसक्तियोंसे निवृत्त प्राणी युक्त-योगी कहा जाता है॥ २३१/२॥

अनासक्त तथा पुनः-पुनः जन्म-मृत्युके भयसे भीत होकर विषयभोगोंकी नश्वरतापर विचार करके सभी ओरसे प्रलोभन दिये जानेपर भी जो अलुब्ध बना रहता है, वह संयमी कहा जाता है॥ २४१/२॥

अपने लिये अथवा दूसरेके लिये जिस व्यक्तिकी इन्द्रियाँ मिथ्या प्रवृत्त नहीं होतीं, वह शमके लक्षणोंवाला कहा जाता है॥ २५१/२॥

जो अनिष्ट अर्थात् प्रतिकूल विषयोंपर उद्विग्न

प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता।
संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह॥ २७

नहीं होता तथा अनुकूल विषयोंकी प्राप्तिपर हर्षित नहीं होता; वह प्रीति, संताप तथा विषादसे रहित हो जाता है। उसकी यह विनिवृत्ति ही विरक्तता (विराग) कही जाती है॥ २६½॥

निषिद्ध कर्मोंसहित विहित कर्मोंमें दोष-गुण बुद्धिका न्यास (त्याग) ही संन्यास है और इष्ट और अनिष्ट कर्मोंका भलीभाँति छोड़ना ही न्यास है॥ २७½॥

कुशलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते।
अव्यक्ताद्यविशेषान्ते विकारेऽस्मिन्नचेतने॥ २८

अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त इस जड जगत्के सभी पदार्थोंसे ईश्वरको पृथक् जानना ही वास्तविक ज्ञान है॥ २८½॥

चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते।
एवं तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य शङ्करः॥ २९

हे श्रेष्ठ द्विजो! इस प्रकारके ज्ञान तथा भक्ति (श्रद्धा)-से सम्पन्न पुरुषके ऊपर भगवान् शंकर अवश्य प्रसन्न होते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है और वास्तवमें यही धर्म है॥ २९½॥

प्रसीदति न सन्देहो धर्मश्चायं द्विजोत्तमाः।
किं तु गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे॥ ३०

'परम गुह्य रहस्य क्या है' अब मैं आप लोगोंको वह बताता हूँ। सर्वव्यापी परमेश्वर शिवमें भक्ति रखनी चाहिये। उस भक्तिसे युक्त प्राणी निःसंदेह मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३०½॥

भवे भक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते।
अयोग्यस्यापि भगवान् भक्तस्य परमेश्वरः॥ ३१

पात्रता न होनेपर भी उनकी परम भक्तिसे युक्त प्राणीके विविध अज्ञानरूप अन्धकारोंको दूर करके महेश्वर शिव उसपर प्रसन्न हो जाते हैं; इसमें संदेह नहीं है॥ ३१½॥

प्रसीदति न सन्देहो निगृह्य विविधं तमः।
ज्ञानमध्यापनं होमो ध्यानं यज्ञस्तपः श्रुतम्॥ ३२

ज्ञान, अध्यापन, होम, ध्यान, यज्ञ, तप, वेद, दान, अध्ययन—ये सभी शिवकी भक्ति प्राप्त करनेके साधन हैं; इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है॥ ३२½॥

दानमध्ययनं सर्वं भवभक्त्यै न संशयः।
चान्द्रायणसहस्त्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा॥ ३३

हे मुनीश्वरो! हजारों चान्द्रायण तथा सैकड़ों प्राजापत्यव्रतों, मासपर्यन्त किये गये उपवासों तथा अन्य अनुष्ठान आदिकी अपेक्षा शिवभक्ति ही श्रेष्ठ है॥ ३३½॥

मासोपवासैश्चान्यैर्वा भक्तिर्मुनिवरोत्तमाः।
अभक्ता भगवत्यस्मिँल्लोके गिरिगुहाशये॥ ३४

भगवान् शिवकी भक्तिसे हीन प्राणी स्वर्गादिकी प्राप्तिके लिये अनेकविध कर्मजालमें फँसकर गहन गिरि-गुहारूपी इस मृत्युलोकमें बार-बार गिरते रहते हैं, किंतु भक्तिभावसे युक्त प्राणी मुक्त हो जाता है॥ ३४½॥

पतन्ति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते।
भक्तानां दर्शनादेव नृणां स्वर्गादयो द्विजाः॥ ३५

हे द्विजो! भगवान् शिवके भक्तोंके दर्शनमात्रसे

न दुर्लभा न सन्देहो भक्तानां किं पुनस्तथा।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां तथान्येषामपि स्थितिः॥ ३६

प्राणियोंको स्वर्ग आदि लोक सहज ही सुलभ हो जाते हैं तो फिर साक्षात् शिवभक्तोंके विषयमें क्या कहना! इस वास्तविकतामें कोई संदेह नहीं है॥ ३५१/२॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य देवता शिवभक्तिके द्वारा ही उत्तम पदको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार मुनियोंका भी बल तथा सौभाग्य शिवभक्तिके ही कारण है॥ ३६१/२॥

भक्त्या एव मुनीनां च बलसौभाग्यमेव च।
भवेन च तथा प्रोक्तं सम्प्रेक्ष्योमां पिनाकिना॥ ३७

हे ऋषियो! प्राचीन कालमें देवाधिदेव पिनाकी शंकरने उमाको लक्ष्य करके वाराणसीमें उनसे जिस मधुर प्रसंगका वर्णन किया था, वही मैं भी आप लोगोंसे कह रहा हूँ॥ ३७१/२॥

देव्यै देवेन मधुरं वाराणस्यां पुरा द्विजाः।
अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना॥ ३८

अविमुक्त क्षेत्र वाराणसीपुरीमें आकर भगवान् शिवके साथ विराजमान भगवती रुद्राणीने उन भगवान् रुद्रसे यह पूछा॥ ३८१/२॥

रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम्।

श्रीदेव्युवाच

केन वश्यो महादेव पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः॥ ३९

देवी श्रीपार्वतीने कहा—हे महादेव! तप, विद्या, योग आदि किस साधनसे आप वशमें होते हैं, पूजित होते हैं तथा दर्शन देते हैं? हे प्रभो! मुझे बताइये॥ ३९१/२॥

तपसा विद्यया वापि योगेनेह वद प्रभो।

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम्॥ ४०

सूतजी बोले—उन पार्वतीका वचन सुनकर बालचन्द्रमाको तिलकरूपमें धारण करनेवाले शिवने पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली पार्वतीकी ओर देखकर हँसते हुए उनसे कहा—॥ ४०१/२॥

आह बालेन्दुतिलकः पूर्णेन्दुवदनां हसन्।
स्मृत्वाथ मेनया पत्न्या गिरेर्गां कथितां पुरा॥ ४१

चिरकालस्थितिं प्रेक्ष्य गिरौ देव्या महात्मनः।
देवि लब्धा पुरी रम्या त्वया यत्प्रष्टुमर्हसि॥ ४२

पूर्वमें चिरकालतक कैलासपर पार्वतीसहित मुझे रहते हुए देखकर हिमालयकी पत्नी मेनाद्वारा [अपना स्थान होना चाहिये—इस प्रकार] कही गयी वाणीको स्मरणकर सदाशिव बोले—हे देवि! हे विलासिनि! क्या तुम स्थानहेतु अपनी माताके द्वारा कहे गये वचनोंको भूल गयी हो? अब तुमने परम रम्य काशीपुरीको पा लिया है, अतः निश्चिन्त होकर अब तुम प्रश्न करनेयोग्य हो॥ ४१-४२१/२॥

स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृतेह विलासिनि।
पुरा पितामहेनापि पृष्टः प्रश्नवतां वरे॥ ४३

प्रश्न करनेवालोंमें श्रेष्ठ हे पार्वति! जिस प्रकार ब्रह्मात्मक तत्त्व जाननेके लिये इस समय तुमने मुझसे प्रश्न किया है, उसी प्रकार प्राचीन कालमें पितामह ब्रह्माने भी मुझसे पूछा था॥ ४३१/२॥

यथा त्वयाद्य वै पृष्टो द्रष्टुं ब्रह्मात्मकं त्वहम्।
श्वेते श्वेतेन वर्णेन दृष्ट्वा कल्पे तु मां शुभे॥ ४४

हे कल्याणि! श्वेतकल्पमें श्वेतवर्ण सद्योजात

सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः।
पीते तत्पुरुषं पीतमघोरे कृष्णमीश्वरम्॥ ४५

ईशानं विश्वरूपाख्ये विश्वरूपं तदाह माम्।

नामवाले, रक्तकल्पमें रक्तवर्ण वामदेव नामवाले, पीतकल्पमें पीतवर्ण तत्पुरुष नामवाले, कृष्णकल्पमें कृष्णवर्ण अघोर नामवाले तथा विश्वरूपकल्पमें विश्वरूप ईशान नामवाले मुझ ईश्वरको देखकर ब्रह्माजीने मुझसे कहा॥ ४४-४५१/२॥

पितामह उवाच

वाम तत्पुरुषाघोर सद्योजात महेश्वर॥ ४६

ब्रह्माजी बोले—हे वामदेव! हे तत्पुरुष! हे अघोर! हे सद्योजात! हे महेश्वर! हे देवदेव! महादेव! मैंने गायत्री-उपासनासे आपका दर्शन किया है॥ ४६१/२॥

दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेव महेश्वर।
केन वश्यो महादेव ध्येयः कुत्र घृणानिधे॥ ४७

दृश्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शङ्कर।

हे महादेव! आप किस प्रकार वशमें होते हैं? हे दयानिधे! आपका ध्यान कहाँ करना चाहिये? आप देवी पार्वतीके द्वारा दृश्य तथा पूज्य हैं। हे शंकर! कृपा करके मुझे बताइये॥ ४७१/२॥

श्रीभगवानुवाच

अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसम्भव॥ ४८

भगवान् श्रीशंकर [पार्वतीसे] बोले—तब मैंने ब्रह्माजीसे कहा कि हे कमलोद्भव पितामह! मैं केवल श्रद्धासे वशमें किया जा सकता हूँ और आपने तथा विष्णुने समुद्रमें जिस लिङ्गका दर्शन किया था, उसीमें सबको मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ४८१/२॥

ध्येयो लिङ्गे त्वया दृष्टे विष्णुना पयसां निधौ।
पूज्यः पञ्चास्यरूपेण पवित्रैः पञ्चभिर्द्विजैः॥ ४९

भवभक्त्याद्य दृष्टोऽहं त्वयाण्डज जगद्गुरो।
सोऽपि मामाह भावार्थं दत्तं तस्मै मया पुरा॥ ५०

द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-को पवित्र सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे मेरे पंचमुखरूपकी पूजा करनी चाहिये। हे अण्डज! हे जगद्गुरो! आज आपने उसी भक्तिसे ही मेरा दर्शन प्राप्त किया है॥ ४९१/२॥

भावं भावेन देवेशि दृष्टवान् मां हृदीश्वरम्।
तस्मात्तु श्रद्धया वश्यो दृश्यः श्रेष्ठगिरेः सुते॥ ५१

हे देवेशि! उन पितामहने भावपूर्वक मुझ ईश्वरको अपने हृदयमें देखा और जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि आपमें मेरी अचल भक्ति हो, तब मैंने पूर्व-कालमें उन्हें वह भक्तिभाव प्रदान कर दिया। अतः हे श्रेष्ठ पर्वतकी पुत्री पार्वती! मात्र श्रद्धासे ही भक्त मुझे वशमें कर सकता है तथा मेरा दर्शन कर सकता है॥ ५०-५१॥

पूज्यो लिङ्गे न सन्देहः सर्वदा श्रद्धया द्विजैः।
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतं तपः॥ ५२

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योऽहं श्रद्धया सदा॥ ५३

द्विजोंको लिङ्गमें ही श्रद्धापूर्वक सदा मेरी पूजा करनी चाहिये और इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं होना चाहिये। श्रद्धा ही परम सूक्ष्म धर्म है। श्रद्धा ही ज्ञान, हवन, तप, स्वर्ग तथा मोक्ष आदिका फल प्रदान करती है और इसी श्रद्धासे भक्त सदा मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकते हैं॥ ५२-५३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भक्तिभावकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भक्तिभावकथन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

श्वेतलोहितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् सद्योजातका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा

ऋषय ऊचुः

कथं वै दृष्टवान् ब्रह्मा सद्योजातं महेश्वरम्।
वामदेवं महात्मानं पुराणपुरुषोत्तमम्॥ १
अघोरं च तथेशानं यथावद्वक्तुमर्हसि।

सूत उवाच

एकोनत्रिंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः॥ २
तस्मिंस्तत्परमं ध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तदा।
उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः॥ ३
तं दृष्ट्वा पुरुषं श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः।
हृदि कृत्वा महात्मानं ब्रह्मरूपिणमीश्वरम्॥ ४
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ध्यानयोगपरोऽभवत्।
ध्यानयोगात्परं ज्ञात्वा ववन्दे देवमीश्वरम्॥ ५
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिन्तयत्।
ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेताः प्रादुर्भूता महायशाः॥ ६
सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ।
शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तद् ब्रह्म सदावृतम्॥ ७
तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतो नाम महामुनिः।
विजज्ञेऽथ महातेजास्तस्माज्जज्ञे हरस्त्वसौ॥ ८
तत्र ते मुनयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम्।
प्रपन्नाः परया भक्त्या गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम्॥ ९
तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपद्यन्ति वै द्विजाः।
प्राणायामपरा भूत्वा ब्रह्मतत्परमानसाः॥ १०
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः।
विष्णुलोकमतिक्रम्य रुद्रलोकं व्रजन्ति ते॥ ११

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] ब्रह्माजीने सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशानसंज्ञक सनातन पुरुषोत्तम महेश्वर शिवको किस प्रकार देखा? आप हमें यथावत् रूपसे यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ $१^{१}/_{२}$॥

सूतजी बोले—उनतीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामसे जाना जाता है। उस कल्पमें जब ब्रह्माजी समाधिस्थ होकर परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे, उसी समय शिखाधारी श्वेतलोहित वर्णवाला एक कुमार प्रकट हुआ॥ २-३॥

उन सद्योजात कुमारको देखकर सर्वतोमुख श्रीमान् ब्रह्माजी उन्हीं ब्रह्मरूपी महात्मा परमेश्वरको हृदयमें धारण करके ध्यानयोगमें तत्पर हो गये। पुनः ध्यान-योगसे उन्हें साक्षात् परमेश्वर जानकर प्रणाम किया। ब्रह्माजीने उन सद्योजात कुमारको परात्पर ब्रह्म कल्पित कर लिया॥ ४-$५^{१}/_{२}$॥

तत्पश्चात् उन सद्योजात ब्रह्मके समीप ही सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द तथा उपनन्दन नामक श्वेतवर्णवाले चार महायशस्वी शिष्य प्रकट हुए। वे महात्मा शिष्य उन सद्योजात ब्रह्मकी सेवामें सर्वदा तत्पर रहते थे॥ ६-७॥

उनके आगे श्वेत वर्णकी आभावाले श्वेत नामक एक महातेजस्वी मुनि उत्पन्न हुए। उन सद्योजातसे उत्पन्न होनेके कारण उस मुनिका नाम हर भी है॥ ८॥

वहाँपर वे सभी मुनि परम भक्तिसे शाश्वत ब्रह्मरूप उन सद्योजात महेश्वरकी स्तुति करते हुए उनके शरणागत हुए॥ ९॥

अतएव हे द्विजो! जो प्राणी प्राणायामपरायण होकर ब्रह्मतत्परचित्तसे उन विश्वेश्वरदेवके शरणागत होते हैं; वे सभी पापोंसे मुक्त, विमल आत्मावाले तथा ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं और अन्तमें विष्णुलोकको भी पार करके रुद्रलोकको जाते हैं॥ १०-११॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सद्योजातमाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सद्योजातमाहात्म्य' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

रक्तकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् वामदेवका प्रादुर्भाव तथा उनकी महिमा

सूत उवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः।
ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्॥ १

सूतजी बोले—तीसवाँ कल्प रक्तकल्पके नामसे प्रसिद्ध है। महान् तेजस्वी ब्रह्माने उस कल्पमें रक्तवर्ण धारण किया था॥ १॥

ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तभूषणः॥ २

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान्।
स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं रक्तवाससम्॥ ३

परं ध्यानं समाश्रित्य बुबुधे देवमीश्वरम्।
स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः॥ ४

वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिन्तयत्।
तथा स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा परमेश्वरः॥ ५

प्रतीतहृदयः सर्व इदमाह पितामहम्।
ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेऽहं पितामह॥ ६

दृष्टः परमया भक्त्या स्तुतश्च ब्रह्मपूर्वकम्।
तस्माद् ध्यानबलं प्राप्य कल्पे कल्पे प्रयत्नतः॥ ७

वेत्स्यसे मां प्रसंख्यातं लोकधातारमीश्वरम्।
ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारस्ते कुमारकाः॥ ८

सम्बभूवुर्महात्मानो विशुद्धा ब्रह्मवर्चसः।
विरजाश्च विबाहुश्च विशोको विश्वभावनः॥ ९

ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः।
रक्ताम्बरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः॥ १०

रक्तकुङ्कुमलिप्ताङ्गा रक्तभस्मानुलेपनाः।
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मत्वेऽध्यवसायिनः॥ ११

पुत्रकी कामनासे ध्यानरत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष एक महातेजस्वी तथा प्रतापी कुमार प्रकट हुआ। वह रक्तवर्णके भूषण, रक्तवर्णकी माला तथा रक्तवर्णके वस्त्र धारण किये हुए था तथा उसके नेत्र भी रक्तवर्णके थे॥ २½॥

लाल वस्त्र धारण किये उस महात्मा कुमारको देखकर ब्रह्माजीने परम ध्यानयोगसे यह जान लिया कि यह कुमार तो साक्षात् देवेश्वर है॥ ३½॥

उन्हें प्रणाम करके आत्मजित् भगवान् ब्रह्माने वामदेवसंज्ञक उन परमेश्वरको साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कल्पित किया॥ ४½॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके द्वारा अनेकविध स्तुति किये जानेपर प्रसन्नहृदय परमेश्वर महादेवने उन पितामहसे यह कहा॥ ५½॥

हे पितामह! पुत्रकी कामनासे ध्यानपरायण आपने मेरा दर्शन प्राप्त किया और परम भक्तिसे ब्रह्म अर्थात् 'वामदेवाय' मन्त्र पूर्वमें लगाकर अनेक स्तुतियोंसे मेरा स्तवन किया। अतएव आप प्रयत्नपूर्वक ध्यानबलका आश्रय लेकर कल्प-कल्पमें मुझ सर्वश्रेष्ठ तथा लोकके आधारस्वरूप परमेश्वरको भलीभाँति जानेंगे॥ ६-७½॥

इसके अनन्तर ब्रह्माजीके विरजा, विबाहु, विशोक तथा विश्वभावन नामवाले चार और कुमार उत्पन्न हुए। वे सभी कुमार महान्, विशुद्ध आत्मावाले तथा ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे॥ ८-९॥

वे सभी कुमार ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मातुल्य, वीर तथा अध्यवसायी थे। वे रक्तवर्णके वस्त्र तथा रक्तवर्णकी मालासे विभूषित थे। उनके शरीरमें लाल कुमकुम तथा लाल भस्म लगा हुआ था॥ १०½॥

तत्पश्चात् एक हजार वर्षके अनन्तर ब्रह्मभावमें

गृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम्।
अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया॥ १२

धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्रह्मणः प्रियाः।
पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम्॥ १३

येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम्।
प्रपश्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः॥ १४

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मचारिणः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १५

लीन वे सभी ब्रह्मप्रिय महात्मा कुमार उस वामदेवरूप ब्रह्मका चिन्तन करते हुए लोकके अनुग्रह तथा शिष्योंके कल्याणकी कामनासे सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश करके पुनः शाश्वत महादेव रुद्रमें समाविष्ट हो गये॥ ११—१३॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इसी प्रकार परमेश्वरपरायण अन्य जो भी भक्त समाधिसे ध्यान करके ब्रह्मरूप परमेश्वर वामदेवका दर्शन करेंगे; विमल आत्मावाले ब्रह्मनिष्ठ वे सभी भक्त पापसे छूटकर उस रुद्रलोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः संसारमें आगमन नहीं होता॥ १४-१५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वामदेवमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वामदेवमाहात्म्य' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पीतवासाकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् तत्पुरुषका प्रादुर्भाव तथा उनका माहात्म्य

सूत उवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः।
ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह॥ १

ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रधृक्॥ २

पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्याम्बरो युवा।
हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः॥ ३

तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम्।
मनसा लोकधातारं प्रपेदे शरणं विभुम्॥ ४

ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं वराम्।
गां विश्वरूपां ददृशे महेश्वरमुखाच्च्युताम्॥ ५

चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम्।
चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम्॥ ६

द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखाम्।
स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवीं महेश्वरीम्॥ ७

सूतजी बोले—इकतीसवाँ कल्प 'पीतवासा' कल्प नामवाला कहा गया है, जिसमें महाभाग ब्रह्माने पीला वस्त्र धारण किया था॥ १॥

पुत्रप्राप्तिकी कामनासे परमेश्वरके ध्यानमें रत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष पीतवस्त्रधारी एक महातेजस्वी कुमार प्रकट हुआ। वह कुमार पीतवर्णकी माला तथा पीत परिधान धारण किये हुए था। उस महान् भुजाओंवाले कुमारके अंगोंमें पीत वर्णका गन्ध लिप्त था तथा वह पीले वर्णकी पगड़ी और हेमवर्णके यज्ञोपवीतसे सुशोभित था॥ २-३॥

ध्यानयुक्त होकर ब्रह्माजीने जब यह जान लिया कि ये जगत्के परमेश्वर हैं, तब वे हृदयसे लोकके आधाररूप प्रभु महेश्वरके शरणागत हो गये॥ ४॥

उसी समय ध्यानगत ब्रह्माजीने महेश्वरके मुखसे निकली हुई, चार पैरोंवाली, चार वक्त्रोंवाली, चार हाथोंवाली, चार स्तनोंवाली, चार नेत्रोंवाली, चार सींगोंवाली, चार दाढ़ोंवाली, चार मुखोंवाली, बत्तीस गुणोंसे युक्त, सभी दिशाओंमें मुखवाली, ईश्वररूपिणी विश्वरूपा श्रेष्ठ महेश्वरस्वरूपिणी गाय देखी॥ ५-६ $^{1}/_{2}$॥

तब उस महादेवी महेश्वरी गायको देखकर सभी

पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः।
मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः॥ ८

एह्येहीति महादेवि सातिष्ठत्प्राञ्जलिर्विभुम्।
विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु॥ ९

अथ तामाह देवेशो रुद्राणी त्वं भविष्यसि।
ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि॥ १०

तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः।
प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुरुः॥ ११

ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम्।
ब्रह्मा लोकगुरोः सोऽथ प्रतिपेदे महेश्वरीम्॥ १२

गायत्रीं तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मानुयन्त्रितः।
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रिमीरिताम्॥ १३

जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मा लोकनमस्कृताम्।
प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा॥ १४

ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम्।
ऐश्वर्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ प्रभुः॥ १५

ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः।
पीतमाल्याम्बरधराः पीतस्रगनुलेपनाः॥ १६

पीताभोष्णीषशिरसः पीतास्याः पीतमूर्धजाः।
ततो वर्षसहस्रान्त उषित्वा विमलौजसः॥ १७

योगात्मानस्तपोह्लादाः ब्राह्मणानां हितैषिणः।
धर्मयोगबलोपेता मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्॥ १८

उपदिश्य महायोगं प्रविष्टास्ते महेश्वरम्।
एवमेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम्॥ १९

देवताओंके वन्दनीय महातेजस्वी महादेवने 'तुम मति हो, बुद्धि हो तथा स्मृति हो'—इस रूपमें उस धेनुकी महिमाका बार-बार गान करते हुए कहा—हे महादेवि! आओ, आओ; और सम्पूर्ण जगत्को योगके द्वारा आवृत करके अपने वशमें करो। इस प्रकार कहनेपर वह धेनु हाथ जोड़कर सर्वसमर्थ महादेवके सम्मुख खड़ी हो गयी॥ ७—९॥

इसके अनन्तर देवेश्वर महादेवने उससे कहा—तुम रुद्राणी होओगी और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये परमार्थसाधिका बनोगी॥ १०॥

ऐसा कहकर देवाधिदेव जगद्गुरु महादेवने पुत्रकी कामनासे ध्यानरत ब्रह्माजीको वह चतुष्पाद गाय दे दी। तदनन्तर ध्यानयोगसे उस धेनुको परमेश्वरी जानकर ब्रह्माजीने जगद्गुरु महादेवसे वह माहेश्वर धेनु प्राप्त कर ली॥ ११-१२॥

ब्रह्माजी एकाग्रचित्त होकर रौद्री गायत्रीका ध्यान करके और रौद्री गायत्रीके रूपमें कथित इस वेदप्रतिपादित, ज्ञानदायिनी, विद्यास्वरूपिणी तथा लोकवन्द्या महादेवी (धेनु)-का ध्यानयुक्त मनसे जप करके महादेवके शरणागत हुए॥ १३-१४॥

तत्पश्चात् परमेश्वर महादेवने उन ब्रह्माजीको दिव्य योग, महान् कीर्ति, ऐश्वर्य, ज्ञानसम्पदा तथा वैराग्य प्रदान किया॥ १५॥

इसके बाद तत्पुरुषसंज्ञक उन महादेवके समीप दिव्य कुमार प्रकट हुए, जो पीले रंगकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुए थे और पीले रंगके गन्धका अनुलेपन किये हुए थे। उनके सिरपर पीले रंगकी पगड़ी थी। उनके मुख तथा बाल भी पीतवर्णके थे॥ १६½॥

तदनन्तर विमल ओजसे युक्त, योगात्मा, तपस्यामें ही आह्लादित रहनेवाले, ब्राह्मणोंके हितैषी तथा धर्म एवं योगबलसे सम्पन्न वे कुमार एक हजार वर्षतक उन तत्पुरुष महादेवके समीप निवास करके यज्ञ करनेवाले मुनियोंको महायोगका उपदेश प्रदानकर महेश्वरमें समाविष्ट हो गये॥ १७-१८½॥

इसी विधिसे अन्य जो भी लोग नियतात्मा,

अन्येऽपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः।
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विमला ब्रह्मवर्चसः॥ २०

प्रविशन्ति महादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः॥ २१

ध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होकर महेश्वरके शरणागत होते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त होकर शुद्धात्मा तथा ब्रह्मतेजसम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें महादेवमें प्रविष्ट हो जाते हैं तथा पुनर्भवके बन्धनसे छूट जाते हैं॥ १९—२१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे तत्पुरुषमाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'तत्पुरुषमाहात्म्य' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

असितकल्पमें शिवस्वरूप भगवान् अघोरका प्राकट्य और उनका माहात्म्य

सूत उवाच

ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्नासितस्तु सः॥ १

एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः॥ २

तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः।
कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः॥ ३

अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा॥ ४

कृष्णाम्बरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम्।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम्॥ ५

स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्।
ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिङ्गलम्॥ ६

प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम्।
मनसा ध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तु तमीश्वरम्॥ ७

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत्।
तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ८

प्रददौ दर्शनं देवो ह्यघोरो घोरविक्रमः।
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः॥ ९

सूतजी बोले—इसके बाद उस पीतकल्पके बीत जानेपर ब्रह्माका दूसरा कल्प प्रवृत्त हुआ। वह असित कल्प नामवाला था॥ १॥

एक हजार दिव्य वर्षोंतक जब सर्वत्र जल-ही-जल व्याप्त रहा, तब ब्रह्माजी अत्यन्त दुःखित होकर प्रजासृष्टिकी इच्छासे विचारमग्न हो गये॥ २॥

इस प्रकार चिन्तनमग्न होकर पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे प्रभु ब्रह्माका वर्ण काला हो गया॥ ३॥

इसी बीच महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महान् वीर्यसम्पन्न, अपने तेजसे देदीप्यमान, कृष्णवर्णका वस्त्र-पगड़ी तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुए, कृष्णमुकुटसे सुशोभित, कृष्णमाला धारण किये हुए तथा कृष्ण अंगरागसे अनुलिप्त अंगोंवाले एक कुमारको वहाँ प्रकट हुआ देखा॥ ४-५॥

उन घोर पराक्रमवाले महात्माको अघोरसंज्ञक महादेव जानकर ब्रह्माजीने अद्भुत कृष्ण-पिंगल वर्णकी आभासे युक्त उन देवदेवेशको प्रणाम किया॥ ६॥

तत्पश्चात् ध्यानयुक्त मनसे प्राणायामपरायण होकर तथा महेश्वरको हृदयमें धारणकर श्रीमान् ब्रह्माजी उन अघोररूप परमेश्वरके शरणागत हो गये और उन अघोरको ब्रह्मस्वरूप मानकर उनका ध्यान करने लगे। तदनन्तर घोर पराक्रमवाले अघोर महादेवने उन ध्यानपरायण परमेष्ठी ब्रह्माको साक्षात् दर्शन दिया॥ ७-८$^1/_2$॥

तदनन्तर उन अघोरके समीप कृष्ण, कृष्णशिख,

चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः।
कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक्॥ १०

कृष्णास्य तथा कृष्णवस्त्रधृक् नामवाले चार महात्मा कुमार प्रादुर्भूत हुए, जो कृष्णवर्णके थे, कृष्णमालासे विभूषित थे और कृष्ण अंगरागसे अनुलिप्त थे॥ ९-१०॥

ततो वर्षसहस्रं तु योगतः परमेश्वरम्।
उपासित्वा महायोगं शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः॥ ११

एक हजार वर्षोंतक योगपरायण होकर उन अघोर परमेश्वरकी उपासना करके उन कुमारोंने पुनः अपने शिष्योंको महायोगका उपदेश प्रदान किया॥ ११॥

योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम्।
अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम्॥ १२

योगसम्पन्न वे सभी महात्मा मनसे शिवका ध्यानयोग करके महेश्वरके निर्विकार, निर्गुण, विश्वरूप तथा ऐश्वर्यमय स्थानमें प्रविष्ट हुए॥ १२॥

एवमेतेन योगेन येऽपि चान्ये मनीषिणः।
चिन्तयन्ति महादेवं गन्तारो रुद्रमव्ययम्॥ १३

इसी प्रकार और भी अन्य जो मनीषी इस योगके द्वारा महादेवका ध्यान करते हैं, वे अविनाशी भगवान् रुद्रके दिव्य लोकको प्राप्त होते हैं॥ १३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अघोरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अघोरोत्पत्तिवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

अघोरेशमाहात्म्य तथा अघोरमन्त्रके जपसे विविध पातकोंका विनाश

सूत उवाच

ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णवर्णे भयानके।
तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम्॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] उस भयावह कृष्ण कल्पके बीत जानेपर ब्रह्माजी उन ब्रह्मस्वरूप देवदेवेश अघोरकी स्तुति करने लगे॥ १॥

अनुगृह्य ततस्तुष्टो ब्रह्माणमवदद्धरः।
अनेनैव तु रूपेण संहरामि न संशयः॥ २

ब्रह्महत्यादिकान् घोरांस्तथान्यानपि पातकान्।
हीनांश्चैव महाभाग तथैव विविधान्यपि॥ ३

उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर महादेवने अनुग्रह करके ब्रह्मासे कहा—हे महाभाग! ब्रह्महत्या आदि महापातकों, अन्य पातकों तथा अनेकविध पापोंको मैं अपने इसी अघोर रूपसे दूर करता हूँ; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २-३॥

उपपातकमप्येवं तथा पापानि सुव्रत।
मानसानि सुतीक्ष्णानि वाचिकानि पितामह॥ ४

कायिकानि सुमिश्राणि तथा प्रासङ्गिकानि च।
बुद्धिपूर्वं कृतान्येव सहजागन्तुकानि च॥ ५

मातृदेहोत्थितान्येवं पितृदेहे च पातकम्।
संहरामि न सन्देहः सर्वं पातकजं विभो॥ ६

हे सुव्रत! हे पितामह! इसी प्रकार सभी उपपातकों, मानसिक पापों, सुतीक्ष्ण वाचिक पापों, कायिक पापों, मिश्रित पापों, प्रासंगिक पापों, जानबूझकर किये गये पापों, सहज रूपमें आगन्तुक पापों तथा पितृ-मातृदेहजन्य पापोंको दूर कर देता हूँ और हे विभो! समस्त प्रकारके पातकजनित दुःखोंका नाश कर देता हूँ; इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ ४—६॥

लक्षं जप्त्वा ह्यघोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो।
तदर्धं वाचिके वत्स तदर्धं मानसे पुनः॥ ७

हे प्रभो! एक लाख बार अघोर मन्त्र (**अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः०**) जपकर ब्रह्महत्यारा भी मुक्त हो जाता है।

चतुर्गुणं बुद्धिपूर्वे क्रोधादष्टगुणं स्मृतम्।
वीरहा लक्षमात्रेण भ्रूणहा कोटिमभ्यसेत्॥ ८

मातृहा नियुतं जप्त्वा शुद्ध्यते नात्र संशयः।
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च स्त्रीघ्नः पापयुतो नरः॥ ९

अयुताघोरमभ्यस्य मुच्यते नात्र संशयः।
सुरापो लक्षमात्रेण बुद्ध्याबुद्ध्यापि वै प्रभो॥ १०

मुच्यते नात्र सन्देहस्तदर्धेन च वारुणीम्।
अस्नाताशी सहस्रेण अजपी च तथा द्विजः॥ ११

अहुताशी सहस्रेण अदाता च विशुद्ध्यति।
ब्राह्मणस्वापहर्ता च स्वर्णस्तेयी नराधमः॥ १२

नियुतं मानसं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः।
गुरुतल्परतो वापि मातृघ्नो वा नराधमः॥ १३

ब्रह्मघ्नश्च जपेदेवं मानसं वै पितामह।
सम्पर्कात्पापिनां पापं तत्समं परिभाषितम्॥ १४

तथाप्ययुतमात्रेण पातकाद्वै प्रमुच्यते
संसर्गात्पातकी लक्षं जपेद्वै मानसं धिया॥ १५

उपांशु यच्चतुर्धा वै वाचिकं चाष्टधा जपेत्।
पातकादर्धमेव स्यादुपपातकिनां स्मृतम्॥ १६

हे वत्स! उससे आधा जप करनेसे वाचिक पाप तथा उससे भी आधे जपसे मानसिक पाप, चार गुना जप करनेसे बुद्धिपूर्वक अर्थात् जानबूझकर किये गये पाप तथा आठ गुना जप करनेसे क्रोधपूर्वक किये गये पाप दूर होते हैं॥ ७१/२॥

वीरोंकी हत्या करनेवालेको एक लाख जप तथा भ्रूण-हत्या करनेवालेको एक करोड़ जप करना चाहिये। माताका हत्यारा दस लाख जप करनेसे शुद्ध होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८१/२॥

गायकी हत्या करनेवाला, कृतघ्न तथा स्त्रीका हत्यारा—ऐसा पापी मनुष्य दस हजार बार अघोरमन्त्र जपकर पापमुक्त हो जाता है; इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है॥ ९१/२॥

हे प्रभो! जानकर अथवा बिना जाने सुरापान करनेवाला एक लाख जपसे तथा वारुणी (मद्य) पीनेवाला उसके आधे अर्थात् पचास हजार जपसे पापमुक्त हो जाता है; इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है॥ १०१/२॥

बिना स्नान किये भोजन करनेवाला, गायत्री-जप तथा अग्निहोत्र किये बिना और देवताओं एवं अतिथियों आदिको भोजन कराये बिना भोजन करनेवाला द्विज एक हजार जप करनेसे शुद्ध होता है॥ १११/२॥

ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला तथा स्वर्णकी चोरी करनेवाला अधम व्यक्ति दस लाख अघोर मन्त्र जपकर पापसे मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं है। इसी प्रकार हे पितामह! गुरुपत्नीमें आसक्ति रखनेवाले, माताका वध करनेवाले तथा ब्रह्महत्यारे नराधमको भी [पापमुक्तिहेतु] दस लाख मानस जप करना चाहिये॥ १२-१३१/२॥

पापियोंके सम्पर्कमात्रसे लगनेवाला पाप उन पापियोंके पापके ही समान कहा गया है, फिर भी मात्र दस हजार जपसे ही सम्पर्कमें रहनेवाला प्राणी उस पापसे मुक्त हो जाता है॥ १४१/२॥

संसर्गसे होनेवाले पाप-शमनके लिये पातकीको एक लाख मानस जप अथवा उसका चार गुना उपांशु जप अथवा आठ गुना वाचिक जप बुद्धिपूर्वक करना

तदर्धं केवले पापे नात्र कार्या विचारणा।
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च॥ १७

कृत्वा च गुरुतल्पं च पापकृद् ब्राह्मणो यदि।
रुद्रगायत्रिया ग्राह्यं गोमूत्रं कापिलं द्विजाः॥ १८

गन्धद्वारेति तस्या वै गोमयं स्वस्थमाहरेत्।
तेजोऽसिशुक्रमित्याज्यं कापिलं संहरेद् बुधः॥ १९

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति चाहरेत्।
गव्यं दधि नवं साक्षात्कापिलं वै पितामह॥ २०

देवस्य त्वेति मन्त्रेण सङ्ग्रहेद्वै कुशोदकम्।
एकस्थं हेमपात्रे वा कृत्वाघोरेण राजते॥ २१

ताम्रे वा पद्मपत्रे वा पालाशे वा दले शुभे।
सकूर्चं सर्वरत्नाढ्यं क्षिप्त्वा तत्रैव काञ्चनम्॥ २२

जपेल्लक्षमघोराख्यं हुत्वा चैव घृतादिभिः।
घृतेन चरुणा चैव समिद्भिश्च तिलैस्तथा॥ २३

यवैश्च व्रीहिभिश्चैव जुहुयाद्वै पृथक्पृथक्।
प्रत्येकं सप्तवारं तु द्रव्यालाभे घृतेन तु॥ २४

हुत्वाघोरेण देवेशं स्नात्वाघोरेण वै द्विजाः।
अष्टद्रोणघृतेनैव स्नाप्य पश्चाद्विशोध्य च॥ २५

अहोरात्रोषितः स्नातः पिबेत्कूर्चं शिवाग्रतः।
ब्राह्मं ब्रह्मजपं कुर्यादाचम्य च यथाविधि॥ २६

चाहिये। उपपातकीजनोंके लिये पापीजनोंके लिये निर्धारित जपका आधा जप करना बताया गया है तथा सामान्य पापोंसे मुक्तिहेतु उससे भी आधे जपका विधान है; इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये॥ १५-१६½॥

हे द्विजो! ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन आदि महापातक करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि वह रुद्रगायत्री[१] मन्त्रके द्वारा कपिला (किंचित् पीतवर्ण) गायका मूत्र, **'गन्धद्वारा०'**[२] इस मन्त्रसे उसी गायका पृथ्वीके सम्पर्कसे रहित गोबर, **'तेजोऽसि शुक्रं'**[३] इस मन्त्रसे कपिला गायका घी, **'आप्यायस्व'**[४] इस मन्त्रसे दूध, **'दधिक्राव्णा'**[५] इस मन्त्रसे साक्षात् कपिला गायका ताजा दही और हे पितामह! **'देवस्य त्वा'**[६] इस मन्त्रसे कुशाका जल इकट्ठा करे। तत्पश्चात् इन सबको स्वर्ण, चाँदी या ताँबेके पात्रमें अथवा कमल या पलाशपत्रमें एकत्र करके अघोरमन्त्र[७]से अभिमन्त्रित करना चाहिये। पुनः उसमें ब्रह्मकूर्च तथा सभी रत्नोंसहित सोना डाल देना चाहिये॥ १७—२२॥

तत्पश्चात् अघोर मन्त्रका जप करके घी आदिसे हवन करना चाहिये। घी, चरु, समिध, तिल, यव, धान्यसे अलग-अलग आहुति देनी चाहिये। प्रत्येककी सात-सात बार आहुति देनेका विधान है। इन द्रव्योंके अभावमें अघोरमन्त्रसे केवल घीसे ही हवन किया जा सकता है। हे द्विजो! इसके बाद अघोर मन्त्रका जप करते हुए आठ द्रोण घीसे देवेश शिवको स्नान कराकर बादमें शुद्धोदक स्नान कराना चाहिये॥ २३—२५॥

पुनः दिन-रात उपवास करके दूसरे दिन प्रातः-काल स्नानकर ब्रह्मकूर्चविधिसे बनाये गये पंचगव्यका पान करना चाहिये। तत्पश्चात् आचमन करके शिवके

१. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥
२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥
३. तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ (शु०यजु० १। ३१)
४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥ (शु०यजु० १२। ११२)
५. दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूꣳषि तारिषत्॥ (शु०यजु० २३। ३२)
६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
७. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

आगे विधिपूर्वक ब्रह्मसम्बन्धी गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २६॥

एवं कृत्वा कृतघ्नोऽपि ब्रह्महा भ्रूणहा तथा।
वीरहा गुरुघाती च मित्रविश्वासघातकः॥ २७

स्तेयी सुवर्णस्तेयी च गुरुतल्परतः सदा।
मद्यपो वृषलीसक्तः परदारविधर्षकः॥ २८

ब्रह्मस्वहा तथा गोघ्नो मातृहा पितृहा तथा।
देवप्रच्यावकश्चैव लिङ्गप्रध्वंसकस्तथा॥ २९

तथान्यानि च पापानि मानसानि द्विजो यदि।
वाचिकानि तथान्यानि कायिकानि सहस्रशः॥ ३०

कृत्वा विमुच्यते सद्यो जन्मान्तरशतैरपि।
एतद्रहस्यं कथितमघोरेशप्रसङ्गतः॥ ३१

तस्माज्जपेद् द्विजो नित्यं सर्वपापविशुद्धये॥ ३२

ऐसा करके कृतघ्न, ब्रह्महत्यारा, भ्रूणहत्या करनेवाला, वीरघाती, गुरुकी हत्या करनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, चौर-वृत्तिवाला, स्वर्णचोर, गुरुकी पत्नीमें सदा आसक्ति रखनेवाला, मद्यपान करनेवाला, शूद्र-स्त्रीमें आसक्त, परायी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाला, ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला, गोहत्यारा, माता-पिताकी हत्या करनेवाला, देवताओंकी मूर्ति खण्डित करनेवाला, शिवलिङ्ग ध्वस्त करनेवाला तथा हजारों प्रकारके अन्य मानसिक-वाचिक-शारीरिक पाप करनेवाला द्विज शीघ्र ही पापमुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, इस विधिके करनेसे सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरके पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। मैंने अघोरेश्वर भगवान् शिवके प्रसंगसे इस रहस्यका वर्णन किया है। अतएव द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यको सभी पापोंसे मुक्तिहेतु इस अघोर मन्त्रका जप नित्य करना चाहिये॥ २७—३२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽघोरेशमाहात्म्यं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अघोरेशमाहात्म्य' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

विश्वरूप नामक कल्पमें शिवस्वरूप भगवान् ईशानका प्रादुर्भाव, ब्रह्माजीद्वारा ईशानकी स्तुति

सूत उवाच

अथान्यो ब्रह्मणः कल्पो वर्तते मुनिपुङ्गवाः।
विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः॥ १

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! असित कल्पके अनन्तर 'विश्वरूप' नामसे विख्यात ब्रह्माजीका दूसरा अत्यन्त अद्भुत कल्प आरम्भ हुआ॥ १॥

विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे।
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः॥ २

प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती।
विश्वमाल्याम्बरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी॥ ३

विश्वोष्णीषा विश्वगन्धा विश्वमाता महोष्ठिका।

समस्त जगत्के संहारके अनन्तर चराचर संसारकी पुनः सृष्टिके निमित्त पुत्र-कामनासे ध्यानरत परमेष्ठी ब्रह्माजीके समक्ष महान् नाद करती हुई विश्वरूपा सरस्वती गौ प्रकट हुई। वह विश्वरूप माला, वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा शिरोभूषण (पगड़ी) धारण की हुई थी। उन महोष्ठिका विश्वमाताके सभी अंग विश्वगन्धसे अनुलिप्त थे॥ २-३$^{1}/_{2}$॥

तथाविधं स भगवानीशानं परमेश्वरम्॥ ४

शुद्धस्फटिकसङ्काशं सर्वाभरणभूषितम्।
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः॥ ५

तदनन्तर वे युक्तात्मा भगवान् ब्रह्मा उसी प्रकारके विश्वरूपवाले, शुद्ध स्फटिकमणिके तुल्य आभायुक्त

ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम्।
ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते॥ ६

नमोऽस्तु सर्वविद्यानामीशान परमेश्वर।
नमोऽस्तु सर्वभूतानामीशान वृषवाहन॥ ७

ब्रह्मणोऽधिपते तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
नमो ब्रह्माधिपतये शिवं मेऽस्तु सदाशिव॥ ८

ओङ्कारमूर्ते देवेश सद्योजात नमो नमः।
प्रपद्ये त्वां प्रपन्नोऽस्मि सद्योजाताय वै नमः॥ ९

अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः।
भवोद्भव भवेशान मां भजस्व महाद्युते॥ १०

वामदेव नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च।
नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः॥ ११

नमो विकरणायैव कालवर्णाय वर्णिने।
बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते॥ १२

बलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे।
सर्वभूतेश्वरेशाय भूतानां दमनाय च॥ १३

मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते।
वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने॥ १४

ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च।
कालहन्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने॥ १५

इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम्।
यः पठेत्सकृदेवेह ब्रह्मलोकं गमिष्यति॥ १६

तथा सभी आभूषणोंसे शोभायमान, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ परमात्मा ईशानदेवका मनसे ध्यान करके उनकी वन्दना करने लगे॥ ४-५ $^{1}/_{2}$ ॥

हे ओमुस्वरूप ईशान! आपको नमस्कार है। हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे समस्त विद्याओंके ईशान (स्वामी) परमेश्वर! आपको नमस्कार है। हे सभी प्राणियोंके अधिपति वृषवाहन! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्माधिपते! आप ब्रह्मरूप तथा साक्षात् ब्रह्मको नमस्कार है। आप ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। हे सदाशिव! मेरा कल्याण हो॥ ६—८॥

हे ओंकारमूर्ते! हे देवेश! हे सद्योजात! आपको बार-बार नमस्कार है। मैं कष्टसे पीड़ित होकर आपके शरणागत हूँ। सद्योजातको नमस्कार है। अजन्मा होनेपर भी आप लोकाभ्युदयार्थ ही जन्मादिको स्वीकार करनेवाले हैं, हे शिव! आपको नमस्कार है। हे विश्वोत्पादक! हे विश्वके ईशान (विश्वेश)! हे महाद्युते! मेरी रक्षा करो॥ ९-१०॥

हे वामदेव! आपको नमस्कार है। ज्येष्ठको नमस्कार है। वरदको नमस्कार है। रुद्रको, कालको तथा कलन (संख्यारूप)-को बार-बार नमस्कार है। वर्णी, कालवर्ण, विकरणको नित्य नमस्कार है। बलियोंके बली, विकरण (मनोरूप) आपको सर्वदा नमस्कार है॥ ११-१२॥

बलशाली तथा ब्रह्मरूप बलप्रमथनको नमस्कार है। सभी प्राणियोंका दमन करनेवाले सर्वभूतेश्वरेशको नमस्कार है। मनोन्मनको नमस्कार है। देवको नमस्कार है। हे महाद्युते! आपको नमस्कार है। वामदेवको नमस्कार है, वामको नमस्कार है, आप महात्माको नमस्कार है। ज्येष्ठको नमस्कार है, श्रेष्ठको नमस्कार है, रुद्रको नमस्कार है, वरदको नमस्कार है, महात्मा कालहन्ताको नमस्कार है। आपको नमस्कार है। आपको नमस्कार है॥ १३—१५॥

इस स्तवनसे ब्रह्माजीने वृषभध्वज ईशानको नमस्कार किया। जो पुरुष एक बार श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता

श्रावयेद्वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमां गतिम्।
एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम्॥ १७

उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहं ते किमिच्छसि।
ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्विशुद्धं महेश्वरम्॥ १८
उवाच भगवान् रुद्रं प्रीतं प्रीतेन चेतसा।
यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगौः श्रेयसीश्वरी॥ १९
एतद्वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर।
कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी॥ २०
चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा चतुःस्तनी।
चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता॥ २१
किं नामगोत्रा कस्येयं किं वीर्या चापि कर्मतः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः॥ २२
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माणं चात्मसम्भवम्।
रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम्॥ २३
शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा।
एवं यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ मतः॥ २४
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो।
त्वत्तः परतरं देव विष्णुना तत्पदं शुभम्॥ २५
वैकुण्ठेन विशुद्धेन मम वामाङ्गजेन वै।
तदा प्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम्॥ २६
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः।
पुरस्तात्तव देवेश तच्छृणुष्व महामते॥ २७
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे व्यवस्थितः।
माण्डव्यगोत्रस्तपसा मम पुत्रत्वमागतः॥ २८

है अथवा जो श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ १६$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार ध्यानमग्न होकर वन्दना करते हुए पितामह ब्रह्मासे भगवान् ईशान बोले—मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो?॥ १७$^{१}/_{२}$॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अत्यन्त निवेदनपूर्वक विशुद्ध वाणीवाले तथा प्रसन्नताको प्राप्त महेश्वरसे प्रसन्न मनसे कहा—हे परमेश्वर! यह आपका जो विश्वरूप है तथा परम कल्याणी यह जो विश्वरूपा गौ है—इसके विषयमें मैं जानना चाहता हूँ॥ १८-१९$^{१}/_{२}$॥

चार पैरोंवाली, चार मुखवाली, चार सींगोंवाली, चार वक्त्रवाली, चार दाढ़ोंवाली, चार स्तनोंवाली, चार हाथों तथा चार नेत्रोंवाली ये भगवती कौन हैं तथा इन देवीको विश्वरूपा क्यों कहा गया है? इनका नाम तथा गोत्र क्या है? ये किसकी भार्या हैं तथा इनके कर्मका प्रभाव एवं सामर्थ्य क्या है?॥ २०-२१$^{१}/_{२}$॥

उन ब्रह्माका वह वचन सुनकर ब्रह्मरूप देवदेव वृषध्वज शिवने देवताओंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र ब्रह्मासे कहा—॥ २२$^{१}/_{२}$॥

अब आदिसर्गमें जैसा था, वही पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, पवित्र तथा सभी मन्त्रोंका परम गुह्य रहस्य सुनो। हे प्रभो! यह जो वर्तमान कल्प है, वह विश्व-रूप कल्प नामवाला कहा गया है। जिसमें आपने यह ब्रह्मपद प्राप्त किया है और मेरे वाम अंगसे उत्पन्न विष्णुके द्वारा विशुद्ध वैकुण्ठलोक प्राप्त किया गया। हे देव! विष्णुद्वारा प्राप्त वह शुभ पद तुम्हारे ब्रह्मपदसे भी श्रेष्ठ है॥ २३—२५$^{१}/_{२}$॥

हे देवेश! हे महामते! उस समयसे अब यह तैंतीसवाँ कल्प है और इससे पूर्व लाखों कल्प बीत चुके हैं तथा आपसे पहले लाखों ब्रह्मा भी हो चुके हैं, उनके विषयमें सुनो॥ २६-२७॥

आपका माण्डव्य गोत्र है और तपस्यासे मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त हुए हैं, अतएव आपको आनन्दरूप तत्त्वमें व्यवस्थित वह ब्रह्मरूप आनन्द जानना चाहिये॥ २८॥

त्वयि योगं च सांख्यं च तपो विद्याविधिक्रियाः।
ऋतं सत्यं दया ब्रह्म अहिंसा सन्मतिः क्षमा॥ २९

ध्यानं ध्येयं दमः शान्तिर्विद्याविद्या मतिर्धृतिः।
कान्तिर्नीतिः प्रथा मेधा लज्जा दृष्टिः सरस्वती॥ ३०

तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्च प्रतिष्ठिताः।
द्वात्रिंशत्सुगुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञया॥ ३१

प्रकृतिर्विहिता ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिर्महेश्वरी।
विष्णोर्भगवतश्चापि तथान्येषामपि प्रभो॥ ३२

सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता।
चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता॥ ३३

गौरी माया च विद्या च कृष्णा हैमवतीति च।
प्रधानं प्रकृतिश्चैव यामाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ३४

आपमें योग, सांख्य (तत्त्वज्ञान), तप, विद्या, विधि, क्रिया, ऋत (प्रियभाषण), सत्य, दया, वेद, अहिंसा, सन्मति, क्षमा, ध्यान, ध्येय (ईश्वर-सन्निधान), इन्द्रियनिग्रह, शान्ति, ज्ञान, अविद्या (माया), बुद्धि, धृति, कान्ति, नीति, प्रथा (ख्याति), मेधा (धारणवती बुद्धि), लज्जा, दृष्टि (दिव्य ज्ञान), सरस्वती (सर्वलक्षणयुक्त वाणी), तुष्टि, पुष्टि, क्रिया (वेदविहित कर्म) तथा प्रसाद—ये बत्तीस गुण प्रतिष्ठित हैं। ककार आदि बत्तीस अक्षरस्वरूपा तथा बत्तीस गुणोंसे युक्त यह विश्वरूपा गाय तुम्हें उत्पन्न करनेवाली है; इसीलिये तुम उन बत्तीस गुणोंसे सम्पन्न हो। हे ब्रह्मन्! प्रकृतिकी रचना मैंने की है और हे प्रभो! आप, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र आदि देवता इस महेश्वरीसे प्रसूत हैं। जगत्को उत्पन्न करनेवाली साक्षात् देवी भगवतीस्वरूपा यह चतुर्मुखी प्रकृति गौ मुझसे उत्पन्न होकर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुई है, जिसे तत्त्वचिन्तक गौरी, माया, विद्या, कृष्णा, हैमवती, प्रधान तथा प्रकृति—ऐसा कहते हैं॥ २९—३४॥

अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां
विश्वप्रजां सृजमानां सरूपाम्।
अजोऽहं मां विद्धि तां विश्वरूपं
गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्या॥ ३५

विश्वकी प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाली, रक्त-श्वेत-कृष्ण-वर्णवाली, रूपसम्पन्न, अजन्मा तथा अद्वितीय इस विश्वरूपा गायको अपने बुद्धि-विचारसे साक्षात् गायत्री जानो और मैं भी अजन्मा हूँ, मुझे भी विश्वरूप जानो॥ ३५॥

एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः।
ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः॥ ३६

जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जज्ञिरे।
ततस्तेन यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः॥ ३७

दिव्यवर्षसहस्रान्ते उपासित्वा महेश्वरम्।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा योगमयं दृढम्॥ ३८

शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम्॥ ३९

तदनन्तर ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर परमेश्वर महादेवने कई कुमार सृजित किये और इस प्रकार देवीके समीपसे अनेक रूपोंवाले कुमार प्रकट हुए, जिनमें कोई जटाधारी था, कोई मुण्डितसिर था, कोई सिरपर शिखा धारण किये था तथा कोई अर्धमुण्डित सिरवाला था। तदनन्तर सदाचारी, नियत आत्मावाले तथा महान् ओजसे सम्पन्न वे कुमार यथोक्त योगाभ्यास करते हुए देवताओंके एक हजार वर्षतक महेश्वरकी आराधना करके दृढ़ योगयुक्त सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश अपने शिष्यों-प्रशिष्योंको देकर अन्तमें परमेश्वर रुद्रमें प्रवेश कर गये॥ ३६—३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ईशानमाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ईशानमाहात्म्यकथन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्मा तथा विष्णुके समक्ष ज्योतिर्मय महालिङ्गका प्राकट्य, ब्रह्मा और विष्णुद्वारा हंस एवं वाराहरूप धारणकर लिङ्गके मूलस्थानका अन्वेषण, लिङ्गमध्यसे शब्दमय उमा-महेश्वरका प्रादुर्भाव और ईशानादि पाँच शिवरूपोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥ १

स याति ब्रह्मसायुज्यं प्रसादात्परमेष्ठिनः।

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गमभूल्लिङ्गे समभ्यर्च्यः स शङ्करः॥ २

किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सूत वक्तुमिहार्हसि।

रोमहर्षण उवाच

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम्॥ ३

अपृच्छन् भगवँल्लिङ्गं कथमासीदिति स्वयम्।
लिङ्गे महेश्वरो रुद्रः समभ्यर्च्यः कथं त्विति॥ ४

किं लिङ्गं कस्तथा लिङ्गी सोऽप्याह च पितामहः।

पितामह उवाच

प्रधानं लिङ्गमाख्यातं लिङ्गी च परमेश्वरः॥ ५

रक्षार्थमम्बुधौ मह्यं विष्णोस्त्वासीत्सुरोत्तमाः।
वैमानिके गते सर्गे जनलोकं सहर्षिभिः॥ ६

स्थितिकाले तदा पूर्णे ततः प्रत्याहृते तथा।
चतुर्युगसहस्रान्ते सत्यलोकं गते सुराः॥ ७

विनाधिपत्यं समतां गतेऽन्ते ब्रह्मणो मम।
शुष्के च स्थावरे सर्वे त्वनावृष्ट्या च सर्वशः॥ ८

पशवो मानुषा वृक्षाः पिशाचाः पिशिताशनाः।
गन्धर्वाद्याः क्रमेणैव निर्दग्धा भानुभानुभिः॥ ९

एकार्णवे महाघोरे तमोभूते समन्ततः।
सुष्वापाम्भसि योगात्मा निर्मलो निरुपप्लवः॥ १०

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार मैंने शिवजीके सद्योजात आदि अवतारोंका वर्णन संक्षेपमें कर दिया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा श्रेष्ठ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-को सुनाता है, वह शिवजीके अनुग्रहसे ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है॥ १$^1/_2$॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! लिङ्गकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा उस लिङ्गमें शंकरजीकी उपासना कैसे की जानी चाहिये? लिङ्ग क्या है तथा लिङ्गी कौन है? यह आप हमें बताइये॥ २$^1/_2$॥

रोमहर्षण [सूतजी] बोले—हे ऋषियो! इसी प्रकार अत्यन्त निवेदनपूर्वक देवताओंने भी पितामह ब्रह्मासे पूछा था कि हे भगवन्! यह लिङ्ग कैसे उत्पन्न हुआ तथा लिङ्गमें महेश्वर रुद्रका किस प्रकार पूजन होना चाहिये? लिङ्ग क्या है तथा लिङ्गी कौन है? इसपर वे ब्रह्मा बोले॥ ३-४$^1/_2$॥

पितामह [ब्रह्माजी]-ने कहा—प्रधानको लिङ्ग तथा परमेश्वरको लिङ्गी कहा गया है। हे उत्तम देवताओ! यह मेरी तथा विष्णुकी रक्षाके लिये समुद्रमें प्रकट हुआ था॥ ५$^1/_2$॥

जब देवताओंकी सृष्टि समाप्त हो गयी, तब वे देवता ऋषियोंके साथ जनलोक चले गये और पुनः स्थिति-कालके पूर्ण होनेपर और इसके बाद हजार चतुर्युगीके अन्तमें पुनः प्रलयके उपस्थित होनेपर वे सत्यलोक चले गये॥ ६-७॥

उस समय मैं ब्रह्मा बिना किसी आधिपत्यके साम्य-अवस्थाको प्राप्त था। इस प्रकार अन्तमें अनावृष्टिके कारण सभी स्थावर पदार्थोंके सूख जानेपर सभी ओर समस्त पशु, मनुष्य, वृक्ष, पिशाच, राक्षस, गन्धर्व आदि क्रमसे सूर्यकी किरणोंसे दग्ध हो गये॥ ८-९॥

तत्पश्चात् चारों ओर समुद्र-ही-समुद्रके व्याप्त हो

सहस्रशीर्षा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वदेवभवोद्भवः॥ ११

हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शङ्करः स्वयम्।
सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मत्वे महेश्वरः॥ १२

कालात्मा कालनाभस्तु शुक्लः कृष्णस्तु निर्गुणः।
नारायणो महाबाहुः सर्वात्मा सदसन्मयः॥ १३

जाने तथा घोर अन्धकार छा जानेपर योगात्मा, निर्मल, उपद्रवरहित, हजार सिरोंवाले, हजार नेत्रोंवाले, हजार पैरोंवाले, हजार भुजाओंवाले, विश्वात्मा, सब कुछ जाननेवाले, सभी देवताओं तथा संसारकी उत्पत्ति करनेवाले, रजोगुणसे युक्त होनेके कारण ब्रह्मा, तमोगुणसे युक्त होनेके कारण स्वयं शंकर, सत्त्वगुणसे युक्त होनेके कारण सर्वव्यापी विष्णु, सबकी आत्मा होनेके कारण महेश्वर, कालात्मा, कालरूप नाभिवाले, शुक्ल, कृष्ण, गुणोंसे रहित, नारायण, महान् बाहुवाले तथा सत्-असत्से युक्त सर्वात्मा जलके मध्यमें शयन करने लगे॥ १०—१३॥

तथाभूतमहं दृष्ट्वा शयानं पङ्कजेक्षणम्।
मायया मोहितस्तस्य तमवोचममर्षितः॥ १४

कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम्।
तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण स दृढेन तु॥ १५

उन्हें इस प्रकार जल-स्थित कमलपर सोते हुए देखकर मैं उस क्षण उनकी मायासे मोहित हो गया और उन सनातनको हाथसे पकड़कर उठाते हुए क्रोधपूर्वक मैंने उनसे कहा—तुम कौन हो, यह मुझे बताओ?॥ १४½॥

प्रबुद्धोऽहीयशयनात्समासीनः क्षणं वशी।
ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः॥ १६

तत्पश्चात् मेरे तेज तथा दृढ़ हस्त-प्रहारसे शेषनाग-रूपी शय्यासे उठकर इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले वे प्रभु उस क्षण बैठ गये॥ १५½॥

मामग्रे संस्थितं भासाध्यासितो भगवान् हरिः।
आह चोत्थाय भगवान् हसन्मां मधुरं सकृत्॥ १७

स्वागतं स्वागतं वत्स पितामह महाद्युते।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभाः॥ १८

इसके बाद निद्रासे विक्लिन्न स्वच्छ कमलसदृश नेत्रोंवाले प्रभायुक्त भगवान् हरिने अपने सम्मुख विराजमान मुझ ब्रह्माको देखा और उन भगवान्ने शय्यासे उठकर थोड़ा हँसते हुए मुझसे मधुर-मधुर वाणीमें कहा—हे महाद्युते! हे वत्स! हे पितामह! तुम्हारा स्वागत है, स्वागत है॥ १६-१७½॥

रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम्।
भाषसे वत्स वत्सेति सर्गसंहारकारणम्॥ १९

हे श्रेष्ठ देवताओ! उनका वह वचन सुनकर रजोगुणसे युक्त होनेके कारण शत्रुतापूर्ण भावसे मैंने मुसकराकर उन जनार्दनसे कहा—॥ १८½॥

मामिहान्तः स्मितं कृत्वा गुरुः शिष्यमिवानघ।
कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्॥ २०

हे अनघ! सृजन तथा संहार करनेवाले मुझ ब्रह्माको तुम 'वत्स! वत्स!' इस प्रकार सम्बोधित करते हुए जैसे गुरु शिष्यसे कहता है, उस प्रकारसे मुसकराकर क्यों बोल रहे हो?॥ १९½॥

सनातनमजं विष्णुं विरिञ्चिं विश्वसम्भवम्।
विश्वात्मानं विधातारं धातारं पङ्कजेक्षणम्॥ २१

किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम्।
सोऽपि मामाह जगतां कर्ताहमिति लोकय॥ २२

जगत्के साक्षात् रचयिता, प्रकृतिके प्रवर्तक, सनातन, अजन्मा, पालनकर्ता, विश्वके उत्पत्तिकारक ब्रह्मा, विश्वात्मा, विधाता तथा धारणकर्ता मुझ कमलनयन पितामहसे मोहयुक्त होकर इस प्रकार क्यों बोल रहे हो? इसका

भर्ता हर्ता भवानङ्गादवतीर्णो ममाव्ययात्।
विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्॥ २३

पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम्॥ २४

तवापराधो नास्त्यत्र मम मायाकृतं त्विदम्।
शृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्यहम्॥ २५

कर्ता नेता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः।
अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह॥ २६

अहमेव परं ज्योतिः परमात्मा त्वहं विभुः।
यद्यद्दृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिंश्चराचरम्॥ २७

तत्तद्विद्धि चतुर्वक्त्र सर्वं मन्मयमित्यथ।
मया सृष्टं पुरा व्यक्तं चतुर्विंशतिकं स्वयम्॥ २८

नित्यान्ता ह्यणवो बद्धाः सृष्टाः क्रोधोद्भवादयः।
प्रसादाद्धि भवानण्डान्यनेकानीह लीलया॥ २९

सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहङ्कारस्त्रिधा ततः।
तन्मात्रापञ्चकं तस्मान्मनः षष्ठेन्द्रियाणि च॥ ३०

आकाशादीनि भूतानि भौतिकानि च लीलया।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च मयि चापि वचस्तथा॥ ३१

आवयोश्चाभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥ ३२

एतस्मिन्नन्तरे लिङ्गमभवच्चावयोः पुरः।
विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं च भास्वरम्॥ ३३

कारण शीघ्र बताओ॥ २०-२१$^{1}/_{2}$॥

इसपर उन्होंने भी मुझसे कहा—सम्पूर्ण जगत्का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता मैं (विष्णु) ही हूँ, ऐसा जानो और तुमने भी मुझ शाश्वत परमेश्वरके अंगसे ही अवतार ग्रहण किया है। फिर भी तुम मुझ जगत्पति, नारायण, रोग-विकाररहित, परम पुरुष, परमात्मा, सभीसे आवाहित होनेवाले, पुरुष्टुत, अच्युत, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा विश्वकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप मुझ विष्णुको भूल गये हो, किंतु इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह सब तो मेरी मायाद्वारा रचा गया है॥ २२—२४$^{1}/_{2}$॥

हे चार मुखवाले ब्रह्मन्! तुम यह सत्य जानो कि सृष्टिका कर्ता, पालक, संहारक तथा सभी देवताओंका स्वामी मैं ही हूँ। मेरे सदृश ऐश्वर्यवाला और कोई नहीं है॥ २५$^{1}/_{2}$॥

हे पितामह! मैं ही परम ब्रह्म हूँ, मैं ही परम तत्त्व हूँ, मैं ही परम ज्योति हूँ तथा मैं ही परम समर्थ परमात्मा हूँ॥ २६$^{1}/_{2}$॥

हे चतुर्मुख! इस जगत्में जो भी समस्त स्थावर-जंगम वस्तुएँ दिखायी पड़ रही हैं अथवा जिनके बारेमें सुना जाता है; उन सबको मुझसे व्याप्त किया हुआ जानो॥ २७$^{1}/_{2}$॥

प्राचीन कालमें मैंने ही स्वयं चौबीस तत्त्वमय व्यक्त सृष्टि रची है। नित्य अन्तको प्राप्त होनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म बद्धजीव, क्रोधसे उत्पन्न अन्यान्य तामसी सृष्टि तथा आप (ब्रह्मा)-सहित अनेक ब्रह्माण्ड मेरी मायाके प्रभावसे ही विरचित हैं॥ २८-२९॥

मैंने बुद्धिकी रचना की है तथा उसमें तीन प्रकारके अहंकारों (सात्त्विक, राजस, तामस)-का निर्माण किया है। इसी प्रकार अपनी मायासे पाँच तन्मात्राएँ एवं मन, इन्द्रियाँ, आकाश आदि पाँच महाभूतोंकी सृष्टि मैंने ही की है॥ ३०$^{1}/_{2}$॥

यह वचन कहनेके अनन्तर रजोगुणकी वृद्धिसे परस्पर शत्रुता-भावको प्राप्त हम दोनोंमें उस प्रलय-सागरके मध्य भीषण रोमांचकारी संग्राम होने लगा॥ ३१-३२॥

इसी बीच हम दोनोंके कलहको दूर करने तथा

ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ३४
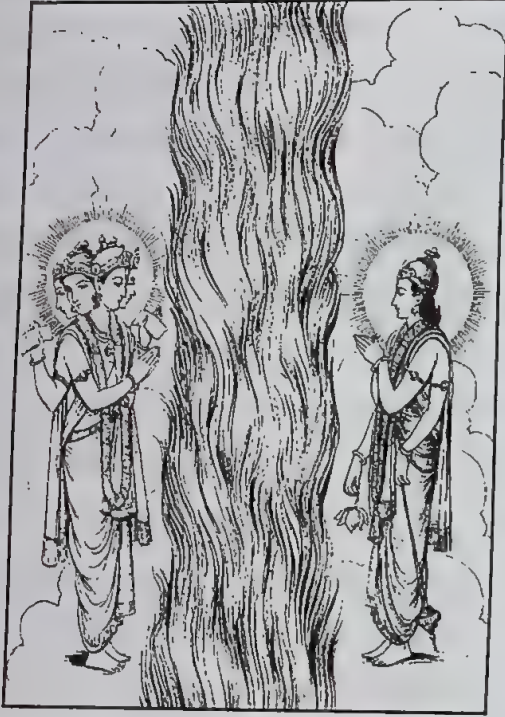
अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम्।
तस्य ज्वालासहस्रेण मोहितो भगवान् हरिः ॥ ३५
मोहितं प्राह मामत्र परीक्षावोऽग्निसम्भवम्।
अधोगमिष्याम्यनलस्तम्भस्यानुपमस्य च ॥ ३६
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गन्तुमर्हसि सत्वरम्।
एवं व्याहृत्य विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा ॥ ३७
वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान् सुराः।
तदा प्रभृति मामाहुर्हंसं हंसो विराडिति ॥ ३८
हंस हंसेति यो ब्रूयान्मां हंसः स भविष्यति।
सुश्वेतो ह्यनलाक्षश्च विश्वतः पक्षसंयुतः ॥ ३९
मनोऽनिलजवो भूत्वा गतोऽहं चोर्ध्वतः सुराः।
नारायणोऽपि विश्वात्मा नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ ४०
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्।
मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ॥ ४१
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम्।
ह्रस्वपादं विचित्राङ्गं जैत्रं दृढमनौपमम् ॥ ४२
वाराहमसितं रूपमास्थाय गतवानधः।
एवं वर्षसहस्रं तु त्वरन् विष्णुरधोगतः ॥ ४३
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिङ्गस्य सूकरः।
तावत्कालं गतो ह्यूर्ध्वमहमप्यरिसूदनः ॥ ४४
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया।
श्रान्तो ह्यदृष्ट्वा तस्यान्तमहङ्कारादधोगतः ॥ ४५

ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त एक दीप्तिमान् लिङ्ग हमलोगोंके समक्ष प्रकट हुआ। वह लिङ्ग हजारों अग्नि-ज्वालाओंसे व्याप्त, सैकड़ों कालाग्निके सदृश, क्षय तथा वृद्धिसे रहित, आदि-मध्य-अन्तसे हीन, अतुलनीय, अवर्णनीय, अव्यक्त तथा विश्वका उत्पत्तिकर्तारूप था ॥ ३३-३४१/२ ॥

उस लिङ्गकी हजारों ज्वालाओंसे भगवान् विष्णु तथा मैं—दोनों लोग मोहित हो गये। फिर विष्णुने मुझसे कहा कि हमें अग्नि-उद्भूत इस लिङ्गका पता लगाना चाहिये। एतदर्थ मैं इस अनुपम अग्नि-स्तम्भके नीचे जाता हूँ और आप प्रयत्नपूर्वक शीघ्र इसके ऊपर जाइये ॥ ३५-३६१/२ ॥

हे देवताओ! ऐसा कहकर विश्वात्मा भगवान् विष्णुने वाराहका रूप धारण कर लिया और मैं भी शीघ्र हंसके रूपको प्राप्त हो गया। उसी समयसे मुझ ब्रह्माको विराट् रूपवाले भगवान् विष्णु 'हंस' कहने लगे। जो प्राणी 'हंस-हंस' नामसे मेरा कीर्तन करता है, वह हंसत्वको प्राप्त हो जाता है ॥ ३७-३८१/२ ॥

हे देवताओ! उस समय मैं अत्यन्त श्वेत वर्णका था, मेरे नेत्र अग्निके समान थे और मैं सभी ओरसे पंखोंसे युक्त था—इस प्रकार हंसरूपमें मैं मनरूपी वायुके वेगसे उड़कर ऊपरकी ओर गया ॥ ३९१/२ ॥

उधर विश्वात्मा नारायण विष्णु भी दस योजन चौड़े तथा शत योजन लम्बे और नीले अंजनके समूहसदृश, मेरुपर्वत-तुल्य शरीरवाले, श्वेत तथा तीक्ष्ण दंष्ट्रांकुर एवं विशाल थूथनवाले, छोटे-छोटे पैरोंवाले, विचित्र अंगोंवाले, प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान, दृढ़, अनुपमेय, भीषण शब्दवाले तथा सर्वथा अपराजेय कृष्णवाराहका रूप धारण करके उस अग्नि-स्तम्भ (लिङ्ग)-के नीचेकी ओर गये ॥ ४०—४२१/२ ॥

इस प्रकार विष्णुभगवान् एक हजार वर्षतक वेगपूर्वक नीचेकी ओर जाते रहे, किंतु वाराहरूप विष्णु इस लिङ्गके मूलका अल्पांश भी नहीं देख सके ॥ ४३१/२ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाला मैं ब्रह्मा भी उस लिङ्गका अन्त जाननेकी इच्छासे पूरे प्रयासके साथ शीघ्रतापूर्वक ऊपरकी ओर जाता रहा ॥ ४४१/२ ॥

तथैव भगवान् विष्णुः श्रान्तः सन्त्रस्तलोचनः।
सर्वदेवभवस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः॥ ४६

समागतो मया सार्धं प्रणिपत्य महामनाः।
मायया मोहितः शम्भोस्तस्थौ संविग्नमानसः॥ ४७

पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम्।
प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति॥ ४८

तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठाः सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः॥ ४९

किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य मया तिष्ठन् महास्वनम्।
लिङ्गस्य दक्षिणे भागे तदापश्यत्सनातनम्॥ ५०

आद्यवर्णमकारं तु उकारं चोत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्य चोमिति॥ ५१

सूर्यमण्डलवद् दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे।
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः॥ ५२

शीतांशुमण्डलप्रख्यं मकारं मध्यमं तथा।
तस्योपरि तदापश्यच्छुद्धस्फटिकवत्प्रभुम्॥ ५३

तुरीयातीतममृतं निष्कलं निरुपप्लवम्।
निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यन्तरवर्जितम्॥ ५४

सबाह्याभ्यन्तरं चैव सबाह्याभ्यन्तरस्थितम्।
आदिमध्यान्तरहितमानन्दस्यापि कारणम्॥ ५५

मात्रास्तिस्त्रस्त्वर्धमात्रं नादाख्यं ब्रह्मसंज्ञितम्।
ऋग्यजुःसामवेदा वै मात्रारूपेण माधवः॥ ५६

वेदशब्देभ्य एवेशं विश्वात्मानमचिन्तयत्।
तदाभवदृषिर्वेद ऋषेः सारतमं शुभम्॥ ५७

तत्पश्चात् अहंकारपूर्वक ऊपर गया हुआ मैं उस लिङ्गका अन्त न देखकर अत्यन्त थका हुआ नीचे लौट आया और उसी प्रकार सभी देवताओंके उद्भवकर्ता तथा महान् शरीरवाले वे भगवान् विष्णु भी थकान एवं सन्त्रासभरे नेत्रोंके साथ लिङ्गका मूल न पाकर नीचेसे ऊपर आ गये॥ ४५-४६॥

शंकरकी मायासे मोहको प्राप्त वे महामना विष्णु मेरे साथ आकर परमेश्वरको प्रणाम करके व्याकुल मनसे खड़े हो गये। इसके बाद मेरे साथ पुनः परमेश्वरको पीछेसे, बगलसे तथा आगेसे प्रणाम करके वे विचार करने लगे कि [आदि-अन्तहीन] यह क्या है?॥ ४७-४८॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उसी समय वहाँ प्लुत स्वरसे युक्त 'ओम्-ओम्' ऐसा अत्यन्त स्पष्ट शब्दरूप नाद सुनायी पड़ा॥ ४९॥

यह तीव्र शब्द क्या है— ऐसा मेरे साथ विचार करते हुए वे विष्णु खड़े रहे। तभी उन्होंने उस 'ओम्' नादके अन्तमें लिङ्गके दक्षिण भागमें सनातन आदि वर्ण अकार, उसके उत्तर भागमें उकार तथा उसके मध्यमें मकार देखा॥ ५०-५१॥

इस प्रकार सूर्यमण्डलके समान आदि वर्ण अकारको लिङ्गके दक्षिणमें, अग्निके सदृश प्रतीत होनेवाले उकारको उत्तरमें तथा चन्द्रमण्डलके तुल्य मकारको मध्यमें देखनेके बाद उन पुरुषश्रेष्ठ विष्णुने उसके ऊपर तुरीयातीत, अमृतरूप, कलारहित, विकारशून्य, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यस्वरूप, बाह्य तथा आभ्यन्तरसे रहित, बाह्य तथा आभ्यन्तरसे युक्त, बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों रूपोंमें स्थित, आदि-मध्य-अन्तसे रहित तथा आनन्दके भी कारणस्वरूप शुद्ध स्फटिकके सदृश प्रकाशमान प्रभुको देखा॥ ५२—५५॥

अकार, उकार और मकाररूप तीन मात्राएँ तथा बिन्दुरूप अर्धमात्रास्वरूपवाला प्रणव ही नाद कहलाता है और वही ब्रह्मसंज्ञावाला है। ऋक्-यजुः तथा सामवेद उन तीनों मात्राओंके रूपमें विष्णु ही हैं॥ ५६॥

उसी वेदरूप शब्दके द्वारा विष्णुने विश्वात्मा

तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान् परमेश्वरम्।

देव उवाच

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह॥ ५८

अप्राप्य तं निवर्तन्ते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः।
एकाक्षरेण तद्वाच्यमृतं परमकारणम्॥ ५९

सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परात्परम्।
एकाक्षरादकाराख्यो भगवान् कनकाण्डजः॥ ६०

एकाक्षरादुकाराख्यो हरिः परमकारणम्।
एकाक्षरान्मकाराख्यो भगवान्नीललोहितः॥ ६१

सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः।
मकाराख्यस्तयोर्नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ॥ ६२

मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीजमुच्यते।
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः॥ ६३

बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः।
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः॥ ६४

अस्य लिङ्गादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः।
उकारयोनौ निक्षिप्तमवर्धत समन्ततः॥ ६५

सौवर्णमभवच्चाण्डमावेष्ट्याद्यं तदक्षरम्।
अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमण्डं व्यवस्थितम्॥ ६६

ततो वर्षसहस्रान्ते द्विधा कृतमजोद्भवम्।
अण्डमप्सु स्थितं साक्षादाद्याख्येनेश्वरेण तु॥ ६७

तस्याण्डस्य शुभं हैमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम्।
जज्ञे यद् द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा॥ ६८

ईश्वर शिवका चिन्तन किया। उसी समयसे अतीन्द्रिय-दर्शक, परम-तत्त्वरूप कल्याणकारी वेद हुआ और उसी ऋषि (वेद)-से विष्णुने परमेश्वर शिवको जाना॥ ५७½॥

देव (ब्रह्मा) बोले— वाणी भी मनके साथ जिन्हें प्राप्त न करके लौट आती है, उन चिन्तारहित भगवान् रुद्रका वाचक एकाक्षर प्रणव ही है और यही एकाक्षर प्रणव उस सृष्टिके परम कारणरूप, सत्य-आनन्द तथा अमृतरूप परात्पर परम ब्रह्मका भी वाचक है*॥ ५८-५९½॥

उसी एकाक्षर प्रणवसे अकारसंज्ञक भगवान् ब्रह्मा, उकारसंज्ञक परमकारणस्वरूप विष्णु तथा मकारसंज्ञक परमेश्वर नीललोहितका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ६०-६१॥

अकारसंज्ञक ब्रह्मा सृष्टिके निर्माता, उकारसंज्ञक विष्णु मोह करनेवाले तथा मकारसंज्ञक शिव उन दोनों ब्रह्मा तथा विष्णुपर सदा अनुग्रह करनेवाले हैं॥ ६२॥

मकाररूप भगवान् शिव बीजवान्, अकाररूप ब्रह्मा बीज तथा उकाररूप प्रधानपुरुषेश्वर विष्णु योनि कहे जाते हैं॥ ६३॥

नादरूप महेश्वर शिव ही स्वयं बीजी, बीज तथा योनि—तीनों हैं। वे बीजीरूप महेश्वर स्वेच्छासे अपनेको विभाजित करके प्रतिष्ठित हैं॥ ६४॥

इन बीजीरूप परमेश्वर शिवके लिङ्गसे अकाररूप बीज (ब्रह्मा), उकाररूप योनि (विष्णु)-में गिरकर चारों ओर वृद्धिको प्राप्त होने लगा और वह फिर स्वर्णका अण्ड हो गया। इसके बाद एकाक्षर प्रणवको आदि-अन्तसे आवेष्टित करके वह दिव्य अण्ड बहुत वर्षोंतक जलमें स्थित रहा॥ ६५-६६॥

तदनन्तर हजार वर्षोंके बाद साक्षात् आदिरूप परमेश्वरने जलमें स्थित उस अजोद्भूत अण्डको दो भागोंमें कर दिया॥ ६७॥

उस अण्डके ऊर्ध्वस्थित हेममय पवित्र कपालसे आकाश तथा नीचेके भागसे पाँच लक्षणोंसे सम्पन्न पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई॥ ६८॥

* यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। (तैत्ति० २।४।१)

तस्मादण्डोद्भवो जज्ञे त्वकाराख्यश्चतुर्मुखः।
स स्त्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः॥ ६९

एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः।
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम्॥ ७०

एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्याहुः श्रुतयस्तदा।
ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छ्रुतिसम्भवैः॥ ७१

मन्त्रैर्महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम्।
आवयोः स्तुतिसन्तुष्टो लिङ्गे तस्मिन्निरञ्जनः॥ ७२

दिव्यं शब्दमयं रूपमास्थाय प्रहसन् स्थितः।
अकारस्तस्य मूर्द्धा तु ललाटं दीर्घमुच्यते॥ ७३

इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम्।
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाममुच्यते॥ ७४

ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः।
वामं कपोलमॄकारो लृलॄ नासापुटे उभे॥ ७५

एकारमोष्ठमूर्ध्वश्च ऐकारस्त्वधरो विभोः।
ओकारश्च तथौकारो दन्तपङ्क्तिद्वयं क्रमात्॥ ७६

अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य धीमतः।
कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्तानि दक्षिणे॥ ७७

चादिपञ्चाक्षराण्येवं पञ्च हस्तानि वामतः।
टादिपञ्चाक्षरं पादस्तादिपञ्चाक्षरं तथा॥ ७८

पकारमुदरं तस्य फकारः पार्श्वमुच्यते।
बकारो वामपार्श्वं वै भकारं स्कन्धमस्य तत्॥ ७९

मकारं हृदयं शम्भोर्महादेवस्य योगिनः।
यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः॥ ८०

हकार आत्मरूपं वै क्षकारः क्रोध उच्यते।
तं दृष्ट्वा उमया सार्द्धं भगवन्तं महेश्वरम्॥ ८१

उसी अण्डसे अकारसंज्ञक चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। अतएव वही लिङ्गरूप प्रणव सभी लोकोंकी सृष्टि करनेवाला है तथा वही प्रणव अकार-उकार-मकाररूप तीन प्रकारका ईश्वर है॥ ६९॥

इस प्रकार वह प्रणव ओम्-ओम्रूप ब्रह्म कहा गया है—ऐसा यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ मनीषियोंने कहा है और उन यजुर्वेद-ज्ञाताओंके वचन सुनकर उसे ऋग्वेदकी ऋचाओं तथा साममन्त्रोंने भी आदरपूर्वक स्वीकार किया है और इसी तरह सभी श्रुतियोंने उसी 'ओम्' को सदा हे हरे! हे ब्रह्मन्! के रूपमें सम्बोधित किया है॥ ७०१/२॥

इस वेद-वाक्य आदिसे शिवको यथावत् जानकर हम दोनों वैदिक मन्त्रोंसे महोदय देवेश्वर महादेवकी स्तुति करने लगे॥ ७११/२॥

हम दोनोंके स्तवनसे प्रसन्न होकर मायाके आवरणसे रहित महेश्वर दिव्य शब्दमय रूप धारणकर हँसते हुए उस लिङ्गमें प्रकट हुए॥ ७२१/२॥

अकार उनका मस्तक तथा दीर्घ (आकार) उनका ललाट कहा जाता है। इकार दाहिना नेत्र, ईकार बायाँ नेत्र, उकार दाहिना कान, ऊकार बायाँ कान, ऋकार उन परमेष्ठी महेश्वरका दायाँ कपोल, ॠकार उनका बायाँ कपोल, लृ तथा लॄ क्रमशः उनके दाहिने तथा बायें—दोनों नासापुट, एकार ऊपरी ओष्ठ, ऐकार उन प्रभुका नीचेका ओष्ठ, ओकार तथा औकार क्रमशः ऊपर तथा नीचेकी दन्त-पंक्तियाँ, अं तथा अः उन धीमान् देवदेवके क्रमशः ऊपर तथा नीचेके तालु, ककार आदि पाँच अक्षर (क, ख, ग, घ, ङ) उनके दाहिनी ओरके पाँच हाथ, इसी प्रकार चकार आदि पाँच अक्षर बायीं ओरके पाँच हाथ, टकार आदि पाँच अक्षर दायाँ पैर, तकार आदि पाँच अक्षर बायाँ पैर, पकार उन परमेश्वरका उदर, फकार दाहिना पार्श्व, बकार बायाँ पार्श्व, भकार उनका स्कन्ध, मकार परम योगी महादेव शंकरका हृदय, यकारसे लेकर सकारपर्यन्त सात वर्ण (य, र, ल, व, श, ष, स) उन प्रभुके सातों धातु*, हकार उनकी आत्मा तथा क्षकार उनका क्रोध कहा गया है॥ ७३—८०१/२॥

* रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात शरीरस्थ धातुएँ हैं।

प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः।
ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम्॥ ८२

शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्।
मेधाकरमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम्॥ ८३

गायत्रीप्रभवं मन्त्रं हरितं वश्यकारकम्।
चतुर्विंशति वर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम्॥ ८४

अथर्वमसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम्।
अभिचारिकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभाक्षरम्॥ ८५

यजुर्वेदसमायुक्तं पञ्चत्रिंशच्छुभाक्षरम्।
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शान्तिकं तथा॥ ८६

त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह लोहितम्।
सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारणम्॥ ८७

वर्णाः षडधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः॥ ८८

उमाके साथ उन भगवान् महेश्वरको देखकर पुनः उन्हें प्रणाम करके जब भगवान् विष्णुने ऊपरकी ओर देखा तब उन्हें ॐकारसे उत्पन्न, पाँच कलाओंसे युक्त, बुद्धिविवर्धक तथा सभी धर्म-अर्थको सिद्ध करनेवाला शुद्ध स्फटिक-तुल्य अत्यन्त शुभ्र तथा अड़तीस शुभ अक्षरोंवाला पवित्र मन्त्र (**ईशानः सर्वविद्यानाम्०**)[1] दृष्टिगोचर हुआ। साथ ही गायत्रीसे उत्पन्न, चार कलाओंवाला, चौबीस अक्षरोंसे युक्त तथा वश्यकारक हरित वर्ण अत्युत्तम मन्त्र (**तत्पुरुषाय विद्महे०**)[2]; अथर्ववेदसे उत्पन्न आठ कलाओंसे युक्त तैंतीस शुभ अक्षरोंवाला कृष्णवर्ण तथा अत्यन्त अभिचारिक अघोर-मन्त्र (**अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य०**)[3]; यजुर्वेदसे प्रादुर्भूत, आठ कलाओंवाला, श्वेतवर्णवाला, शान्तिकारक पैंतीस अक्षरोंसे युक्त पवित्र सद्योजात मन्त्र (**सद्योजातं प्रपद्यामि०**)[4] एवं सामवेदसे उत्पन्न, रक्तवर्ण, बाल आदि तेरह कलाओंसे युक्त, जगत्का आदि स्वरूप तथा वृद्धि-संहारका कारणरूप छाछठ अक्षरोंवाला उत्तम मन्त्र (**वामदेवाय नमो०**)[5] दृष्टिगत हुए। इन पाँचों मन्त्रोंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुने इनका जप करना आरम्भ कर दिया॥ ८१—८८॥

अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुःसामरूपिणम्।
ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्यं पुरातनम्॥ ८९

अघोरहृदयं हृद्यं वामगुह्यं सदाशिवम्।
सद्यः पादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम्॥ ९०

विश्वतः पादवदनं विश्वतोऽक्षिकरं शिवम्।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्॥ ९१

तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्वरदमीश्वरम्॥ ९२

तत्पश्चात् समस्त कलाओंकी कान्तिसे युक्त, ऋक्-यजुः-सामस्वरूप, ईशान मन्त्ररूप मुकुटवाले, तत्पुरुष मन्त्ररूप मुखवाले, अघोर मन्त्ररूप करुणामय हृदयवाले, वामदेव मन्त्र-रूप सदा कल्याणकर गुह्यस्थान-वाले तथा सद्योजात मन्त्ररूप चरणोंवाले, विशाल सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले, चारों ओर पैर-मुख-आँख धारण किये हुए, सृष्टि-पालन-संहारके कारणस्वरूप, पुरातन पुरुष महादेव ब्रह्माधिपति शिवको देखकर भगवान् विष्णु अभीष्ट स्तुतियोंसे उन वरदाता परमेश्वर ईशानका पुनः स्तवन करने लगे॥ ८९—९२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गोद्भव' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

---

१. ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ (नारायणोपनिषद्)
२. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ (नारायणोपनिषद्)
३. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ (नारायणोपनिषद्)
४. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमोनमः। भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ (नारायणोपनिषद्)
५. वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ (नारायणोपनिषद्)

अठारहवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति तथा उसका माहात्म्य

विष्णुरुवाच

एकाक्षराय रुद्राय अकारायात्मरूपिणे।
उकारायादिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः॥ १

भगवान् विष्णु बोले—अद्वितीय तथा नाशरहित प्रणवरूप रुद्रको नमस्कार है। अकाररूप परमात्मा तथा उकाररूप आदिदेव विद्यादेहको नमस्कार है॥ १॥

तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने।
सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय वै नमः॥ २

तीसरे मकाररूप परमात्मा शिव और सूर्य-अग्नि-चन्द्रवर्णवाले रुद्र तथा यजमानरूपवाले महादेवको नमस्कार है॥ २॥

अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः।
शिवाय शिवमन्त्राय सद्योजाताय वेधसे॥ ३

रुद्ररूप अग्निको तथा रुद्रोंके पतिको नमस्कार है। शिवको, शिवमन्त्रको, सद्योजात-रूप वेधाको नमस्कार है॥ ३॥

वामाय वामदेवाय वरदायामृताय ते।
अघोरायातिघोराय सद्योजाताय रंहसे॥ ४

सुन्दर वामदेवको, वरदाताको तथा अमृतरूप आप शिवको नमस्कार है। अघोरको, अतिघोरको तथा वेगरूप सद्योजातको नमस्कार है॥ ४॥

ईशानाय श्मशानाय अतिवेगाय वेगिने।
नमोऽस्तु श्रुतिपादाय ऊर्ध्वलिङ्गाय लिङ्गिने॥ ५

ईशानको, श्मशान (काशीक्षेत्र)-को, अतिवेगशालीको, वेगवान्‌को, श्रुतिपाद (वेदोंसे ज्ञेय)-को, ऊर्ध्व लिङ्गको तथा लिङ्गीको नमस्कार है॥ ५॥

हेमलिङ्गाय हेमाय वारिलिङ्गाय चाम्भसे।
शिवाय शिवलिङ्गाय व्यापिने व्योमव्यापिने॥ ६

हेमलिङ्गको, हेमको, जललिङ्गको, जलको, शिवको, शिवलिङ्गको, व्यापीको तथा व्योममें व्याप्त रहनेवाले रुद्रको नमस्कार है॥ ६॥

वायवे वायुवेगाय नमस्ते वायुव्यापिने।
तेजसे तेजसां भर्त्रे नमस्तेजोऽधिव्यापिने॥ ७

वायुको, वायुवेगको तथा वायुव्यापीको नमस्कार है। तेजोंके भी तेज तथा तेजको पूर्णतः व्याप्त करनेवाले भरणकर्ता आप रुद्रको नमस्कार है॥ ७॥

जलाय जलभूताय नमस्ते जलव्यापिने।
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय पृथिवीव्यापिने नमः॥ ८

जलको, जलभूत तथा जलमें व्याप्त रहनेवाले आप शिवको नमस्कार है। पृथ्वीको, अन्तरिक्षको तथा पृथ्वीमें व्याप्त रहनेवाले महेश्वरको नमस्कार है॥ ८॥

शब्दस्पर्शस्वरूपाय रसगन्धाय गन्धिने।
गणाधिपतये तुभ्यं गुह्याद् गुह्यतमाय ते॥ ९

शब्द तथा स्पर्शस्वरूपको, रस तथा गन्धस्वरूपको, गन्धीको, गणोंके अधिपतिको तथा गुह्यसे भी गुह्यतम आप रुद्रको नमस्कार है॥ ९॥

अनन्ताय विरूपाय अनन्तानामयाय च।
शाश्वताय वरिष्ठाय वारिगर्भाय योगिने॥ १०

शेषरूप अनन्तको, गरुड़रूप विरूपको, रोग-विकारशून्य अनन्त शिवको, शाश्वत, वरिष्ठ, वारिगर्भको तथा महायोगी महेश्वरको नमस्कार है॥ १०॥

संस्थितायाम्भसां मध्ये आवयोर्मध्यवर्चसे।
गोप्त्रे हर्त्रे सदा कर्त्रे निधनायेश्वराय च॥ ११

जलके मध्य स्थित रहनेवाले, हम दोनों (विष्णु तथा ब्रह्मा)-के मध्य प्रकाशमान, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता,

अचेतनाय चिन्त्याय चेतनायासहारिणे।
अरूपाय सुरूपाय अनङ्गायाङ्गहारिणे॥ १२
भस्मदिग्धशरीराय भानुसोमाग्निहेतवे।
श्वेताय श्वेतवर्णाय तुहिनाद्रिचराय च॥ १३
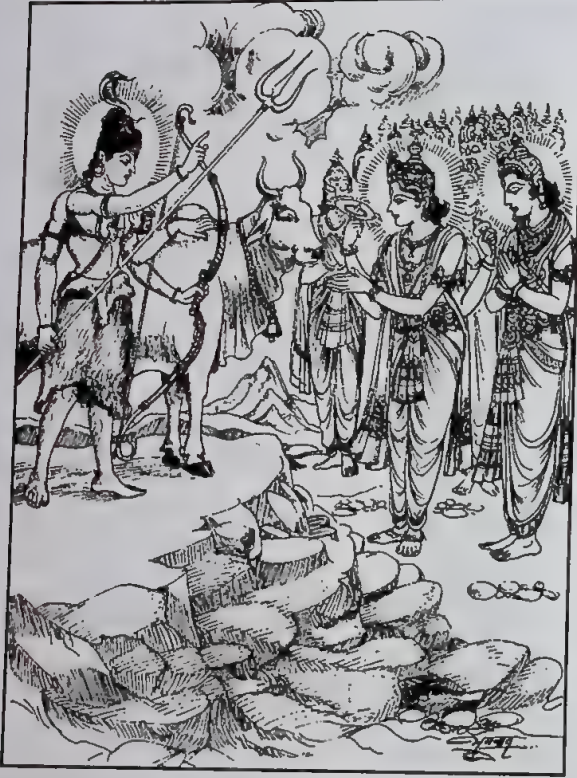
सुश्वेताय सुवक्त्राय नमः श्वेतशिखाय च।
श्वेतास्याय महास्याय नमस्ते श्वेतलोहित॥ १४
सुताराय विशिष्टाय नमो दुन्दुभिने हर।
शतरूपविरूपाय नमः केतुमते सदा॥ १५
ऋद्धिशोकविशोकाय पिनाकाय कपर्दिने।
विपाशाय सुपाशाय नमस्ते पाशनाशिने॥ १६
सुहोत्राय हविष्याय सुब्रह्मण्याय सूरिणे।
सुमुखाय सुवक्त्राय दुर्दमाय दमाय च॥ १७
कङ्काय कङ्करूपाय कङ्कणीकृतपन्नग।
सनकाय नमस्तुभ्यं सनातन सनन्दन॥ १८
सनत्कुमार सारङ्गमारणाय महात्मने।
लोकाक्षिणे त्रिधामाय नमो विरजसे सदा॥ १९
शङ्खपालाय शङ्खाय रजसे तमसे नमः।
सारस्वताय मेघाय मेघवाहन ते नमः॥ २०
सुवाहाय विवाहाय विवादवरदाय च।
नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमो नमः॥ २१
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहात्मने नमः।
संसाराय नमस्तुभ्यं नमः संसारहेतवे॥ २२

संहारकर्ता तथा मृत्युस्वरूप ईश्वरको नमस्कार है॥ ११॥

चित्तजन्य ज्ञानसे रहित, चिन्तनके योग्य, जीवोंके जन्म-मरणरूप कष्टोंका हरण करनेवाले, रूपरहित तथा सुन्दर रूपवाले, अंगोंसे रहित कामदेवरूप तथा अंगोंका नाश करनेवाले रुद्रको नमस्कार है॥ १२॥

भस्मसे भूषित शरीरवाले, सूर्य-चन्द्र-अग्निके कारणरूप, श्वेतरूप, श्वेत वर्णवाले, हिमाद्रिपर विचरण करनेवाले, अति श्वेतरूपसम्पन्न, सुन्दर वक्त्रवाले तथा श्वेत शिखाधारी, श्वेत मुखवाले, महान् मुखवाले हे श्वेतलोहित! आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

सुन्दर कान्तिवाले, विशिष्टतासम्पन्न तथा दुन्दुभि धारण करनेवाले, सैकड़ों रूपोंवाले, विशिष्ट रूपवाले तथा केतुमान् हे हर! आपको सर्वदा नमस्कार है॥ १५॥

ऋद्धि-शोक-विशोकस्वरूप, पिनाक धारण करनेवाले, जटाजूट धारण करनेवाले, बन्धनमुक्त, सुन्दर पाश धारण करनेवाले तथा पाशहर आप रुद्रको नमस्कार है॥ १६॥

हे भुजंगरूप कंकण (कंगन) धारण करनेवाले! आप श्रेष्ठ यजनकर्ता, हविष्यरूप, सुब्रह्मण्य, महाविद्या-सम्पन्न, सुन्दर मुखवाले, शुभ वक्त्रवाले, दुर्दमनीय, दमन करनेवाले, कंक (कपटद्विजरूप), कंकरूप (यम-स्वरूप)-को नमस्कार है। आप सनकको नमस्कार है। हे सनातनरूप! हे सनन्दनरूप! हे सनत्कुमाररूप! पशु-पक्षियोंको मारनेके लिये किरातरूप! महात्मा, संसारके नेत्ररूप, तीन धामोंवाले तथा आप विरजको सदा नमस्कार है॥ १७—१९॥

शंखपाल, शंखरूप, रज तथा तम गुणोंसे युक्त शिवको नमस्कार है। हे मेघवाहन! आप मेघरूप तथा सारस्वतको नमस्कार है॥ २०॥

भलीभाँति सबको वहन करनेवाले, विशिष्ट वाहनवाले, वाद (तर्क-वितर्क)-से रहित भक्तोंको वर देनेवाले, प्रधानरूप, कल्याणप्रद रुद्रको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २१॥

तीन गुणोंवाले आपको नमस्कार है। चतुर्व्यूहरूप आपको नमस्कार है। संसारस्वरूप तथा संसारके कारण-रूप आपको बार-बार नमस्कार है॥ २२॥

मोक्षाय मोक्षरूपाय मोक्षकर्त्रे नमो नमः।
आत्मने ऋषये तुभ्यं स्वामिने विष्णवे नमः॥ २३

नमो भगवते तुभ्यं नागानां पतये नमः।
ओङ्काराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः॥ २४

सर्वाय च नमस्तुभ्यं नमो नारायणाय च।
नमो हिरण्यगर्भाय आदिदेवाय ते नमः॥ २५

नमोस्त्वजाय पतये प्रजानां व्यूहहेतवे।
महादेवाय देवानामीश्वराय नमो नमः॥ २६

शर्वाय च नमस्तुभ्यं सत्याय शमनाय च।
ब्रह्मणे चैव भूतानां सर्वज्ञाय नमो नमः॥ २७

महात्मने नमस्तुभ्यं प्रज्ञारूपाय वै नमः।
चितये चितिरूपाय स्मृतिरूपाय वै नमः॥ २८

ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमस्ते संविदे सदा।
शिखराय नमस्तुभ्यं नीलकण्ठाय वै नमः॥ २९

अर्धनारीशरीराय अव्यक्ताय नमो नमः।
एकादशविभेदाय स्थाणवे ते नमः सदा॥ ३०

नमः सोमाय सूर्याय भवाय भवहारिणे।
यशस्कराय देवाय शङ्करायेश्वराय च॥ ३१

नमोऽम्बिकाधिपतये उमायाः पतये नमः।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं नमस्ते हेमरेतसे॥ ३२

नीलकेशाय वित्ताय शितिकण्ठाय वै नमः।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं नागाङ्गाभरणाय च॥ ३३

वृषारूढाय सर्वस्य हर्त्रे कर्त्रे नमो नमः।
वीररामातिरामाय रामनाथाय ते विभो॥ ३४

नमो राजाधिराजाय राज्ञामधिगताय ते।
नमः पालाधिपतये पालाशाकृन्तते नमः॥ ३५

मोक्ष, मोक्षरूप तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आत्मास्वरूप, ऋषि, स्वामी तथा व्यापक शिवको नमस्कार है॥ २३॥

आप भगवान्‌को नमस्कार है। आप सर्पोंके पतिको नमस्कार है। आप ओंकारको नमस्कार है। सर्वज्ञको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

आप सर्व (पूर्णस्वरूप)-को नमस्कार है और नारायणको नमस्कार है। हिरण्यगर्भको नमस्कार है। आप आदिदेवको नमस्कार है॥ २५॥

अज, प्रजापति, व्यूहहेतु, महादेव तथा देवताओंके ईश्वरको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २६॥

आप शर्वको नमस्कार है। सत्यरूप, शान्तिरूप, ब्रह्मस्वरूप तथा सर्वज्ञाताको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २७॥

आप महात्माको नमस्कार है। आप प्रज्ञारूपको नमस्कार है। चिति, चितिरूप तथा स्मृतिरूप आपको नमस्कार है॥ २८॥

आप ज्ञानरूप, ज्ञानगम्य तथा चैतन्यरूपको सर्वदा नमस्कार है। आप शिखरको नमस्कार है तथा नीलकण्ठको नमस्कार है॥ २९॥

अर्धनारीका शरीर धारण करनेवाले तथा अव्यक्तको बार-बार नमस्कार है। ग्यारह रूपोंमें परिवर्तित होनेवाले आप स्थाणुको सदा नमस्कार है॥ ३०॥

सोम, सूर्य, भव, भवहारी, यशस्कर, देव, शंकर तथा ईश्वरको नमस्कार है॥ ३१॥

पार्वतीपतिको नमस्कार है। उमापतिको नमस्कार है। आप हिरण्यबाहु तथा सुवर्णवीर्यको नमस्कार है॥ ३२॥

नीलकेश, वित्त तथा शितिकण्ठको नमस्कार है। कपर्दी (जटाजूट धारण करनेवाले) तथा अंगोंके आभूषण-रूपमें सर्पोंको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३३॥

वृषारूढ़ (बैलपर सवार होनेवाले) तथा सभीके कर्ता और हर्ताको बार-बार नमस्कार है। हे विभो! आप वीरराम, अतिराम तथा रामनाथको नमस्कार है॥ ३४॥

राजाओंके भी अधिराज तथा राजाओंके द्वारा प्राप्त

नमः केयूरभूषाय गोपते ते नमो नमः।
नमः श्रीकण्ठनाथाय नमो लिकुचपाणये॥ ३६

किये जानेयोग्य आपको नमस्कार है। पालाशाकृन्त एवं पालाधिपतिको नमस्कार है॥ ३५॥

आभूषणके रूपमें सर्पका बाजूबन्द धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है। हे गोपते! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। श्रीकंठनाथको नमस्कार है। श्रीदण्डपाणिको नमस्कार है॥ ३६॥

भुवनेशाय देवाय वेदशास्त्र नमोऽस्तु ते।
सारङ्गाय नमस्तुभ्यं राजहंसाय ते नमः॥ ३७

हे वेदशास्त्ररूप! आप भुवनेशदेवको नमस्कार है। आप सारंग तथा राजहंसको नमस्कार है॥ ३७॥

कनकाङ्गदहाराय नमः सर्पोपवीतिने।
सर्पकुण्डलमालाय कटिसूत्रीकृताहिने॥ ३८

वेदगर्भाय गर्भाय विश्वगर्भाय ते शिव।

धतूरेका बाजूबन्द तथा हार धारण करनेवाले एवं सर्पका जनेऊ धारण करनेवाले, सर्पोंका कुण्डल तथा माला पहननेवाले, सर्पका कटिसूत्र (करधनी) धारण करनेवाले, वेदगर्भ, गर्भरूप तथा विश्वगर्भ हे शिव! आपको नमस्कार है॥ ३८$^{1}/_{2}$॥

ब्रह्मोवाच

विररामेति संस्तुत्वा ब्रह्मणा सहितो हरिः॥ ३९

एतत्स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्छ्रावयेद्वापि ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥ ४०

स याति ब्रह्मणो लोके पापकर्मरतोऽपि वै।
तस्माज्जपेत्पठेन्नित्यं श्रावयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान्॥ ४१

सर्वपापविशुद्ध्यर्थं विष्णुना परिभाषितम्॥ ४२

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार [मुझ] ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान् स्तुति करके शान्त हो गये। पुण्य प्रदान करनेवाले तथा सभी पापोंका नाश करनेवाले इस उत्तम स्तोत्रका जो प्राणी पाठ करता है अथवा इसे वेदके पारगामी ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह पापकर्ममें लिप्त रहनेपर भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। अतएव सभी पापोंकी शुद्धिहेतु मनुष्यको विष्णुद्वारा कहे गये इस स्तोत्रका नित्य जप करना चाहिये, पाठ करना चाहिये तथा इसे धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको सुनाना चाहिये॥ ३९—४२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुस्तवो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विष्णुस्तव' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

महादेवजीद्वारा ब्रह्मा एवं विष्णुको वर प्रदान करना तथा उमामहेश्वर-पूजनके रूपमें लिङ्गपूजनकी परम्पराका प्रारम्भ

सूत उवाच

अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्यतां मां महादेवं भयं सर्वं विमुच्यताम्॥ १

सूतजी बोले—तदनन्तर महादेवजीने कहा—हे श्रेष्ठ देवद्वय (ब्रह्मा, विष्णु)! मैं आप दोनोंपर प्रसन्न हूँ। मुझ महादेवका दर्शन करो और सभी प्रकारके भयका त्याग कर दो॥ १॥

युवां प्रसूतौ गात्राभ्यां मम पूर्वं महाबलौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २

आप दोनों महाबली देवता पूर्वकालमें मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए थे। सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ये ब्रह्मा मेरे दक्षिण (दायें) अंगसे तथा विश्वात्मा और हृदयोद्भव

वामे पार्श्वे च मे विष्णुर्विश्वात्मा हृदयोद्भवः।
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम्॥ ३

ये विष्णु मेरे बायें अंगसे उत्पन्न हुए हैं। मैं आप दोनोंपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अतएव यथेच्छ वर माँगो; मैं उसे अभी दूँगा॥ २-३॥

एवमुक्त्वा तु तं विष्णुं कराभ्यां परमेश्वरः।
पस्पर्श सुभगाभ्यां तु कृपया तु कृपानिधिः॥ ४

इतना कहकर कृपानिधि परमेश्वर महादेवने अपने दोनों सुन्दर हाथोंसे प्रीतिपूर्वक उन विष्णुका स्पर्श किया॥ ४॥

ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य महेश्वरम्।
प्राह नारायणो नाथं लिङ्गस्थं लिङ्गवर्जितम्॥ ५

तब लिङ्गमें विराजित तथा लिङ्गदेहशून्य स्वेच्छासे विग्रह धारण करनेवाले महेश्वरको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे नारायण विष्णुने कहा॥ ५॥

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी॥ ६

यदि आपके हृदयमें हमारे प्रति प्रीति-भाव उत्पन्न हुआ है और यदि हमें वरदान देना चाहते हैं, तो यही वर दीजिये कि आपके प्रति हम दोनोंकी सदा दृढ़ भक्ति बनी रहे॥ ६॥

देवः प्रदत्तवान् देवाः स्वात्मन्यव्यभिचारिणीम्।
ब्रह्मणे विष्णवे चैव श्रद्धां शीतांशुभूषणः॥ ७

हे देवताओ! चन्द्रमाको आभूषणस्वरूप धारण करनेवाले महादेवने ब्रह्मा तथा विष्णुको अपनी अचल श्रद्धा-भक्ति प्रदान की॥ ७॥

जानुभ्यामवनीं गत्वा पुनर्नारायणः स्वयम्।
प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मन्दतरं वशी॥ ८

पुनः जमीनपर घुटना टेककर प्रणाम करते हुए इन्द्रियजित् नारायण विष्णुने साक्षात् विश्वेश्वर महादेवसे अत्यन्त मधुरतासे कहा॥ ८॥

आवयोर्देवदेवेश विवादमतिशोभनम्।
इहागतो भवान् यस्माद्विवादशमनाय नौ॥ ९

हे देवदेवेश! हम दोनोंका यह विवाद तो अत्यन्त मङ्गलकारी सिद्ध हुआ; क्योंकि हम दोनोंके इसी विवादको समाप्त करनेके निमित्त आप यहाँ प्रकट हुए हैं॥ ९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम्।
प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृताञ्जलिपुटं स्मयन्॥ १०

उनका यह वचन सुनकर भगवान् शम्भुने दोनों हाथ जोड़े तथा सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए वहाँ स्थित विष्णुसे मुसकराकर पुनः कहा॥ १०॥

श्रीमहादेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विष्णो पालयैतच्चराचरम्॥ ११

श्रीमहादेवजी बोले—हे पृथ्वीपते! उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारके कर्ता आप हैं। हे वत्स! हे वत्स! हे हरे! हे विष्णो! आप इस चराचर जगत्का पालन कीजिये॥ ११॥

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥ १२

हे विष्णो! मैं निष्कल परमेश्वर ही ब्रह्मा, विष्णु तथा भव (रुद्र) नामोंसे अलग-अलग तीन प्रकारके रूपोंमें सृजन, पालन तथा संहारके गुणोंसे युक्त हूँ॥ १२॥

सम्मोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्।
पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः॥ १३

हे विष्णो! आप मोहका त्याग करें और इन पितामहका पालन करें। ये पितामह पाद्म कल्पमें आपके पुत्र होंगे। उस समय आप तथा आपके पुत्ररूप वे कमलोद्भव ब्रह्मा—दोनों लोग मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे।

तदा द्रक्ष्यसि मां चैवं सोऽपि द्रक्ष्यति पद्मजः।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १४

तदाप्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः॥ १५

ऐसा कहकर वे भगवान् महादेव वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १३-१४॥

उसी समयसे लोकोंमें शिवलिङ्गके पूजनकी प्रसिद्धि व्याप्त हो गयी। लिङ्गवेदीके रूपमें महादेवी पार्वती तथा लिङ्गरूपमें साक्षात् महेश्वर प्रतिष्ठित रहते हैं॥ १५॥

लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः।
यस्तु लैङ्गं पठेन्नित्यमाख्यानं लिङ्गसन्निधौ॥ १६

स याति शिवतां विप्रो नात्र कार्या विचारणा॥ १७

हे देवताओ! समग्र जगत्को अपनेमें लय करनेके कारण यह लिङ्ग कहा गया है। जो विप्र शिवलिङ्गके समक्ष लिङ्ग-आख्यानका प्रतिदिन पाठ करता है, वह शिवत्वको प्राप्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १६-१७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुप्रबोधो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विष्णुप्रबोध' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

शेषशय्यापर आसीन भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव, भगवान् शिवकी मायासे दोनोंका विमोहित होना, विष्णुद्वारा ब्रह्माके प्रति शिवमाहात्म्यका कथन

ऋषय ऊचुः

कथं पाद्मे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत्।
भवं च दृष्टवांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः॥ १
एतत्सर्वं विशेषेण साम्प्रतं वक्तुमर्हसि।

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] प्राचीनकालमें पाद्म कल्पमें ब्रह्माजी कमलसे किस प्रकार जायमान हुए और पुरुषोत्तम विष्णुने उन ब्रह्माके साथ शिवका दर्शन कैसे किया? कृपया अब इन सब वृत्तान्तोंका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें॥ १ $^{1}/_{2}$॥

सूत उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्॥ २
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः।
जीमूताम्भोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः॥ ३
नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते॥ ४
किमप्यचिन्त्यं योगात्मा योगमास्थाय योगवित्।
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम्॥ ५
महाभोगपतेर्भोगं साध्वास्तीर्य महोच्छ्रयम्।
तस्मिन् महति पर्यङ्के शेते चैकार्णवे प्रभुः॥ ६

सूतजी बोले—प्रलयके समय चारों ओर जल-ही-जल तथा घोर, घनीभूत अन्धकार व्याप्त था। उस प्रलयसागरके मध्य शंख-चक्र-गदा धारण किये, नील मेघके सदृश वर्णवाले, कमलके समान नेत्रवाले, मुकुट धारण किये, आठ भुजाओंवाले, विशाल वक्षःस्थलवाले, लोकोंकी योनि कहे जानेवाले, सभी जीवात्माएँ जिनके मुखसे निकली हैं—ऐसे योगात्मा तथा योगवित् सर्वात्मा नारायण पुरुषोत्तम लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु किसी अनिर्वचनीय योगमें स्थित होकर, हजार फणोंसे सुशोभित शेषनागके अप्रतिम ओजसम्पन्न, अति उन्नत तथा छायायुक्त फणरूप शय्याको भलीभाँति बिछाकर प्रलय-सागर-स्थित उस महान् पर्यंक (शेषशय्या)-पर शयन कर रहे थे॥ २—६॥

एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्लिष्टकर्मणा॥ ७

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम्।
वज्रदण्डं महोत्सेधं नाभ्यां सृष्टं तु पुष्करम्॥ ८

तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः।
हेमगर्भाण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः॥ ९

चतुर्वक्त्रो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया।
श्रिया युक्तेन दिव्येन सुशुभेन सुगन्धिना॥ १०

क्रीडमानं च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम्।
सविस्मयमथागम्य सौम्यसम्पन्नया गिरा॥ ११

प्रोवाच को भवाञ्छेते ह्याश्रितो मध्यमम्भसाम्।
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः॥ १२

उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
प्रत्युवाचोत्तरं चैव कल्पे कल्पे प्रतिश्रयः॥ १३

कर्तव्यं च कृतं चैव क्रियते यच्च किञ्चन।
द्यौरन्तरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं भुवः॥ १४

तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत्।
कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान् कुतः॥ १५

क्व वा भूयश्च गन्तव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः।
को भवान् विश्वमूर्तिर्वै कर्तव्यं किं च ते मया॥ १६

एवं ब्रुवन्तं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः।
मायया मोहितः शम्भोरविज्ञाय जनार्दनम्॥ १७

मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः।
यथा भवांस्तथैवाहमादिकर्ता प्रजापतिः॥ १८

सविस्मयं वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः।
अनुज्ञातश्च ते नाथ वैकुण्ठो विश्वसम्भवः॥ १९

कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम्।
इमानष्टादश द्वीपान् ससमुद्रान् सपर्वतान्॥ २०

प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान्।
ब्रह्मणस्तम्बपर्यन्तं सप्तलोकान् सनातनान्॥ २१

इस प्रकार वहाँ शयन कर रहे गूढ़ रहस्योंवाले सर्वव्यापी आत्माराम विष्णुने अपनी क्रीड़ाके निमित्त अत्यन्त ऊँचे वज्रदण्डसे युक्त एक कमल, जो शतयोजन विस्तीर्ण तथा प्रखर सूर्यके समान था, अपनी नाभिसे लीलापूर्वक उत्पन्न किया॥ ७-८॥

कमलके साथ क्रीड़ारत उन देवश्रेष्ठ विष्णुके पास आकर हिरण्यगर्भ, अण्डज, सोनेके वर्णवाले, अतीन्द्रिय, चार मुखवाले तथा विशाल नेत्रोंवाले ब्रह्माने शोभासम्पन्न, दिव्य, सुन्दर तथा सुगन्धित कमलके साथ सुन्दर नयनोंवाले विष्णुको खेलते हुए देखा। तत्पश्चात् उनके सन्निकट पहुँचकर ब्रह्माजीने विस्मयपूर्ण भावसे विनम्रतायुक्त वाणीमें उनसे पूछा—आप कौन हैं और इस समुद्रके मध्य आश्रय लेकर क्यों सो रहे हैं?॥ ९—११½॥

उन ब्रह्माका यह सुखद वचन सुनकर विष्णुजी पर्यंकसे उठकर बैठ गये और नेत्रोंमें प्रसन्नता भरकर उनके उत्तरमें कहने लगे कि मैं प्रत्येक कल्पमें इसी स्थानका आश्रय लेकर शयन करता हूँ॥ १२-१३॥

जो कुछ भी किया जाना है, किया गया है और किया जा रहा है तथा स्वर्गलोक, आकाश, पृथ्वी एवं भुवर्लोक—इन सबका परम पद मैं ही हूँ॥ १४॥

उनसे इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुने पुनः उनसे पूछा—ऐश्वर्यसम्पन्न आप कौन हैं तथा मेरे पास कहाँसे आये हैं? आप पुनः कहाँ जायँगे तथा आपका निवासस्थान कहाँ है? विश्वमूर्तिस्वरूप आप कौन हैं तथा मैं आपके लिये क्या करूँ?॥ १५-१६॥

विष्णुके ऐसा कहनेपर महात्मा शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण भगवान् जनार्दनको पहचाने बिना पितामह ब्रह्मा उन्हीं शिवकी मायासे मोहको प्राप्त अविज्ञात विष्णुदेवसे कहने लगे, जिस प्रकार आप इस जगत्के आदिकर्ता तथा प्रजापति हैं, वैसे ही मैं भी हूँ॥ १७-१८॥

जगत्के रचयिता ब्रह्माजीका यह विस्मयकारी वचन सुनकर और उनकी आज्ञा लेकर विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले योगी महायोगी विष्णुभगवान् कौतूहलवश ब्रह्माके मुखमें प्रविष्ट हो गये॥ १९½॥

ब्रह्माजीके उदरमें प्रवेश करके वहाँपर अठारह द्वीपों, सभी समुद्रों, समस्त पर्वतों, ब्राह्मण आदि चार वर्णोंके जनसमूहों, सनातन सात लोकों तथा ब्रह्मासे

ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान् विष्णुर्महाभुजः।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा च पुनः पुनः॥ २२
अटित्वा विविधाँल्लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रयान्।
ततो वर्षसहस्रान्ते नान्तं हि ददृशे यदा॥ २३
तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः।
नारायणो जगद्धाता पितामहमथाब्रवीत्॥ २४
भगवानादिरन्तश्च मध्यं कालो दिशो नभः।
नाहमन्तं प्रपश्यामि उदरस्य तवानघ॥ २५
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः।
भगवानेवमेवाहं शाश्वतं हि ममोदरम्॥ २६
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् सुरोत्तम।
ततः प्राह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च॥ २७
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः।
तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः।
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः॥ २८
ज्ञात्वा गतिं तस्य पितामहस्य
द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः।
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाशु
सुखं प्रसुप्तोऽहमिति प्रचिन्त्य॥ २९
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समीक्ष्य वै।
सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत॥ ३०
पद्मसूत्रानुसारेण चान्वपश्यत्पितामहः।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥ ३१

विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः॥ ३२

लेकर तृणपर्यन्त सभी स्थावर-जंगम पदार्थ देखकर महाभुज महातेजस्वी विष्णुभगवान् अत्यन्त विस्मित हुए। 'अहो! इनकी तपस्याका ऐसा प्रभाव'—ऐसा बार-बार कहते हुए विष्णुभगवान् उदरके अन्दर विविध लोकों तथा अनेक स्थानोंपर हजार वर्षोंतक भ्रमण करते रहे, किंतु जब उसका अन्त नहीं पा सके, तब वे शेषशायी जगदाधार नारायण उन ब्रह्माके मुखमार्गसे बाहर निकलकर उनसे कहने लगे॥ २०—२४॥

हे अनघ! आप भगवान् हैं। आप आदि, अन्त, मध्य, काल, दिशा, आकाश आदिसे युक्त हैं। मैं आपके उदरका अन्त नहीं देख पाया॥ २५॥

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे पुनः यह कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं भी इसी तरह भगवान् हूँ। अब आप भी मेरे शाश्वत उदरमें प्रवेश करके इन्हीं अनुपम लोकोंका दर्शन करें॥ २६½॥

लक्ष्मीकान्त विष्णुकी यह आह्लादकारिणी वाणी सुनकर उन्हें प्रसन्न करते हुए ब्रह्माजी उनके उदरमें प्रविष्ट हुए॥ २७½॥

सत्य पराक्रमवाले ब्रह्माजीने विष्णुके उदरमें स्थित उन्हीं सब लोकोंको देखा और उसमें बहुत भ्रमण करनेके उपरान्त भी विष्णुदेवके उदरका अन्त नहीं पा सके॥ २८॥

सभी इन्द्रियद्वारोंको निरुद्ध करके मैं सुखपूर्वक सो लिया—ऐसा सोचकर और ब्रह्माजीकी गतिको जानकर सर्वव्यापक विष्णुजीने शीघ्र ही उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा की॥ २९॥

तत्पश्चात् सभी द्वारोंको बन्द देखकर पितामहने अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करके नाभिमें मार्ग पाया तथा पद्मसूत्र (कमलनाल)-के सहारे पुष्कर (कमल)-से स्वयंको बाहर निकाला, तदनन्तर पद्मगर्भके समान कान्तिवाले जगद्योनि स्वयम्भू पितामह भगवान् ब्रह्मा कमलके ऊपर शोभित हुए॥ ३०—३२॥

एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कृत्स्नशः।
वर्तमाने तु सङ्घर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु॥ ३३

कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः।
शूलपाणिर्महादेवो हेमवीराम्बरच्छदः॥ ३४

अगच्छद्यत्र सोऽनन्तो नागभोगपतिर्हरिः।
शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामाक्रान्तपीडिताः॥ ३५

उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः।
अत्युष्णश्चातिशीतश्च वायुस्तत्र ववौ पुनः॥ ३६

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत।
अब्बिन्दवश्च शीतोष्णाः कम्पयन्त्यम्बुजं भृशम्॥ ३७

एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि।
एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्गतम्॥ ३८

श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरान्तकृत्।
किं नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम्॥ ३९

वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चास्य मया कृतः।
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम्॥ ४०

किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसम्भ्रमः।
किं मया च कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम्॥ ४१

भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः।
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगं ततः॥ ४२

प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः।
योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया॥ ४३

यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो।
तथैव दृष्टाः कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे॥ ४४

उस समुद्रके मध्य ब्रह्मा और विष्णुमें अनेक प्रकारसे संघर्ष चल रहा था, उसी समय श्रेष्ठ स्वर्णके समान वस्त्रको धारण करनेवाले, अमेय आत्मावाले, जीवोंके स्वामी शूलपाणि महादेव कहींसे वहाँपर पहुँच गये, जहाँ वे शेषशायी अनन्त विष्णुभगवान् थे॥ ३३-३४१/२॥

उनके शीघ्रतापूर्वक चलनेसे चरणोंके प्रहारसे संपीडित होकर समुद्र-जलकी बड़ी-बड़ी बूँदें आकाशतक पहुँचने लगीं और वहाँ कभी अत्यन्त गर्म तथा कभी अत्यन्त शीतल वायु बहने लगी॥ ३५-३६॥

उस महान् आश्चर्यको देखकर ब्रह्माने विष्णुसे कहा कि ये शीतल एवं उष्ण जलकी बूँदें इस कमलको अत्यधिक कम्पायमान कर रही हैं। इस विषयमें मेरी शंकाका समाधान कीजिये अथवा आप कुछ और करना तो नहीं चाहते?॥ ३७१/२॥

ब्रह्माके मुखसे निर्गत इस प्रकारकी बात सुनकर अप्रतिम कर्मवाले असुरसंहारक भगवान् विष्णु सोचने लगे कि मेरी नाभिमें इस कौन-से जीवने अपना स्थान बना लिया है, जो इस तरह प्रेमपूर्वक मधुर-मधुर बोल रहा है; तथा मैंने इसके प्रति कहीं क्रोध किया है—ऐसा मनमें ध्यान करके विष्णुभगवान् यह उत्तर देने लगे॥ ३८—४०॥

आप भगवान् हैं और आपको यहाँ कमलके विषयमें व्याकुलता क्यों हो रही है? हे देव! मैंने कौन-सा श्रेष्ठ कार्य किया है, जो आप मुझसे प्रेमपूर्वक बोल रहे हैं? हे पुरुषश्रेष्ठ! इसका कारण मुझे यथार्थ रूपसे बताइये॥ ४११/२॥

लोकयात्राका अनुवर्तन करनेवाले तथा कमलकी आभाके समान नेत्रवाले देवेश्वर विष्णुके इस प्रकार बोलनेपर वेदनिधि प्रभु ब्रह्माने उनसे कहा॥ ४२१/२॥

यह मैं आपकी ही इच्छासे पूर्वकालमें आपके उदरमें प्रविष्ट हुआ था। हे प्रभो! जिस प्रकार प्रथम मेरे उदरमें प्रवेश करके आपने सभी लोकोंको देखा था, उसी प्रकार मैंने भी आपके उदरमें उन सम्पूर्ण लोकोंका दर्शन किया है॥ ४३-४४॥

ततो वर्षसहस्रात्तु उपावृत्तस्य मेऽनघ।
त्वया मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता॥ ४५

आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समन्ततः।
ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन तेजसा॥ ४६

लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः।
मा भूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन॥ ४७

इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्पिणी।
यन्मयानन्तरं कार्यं ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥ ४८

ततः परममेयात्मा हिरण्यकशिपो रिपुः।
अनवद्यां प्रियामिष्टां शिवां वाणीं पितामहात्॥ ४९

श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः।
न ह्येवमीदृशं कार्यं मयाध्यवसितं तव॥ ५०

त्वां बोधयितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया।
आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मयात्मनः॥ ५१

न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान्।
सर्वं मर्षय कल्याण यन्मयापकृतं तव॥ ५२

अस्मान् मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो।
नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम्॥ ५३

स होवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो।
पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम्॥ ५४

सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो।
स त्वं च नो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः॥ ५५

अद्यप्रभृति सर्वेशः श्वेतोष्णीषविभूषितः।
पद्मयोनिरिति ह्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि॥ ५६

हे अनघ! वहाँ मैं हजार वर्षोंतक चक्कर लगाता रहा। इसके बाद ईर्ष्याभावसे युक्त होकर आपने मुझे वशमें करनेकी इच्छासे चारों ओरसे सभी इन्द्रियद्वार शीघ्रतापूर्वक बन्द कर लिये॥ ४५ १/२ ॥

तदनन्तर हे महाभाग! मैं अपने तेजके प्रभावसे विवेकपूर्वक अतिसूक्ष्मरूप धारणकर आपके नाभि-स्थलसे कमलनालके सहारे बाहर निकल आया। इसके लिये आपके मनमें थोड़ा भी विषाद नहीं होना चाहिये॥ ४६-४७॥

हे विष्णो! जो यह मेरा बाहर निकलना हुआ है, वह किसी विशेष कार्यके लिये है। अब आप मुझे यह बताइये कि मैं क्या करूँ?॥ ४८॥

तदनन्तर पितामह ब्रह्माकी प्रिय, मधुर, पवित्र तथा कल्याणमयी वाणी सुनकर हिरण्यकशिपुके शत्रु अप्रमेयात्मा भगवान् विष्णुने ईर्ष्यारहित होकर उनसे यह वचन कहा कि आपके नाभिकमलोद्भवरूप इस कार्यके लिये मैंने कोई प्रयास नहीं किया है॥ ४९-५०॥

आपको बोध करानेकी इच्छासे मैंने तो क्रीड़ापूर्वक दैवयोगसे यों ही अपने सभी दरवाजे शीघ्र बन्द कर लिये थे। इसे आप कुछ भी अन्यथा न समझें। हे कल्याणकारक! आप मेरे मान्य तथा पूज्य हैं, अतएव मैंने आपका जो भी अपकार किया है, वह सब आप क्षमा करें॥ ५१-५२॥

हे प्रभो! मेरे द्वारा वहन किये जाते हुए आप अब कमलसे उतर आइये; क्योंकि आपके अत्यन्त गुरुतर तथा तेजसम्पन्न होनेके कारण मैं आपका भार सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ ५३॥

तब ब्रह्माने कहा कि आप मुझसे वरदान माँगिये। इसपर विष्णु कहने लगे—हे प्रभो! आप कमलसे नीचे उतर आइये और यही वर दीजिये कि आप मेरे पुत्र बनेंगे। हे शत्रुदलन! इससे आपको भी अपार हर्ष प्राप्त होगा॥ ५४॥

हे प्रभो! आप सद्भावनापूर्ण वचन बोलिये और कमलसे नीचे उतर आइये। आप महायोगी तथा प्रणवरूप हैं। आप हमारे पूज्य हैं। आजसे आप सबके

पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सप्तलोकाधिपः प्रभो।
ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने॥ ५७

एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः।
प्रत्यासन्नमथायान्तं बालार्काभं महाननम्॥ ५८

भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत्।
अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री ध्वस्तशिरोरुहः॥ ५९

दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतः स्थितः।
लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली॥ ६०

मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नर्दमानोऽतिभैरवम्।
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः॥ ६१

व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्तते।
तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत्॥ ६२

पद्भ्यां तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे।
वेगेन महताकाशेऽप्युत्थिताश्च जलाशयाः॥ ६३

स्थूलाद्भिर्विश्वतोऽत्यर्थं सिच्यसे पद्मसम्भव।
घ्राणजेन च वातेन कम्प्यमानं त्वया सह॥ ६४

दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम्।
समागतो भवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृत्प्रभुः॥ ६५

भवानहं च स्तोत्रेण उपतिष्ठाव गोध्वजम्।
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्॥ ६६

भवान्न नूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुं विभुम्।
ब्रह्माणं लोककर्तारं मां न वेत्सि सनातनम्॥ ६७

को ह्यसौ शङ्करो नाम आवयोर्व्यतिरिच्यते।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा हरिरभाषत॥ ६८

मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः।
महायोगेन्धनो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः॥ ६९

स्वामी हैं तथा श्वेत पगड़ीसे सदा शोभायमान रहेंगे और इस प्रकार 'पद्मयोनि' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होंगे। हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! आप मेरे पुत्र तथा सात लोकोंके स्वामी हों॥ ५५-५६१/२॥

तत्पश्चात् किरीटधारी विष्णुसे 'ऐसा ही होगा' कहकर अर्थात् वर देकर ब्रह्माजी प्रसन्नतायुक्त तथा द्वेषरहित हो गये। इसके बाद पितामहने उदीयमान सूर्यकी आभाके समान विशाल मुखवाले तथा अत्यन्त अद्भुत रूपवाले शिवको अति समीप आते हुए देखकर भगवान् विष्णुसे कहा—॥ ५७-५८१/२॥

हे विष्णो! अप्रमेय, विशाल वक्त्रसम्पन्न, वाराहके समान दाढ़ोंवाला, फैले हुए केशोंवाला, दश भुजाओंवाला, त्रिशूलधारी, नेत्रोंसे हर जगह स्थित अर्थात् सर्वदर्शी, मुंजकी मेखला धारण किये, विकृत रूपवाला, उन्नत तथा विशाल मेढ्रवाला, अत्यन्त भयंकर ध्वनि करता हुआ साक्षात् लोक-प्रभुतुल्य, महान् कान्तिसम्पन्न तथा तेजपुंज-सा यह कौन प्राणी सभी दिशाओं तथा आकाशको व्याप्त करके इधर ही चला आ रहा है?॥ ५९—६११/२॥

ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—इस सागरमें चलनेके कारण जिनके दोनों पैरोंके आघातसे आकाशमें महान् वेगसे जलाशय उठ रहे हैं, सभी ओर उठी हुई विशाल जल-बूँदोंसे आप सिक्त हो चुके हैं, जिनकी नासिकासे निकली वायुसे आपके साथ कम्पायमान यह महापद्म—जो मेरी नाभिसे उत्पन्न है, स्वच्छन्दतापूर्वक दोलायमान हो रहा है, वे ही आदि-अन्तरहित पार्वतीनाथ प्रभु शिव आ रहे हैं। अब हम दोनों मिलकर स्तोत्रके द्वारा इन वृषध्वज महादेवकी प्रार्थना करें॥ ६२—६५१/२॥

तत्पश्चात् कमलकी आभाके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णुसे ब्रह्माजीने कुपित होकर कहा कि लोकोंके स्वामी तथा सर्वव्यापी स्वयं अपनेको एवं जगत्‌के कर्ता मुझ सनातन ब्रह्माको आप नहीं जानते। हम दोनोंसे बढ़कर यह शंकर नामवाला कौन है?॥ ६६-६७१/२॥

उन ब्रह्माका वह क्रोधयुक्त वचन सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे कल्याणकारक! महात्मा शिवके लिये

हेतुरस्याथ जगतः पुराणपुरुषोऽव्ययः।
बीजी खल्वेष बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते॥ ७०

बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम्।
प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः॥ ७१

मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।
यः कः स इति दुःखार्तैर्दृश्यते यतिभिः शिवः॥ ७२

एष बीजी भवान् बीजमहं योनिः सनातनः।
स एवमुक्तो विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत॥ ७३

भवान् योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः।
एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि॥ ७४

ज्ञात्वा च विविधोत्पत्तिं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः।
इमं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः॥ ७५

अस्मान्महत्तरं भूतं गुह्यमन्यन्न विद्यते।
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम्॥ ७६

द्विविधं चैवमात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः।
निष्कलस्तत्र योऽव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः॥ ७७

यस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च।
पुरा लिङ्गोद्भवं बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम्॥ ७८

मम योनौ समायुक्तं तद् बीजं कालपर्ययात्।
हिरण्मयमकूपारे योन्यामण्डमजायत॥ ७९

ऐसा निन्दित वचन मत बोलिये। ये महादेव साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, अत्यन्त प्रचण्ड हैं, महायोग प्रदीप्त करनेवाले तथा वर प्रदान करनेवाले हैं॥ ६८-६९॥

ये शिव ही इस जगत्के कारण हैं। ये प्राचीन पुरुष हैं, समस्त बीजों अर्थात् कारणोंके मूल बीज अर्थात् परम कारण हैं, निर्विकार हैं एवं एकमात्र ज्योतिके रूपमें जगत्को प्रकाशित कर रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे खिलौनोंसे खेलते हैं, उसी प्रकार ये महादेव स्वयं जगत्के साथ खेलते रहते हैं अर्थात् नानाविध लीलाएँ रचते रहते हैं॥ ७०१/२॥

प्रधान, अव्यय, योनि, अव्यक्त, प्रकृति, तम, नित्य आदि ये नाम मुझ प्रसवधर्मीके हैं और जिनके विषयमें आपने पूछा है कि ये कौन हैं, वे शिव जन्म-मरण आदि दुःखोंका भलीभाँति अनुभव करके वैराग्यको प्राप्त यतियोंद्वारा दृष्टिगत किये जाते हैं। ये शिव बीजवान् हैं, आप (ब्रह्मा) बीज हैं तथा सनातनरूप मैं (विष्णु) योनि हूँ॥ ७१-७२१/२॥

विष्णुके इस प्रकार कहनेपर विश्वात्मा ब्रह्माने उनसे पूछा—आप योनि, मैं बीज तथा महेश्वर शिव बीजी (बीजवान्) किस प्रकार हैं? आप मेरे इस सूक्ष्म तथा अव्यक्त संदेहका निवारण करनेकी कृपा करें॥ ७३-७४॥

अनेक प्रकारसे लोकतन्त्री ब्रह्माकी उत्पत्ति जानकर भगवान् विष्णुने उनके इस परम निगूढ़ प्रश्नका उत्तर दिया। इन महादेवसे बढ़कर अन्य कोई भी गूढ़ तत्त्व नहीं है। महत्तत्त्वका सर्वोत्कृष्ट स्थान अध्यात्मज्ञानियोंका कल्याणमय पद है॥ ७५-७६॥

उन्होंने अपनेको सगुण तथा निर्गुण—इन दो रूपोंमें विभाजित किया। उनमें जो निर्गुण हैं, वे अव्यक्तरूपमें तथा जो सगुण हैं, वे महेश्वररूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ ७७॥

प्राचीनकालमें सृष्टिके आदिमें मायाकी विधिको भी जाननेवाले, अगम्य तथा दुर्बोध उन्हीं महादेवके लिङ्गसे प्रादुर्भूत बीज सर्वप्रथम मेरी योनिमें गिरा। पुनः कालान्तरमें उस सागररूप योनिमें वह बीज स्वर्णके

शतानि दशवर्षाणामण्डमप्सु प्रतिष्ठितम्।
अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद् द्विधा कृतम्॥ ८०

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः।
उल्बं तस्य महोत्सेधो योऽसौ कनकपर्वतः॥ ८१

ततश्च प्रतिसन्ध्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः।
हिरण्यगर्भो भगवांस्त्वभिजज्ञे चतुर्मुखः॥ ८२

आतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च।
कोऽहमित्यपि च ध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा॥ ८३

प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजास्तव।
भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव॥ ८४

भुवनानलसङ्काशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः।
श्रीमान् सनत्कुमारश्च ऋभुश्चैवोर्ध्वरेतसौ॥ ८५

सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः।
उत्पन्नाः समकालं ते बुद्ध्यातीन्द्रियदर्शनाः॥ ८६

उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थितिहेतवः।
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः॥ ८७

अल्पसौख्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम्।
जीवनं मरणं चैव सम्भवश्च पुनः पुनः॥ ८८

अल्पभूतं सुखं स्वर्गे दुःखानि नरके तथा।
विदित्वा चागमं सर्वमवश्यं भवितव्यताम्॥ ८९

ऋभुं सनत्कुमारं च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा चात्मजाः सनकादयः॥ ९०

वैवर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजसः।
ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु॥ ९१

भविष्यसि विमूढस्त्वं मायया शङ्करस्य तु।
एवं कल्पे तु वै वृत्ते संज्ञा नश्यति तेऽनघ॥ ९२

कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च।
सर्वेषां ह्यैश्वरी माया जागृतिः समुदाहृता॥ ९३

अण्डमें परिवर्तित हो गया॥ ७८-७९॥

एक हजार वर्षोंतक वह अण्ड जलमें ही स्थित रहा; इस अवधिके अन्तमें वायुके द्वारा यह दो भागोंमें विभक्त हो गया। एक खण्डसे आकाश तथा दूसरे खण्डसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ। यह अति उन्नत जो स्वर्णपर्वत मेरु है, वह उस अण्डके गर्भावरणसे निर्मित हुआ॥ ८०-८१॥

तत्पश्चात् प्रतिसन्ध्यात्मा देवाधिदेव हिरण्यगर्भ चतुर्मुख महाप्रभु भगवान् ब्रह्मा आविर्भूत हुए॥ ८२॥

तारा, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रपर्यन्त समस्त लोकोंको शून्य देखकर 'मैं कौन हूँ'—ऐसा आपके विचार करनेपर पुनः एक हजार वर्षके अनन्तर यतियोंके पूर्वज, यत्नशील, प्रिय दर्शनवाले, समस्त भुवनोंको अपने तेजसे व्याप्त करनेवाले, कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीमान् सनत्कुमार, ऋभु, सनक, सनातन तथा सनन्दन नामक वे कुमार आपके पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए, जिनमें सनत्कुमार तथा ऋभु ऊर्ध्वरेता थे। बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे अगोचर, विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न, जगत्की स्थितिके कारणरूप तथा तीन प्रकारके तापोंसे रहित वे कुमार एक साथ उत्पन्न हुए थे, जिनकी कर्ममार्गमें प्रवृत्ति नहीं थी॥ ८३—८७॥

जीवनमें सुख कम तथा दुःख अधिक है, जीवन जरा तथा शोकसे युक्त है, जीवनमें जन्म तथा मरण बार-बार होते रहते हैं, स्वर्गमें अत्यल्प सुख तथा नरकमें दुःख-ही-दुःख है और भावी अटल है—ये सब बातें अवश्यम्भावी हैं, ऐसा जानकर ऋभु तथा सनत्कुमारको आपके वशमें स्थित देखकर त्रिगुणातीत सनक-सनातन-सनन्दन—ये आपके तीनों महातेजस्वी पुत्र अध्यात्मसम्बन्धी ब्रह्मज्ञानकी ओर प्रवृत्त हो गये॥ ८८—९०$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् उन सनक आदि तीनों कुमारोंके ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो जानेपर आप महादेवकी मायासे विमूढ़ (मोहित) हो गये। हे अनघ! इस प्रकार कल्पके प्रवृत्त होनेपर आपका ज्ञान नष्ट हो जाया करता है॥ ९१-९२॥

कल्पमें जो सूक्ष्म जीव तथा पार्थिव पदार्थ अवशिष्ट रह जाते हैं। उन सबको जाग्रत् करनेवाली

यथैष पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः।
तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह॥ ९४

ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम्।
महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम्॥ ९५

प्रणवेनाथ साम्ना तु नमस्कृत्य जगद्गुरुम्।
त्वां च मां चैव सङ्क्रुद्धो निःश्वासान्निर्दहेदयम्॥ ९६

एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम्।
अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्याम्यनलसप्रभम्॥ ९७

शक्ति ही ऐश्वरी माया कही गयी है॥ ९३॥

जिस प्रकार यह मेरुपर्वत देवलोकके रूपमें प्रसिद्ध है, उसी प्रकार उन देवश्रेष्ठ महादेवके इस माहात्म्यको भी प्रसिद्ध समझिये॥ ९४॥

परमेश्वर महादेवका सद्भाव जानकर तथा मुझ कमलनयनको जानकर प्रणवयुक्त साममन्त्रोंके द्वारा भूतोंके भी महाभूत वरदाता जगद्गुरु प्रभु महादेवको नमस्कार करके उठिये, अन्यथा ये क्रोधित होकर अपने निःश्वाससे मुझे तथा आपको दग्ध कर डालेंगे॥ ९५-९६॥

इस प्रकार उनके महान् योग तथा अमित बलको जानकर आपको आगे करके अग्निसदृश प्रभावाले महादेवके निकट खड़ा होकर मैं उनकी स्तुति करूँगा॥ ९७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मप्रबोधनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्मप्रबोधन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा तथा विष्णुद्वारा की गयी भगवान् महेश्वरकी स्तुति एवं उसका माहात्म्य

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः।
अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्तमानैस्तथैव च॥ १

नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयेत्।

विष्णुरुवाच

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतानन्ततेजसे॥ २

नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः।
सुमेंढ्रायार्च्यमेंढ्राय दण्डिने रूक्षरेतसे॥ ३

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय पूर्वाय प्रथमाय च।
नमो मान्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः॥ ४

गह्वराय घटेशाय व्योमचीराम्बराय च।
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवे नमः॥ ५

वेदानां प्रभवे चैव स्मृतीनां प्रभवे नमः।
प्रभवे कर्मदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥ ६

सूतजी बोले—तदनन्तर ब्रह्माको आगे करके वे गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु अतीत, भविष्य तथा वर्तमान कल्पोंसे सम्बन्धित महादेवजीके वेदप्रतिपादित नामोंसे इस स्तोत्रका वाचन करने लगे॥ १$^1/_2$॥

विष्णुजी बोले—हे सुव्रत! आप अनन्त तेजसम्पन्न भगवान्को नमस्कार है। क्षेत्राधिपति, बीजी तथा त्रिशूलधारीको नमस्कार है। सुमेंढ्र (सुन्दर लिङ्गवाले), अर्च्यमेंढ्र (पूजनीय लिङ्गवाले), दण्डी तथा रूक्षरेता (रूक्ष वीर्यवाले)-को नमस्कार है॥ २-३॥

ज्येष्ठको, श्रेष्ठको, पूर्वको तथा प्रथमको नमस्कार है। मान्यको, पूज्यको तथा सद्योजातको नमस्कार है। गह्वर (अगम्य)-को, घटेश (चेष्टमान जीवोंके स्वामी)-को तथा आकाश एवं वृक्षकी छालको अम्बर (वस्त्र)-के रूपमें धारण करनेवाले तथा हम-जैसे प्राणियोंके स्वामीको नमस्कार है॥ ४-५॥

वेदोंके स्वामी तथा स्मृतियोंके स्वामीको नमस्कार है। कर्मों तथा दान आदिके स्वामी और द्रव्योंके

स्वामीको नमस्कार है॥ ६॥

नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः।
नमो ध्रुवनिबद्धानामृषीणां प्रभवे नमः॥ ७

योगके प्रभुको नमस्कार है और सांख्यके प्रभुको नमस्कार है। ध्रुवसे सम्बन्धित ऋषियों अर्थात् सप्तर्षियोंके प्रभुको नमस्कार है॥ ७॥

ऋक्षाणां प्रभवे तुभ्यं ग्रहाणां प्रभवे नमः।
वैद्युताशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः॥ ८

नक्षत्रोंके स्वामीको नमस्कार है, ग्रहोंके स्वामीको नमस्कार है, आपको नमस्कार है। विद्युताग्निसे युक्त मेघोंकी गर्जनाके स्वामीको नमस्कार है॥ ८॥

महोदधीनां प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः।
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः॥ ९

नमो नदीनां प्रभवे नदानां प्रभवे नमः।
महौषधीनां प्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः॥ १०

महासागरोंके स्वामी तथा द्वीपोंके स्वामीको नमस्कार है। पर्वतों तथा भारत आदि नौ वर्षोंके स्वामीको नमस्कार है। नदियों तथा नदोंके स्वामीको नमस्कार है। महौषधियों तथा वृक्षोंके स्वामीको नमस्कार है॥ ९-१०॥

धर्मवृक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः।
प्रभवे च परार्धस्य परस्य प्रभवे नमः॥ ११

अनेकविध धर्मोंके कारणरूप धर्मवृक्षको नमस्कार है, धर्मको नमस्कार है तथा स्थितियोंके स्वामीको नमस्कार है। परार्धके स्वामी तथा परके स्वामीको नमस्कार है॥ ११॥

नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः।
क्षणानां प्रभवे चैव लवानां प्रभवे नमः॥ १२

अहोरात्रार्धमासानां मासानां प्रभवे नमः।
ऋतूनां प्रभवे तुभ्यं संख्यायाः प्रभवे नमः॥ १३

सभी रसोंके स्वामी तथा रत्नोंके स्वामीको नमस्कार है। क्षणोंके स्वामी तथा लवों (क्षणांश)-के स्वामीको नमस्कार है। दिन, रात, अर्धमास (पक्ष) तथा मासोंके स्वामीको नमस्कार है। ऋतुओंके स्वामी तथा संख्याओंके स्वामी आप शिवको नमस्कार है॥ १२-१३॥

प्रभवे चापरार्धस्य परार्धप्रभवे नमः।
नमः पुराणप्रभवे सर्गाणां प्रभवे नमः॥ १४

मन्वन्तराणां प्रभवे योगस्य प्रभवे नमः।
चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे॥ १५

अपरार्ध तथा परार्धके स्वामीको नमस्कार है। पुराणोंके स्वामीको नमस्कार है। सर्गोंके स्वामीको नमस्कार है। मन्वन्तरोंके स्वामी तथा योगके स्वामीको नमस्कार है। (जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जरूप) चार प्रकारकी सृष्टिके स्वामीको नमस्कार है। अनन्त ज्योतिको नमस्कार है॥ १४-१५॥

कल्पोदयनिबन्धानां वार्तानां प्रभवे नमः।
नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्माधिपतये नमः॥ १६

विद्यानां प्रभवे चैव विद्याधिपतये नमः।
नमो व्रताधिपतये व्रतानां प्रभवे नमः॥ १७

कल्पके उदयमें प्रणीत धर्मशास्त्रों तथा वार्ताओं (कृषि एवं वाणिज्यशास्त्रों)-के स्वामीको नमस्कार है। विश्वके स्वामीको नमस्कार है। ब्रह्माधिपतिको नमस्कार है। विद्याओंके स्वामी तथा विद्याधिपतिको नमस्कार है। व्रतोंके स्वामीको नमस्कार है। व्रताधिपतिको नमस्कार है॥ १६-१७॥

मन्त्राणां प्रभवे तुभ्यं मन्त्राधिपतये नमः।
पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः॥ १८

मन्त्रोंके स्वामी तथा मन्त्रोंके अधिपति आपको नमस्कार है। पितरोंके पति तथा पशुओंके पतिको

वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च।
नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च॥ १९

प्रजापतीनां पतये सिद्धीनां पतये नमः।
दैत्यदानवसङ्घानां रक्षसां पतये नमः॥ २०

गन्धर्वाणां च पतये यक्षाणां पतये नमः।
गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः॥ २१

सर्वगुह्यपिशाचानां गुह्याधिपतये नमः।
गोकर्णाय च गोप्त्रे च शङ्कुकर्णाय वै नमः॥ २२

वराहायाप्रमेयाय ऋक्षाय विरजाय च।
नमो सुराणां पतये गणानां पतये नमः॥ २३

अम्भसां पतये चैव ओजसां पतये नमः।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीपाय क्षितिपाय च॥ २४

बलाबलसमूहाय अक्षोभ्यक्षोभणाय च।
दीप्तशृङ्गैकशृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने॥ २५

नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसानुव्रताय च।
अतीताय भविष्याय वर्तमानाय वै नमः॥ २६

सुवर्चसे च वीर्याय शूराय ह्यजिताय च।
वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने॥ २७

नमो भूताय भव्याय महते प्रभवाय च।
जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च॥ २८

अणवे महते चैव नमः सर्वगताय च।
नमो बन्धाय मोक्षाय स्वर्गाय नरकाय च॥ २९

नमो भवाय देवाय इज्याय याजकाय च।
प्रत्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वायातिगुणाय च॥ ३०

नमः पाशाय शस्त्राय नमस्त्वाभरणाय च।
हुताय उपहूताय प्रहुतप्राशिताय च॥ ३१

नमस्कार है। श्रेष्ठ वाणीवाले तथा पुराणश्रेष्ठ आप शिवको नमस्कार है। पशुओंके पति तथा गोवृषेन्द्रध्वजको नमस्कार है॥ १८-१९॥

प्रजाओंके पति तथा सिद्धियोंके पतिको नमस्कार है। दैत्य, दानव तथा राक्षससमूहोंके पतिको नमस्कार है। गन्धर्वों तथा यक्षोंके पतिको नमस्कार है। गरुड़, उरग, सर्प तथा पक्षियोंके पतिको नमस्कार है॥ २०-२१॥

सभी गुप्त पिशाचोंके गुह्याधिपतिको नमस्कार है। गोकर्ण, गोप्ता तथा शंकुकर्णको नमस्कार है। वाराहको, अप्रमेयको, ऋक्षको तथा विरजको नमस्कार है। देवताओंके पति तथा गणोंके पतिको नमस्कार है॥ २२-२३॥

जलोंके पति तथा ओजोंके पतिको नमस्कार है। लक्ष्मीपति, लक्ष्मीके रक्षक तथा पृथ्वीके पालन-कर्ताको नमस्कार है। शक्तिमान् तथा शक्तिहीन प्राणियोंके समुच्चयरूप शिवको नमस्कार है। अक्षोभ्यक्षोभणको नमस्कार है। दीप्तशृंग, एकशृंग, वृषभ तथा ककुद्मीको नमस्कार है॥ २४-२५॥

स्थैर्य, तेजोमयवपु तथा अनुव्रतको नमस्कार है। अतीत, भविष्य तथा वर्तमानरूप शिवको नमस्कार है। सुवर्चा, वीर्य, शूर, अजित, वरद, वरेण्य, पुरुष तथा महात्माको नमस्कार है॥ २६-२७॥

भूत, भव्य, महत् तथा प्रभवको नमस्कार है। जन, तप तथा वरदको नमस्कार है; आपको नमस्कार है। अणु (परम सूक्ष्म), महत् (महा-आकारसम्पन्न) तथा सर्वगत (सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले)-को नमस्कार है। बन्ध (जन्म-मरण-बन्धन), मोक्ष, स्वर्ग तथा नरकरूपको नमस्कार है॥ २८-२९॥

भव, देव, इज्य (देवताओंके आचार्य) तथा याजक (यज्ञ करानेवाले)-को नमस्कार है। प्रत्युदीर्ण (महान्), दीप्त (आलोकयुक्त), तत्त्व तथा अतिगुण (गुणातीत)-को नमस्कार है। पाश, शस्त्र तथा आभरणको नमस्कार है। हुत (हविद्रव्यरूप), उपहूत (यज्ञ आदिमें आवाहन किये जानेवाले), प्रहुतप्राशित (भक्तिपूर्वक दी गयी आहुतिको भोज्यरूपमें ग्रहण करनेवाले) शिवको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

नमोऽस्त्विष्टाय पूर्ताय अग्निष्टोमद्विजाय च।
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च॥ ३२

अहिंसायाप्रलोभाय पशुमन्त्रौषधाय च।
नमः पुष्टिप्रदानाय सुशीलाय सुशीलिने॥ ३३

इष्ट (यज्ञकर्म आदि), पूर्त (कूप-तड़ागादि-निर्माण), अग्निष्टोमद्विजरूप शिवको नमस्कार है। सदस्यरूप, दक्षिणारूप तथा अवभृथ (यज्ञकी समाप्तिके अनन्तर शुद्धिके लिये किये जानेवाले स्नान)-रूप शिवको नमस्कार है। अहिंसा-अप्रलोभ-पशुमन्त्रौषधरूप, पुष्टिप्रदायक, सुशील तथा सदाचारीको नमस्कार है॥ ३२-३३॥

अतीताय भविष्याय वर्तमानाय ते नमः।
सुवर्चसे च वीर्याय शूराय ह्यजिताय च॥ ३४

वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने।
नमो भूताय भव्याय महते चाभयाय च॥ ३५

अतीत, भविष्य तथा वर्तमानकालरूप अर्थात् सर्वकालव्यापी शिवको नमस्कार है। सुवर्चा (महान् शक्तिमान्), वीर्य, शूर, अजित, वरद, वरेण्य, पुरुष, महात्मा, भूत, भव्य, महत् तथा अभयरूप शिवको नमस्कार है॥ ३४-३५॥

जरासिद्ध नमस्तुभ्यमयसे वरदाय च।
अधरे महते चैव नमः सस्तुपताय च॥ ३६

जरासिद्ध (नित्य तरुणरूप), सुवर्णरूप तथा वरदानी शिव आपको नमस्कार है। अधोरूप, महान्‌रूप तथा निद्रितोंके पतिको नमस्कार है॥ ३६॥

नमश्चेन्द्रियपत्राणां लेलिहानाय स्त्रग्विणे।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतः शिरसे नमः॥ ३७

सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रतिमाय च।
नमो हव्याय कव्याय हव्यवाहाय वै नमः॥ ३८

इन्द्रियरूप वाहनवाले, आस्वादनरूप, हार धारण करनेवाले, विश्व, विश्वरूप तथा सभी ओरसे सिरवाले शिवको नमस्कार है। सभी दिशाओंमें हाथों तथा पैरोंवाले, अप्रतिम, हव्य, कव्य तथा हव्यवाहरूप रुद्रको नमस्कार है॥ ३७-३८॥

नमः सिद्धाय मेध्याय इष्टायेज्यापराय च।
सुवीराय सुघोराय अक्षोभ्यक्षोभणाय च॥ ३९

सुप्रजाय सुमेधाय दीप्ताय भास्कराय च।
नमो बुद्धाय शुद्धाय विस्तृताय मताय च॥ ४०

सिद्ध, पवित्रात्मा, यज्ञरूप, यज्ञपरायण, सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्यका भी क्षोभण करनेवाले, सुन्दर प्रजाओंवाले, तीव्र मेधावाले, दीप्त, भास्कर, बुद्ध, शुद्ध, प्रतिष्ठित तथा विस्तृत शिवको नमस्कार है॥ ३९-४०॥

नमः स्थूलाय सूक्ष्माय दृश्यादृश्याय सर्वशः।
वर्षते ज्वलते चैव वायवे शिशिराय च॥ ४१

नमस्ते वक्रकेशाय ऊरुवक्षःशिखाय च।
नमो नमः सुवर्णाय तपनीयनिभाय च॥ ४२

स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य, वृष्टि, ताप, वायु तथा शिशिर (ठंड)-रूप शिवको नमस्कार है। वक्रकेश (टेढ़े बालोंवाले) तथा उन्नत ऊरुप्रदेश एवं वक्षःस्थलवाले शिवको नमस्कार है। सुन्दर वर्णवाले तथा तप्त स्वर्णके तुल्य आभावाले शिवको बार-बार नमस्कार है॥ ४१-४२॥

विरूपाक्षाय लिङ्गाय पिङ्गलाय महौजसे।
वृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च॥ ४३

विरूपाक्ष, लिङ्गरूप, पिंगल, महान् ओजसे सम्पन्न, वृष्टिका अवरोध करनेवाले तथा सौम्य दृष्टिवाले शिवको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ४३॥

नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च।
पिशिताय पिशङ्गाय पीताय च निषङ्गिणे॥ ४४

धूम्र, श्वेत, कृष्ण, लोहित, पिशित, पिशंग तथा पीतरूप धनुर्धर शिवको नमस्कार है। विशेषतायुक्त तथा

नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः।
नम ईज्याय पूज्याय उपजीव्याय वै नमः॥ ४५

नमः क्षेम्याय वृद्धाय वत्सलाय नमो नमः।
नमो भूताय सत्याय सत्यासत्याय वै नमः॥ ४६

नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे।
नमो गौराय श्यामाय कद्रवे लोहिताय च॥ ४७

महासन्ध्याभ्रवर्णाय चारुदीप्ताय दीक्षिणे।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय कपर्दिने॥ ४८

अप्रमाणाय सर्वाय अव्ययायामराय च।
नमो रूपाय गन्धाय शाश्वतायाक्षताय च॥ ४९

पुरस्ताद् बृंहते चैव विभ्रान्ताय कृताय च।
दुर्गमाय महेशाय क्रोधाय कपिलाय च॥ ५०

तर्क्यातर्क्यशरीराय बलिने रंहसाय च।
सिकत्याय प्रवाह्याय स्थिताय प्रसृताय च॥ ५१

सुमेधसे कुलालाय नमस्ते शशिखण्डिने।
चित्राय चित्रवेषाय चित्रवर्णाय मेधसे॥ ५२

चेकितानाय तुष्टाय नमस्ते निहिताय च।
नमः क्षान्ताय दान्ताय वज्रसंहननाय च॥ ५३

रक्षोघ्नाय विषघ्नाय शितिकण्ठोर्ध्वमन्यवे।
लेलिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च॥ ५४

प्रमोदाय सम्मोदाय यतिवेद्याय ते नमः।
अनामयाय सर्वाय महाकालाय वै नमः॥ ५५

प्रणवप्रणवेशाय भगनेत्रान्तकाय च।
मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञान्तकाय च॥ ५६

सर्वभूतात्मभूताय सर्वेशातिशयाय च।
पुरघ्नाय सुशस्त्राय धन्विनेऽथ परश्वधे॥ ५७

विशेषतारहित शिवको नमस्कार है। ईज्य, पूज्य तथा उपजीव्यको नमस्कार है॥ ४४-४५॥

क्षेम्य, वृद्ध, वत्सलको बार-बार नमस्कार है। भूत, सत्य तथा सत्य-असत्यरूप शिवको नमस्कार है। पद्मवर्ण, मृत्युके विनाशक तथा मृत्युरूप शिवको नमस्कार है। गौर, श्याम, कद्रू (भूरावर्ण) तथा लोहितवर्ण शिवको नमस्कार है॥ ४६-४७॥

महासन्ध्याकालीन बादलोंके समान वर्णवाले, सुन्दर दीप्तिवाले, दीक्षा प्रदान करनेवाले, हाथमें कमल धारण करनेवाले, दिग्वास (दिशाओंमें वास करनेवाले अथवा दिगम्बर) तथा जटाजूटधारी शिवको नमस्कार है। अप्रमाणरूप (इयत्तारहित), समग्ररूप, अव्यय, मरणरहित, रूप, गन्ध, नित्य तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है॥ ४८-४९॥

उपस्थित होकर पालन-पोषण करनेवाले, अस्थिर, कर्मरूप, दुर्गम, महेश, क्रोधरूप, कपिल, तर्क-अतर्कसे परे विग्रहवाले, बलवान्, वेगरूप, बालुकामें विराजमान, प्रवाहरूप, स्थित, व्यापक, उत्तम मेधासम्पन्न, पृथिवीका लालन-पालन करनेवाले, चन्द्रकला धारण करनेवाले, चित्ररूप, विचित्र वेष धारण करनेवाले, विचित्र वर्णवाले तथा यज्ञरूप शिव आपको नमस्कार है॥ ५०—५२॥

चेकितान (विशिष्ट ज्ञानवाले), संतोषरूप तथा निहित (अत्यन्त हितकारक) आपको नमस्कार है। क्षमाशील, इन्द्रियजित् तथा वज्रके समान आघात करनेवाले शिवको नमस्कार है॥ ५३॥

राक्षसोंका विनाश करनेवाले, विषका शमन करनेवाले, शुभ्र ग्रीवावाले, क्रुद्ध प्रतीत होते हुए भी सौम्य रूपवाले, सर्परूप, यमराजस्वरूप, तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले, आनन्दस्वरूप, मोदसदृश, संन्यासियोंके द्वारा ज्ञेय आप शिवको नमस्कार है। रोगविकारसे रहित, सर्वरूप महाकालको नमस्कार है॥ ५४-५५॥

ओंकार, ओंकारेश्वर, भग नामक देवताके नेत्रका नाश करनेवाले, मृगव्याधरूप, दक्षरूप, दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सर्वेश्वर, अतिशयस्वरूप, त्रिपुरके संहर्ता, सुन्दर शस्त्र

पूषदन्तविनाशाय भगनेत्रान्तकाय च।
कामदाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च॥ ५८

रङ्गे करालवक्त्राय नागेन्द्रवदनाय च।
दैत्यानामन्तकेशाय दैत्याक्रन्दकराय च॥ ५९

हिमघ्नाय च तीक्ष्णाय आर्द्रचर्मधराय च।
श्मशानरतिनित्याय नमोऽस्तूल्मुकधारिणे॥ ६०

नमस्ते प्राणपालाय मुण्डमालाधराय च।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च॥ ६१

नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च।
जटिने मुण्डिने चैव व्यालयज्ञोपवीतिने॥ ६२

नमोऽस्तु नृत्यशीलाय उपनृत्यप्रियाय च।
मन्यवे गीतशीलाय मुनिभिर्गायते नमः॥ ६३

कटङ्कटाय तिग्माय अप्रियाय प्रियाय च।
विभीषणाय भीष्माय भगप्रमथनाय च॥ ६४

सिद्धसङ्घानुगीताय महाभागाय वै नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च॥ ६५

नर्दते कूर्दते चैव नमः प्रमुदितात्मने।
नमो मृडाय श्वसते धावतेऽधिष्ठिते नमः॥ ६६

ध्यायते जृम्भते चैव रुदते द्रवते नमः।
वल्गते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे॥ ६७

नमोऽकृत्याय कृत्याय मुण्डाय विकटाय च।
नम उन्मत्तदेहाय किङ्किणीकाय वै नमः॥ ६८

नमो विकृतवेषाय क्रूरायामर्षणाय च।
अप्रमेयाय गोप्त्रे च दीप्तायानिर्गुणाय च॥ ६९

धारण करनेवाले, धनुर्धर, कुठार धारण करनेवाले, दक्षके यज्ञमें पूषानामक देवताका दाँत तोड़नेवाले तथा भग नामक देवताको नेत्रविहीन करनेवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, वरिष्ठ, कामदेवका शरीर दग्ध करनेवाले, रणभूमिमें विकराल वक्त्रवाले, गजाननरूप, दैत्योंके संहारक हम ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके भी स्वामी, दैत्योंको क्रन्दित करनेवाले, शीतका निवारण करनेवाले, तीक्ष्ण रूपवाले, मृदुचर्म धारण करनेवाले, नित्य श्मशानसे अनुराग रखनेवाले तथा हाथमें प्रज्वलित काष्ठ धारण करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है॥ ५६—६०॥

प्रिय भक्तोंका पालन करनेवाले, मुण्डकी माला धारण करनेवाले, शोकरहित, अनेकविध भूतोंसे घिरे रहनेवाले शिवको नमस्कार है। नर-नारीका विग्रह धारण करनेवाले (अर्धनारीश्वर), देवी पार्वतीका सदा प्रिय करनेवाले, जटाधारी, मुण्डी, सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, नृत्यमें अभिरुचि रखनेवाले, नृत्यशालाके प्रति प्रीति रखनेवाले, क्रोधरूप, गीतप्रिय तथा मुनियोंके द्वारा स्तुत्य शिवको नमस्कार है॥ ६१—६३॥

हाथीका मस्तक काटनेवाले अर्थात् सिंहरूप, तीक्ष्ण, अप्रिय, प्रिय, अति भयानक, प्रचण्ड, भगका प्रमथन करनेवाले, सिद्धसमुदायद्वारा नित्य अनुगीत महाभागको नमस्कार है। मुक्तरूपसे अट्टहास करनेवाले, क्रोधावस्थामें सिंहगर्जना करके प्रकम्पित शरीरवाले शिवको नमस्कार है॥ ६४-६५॥

तीव्र नाद करनेवाले, कूदने-फाँदनेवाले तथा प्रमुदित आत्मावाले शिवको नमस्कार है। श्वास लेनेवाले, दौड़नेवाले, अधिष्ठाता तथा आनन्दरूप शिवको नमस्कार है। ध्यान करनेवाले, जम्भाई लेनेवाले, रुदन करनेवाले तथा द्रवित होनेवाले शिवको नमस्कार है। छलाँग लगानेवाले, क्रीड़ा करनेवाले तथा लम्बे उदरयुक्त शरीरवाले शिवको नमस्कार है॥ ६६-६७॥

विधि-निषेधरूप (कृत्य-अकृत्य), मुण्ड, विकटरूप शिवको नमस्कार है। उन्मत्त देहवाले तथा किंकिणीसे शोभायमान शरीरवाले शिवको नमस्कार है। विकृत वेष धारण करनेवाले, क्रूर, कोपाविष्ट, अप्रमेय,

वामप्रियाय वामाय चूडामणिधराय च।
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रमिताय च॥ ७०

नमो गुण्याय गुह्याय अगम्यगमनाय च।
लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ॥ ७१

सर्वेषां सिद्धियोगानामधिष्ठानं तवोदरम्।
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम्॥ ७२

स्वातेः पथ इवाभाति श्रीमान् हारस्तवोरसि।
दिशो दशभुजास्तुभ्यं केयूराङ्गदभूषिताः॥ ७३

विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाञ्जनचयोपमः।
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः॥ ७४

दंष्ट्रा करालं दुर्धर्षमनौपम्यं मुखं तथा।
पद्ममालाकृतोष्णीषं शिरो द्यौः शोभतेऽधिकम्॥ ७५

दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्यं शैलेऽनिले बलम्।
औष्ण्यमग्नौ तथा शैत्यमप्सु शब्दोऽम्बरे तथा॥ ७६

अक्षरान्तरनिष्पन्दाद् गुणानेतान् विदुर्बुधाः।
जपो जप्यो महादेवो महायोगो महेश्वरः॥ ७७

पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः।
तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दवर्धनः॥ ७८

हयशीर्षा पयोधाता विधाता भूतभावनः।
बोद्धव्यो बोधिता नेता दुर्धर्षो दुष्प्रकम्पनः॥ ७९

बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनञ्जयः।
घण्टाप्रियो ध्वजी छत्री पिनाकी ध्वजिनीपतिः॥ ८०

रक्षा करनेवाले, दीप्त तथा सगुणरूप शिवको नमस्कार है॥ ६८-६९॥

वामभागमें अपनी प्रिया गौरीसे विभूषित, सुन्दर, चूड़ामणि धारण करनेवाले, बालरूप विग्रहवाले तथा अप्रमेय गुणोंसे सम्पन्न शिवको नमस्कार है॥ ७०॥

सद्‌गुणोंसे युक्त, निगूढ़ तथा अगम्य गतिवाले शिवको नमस्कार है। सदाचारीजनोंद्वारा सेवित आपके दोनों चरण लोकधात्री इस पृथ्वीके तुल्य हैं। सभी सिद्धियों तथा योगोंका अधिष्ठानस्वरूप मध्यस्थित आपका उदर तारासमूहोंसे विभूषित विस्तृत अन्तरिक्षके समान है। आपके वक्षःस्थलपर शोभायमान श्रीयुक्त हार तारापुंजोंके मार्गकी भाँति प्रतीत होता है। केयूर तथा अंगदसे विभूषित आपके दस हाथ दसों दिशाओंके तुल्य हैं॥ ७१—७३॥

नीले अंजनके समूहके तुल्य विस्तृत परिधिवाला आपका श्रीयुक्त कण्ठ स्वर्णसूत्रसे सुशोभित है। विकराल दाँतोंवाला आपका मुख अत्यन्त भयावह तथा अनुपमेय है। पद्ममाला तथा पगड़ीसे शोभायमान आपका सिर आकाशकी भाँति अत्यधिक शोभाको प्राप्त हो रहा है॥ ७४-७५॥

सूर्यमें प्रकाश, चन्द्रमामें कान्ति, पर्वतमें स्थिरता, वायुमें शक्ति, अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता तथा आकाशमें शब्दरूप विद्यमान—ये गुण अविनाशी शिवके निष्पन्द अर्थात् अल्पांशसे उत्पन्न हुए हैं—ऐसा मनीषी लोग मानते हैं। जप, जप्य, महादेव, महायोग, महेश्वर, पुरेशय, गुहावासी (गुफामें निवास करनेवाले), खेचर (आकाशमें विचरणशील), रजनीचर (रात्रिमें भ्रमण करनेवाले), तपोनिधि, कार्तिकेयके गुरु, आनन्दरूप, आनन्दकी वृद्धि करनेवाले, हयशीर्ष (घोड़ेके सिरवाले विष्णुरूप), पयोधाता (जल धारण करनेवाले इन्द्ररूप), विधाता (ब्रह्मारूप), भूतभावन, बोद्धव्य (बोध करनेयोग्य), बोधिता (बोध करानेवाले), नेता, दुर्धर्ष (अपराजेय), दुष्प्रकम्पन, बृहद्रथ (विशाल रथवाले), भीमकर्मा (भयंकर कर्मवाले), बृहत्कीर्ति (महान् यशवाले), धनंजय, घण्टाप्रिय, ध्वजी (ध्वज धारण

कवची पट्टिशी खड्गी धनुर्हस्तः परश्वधी।
अघस्मरोऽनघः शूरो देवराजोऽरिमर्दनः॥ ८१

त्वां प्रसाद्य पुरास्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि।
अग्निः सदार्णवाम्भस्त्वं पिबन्नपि न तृप्यसे॥ ८२

क्रोधाकारः प्रसन्नात्मा कामदः कामगः प्रियः।
ब्रह्मचारी चागाधश्च ब्रह्मण्यः शिष्टपूजितः॥ ८३

देवानामक्षयः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः।
हव्यं तवेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः।
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे॥ ८४

भवानीशोऽनादिमांस्त्वं च सर्व-
लोकानां त्वं ब्रह्मकर्तादिसर्गः।
सांख्याः प्रकृतेः परमं त्वां विदित्वा
क्षीणध्यानास्त्वाममृत्युं विशन्ति॥ ८५

योगाच्च त्वां ध्यायिनो नित्यसिद्धं
ज्ञात्वा योगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान्।
ये चाप्यन्ये त्वां प्रसन्ना विशुद्धाः
स्वकर्मभिस्ते दिव्यभोगा भवन्ति॥ ८६

अप्रसङ्ख्येयतत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः।
कीर्तितं तव माहात्म्यमपारस्य महात्मनः॥ ८७

शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।

सूत उवाच

य इदं कीर्तयेद्भक्त्या ब्रह्मनारायणस्तवम्॥ ८८

करनेवाले), छत्री (छत्र धारण करनेवाले), पिनाकी (धनुर्धर), ध्वजिनीपति (सेनापति), कवची (कवच धारण करनेवाले), पट्टिशी (एक प्रकारका तीक्ष्ण लौह-दण्डरूप शस्त्र धारण करनेवाले), खड्गी (तलवार धारण करनेवाले), धनुर्हस्त (हाथमें धनुष धारण करनेवाले), परश्वधी (परशु धारण करनेवाले), अघस्मर (सबके पापकर्मोंको स्मृतिमें रखनेवाले), निष्पाप, पराक्रमी, देवताओंके स्वामी तथा शत्रुओंका संहार करनेवाले सब कुछ आप ही हैं॥ ७६—८१॥

पूर्वकालमें आपको प्रसन्न करके हम देवताओंने अपने शत्रुओंका युद्धमें संहार किया था। अग्निरूप आप सदा महासागरका जल पीते हुए भी कभी तृप्त नहीं होते हैं॥ ८२॥

आप क्रोधमय भावाकृतिवाले, प्रसन्न आत्मावाले, मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले, अपनी इच्छासे विचरण करनेवाले, प्रिय, ब्रह्मचारी, दुस्तर, ब्रह्मण्य, शिष्टजनोंद्वारा पूजित तथा देवताओंकी अक्षय निधि हैं। आपने ही यज्ञोंका विधान किया है। अग्निदेव आपके ही वेदोक्त हव्यका वहन करते हैं। हे महादेव! आपके प्रसन्न होनेपर हम देवतालोग प्रसन्न हो जाते हैं॥ ८३-८४॥

आप भवानीके ईश हैं तथा आदिसे रहित हैं। सभी लोकोंके ब्रह्मरूप कर्ता आप ही हैं। आप ही आदि सृष्टि हैं। क्षीण ध्यानवाले सांख्यशास्त्री आपको प्रकृतिसे परे जानकर अमृत्युरूप आपको ही प्राप्त होते हैं॥ ८५॥

ध्यानपरायण योगी अपने योगबलसे नित्य-सिद्ध आपको जानकर पुनः उन योगोंका परित्याग कर देते हैं। और भी अन्य जो प्रसन्नचित्त तथा विशुद्ध मनवाले लोग हैं, वे अपने उत्तम कर्मोंके द्वारा आपको जानकर दिव्य भोगोंकी प्राप्ति करते हैं॥ ८६॥

गणनातीत तत्त्वोंवाले तथा सीमारहित आप महात्माका जैसा माहात्म्य हम जानते हैं, वैसा अपनी सामर्थ्यके अनुसार हमने कह दिया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारी हों। आप जो कुछ भी हैं, आपको नमस्कार है॥ ८७½॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] जो प्राणी एकाग्र

श्रावयेद्वा द्विजान् विद्वान् शृणुयाद्वा समाहितः।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ ८९

होकर भक्तिपूर्वक ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा की गयी इस शिवस्तुतिको कहता है, सुनता है अथवा द्विजों तथा विद्वानोंको सुनाता है; वह दस हजार अश्वमेध यज्ञ करके जो फल मिलता है, उस फलको प्राप्त कर लेता है॥ ८८-८९॥

पापाचारोऽपि यो मर्त्यः शृणुयाच्छिवसन्निधौ।
जपेद्वापि विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ ९०

घोर पापकर्म करनेवाला जो कोई भी प्राणी शिवके समीप इस स्तुतिका पाठ करता है अथवा इसे सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है॥ ९०॥

श्राद्धे वा दैविके कार्ये यज्ञे वावभृथान्तिके।
कीर्तयेद्वा सतां मध्ये स याति ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥ ९१

जो सज्जनोंके बीचमें, श्राद्धकर्ममें, देवकर्ममें, यज्ञधर्मादि अनुष्ठानोंके बाद किये जानेवाले स्नानके अनन्तर इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है॥ ९१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मविष्णुस्तुतिर्नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्मविष्णुस्तुति' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

महादेवजीद्वारा विष्णु और ब्रह्माको वरदान, सृष्टिके लिये ब्रह्माजीद्वारा तप करना तथा सर्पों एवं रुद्रोंकी सृष्टि

सूत उवाच

अत्यन्तावनतौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः।
प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्सत्यकीर्तनात्॥ १

उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः।
पिनाकी खण्डपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः॥ २

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] उन ब्रह्मा तथा विष्णुको अत्यन्त विनीत भावसे सत्य स्तुति करते देखकर सुन्दर, लालिमायुक्त तथा विशाल नेत्रोंवाले उमापति, विरूपाक्ष, दक्षयज्ञके विध्वंसक, पिनाकी, खण्डपरशु धारण करनेवाले, त्रिनेत्र शिवजीका मुख प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो उठा और उनके मनमें उन दोनोंके प्रति अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई॥ १-२॥

ततः स भगवान् देवः श्रुत्वा वागमृतं तयोः।
जानन्नपि महादेवः क्रीडापूर्वमथाब्रवीत्॥ ३

कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ।
समेतावम्बुजाभाक्षावस्मिन् घोरे महाप्लवे॥ ४

तत्पश्चात् उन दोनोंकी अमृतमयी वाणी सुनकर उन्हें जानते हुए भी भगवान् महादेवने क्रीड़ाके निमित्त उनसे पूछा—हे महात्माद्वय! एक-दूसरेका हित चाहनेवाले, कमलकी आभाके तुल्य नेत्रोंवाले आप दोनों लोग कौन हैं तथा इस घोर महासागरमें क्यों स्थित हैं?॥ ३-४॥

तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम्।
भगवन् किं तु यत्तेऽद्य न विज्ञातं त्वया विभो॥ ५

विभो रुद्र महामाय इच्छया वां कृतौ त्वया।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा अभिनन्द्याभिमान्य च॥ ६

महादेवके ऐसा पूछनेपर एक-दूसरेकी ओर देखकर महात्मा ब्रह्मा तथा विष्णु बोले—हे भगवन्! हे विभो! हे रुद्र! हे महामाय! क्या आज आपको विदित नहीं है कि आपने ही अपनी इच्छासे हम दोनोंको उत्पन्न किया है?॥ ५ $^{1}/_{2}$॥

उवाच भगवान् देवो मधुरं श्लक्ष्णया गिरा।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण ब्रवीम्यहम्॥ ७
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया।
भवन्तौ हृदयस्यास्य मम हृद्यतरावुभौ॥ ८

युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमीप्सितम्।
अथोवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः॥ ९
सर्वं मम कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि।
त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शङ्कर॥ १०
एवमुक्तस्तु विज्ञाय सम्भावयत केशवम्।
प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदाम्बुजे॥ ११
भवान् सर्वस्य लोकस्य कर्ता त्वमधिदैवतम्।
तदेवं स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुजेक्षण॥ १२
एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणं चापि शङ्करः।
अनुगृह्यास्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः॥ १३
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च प्राह हृष्टतरः स्वयम्।
मत्समस्त्वं न सन्देहो वत्स भक्तश्च मे भवान्॥ १४
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि संज्ञा भवतु सुव्रत।
एवमुक्त्वा तु भगवांस्ततोऽन्तर्धानमीश्वरः॥ १५
गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः॥ १६
प्रजाः स्त्रष्टुमनाश्चक्रे तप उग्रं पितामहः।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत॥ १७
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो ह्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥ १८

उन दोनोंकी वह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर सम्मानपूर्वक कोमल वाणीमें धीरेसे बोले—हे हिरण्यगर्भ! हे कृष्ण! मैं आप दोनोंको बता रहा हूँ कि मैं आपकी इस शाश्वत तथा दृढ़ भक्तिसे प्रसन्न हूँ॥ ६-७$^{1}/_{2}$॥

आप दोनों लोगोंके प्रति मेरे हृदयमें अपार प्रेम है। मैं आज आपलोगोंको श्रेष्ठ तथा मनोवांछित कौन-सा वर प्रदान करूँ?॥ ८$^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर महाभाग विष्णुने रुद्रसे यह वचन कहा—हे देव! मेरा यही सर्व अभीष्ट है कि यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो हे शंकर! मुझे अपने प्रति अचल भक्ति प्रदान कीजिये॥ ९-१०॥

विष्णुके ऐसा कहनेपर महादेवने विष्णुभगवान्‌को स्नेहपूर्वक अपने चरणकमलोंमें स्थिर भक्ति प्रदान की॥ ११॥

तत्पश्चात् भगवान् शंकरने ब्रह्माजीसे कहा—हे कमलनयन! आप समस्त लोकके कर्ता हैं तथा आप ही अधिष्ठातृ देवता हैं। अतः हे वत्स! आपका कल्याण हो। मैं तो अब प्रस्थान करूँगा। ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहकर भगवान् शंकरने अपने दोनों पवित्र हाथोंसे अनुग्रहपूर्वक ब्रह्माजीका स्पर्श किया। पुनः उन परमेश्वर शंकरने प्रसन्न मनसे ब्रह्मासे स्वयं कहा—आप भी मेरे ही तुल्य हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! आप मेरे भक्त हैं। आपका कल्याण हो और आपको यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो। हे सुव्रत! अब मैं प्रस्थान कर रहा हूँ॥ १२—१४$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार कहकर समस्त देवताओंके वन्दनीय, गणोंके रक्षक, परमेश्वर भगवान् महादेव अन्तर्धान हो गये॥ १५$^{1}/_{2}$॥

भगवान् गोविन्दसे ज्ञान प्राप्त करके पितामह ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टिकी कामनासे भीषण तप करना आरम्भ कर दिया॥ १६$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार दीर्घ कालतक तपस्या करते हुए उनका जब कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ, तब उन्हें बहुत दुःख हुआ और उस दुःखसे वे बहुत क्रोधित हो उठे। कोपसे

ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः।
महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलङ्कृताः॥ १९

प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः।
सर्पांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दयत्॥ २०

अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि।
लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम॥ २१

तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा।
मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान् प्रजापतिः॥ २२

तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम्।
अथैकादश ते रुद्रा रुदन्तोऽभ्यक्रमंस्तथा॥ २३

रोदनात्खलु रुद्रत्वं तेषु वै समजायत।
ये रुद्रास्ते खलु प्राणाः ये प्राणास्ते तदात्मकाः॥ २४

प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः।
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च॥ २५

प्राणांस्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः।
लब्ध्वासून् भगवान् ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम्॥ २६

प्रणम्य संस्थितोऽपश्यद् गायत्र्या विश्वमीश्वरम्।
सर्वलोकमयं देवं दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः॥ २७

ततो विस्मयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
उवाच वचनं शर्वं सद्यादित्वं कथं विभो॥ २८

युक्त उन ब्रह्माके दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरने लगीं॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् उन अश्रुबिन्दुओंसे वात-पित्त-कफयुक्त, महान् सत्त्वसे सम्पन्न, महाभाग्यशाली तथा महाविषधर सर्प उत्पन्न हुए। वे स्वस्तिक चिह्नसे विभूषित थे तथा उनके केश फैले हुए थे॥ १९ १/२॥

उन सर्पोंको पहले उत्पन्न हुआ देखकर ब्रह्माजीको बड़ी आत्मग्लानि हुई। वे अपनी भर्त्सना करते हुए कहने लगे—'अहो, मुझे धिक्कार है। मेरी तपस्याका मुझे यही फल प्राप्त हुआ कि आरम्भमें ही मेरी लोकविनाशक सर्परूप प्रजा उत्पन्न हुई'॥ २०-२१॥

अत्यधिक क्रोध तथा अधीरतासे युक्त होनेके कारण ब्रह्माजीको तीव्र मूर्च्छा उत्पन्न हुई और उस मूर्च्छासे आक्रान्त पितामहने अपने प्राण त्याग दिये॥ २२॥

इसके पश्चात् अप्रतिम वीर्यवाले उन ब्रह्माके देहसे दीनभावसे कारुण्यपूर्वक ग्यारह रुद्र रोते हुए निकले। रुदन करनेके कारण ही उनका नाम रुद्र पड़ा॥ २३ १/२॥

जो रुद्र हैं, वे ही प्राणरूप हैं तथा जो प्राण हैं, वे उन्हीं रुद्रके आत्मारूप हैं। सभी प्राणियोंमें स्थित उन रुद्रोंको ही जीवोंके प्राणरूपमें जानना चाहिये॥ २४ १/२॥

नीललोहित त्रिशूलधारी शिवजीने अत्यन्त उग्र स्वभाववाले, महिमाशाली तथा उत्तम आचरणवाले उन ब्रह्माको पुनः उनके प्राण प्रदान कर दिये॥ २५ १/२॥

तत्पश्चात् प्राण प्राप्तकर भगवान् ब्रह्माने खड़े होकर देवाधिदेव उमापतिको प्रणामकर गायत्रीके ध्यानसे विश्वरूप परमात्मा शिवको वहाँ देखा॥ २६ १/२॥

समस्त लोकोंमें व्याप्त रहनेवाले महादेवको देखकर ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने आश्चर्यचकित होकर शिवजीको बार-बार प्रणामकर उनसे पूछा—हे विभो! 'सद्योजात' आदि रूपमें आपका प्रादुर्भाव क्यों हुआ?॥ २७-२८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे रुद्रोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'रुद्रोत्पत्तिवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले सद्योजातादि शिवावतारोंका वर्णन, विभिन्न लोकोंकी स्थिति तथा महारुद्रका विश्वरूपत्व

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान् भवः।
ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राह सस्मितम्॥ १

सूतजी बोले—ब्रह्माजीका वह वचन सुनकर उनके प्रबोधनके लिये ब्रह्मरूप भगवान् शिवने मुसकराकर उनसे कहा—॥ १॥

श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहमेव तदाभवम्।
श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः सितः॥ २

श्वेतास्थिः श्वेतरोमा च श्वेतासृक् श्वेतलोहितः।
तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ॥ ३

जब श्वेतकल्प था, उस समय मैं श्वेत वर्णका था। मेरी श्वेत पगड़ी, श्वेत माला, श्वेत वस्त्र, श्वेत अस्थि, श्वेत रोम, श्वेत त्वचा तथा श्वेत ही मेरा रुधिर था। इसी कारणसे वह कल्प 'श्वेतकल्प' नाम से विख्यात हुआ॥ २-३॥

मत्प्रसूता च देवेशी श्वेताङ्गा श्वेतलोहिता।
श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद् गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥ ४

उस कल्पमें मुझसे उत्पन्न ब्रह्म नामसे जानी जानेवाली देवेश्वरी गायत्री भी श्वेत अंगोंवाली, श्वेत रक्तवाली तथा श्वेत वर्णवाली थीं॥ ४॥

तस्मादहं च देवेश त्वया गुह्येन वै पुनः।
विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातत्वमागतः॥ ५

तदनन्तर हे देवेश! आपने अपने उग्र तपसे सद्योजातत्वको प्राप्त मुझ शिवको जाना॥ ५॥

सद्योजातेति ब्रह्मैतद् गुह्यं चैतत्प्रकीर्तितम्।
तस्माद् गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यन्ति द्विजातयः॥ ६

मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।

मेरा यह सद्योजातरूप गुह्य ब्रह्मके रूपमें जाना जाता है। अतएव गुह्यत्वको प्राप्त मुझ सद्योजात शिवको जो द्विजातिगण जानेंगे, वे मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे, जहाँसे उनका पुनरागमन नहीं होता अर्थात् वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ ६½॥

यदा चैव पुनस्त्वासील्लोहितो नाम नामतः॥ ७

मत्कृतेन च वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः।

पुनः जब मेरा नाम लोहित था, तब मेरे द्वारा धारित लोहित वर्णके कारण वह कल्प लोहितकल्प नामसे कहा गया॥ ७½॥

तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसम्भवा॥ ८

लोहिताक्षी स्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता।

उस कल्पमें रक्तवर्णके मांस तथा हड्डियोंवाली, रक्त-वर्णका दूध प्रदान करनेवाली, लाल आँखोंवाली तथा लाल स्तनवाली धेनुरूपमें गायत्री अधिष्ठित हुईं॥ ८½॥

ततोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात्॥ ९

वामत्वाच्चैव देवस्य वामदेवत्वमागतः।

तदनन्तर उस धेनुके लोहितत्व, उस कल्पमें वर्णके बदल जाने तथा योगकी वामताके कारण मैं वामदेवत्वको प्राप्त हुआ अर्थात् मेरा नाम वामदेव पड़ गया॥ ९½॥

तत्रापि च महासत्त्व त्वयाहं नियतात्मना॥ १०

विज्ञातः स्वेन योगेन तस्मिन् वर्णान्तरे स्थितः।
ततश्च वामदेवेति ख्यातिं यातोऽस्मि भूतले॥ ११

हे महासत्त्व! उस कल्पमें भी नियत आत्मावाले आपने अपने योगबलसे लोहितवर्ण-स्थित मुझ परमेश्वरको जाना और तभीसे मैं पृथ्वीलोकमें वामदेव नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हो गया॥ १०-११॥

ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १२

जो भी द्विजातिगण मेरे वामदेवस्वरूपको जानेंगे, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करानेवाले मेरे रुद्रलोकमें निवास करेंगे॥ १२॥

यदाहं पुनरेवेह पीतवर्णो युगक्रमात्।
मत्कृतेन च नाम्ना वै पीतकल्पोऽभवत्तदा॥ १३

जब मैं युगक्रमसे पीतवर्णवाला हुआ, तब मेरे वर्णनामपर उस कल्पका नाम पीतकल्प हुआ॥ १३॥

मत्प्रसूता च देवेशी पीताङ्गी पीतलोहिता।
पीतवर्णा तदा ह्यासीद् गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥ १४

मेरे द्वारा उत्पन्न तथा ब्रह्म नामसे जानी जानेवाली देवेश्वरी गायत्रीका भी अंग पीला, रक्त पीला तथा वर्ण आदि सब पीला था॥ १४॥

तत्रापि च महासत्त्व योगयुक्तेन चेतसा।
यस्मादहं तैर्विज्ञातो योगतत्परमानसैः॥ १५

तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः।
तस्मात्तत्पुरुषत्वं वै ममैतत्कनकाण्डज॥ १६

हे महासत्त्व! उस कल्पमें भी योगपरायण मनवाले उन द्विजातियोंने योगयुक्त चित्तसे मुझे जाना। हे कनकाण्डज! उस कल्पमें तुमने भी मुझे पुनः तत्पुरुषरूपमें जाना; उसी कारणसे मेरा यह तत्पुरुष नाम हुआ॥ १५-१६॥

ये मां रुद्रं च रुद्राणीं गायत्रीं वेदमातरम्।
वेत्स्यन्ति तपसा युक्ता विमला ब्रह्मसङ्गताः॥ १७

तपस्यासे युक्त, विशुद्ध मनवाले तथा ब्रह्मपरायण जो लोग मुझ रुद्र तथा वेदमाता रुद्राणी गायत्रीकी आराधना करेंगे, वे पुनर्जन्मसे मुक्ति दिलानेवाले रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ $१७^{१}/_{२}$॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
यदाहं पुनरेवासं कृष्णवर्णो भयानकः॥ १८

पुनः जब मैंने भयानक कृष्णवर्ण धारण किया, तब मेरे वर्णके नामसे वह कल्प कृष्णकल्प कहा गया॥ $१८^{१}/_{२}$॥

मत्कृतेन च वर्णेन सङ्कल्पः कृष्ण उच्यते।
तत्राहं कालसङ्काशः कालो लोकप्रकालकः॥ १९

हे ब्रह्मन्! उस कल्पमें भी तुमने कालसदृश, कालरूप, लोकोंके लिये महाकाल तथा घोर पराक्रमवाले मुझ घोरको जाना॥ $१९^{१}/_{२}$॥

विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन् घोरो घोरपराक्रमः।
मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णाङ्गी कृष्णलोहिता॥ २०

हे देवेश! उस कल्पमें मुझसे उत्पन्न ब्रह्मसंज्ञावाली गायत्री भी कृष्ण अंगोंवाली, कृष्ण रक्तवाली तथा कृष्ण रूपवाली थीं॥ $२०^{१}/_{२}$॥

कृष्णरूपा च देवेश तदासीद् ब्रह्मसंज्ञिता।
तस्माद् घोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले॥ २१

अतएव इस भूतलपर जो लोग घोरत्वको प्राप्त मुझ शिवको जान लेंगे, शाश्वत रूपवाला मैं उनके लिये सौम्य तथा शान्त हो जाऊँगा॥ $२१^{१}/_{२}$॥

तेषामघोरः शान्तश्च भविष्याम्यहमव्ययः।
पुनश्च विश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन् ममाभवत्॥ २२

तदाप्यहं त्वया ज्ञातः परमेण समाधिना।
विश्वरूपा च संवृत्ता गायत्री लोकधारिणी॥ २३

हे ब्रह्मन्! पुनः जब मैं विश्वरूपत्वको प्राप्त हुआ, उस समय भी आपने परम समाधिसे मुझे जाना था। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाली गायत्री भी विश्वरूपा अर्थात् अनेक वर्णोंवाली थीं॥ २२-२३॥

तस्मिन् विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले।
तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि॥ २४

इस भूतलपर जो लोग विश्वत्वको प्राप्त मुझ परमात्माको जान लेंगे, उनके प्रति मैं सदाके लिये सौम्य तथा शान्त हो जाऊँगा॥ २४॥

यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः।
विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता॥ २५

सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः।
चत्वारस्ते मया ख्याताः पुत्रा वै लोकसम्मताः॥ २६

यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजानां च भविष्यति।
सर्वभक्षा च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति॥ २७

मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम्।
यस्माद्वेदाश्च वेद्यं च चतुर्धा वै भविष्यति॥ २८

भूतग्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैव च।
धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो मम पुत्रकाः॥ २९

तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम्।
चतुर्धावस्थितश्चैव चतुष्पादो भविष्यति॥ ३०

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्च महस्तथा।
जनस्तपश्च सत्यं च विष्णुलोकस्ततः परम्॥ ३१

अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थाने स्थाने तदक्षरम्।
भूर्भुवः स्वर्महश्चैव पादाश्चत्वार एव च॥ ३२

भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम्।
स्वर्लोको वै तृतीयश्च चतुर्थस्तु महस्तथा॥ ३३

पञ्चमस्तु जनस्तत्र षष्ठश्च तप उच्यते।
सत्यं तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम्॥ ३४

विष्णुलोकः स्मृतं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
स्कान्दमौमं तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम्॥ ३५

रुद्रलोकः स्मृतस्तस्मात्पदं तद्योगिनां शुभम्।
निर्ममा निरहङ्काराः कामक्रोधविवर्जिताः॥ ३६

इसी कारण यह कल्प विश्वरूपकल्प नामसे जाना गया और ये गायत्री विश्वरूपा नामसे कही गयीं। वे सर्वरूपा थीं और ये सद्योजात आदि चार कुमार मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हुए, जिनकी लोकमें विशेष प्रसिद्धि हुई॥ २५-२६॥

ये गायत्री शब्द और अर्थरूपसे मेध्या अर्थात् यज्ञयोग्या होंगी, सर्वभक्षा अर्थात् पातकादिविनाशिका होंगी। गायत्रीके [सावित्रीके] सर्ववर्णा (सर्वशब्दात्मिका) होनेसे ही चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था प्रजामें व्यवस्थित होगी॥ २७॥

इसीलिये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चार प्रकारके ये पुरुषार्थ हैं और वेद भी चार हैं। जीव-समुदायोंके भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके रूप हैं तथा आश्रम भी चार हैं। दया, दान, तप, सत्य—ये धर्मके चार पाद हैं एवं मेरे पुत्र भी चार हैं॥ २८-२९॥

इसीलिये यह चराचर जगत् युगरूप चार अवस्थाओंवाला है और यह चतुष्पादात्मक लोक भी भेदानुसार चार रूपोंमें अवस्थित है॥ ३०॥

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—इन सबके परे विष्णुलोक स्थित है॥ ३१॥

अष्टाक्षररूप लोक अपने-अपने स्थानपर अक्षरात्मकरूपमें विद्यमान हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक ही चार पादके रूपमें अवस्थित हैं। इनमें भूर्लोक पहला पाद है, भुवर्लोक दूसरा पाद है, स्वर्लोक तीसरा तथा महर्लोक चौथा पाद है॥ ३२-३३॥

पाँचवाँ जनलोक, छठा तपलोक तथा पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करनेवाले लोगोंका सत्यलोक सातवाँ लोक कहा गया है॥ ३४॥

विष्णुलोक वह पद है, जहाँ पहुँचकर जीवका पुनः आगमन नहीं होता है। उससे भी आगे स्कन्दलोक तथा उससे भी परे पार्वतीलोक है, जो सर्वविध सिद्धियोंसे युक्त माना गया है॥ ३५॥

रुद्रलोक उससे परे विद्यमान है। वह पद योगियोंके लिये अत्यन्त शुभकर कहा गया है। ममतारहित, अहंकार-

द्रक्ष्यन्ति तद् द्विजा युक्ता ध्यानतत्परमानसाः।
यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती॥ ३७

पादान्तं विष्णुलोकं वै कौमारं शान्तमुत्तमम्।
औमं माहेश्वरं चैव तस्माद् दृष्टा चतुष्पदा॥ ३८

तस्मात्तु पशवः सर्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः।
ततश्चैषां भविष्यन्ति चत्वारस्ते पयोधराः॥ ३९

सोमश्च मन्त्रसंयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युतः।
जीवः प्राणभृतां ब्रह्मन् पुनः पीतस्तनाः स्मृताः॥ ४०

तस्मात्सोममयं चैव अमृतं जीवसंज्ञितम्।
चतुष्पादा भविष्यन्ति श्वेतत्वं चास्य तेन तत्॥ ४१

यस्माच्चैव क्रिया भूत्वा द्विपदा च महेश्वरी।
दृष्टा पुनस्तथैवैषा सावित्री लोकभाविनी॥ ४२

तस्माच्च द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः शुभाः।
तस्माच्चेयमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी॥ ४३

या वै दृष्टा महासत्त्वा सर्वभूतधरा त्वया।
तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजानां वै भविष्यति॥ ४४

अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति।
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः॥ ४५

तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः।
तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः॥ ४६

ईशित्वे च वशित्वे च सर्वगं सर्वतः स्थितम्।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं वपुः॥ ४७

मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
इत्येवमुक्तो भगवान् ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः॥ ४८

शून्य, काम-क्रोधसे विवर्जित तथा ध्यानपरायण चित्तवाले योगीजन ही उस लोकका दर्शन करेंगे॥ ३६१/२॥

और जो आपने चार पादोंवाली इस गायत्री (सरस्वती)-को देखा है, उसीके चार चरणोंके रूपमें चरम पदवाला विष्णुलोक, शान्त तथा उत्तम स्कन्दलोक, पार्वतीलोक एवं रुद्रलोक अवस्थित हैं। ऐसी माहात्म्ययुक्त सरस्वतीका आपने दर्शन किया है॥ ३७-३८॥

इससे सभी पशु भी चार पैरोंवाले होंगे और इसीसे इनके चार स्तन भी होंगे। हे ब्रह्मन्! मेरे मुखसे गिरा हुआ मन्त्रयुक्त सोमरूप अमृत प्राणधारियोंका जीवन बनकर उनके स्तनमें निवास करेगा। इसलिये वे स्तन 'पीतस्तन' कहे जायँगे॥ ३९-४०॥

उसीके कारण सोममय अमृत जीवनसंज्ञावाला होगा और उनके दुग्धका श्वेतत्व उसी सोमरूपत्वके कारण होगा—ऐसे गुणोंवाले वे चतुष्पाद होंगे॥ ४१॥

आपके द्वारा देखी गयी यह लोकभाविनी सावित्री महेश्वरी पुनः दो पादोंवाली होकर क्रियारूप धारण करेगी; जिससे सभी शुभ नर-नारी दो पादों तथा दो स्तनोंवाले होंगे॥ ४२१/२॥

सभी प्राणियोंको धारण करनेवाली तथा महान् शक्तिसे सम्पन्न जिस देवीका आपने दर्शन किया है; वह महेश्वरी अजा होकर जब सर्ववर्णमय विश्वरूप धारण करेगी, तब उसीसे सभी प्रजाएँ भी अनेक वर्णोंवाली होंगी॥ ४३-४४॥

तब महातेज तथा अमोघ वीर्यवाले अज विश्वरूप धारण करेंगे और इनके मुखमें सर्वत्र अग्नि विराजमान होगी; उसी कारण सर्वव्यापी पशुरूपी अग्नि पवित्र मानी जायगी॥ ४५१/२॥

विशुद्ध आत्मावाले जो द्विजगण अपनी तपस्यासे ईशित्व (ईश्वरत्व) तथा वशित्व (योगसिद्धि)-में सभी जगह मुझे भी सर्वव्यापी रूपमें विराजमान देखेंगे; वे रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित होकर मानवशरीरका त्याग करके मेरा सान्निध्य प्राप्त करेंगे और उनका पुनर्जन्म नहीं होगा॥ ४६-४७१/२॥

सूतजी कहते हैं कि हे द्विजो! शिवजीके इस

प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः।
य एवं भगवान् विद्वान् गायत्र्या वै महेश्वरम्॥ ४९

विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर।
तस्य देहि परं स्थानं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत्॥ ५०

प्रकार कहनेपर भगवान् ब्रह्माने प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक रुद्रसे पुनः कहा—हे भगवन्! जो विद्वान् सर्वव्यापी विश्वात्मा आप महेश्वरको गायत्रीसहित सर्वत्र स्थित देखे तथा हे ईश्वर! आपकी एवं गायत्रीकी आराधना करे, उसे आप परमपद दें। इसपर उन शिवजीने कहा—वैसा ही होगा॥ ४८—५०॥

तस्माद्विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चास्य महात्मनः।
स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद् ब्रह्मणः प्रभोः॥ ५१

इसलिये प्रभु शिवद्वारा ब्रह्माजीके प्रति कहे गये वचनके अनुसार जो विद्वान् गायत्री तथा महात्मा रुद्रका विश्वरूपत्व जान लेता है, वह ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्मके साथ उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है॥ ५१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'विविधकल्पवर्णनं' नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विविधकल्पवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

श्वेतवाराहकल्पके अट्ठाईस द्वापरोंके अन्तमें प्रकट होनेवाले अट्ठाईस व्यासों, अट्ठाईस शिवावतारों तथा विविध शिवयोगियोंका वर्णन

सूत उवाच

श्रुत्वैवमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम्।
पुनः प्रणम्य देवेशं रुद्रमाह प्रजापतिः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] शिवके द्वारा कथित सम्पूर्ण वचनोंको सुनकर प्रजापति ब्रह्माने उन देवाधिदेव शिवको प्रणाम करके पुनः उनसे कहा—॥ १॥

भगवन् देवदेवेश विश्वरूप महेश्वर।
उमाधव महादेव नमो लोकाभिवन्दित॥ २

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे विश्वरूप! हे महेश्वर! हे उमापते! हे महादेव! हे लोकवन्द्य! आपको नमस्कार है॥ २॥

विश्वरूप महाभाग कस्मिन् काले महेश्वर।
या इमास्ते महादेव तनवो लोकवन्दिताः॥ ३

कस्यां वा युगसम्भूत्यां द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।

हे विश्वरूप! हे महाभाग! हे महेश्वर! हे महादेव! आपके ये जो लोकवन्द्य अवतार हैं, वे किस कालमें तथा किस युगमें द्विजातियोंके द्वारा इस लोकमें देखे जा सकेंगे?॥ ३ $^{1}/_{2}$॥

केन वा तपसा देव ध्यानयोगेन केन वा॥ ४

नमस्ते वै महादेव शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः।

हे देव! हे महादेव! आपको नमस्कार है। द्विजातिगण किस तप या ध्यानयोगके द्वारा आपका दर्शन कर पानेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ ४ $^{1}/_{2}$॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शर्वः सम्प्रेक्ष्य तं पुरः॥ ५

स्मयन् प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसम्भवः।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदसे प्रादुर्भूत महादेव रुद्र अपने सम्मुख-स्थित उन पितामहको देखकर मुसकराते हुए उनसे बोले॥ ५ $^{1}/_{2}$॥

श्रीभगवानुवाच

तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च॥ ६

भगवान् शिव बोले—मानव मुझे न तो केवल

न तीर्थफलयोगेन क्रतुभिर्वाप्तदक्षिणैः।
न वेदाध्ययनैर्वापि न वित्तेन न वेदनैः॥ ७
न शक्यं मानवैर्द्रष्टुमृते ध्यानादहं त्विह।
सप्तमे चैव वाराहे ततस्तस्मिन् पितामह॥ ८
कल्पेश्वरोऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः।
मनुर्वैवस्वतश्चैव तव पौत्रो भविष्यति॥ ९
तदा चतुर्युगावस्थे तस्मिन् कल्पे युगान्तिके।
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च॥ १०
उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन् पुनरस्मिन् युगान्तिके।
युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे॥ ११
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन् यदा व्यासः स्वयं प्रभुः।
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ १२
भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः।
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे॥ १३
तत्र शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति तदा मम।
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः॥ १४
चत्वारस्तु महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम्॥ १५
मत्समीपं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः।
ततः पुनर्यदा ब्रह्मन् द्वितीये द्वापरे प्रभुः॥ १६
प्रजापतिर्यदा व्यासः सद्यो नाम भविष्यति।
तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः॥ १७
भविष्यामि कलौ तस्मिन् शिष्यानुग्रहकाम्यया।
तत्रापि मम ते शिष्या नामतः परिकीर्तिताः॥ १८
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तदा।
प्राप्य योगं तथा ध्यानं स्थाप्य ब्रह्म च भूतले॥ १९
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति सहचारित्वमेव च।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः॥ २०
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके।
तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः॥ २१

तपसे, न आचारसे, न दानसे, न धर्मफलसे, न तीर्थाटनसे, न योगसे, न पुष्कल दक्षिणावाले यज्ञोंसे, न वेदोंके अध्ययनसे, न धनसे तथा न तो शास्त्रोंके परिशीलनमात्रसे ही देख सकनेमें समर्थ हैं, मेरा दर्शन ध्यानरहित साधनाके द्वारा नहीं किया जा सकता है॥ ६–७१/२॥

हे पितामह! वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सभी लोकोंको प्रकाशित करनेवाला और कल्पका स्वामी मेरा अवताररूप वैवस्वत मनु आपके पौत्रके रूपमें अवतरित होगा॥ ८–९॥

उसी कल्पके द्वापरयुगके अन्तमें लोकोंपर अनुग्रह तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं अवतार ग्रहण करूँगा। पुनः हे ब्रह्मन्! युगप्रवृत्तिके अनुसार इसी प्रथम द्वापरयुगके अन्तमें जब स्वयं प्रभु व्यास होंगे, उस समय ब्राह्मणोंके हितार्थ मेरा अवतार होगा। इसके अनन्तर उसी युगकी समाप्तिपर कलिमें मैं शिखाधारी 'श्वेत' नामक महामुनिके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा और पर्वतोंमें उत्तम हिमालयके छागल नामवाले शिखरपर निवास करूँगा॥ १०—१३॥

वहाँपर उस समय श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य तथा श्वेतलोहित नामक शिखायुक्त मेरे चार शिष्य प्रकट होंगे। ये चारों महात्मा, ब्रह्मनिष्ठ और वेदोंके पारगामी विद्वान् होंगे। तदनन्तर ध्यानयोगमें पूर्ण तत्पर वे ब्रह्मभूयिष्ठ शिष्य ब्रह्मकी परम गतिको जानकर मेरा सान्निध्य प्राप्त करेंगे॥ १४–१५१/२॥

हे ब्रह्मन्! इसके बाद द्वितीय द्वापरके अन्तमें पुनः जब 'सद्य' नामक प्रजापतिरूप प्रभु व्यास होंगे, उसके अनन्तर कलिमें अपने शिष्योंके अनुग्रहकी कामनासे तथा लोकके कल्याणार्थ मैं सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ १६–१७१/२॥

वहाँ भी दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक तथा केतुमान् नामसे प्रसिद्ध मेरे शिष्य प्रकट होंगे। वे योग तथा ध्यानको पूर्णतः प्राप्त होकर भूतलपर ब्रह्मज्ञान स्थापित करके शिवलोकको प्राप्त होंगे और सदा मेरे सान्निध्यमें रहेंगे॥ १८–१९१/२॥

पुनः तीसरे द्वापरके अन्तमें जब 'भार्गव' नामक व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतीर्ण होऊँगा और

विकोशश्च विकेशश्च विपाशः शापनाशनः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः॥ २२
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः॥ २३
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः।
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारोऽपि तपोधनाः॥ २४
द्विजश्रेष्ठा भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दरो दुरतिक्रमः॥ २५
प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगयुक्ता महौजसः॥ २६
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा॥ २७
तदा चापि भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः।
अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मैककलागतिः॥ २८
चत्वारस्तु महाभागा विमलाः शुद्धयोनयः।
शिष्या मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः॥ २९
सनकः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यश्च सनातनः।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहङ्कृताः॥ ३०
मत्समीपमुपेष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः॥ ३१
तदाप्यहं भविष्यामि लोगाक्षिर्नाम नामतः।
तत्रापि मम ते शिष्या योगात्मानो दृढव्रताः॥ ३२
भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः।
सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च॥ ३३
योगात्मानो महात्मानः सर्वे वै दग्धकिल्बिषाः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः॥ ३४
मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः॥ ३५
विभुनामा महातेजाः प्रथितः पूर्वजन्मनि।
तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ ३६

उस समय भी विकोश, विकेश, विपाश तथा शापनाशन नामवाले मेरे चार शिष्य होंगे। उसी पूर्वोक्त ध्यान-योगके द्वारा वे महान् ओजस्वी शिष्य भी शिव-लोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः आगमन नहीं होता है॥ २०—२२½॥

चौथे द्वापरके अन्तमें जब 'अंगिरा' नामक व्यास होंगे, तब मैं भी सुहोत्र नामसे अवतीर्ण होऊँगा और उस समय भी मेरे चार पुत्र प्रकट होंगे। सुमुख, दुर्मुख, दुर्दर तथा दुरतिक्रम नामवाले मेरे वे सभी पुत्र तपस्वी, द्विजश्रेष्ठ, योगात्मा एवं दृढ़ व्रतवाले होंगे॥ २३—२५॥

विशुद्ध मन तथा नष्टपापवाले, योगयुक्त और महान् ओजस्वी वे पुत्र भी उसी मार्गसे योगकी सूक्ष्म गतिको प्राप्त होकर रुद्रलोकको जायँगे, जहाँसे जीवका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ २६½॥

पाँचवें द्वापरके अन्तमें जब 'सविता' नामक व्यास होंगे; उस समय भी लोकोंके अनुग्रहार्थ योगात्मा, एककलागतिवाला तथा महान् तपोव्रती मैं 'कंक' नामसे अवतार ग्रहण करूँगा॥ २७-२८॥

उस समय सनक, सनन्दन, प्रभु सनातन तथा विभु सनत्कुमार नामक मेरे चार शिष्य प्रकट होंगे। महाभाग्यशाली, विशुद्ध चित्तवाले, शुद्धयोनि, योगात्मा, दृढ़व्रती, ममतारहित तथा अहंकारशून्य वे शिष्य पुनर्जन्मसे मुक्ति प्राप्त करानेवाले मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे॥ २९-३०½॥

पुनः छठे द्वापरके अन्तमें जब 'मृत्यु' नामक महान् ऐश्वर्यशाली व्यासका अवतार होगा, तब मैं लोगाक्षि नामसे आविर्भूत होऊँगा। उस समय भी सुधामा, विरजा, शंखपाद तथा रज नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे योगात्मा, दृढ़ व्रतवाले, महाभाग्यवान् एवं लोकविश्रुत होंगे॥ ३१—३३॥

योगात्मा, महान् आत्मावाले तथा ध्यानयोगसे सम्पन्न वे सभी शिष्य उसी मार्गका आश्रय लेकर मेरे समीप पहुँचेंगे, जहाँसे पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ३४½॥

पूर्वजन्ममें विभु नामसे प्रख्यात महातेजस्वी शतक्रतु नामक व्यास जब सातवें द्वापरके अन्तमें होंगे, उस समय भी मैं उस द्वापरकी समाप्तिपर कलिमें सभी

जैगीषव्यो विभुः ख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तथा॥ ३७
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहनः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगपरायणाः॥ ३८
गमिष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकं निरामयम्।
वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्ते भविष्यति॥ ३९
यदा तदा भविष्यामि नाम्नाहं दधिवाहनः।
तत्रापि मम ते पुत्रा योगात्मानो दृढव्रताः॥ ४०
भविष्यन्ति महायोगा येषां नास्ति समो भुवि।
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः॥ ४१
बाष्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं ज्ञानिनो दग्धकिल्बिषाः॥ ४२
मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
परिवर्ते तु नवमे व्यासः सारस्वतो यदा॥ ४३
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ४४
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवाङ्गिरसौ तदा।
भविष्यन्ति महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ४५
ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यन्ति तथैव ते।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः॥ ४६
तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ४७
दशमे द्वापरे व्यासः त्रिपाद्वै नाम नामतः।
यदा भविष्यते विप्रस्तदाहं भविता मुनिः॥ ४८
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे।
नाम्ना भृगोस्तु शिखरं प्रथितं देवपूजितम्॥ ४९
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥ ५०
योगात्मानो महात्मानस्तपोयोगसमन्विताः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकिल्बिषाः॥ ५१
एकादशे द्वापरे तु व्यासस्तु त्रिव्रतो यदा।
तदाप्यहं भविष्यामि गङ्गाद्वारे कलौ तथा॥ ५२

योगियोंमें श्रेष्ठ विभु जैगीषव्य नामसे प्रसिद्ध होऊँगा। उस युगमें भी सारस्वत, मेघ, मेघवाह तथा सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र होंगे। ध्यानयोगमें परायण वे महात्मा उसी योगमार्गपर चलकर निर्विकार शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ ३५—३८½॥

पुनः आठवें द्वापरके अन्तमें जब 'वसिष्ठ' नामक व्यास होंगे, तब दधिवाहन नामसे मैं अवतरित होऊँगा। उस समय भी कपिल, आसुरि, पंचशिखमुनि तथा महायोगी बाष्कल—ये मेरे परम योगात्मा एवं दृढ़व्रती चार पुत्र होंगे, जिनके सदृश महान् योगी भूतलपर कोई नहीं होगा। वे धर्मात्मा तथा महान् ओजस्वी पुत्र भी माहेश्वर योगमें सिद्ध होकर ज्ञानसम्पन्न और पापमुक्त हो मेरे सान्निध्यको प्राप्त होंगे, जहाँसे जीवका पुनः आगमन (जन्म) नहीं होता है॥ ३९—४२½॥

नौवें द्वापरके अन्तमें जब 'सारस्वत' नामके व्यास होंगे, तब मैं भी ऋषभनामसे अवतीर्ण होऊँगा। उस समय भी पराशर, गर्ग, भार्गव तथा अंगिरा नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे, जो महान् ओजस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदोंके पारगामी विद्वान् एवं महान् आत्मावाले होंगे। वे भी उसी प्रकार ध्यानमार्गको प्राप्त होकर इस लोकसे प्रस्थान करेंगे। तपोबलमें उत्कृष्ट, शाप-अनुग्रहके पूर्ण विद्वान् एवं तपोव्रती वे सभी पुत्र भी पूर्वोक्त उसी योगमार्गका आश्रय लेकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे, जहाँसे पुनः आगमन नहीं होता है॥ ४३—४७॥

दसवें द्वापरके अन्तमें जब त्रिपाद् नामक विप्ररूप व्यास होंगे, तब मैं भृगुमुनिके रूपमें पर्वतोंमें उत्तम हिमालयके रमणीक भृगुतुंग नामक श्रेष्ठ पर्वत-शिखरपर अवतीर्ण होऊँगा। वह शिखर मेरे ही नामपर 'भृगुतुंग' नामसे प्रसिद्ध होगा तथा देवताओंद्वारा पूजित होगा॥ ४८-४९॥

उस समय भी बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग तथा तपोधन—ये मेरे चार पुत्र होंगे, जो दृढ़व्रती, योगात्मा, महात्मा एवं तपोयोगसे युक्त होंगे। वे अपनी तपस्यासे पापोंको दग्ध करके रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ५०-५१॥

ग्यारहवें द्वापरके अन्तमें जब 'त्रिव्रत' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं कलिमें गंगाद्वारक्षेत्रमें

उग्रो नाम महातेजाः सर्वलोकेषु विश्रुतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ५३
लम्बोदरश्च लम्बाक्षो लम्बकेशः प्रलम्बकः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ५४
द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा यदा मुनिः।
भविष्यति महातेजा व्यासस्तु कविसत्तमः॥ ५५
तदाप्यहं भविष्यामि कलाविह युगान्तिके।
हैतुकं वनमासाद्य अत्रिर्नाम्ना परिश्रुतः॥ ५६
तत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः।
भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः॥ ५७
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ५८
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु।
धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा॥ ५९
तदाप्यहं भविष्यामि बालिर्नाम महामुनिः।
बालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने॥ ६०
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा॥ ६१
महायोगबलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥ ६२
यदा व्यासस्तरक्षुस्तु पर्याये तु चतुर्दशे।
तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके॥ ६३
वंशे त्वङ्गिरसां श्रेष्ठे गौतमो नाम नामतः।
भविष्यति महापुण्यं गौतमं नाम तद्वनम्॥ ६४
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा।
अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः॥ ६५
योगात्मानो महात्मानः सर्वे योगसमन्विताः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥ ६६
ततः पञ्चदशे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते।
त्रैय्यारुणिर्यदा व्यासो द्वापरे समपद्यत॥ ६७
तदाप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजः।
तत्र वेदशिरो नाम अस्त्रं तत्पारमेश्वरम्॥ ६८

अवतीर्ण होऊँगा तथा महातेजस्वी मैं उग्र नामसे सभी लोकोंमें विख्यात होऊँगा। उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश एवं प्रलम्बक नामवाले मेरे चार महातेजस्वी पुत्र होंगे। वे माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ ५२—५४॥

बारहवें द्वापरयुगके अन्तमें जब मुनि 'शततेजा' नामक महातेजस्वी तथा कविश्रेष्ठ व्यास होंगे, उस समय भी युगान्तमें इस लोकमें कलिमें मैं हैतुकवनमें अवतीर्ण होऊँगा और 'अत्रि' नामसे विख्यात होऊँगा॥ ५५-५६॥

उस समय भी सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य तथा सर्व नामक मेरे चार पुत्र होंगे, जो रुद्रलोककी प्राप्तिके लिये तत्पर, महान् योगी तथा सदा भस्मसे अनुलिप्त शरीरवाले होंगे। वे भी माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर शिवलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ५७-५८॥

पुनः क्रमसे तेरहवें द्वापरयुगका अन्त आनेपर जब धर्मरूप 'नारायण' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं गन्धमादन पर्वतपर पवित्र बालखिल्य आश्रममें महामुनि 'बालि' नामसे अवतरित होऊँगा॥ ५९-६०॥

उस समय भी सुधामा, काश्यप, वासिष्ठ तथा विरजा नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे महान् तपस्वी, महायोगसे सम्पन्न, विशुद्धात्मा एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी होंगे और माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ ६१-६२॥

चौदहवें द्वापरके अन्तमें जब 'तरक्षु' नामक व्यास होंगे, उस समय भी मैं अंगिरामुनिके उत्तम वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और वह स्थान परम पवित्र 'गौतमवन' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ६३-६४॥

उस कलिमें भी अत्रि, देवसद, श्रवण तथा श्रविष्ठक नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे सभी योगात्मा, महान् आत्मावाले और योगयुक्त पुत्र माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ६५-६६॥

पुनः क्रमसे पन्द्रहवें द्वापरका अन्त होनेपर जब 'त्रैय्यारुणि' नामक व्यास होंगे, उस समय भी द्विजरूप 'वेदशिरा' नामसे मैं अवतार ग्रहण करूँगा।

भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः।
हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यां नगोत्तमे॥ ६९

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥ ७०

योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥ ७१

व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति।
तत्र योगप्रदानाय भक्तानां च यतात्मनाम्॥ ७२

तदाप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नाम नामतः।
भविष्यति सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम्॥ ७३

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति च योगिनः।
काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥ ७४

तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं गन्तारो रुद्रमेव हि॥ ७५

ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः॥ ७६

तदाप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः।
हिमवच्छिखरे रम्ये महोत्तुङ्गे महालये॥ ७७

सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा योगज्ञा ब्रह्मवादिनः॥ ७८

भविष्यन्ति महात्मानो निर्ममा निरहङ्कृताः।
उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥ ७९

तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणां ध्यानयोगिनाम्।
भविष्यन्ति तदा काले सर्वे ते ध्यानयुञ्जकाः॥ ८०

योगाभ्यासरताश्चैव हृदि कृत्वा महेश्वरम्।
महालये पदं न्यस्तं दृष्ट्वा यान्ति शिवं पदम्॥ ८१

ये चान्येऽपि महात्मानः कलौ तस्मिन् युगान्तिके।
ध्याने मनः समाधाय विमलाः शुद्धबुद्धयः॥ ८२

मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः।
गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम्॥ ८३

वहाँ मैं 'वेदशिरा' नामक अति दिव्य पारमेश्वर अस्त्र प्रकट करूँगा और पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयके पृष्ठदेशमें सरस्वतीके तटपर वेदशीर्ष नामक पर्वत मेरा आश्रयस्थल होगा॥ ६७—६९॥

उस समय भी कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर तथा कुनेत्रक नामवाले मेरे तपस्वी पुत्र प्रकट होंगे। योगात्मा, महात्मा एवं नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले वे सभी पुत्र माहेश्वरयोगकी सिद्धि करके शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ ७०-७१॥

सोलहवें द्वापरके अन्तमें जब देव नामक व्यास होंगे, तब भक्तों तथा संयत आत्मावाले जनोंको योग प्रदान करनेके निमित्त मैं गोकर्ण नामसे अवतार लूँगा और वह स्थान परम पवित्र गोकर्णवनके नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ७२-७३॥

उस समय भी काश्यप, उशना, च्यवन तथा बृहस्पति नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे। वे भी उसी मार्गसे ध्यानयोगसे युक्त होकर माहेश्वरयोग प्राप्त करके रुद्रलोक जायँगे॥ ७४-७५॥

पुनः क्रमसे सत्रहवें द्वापरके अन्तमें जब देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, तब भी मैं हिमालयके अति उच्च महालय नामक रमणीक शिखरपर गुहावासी नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वह महालयस्थल परम पवित्र तथा सिद्धक्षेत्र माना जायगा। वहाँपर भी उतथ्य, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे। वे योगवेत्ता, ब्रह्मवादी, महात्मा, मोहरहित तथा अहंकारशून्य होंगे॥ ७६—७९॥

कलियुगमें उन पुत्रोंके ध्यानयोग करनेवाले हजारों शिष्य होंगे। ध्यान करनेवाले तथा योगाभ्यासपरायण वे सभी शिष्य महेश्वरको हृदयमें धारण करके महालय-क्षेत्रमें मेरे चरणोंका दर्शन करके शिवपदको प्राप्त होंगे॥ ८०-८१॥

इनके अतिरिक्त अन्य जो भी महात्मा उस द्वापरके अन्तमें कलिमें अपना मन ध्यानमें लगाकर निर्मल आत्मा तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो जायँगे, वे शोकरहित होकर मेरे अनुग्रहसे रुद्रलोकको प्राप्त होंगे। पुण्यप्रद

तीर्णस्तारयते जन्तुर्दश पूर्वान् दशोत्तरान्।
आत्मानमेकविंशं तु तारयित्वा महालये॥ ८४

मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः।
ततोऽष्टादशमे चैव परिवर्ते यदा विभो॥ ८५

तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः॥ ८६

सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते।
हिमवच्छिखरे रम्ये शिखण्डी नाम पर्वतः॥ ८७

शिखण्डिनो वनं चापि यत्र सिद्धनिषेवितम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः॥ ८८

वाचश्रवा ऋचीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः।
योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते वेदपारगाः॥ ८९

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संवृताः।
अथ एकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते॥ ९०

व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि जटामाली च नामतः॥ ९१

हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ९२

हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षी कुथुमिस्तथा।
ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥ ९३

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः।
ततो विंशतिमश्चैव परिवर्तो यदा तदा॥ ९४

गौतमस्तु तदा व्यासो भविष्यति महामुनिः।
तदाप्यहं भविष्यामि अट्टहासस्तु नामतः॥ ९५

अट्टहासप्रियाश्चैव भविष्यन्ति तदा नराः।
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः॥ ९६

देवदानवयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ ९७

योगात्मानो महात्मानो ध्यायिनो नियतव्रताः।
सुमन्तुर्बर्बरी विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः॥ ९८

महालयक्षेत्रमें जाकर माहेश्वरपदका दर्शन करके प्राणी अपनी दस पूर्वकी तथा दस बादकी और अपनी स्वयं—इस प्रकार इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार महालयक्षेत्रमें पहुँचकर लोग अपने वंशका उद्धार करके मेरी कृपासे कष्टसे रहित होकर रुद्रलोकको प्राप्त करेंगे॥ ८२—८४½॥

हे विभो! पुनः अठारहवें द्वापरके अन्तमें जब ऋतंजयमुनि नामक व्यास होंगे, तब मैं सिद्धिप्रदायक, पुण्यप्रद तथा देव-दानवोंसे पूजित रमणीक हिमालय-शिखरपर शिखण्डी नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और वह शिखर मेरे नामसे शिखण्डी पर्वत तथा वह क्षेत्र शिखण्डीका वन कहा जायगा, जहाँ सिद्ध महात्मा निवास करेंगे॥ ८५—८७½॥

वहाँपर भी वाचश्रवा, ऋचीक, श्यावाश्व तथा यतीश्वर नामक मेरे पुत्र होंगे। वे सब परम तपस्वी, योगात्मा, महात्मा तथा वेदोंके पारगामी विद्वान् होंगे, जो माहेश्वर योगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ८८-८९½॥

तदनन्तर क्रमसे उन्नीसवें द्वापरके अन्तमें महामुनि भरद्वाज तो व्यास होंगे और उस समय मैं हिमालयके शिखरपर विराजमान रमणीक जटायु पर्वतपर जटामाली नामसे अवतीर्ण होऊँगा। उस समय भी हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षी तथा कुथुमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे। वे महाप्रतापी, ऐश्वर्ययुक्त, योग-ध्यानपरायण और नैष्ठिक ब्रह्मचारी होंगे। वे सब माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ९०—९३½॥

पुनः जब बीसवें द्वापरका अन्त होगा, तब उस समय महामुनि गौतम तो व्यास होंगे और मैं भी उसी समय हिमालय-क्षेत्रमें अट्टहास नामसे अवतरित होऊँगा। तभीसे लोगोंकी अट्टहासके प्रति महान् प्रीति हो जायगी। वह क्षेत्र महागिरि अट्टहासके नामसे विख्यात होगा और देवता, दानव, यक्ष, इन्द्र, सिद्ध-महात्मा तथा चारण वहाँ सदा निवास करेंगे॥ ९४—९६½॥

वहींपर सुमन्तु, बर्बरी, विद्वान् कबन्ध तथा कुशिकन्धर—ये मेरे चार पुत्र होंगे। वे महान् ओजस्वी,

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ ९९
वाचश्रवाः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः।
तदाप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः॥ १००
तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं शुभम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः॥ १०१
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
योगात्मानो महात्मानो नियता ऊर्ध्वरेतसः॥ १०२
नैष्ठिकं व्रतमास्थाय रुद्रलोकाय ते गताः।
द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा॥ १०३
तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः॥ १०४
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन् भवं चैव हलायुधम्।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः॥ १०५
भल्लवी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुः कुशस्तथा।
प्राप्य माहेश्वरं योगं तेऽपि ध्यानपरायणाः॥ १०६
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः।
परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः॥ १०७
व्यासो हि भविता ब्रह्मंस्तदाहं भविता पुनः।
श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रस्तु धार्मिकः॥ १०८
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे।
तेन कालञ्जरो नाम भविष्यति स पर्वतः॥ १०९
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥ ११०
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
परिवर्ते चतुर्विंशे व्यासो ऋक्षो यदा विभो॥ १११
तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगान्तिके।
शूली नाम महायोगी नैमिषे देववन्दिते॥ ११२
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः।
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥ ११३
तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकाय संस्थिताः।
पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ ११४

योगात्मा, महात्मा, ध्यानपरायण एवं दृढ़व्रती होंगे, जो माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ९७-९८१/२॥

पुनः क्रमसे इक्कीसवें द्वापरके अन्तमें जब ऋषिप्रवर वाचश्रवा व्यास होंगे, तब मैं भी दारुक नामसे आविर्भूत होऊँगा; इसलिये वह स्थान कल्याणप्रद तथा पुण्यकर होगा और मेरे नामपर वह देवदारुवनके नामसे प्रसिद्ध होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम नामवाले मेरे चार पुत्र होंगे; जो महाप्रतापी, योगात्मा, महात्मा, संयत आत्मावाले एवं ब्रह्मचारी होंगे। वे सब निष्ठापूर्वक योगव्रतका पालन करके रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ ९९—१०२१/२॥

बाईसवें द्वापरके अन्तमें जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं महामुनि 'भीम' नामसे हल धारण किये काशीमें अवतार ग्रहण करूँगा, जहाँपर उस कलिमें इन्द्रसहित सभी देवतागण अस्त्ररूपमें हल धारण करनेवाले हलायुध मुझ शिवका दर्शन प्राप्त करेंगे॥ १०३-१०४१/२॥

वहाँपर भी भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु तथा कुश नामक मेरे चार पुत्र होंगे। अतिशय धर्मनिष्ठ, ध्यानपरायण, विशुद्धात्मा एवं ब्रह्मभावको प्राप्त वे पुत्र भी माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर शिवलोकको प्राप्त होंगे॥ १०५-१०६१/२॥

हे ब्रह्मन्! पुनः तेईसवें द्वापरके अन्तमें जब मुनि तृणबिन्दु नामक व्यास होंगे, उस समय मैं धर्मनिष्ठ तथा महाकाय मुनिपुत्रके रूपमें 'श्वेत' नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहाँ उत्तम पर्वतपर मैं कालको जीर्ण (व्यतीत) करूँगा, अतः वह पर्वत 'कालंजर' नामसे विख्यात होगा। वहाँपर भी उशिक, बृहदश्व, देवल तथा कवि नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। वे माहेश्वर योगको प्राप्त होकर रुद्रलोक जायँगे॥ १०७—११०१/२॥

हे विभो! चौबीसवें द्वापरके अन्तमें जब ऋक्षमुनि व्यास होंगे, तब मैं उस युगान्त तथा कलिके प्रारम्भमें देववन्द्य नैमिषारण्यमें महान् योगीके रूपमें 'शूली' नामसे अवतार लूँगा। वहाँ भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरद्वसु नामक मेरे चार तपोधन शिष्य होंगे। वे भी उसी योगमार्गसे रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ १११—११३१/२॥

वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति।
तदाप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः॥ ११५
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुभाण्डश्च प्रवाहकः॥ ११६
प्राप्य माहेश्वरं योगममृतत्वाय ते गताः।
षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः॥ ११७
तदाप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः।
पुरं भद्रवटं प्राप्य कलौ तस्मिन् युगान्तिके॥ ११८
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः।
उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः॥ ११९
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः।
सप्तविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ १२०
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः।
तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः॥ १२१
प्रभासतीर्थमासाद्य योगात्मा योगविश्रुतः।
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः॥ १२२
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
योगात्मानो महात्मानो विमलाः शुद्धबुद्धयः॥ १२३
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं ततो गताः।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥ १२४
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामहः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥ १२५
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः।
वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥ १२६
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया।
लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥ १२७
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा कायमनाथकम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥ १२८
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लकुली नाम नामतः॥ १२९
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा।
भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति॥ १३०

पुनः क्रमिक रूपसे पचीसवें द्वापरके अन्तमें जब वसिष्ठजीके पुत्र शक्तिमुनि व्यास होंगे, उस समय जगत्प्रभु मैं दण्ड धारण किये हुए मुण्डीश्वर नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुभाण्ड तथा प्रवाहक नामक मेरे चार तपोव्रती पुत्र होंगे। माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर वे अमरत्वको प्राप्त होंगे॥ ११४—११६$^{1}/_{2}$॥

छब्बीसवें द्वापरके अन्तमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय भी उस युगान्तमें मैं कलिके प्रारम्भमें भद्र-वटक्षेत्रमें सहिष्णु नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहाँ भी उलूक, विद्युत, शम्बूक तथा आश्वलायन नामक अत्यन्त धर्मपरायण मेरे चार पुत्र होंगे। वे माहेश्वरयोगको प्राप्त होकर रुद्रलोकको प्रस्थान करेंगे॥ ११७—११९$^{1}/_{2}$॥

पुनः क्रमिक रूपसे सत्ताईसवें द्वापरके अन्तमें जब तपस्वी जातूकर्ण्य व्यास होंगे, तब मैं योगविश्रुत तथा योगात्मा द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माके रूपमें प्रभासक्षेत्रमें अवतरित होऊँगा। वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे। योगात्मा, महात्मा, निर्विकारहृदय तथा शुद्ध बुद्धिवाले वे शिष्य माहेश्वरयोग प्राप्त करके अन्तमें रुद्रलोक जायँगे॥ १२०—१२३$^{1}/_{2}$॥

पुनः क्रमसे अट्ठाईसवें द्वापरके आनेपर जब श्रीमान् लोकपितामह विष्णु अपने छठे अंशसे पराशरपुत्र 'कृष्णद्वैपायन' नामक व्यास होंगे, तब यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम वासुदेव कृष्ण वसुदेवसे उत्पन्न होंगे। उस समय योगात्मा मैं लोकोंको विस्मित करनेके उद्देश्यसे योगमायासे एक ब्रह्मचारीका शरीर धारणकर प्रकट होऊँगा और योगमायाके प्रभावसे ब्राह्मणोंके कल्याणार्थ श्मशानमें मृत पड़े एक अनाथ ब्राह्मणका शरीर देखकर उसमें प्रवेश करूँगा। दिव्य तथा पुण्य प्रदान करनेवाली मेरुगुहामें आपके एवं विष्णुके साथ मैं निवास करूँगा। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं लकुली नामसे विख्यात होऊँगा और मेरा अवतार-स्थल जबतक भूमिकी सत्ता रहेगी, तबतक एक सिद्धक्षेत्रके रूपमें कायावतार—इस नामसे विख्यात रहेगा॥ १२४—१३०॥

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च॥ १३१

योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः॥ १३२

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥ १३३

लिङ्गार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः।
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः॥ १३४

संसारबन्धच्छेदार्थं ज्ञानमार्गप्रकाशकम्।
स्वरूपज्ञानसिद्ध्यर्थं योगं पाशुपतं महत्॥ १३५

योगमार्गा अनेकाश्च ज्ञानमार्गास्त्वनेकशः।
न निवृत्तिमुपायान्ति विना पञ्चाक्षरीं क्वचित्॥ १३६

यदाचरेत्तपश्चायं सर्वद्वन्द्वविवर्जितम्।
तदा स मुक्तो मन्तव्यः पक्वं फलमिव स्थितः॥ १३७

एकाहं यः पुमान् सम्यक् चरेत्पाशुपतव्रतम्।
न सांख्ये पञ्चरात्रे वा न प्राप्नोति गतिं कदा॥ १३८

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्।
मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशद्युगक्रमात्॥ १३९

तत्र श्रुतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षणः।
भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा॥ १४०

सूत उवाच

निशम्यैवं महातेजा महादेवेन कीर्तितम्।
रुद्रावतारं भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम्॥ १४१

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शङ्करम्।

पितामह उवाच

सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः॥ १४२

न हि विष्णुसमा काचिद् गतिरन्या विधीयते।
इत्येवं सततं वेदा गायन्ति नात्र संशयः॥ १४३

स देवदेवो भगवांस्तव लिङ्गार्चने रतः।
तव प्रणामपरमः कथं देवो ह्यभूत्प्रभुः॥ १४४

वहाँपर भी कुशिक, गर्ग, मित्र तथा कौरुष्य नामक मेरे चार तपस्वी, योगात्मा, ब्रह्मज्ञानी और वेदोंके पारगामी विद्वान् पुत्र होंगे। विशुद्ध आत्मावाले तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाले वे पुत्र माहेश्वरयोगमें सिद्ध होकर पुनरागमनसे मुक्ति दिलानेवाले रुद्रलोकको प्राप्त होंगे॥ १३१-१३२½॥

ये पाशुपतयोगमें सिद्ध, भस्मसे विभूषित शरीरवाले, नित्य शिवलिङ्गके अर्चनमें तत्पर रहनेवाले, बाहर एवं भीतरसे भक्तिपूर्वक योगके द्वारा मुझमें स्थित रहनेवाले, ध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होंगे॥ १३३-१३४॥

ज्ञानमार्गका प्रकाशक यह पाशुपतयोग सांसारिक बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करने तथा आत्मज्ञान सिद्ध करनेके लिये एक महान् उपाय है॥ १३५॥

इस जगत्में अनेक योगमार्ग हैं तथा अनेक ज्ञानमार्ग हैं; किंतु पंचाक्षरी विद्या (**नमः शिवाय**)-के बिना प्राणी सांसारिक बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते॥ १३६॥

जो मनुष्य सभी द्वन्द्वोंसे रहित होकर तप करता है, वह पके फलकी भाँति मुक्तिके लिये उपस्थित रहता है॥ १३७॥

जो पुरुष मात्र एक दिन भलीभाँति पाशुपतव्रत धारण करता है, वह उस गतिको प्राप्त कर लेता है, जो उसे सांख्य तथा पञ्चरात्रसे कभी नहीं मिलती॥ १३८॥

इस प्रकार मैंने युगक्रमसे मनुसे लेकर कृष्णद्वैपायन पर्यन्त अट्ठाईस अवतारोंका वर्णन आपसे कर दिया। उस कल्पमें जब धर्मस्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, तब वे ही वेदसमूहोंका विभाग करेंगे॥ १३९-१४०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार महादेवके द्वारा कही गयी रुद्रावतारकी बातें सुनकर महातेजस्वी भगवान् ब्रह्माने प्रणामपूर्वक प्रिय वाणीसे महेश्वर शिवकी स्तुति की और पुनः उनसे कहा॥ १४१½॥

पितामह बोले—सभी देवता तथा सभी गण विष्णुसे ही व्याप्त हैं। विष्णुके समान कोई अन्य गति हो ही नहीं सकती। ऐसा वेद निरन्तर गाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है॥ १४२-१४३॥

वे देवाधिदेव भगवान् विष्णु आपके लिङ्गार्चनमें

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रपिबन्निव चक्षुर्भ्यां प्रीतस्तत्प्रश्नगौरवात्॥ १४५

पूजाप्रकरणं तस्मै तमालोक्याह शङ्करः।
भवान्नारायणश्चैव शक्रः साक्षात्सुरोत्तमः॥ १४६

मुनयश्च सदा लिङ्गं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
स्वं स्वं पदं विभो प्राप्तास्तस्मात्सम्पूजयन्ति ते॥ १४७

लिङ्गार्चनं विना निष्ठा नास्ति तस्माज्जनार्दनः।
आत्मनो यजते नित्यं श्रद्धया भगवान् प्रभुः॥ १४८

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः।
पुनः सम्प्रेक्ष्य देवेशं तत्रैवान्तरधीयत॥ १४९

तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
स्रष्टुं त्वशेषं भगवान् लब्धसंज्ञस्तु शङ्करात्॥ १५०

निरन्तर रत क्यों रहते हैं तथा जगत्पति होकर भी सदा आपको प्रणाम क्यों करते हैं?॥ १४४॥

सूतजी बोले—परमेष्ठी ब्रह्माजीका वचन सुनकर हर्षातिरेकसे युक्त नेत्रोंवाले भगवान् शंकर उनके इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नसे अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्हें लिङ्गपूजा-प्रकरणके विषयमें बताया। भगवान् विष्णु, साक्षात् सुरश्रेष्ठ इन्द्र तथा मुनियोंने विधिविधानसे लिङ्गकी पूजा करके ही अपने-अपने पद प्राप्त किये हैं। हे विभो! इसीलिये वे लिङ्गपूजनमें तत्पर रहते हैं॥ १४५—१४७॥

लिङ्गके अर्चनके बिना निष्ठाकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये जगत्पति भगवान् विष्णु श्रद्धापूर्वक मेरे लिङ्गका पूजन करते हैं॥ १४८॥

देवेश ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर तथा पुनः उनके ऊपर कृपादृष्टि डालकर महेश्वर वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १४९॥

तत्पश्चात् उन शिवको हाथ जोड़कर प्रणाम करके और उनसे आज्ञा प्राप्त करके वे भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करनेमें प्रवृत्त हो गये॥ १५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विविधव्यासावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विविधव्यासावतारवर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत शरीर एवं मनकी शुद्धिके लिये अन्तः एवं बाह्य स्नानकी प्रक्रिया और विविध मन्त्रोंसे आत्माभिषेचन

ऋषय ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १

सूत उवाच

देव्या पृष्टो महादेवः कैलासे तां नगात्मजाम्।
अङ्कस्थामाह देवेशो लिङ्गार्चनविधिं क्रमात्॥ २

तदा पार्श्वे स्थितो नन्दी शालङ्कायनकात्मजः।
श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः॥ ३

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! लिङ्गस्वरूप महेश्वर महादेवकी पूजा किस प्रकार की जानी चाहिये? अब आप हमलोगोंको यह बतानेकी कृपा करें॥ १॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसी विषयमें कैलास पर्वतपर देवी पार्वतीके द्वारा पूछे जानेपर देवाधिदेव महादेवने अपने अंकमें विराजमान गिरिराजकिशोरी पार्वतीसे लिङ्गार्चन विधिका क्रमसे वर्णन किया था॥ २॥

हे सुव्रतो! उस समय समीपमें ही स्थित शालंकायनके पुत्र नन्दीने उस विधिका श्रवण करके पहले ब्रह्मापुत्र

सनत्कुमाराय शुभं लिङ्गार्चनविधिं परम्।
तस्माद् व्यासो महातेजाः श्रुतवाञ्छ्रुतिसम्मितम्॥ ४

सनत्कुमारको वह परम पवित्र लिङ्गार्चनविधि बतायी और उनसे महातेजस्वी व्यासजीने वह श्रुतिप्रतिपादित विधि सुनी॥ ३-४॥

स्नानयोगोपचारं च यथा शैलादिनो मुखात्।
श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम्॥ ५

शैलादि (नन्दी)-के मुखसे स्नान तथा लिङ्ग-पूजानुष्ठानकी जो विधि कही गयी है एवं जो मैंने भी सुनी है, उस स्नान तथा अर्चनविधिका आपलोगोंसे वर्णन करूँगा॥ ५॥

शैलादिरुवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये ब्राह्मणानां हिताय च।
सर्वपापहरं साक्षाच्छिवेन कथितं पुरा॥ ६

शैलादि (नन्दिकेश्वर) बोले—ब्राह्मणोंके कल्याणके निमित्त अब मैं स्नान-विधिके विषयमें कहूँगा। यह [विधिपूर्वक किया गया स्नान] सभी पापोंको दूर करनेवाला है। पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शंकरने इसके महत्त्वका वर्णन किया है॥ ६॥

अनेन विधिना स्नात्वा सकृत्पूज्य च शङ्करम्।
ब्रह्मकूर्चं च पीत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७

इस विधिसे स्नान करनेके बाद भक्तिपूर्वक एक बार शंकरजीकी पूजा करके विधिपूर्वक निर्मित ब्रह्मकूर्च (पंचगव्य)-का पानकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

त्रिविधं स्नानमाख्यातं देवदेवेन शम्भुना।
हिताय ब्राह्मणाद्यानां चतुर्मुखसुतोत्तम॥ ८

हे ब्रह्माजीके उत्तम पुत्र! ब्राह्मण आदिके हितके लिये देवाधिदेव शंकरने तीन प्रकारके स्नानोंका वर्णन किया है॥ ८॥

वारुणं पुरतः कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम्।
मन्त्रस्नानं ततः कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ९

सर्वप्रथम जलस्नान करनेके बाद श्रेष्ठ अग्निस्नान (भस्मस्नान)-और फिर मार्जनरूप मन्त्रस्नान करके परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये॥ ९॥

भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुध्यति।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत्॥ १०

भावदुष्ट अर्थात् श्रद्धारहित प्राणी जलमें स्नान करके तथा भस्म लगा लेनेसे शुद्ध नहीं हो जाता है। भावनासे शुद्ध होकर ही मनुष्यको शुद्धि करनी चाहिये, अन्यथा नहीं॥ १०॥

सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुध्यति न संशयः॥ ११

प्रलयपर्यन्त सभी नदियों, सरोवरों तथा तड़ागोंमें स्नान करके भी भावनासे दूषित मनवाला व्यक्ति शुद्ध नहीं हो सकता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

नृणां हि चित्तकमलं प्रबुद्धमभवद्यदा।
प्रसुप्तं तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचिः॥ १२

तमोगुणके प्रभावसे मनुष्यका प्रसुप्त चित्तकमल जब ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे चेतनायुक्त हो जाता है, तभी शुद्धि हो पाती है॥ १२॥

मृच्छकृत्तिलपुष्पं च स्नानार्थं भसितं तथा।
आदाय तीरे निःक्षिप्य स्नानतीर्थे कुशानि च॥ १३

प्रक्षाल्याचम्य पादौ च मलं देहाद्विशोध्य च।
द्रव्यैस्तु तीरदेशस्थैस्ततः स्नानं समाचरेत्॥ १४

मिट्टी, गोमय, तिल, पुष्प तथा भस्म आदि लेकर स्नानके लिये स्नानतीर्थ जाकर वहाँ तटपर कुश बिछा लेना चाहिये। तदनन्तर दोनों पैर धोकर पुनः आचमन

उद्धृतासीति मन्त्रेण पुनर्देहं विशोधयेत्।
मृदादाय ततश्चान्यद्वस्त्रं स्नात्वा ह्यनुल्बणम्॥ १५

गन्धद्वारां दुराधर्षामिति मन्त्रेण मन्त्रवित्।
कपिलागोमयेनैव खस्थेनैव तु लेपयेत्॥ १६

पुनः स्नात्वा परित्यज्य तद्वस्त्रं मलिनं ततः।
शुक्लवस्त्रपरीधानो भूत्वा स्नानं समाचरेत्॥ १७

सर्वपापविशुद्ध्यर्थमावाह्य वरुणं तथा।
सम्पूज्य मनसा देवं ध्यानयज्ञेन वै भवम्॥ १८

आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्य भवं स्मरन्।
पुनराचम्य विधिवदभिमन्त्र्य महाजलम्॥ १९

अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाघमर्षणम्।
तत्तोये भानुसोमाग्निमण्डलं च स्मरेद्वशी॥ २०

आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्य मन्त्रवित्।
प्रविश्य तीर्थमध्ये तु पुनः पुण्यविवृद्धये॥ २१

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशैः क्षालितैस्तथा।
सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाभिषेचयेत्॥ २२

रुद्रेण पवमानेन त्वरिताख्येन मन्त्रवित्।
तरत्समन्दीवर्गाद्यैस्तथा शान्तिद्वयेन च॥ २३

शान्तिधर्मेण चैकेन पञ्चब्रह्मपवित्रकैः।
तत्तन्मन्त्राधिदेवानां स्वरूपं च ऋषीन् स्मरन्॥ २४

करके तीरदेशमें स्थित द्रव्योंसे शरीरके मलका शोधन करनेके उपरान्त स्नान करना चाहिये॥ १३-१४॥

तत्पश्चात् '**उद्धृतासि वराहेण**'[1] यह मन्त्र पढ़कर मिट्टी लेकर उससे शरीरकी शुद्धि करनी चाहिये। इसके अनन्तर स्नान करके दूसरा पवित्र वस्त्र धारण करना चाहिये॥ १५॥

पुनः मन्त्रवित् पुरुषको चाहिये कि वह '**गन्धद्वारां दुराधर्षाम्**'[2] इस मन्त्रको पढ़कर कपिला गायके भूस्पर्शरहित गोमयका शरीरपर लेपन करे। इसके बाद स्नान करके उस मलिन वस्त्रको छोड़कर पुनः श्वेत वस्त्र धारण करके स्नान करना चाहिये॥ १६-१७॥

समस्त पापोंसे विमुक्तिके लिये वरुणदेवका आवाहन करके तथा मानसिक उपचारोंसे भगवान् शंकरकी विधिवत् पूजा करके तीन बार आचमनकर जलको अभिमन्त्रित करके शिवका स्मरण करते हुए तीर्थजलमें प्रवेश करे। इसके बाद गोता लगाकर '**ऋतञ्च सत्यञ्च**'[3] इस अघमर्षण मन्त्रका जप करते हुए उस जलमें सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि—इन तीनोंके मण्डलोंका उस संयमी व्यक्तिको ध्यान करना चाहिये॥ १८—२०॥

फिर आचमन करके उस जलसे निकलकर पुण्यकी वृद्धिहेतु उस मन्त्रवित्को पुनः जलमध्यमें प्रवेश करना चाहिये॥ २१॥

मन्त्रवेत्ता गोशृंगके द्वारा अथवा प्रक्षालित पलाश-पत्ररचित पुटकद्वारा अथवा कुशा और पुष्प आदिद्वारा गृहीत जलसे रुद्र-सूक्त (शु०यजुर्वेद अ० १९ के **नमस्ते रुद्र०** इत्यादि ६६ मन्त्र), पवमानसूक्त (ऋग्वेदकी पावमानी ऋचाएँ), **यो रुद्र०** इत्यादि त्वरितसंज्ञक मन्त्र, तरत्समन्दी इत्यादि आद्याक्षरवाले मन्त्रों (ऋग्वेद ९।५८), **शं नो मित्र०** आदि दो मन्त्रों (यजु० ३६।९-१०), शान्तिधर्मक **शं नो देवी०** (शु०यजु० ३६।१२) एक मन्त्र, पंचब्रह्मपवित्रक सद्योजातादि मन्त्र-पंचकका[4] पाठ करते

१. उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। मृत्तिके त्वां च गृह्णामि प्रजया च धनेन च॥
२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥
३. ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः। (ऋग्वेद १०।१९०।१)
४. (क) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥ (ख) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय

एवं हि चाभिषिच्याथ स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजाः।
ध्यायेच्च त्र्यम्बकं देवं हृदि पञ्चास्यमीश्वरम्॥ २५

आचम्याचमनं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तं समीक्ष्य च।
पवित्रहस्तः स्वासीनः शुचौ देशे यथाविधि॥ २६

अभ्युक्ष्य सकुशं चापि दक्षिणेन करेण तु।
पिबेत्प्रक्षिप्य त्रिस्तोयं चक्री भूत्वा ह्यतन्द्रितः॥ २७

प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्धिंसापापप्रशान्तये।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्तमम्॥ २८

सर्वेषां ब्राह्मणानां तु हितार्थे द्विजसत्तमाः॥ २९

हुए इन मन्त्रोंके अधिदेवताओंके स्वरूप एवं ऋषियोंका स्मरण करते हुए आत्माभिषेचन करे॥ २२—२४॥

हे द्विजो! इस प्रकार जलसे अपने मस्तकपर अभिषेक करके त्रिनेत्र तथा पंचमुख परमेश्वर महादेवका हृदयमें ध्यान करना चाहिये और अपने गृह्यसूत्रकी रीतिके अनुसार आचमन करना चाहिये। तदनन्तर पवित्र स्थानमें सुन्दर आसनपर बैठकर हाथमें पवित्रक लेकर उस कुशके द्वारा दाहिने हाथसे अपने ऊपर जल छिड़के। पुनः जल लेकर तीन बार आचमन करके सभी हिंसा तथा पापोंके शमनके लिये आलस्यरहित होकर अपने स्थानपर घूमते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो! इस प्रकार मैंने सभी ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये संक्षेपमें स्नान तथा आचमनके अत्युत्तम विधानका वर्णन कर दिया॥ २५—२९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे स्नानविधिर्नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'स्नानविधि' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

भगवती गायत्रीका आवाहन तथा जप, सूर्यकी प्रार्थना, सूर्यसूक्तोंका पाठ, देव-ऋषि-पितृतर्पण, पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान, भस्मस्नान एवं मन्त्रस्नान

नन्द्युवाच

आवाहयेत्ततो देवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम्॥ १

पाद्यमाचमनीयं च तस्याश्चार्घ्यं प्रदापयेत्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा समासीनः स्थितोऽपि वा॥ २

सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
गायत्रीं प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत्॥ ३

अर्घ्यं दत्त्वा समभ्यर्च्य प्रणम्य शिरसा स्वयम्।
उत्तमे शिखरे देवीत्युक्त्वोद्वास्य च मातरम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस विधिसे स्नान करनेके पश्चात् **'आयातु वरदा देवी'** इस मन्त्रसे महेश्वरी वेदमाता गायत्रीका आवाहन करना चाहिये और पुनः पाद्य, आचमन, अर्घ्य आदि अर्पित करना चाहिये। पुनः तीन बार प्राणायाम करके बैठे-बैठे अथवा खड़े होकर एक हजार अथवा पाँच सौ अथवा एक सौ आठ बार गायत्रीजप प्रणवके साथ नियमपूर्वक करना चाहिये। इन तीनोंमें किसी एक विधिसे ही जप करना चाहिये॥ १—३॥

सूर्यको अर्घ्य देकर उनका पूजनकर सिर झुकाकर

नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥ (ग) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ (घ) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ (ङ) ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥

प्राच्यालोक्याभिवन्द्येशां गायत्रीं वेदमातरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेद्भास्करं तथा॥ ५
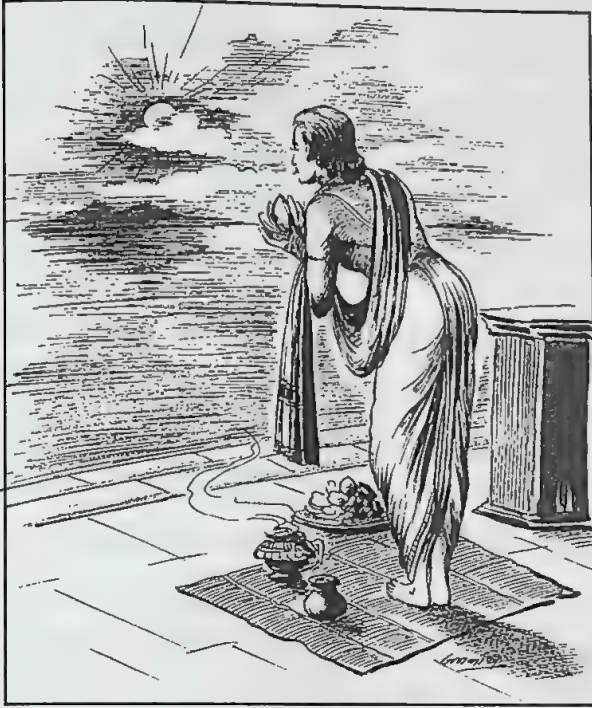
उदुत्यं च तथा चित्रं जातवेदसमेव च।
अभिवन्द्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विधानतः॥ ६

तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुःसामजानि च।
जप्त्वा प्रदक्षिणं पश्चात्त्रिः कृत्वा च विभावसोः॥ ७

आत्मानं चान्तरात्मानं परमात्मानमेव च।
अभिवन्द्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विभावसुम्॥ ८

मुनीन् पितॄन् यथान्यायं स्वनाम्नावाहयेत्ततः।
सर्वानावाहयामीति देवानावाह्य सर्वतः॥ ९

तर्पयेद्विधिना पश्चात्प्राङ्मुखो वा ह्युदङ्मुखः।
ध्यात्वा स्वरूपं तत्तत्त्वमभिवन्द्य यथाक्रमम्॥ १०

देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणां तु कुशाम्भसा।
पितॄणां तिलतोयेन गन्धयुक्तेन सर्वतः॥ ११

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणम्।
प्राचीनावीती विप्रेन्द्र पितॄणां तर्पयेत् क्रमात्॥ १२

प्रणाम करके **'उत्तमे शिखरे देवी'**[1] ऐसा कहकर माताका विसर्जन करके पूर्व दिशामें देखते हुए वेदमाता महेश्वरी गायत्रीका अभिवन्दन करके दोनों हाथ जोड़कर सूर्यकी प्रार्थना करनी चाहिये। **'उदुत्यं जातवेदसम्'**[2] तथा **'चित्रं देवानाम्'**[3]—इन मन्त्रोंसे सूर्य तथा ब्रह्माको नमस्कार करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके सूर्यसम्बन्धी सूक्तोंका विधानपूर्वक पाठ करके तीन बार सूर्यदेवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये॥ ४—७॥

इसके बाद आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्माका ध्यान करके सूर्य, ब्रह्मा एवं अग्निको प्रणाम करना चाहिये। पुनः मुनियों, पितरों तथा देवताओं—सभीका उनका अपने नामसे आवाहन करे। सबको आवाहित करके पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर उनके तत्त्वों तथा स्वरूपोंका ध्यान करके विधिपूर्वक क्रमसे तीर्थके जलसे तर्पण करना चाहिये और अन्तमें प्रणाम करना चाहिये॥ ८—१०॥

पुष्पयुक्त जलसे देवताओंका, कुशयुक्त जलसे ऋषियोंका तथा तिल और गन्धयुक्त जलसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये॥ ११॥

हे विप्रेन्द्र! यज्ञोपवीती अर्थात् सव्य होकर देवतर्पण, निवीती अर्थात् कण्ठमें यज्ञोपवीत धारण करके ऋषितर्पण
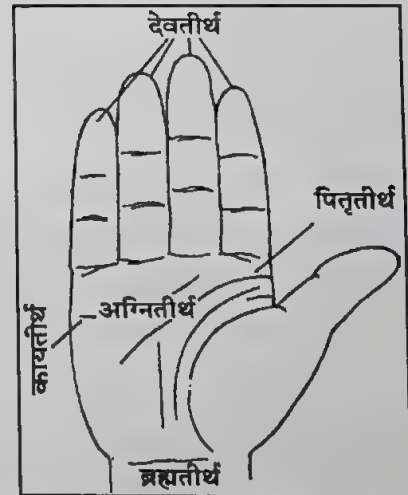
तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसव्य होकर पितृतर्पण क्रमानुसार करना चाहिये॥ १२॥

१. ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥
२. ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः॥ दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ (यजु० ७।४१)
३. ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ꣸सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ (यजु० ७।४२)

अङ्गुल्यग्रेण वै धीमांस्तर्पयेद्देवतर्पणम्।
ऋषीन् कनिष्ठाङ्गुलिना श्रोत्रियः सर्वसिद्धये॥ १३
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान् दक्षिणाङ्गुष्ठकेन तु।
तथैवं मुनिशार्दूल ब्रह्मयज्ञं यजेद् द्विजः॥ १४
देवयज्ञं च मानुष्यं भूतयज्ञं तथैव च।
पितृयज्ञं च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायणः॥ १५
स्वशाखाध्ययनं विप्रा ब्रह्मयज्ञ इति स्मृतः।
अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इति स्मृतः॥ १६
सर्वेषामेव भूतानां बलिदानं विधानतः।
भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम्॥ १७
सदारान् सर्वतत्त्वज्ञान् ब्राह्मणान् वेदपारगान्।
प्रणम्य तेभ्यो यद्दत्तमन्नं मानुष उच्यते॥ १८
पितॄनुद्दिश्य यद्दत्तं पितृयज्ञः स उच्यते।
एवं पञ्च महायज्ञान् कुर्यात्सर्वार्थसिद्धये॥ १९
सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः परः स्मृतः।
ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते॥ २०
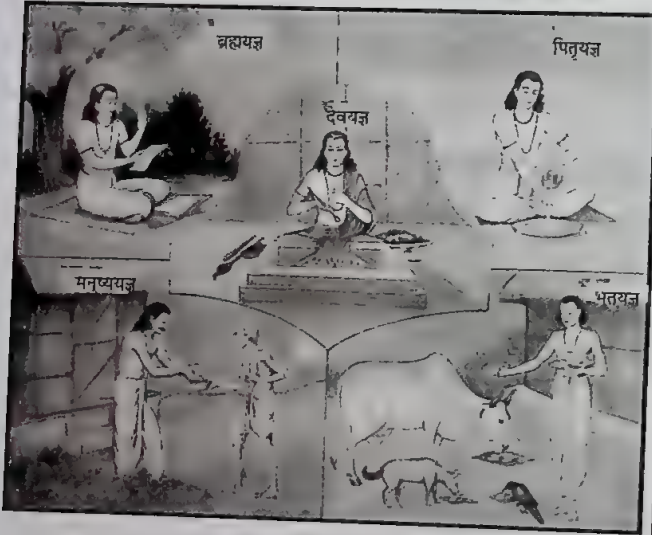
ब्रह्मयज्ञेन तुष्यन्ति सर्वे देवाः सवासवाः।
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शङ्करो नीललोहितः॥ २१
वेदाश्च पितरः सर्वे नात्र कार्या विचारणा।
ग्रामाद् बहिर्गतो भूत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मयज्ञवित्॥ २२
यावत्त्वदृष्टमभवदुटजानां छदं नरः।
प्राच्यामुदीच्यां च तथा प्रागुदीच्यामथापि वा॥ २३
पुण्यमाचमनं कुर्याद् ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत्।
प्रीत्यर्थं च ऋचां विप्राः त्रिः पीत्वा प्लाव्य प्लाव्य च॥ २४
यजुषां परिमृज्यैवं द्विः प्रक्षाल्य च वारिणा।
प्रीत्यर्थं सामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि॥ २५
स्पृशेदथर्ववेदानां नेत्रे चाङ्गिरसां तथा।
नासिके ब्राह्मणोऽङ्गानां क्षाल्य क्षाल्य च वारिणा॥ २६

सभी सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिये बुद्धिमान् तथा विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मणको चाहिये कि वह अंगुलिके अग्रभागसे देवतर्पण, कनिष्ठ अँगुलिसे ऋषितर्पण एवं दाहिने अँगूठेसे पितृतर्पण सम्पन्न करे॥ १३ १/२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी प्रकार यज्ञकर्मपरायण तथा पवित्रात्मा द्विजको ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ एवं पितृयज्ञ करना चाहिये॥ १४-१५॥

हे विप्रो! अपनी शाखाका अध्ययन करना ब्रह्मयज्ञ कहा गया है तथा अग्निमें अन्न आदिका हवन देवयज्ञ कहा गया है। उसी प्रकार सभी भूतोंके लिये विधिपूर्वक बलि देना भूतयज्ञ कहा जाता है; यह भूतयज्ञ प्राणियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है। वेदवेत्ता एवं तत्त्वज्ञ ब्राह्मणोंको उनकी भार्यासहित सभीको प्रणाम करके उन्हें अन्नका दान करना मनुष्ययज्ञ कहा जाता है। पितरोंके निमित्त जो श्राद्ध आदि सम्पन्न किया जाता है, उसे पितृयज्ञ कहते हैं। इस प्रकार सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इन पाँच महायज्ञोंको करना चाहिये॥ १६—१९॥

सुनिये, ब्रह्मयज्ञ सभी यज्ञोंसे श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। ब्रह्मयज्ञ करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें वास करते हुए आनन्दित होता है। ब्रह्मयज्ञसे इन्द्रसमेत सभी देवता, ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, नीललोहित शंकरजी, सभी वेद तथा पितृगण संतुष्ट हो जाते हैं; इसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिये॥ २०-२१ १/२॥

ब्रह्मयज्ञ करनेके लिये ब्रह्मयज्ञवेत्ता ब्राह्मणको गाँवसे उतनी दूर बाहर चले जाना चाहिये, जहाँसे झोपड़ियोंकी छततक दिखायी न दे। वहाँ बैठकर पूर्व, उत्तर अथवा ईशान दिशाकी ओर मुख करके शुद्धिके लिये आचमन करना चाहिये॥ २२-२३ १/२॥

हे ब्राह्मणो! ऋग्वेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये तीन बार चुलुकभर जल पीकर, यजुर्वेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये जलद्वारा दो बार प्रक्षालन एवं परिमार्जन करके, सामवेदाधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये आचमन करके मूर्धाका स्पर्श करे। आंगिरससम्बन्धी अथर्ववेदके अधिष्ठातृ देवताकी प्रीतिके लिये नेत्रोंका स्पर्श करे। ब्राह्मणग्रन्थों, शिक्षा-कल्प आदि वेदांगोंकी प्रीतिके लिये

अष्टादशपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च।
तथा चोपपुराणानां सौरादीनां यथाक्रमम्॥ २७

पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च।
श्रोत्रे स्पृशेद्धि तुष्ट्यर्थं हृद्देश्यं तु ततः स्पृशेत्॥ २८

कल्पादीनां तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः।
एवमाचम्य चास्तीर्य दर्भपिञ्जूलमात्मनः॥ २९

कृत्वा पाणितले धीमानात्मनो दक्षिणोत्तरम्।
हेमाङ्गुलीयसंयुक्तो ब्रह्मबन्धयुतोऽपि वा॥ ३०

विधिवद् ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात्सूत्री समाहितः।
अकृत्वा च मुनिः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमः॥ ३१

भुक्त्वा च सूकराणां तु योनौ वै जायते नरः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्याः शुभमिच्छता॥ ३२

ब्रह्मयज्ञादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः।
तीर्थं सङ्गृह्य विधिवत्प्रविशेच्छिविरं वशी॥ ३३

बहिरेव गृहात्पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य वारिणा।
भस्मस्नानं ततः कुर्याद्विधिवद्देहशुद्धये॥ ३४

शोध्य भस्म यथान्यायं प्रणवेनाग्निहोत्रजम्।
ज्योतिः सूर्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः॥ ३५

ज्योतिरग्निस्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा।
तस्मादुदितहोमस्थं भसितं पावनं शुभम्॥ ३६

नास्ति सत्यसमं यस्मादसत्यं पातकं च यत्।
ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च॥ ३७

उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः।
सद्येन पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ ३८

ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्मविदां वरः।
व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन्॥ ३९

नासिकाको जलसे पवित्रकर स्पर्श करे। क्रमशः ब्रह्म आदि अठारह पुराणों, सौर आदि उपपुराणों, पवित्र इतिहासग्रन्थों तथा शैवादि आगमग्रन्थोंकी तुष्टिके लिये कानका स्पर्श करे। तदनन्तर हृदयदेशका स्पर्श करे। हे श्रेष्ठ कल्पवेत्ताओ! सभी कल्पग्रन्थोंके लिये भी पूर्वोक्त क्रिया करनी चाहिये॥ २४—२८ $^{1}/_{2}$॥

बुद्धिमान् एवं संयमी श्रोत्रियको समाहितचित्त होकर इस प्रकार आचमन करके अपने दक्षिणसे उत्तरकी ओर कुश बिछाकर उसपर हाथ रखकर अपने हाथकी अँगुलीमें कुशाकी पवित्री अथवा सोनेकी अँगूठी धारणकर विधिपूर्वक ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये। मुनि तथा द्विज होकर जो मनुष्य इन पाँच महायज्ञोंको किये बिना भोजन करता है, वह सूकरकी योनिमें जन्म लेता है। अतः अपने कल्याणके इच्छुक व्यक्तिको विशेष प्रयत्नके साथ इन्हें सम्पन्न करना चाहिये॥ २९—३२॥

ब्रह्मयज्ञके पश्चात् डुबकी लगाकर स्नान करके इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले उस पुरुषको चाहिये कि तीर्थका जल लेकर विधिवत् शिविरमें प्रवेश करे। घरके बाहर जलसे हाथ-पैर धोकर पुनः देहकी शुद्धिके लिये विधिपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये। इसके लिये अग्निहोत्रका भस्म लेकर नियमानुसार प्रणवसे उसका शोधन कर लेना चाहिये। सूर्यके ज्योतिस्वरूप होनेसे सूर्योदयके पश्चात् प्रातःकाल **'ज्योतिः सूर्य०'** इस मन्त्रसे और सायंकालमें **'ज्योतिरग्नि०'** इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। सूर्योदय हुए बिना किया गया अग्निहोत्र व्यर्थ होता है। इसलिये सूर्योदयके बाद किये गये हवनकी भस्म पवित्र तथा कल्याणप्रद होती है॥ ३३—३६॥

सत्यके समान कुछ भी नहीं है और असत्यसे बड़ा कोई पाप नहीं होता है। हे सुव्रतो! ईशानमन्त्रसे सिर, तत्पुरुषसे मुख, अघोरसे वक्षःस्थल, वामदेवसे गुह्यस्थान, सद्योजातसे दोनों पैर तथा प्रणवसे सभी अंगोंका भस्माभिषेचन करना चाहिये॥ ३७-३८॥

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुषको इस भाँति भस्म-स्नान करके हाथ-पैर धोकर हाथमें कुश लेकर देवदेव

मन्त्रस्नानं ततः कुर्यादापो हि ष्ठादिभिः क्रमात्।
पुण्यैश्चैव तथामन्त्रैर्ऋग्यजुःसामसम्भवैः ॥ ४०

शिवका स्मरण करते हुए '**आपो हि ष्ठा**'* आदि मन्त्रों तथा ऋक्, यजुः एवं सामके पवित्र मन्त्रोंसे मन्त्रस्नान करना चाहिये ॥ ३९-४० ॥

द्विजानां तु हितायैवं कथितं स्नानमद्य ते।
सङ्क्षिप्य यः सकृत्कुर्यात्स याति परमं पदम् ॥ ४१

ब्राह्मणोंके हितके लिये ही मैंने इस स्नानविधिका आज आपसे संक्षेपमें वर्णन किया है। जो मनुष्य एक बार भी इस विधिसे स्नान करेगा, वह परम गतिको प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पञ्चयज्ञविधानं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पंचयज्ञविधान' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

लिङ्गार्चनविधिके अन्तर्गत महेश्वरस्वरूप होकर विविध उपचारोंद्वारा लिङ्गपूजाका विधान, लिङ्गाभिषेककी महिमा तथा अभिषेकके मन्त्र

शैलादिरुवाच

वक्ष्यामि शृणु सङ्क्षेपाल्लिङ्गार्चनविधिक्रमम्।
वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत् ॥ १

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] सुनिये, अब मैं संक्षेपमें ही क्रमसे लिङ्गार्चन-विधिका वर्णन करूँगा; क्योंकि विस्तारके साथ इसका वर्णन तो सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है ॥ १ ॥

एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजास्थानं प्रविश्य च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियम्बकम् ॥ २

पञ्चवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्राम्बरविभूषितम् ॥ ३

इस विधिसे नियमपूर्वक (त्रिविध जल, भस्म एवं मन्त्रसे) स्नानकर पूजाके स्थानपर प्रवेश करके तीन प्राणायामकर त्रिनेत्र, पंचमुख, दश भुजाओंवाले, शुद्ध स्फटिकतुल्य वर्णवाले, सभी आभूषणोंसे अलंकृत तथा विचित्र वस्त्रसे विभूषित शिवका ध्यान करना चाहिये ॥ २-३ ॥

तस्य रूपं समाश्रित्य दाहनप्लावनादिभिः।
शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ ४

उनके इस रूपका ध्यानकर दाहन तथा प्लावन आदि भूतशुद्धिकी क्रियासे युक्त शैवी देहको हृदयमें स्थापित करके परमेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये ॥ ४ ॥

देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमन्त्रं न्यसेत्क्रमात्।
सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम् ॥ ५

इस प्रकार देहशुद्धि करके क्रमशः मूलमन्त्र, प्रणवयुक्त [अघोरादि पंच] ब्रह्ममन्त्रोंसे देहके सभी अंगोंमें न्यास करे ॥ ५ ॥

सूत्रे नमः शिवायेति छन्दांसि परमे शुभे।
मन्त्राणि सूक्ष्मरूपेण संस्थितानि यतस्ततः ॥ ६

परम कल्याणप्रद इस '**नमः शिवाय**' सूत्रमें समस्त वेद तथा मन्त्र सूक्ष्मरूपमें विद्यमान रहते हैं।

* ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः।

न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने।
महत्यपि महद् ब्रह्म संस्थितं सूक्ष्मवत्स्वयम्॥ ७

सेचयेदर्चनस्थानं गन्धचन्दनवारिणा।
द्रव्याणि शोधयेत्पश्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभिः॥ ८

क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते।
प्रोक्षणी चार्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमनुक्रमात्॥ ९

तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पितं पात्रमेव च।
स्थापयेद्विधिना धीमानवगुण्ठ्य यथाविधि॥ १०

दर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा।
तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम्॥ ११

प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान्।
उशीरं चन्दनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्॥ १२

जातिकङ्कोलकर्पूरबहुमूलतमालकम्।
चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके॥ १३

एवं सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चन्दनं तथा।
कर्पूरं च यथान्यायं पुष्पाणि विविधानि च॥ १४

कुशाग्रमक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानि च।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके॥ १५

कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम्।
दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च॥ १६

न्यसेत्पञ्चाक्षरं चैव गायत्रीं रुद्रदेवताम्।
केवलं प्रणवं वापि वेदसारमनुत्तमम्॥ १७

अथ सम्प्रोक्षयेत्पश्चाद् द्रव्याणि प्रणवेन तु।
प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यैश्च पञ्चभिः॥ १८

पार्श्वतो देवदेवस्य नन्दिनं मां समर्चयेत्।
दीप्तानलायुतप्रख्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम्॥ १९

बालेन्दुमुकुटं चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम्।
पुष्पमालाधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ २०

जिस प्रकार वटके बीजमें विशाल वटवृक्षका भाव उपस्थित रहता है, उसी प्रकार इस पवित्र एवं महत्युक्त सूत्रमें महान् ब्रह्म सूक्ष्मरूपसे साक्षात् विराजमान है॥ ६-७॥

पूजाके स्थानको गन्ध तथा चन्दनसे युक्त जलके द्वारा सेचित करना चाहिये; पुनः सभी पूजनद्रव्योंको क्षालन, प्रोक्षण आदिसे शोधित कर लेना चाहिये। क्षालन तथा प्रोक्षण प्रणवसे ही किया जाता है॥ ८½॥

विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र तथा आचमनपात्रको भलीभाँति अनुक्रमसे स्थापित करे और फिर विधिपूर्वक अवगुंठन करे। पुनः उन सभी पात्रोंमें शुद्ध एवं शीतल जल डालकर उन्हें कुशोंसे ढककर उनपर शुद्ध जलका प्रोक्षण करना चाहिये॥ ९—११॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको उन पात्रोंमें भलीभाँति देखकर विभिन्न द्रव्य प्रणवपूर्वक डालने चाहिये। पाद्यपात्रमें उशीर तथा चन्दन डाले और जाति, कंकोल, कपूर, शतावरी एवं तमालका चूर्ण बनाकर इन्हें उचित मात्रामें आचमनीय पात्रमें डाले। चंदन, कपूर तथा विविध प्रकारके पुष्प सभी पात्रोंमें डालने चाहिये॥ १२—१४॥

कुशका अग्रभाग, अक्षत, यव, धान, तिल, घी, सफेद सरसों, पुष्प तथा भस्म—इन्हें अर्घ्यपात्रमें डालना चाहिये। कुश, पुष्प, यव, धान, शतावरी, तमाल एवं भस्म—इन द्रव्योंको प्रणवसे प्रोक्षणीपात्रमें डालना चाहिये॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् पञ्चाक्षर मन्त्र, रुद्रगायत्री अथवा केवल वेदसाररूप सर्वोत्तम प्रणवसे इन पात्रोंको अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ १७॥

इसके अनन्तर प्रणवयुक्त ईशान (**ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम्०**) आदि पाँच याजुष मन्त्रोंसे प्रोक्षणीपात्रमें स्थित जलके द्वारा सभी पूजनद्रव्योंका प्रोक्षण करे॥ १८॥

पुनः देवदेव शिवजीके दाहिनी ओर स्थित हजारों देदीप्यमान अग्निके सदृश वर्णवाले, बालचन्द्रमाको मुकुटरूपमें सिरपर धारण करनेवाले, वानरके तुल्य

उत्तरे चात्मनः पुण्यां भार्यां च मरुतां शुभाम्।
सुयशां सुव्रतां चाम्बापादमण्डनतत्पराम्॥ २१

एवं पूज्य प्रविश्यान्तर्भवनं परमेष्ठिनः।
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं भक्त्या पञ्चमूर्धसु पञ्चभिः॥ २२

गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शङ्करम्।
स्कन्दं विनायकं देवीं लिङ्गशुद्धिं च कारयेत्॥ २३

जप्त्वा सर्वाणि मन्त्राणि प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कल्पयेदासनं पश्चात्पद्माख्यं प्रणवेन तत्॥ २४

तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम्।
लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा॥ २५

प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु।
ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे॥ २६

सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते।
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकः स्वयम्॥ २७

धर्मादयो विदिक्ष्वेते त्वनन्तं कल्पयेत्क्रमात्।
अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम्॥ २८

आत्मत्रयं ततश्चोर्ध्वं तस्यान्ते शिवपीठिका।
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम्॥ २९

मुखवाले, चार भुजाओंवाले, पुष्पकी माला धारण करनेवाले,सौम्य स्वरूपवाले तथा सभी अलंकारोंसे सुशोभित मुझ त्रिनेत्र नन्दीका विधिवत् पूजन करना चाहिये। पुनः उत्तरभागमें विराजमान पुण्यमयी, स्वर्ण-सदृश आभावाली, सुन्दर, कीर्तिशालिनी, पतिव्रता एवं माता पार्वतीके चरणोंके मण्डनमें सतत तत्पर रहनेवाली देवीरूपिणी मेरी भार्याकी पूजा करनी चाहिये॥ १९—२१॥

इस प्रकार हम दोनोंकी पूजा करके परमेष्ठी शिवके मन्दिरमें प्रवेशकर शिवजीके पाँचों मस्तकोंपर सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये। पुनः गन्ध, पुष्प, धूप तथा विविध उपचारोंसे शंकर, कार्तिकेय, गणेशजी एवं पार्वतीकी पूजा करके शिवलिङ्गका निर्माल्य (अर्पित चढ़ावेका अवशेष) दूरकर लिङ्गकी शुद्धि करनी चाहिये॥ २२-२३॥

पुनः सभी मन्त्रोंके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें 'नमः' लगाकर जप करनेके पश्चात् परमेश्वरको प्रणवमन्त्रके द्वारा अष्टदल-कमलरूप आसन निवेदित करना चाहिये॥ २४॥

उस आसनका पूर्वदल अविनाशी तथा साक्षात् अणिमासिद्धिस्वरूप है। उसका दक्षिणदल लघिमा, पश्चिमदल महिमा, उत्तरदल प्राप्ति, अग्निकोणका दल प्राकाम्य, नैर्ऋत्यकोणका दल ईशित्व, वायव्यकोणका दल वशित्व एवं ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्वसिद्धिरूप है। उस पद्मासनकी कर्णिका (मध्यभाग) सोममण्डल कही जाती है। सोममण्डलके नीचे सूर्यमण्डल तथा उसके भी नीचे साक्षात् अग्निमण्डल है॥ २५—२७॥

चारों उपदिशाओं (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान)-में धर्म आदि (धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य), पूर्वादि चारों दिशाओं (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर)-में अव्यक्तादि (अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार एवं चित्त), सोममण्डलके ऊपर तीन गुण (सत्त्व, रज, तम), इनके ऊपर तीन आत्माएँ (विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ) और उसके ऊपर शिवपीठिका विराजमान है; ऐसे अनन्त-

वामदेवेन मन्त्रेण स्थापयेदासनोपरि।
सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरुद्ध्य च॥ ३०

ईशानः सर्वविद्यानामिति मन्त्रेण पूजयेत्।
पाद्यमाचमनीयं च विभोश्चार्घ्यं प्रदापयेत्॥ ३१

स्नापयेद्विधिना रुद्रं गन्धचन्दनवारिणा।
पञ्चगव्यं विधानेन गृह्य पात्रेऽभिमन्त्र्य च॥ ३२

प्रणवेनैव गव्यैस्तु स्नापयेच्च यथाविधि।
आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च॥ ३३

पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत्।
जलभाण्डैः पवित्रैस्तु मन्त्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः॥ ३४

शुद्धिं कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः।
कुशापामार्गकर्पूरजातिपुष्पकचम्पकैः॥ ३५

करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः।
आपूर्य पुष्पैः सुशुभैः चन्दनाद्यैश्च तज्जलम्॥ ३६

न्यसेन्मन्त्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु।
सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन वा॥ ३७

ताम्रेण पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा।
शङ्खेन मृन्मयेनाथ शोधितेन शुभेन वा॥ ३८

सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम्।
मन्त्राणि ते प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसिद्धये॥ ३९

यैर्लिङ्गं सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः।
पवमानेन मन्त्रज्ञाः तथा वामीयकेन च॥ ४०

रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च।
रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च॥ ४१

स्वरूप आसनकी कल्पना करनी चाहिये॥ २८½॥

पुनः **'सद्योजातं प्रपद्यामि०'** इस मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके वामदेवमन्त्रसे आसनके ऊपर उन्हें स्थापित करे। फिर रुद्रगायत्री मन्त्रसे सान्निध्य, अघोर मन्त्रसे निरोधन तथा **'ईशानः सर्वविद्यानाम्०'** इस मन्त्रसे शिवकी पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य एवं आचमन परमेश्वरको अर्पित करे। पुनः गन्ध तथा चन्दनयुक्त जलसे उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराये॥ २९—३१½॥

इसके बाद पात्रमें विधिविधानसे पंचगव्य बनाकर उसे प्रणवसे अभिमन्त्रित करके पुनः प्रणवमन्त्रसे उस पंचगव्यसे शिवको विधिवत् स्नान कराये। इसके अनन्तर प्रणव तथा वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए गोघृतसे, मधुसे, इक्षुरससे एवं अन्य पवित्र द्रव्योंसे महादेवका अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद पवित्र जलपात्रोंसे जल छोड़कर साधकको भलीभाँति शिवलिङ्गका प्रक्षालन (शुद्ध स्नान) कर लेना चाहिये॥ ३२—३४॥

इसके बाद साधकको श्वेत वस्त्रोंसे यथाविधि जलका शोधन करके स्वर्ण, चाँदी या ताम्रपात्र अथवा कमलपत्र, पलाशपत्र, शंख अथवा शोधित सुन्दर मृत्तिकापात्र लेकर उसे पूर्वोक्त शुद्ध जलसे पूर्ण कर लेना चाहिये। पुनः उसमें कुश, अपामार्ग, कर्पूर, जातिपुष्प, चम्पा, श्वेत करवीर, मल्लिका, कमल, उत्पल आदि सुन्दर पुष्प, चन्दन आदि डालकर उस जलको सद्योजात आदि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके मन्त्रोच्चारके साथ उस जलकुम्भसे शिवजीका अभिषेक करना चाहिये॥ ३५—३८½॥

[नन्दीश्वर कहते हैं—हे सनत्कुमारजी!] अब मैं सभी मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले उन मन्त्रोंको आपको बताऊँगा; जिनका पाठ करके एक बार भी शिवलिङ्गका अभिषेक करनेसे मनुष्य भवबन्धनसे छूट जाता है॥ ३९½॥

[सूतजी बोले—] हे मन्त्रवेत्ता ऋषिगण! पवमान (ऋग्वेदीय पावमानी ऋचाएँ), वामसूक्त (ऋक्० १।१६४), रुद्राध्याय (शुक्लयजुर्वेद अ० १६), अथर्ववेदीय नीलरुद्र (११।२), पवित्र श्रीसूक्त (ऋग्वेद), रात्रिसूक्त (ऋग्वेद), कल्याणप्रद चमक (यजुर्वेद अ०

होतारेणाथ शिरसा अथर्वेण शुभेन च।
शान्त्या चाथ पुनः शान्त्या भारुण्डेनारुणेन च॥ ४२

वारुणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेन च।
तथान्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च॥ ४३

त्वरितेनैव रुद्रेण कपिना च कपर्दिना।
आवोराजेति साम्ना तु बृहच्चन्द्रेण विष्णुना॥ ४४

विरूपाक्षेण स्कन्देन शतऋग्भिः शिवैस्तथा।
पञ्चब्रह्मैश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च॥ ४५

स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रशान्तये।
वस्त्रं शिवोपवीतं च तथा ह्याचमनीयकम्॥ ४६

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं क्रमेण तु।
तोयं सुगन्धितं चैव पुनराचमनीयकम्॥ ४७

मुकुटं च शुभं छत्रं तथा वै भूषणानि च।
दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकानि च॥ ४८

ततः स्फटिकसङ्काशं देवं निष्कलमक्षरम्।
कारणं सर्वदेवानां सर्वलोकमयं परम्॥ ४९

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैर्ऋषिदेवैरगोचरम्।
वेदविद्भिर्हि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रुतिः॥ ५०

आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम्।
शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिङ्गे व्यवस्थितम्॥ ५१

प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयेल्लिङ्गमूर्धनि।
स्तोत्रं जपेच्च विधिना नमस्कारं प्रदक्षिणम्॥ ५२

अर्घ्यं दत्त्वाथ पुष्पाणि पादयोस्तु विकीर्य च।
प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम्॥ ५३

एवं सङ्क्षिप्य कथितं लिङ्गार्चनमनुत्तमम्।
आभ्यन्तरं प्रवक्ष्यामि लिङ्गार्चनमिहाद्य ते॥ ५४

१८), होतार, मंगलमय अथर्वशिर, शान्ति, भारुण्ड, अरुण, वारुण, ज्येष्ठ, वेदव्रत, आन्तर, पुण्यप्रद पुरुषसूक्त (यजुर्वेद), त्वरितरुद्र, कपि, कपर्दी, सामवेदीय **आ वो राज०** (मन्त्र-संख्या ६९), बृहच्चन्द्र, विष्णु, विरूपाक्ष, स्कन्द, शिवकी सौ ऋचा, पंचब्रह्म (सद्योजातादि पाँच मन्त्र), **नमः शिवाय** तथा केवल प्रणवमन्त्रसे ही सभी पापोंके शमनहेतु देवदेवेश शिवका अभिषेक करना चाहिये॥ ४०—४५½॥

तत्पश्चात् भगवान् शंकरको वस्त्र, यज्ञोपवीत, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सुगन्धित जल, पुनः आचमन, [रत्नजटित] मुकुट, सुन्दर छत्र, आभूषण तथा मुखवास (ताम्बूल) आदि उपचार प्रणव-मन्त्रक्रमसे अर्पित करना चाहिये॥ ४६—४८॥

इसके बाद स्फटिकके सदृश वर्णवाले, कलारहित, अविनाशी, समस्त देवताओंके भी कारण, सभी लोकोंमें व्याप्त, परात्पर, ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-रुद्र आदि देवताओं तथा देवर्षियोंसे अगम्य, श्रुतियोंके अनुसार वेदों एवं उपनिषदोंके ज्ञाताओंसे भी अगोचर, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, भवरोगसे संतप्त प्राणियोंके लिये औषधरूप प्रसिद्ध शिवतत्त्व शिवलिङ्गमें प्रतिष्ठित है—इस प्रकारसे शिवलिङ्गमें महादेवका ध्यान करना चाहिये॥ ४९—५१॥

पुनः लिङ्गके शीर्षपर प्रणव मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये और विधिपूर्वक स्तोत्रपाठ करके नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इसके बाद अर्घ्य प्रदान करके महादेवके चरणोंमें पुष्प अर्पितकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करे एवं देवाधिदेव शिव मुझमें समाहित हैं—ऐसी भावना करे॥ ५२-५३॥

[हे सनत्कुमारजी!] इस प्रकार मैंने शिवलिङ्गके उत्तम पूजन-विधानका वर्णन संक्षेपमें कर दिया और अब आपको आभ्यन्तर लिङ्गार्चनविधि बताऊँगा॥ ५४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'लिङ्गार्चनविधि' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

भगवान् महेश्वरके आभ्यन्तरपूजनका स्वरूप, सकल तथा निष्कल तत्त्वकी व्याख्या, छब्बीस तत्त्वोंका परिगणन एवं सम्पूर्ण चराचर जगत्की शिवरूपता

शैलादिरुवाच

आग्नेयं सौरममृतं बिम्बं भाव्यं ततोपरि।
गुणत्रयं च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात्॥ १

तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम्।
कान्तार्धारूढदेहं च पूजयेद् ध्यानविद्यया॥ २

शैलादि बोले—अपने हृदयमें अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डलका ध्यान करे। पुनः क्रमसे उसके ऊपर तीन गुण, तीन आत्मा एवं उसके ऊपर कलायुक्त स्वरूपवाले, कलारहित अर्धनारीश्वर महादेवकी भावना करके ध्यानयोगके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये॥ १-२॥

ततो बहुविधं प्रोक्तं चिन्त्यं तत्रास्ति चेद्यतः।
चिन्तकस्य ततश्चिन्ता अन्यथा नोपपद्यते॥ ३

यदि चिन्तकके ध्यानावस्थित चित्तमें चिन्त्य तत्त्व [बहुविध कहे जानेके कारण] अनेक रूपोंमें प्राप्त भी हो, तब भी अभेद बुद्धिके कारण चिन्ता करना उचित नहीं है॥ ३॥

तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम्।
स्मरेत्तन्नान्यथा जातु बुध्यते पुरुषस्य ह॥ ४

इसीलिये यजमानको चाहिये कि अपने परम प्रयोजन जो ध्येयरूप सदाशिव हैं, उनका ही ध्यान-स्मरण और ज्ञान प्राप्त करे, अन्यथा पुरुष इस शरीरमें ब्रह्म (सदाशिव)-को कभी नहीं प्राप्त कर सकेगा॥ ४॥

पुरे शेते पुरं देहं तस्मात्पुरुष उच्यते।
याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः॥ ५

देह ही पुर है। उस पुरमें शयन करनेके कारण ही जीव पुरुष कहा जाता है। जो यज्ञसे याज्यका यजन करता है, वह यजमान कहा जाता है॥ ५॥

ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चिन्तनं निर्वृतिः फलम्।
प्रधानपुरुषेशानं याथातथ्यं प्रपद्यते॥ ६

महेश्वर ध्येय हैं, उनका चिन्तन ही ध्यान है, मोक्ष ही जीवनका प्रयोजन है—इन तथ्योंको भलीभाँति जाननेवाला ही वास्तविक रूपसे प्रधान पुरुष शिवको प्राप्त कर सकता है॥ ६॥

इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पञ्चविंशकः।
चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च॥ ७

महांस्तथा त्वहङ्कारं तन्मात्रं पञ्चकं पुनः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च॥ ८

मनश्च पञ्चभूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः।
स एव भर्ता कर्ता च विधेरपि महेश्वरः॥ ९

यहाँ कुल छब्बीस तत्त्व हैं। इनमें छब्बीसवाँ ध्येय है, पच्चीसवाँ ध्याता (जीव) है तथा चौबीसवाँ तत्त्व अव्यक्त अर्थात् प्रकृति है। महत् आदि अर्थात् महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तन्मात्राएँ—ये सात, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा मन—ये ही छब्बीस तत्त्व हैं। इनमें छब्बीसवाँ तत्त्व शिव है। वही ब्रह्माका तथा संसारका रचयिता और भरणकर्ता है॥ ७—९॥

हिरण्यगर्भं रुद्रोऽसौ जनयामास शङ्करः।
विश्वाधिकश्च विश्वात्मा विश्वरूप इति स्मृतः॥ १०

उसी रुद्रने हिरण्यगर्भको उत्पन्न किया। भगवान् शंकर विश्वाधिक अर्थात् जगत्के परम कारण, विश्वात्मा तथा विश्वरूप कहे गये हैं॥ १०॥

विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्विह।
न जायन्ते तथा सोमं विना नास्ति जगत्त्रयम्॥ ११

जिस प्रकार माता-पिताके बिना पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकते; उसी प्रकार उमासहित शिवके बिना तीनों जगत्‌की उत्पत्ति सम्भव नहीं है॥ ११॥

सनत्कुमार उवाच

कर्ता यदि महादेवः परमात्मा महेश्वरः।
तथा कारयिता चैव कुर्वतोऽल्पात्मनस्तथा॥ १२

नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः।
त्वयोक्तो मुक्तिदः किं वा निष्कलश्चेत्करोति किम्॥ १३

सनत्कुमार बोले—यदि परमात्मा महेश्वर शिव ही सब कुछ करने तथा करानेवाले हैं, साथ ही आपने यह भी कहा है कि वे परमेश्वर शिव नित्य, विशुद्ध, चैतन्य, निष्कल तथा मुक्तिदाता हैं; तो फिर वे अल्पात्मा जीवोंको बन्ध-मोक्ष क्यों देते हैं? और फिर निष्कल अर्थात् निष्क्रिय होते हुए वे ऐसा कैसे कर सकते हैं?॥ १२-१३॥

शैलादिरुवाच

कालः करोति सकलं कालं कलयते सदा।
निष्कलं च मनः सर्वं मन्यते सोऽपि निष्कलः॥ १४

शैलादि बोले—काल सम्पूर्ण जगत्‌का सृजन करता है और परमेश्वर कुछ भी करनेके लिये कालको सदा प्रेरणा प्रदान करता है अर्थात् कालके माध्यमसे परमेश्वर जीवोंको बन्ध-मोक्ष देता है। निष्क्रिय मन शिवका ध्यान करता है, इसलिये वे भी निष्क्रिय स्वरूपवाले हैं॥ १४॥

कर्मणा तस्य चैवेह जगत्सर्वं प्रतिष्ठितम्।
किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिदं जगत्॥ १५

विनाकाशं जगन्नैव विना क्ष्मां वायुना विना।
तेजसा वारिणा चैव यजमानं तथा विना॥ १६

भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः।
विचारतस्तु रुद्रस्य स्थूलमेतच्चराचरम्॥ १७

उसी परमेश्वरके कर्मसे यह समग्र जगत् प्रतिष्ठित है; क्योंकि यह जगत् उस देवदेव महेश्वरकी अष्टमूर्ति है। आकाश, पृथ्वी, वायु, तेज, जल, यजमान, सूर्य तथा चन्द्रमा—इन आठ मूर्तियोंके बिना यह जगत् नहीं हो सकता है। ये सब उसी प्रभुके स्वरूप हैं। अतएव विचार करनेसे यही ज्ञात होता है कि यह चराचर जगत् उसी परमेश्वरके स्थूल रूपमें व्यक्त हो रहा है॥ १५—१७॥

सूक्ष्मं वदन्ति ऋषयो यन्न वाच्यं द्विजोत्तमाः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह॥ १८

हे श्रेष्ठ द्विजो! ऋषिगण कहते हैं कि परमेश्वरका जो सूक्ष्म रूप है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता; क्योंकि वाणी उनके सूक्ष्म रूपका वर्णन करनेमें असमर्थ होकर मनसहित वापस लौट आती है अर्थात् वह मन तथा वाणीसे सर्वथा अगम्य है॥ १८॥

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन।
न भेतव्यं तथा तस्माज्ज्ञात्वानन्दं पिनाकिनः॥ १९

ब्रह्म अर्थात् रुद्रका ही वाचक आनन्द है—ऐसा जाननेवाला विद्वान् कहीं भी भयभीत नहीं होता। अतएव पिनाकी शिवका आनन्दमय स्वरूप जानकर भयभीत नहीं होना चाहिये॥ १९॥

विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः।
सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥ २०

सर्वत्र रुद्रकी ही विभूतियाँ व्याप्त हैं—ऐसा विश्वासपूर्वक जानकर तत्त्वदर्शी मुनियोंने कहा है कि

नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः।
सर्वं तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्र ईश्वरः॥ २१

पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः।
एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चिन्तनम्॥ २२

चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्यालोक्य सुव्रत।
संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निर्वृतिः॥ २३

चतुर्व्यूहः समाख्यातः चिन्तकस्येह योगिनः।
चिन्ता बहुविधा ख्याता सैकत्र परमेष्ठिना॥ २४

सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रं रौद्री न संशयः।
ऐन्द्री चैन्द्रे तथा सौम्या सोमे नारायणे तथा॥ २५

सूर्ये वह्नौ च सर्वेषां सर्वत्रैवं विचारतः।
सैवाहं सोऽहमित्येवं द्विधा संस्थाप्य भावतः॥ २६

भक्तोऽसौ नास्ति यस्तस्माच्चिन्ता ब्राह्मी न संशयः।
एवं ब्रह्ममयं ध्यायेत्पूर्वं विप्र चराचरम्॥ २७

चराचरविभागं च त्यजेदभिमतं स्मरन्।
त्याज्यं ग्राह्यमलभ्यं च कृत्यं चाकृत्यमेव च॥ २८

यस्य नास्ति सुतृप्तस्य तस्य ब्राह्मी न चान्यथा।
आभ्यन्तरं समाख्यातमेवमभ्यर्चनं क्रमात्॥ २९

सब कुछ रुद्र ही है॥ २०॥

परमेष्ठी शिवकी महिमाको समझकर उन्हें सतत नमस्कार करते हुए इस सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्म अर्थात् शिवसे व्याप्त मानना चाहिये। उन्हीं शर्व, रुद्र, ईश्वर, पुरुष, महादेव, महेशान, परात्पर, शिव तथा विभुको सर्वत्र विराजमान समझकर उन्हींका ध्यान एवं चिन्तन करना चाहिये॥ २१-२२॥

हे सुव्रत! चतुर्व्यूहमार्गसे अर्थात् ध्येय, ध्यान, यजमान और प्रयोजनरूपसे विचार करके तथा देख करके जो परमेश्वरको जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। संसारका हेतु ममत्व तथा मोक्षका हेतु विराग है। चिन्तक योगीके लिये चतुर्व्यूहमार्ग मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन कहा गया है॥ २३१/२॥

ब्रह्माजीने बुद्धिके लिये बहुत प्रकारकी चिन्ताएँ रचीं; किंतु रुद्रका चिन्तन सभी चिन्ताओंसे श्रेष्ठ कहा गया है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २४१/२॥

इन्द्रकी ऐन्द्री चिन्ता, सोमकी सौम्या नामक चिन्ता, नारायणकी चिन्ता, सूर्यकी चिन्ता तथा अग्निकी चिन्ता—इन सबकी चिन्ता वास्तवमें रुद्रकी ही चिन्ता है। इस प्रकार विचार करके वह चिन्ता मैं ही हूँ तथा वह परमेश्वर भी मैं ही हूँ—जो भक्त इन दोनों बातोंको श्रद्धापूर्वक अपने मनमें स्थापित किये रहता है, वह परमेश्वरसे भिन्न नहीं है। अतः इस प्रकारकी चिन्ता (चिन्तन) ब्राह्मी चिन्ता कही गयी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५-२६१/२॥

हे विप्र! इस प्रकार पहले यह ध्यान करना चाहिये कि यह स्थावर-जंगमरूप जगत् ब्रह्ममय है; पुनः ब्रह्मात्मक शिवका स्मरण करते हुए चर-अचरका विभाग भी छोड़ देना चाहिये अर्थात् चराचरमें भिन्नताका भाव नहीं रखना चाहिये॥ २७१/२॥

जिस पुरुषके लिये कुछ भी त्याज्य (त्यागनेयोग्य), ग्राह्य (लेनेयोग्य), अलभ्य (प्राप्त न होनेयोग्य), कृत्य (करनेयोग्य) तथा अकृत्य (न करनेयोग्य) नहीं रह जाता; उस परम संतुष्ट पुरुषकी चिन्ता ब्राह्मी चिन्ता है; इसमें संदेह नहीं है॥ २८१/२॥

आभ्यन्तरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा।
विरूपा विकृताश्चापि न निन्द्या ब्रह्मवादिनः॥ ३०

इस प्रकार मैंने क्रमसे आभ्यन्तर पूजनका वर्णन कर दिया। आभ्यन्तर अर्चन करनेवाले पुरुष नमस्कार आदिके द्वारा सदा पूजनीय हैं। ऐसे ब्रह्मवादी पूजक विरूप तथा विकृत हों; तो भी उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ २९-३०॥

आभ्यन्तरार्चकाः सर्वे न परीक्ष्या विजानता।
निन्दका एव दुःखार्ता भविष्यन्त्यल्पचेतसः॥ ३१

यथा दारुवने रुद्रं विनिन्द्य मुनयः पुरा।
तस्मात्सेव्या नमस्कार्याः सदा ब्रह्मविदस्तथा॥ ३२

वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः॥ ३३

विद्वान् पुरुषको जान-बूझकर किन्हीं भी आभ्यन्तर पूजककी परीक्षा नहीं लेनी चाहिये। अल्प बुद्धिवाले ऐसे निन्दक उसी प्रकार दुःखसे पीड़ित होंगे, जैसे प्राचीन कालमें दारुवनमें रुद्रकी निन्दा करके मुनियोंने कष्ट प्राप्त किया था। अतएव वर्णाश्रममें रहनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे वर्णाश्रमसे अतीत ब्रह्मवेत्ताओंकी सदा सेवा करें तथा उन्हें नमस्कार करें॥ ३१—३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

देवदारुवनका वृत्तान्त, अतिथिमाहात्म्यमें सुदर्शनमुनिका आख्यान तथा संन्यासधर्मका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो।
प्रवृत्तं तद्वनस्थानां तपसा भावितात्मनाम्॥ १

सनत्कुमारजी बोले—हे विभो! प्राचीनकालमें दारुवनमें तपस्यासे भावित आत्मावाले उन वनवासी मुनियोंके साथ जो भी घटित हुआ, उसे मैं इस समय सुनना चाहता हूँ॥ १॥

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्नीललोहितः।
विकृतं रूपमास्थाय चोर्ध्वरेता दिगम्बरः॥ २

किं प्रवृत्तं वने तस्मिन् रुद्रस्य परमात्मनः।
वक्तुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम्॥ ३

ऊर्ध्वरेता दिगम्बर भगवान् शिव विकृत रूप धारण करके दारुवनमें क्यों गये? उस वनमें परमात्मा रुद्रके साथ क्या हुआ? उन देवाधिदेव शिवके क्रिया-कलापोंका भी यथार्थ रूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये॥ २-३॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदां वरः।
शिलादसूनुर्भगवान् प्राह किञ्चिद्भवं हसन्॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] उन सनत्कुमारका यह वचन सुनकर श्रुतिसारविदोंमें वरिष्ठ शिलादपुत्र भगवान् नन्दिकेश्वर कुछ-कुछ हँसते हुए उनसे कहने लगे॥ ४॥

शैलादिरुवाच

मुनयो दारुगहने तपस्तेपुः सुदारुणम्।
तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य सदारतनयाग्नयः॥ ५

शैलादि बोले—एक बार घने देवदारुवनमें देवाधिदेव रुद्रकी प्रसन्नताके लिये अपने स्त्री-पुत्रादिसहित पंचाग्निका सेवन करते हुए मुनिगण कठोर तप कर रहे थे॥ ५॥

तुष्टो रुद्रो जगन्नाथश्चेकितानो वृषध्वजः।
धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नीललोहितः॥ ६

प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनौकसाम्।
परीक्षार्थं जगन्नाथः श्रद्धया क्रीडया च सः॥ ७

निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थं च शङ्करः।
देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम्॥ ८

विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासा विषमेक्षणः।
मुग्धो द्विहस्तः कृष्णाङ्गो दिव्यं दारुवनं ययौ॥ ९

उनके तपसे प्रसन्न जगन्नाथ, चेकितान, वृषध्वज, धूर्जटि, परमेशान, नीललोहित भगवान् रुद्र दारुवनमें निवास करनेवाले उन मुनियोंके प्रवृत्ति-लक्षण तथा ज्ञानकी जानकारी करनेके लिये एवं उनमें श्रद्धाभावकी परीक्षा करनेके लिये और साथ ही प्रवृत्तिज्ञानसे युक्त चित्तवाले उन देवदारुवनवासी मुनियोंमें निवृत्ति-लक्षण तथा ज्ञान स्थापित करनेके निमित्त लीलापूर्वक विकृत रूप धारण करके अलौकिक दारुवनमें पहुँचे। उस समय शंकरजी कृष्ण वर्णवाले, दो भुजाओंवाले, तीन आँखोंवाले, दिगम्बर तथा मोहक स्वरूपवाले थे॥ ६—९॥

मन्दस्मितं च भगवान् स्त्रीणां मनसिजोद्भवम्।
भ्रूविलासं च गानं च चकारातीव सुन्दरः॥ १०

अत्यन्त सुन्दर रूपवाले भगवान् शिव मन्द मुसकान तथा भ्रूविलास करते हुए गीत गाकर स्त्रियोंमें कामभावना उत्पन्न कर रहे थे॥ १०॥

सम्प्रेक्ष्य नारीवृन्दं वै मुहुर्मुहुरनङ्गहा।
अनङ्गवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः॥ ११

कामदेवका संहार करनेवाले तथा अत्यन्त मोहक आकृतिवाले भगवान् शिव वहाँ नारीसमूहको बार-बार देखकर उनके भीतर कामभावनाको बढ़ा रहे थे॥ ११॥

वने तं पुरुषं दृष्ट्वा विकृतं नीललोहितम्।
स्त्रियः पतिव्रताश्चापि तमेवान्वयुरादरात्॥ १२

वनमें उस विकृत तथा नीललोहित वर्णवाले पुरुषको देखकर पतिव्रता स्त्रियाँ भी प्रेमपूर्वक उनके पीछे-पीछे चलने लगीं॥ १२॥

वनोटजद्वारगताश्च नार्यो
विस्रस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः।
लब्ध्वा स्मितं तस्य मुखारविन्दाद्
द्रुमालयस्थास्तमथान्वयुस्ताः॥ १३

आरण्यक कुटीरोंके द्वारतक आयी हुई स्त्रियोंके वस्त्र एवं अलंकार शिथिल हो गये। वे मूर्च्छित-सी हो गयीं, उन लीलामय शिवके मुखारविन्दकी मोहक मुसकानको पाकर वृक्षोंके आश्रयमें रहनेवाली वे नारियाँ उनके पीछे-पीछे चल दीं॥ १३॥

दृष्ट्वा काश्चिद्भवं नार्यो मदघूर्णितलोचनाः।
विलासबाह्यास्ताश्चापि भ्रूविलासं प्रचक्रिरे॥ १४

शिवजीको देखकर प्रौढ़ावस्थावाली होनेपर भी कुछ स्त्रियाँ मदमत्त होकर आँखें घुमाने लगीं तथा भौंहोंका संचालन करने लगीं॥ १४॥

अथ दृष्ट्वा परा नार्यः किञ्चित्प्रहसिताननाः।
किञ्चिद्विस्रस्तवसनाः स्रस्तकाञ्चीगुणा जगुः॥ १५

तदनन्तर शिवको देखकर दूसरी स्त्रियाँ मुसकानयुक्त मुखवाली हो गयीं, उनके वस्त्र कुछ शिथिल-से हो गये, कांचीबन्धन भी ढीले हो गये; वे मिलकर गाने लगीं॥ १५॥

काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा
विप्राङ्गनाः स्रस्तनवांशुकं वा।
स्वान् स्वान् विचित्रान् वलयान् प्रविध्य
मदान्विता बन्धुजनांश्च जग्मुः॥ १६

उस समय शिवको विपिनमें देखकर कुछ ऋषिपत्नियाँ तो शिथिल नूतन वस्त्रों तथा अपने-अपने विचित्र वलयोंको फेंककर मदान्वित हो स्वजनोंके पास पहुँचीं॥ १६॥

काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा
विवासना स्रस्तमहांशुका च।

उस समय शिथिल वस्त्रवाली कोई तो शिवको

शाखाविचित्रान् विटपान् प्रसिद्धान्
मदान्विता बन्धुजनांस्तथान्याः ॥ १७

काश्चिज्जगुस्तं ननृतुर्निपेतुश्च धरातले।
निषेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुङ्गवाः ॥ १८

अन्योन्यं सस्मितं प्रेक्ष्य चालिलिङ्गुः समन्ततः।
निरुध्य मार्गं रुद्रस्य नैपुणानि प्रचक्रिरे ॥ १९

को भवानिति चाहुस्तं आस्यतामिति चापराः।
कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः ॥ २०

विपरीता निपेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः।
पतिव्रताः पतीनां तु सन्निधौ भवमायया ॥ २१

दृष्ट्वा श्रुत्वा भवस्तासां चेष्टावाक्यानि चाव्ययः।
शुभं वाप्यशुभं वापि नोक्तवान् परमेश्वरः ॥ २२

दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतं च शङ्करम्।
अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्ते मुनीश्वराः ॥ २३

तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शङ्करे।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः ॥ २४

श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणस्तु महात्मनः।
समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान् ॥ २५

भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान्।
प्रादुर्भावान् दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः ॥ २६

इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं सवृषणं पुरा।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥ २७

देखकर विशिष्ट वासनायुक्त हो गयी तथा अन्य स्त्रियाँ मतवाली-सी होकर विचित्र शाखावाले प्रसिद्ध वृक्षोंको एवं घनिष्ठ बन्धुजनोंतकको नहीं पहचानती थीं ॥ १७ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो! कुछ स्त्रियाँ उनके पास जाकर नाचने लगीं और जमीनपर गिर पड़ीं। कुछ स्त्रियाँ हाथीकी भाँति बैठ गयीं। कोई दूसरी स्त्री कुछ बोलने लगी ॥ १८ ॥

मुसकराते हुए एक-दूसरेको देखकर वे परस्पर आलिंगन करने लगीं। वे सभी ओरसे शिवजीका मार्ग रोककर अनेक प्रकारके हाव-भाव दर्शाने लगीं ॥ १९ ॥

कुछ स्त्रियाँ उनसे कहने लगीं कि 'आप कौन हैं? बैठिये। अन्य स्त्रियाँ भी प्रसन्नचित्त होकर कहने लगीं—आप कहाँ जा रहे हैं? आप हम सबपर प्रसन्न होइये' ॥ २० ॥

भगवान् शंकरकी मायाके प्रभावसे अपने पतियोंके सम्मुख ही पतिव्रता स्त्रियोंके वस्त्रपरिधान, केश आदि अस्त-व्यस्त हो गये और वे कामुक स्त्रियोंकी भाँति स्वेच्छाचारितापूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करने लगीं ॥ २१ ॥

उन स्त्रियोंके हाव-भाव देखकर तथा उनके वचन सुनकर निर्विकार परमेश्वर शिव शुभ अथवा अशुभ कुछ भी नहीं बोले ॥ २२ ॥

उस प्रकारकी चेष्टावाली नारियोंके समूहको देखकर वे विप्र मुनीश्वर दिगम्बरवेशधारी शिवको उस अवस्थामें देखकर [शंकरजीके प्रति] अत्यन्त कठोर वचन कहने लगे। किंतु उनकी सभी तपस्याएँ शंकरजीके सम्मुख उसी प्रकार निष्फल सिद्ध हुईं, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे आकाश-मण्डलमें स्थित तारागण निस्तेज हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

ऐसा सुना जाता है कि महात्मा ब्रह्माका सभी समृद्धियों तथा कल्याणोंका उत्पत्तिस्थलस्वरूप यज्ञ ऋषिके शापसे विनष्ट हो गया था ॥ २५ ॥

भृगुमुनिके शापसे परम ऐश्वर्यशाली विष्णुको भी दस अवतार लेने पड़े तथा अनेक दुःख सहने पड़े ॥ २६ ॥

हे धर्मज्ञ सनत्कुमार! क्रुद्ध ऋषि गौतमने शापसे इन्द्रका अण्डकोषसहित गुह्यांग काटकर पृथ्वीपर गिरा

गर्भवासो वसूनां च शापेन विहितस्तथा।
ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः॥ २८
क्षीरोदश्च समुद्रोऽसौ निवासः सर्वदा हरेः।
द्वितीयश्चामृताधारो ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः॥ २९
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यां जनार्दनः।
क्षीरेण चाभिषिच्येशं देवदेवं त्रियम्बकम्॥ ३०
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै।
निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः॥ ३१
सेचयित्वाथ भगवान् ब्रह्मणा मुनिभिः समम्।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चात्मनः प्रभुः॥ ३२
धर्मश्चैव तथा शप्तो माण्डव्येन महात्मना।
वृष्णयश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यैर्महात्मभिः॥ ३३
राघवः सानुजश्चापि दुर्वासेन महात्मना।
श्रीवत्सश्च मुनेः पादपतनात्तस्य धीमतः॥ ३४
एते चान्ये च बहवो विप्राणां वशमागताः।
वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम्॥ ३५
एवं हि मोहितास्तेन नावबुध्यन्त शङ्करम्।
अत्युग्रवचनं प्रोचुश्चोग्रोऽप्यन्तरधीयत॥ ३६
तेऽपि दारुवनात्तस्मात्प्रातः संविग्नमानसाः।
पितामहं महात्मानमासीनं परमासने॥ ३७

गत्वा विज्ञापयामासुः प्रवृत्तमखिलं विभोः।
शुभे दारुवने तस्मिन् मुनयः क्षीणचेतसः॥ ३८

दिया था॥ २७॥

मुनि वसिष्ठके शापसे वसुओंको गर्भमें वास करना पड़ा, अगस्त्य आदि ऋषियोंके शापसे राजा नहुषको सर्प होना पड़ा था॥ २८॥

भगवान् विष्णुका निवासस्थान तथा अमृतका आधारस्वरूप वह क्षीरसागर ब्राह्मणोंके द्वारा सदाके लिये दूसरे अपेय जलवाले समुद्रके रूपमें कर दिया गया था॥ २९॥

जनार्दन भगवान् विष्णुने वाराणसीपुरीमें पहुँचकर अविमुक्तेश्वर देवाधिदेव त्र्यम्बकेश्वरका दूधसे अभिषेक करके परम श्रद्धासे युक्त होकर देहसंस्पर्शजन्य अमृतस्वरूप क्षीरद्वारा स्वयं उन मधुसूदनने ब्रह्माजी एवं मुनियोंके साथ भगवान् शिवको अभिषिक्त करके पूर्ववत् क्षीरसागरको अपना निवासस्थान बनाया॥ ३०—३२॥

महात्मा माण्डव्यने धर्मको शापित किया तथा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे दुर्वासा आदि महात्माओंके द्वारा वृष्णिवंशी शापित हुए थे॥ ३३॥

महान् आत्मावाले दुर्वासामुनिने लक्ष्मणसहित श्रीरामको शाप दे दिया और श्रीवत्स (श्रीयुक्त वक्षःस्थलवाले) विष्णुको भृगुमुनिका चरण-प्रहार सहना पड़ा॥ ३४॥

देवाधिदेव विरूपाक्ष उमापति शिवको छोड़कर ये तथा अन्य बहुत-से लोग भी विप्रों (ब्राह्मणों)-के वशवर्ती हुए हैं॥ ३५॥

उन्हीं शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे मुनिगण शंकरको नहीं जान पाये और अत्यन्त कठोर वचन बोलने लगे, फिर भगवान् शिव भी अन्तर्धान हो गये॥ ३६॥

तत्पश्चात् व्याकुल चित्तवाले वे मुनिगण प्रातःकाल होते ही उस दारुवनसे ब्रह्माजीके पास पहुँचे। वहाँ श्रेष्ठ आसनपर विराजमान महात्मा ब्रह्मासे उस सुन्दर दारुवनमें रहनेवाले क्षीण चेतनावाले मुनियोंने शंकरका सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ ३७-३८॥

सोऽपि सञ्चिन्त्य मनसा क्षणादेव पितामहः।
तेषां प्रवृत्तमखिलं पुण्ये दारुवने पुरा॥ ३९

उत्थाय प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणिपत्य भवाय च।
उवाच सत्वरं ब्रह्मा मुनीन् दारुवनालयान्॥ ४०

धिग्युष्मान् प्राप्तनिधनान् महानिधिमनुत्तमम्।
वृथाकृतं यतो विप्रा युष्माभिर्भाग्यवर्जितैः॥ ४१

यस्तु दारुवने तस्मिंल्लिङ्गी दृष्टोऽप्यलिङ्गिभिः।
युष्माभिर्विकृताकारः स एव परमेश्वरः॥ ४२

गृहस्थैश्च न निन्द्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः।
विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिनाश्चाप्यपण्डिताः॥ ४३

सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम्।
पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितो ह्यतिथिपूजया॥ ४४

अन्यथा नास्ति सन्तर्तुं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः।
त्यक्त्वा चातिथिपूजां तामात्मनो भुवि शोधनम्॥ ४५

गृहस्थोऽपि पुरा जेतुं सुदर्शन इति श्रुतः।
प्रतिज्ञामकरोज्जायां भार्यामाह पतिव्रताम्॥ ४६

सुव्रते सुभ्रु सुभगे शृणु सर्वं प्रयत्नतः।
त्वया वै नावमन्तव्या गृहे ह्यतिथयः सदा॥ ४७

सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत्पिनाकधृक्।
तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजय॥ ४८

एवमुक्त्वाथ सन्तप्ता विवशा सा पतिव्रता।
पतिमाह रुदन्ती च किमुक्तं भवता प्रभो॥ ४९

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः।
देयं सर्वं शिवायार्ये शिव एवातिथिः स्वयम्॥ ५०

तस्मात्सर्वे पूजनीयाः सर्वेऽप्यतिथयः सदा।
एवमुक्ता तदा भर्त्रा भार्या तस्य पतिव्रता॥ ५१

शेषामिवाज्ञामादाय मूर्ध्ना सा प्राचरत्तदा।
परीक्षितुं तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद् द्विजोत्तमाः॥ ५२

उन ब्रह्माजीने भी क्षणभरमें ही मनमें सोचकर पवित्र दारुवनमें उनका पूर्वघटित सम्पूर्ण वृत्तान्त जान लिया॥ ३९॥

अपने आसनसे तत्काल उठकर और दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्माजीने मन-ही-मन शिवजीको प्रणाम करके दारुवनमें रहनेवाले उन मुनियोंसे कहा—हे विप्रो! विनाशको प्राप्त तुम सभीको धिक्कार है; क्योंकि सर्वोत्तम निधि प्राप्त करके भी तुम अभागोंने उसे गँवा दिया॥ ४०-४१॥

तुम अलिंगियोंने उस दारुवनमें जिस विकृत आकारवाले पुरुषको देखा था; वे साक्षात् परमेश्वर शिव ही थे॥ ४२॥

हे विप्रो! गृहस्थोंको अतिथियोंकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये; वे अतिथि विकृत रूपवाले, सुन्दर रूपवाले, मलिन तथा मूर्ख—चाहे जैसे भी हों॥ ४३॥

पूर्वकालमें पृथ्वीपर द्विजोंमें अग्रणी सुदर्शनमुनिने अतिथिपूजाके प्रभावसे साक्षात् कालमृत्युको भी जीत लिया था॥ ४४॥

भवसागरसे पार होने तथा आत्मशुद्धिके लिये अतिथिपूजाको छोड़कर गृहस्थों एवं श्रेष्ठ द्विजोंके लिये लोकमें अन्य कोई भी उपाय नहीं है॥ ४५॥

पूर्वकालमें सुदर्शन नामसे विख्यात गृहस्थ मुनिने मृत्युपर विजय प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा की और अपनी संतानयुक्त पतिव्रता पत्नीसे कहा—हे सुव्रते! हे सुन्दर भौहोंवाली! हे सौभाग्यवति! सुनो, तुम पूर्ण प्रयत्नके साथ अतिथियोंका सदा सत्कार करना और कभी भी उनका निरादर न करना॥ ४६-४७॥

अतिथि साक्षात् पिनाकधारी शिवका ही स्वरूप होता है, अतएव सब कुछ अर्पित करके भी अतिथिकी पूजा करो। सुदर्शनने पुनः कहा—हे आर्ये! अतिथि साक्षात् शिव होता है; शिवस्वरूप अतिथिको सब कुछ प्रदान करना चाहिये। अतः सभी अतिथियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये॥ ४८—५० $^{1}/_{2}$॥

पतिके ऐसा कहनेपर वह पातिव्रतपरायण मुनिभार्या पतिकी आज्ञाको देवप्रतिमाके समक्ष अर्पित किये गये

धर्मो द्विजोत्तमो भूत्वा जगामाथ मुनेर्गृहम्।
तं दृष्ट्वा चार्चयामास सार्घाद्यैरनघा द्विजम्॥ ५३
सम्पूजितस्तया तां तु प्राह धर्मो द्विजः स्वयम्।
भद्रे कुतः पतिर्धीमांस्तव भर्ता सुदर्शनः॥ ५४
अन्नाद्यैरलमद्यार्ये स्वं दातुमिह चार्हसि।
सा च लज्जावृता नारी स्मरन्ती कथितं पुरा॥ ५५
भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रे चचाल च पतिव्रता।
किं चैत्याह पुनस्तं वै धर्मे चक्रे च सा मतिम्॥ ५६
निवेदितुं किलात्मानं तस्मै पत्युरिहाज्ञया।
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता तस्या नार्याः सुदर्शनः॥ ५७
गृहद्वारं गतो धीमांस्तामुवाच महामुनिः।
एह्येहि क्व गता भद्रे तमुवाचातिथिः स्वयम्॥ ५८
भार्यया त्वनया सार्धं मैथुनस्थोऽहमद्य वै।
सुदर्शन महाभाग किंकर्तव्यमिहोच्यताम्॥ ५९
सुरतान्तस्तु विप्रेन्द्र सन्तुष्टोऽहं द्विजोत्तम।
सुदर्शनस्ततः प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तमः॥ ६०
भुङ्क्ष्व चैनां यथाकामं गमिष्येऽहं द्विजोत्तम।
हृष्टोऽथ दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम्॥ ६१
प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाह च महाद्युतिः।
एषा न भुक्ता विप्रेन्द्र मनसापि सुशोभना॥ ६२
मया चैषा न सन्देहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः।
जितो वै यस्त्वया मृत्युर्धर्मेणैकेन सुव्रत॥ ६३
अहोऽस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा प्रययौ च सः।
तस्मात्तथा पूजनीयाः सर्वे ह्यतिथयः सदा॥ ६४
बहुनात्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः।
तमेव शरणं तूर्णं गन्तुमर्हथ शङ्करम्॥ ६५
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो ब्राह्मणर्षभाः।
ब्रह्माणमभिवन्द्यार्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः॥ ६६

ब्राह्मणा ऊचुः

नापेक्षितं महाभाग जीवितं विकृताः स्त्रियः।
दृष्टोऽस्माभिर्महादेवो निन्दितो यस्त्वनिन्दितः॥ ६७

पुष्प आदिकी भाँति शिरोधार्य करके अतिथि-सत्कारमें प्रवृत्त हो गयी॥ ५१½॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! उन दोनोंकी श्रद्धाकी परीक्षा करनेके लिये एक सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण करके साक्षात् धर्म मुनिके घर पधारे। उस ब्राह्मणको देखकर विशुद्ध हृदयवाली उस मुनिभार्याने अर्घ्य आदिसे उस ब्राह्मणका पूजन किया॥ ५२-५३॥

उस स्त्रीके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर ब्राह्मण-वेषधारी साक्षात् धर्मने उससे कहा—हे कल्याणि! तुम्हारे बुद्धिसम्पन्न पति सुदर्शन कहाँ हैं? तत्पश्चात् अपने पतिद्वारा कही गयी बातका स्मरण करती हुई उस स्त्रीने पतिकी आज्ञाको ध्यानमें रखकर धर्मरूप उस ब्राह्मणके लिये आतिथ्य-सेवा करनेका मनमें निश्चय किया॥ ५४—५६½॥

इसी बीच उस स्त्रीके पति प्रज्ञासम्पन्न सुदर्शन घरके द्वारपर आ गये। मुनिवर सुदर्शनने अपनी भार्याको आवाज दी—हे भद्रे! तुम कहाँ चली गयी हो? तब साक्षात् धर्मरूप अतिथि उनसे बोले—हे महाभाग सुदर्शन! मैं इस समय तुम्हारी इस भार्याके आतिथ्यसे परम सन्तुष्ट हूँ॥ ५७—६०½॥

तदनन्तर धर्मराजने अपना वास्तविक रूप उन्हें दिखाया और मनोवांछित वर देकर महान् कान्तिवाले धर्मने उनसे कहा—हे विप्रेन्द्र! मैं यहाँ केवल तुम्हारी श्रद्धाकी परीक्षा करनेके निमित्त आया हूँ। हे सुव्रत! तुमने अपने एकमात्र अतिथिपूजारूप धर्मसे मृत्युतकको जीत लिया है॥ ६१—६३॥

'अहो, इस तपस्वीका ऐसा ओज'—इस प्रकार कहकर धर्म वहाँसे चले गये। [हे मुनियो!] इसलिये सभी अतिथियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। हे अभागे मुनीश्वरो! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ? तुम लोग शीघ्र ही उन्हीं महादेवकी शरणमें जाओ॥ ६४-६५॥

उन ब्रह्माजीका वह वचन सुनकर व्याकुल नेत्रोंवाले वे द्विजश्रेष्ठ दुःखित होकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे॥ ६६॥

विप्रगण बोले—हे महाभाग! स्त्रियाँ तो विकार-युक्त होती ही हैं, जिनके लिये हमलोगोंने अपना जीवन

शप्तश्च सर्वगः शूली पिनाकी नीललोहितः।
अज्ञानाच्छापजा शक्तिः कुण्ठितास्य निरीक्षणात्॥ ६८

वक्तुमर्हसि देवेश संन्यासं वै क्रमेण तु।
द्रष्टुं वै देवदेवेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥ ६९

पितामह उवाच

आदौ वेदानधीत्यैव श्रद्धया च गुरोः सदा।
विचार्यार्थं मुनेर्धर्मान् प्रतिज्ञाय द्विजोत्तमाः॥ ७०

ग्रहणान्तं हि वा विद्वानथ द्वादशवार्षिकम्।
स्नात्वाहृत्य च दारान् वै पुत्रानुत्पाद्य सुव्रतान्॥ ७१

वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान् विभज्य सुतान् मुनिः।
अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विभुम्॥ ७२

पूजयेत्परमात्मानं प्राप्यारण्यं विभावसौ।
मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा॥ ७३

पक्षद्वादशकं वापि दिनद्वादशकं तु वा।
क्षीरभुक् संयतः शान्तः सर्वान् सम्पूजयेत्सुरान्॥ ७४

इष्ट्वैवं जुहुयादग्नौ यज्ञपात्राणि मन्त्रतः।
अप्सु वै पार्थिवं न्यस्य गुरवे तैजसानि तु॥ ७५

स्वधनं सकलं चैव ब्राह्मणेभ्यो विशङ्कया।
प्रणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः संन्यसेद्यतिः॥ ७६

निकृत्य केशान् सशिखानुपवीतं विसृज्य च।
पञ्चभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः॥ ७७

नष्ट कर डाला। जिन अनिन्द्य महादेवने कृपा करके हमलोगोंको दर्शन दिया था, उन्हींका हमलोगोंने अनादर किया॥ ६७॥

हमने उन सर्वव्यापी, शूलधारी, पिनाकी तथा नीललोहित वर्णवाले शिवजीको अज्ञानतासे शाप दे दिया; किंतु उनके देखनेमात्रसे हमारे शापकी शक्ति कुण्ठित हो गयी॥ ६८॥

हे देवेश! अब आप कृपा करके हमें संन्यास-धर्मके विषयमें क्रमसे बताइये; जिससे हमलोग उन देवाधिदेव, उग्र, भीम तथा कपर्दी शिवका दर्शन करनेमें समर्थ हो सकें॥ ६९॥

पितामह बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक गुरुसे निरन्तर वेदका अध्ययन करे, उसका अर्थ समझे और धर्मोंका ज्ञान करे॥ ७०॥

इस प्रकार विद्वान्‌को चाहिये कि बारह वर्षोंतक वेदाध्ययन करनेके अनन्तर वेदव्रत नामक स्नानसे संस्कारित होकर विवाह करके पुनः सदाचारी पुत्र उत्पन्न करके उन पुत्रोंके अनुकूल वृत्तिका उपाय करके उनमें धनादिका विभाजन कर दे। तत्पश्चात् अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे यज्ञेश्वर विभुका यजन करके मुनिको वनमें आकर अग्निमें परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये॥ ७१-७२½॥

वनमें रहते हुए मुनिको बारह वर्षतक या एक वर्ष (बारह माह)-तक या बारह पक्ष (छः माह)-तक अथवा बारह दिनतक दुग्धका सेवन करते हुए शान्ति तथा संयमपूर्वक सभी देवताओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ७३-७४॥

इस प्रकार यजन-पूजनके अनन्तर यज्ञसम्बन्धी काष्ठपात्र मन्त्रपूर्वक अग्निमें हवन कर दे, मिट्टीके पात्र जलमें छोड़ दे तथा धातुके पात्र गुरुको अर्पित कर दे और निष्कपट भावसे अपना सम्पूर्ण धन ब्राह्मणोंको देकर गुरुको दण्डवत् प्रणाम करके विरक्त यति संन्यासधर्मका आचरण करे॥ ७५-७६॥

शिखासहित बालोंको कटवाकर तथा यज्ञोपवीत त्यागकर विद्वान् यतिको '**भूः स्वाहा**' इस मन्त्रसे जलमें

ततश्चोर्ध्वं चरेदेवं यतिः शिवविमुक्तये।
व्रतेनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः॥ ७८

पर्णवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः।
एवं जीवन्मृतो नो चेत्षण्मासाद्वत्सरात्तु वा॥ ७९

प्रस्थानादिकमायासं स्वदेहस्य चरेद्यतिः।
शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मणाप्येवमाचरन्॥ ८०

सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढव्रताः॥ ८१

त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन
भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमै-
र्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः॥ ८२

श्वेतेनैवं जितो मृत्युर्भवभक्त्या महात्मना।
वोऽस्तु भक्तिर्महादेवे शङ्करे परमात्मनि॥ ८३

पाँच आहुति देनी चाहिये॥ ७७॥

इसके पश्चात् यतिको शिवसायुज्यरूपी विमुक्तिके लिये आगेकी भी साधना करनी चाहिये। इसके लिये छः माह अथवा वर्षपर्यन्त यति अनशन करे अथवा जल पीकर या पत्ते खाकर या दूध पीकर या फल खाकर जीवन-निर्वाह करे। ऐसा करनेपर यदि मृत्यु नहीं हुई और वह जीवित रहता है, तो उसे अपने देहके प्रस्थान आदि अर्थात् स्थूल शरीरके त्यागका प्रयास करना चाहिये। ऐसा आचरण करते हुए वह यति अपने कर्मसे भी शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७८—८०॥

परंतु हे दृढ़व्रती मुनियो! शिवजीमें भक्ति रखनेवाला प्राणी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। महादेवजीके भक्तको त्याग, विधि, महान् व्रतों, यज्ञों, विविध प्रकारके दानों, होमों, विविध शास्त्रों तथा वेदोंसे क्या प्रयोजन! महान् आत्मावाले श्वेतमुनिने महादेवकी भक्तिसे ही मृत्युतकको जीत लिया था। अतएव परमेश्वर महादेव शिवजीके प्रति आपलोग भी भक्तिपरायण हों॥ ८१—८३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवदारुवनवृत्तान्तवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'देवदारुवनवृत्तान्तवर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

शिवाराधनाके माहात्म्यमें श्वेतमुनिका आख्यान

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणर्षभाः।
श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन् परमर्षयः॥ १

पितामह उवाच

श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे।
सक्तो ह्यभ्यर्च्य यद्भक्त्या तुष्टाव च महेश्वरम्॥ २

रुद्राध्यायेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः।
ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम्॥ ३

नेतुं सञ्चिन्त्य विप्रेन्द्राः सान्निध्यमकरोन्मुनेः।
श्वेतोऽपि दृष्ट्वा तं कालं कालप्राप्तोऽपि शङ्करम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—तत्पश्चात् उन ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर द्विजश्रेष्ठ महर्षियोंने उनसे श्वेतमुनिकी पुण्यप्रद कथा पूछी—॥ १॥

पितामह बोले—समाप्त आयुवाले श्वेत नामक एक श्रीयुक्त मुनि गिरिकी गुफामें शिवाराधनमें रत थे। हे द्विजो! **'नमस्ते रुद्र मन्यवे'** इत्यादि रुद्राध्यायसे भक्तिपूर्वक महेश्वरकी आराधना करके श्वेतमुनिने उन्हें प्रसन्न कर लिया॥ २½॥

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर द्विजोंमें श्रेष्ठ श्वेतमुनिको समाप्त आयुवाला जानकर उन्हें ले जानेके लिये महातेजस्वी काल मुनिके पास पहुँचा॥ ३½॥

पूजयामास पुण्यात्मा त्रियम्बकमनुस्मरन्।
त्रियम्बकं यजेदेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ ५

किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः।
तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयङ्करः॥ ६

एह्येहि श्वेत चानेन विधिना किं फलं तव।
रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मा वा जगदीश्वरः॥ ७

कः समर्थः परित्रातुं मया ग्रस्तं द्विजोत्तम।
अनेन मम किं विप्र रौद्रेण विधिना प्रभोः॥ ८

नेतुं यस्योत्थितश्चाहं यमलोकं क्षणेन वै।
यस्माद् गतायुस्त्वं तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः॥ ९

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम्।
हा रुद्र रुद्र रुद्रेति ललाप मुनिपुङ्गवः॥ १०

तं प्राह च महादेवं कालं सम्प्रेक्ष्य वै दृशा।
नेत्रेण बाष्पमिश्रेण सम्भ्रान्तेन समाकुलः॥ ११

श्वेत उवाच

त्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषध्वजः।
लिङ्गेऽस्मिन् शङ्करो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः॥ १२

अतीव भवभक्तानां मद्विधानां महात्मनाम्।
विधिना किं महाबाहो गच्छ गच्छ यथागतम्॥ १३

ततो निशम्य कुपितस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयङ्करः।
श्रुत्वा श्वेतस्य तद्वाक्यं पाशहस्तो भयावहः॥ १४

सिंहनादं महत्कृत्वा चास्फाट्य च मुहुर्मुहुः।
बबन्ध च मुनिं कालः कालप्राप्तं तमाह च॥ १५

सन्निकट मृत्युवाले पुण्यात्मा श्वेतमुनि भी उस कालको देखकर त्रिनेत्र शिवका स्मरण करते हुए उनकी आराधना करने लगे। वे ऐसा कहते हुए ध्यानपरायण थे कि जब मैं सुखकर सम्बन्धवाले तथा जगत्‌का पोषण करनेवाले त्रिनेत्र शिवका यजन कर रहा हूँ, तो मृत्यु मेरा क्या कर लेगी; क्योंकि मैं तो कालका भी काल हूँ॥ ४-५१/२॥

उन श्वेतमुनिको देखकर लोकोंको भयभीत करनेवाला वह काल मुसकराकर उनसे बोला—हे श्वेत! अब तुम मेरी ओर आओ; इस पूजा-पाठ आदिसे तुम्हें क्या लाभ! हे द्विजवर! भगवान् विष्णु, ब्रह्मा अथवा जगदीश्वर रुद्र—इनमें भला कौन मेरे द्वारा ग्रास बनाये गये जीवको बचा सकनेमें समर्थ है? हे विप्र! यह रुद्रपूजा मुझ शक्तिमान्‌का क्या कर सकती है? जिस किसीको भी ले जानेके लिये मैं उठ खड़ा होता हूँ, उसे क्षणभरमें यमलोक पहुँचा देता हूँ। हे मुने! क्योंकि तुम समाप्त आयुवाले हो चुके हो, अतः तुम्हें ले जानेहेतु मैं यहाँ आया हूँ॥ ६—९॥

उस कालका वह धर्ममिश्रित भयावह वचन सुनकर मुनिवर श्वेत 'हा रुद्र! हा रुद्र! हा रुद्र!' कहकर विलाप करने लगे और अश्रुपूरित तथा व्याकुल नेत्रोंसे एवं कातर दृष्टिसे शिवलिङ्गको निहारते हुए अत्यन्त व्यग्रचित्त होकर उस कालसे कहने लगे—॥ १०-११॥

श्वेतमुनि बोले—हे काल! तुम मेरा क्या बिगाड़ सकते हो; क्योंकि सभी देवताओंको उत्पन्न करनेवाले हमारे स्वामी वृषध्वज शंकर रुद्र इस लिङ्गमें विराजमान हैं॥ १२॥

विधिका विधान शिवजीके प्रति अतिशय भक्ति रखनेवाले मुझसदृश महात्माओंका क्या कर सकता है? अतएव हे महाबाहो! आप जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले जाइये॥ १३॥

तदनन्तर श्वेतमुनिका वैसा वचन सुनकर हाथमें पाश धारण किये, तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले भयंकर कालने कुपित होकर सिंहके सदृश घोर गर्जना करते हुए तथा

मया बद्धोऽसि विप्रर्षे श्वेतं नेतुं यमालयम्।
अद्य वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम्॥ १६

क्व शर्वस्तव भक्तिश्च क्व पूजा पूजया फलम्।
क्व चाहं क्व च मे भीतिः श्वेत बद्धोऽसि वै मया॥ १७

लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः।
निश्चेष्टोऽसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः॥ १८

ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतम्।
निहन्तुमन्तकं स्मयन् स्मरारि यज्ञहा हरः॥ १९

त्वरन् विनिर्गतः परः शिवः स्वयं त्रिलोचनः।
त्रियम्बकोऽम्बया समं सनन्दिना गणेश्वरैः॥ २०

ससर्ज जीवितं क्षणाद्भवं निरीक्ष्य वै भयात्।
पपात चाशु वै बली मुनेस्तु सन्निधौ द्विजाः॥ २१

ननाद चोर्ध्वमुच्चधीर्निरीक्ष्य चान्तकान्तकम्।
निरीक्षणेन वै मृतं भवस्य विप्रपुङ्गवाः॥ २२

विनेदुरुच्चमीश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम्।
प्रणेमुरम्बिकामुमां मुनीश्वरास्तु हर्षिताः॥ २३

ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनेर्भवस्य खेचराः।
सुशोभनं सुशीतलं सुपुष्पवर्षमम्बरात्॥ २४

अहो निरीक्ष्य चान्तकं मृतं तदा सुविस्मितः।
शिलाशनात्मजोऽव्ययं शिवं प्रणम्य शङ्करम्॥ २५

उवाच बालधीर्मृतः प्रसीद चेति वै मुनेः।
महेश्वरं महेश्वरस्य चानुगो गणेश्वरः॥ २६

ततो विवेश भगवाननुगृह्य द्विजोत्तमम्।
क्षणाद् गूढशरीरं हि ध्वस्तं दृष्ट्वान्तकं क्षणात्॥ २७

पाशको बार-बार फटकारते हुए काल-प्राप्त मुनिको बाँध दिया और पुनः उनसे कहा—॥ १४-१५॥

हे विप्रर्षे! तुम श्वेतको यमलोक ले जानेके निमित्त मैंने बाँध दिया है; किंतु तुम्हारे देवाधिदेव रुद्रने इस समय तुम्हारी क्या सहायता की? कहाँ शिव, कहाँ तुम्हारी भक्ति तथा पूजा, कहाँ पूजाका फल और कहाँ मैं एवं मेरा भय! हे श्वेत! अब तुम मेरे द्वारा बाँध दिये गये हो। हे श्वेत! तुम्हारा महेश्वर रुद्र जो इस लिङ्गमें स्थित है, वह महादेव तो निश्चेष्ट है; तो फिर तुम उस महेश्वरकी पूजा क्यों करते हो?॥ १६—१८॥

तत्पश्चात् मुनिका प्राण हरनेके निमित्त आये हुए कालका संहार करनेके लिये कामदेवके शत्रु, दक्ष-यज्ञके विध्वंसक तथा त्रिनेत्र सदाशिव महादेव शंकर अपने नन्दी, गणेश्वरों और पार्वतीसहित मुसकराते हुए शीघ्रतापूर्वक शिवलिङ्गसे साक्षात् प्रकट हुए॥ १९-२०॥

हे द्विजो! शिवजीको देखते ही उसी क्षण भयके कारण वह बलवान् काल श्वेतमुनिके पास शीघ्र ही गिर पड़ा और कालका भी अन्त करनेवाले शिवजीको देखकर जोरसे चिल्लाया। हे उत्तम विप्रो! मृतप्राय उस कालको शिवजीने अपने कृपावलोकनसे जीवन प्रदान कर दिया॥ २१-२२॥

सभी महान् देवतागण तथा मुनिवृन्द महेश्वर एवं माता पार्वतीको प्रणाम करने लगे और हर्षित होकर उच्च स्वरमें 'जय हो-जय हो' ऐसा बोलने लगे। नभोमण्डलमें स्थित देवसमुदाय इन श्वेतमुनि तथा शंकरजीके सिरपर आकाशसे अत्यन्त सुन्दर, शीतल तथा सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २३-२४॥

तत्पश्चात् शिलादके पुत्र तथा शिवजीके अनुचर गणेश्वर नन्दीजी कालको मरा हुआ देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और उन्होंने अविनाशी महेश्वर शिवको प्रणामकर उनसे कहा कि यह अल्पबुद्धि काल मर चुका है; अब आप इस काल और मुनि—दोनोंपर अनुग्रह कीजिये॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् क्षणभरमें ही मृत होकर पृथ्वीपर गिरे कालको देखकर उसके तथा द्विजश्रेष्ठ श्वेत—दोनोंके

तस्मान्मृत्युञ्जयं चैव भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजाः।
मुक्तिदं भुक्तिदं चैव सर्वेषामपि शङ्करम्॥ २८

बहुना किं प्रलापेन संन्यस्याभ्यर्च्य वै भवम्।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ॥ २९

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः।
प्रसीद भक्तिर्देवेशे भवेद्रुद्रे पिनाकिनि॥ ३०

केन वा तपसा देव यज्ञेनाप्यथ केन वा।
व्रतैर्वा भगवद्भक्ता भविष्यन्ति द्विजातयः॥ ३१

पितामह उवाच

न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया।
यज्ञैर्होमैर्व्रतैर्वेदैर्योगशास्त्रैर्निरोधनैः ॥ ३२

प्रसादेनैव सा भक्तिः शिवे परमकारणे।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते परमर्षयः॥ ३३

सदारतनयाः श्रान्ताः प्रणेमुश्च पितामहम्।
तस्मात्पाशुपती भक्तिर्धर्मकामार्थसिद्धिदा॥ ३४

मुनेर्विजयदा चैव सर्वमृत्युजयप्रदा।
दधीचस्तु पुरा भक्त्या हरिं जित्वामरैर्विभुम्॥ ३५

क्षुपं जघान पादेन वज्रास्थित्वं च लब्धवान्।
मयापि निर्जितो मृत्युर्महादेवस्य कीर्तनात्॥ ३६

श्वेतेनापि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु।
महादेवप्रसादेन जितो मृत्युर्यथा मया॥ ३७

ऊपर अनुग्रह करके भगवान् शंकर तत्काल गुप्त शरीरमें समाविष्ट हो गये॥ २७॥

अतएव हे द्विजो! सभीको मोक्ष तथा भोग प्रदान करनेवाले मृत्युंजय महादेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ २८॥

[हे मुनियो!] अधिक क्या कहूँ; संन्यासधर्मका पालन करते हुए परम श्रद्धाके साथ उन महादेवकी आराधना करनेसे तुम सब सन्तापरहित हो जाओगे॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमारजी!] तत्पश्चात् उन ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर ब्रह्मवेत्ता मुनिगण बोले—हे देव! आप प्रसन्न हों और हमें बतायें कि किस तपस्या, किस यज्ञ अथवा किन व्रतोंसे पिनाकधारी देवेश्वर रुद्रके प्रति हमलोगोंमें भक्ति उत्पन्न होगी तथा हम द्विजगण शिवभक्त हो सकेंगे?॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिवरो! दान, तप, विद्या, यज्ञ, होम, व्रत, वेदाध्ययन, शास्त्रपारायण, योगसाधन तथा इन्द्रिय-नियन्त्रण आदि उपायोंसे शिव-भक्ति सम्भव नहीं है। केवल उनकी कृपासे ही जगत्के परम कारण महादेवके प्रति वह भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३२$^1/_2$॥

इसके बाद उन ब्रह्माका वचन सुनकर परिश्रान्त हुए उन सभी श्रेष्ठ ऋषियोंने स्त्री तथा पुत्रोंसहित ब्रह्माजीको प्रणाम किया॥ ३३$^1/_2$॥

अतएव [हे सनत्कुमार!] यह शैवी भक्ति धर्म, काम, अर्थ तथा सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली है और सभी प्रकारकी मृत्युसे विजय दिलानेवाली है। यह शिव-भक्ति मुनि दधीचके लिये विजयदायिनी सिद्ध हुई थी। पूर्व कालमें दधीचमुनिने शिवकी भक्तिसे ही देवताओंसहित सर्वशक्तिमान् विष्णुको जीतकर अपने चरणसे राजा क्षुपपर प्रहार किया और अपनी हड्डियोंमें वज्रत्व प्राप्त कर लिया था। महादेवकी आराधनासे मैंने भी मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली है और जिस प्रकार मैंने मृत्युको जीता है, उसी प्रकार मृत्युके मुखमें गये हुए मुनिवर श्वेतने भी शिवजीकी कृपासे मृत्युको जीत लिया था॥ ३४—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवाराधनमहिमवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवाराधनमहिमवर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

देवदारुवननिवासी मुनिगणोंद्वारा शिवाराधना

सनत्कुमार उवाच

कथं भवप्रसादेन देवदारुवनौकसः।
प्रपन्नाः शरणं देवं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

सनत्कुमार बोले—हे प्रभो! देवदारुवनके निवासी [तपस्वीगण] भगवान् शिवके अनुग्रहसे किस प्रकार उन महादेवके शरणको प्राप्त हुए? कृपा करके मुझे बतायें॥ १॥

शैलादिरुवाच

तानुवाच महाभागान् भगवानात्मभूः स्वयम्।
देवदारुवनस्थांस्तु तपसा पावकप्रभान्॥ २

शैलादि बोले—स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने देवदारुवनमें निवास करनेवाले तथा अपनी तपस्यासे अग्नितुल्य प्रभावाले उन महाभाग मुनियोंसे कहा॥ २॥

पितामह उवाच

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।
न तस्मात्परमं किञ्चित्पदं समधिगम्यते॥ ३

पितामह बोले—इन भगवान् महादेव महेश्वरको अवश्य जानना चाहिये; क्योंकि उनसे बढ़कर कोई भी ऐसा पद नहीं है, जो प्राप्त करनेयोग्य हो॥ ३॥

देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः।
सहस्त्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनः॥ ४

संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः।
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा॥ ५

वे ही समस्त देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके प्रभु हैं। हजार युगोंके अन्तमें प्रलयकाल आनेपर वे ही भगवान् शिव काल बनकर सभी देहधारियोंका संहार करते हैं और एकमात्र ये भगवान् शिव ही अपने तेजसे सभी प्रजाओंका सृजन करते हैं॥ ४-५॥

एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः।
योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते॥ ६

द्वापरे चैव कालाग्निर्धर्मकेतुः कलौ स्मृतः।
रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येऽभिध्यायन्ति पण्डिताः॥ ७

अपने वक्षःस्थलपर 'श्री' चिह्न धारण करनेवाले चक्रधारी विष्णु तथा व्रजधारी इन्द्र आदिके रूपमें ये शिव ही विराजमान हैं। ये सत्ययुगमें योगी, त्रेतामें यज्ञस्वरूप, द्वापरमें कालाग्नि एवं कलियुगमें धर्मकेतु नामसे कहे जाते हैं। भगवान् रुद्रकी ये ही मूर्तियाँ हैं, जिनका पण्डितजन ध्यान करते हैं॥ ६-७॥

चतुरस्त्रं बहिश्चान्तरष्टास्त्रं पिण्डिकाश्रये।
वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिङ्गं प्रपूजयेत्॥ ८

बाहरसे चौकोर एवं भीतरसे अष्टकोणवाले पिण्डिका-स्थानमें वृत्ताकार, दर्शनीय तथा श्रेष्ठ लिङ्गकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ८॥

तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकम्।
मूर्तिरेका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः॥ ९

तमोगुणरूप अग्नि, रजोगुणरूप ब्रह्मा तथा प्रकाशक सत्त्वगुणरूप विष्णु आदिकी मूर्तियाँ एकमात्र इन्हीं शिवकी मूर्तिमें स्थित कही जाती हैं॥ ९॥

यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्।
तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम्॥ १०

आराधयन्ति विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
लिङ्गं कृत्वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ११

जीवके भीतर समाधियोगसे स्थित जो शिवरूप है, वही ब्रह्म है। अतएव क्रोधको जीत लेनेवाले तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले उत्तम विप्रगण विधानके अनुसार सभी लक्षणोंसे युक्त लिङ्ग बनाकर अविनाशी, देवाधिदेव, ईशान एवं सबके स्वामी शिवकी आराधना करते हैं॥ १०-११॥

अङ्गुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसम्मतम्।
समनाभं तथाष्टास्रं षोडशास्रमथापि वा॥ १२

सुवृत्तं मण्डलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्।
वेदिका द्विगुणा तस्य समा वा सर्वसम्मता॥ १३

गोमुखी च त्रिभागैका वेद्या लक्षणसंयुता।
पट्टिका च समन्ताद्वै यवमात्रा द्विजोत्तमाः॥ १४

सौवर्णं राजतं शैलं कृत्वा ताम्रमयं तथा।
वेदिकायाश्च विस्तारं त्रिगुणं वै समन्ततः॥ १५

वर्तुलं चतुरस्रं वा षडस्रं वा त्रिरस्रकम्।
समन्तान्निर्व्रणं शुभ्रं लक्षणैस्तत्सुलक्षितम्॥ १६

प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं पूजालक्षणसंयुतम्।
कलशं स्थापयेत्तस्य वेदिमध्ये तथा द्विजाः॥ १७

सहिरण्यं सबीजं च ब्रह्मभिश्चाभिमन्त्रितम्।
सेचयेच्च ततो लिङ्गं पवित्रैः पञ्चभिः शुभैः॥ १८

पूजयेच्च यथालाभं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ।
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्रा सह बन्धुभिः॥ १९

सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत।
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः॥ २०

यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम्॥ २१

सम्प्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः।
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा॥ २२

स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च।
नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥ २३

शैवालशोभनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः।
केचिद् दर्भावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठिताः॥ २४

वह लिङ्ग अंगुष्ठ परिमाणके बराबर, अत्यन्त सुन्दर, वर्तुलाकार तथा शास्त्रसम्मत हो। उसका मण्डल समान नाभिवाला, अष्ट अथवा षोडश कोणोंवाला पूर्णतः गोलाकार तथा दिव्य होना चाहिये; वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है॥ १२१/२॥

लिङ्गकी वेदिका उसकी दुगुनी, समान तथा शास्त्रसम्मत हो। गोमुखीको उसकी एक तिहाई एवं समस्त लक्षणोंसे युक्त जानना चाहिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उसके चारों ओर जौके परिमाणके बराबर पट्टिका होनी चाहिये। वेदिकाका विस्तार चारों ओर तिगुना, वर्तुलाकार, त्रिकोण, चौकोर अथवा षट्कोण होना चाहिये। सोनेका, चाँदीका, ताँबेका अथवा पाषाणका लिङ्ग बनाना चाहिये। हे द्विजो! इस प्रकार सभी ओरसे छिद्र आदिसे रहित, सुन्दर तथा सभी लक्षणोंसे युक्त लिङ्गको विधिपूर्वक प्रतिष्ठित करके उसकी वेदीके मध्यमें पूजालक्षणोंसे समन्वित, स्वर्णसहित, पंचाक्षरमन्त्र एवं सद्योजात आदि पाँच मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कलशकी स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन्हीं पाँच शुभ तथा पवित्र मन्त्रोंसे लिङ्गका अभिषेक करना चाहिये एवं यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे तुमलोग सिद्धि प्राप्त कर लोगे। [हे मुनियो!] तुम लोग अपने पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित एकाग्रचित्त होकर महादेवजीका पूजन करो और हाथ जोड़कर शूलपाणिकी शरणमें जाओ। तत्पश्चात् तुमलोग असंयत आत्मावाले लोगोंके लिये दुर्लभ दर्शनवाले देवेश शिवका दर्शन प्राप्त कर सकोगे; जिन्हें देखते ही समस्त अज्ञान तथा अधर्म नष्ट हो जाता है॥ १३—२०१/२॥

तत्पश्चात् अमित तेजवाले ब्रह्माजीकी प्रदक्षिणा करके वे वनवासी मुनि देवदारु वनके लिये प्रस्थित हुए और जैसा ब्रह्माजीने कहा था, तदनुसार वे महादेवकी आराधना करने लगे॥ २१-२२॥

कुछ मुनि विचित्र प्रकारके स्थण्डिलोंपर, पर्वतोंकी गुफाओंमें, नदियोंके पवित्र तथा एकान्त तटोंपर, कुछ मुनि शैवालपर विराजमान होकर, कुछ मुनि जलके भीतर बैठकर, कोई दर्भ-शय्या बिछाकर, कोई अपने

दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये अश्मकुट्टास्तथापरे।
स्थानवीरासनास्त्वन्ये मृगचर्यारताः परे॥ २५

कालं नयन्ति तपसा पूजया च महाधियः।
एवं संवत्सरे पूर्णे वसन्ते समुपस्थिते॥ २६

ततस्तेषां प्रसादार्थं भक्तानामनुकम्पया।
देवः कृतयुगे तस्मिन् गिरौ हिमवतः शुभे॥ २७

देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः।
भस्मपांसूपदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः॥ २८

उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः।
क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद् गायति विस्मितः॥ २९

क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः।
आश्रमे ह्यटते भैक्ष्यं याचते च पुनः पुनः॥ ३०

मायां कृत्वा तथारूपां देवस्तद्वनमागतः।
ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवुश्च समाहिताः॥ ३१

अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च।
सपत्नीका महाभागाः सपुत्राः सपरिच्छदाः॥ ३२

मुनयस्ते तथा वाग्भिरीश्वरं चेदमब्रुवन्।
अज्ञानाद्देवदेवेश यदस्माभिरनुष्ठितम्॥ ३३

कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि।
चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च॥ ३४

ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर।
अगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥ ३५

पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित होकर, कोई दाँतोंको ही उलूखल बनाकर उनसे पिसे अन्नको खाकर, कुछ पाषाणपर पिसे अन्नको ही खाकर, कुछ वीरासनमें बैठकर, कुछ मृगचर्यापरायण होकर—इस प्रकार तपस्या तथा पूजनके द्वारा उन महाबुद्धिमान् मुनियोंने समय व्यतीत किया॥ २३—२५१/२॥

इस प्रकार उन मुनियोंको तप करते हुए एक वर्ष पूर्ण होनेपर वसन्त ऋतु आनेपर परमेश्वर शिव अपनी दयासे उन भक्तोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त कृतयुगमें हिमालयके उस पर्वतपर स्थित देवदारुवनमें प्रसन्नतापूर्वक आये॥ २६-२७१/२॥

उस समय वे भस्म-धूलिसे भूषित शरीरवाले, दिगम्बर वेशवाले, विकृत स्वरूपवाले, उल्मुक (जलता हुआ काष्ठ) धारण किये हुए, व्यग्रहस्तवाले तथा रक्त-पिंगल नेत्रोंवाले थे। वे कभी रौद्ररूपमें हँसते थे, कभी विस्मित होकर गाते थे, कभी शृङ्गार-नृत्य करते थे तथा कभी रोते थे—इस रूपमें वे आश्रमोंमें बार-बार भिक्षा माँगते हुए इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। इस प्रकारकी माया रचकर महादेवजी उस वनमें आये हुए थे॥ २८—३०१/२॥

तदनन्तर वे सभी महाभाग मुनिगण अपनी स्त्रियों, पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित शुद्ध जल, विविध पुष्प-मालाओं, धूप, गन्ध आदि उपचारोंसे महादेवजीका एकाग्रचित्त होकर पूजन करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ३१-३२॥

पुनः वे सभी मुनि मधुर वाणीमें भगवान् शिवसे बोले—हे देवदेवेश! हम लोगोंने मन, वचन तथा कर्मसे जो भी आपके प्रति किया है, वह सब अज्ञानतावश किया है; अतएव आप सभी अपराधोंको क्षमा कीजिये॥ ३३१/२॥

हे हर! आपके चरित्र अत्यन्त अद्भुत, गूढ़ तथा कठिन हैं। वे चरित्र ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय हैं॥ ३४१/२॥

हम आपकी अगति तथा गति कुछ भी नहीं जानते हैं और जान पाना सम्भव भी नहीं है। हे

विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।
स्तुवन्ति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम्॥ ३६

नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च।
अनन्तबलवीर्याय भूतानां पतये नमः॥ ३७

संहर्त्रे च पिशङ्गाय अव्ययाय व्ययाय च।
गङ्गासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने॥ ३८

त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे।
कन्दर्पाय हुताशाय नमोऽस्तु परमात्मने॥ ३९

शङ्कराय वृषाङ्काय गणानां पतये नमः।
दण्डहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः॥ ४०

वेदमन्त्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः।
भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जङ्गमं च यत्॥ ४१

तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत्।
पासि हंसि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः॥ ४२

अज्ञानाद्यदि विज्ञानाद्यत्किञ्चित्कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ ४३

एवं स्तुत्वा तु मुनयः प्रहृष्टैरन्तरात्मभिः।
याचन्त तपसा युक्ताः पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥ ४४

ततो देवः प्रसन्नात्मा स्वमेवास्थाय शङ्करः।
रूपं त्र्यक्षं च सन्द्रष्टुं दिव्यं चक्षुरदात्प्रभुः॥ ४५

लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेवं त्रियम्बकम्।
पुनस्तुष्टुवुरीशानं देवदारुवनौकसः॥ ४६

विश्वेश्वर! हे महादेव! आप जो कोई भी हों, आपको नमस्कार है। हम मुनिगण आप देवदेव महेश्वरकी स्तुति करते हैं॥ ३५-३६॥

भव, भव्य, भावन तथा उद्भवको नमस्कार है। अनन्त बल एवं वीर्यवाले और भूतोंके पतिको नमस्कार है॥ ३७॥

जगत्के संहारकर्ता, पिशंग वर्णवाले, अव्यय, व्यय, गंगाजलकी धारा धारण करनेवाले, जगत्के आधार, गुणात्मा, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, उत्तम त्रिशूल धारण करनेवाले, कन्दर्पस्वरूप तथा अग्निरूप परमात्मा शिवको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

हाथमें दण्ड तथा पाश धारण करनेवाले, कालरूप, गणोंके पति एवं वृषभध्वज शंकरको नमस्कार है॥ ४०॥

वेदमन्त्रोंमें प्रधान रूपसे निरूपित तथा शत जिह्वावाले आप शिवको नमस्कार है। हे देव! भूत, भविष्य तथा वर्तमान जो कुछ भी है एवं स्थावर-जंगममय यह सम्पूर्ण जगत् आपकी ही देहसे उत्पन्न हुआ है। आप ही जगत्का पालन तथा संहार करते हैं। अतएव हे भगवन्! आपका मंगल हो और आप हमपर प्रसन्न हों। ज्ञान अथवा अज्ञानमें मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह सब स्वयं आप परमेश्वर ही अपनी योगमायासे सम्पन्न करते हैं॥ ४१—४३॥

इस प्रकार तपस्यासे युक्त वे मुनिगण पुलकित अन्तरात्मासे शिवजीका स्तवन करके उनसे याचना करने लगे कि हे भगवन्! हम लोगोंने आपको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें आपका दर्शन करना चाहते हैं॥ ४४॥

तब उनकी स्तुतिसे प्रसन्न मनवाले प्रभु शिवने अपना त्रिनेत्र-रूप दिखानेके लिये उन्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान की॥ ४५॥

देवदारुवनमें निवास करनेवाले उन मुनियोंने उस प्राप्त दिव्य दृष्टिसे तीन नेत्रवाले देवाधिदेव शिवका दर्शन करके पुनः उनकी स्तुति की॥ ४६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मुनिकृतं शिवस्तोत्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मुनिकृतशिवस्तोत्रवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

मुनियोंद्वारा की गयी शिवस्तुति

ऋषय ऊचुः

नमो दिग्वाससे नित्यं कृतान्ताय त्रिशूलिने।
विकटाय करालाय करालवदनाय च॥ १

अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः।
कटङ्कटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः॥ २

सर्वप्रणतदेहाय स्वयं च प्रणतात्मने।
नित्यं नीलशिखण्डाय श्रीकण्ठाय नमो नमः॥ ३

नीलकण्ठाय देवाय चिताभस्माङ्गधारिणे।
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः॥ ४

आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते।
पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः॥ ५

ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासवस्तथा।
ॐकारः सर्ववेदानां श्रेष्ठं साम च सामसु॥ ६

आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः।
ग्राम्याणामृषभश्चासि भगवान् लोकपूजितः॥ ७

सर्वथा वर्तमानोऽपि यो यो भावो भविष्यति।
त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं तथा॥ ८

कामः क्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च।
एतदिच्छामहे बोद्धुं प्रसीद परमेश्वर॥ ९

महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना।
करं ललाटे संविध्य वह्निरुत्पादितस्त्वया॥ १०

तेनाग्निना तदा लोका अर्चिर्भिः सर्वतो वृताः।
तस्मादग्निसमा ह्येते बहवो विकृताग्नयः॥ ११

ऋषिगण बोले—दिशाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले, शाश्वत, प्रलयके कारण, त्रिशूलधारी, विकट रूपवाले, कराल (संसाररूपी वृक्षके लिये कुठार स्वरूप) तथा भीषण वदनवाले शिवको नमस्कार है॥ १॥

बिना रूपवाले, सुन्दर रूपवाले, विश्वरूप आपको नमस्कार है। गजाननरूप, स्वाहा करनेवाले यजमानरूप रुद्रको नमस्कार है॥ २॥

सभी लोगोंसे नमस्कृत देहवाले, स्वयं विनीत आत्मावाले, निरन्तर नील जटाजूट धारण करनेवाले, अपने शरीरमें चिताकी भस्मको धारण करनेवाले, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ शिवको बार-बार नमस्कार है। हे प्रभो! आप सभी देवताओंमें ब्रह्मा हैं तथा रुद्रोंमें नीललोहित हैं॥ ३-४॥

आप समस्त भूतोंकी आत्मा हैं। सांख्यविद् आपको पुरुष कहते हैं। आप पर्वतोंमें विशाल मेरु पर्वत तथा नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं॥ ५॥

ऋषियोंमें आप वसिष्ठ हैं तथा देवताओंमें देवराज इन्द्र हैं, सभी वेदोंमें साररूपसे आप ओंकार हैं एवं सभी गेयस्वरोंमें आप सामगान हैं॥ ६॥

आप परमेश्वर वन्य पशुओंमें सिंह हैं और ग्राम्य पशुओंमें आप ऐश्वर्यसम्पन्न तथा लोकपूज्य वृषभ हैं॥ ७॥

हे प्रभो! आप वैसा कीजिये कि आपका जो भी विद्यमान स्वरूप हो, उसमें हम ब्रह्माद्वारा कथित आपके सर्वस्वरूपका दर्शन कर सकें॥ ८॥

हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हम यह जानना चाहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, विषाद तथा मद—ये पाँचों विकार सभीको दग्ध क्यों करते हैं?॥ ९॥

हे देव! महासंहार उपस्थित होनेपर शुद्ध चित्तवाले आप परमेश्वरने ललाटपर हाथ घर्षितकर अग्नि उत्पन्न की थी॥ १०॥

तब उसी अग्निकी ज्वालाओंसे समस्त लोक

कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहो दम्भ उपद्रवः।
यानि चान्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ १२

दह्यन्ते प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना।
अस्माकं दह्यमानानां त्राता भव सुरेश्वर॥ १३

त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिञ्चसि।
महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक॥ १४

आज्ञापय वयं नाथ कर्तारो वचनं तव।
भूतकोटिसहस्त्रेषु रूपकोटिशतेषु च॥ १५

अन्तं गन्तुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते॥ १६

सभी ओरसे आच्छादित हो गये। इसीलिये ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ आदि विक्षोभात्मक विकृत अग्नियाँ अग्नितुल्य ही हैं। इस जगत्में जो भी स्थावर-जंगम जीव एवं पदार्थ हैं, वे सब आपद्वारा उत्पादित अग्निसे दग्ध हो रहे हैं। अतएव हे सुरेश्वर! उस अग्निसे दग्ध हो रहे हम सभीकी आप रक्षा कीजिये॥ ११—१३॥

हे महेश्वर! हे महाभाग! हे प्रभो! हे शुभ निरीक्षक! आप लोक-कल्याणके लिये जीवोंको अमृतरूपी जलसे सींचते हैं। हे नाथ! आज्ञा दीजिये; हमलोग आपके वचनोंका पालन करनेके लिये तत्पर हैं। अनन्त पदार्थों एवं उनके नाम-रूपोंके मध्य आप व्याप्त हैं, आपका पार हम पा नहीं सके हैं। हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है॥ १४—१६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'शिवस्तुतिवर्णनं' नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥
॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवस्तुतिवर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

मुनियोंको शिवभक्तिका उपदेश

नन्द्युवाच

ततस्तुतोष भगवाननुगृह्य महेश्वरः।
स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत्॥ १

यः पठेच्छृणुयाद्वापि युष्माभिः कीर्तितं स्तवम्।
श्रावयेद्वा द्विजान् विप्रो गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २

वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनिपुङ्गवाः।
स्त्रीलिङ्गमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा॥ ३

पुंल्लिङ्गं पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः।
उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥ ४

न निन्देद्यतिनं तस्माद्दिग्वाससमनुत्तमम्।
बालोन्मत्तविचेष्टं तु मत्परं ब्रह्मवादिनम्॥ ५

नन्दीश्वर बोले—उन मुनियोंके द्वारा संस्तुत भगवान् महेश्वर उनकी स्तुति सुनकर उनके प्रति अनुग्रहशील होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनसे यह वचन बोले॥ १॥

जो विप्र आप लोगोंद्वारा की गयी स्तुतिको पढ़ेगा अथवा सुनेगा अथवा द्विजोंको सुनायेगा, वह मेरे गणोंमें मुख्य स्थान प्राप्त करेगा॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठो! आप भक्तोंके हितार्थ अब मैं शुभ उपदेश करता हूँ। इस जगत्में समस्त स्त्रीलिङ्ग-समुदाय मेरे शरीरसे उत्पन्न प्रकृतिदेवीका ही रूप है और हे विप्रो! सभी पुंल्लिंग-समुदाय मेरी देहसे उत्पन्न पुरुषका रूप है। हे विप्रो! यह सृष्टि मुझसे प्रादुर्भूत पुरुष-प्रकृति (नर-नारी) इन्हीं दोनोंसे हुई है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३-४॥

सभी शिवरूप हैं, अतएव किसीकी भी निन्दा न

ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः।
यथोक्तकारिणो दान्ता विप्रा ध्यानपरायणाः॥ ६

महादेवपरा नित्यं चरन्तो ह्यूर्ध्वरेतसः।
अर्चयन्ति महादेवं वाङ्मनःकायसंयताः॥ ७

रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्तन्ति ते पुनः।
तस्मादेतद् व्रतं दिव्यमव्यक्तं व्यक्तलिङ्गिनः॥ ८

भस्मव्रताश्च मुण्डाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः।
न तान् परिवदेद्विद्वान्न चैतान्नाभिलङ्घयेत्॥ ९

न हसेन्नाप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान्।
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निन्दति॥ १०

यस्त्वेतान् पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्।
एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया॥ ११

युगे युगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठितः।
एवं चरत भद्रं वस्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥ १२

अतुलमिह महाभयप्रणाशहेतुं
शिवकथितं परमं पदं विदित्वा।
व्यपगतभवलोभमोहचित्ताः
प्रणिपतिताः सहसा शिरोभिरुग्रम्॥ १३

ततः प्रमुदिता विप्राः श्रुत्वैवं कथितं तदा।
गन्धोदकैः सुशुद्धैश्च कुशपुष्पविमिश्रितैः॥ १४

स्नापयन्ति महाकुम्भैरद्भिरेव महेश्वरम्।
गायन्ति विविधैर्गुह्यैर्हुङ्कारैश्चापि सुस्वरैः॥ १५

नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः।
अर्धनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्तिने॥ १६

करें। विशेष रूपसे मेरी भक्तिमें तत्पर उत्तम, दिगम्बर, ब्रह्मवादी, बालस्वभाववाले, उन्मत्त तथा चेष्टारहित यतिकी तो कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये॥ ५॥

भस्मसे विभूषित होकर दग्ध पापोंवाले, इन्द्रियजित्, ध्यानपरायण, नित्य नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले तथा महादेवकी भक्तिमें तत्पर जो विप्र मन-वाणी एवं शरीरसे संयत होकर मुझ महादेवकी यथोक्त रीतिसे पूजा-आराधना करते हैं, वे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। अतएव व्यक्त लिङ्गवाले शिवका यह [पाशुपत] व्रत परम दिव्य तथा अव्यक्त है॥ ६—८॥

विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि भस्म धारण किये तथा मुण्डित सिर जो शिवरूप व्रती हैं, उनकी न तो निन्दा करे तथा न तो उनकी बातोंका उल्लंघन करे। लोक एवं परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको ऐसे महात्माओंपर न तो हँसना चाहिये और न तो उनके प्रति अप्रिय वचन बोलना चाहिये॥ ९$^{1}/_{2}$॥

जो मनुष्य इनकी निन्दा करता है, वह मन्दबुद्धि साक्षात् महादेवकी निन्दा करता है तथा जो इनकी नित्य पूजा करता है, वह महादेवजीकी पूजा करता है॥ १०$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार ये महायोगी शिवजी भस्म-भूषित होकर लोक-कल्याणकी कामनासे युग-युगमें नानाविध क्रीड़ाएँ करते हैं। आपलोग भी ऐसा ही आचरण कीजिये; उससे आपलोगोंका कल्याण होगा तथा आपलोग सिद्धि प्राप्त करेंगे॥ ११-१२॥

महाभयका नाश करनेवाले शिव-कथित अतुलनीय तथा परमपदको जानकर उन मुनियोंका चित्त सांसारिक लोभ एवं मोहसे रहित हो गया और उन्होंने शंकरजीके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया॥ १३॥

इस प्रकार शिवकी बातें सुनकर प्रसन्न मनवाले उन मुनियोंने गन्ध, पुष्प तथा कुशसे मिश्रित शुद्ध जलसे परिपूर्ण विशाल घड़ोंसे महेश्वरको स्नान कराया और पुनः वे गूढ़ तथा हुंकारयुक्त सुन्दर स्वरोंसे महादेवजीका स्तुति-गान करने लगे॥ १४-१५॥

देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है। अर्धनारीश्वर

मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने॥ १७

सुरचितसुविचित्रकुण्डलाय
सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम्।
मृगपतिवरचर्मवाससे च
प्रथितयशसे नमोऽस्तु शङ्कराय॥ १८

ततस्तान् स मुनीन् प्रीतः प्रत्युवाच महेश्वरः।
प्रीतोऽस्मि तपसा युष्मान् वरं वृणुत सुव्रताः॥ १९

ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्।
भृग्वङ्गिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च॥ २०

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचिः कश्यपः कण्वः संवर्तश्च महातपाः॥ २१

ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन्।
भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता॥ २२

सेव्यासेव्यत्वमेवं च ह्येतदिच्छाम वेदितुम्।

ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान् परमेश्वरः॥ २३

सस्मितं प्राह सम्प्रेक्ष्य सर्वान् मुनिवरांस्तदा॥ २४

तथा सांख्ययोगके प्रवर्तक शिवको नमस्कार है। मेघवाहन कृष्ण (सदाशिव), गजचर्मको अधोवस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, कृष्णमृगके चर्मको उत्तरीयके रूपमें धारण करनेवाले एवं सर्पको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है॥ १६-१७॥

सुन्दर बने हुए अतिविचित्र कुण्डल धारण करनेवाले, सुन्दर रचित मालाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, सिंहके उत्तम चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले तथा विस्तृत यशवाले आप शंकरको नमस्कार है॥ १८॥

तत्पश्चात् उस स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त उन महादेवने उन मुनियोंसे पुनः कहा—हे सुव्रती मुनीश्वरो! मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे अति प्रसन्न हूँ। तुम सब वर माँगो॥ १९॥

इसपर भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप, कण्व, संवर्त आदि उन सभी महान् तपस्वी मुनियोंने शिवजीको प्रणामकर उनसे यह वचन कहा—भस्म-स्नान, नग्नता, वामता, प्रतिलोमता (काम्य कर्ममार्गमें प्रवृत्ति), सेव्य तथा असेव्य—इनके विषयमें हम जानना चाहते हैं॥ २०—२२$^{1}/_{2}$॥

इसपर उनकी बात सुनकर परमेश्वर भगवान् शिवने मुसकराकर सभी मुनिवरोंकी ओर देखकर उनसे कहा॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ऋषिवाक्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ऋषिवाक्य' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा भस्म, भस्मस्नान एवं शिवयोगियोंकी महिमाका प्रतिपादन

श्रीभगवानुवाच

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि कथासर्वस्वमद्य वै।
अग्निर्ह्यहं सोमकर्ता सोमश्चाग्निमुपाश्रितः॥ १

कृतमेतद्वहत्यग्निर्भूयो लोकसमाश्रयात्।
असकृत्त्वग्निना दग्धं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २

भगवान् शिव बोले—हे मुनीश्वर! इन सबके माहात्म्यसे युक्त कथाके सारभागका वर्णन मैं आपलोगोंसे करूँगा। सोमका कारणस्वरूप अग्नि मैं हूँ तथा अग्निसंयुक्त सोम भी मैं ही हूँ॥ १॥

इस लोक (भारतवर्ष)-में रहनेके कारण सबके कर्मोंका फल अग्निके द्वारा ही धारण किया जाता है। अग्निने इस स्थावर-जंगम जगत्को अनेक बार दग्ध

भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्।
भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिषिञ्चति॥ ३

किया है। अग्निसे भस्मीभूत हो जानेसे यह सम्पूर्ण जगत् पवित्र तथा उत्तम हो जाता है। उसी भस्मसे ओज प्राप्त करके यह सोम प्राणियोंको जीवित करता है॥ २-३॥

अग्निकार्यं च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम्।
भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ४

जो मनुष्य अग्निहोत्र-कार्य सम्पन्न करके भस्मसे त्र्यायुष करता है, वह मेरे ओजसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४॥

भासतेत्येव यद्भस्म शुभं भावयते च यत्।
भक्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम्॥ ५

यह भस्म प्रकाशित करता है, कल्याण सम्पादित करता है तथा समस्त पापोंका नाश करता है, अतएव इसे भस्म कहा जाता है॥ ५॥

ऊष्मपाः पितरो ज्ञेया देवा वै सोमसम्भवाः।
अग्नीषोमात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ६

ऊष्मपसंज्ञक पितर तथा देवतागण चन्द्रमासे उत्पन्न कहे गये हैं। स्थावर-जंगममय यह समस्त जगत् अग्नि-सोमात्मक है॥ ६॥

अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा महाम्बिका।
अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्या पुरुषः स्वयम्॥ ७

मैं महान् तेजसे युक्त अग्नि हूँ तथा ये महिमामयी अम्बा पार्वती सोमस्वरूपा हैं। प्रकृतिके साथ पुरुषरूप मैं अग्नि सोम दोनों ही हूँ॥ ७॥

तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते।
स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीति वै स्थितिः॥ ८

तदाप्रभृति लोकेषु रक्षार्थमशुभेषु च।
भस्मना क्रियते रक्षा सूतिकानां गृहेषु च॥ ९

अतएव हे महाभाग मुनियो! यह भस्म मेरा वीर्य है—ऐसा कहा जाता है। मैं अपने शरीरमें अपने वीर्य (भस्म)-को धारण करके अधिष्ठित हूँ और उसी समयसे यह भस्म सभी अमंगलोंसे लोकोंकी रक्षा करता है तथा इसी भस्मसे सूतिकागृहोंकी भी रक्षा की जाती है॥ ८-९॥

भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
मत्समीपं समागम्य न भूयो विनिवर्तते॥ १०

जो मनुष्य क्रोध तथा इन्द्रियोंको जीतकर भस्मस्नान करके पवित्र अन्तःकरणवाला हो जाता है, वह मेरा सांनिध्य प्राप्त कर लेता है एवं पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है॥ १०॥

व्रतं पाशुपतं योगं कापिलं चैव निर्मितम्।
पूर्वं पाशुपतं ह्येतन्निर्मितं तदनुत्तमम्॥ ११

पाशुपतव्रत, योगशास्त्र तथा कापिल (सांख्यशास्त्र)-की रचना मैंने ही की। इनमें पाशुपतयोगकी रचना पहले हुई है, इसलिये यह उत्तम है॥ ११॥

शेषाश्चाश्रमिणः सर्वे पश्चात्सृष्टाः स्वयम्भुवा।
सृष्टिरेषा मया सृष्टा लज्जामोहभयात्मिका॥ १२

आश्रम-सम्बन्धी शेष सभी शास्त्र स्वयंभू ब्रह्माजीके द्वारा बादमें रचे गये और लज्जा, मोह तथा भयसे युक्त इस सृष्टिकी रचना मैंने ही की है॥ १२॥

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायन्त्यवाससः॥ १३

इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि संवृतः।
तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ १४

देवता तथा मुनिगण नग्न ही उत्पन्न होते हैं। लोकमें अन्य जो मनुष्य हैं, वे भी वस्त्रविहीन-अवस्थामें उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त न किये हुए लोग सुन्दर वस्त्र धारण करके भी नग्न हैं और

इन्द्रियजित् लोग नग्न रहते हुए भी वस्त्रसे ढँके हुए हैं, इसमें वस्त्र हेतु नहीं माना गया है॥ १३-१४॥

क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्॥ १५

क्षमा, धैर्य, अहिंसा, वैराग्य तथा हर तरहसे मान-अपमानमें समानता उत्तम आवरण कहे गये हैं॥ १५॥

भस्मस्नानेन दिग्धाङ्गो ध्यायते मनसा भवम्।
यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना॥ १६

तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्।

भस्म-स्नानके द्वारा पूरे शरीरमें भस्मका अनुलेपनकर मनसे शिवजीका ध्यान करना चाहिये। हजारों प्रकारके कुकृत्य करके भी यदि जो कोई मनुष्य भस्मसे स्नान करे, तो उसके सभी पापोंको भस्म उसी प्रकार जला डालता है, जिस प्रकार अग्नि अपने तेजसे वनको दग्ध कर देता है॥ १६१/२॥

तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा॥ १७
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति।

अतएव जो मनुष्य प्रयत्नशील होकर त्रिकाल भस्म-स्नान करता है, वह मेरे गणोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त होता है॥ १७१/२॥

समाहृत्य क्रतून् सर्वान् गृहीत्वा व्रतमुत्तमम्॥ १८

ध्यायन्ति ये महादेवं लीलासद्भावभाविताः।
उत्तरेणार्यपन्थानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः॥ १९

जो लोग उत्तम व्रत धारण करके समस्त यज्ञ सम्पन्न करके महादेवके लीला-विग्रहका चिन्तन करते हुए उनकी आराधना करते हैं; वे अमृतत्व (मोक्ष)-को प्राप्त होते हैं। इसे श्रेष्ठ उत्तरमार्ग कहा गया है॥ १८-१९॥

दक्षिणेन च पन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे।
अणिमा गरिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च॥ २०

इच्छाकामावसायित्वं तथा प्राकाम्यमेव च।
ईशित्वं च वशित्वं च अमरत्वं च ते गताः॥ २१

जो लोग दक्षिण-मार्गके द्वारा नाशवान् काम्यकर्मोंके लिये परमेश्वरकी आराधना करते हैं, वे अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, इच्छाकामावसायित्व, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व सिद्धियाँ प्राप्तकर अमर हो जाते हैं॥ २०-२१॥

इन्द्रादयस्तथा देवाः कामिकव्रतमास्थिताः।
ऐश्वर्यं परमं प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः॥ २२

इन्द्र आदि सभी देवता भी काम्य व्रतका आश्रयणकर परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करके अपरिमित तेजस्वी हो गये॥ २२॥

व्यपगतमदमोहमुक्तराग-
स्तमरजदोषविवर्जितस्वभावः।
परिभवमिदमुत्तमं विदित्वा
पशुपतियोगपरो भवेत्सदैव॥ २३

मद-मोहसे शून्य, रागोंसे मुक्त तथा तम-रज आदि विकारोंसे रहित स्वभाववाला होकर संसारको परिभूत करनेवाले पाशुपतयोगको उत्तम जानकर सदा इस पशुपतियोगमें स्थित रहना चाहिये॥ २३॥

इमं पाशुपतं ध्यायन् सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥ २४
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति।

सभी इन्द्रियोंको जीतकर जो मनुष्य पवित्र मनसे सभी पापोंका नाश करनेवाले इस पाशुपतयोगका ध्यानपूर्वक श्रद्धा-भावसे पाठ करता है, सभी पातकोंसे रहित विशुद्ध आत्मावाला वह प्राणी रुद्रलोकको प्राप्त होता है॥ २४१/२॥

ते सर्वे मुनयः श्रुत्वा वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः॥ २५

महादेवजीका यह वचन सुनकर द्विजोंमें श्रेष्ठ

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गा बभूवुर्विगतस्पृहाः।
रुद्रलोकाय कल्पान्ते संस्थिताः शिवतेजसा॥ २६

वसिष्ठ आदि वे सभी मुनि अपने अंगोंमें पीताभ-श्वेत भस्म लगाने लगे और इच्छारहित वे मुनिगण कल्पके अन्तमें शिवजीके तेजके प्रभावसे रुद्रलोकके लिये प्रस्थित हुए॥ २५-२६॥

तस्मान्न निन्द्याः पूज्याश्च विकृता मलिना अपि।
रूपान्विताश्च विप्रेन्द्राः सदा योगीन्द्रशङ्कया॥ २७

[नन्दी कहते हैं—हे सनत्कुमारजी!] अतः मलिन, विकृत, रूपसम्पन्न चाहे जिस रूपमें हो, महान् योगीकी शंका करके उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, अपितु उनकी सदा पूजा करनी चाहिये॥ २७॥

बहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः।
सम्पूज्याः सर्वयत्नेन शिववन्नात्र संशयः॥ २८

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता; दृढ़ व्रतवाले भगवान् शिवके द्विजश्रेष्ठ भक्त चाहे वे मलिन ही क्यों न हों, पूरे प्रयत्नसे शिवकी ही भाँति उनकी पूजा करनी चाहिये, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २८ $^{1}/_{2}$॥

मलिनाश्चैव विप्रेन्द्रा भवभक्ता दृढव्रताः।
दधीचस्तु यथा देवदेवं जित्वा व्यवस्थितः॥ २९

नारायणं तथा लोके रुद्रभक्त्या न संशयः।

इसी भाँति मुनि दधीच शिवकी भक्तिसे देवदेव नारायणको जीतकर लोकमें प्रतिष्ठित हो गये थे; इसमें सन्देह नहीं है॥ २९ $^{1}/_{2}$॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्धतनूरुहाः॥ ३०

जटिनो मुण्डिनश्चैव नग्ना नानाप्रकारिणः।
सम्पूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा॥ ३१

अतएव भस्मसे लिप्त शरीरवाले, जटाधारी, मुण्डित सिरवाले तथा दिगम्बर वेशवाले अनेक प्रकारके महात्माओंकी मन, वचन एवं कर्मसे पूर्ण प्रयत्नके साथ महादेवकी भाँति विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगिप्रशंसा नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'योगिप्रशंसा' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

महर्षि दधीच एवं राजा क्षुपकी कथा तथा महामृत्युंजयमन्त्रकी स्वरूपमीमांसा

सनत्कुमार उवाच

कथं जघान राजानं क्षुपं पादेन सुव्रत।
दधीचः समरे जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥ १

वज्रास्थित्वं कथं लेभे महादेवान् महातपाः।
वक्तुमर्हसि शैलादे जितो मृत्युस्त्वया यथा॥ २

सनत्कुमार बोले—हे सुव्रत! मुनि दधीचने समरमें देवदेव नारायणको जीतकर राजा क्षुपके ऊपर अपने पैरसे प्रहार क्यों किया? और उन महातपस्वीने महादेवजीसे अपनी हड्डियाँ वज्रतुल्य होनेका वरदान किस प्रकार प्राप्त किया और हे नन्दीश्वर! जिस प्रकार आपने मृत्युपर विजय प्राप्त की, वह भी आप कृपा करके बताइये॥ १-२॥

शैलादिरुवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः।
अभून्मित्रो दधीचस्य मुनीन्द्रस्य जनेश्वरः॥ ३

नन्दी कहते हैं—ब्रह्माजीके पुत्र महान् तेजवाले क्षुप नामक एक राजा हुए हैं। उन लोकपति क्षुपकी मुनीश्वर दधीचसे मित्रता थी॥ ३॥

चिरात्तयोः प्रसङ्गाद्वै वादः क्षुपदधीचयोः।
अभवत् क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः॥ ४

कालान्तरमें उन क्षुप तथा दधीचके मध्य किसी बातके सन्दर्भमें विवाद हो गया। क्षुपका कथन था कि क्षत्रिय श्रेष्ठ होता है और दधीचका कथन था कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ होता है॥ ४॥

अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः।
तस्मादिन्द्रो ह्यहं वह्निर्यमश्च निर्ऋतिस्तथा॥ ५

वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च।
ईश्वरोऽहं न सन्देहो नावमन्तव्य एव च॥ ६

राजा आठ लोकपालोंका विग्रहस्वरूप होता है। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्र, कुबेर तथा ईश्वर मैं ही हूँ; इसमें कोई सन्देह नहीं है, अतः तुम्हें मेरी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये॥ ५-६॥

महती देवता या सा महतश्चापि सुव्रत।
तस्मात्त्वया महाभाग च्यावनेय सदा ह्यहम्॥ ७

नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा।
श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः॥ ८

हे सुव्रत! वह राजा महान् देवता होता है। अतः हे च्यवनपुत्र! हे महाभाग! तुम्हें मेरा अपमान कभी नहीं करना चाहिये, अपितु सर्वथा मेरी पूजा करनी चाहिये॥ ७½॥

उन क्षुपका वह वचन सुनकर च्यवनपुत्र मुनिश्रेष्ठ द्विज दधीचने आत्मगौरवसे प्रेरित होकर अपने बाँयें हाथसे क्षुपके सिरपर तेज मुष्टिका-प्रहार किया॥ ८½॥

दधीचश्च्यावनिश्चोग्रो गौरवादात्मनो द्विजः।
अताडयत्क्षुपं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टिना।
चिच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान् क्षुपः॥ ९

ब्रह्मलोके पुरासौ हि ब्रह्मणः क्षुतसम्भवः।
लब्धं वज्रं च कार्यार्थं वज्रिणा चोदितः प्रभुः॥ १०

बलशाली क्षुपने भी वज्रसे उन दधीचपर प्रहार किया। पूर्वकालमें राजा क्षुप ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी छींकसे उत्पन्न हुए थे। भगवान्‌की प्रेरणासे असुरोंके पराजयरूप कार्यके निमित्त इन्द्रसे उन्होंने वज्र प्राप्त किया था॥ ९-१०॥

स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः।
तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजयद्वै महाबलः॥ ११

यथा वज्रधरः श्रीमान् बलवांस्तमसान्वितः।
पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुङ्गवः॥ १२

अपनी इच्छासे ही नर होकर वे राजा बने थे। श्रीयुक्त, बलवान् तथा तमोगुणयुक्त इन्द्रकी भाँति राजा क्षुप भी बलशाली थे, इसीलिये वे विप्रेन्द्र दधीचको जीतनेमें समर्थ हो गये॥ ११½॥

राजा क्षुपके वज्र-प्रहारसे निहत द्विजश्रेष्ठ दधीच भूमिपर गिर पड़े। फिर अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने भृगु-पुत्र मुनि शुक्राचार्यका स्मरण किया॥ १२½॥

सस्मार च तदा तत्र दुःखाद्वै भार्गवं मुनिम्।
शुक्रोऽपि सन्धयामास ताडितं कुलिशेन तम्॥ १३

देहधारियोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने भी वहाँ पहुँचकर दधीचमुनिके वज्र-ताड़ित शरीरको अपने योगबलसे यथावत् जोड़ दिया॥ १३½॥

योगादेत्य दधीचस्य देहं देहभृतांवरः।
सन्धाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः॥ १४

भो दधीच महाभाग देवदेवमुमापतिम्।
सम्पूज्य पूज्यं ब्रह्माद्यैर्देवदेवं निरञ्जनम्॥ १५

दधीचके शरीरको पूर्वकी भाँति ठीककर भार्गव शुक्राचार्यने कहा—हे महाभाग दधीच! हे विप्रवर! ब्रह्मा आदि देवताओंसे पूजित निरंजन देवाधिदेव उमापति शिवकी सम्यक् पूजा करके उन त्र्यम्बक महादेवके अनुग्रहसे अवध्य हो जाओ॥ १४-१५½॥

अवध्यो भव विप्रर्षे प्रसादात्त्र्यम्बकस्य तु।
मृतसञ्जीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मया द्विज॥ १६

हे द्विज! उन्हीं महादेवजीसे मैंने भी मृतसंजीवनी

नास्ति मृत्युभयं शम्भोर्भक्तानामिह सर्वतः।
मृतसञ्जीवनं चापि शैवमद्य वदामि ते॥ १७

विद्या प्राप्त की है। शिवजीके भक्तोंको मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं होता है। उसी शैवी मृतसंजीवनी विद्याको अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ॥ १६-१७॥

त्रियम्बकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम्।
त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥ १८

त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः।
त्रिदेवस्य महादेवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ १९

तीनों लोकोंके पिता; सोम-चन्द्र-अग्नि—इन तीनों मण्डलोंके जनक; सत-रज-तम—तीनों गुणोंके महेश्वर; तीन तत्त्वों (बुद्धि-अहंकार-मन), तीन अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), तीन देवों (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) तथा जगत्के सभी तीन प्रकारके पदार्थोंके स्वामी, सुगन्धिरूप पुष्टिवर्धन परमेश्वर महादेवका यजन करना चाहिये॥ १८-१९॥

सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा।
इन्द्रियेषु तथान्येषु देवेषु च गणेषु च॥ २०

पुष्पेषु गन्धवत्सूक्ष्मः सुगन्धिः परमेश्वरः।
पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम॥ २१

सुगन्धिरूप वह सूक्ष्म परमेश्वर सभी जगह, समस्त जीवधारियोंमें, त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें, इन्द्रियोंमें, अन्य देवताओं तथा गणोंमें उसी प्रकार अधिष्ठित है, जैसे पुष्पोंमें गन्ध विद्यमान रहती है॥ २०१/२॥

महदादिविशेषान्तविकल्पस्यापि सुव्रत।
विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने॥ २२

इन्द्रस्यापि च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः।
तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसा तथा॥ २३

हे द्विजश्रेष्ठ! चूँकि पुरुषरूप परमेश्वरकी पुष्टि प्रकृतिरूप है। हे सुव्रत! हे महामुने! अतएव वही परमेश्वर महत् आदिसे लेकर विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच, विष्णु, ब्रह्मा, मुनियों तथा इन्द्र आदि सभी देवताओंका पुष्टिवर्धन करता है॥ २१-२२१/२॥

कर्म, तपस्या, स्वाध्याय, योग तथा ध्यानके द्वारा उन अमृतरूप महादेवका यजन करना चाहिये॥ २३१/२॥

स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च यजामहे।
सत्येनानेन मुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम्॥ २४

बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः।
मृतसञ्जीवनो मन्त्रो मया लब्धस्तु शङ्करात्॥ २५

जन्म-मरणरूप बन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभु शिव इस सत्यके द्वारा जीवको मृत्युके पाशसे छुटकारा प्रदान करते हैं। सूर्यकी किरणोंसे पककर अपने मूलबन्धसे स्वयं मुक्त हुए उर्वारुक (ककड़ी)-की भाँति वह जीव शिवाराधनके द्वारा सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ २४१/२॥

जप्त्वा हुत्वाभिमन्त्र्यैवं जलं पीत्वा दिवानिशम्।
लिङ्गस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं द्विज॥ २६

मैंने भी शिवजीसे ही मृतसंजीवनी मन्त्र प्राप्त किया है। हे द्विज! जप करने, हवन करने, अभिमन्त्रित जलका पान करने तथा दिन-रात शिवलिङ्गके सांनिध्यमें बैठकर उनका ध्यान करनेसे मृत्युका भय नहीं रह जाता॥ २५-२६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तपसाराध्य शङ्करम्।
वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्वं च लब्धवान्॥ २७

उन शुक्राचार्यका वह वचन सुनकर मुनि दधीचने घोर तपस्या करके शिवकी आराधना की, जिसके

एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः।
प्राप्यावध्यत्वमन्यैश्च वज्रास्थित्वं प्रयत्नतः॥ २८

अताडयच्च राजेन्द्रं पादमूलेन मूर्धनि।
क्षुपो दधीचं वज्रेण जघानोरसि च प्रभुः॥ २९

नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः।
प्रभावात्परमेशस्य वज्रबद्धशरीरिणः॥ ३०

दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च
क्षुपो दधीचस्य तदा प्रभावम्।
आराधयामास हरिं मुकुन्द-
मिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदाम्बुजाक्षम्॥ ३१

परिणामस्वरूप उनकी हड्डियाँ वज्र-तुल्य हो गयीं, वे अवध्य हो गये तथा उनकी सारी दीनता दूर हो गयी॥ २७॥

इस प्रकार देवेश्वर शिवकी आराधना करके मुनिश्रेष्ठ दधीचने वज्रके समान हड्डियाँ हो जाने तथा दूसरोंसे मारे न जा सकनेका वरदान प्राप्तकर चेष्टापूर्वक राजा क्षुपके सिरपर अपने चरण-मूलसे प्रहार किया। इसपर राजा क्षुपने भी अपने वज्रसे उनकी छातीपर आघात किया॥ २८-२९॥

किंतु भगवान् शिवके अनुग्रहसे वज्र-तुल्य शरीरवाले महात्मा दधीचको वह वज्र विनष्ट करनेमें समर्थ नहीं हो सका॥ ३०॥

दधीचका अवध्यत्व, उनकी अदीनता तथा उनके तपोबलका प्रभाव देखकर राजा क्षुप कमलके सदृश नेत्रवाले उपेन्द्र मुकुन्द श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे॥ ३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपाभिधनृपपराभववर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'क्षुपाभिधनृपपराभववर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

राजा क्षुपद्वारा विष्णुकी आराधना, विष्णुद्वारा शिवभक्तोंकी महिमाका कथन

नन्द्युवाच

पूजया तस्य सन्तुष्टो भगवान् पुरुषोत्तमः।
श्रीभूमिसहितः श्रीमान् शङ्खचक्रगदाधरः॥ १

किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरणभूषितः।
पीताम्बरश्च भगवान् देवैर्दैत्यैश्च संवृतः॥ २

प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वै गरुडध्वजः।
दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्॥ ३

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम्।
त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतिस्त्वं जनार्दनः॥ ४

पुरुषस्त्वं जगन्नाथो विष्णुर्विश्वेश्वरो भवान्।
योऽयं ब्रह्मासि पुरुषो विश्वमूर्तिः पितामहः॥ ५

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमारजी!] उन राजा क्षुपकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवताओं तथा दैत्योंसे पूजित, हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, पीत वस्त्र पहने हुए, सभी आभूषणोंसे सुशोभित एवं मुकुट धारण किये हुए लक्ष्मी तथा भूमिसहित गरुड़ध्वज श्रीमान् भगवान् पुरुषोत्तमने उन क्षुपको दिव्य दर्शन दिया॥ १-२$^{1}/_{2}$॥

दिव्य दर्शनके अनन्तर उन गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु देवको प्रणाम करके राजा क्षुप अत्यन्त प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ३$^{1}/_{2}$॥

आप आदि हैं तथा आप आदिरहित भी हैं। आप ही प्रकृति हैं, आप ही जनार्दन हैं, आप ही पुरुष हैं, आप ही जगन्नाथ, आप ही विष्णु तथा आप ही

तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन।
परमात्मा परं धाम श्रीपते भूपते प्रभो॥ ६

त्वत्क्रोधसम्भवो रुद्रस्तमसा च समावृतः।
त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसा च पितामहः॥ ७

त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः।
कालमूर्ते हरे विष्णो नारायण जगन्मय॥ ८

महांस्तथा च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर॥ ९

महादेव जगन्नाथ पितामह जगद्गुरो।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर॥ १०

प्रसीद त्वं जगन्नाथ शरण्यं शरणं गतः।
वैकुण्ठ शौरे सर्वज्ञ वासुदेव महाभुज॥ ११

सङ्कर्षण महाभाग प्रद्युम्न पुरुषोत्तम।
अनिरुद्ध महाविष्णो सदा विष्णो नमोऽस्तु ते॥ १२

विष्णो तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतो विभुः।
सहस्रफणसंयुक्तस्तमोमूर्तिर्धराधरः॥ १३

अधश्च धर्मो देवेश ज्ञानं वैराग्यमेव च।
ऐश्वर्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत॥ १४

सप्तपातालपादस्त्वं धराजघनमेव च।
वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः॥ १५

द्यौर्मूर्धा ते विभो नाभिः खं वायुर्नासिकां गतः।
नेत्रे सोमश्च सूर्यश्च केशा वै पुष्करादयः॥ १६

नक्षत्रतारका द्यौश्च ग्रैवेयकविभूषणम्।
कथं स्तोष्यामि देवेशं पूज्यश्च पुरुषोत्तमः॥ १७

विश्वेश्वर हैं। जो ये पुरुषरूप विश्वमूर्ति पितामह हैं, वे भी आप ही हैं॥ ४-५॥

हे जनार्दन! जो आदि ज्योति है, वह आप ही हैं। हे लक्ष्मीकान्त! हे भूपते! आप ही परमात्मा तथा आप ही परमधाम हैं॥ ६॥

तमोगुणसे संलिप्त भगवान् रुद्र आपके क्रोधसे आविर्भूत हैं तथा आपके ही अनुग्रहसे रजोगुणसे सम्पन्न जगत्के सृजनकर्ता पितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है। हे कालमूर्ते! हे हरे! हे विष्णो! हे नारायण! हे जगन्मय! सत्त्वगुणयुक्त साक्षात् पुरुषोत्तम विष्णु भी आपके ही अनुग्रहसे अधिष्ठित हैं॥ ७-८॥

हे विश्वमूर्ते! हे महेश्वर! महत्, पंचमहाभूतादि, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन—ये सब आपके ही द्वारा अधिष्ठित हैं॥ ९॥

हे महादेव! हे जगन्नाथ! हे पितामह! हे जगद्गुरो! हे देवदेवेश! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ १०॥

हे शरणागतको शरण प्रदान करनेवाले जगन्नाथ! हे वैकुण्ठ! हे शौरे! हे सर्वज्ञ! हे वासुदेव! हे महाभुज! आप प्रसन्न होइये॥ ११॥

हे संकर्षण! हे महाभाग! हे प्रद्युम्न! हे पुरुषोत्तम! हे अनिरुद्ध! हे महाविष्णो! हे विष्णो! आपको सदा नमस्कार है॥ १२॥

हे विष्णो! हजार फणोंसे युक्त, तमोमूर्तिस्वरूप, पृथ्वीको धारण करनेवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न शेषनाग आपके दिव्य तथा अव्यक्त आसनके रूपमें अधिष्ठित हैं॥ १३॥

हे देवेश! हे सुव्रत! इस आसनके नीचे पादके रूपमें साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य विराजमान हैं॥ १४॥

हे विभो! सातों पाताल आपके चरणरूपमें, पृथ्वी जाँघके रूपमें, सातों समुद्र वस्त्रके रूपमें, दिशाएँ विशाल भुजाओंके रूपमें, अन्तरिक्ष मस्तकके रूपमें, आकाश नाभिके रूपमें, वायु नासिकाके रूपमें, दोनों नेत्र सूर्य-चन्द्रके रूपमें, बाल मेघोंके रूपमें तथा नक्षत्र-तारे और सम्पूर्ण गगनमण्डल आपके गलेके आभूषणके

श्रद्धया च कृतं दिव्यं यच्छ्रुतं यच्च कीर्तितम्।
यदिष्टं तत्क्षमस्वेश नारायण नमोऽस्तु ते॥ १८

शैलादिरुवाच

इदं तु वैष्णवं स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षुपेण परिकीर्तितम्॥ १९

श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति॥ २०

सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः
स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम्।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या
जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ २१

राजोवाच

भगवन् ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः।
धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत्॥ २२

अवध्यः सर्वदा सर्वैः शङ्करार्चनतत्परः।
सावज्ञं वामपादेन स मां मूर्ध्नि सदस्यथ॥ २३

ताडयामास देवेश विष्णो विश्वजगत्पते।
उवाच च मदाविष्टो न बिभेमीति सर्वतः॥ २४

जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर।
यथा हि तं तथा कर्तुं त्वमर्हसि जनार्दन॥ २५

शैलादिरुवाच

ज्ञात्वा सोऽपि दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः।
सस्मार च महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः॥ २६

एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः क्षुतसम्भवम्।
विप्राणां नास्ति राजेन्द्र भयमेत्य महेश्वरम्॥ २७

विशेषाद्रुद्रभक्तानामभयं सर्वदा नृप।
नीचानामपि सर्वत्र दधीचस्यास्य किं पुनः॥ २८

तस्मात्तव महाभाग विजयो नास्ति भूपते।
दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे॥ २९

रूपमें अधिष्ठित हैं। आप पुरुषोत्तम हैं और परम पूज्य हैं। आप देवेश्वरकी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ? आपके विषयमें जैसा सुना तथा कहा गया है, उसी दिव्य भावको मैंने श्रद्धापूर्वक स्तुतिरूपमें कह दिया। हे ईश! हे नारायण! मेरी अभिलाषाके लिये मुझे क्षमा कीजिये। आपको नमस्कार है॥ १५—१८॥

नन्दीश्वर बोले—जो मनुष्य क्षुपके द्वारा की गयी सर्वपापनाशिनी इस विष्णु-स्तुतिको भक्तिपूर्वक पढ़ता है या सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है॥ १९-२०॥

इस प्रकार इन्द्र आदिके द्वारा स्तुत किये जानेवाले अपराजेय परमेश्वर विष्णुकी भक्तिपूर्वक स्तुति करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनकी ओर कातर दृष्टिसे देखते हुए क्षुपने कहा॥ २१॥

राजा बोले—हे भगवन्! दधीच नामसे लोकप्रसिद्ध एक धर्मज्ञ तथा विनीत आत्मावाले ब्राह्मण हैं, जो पहले मेरे मित्र थे। शिवजीकी आराधनामें सदा तत्पर रहनेके कारण उनकी कृपासे वे सभीसे अवध्य हैं। हे देवेश! हे विष्णो! हे जगत्पते! उन्होंने सभामें मेरा तिरस्कार करते हुए अपने बायें पैरसे मेरे सिरपर प्रहार कर दिया और उन मदोन्मत्तने कहा कि मैं किसीसे भी नहीं डरता हूँ॥ २२—२४॥

हे जगदीश्वर! मैं उन विप्र दधीचको जीतना चाहता हूँ। हे जनार्दन! मैं उन्हें जिस भी तरहसे जीत सकूँ; आप वैसा उपाय कीजिये॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन विष्णुने भी महात्मा दधीचके अवध्यत्वको जानकर तथा भगवान् शिवके अतुलित प्रभावका स्मरण करके ब्रह्माकी छींकसे उत्पन्न क्षुपसे कहा—हे राजेन्द्र! महेश्वरकी भक्तिको प्राप्त विप्रोंको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। हे राजन्! विशेषरूपसे रुद्रके भक्त सर्वदा भयसे मुक्त रहते हैं, चाहे वे परम नीच ही क्यों न हों; फिर इन दधीचमुनिकी तो बात ही क्या?॥ २६—२८॥

हे महाभाग! हे भूपते! अतः अब आपके विजयकी आशा नहीं है। देवताओंसहित अपनेको शापित होनेके

भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम्।
विनाशो मम राजेन्द्र पुनरुत्थानमेव च॥ ३०

तस्मात्समेत्य विप्रेन्द्र सर्वयत्नेन भूपते।
करोमि यत्नं राजेन्द्र दधीचविजयाय ते॥ ३१

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथास्त्विति जनार्दनम्।
भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याश्रमं ययौ॥ ३२

आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान् भक्तवत्सलः।
दधीचमाह ब्रह्मर्षिमभिवन्द्य जगद्गुरुः॥ ३३

श्रीभगवानुवाच

भो भो दधीच ब्रह्मर्षे भवार्चनरताव्यय।
वरमेकं वृणे त्वत्तस्तं भवान् दातुमर्हति॥ ३४

याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना।
ज्ञातं तवेप्सितं सर्वं न बिभेमि तवाप्यहम्॥ ३५

भवान् विप्रस्य रूपेण आगतोऽसि जनार्दन।
भूतं भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन॥ ३६

ज्ञातं प्रसादाद् रुद्रस्य द्विजत्वं त्यज सुव्रत।
आराधितोऽसि देवेश क्षुपेण मधुसूदन॥ ३७

जाने तवैनां भगवन् भक्तवत्सलतां हरे।
स्थाने तवैषा भगवन् भक्तवात्सल्यता हरे॥ ३८

अस्ति चेद्भगवन् भीतिर्भवार्चनरतस्य मे।
वक्तुमर्हसि यत्नेन वरदाम्बुजलोचन॥ ३९

वदामि न मृषा तस्मान्न बिभेमि जनार्दन।
न बिभेमि जगत्यस्मिन् देवदैत्यद्विजादपि॥ ४०

नन्द्युवाच

श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः।
स्वरूपं सस्मितं प्राह सन्त्यज्य द्विजतां क्षणात्॥ ४१

लिये मैं अब विप्र दधीचको क्रोधित करूँगा॥ २९॥

हे राजेन्द्र! उनके शापसे दक्षके यज्ञमें सभी देवताओंसहित मेरा विनाश होगा और पुनः उत्थान होगा॥ ३०॥

हे भूपते! हे राजेन्द्र! समस्त देवताओंसहित मैं विप्रेन्द्र दधीचमुनिसे आपकी विजयके लिये पूरे मनसे प्रयास करूँगा॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर क्षुपने उनसे कहा—आप वैसा ही कीजिये। इधर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारणकर दधीचमुनिके आश्रम पहुँचे। जगद्गुरु विष्णुने ब्रह्मर्षि दधीचको प्रणामकर उनसे कहा॥ ३२-३३॥

श्रीभगवान् बोले—हे शिवाराधनमें तत्पर निर्विकार ब्रह्मर्षि दधीच! मैं आपसे एक वरकी याचना करता हूँ। आप मुझे वह वर देनेकी कृपा कीजिये॥ ३४॥

देवदेव विष्णुके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दधीचने कहा—मैं आपके सभी भावों तथा मनोरथोंको समझ गया हूँ। मुझे आपसे भी कोई भय नहीं है॥ ३५॥

हे जनार्दन! आप यहाँ ब्राह्मणका रूप धारणकर आये हुए हैं। हे देवेश! हे जनार्दन! भगवान् शिवकी कृपासे मैं भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब कुछ जानता हूँ। हे सुव्रत! आप यह विप्ररूप छोड़ दीजिये। हे देवेश! हे मधुसूदन! क्षुपने अपनी कार्य-सिद्धिके लिये आपकी आराधना की है॥ ३६-३७॥

हे भगवन्! हे हरे! आपकी यह भक्तवत्सलता मुझे पूर्ण रूपसे विदित है। हे भगवन्! हे हरे! आज यहाँ भी आपकी वही भक्तवत्सलता विद्यमान है॥ ३८॥

हे भगवन्! हे वरदाता! हे कमलनयन! यदि आपका ऐसा भक्तवात्सल्य है तो आप सोच-समझकर यह बताइये कि मुझ शिवाराधनतत्पर व्यक्तिको आपसे क्या भय हो सकता है?॥ ३९॥

हे जनार्दन! मैं मिथ्या-भाषण नहीं करता; इसीलिये इस जगत्में देवता, दैत्य तथा ब्राह्मण किसीसे भी मैं भयभीत नहीं रहता हूँ॥ ४०॥

नन्दी कहते हैं—[हे सनत्कुमार!] दधीचका वह

श्रीभगवानुवाच

भयं दधीच सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत।
भवार्चनरतो यस्माद्भवान् सर्वज्ञ एव च॥ ४२

बिभेमीति सकृद्वक्तुं त्वमर्हसि नमस्तव।
नियोगान्मम विप्रेन्द्र क्षुपं प्रति सदस्यथ॥ ४३

एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं सान्त्वं विष्णोर्महामुनिः।
न बिभेमीति तं प्राह दधीचो देवसत्तमम्॥ ४४

प्रभावाद्देवदेवस्य शम्भोः साक्षात्पिनाकिनः।
शर्वस्य शङ्करस्यास्य सर्वज्ञस्य महामुनिः॥ ४५

ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः।
चक्रमुद्यम्य भगवान् दिधक्षुर्मुनिसत्तमम्॥ ४६

अभवत्कुण्ठिताग्रं हि विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्।
प्रभावाद्धि दधीचस्य क्षुपस्यैव हि सन्निधौ॥ ४७

दृष्ट्वा तत्कुण्ठिताग्रं हि चक्रं चक्रिणमाह सः।
दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम्॥ ४८

भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम्।
सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णो प्रयत्नतः॥ ४९

भवस्यैतच्छुभं चक्रं न जिघांसति मामिह।
ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथान्यैर्हि प्रयत्नं कर्तुमर्हसि॥ ५०

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमायुधम्।
ससर्ज च पुनस्तस्मै सर्वास्त्राणि समन्ततः॥ ५१

चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमव्ययाः।
द्विजेनैकेन योद्धुं हि प्रवृत्तस्य महाबलाः॥ ५२

वचन सुनकर उसी क्षण ब्राह्मणरूप छोड़कर विष्णुने अपना रूप धारण कर लिया और हँसकर दधीचसे कहा॥ ४१॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुव्रत! हे दधीच! क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं तथा शिवार्चनमें रत रहनेवाले हैं, इसलिये आपको सभी स्थानोंपर किसी भी प्रकारका भय व्याप्त नहीं कर सकता॥ ४२॥

हे विप्रवर! आपको नमस्कार है। मेरा आग्रह है कि आप एक बार सभामें क्षुपसे बोल दीजिये कि 'मैं आपसे डरता हूँ'॥ ४३॥

इस प्रकार विष्णुभगवान्का वह विनय तथा प्रीतियुक्त वचन सुनकर महामुनि दधीचने देवोंमें श्रेष्ठ उन विष्णुसे कहा—मैं साक्षात् पिनाकधारी सर्वज्ञ शर्व देवदेव महादेव शिवके अनुग्रहसे किसीसे भी नहीं डरता॥ ४४-४५॥

तत्पश्चात् उन मुनि दधीचका वचन सुनकर भगवान् विष्णु क्रोधित हो उठे और उन्होंने मुनिश्रेष्ठ दधीचको दग्ध करनेकी इच्छासे अपना चक्र उठाया॥ ४६॥

क्षुपके सामने ही मुनि दधीचके प्रभावसे विष्णुका सुदर्शन चक्र कुण्ठित हो गया॥ ४७॥

कुण्ठित अग्रभागवाले सुदर्शन चक्रको देखकर वे दधीच मुसकराकर सत-असत्के अवभासक चक्रधारी [विष्णु]-से कहने लगे॥ ४८॥

हे भगवन्! हे विष्णो! पूर्वकालमें आपको भी अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक शिवकृपासे ही यह अति भयावह सुदर्शन नामक शुभ चक्र प्राप्त हुआ है। अतः यह चक्र मुझ शिवभक्तको नहीं मार सकता। अब आप ब्रह्मास्त्र आदि अन्य अस्त्रोंसे मुझे मारनेका प्रयास कीजिये॥ ४९-५०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दधीचका वह वचन सुनकर तथा अपने अस्त्रको निस्तेज देखकर विष्णुजीने समस्त प्रकारके अस्त्र उत्पन्न किये और वे चारों ओरसे उनके ऊपर प्रहार करने लगे॥ ५१॥

महान् बलशाली शाश्वत देवता लोग भी उस एकमात्र ब्राह्मणसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त उन विष्णुकी सहायता करनेमें तत्पर हो गये॥ ५२॥

कुशमुष्टिं तदादाय दधीचः संस्मरन् भवम्।
ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी॥ ५३

तब वज्रतुल्य हड्डियोंवाले इन्द्रियजित् दधीचने एक मुट्ठी कुश लेकर भगवान् शिवका स्मरण करते हुए सभी देवताओंके ऊपर फेंक दिया॥ ५३॥

दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम्।
दग्धुं देवान् मतिं चक्रे युगान्ताग्निरिवापरः॥ ५४

वह कुश कालाग्निके तेजके समान दिव्य त्रिशूल बन गया। उस समय दूसरी प्रलयाग्निके तुल्य प्रतीत होनेवाले दधीचने सभी देवताओंको भस्म कर देनेका निश्चय कर लिया॥ ५४॥

इन्द्रनारायणाद्यैश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु।
आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं मुने॥ ५५

हे मुने! इन्द्र तथा विष्णु आदि देवताओंने जो-जो अस्त्र दधीचके ऊपर छोड़े थे, वे सब उस त्रिशूलको प्रणाम करने लगे॥ ५५॥

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या द्विजोत्तम।
ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः॥ ५६

आत्मनः सदृशान् दिव्यान् लक्षलक्षायुतान् गणान्।
तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः॥ ५७

हे द्विजश्रेष्ठ! यह देखकर सभी देवता पराक्रमशून्य हो गये तथा व्याकुल होकर पलायन करने लगे। तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपने शरीरसे अपने ही तुल्य करोड़ों दिव्य गण उत्पन्न किये। मुनिवर दधीचने क्षण-भरमें उन सभीको भस्मसात् कर दिया॥ ५६-५७॥

ततो विस्मयनार्थाय विश्वमूर्तिरभूद्धरिः।
तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद् द्विजसत्तमः॥ ५८

दधीचो भगवान् विप्रः देवतानां गणान् पृथक्।
रुद्राणां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तदा॥ ५९

तदनन्तर दधीचको विस्मित करनेके निमित्त भगवान् विष्णुने विश्वरूप धारण किया। विप्रेन्द्र दधीचने उन विष्णुके शरीरमें साक्षात् देवताओंके पृथक्-पृथक् गणोंको देखा। उस समय विश्वमूर्ति विष्णुके शरीरमें करोड़ों रुद्र, करोड़ों रुद्रगण तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान थे॥ ५८-५९ $^{1}/_{2}$॥

अण्डानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा।
दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिर्विस्मितं तदा॥ ६०

विष्णुमाह जगन्नाथं जगन्मयमजं विभुम्।
अम्भसाभ्युक्ष्य तं विष्णुं विश्वरूपं महामुनिः॥ ६१

तब च्यवन-पुत्र महामुनि दधीच वह सब कुछ देखकर विस्मित हो गये और वे विश्वरूप धारण किये हुए उन जगत्पति, लोकव्याप्त, ऐश्वर्यसम्पन्न विष्णुके ऊपर जलका छींटा मारकर उनसे कहने लगे—॥ ६०-६१॥

मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासा विचारतः।
विज्ञानानां सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव॥ ६२

हे महाबाहो! मायाका परित्याग कीजिये। हे माधव! पदार्थोंकी भ्रमात्मक सत्तापर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि इस मायाके हजारों प्रकारके दुर्विज्ञेय क्रिया-कलाप हुआ करते हैं॥ ६२॥

मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धमनिन्दित।
ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते॥ ६३

हे अनिन्द्य! अब आप अपने सहित ब्रह्मा, रुद्र तथा सम्पूर्ण जगत्को मुझमें देखिये। इसके लिये मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ॥ ६३॥

इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः।
तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम्॥ ६४

ऐसा कहकर मुनि दधीचने अपने शरीरमें उन्हें सम्पूर्ण जगत् दिखा दिया और फिर सभी देवताओं तथा विश्वके रचयिता भगवान् विष्णुसे उन्होंने कहा॥ ६४॥

मायया ह्यनया किं वा मन्त्रशक्त्याथ वा प्रभो।
वस्तुशक्त्याथ वा विष्णो ध्यानशक्त्याथ वा पुनः॥ ६५

त्यक्त्वा मायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः।
एवं तस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा माहात्म्यमद्भुतम्॥ ६६

देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम्।
वारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः॥ ६७

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणस्तेन निर्जितः।
जगाम भगवान् विष्णुः प्रणिपत्य महामुनिम्॥ ६८

क्षुपो दुःखातुरो भूत्वा सम्पूज्य च मुनीश्वरम्।
दधीचमभिवंद्याशु प्रार्थयामास विक्लवः॥ ६९

दधीच क्षम्यतां देव मयाज्ञानात्कृतं सखे।
विष्णुना हि सुरैर्वापि रुद्रभक्तस्य किं तव॥ ७०

प्रसीद परमेशाने दुर्लभा दुर्जनैर्द्विज।
भक्तिर्भक्तिमतां श्रेष्ठ मद्विधैः क्षत्रियाधमैः॥ ७१

श्रुत्वानुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः।
राजानं मुनिशार्दूलः शशाप च सुरोत्तमान्॥ ७२

रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः।
ध्वस्ता भवन्तु देवेन विष्णुना च समन्विताः॥ ७३

प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः।
एवं शप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः॥ ७४

देवैश्च पूज्या राजेन्द्र नृपैश्च विविधैर्गणैः।
ब्राह्मणा एव राजेन्द्र बलिनः प्रभविष्णवः॥ ७५

इत्युक्त्वा स्वोटजं विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः।
दधीचमभिवन्द्यैव जगाम स्वं नृपः क्षयम्॥ ७६

हे प्रभो! हे विष्णो! इस मायासे अथवा मन्त्रशक्तिसे अथवा पदार्थशक्तिसे अथवा ध्यानशक्तिसे क्या लाभ? अतएव इस मायाको छोड़कर आप मेरे साथ यत्नपूर्वक युद्ध कीजिये॥ ६५ १/२॥

उन दधीचका यह वचन सुनकर तथा उनका अद्भुत प्रभाव देखकर देवगण व्याकुल होकर पुनः भागने लगे। तदनन्तर जगद्गुरु ब्रह्माजीने उन निश्चेष्ट भगवान् विष्णुको युद्ध करनेसे रोका॥ ६६-६७॥

इसके बाद उन ब्रह्माजीका वचन सुनकर दधीचसे पराजित हुए भगवान् विष्णु उन महामुनिको प्रणाम करके अपने लोकको चले गये॥ ६८॥

इधर अत्यन्त दुःखित तथा व्याकुलचित्त राजा क्षुप मुनीश्वर दधीचकी विधिवत् पूजा करके उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे प्रार्थना करने लगे॥ ६९॥

हे दधीच! हे देव! मेरे द्वारा अज्ञानवश किये गये अपराधको आप क्षमा करें। हे सखे! आप-सदृश रुद्रभक्तका विष्णु तथा अन्य देवता भला क्या कर सकते हैं?॥ ७०॥

हे द्विज! आप प्रसन्न हो जाइये। हे भक्तोंमें श्रेष्ठ! मुझ-सदृश दुर्जन तथा अधम क्षत्रियोंके लिये परमेश्वर महादेवकी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है॥ ७१॥

तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मुनीश्वर दधीचने राजा क्षुपकी वाणी सुनकर उसके ऊपर अनुग्रह कर दिया तथा श्रेष्ठ देवताओंको शाप दे दिया कि विष्णुदेव, इन्द्र एवं मुनीश्वरोंसहित सभी देवता महान् आत्मावाले दक्षप्रजापतिके पवित्र यज्ञमें रुद्रकी कोपाग्निमें दग्ध हो जायँ॥ ७२-७३ १/२॥

इस प्रकार देवताओंको शाप देकर द्विजश्रेष्ठ दधीचने क्षुपकी ओर देखते हुए कहा—हे राजेन्द्र! ब्राह्मण सभी देवताओं, राजाओं तथा विविध गणोंके पूज्य हैं। अतः हे नृपश्रेष्ठ! ब्राह्मण ही सबसे अधिक बलशाली एवं परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होते हैं॥ ७४-७५॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी मुनि दधीच अपनी कुटीमें चले गये तथा राजा क्षुप दधीचको प्रणामकर अपने घरको प्रस्थित हुए॥ ७६॥

तदेव तीर्थमभवत्स्थानेश्वरमिति स्मृतम्।
स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ७७

वह युद्धस्थान एक तीर्थ बन गया, जो स्थानेश्वर नामसे जाना जाता है। स्थानेश्वर तीर्थका सेवन करनेसे मनुष्य शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७७॥

कथितस्तव सङ्क्षेपाद्विवादः क्षुब्दधीचयोः।
प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने॥ ७८

[नन्दीश्वर बोले—] हे महामुने सनत्कुमार! यह मैंने आपसे संक्षेपमें क्षुप-दधीचके विवाद और दधीच तथा भगवान् शिवके प्रभावका वर्णन किया है॥ ७८॥

य इदं कीर्तयेद्दिव्यं विवादं क्षुब्दधीचयोः।
जित्वापमृत्युं देहान्ते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः॥ ७९

जो मनुष्य क्षुप तथा दधीचके इस दिव्य विवादका पठन करता है, वह अपमृत्युको जीतकर देहका अन्त होनेके अनन्तर ब्रह्मलोकको प्रस्थान करता है॥ ७९॥

य इदं कीर्त्य सङ्ग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा।
नास्ति मृत्युभयं चैव विजयी च भविष्यति॥ ८०

जो कोई भी इसका पाठ करके युद्ध-स्थलमें प्रवेश करता है, उसे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता है और वह संग्राममें सदा विजेता सिद्ध होता है॥ ८०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपदधीचसंवादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'क्षुप-दधीच-संवाद' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

नन्दीके जन्मका वृत्तान्त, ब्रह्मा तथा विष्णुका परस्पर संवाद और शिवद्वारा दोनोंपर अनुग्रह करना

सनत्कुमार उवाच

भवान् कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आपको पार्वतीपति महादेवका सान्निध्य कैसे प्राप्त हुआ? हे प्रभो! मैं इससे सम्बन्धित सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ; आप उसे बतायें॥ १॥

शैलादिरुवाच

प्रजाकामः शिलादोऽभूत्पिता मम महामुने।
सोऽप्यन्धः सुचिरं कालं तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥ २

नन्दी कहते हैं—हे महामुने! मेरे पिता शिलादको एक बार संतानकी कामना उत्पन्न हुई और उन्होंने अन्धे होनेपर भी दीर्घकालतक कठोर तपस्या की॥ २॥

तपतस्तस्य तपसा सन्तुष्टो वज्रधृक् प्रभुः।
शिलादमाह तुष्टोऽस्मि वरयस्व वरानिति॥ ३

तपस्यामें रत उन मेरे पिताके तपसे प्रसन्न होकर वज्रधारी इन्द्रने शिलादसे कहा—मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ; अतएव वर माँगो॥ ३॥

ततः प्रणम्य देवेशं सहस्राक्षं सहामरैः।
प्रोवाच मुनिशार्दूल कृताञ्जलिपुटो हरिम्॥ ४

तब देवताओंसमेत सहस्रनेत्र देवेन्द्रको प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ शिलादने दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहा॥ ४॥

शिलाद उवाच

भगवन् देवतारिघ्न सहस्राक्ष वरप्रद।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रत॥ ५

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे असुर-दलन! हे सहस्रनयन! हे वरप्रद! हे सुव्रत! मैं अयोनिज तथा अमर पुत्र चाहता हूँ॥ ५॥

शक्र उवाच

पुत्रं दास्यामि विप्रर्षे योनिजं मृत्युसंयुतम्।
अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै॥ ६

इन्द्र बोले—हे विप्रवर! मैं तुम्हें योनिज तथा मरणधर्मा पुत्रका वर दे सकता हूँ; क्योंकि मरणहीन तो

न दास्यति सुतं तेऽत्र मृत्युहीनमयोनिजम्।
पितामहोऽपि भगवान् किमुतान्ये महामुने॥ ७

सोऽपि देवः स्वयं ब्रह्मा मृत्युहीनो न चेश्वरः।
योनिजश्च महातेजाश्चाण्डजः पद्मसम्भवः॥ ८

महेश्वराङ्गजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः।
तस्याप्यायुः समाख्यातं परार्धद्वयसम्मितम्॥ ९

कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परत्र ये॥ १०

तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः।
परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मसमं सुतम्॥ ११

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पिता मे लोकविश्रुतः।
शिलाद इति पुण्यात्मा पुनः प्राह शचीपतिम्॥ १२

शिलाद उवाच

भगवन्नण्डयोनित्वं पद्मयोनित्वमेव च।
महेश्वराङ्गयोनित्वं श्रुतं वै ब्रह्मणो मया॥ १३

पुरा महेन्द्र दायादाद् गदतश्चास्य पूर्वजात्।
नारदाद्वै महाबाहो कथमत्राशु नो वद॥ १४

दाक्षायणी सा दक्षोऽपि देवः पद्मोद्भवात्मजः।
पौत्री कनकगर्भस्य कथं तस्याः सुतो विभुः॥ १५

शक्र उवाच

स्थाने संशयितुं विप्र तव वक्ष्यामि कारणम्।
कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ १६

ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः।
जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने॥ १७

दिव्यं वर्षसहस्रं तु मेघो भूत्वावहद्धरम्।
नारायणो महादेवं बहुमानेन सादरम्॥ १८

दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शङ्करः।
प्रददौ तस्य सकलं स्रष्टुं वै ब्रह्मणा सह॥ १९

कोई भी नहीं है॥ ६॥

हे महामुने! अयोनिज तथा मृत्युसे हीन पुत्र तो तुम्हें भगवान् ब्रह्मा भी नहीं दे सकते; अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या?॥ ७॥

साक्षात् वे परमेश्वर ब्रह्मदेव भी मृत्युहीन नहीं हैं। महान् तेजस्वी ब्रह्मा भी योनिज है; क्योंकि उनकी भी उत्पत्ति अण्ड तथा कमलसे हुई है। वे प्रभु ब्रह्मा महेश्वर एवं भवानीके पुत्र हैं। उनकी भी आयु दो परार्धके बराबर कही गयी है। प्रथम परार्धमें हजारों करोड़ कल्प भी ब्रह्माके दिनके रूपमें व्यतीत हो चुके हैं और द्वितीय परार्धमें उतने ही कल्प शेष हैं॥ ८—१०॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्रकी आशा प्रयत्नपूर्वक छोड़ दीजिये और अपने तुल्य पुत्र ग्रहण कीजिये॥ ११॥

नन्दीश्वर बोले—उनका वह वचन सुनकर शिलाद नामसे लोक-विख्यात मेरे पुण्यात्मा पिताने शचीपति इन्द्रसे पुनः कहा॥ १२॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे महेन्द्र! मैंने पूर्वकालमें इन ब्रह्माके पूर्वोत्पन्न नारद नामक पुत्रद्वारा ऐसा कहते हुए सुन रखा है कि ये ब्रह्मा अण्ड, कमल और शिवजीके अंगसे उत्पन्न हैं; तो हे महाबाहो! मुझे आप शीघ्र बताइये कि ऐसा कैसे है? दक्षप्रजापति तो पद्मयोनि ब्रह्माजीके पुत्र हैं। इस प्रकार दक्षकी पुत्री हिरण्यगर्भ ब्रह्माकी पौत्री हुईं; तो फिर वे प्रभु ब्रह्मा उन दाक्षायणीके पुत्र कैसे हुए?॥ १३—१५॥

इन्द्र बोले—हे विप्र! इस स्थितिमें आपका संदेह करना युक्तिपूर्ण है; किंतु मैं आपको इसका कारण बता रहा हूँ। तत्पुरुष नामक कल्पमें परमेष्ठी शिवकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई और उन परमेश्वरने ध्यान करके कलायुक्त ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। जनार्दन जगत्पति नारायण विष्णुभगवान् मेघवाहन कल्पमें हजार दिव्य वर्षोंतक मेघ बनकर अत्यन्त सम्मान तथा आदरके साथ महादेव शिवके वाहन बने रहे॥ १६—१८॥

महादेव शिवने अपनेमें भगवान् विष्णुकी भक्ति देखकर उन्हें ब्रह्माजीसहित सम्पूर्ण जगत् रचनेकी आज्ञा दी॥ १९॥

तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा॥ २०

जनार्दनसुतः प्राह तपसा प्राप्य शङ्करम्।
तव वामाङ्गजो विष्णुर्दक्षिणाङ्गभवो ह्यहम्॥ २१

मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः।
जगन्मयोऽवहद्यस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम्॥ २२

भवन्तमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम्।
नारायणादपि विभो भक्तोऽहं तव शङ्कर॥ २३

प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो।
तदाथ लब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मतां क्षणात्॥ २४

त्वरमाणोऽथ सङ्गम्य ददर्श पुरुषोत्तमम्।
एकार्णवालये शुभ्रे त्वन्धकारे सुदारुणे॥ २५

हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिर्मिते।
दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे॥ २६

जगदावासहृदयं ददर्श पुरुषं त्वजः।
अनन्तभोगशय्यायां शायिनं पङ्कजेक्षणम्॥ २७

शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं शशिमण्डलसन्निभम्॥ २८

श्रीवत्सलक्षणं देवं प्रसन्नास्यं जनार्दनम्।
रमामृदुकराम्भोजस्पर्शरक्तपदाम्बुजम् ॥ २९

परमात्मानमीशानं तमसा कालरूपिणम्।
रजसा सर्वलोकानां सर्गलीलाप्रवर्तकम्॥ ३०

सत्त्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम्।
सर्वात्मानं महात्मानं परमात्मानमीश्वरम्॥ ३१

क्षीरार्णवेऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया।
तं दृष्ट्वा प्राह वै ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम्॥ ३२

ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम्।
स्मयमानस्तु भगवान् प्रतिबुध्य पितामहम्॥ ३३

उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीषच्चकार सः।
विवेश चाण्डजं तं तु ग्रस्तस्तेन महात्मना॥ ३४

तभीसे उस कल्पको 'मेघवाहन' नामसे कहा जाता है। उन विष्णुको देखकर उन्हींके देहसे उत्पन्न जनार्दनपुत्र हिरण्यगर्भ ब्रह्माने अपनी तपस्यासे शंकरजीको प्राप्तकर उनसे कहा—॥ २०१/२॥

विष्णु आपके वाम अंगसे उत्पन्न हैं तथा मैं आपके दायें अंगसे उत्पन्न हूँ; फिर भी उन विष्णुने मेरे साथ सम्पूर्ण जगत्‌की रचना की॥ २११/२॥

यद्यपि जगन्मय विष्णुने मेघ बनकर आप देवदेव जगद्गुरु महेश्वरका दिन-रात वहन किया है; फिर भी हे विभो! हे शंकर! मैं उन नारायणसे भी बढ़कर आपका भक्त हूँ। अतएव हे प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये और मुझे अपना सर्वात्मत्व प्रदान कीजिये॥ २२-२३१/२॥

तत्पश्चात् महादेवजीसे सर्वात्मत्वकी प्राप्ति करके ब्रह्माजीने शीघ्रतापूर्वक क्षीरसागर पहुँचकर वहाँ एकार्णवमें पुरुषोत्तम विष्णुको भीषण अन्धकारमें मानसनिर्मित, स्वर्णरत्न-खचित, दुर्जनोंद्वारा दुष्प्राप्य तथा सनक आदि पुण्यात्माओंद्वारा अगोचर शुभ्र एवं दिव्य भवनमें देखा॥ २४—२६॥

ब्रह्माजीने जगत्‌को अपने हृदयमें धारण करनेवाले, चारों भुजाओंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करनेवाले, सभी आभूषणोंसे युक्त, चन्द्र-मण्डलतुल्य आभावाले, अपने वक्षःस्थलपर 'श्री' चिह्न धारण करनेवाले, तमोगुणसे युक्त होनेपर कालरूप, रजोगुणसे युक्त होनेपर सभी लोकोंकी सृजन-लीलाके प्रवर्तक, सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर सभी प्राणियोंके स्थापक, कमलनयन, प्रसन्नमुख, जनार्दन, परमपुरुष, परमात्मा, ईशान, सर्वात्मा, महात्मा, देवरूप ईश्वर विष्णुको उस अमृतमय क्षीरसागरमें अनन्त शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें सोये हुए देखा; उस समय उनके रक्त-कमल-सदृश चरणोंको लक्ष्मीजी अपने अरविन्द-तुल्य कोमल हाथोंसे दबा रही थीं॥ २७—३११/२॥

भगवान् जनार्दनको देखकर ब्रह्माजीने उनसे कहा कि जिस प्रकार पहले आपने मुझे ग्रस लिया था, उसी प्रकार शिवजीकी कृपासे अब मैं आपको ग्रसूँगा॥ ३२१/२॥

भगवान् विष्णुने उठकर विस्मयपूर्ण भावसे ऊपर दृष्टि करके ब्रह्माजीको देखा और उन महाबाहुने थोड़ा

ततस्तं चासृजद् ब्रह्मा भ्रुवोर्मध्येन चाच्युतम्।
सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याथ सन्निधौ॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः।
विकृतं रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तयोः॥ ३६

आगच्छद्यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः।
प्रसादमतुलं कर्तुं ब्रह्मणश्च हरेः प्रभुः॥ ३७

ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम्।
अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम्॥ ३८

तौ तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कपर्दिनम्।
प्रणेमतुश्च वरदं बहुमानेन दूरतः॥ ३९

भवोऽपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम्।
जनार्दनं जगन्नाथस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ४०

हँसकर ब्रह्माजीके भीतर प्रवेश किया। उन महात्मा ब्रह्माने भी उन्हें ग्रस लिया॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने भ्रूमध्यसे उन विष्णुजीको पुनः उत्पन्न कर दिया और इस प्रकार उनके द्वारा सृजित होकर भगवान् विष्णु उन्हें देखकर उनके पास खड़े हो गये॥ ३५॥

इसी बीच पूर्वकालमें उन दोनों [ब्रह्मा, विष्णु]-को वर देनेवाले सभी देवताओं तथा जगत्की उत्पत्ति करनेवाले विश्वात्मा प्रभु परमेश्वर शिव विकृत रूप धारण करके ब्रह्मा एवं विष्णुपर महान् अनुग्रह करनेके लिये जहाँ विष्णुजी थे, वहींपर आ गये॥ ३६-३७॥

इसके बाद उन दोनों देवोंने शिवजीके पास पहुँचकर कालाग्नितुल्य उन सभी देवताओं तथा जगत्की उत्पत्ति करनेवाले महादेवका दर्शन किया॥ ३८॥

उन दोनों (ब्रह्मा, विष्णु)-ने दूरसे ही सम्मानपूर्वक उन शर्व (भक्तोंके पापोंका नाश करनेवाले), कपर्दी (जटाजूटधारी), उग्र तथा वर देनेवाले शिवजीको प्रणाम किया और पुनः वे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३९॥

जगत्के स्वामी भगवान् शिव पितामह ब्रह्मदेव तथा जनार्दन विष्णुपर अनुग्रह करके वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ ४०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मणो वरप्रदानं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्माको वरप्रदान' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा महेश्वरके माहात्म्यका कथन तथा नारायणद्वारा सृष्टिका वर्णन

शैलादिरुवाच

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः।
प्रणम्य भगवान् प्राह पद्मयोनिमजोद्भवः॥ १

श्रीविष्णुरुवाच

परमेशो जगन्नाथः शङ्करस्त्वेष सर्वगः।
आवयोरखिलस्येशः शरणं च महेश्वरः॥ २

अहं वामाङ्गजो ब्रह्मन् शङ्करस्य महात्मनः।
भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणाङ्गभवः स्वयम्॥ ३

मामाहुर्ऋषयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा।
अव्यक्तमजमित्येवं भवन्तं पुरुषस्त्विति॥ ४

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर महेश्वर महादेवके चले जानेपर ब्रह्माजीसे उत्पन्न भगवान् विष्णु पद्मयोनि पितामहको उद्देश्य करके प्रणामकर उनसे कहने लगे॥ १॥

श्रीविष्णु बोले—सर्वत्र गमनका सामर्थ्य रखनेवाले ये परमेश्वर ईश्वर जगन्नाथ महेश्वर शिव सम्पूर्ण जगत्के तथा हमदोनोंके शरण हैं॥ २॥

हे ब्रह्मन्! मैं महात्मा शिवके वाम अंगसे जायमान हूँ तथा स्वयं आप महादेव रुद्रके दाहिने अंगसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव इस विषयमें सम्यक् विचारकर ऋषियोंने मुझे प्रधान तथा प्रकृति एवं आपको अव्यक्त, अज तथा पुरुष कहा है॥ ३-४॥

एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम्।
ईशं सर्वस्य जगतः प्रभुमव्ययमीश्वरम्॥ ५

इस प्रकार अविनाशी ईश्वर महादेवको हम दोनोंका भी कारण तथा सम्पूर्ण जगत्का स्वामी कहा गया है॥ ५॥

सोऽपि तस्यामरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः।
वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत्प्रणनाम च॥ ६

उन देवेश विष्णुका वचन सुनकर उन पद्मयोनि ब्रह्माने भी वर प्रदान करनेवाले पूज्य महादेवको बार-बार प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ६॥

अथाम्भसा प्लुतां भूमिं समादाय जनार्दनः।
पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः॥ ७

इसके अनन्तर वाराहरूप धारणकर जनार्दन विष्णुने जलसे व्याप्त भूमिको लाकर पुनः पूर्वकी भाँति स्थापित किया॥ ७॥

नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः।
कृत्वा चोर्वीं प्रयत्नेन निम्नोन्नतविवर्जिताम्॥ ८

धरायां सोऽचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्॥ ९

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने नदियों, नदों तथा समुद्रोंको पहलेकी भाँति कर दिया। पुनः पृथ्वीको ऊँचाई एवं निचाईसे रहितकर भूधरकी आकृतिवाले उन भगवान्ने उस समतल धरापर समस्त पर्वत स्थापित किये, भूलोक आदि चार लोक पूर्वकी भाँति रचे॥ ८-९॥

स्रष्टुं च भगवान् चक्रे मतिं मतिमतां वरः।
मुख्यं च तैर्यग्योन्यं च दैविकं मानुषं तथा॥ १०

विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः।
पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा॥ ११

पुनः बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, प्रखर प्रतिभावाले तथा ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् विष्णुने मुख्य सर्ग, तिर्यक् सर्ग (पशुसर्ग), देवसर्ग, मनुष्यसर्ग, अनुग्रहसर्ग एवं कौमारसर्ग रचनेका विचार किया॥ १०$^1/_2$॥

सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परम्।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥ १२

उन विष्णुने आरम्भमें सनन्द, सनक तथा महात्माओंमें श्रेष्ठ सनातनका सृजन किया, जो निष्काम ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होकर ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुए॥ ११$^1/_2$॥

दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद्योगविद्यया।
सङ्कल्पं चैव धर्मं च ह्यधर्मं भगवान् प्रभुः॥ १३

द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः॥ १४

इसके बाद सबके स्वामी भगवान् विष्णुने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, संकल्प, धर्म तथा अधर्मको योगविद्यासे रचा। अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी ये ही बारह संतानें हैं॥ १२-१३$^1/_2$॥

तौ चोर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ।
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ॥ १५

शाश्वत विष्णुने आरम्भमें ऋभु तथा सनत्कुमारका सृजन किया। पूर्वमें उत्पन्न वे दोनों कुमार ऊर्ध्वरेता, दिव्य, ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सभी प्रकारके भावोंसे सम्पन्न तथा ब्रह्माजीके ही सदृश थे॥ १४-१५॥

एवं मुख्यादिकान् सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन।
युगधर्मानशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक्॥ १६

हे शिलाद! इस प्रकार मुख्य आदि सर्गोंकी सृष्टि करके विश्वकी रचना करनेवाले पद्मयोनि (विष्णु)-ने समस्त युगधर्मोंको प्रतिष्ठित किया॥ १६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वैष्णवकथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वैष्णवकथन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

सत्ययुग, त्रेतायुग तथा द्वापरयुगका वर्णन, द्वापरमें वेदसंहिताके विभाजनका एवं कल्पभेदसे विविध पुराणोंके अनुक्रमका वर्णन

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा शक्रेण कथितं पिता मम महामुनिः।
पुनः पप्रच्छ देवेशं प्रणम्य रचिताञ्जलिः॥ १

शिलाद उवाच

भगवन् शक्र सर्वज्ञ देवदेवनमस्कृत।
शचीपते जगन्नाथ सहस्राक्ष महेश्वर॥ २

युगधर्मान् कथं चक्रे भगवान् पद्मसम्भवः।
वक्तुमर्हसि मे सर्वं साम्प्रतं प्रणताय मे॥ ३

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिलादस्य महात्मनः।
व्याजहार यथादृष्टं युगधर्मं सुविस्तरम्॥ ४

शक्र उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धि ततस्त्रेतायुगं मुने।
द्वापरं तिष्यमित्येते चत्वारस्तु समासतः॥ ५

सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः।
कलिस्तमश्च विज्ञेयं युगवृत्तिर्युगेषु च॥ ६

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
भजनं द्वापरे शुद्धं दानमेव कलौ युगे॥ ७

चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥ ८

चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन।
आयुः कृतयुगे विद्धि प्रजानामिह सुव्रत॥ ९

ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे च गते तु वै।
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वतः॥ १०

चतुर्भागैकहीनं तु त्रेतायुगमनुत्तमम्।
कृतार्धं द्वापरं विद्धि तदर्धं तिष्यमुच्यते॥ ११

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इन्द्रका कथन सुनकर मेरे पिता महामुनि शिलादने दोनों हाथ जोड़कर देवेश इन्द्रको प्रणाम करके उनसे पुनः पूछा॥ १॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे शक्र! हे सर्वज्ञ! हे सर्वदेवनमस्कृत! हे शचीपते! हे जगन्नाथ! हे सहस्राक्ष! हे महेश्वर! भगवान् पद्मयोनिने युगधर्म किस प्रकार कल्पित किये? आप इस विषयमें सब कुछ मुझ शरणागतको बतानेकी कृपा करें॥ २-३॥

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] महात्मा शिलादका वह वचन सुनकर इन्द्रने जैसा देखा था, उन युगधर्मोंका विस्तारसे वर्णन करना प्रारम्भ किया॥ ४॥

इन्द्र बोले—हे मुने! आदिमें सत्ययुग, फिर त्रेतायुग, द्वापर तथा कलियुग—ये ही चार युग होते हैं; ऐसा आप संक्षेपमें जान लीजिये॥ ५॥

सत्ययुगको सत्त्वगुणरूप, त्रेतायुगको रजोगुणरूप, द्वापरयुगको रज-तमगुणरूप और कलियुगको तमोगुणरूप जानना चाहिये। इस प्रकार विभिन्न युगोंमें अलग-अलग युग-वृत्ति होती है॥ ६॥

सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतायुगमें यज्ञ, द्वापरमें भजन तथा कलियुगमें विशुद्ध दानको श्रेष्ठ कहा गया है॥ ७॥

वह सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षोंके प्रमाणवाला है। उसकी सन्ध्या चार सौ दिव्य वर्षोंकी होती है तथा उसका सन्ध्यांश भी उसी प्रकार चार सौ दिव्य वर्षोंका होता है॥ ८॥

हे शिलाद! हे सुव्रत! इस सत्ययुगमें प्रजाओंकी आयु चार हजार मनुष्य वर्षके बराबर जानिये॥ ९॥

सत्ययुग तथा इसके सन्ध्यांश बीत जानेपर समग्र युग-धर्मका एक चरण घट जाता है। पुनः उत्तम त्रेतायुग प्रवृत्त होता है, जो तीन हजार दिव्य वर्षोंका होता है। सत्ययुगके आधे प्रमाणके बराबर द्वापरको जानिये तथा उसके (द्वापरके) आधेके बराबर कलियुगका प्रमाण

त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती मुने।
सन्ध्यांशकं तथाप्येवं कल्पेष्वेवं युगे युगे॥ १२

आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः।
त्रेतायुगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः॥ १३

त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण धिष्ठितः।
कृते तु मिथुनोत्पत्तिः वृत्तिः साक्षाद्रसोल्लसा॥ १४

प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः।
अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः॥ १५

तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे।
तासां प्रीतिर्न च द्वन्द्वं न द्वेषो नास्ति च क्लमः॥ १६

पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा॥ १७

ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः॥ १८

वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्न च सङ्करः।
रसोल्लासः कालयोगात् त्रेताख्ये नश्यते द्विज॥ १९

तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिः प्रजायते।
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै॥ २०

मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्।
सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले॥ २१

प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।
सर्ववृत्त्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते॥ २२

कहा जाता है। हे मुने! उसी तरह त्रेतायुगकी सन्ध्या तीन सौ दिव्य वर्ष, द्वापरकी सन्ध्या दो सौ दिव्य वर्ष तथा कलियुगकी सन्ध्या एक सौ दिव्य वर्षकी होती है। सभीका सन्ध्यांश भी सन्ध्याकालके समान ही जानना चाहिये। प्रत्येक कल्पमें आनेवाले युगोंमें यही स्थिति होती है॥ १०—१२॥

सनातन धर्म आरम्भके सत्ययुगमें चार चरणोंवाला, त्रेतामें तीन चरणोंवाला, द्वापरमें दो चरणोंवाला तथा कलियुगमें मात्र एक चरणवाला होकर अधिष्ठित रहता है॥ १३१/२॥

सत्ययुगमें स्त्री-पुरुषके संयोगसे उत्पत्ति होती है तथा उनकी वृत्ति मधुर रसोंसे सम्पन्न होती है। उस युगमें समस्त प्रजाएँ सभी प्रकारके आनन्दों एवं भोगोंसे पूर्ण तृप्त रहती हैं। उनमें अधमता तथा उत्तमताका कोई भेद नहीं रहता है और सभी प्रजाएँ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न रहती हैं॥ १४-१५॥

उस सत्ययुगमें वे प्रजाएँ समान आयु, सुख तथा रूपवाली होती हैं। उनमें परस्पर द्वेष, द्वन्द्व एवं अवसाद नहीं रहता है, अपितु वे एक-दूसरेसे प्रेम करती हैं॥ १६॥

सत्ययुगमें वे प्रजाएँ घरका आश्रय न लेकर पर्वतों तथा समुद्रोंके सान्निध्यमें निवास करती हैं। सभी लोग शोकरहित, पराक्रमसम्पन्न एवं एकान्तप्रिय होते हैं॥ १७॥

कृतयुगमें वे प्रजाएँ निष्काम कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाली तथा सदा प्रसन्न मनवाली होती हैं। वे कर्मोंके पाप और पुण्यकी भावनासे रहित होती हैं। उस समय वर्णाश्रम-व्यवस्था रहती है, किंतु वर्णसंकर दोष विद्यमान नहीं रहता है॥ १८१/२॥

हे द्विज! कालयोगसे त्रेतायुगमें रसोंका प्रादुर्भाव समाप्त होने लगता है। उस युगमें सिद्धिके नष्ट हो जानेपर अन्य सिद्धि उत्पन्न होती है॥ १९१/२॥

जलकी अल्पता हो जानेपर भगवान् मेघात्मा गर्जनयुक्त मेघोंके माध्यमसे जल बरसाते हैं और एक बारमें ही उस वृष्टिसे पृथ्वीतलके संयुक्त हो जानेपर वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं; इस प्रकार वे वृक्ष ही प्रजाओंके

वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः।
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्॥ २३

रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्।
विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना॥ २४

प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः॥ २५

अपि ध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥ २६

वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च।
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम्॥ २७

अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु।
तेन ता वर्तयन्ति स्म सुखमायुः सदैव हि॥ २८

हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः।
ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः॥ २९

वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्ति मधु वा माक्षिकं बलात्।
तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै॥ ३०

प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित्।
तस्यामेवाल्पशिष्टायां सिद्ध्यां कालवशात्तदा॥ ३१

आवर्तनात्तु त्रेतायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि वै।
शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम्॥ ३२

द्वन्द्वैः सम्पीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु।
कृतद्वन्द्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः॥ ३३

गृहरूप बन जाते हैं। उन प्रजाओंकी सम्पूर्ण वृत्ति तथा उपभोग उन्हीं वृक्षोंपर आश्रित रहता है। इस प्रकार त्रेतायुगके आरम्भमें प्रजाएँ जीवनयापन-सम्बन्धी सभी व्यवहार उन्हीं वृक्षोंपर आश्रित होकर करती हैं॥ २०—२२१/२॥

तत्पश्चात् अधिक समय बीतनेपर उनके [बुद्धि]-विपर्ययसे उन प्रजाओंमें अकस्मात् राग तथा लोभसे युक्त भाव उत्पन्न हो जाते हैं॥ २३१/२॥

उन प्रजाओंमें उस समय उत्पन्न उस विपर्ययके कारण उनके गृहसंज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो जाते हैं॥ २४१/२॥

तब उन वृक्षोंके नष्ट हो जानेपर मैथुनसे उत्पन्न वे प्रजाएँ भ्रमित हो जाती हैं। इसके बाद सत्यका चिन्तन करनेवाले वे प्रजागण उस सिद्धिका फिरसे ध्यान करते हैं॥ २५१/२॥

इस प्रकार ध्यानके फलस्वरूप उनके गृहसंज्ञक वे वृक्ष फिरसे उत्पन्न हो जाते हैं। वे वृक्ष प्रजाओंके लिये वस्त्र, भूषण तथा नानाविध फल उत्पन्न करते हैं॥ २६१/२॥

उनके लिये उन वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें गन्ध-वर्ण-रससे युक्त, शक्तिवर्धक तथा अमाक्षिक (मक्षिकारहित) मधु पैदा होता है॥ २७१/२॥

उसी मधुसे प्रजाएँ सुखपूर्वक सदा जीवनयापन करती हैं और वे उसी सिद्धिसे सन्तापरहित होकर सर्वदा हृष्ट-पुष्ट रहती हैं॥ २८१/२॥

तत्पश्चात् कालान्तरमें वे प्रजाएँ पुनः लोभके वशीभूत होकर बलपूर्वक उन वृक्षों अथवा माक्षिक मधुका हरण करती हैं॥ २९१/२॥

लोभमें पड़कर उनके द्वारा किये गये इस अनाचारपूर्ण कृत्यसे मधुके साथ-साथ कहीं-कहीं वे कल्पवृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं॥ ३०१/२॥

पुनः उस त्रेतामें कालयोगसे अवशिष्ट सिद्धियोंमें आवर्तन हो जानेसे द्वन्द्व उत्पन्न होने लगते हैं॥ ३११/२॥

पुनः तीव्र शीत, वर्षा तथा आतपसे प्रजाएँ अत्यन्त दुःखित हो जाती हैं और इन द्वन्द्वोंसे पीड़ित प्रजाएँ अपने आवरणका उपाय करने लगती हैं॥ ३२१/२॥

पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता अथावसन्।
यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुनः॥ ३४

कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वृत्त्युपायमचिन्तयन्।
नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥ ३५

विवादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः।
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥ ३६

वार्तायाः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु॥ ३७

अभवन् वृष्टिसन्तत्या स्त्रोतस्थानानि निम्नगाः।
एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने॥ ३८

ये पुनस्तदपां स्तोकाः पतिताः पृथिवीतले।
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्॥ ३९

अथाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश।
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥ ४०

प्रादुर्भूतानि चैतानि वृक्षजात्यौषधानि च।
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा॥ ४१

ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः।
अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन च॥ ४२

ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥ ४३

विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश।
मत्वा धरां प्रविष्टास्ता इत्यौषध्यः पितामहः॥ ४४

दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै।
तदाप्रभृति चौषध्यः फालकृष्टास्त्वितस्ततः॥ ४५

द्वन्द्वोंसे निरन्तर प्रतिहत प्रजाएँ पर्वतोंपर घर बनाने लगती हैं। इसलिये पूर्वमें स्वेच्छाचारितापूर्ण वे प्रजाएँ, जो बिना घरके रहती थीं, पुनः अपने अनुकूल तथा सुविधाजनक घरोंमें रहने लगती हैं॥ ३३-३४॥

मधुके साथ उन कल्पवृक्षोंके भी नष्ट हो जानेपर पुनः उन द्वन्द्वोंके प्रति उपघात करती हुई वे प्रजाएँ जीविकोपार्जनका उपाय सोचने लगती हैं॥ ३५॥

वे प्रजाएँ पुनः जब विवादसे व्याकुल तथा भूख एवं प्याससे पीड़ित हो जाती हैं, तब त्रेतायुगमें उनमें सिद्धिका प्रादुर्भाव पुनः होता है॥ ३६॥

उनके लिये कृषि-कार्यको पूर्णतः सिद्ध करनेवाली दूसरी अन्य वृष्टि होती है। वृष्टिजनित वे जल आदि नदियोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं॥ ३७॥

सतत वृष्टि होनेसे नदियाँ तथा जलके अन्य उद्गमस्थान हो गये। इस प्रकार दूसरे वृष्टि-सर्जनमें नदियोंका प्रादुर्भाव हो गया॥ ३८॥

इस प्रकार पृथ्वीतलपर जो जल-बिन्दु गिरे; उन जलों तथा भूमिके संयोगसे अल्प-कृष्ट एवं बिना बोये चौदह प्रकारकी वन्य तथा ग्राम्य (वन एवं ग्रामीण क्षेत्रोंमें उगनेवाली) औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। ऋतुसम्बन्धी विभिन्न पुष्प, फल, वृक्ष एवं पौधे उग गये। इस प्रकार ये विभिन्न जातिके वृक्ष तथा औषध उत्पन्न हो गये और उस त्रेतायुगमें प्रजाएँ उन्हीं औषधियोंसे ही अपना जीवन-निर्वाह करने लगीं॥ ३९—४१॥

इसके बाद उन प्रजाओंमें हर प्रकारसे राग तथा लोभका उदय हुआ और त्रेतायुगके प्रभावसे होनेवाली अवश्यम्भाविताके कारण वे प्रजाएँ नदीक्षेत्रों तथा पर्वतोंका अतिक्रमण करने लगीं और वृक्ष, गुल्मों एवं औषधियोंका बलपूर्वक पुनः हरण करने लगीं। उनके इस विपरीत आचरणसे चौदहों प्रकारकी औषधियाँ विनष्ट हो गयीं॥ ४२-४३ १/२ ॥

अब वे औषधियाँ पृथ्वीमें समा गयीं—ऐसा मानकर भगवान् विष्णुने राजा पृथुके रूपमें होकर सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ पृथ्वीरूप गायका दोहन किया। उसी समयसे हलके फालसे जुती हुई भूमिमें यहाँ-वहाँ

वार्ता कृषिं समायाता वर्तुकामाः प्रयत्नतः।
वार्तावृत्तिः समाख्याता कृषिकामप्रयत्नतः॥ ४६

अन्यथा जीवितं तासां नास्ति त्रेतायुगात्यये।
हस्तोद्धवा ह्यपश्चैव भवन्ति बहुशस्तदा॥ ४७

तत्रापि जगृहुः सर्वे चान्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः।
सुतदारधनाद्यांस्तु बलाद्युगबलेन तु॥ ४८

मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः।
ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात्कमलसम्भवः॥ ४९

वर्णाश्रमप्रतिष्ठां च चकार स्वेन तेजसा।
वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मा निर्ममे स्वयम्॥ ५०

यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत्क्रमात्।
पशुयज्ञं न सेवन्ते केचित्तत्रापि सुव्रताः॥ ५१

बलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक् क्रमात्।
द्विजास्तदा प्रशंसन्ति ततस्त्वाहिंसकं मुने॥ ५२

द्वापरेष्वपि वर्तन्ते मतिभेदास्तदा नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति॥ ५३

तदा तु सर्वभूतानां कायक्लेशवशात्क्रमात्।
लोभो भृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥ ५४

वेदशाखाप्रणयनं धर्माणां सङ्करस्तथा।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च॥ ५५

औषधियाँ उत्पन्न होने लगीं॥ ४४-४५॥

इस तरह अब जीनेकी इच्छा रखनेवाली प्रजाएँ प्रयत्नपूर्वक कृषि कार्य करने लग गयीं। कृषिमें प्रयत्नपूर्वक इच्छा रखनेके कारण इसे 'वार्तावृत्ति' कहा गया॥ ४६॥

त्रेतायुगके उस अन्तिम कालमें इस कृषिको छोड़कर आजीविकाका कोई अन्य उपाय नहीं था। उस समय [खनित्र आदिके उपयोग बिना ही] हाथसे ही खोदकर पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता था॥ ४७॥

उस समय सभी लोग युग-प्रभावके कारण क्रोधके वशीभूत होकर बलपूर्वक एक-दूसरेके पुत्र, स्त्री, धन आदिका हरण कर लेते थे॥ ४८॥

वह सम्पूर्ण स्थिति देखकर मर्यादाकी प्रतिष्ठा करनेके लिये तथा दुःखसे रक्षा करनेके लिये भगवान् कमलयोनिने क्षत्रियोंकी उत्पत्ति की॥ ४९॥

विश्वात्मा भगवान्ने अपने तेजसे वर्णाश्रम-व्यवस्था स्थापित की तथा उन्होंने स्वधर्मानुसार जीविकाद्वारा जीवनका निर्माण (परिपालन) स्वयं किया॥ ५०॥

इसी प्रकार त्रेतायुगमें क्रमसे यज्ञ-अनुष्ठान आदि आरम्भ हुआ। सभीकी व्रतोंमें निष्ठा थी तथा कोई भी मनुष्य पशु-यज्ञ नहीं करते थे॥ ५१॥

उस समय व्यापक दृष्टिवाले भगवान् विष्णुने अपने सामर्थ्यसे क्रमपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किये। हे मुने! उस समय द्विज लोग हिंसा न करनेवालेकी प्रशंसा करते थे॥ ५२॥

द्वापरमें भी लोगोंमें मन-वचन-कर्मसे बुद्धि-भेद उत्पन्न होते हैं। कष्टपूर्वक कृषिकार्य भी सम्पन्न होते हैं॥ ५३॥

उस समय शारीरिक क्लेशवश सभी लोगोंमें लोभ, भृति, वाणिज्य कर्मोंमें विवाद तथा चित्त-कालुष्यके कारण यथार्थ वस्तुओंके प्रति सन्देह उत्पन्न होने लगता है॥ ५४॥

उस समय शाखाओंके रूपमें वेदोंका विभाग होता है तथा धर्मोंके संकर अर्थात् अन्य धर्मकी प्रवृत्ति होने लगती है। उस द्वापरमें ब्राह्मण आदि वर्णों एवं

द्वापरे तु प्रवर्तन्ते रागो लोभो मदस्तथा।
वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥ ५६

एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते।
सङ्क्षयादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेषु सः॥ ५७

ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥ ५८

संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते मनीषिभिः।
सामान्या वैकृताश्चैव दृष्टिभिस्तैः पृथक्पृथक्॥ ५९

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च।
अन्ये तु प्रस्थितास्तान् वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः॥ ६०

इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते कालगौरवात्।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा॥ ६१

भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम्।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च॥ ६२

वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गारुडमेव च।
स्कान्दं तथा च ब्रह्माण्डं तेषां भेदः प्रकथ्यते॥ ६३

लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम्।
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः ॥ ६४

यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती।
पराशरव्यासशङ्खलिखिता दक्षगौतमौ॥ ६५

शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यैः सहस्रशः।
अवृष्टिर्मरणं चैव तथा व्याध्याद्युपद्रवाः॥ ६६

वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥ ६७

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका लगभग विनाश हो जाता है। लोगोंमें वासना, द्वेष, राग, लोभ तथा मद प्रवृत्त हो जाते हैं। द्वापर आदि कालोंमें व्यासोंके द्वारा एक वेद चार भागोंमें विभक्त किया जाता है। ऋक् आदि चार पादोंसे युक्त एक वेद-संहिताका इस भूलोकमें त्रेता आदि कालोंमें अध्ययन किया जाता है; वही वेद द्वापर आदि कालोंमें आयुसंक्षयके कारण विभाजित कर दिया जाता है॥ ५५—५७॥

इसके आगे ऋषिपुत्रोंके द्वारा अपनी दृष्टिसे विभाजन पुनः किया जाता है। दृष्टिविभ्रम (अलग-अलग विचार रखनेवाले) मनीषियोंने समानरूपसे विभाजित की गयी ऋक्, यजुः तथा साम नामक संहिताओंको स्वर-वर्णोंके भेदसे मन्त्र और ब्राह्मणभागके स्वरूपमें पुनः अलग-अलग विभाजित किया॥ ५८-५९॥

इस प्रकार मनीषियोंने ब्राह्मणभाग, कल्पसूत्र तथा मीमांसा-न्यायके सूत्रोंकी रचना की। कुछ मनीषी इतने विभाजनको पर्याप्त मानकर इसीपर स्थिरमति हो गये, किंतु अन्य मनीषी इस विभाजनको न्यून मानकर इसके विस्तारमें प्रवृत्त हुए॥ ६०॥

अनेक कल्पोंके भेदसे इतिहास, पुराण आदिके भी विशिष्ट भेद होते हैं। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, स्कन्दपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—ये उन पुराणोंके भेद कहे जाते हैं। इनमें ग्यारहवाँ पवित्र लिङ्गपुराण द्वापरमें विभक्त किया गया है॥ ६१—६३ १/२॥

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वसिष्ठ आदि बहुत-से मुनि धर्मशास्त्रोंका विस्तार करनेवाले हैं॥ ६४-६५ १/२॥

अवृष्टि, अकालमरण, रोग, विघ्न एवं मन-वचन-कर्मजनित दुःखोंसे निर्वेद उत्पन्न होता है। निर्वेदसे उन प्रजाओंके मनमें दुःखोंसे छूटनेका विचार

विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्।
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः॥ ६८

पैदा होता है। उस विचारसे वैराग्य तथा वैराग्यसे सांसारिक क्रियाकलापोंमें दोष दिखायी देने लगते हैं और उन दोषोंके दर्शनसे द्वापरमें ज्ञान उत्पन्न हो जाता है॥ ६६—६८॥

एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता।
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते॥ ६९
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥ ७०

द्वापरमें रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त इस प्रकारकी वृत्ति कही गयी है। आदि सत्ययुगमें एकमात्र धर्म ही सर्वत्र रहता है, वह त्रेतामें प्रेरणासे प्रवृत्त होता है वह धर्म द्वापरमें व्याकुल होकर स्थित रहता है तथा फिर कलियुगमें नष्ट हो जाता है॥ ६९-७०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे 'चतुर्युगधर्माणां वर्णनं' नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'चतुर्युगधर्मवर्णन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

कलियुगके धर्मोंका वर्णन, कलियुगमें धर्म आदिका ह्रास तथा स्वल्प भी धर्माचरणका महत्फल एवं कलियुगके अन्तमें पुनः सत्ययुगकी प्रवृत्ति

शक्र उवाच

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम्।
साधयन्ति नरास्तत्र तमसा व्याकुलेन्द्रियाः॥ १

इन्द्र बोले—[हे शिलाद!] कलियुगमें तमोगुणसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य माया रचेंगे, दूसरोंका दोष देखेंगे तथा तपस्वियोंका वध करेंगे॥ १॥

कलौ प्रमादको रोगः सततं क्षुद्भयानि च।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥ २

कलियुगमें प्रमाद, रोग, निरन्तर क्षुधाका भय, अनावृष्टिरूप घोर भय तथा देशोंका विपर्यय (विनाश)—ये सब होंगे॥ २॥

न प्रामाण्यं श्रुतेरस्ति नृणां चाधर्मसेवनम्।
अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पचेतसः॥ ३

लोग वेदोंकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करेंगे तथा अधर्मका आचरण करेंगे। मनुष्य धर्मच्युत होकर अनाचारमें रत रहेंगे और महान् क्रोधी तथा मन्द बुद्धिवाले होंगे॥ ३॥

अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताश्च दुष्प्रजाः।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥ ४

विप्राणां कर्मदोषेण प्रजानां जायते भयम्।
नाधीयन्ते तदा वेदान्न यजन्ति द्विजातयः॥ ५

कलियुगमें प्रजाएँ मिथ्या भाषण करेंगी, लोभ-परायण होंगी तथा मलिन आचार-विचारवाली होंगी। ब्राह्मणोंके दूषित यज्ञ, दूषित पठन, दूषित आचार एवं दूषित शास्त्रोंके सेवनरूपी कर्मदोषसे प्रजाओंमें भय उत्पन्न होगा। द्विजातिगण न तो वेदोंका अध्ययन करेंगे और न तो यज्ञ-अनुष्ठान करेंगे॥ ४-५॥

उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्।
शूद्राणां मन्त्रयोगेन सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह॥ ६

भवतीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः।
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति ते॥ ७

क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी मनुष्य क्रमशः विनष्ट हो जायँगे। कलियुगमें ब्राह्मण लोग शूद्रोंको मन्त्रोपदेश देंगे तथा उनके साथ शयन, आसन, भोजन आदिका व्यवहार

भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायन्ते प्रजासु वै।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः॥ ८

राजवृत्तिस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्च पार्थिवाः।
एकपत्न्यो न शिष्यन्ति वर्धिष्यन्त्यभिसारिकाः॥ ९

वर्णाश्रमप्रतिष्ठा नो जायते नृषु सर्वतः।
तदा स्वल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला॥ १०

अरक्षितारो हर्तारः पार्थिवाश्च शिलाशन।
शूद्रा वै ज्ञानिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिवन्दिताः॥ ११

अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः।
आसनस्था द्विजान् दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धयः॥ १२

ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा वै स्वल्पबुद्धयः।
आस्ये निधाय वै हस्तं कर्णं शूद्रस्य वै द्विजाः॥ १३

नीचस्येव तदा वाक्यं वदन्ति विनयेन तम्।
उच्चासनस्थान् शूद्रांश्च द्विजमध्ये द्विजर्षभ॥ १४

ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालवशेन तु।
पुष्पैश्च वासितैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैः शुभैः॥ १५

शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः।
न प्रेक्षन्ते गर्विताश्च शूद्रा द्विजवरान् द्विज॥ १६

सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठन्ति वै द्विजाः।
वाहनस्थान् समावृत्य शूद्रान् शूद्रोपजीविनः॥ १७

सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ।
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः॥ १८

करके उनसे सम्बन्ध बनायेंगे। राजा लोग शूद्रवत् आचरण करते हुए ब्राह्मणोंको सन्ताप देंगे॥ ६-७॥

प्रजाओंमें भ्रूणहत्या तथा वीरोंकी हत्याकी प्रवृत्ति व्याप्त रहेगी। शूद्र लोग ब्राह्मणोंका आचरण करेंगे एवं ब्राह्मण शूद्रोंका आचरण करेंगे॥ ८॥

चोर लोग राजाओंके तुल्य व्यवहार करेंगे और राजा लोग चोरों-जैसा व्यवहार करेंगे। स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्मका पालन नहीं करेंगी और व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बाहुल्य होगा॥ ९॥

मनुष्योंमें वर्ण तथा आश्रमसम्बन्धी समस्त व्यवहार समाप्त हो जायगा। उस समय पृथ्वी कहीं कम और कहीं अधिक फल देनेवाली होगी॥ १०॥

हे शिलाद! राजागण प्रजाओंके रक्षक न होकर उनके विनाशक हो जायेंगे। सभी शूद्र ज्ञानी बनकर ब्राह्मणोंसे वन्दित होंगे॥ ११॥

क्षत्रियसे इतर वर्णवाले राजा होंगे, ब्राह्मण आजीविकाके लिये शूद्रोंपर निर्भर रहेंगे और अल्प बुद्धिवाले वे शूद्र ब्राह्मणोंको देखकर अपने आसनसे नहीं उठेंगे। स्वल्प बुद्धिवाले शूद्र श्रेष्ठ द्विजोंको भी दण्डित (अपमानित) करेंगे। द्विज अपने मुखपर हाथ रखकर शूद्रके कानमें विनयपूर्वक नीच व्यक्तिके समान वाक्य बोलेंगे॥ १२-१३$^{1}/_{2}$॥

हे द्विजश्रेष्ठ! कलियुगमें कालके वशमें होकर राजा ब्राह्मणोंके बीच उच्च आसनपर बैठे हुए शूद्रको देखकर उसे दण्डित नहीं करेंगे। वे पुष्पों, सुगन्धित पदार्थों तथा अन्य मंगल-द्रव्योंसे शूद्रोंकी पूजा करेंगे। हे द्विज! अल्प शास्त्र-ज्ञान, खोटे भाग्य एवं बलसे युक्त शूद्र लोग गर्वित होकर श्रेष्ठसे श्रेष्ठ द्विजोंकी ओर देखनातक पसन्द नहीं करेंगे॥ १४—१६॥

अपनी आजीविकाके लिये शूद्रोंपर आश्रित रहनेवाले ब्राह्मण सेवाका अवसर देखकर वाहनोंपर स्थित शूद्रोंको घेरकर उनके द्वारपर खड़े होकर उनकी सेवा करेंगे। कलियुगमें ब्राह्मण अनेकविध स्तुतियोंसे शूद्रोंका स्तवन करेंगे। उस समय उत्तम विप्रगण अपने तपों तथा यज्ञोंके फलका विक्रय करेंगे॥ १७-१८॥

यतयश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन् कलौ युगे।
पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते समुपस्थिते॥ १९

निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवो महादेवः शङ्करो नीललोहितः॥ २०

प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम्॥ २१

कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्।
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव परिक्षयः॥ २२

साधूनां विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन् युगक्षये।
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान्॥ २३

चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति।
अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः॥ २४

युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः।
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः॥ २५

प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे।
चित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम्॥ २६

सर्वे वणिग्जनाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे।
कुशीलचर्याः पाखण्डैर्वृथारूपैः समावृताः॥ २७

बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम्।
नाव्याहृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः॥ २८

न कृते प्रतिकर्ता च युगक्षीणे भविष्यति।
निन्दकाश्चैव पतिता युगान्तस्य च लक्षणम्॥ २९

उस कलियुगमें बहुत लोग संन्यासीका रूप धारण कर लेंगे। उस युगान्तके उपस्थित होनेपर पुरुष तो कम होंगे, किंतु स्त्रियाँ अधिक होंगी। कलियुगमें ब्राह्मण वेद-विद्या तथा वैदिक कर्मोंकी निन्दा करेंगे॥ १९१/२॥

तब उस कलियुगमें नीललोहित महादेव शिव धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये अपनी विकृत आकृति अर्थात् उच्छिन्नभिन्न लिङ्गस्वरूपवाले होकर प्रकट होंगे॥ २०१/२॥

उस समय जो विप्रगण जिस किसी भी तरहसे उन विकृत वेषवाले शिवकी आराधना करेंगे, वे कलियुगके दोषोंपर विजय प्राप्तकर परमपदको प्राप्त होंगे॥ २११/२॥

उस कलियुगके अन्तमें हिंसक पशुओंकी प्रबलता तथा गायोंका ह्रास होगा और उत्तम साधुओंका अभाव हो जायगा॥ २२१/२॥

उस समय दानके मूलवाला सूक्ष्म ऐश्वर्यका रूप भी दुर्लभ हो जायगा, ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमोंकी शिथिलता हो जानेपर धर्म विनष्ट हो जायगा॥ २३१/२॥

उस युगान्तमें राजा लोग प्रजाजनोंकी रक्षा न करके मात्र अपनी रक्षामें तत्पर रहेंगे और बलिभाग [कर]-के हर्ता बन जायँगे॥ २४१/२॥

कलियुगमें समस्त प्राणी अन्न तथा कन्याओंका विक्रय करनेवाले एवं ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे और स्त्रियाँ व्यभिचारपरायण हो जायँगी। जब युगक्षय होता है, उस समय वर्षाके देवता इन्द्र कहीं-कहींपर वृष्टि करनेवाले कहे जाते हैं॥ २५-२६॥

उस अधम कलियुगमें सभी वणिक् जन भी कुत्सित आचरणवाले, दम्भ करनेवाले तथा पाखण्डी अर्थात् अवैदिक मार्गोंपर चलनेवाले होंगे॥ २७॥

कलियुगमें सभी लोग ग्रामयाजक (पात्र-अपात्रका विचार किये बिना सबका यज्ञ आदि करानेवाले) हो जायँगे। कोई भी मृदु वचन बोलनेवाला, सरल स्वभाववाला, ईर्ष्यारहित तथा प्रत्युपकारी अर्थात् अपने लिये किये गये उपकारको माननेवाला नहीं होगा और सभी लोग निन्दक एवं पतित हो जायँगे। यह सब युगान्त कलियुगका लक्षण है॥ २८-२९॥

नृपशून्या वसुमती न च धान्यधनावृता।
मण्डलानि भविष्यन्ति देशेषु नगरेषु च॥ ३०

पृथ्वी राजाओंसे शून्य हो जायगी तथा धन-धान्यसे परिपूर्ण नहीं रहेगी। देशों और नगरोंमें बहुत-से स्थान जनशून्य हो जायँगे॥ ३०॥

अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा।
गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः सम्भविष्यन्त्यशासनाः॥ ३१

पृथ्वी अल्प जलवाली तथा कम फल देनेवाली होगी। रक्षक ही भक्षक बन जायँगे एवं लोग स्वेच्छाचारी हो जायँगे॥ ३१॥

हर्तारः परवित्तानां परदारप्रधर्षकाः।
कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः॥ ३२

प्रनष्टचेष्टनाः पुंसो मुक्तकेशाश्च शूलिनः।
जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये॥ ३३

युगान्त कलियुगमें सभी लोग दूसरोंके धनका हरण करनेवाले, परस्त्रीगमन करनेवाले, कामी, दुरात्मा, अधम, दुस्साहसी, उद्योगरहित, लज्जारहित, रोगी तथा सोलह वर्षकी परम आयुवाले होंगे॥ ३२-३३॥

शुक्लदन्ताजिनाक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ ३४

कलियुगके उपस्थित होनेपर शूद्रगण [निर्लज्जता-पूर्वक] दाँत दिखाते हुए गेरुआ वस्त्र तथा रुद्राक्ष धारणकर एवं मुण्डित सिरवाले होकर यतियोंके धर्मका आचरण करेंगे॥ ३४॥

सस्यचौरा भविष्यन्ति दृढचैलाभिलाषिणः।
चौराश्चोरस्वहर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः॥ ३५

योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥ ३६

कलियुगमें लोग धान्यका हरण करनेवाले तथा अत्यन्त दुष्ट लोगोंके संगकी अभिलाषा करनेवाले होंगे। चोर चोरोंका धन चुरायेंगे और उनके भी धनको कोई दूसरा हरण कर ले जायगा। मनुष्यके विधिसम्मत कर्मसे विरत होकर निष्क्रिय होनेपर कीट, मूषक तथा सर्प मनुष्योंको पीड़ित करेंगे॥ ३५-३६॥

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तदा।
कौशिकीं प्रतिपत्स्यन्ते देशान् क्षुद्भयपीडिताः॥ ३७

दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा।
दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः॥ ३८

उस समय सुभिक्ष, कल्याण, नीरोगता, सामर्थ्य आदि दुर्लभ हो जायँगे। लोग क्षुधापीड़ित होकर अपने देशसे आकर कौशिकी नदीके तटपर बसेंगे। लोग दुःखित होकर सौ वर्षकी पूर्ण आयु व्यतीत करेंगे॥ ३७१/२॥

कलियुगमें सभी वेदोंका प्रचार-प्रसार कहीं दिखायी देगा और कहीं नहीं। समस्त यज्ञ अधर्मसे पीड़ित होकर विनष्ट हो जायँगे॥ ३८१/२॥

उत्सीदन्ति तदा यज्ञा केवलाधर्मपीडिताः।
काषायिणोऽप्यनिर्ग्रन्थाः कापालीबहुलास्त्विह॥ ३९

वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥ ४०

संन्यासी शास्त्रज्ञानसे रहित होंगे तथा कापालिक बहुत-से होंगे। कुछ लोग वेद बेचेंगे, तो अन्य लोग तीर्थोंका विक्रय करेंगे। अन्य पाखण्डी लोग वर्णाश्रमधर्मके प्रतिकूल आचरण करेंगे। कलियुगके उपस्थित होनेपर इस प्रकारके लोग उत्पन्न होंगे॥ ३९-४०१/२॥

उत्पद्यन्ते तदा ते वै सम्प्राप्ते तु कलौ युगे।
अधीयन्ते तदा वेदान् शूद्रा धर्मार्थकोविदाः॥ ४१

यजन्ते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्॥ ४२

धर्म तथा अर्थके पण्डित बनकर शूद्रलोग वेदोंका अध्ययन करेंगे एवं शूद्र जातिके राजा अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करेंगे। उस समय सभी प्राणी स्त्रियों, बालकों

उपद्रवांस्तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः।
दुःखप्रभूतमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता॥ ४३

अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्।
प्रजासु ब्रह्महत्यादि तदा वै सम्प्रवर्तते॥ ४४

तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते।
तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छन्ति मानवाः॥ ४५

धन्या धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः॥ ४६

त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः।
यथाक्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुते कलौ॥ ४७

एषा कलियुगावस्था सन्ध्यांशं तु निबोध मे।
युगे युगे च हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांस्तु सिद्धयः॥ ४८

युगस्वभावाः सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीह तु पादशः।
सन्ध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः॥ ४९

एवं सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके।
तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भूतानां निधनोत्थितः॥ ५०

गोत्रेऽस्मिन् वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते।
मानवस्य तु सोंऽशेन पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ५१

समाः सविंशतिः पूर्णा पर्यटन् वै वसुन्धराम्।
अनुकर्षन् स वै सेनां सवाजिरथकुञ्जराम्॥ ५२

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः॥ ५३

तथा गायोंका वध करके परस्पर नानाविध उपद्रव उत्पन्न करेंगे॥ ४१-४२½॥

उस समय अपार दुःख, अल्प आयु, शारीरिक कष्ट तथा व्याधियोंसे लोग पीड़ित होंगे। ऐसा कहा गया है कि कलियुगमें अधर्मके प्रति अत्यन्त आसक्ति होनेके कारण लोगोंका आचरण तमोगुणप्रधान होगा। उस समय प्रजाओंमें ब्रह्महत्या आदि महापापकर्म करनेकी विशेष तत्परता होगी॥ ४३-४४॥

अतएव कलियुगको प्राप्तकर प्रजाओंकी आयु, बल, रूप आदिका क्षय होगा। उस समय अल्पकालके धर्माचरणसे ही मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होंगे॥ ४५॥

उस कलियुगमें जो श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वेषरहित होकर वेदों तथा स्मृतियोंमें प्रतिपादित धर्मोंका आचरण करेंगे, वे धन्य होंगे॥ ४६॥

त्रेतामें वर्षभर तथा द्वापरमें मासभर धर्माचरण करनेसे जिस फलका प्राप्त होना बताया गया है, ज्ञानवान् व्यक्ति कलियुगमें वही फल यथाशक्ति एक दिन धर्माचरण करके प्राप्त कर लेता है॥ ४७॥

यह कलियुगकी दशाका वर्णन किया गया है। अब आप उसका सन्ध्यांश मुझसे जान लीजिये। युग-युगमें सिद्धियोंके तीन पादोंका ह्रास होता है॥ ४८॥

युगके स्वभाववाली सन्ध्याएँ यहाँ पादसे न्यून होकर रहती हैं। इस प्रकार सन्ध्याके स्वभाव अपने अंशोंमें अर्थात् सन्ध्यांशोंमें एक चतुर्थांशसे न्यून होकर प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ४९॥

इस प्रकार युगान्तमें सन्ध्यांशकालके उपस्थित होनेपर दुष्ट प्राणियोंके संहारके लिये उनका एक महान् शासक आविर्भूत होगा॥ ५०॥

पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जो प्रमिति नामसे विख्यात रहे हैं, वे मनुपुत्रके अंशसे इस कलियुगके समाप्तिकालमें चन्द्रमाके गोत्रमें सोमशर्मा नामक ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ ५१॥

शस्त्रधारी ब्राह्मणोंसे निरन्तर परिवृत वे हाथी, घोड़े तथा रथसे युक्त विशाल सेना साथमें लेकर पूरे बीस वर्षतक पृथ्वीपर घूम-घूमकर सैकड़ों और हजारों बार म्लेच्छोंका वध करेंगे॥ ५२-५३॥

स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्तान् शूद्रयोनिजान्।
पाखण्डांस्तु ततः सर्वान्निःशेषं कृतवान् प्रभुः॥ ५४

परम ऐश्वर्यसम्पन्न वे ब्राह्मणपुत्र शूद्रयोनिमें उत्पन्न उन सभी पाखण्डी राजाओंको मारकर पृथ्वीको उनसे पूर्णतः विहीन कर देंगे॥ ५४॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वतः।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये च ताननुजीविनः॥ ५५

अधर्मका आचरण करनेवाले, वर्णव्यवस्थाके प्रतिकूल चलनेवाले तथा इनके जो अनुजीवी हैं, उन सभीको वे मार डालेंगे॥ ५५॥

प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृत्स तु।
अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुन्धराम्॥ ५६

सभी प्राणियोंके लिये अजेय, म्लेच्छोंके संहारक, अत्यन्त बलशाली तथा प्रवृत्त-आज्ञामण्डलवाले वे समग्र भूमण्डलपर विचरण करेंगे॥ ५६॥

मानवस्य तु सोंऽशेन देवस्येह विजज्ञिवान्।
पूर्वजन्मनि विष्णोस्तु प्रमितिर्नाम वीर्यवान्॥ ५७
गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगे प्रभुः।
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तो विंशतिः समाः॥ ५८
विनिघ्नन् सर्वभूतानि शतशोऽथ सहस्रशः।
कृत्वा बीजावशेषां तु पृथिवीं क्रूरकर्मणः॥ ५९
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु।
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान्॥ ६०
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्थितिं प्राप्तः सहानुगः।
ततो व्यतीते काले तु सामात्यः सह सैनिकः॥ ६१

पूर्वजन्ममें वीर्यवान् प्रमिति नामवाले वे इस कलिमें मनुपुत्र विष्णुदेवके अंशसे सोम-गोत्रमें कलियुगके पूर्ण होनेपर उत्पन्न होंगे। बीस वर्षतक पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले वे सैकड़ों-हजारों विधर्मी प्राणियोंको नष्ट करते हुए पृथ्वीको क्रूरकर्मा जनोंसे शून्यप्राय-सा करके आकस्मिक तथा पारस्परिक समुत्पादित कोपके द्वारा उन अधार्मिक वृषलप्राय जनोंको मारकर बत्तीसवें वर्षके उदित होते ही मन्त्रियों, सहचरों तथा सैनिकोंसहित गंगा-यमुनाके मध्य स्वयंको संस्थापित कर लेंगे॥ ५७—६१॥

उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः।
तत्र सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके॥ ६२
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कृत्स्नशः॥ ६३
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रणिपत्य परस्परम्।

धर्मच्युत सभी पार्थिवों तथा हजारों म्लेच्छोंको नष्ट करके उस कलियुगमें सन्ध्यांशके समुपस्थित होनेपर यत्र-तत्र थोड़ी ही प्रजाएँ बची रहेंगी। वे आत्मनियन्त्रण खोकर तथा पूर्ण रूपसे लोभके वशीभूत होकर एक-दूसरेसे कृत्रिम नम्रता प्रदर्शित करती हुई उन्हें विश्वासमें लेकर उनकी हिंसा कर डालेंगी॥ ६२-६३½॥

अराजके युगवशात्संशये समुपस्थिते॥ ६४
प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः।
व्याकुलाश्च परिभ्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च॥ ६५
स्वान् प्राणाननपेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदुःखिताः।

युगके प्रभावके कारण अराजकताकी स्थिति उत्पन्न होनेपर वे सभी प्रजाएँ परस्पर भयसे ग्रस्त होकर व्याकुल तथा भ्रमित हो जायँगी। लोग अत्यन्त दुःखित एवं करुणाशून्य होकर अपनी पत्नियों तथा घरोंको छोड़कर अपने प्राणोंकी भी परवाह न करनेवाले होंगे॥ ६४-६५½॥

नष्टे श्रौते स्मार्तधर्मे परस्परहतास्तदा॥ ६६
निर्मर्यादा निराक्रान्ता निःस्नेहा निरपत्रपाः।

श्रौत तथा स्मार्तधर्मके नष्ट हो जानेपर सभी प्रजाएँ मर्यादाहीन, अत्यन्त क्रूर, स्नेहरहित तथा निर्लज्ज होकर एक-दूसरेकी हिंसा करानेमें तत्पर रहेंगी॥ ६६½॥

नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः॥ ६७

धर्मके नष्ट हो जानेपर पतनको प्राप्त हुए लोग लघु आकारवाले तथा पच्चीस वर्षकी आयुवाले होंगे।

हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः।
अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दूरतः॥ ६८

आपसी कलहसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले लोग अपनी पत्नियों एवं पुत्रोंका त्यागतक कर देंगे॥ ६७½॥

वृष्टि न होनेके कारण दुःखित प्रजाएँ कृषिकर्मका पूर्ण रूपसे त्याग करके अपने-अपने देशोंको छोड़कर म्लेच्छ देशों, नदी, समुद्र, कुएँ, पर्वत आदि स्थानोंपर शरण लेंगी॥ ६८-६९॥

प्रत्यन्तानुपसेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान्।
सरित्सागरकूपांस्ते सेवन्ते पर्वतांस्तथा॥ ६९

मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदुःखिताः।
चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥ ७०

प्रजाएँ अत्यन्त दुःखित होकर मधु, मांस, कन्दमूल तथा फलोंपर जीवन-निर्वाह करेंगी। वे परिग्रहरहित एवं निष्क्रिय होकर वृक्षोंकी छाल तथा उनके पत्ते वस्त्ररूपमें धारण करेंगी॥ ७०॥

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्कटं घोरमास्थिताः।
एवं कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तदा॥ ७१

वर्ण तथा आश्रमव्यवस्थासे भ्रष्ट हुए लोग घोर कष्टमें पड़ जायँगे और इस प्रकार भीषण दुःख आ जानेके कारण थोड़ी ही प्रजा बच पायेगी॥ ७१॥

जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमानसाः।
विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा॥ ७२

साम्यावस्थात्मको बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता।
अरूपशमयुक्तास्तु कलिशिष्टा हि वै स्वयम्॥ ७३

बुढ़ापा, रोग तथा क्षुधासे पीड़ित लोगोंके मनमें उस दुःखसे निर्वेद उत्पन्न होगा। पुनः उस निर्वेदसे साम्यावस्थावाली विचारणा, विचारणासे साम्यावस्थात्मक बोध और अन्तमें उस बोधसे धर्माचरणके प्रति प्रवृत्ति जाग्रत् होगी। कलियुगकी बची हुई वे प्रजाएँ स्वयं शक्ति-सामर्थ्यके अभावमें शान्तियुक्त हो जायँगी॥ ७२-७३॥

अहोरात्रात्तदा तासां युगं तु परिवर्तते।
चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत्॥ ७४

भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत।

इसके बाद सुप्त तथा मत्तकी भाँति उन प्रजाओंका चित्त-सम्मोहन करके एक दिन-रातमें ही कलियुग परिवर्तित हो जायगा और इस प्रकार कालधर्मके अनुसार कलियुगको दबाकर सत्ययुग प्रवृत्त हो जायगा॥ ७४½॥

प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै॥ ७५
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु प्रजाः कार्तयुगास्तदा।

तदनन्तर उस सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर कलियुगकी बची हुई प्रजाओंमें सत्ययुगके आचार-विचार उत्पन्न होंगे॥ ७५½॥

तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरन्ति च॥ ७६
सप्तसप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते तु व्यवस्थिताः।

इस लोकमें उस समय जो सप्तसिद्ध[1] लोग रहते हैं, वे अदृश्य रूपमें सप्तर्षियों[2]के साथ व्यवस्थित होकर विचरण करते हैं॥ ७६½॥

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह॥ ७७
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाभवन्।

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बीजके लिये कहे गये हैं, वे सब कलियुगमें उत्पन्न होनेवालोंके साथ उस समय विशेषता-रहित होकर रहते थे॥ ७७½॥

तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेऽपि च॥ ७८

वर्णाश्रमके आचारवाला जो श्रौत तथा स्मार्त दो

१. मन्त्रज्ञ, मन्त्रविद्, प्राज्ञ, मन्त्रराट्, सिद्धपूजित, सिद्धवत् और परमसिद्ध—ये सात सप्तसिद्ध कहे गये हैं। (लिङ्गपुराण पू० ८२।५१)

२. कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वसिष्ठ तथा जमदग्नि—ये सप्तर्षि कहे गये हैं।

वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतं स्मार्तं द्विधा तु यम्।
ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते॥ ७९

श्रौतस्मार्तकृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये॥ ८०

मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततः क्षितौ॥ ८१

वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु सम्भवः।
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह सम्भवः॥ ८२

एवं युगाद्युगस्येह सन्तानं तु परस्परम्।
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः॥ ८३

सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च।
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादान् क्रमेण तु॥ ८४

ससन्ध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः।
इत्येषा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितैषा क्रमेण तु॥ ८५

चतुर्युगानां सर्वेषामनेनैव तु साधनम्।
एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता॥ ८६

ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता।
अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात्॥ ८७

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्।
एषां चतुर्युगाणां च गुणिता ह्येकसप्ततिः॥ ८८

क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते।
चतुर्युगे यथैकस्मिन् भवतीह यदा तु यत्॥ ८९

तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम्।
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु॥ ९०

पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा।
तथा कल्पा युगैः सार्धं भवन्ति सह लक्षणैः॥ ९१

प्रकारका धर्म होता है; उस धर्मको उन लोगोंके लिये सप्तर्षि एवं सप्तसिद्ध लोग उपदेश करते हैं। इस प्रकार उन लोगोंके कर्मनिष्ठ हो जानेपर कृतयुगमें प्रजाएँ बढ़ने लगती हैं॥ ७८-७९॥

उन सप्तर्षियोंके द्वारा श्रौत-स्मार्तसम्बन्धी धर्मोंका उपदेश करनेसे कुछ लोग युगके क्षयके समय इस पृथ्वीलोकमें धर्मकी व्यवस्थाके लिये रह जाते हैं॥ ८०॥

वे मुनिगण मन्वन्तरोंके अधिकारोंमें स्थित रहते हैं। जिस प्रकार इस पृथ्वीपर दावानलसे वनोंके तृण आदिके जल जानेपर बादमें प्रथम वृष्टिसे उनके मूलोंमें पुनः अंकुरण होता है; उसी प्रकार कलियुगमें उत्पन्न हुए लोगोंसे ही कृतयुगके प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है॥ ८१-८२॥

इस प्रकार अव्यवच्छिन्न रूपसे इस लोकमें मन्वन्तरके क्षयतक एक युगके कुछ संतान दूसरे युगमें विद्यमान रहते हैं॥ ८३॥

प्रत्येक चतुर्युगीमें सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ तथा काम—ये सभी क्रमसे तीन-तीन पादोंके ह्रासको प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रत्येक युगके अन्ततक इनके एक-एक पादका ह्रास होता जाता है॥ ८४॥

इसी प्रकार युगके सन्ध्यांशमें प्रत्येक युगकी धर्म सिद्धियोंका भी ह्रास होता है। इस तरह मैंने क्रमसे प्रत्येक सिद्धिका वर्णन कर दिया॥ ८५॥

इसी प्रकार सभी चारों युगोंकी स्थिति बनती है। चारों युगोंकी एक आवृत्तिका जो एक हजार गुना है; वही ब्रह्माजीका एक दिन कहा गया है और उतनी ही बड़ी उनकी एक रात कही जाती है॥ ८६$^{१}/_{२}$॥

ज्यों-ज्यों युगका क्षय होता है, प्राणियोंमें जड़ता-भाव तथा स्वभावकी सरलताका अभाव बढ़ता जाता है। यही सभी युगोंका लक्षण कहा गया है॥ ८७$^{१}/_{२}$॥

क्रमसे एक चतुर्युगका इकहत्तर (७१$\frac{६}{१४}$) बार आवर्तन एक मन्वन्तर कहा जाता है। जो व्यवहार इस चतुर्युगमें घटित होता है, वही क्रमशः दूसरे चतुर्युगोंमें भी होता है॥ ८८-८९$^{१}/_{२}$॥

प्रत्येक सर्गमें पचीस प्रकारके भेदोंवाले जो तत्त्व होते

मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम्॥ ९२

यथा युगानां परिवर्तनानि
चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
तथा तु सन्तिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥ ९३

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः।
अतीतानागतानां हि सर्वमन्वन्तरेषु वै॥ ९४

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च।
व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥ ९५

अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥ ९६

तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत।
देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वन्तरेश्वराः॥ ९७

ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः।
एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगे युगे॥ ९८

युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः।
वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः॥ ९९

युगानां परिमाणं ते कथितं हि प्रसङ्गतः।
वदामि देवि पुत्रत्वं पद्मयोनेः समासतः॥ १००

हैं; वे ही जैसे सदा उत्पन्न होते हैं और इससे कम या अधिक नहीं। उसी प्रकार युगोंके साथ-साथ लक्षणोंसहित कल्प भी होते हैं। सभी मन्वन्तरोंका भी यही लक्षण है॥ ९०—९२॥

युगोंके स्वभावके अनुसार जिस प्रकार चिरकालसे प्रवृत्त होनेवाले युगोंमें परिवर्तन होता है, उसी प्रकार युगोंके अनुरूप क्षय तथा उदयसे यह जीवलोक भी संस्थित रहता है और इसमें भी युगोंके अनुरूप परिवर्तन होता रहता है॥ ९३॥

इस प्रकार सभी मन्वन्तरोंमें बीते हुए तथा आनेवाले युगोंके लक्षण संक्षेपमें कहे गये हैं॥ ९४॥

इसी तरह एक मन्वन्तरसे सभी मन्वन्तरोंकी व्याख्या की गयी है। एक कल्पके लक्षणोंसे सभी कल्पोंके लक्षण समझ लेना चाहिये। इस विषयमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ९५॥

उसी भाँति ज्ञानी पुरुषको इस लोकमें बीते हुए तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंके विषयमें कल्पना कर लेनी चाहिये॥ ९६॥

जो आठ प्रकारके देवता*, मन्वन्तरोंके स्वामी, ऋषिगण, मनुगण आदि हैं, वे सब तुल्य अभिमान-नाम-रूपवाले हुआ करते हैं; साथ ही उन सभीका समान प्रकारका प्रयोजन भी होता है॥ ९७$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार मैंने युग, उनके धर्म, वर्णाश्रमोंके विभाग, युगोंकी सिद्धियाँ, युगोंके परिमाण जिन्हें युग-युगमें परमात्मा धारण करते हैं—इन सबके विषयमें आपसे प्रसंगके अनुसार कह दिया। अब मैं आपसे पद्मयोनि ब्रह्माजीके देवीके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेके विषयमें संक्षेपमें कह रहा हूँ॥ ९८—१००॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे चतुर्युगपरिमाणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'चतुर्युगपरिमाण' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

* यहाँ गणदेवताओंका वर्ग आठ प्रकारका बताया गया है, किंतु अमरकोष (१।१।१०) तथा वाचस्पतिकोषमें गणदेवताओंके नौ वर्ग कहे गये हैं और एक-एक वर्गमें परिगणित देवताओंकी संख्याको इस प्रकार बताया गया है—

आदित्या द्वादशप्रोक्ता विश्वेदेवा दशस्मृताः। वसवश्चाष्ट संख्याताः षट्त्रिंशत् तुषिता मताः॥
आभास्वराश्चतुष्षष्टिर्वाताः पञ्चाशदूनकाः। महाराजिकनामानो द्वे शते विंशतिस्तथा॥
साध्या द्वादशविख्याता रुद्राश्चैकादशस्मृताः।

अर्थात् आदित्य १२, विश्वेदेव १०, वसु ८, तुषित ३६, आभास्वर ६४, मरुत् ४९, महाराजिक २२०, साध्य १२ और रुद्र ११ होते हैं।

इकतालीसवाँ अध्याय

विभिन्न कल्पोंमें त्रिदेवोंका परस्पर प्राकट्य तथा ब्रह्माद्वारा महेश्वरकी नामाष्टकस्तुतिका वर्णन

इन्द्र उवाच

पुनः ससर्ज भगवान् प्रभ्रष्टाः पूर्ववत्प्रजाः।
सहस्त्रयुगपर्यन्ते प्रभाते तु पितामहः॥ १

एवं परार्धे विप्रेन्द्र द्विगुणे तु तथा गते।
तदा धराम्भसि व्याप्ता ह्यापो वह्नौ समीरणे॥ २

वह्निः समीरणश्चैव व्योम्नि तन्मात्रसंयुतः।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि द्विजोत्तम॥ ३

अहङ्कारमनुप्राप्य प्रलीनास्तत्क्षणादहो।
अभिमानस्तदा तत्र महान्तं व्याप्य वै क्षणात्॥ ४

महानपि तथा व्यक्तं प्राप्य लीनोऽभवद् द्विज।
अव्यक्तं स्वगुणैः सार्धं प्रलीनमभवद्भवे॥ ५

ततः सृष्टिरभूत्तस्मात्पूर्ववत्पुरुषाच्छिवात्।
अथ सृष्टास्तदा तस्य मनसा तेन मानसाः॥ ६

न व्यवर्धन्त लोकेऽस्मिन् प्रजाः कमलयोनिना।
वृद्ध्यर्थं भगवान् ब्रह्मा पुत्रैर्वै मानसैः सह॥ ७

दुश्चरं विचचारेशं समुद्दिश्य तपः स्वयम्।
तुष्टस्तु तपसा तस्य भवो ज्ञात्वा स वाञ्छितम्॥ ८

ललाटमध्यं निर्भिद्य ब्रह्मणः पुरुषस्य तु।
पुत्रस्नेहमिति प्रोच्य स्त्रीपुंरूपोऽभवत्तदा॥ ९

तस्य पुत्रो महादेवो ह्यर्धनारीश्वरोऽभवत्।
ददाह भगवान् सर्वं ब्रह्माणं च जगद्गुरुम्॥ १०

इन्द्र बोले—तत्पश्चात् एक हजार चतुर्युगीके व्यतीत हो जानेपर प्रभात वेलामें भगवान् ब्रह्माने नष्ट हुई प्रजाओंका पुनः पूर्ववत् सृजन किया। हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार ब्रह्माके परार्धका दूना समय बीत जानेपर पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें अपनी-अपनी तन्मात्रासहित व्याप्त हो गये। हे द्विजश्रेष्ठ! दसों इन्द्रियाँ, मन तथा तन्मात्राएँ अहंकारको प्राप्तकर तत्क्षण उसीमें विलीन हो गयीं। अहंकार उस महत्‌को व्याप्त करके एवं महत् भी अव्यक्तको व्याप्त करके उसी क्षण उनमें विलीन हो गया। हे द्विज! अव्यक्त भी अपने गुणोंके साथ महेश्वरमें समाहित हो गया। इसके अनन्तर उन्हीं परम पुरुष शिवसे पूर्वकी भाँति सृष्टि होने लगी॥ १—५१/२॥

एतदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने अपने मनसे मानस पुत्रोंका सृजन किया। इस लोकमें जब प्रजाओंकी वृद्धि न हो सकी, तब प्रजा-वृद्धिके लिये स्वयं भगवान् ब्रह्मा अपने मानस पुत्रोंके साथ महेश्वरके निमित्त कठोर तप करने लगे। तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर वे महेश्वर शिव उनकी कामना समझकर उन पुरुषरूप ब्रह्माके ललाटके मध्य-भागका भेदन करके 'मैं आपका पुत्र हूँ'—ऐसा

कहकर स्त्री-पुरुषरूपमें प्रकट हो गये। उनके पुत्र वे

अथार्धमात्रां कल्याणीमात्मनः परमेश्वरीम्।
बुभुजे योगमार्गेण वृद्ध्यर्थं जगतां शिवः॥ ११

तस्यां हरिं च ब्रह्माणं ससर्ज परमेश्वरः।
विश्वेश्वरस्तु विश्वात्मा चास्त्रं पाशुपतं तथा॥ १२

तस्माद् ब्रह्मा महादेव्याश्चांशजश्च हरिस्तथा।
अण्डजः पद्मजश्चैव भवाङ्गभव एव च॥ १३

एतत्ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्।
परार्धं ब्रह्मणो यावत्तावद्भूतिः समासतः॥ १४

वैराग्यं ब्रह्मणो वक्ष्ये तमोद्भूतं समासतः।
नारायणोऽपि भगवान् द्विधा कृत्वात्मनस्तनुम्॥ १५

ससर्ज सकलं तस्मात्स्वाङ्गादेव चराचरम्।
ततो ब्रह्माणमसृजद् ब्रह्मा रुद्रं पितामहः॥ १६

मुने कल्पान्तरे रुद्रो हरिं ब्रह्माणमीश्वरम्।
ततो ब्रह्माणमसृजन्मुने कल्पान्तरे हरिः॥ १७

नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः।
तदा विचार्य वै ब्रह्मा दुःखं संसार इत्यजः॥ १८

सर्गं विसृज्य चात्मानमात्मन्येव नियोज्य च।
संहृत्य प्राणसञ्चारं पाषाण इव निश्चलः॥ १९

दशवर्षसहस्राणि समाधिस्थोऽभवत्प्रभुः।
अधोमुखं तु यत्पद्मं हृदि संस्थं सुशोभनम्॥ २०

पूरितं पूरकेणैव प्रबुद्धं चाभवत्तदा।
तदूर्ध्ववक्त्रमभवत्कुम्भकेन निरोधितम्॥ २१

तत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थापयामास चेश्वरम्।
तदोमिति शिवं देवमर्धमात्रापरं परम्॥ २२

मृणालतन्तुभागैकशतभागे व्यवस्थितम्।
यमी यमविशुद्धात्मा नियम्यैवं हृदीश्वरम्॥ २३

महादेव अर्धनारीश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। तब उन्होंने जगद्गुरु ब्रह्मासहित सब कुछ दग्ध कर दिया॥ ६—१०॥

इसके बाद शिवजीने समग्र जगत्की वृद्धिके लिये योगमार्गके द्वारा कल्याणमयी अर्धमात्रास्वरूपिणी अपनी अर्धांगिनी परमेश्वरीके साथ संसर्ग किया। विश्वेश्वर विश्वात्मा परमेश्वर शिवने उन परमेश्वरीसे विष्णु, ब्रह्मा और पाशुपत अस्त्रका सृजन किया। इसीलिये ब्रह्मा तथा विष्णुको महादेवीके अंशसे उत्पन्न कहा गया है और उन ब्रह्माको अण्डज, पद्मज और भवांगभव भी कहा जाता है। मैंने आपसे यह सम्पूर्ण पुरातन इतिहास कह दिया। जबतक ब्रह्माका परार्ध रहता है, तबतकके उनके ऐश्वर्य तथा तमोगुणसे प्रादुर्भूत उनके वैराग्यके विषयमें मैं संक्षेपमें कहूँगा॥ ११—१४१/२॥

भगवान् नारायणने भी अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके अपने उसी अंगसे सम्पूर्ण चराचरकी सृष्टि की। तब उन्होंने ब्रह्माका सृजन किया और पितामह ब्रह्माने रुद्रका सृजन किया। हे मुने! दूसरे कल्पमें रुद्रने विष्णु, ब्रह्मा और ईश्वर (शिव)-को उत्पन्न किया। हे मुने! तदनन्तर दूसरे कल्पमें हरि (विष्णु)-ने ब्रह्माका सृजन किया। पुनः [दूसरे कल्पमें] ब्रह्माने नारायणको और फिर भव (रुद्र)-ने ब्रह्माकी सृष्टि की। तत्पश्चात् अजन्मा भगवान् ब्रह्मा 'यह संसार दुःखरूप है'—ऐसा सोचकर सृष्टिकार्य छोड़ करके अपनेको आत्मतत्त्वमें अवस्थितकर प्राण-संचारको निरुद्ध करके पाषाणकी भाँति अचल होकर दस हजार वर्षोंतक समाधिमें स्थित रहे॥ १५—१९१/२॥

तब उनके हृदयमें जो नीचेकी ओर मुखवाला सुन्दर कमल विराजमान था, वह पूरक प्राणायामद्वारा वायुपूरित होकर विकसित हो उठा और पुनः कुम्भक प्राणायामद्वारा वायुनिरुद्ध होकर ऊर्ध्वमुखवाला हो गया। तब उन्होंने परमेश्वरको उसी कमलकी कर्णिकाके मध्यमें स्थापित कर दिया। तदनन्तर आत्मनियन्त्रण करनेवाले, संयमके द्वारा विशुद्ध आत्मावाले तथा पूजनके योग्य ब्रह्माने ओंकार शब्दसे सम्बन्ध रखनेवाली अर्धमात्रासे परे जो नाद है, उससे भी परे ब्रह्मसंज्ञक नादस्वरूप, मृणालतन्तुके शतभागके एक भागमें अवस्थित परम सूक्ष्म पीतवर्ण अग्निशिखा-

यमपुष्पादिभिः पूज्यं याज्यो ह्ययजदव्ययम्।
तस्य हृत्कमलस्थस्य नियोगाच्चांशजो विभुः॥ २४

ललाटमस्य निर्भिद्य प्रादुरासीत्पितामहात्।
लोहितोऽभूत्स्वयं नीलः शिवस्य हृदयोद्भवः॥ २५

वह्नेश्चैव तु संयोगात्प्रकृत्या पुरुषः प्रभुः।
नीलश्च लोहितश्चैव यतः कालाकृतिः पुमान्॥ २६

नीललोहित इत्युक्तस्तेन देवेन वै प्रभुः।
ब्रह्मणा भगवान् कालः प्रीतात्मा चाभवद्विभुः॥ २७

सुप्रीतमनसं देवं तुष्टाव च पितामहः।
नामाष्टकेन विश्वात्मा विश्वात्मानं महामुने॥ २८

पितामह उवाच

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयाय ते॥ २९

शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः।
ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः॥ ३०

पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥ ३१

महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते।
उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने॥ ३२

यः पठेच्छृणुयाद्वापि पैतामहमिमं स्तवम्।
रुद्राय कथितं विप्रान् श्रावयेद्वा समाहितः॥ ३३

अष्टमूर्तेस्तु सायुज्यं वर्षादेकादवाप्नुयात्।
एवं स्तुत्वा महादेवमवैक्षत पितामहः॥ ३४

तदाष्टधा महादेवः समातिष्ठत्समन्ततः।
तदा प्रकाशते भानुः कृष्णवर्त्मा निशाकरः॥ ३५

क्षितिर्वायुः पुमानम्भः सुषिरं सर्वगं तथा।
तदाप्रभृति तं प्राहुरष्टमूर्तिरितीश्वरम्॥ ३६

अष्टमूर्तेः प्रसादेन विरञ्चिश्चासृजत्पुनः।
सृष्ट्वैतदखिलं ब्रह्मा पुनः कल्पान्तरे प्रभुः॥ ३७

सहस्रयुगपर्यन्तं संसुप्ते च चराचरे।
प्रजाः स्त्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत्॥ ३८

सदृश, यम-नियम आदि योगांग पुष्पोंके द्वारा पूजनीय तथा अविनाशी ईश्वरको अपने हृदयमें ध्यानावस्थित करके उनकी पूजा की॥ २०—२३१/२॥

तब हृदयकमलमें विराजमान रहनेवाले उन ब्रह्माके अंशसे जायमान सर्वव्यापी रुद्र उनके ललाटका भेदन करके पितामहसे उत्पन्न हुए। शिवके हृदयसे प्रादुर्भूत पुरुष रुद्र स्वभावतः स्वयं नील होते हुए भी अग्निके संयोगके कारण लोहित (रक्त) वर्णके हो गये। चूँकि वे कालाकृति पुरुष रुद्र नील और लोहित वर्णके हुए, अतः वे ब्रह्मदेव प्रभु रुद्रको 'नीललोहित'—ऐसा कहने लगे। कालरूप भगवान् रुद्र ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे महामुने! तदनन्तर विश्वात्मा पितामह ब्रह्मा नामाष्टक स्तोत्रसे प्रसन्नचित्त विश्वात्मा भगवान् रुद्रकी स्तुति करने लगे॥ २४—२८॥

पितामह बोले—हे भगवन्! हे रुद्र! हे भास्कर! अमित तेजस्वी आपको नमस्कार है; अम्बुमय तथा रस-स्वरूप आप भगवान् भवको नमस्कार है। गन्धमय पृथ्वीरूप शर्वको नित्य नमस्कार है; स्पर्शगुणयुक्त वायुरूप ईशको बार-बार नमस्कार है। अमित तेजस्वी अग्नि-रूप पशुपतिको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रावाले व्योमरूप आप भीमको नमस्कार है। आप अमृतमय चन्द्रस्वरूप महादेवको नमस्कार है; आप कर्मयोगी यजमानरूप उग्रको नमस्कार है। जो मनुष्य समाहितचित्त होकर पितामह ब्रह्माके द्वारा रुद्रके लिये कहे गये इस स्तोत्रका पाठ करता है या श्रवण करता है अथवा विप्रोंको सुनाता है, वह एक वर्षमें ही अष्टमूर्ति भगवान् रुद्रका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ २९—३३१/२॥

इस प्रकार स्तुति करके जब पितामहने महादेवकी ओर देखा, तब वे सभी ओर आठ प्रकारसे विभक्त होकर सुशोभित होने लगे। उसी समयसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि प्रकाश करने लगे और पृथ्वी, वायु, यजमानरूप पुरुष, जल तथा सर्वव्यापी गगन अपने-अपने गुणधर्मसे समन्वित हुए। उसी समयसे लोग उन ईश्वरको 'अष्टमूर्ति' इस नामसे कहने लगे॥ ३४—३६॥

उन्हीं अष्टमूर्तिके अनुग्रहसे ब्रह्माजी पुनः सृष्टि करने लगे। इस सम्पूर्ण जगत्का सृजन करके पुनः दूसरे कल्पमें हजार युगपर्यन्त चराचर संसारके सुप्त रहनेपर

तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्तत।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत॥ ३९

क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्॥ ४०

सर्वांस्तानग्रजान् दृष्ट्वा भूतप्रेतनिशाचरान्।
अनिन्दत तदा देवो ब्रह्मात्मानमजो विभुः॥ ४१

जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः।
ततः प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥ ४२

अर्धनारीश्वरो भूत्वा बालार्कसदृशद्युतिः।
तदैकादशधात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः॥ ४३

अर्धेनांशेन सर्वात्मा ससर्जासौ शिवामुमाम्।
सा चासृजत्तदा लक्ष्मीं दुर्गां श्रेष्ठां सरस्वतीम्॥ ४४

वामां रौद्रीं महामायां वैष्णवीं वारिजेक्षणाम्।
कलां विकरिणीं चैव कालीं कमलवासिनीम्॥ ४५

बलविकरिणीं देवीं बलप्रमथिनीं तथा।
सर्वभूतस्य दमनीं ससृजे च मनोन्मनीम्॥ ४६

तथान्या बहवः सृष्टास्तया नार्यः सहस्रशः।
रुद्रैश्चैव महादेवस्ताभिस्त्रिभुवनेश्वरः॥ ४७

सर्वात्मनश्च तस्याग्रे ह्यतिष्ठत्परमेश्वरः।
मृतस्य तस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ४८

घृणी ददौ पुनः प्राणान् ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः।
ब्रह्मणः प्रददौ प्राणानात्मस्थांस्तु तदा प्रभुः॥ ४९

प्रहृष्टोऽभूत्ततो रुद्रः किञ्चित्प्रत्यागतासवम्।
अभ्यभाषत देवेशो ब्रह्माणं परमं वचः॥ ५०

मा भैर्देव महाभाग विरिञ्च जगतां गुरो।
मयेह स्थापिताः प्राणास्तस्मादुत्तिष्ठ वै प्रभो॥ ५१

भगवान् ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे अत्यन्त उग्र तप आरम्भ कर दिया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार तप करते हुए उन ब्रह्माको जब कोई सफलता प्राप्त न हुई; तब दीर्घकालतक तप करनेसे उत्पन्न दुःखके कारण उन्हें क्रोध आ गया। तब क्रोधाविष्ट उन ब्रह्माके नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु गिरने लगे। तदनन्तर उन अश्रुबिन्दुओंसे भूत-प्रेत प्रादुर्भूत हो गये॥ ३९-४०॥

तब उन सभी भूत-प्रेत-निशाचरोंको पहले उत्पन्न हुआ देखकर अजन्मा तथा परम ऐश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा अपनेको कोसने लगे। इससे उन भगवान् पितामहने कोपाविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दिये॥ ४१ १/२॥

तत्पश्चात् उन प्रभुके मुखसे उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिवाले अर्धनारीश्वरके रूपमें होकर प्राणमय रुद्र प्रकट हुए। तब वे अपनेको ग्यारह स्वरूपोंमें* विभक्त करके व्यवस्थित हो गये। उन सर्वात्मा रुद्रने अपने आधे अंशसे कल्याणकारिणी उमाको आविर्भूत किया॥ ४२-४३ १/२॥

तत्पश्चात् उमाने लक्ष्मी, दुर्गा तथा श्रेष्ठ सरस्वतीका सृजन किया; पुनः उन्होंने वामा, रौद्री, महामाया, कमलके समान नेत्रोंवाली वैष्णवी, कल-विकरिणी, काली, कमलवासिनी, बलविकरिणी, देवी बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनीका सृजन किया। इसी प्रकार उन्होंने अन्य बहुत-सी हजारों नारियोंकी सृष्टि की॥ ४४—४६ १/२॥

तब तीनों लोकोंके स्वामी परमेश्वर महादेव समस्त रुद्रों तथा उन देवियोंके साथ उन सर्वात्मा ब्रह्माके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर ब्रह्मपुत्र दयालु महेश्वर शिवने उन मरे हुए परमेष्ठी भगवान् ब्रह्माको पुनः प्राण प्रदान कर दिये। जब प्रभु शिवने ब्रह्मामें आत्मस्थित प्राणोंका संचार किया, तब उन्हें कुछ-कुछ चेतनायुक्त देखकर भगवान् रुद्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसके बाद देवेश्वर शिवने ब्रह्माजीसे यह श्रेष्ठ वचन कहा—हे देव! डरिये मत! हे महाभाग! हे विरिञ्च! हे जगद्गुरो! मैंने आपमें प्राण स्थापित कर दिये हैं; अतः हे प्रभो! अब उठिये॥ ४७—५१॥

* भगवान् रुद्रके ग्यारह नामोंका वर्णन विभिन्न पुराणोंमें आया है, किंतु नामोंमें अन्तर है, लिङ्गपुराण पूर्वभाग अ० ६३में ११ रुद्रोंके नाम इस प्रकार बताये गये हैं—अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, भैरव, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित।

श्रुत्वा वचस्ततस्तस्य स्वप्नभूतं मनोगतम्।
पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः॥ ५२
ततः प्रत्यागतप्राणः समुदैक्षन्महेश्वरम्।
स उद्वीक्ष्य चिरं कालं स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ ५३
उवाच भगवान् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः॥ ५४
को भवानष्टमूर्तिर्वै स्थित एकादशात्मकः।

तब उनका स्वप्नभूत मनोगत वचन सुनकर पितामह प्रसन्नचित्त हो गये। तदनन्तर लब्धप्राण ब्रह्माजीने अपने खिले हुए कमलके समान नेत्रोंसे महेश्वरको देखा। बहुत समयतक उन्हें देखते रहनेके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने उठ करके दोनों हाथ जोड़कर स्नेहयुक्त गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—हे महाभाग! आप मेरे मनको आनन्दित कर रहे हैं; एकादश रूपोंमें प्रतिष्ठित अष्टमूर्ति आप कौन हैं?॥ ५२—५४½॥

इन्द्र उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः॥ ५५
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्माणं सुखाभ्यां स सुरारिहा।

इन्द्र बोले—उनका वचन सुनकर देवशत्रुओंका संहार करनेवाले महेश्वर अपने सुखप्रद हाथोंसे ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए उनसे कहने लगे॥ ५५½॥

श्रीशङ्कर उवाच

मां विद्धि परमात्मानमेनां मायामजामिति॥ ५६
एते वै संस्थिता रुद्रास्त्वां रक्षितुमिहागताः।
ततः प्रणम्य तं ब्रह्मा देवदेवमुवाच ह॥ ५७
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा।
भगवन् देवदेवेश दुःखैराकुलितो ह्यहम्॥ ५८
संसारान्मोक्तुमीशान मामिहार्हसि शङ्कर।
ततः प्रहस्य भगवान् पितामहमुमापतिः॥ ५९
तदा रुद्रैर्जगन्नाथस्तया चान्तर्दधे विभुः।

श्रीशंकर बोले—मुझे परमात्मा तथा इन्हें अजन्मा माया समझिये और सामने खड़े ये रुद्र आपकी रक्षा करनेके लिये यहाँ आये हैं॥ ५६½॥

तदनन्तर उन देवाधिदेवको प्रणाम करके ब्रह्माने हाथ जोड़कर हर्षपूर्ण गद्गद वाणीमें कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! मैं दुःखोंसे अत्यन्त व्याकुल हूँ। हे ईशान! हे शंकर! मुझे इस संसारसे मुक्त करनेमें आप समर्थ हैं॥ ५७-५८½॥

तत्पश्चात् पितामह ब्रह्माकी इस बातपर हँसकर सर्वव्यापी तथा जगत्के स्वामी उमापति भगवान् शिव रुद्रों एवं उन भगवती उमाके साथ अन्तर्धान हो गये॥ ५९½॥

इन्द्र उवाच

तस्माच्छिलाद लोकेषु दुर्लभो वै त्वयोनिजः॥ ६०
मृत्युहीनः पुमान् विद्धि समृत्युः पद्मजोऽपि सः।
किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति यदीश्वरः॥ ६१
न दुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः।
मया च विष्णुना चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥ ६२
अयोनिजं मृत्युहीनमसमर्थं निवेदितुम्।

इन्द्र बोले—हे शिलाद! अतः समस्त लोकोंमें अयोनिज तथा मृत्युरहित पुरुष सर्वथा दुर्लभ है। [यहाँतक कि] वे पद्मयोनि ब्रह्मा भी मृत्युयुक्त हैं—ऐसा जानिये। किंतु यदि देवेश्वर भगवान् रुद्र प्रसन्न हो जायँ, तो आपके लिये मृत्युरहित तथा अयोनिज पुत्र दुर्लभ नहीं है। मैं, विष्णु एवं महात्मा ब्रह्मा भी मृत्युहीन तथा अयोनिज पुत्र देनेमें असमर्थ हैं॥ ६०—६२½॥

शैलादिरुवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी॥ ६३
देवैर्वृतो ययौ देवः सितेनेभेन वै प्रभुः॥ ६४

शैलादि बोले—इस प्रकार विप्रेन्द्रसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह करके वे दयालु इन्द्र देवताओंके साथ श्वेतवर्णवाले ऐरावतपर आरूढ़ होकर चले गये॥ ६३-६४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे इन्द्रवाक्यं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'इन्द्रवाक्य' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

शिलादद्वारा तप करनेसे भगवान् महेश्वरका नन्दी नामसे उनके पुत्रके रूपमें प्रकट होना और शिलादद्वारा नन्दिकेश्वर शिवकी स्तुति

सूत उवाच

गते पुण्ये च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः।
आराधयन् महादेवं तपसातोषयद्भवम्॥ १

अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्भुतम्॥ २

वल्मीकेनावृताङ्गश्च लक्ष्यः कीटगणैर्मुनिः।
वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तकीटैश्च सर्वतः॥ ३

निर्मांसरुधिरत्वग्वै निर्लेपः कुड्यवत्स्थितः।
अस्थिशेषोऽभवत्पश्चात्तममन्यत शङ्करः॥ ४

यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा।
तदैव मुनिशार्दूलश्चोत्ससर्ज क्लमं द्विजः॥ ५

तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टोऽथ शङ्करः।
तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्चोमया सह॥ ६

तपसानेन किं कार्यं भवतस्ते महामते।
ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम्॥ ७

ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वोवाच शिलाशनः।
हर्षगद्गदया वाचा सोमं सोमविभूषणम्॥ ८

शिलाद उवाच

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरार्दन शङ्कर।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सत्तम॥ ९

सूत उवाच

पूर्वमाराधितः प्राह तपसा परमेश्वरः।
शिलादं ब्रह्मणा रुद्रः प्रीत्या परमया पुनः॥ १०

सूतजी बोले—वर प्रदान करनेवाले पुण्यशाली सहस्रनेत्र इन्द्रके चले जानेपर वे शिलाद महादेव शिवकी आराधना करते हुए तपके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे॥ १॥

इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें संलग्न उन द्विज शिलादके एक हजार दिव्य वर्ष एक क्षणकी भाँति अद्भुतरूपसे व्यतीत हो गये॥ २॥

उनका शरीर वल्मीक (बाँबी)-से ढँक गया, वे मुनि वज्रसूची (वज्र तथा सूईके समान) मुखवाले तथा अन्य रक्तभोजी कीटोंसे लिपटे शरीरवाले परिलक्षित हो रहे थे, वे मांस-रुधिर-त्वचासे विहीन होकर अस्थिमात्र शरीरवाले हो गये थे; फिर भी वे निर्लिप्त भावसे भित्तिकी भाँति निश्चल खड़े थे। तब उन्हें [इस रूपमें तप करते हुए] भगवान् शंकरने जान लिया। [वहाँ प्रकट होकर] कामरिपु शिवने ज्यों ही अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, त्यों ही मुनिश्रेष्ठ द्विज शिलादका [तपस्याजनित] क्लेश समाप्त हो गया॥ ३—५॥

तदनन्तर तपस्यारत उन मुनिके तपसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने उनसे कहा—मैं अपने गणों तथा उमासहित आपपर प्रसन्न हूँ। हे महामते! इस तपस्यासे आपका क्या प्रयोजन! मैं आपको सर्वज्ञ तथा समस्त शास्त्रोंके रहस्योंका पारगामी विद्वान् पुत्र प्रदान करता हूँ॥ ६-७॥

तब देवेश शिवको प्रणाम करके और उनकी स्तुति करके शिलादमुनि हर्षपूर्ण गद्गद वाणीमें चन्द्रभूषण शिवसे कहने लगे॥ ८॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रिपुरार्दन! हे शंकर! हे सत्तम! मैं अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ॥ ९॥

सूतजी बोले—पूर्वमें ब्रह्माजीके द्वारा तपस्यासे आराधित परमेश्वर रुद्रने परम प्रसन्नताके साथ मुनि शिलादसे कहा॥ १०॥

श्रीदेवदेव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः॥ ११

तव पुत्रो भविष्यामि नन्दिनाम्ना त्वयोनिजः।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने॥ १२

एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं घृणी।
सोमः सोमोपमः प्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १३

लब्धपुत्रः पिता रुद्रात्प्रीतो मम महामुने।
यज्ञाङ्गणं महत्प्राप्य यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः॥ १४

तदङ्गणादहं शम्भोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया।
सञ्जातः पूर्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः॥ १५

ववर्षुस्तदा पुष्करावर्तकाद्या
जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः।
शिलादात्मजत्वं गते मय्युपेन्द्रः
ससर्जाथ वृष्टिं सुपुष्पौघमिश्राम्॥ १६

मां दृष्ट्वा कालसूर्याभं जटामुकुटधारिणम्।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं शूलटङ्कगदाधरम्॥ १७

वज्रिणं वज्रदंष्ट्रं च वज्रिणाराधितं शिशुम्।
वज्रकुण्डलिनं घोरं नीरदोपमनिःस्वनम्॥ १८

ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुः सर्वे सुरेन्द्रश्च मुनीश्वराः।
नेदुः समन्ततः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ १९

ऋषयो मुनिशार्दूल ऋग्यजुःसामसम्भवैः।
मन्त्रैर्माहेश्वरैः स्तुत्वा सम्प्रणेमुर्मुदान्विताः॥ २०

ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च शक्रः साक्षाच्छिवाम्बिका।
जीवश्चेन्दुर्महातेजा भास्करः पवनोऽनलः॥ २१

ईशानो निर्ऋतिर्यक्षो यमो वरुण एव च।
विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबलाः॥ २२

श्रीदेवदेव शिव बोले—हे विप्र! हे तपोधन! मुनियों तथा श्रेष्ठ देवताओंसहित ब्रह्माजीने अवतार ग्रहण करनेके लिये पूर्वकालमें तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी। अतः मैं नन्दी नामसे तुम्हारे अयोनिज पुत्रके रूपमें जन्म लूँगा। हे मुने! आप मुझ जगत्पिताके भी पिता होंगे॥ ११-१२॥

ऐसा कहकर सम्मुख स्थित मुनिकी ओर प्रेमपूर्वक देखकर उन्हें प्रणाम करके अमृततुल्य भगवान् शिव उमासहित वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १३॥

हे महामुने! भगवान् रुद्रसे पुत्रप्राप्तिका वरदान पाकर यज्ञविदोंमें श्रेष्ठ मेरे पिताजी यज्ञ करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक विशाल यज्ञशालामें पहुँचे; तब मैं पूर्व ही भगवान् रुद्रकी आज्ञासे उनके पुत्रके रूपमें उस अंगणमें प्रादुर्भूत हो गया, उस समय मैं प्रलयाग्निके समान प्रभासे समन्वित था॥ १४-१५॥

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे आविर्भूत होनेपर पुष्कर, आवर्तक आदि मेघ बरसने लगे; किन्नर, सिद्ध, साध्य आदि गगनचारी देवतागण गान करने लगे और इन्द्र पुष्पराशिमिश्रित वृष्टि करने लगे॥ १६॥

उस समय कालसूर्यके समान आभावाले, जटा-मुकुट धारण किये, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजाओंवाले, हाथोंमें शूल-टंक-गदा धारण करनेवाले, वज्र लिये हुए, हीरेके सदृश उज्ज्वल दाँतोंवाले, इन्द्रके द्वारा आराधित, कानोंमें हीरेका कुण्डल धारण किये हुए, घोर विग्रहवाले तथा मेघसदृश गम्भीर ध्वनिसे सम्पन्न मुझ बाल-शिशुको देखकर ब्रह्मा आदि, इन्द्र तथा सभी मुनीश्वर स्तुति करने लगे और सभी अप्सराएँ चारों ओरसे वाद्ययन्त्र बजाने लगीं तथा नृत्य करने लगीं॥ १७—१९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके माहेश्वर मन्त्रोंके द्वारा आनन्दपूर्वक मेरी स्तुति करके ऋषियोंने मुझे प्रणाम किया॥ २०॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, साक्षात् अम्बिका शिवा, देवगुरु बृहस्पति, चन्द्रमा, महातेजस्वी सूर्य, वायु, अग्नि, ईशान, निर्ऋति, यक्ष, यम, वरुण, विश्वेदेव,

लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती।
अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा॥ २३

नन्दा भद्रा च सुरभी सुशीला सुमनास्तथा।
वृषेन्द्रश्च महातेजा धर्मो धर्मात्मजस्तथा॥ २४

आवृत्य मां तथालिङ्ग्य तुष्टुवुर्मुनिसत्तम।
शिलादोऽपि मुनिर्दृष्ट्वा पिता मे तादृशं तदा॥ २५

प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं सुतम्।

शिलाद उवाच

भगवन् देवदेवेश त्रियम्बक ममाव्यय॥ २६

पुत्रोऽसि जगतां यस्मात्त्राता दुःखाद्धि किं पुनः।
रक्षको जगतां यस्मात्पिता मे पुत्र सर्वग॥ २७

अयोनिज नमस्तुभ्यं जगद्योने पितामह।
पिता पुत्र महेशान जगतां च जगद्गुरो॥ २८

वत्स वत्स महाभाग पाहि मां परमेश्वर।
त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नन्दी नाम्ना सुरेश्वर॥ २९

तस्मान्नन्दय मां नन्दिन्नमामि जगदीश्वरम्।
प्रसीद पितरौ मेऽद्य रुद्रलोकं गतौ विभो॥ ३०

पितामहाश्च भो नन्दिन्नवतीर्णे महेश्वरे।
ममैव सफलं लोके जन्म वै जगतां प्रभो॥ ३१

अवतीर्णे सुते नन्दिन् रक्षार्थं मह्यमीश्वर।
तुभ्यं नमः सुरेशान नन्दीश्वर नमोऽस्तु ते॥ ३२

पुत्र पाहि महाबाहो देवदेव जगद्गुरो।
पुत्रत्वमेव नन्दीश मत्वा यत्कीर्तितं मया॥ ३३

त्वया तत्क्षम्यतां वत्स स्तवस्तव्य सुरासुरैः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि मम पुत्र प्रभाषितम्॥ ३४

श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या मया सार्धं स मोदते।
एवं स्तुत्वा सुतं बालं प्रणम्य बहुमानतः॥ ३५

सभी रुद्र, महाबली वसुगण, साक्षात् लक्ष्मी, इन्द्राणी, देवी ज्येष्ठा, सरस्वती, अदिति, दिति, श्रद्धा, लज्जा, धृति, नन्दा, भद्रा, सुरभी, सुशीला, सुमना, वृषेन्द्र, महातेजस्वी धर्म तथा धर्मपुत्र मुझे घेरकर मेरा आलिङ्गन करके मेरी स्तुति करने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय पुण्य आत्मावाले मेरे पिता मुनि शिलाद भी उस प्रकारके रूपवाले इष्टप्रद पुत्रको देखकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करके मेरी स्तुति करने लगे॥ २१—२५½॥

शिलाद बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रियम्बक! हे अव्यय! आप मेरे पुत्र हैं और जगत्के रक्षक हैं, अतः अब मुझे दुःख किस बातका! हे पुत्र! हे सर्वग (सर्वव्यापी)! आप जगत्के रक्षक हैं, अतः मेरे भी पिता हैं। हे अयोनिज! आपको नमस्कार है। हे जगद्योने! हे पितामह! हे पुत्र! हे महेशान! हे जगद्गुरो! आप जगत्के पिता हैं। हे वत्स! हे वत्स! हे महाभाग! हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आप 'नन्दी' नामसे विख्यात होंगे; हे नन्दिन्! मुझे आनन्द प्रदान कीजिये, मैं आप जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ॥ २६—२९½॥

हे विभो! आप प्रसन्न होइये। हे नन्दिन्! आप महेश्वरके [मेरे यहाँ] अवतीर्ण होनेपर आज मेरे माता-पिता रुद्रलोक चले गये; पितामह, प्रपितामह आदि भी रुद्रलोक चले गये। हे जगत्प्रभो! मेरे रक्षार्थ पुत्र-रूपमें आपके अवतार लेनेपर आज संसारमें मेरा जन्म सफल हो गया। हे सुरेशान! आपको नमस्कार है। हे नन्दीश्वर! आपको नमस्कार है। हे पुत्र! हे महाबाहो! हे देवदेव! हे जगद्गुरो! मेरी रक्षा कीजिये। हे नन्दीश! देवताओं तथा दानवोंके द्वारा स्तुतियोंसे स्तवनके योग्य हे वत्स! आपके प्रति पुत्रभाव समझकर मैंने जो भी कहा है, उसे आप क्षमा करें। हे पुत्र! जो मेरेद्वारा कहे गये इस स्तवनका भक्तिपूर्वक पाठ या श्रवण करता है अथवा द्विजोंको इसे सुनाता है, वह मेरे साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ ३०—३४½॥

इस प्रकार बालरूप पुत्र नन्दीकी स्तुति करके अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें प्रणामकर उत्तम व्रत धारण

मुनीश्वरांश्च सम्प्रेक्ष्य शिलादोवाच सुव्रतः।
पश्यध्वं मुनयः सर्वे महाभाग्यं ममाव्ययः॥ ३६

नन्दी यज्ञाङ्गणे देवश्चावतीर्णो यतः प्रभुः।
मत्समः कः पुमाँल्लोके देवो वा दानवोऽपि वा॥ ३७

एष नन्दी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे॥ ३८

करनेवाले मुनि शिलाद मुनीश्वरोंकी ओर देखकर बोले—हे मुनिगण! आप सभी लोग मेरे महान् अक्षुण्ण भाग्यको देख लें, जो कि मेरे यज्ञांगणमें अविनाशी भगवान् महेश्वर [मेरे पुत्र होकर] नन्दीके रूपमें अवतरित हुए हैं। सम्पूर्ण जगत्में कौन मनुष्य, देवता अथवा दानव मेरे समान है; क्योंकि मेरे हितार्थ ये नन्दी मेरी यज्ञभूमिमें प्रादुर्भूत हुए हैं॥ ३५—३८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वरोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वरोत्पत्ति' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

शिलादद्वारा पुत्र नन्दिकेश्वरको वेदादिकी शिक्षा प्रदान करना, ऋषियोंद्वारा नन्दिकेश्वरकी आयु अल्प बतानेपर शिलादका दुःखी होना तथा नन्दिकेश्वरद्वारा त्र्यम्बकमन्त्रका जप एवं महेश्वर-पार्वतीद्वारा उन्हें अपने पुत्ररूपमें अमर होनेका वरदान देना

नन्दिकेश्वर उवाच

मया सह पिता हृष्टः प्रणम्य च महेश्वरम्।
उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः॥ १

यदागतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने।
तदा वै दैविकं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥ २

नष्टा चैव स्मृतिर्दिव्या येन केनापि कारणात्।
मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः॥ ३

विललापातिदुःखार्तः स्वजनैश्च समावृतः।
जातकर्मादिकाश्चैव चकार मम सर्ववित्॥ ४

शालङ्कायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः।
उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शाखा यजुषस्तथा॥ ५

सामशाखासहस्रं च साङ्गोपाङ्गं महामुने।
आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं चाश्वलक्षणम्॥ ६

हस्तिनां चरितं चैव नराणां चैव लक्षणम्।
सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे ततोऽथ मुनिसत्तमौ॥ ७

मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ।
तस्याश्रमं गतौ दिव्यौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः॥ ८

नन्दिकेश्वर बोले—महेश्वरको प्रणाम करके पिताजी मुझको साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी कुटीमें लौट गये, जैसे निर्धन व्यक्ति निधि पाकर हर्षित हो जाता है, वैसे ही वे उस समय हर्षयुक्त थे॥ १॥

हे महामुने! जब मैं शिलादकी कुटीमें गया, तब अपना दैविक (दिव्य) रूप छोड़कर मैं मनुष्यरूपमें हो गया॥ २॥

[उस समय] किसी अज्ञात कारणवश मेरी दिव्य स्मृति नष्ट हो गयी। लोकपूजित मेरे पिताजीने मुझे मानवरूपमें देखकर अपने बन्धुओंसहित दुःखसे व्याकुल होकर अत्यधिक विलाप किया। पुत्रवत्सल तथा सर्वज्ञ शालंकायनपुत्र शिलादने मेरे जातकर्म आदि संस्कार किये॥ ३-४$^{१}/_{२}$॥

हे महामुने! उन्होंने ही मुझको ऋग्वेद तथा यजुर्वेदकी शाखाओं और सामवेदकी हजार शाखाओंका सांगोपांग उपदेश किया। साथ ही उन्होंने मुझे आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्वविद्या, अश्वलक्षण, हाथियोंके लक्षण, मनुष्योंके लक्षण आदिकी शिक्षा प्रदान की॥ ५-६$^{१}/_{२}$॥

मेरा सातवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर परमेश्वरकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये तप तथा योगशक्तिसे सम्पन्न मित्र-

ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः।
तात नन्द्ययमल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥ ९

न दृष्टमेवमाश्चर्यमायुर्वर्षादतः परम्।
इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादः पुत्रवत्सलः॥ १०

समालिङ्ग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम्।
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च समन्ततः॥ ११

अहो बलं दैवविधेर्विधातुश्चेति दुःखितः।
तस्य चार्तस्वरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः॥ १२

निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाश्चक्रुश्च मङ्गलम्।
तुष्टुवुश्च महादेवं त्रियम्बकमुमापतिम्॥ १३

हुत्वा त्रियम्बकेनैव मधुनैव च सम्प्लुताम्।
दूर्वामयुतसंख्यातां सर्वद्रव्यसमन्विताम्॥ १४

पिता विगतसंज्ञश्च तथा चैव पितामहः।
विचेष्टश्च ललापासौ मृतवन्निपपात च॥ १५

मृत्योर्भीतोऽहमचिराच्छिरसा चाभिवन्द्य तम्।
मृतवत्पतितं साक्षात्पितरं च पितामहम्॥ १६

प्रदक्षिणीकृत्य च तं रुद्रजाप्यरतोऽभवम्।
हृत्पुण्डरीके सुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम्॥ १७

त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम्।
सरितश्चान्तरे पुण्ये स्थितं मां परमेश्वरः॥ १८

तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्धभूषणः।
वत्स नन्दिन् महाबाहो मृत्योर्भीतिः कुतस्तव॥ १९

मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः।
वत्सैतत्तव देहं च लौकिकं परमार्थतः॥ २०

वरुण नामक दो दिव्य मुनिश्रेष्ठ उनके (मेरे पिताके) आश्रममें गये॥ ७-८॥

मुझको बार-बार देखकर उन दोनों महात्माओंने कहा—हे तात! यह नन्दी सभी शास्त्रोंके ज्ञानमें पारंगत होगा, किंतु यह अल्प आयुवाला है। ऐसा आश्चर्य तो कभी नहीं देखा गया है, इसकी आयु आजसे मात्र एक वर्षकी है॥ ९½॥

उनके ऐसा कहनेपर पुत्रसे स्नेह रखनेवाले विप्रवर शिलाद मेरा आलिंगन करके दुःखसे व्याकुल होकर करुण स्वरमें अत्यधिक रुदन करने लगे—हा पुत्र! हा पुत्र! हा पुत्र! अहो, दैवविधि तथा विधाताका ऐसा बल! [यह कहकर] वे दुःखित होकर भूमिपर गिर पड़े॥ १०-११½॥

तब उनकी दुःखभरी वाणी सुनकर आश्रमवासी इकट्ठे हो गये। वे [इस अशुभके लिये] विह्वल होकर मंगल रक्षाकृत्य करने लगे। उन्होंने अन्य सभी सामग्रियोंसहित मधुलिप्त दस हजार दूर्वाकी त्रियम्बक मन्त्रसे आहुति देकर उमापति त्रियम्बक महादेवको सन्तुष्ट किया॥ १२—१४॥

पिताजी संज्ञाशून्य हो गये। पितामहने भी बहुत विलाप किया, वे भी चेतनारहित हो मृतकी भाँति पड़े रहे॥ १५॥

मैं मृत्युसे भयभीत हो गया और साक्षात् मृतककी भाँति [भूमिपर पड़े हुए] अपने पिता तथा पितामहको शीघ्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके एवं उनकी प्रदक्षिणा करके रुद्रजपमें संलग्न हो गया। त्रिनेत्र, दस भुजाओंवाले, शान्त, पाँच मुखोंवाले, सदाशिव भगवान् त्रियम्बकका अपने हृदयकमलमें ध्यान करके मैं जप कर रहा था; [तब मैंने देखा कि] नदीके पुण्यतटपर मैं स्थित हूँ और अर्धचन्द्रमाको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले महादेव उमासहित प्रसन्न होकर [प्रकट हुए और] मुझसे कहने लगे—॥ १६—१८½॥

हे वत्स! हे नन्दिन्! हे महाबाहो! तुमको भला मृत्युसे भय कहाँ, मैंने ही उन दोनों विप्रोंको भेजा

नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धैर्गन्धर्वैर्दानवोत्तमैः॥ २१
पूजितं यत्पुरा वत्स दैविकं नन्दिकेश्वर।
संसारस्य स्वभावोऽयं सुखं दुःखं पुनः पुनः॥ २२
नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैव विवेकिनः।
एवमुक्त्वा तु मां साक्षात्सर्वदेवमहेश्वरः॥ २३
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च उभाभ्यां परमेश्वरः।
पस्पर्श भगवान् रुद्रः परमार्तिहरो हरः॥ २४
उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः।
निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम्॥ २५
समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः।
अजरो जरया त्यक्तो नित्यं दुःखविवर्जितः॥ २६
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सपिता ससुहृज्जनः।
ममेष्टो गणपश्चैव मद्वीर्यो मत्पराक्रमः॥ २७
इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा।
मद्बलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः॥ २८
एवमुक्त्वा च मां देवो भगवान् सगणस्तदा।
कुशेशयमयीं मालां समुन्मुच्यात्मनस्तदा॥ २९
आबबन्ध महातेजा मम देवो वृषध्वजः।
तयाहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया॥ ३०

त्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शङ्करः।
तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः॥ ३१
उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम्।
ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा चातिनिर्मलम्॥ ३२

था, तुम मेरे ही समान हो, इसमें सन्देह नहीं है। हे वत्स! वास्तवमें तुम्हारा यह देह लौकिक नहीं है, यह दिव्य है। हे वत्स! पूर्वमें शिलाद, देवताओं, मुनियों, सिद्धों, गन्धर्वों तथा श्रेष्ठ दानवोंने तुम्हारे जिस शरीरका दर्शन किया था और जिसका पूजन किया था, वह दिव्य था। हे नन्दिकेश्वर! संसारका यह स्वभाव है कि सुख-दुःख बार-बार आते रहते हैं। मनुष्योंके लिये स्त्रीभोगका परित्याग ही सर्वथा उचित है—ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं॥ १९—२२१/२॥

मुझसे ऐसा कहकर महान् कष्टोंको दूर करनेवाले, सभी देवताओंके महेश्वर, भगवान् रुद्र, हर, वृषभध्वज तथा परमेश्वर महादेवने अपने दोनों अत्यन्त शुभ हाथोंसे मुझे स्पर्श किया और उनका मन प्रसन्न हो गया। तदनन्तर गणेश्वरोंको एवं हिमालयपुत्री पार्वतीको भलीभाँति देखकर वे सुरेश्वर महादेव प्रसन्नचित्त होकर मेरी ओर देखकर कहने लगे—॥ २३—२५१/२॥

तुम अपने पिता तथा सुहृज्जनोंसहित अजर-अमर, बुढ़ापारहित, दुःखसे हीन, क्षयरहित एवं अव्यय रहोगे। तुम मेरे प्रिय गणेश्वर होओ, तुम मेरे समान तेज तथा पराक्रमवाले होओ। तुम सदा मेरे इष्ट बनकर सदा मेरे समीप विराजमान रहोगे। तुम मेरे सदृश बलशाली एवं महान् योगबलसे सम्पन्न होओगे॥ २६—२८॥

मुझसे ऐसा कहकर गणोंसहित महातेजस्वी वृषध्वज भगवान् महादेवने कुशेशयमयी अर्थात् शतदलकमलसे निर्मित अपनी माला उतारकर मेरे कण्ठमें बाँध दी। कण्ठमें बँधी हुई उस सुन्दर मालासे मैं तीन नेत्रोंवाले तथा दस भुजाओंवाले दूसरे शंकरके समान हो गया॥ २९—३०१/२॥

तत्पश्चात् परमेश्वरने मुझको हाथसे पकड़कर कहा—बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा उत्तम वर प्रदान करूँ? तब उन वृषध्वजने अपनी जटामें समाहित अति निर्मल

उक्त्वा नदी भवस्वेति उत्ससर्ज वृषध्वजः।
ततः सा दिव्यतोया च पूर्णासितजला शुभा॥ ३३

पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्तत महानदी।
तामाह च महादेवो नदीं परमशोभनाम्॥ ३४

यस्माज्जटोदकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी।
तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसि सरिद्वरा॥ ३५

त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित्सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो देव्या महादेवः शिलादतनयं प्रभुः॥ ३६

पुत्रस्तेऽयमिति प्रोच्य पादयोः संन्यपातयत्।
सा मामाघ्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जती॥ ३७

पुत्रप्रेम्णाभ्यषिञ्चच्च स्रोतोभिस्तनयैस्त्रिभिः।
पयसा शङ्खगौरेण देवदेवं निरीक्ष्य सा॥ ३८

तानि स्रोतांसि त्रीण्यस्याः स्रोतस्विन्योऽभवंस्तदा।
नदीं त्रिस्रोतसं देवो भगवानवदद्भवः॥ ३९

त्रिस्रोतसं नदीं दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः।
ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत्॥ ४०

वृषध्वनिरिति ख्याता देवदेवेन सा नदी।
जाम्बूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम्॥ ४१

स्वं देवश्चाद्भुतं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा।
मुकुटं चाबबन्धेशो मम मूर्ध्नि वृषध्वजः॥ ४२

कुण्डले च शुभे दिव्ये वज्रवैडूर्यभूषिते।
आबबन्ध महादेवः स्वयमेव महेश्वरः॥ ४३

मां तथाभ्यर्चितं व्योम्नि दृष्ट्वा मेघैः प्रभाकरः।
मेघाम्भसा चाभ्यषिञ्चच्छिलादनमथो मुने॥ ४४

तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्ता स्रोतसा भृशम्।
यस्मात्सुवर्णान्निःसृत्य नद्येषा सम्प्रवर्तते॥ ४५

स्वर्णोदकेति तामाह देवदेवस्त्रियम्बकः।
जाम्बूनदमयाद्यस्माद् द्वितीया मुकुटाच्छुभा॥ ४६

जलको [हाथमें] लेकर कहा—नदी हो जाओ—ऐसा कहकर उन्होंने जलको छोड़ दिया। तब दिव्य जलवाली, श्याम जलसे परिपूर्ण, कमल तथा उत्पलके वनोंसे युक्त शुभ महानदी बन गयी॥ ३१—३३$^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर महादेवने उस परम सुन्दर नदीसे कहा—चूँकि तुम जटाके जलसे महानदीके रूपमें निकली हो, अतः तुम्हारा नाम जटोदका होगा। तुम पवित्र तथा नदियोंमें श्रेष्ठ होओगी। कोई भी मनुष्य तुम्हारे जलमें स्नान करके सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ ३४-३५$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् प्रभु महादेवने 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर मुझ शिलादतनयको देवी पार्वतीके चरणोंमें डाल दिया। तब उन्होंने मेरा सिर सूँघकर दोनों हाथोंसे मुझे [स्नेहपूर्वक] सहलाते हुए पुनः देवदेव शंकरकी ओर देखकर पुत्रप्रेममें तीन पुत्ररूप स्रोतोंके द्वारा शंखके समान श्वेतवर्णवाले जलरूप अश्रुबिन्दुओंसे मुझे अभिसिंचित कर दिया। इनके वे ही तीनों स्रोत तीन नदियाँ बन गयीं। भगवान् भव महादेवने इसे त्रिस्रोतस् (तीन धाराओंवाली) नदीकी संज्ञा प्रदान की॥ ३६—३९॥

उस त्रिस्रोतस् नदीको देखकर वृषने अत्यन्त प्रसन्न होकर नाद किया, तब उस ध्वनिसे एक दूसरी नदी आविर्भूत हो गयी। देवदेव शंकरने उस नदीका नाम वृषध्वनि रखा॥ ४०$^{1}/_{2}$॥

इसके बाद भगवान् वृषध्वजने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित, स्वर्णमय, सभी रत्नोंसे जटित, अलौकिक, शुभ, अद्भुत तथा दिव्य अपने मुकुटको मेरे सिरपर बाँध दिया। उन महेश्वर महादेवने हीरे तथा वैदूर्यमणिसे मण्डित दो शुभ तथा दिव्य कुण्डल [मेरे कानोंमें] स्वयं पहना दिये॥ ४१—४३॥

हे मुने! मुझको इस प्रकार पूजित देखकर सूर्यने आकाशमें मेघोंके जलसे मुझ नन्दीका अभिसेचन किया। तब उस अभिषेकके जलसे सोनेकी नदी बन गयी। उस स्वर्णजलसे निकलकर यह नदी बनी, इसलिये देवोंके देव त्रियम्बक शिवने उसे स्वर्णोदका (स्वर्ण जलवाली) कहा। उसी प्रकार सोनेके मुकुटसे

प्रावर्तत नदी पुण्या ऊचुर्जाम्बूनदीति ताम्।
एतत्पञ्चनदं नाम जप्येश्वरसमीपगम्॥ ४७

यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम्।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः॥ ४८

दूसरी पवित्र तथा शुभ नदी उत्पन्न हुई, अतः उसे जाम्बूनदी कहा जाता है। इस प्रकार ये पाँच नदियाँ भगवान् जप्येश्वरके समीप जानेवाली हैं। जो पंचनदपर पहुँचकर इसमें स्नान करके भगवान् जप्येश्वरेश्वरकी पूजा करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४—४८॥

अथ देवो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः।
देवीमुवाच शर्वाणीमुमां गिरिसुतामजाम्॥ ४९

देवि नन्दीश्वरं देवमभिषिञ्चामि भूतपम्।
गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये॥ ५०

इसके बाद सभी भूतोंके स्वामी भगवान् महादेवने हिमालयपुत्री, अजन्मा, शर्वाणी, उमा देवीसे कहा—हे देवि! मैं भूतोंके स्वामी देव नन्दीश्वरका अभिषेचन करता हूँ और उन्हें गणेन्द्र नामवाला कहूँगा, हे अव्यये! [इस विषयमें] तुम क्या सोचती हो?॥ ४९-५०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भवानी हर्षितानना।
स्मयन्ती वरदं प्राह भवं भूतपतिं पतिम्॥ ५१

सर्वलोकाधिपत्यं च गणेशत्वं तथैव च।
दातुमर्हसि देवेश शैलादिस्तनयो मम॥ ५२

उनका यह वचन सुनकर हर्षयुक्त मुखवाली भवानीने वर प्रदान करनेवाले तथा भूतोंके स्वामी अपने पति शिवसे मुसकराते हुए इस प्रकार कहा—हे देवेश! शैलादि मेरा पुत्र है, अतः आप इसे सभी लोकोंका स्वामित्व और गणेशत्व प्रदान करनेकी कृपा कीजिये॥ ५१-५२॥

ततः स भगवान् शर्वः सर्वलोकेश्वरेश्वरः।
सस्मार गणपान् दिव्यान् देवदेवो वृषध्वजः॥ ५३

तत्पश्चात् सभी लोकेश्वरोंके भी ईश्वर, देवोंके देव, शर्व, भगवान् वृषध्वजने अपने दिव्य गणेश्वरोंका स्मरण किया॥ ५३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वरप्रादुर्भावनन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्रो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वरप्रादुर्भाव तथा नन्दिकेश्वराभिषेकमन्त्र' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा नन्दिकेश्वरको गणोंके अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित करना एवं सभी देवोंके द्वारा नन्दिकेश्वरका अभिषेक तथा शिवनाममन्त्रकी महिमा

शैलादिरुवाच

स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः।
सर्वे सहस्रहस्ताश्च सहस्रायुधपाणयः॥ १

त्रिनेत्राश्च महात्मानस्त्रिदशैरपि वन्दिताः।
कोटिकालाग्निसङ्काशा जटामुकुटधारिणः॥ २

दंष्ट्राकरालवदना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः।
कोटिकोटिगणैस्तुल्यैरात्मना च गणेश्वराः।
असंख्याता महात्मानस्तत्राजग्मुर्मुदा युताः॥ ३

शैलादि बोले—रुद्रके स्मरण करते ही गणेश्वर लोग उपस्थित हो गये। उन सभीकी हजार-हजार भुजाएँ थीं, उन्होंने हाथोंमें हजार अस्त्र धारण कर रखे थे, उनके तीन नेत्र थे, वे महान् गण देवताओंसे वन्दित हो रहे थे, वे करोड़ों कालाग्निके समान थे, वे जटामुकुट धारण किये हुए थे, दाढ़ोंके कारण वे विकराल मुखवाले थे, वे शाश्वत, शुद्ध तथा प्रबुद्ध थे, वे अपने ही समान करोड़ों-करोड़ों अनुचरोंसे युक्त थे—ऐसे असंख्य महात्मा गणेश्वर प्रसन्नताके साथ वहाँ आये॥ १—३॥

गायन्तश्च द्रवन्तश्च नृत्यन्तश्च महाबलाः।
मुखाडम्बरवाद्यानि वादयन्तस्तथैव च॥ ४

रथैर्नागैर्हयैश्चैव सिंहमर्कटवाहनाः।
विमानेषु तथारूढा हेमचित्रेषु वै गणाः॥ ५

भेरीमृदङ्गकाद्यैश्च पणवानकगोमुखैः।
वादित्रैर्विविधैश्चान्यैः पटहैरेकपुष्करैः॥ ६

भेरीमुरजसंनादैराडम्बरकडिण्डिमैः।
मर्दलैर्वेणुवीणाभिर्विविधैस्तालनिःस्वनैः॥ ७

दर्दुरैस्तलघातैश्च कच्छपैः पणवैरपि।
वाद्यमानैर्महायोगा आजग्मुर्देवसंसदम्॥ ८

ते गणेशा महासत्त्वाः सर्वदेवेश्वरेश्वराः।
प्रणम्य देवं देवीं च इदं वचनमब्रुवन्॥ ९

भगवन् देवदेवेश त्रियम्बक वृषध्वज।
किमर्थं च स्मृता देव आज्ञापय महाद्युते॥ १०

किं सागरान् शोषयामो यमं वा सह किङ्करैः।
हन्मो मृत्युसुतां मृत्युं पशुवद्धन्म पद्मजम्॥ ११

बद्ध्वेन्द्रं सह देवैश्च सह विष्णुं च वायुना।
आनयामः सुसङ्क्रुद्धा दैत्यान् वा सह दानवैः॥ १२

कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया।
कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये॥ १३

तांस्तथावादिनः सर्वान् गणेशान् सर्वसम्मतान्।
उवाच देवः सम्पूज्य कोटिकोटिशतान् प्रभुः॥ १४

शृणुध्वं यत्कृते यूयमिहाहूता जगद्धिताः।
श्रुत्वा च प्रयतात्मानः कुरुध्वं तदशङ्किताः॥ १५

नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो नः सर्वेषामीश्वरेश्वरः।
विप्रोऽयं नायकश्चैव सेनानीर्वः समृद्धिमान्॥ १६

तमिमं मम सन्देशाद्यूयं सर्वेऽपि सम्मताः।
सेनान्यमभिषिञ्चध्वं महायोगपतिं पतिम्॥ १७

एवमुक्ता भगवता गणपाः सर्व एव ते।
एवमस्त्विति सम्मन्त्र्य सम्भारानाहरंस्ततः॥ १८

वे महान् बलसे सम्पन्न गण गाते, दौड़ते, भागते, नाचते तथा अनेक मुखवाद्योंको बजाते हुए आये। वे रथों, हाथियों, घोड़ों, सिंहों और बन्दरोंपर सवार थे। कुछ गण स्वर्णचित्रित विमानोंपर भी आरूढ़ थे॥ ४-५॥

महायोगसे सम्पन्न वे गणेश्वर भेरी, मृदंग, पणव, आनक, गोमुख, पटह, एकपुष्कर, मुरज, आडम्बर, डिण्डिम, मर्दल, वेणु, वीणा, दर्दुर, तलघात, कच्छप, पणव एवं अन्य प्रकारके वाद्योंको बजाते हुए तथा विविध तालध्वनियाँ करते हुए भगवान् शिवकी सभामें आये॥ ६—८॥

महान् शक्तिसे युक्त तथा सभी देवेश्वरोंके ईश्वर उन गणेश्वरोंने महादेव एवं पार्वतीको प्रणाम करके यह वचन कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रियम्बक! हे वृषध्वज! आपने हमलोगोंका स्मरण किसलिये किया है? हे देव! हे महाद्युते! आदेश दीजिये॥ ९-१०॥

क्या हमलोग समुद्रोंको सोख लें? क्या यमको उनके सेवकोंसहित मार डालें अथवा मृत्युपुत्री (जरा) तथा मृत्युको मार डालें अथवा पद्मयोनि ब्रह्माका पशुकी भाँति वध कर दें। क्या अत्यन्त कुपित होकर हमलोग देवताओंसहित इन्द्रको, वायुसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित दैत्योंको बाँधकर यहाँ ले आयें? हमलोग आपकी आज्ञासे आज किसका घोर अनर्थ कर डालें? हे देव! सभी कामनाओंकी समृद्धिके लिये आज किसका उत्सव है?॥ ११—१३॥

भगवान् शंकरने वैसा कहनेवाले उन करोड़ों-करोड़ों सभी सर्वपूज्य गणेश्वरोंका सम्मान करके उनसे कहा—हे जगत्के हितकारको! सुनिये, जिसलिये मैंने तुमलोगोंको यहाँ बुलाया है, उसे सुन करके हे शुद्धात्माओ [गणेश्वरो]! निःशंक होकर कीजिये। यह नन्दी हमारा पुत्र है। यह सभीका ईश्वर है। यह समृद्धिशाली विप्र तुमलोगोंका नायक तथा सेनानी है। अतः मेरे आदेशसे तुम सभी लोग अपना स्वामी एवं सेनानी मानकर इस महायोगपतिका अभिषेक करो॥ १४—१७॥

भगवान् शिवके इस प्रकार कहनेपर वे सभी

तस्य सर्वाश्रयं दिव्यं जाम्बूनदमयं शुभम्।
आसनं मेरुसङ्काशं मनोहरमुपाहरन्॥ १९

नैकस्तम्भमयं चापि चामीकरवरप्रभम्।
मुक्तादामावलम्बं च मणिरत्नावभासितम्॥ २०

स्तम्भैश्च वैडूर्यमयैः किङ्किणीजालसंवृतम्।
चारुरत्नकसंयुक्तं मण्डपं विश्वतोमुखम्॥ २१

कृत्वा विन्यस्य तन्मध्ये तदासनवरं शुभम्।
तस्याग्रतः पादपीठं नीलवज्रावभासितम्॥ २२

चक्रुः पादप्रतिष्ठार्थं कलशौ चास्य पार्श्वगौ।
सम्पूर्णौ परमाम्भोभिररविन्दावृताननौ॥ २३

कलशानां सहस्रं तु सौवर्णं राजतं तथा।
ताम्रजं मृण्मयं चैव सर्वतीर्थाम्बुपूरितम्॥ २४

वासोयुगं तथा दिव्यं गन्धं दिव्यं तथैव च।
केयूरे कुण्डले चैव मुकुटं हारमेव च॥ २५

छत्रं शतशलाकं च बालव्यजनमेव च।
दत्तं महात्मना तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥ २६

शङ्खहाराङ्गगौरेण पृष्ठेनापि विराजितम्।
व्यजनं चन्द्रशुभ्रं च हेमदण्डं सुचामरम्॥ २७

ऐरावतः सुप्रतीको गजावेतौ सुपूजितौ।
मुकुटं काञ्चनं चैव निर्मितं विश्वकर्मणा॥ २८

कुण्डले चामले दिव्ये वज्रं चैव वरायुधम्।
जाम्बूनदमयं सूत्रं केयूरद्वयमेव च॥ २९

सम्भाराणि तथान्यानि विविधानि बहून्यपि।
समन्तान्निन्युरव्यग्रा गणपा देवसम्मताः॥ ३०

ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा।
मुनयो भगवान् ब्रह्मा नवब्रह्माण एव च॥ ३१

देवैश्च लोकाः सर्वे ते ततो जग्मुर्मुदा युताः।
तेष्वागतेषु सर्वेषु भगवान् परमेश्वरः॥ ३२

गणेश्वर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर आपसमें परामर्श करके सामग्रियाँ एकत्र करने लगे॥ १८॥

वे स्वर्णनिर्मित, दिव्य, सुन्दर, मेरुसदृश तथा मनोहर सिंहासन ले आये। उन्होंने अनेक स्तम्भोंवाले, उत्तम स्वर्णकी प्रभासे युक्त, लटकती हुई मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित, मणियों एवं रत्नोंसे जटित, वैदूर्यमणिके स्तम्भोंवाले, किंकिणियोंसे सुशोभित, सुन्दर रत्नोंसे समन्वित तथा सभी ओर मुखवाले एक मण्डपका निर्माण करके उसके मध्यमें उस सुन्दर आसनको स्थापितकर पादप्रतिष्ठाके लिये उसके आगे नीलवज्रसे जटित एक पादपीठ रखा। उसके दोनों ओर उन्होंने दो कलश रखे, जो सुगन्धित जलसे भरे हुए थे तथा उनके मुख कमलपुष्पोंसे ढँके हुए थे। सोने, चाँदी, ताँबे और मिट्टीके हजारों कलश वहाँ रखे थे, जो सभी तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण थे॥ १९—२४॥

महात्मा परमेष्ठी ब्रह्माने दिव्य वस्त्रयुगल, दिव्य गन्ध, केयूर, कुण्डल, मुकुट, हार, सौ शलाकाओं (तीलियों)-वाला छत्र और एक बालव्यजन प्रदान किया॥ २५-२६॥

शंख तथा मोतियोंकी मालाके समान गौरवर्णवाले दण्डसे सुशोभित और चन्द्रमाके समान शुभ्र व्यजन, स्वर्णका दण्ड (मूठ) लगा हुआ चामर, भलीभाँति पूजित ऐरावत तथा सुप्रतीक—ये दो हाथी, विश्वकर्माके द्वारा बनाया हुआ एक सोनेका मुकुट, दो स्वच्छ तथा दिव्य कुण्डल, श्रेष्ठ आयुध वज्र, सोनेका सूत्र तथा दो केयूर वहाँ रखे गये। देवताओंके द्वारा पूजित उन गणेश्वरोंने चारों ओर अनेक प्रकारकी अन्य आवश्यक सामग्रियोंको सावधान होकर वहाँ उपस्थित कर दिया॥ २७—३०॥

तदनन्तर इन्द्रसहित विष्णु आदि देवता, मुनिगण, भगवान् ब्रह्मा, नवब्रह्माण*, देवताओंसहित सभी लोकपाल प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये। उन सभीके वहाँ आ जानेपर भगवान् परमेश्वरने समस्त संस्कारविधि सम्पन्न करानेके

* मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ—ये नौ ऋषि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न होनेके कारण तथा ब्रह्मवादी और ब्रह्मात्मक होनेसे 'नवब्रह्माण' कहलाते हैं। (लिङ्गपु० पू० ७०। १८१—१८३)

सर्वकार्यविधिं कर्तुमादिदेश पितामहम्।
पितामहोऽपि भगवान् नियोगादेव तस्य तु॥ ३३

चकार सर्वं भगवानभिषेकं समाहितः।
अर्चयित्वा ततो ब्रह्मा स्वयमेवाभ्यषेचयत्॥ ३४

ततो विष्णुस्ततः शक्रो लोकपालास्तथैव च।
अभ्यषिञ्चन्त विधिवद् गणेन्द्रं शिवशासनात्॥ ३५

ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः।
स्तुतवत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः॥ ३६

शिरस्यञ्जलिमादाय तुष्टाव च समाहितः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च॥ ३७

ततो गणाधिपाः सर्वे ततो देवास्ततोऽसुराः।
एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैः सब्रह्मकैस्तदा॥ ३८

उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः।
मरुतां च सुता देवी सुयशाख्या बभूव या॥ ३९

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम्।
चामरे चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युता॥ ४०

सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया।
अलङ्कृता महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैः सुभूषणैः॥ ४१

लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा।
वृषेन्द्रश्च सितो नागः सिंहः सिंहध्वजस्तथा॥ ४२

रथश्च हेमच्छत्रं च चन्द्रबिम्बसमप्रभम्।
अद्यापि सदृशः कश्चिन्मया नास्ति विभुः क्वचित्॥ ४३

सान्वयं च गृहीत्वेशस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः।
आरुह्य वृषमीशानो मया देव्या गतः शिवः॥ ४४

तदा देवीं भवं दृष्ट्वा मया च प्रार्थयन् गणैः।
मुनिदेवर्षयः सिद्धा आज्ञां पाशुपतीं द्विजाः॥ ४५

अथाज्ञां प्रददौ तेषामर्हाणामाज्ञया विभोः।
नन्दिको नगजाभर्तुस्तेषां पाशुपतीं शुभाम्॥ ४६

लिये पितामह ब्रह्माको आदेश दिया॥ ३१-३२½॥

तब उनका आदेश पाते ही भगवान् ब्रह्माने भी ध्यानपूर्वक सम्पूर्ण अभिषेक-कर्म सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने पूजन करके स्वयं उनका अभिषेक किया। इसके बाद शिवके आदेशसे विष्णुने, फिर इन्द्रने और लोकपालोंने गणेन्द्रका विधिपूर्वक अभिषेक किया॥ ३३—३५॥

तदनन्तर ऋषियों तथा पितामह आदिने उनकी स्तुति की। तब उन सभीके स्तुति कर लेनेपर समस्त जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्र-चित्त होकर उनकी स्तुति की और हाथ जोड़े हुए झुककर जय-जयकार किया। तत्पश्चात् सभी गणेश्वरों, देवताओं और असुरोंने भी क्रमसे सम्पूर्ण कृत्य किया॥ ३६-३७½॥

इस प्रकार ब्रह्मासहित सभी देवताओंके द्वारा उनका अभिषेक तथा स्तवन हो जानेके बाद परमेष्ठीकी आज्ञासे उन्होंने विवाह किया। सुयशा नामक जो मरुतोंकी पुत्री थी, वह उनकी भार्या हुई। उस सुयशाको चन्द्रमाके समान प्रभायुक्त और विशेष शोभासम्पन्न एक छत्र भेंट किया गया। हाथोंमें चामर लिये हुए स्त्रियोंसे युक्त उस सुयशाको दो चामर भी प्रदान किये गये। मेरे साथ उसने भी एक अत्यन्त सुन्दर सिंहासन ग्रहण किया। भगवती महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर आभूषणोंसे उसे अलंकृत किया॥ ३८—४१॥

उसे देवीके गलेका अति सुन्दर हार भी प्राप्त हुआ। वृषेन्द्र, श्वेत हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ और चन्द्रमण्डलके समान प्रभावाला स्वर्णछत्र भी भेंट किया गया। अब मेरे समान कहीं भी कोई प्रभु नहीं था॥ ४२-४३॥

मुझको परिवारसहित लेकर सम्बन्धियों तथा बान्धवोंको भी साथ लेकर देवीके साथ भगवान् महेश्वर वृषभपर आरूढ़ हो चल पड़े॥ ४४॥

तब मेरे तथा गणोंके साथ शिव एवं पार्वतीको देखकर मुनियों, देवर्षियों, सिद्धों और द्विजोंने शिवकी आज्ञाहेतु प्रार्थना की॥ ४५॥

तत्पश्चात् हिमालयकी पुत्रीके पति प्रभु शिवकी

तस्माद्धि मुनयो लब्ध्वा तदाज्ञां मुनिपुङ्गवात्।
भवभक्तास्तदा चासंस्तस्मादेवं समर्चयेत्॥ ४७

आज्ञासे नन्दीने उन पूजनीय लोगोंके लिये शुभ पाशुपत आज्ञा प्रदान की॥ ४६॥

तब मुनिश्रेष्ठ (नन्दी)-से उन शिवकी आज्ञा (दीक्षा) पाकर वे मुनिलोग शिवभक्त हो गये। अतः सभीको शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

नमस्कारविहीनस्तु नाम उद्गिरयेद्भवे।
ब्रह्मघ्नदशसंतुल्यं तस्य पापं गरीयसम्॥ ४८

तस्मात्सर्वप्रकारेण नमस्कारादिमुच्चरेत्।
आदौ कुर्यान्नमस्कारं तदन्ते शिवतां व्रजेत्॥ ४९

यदि कोई मनुष्य बिना नमस्कारके ही शिवके नामका उच्चारण करता है, तो उसे दस ब्रह्महत्याके समान घोर पाप लगता है। अतः सब प्रकारसे नामके आदिमें नमस्कार (नमः)-का उच्चारण करना चाहिये। आदिमें नमः अवश्य लगाना चाहिये, ऐसा करनेवाला शिवत्वको प्राप्त होता है*॥ ४८-४९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नन्दिकेश्वराभिषेको नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नन्दिकेश्वराभिषेक' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भगवान् रुद्रके विराट् स्वरूप तथा सात पाताललोकोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सुव्यक्तमखिलं कथितं शङ्करस्य तु।
सर्वात्मभावं रुद्रस्य स्वरूपं वक्तुमर्हसि॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने शंकरजीके विषयमें सब कुछ स्पष्ट रूपसे कह दिया, अब आप रुद्रके सर्वात्मभाव तथा स्वरूपको बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपस्तथा।
सत्यलोकश्च पातालं नरकार्णवकोटयः॥ २

तारकाग्रहसोमार्का ध्रुवः सप्तर्षयस्तथा।
वैमानिकास्तथान्ये च तिष्ठन्त्यस्य प्रसादतः॥ ३

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य—ये लोक, पाताल, करोड़ों नरक-सागर, तारागण, ग्रहगण, चन्द्र, सूर्य, ध्रुव, सप्तर्षिगण, वैमानिक देवतागण तथा अन्य सभी उन्हीं शिवकी कृपासे प्रतिष्ठित हैं॥ २-३॥

अनेन निर्मितास्त्वेवं तदात्मानो द्विजर्षभाः।
समष्टिरूपः सर्वात्मा संस्थितः सर्वदा शिवः॥ ४

इन्हींके द्वारा ये सब बनाये गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! ये सब उन्हींके आत्मस्वरूप हैं। वे सर्वात्मा शिव सभीमें सर्वदा समष्टिरूपसे स्थित हैं॥ ४॥

सर्वात्मानं महात्मानं महादेवं महेश्वरम्।
न विजानन्ति सम्मूढा मायया तस्य मोहिताः॥ ५

तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयम्।
तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये जगतां निर्णयं शुभम्॥ ६

उन्हींकी मायासे मोहित होकर अज्ञानी लोग सर्वात्मरूप, महात्मा, महादेव तथा महेश्वरको नहीं जानते हैं। उन भगवान् रुद्रका शरीर ही तीनों लोक है, अतः उन्हें प्रणाम करके मैं जगत्के शुभ विस्तारका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

---

* शिवमन्त्रकी दीक्षा प्राप्तकर विधिपूर्वक जप करनेके लिये यह वचन है। नामजपकी महिमाके अनुसार श्रद्धापूर्वक नामजप भी किया जा सकता है।

पुरा वः कथितं सर्वं मयाण्डस्य यथा कृतिः।
भुवनानां स्वरूपं च ब्रह्माण्डे कथयाम्यहम्॥ ७

पृथिवी चान्तरिक्षं च स्वर्महर्जन एव च।
तपः सत्यं च सप्तैते लोकास्त्वण्डोद्भवाः शुभाः॥ ८

अधस्तादत्र चैतेषां द्विजाः सप्त तलानि तु।
महातलादयस्तेषां अधस्तान्नरकाः क्रमात्॥ ९

पहले जैसा मैंने आपलोगोंसे कहा है—अण्डके आकार और ब्रह्माण्ड तथा भुवनोंके स्वरूपको बता रहा हूँ। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य—ये सात शुभ लोक अण्डसे प्रादुर्भूत हुए हैं। हे ब्राह्मणो! उनके नीचे महातल आदि सात तल हैं। उनके भी नीचे क्रमसे नरक स्थित हैं॥ ७—९॥

महातलं हेमतलं सर्वरत्नोपशोभितम्।
प्रासादैश्च विचित्रैश्च भवस्यायतनैस्तथा॥ १०

अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता।
नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना॥ ११

महातल स्वर्णका बना हुआ है और यह सभी रत्नोंसे सुशोभित है। यह अद्भुत प्रासादों तथा शिवके मन्दिरोंसे युक्त है। यह अनन्त (शेषनाग), बुद्धिमान् मुचुकुन्द और पाताल तथा स्वर्गवासी राजा बलिसे युक्त है॥ १०-११॥

शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हि तलातलम्।
पीतं सुतलमित्युक्तं वितलं विद्रुमप्रभम्॥ १२

सितं हि अतलं तच्च तलं यच्च सितेतरम्।
क्ष्मायास्तु यावद्विस्तारो ह्यधस्तेषां च सुव्रताः॥ १३

तलानां चैव सर्वेषां तावत्संख्या समाहिता।
सहस्रयोजनं व्योम दशसाहस्रमेव च॥ १४

लक्षं सप्तसहस्रं हि तलानां सघनस्य तु।
व्योम्नः प्रमाणं मूलं तु त्रिंशत्साहस्रकेण तु॥ १५

हे विप्रो! रसातल चट्टानोंसे युक्त है, तलातल बालुकामय है, सुतल पीले वर्णका कहा गया है और वितल विद्रुम (मूँगे)-की प्रभावाला है। अतल श्वेतवर्णका है और तल कालेवर्णका है। हे सुव्रतो! उन नीचेके तलोंका विस्तार पृथ्वीके समान है। सभी तलोंकी जो समाहित संख्या है, उन सभीके अन्तर्वर्ती आकाश ग्यारह हजार योजनके विस्तारवाले हैं। सभी तलोंके मेघाच्छादित अन्तरिक्षभागको तीस हजार योजनवाला माना गया है तथा इन सभी तलोंका भौगोलिक विस्तार एक लाख सात हजार योजन है॥ १२—१५॥

सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्।
रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम्॥ १६

विरोचनहिरण्याक्षनरकाद्यैश्च सेवितम्।
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्॥ १७

हे मुनिश्रेष्ठो! शुभ रसातल सुवर्ण, वासुकि तथा अन्य नागोंसे युक्त कहा गया है। सब प्रकारकी शोभासे समन्वित तलातल विरोचन, हिरण्याक्ष, नरक आदिसे सेवित है॥ १६-१७॥

वैनावकादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः।
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलं च तथापरैः॥ १८

वितलं दानवाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा।
महान्तकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च॥ १९

सुतल वैनावक आदि देवों तथा कालनेमि आदि अन्य प्रमुख दैत्योंसे परिपूरित है। वितल तारकाग्नि आदि प्रधान दानवों, महान्तक आदि नागों तथा असुर प्रह्लादसे समन्वित है॥ १८-१९॥

अतलं चात्र विख्यातं कम्बलाश्वनिषेवितम्।
महाकुम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता॥ २०

शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः।
तथान्यैर्विविधैर्वीरैस्तलं चैव सुशोभितम्॥ २१

अतल कम्बल तथा अश्वतर, वीर महाकुम्भ और बुद्धिमान् हयग्रीवके अधिकारमें कहा गया है। इसी प्रकार शोभासम्पन्न तल शंकुकर्ण, नमुचि आदि विविध वीरोंसे सुशोभित है॥ २०-२१॥

तलेषु तेषु सर्वेषु चाम्बया परमेश्वरः।
स्कन्देन नन्दिना सार्धं गणपैः सर्वतो वृतः॥ २२

तलानां चैव सर्वेषामूर्ध्वतः सप्त सत्तमाः।
क्ष्मातलानि धरा चापि सप्तधा कथयामि वः॥ २३

उन सभी तलोंमें परमेश्वर शिव अम्बा (पार्वती), स्कन्द (कार्तिकेय), नन्दी तथा अन्य गणेश्वरोंके द्वारा सभी ओरसे घिरे हुए विद्यमान रहते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! इन सभी तलोंके ऊपर सात पृथ्वीतल हैं, पृथ्वी भी सात खण्डोंमें विभक्त है; मैं आपलोगोंसे इसका वर्णन कर रहा हूँ॥ २२-२३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पातालवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पातालवर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

भुवनसन्निवेशमें सात द्वीपों तथा सात समुद्रोंका वर्णन एवं सर्वत्र भगवान् शिवकी व्यापकता, स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रियव्रतादि राजवंशोंका वर्णन, जम्बूद्वीप, कुशद्वीप तथा क्रौंचद्वीपके राजाओंका वर्णन

सूत उवाच

सप्तद्वीपा तथा पृथ्वी नदीपर्वतसङ्कुला।
समुद्रैः सप्तभिश्चैव सर्वतः समलङ्कृता॥ १

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] पृथ्वी सात द्वीपोंसे युक्त है, नदियों तथा पर्वतोंसे भरी पड़ी है और सात समुद्रोंसे सभी ओरसे भलीभाँति अलंकृत है॥ १॥

जम्बूः प्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चस्तथैव च।
शाकः पुष्करनामा च द्वीपास्त्वभ्यन्तरे क्रमात्॥ २

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर नामवाले—ये [सात] द्वीप क्रमसे इसके भीतर अवस्थित हैं॥ २॥

सप्तद्वीपेषु सर्वेषु साम्बः सर्वगणैर्वृतः।
नानावेषधरो भूत्वा सान्निध्यं कुरुते हरः॥ ३

इन समस्त सातों द्वीपोंमें उमासहित भगवान् शिव सभी गणोंसे घिरे हुए तथा अनेक प्रकारके वेष धारण करके निवास करते हैं॥ ३॥

क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदधिः।
दध्यर्णवश्च क्षीरोदः स्वादूदश्चाप्यनुक्रमात्॥ ४

समुद्रेष्विह सर्वेषु सर्वदा सगणः शिवः।
जलरूपी भवः श्रीमान् क्रीडते चोर्मिबाहुभिः॥ ५

क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोदधि, दध्यर्णव, क्षीरोद, स्वादूद—ये [सात समुद्र] क्रमसे हैं। इन सभी समुद्रोंमें जलरूपी श्रीसम्पन्न भगवान् शिव अपने गणोंके साथ लहररूपी भुजाओंसे क्रीड़ा करते हैं॥ ४-५॥

क्षीरार्णवामृतमिव सदा क्षीरार्णवे हरिः।
शेते शिवज्ञानधिया साक्षाद्वै योगनिद्रया॥ ६

यदा प्रबुद्धो भगवान् प्रबुद्धमखिलं जगत्।
यदा सुप्तस्तदा सुप्तं तन्मयं च चराचरम्॥ ७

क्षीरसागर अमृतके समान है। भगवान् विष्णु उस क्षीरसागरमें शिवज्ञानका चिन्तन करते हुए साक्षात् योगनिद्राके साथ सदा शयन करते हैं। जब भगवान् जागते हैं, तब सम्पूर्ण जगत् जागता है और जब वे सोते हैं, तब यह चराचर जगत् उनमें विलीन होकर सोता है॥ ६-७॥

तेनैव सृष्टमखिलं धृतं रक्षितमेव च।
संहृतं देवदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ८

परमेष्ठी देवदेव शिवकी कृपासे उन्हीं विष्णुके द्वारा सम्पूर्ण जगत्का सृजन, धारण, रक्षण तथा संहार किया जाता है॥ ८॥

सुषेणा इति विख्याता यजन्ते पुरुषर्षभम्।
अनिरुद्धं मुनिश्रेष्ठाः शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ९

हे मुनिश्रेष्ठो! सुषेणा—इस नामसे प्रसिद्ध लोग

ये चानिरुद्धं पुरुषं ध्यायन्त्यात्मविदां वराः।
नारायणसमाः सर्वे सर्वसम्पत्समन्विताः॥ १०
सनन्दनश्च भगवान् सनकश्च सनातनः।
बालखिल्याश्च सिद्धाश्च मित्रावरुणकौ तथा॥ ११
यजन्ति सततं तत्र विश्वस्य प्रभवं हरिम्।
सप्तद्वीपेषु तिष्ठन्ति नानाशृङ्गाः महोदयाः॥ १२
आसमुद्रायताः केचिद् गिरयो गह्वरैस्तथा।
धरायाः पतयश्चासन् बहवः कालगौरवात्॥ १३
सामर्थ्यात्परमेशानाः क्रौञ्चारेर्जनकात्प्रभोः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥ १४
प्रवक्ष्यामि धरेशान् वो वक्ष्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु च॥ १५
तुल्याभिमानिनश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः।
स्वायम्भुवस्य च मनोः पौत्रास्त्वासन्महाबलाः॥ १६
प्रियव्रतात्मजा वीरास्ते दशेह प्रकीर्तिताः।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः॥ १७
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तान् सप्त सप्तसु पार्थिवान्॥ १८
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे आग्नीध्रं सुमहाबलम्।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः॥ १९
शाल्मलेश्च वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्नृपः॥ २०
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः॥ २१
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि सुव्रताः।
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत्॥ २२
धातकी चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ।
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥ २३
नाम्ना तु धातकेश्चैव धातकीखण्डमुच्यते।
हव्योऽप्यजनयत्पुत्राञ्छाकद्वीपेश्वरः प्रभुः॥ २४

शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ [भगवान्] अनिरुद्धका पूजन करते हैं॥ ९॥

हे आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ [मुनियो!]! जो लोग अनिरुद्ध पुरुषका ध्यान करते हैं, वे सब नारायणतुल्य हैं और सभी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न रहते हैं। भगवान् सनन्दन, सनक, सनातन, बालखिल्यगण, सिद्धगण एवं मित्रावरुण वहाँ विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले प्रभु श्रीहरिकी सदा पूजा करते हैं॥ १०-११½॥

सातों द्वीपोंमें अनेक शिखरोंवाले ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं। कुछ पर्वत गुफाओंसहित समुद्रतक फैले हुए हैं। काल-गौरवसे वहाँ बहुत-से भूपति (राजा) हुए, जो क्रौंचके शत्रु कार्तिकेयके पिता प्रभु शिवकी कृपासे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न थे॥ १२-१३½॥

[हे ऋषियो!] अब मैं स्वायम्भुव मन्वन्तरसे प्रारम्भ करके भूत तथा भविष्यकालके सभी मन्वन्तरोंके राजाओंका वर्णन आपलोगोंसे करूँगा। भूत एवं भविष्यकालके सभी मन्वन्तरोंमें सभी राजा तुल्य अभिमानवाले तथा तुल्य प्रयोजनवाले थे। स्वायम्भुव मनुके [सभी] पौत्र महाबली थे। प्रियव्रतके दस वीर पुत्र थे। वे इस प्रकार कहे गये हैं—आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र॥ १४—१७½॥

प्रियव्रतने उनमेंसे सात पुत्रोंको सात द्वीपोंमें राजाके रूपमें अभिषिक्त कर दिया। उन्होंने महान् बलशाली आग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा बनाया। उनके द्वारा मेधातिथि प्लक्षद्वीपके राजा बनाये गये। उन राजा प्रियव्रतने वपुष्मान्को शाल्मलिद्वीपके राजाके रूपमें अभिषिक्त किया और ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपका राजा बनाया। प्रियव्रतने द्युतिमान्को क्रौंचद्वीपका राजा बनाया, हव्यको शाकद्वीपका राजा बनाया और हे सुव्रतो! सवनको पुष्करद्वीपका राजा बनाया॥ १८—२१½॥

पुष्करद्वीपमें सवनके यहाँ महावीत तथा धातकी नामक पुत्र हुए। ये दोनों पुत्र पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ हुए। उस महात्मा महावीतके नामसे महावीतवर्ष कहा गया है और धातकीके नामसे धातकीखण्ड कहा गया है। शाकद्वीपके

जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीचकम्।
कुसुमोत्तरमोदाकी सप्तमस्तु महाद्रुमः॥ २५
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते।
कुमारस्य तु कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥ २६
सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्त्यते।
मणीचकं चतुर्थं तु माणीचकमिहोच्यते॥ २७
कुसुमोत्तरस्य वै वर्षं पञ्चमं कुसुमोत्तरम्।
मोदकं चापि मोदाकेर्वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम्॥ २८
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तन्महाद्रुमम्।
तेषां तु नामभिस्तानि सप्त वर्षाणि तत्र वै॥ २९

शक्तिशाली राजा हव्यने भी जलद, कुमार, सुकुमार, मणिचक्र, कुसुमोत्तर, मोदाकी और सातवें महाद्रुम—इन पुत्रोंको उत्पन्न किया। जलदके नामसे जलद नामक प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमारके नामसे कौमार नामक दूसरा वर्ष कहा गया है। सुकुमारके नामसे सुकुमार नामक तीसरा वर्ष कहा जाता है। मणीचकके नामसे माणीचक नामक चौथा वर्ष कहा जाता है। कुसुमोत्तरके नामसे कुसुमोत्तर नामक पाँचवाँ वर्ष एवं मोदाकीके नामसे मोदक नामक छठा वर्ष कहा गया है। महाद्रुमके नामसे सातवाँ महाद्रुम नामक वर्ष कहा गया है। इस प्रकार उनके नामोंसे वे सात वर्ष हैं॥ २२—२९॥

क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै।
कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः॥ ३०
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः॥ ३१

क्रौंचद्वीपके राजा द्युतिमान्‌के भी कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकार, मुनि और दुन्दुभि—ये पुत्र उत्पन्न हुए। जो द्युतिमान्‌के पुत्र थे, उन्हींके अपने-अपने नामोंसे क्रौंचद्वीपमें स्थित शुभ देश प्रसिद्ध हुए॥ ३०-३१॥

कुशलदेशः कुशलो मनुगस्य मनोऽनुगः।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरः पीवरस्य च॥ ३२
अन्धकारस्य कथितो देशो नाम्नान्धकारकः।
मुनेर्देशो मुनिः प्रोक्तो दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः॥ ३३
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपेषु भास्वराः।

कुशलके देशको कुशल, मनुगके देशको मनोनुग, उष्णके देशको उष्ण और पीवरके देशको पीवर कहा गया है। अन्धकारके देशको उनके नामपर अन्धकार कहा गया है। मुनिके देशको मुनि कहा गया है और दुन्दुभिके देशको दुन्दुभि कहा गया है। क्रौंचद्वीपमें ये सात प्रकाशमान जनपद (देश) हैं॥ ३२-३३$^{1}/_{2}$॥

ज्योतिष्मन्तः कुशद्वीपे सप्त चासन्महौजसः॥ ३४
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लवणो धृतिः।
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः॥ ३५
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्।
तृतीयं द्वैरथं चैव चतुर्थं लवणं स्मृतम्॥ ३६
पञ्चमं धृतिमत्षष्ठं प्रभाकरमनुत्तमम्।
सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम्॥ ३७

कुशद्वीपके राजा ज्योतिष्मान्‌के सात महापराक्रमी पुत्र हुए। वे उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथ, लवण, धृति, छठें प्रभाकर और सातवें कपिल कहे गये हैं। [उद्भिदके नामसे] पहला वर्ष उद्भिद, [वेणुमान्‌के नामसे] दूसरा वर्ष वेणुमण्डल, [द्वैरथके नामसे] तीसरा वर्ष द्वैरथ और [लवणके नामसे] चौथा वर्ष लवण कहा गया है। इसी प्रकार [धृतिके नामसे] पाँचवाँ वर्ष धृति, [प्रभाकरके नामसे] छठा उत्तम वर्ष प्रभाकर और कपिलके नामसे सातवाँ वर्ष कपिल कहा गया है॥ ३४—३७॥

शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते वै वपुष्मतः।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा॥ ३८
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा।
श्वेतस्य देशः श्वेतस्तु हरितस्य च हारितः॥ ३९

शाल्मलिद्वीपके राजा वपुष्मान्‌के भी सात पुत्र हुए। वे [पृथक्-पृथक् देशोंके] राजा बने। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ सुप्रभ—ये पुत्रोंके नाम हैं। श्वेतके देशको श्वेत, हरितके देशको

जीमूतस्य च जीमूतो रोहितस्य च रोहितः।
वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्य च मानसः॥ ४०
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्त वै देशलाञ्छकाः।
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम्॥ ४१
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वराः नृपाः।
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै॥ ४२
तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा॥ ४३
तानि तेषां तु नामानि सप्तवर्षाणि भागशः।
निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ४४
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपनिवासिभिः।
वर्णाश्रमाचारयुताः प्रजास्तत्र निवेशिताः॥ ४५
प्लक्षद्वीपादिवर्षेषु शाकद्वीपान्तिकेषु वै।
ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः॥ ४६
सुखमायुः स्वरूपं च बलं धर्मो द्विजोत्तमाः।
पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारणं स्मृतम्॥ ४७
रुद्रार्चनरता नित्यं महेश्वरपरायणाः।
अन्ये च पुष्करद्वीपे प्रजाताश्च प्रजेश्वराः॥ ४८
प्रजापतेश्च रुद्रस्य भावामृतसुखोत्कटाः॥ ४९

हारित, जीमूतके देशको जीमूत, रोहितके देशको रोहित, वैद्युतके देशको वैद्युत, मानसके देशको मानस और सुप्रभके देशको सुप्रभ कहा गया है। इस प्रकार राजाओंके नामसे सात देश हैं॥ ३८—४०½॥

अब मैं जम्बूद्वीपके बाहर स्थित प्लक्षद्वीपका वर्णन करूँगा। प्लक्षद्वीपके राजा मेधातिथिके सात पुत्र थे, वे सब प्लक्षद्वीपमें [अलग-अलग देशोंके] शासक नरेश हुए। उनमें शान्तभय ज्येष्ठ थे। उस द्वीपमें सात देश हैं। उस शान्तभयके बाद शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव—ये अन्य पुत्रोंके नाम थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें उनके नामोंसे द्वीपके भागानुसार सात वर्ष (देश) बसाये गये॥ ४१—४४॥

मेधातिथिके प्लक्षद्वीपनिवासी उन पुत्रोंद्वारा वर्णाश्रम-धर्मसे सम्पन्न प्रजाएँ वहाँ बसायी गयीं। प्लक्षद्वीप तथा शाकद्वीप आदि पाँचों द्वीपोंमें वर्ण एवं आश्रमके धर्मोंका सम्यक् पालन होता था। हे श्रेष्ठ द्विजो! इन पाँचों द्वीपोंमें सुख, आयु, स्वरूप, बल तथा धर्म सबके लिये समान बताया गया है। सभी लोग सदा रुद्रके अर्चनमें लीन रहते हैं तथा महेश्वरमें भक्ति रखते हैं। पुष्कर-द्वीपमें अन्य जो प्रजाएँ एवं राजा हैं, वे सब प्रजापालक रुद्रके श्रद्धारूपी अमृतपानके सुखकी प्रबल इच्छा रखते हैं॥ ४५—४९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे द्वीपद्वीपेश्वरकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भुवनकोशमें द्वीपद्वीपेश्वरकथन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

जम्बूद्वीपके अधिपति प्रियव्रतके पुत्र महाराज आग्नीध्रका वंशवर्णन तथा आग्नीध्रके शिवभक्त नौ पुत्रोंका अजनाभवर्ष (भारतवर्ष), किम्पुरुषवर्ष आदि नौ वर्षों (देशों)-का स्वामी बनना

सूत उवाच

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं काम्यपुत्रं महाबलम्।
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद्वै जम्बूद्वीपेश्वरं नृपः॥ १
सोऽतीव भवभक्तश्च तपस्वी तरुणः सदा।
भवार्चनरतः श्रीमान् गोमान् धीमान् द्विजर्षभाः॥ २

सूतजी बोले—राजा प्रियव्रतने अपने ज्येष्ठ उत्तराधिकारी महाबली प्रिय पुत्र आग्नीध्रको जम्बूद्वीपके राजाके रूपमें अभिषिक्त किया॥ १॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वह महान् शिवभक्त, तपस्वी, तरुण, सदा शिवपूजनमें रत रहनेवाला, ऐश्वर्यसम्पन्न,

तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव।
सर्वे माहेश्वराश्चैव महादेवपरायणाः॥ ३
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः।
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थो वै त्विलावृतः॥ ४
रम्यस्तु पञ्चमस्तत्र हिरण्मान् षष्ठ उच्यते।
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वस्त्वष्टमः स्मृतः॥ ५
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत।
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हेमाख्यं तु पिता ददौ॥ ६
हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः।
नैषधं यत्स्मृतं वर्षं हरये तत्पिता ददौ॥ ७
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यमः।
नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता॥ ८
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात्पित्रा दत्तं हिरण्मते।
यदुत्तरं शृङ्गवर्षं पिता तत्कुरवे ददौ॥ ९
वर्षं माल्यवतं चापि भद्राश्वस्य न्यवेदयत्।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥ १०
इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागशः।
आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रांस्तानभिषिच्य वै॥ ११
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः।
तपसा भावितश्चैव स्वाध्यायनिरतस्त्वभूत्॥ १२
स्वाध्यायनिरतः पश्चाच्छिवध्यानरतस्त्वभूत्।
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि च॥ १३
तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः।
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च॥ १४
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः।
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वतः॥ १५
रुद्रक्षेत्रे मृताश्चैव जङ्गमाः स्थावरास्तथा।
भक्ताः प्रासङ्गिकाश्चापि तेषु क्षेत्रेषु यान्ति ते॥ १६
तेषां हिताय रुद्रेण चाष्टक्षेत्रं विनिर्मितम्।
तत्र तेषां महादेवः सान्निध्यं कुरुते सदा॥ १७

अनेक गायोंका स्वामी तथा बुद्धिमान् था॥ २॥

उसके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे सभी शिवभक्त तथा शिवपरायण थे॥ ३॥

उनमें ज्येष्ठ पुत्र नाभि नामसे प्रसिद्ध था। उसके छोटे भाईका नाम किम्पुरुष था। तीसरा पुत्र हरिवर्ष तथा चौथा पुत्र इलावृत था। रम्य पाँचवाँ पुत्र था। हिरण्मान् छठा पुत्र कहा जाता है। कुरु उनमें सातवाँ था और भद्राश्व आठवाँ पुत्र कहा गया है। नौवाँ केतुमाल था। अब उनके देशोंके विषयमें सुनिये॥ ४-५$^{1}/_{2}$॥

पिताने [ज्येष्ठ पुत्र] नाभिको दक्षिणमें स्थित हेम नामक वर्ष (देश) प्रदान किया। उन्होंने हेमकूट नामक जो वर्ष था, उसे किम्पुरुषको दिया। नैषध नामक जो वर्ष कहा गया है, उसे पिताने हरिको दे दिया॥ ६-७॥

पिताने मेरु पर्वतसे आवृत मध्य देश इलावृतको दिया और नीलाचल नामक वर्ष रम्यको दिया। पिताने हिरण्मान्को उत्तरमें स्थित श्वेत नामक वर्ष दिया और उत्तरमें जो शृंगवर्ष है, उसे उन्होंने कुरु नामक पुत्रको दिया। इसी प्रकार उन्होंने भद्राश्वको माल्यवान्वर्ष दिया और केतुमालको गन्धमादनवर्ष दिया॥ ८—१०॥

विभागके अनुसार ये नौ महान् वर्ष हैं। धर्मात्मा राजा आग्नीध्र उन वर्षोंमें अपने उन पुत्रोंको [राजपदपर] क्रमानुसार अभिषिक्त करके तपस्यामें रत हो गये। तपसे अपनेको शुद्ध करनेके अनन्तर वे स्वाध्यायमें संलग्न हो गये और स्वाध्यायमें रत रहनेवाले वे बादमें शिवके ध्यानमें निमग्न हो गये॥ ११-१२$^{1}/_{2}$॥

किम्पुरुष आदि जो आठ शुभ वर्ष थे, उनमें स्वभावतः बिना प्रयत्नके ही सुखमय सिद्धि थी। उनमें [किसी प्रकारका] विपरीत भाव नहीं था और [प्रजाओंमें] बुढ़ापे तथा मृत्युका भय नहीं था। उनमें न धर्म था न अधर्म और उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये भाव नहीं थे। उन आठों क्षेत्रोंमें हर प्रकारसे युगकी अवस्था नहीं थी॥ १३—१५॥

रुद्रक्षेत्रमें जो भी स्थावर, जंगम, भक्त अथवा अस्थायी आगन्तुक प्राणी मृत होते हैं, वे उन्हीं क्षेत्रोंमें जाते हैं। रुद्रने उनके कल्याणके लिये ही आठों क्षेत्रोंका निर्माण किया है। वहाँपर महादेव सदा उनका सान्निध्य

दृष्ट्वा हृदि महादेवमष्टक्षेत्रनिवासिनः।
सुखिनः सर्वदा तेषां स एवेह परा गतिः॥ १८

करते हैं॥ १६-१७॥

आठों क्षेत्रोंके निवासी [अपने] हृदयमें महादेवको देखकर सदा सुखी रहते हैं। वे [महादेव] ही उनकी परम गति हैं॥ १८॥

नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केऽस्मिन्निबोधत।
नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महामतिः॥ १९

ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम्।
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥ २०

अब मैं हिमसे चिह्नित इस [हिमालय]-में विद्यमान नाभिके वंशका वर्णन करूँगा, आपलोग सुनें। महाबुद्धिमान् नाभिने मेरुदेवीसे राजाओंमें श्रेष्ठ तथा सभी राजाओंसे पूजित ऋषभ नामक पुत्रको उत्पन्न किया। ऋषभसे पराक्रमी भरत उत्पन्न हुए, जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे॥ १९-२०॥

सोऽभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः।
ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान्॥ २१

सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरम्।
नग्नो जटी निराहारो चीरी ध्वान्तगतो हि सः॥ २२

निराशस्त्यक्तसन्देहः शैवमाप परं पदम्।

उन पुत्रवत्सल ऋषभने भरतका राज्याभिषेक करके ज्ञान-वैराग्यका आश्रय लेकर सर्परूप इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके परमात्मा ईश्वरको पूर्णरूपसे अपनेमें स्थापितकर [स्वयं] दिगम्बर, जटाधारी, वल्कलधारी तथा निराहार होकर वनमें प्रवेश किया। उन्होंने [समस्त] आशाओंसे रहित तथा सन्देहमुक्त होकर शिवका परम पद प्राप्त किया॥ २१-२२ १/२॥

हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्॥ २३

तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।

उन्होंने हिमालय पर्वतके दक्षिणमें स्थित वर्ष भरतको प्रदान किया था, इसीलिये विद्वान् लोग उनके नामसे उसे भारतवर्ष कहते हैं॥ २३ १/२॥

भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्मिकः॥ २४

बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः सन्यवेशयत्।
पुत्रसङ्क्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः॥ २५

भरतके सुमति नामक विद्वान् तथा धार्मिक पुत्र हुए। भरतने वह राज्य उन्हें सौंप दिया। पुत्रको राज्य प्रदान करके वे राजा [भरत] वनमें प्रविष्ट हुए॥ २४-२५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भरतवर्षकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भरतवर्षकथन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भूमध्यमें स्थित मेरु (सुमेरु) पर्वत और इन्द्र आदि लोकपालोंकी पुरियोंका वर्णन

सूत उवाच

अस्य द्वीपस्य मध्ये तु मेरुर्नाम महागिरिः।
नानारत्नमयैः शृङ्गैः स्थितः स्थितिमतां वरः॥ १

सूतजी बोले—इस द्वीपके मध्यमें मेरु नामक महान् पर्वत है। पर्वतोंमें श्रेष्ठ यह अनेक प्रकारके रत्नोंसे पूर्ण शिखरोंसे युक्त होकर स्थित है॥ १॥

चतुराशीतिसाहस्रमुत्सेधेन प्रकीर्तितः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु॥ २

यह चौरासी हजार योजन ऊँचाईवाला कहा गया है। यह सोलह हजार योजन पृथ्वीके नीचे प्रविष्ट है और सोलह हजार योजन ही फैला हुआ है।

शराववत्संस्थितत्वाद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः।
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽनुमण्डलः॥ ३

हैमीकृतो महेशस्य शुभाङ्गस्पर्शनेन च।
धत्तूरपुष्पसङ्काशः सर्वदेवनिकेतनः॥ ४

क्रीडाभूमिश्च देवानामनेकाश्चर्यसंयुतः।
लक्षयोजन आयामस्तस्यैवं तु महागिरेः॥ ५

ततः षोडशसाहस्त्रं योजनानि क्षितेरधः।
शेषञ्चोपरि विप्रेन्द्रा धरायास्तस्य शृङ्गिणः॥ ६

मूलायामप्रमाणं तु विस्तारान्मूलतो गिरेः।
ऊचुर्विस्तारमस्यैव द्विगुणं मूलतो गिरेः॥ ७

पूर्वतः पद्मरागाभो दक्षिणे हेमसन्निभः।
पश्चिमे नीलसङ्काश उत्तरे विद्रुमप्रभः॥ ८

अमरावती पूर्वभागे नानाप्रासादसङ्कुला।
नानादेवगणैः कीर्णा मणिजालसमावृता॥ ९

गोपुरैर्विविधाकारैर्हेमरत्नविभूषितैः।
तोरणैर्हेमचित्रैस्तु मणिक्लृप्तैः पथि स्थितैः॥ १०

सँल्लापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः।
स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णितलोचनैः॥ ११

स्त्रीसहस्त्रैः समाकीर्णा चाप्सरोभिः समन्ततः।
दीर्घिकाभिर्विचित्राभिः फुल्लाम्भोरुहसङ्कुलैः॥ १२

हेमसोपानसंयुक्तैर्हेमसैकतराशिभिः।
नीलोत्पलैश्चोत्पलैश्च हैमैश्चापि सुगन्धिभिः॥ १३

एवंविधैस्तटाकैश्च नदीभिश्च नदैर्युता।
विराजते पुरी शुभ्रा तयासौ पर्वतः शुभः॥ १४

तेजस्विनी नाम पुरी आग्नेय्यां पावकस्य तु।
अमरावतीसमा दिव्या सर्वभोगसमन्विता॥ १५

यह एक चौड़े शराव (कसोरा)-के समान स्थित है और बत्तीस हजार योजन चोटीपर फैला हुआ है। इसका घेरा इसके विस्तारसे तीन गुना है॥ २-३॥

यह महेश्वरके शुभ शरीरके स्पर्शसे सुवर्णका हो गया है। यह धतूरके पुष्पके समान आभावाला, सभी देवताओंका निवासस्थान तथा देवताओंकी क्रीड़ाभूमि है और अनेक आश्चर्योंसे भरा हुआ है॥ ४१/२॥

इस महान् पर्वतका आयाम एक लाख योजन है। पृथ्वीके नीचे यह सोलह हजार योजनतक है और हे विप्रेन्द्रो! उस पर्वतका शेष भाग पृथ्वीके ऊपर है। इस पर्वतके मूलके आयाम (दैर्घ्य)-का प्रमाण विस्तारमें है; उसके विस्तारको पर्वतके मूलसे दुगुना कहा गया है॥ ५—७॥

यह पूर्वमें पद्मरागकी आभाके समान, दक्षिणमें स्वर्णके समान, पश्चिममें नीलमणिके समान और उत्तरमें मूँगेके समान है॥ ८॥

इसके पूर्वभागमें अमरावती (इन्द्रपुरी) है, जो अनेक प्रकारके महलोंसे युक्त, अनेक देवताओंसे भरी हुई और मणिमय जालोंसे घिरी हुई है। यह विविध आकारवाले तथा स्वर्ण एवं रत्नोंसे विभूषित गोपुरों, सोने तथा मणियोंके बने हुए अद्भुत तोरणों, राजमार्गपर स्थित-वार्तालापमें प्रवीण-सभी आभूषणोंसे अलंकृत-स्तनके भारसे झुकी हुई एवं मदके कारण घूर्णित नेत्रोंवाली हजारों स्त्रियोंसे भरी और चारों ओरसे अप्सराओंसे घिरी हुई है। यह विचित्र बावलियोंसे युक्त है। यह खिले हुए कमलोंसे सुशोभित, स्वर्णकी बनी हुई सीढ़ियोंवाले, स्वर्णमय बालुओंवाले, नीलकमलों तथा अन्य प्रकारके कमलोंसे शोभायमान, सुगन्धित नील कमलों एवं स्वर्णकमलोंवाले इस प्रकारके सरोवरोंसे तथा नदियों और नदोंसे युक्त यह सुन्दर पुरी [अत्यन्त] शोभित है। उस पुरीसे यह सुन्दर पर्वत भी सुशोभित होता है॥ ९—१४॥

इस पर्वतके आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) भागमें अग्निदेवकी तेजस्विनी नामक पुरी है। यह अमरावतीतुल्य, दिव्य तथा समस्त भोगोंसे परिपूर्ण है॥ १५॥

वैवस्वती दक्षिणे तु यमस्य यमिनां वराः।
भवनैरावृता दिव्यैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः॥ १६

नैर्ऋते कृष्णवर्णा च तथा शुद्धवती शुभा।
तादृशी गन्धवन्ती च वायव्यां दिशि शोभना॥ १७

महोदया चोत्तरे च ऐशान्यां तु यशोवती।
पर्वतस्य दिगन्तेषु शोभते दिवि सर्वदा॥ १८

ब्रह्मविष्णुमहेशानां तथान्येषां निकेतनम्।
सर्वभोगयुतं पुण्यं दीर्घिकाभिर्नगोत्तमम्॥ १९

सिद्धैर्यक्षैस्तु सम्पूर्णं गन्धर्वैर्मुनिपुङ्गवैः।
तथान्यैर्विविधाकारैर्भूतसङ्घैश्चतुर्विधैः ॥ २०

गिरेरुपरि विप्रेन्द्राः शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
सहस्रभौमं विस्तीर्णं विमानं वामतः स्थितम्॥ २१

तस्मिन् महाभुजः शर्वः सोमसूर्याग्निलोचनः।
सिंहासने मणिमये देव्यास्ते षण्मुखेन च॥ २२

हरेस्तदर्धं विस्तीर्णं विमानं तत्र सोऽपि च।
पद्मरागमयं दिव्यं पद्मजस्य च दक्षिणे॥ २३

तस्मिन् शक्रस्य विपुलं पुरं रम्यं यमस्य च।
सोमस्य वरुणस्याथ निर्ऋतेः पावकस्य च॥ २४

वायोश्चैव तु रुद्रस्य सर्वालयसमन्ततः।
तेषां तेषां विमानेषु दिव्येषु विविधेषु च॥ २५

ईशान्यामीश्वरक्षेत्रे नित्यार्चा च व्यवस्थिता।
सिद्धेश्वरैश्च भगवाँच्छैलादिः शिष्यसम्मतः॥ २६

सनत्कुमारः सिद्धैस्तु सुखासीनः सुरेश्वरः।
सनकश्च सनन्दश्च सदृशाश्च सहस्रशः॥ २७

योगभूमिः क्वचित्तस्मिन् भोगभूमिः क्वचित्क्वचित्।
बालसूर्यप्रतीकाशं विमानं तत्र शोभनम्॥ २८

हे व्रतियोंमें श्रेष्ठ मुनिगण! इसके दक्षिणमें यमकी उत्तम वैवस्वती नामक पुरी है। यह सुवर्णमय, दिव्य तथा शुभ भवनोंसे घिरी हुई है॥ १६॥

इसके नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)-में कृष्णवर्णकी सुन्दर शुद्धवतीपुरी है और वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशामें उसी प्रकारकी सुन्दर पुरी गन्धवती है। इसके उत्तरमें महोदया तथा ईशान (उत्तर-पूर्व)-में यशोवती नामक पुरी है। इस प्रकार मेरु पर्वतकी सभी दिशाओंमें द्युलोकमें पुरियाँ सर्वदा सुशोभित रहती हैं॥ १७-१८॥

यह पर्वत ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवताओंका निवासस्थान है। यह समस्त सुख-साधनोंसे सम्पन्न, पुण्यमय, अनेक झीलों और उत्तम वृक्षोंसे युक्त है। यह सिद्धों, यक्षों, गन्धर्वों, श्रेष्ठ मुनियों एवं विविध आकारवाले चारों प्रकारके प्राणियोंसे परिपूर्ण है॥ १९-२०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इस पर्वतके ऊपर शुद्ध स्फटिकके समान, हजार मण्डपोंसे युक्त तथा विस्तृत विमान बायीं ओर स्थित हैं। विशाल भुजाओंवाले तथा चन्द्र-सूर्य-अग्निरूप नेत्रोंवाले शिव उसमें मणिमय सिंहासनपर पार्वती-देवी तथा कार्तिकेयके साथ विराजमान रहते हैं॥ २१-२२॥

वहाँ विष्णुका भी विमान है, जो उन शिवके विमानके आधे विस्तारवाला है और दक्षिणमें पद्मयोनि ब्रह्माका पद्मरागमय दिव्य विमान है॥ २३॥

उस मेरुपर शिवके भवनके चारों ओर इन्द्र, यम, चन्द्रमा, वरुण, निर्ऋति, पावक, वायु और रुद्रका विशाल तथा सुन्दर पुर है। विविध दिव्य विमानोंमें अन्य लोगोंका निवास है। उस ईश्वरक्षेत्र (शिवविमान)-में ईशानदिशामें नित्य पूजा होती रहती है। वहाँ भगवान् नन्दी सिद्धेश्वरोंके साथ रहते हैं और शिष्योंसहित सुरेश्वर सनत्कुमार सिद्धोंके साथ सुखपूर्वक आसीन रहते हैं। इसी प्रकार सनक, सनन्द और उन्हींके समान अन्य हजारों लोग विराजमान रहते हैं॥ २४—२७॥

उस पर्वतपर कहीं-कहीं योगभूमि है और कहीं-

शैलादिनः शुभं चास्ति तस्मिन्नास्ते गणेश्वरः।
षण्मुखस्य गणेशस्य गणानां तु सहस्रशः॥ २९

सुयशायाः सुनेत्रायाः मातॄणां मदनस्य च।
तस्य जम्बूनदी नाम मूलमावेष्ट्य संस्थिता॥ ३०

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु जम्बूवृक्षः सुशोभनः।
अत्युच्छ्रितः सुविस्तीर्णः सर्वकालफलप्रदः॥ ३१

मेरोः समन्ताद्विस्तीर्णं शुभं वर्षमिलावृतम्।
तत्र जम्बूफलाहाराः केचिच्चामृतभोजनाः॥ ३२

जाम्बूनदसमप्रख्या नानावर्णाश्च भोगिनः।
मेरुपादाश्रितो विप्रा द्वीपोऽयं मध्यमः शुभः॥ ३३

नववर्षान्वितश्चैव नदीनदगिरीश्वरैः।
नववर्षं तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथातथम्॥ ३४

विस्तारान्मण्डलाच्चैव योजनैश्च निबोधत॥ ३५

कहीं भोगभूमि है। वहाँ उगते हुए सूर्यके सदृश, सुन्दर तथा शुभ विमान है, उसमें वे गणेश्वर विराजमान रहते हैं। वहाँ छः मुखोंवाले कार्तिकेय, गणेश, हजारों गणों, सुयशा तथा सुनेत्रा—इन पार्वतीकी सखियों, सभी माताओं तथा मदन (कामदेव)-के भी विमान हैं॥ २८-२९½॥

उस पर्वतके मूलको चारों ओरसे घेरकर जम्बू नामक नदी प्रवाहित होती है। उसके दक्षिण भागमें अत्यन्त सुन्दर, बहुत ऊँचा, अतिविस्तृत तथा सभी समयोंमें फल प्रदान करनेवाला जम्बूवृक्ष है॥ ३०-३१॥

मेरु पर्वतके चारों ओर इलावृत नामक विस्तृत तथा सुन्दर वर्ष (देश) है। वहाँपर लोग जम्बूफलका आहार करनेवाले हैं और कुछ लोग अमृतका आहार करनेवाले हैं। वहाँके लोग स्वर्णके समान आभावाले तथा अन्य वर्णोंवाले भी हैं और [सब प्रकारके] सुखोंको भोगनेवाले हैं। हे विप्रो! यह द्वीप मेरुके मूलके चारों ओर फैला हुआ, सुन्दर, मध्यमें स्थित, नौ वर्षोंसे युक्त और नदियों-नदों तथा महान् पर्वतोंसे समन्वित है। अब मैं नौ वर्षोंसे युक्त जम्बूद्वीपका यथार्थ वर्णन करूँगा; योजनोंमें इसके विस्तार, मण्डल आदिको [आपलोग] सुनिये॥ ३२—३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मेरुगिरिवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मेरुगिरिवर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

जम्बूद्वीपका विस्तृत वर्णन, वहाँके कुलपर्वतों, नदियों, वनों तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंका वर्णन

सूत उवाच

शतमेकं सहस्राणां योजनानां स तु स्मृतः।
अनुद्वीपं सहस्राणां द्विगुणं द्विगुणोत्तरम्॥ १

पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता लोकालोकावृता शुभा॥ २

नीलस्तथोत्तरे मेरोः श्वेतस्तस्योत्तरे पुनः।
शृङ्गी तस्योत्तरे विप्रास्त्रयस्ते वर्षपर्वताः॥ ३

सूतजी बोले—यह द्वीप एक लाख योजन विस्तृत कहा गया है। इसके समीपमें स्थित प्लक्ष नामक द्वीप उसका दुगुना है और बादवाले द्वीप क्रमशः दुगुने विस्तारवाले हैं॥ १॥

समुद्रोंसहित यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तृत है। यह सात द्वीपोंसे युक्त, लोकालोक पर्वतसे घिरी हुई तथा [अत्यन्त] सुन्दर है॥ २॥

हे विप्रो! मेरुके उत्तरमें नील पर्वत, उसके उत्तरमें श्वेत पर्वत और पुनः उसके उत्तरमें शृंगी पर्वत है; वे

जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ।
निषधो दक्षिणे मेरोस्तस्य दक्षिणतो गिरिः।
हेमकूट इति ख्यातो हिमवांस्तस्य दक्षिणे॥ ४
मेरोः पश्चिमतश्चैव पर्वतौ द्वौ धराधरौ।
माल्यवान् गन्धमादश्च द्वावेतावुदगायतौ॥ ५
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः।
तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमेकशः॥ ६
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्।
हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किम्पुरुषं स्मृतम्॥ ७
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते।
हरिवर्षात्परं चैव मेरोः शुभमिलावृतम्॥ ८
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्।
रम्यात्परतरं श्वेतं विख्यातं तद्धिरण्मयम्॥ ९
हिरण्मयात्परं चापि शृङ्गी चैव कुरुः स्मृतः।
धनुःसंस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे॥ १०
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यतस्तदिलावृतम्।
मेरोः पश्चिमपूर्वेण द्वे तु दीर्घेतरे स्मृते॥ ११
अर्वाक्तु निषधस्याथ वेद्यर्धं चोत्तरं स्मृतम्।
वेद्यर्धे दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे॥ १२
तयोर्मध्ये च विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम्।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ १३
उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः।
योजनानां सहस्रे द्वे उपरिष्टात्तु विस्तृतः॥ १४
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः।
तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गन्धमादनः॥ १५
आयामतः स विज्ञेयो माल्यवानिव विस्तृतः।
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्समेन तु समन्ततः॥ १६
प्रागायताः सुपर्वाणः षडेते वर्षपर्वताः।
अवगाढाश्चोभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥ १७
हिमप्रायस्तु हिमवान् हेमकूटस्तु हेमवान्।
तरुणादित्यसङ्काशो हैरण्यो निषधः स्मृतः॥ १८

तीनों वर्षपर्वत हैं॥ ३॥

इसके पूर्वमें जठर तथा देवकूट पर्वत हैं। मेरुके दक्षिणमें निषध पर्वत है। उसके दक्षिणमें हेमकूट पर्वत कहा गया है और उसके दक्षिणमें हिमवान् पर्वत है। मेरुके पश्चिममें माल्यवान् एवं गन्धमादन नामक दो पर्वत हैं; ये दोनों पर्वत उत्तरकी ओर फैले हुए हैं॥ ४-५॥

ये पर्वतराज सिद्धों तथा चारणोंसे सेवित हैं और उनके बीचमें नौ हजार योजनका अन्तर है। हिमवान्का वर्ष भारतवर्ष नामवाला कहा गया है; उसके बाद हेमकूट और उसके परे किम्पुरुष वर्ष कहा गया है। हेमकूटसे परे नैषध है, उसके परे हरिवर्ष कहा गया है। हरिवर्ष और मेरुसे परे शुभ इलावृत है। इलावृतसे परे नील एवं रम्यक् कहे गये हैं। रम्यक्से परे श्वेत है, उसके परे हिरण्मय नामक वर्ष कहा गया है। हिरण्मयसे परे श्रृंगी पर्वत है और उसके परे कुरुवर्ष कहा गया है। धनुषके आकारवाले इन दोनों वर्षोंको दक्षिण तथा उत्तरमें स्थित जानना चाहिये॥ ६—१०॥

अन्य चार बड़े वर्ष हैं। मध्यमें इलावृत है। मेरुके पश्चिम-पूर्वमें दो वर्ष हैं, जो छोटे कहे गये हैं। निषधके बाद वेदीका अर्धभाग उत्तर माना गया है, वेदीके अर्ध भागमें दक्षिणमें तीन वर्ष और उत्तर भागमें भी तीन वर्ष माने गये हैं॥ ११-१२॥

नीलके दक्षिण तथा निषधके उत्तरमें उन दोनोंके बीच मेरुके मध्य इलावृतवर्षको जानना चाहिये। माल्यवान् नामक महापर्वत उत्तरकी ओर फैला हुआ है। यह ऊपरकी ओर दो हजार योजन फैला है। इसका आयाम चौंतीस हजार योजन बताया गया है॥ १३-१४$^{1}/_{2}$॥

उसके पश्चिममें गन्धमादन पर्वतको जानना चाहिये। उसे आयाममें माल्यवान्के समान विस्तृत समझना चाहिये। जम्बूद्वीपके विस्तारसे चारों ओर यह पर्वत बराबर फैला है। अच्छे पर्वोंवाले ये छः वर्षपर्वत पूर्वकी ओर फैले हुए हैं और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोंसे दोनों ओरसे बँधे हुए हैं॥ १५—१७॥

हिमवान् सदा बर्फसे आच्छादित रहता है। हेमकूट

चतुर्वर्णः स सौवर्णो मेरुश्चोर्ध्वायतः स्मृतः।
वृत्ताकृतिपरीणाहश्चतुरस्रः समुत्थितः॥ १९

नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरणमयः।
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुम्भस्त्रिशृङ्गवान्॥ २०

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्ताः पुनः शृणु गिरीश्वरान्।
मन्दरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ॥ २१

कैलासो गन्धमादश्च हेमवांश्चैव पर्वतौ।
पूर्वतश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २२

निषधः पारियात्रश्च द्वावेतौ वरपर्वतौ।
यथा पूर्वौ तथा याम्यावेतौ पश्चिमतः श्रितौ॥ २३

त्रिशृङ्गो जारुचिश्चैव उत्तरौ वरपर्वतौ।
पूर्वतश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २४

मर्यादापर्वतानेतानष्टावाहुर्मनीषिणः ।
योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रांशुः कनकपर्वतः॥ २५

तस्य पादास्तु चत्वारश्चतुर्दिक्षु नगोत्तमाः।
यैर्विष्टब्धा न चलति सप्तद्वीपवती मही॥ २६

दशयोजनसाहस्रमायामस्तेषु पठ्यते।
पूर्वे तु मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥ २७

विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः।
महावृक्षाः समुत्पन्नाश्चत्वारो द्वीपकेतवः॥ २८

मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे महावृक्षः स केतुराट्।
प्रलम्बशाखाशिखरः कदम्बश्चैत्यपादपः॥ २९

दक्षिणस्यापि शैलस्य शिखरे देवसेविता।
जम्बूः सदा पुण्यफला सदा माल्योपशोभिता॥ ३०

सकेतुर्दक्षिणे द्वीपे जम्बूर्लोकेषु विश्रुता।
विपुलस्यापि शैलस्य पश्चिमे च महात्मनः॥ ३१

स्वर्णयुक्त है। निषध पर्वत मध्याह्नकालीन सूर्यके समान स्वर्णमय कहा गया है। चार वर्णोंवाला वह सुवर्णमय मेरु पर्वत ऊपरकी ओर फैला हुआ बताया गया है। यह परिधिमें वृत्ताकार है और चौकोर ऊँचा उठा हुआ है। नील पर्वत वैडूर्यमय है। श्वेत पर्वत शुक्लवर्णवाला है एवं स्वर्णसे पूर्ण रहता है। तीन चोटियोंवाला शृंगी पर्वत सुवर्णमय तथा मोरके पंखके रंगका है॥ १८—२०॥

इस प्रकार पर्वतोंका वर्णन कर दिया गया, अब श्रेष्ठ पर्वतोंके विषयमें सुनिये। मन्दर तथा देवकूट पर्वत पूर्व दिशामें है। कैलास एवं स्वर्णमय गन्धमादन—ये दोनों पर्वत पूर्वकी ओर फैले हुए हैं और उनका अन्त समुद्रके भीतर होता है। निषध तथा पारियात्र—ये दोनों श्रेष्ठ पर्वत पश्चिमसे पूर्व तथा दक्षिणमें स्थित हैं। त्रिशृंग एवं जारुचि—ये दोनों महापर्वत उत्तरमें हैं तथा पूर्वकी ओर फैले हैं और समुद्रके भीतर व्यवस्थित हैं। विद्वान् लोग इन आठों पर्वतोंको मर्यादापर्वत कहते हैं॥ २१—२४½॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! मेरु नामक जो पर्वत है, वह ऊँचा स्वर्णमय पर्वत है। उसके चार चरणोंके रूपमें उसके चारों दिशाओंमें बड़े-बड़े चार उत्तम पर्वत हैं, जिनसे सहारा प्राप्त की हुई सात द्वीपवाली पृथ्वी हिलती नहीं है। उनका आयाम दस हजार योजन कहा गया है॥ २५-२६½॥

पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिम भागमें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व नामक पर्वत कहा गया है। इनपर चार विशाल वृक्ष उगे हुए हैं, जो द्वीपके पताकातुल्य प्रतीत होते हैं। मन्दर पर्वतकी चोटीपर कदम्बका विशाल वृक्ष है। वह पताकाओंका राजा है और वह लम्बी लटकती हुई शाखाओंवाला है। यह कदम्बवृक्ष चैत्यपादप (पवित्र स्थानमें लगे वृक्ष)-के रूपमें प्रतिष्ठित है॥ २७—२९॥

दक्षिणमें स्थित [गन्धमादन] पर्वतके शिखरपर सदा देवताओंसे सेवित पवित्र फलोंसे सम्पन्न तथा पुष्पोंसे सुशोभित जम्बूवृक्ष है। यह जम्बूवृक्ष दक्षिण द्वीपमें पताकाके रूपमें है और सभी लोकोंमें प्रसिद्ध है॥ ३०½॥

सञ्जातः शिखरेऽश्वत्थः स महान् चैत्यपादपः।
सुपार्श्वस्योत्तरस्यापि शृङ्गे जातो महाद्रुमः॥ ३२
न्यग्रोधो विपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः।
तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम्॥ ३३
अमानुष्याणि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च।
मनोहराणि चत्वारि देवक्रीडनकानि च॥ ३४
वनानि वै चतुर्दिक्षु नामतस्तु निबोधत।
पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम्॥ ३५
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्।
मित्रेश्वरं तु पूर्वे तु षष्ठेश्वरमतः परम्॥ ३६
वर्येश्वरं पश्चिमे तु उत्तरे चाम्रकेश्वरम्।
महासरांसि च तथा चत्वारि मुनिपुङ्गवाः॥ ३७
यत्र क्रीडन्ति मुनयः पर्वतेषु वनेषु च।
अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम्॥ ३८
सितोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम्।
शाखस्य दक्षिणे क्षेत्रं विशाखस्य च पश्चिमे॥ ३९
उत्तरे नैगमेयस्य कुमारस्य च पूर्वतः।
अरुणोदस्य पूर्वेण शैलेन्द्रा नामतः स्मृताः॥ ४०
तांस्तु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये न शक्यं विस्तरेण तु।
सितान्तश्च कुरण्डश्च कुररश्चाचलोत्तमः॥ ४१
विकरो मणिशैलश्च वृक्षवांश्चाचलोत्तमः।
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्दर्दुरस्तथा॥ ४२
वेणुमांश्च समेघश्च निषधो देवपर्वतः।
इत्येते पर्वतवरा ह्यन्ये च गिरयस्तथा॥ ४३
पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धावासा उदाहृताः।
तेषु तेषु गिरीन्द्रेषु गुहासु च वनेषु च॥ ४४
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि विष्णोर्नारायणस्य च।
सरसो मानसस्येह दक्षिणेन महाचलाः॥ ४५
ये कीर्त्यमानास्तान् सर्वान् सङ्क्षिप्य प्रवदाम्यहम्।
शैलश्च विशिराश्चैव शिखरश्चाचलोत्तमः॥ ४६
एकशृङ्गो महाशूलो गजशैलः पिशाचकः।
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः॥ ४७

पश्चिममें महात्मा विपुल पर्वतकी चोटीपर पीपलका महान् वृक्ष उगा हुआ है, वह भी चैत्यपादप (पवित्र वृक्ष)-के रूपमें प्रतिष्ठित है। उत्तरमें सुपार्श्व पर्वतके शिखरपर विशाल बरगदका वृक्ष उगा हुआ है, जो मोटे स्कन्धवाला तथा अनेक योजन परिधिवाला है॥ ३१-३२१/२॥

अब मैं चारों महापर्वतोंके चार देवक्रीड़ा-स्थानोंका वर्णन करूँगा; जो मनुष्योंसे रहित, रम्य, सभी काल तथा ऋतुओंमें रहनेवाले एवं मनोहर हैं। वहाँ चारों दिशाओंमें वन हैं। उनके नाम सुनिये। पूर्वमें चैत्ररथ नामक वन, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सविता (शिव)-के [नन्दन नामक] वनको जानना चाहिये। पूर्वमें मित्रेश्वर, उसके बाद [दक्षिणमें] षष्ठेश्वर, पश्चिममें वर्येश्वर और उत्तरमें आम्रकेश्वर [शिवक्षेत्र] हैं॥ ३३—३६१/२॥

हे मुनिवरो! वहाँ चार बड़े सरोवर हैं, जहाँ पर्वतों तथा वनोंमें मुनिगण क्रीड़ा करते हैं। पूर्वमें अरुणोदसर, दक्षिणमें मानससर, पश्चिममें सितोदसर और उत्तरमें महाभद्रसर बताया गया है। दक्षिणमें शाखका क्षेत्र, पश्चिममें विशाखका क्षेत्र, उत्तरमें नैगमेयका क्षेत्र और पूर्वमें कुमारका क्षेत्र है॥ ३७—३९१/२॥

अरुणोदसरके पूर्वमें महापर्वत बताये गये हैं। मैं संक्षेपमें नामोंसे उनका वर्णन करूँगा; विस्तारपूर्वक उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सितान्त, कुरण्ड, पर्वतश्रेष्ठ कुरर, विकर, मणिशैल, पर्वतश्रेष्ठ वृक्षवान्, महानील, रुचक, सबिन्दु, दर्दुर, वेणुमान्, समेघ, निषध, देवपर्वत—ये महापर्वत हैं; इसी प्रकार अन्य भी पर्वत हैं। मन्दरके पूर्वमें ये पर्वत सिद्धोंके निवासस्थान कहे गये हैं। उन-उन पर्वतोंपर, गुफाओंमें तथा वनोंमें रुद्र एवं नारायण विष्णुके दिव्य क्षेत्र हैं॥ ४०—४४१/२॥

यहाँ मानससरके दक्षिणमें जो महान् पर्वत कहे जाते हैं, अब मैं संक्षेपमें उन सबका वर्णन करता हूँ। शैल, विशिर, पर्वतोंमें उत्तम शिखर, एकशृंग, महाशूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास, पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्—

इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः।
तेषु तेषु च सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च॥ ४८
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि स्थापितानि सुरोत्तमैः।
दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ताः पश्चिमे च वदामि वः॥ ४९
अपरेण सितोदश्च सुरपश्च महाबलः।
कुमुदो मधुमांश्चैव ह्यञ्जनो मुकुटस्तथा॥ ५०
कृष्णश्च पाण्डुरश्चैव सहस्रशिखरश्च यः।
पारिजातश्च शैलेन्द्रः श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तमः॥ ५१
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः।
सर्वे पश्चिमदिग्भागे रुद्रक्षेत्रसमन्विताः॥ ५२
महाभद्रस्य सरसश्चोत्तरे च महाबलाः।
ये स्थिताः कीर्त्यमानांस्तान् सङ्क्षिप्येह निबोधत॥ ५३
शङ्खकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः।
नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान्॥ ५४
नीलः कण्टकशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः।
पुष्पकोशः प्रशैलश्च विरजश्चाचलोत्तमः॥ ५५
वराहपर्वतश्चैव मयूरश्चाचलोत्तमः।
जारुधिश्चैव शैलेन्द्र एत उत्तरसंस्थिताः॥ ५६
तेषु शैलेषु दिव्येषु देवदेवस्य शूलिनः।
असंख्यातानि दिव्यानि विमानानि सहस्रशः॥ ५७
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांस्युपवनानि च॥ ५८
वसन्ति देवा मुनयः सिद्धाश्च शिवभाविताः।
कृतवासाः सपत्नीकाः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ५९
लक्ष्म्याद्यानां बिल्ववने ककुभे कश्यपादयः।
तथा तालवने प्रोक्तमिन्द्रोपेन्द्रोरगात्मनाम्॥ ६०
उदुम्बरे कर्दमस्य तथान्येषां महात्मनाम्।
विद्याधराणां सिद्धानां पुण्ये त्वाम्रवने शुभे॥ ६१
नागानां सिद्धसङ्घानां तथा निम्बवने स्थितिः।
सूर्यस्य किंशुकवने तथा रुद्रगणस्य च॥ ६२
बीजपूरवने पुण्ये देवाचार्यो व्यवस्थितः।
कौमुदे तु वने विष्णुप्रमुखानां महात्मनाम्॥ ६३
स्थलपद्मवनान्तस्थन्यग्रोधेऽशेषभोगिनः।
शेषस्त्वशेषजगतां पतिरास्तेऽतिगर्वितः॥ ६४

ये सब देवताओंके द्वारा सेवित, उत्कट तथा उत्तम पर्वत हैं। उन-उन सभी पर्वतोंपर और वनोंमें श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा दिव्य रुद्रक्षेत्र स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार दक्षिण दिशामें स्थित पर्वतोंको बता दिया गया, अब मैं आपलोगोंको पश्चिममें विद्यमान पर्वतोंको बताता हूँ॥ ४५—४९॥

सितोदके पश्चिममें सुरप, महाबल, कुमुद, मधुमान्, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रशिखर, शैलेन्द्र, पारिजात और पर्वतोंमें उत्तम श्रीशृंग हैं। ये सभी उत्कट तथा उत्तम पर्वत पश्चिम दिशामें हैं, जो देवताओंके द्वारा सेवित हैं और रुद्रक्षेत्रोंसे युक्त हैं॥ ५०—५२॥

महाभद्रसरके उत्तरमें जो शक्तिशाली पर्वत स्थित हैं, मैं उनका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ, आपलोग सुनिये। शंखकूट, महाशैल, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, इन्द्रशैल, सानुमान्, नील, कण्टकशृंग, पर्वत शतशृंग, पुष्पकोश, प्रशैल, पर्वतश्रेष्ठ विरज, वराहपर्वत, पर्वतश्रेष्ठ मयूर तथा शैलराज जारुधि—ये सब उत्तरमें स्थित हैं। उन दिव्य पर्वतोंपर देवदेव शिवके असंख्य दिव्य विमान हैं॥ ५३—५७॥

इन प्रमुख पर्वतोंके भीतर झरने, सरोवर तथा उपवन यथाक्रम स्थित हैं। यहाँ परमेष्ठी शिवकी कृपासे देवता, मुनि एवं सिद्ध शिवभक्तिसे युक्त होकर अपने निवासस्थान बनाकर पत्नियोंके साथ रहते हैं। लक्ष्मी आदिका निवास बिल्ववनमें है। कश्यप आदि ककुभ वनमें रहते हैं। इन्द्र, उपेन्द्र तथा श्रेष्ठ सर्पोंका निवास तालवनमें कहा गया है। कर्दम और अन्य महात्माओंका निवास उदुम्बरवनमें, विद्याधरों तथा सिद्धोंका निवास पवित्र एवं सुन्दर आम्रवनमें और नागों तथा सिद्धगणोंका निवास निम्बवनमें है। सूर्य तथा रुद्रगणोंका निवास किंशुकवनमें है। देवताओंके आचार्य पुण्यमय बीजपूरवन (बिजौरा नीबूका वन)-में निवास करते हैं। विष्णु आदि महात्माओंका वास कौमुद वनमें है॥ ५८—६३॥

सर्पगण स्थलपद्मवनके अन्दर स्थित न्यग्रोधवनमें रहते हैं और जो सम्पूर्ण जगत्के पति गर्वित शेषनाग हैं,

सञ्जातः शिखरेऽश्वत्थः स महान् चैत्यपादपः।
सुपार्श्वस्योत्तरस्यापि शृङ्गे जातो महाद्रुमः॥ ३२
न्यग्रोधो विपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः।
तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम्॥ ३३
अमानुष्याणि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च।
मनोहराणि चत्वारि देवक्रीडनकानि च॥ ३४
वनानि वै चतुर्दिक्षु नामतस्तु निबोधत।
पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम्॥ ३५
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्।
मित्रेश्वरं तु पूर्वे तु षष्ठेश्वरमतः परम्॥ ३६
वर्येश्वरं पश्चिमे तु उत्तरे चाम्रकेश्वरम्।
महासरांसि च तथा चत्वारि मुनिपुङ्गवाः॥ ३७
यत्र क्रीडन्ति मुनयः पर्वतेषु वनेषु च।
अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम्॥ ३८
सितोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम्।
शाखस्य दक्षिणे क्षेत्रं विशाखस्य च पश्चिमे॥ ३९
उत्तरे नैगमेयस्य कुमारस्य च पूर्वतः।
अरुणोदस्य पूर्वेण शैलेन्द्रा नामतः स्मृताः॥ ४०
तांस्तु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये न शक्यं विस्तरेण तु।
सितान्तश्च कुरण्डश्च कुररश्चाचलोत्तमः॥ ४१
विकरो मणिशैलश्च वृक्षवांश्चाचलोत्तमः।
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्दर्दुरस्तथा॥ ४२
वेणुमांश्च समेघश्च निषधो देवपर्वतः।
इत्येते पर्वतवरा ह्यन्ये च गिरयस्तथा॥ ४३
पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धावासा उदाहृताः।
तेषु तेषु गिरीन्द्रेषु गुहासु च वनेषु च॥ ४४
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि विष्णोर्नारायणस्य च।
सरसो मानसस्येह दक्षिणेन महाचलाः॥ ४५
ये कीर्त्यमानास्तान् सर्वान् सङ्क्षिप्य प्रवदाम्यहम्।
शैलश्च विशिराश्चैव शिखरश्चाचलोत्तमः॥ ४६
एकशृङ्गो महाशूलो गजशैलः पिशाचकः।
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः॥ ४७

पश्चिममें महात्मा विपुल पर्वतकी चोटीपर पीपलका महान् वृक्ष उगा हुआ है, वह भी चैत्यपादप (पवित्र वृक्ष)-के रूपमें प्रतिष्ठित है। उत्तरमें सुपार्श्व पर्वतके शिखरपर विशाल बरगदका वृक्ष उगा हुआ है, जो मोटे स्कन्धवाला तथा अनेक योजन परिधिवाला है॥ ३१-३२½॥

अब मैं चारों महापर्वतोंके चार देवक्रीड़ा-स्थानोंका वर्णन करूँगा; जो मनुष्योंसे रहित, रम्य, सभी काल तथा ऋतुओंमें रहनेवाले एवं मनोहर हैं। वहाँ चारों दिशाओंमें वन हैं। उनके नाम सुनिये। पूर्वमें चैत्ररथ नामक वन, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सविता (शिव)-के [नन्दन नामक] वनको जानना चाहिये। पूर्वमें मित्रेश्वर, उसके बाद [दक्षिणमें] षष्ठेश्वर, पश्चिममें वर्येश्वर और उत्तरमें आम्रकेश्वर [शिवक्षेत्र] हैं॥ ३३—३६½॥

हे मुनिवरो! वहाँ चार बड़े सरोवर हैं, जहाँ पर्वतों तथा वनोंमें मुनिगण क्रीड़ा करते हैं। पूर्वमें अरुणोदसर, दक्षिणमें मानससर, पश्चिममें सितोदसर और उत्तरमें महाभद्रसर बताया गया है। दक्षिणमें शाखका क्षेत्र, पश्चिममें विशाखका क्षेत्र, उत्तरमें नैगमेयका क्षेत्र और पूर्वमें कुमारका क्षेत्र है॥ ३७—३९½॥

अरुणोदसरके पूर्वमें महापर्वत बताये गये हैं। मैं संक्षेपमें नामोंसे उनका वर्णन करूँगा; विस्तारपूर्वक उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सितान्त, कुरण्ड, पर्वतश्रेष्ठ कुरर, विकर, मणिशैल, पर्वतश्रेष्ठ वृक्षवान्, महानील, रुचक, सबिन्दु, दर्दुर, वेणुमान्, समेघ, निषध, देवपर्वत—ये महापर्वत हैं; इसी प्रकार अन्य भी पर्वत हैं। मन्दरके पूर्वमें ये पर्वत सिद्धोंके निवासस्थान कहे गये हैं। उन-उन पर्वतोंपर, गुफाओंमें तथा वनोंमें रुद्र एवं नारायण विष्णुके दिव्य क्षेत्र हैं॥ ४०—४४½॥

यहाँ मानससरके दक्षिणमें जो महान् पर्वत कहे जाते हैं, अब मैं संक्षेपमें उन सबका वर्णन करता हूँ। शैल, विशिर, पर्वतोंमें उत्तम शिखर, एकशृंग, महाशूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास, पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्—

इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः।
तेषु तेषु च सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च॥ ४८
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि स्थापितानि सुरोत्तमैः।
दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ताः पश्चिमे च वदामि वः॥ ४९
अपरेण सितोदश्च सुरपश्च महाबलः।
कुमुदो मधुमांश्चैव ह्यञ्जनो मुकुटस्तथा॥ ५०
कृष्णाश्च पाण्डुरश्चैव सहस्रशिखरश्च यः।
पारिजातश्च शैलेन्द्रः श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तमः॥ ५१
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः।
सर्वे पश्चिमदिग्भागे रुद्रक्षेत्रसमन्विताः॥ ५२
महाभद्रस्य सरसश्चोत्तरे च महाबलाः।
ये स्थिताः कीर्त्यमानांस्तान् सङ्क्षिप्येह निबोधत॥ ५३
शङ्खकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः।
नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान्॥ ५४
नीलः कण्टकशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः।
पुष्पकोशः प्रशैलश्च विरजश्चाचलोत्तमः॥ ५५
वराहपर्वतश्चैव मयूरश्चाचलोत्तमः।
जारुधिश्चैव शैलेन्द्र एत उत्तरसंस्थिताः॥ ५६
तेषु शैलेषु दिव्येषु देवदेवस्य शूलिनः।
असंख्यातानि दिव्यानि विमानानि सहस्रशः॥ ५७
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांस्युपवनानि च॥ ५८
वसन्ति देवा मुनयः सिद्धाश्च शिवभाविताः।
कृतवासाः सपत्नीकाः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ५९
लक्ष्म्याद्यानां बिल्ववने ककुभे कश्यपादयः।
तथा तालवने प्रोक्तमिन्द्रोपेन्द्रोरगात्मनाम्॥ ६०
उदुम्बरे कर्दमस्य तथान्येषां महात्मनाम्।
विद्याधराणां सिद्धानां पुण्ये त्वाम्रवने शुभे॥ ६१
नागानां सिद्धसङ्घानां तथा निम्बवने स्थितिः।
सूर्यस्य किंशुकवने तथा रुद्रगणस्य च॥ ६२
बीजपूरवने पुण्ये देवाचार्यो व्यवस्थितः।
कौमुदे तु वने विष्णुप्रमुखानां महात्मनाम्॥ ६३
स्थलपद्मवनान्तस्थन्यग्रोधेऽशेषभोगिनः।
शेषस्त्वशेषजगतां पतिरास्तेऽतिगर्वितः॥ ६४

ये सब देवताओंके द्वारा सेवित, उत्कट तथा उत्तम पर्वत हैं। उन-उन सभी पर्वतोंपर और वनोंमें श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा दिव्य रुद्रक्षेत्र स्थापित किये गये हैं। इस प्रकार दक्षिण दिशामें स्थित पर्वतोंको बता दिया गया, अब मैं आपलोगोंको पश्चिममें विद्यमान पर्वतोंको बताता हूँ॥ ४५—४९॥

सितोदके पश्चिममें सुरप, महाबल, कुमुद, मधुमान्, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रशिखर, शैलेन्द्र, पारिजात और पर्वतोंमें उत्तम श्रीशृंग हैं। ये सभी उत्कट तथा उत्तम पर्वत पश्चिम दिशामें हैं, जो देवताओंके द्वारा सेवित हैं और रुद्रक्षेत्रोंसे युक्त हैं॥ ५०—५२॥

महाभद्रसरके उत्तरमें जो शक्तिशाली पर्वत स्थित हैं, मैं उनका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ, आपलोग सुनिये। शंखकूट, महाशैल, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, इन्द्रशैल, सानुमान्, नील, कण्टकशृंग, पर्वत शतशृंग, पुष्पकोश, प्रशैल, पर्वतश्रेष्ठ विरज, वराहपर्वत, पर्वतश्रेष्ठ मयूर तथा शैलराज जारुधि—ये सब उत्तरमें स्थित हैं। उन दिव्य पर्वतोंपर देवदेव शिवके असंख्य दिव्य विमान हैं॥ ५३—५७॥

इन प्रमुख पर्वतोंके भीतर झरने, सरोवर तथा उपवन यथाक्रम स्थित हैं। यहाँ परमेष्ठी शिवकी कृपासे देवता, मुनि एवं सिद्ध शिवभक्तिसे युक्त होकर अपने निवासस्थान बनाकर पत्नियोंके साथ रहते हैं। लक्ष्मी आदिका निवास बिल्ववनमें है। कश्यप आदि ककुभ वनमें रहते हैं। इन्द्र, उपेन्द्र तथा श्रेष्ठ सर्पोंका निवास तालवनमें कहा गया है। कर्दम और अन्य महात्माओंका निवास उदुम्बरवनमें, विद्याधरों तथा सिद्धोंका निवास पवित्र एवं सुन्दर आम्रवनमें और नागों तथा सिद्धगणोंका निवास निम्बवनमें है। सूर्य तथा रुद्रगणोंका निवास किंशुकवनमें है। देवताओंके आचार्य पुण्यमय बीजपूरवन (बिजौरा नीबूका वन)-में निवास करते हैं। विष्णु आदि महात्माओंका वास कौमुद वनमें है॥ ५८—६३॥

सर्पगण स्थलपद्मवनके अन्दर स्थित न्यग्रोधवनमें रहते हैं और जो सम्पूर्ण जगत्के पति गर्वित शेषनाग हैं,

स एव जगतां कालः पाताले च व्यवस्थितः।
विष्णोर्विश्वगुरोर्मूर्तिर्दिव्यः साक्षाद्धलायुधः॥ ६५

शयनं देवदेवस्य स हरेः कङ्कणं विभोः।
वने पनसवृक्षाणां सशुक्रा दानवादयः॥ ६६

किन्नरैरुरगाश्चैव विशाखककवने स्थिताः।
मनोहरवने वृक्षाः सर्वकोटिसमन्विताः॥ ६७

नन्दीश्वरो गणवरैः स्तूयमानो व्यवस्थितः।
सन्तानकस्थलीमध्ये साक्षाद्देवी सरस्वती॥ ६८

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्ता वनेषु वनवासिनः।
असंख्याता मयाप्यत्र वक्तुं नो विस्तरेण तु॥ ६९

वे पातालमें रहते हैं; वे ही समस्त लोकोंके काल हैं। वे विश्वगुरु विष्णुकी दिव्य मूर्ति हैं, साक्षात् हलायुध हैं, देवदेव विष्णुकी शय्या हैं और प्रभु शिवके कंकण (कंगन)-स्वरूप हैं॥ ६४-६५ $^{1}/_{2}$ ॥

दानव आदि शुक्राचार्यके साथ कटहलके वृक्षोंके वनमें और सभी उरग किन्नरोंके साथ विशाखवन (नारिकेलवन)-में रहते हैं। विविध प्रकारकी जातियोंवाले वृक्ष उस मनोहरवनमें हैं। नन्दीश्वर भी श्रेष्ठ गणोंके द्वारा स्तुत होते हुए वहाँ विराजमान हैं। सन्तानक (कल्पवृक्ष) क्षेत्रके मध्यमें साक्षात् सरस्वती देवी रहती हैं॥ ६६—६८॥

[हे विप्रो!] इस प्रकार मैंने इन वनोंमें निवास करनेवाले लोगोंका संक्षेपमें वर्णन किया; ये असंख्य हैं, विस्तारपूर्वक इनका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ६९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'जम्बूद्वीपवर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

भुवनविन्यासमें विभिन्न कुलाचल पर्वतोंपर रहनेवाली देवयोनियों आदिका वर्णन

सूत उवाच

शितान्तशिखरे शक्रः पारिजातवने शुभे।
तस्य प्राच्यां कुमुदाद्रिकूटोऽसौ बहुविस्तरः॥ १
अष्टौ पुराण्युदीर्णानि दानवानां द्विजोत्तमाः।
सुवर्णकोटरे पुण्ये राक्षसानां महात्मनाम्॥ २
नीलकानां पुराण्याहुरष्टषष्टिर्द्विजोत्तमाः।
महानीलेऽपि शैलेन्द्रे पुराणि दश पञ्च च॥ ३
हयाननानां मुख्यानां किन्नराणां च सुव्रताः।
वेणुसौधे महाशैले विद्याधरपुरत्रयम्॥ ४
वैकुण्ठे गरुडः श्रीमान् करञ्जे नीललोहितः।
वसुधारे वसूनां तु निवासः परिकीर्तितः॥ ५
रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्।
सप्तस्थानानि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि च॥ ६
महत्प्रजापतेः स्थानमेकशृङ्गे नगोत्तमे।
गजशैले तु दुर्गाद्याः सुमेधे वसवस्तथा॥ ७

सूतजी बोले—इन्द्र शितान्तके शिखरपर विद्यमान सुन्दर पारिजातवनमें रहते हैं। उसके पूर्वमें कुमुदपर्वतकी चोटी है, वह बहुत विस्तृत है। हे श्रेष्ठ द्विजो! वहाँ दानवोंके आठ पुर कहे गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! पवित्र सुवर्णकोटरमें नीलक नामक महान् राक्षसोंके अड़सठ पुर बताये गये हैं॥ १-२ $^{1}/_{2}$ ॥

हे सुव्रतो! पर्वतश्रेष्ठ महानीलपर भी घोड़ेके समान मुखवाले प्रधान किन्नरोंके पन्द्रह पुर हैं और महान् पर्वत वेणुसौधपर विद्याधरोंके तीन पुर हैं॥ ३-४॥

श्रीमान् गरुड़ वैकुण्ठ पर्वतपर और नीललोहित रुद्र करंज पर्वतपर निवास करते हैं। वसुओंका निवास वसुधारमें बताया गया है। गिरिश्रेष्ठ रत्नधारपर महात्मा सप्तर्षियोंके सात पवित्र स्थान हैं, जो सिद्धोंके वाससे युक्त हैं॥ ५-६॥

पर्वतोंमें उत्तम एकशृंग पर्वतपर प्रजापतिका महान् आवास है। गजशैलपर दुर्गा आदि तथा सुमेधपर वसुगण

आदित्याश्च तथा रुद्राः कृतावासास्तथाश्विनौ।
अशीतिर्देवपुर्यस्तु हेमकक्षे नगोत्तमे॥ ८

सुनीले रक्षसां वासाः पञ्चकोटिशतानि च।
पञ्चकूटे पुराण्यासन् पञ्चकोटिप्रमाणतः॥ ९

शतशृङ्गे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम्।
ताम्राभे काद्रवेयाणां विशाखे तु गुहस्य वै॥ १०

श्वेतोदरे मुनिश्रेष्ठाः सुपर्णस्य महात्मनः।
पिशाचके कुबेरस्य हरिकूटे हरेर्गृहम्॥ ११

कुमुदे किन्नरावासस्त्वञ्जने चारणालयः।
कृष्णे गन्धर्वनिलयः पाण्डुरे पुरसप्तकम्॥ १२

विद्याधराणां विप्रेन्द्रा विश्वभोगसमन्वितम्।
सहस्रशिखरे शैले दैत्यानामुग्रकर्मणाम्॥ १३

पुराणां तु सहस्राणि सप्तशक्रारिणां द्विजाः।
मुकुटे पन्नगावासः पुष्पकेतौ मुनीश्वराः॥ १४

वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च।
तक्षके चैव शैलेन्द्रे चत्वार्यायतनानि च॥ १५

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणां गुहस्य च महात्मनः।
कुबेरस्य च सोमस्य तथान्येषां महात्मनाम्॥ १६

सन्त्यायतनमुख्यानि मर्यादापर्वतेष्वपि।
श्रीकण्ठाद्रिगुहावासी सर्वावासः सहोमया॥ १७

श्रीकण्ठस्याधिपत्यं वै सर्वदेवेश्वरस्य च।
अण्डस्यास्य प्रवृत्तिस्तु श्रीकण्ठेन न संशयः॥ १८

अनन्तेशादयस्त्वेवं प्रत्येकं चाण्डपालकाः।
चक्रवर्तिन इत्युक्तास्ततो विद्येश्वरास्त्विह॥ १९

श्रीकण्ठाधिष्ठितान्यत्र स्थानानि च समासतः।
मर्यादापर्वतेष्वद्य शृण्वन्तु प्रवदाम्यहम्॥ २०

श्रीकण्ठाधिष्ठितं विश्वं चराचरमिदं जगत्।
कालाग्निशिवपर्यन्तं कथं वक्ष्ये सविस्तरम्॥ २१

रहते हैं। पर्वतोंमें उत्तम हेमकक्ष पर्वतपर अस्सी देवपुरियाँ हैं, वहाँ आदित्यगण, रुद्रगण तथा दोनों अश्विनीकुमार निवास करते हैं॥ ७-८॥

सुनील पर्वतपर राक्षसोंके पाँच सौ करोड़ निवासस्थान हैं। पंचकूटपर पाँच करोड़ पुर हैं। शतशृंगपर अमित तेजस्वी यक्षोंके सौ पुर हैं। ताम्राभ पर्वतपर काद्रवेयोंका और विशाख पर्वतपर गुहका निवासस्थान है॥ ९-१०॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! श्वेतोदर पर्वतपर महात्मा सुपर्णका, पिशाचकपर कुबेरका और हरिकूटपर विष्णुका आवास है॥ ११॥

कुमुद पर्वतपर किन्नरोंका आवास है। अंजन पर्वतपर चारणोंका निवासस्थान है। कृष्णपर्वतपर गन्धर्वोंका निवासस्थान है। हे श्रेष्ठ विप्रो! पाण्डुर पर्वतपर विद्याधरोंके सात पुर हैं, जो सभी प्रकारके भोगोंसे युक्त हैं। हे द्विजो! सहस्रशिखर पर्वतपर भयानक कर्मवाले इन्द्रशत्रु दैत्योंके सात हजार पुर हैं। हे मुनीश्वरो! पुष्पकेतु मुकुट पर्वतपर पन्नगोंका आवास है। वैवस्वत, सोम, वायु और नागाधिपतिके चार निवासस्थान शैलराज तक्षकपर हैं॥ १२—१५॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, महात्मा गुह, कुबेर, सोम तथा अन्य महात्माओंके मुख्य निवासस्थान मर्यादा-पर्वतोंपर हैं। सर्वव्यापी शिव [भगवती] उमाके साथ श्रीकण्ठपर्वतकी गुफामें निवास करते हैं। सभी देवताओंके ईश्वर शिवका आधिपत्य श्रीकण्ठ पर्वतपर है। इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति श्रीकण्ठसे ही हुई है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६—१८॥

अनन्त, ईश आदि इनमेंसे प्रत्येक देवता ब्रह्माण्ड रक्षक हैं, अतः वे चक्रवर्ती तथा विद्येश्वर कहे गये हैं। अब मैं मर्यादापर्वतोंपर श्रीकण्ठसे अधिष्ठित स्थानोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ, आपलोग सुनिये। मैं श्रीकण्ठसे अधिष्ठित कालाग्निशिवपर्यन्त इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का विस्तारपूर्वक वर्णन कैसे कर सकता हूँ?॥ १९—२१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यासोद्देशस्थानवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भुवनविन्यासोद्देशस्थानवर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

दिव्य भूतवनमें महादेवके निवासस्थानका वर्णन, कैलास तथा वहाँकी पवित्र नदियोंका वर्णन

सूत उवाच

देवकूटे गिरौ मध्ये महाकूटे सुशोभने।
हेमवैडूर्यमाणिक्यनीलगोमेदकान्तिभिः ॥ १
तथान्यैर्मणिमुख्यैश्च निर्मिते निर्मले शुभे।
शाखाशतसहस्राढ्ये सर्वद्रुमविभूषिते॥ २
चम्पकाशोकपुन्नागबकुलासनमण्डिते ।
पारिजातकसम्पूर्णे नानापक्षिगणान्विते॥ ३
नैकधा तु शतैश्चित्रे विचित्रकुसुमाकुले।
नितम्बपुष्पसालम्बे नैकसत्त्वगणान्विते॥ ४
विमलस्वादुपानीये नैकप्रस्त्रवणैर्युते।
निर्झरैः कुसुमाकीर्णैरनेकैश्च विभूषिते॥ ५
पुष्पोडुपवहाभिश्च स्त्रवन्तीभिरलङ्कृते।
स्निग्धवर्णं महामूलमनेकस्कन्धपादपम्॥ ६
रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमण्डलम्।
तत्र भूतवनं नाम नानाभूतगणालयम्॥ ७
महादेवस्य देवस्य शङ्करस्य महात्मनः।
दीप्तमायतनं तत्र महामणिविभूषितम्॥ ८
हेमप्राकारसंयुक्तं मणितोरणमण्डितम्।
स्फाटिकैश्च विचित्रैश्च गोपुरैश्च समन्वितम्॥ ९
सिंहासनैर्मणिमयैः शुभास्तरणसंयुतैः।
क्षितावितस्ततः सम्यक् शर्वेणाधिष्ठितैः शुभैः॥ १०
अम्लानमालानिचितैर्नानावर्णैर्गृहोत्तमैः ।
मण्डपैः सुविचित्रैस्तु स्फाटिकस्तम्भसंयुतैः॥ ११
संयुतं सर्वभूतेन्द्रैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रपूजितैः।
वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः ॥ १२
गृध्रोलूकमुखैश्चान्यैर्मृगोष्ट्राजमुखैरपि ।
प्रमथैर्विविधैः स्थूलैर्गिरिकूटोपमैः शुभैः॥ १३
करालैर्हरिकेशैश्च रोमशैश्च महाभुजैः।
नानावर्णाकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः ॥ १४

सूतजी बोले—बड़ी-बड़ी चोटियोंवाले, अत्यन्त सुन्दर, स्वर्ण-वैडूर्य, माणिक्य-नीलम-गोमेद तथा अन्य बहुमूल्य मणियोंसे निर्मित, स्वच्छ, पवित्र, सौ हजार शाखाओंसे युक्त, सभी प्रकारके वृक्षोंसे मण्डित, चम्पक-अशोक-पुन्नाग-बकुल तथा असनसे विभूषित, पारिजातसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भरे हुए, सैकड़ों प्रकारके धातुओंसे चित्रित, अद्भुत पुष्पोंसे युक्त, नीचेतक लटकती हुई पुष्प-शाखाओंसे युक्त नितम्बवाले, नानाविध पशु-समूहोंसे भरे हुए, अनेक धाराओंसे युक्त, स्वच्छ तथा स्वादिष्ट जलवाले, अनेकविध पुष्पोंसे भरे हुए निर्झरोंसे विभूषित और बहती हुई धाराओं तथा उनमें तैरते हुए पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित देवकूट पर्वतपर उसके मध्यमें मनोहर वर्णवाला, गहरी जड़ों तथा अनेक स्कन्धोंसे युक्त वृक्षोंवाला, मनोहर, घनी छायावाला, दस योजन मण्डल (परिधि)-वाला तथा अनेक भूतगणोंके निवासस्थानोंसे समन्वित भूतवन नामक वन है॥ १—७॥

वहाँ महादेव महात्मा भगवान् शंकरका कान्तिमान् निवासस्थान है। वह महामणियोंसे विभूषित; स्वर्णकी चहारदीवारीसे युक्त; मणिमय तोरणोंसे मण्डित; स्फटिकके बने हुए विचित्र गोपुरोंसे युक्त; भूमिपर इधर-उधर शुभ आस्तरणोंसे ढके हुए, शिवजीके द्वारा अधिष्ठित, सुन्दर तथा मणिमय सिंहासनोंसे युक्त; कभी न मुरझानेवाले अनेक रंगके फूलोंसे विभूषित उत्तम भवनोंसे युक्त; स्फटिकके स्तम्भोंवाले अत्यन्त विचित्र मण्डपोंसे समन्वित; ब्रह्मा, इन्द्र तथा उपेन्द्रके द्वारा पूजित सभी भूतगणोंसे संयुक्त; वराह-गज-सिंह-ऋक्ष-शार्दूल, करभ, गीध, उल्लू-मृग-उष्ट्र तथा अजके समान मुखवाले, पर्वतके शिखरके समान स्थूल, सुन्दर, भयानक सिंहके समान केशों तथा रोमोंवाले, बड़ी भुजाओंवाले, अनेक वर्ण

दीप्तास्यैर्दीप्तचरितैर्नन्दीश्वरमुखैः शुभैः।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसङ्काशैरणिमादिगुणान्वितैः ॥ १५

अशून्यममरैर्नित्यं महापरिषदैस्तथा।
तत्र भूतपतेर्देवाः पूजां नित्यं प्रयुञ्जते॥ १६

झर्झरैः शङ्खपटहैर्भेरीडिण्डिमगोमुखैः।
ललितावसितोद्गीतैर्वृत्तवल्गितगर्जितैः ॥ १७

पूजितो वै महादेवः प्रमथैः प्रमथेश्वरः।
सिद्धर्षिदेवगन्धर्वैर्ब्रह्मणा च महात्मना॥ १८

उपेन्द्रप्रमुखैश्चान्यैः पूजितस्तत्र शङ्करः।
विभक्तचारुशिखरं यत्र तच्छङ्खवर्चसम्॥ १९

कैलासो यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः।
निवासः कोटियक्षाणां तथान्येषां महात्मनाम्॥ २०

तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत्।
तस्मिन्नायतने सोमः सदास्ते सगणो हरः॥ २१

यत्र मन्दाकिनी नाम नलिनी विपुलोदका।
सुवर्णमणिसोपाना कुबेरशिखरे शुभे॥ २२

जाम्बूनदमयैः पद्मैर्गन्धस्पर्शगुणान्वितैः।
नीलवैडूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः॥ २३

तथा कुमुदखण्डैश्च महापद्मैरलङ्कृता।
यक्षगन्धर्वनारीभिरप्सरोभिश्च सेविता॥ २४

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः।
उपस्पृष्टजला पुण्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥ २५

तस्याश्चोत्तरपार्श्वे तु भवस्यायतनं शुभम्।
वैडूर्यमणिसम्पन्नं तत्रास्ते शङ्करोऽव्ययः॥ २६

द्विजाः कनकनन्दायास्तीरे वै प्राचिदक्षिणे।
वनं द्विजसहस्राढ्यं मृगपक्षिसमाकुलम्॥ २७

तत्रापि सगणः साम्बः क्रीडतेऽद्रिसमे गृहे।
नन्दायाः पश्चिमे तीरे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते॥ २८

तथा आकारवाले, विभिन्न आसनोंसे बैठे हुए प्रभामय मुखवाले, भव्य चरितवाले, ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णुके तुल्य प्रतीत होनेवाले तथा अणिमा आदि गुणोंसे समन्वित नन्दीश्वर आदि विविध प्रमथोंसे सुशोभित; देवताओं तथा महापरिषदोंसे नित्य परिपूर्ण रहता है। वहाँ देवतालोग भूतपति शिवकी नित्य पूजा करते हैं॥ ८—१६॥

प्रमथगण झाँझ, शंख, पटह, भेरी, डिण्डिम तथा गोमुख (वाद्ययन्त्रों)-द्वारा, ललित तथा मधुरगानोंके द्वारा, नाचने-कूदने तथा गर्जन-ध्वनिके द्वारा प्रमथपति महादेवकी पूजा करते हैं। वहाँ सिद्ध, ऋषि, देवता, गन्धर्व, महात्मा ब्रह्मा, उपेन्द्र आदि तथा अन्य लोग शंकरकी पूजा करते हैं। जहाँ शंकरकी पूजा होती है, वह सुन्दर शिखर दो भागोंमें बँटा हुआ तथा शंखके समान कान्तिमान् प्रतीत होता है॥ १७—१९॥

कैलास यक्षोंके राजा महात्मा कुबेरका, करोड़ों यक्षोंका तथा अन्य महात्माओंका निवासस्थान है। वहाँ देवाधिदेव शिवका विशाल भवन है। शिवजी उस भवनमें उमा तथा [अपने] गणोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। वहाँ कुबेरके सुन्दर शिखरपर बहुत जलसे भरी हुई सोने तथा मणियोंसे निर्मित सीढ़ियोंवाली और कुमुदपुष्पोंसे युक्त मन्दाकिनी नामक नदी है। वह पुण्यदायिनी तथा पवित्र मन्दाकिनी नदी गन्ध-स्पर्शगुणोंसे युक्त सुवर्णमय कमलों, नील वैदूर्यके पत्तों, गन्धयुक्त विशाल उत्पलों और कुमुदों तथा महापद्मोंसे अलंकृत; यक्षों तथा गन्धर्वोंकी स्त्रियों और अप्सराओंसे सेवित एवं देवता-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-किन्नरोंके द्वारा उपस्पृष्ट (स्नान-पानके लिये उपयुक्त) जलवाली है॥ २०—२५॥

उसके उत्तरभागमें शिवजीका वैदूर्यमणिनिर्मित सुन्दर भवन है, वहाँ अविनाशी शंकर निवास करते हैं। हे द्विजो! उसके पूर्व-दक्षिणमें कनकनन्दाके तटपर हजारों द्विजोंसे सेवित और पशुओं तथा पक्षियोंसे भरा हुआ एक वन है। वहाँ भी कैलासतुल्य भवनमें शिवजी उमा तथा गणोंके साथ क्रीड़ा करते हैं॥ २६-२७ $^{1}/_{2}$॥

नन्दाके पश्चिमी तटपर थोड़ी दूर दक्षिणमें अनेक

पुरं रुद्रपुरी नाम नानाप्रासादसङ्कुलम्।
तत्रापि शतधा कृत्वा ह्यात्मानं चाम्बया सह॥ २९
क्रीडते सगणः साम्बस्तच्छिवालयमुच्यते।
एवं शतसहस्राणि शर्वस्यायतनानि तु॥ ३०
प्रतिद्वीपे मुनिश्रेष्ठाः पर्वतेषु वनेषु च।
नदीनदतटाकानां तीरेष्वर्णवसन्धिषु॥ ३१

महलोंसे युक्त रुद्रपुरी नामक नगर है। वहाँ भी शिवजी सैकड़ों रूप धारण करके उमा तथा गणोंके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसे शिवालय कहा जाता है। इस प्रकार हे मुनिश्रेष्ठो! प्रत्येक द्वीपमें पर्वतोंपर, वनोंमें, नदी-नद-सरोवरोंके तटोंपर और समुद्रोंके संगमोंपर भगवान् शिवके सैकड़ों-हजारों निवासस्थान हैं॥ २८—३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विविधद्वीपशोभावर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विविधद्वीपशोभावर्णन' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

विभिन्न द्वीपोंकी नदियोंका वर्णन, केतुमाल, कुरुवर्ष, भारतवर्ष, किम्पुरुष आदि वर्षोंमें रहनेवाले लोगों तथा उनकी लोकवृत्तिका वर्णन

सूत उवाच

नद्यश्च बहवः प्रोक्ताः सदा बहुजलाः शुभाः।
सरोवरेभ्यः सम्भूतास्त्वसंख्याता द्विजोत्तमाः॥ १

प्राङ्मुखा दक्षिणास्यास्तु चोत्तरप्रभवाः शुभाः।
पश्चिमाग्राः पवित्राश्च प्रतिवर्षं प्रकीर्तिताः॥ २

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! प्रत्येक वर्षमें सदा विपुल जलसे भरी हुई बहुत-सी असंख्य पवित्र नदियाँ बतायी गयी हैं, वे सरोवरोंसे निकली हुई हैं। वे पवित्र नदियाँ पूर्वकी ओर, दक्षिणकी ओर, उत्तरकी ओर तथा पश्चिमकी ओर प्रवाहित होनेवाली कही गयी हैं॥ १-२॥

आकाशाम्भोनिधिर्योऽसौ सोम इत्यभिधीयते।
आधारः सर्वभूतानां देवानाममृताकरः॥ ३

अस्मात्प्रवृत्ता पुण्योदा नदी त्वाकाशगामिनी।
सप्तमेनानिलपथा प्रवृत्ता चामृतोदका॥ ४

सा ज्योतींष्यनुवर्तन्ती ज्योतिर्गणनिषेविता।
ताराकोटिसहस्राणां नभसश्च समायुता॥ ५

परिवर्तत्यहरहो यथा सोमस्तथैव सा।

आकाशमें जो जलसागर है, उसे सोम कहा जाता है। वह सभी प्राणियोंका आधार तथा देवताओंके लिये अमृतका भण्डार है; इससे निकली हुई पुण्य जलवाली नदी आकाशमें बहती है। सातवें वायुमार्गसे प्रवृत्त यह अमृतमय जलवाली नदी ज्योतिरूप गणोंके बीच प्रवाहित होती है। यह आकाशके हजारों-करोड़ों ताराओंसे घिरी हुई है। यह चन्द्रमाकी भाँति प्रतिदिन चारों ओर प्रवाहित होती रहती है॥ ३—५ $^1/_2$॥

चत्वार्यशीतिश्च तथा सहस्राणां समुच्छ्रितः॥ ६

योजनानां महामेरुः श्रीकण्ठाक्रीडकोमलः।
तत्रासीनो यतः शर्वः साम्बः सह गणेश्वरैः॥ ७

क्रीडते सुचिरं कालं तस्मात्पुण्यजला शिवा।
गिरिं मेरुं नदी पुण्या सा प्रयाति प्रदक्षिणम्॥ ८

महामेरु चौरासी हजार योजन ऊँचा है, वह भगवान् श्रीकण्ठका कोमल क्रीड़ास्थल है। वहाँ शिवजी उमा तथा गणेश्वरोंके साथ विराजमान रहते हैं और दीर्घकालतक क्रीड़ा करते हैं, अतः वह पवित्र जलवाली तथा कल्याणकारिणी है। वह पुण्यदायिनी नदी मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करती है॥ ६—८॥

विभज्यमानसलिला सा जवेनानिलेन च।
मेरोरन्तरकूटेषु निपपात चतुर्ष्वपि॥ ९

वायुके वेगके कारण विभाजित होते हुए जलवाली वह नदी मेरुके अन्तर्गत चारों कूटोंमें प्रवाहित होती है। सभी पर्वतोंको विभागपूर्वक सभी ओरसे लाँघकर वह

समन्तात्समतिक्रम्य सर्वाद्रीन् प्रविभागशः।
नियोगाद्देवदेवस्य प्रविष्टा सा महार्णवम्॥ १०

अस्या विनिर्गता नद्यः शतशोऽथ सहस्रशः।
सर्वद्वीपाद्रिवर्षेषु बहवः परिकीर्तिताः॥ ११

क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याता गङ्गा यद्गां गताम्बरात्।
केतुमाले नराः कालाः सर्वे पनसभोजनाः॥ १२

स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभा जीवितं चायुतं स्मृतम्।
भद्राश्वे शुक्लवर्णाश्च स्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः॥ १३

कालाम्रभोजनाः सर्वे निरातङ्का रतिप्रियाः।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति शिवभाविताः॥ १४

हिरणमया इवात्यर्थमीश्वरार्पितचेतसः।
तथा रमणके जीवा न्यग्रोधफलभोजनाः॥ १५

दशवर्षसहस्राणि शतानि दशपञ्च च।
जीवन्ति शुक्लास्ते सर्वे शिवध्यानपरायणाः॥ १६

हैरणमया महाभागा हिरणमयवनाश्रयाः।
एकादशसहस्राणि शतानि दशपञ्च च॥ १७

वर्षाणां तत्र जीवन्ति अश्वत्थाशनजीवनाः।
हिरणमया इवात्यर्थमीश्वरार्पितमानसाः॥ १८

कुरुवर्षे तु कुरवः स्वर्गलोकात्परिच्युताः।
सर्वे मैथुनजाताश्च क्षीरिणः क्षीरभोजनाः॥ १९

अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः।
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविणः॥ २०

त्रयोदशसहस्राणि शतानि दशपञ्च च।
जीवन्ति ते महावीर्या न चान्यस्त्रीनिषेविणः॥ २१

सहैव मरणं तेषां कुरूणां स्वर्गवासिनाम्।
हृष्टानां सुप्रवृद्धानां सर्वान्नामृतभोजिनाम्॥ २२

सदा तु चन्द्रकान्तानां सदा यौवनशालिनाम्।
श्यामाङ्गानां सदा सर्वभूषणास्पददेहिनाम्॥ २३

जम्बूद्वीपे तु तत्रापि कुरुवर्षं सुशोभनम्।
तत्र चन्द्रप्रभं शम्भोर्विमानं चन्द्रमौलिनः॥ २४

देवदेव शिवके आदेशसे महासागरमें प्रवेश करती है। इससे निकली हुई सैकड़ों-हजारों अनेक नदियाँ कही गयी हैं, जो सभी द्वीपों, पर्वतों तथा देशोंमें हैं। छोटी नदियाँ तो असंख्य हैं; गंगा आकाशसे पृथ्वीपर आयी हुई हैं, इसलिये वे गंगा कहलाती हैं॥ ९—११½॥

केतुमालवर्षमें मनुष्य कृष्णवर्णवाले हैं, वे सब कटहलका आहार ग्रहण करते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ उत्पलके वर्णवाली हैं। वहाँके लोगोंकी आयु दस हजार वर्ष कही गयी है। भद्राश्ववर्षमें स्त्रियाँ चन्द्रमाकी किरणोंके समान शुक्ल वर्णकी हैं। वहाँके सभी लोग कालाम्रका भोजन करनेवाले, भयरहित तथा रतिप्रिय हैं। शिवका ध्यान करनेवाले वे लोग दस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। हिरण्मयवर्षके लोगोंके समान वे भी मनको ईश्वरमें लगाये रखते हैं॥ १२—१४½॥

रमणकवर्षमें लोग बरगदका फल ग्रहण करते हैं। वे ग्यारह हजार पाँच सौ वर्ष जीवित रहते हैं। वे सब शुक्लवर्णके होते हैं और शिवके ध्यानमें लगे रहते हैं। हिरण्मयवनका आश्रय लेकर महाभाग्यशाली हिरण्मय लोग रहते हैं। वे वहाँपर बारह हजार पाँच सौ वर्ष जीते हैं और अश्वत्थ (पीपल)-के आहारपर जीवित रहते हैं। हिरण्मयवर्षके लोग अपने मनको शिवमें लगाये रखते हैं॥ १५—१८॥

कुरुवर्षमें कुरुलोग स्वर्गसे गिरे हुए हैं। वे सभी मैथुनक्रियासे उत्पन्न हुए हैं। वे दुग्धका पान तथा भोजन करते हैं। वे एक-दूसरेसे प्रेम करनेवाले, चक्रवाक पक्षीके समान गुण-धर्मवाले, रोगरहित, शोकमुक्त एवं सदा सुखोंका भोग करनेवाले हैं। वे चौदह हजार पाँच सौ वर्षतक जीते हैं। वे महातेजस्वी हैं और अन्य स्त्रीका सेवन नहीं करते हैं। हृष्ट-पुष्ट, अत्यन्त प्रबुद्ध, सभी प्रकारके अन्न तथा अमृतके आहारवाले, सदा चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, सदा यौवनशाली, श्याम वर्णके शरीरवाले एवं सर्वदा सभी प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित शरीरवाले उन स्वर्गवासी कुरुओंका मरण साथ-साथ होता है। वहाँ जम्बूद्वीपमें भी अत्यन्त सुन्दर कुरुवर्ष है। चन्द्रशेखर शिवका चन्द्रमाकी प्रभाके समान एक विमान वहाँपर विद्यमान है॥ १९—२४॥

वर्षे तु भारते मर्त्याः पुण्याः कर्मवशायुषः।
शतायुषः समाख्याता नानावर्णाल्पदेहिनः॥ २५

नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्मफलाशिनः।
नानाज्ञानार्थसम्पन्ना दुर्बलाश्चाल्पभोगिनः॥ २६

भारतवर्षमें मनुष्य पुण्यशाली, कर्मके अधीन आयुवाले, [प्रायः] सौ वर्षकी आयुवाले, अनेक रंगवाले, छोटे शरीरवाले, अनेक देवताओंकी पूजामें परायण, नानाविध कर्मोंका फल भोगनेवाले, अनेक ज्ञानके अर्थोंसे सम्पन्न, दुर्बल तथा अल्प सुखको भोगनेवाले कहे गये हैं॥ २५-२६॥

इन्द्रद्वीपे तथा केचित्तथैव च कसेरुके।
ताम्रद्वीपं गताः केचित्केचिद्देशं गभस्तिमत्॥ २७

नागद्वीपं तथा सौम्यं गान्धर्वं वारुणं गताः।
केचिन्म्लेच्छाः पुलिन्दाश्च नानाजातिसमुद्भवाः॥ २८

पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च सर्वशः॥ २९

इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः।
तेषां संव्यवहारोऽयं वर्ततेऽत्र परस्परम्॥ ३०

धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु।
सङ्कल्पश्चाभिमानश्च आश्रमाणां यथाविधि॥ ३१

इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्यत्र मानुषी।
तेषां च युगकर्माणि नान्यत्र मुनिपुङ्गवाः॥ ३२

उनमेंसे कुछ इन्द्रद्वीपमें, कुछ कसेरुकद्वीपमें, कुछ ताम्रद्वीपमें और कुछ गभस्तिमान् देशमें चले गये। कुछ नागद्वीपमें, कुछ सोमद्वीपमें, कुछ गन्धर्वद्वीपमें तथा कुछ वरुणद्वीपमें चले गये। कुछ लोग विविध जातियोंसे उत्पन्न म्लेच्छ और पुलिन्द हैं। उस द्वीपके पूर्वी भागमें किरात तथा पश्चिमी भागमें यवन बताये गये हैं। उसके मध्यभागमें सर्वत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हैं। वे पूजन, युद्ध, वाणिज्य आदिके द्वारा जीविका चलाते हुए वहाँ व्यवस्थित हैं। उन वर्णोंका अपने-अपने कर्मोंमें परस्पर यह व्यवहार धर्म, अर्थ तथा कामसे सम्बन्धित है। उनमें संकल्प एवं अभिमान [ब्रह्मचर्य आदि] आश्रमोंमें उचित रूपमें विद्यमान है। वहाँपर स्वर्ग तथा मोक्षके लिये मनुष्योंकी जो प्रवृत्ति है और उनके जो युगकर्म हैं, हे मुनिश्रेष्ठो! वैसा अन्यत्र नहीं है॥ २७—३२॥

दशवर्षसहस्त्राणि स्थितिः किम्पुरुषे नृणाम्।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥ ३३

अनामया ह्यशोकाश्च सर्वे ते शिवभाविताः।
शुद्धसत्त्वाश्च हेमाभाः सदाराः प्लक्षभोजनाः॥ ३४

किम्पुरुषवर्षमें मनुष्योंकी स्थिति दस हजार वर्षतक रहती है। वहाँके पुरुष सुवर्णके रंगवाले होते हैं और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान होती हैं। वे सब रोगरहित, शोकरहित, शिवभक्तिसे युक्त, विशुद्ध सत्त्वगुणसे सम्पन्न, स्वर्णके समान आभावाले, अपनी पत्नियोंके साथ रहनेवाले तथा गूलरका भोजन करनेवाले होते हैं॥ ३३-३४॥

महारजतसङ्काशा हरिवर्षेऽपि मानवाः।
देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवाकाराश्च सर्वशः॥ ३५

हरं यजन्ति सर्वेशं पिबन्तीक्षुरसं शुभम्।
न जरा बाधते तेन न च जीर्यन्ति ते नराः॥ ३६

दशवर्षसहस्त्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः।

हरिवर्षमें भी मनुष्य महारजतके समान वर्णवाले होते हैं। वे सब देवलोकसे च्युत हुए हैं और हर प्रकारसे देवताओंके आकारके होते हैं। वे सर्वेश्वर शिवका पूजन करते हैं और पवित्र इक्षुरसका पान करते हैं, अतः उन्हें बुढ़ापा बाधित नहीं करता और वे लोग वृद्ध नहीं होते। वहाँ मनुष्य दस हजार वर्ष जीवित रहते हैं॥ ३५-३६ $^1/_2$॥

मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्॥ ३७

न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः।
चन्द्रसूर्यौ न नक्षत्रं न प्रकाशमिलावृते॥ ३८

मध्यमें स्थित जो इलावृत नामक वर्ष कहा गया है, वहाँ सूर्य नहीं तपता है और वहाँ मनुष्य बूढ़े नहीं होते। इलावृतवर्षमें न सूर्य-चन्द्रमा हैं, न तारे हैं और

पद्मप्रभाः पद्ममुखाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः।
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते भवभाविताः॥ ३९

जम्बूफलरसाहारा अनिष्यन्दाः सुगन्धिनः।
देवलोकागतास्तत्र जायन्ते ह्यजरामराः॥ ४०

त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः।
आयुःप्रमाणं जीवन्ति वर्षे दिव्ये त्विलावृते॥ ४१

जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधते त्विमान्।
न क्षुधा न क्लमश्चापि न जनो मृत्युमांस्तथा॥ ४२

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।
इन्द्रगोपप्रतीकाशं जायते भास्वरं तु तत्॥ ४३

एवं मया समाख्याता नववर्षानुवर्तिनः।
वर्णायुर्भोजनाद्यानि सङ्क्षिप्य न तु विस्तरात्॥ ४४

हेमकूटे तु गन्धर्वा विज्ञेयाश्चाप्सरोगणाः।
सर्वे नागाश्च निषधे शेषवासुकितक्षकाः॥ ४५

महाबलास्त्रयस्त्रिंशद्रमन्ते याज्ञिकाः सुराः।
नीले तु वैडूर्यमये सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥ ४६

दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते।
शृङ्गवान् पर्वतश्चैव पितॄणां निलयः सदा॥ ४७

हिमवान् यक्षमुख्यानां भूतानामीश्वरस्य च।
सर्वाद्रिषु महादेवो हरिणा ब्रह्मणाम्बया॥ ४८

नन्दिना च गणैश्चैव वर्षेषु च वनेषु च।
नीलश्वेतत्रिशृङ्गे च भगवान्नीललोहितः॥ ४९

सिद्धैर्देवैश्च पितृभिर्दृष्टो नित्यं विशेषतः।
नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरणमयः॥ ५०

मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुम्भस्त्रिशृङ्गवान्।
एते पर्वतराजानो जम्बूद्वीपे व्यवस्थिताः॥ ५१

न तो प्रकाश ही है। वहाँके लोग कमलके समान प्रभावाले, कमलके समान मुखवाले, कमलके पत्रके समान नेत्रोंवाले और कमलपत्रकी सुगन्धिसे युक्त होते हैं। वे शिवमें ध्यानपरायण रहते हैं। वे जामुनके फलके रसका आहार करनेवाले, धूपके प्रभावसे रहित तथा सुगन्धमय होते हैं। देवलोकसे आये हुए वे लोग अजर-अमर होते हैं। उस दिव्य इलावृतवर्षमें वे श्रेष्ठ मनुष्य तेरह हजार वर्षतक अपनी पूरी आयुभर जीवित रहते हैं। जामुनके फलका रस पीनेसे इन्हें न बुढ़ापा बाधित करता है, न भूख लगती है और न थकावट होती है। वहाँके लोग [समयसे पूर्व] मरते नहीं हैं। वहाँ जाम्बूनद नामक स्वर्ण होता है; वह देवताओंका आभूषण है तथा इन्द्रगोप (कीटविशेष)-के समान प्रकाशमान रहता है॥ ३७—४३॥

इस प्रकार मैंने नौ वर्षोंके निवासियोंका वर्णन कर दिया। मैंने उनके वर्ण, आयु, भोजन आदिके विषयमें विस्तारसे नहीं बल्कि संक्षेपमें कहा है॥ ४४॥

हेमकूटपर्वतपर गन्धर्वों तथा अप्सराओंको रहनेवाला जानना चाहिये। शेष, वासुकि, तक्षक और सभी नाग निषधपर रहते हैं। तैंतीस महाबली याज्ञिक देवता, सिद्धगण तथा विशुद्धात्मा ब्रह्मर्षि वैदूर्य मणिवाले नीलपर्वतपर रहते हैं॥ ४५-४६॥

दैत्यों एवं दानवोंका निवासस्थान श्वेतपर्वत कहा जाता है। शृंगवान्पर्वत [सभी] पितरोंका निवासस्थान है। हिमवान् सभी यक्षों, भूतों तथा शिवका निवास है। महादेवजी श्रीविष्णु, ब्रह्मा, उमा, नन्दी और [अपने] गणोंके साथ सभी पर्वतों, वर्षों तथा वनोंमें निवास करते हैं। भगवान् नीललोहित नील, श्वेत एवं त्रिशृंग पर्वतोंपर विशेष रूपसे सिद्धों, देवताओं तथा पितरोंके साथ सदा दिखायी पड़ते हैं। नीलपर्वत वैदूर्यमय, श्वेतपर्वत शुक्लवर्णवाला, हिरण्यमयपर्वत मोरपंखके वर्णका और शृंगवान्पर्वत सुनहरे वर्णका है। ये सभी पर्वतराज जम्बूद्वीपमें स्थित हैं॥ ४७—५१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशस्वभाववर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भुवनकोशस्वभाववर्णन' नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

भुवनकोशवर्णनमें प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंचद्वीपोंके महापर्वतों, ऊर्ध्वलोकों तथा नरकोंका वर्णन, सर्वत्र सदाशिवकी व्यापकता एवं यक्षरूप शिव और भगवती उमाका माहात्म्य

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपादिद्वीपेषु सप्त सप्तसु पर्वताः।
ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः॥ १

प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान् महाचलान्।
गोमेदकोऽत्र प्रथमो द्वितीयश्चान्द्र उच्यते॥ २

तृतीयो नारदो नाम चतुर्थो दुन्दुभिः स्मृतः।
पञ्चमः सोमको नाम सुमनाः षष्ठ उच्यते॥ ३

स एव वैभवः प्रोक्तो वैभ्राजः सप्तमः स्मृतः।
सप्तैते गिरयः प्रोक्ताः प्लक्षद्वीपे विशेषतः॥ ४

सप्त वै शाल्मलिद्वीपे तांस्तु वक्ष्याम्यनुक्रमात्।
कुमुदश्चोत्तमश्चैव पर्वतश्च बलाहकः॥ ५

द्रोणः कङ्कश्च महिषः ककुद्मान् सप्तमः स्मृतः।
कुशद्वीपे तु सप्तैव द्वीपाश्च कुलपर्वताः॥ ६

तांस्तु सङ्क्षेपतो वक्ष्ये नाममात्रेण वै क्रमात्।
विद्रुमः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो हेमपर्वतः॥ ७

तृतीयो द्युतिमान्नाम चतुर्थः पुष्पितः स्मृतः।
कुशेशयः पञ्चमस्तु षष्ठो हरिगिरिः स्मृतः॥ ८

सप्तमो मन्दरः श्रीमान् महादेवनिकेतनम्।
मन्दा इति ह्यपां नाम मन्दरो धारणादपाम्॥ ९

तत्र साक्षाद् वृषाङ्कस्तु विश्वेशो विमलः शिवः।
सोमः सनन्दी भगवानास्ते हेमगृहोत्तमे॥ १०

तपसा तोषितः पूर्वं मन्दरेण महेश्वरः।
अविमुक्ते महाक्षेत्रे लेभे स परमं वरम्॥ ११

प्रार्थितश्च महादेवो निवासार्थं सहाम्बया।
अविमुक्तादुपागम्य चक्रे वासं स मन्दरे॥ १२

सनन्दी सगणः सोमस्तेनासौ तन्न मुञ्चति।
क्रौञ्चद्वीपे तु सप्तेह क्रौञ्चाद्याः कुलपर्वताः॥ १३

सूतजी बोले—प्लक्ष आदि सात द्वीपोंमें सात पर्वत हैं, जो सीधे, लम्बे तथा प्रत्येक दिशाओंमें फैले हुए हैं; वे वर्षपर्वतके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ १॥

मैं प्लक्षद्वीपमें स्थित सातों दिव्य महापर्वतोंका वर्णन करूँगा। पहला गोमेदक तथा दूसरा चान्द्र कहा जाता है। तीसरा नारद तथा चौथा दुन्दुभि नामवाला कहा गया है। पाँचवाँ सोमक तथा छठा सुमनस् नामवाला कहा जाता है, उसे वैभव [नामवाला] भी कहा गया है। सातवाँ पर्वत वैभ्राज नामसे प्रसिद्ध है। विशेष रूपसे ये ही सात पर्वत प्लक्षद्वीपमें बताये गये हैं॥ २—४॥

शाल्मलिद्वीपमें भी सात पर्वत हैं, मैं क्रमसे उन्हें बताऊँगा। कुमुद, उत्तम, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष और सातवाँ ककुद्मान् कहा गया है। कुशद्वीपमें भी सात उपद्वीप और कुलपर्वत हैं। मैं केवल नामसे ही संक्षेपमें उन्हें बताऊँगा। पहला विद्रुम तथा दूसरा हेमपर्वत कहा गया है। तीसरा द्युतिमान् एवं चौथा पुष्पित नामवाला बताया गया है। पाँचवाँ कुशेशय तथा छठा हरिगिरि [नामवाला] कहा गया है। सातवाँ पर्वत शोभासम्पन्न मन्दर है, यह महादेवजीका निवासस्थान है। जलोंका नाम मन्दा है; इसीलिये जलोंको धारण करनेसे इसका नाम मन्दर है॥ ५—९॥

साक्षात् भगवान् वृषभध्वज विश्वेश्वर अमलात्मा शिव वहाँ उत्तम सुवर्णगृहमें पार्वती तथा नन्दीके साथ रहते हैं। पूर्वकालमें मन्दरने महाक्षेत्र अविमुक्तमें [अपनी] तपस्यासे महेश्वरको प्रसन्न किया था और उनसे महावरदान प्राप्त किया था॥ १०-११॥

उसने महादेवजीसे उमाके साथ वहाँ निवास करनेके लिये प्रार्थना की, तब वे [शिव] अविमुक्तक्षेत्रसे आकर नन्दी, अपने गणों तथा उमाके साथ मन्दर [पर्वत]-पर निवास करने लगे, इसीलिये वे उस पर्वतको नहीं छोड़ते हैं॥ १२१/२॥

क्रौञ्चो वामनकः पश्चात्तृतीयश्चान्धकारकः।
अन्धकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः॥ १४

दिवावृतः परश्चापि विविन्दो गिरिरुच्यते।
विविन्दात्परतश्चापि पुण्डरीको महागिरिः॥ १५

पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः।
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः॥ १६

शाकद्वीपे च गिरयः सप्त तांस्तु निबोधत।
उदयो रैवतश्चापि श्यामको मुनिसत्तमाः॥ १७

राजतश्च गिरिः श्रीमानाम्बिकेयः सुशोभनः।
आम्बिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिसमन्वितः॥ १८

तथैव केसरीत्युक्तो यतो वायुः प्रजायते।
पुष्करे पर्वतः श्रीमान्नेक एव महाशिलः॥ १९

चित्रैर्मणिमयैः कूटैः शिलाजालैः समुच्छ्रितैः।
द्वीपस्य तस्य पूर्वार्धे चित्रसानुस्थितो महान्॥ २०

योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
अधश्चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि महाचलः॥ २१

द्वीपस्यार्धे परिक्षिप्तः पर्वतो मानसोत्तरः।
स्थितो वेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः॥ २२

योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तावदेव तु विस्तीर्णः पार्श्वतः परिमण्डलः॥ २३

स एव द्वीपपश्चार्धे मानसः पृथिवीधरः।
एक एव महासानुः सन्निवेशाद् द्विधा कृतः॥ २४

तस्मिन् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ।
राजतौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ॥ २५

महावीतं तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तु।
तस्यैवाभ्यन्तरो यस्तु धातकीखण्ड उच्यते॥ २६

स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः।
पुष्करद्वीपविस्तारविस्तीर्णोऽसौ समन्ततः॥ २७

विस्तारान्मण्डलाच्चैव पुष्करस्य समेन तु।
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः॥ २८

क्रौंचद्वीपमें भी क्रौंच आदि सात कुलपर्वत हैं। [पहला] क्रौंच, [दूसरा] वामन तथा तीसरा अन्धकारक पर्वत है। अन्धकारकके बाद दिवावृत् नामक पर्वत है। दिवावृत्के बाद विविन्द पर्वत कहा जाता है। विविन्दके बाद पुण्डरीक नामक महान् पर्वत है और पुण्डरीकके बाद दुन्दुभिस्वन पर्वत कहा जाता है। क्रौंचद्वीपके ये सातों पर्वत रत्नमय हैं॥ १३—१६॥

शाकद्वीपमें भी सात पर्वत हैं, उन्हें जानिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! उदय, रैवत, श्यामक, शोभासम्पन्न राजतपर्वत तथा अत्यन्त सुन्दर आम्बिकेय पर्वत हैं। आम्बिकेयके बाद सभी प्रकारकी औषधियोंसे युक्त रम्य नामक पर्वत है। उसके बाद केसरीपर्वत कहा गया है, जहाँसे वायु उत्पन्न होती है॥ १७-१८½॥

पुष्करद्वीपमें महाशिल नामक एक ही शोभासम्पन्न पर्वत है; यह अद्भुत मणियोंवाले शिखरोंसे तथा शिलासमूहोंसे युक्त है। यह महान् पर्वत उस द्वीपके आधे पूर्वी भागमें अनेक रंगोंके किनारोंके साथ पचास हजार योजन ऊँचा उठा हुआ है। यह महान् पर्वत [भूतलसे] चौंतीस हजार योजन नीचेतक गया है। यह पर्वत द्वीपके आधे भागमें उत्तरकी ओर मानसशृंखलाके ऊपर फैला हुआ है। समुद्रके समीप स्थित यह पर्वत उगे हुए नवीन चन्द्रमाके समान प्रतीत होता है॥ १९—२२॥

यह पचास हजार योजन ऊपरकी ओर उठा हुआ है। इसकी चौड़ाई तथा चारों ओरका घेरा भी उतना ही विस्तृत है। द्वीपके पश्चिमी आधे भागमें यही पर्वत मानस नामसे प्रतिष्ठित है। यह महापर्वत एक होता हुआ भी सन्निवेशके कारण दो भागोंमें विभक्त हो गया है॥ २३-२४॥

उस द्वीपमें चाँदीके समान प्रभावाले दो पुण्यमय तथा शुभ जनपद बताये गये हैं, जो इस मानस पर्वतको घेरे हुए हैं। मानसके बाहर जो महावीत नामक वर्ष है, उसके भीतर जो जनपद है, उसे धातकीखण्ड कहा जाता है॥ २५-२६॥

पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले सागरसे घिरा हुआ है। यह [सागर] सभी ओर पुष्करद्वीपके विस्तारके बराबर विस्तीर्ण है। यह विस्तारमें तथा घेरेमें पुष्कर द्वीपके ही समान है। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए

द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रः सप्तमस्तु वै।
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्॥ २९
परेण पुष्करस्याथ अनुवृत्य स्थितो महान्।
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्तात्परिवेष्ट्य च॥ ३०
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः।
काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैकशिलोपमा॥ ३१
तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादापारमण्डलः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते॥ ३२
दृश्यादृश्यगिरिर्यावत्तावदेषा धरा द्विजाः।
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः॥ ३३
तावांश्च विस्तरस्तस्य लोकालोकमहागिरेः।
अर्वाचीने तु तस्यार्धे चरन्ति रविरश्मयः॥ ३४
परार्धे तु तमो नित्यं लोकालोकस्ततः स्मृतः।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो भूर्लोकस्य च विस्तरः॥ ३५
आभानोर्वै भुवः स्वस्तु आध्रुवान्मुनिसत्तमाः।
आवहाद्या निविष्टास्तु वायोर्वै सप्त नेमयः॥ ३६
आवहः प्रवहश्चैव ततश्चानुवहस्तथा।
संवहो विवहश्चाथ ततश्चोर्ध्वं परावहः॥ ३७
द्विजाः परिवहश्चेति वायोर्वै सप्त नेमयः।
बलाहकास्तथा भानुश्चन्द्रो नक्षत्रराशयः॥ ३८
ग्रहाणि ऋषयः सप्त ध्रुवो विप्राः क्रमादिह।
योजनानां महीपृष्ठादूर्ध्वं पञ्चदशाध्रुवात्॥ ३९
नियुतान्येकनियुतं भूपृष्ठाद्भानुमण्डलम्।
रथः षोडशसाहस्रो भास्करस्य तथोपरि॥ ४०
चतुराशीतिसाहस्रो मेरुश्चोपरि भूतलात्।
कोटियोजनमाक्रम्य महर्लोको ध्रुवाद् ध्रुवः॥ ४१
जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयं द्विजाः।
जनलोकात्तपोलोकश्चतस्रः कोटयो मतः॥ ४२
प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकः कोटिषट्कं विसृज्य तु।
पुण्यलोकास्तु सप्तैते ह्यण्डेऽस्मिन् कथिता द्विजाः॥ ४३
अधः सप्ततलानां तु नरकाणां हि कोटयः।
मायान्ताश्चैव घोराद्या अष्टाविंशतिरेव तु॥ ४४
पापिनस्तेषु पच्यन्ते स्वस्वकर्मानुरूपतः।
अवीच्यन्तानि सर्वाणि रौरवाद्यानि तेषु च॥ ४५

हैं। द्वीपके अनन्तर जो समुद्र है, वह सातवाँ समुद्र है। इस प्रकार द्वीपों तथा समुद्रोंकी परस्पर वृद्धिको जानना चाहिये॥ २७—२९॥

पुष्करके बाहर उसे चारों ओरसे घेरकर स्वादिष्ट जलसे युक्त महान् समुद्र स्थित है। उसके बाहर महती लोकस्थिति दिखायी देती है, वहाँकी भूमि स्वर्णमयी है और विस्तारमें दुगुनी है। सम्पूर्ण भूमि एक शिलाके तुल्य है। उसके परे मर्यादामण्डलस्वरूप एक पर्वत है। इसका कुछ भाग प्रकाशमय तथा कुछ भाग अन्धकारमय रहता है, इसे लोकालोक [पर्वत] कहा जाता है। हे द्विजो! जितना यह दृश्य-अदृश्य पर्वत है, उतनी ही यह धरा है। उसकी (पर्वतकी) ऊँचाई दस हजार योजन कही गयी है। उस लोकालोक [नामक] महापर्वतका विस्तार भी उतना ही है। उसके आधे भागमें सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं और दूसरे आधे भागमें सदा अन्धकार रहता है, इसलिये इसे लोकालोक कहा गया है। [हे द्विजो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपमें भूलोकके विस्तारका वर्णन किया॥ ३०—३५॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! भुवर्लोक सूर्यतक है और स्वर्लोक ध्रुवतक है। आवह आदि वायुकी सात नेमियाँ कही गयी हैं। हे द्विजो! आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, परावह और परिवह—ये वायुकी सात नेमियाँ हैं। हे विप्रो! मेघ, सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, राशियाँ, ग्रह सप्तर्षि और ध्रुव—ये क्रमसे व्यवस्थित हैं॥ ३६—३८ $^{1}/_{2}$॥

पृथ्वीतलसे ऊपर ध्रुवलोकपर्यन्त पन्द्रह नियुत योजनकी दूरी है। भूपृष्ठसे भानुमण्डल एक नियुत योजन दूर है। उसके ऊपर सूर्यका रथ सोलह हजार योजन है। मेरु पर्वत पृथ्वीतलसे चौरासी हजार योजनपर है। ध्रुवसे एक करोड़ योजनके बाद महर्लोक है। हे द्विजो! महर्लोकसे दो करोड़ योजनकी दूरीपर जनलोक है। जनलोकसे चार करोड़ योजनकी दूरीपर तपोलोक कहा गया है। प्राजापत्यलोक (तपोलोक)-से छः करोड़ योजनकी दूरी छोड़कर ब्रह्मलोक स्थित है। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार इस ब्रह्माण्डमें इन सात पुण्यलोकोंको मैंने बता दिया॥ ३९—४३॥

सात तलोंके नीचे घोरसे लेकर मायातक अट्ठाईस कोटिके नरक हैं; पापीलोग उनमें अपने-अपने कर्मोंके अनुरूप दुःख भोगते हैं। उनमेंसे प्रत्येकमें रौरवसे लेकर

प्रत्येकं पञ्चकान्याहुर्नरकाणि विशेषतः।
अण्डमादौ मया प्रोक्तमण्डस्यावरणानि च॥ ४६

हिरण्यगर्भसर्गश्च प्रसङ्गाद्बहुविस्तरात्।
अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्त्रशः॥ ४७

सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा।
अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश॥ ४८

प्रत्यण्डं द्विजशार्दूलास्तेषां हेतुर्महेश्वरः।
अण्डेषु चाण्डबाह्येषु तथाण्डावरणेषु च॥ ४९

तमोऽन्ते च तमःपारे चाष्टमूर्तिर्व्यवस्थितः।
अस्यात्मनो महेशस्य महादेवस्य धीमतः॥ ५०

अदेहिनस्त्वहो देहमखिलं परमात्मनः।
अस्याष्टमूर्तेः शर्वस्य शिवस्य गृहमेधिनः॥ ५१

गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादयः।
पशवः किङ्करास्तस्य सर्वे देहाभिमानिनः॥ ५२

आद्यन्तहीनो भगवाननन्तः
पुमान् प्रधानप्रमुखाश्च सप्त।
प्रधानमूर्तिस्त्वथ षोडशाङ्गो
महेश्वरश्चाष्टतनुः स एव॥ ५३

आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह
धराधरा वारिधराः समुद्राः।
ज्योतिर्गणः शक्रमुखाः सुराश्च
वैमानिकाः स्थावरजङ्गमाश्च॥ ५४

दृष्ट्वा यक्षं लक्षणैर्हीनमीशं
दृष्ट्वा सेन्द्रास्ते किमेतत्त्विहेति।
यक्षं गत्वा निश्चयात्पावकाद्याः
शक्तिक्षीणाश्चाभवन्यत्ततोऽपि ॥ ५५

अवीचितक सभी विशेष रूपसे पाँच नरक कहे गये हैं। मैंने आदिमें अण्डका वर्णन किया और अण्डके आवरणोंका भी वर्णन किया एवं प्रसंगवश ब्रह्माकी सृष्टिका भी विस्तारसे वर्णन किया। इस प्रकारके हजारों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको जानना चाहिये॥ ४४—४७॥

प्रधानके सर्वगामी होनेके कारण इन अण्डोंमें तिर्यक्, ऊपर तथा नीचे [सभी ओर] चौदह भुवन हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! उनमें प्रत्येक अण्डके हेतु महेश्वर हैं। अष्टमूर्ति [शिव] अण्डोंमें, अण्डोंके बाहर, अण्डोंके आवरणोंमें, अन्धकारके भीतर तथा अन्धकारके परे भी विद्यमान हैं। सम्पूर्ण जगत् इन महेश्वर, महादेव, धीमान्, देहरहित परमात्माका शरीर है। गृहस्थरूप इन अष्टमूर्ति शर्व शिवकी गृहिणी दिव्य प्रकृति है, महत् आदि इनकी सन्तानें हैं और सभी देहाभिमानी पशु इनके सेवक हैं॥ ४८—५२॥

वे [शिव] ही आदि-अन्तसे रहित, भगवान् अनन्त, पुरुष, प्रधान आदि (बुद्धि, अहंकार आदि) सात तत्त्व, प्रधान मूर्तिवाले, सोलह अंगोंवाले (पंचमहाभूत, दस इन्द्रियाँ, मन), अष्टमूर्ति तथा महेश्वर हैं। उन्हींकी आज्ञाके प्रभावसे पृथ्वी, पर्वत, मेघ, समुद्र, तारागण, इन्द्र आदि देवता, वैमानिक तथा स्थावर-जंगम सभी प्राणी स्थित हैं॥ ५३-५४॥

लक्षणोंसे रहित यक्षरूपी शिवको देखकर इन्द्रसहित

अग्नि आदि वे देवता 'यहाँ यह क्या है?'—ऐसा

दग्धुं तृणं वापि समक्षमस्य
यक्षस्य वह्निर्न शशाक विप्राः।
वायुस्तृणं चालयितुं तथान्ये
स्वान् स्वान् प्रभावान् सकलामरेन्द्राः॥ ५६

तदा स्वयं वृत्ररिपुः सुरेन्द्रैः
सुरेश्वरः सर्वसमृद्धिहेतुः।
सुरेश्वरं यक्षमुवाच को वा
भवानितीत्थं सकुतूहलात्मा॥ ५७

तदा ह्यदृश्यं गत एव यक्ष-
स्तदाम्बिका हैमवती शुभास्या।
उमा शुभैराभरणैरनेकैः
सुशोभमाना त्वनु चाविरासीत्॥ ५८

तां शक्रमुख्या बहुशोभमाना-
मुमामजां हैमवतीमपृच्छन्।
किमेतदीशे बहुशोभमाने
को वाम्बिके यक्षवपुश्चकास्ति॥ ५९

निशम्य तद्यक्षमुमाम्बिकाह
त्वगोचरश्चेति सुराः सशक्राः।
प्रणेमुरेनां मृगराजगामिनी-
मुमामजां लोहितशुक्लकृष्णाम्॥ ६०

सम्भाविता सा सकलामरेन्द्रैः
सर्वप्रवृत्तिस्तु सुरासुराणाम्।
अहं पुरासं प्रकृतिश्च पुंसो
यक्षस्य चाज्ञावशगेत्यथाह॥ ६१

तस्माद् द्विजाः सर्वमजस्य तस्य
नियोगतश्चाण्डमभूदजाद्वै ।
अजश्च अण्डादखिलं च तस्मात्
ज्योतिर्गणैर्लोकमजात्मकं तत्॥ ६२

सोचकर अनिश्चयकी दशामें यक्षके समीप जाकर वे शक्तिहीन हो गये॥ ५५॥

हे विप्रो! अग्निदेव उस यक्षके सामने तिनका भी नहीं जला सके, पवन उस तृणको उड़ानेमें समर्थ नहीं हुए, उसी प्रकार अन्य समस्त श्रेष्ठ देवता भी अपने-अपने प्रभाव प्रदर्शित करनेमें समर्थ नहीं हुए। तब सभी श्रेष्ठ देवताओंके साथ समस्त समृद्धियोंके कारणभूत वृत्रशत्रु उन देवेन्द्रने कुतूहलचित्त होकर यक्षरूप सुरेश्वरसे इस प्रकार कहा—आप कौन हैं?॥ ५६-५७॥

उसी समय यक्ष अदृश्य हो गये। तब सुन्दर मुखवाली तथा अनेक शुभ आभरणोंसे अत्यन्त शोभित होती हुई हैमवती अम्बिका उमा प्रकट हो गयीं॥ ५८॥

इन्द्र आदिने सुशोभित होती हुई उन हैमवती अजा उमासे पूछा—हे ईशे! हे परम शोभायमान अम्बिके! यह यक्षदेहधारी कौन है?॥ ५९॥

यह सुनकर उमा अम्बिकाने कहा—यह अगोचर है; तब इन्द्रसहित सभी देवताओंने उस यक्षको तथा सिंहगामिनी और लोहित-शुक्ल-कृष्णवर्णवाली इन अजा उमाको प्रणाम किया॥ ६०॥

सभी श्रेष्ठ देवताओंसे सत्कृत होकर देवताओं तथा दानवोंकी समस्त प्रवृत्तिरूपा उन देवीने कहा—मैं पूर्वकालमें इस यक्षरूप [परम] पुरुषकी आज्ञाके अधीन रहनेवाली प्रकृति थी*॥ ६१॥

अतः हे द्विजो! उन्हीं अज (शिव)-के नियोगसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन ब्रह्मासे अण्ड उत्पन्न हुआ और अण्डसे ज्योतिर्गणोंसहित समग्र विश्व उत्पन्न हुआ; इस प्रकार सब कुछ शिवात्मक है॥ ६२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासनिर्णयो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भुवनकोशविन्यासनिर्णय' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

* परम पुरुषकी सर्वोत्कृष्टताको बतानेवाला यह 'हैमवती-आख्यान' मूलरूपसे सामवेदके तलवकारब्राह्मणके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाले केनोपनिषद्में उपलब्ध होता है।

चौवनवाँ अध्याय

ज्योतिःसन्निवेशवर्णनमें लोकपालोंकी पुरियोंका वर्णन, सूर्यकी स्थिति तथा उसकी गतिसे होनेवाले अयन एवं ऋतुओंकी स्थिति, ध्रुवस्थान तथा मेघोंका स्वरूप और वृष्टिका प्रादुर्भाव

सूत उवाच

ज्योतिर्गणप्रचारं वै सङ्क्षिप्याण्डे ब्रवीम्यहम्।
देवक्षेत्राणि चालोक्य ग्रहचारप्रसिद्धये॥ १

मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः पुरी स्थिता।
दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य च वारुणी॥ २

सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवताः स्थिताः।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात्॥ ३

लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने।
काष्ठां गतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत॥ ४

दक्षिणप्रक्रमे भानुः क्षिप्तेषुरिव धावति।
ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति॥ ५

पुरान्तगो यदा भानुः शक्रस्य भवति प्रभुः।
सर्वैः सायमनैः सौरो ह्युदयो दृश्यते द्विजाः॥ ६

स एव सुखवत्यां तु निशान्तस्थः प्रदृश्यते।
अस्तमेति पुनः सूर्यो विभायां विश्वदृग्विभुः॥ ७

मया प्रोक्तोऽमरावत्यां यथासौ वारितस्करः।
तथा संयमनीं प्राप्य सुखां चैव विभां खगः॥ ८

यदापराह्णस्त्वाग्नेय्यां पूर्वाह्णो नैर्ऋते द्विजाः।
तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः॥ ९

ईशान्यां पूर्वरात्रस्तु गतिरेषा च सर्वतः।
एवं पुष्करमध्ये तु यदा सर्पति वारिपः॥ १०

त्रिंशांशकं तु मेदिन्यां मुहूर्तेनैव गच्छति।
योजनानां मुहूर्तस्य इमां सङ्ख्यां निबोधत॥ ११

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] देवक्षेत्रोंको देखकर मैं ग्रहोंकी गतिके ज्ञानके लिये अण्डमें ज्योतिर्गणों (ग्रहों)-की गतिका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ॥ १॥

मेरुके पूर्वमें मानस पर्वतपर महेन्द्रकी पुरी स्थित है। दक्षिणमें सूर्यपुत्र यमकी, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें सोमकी विशाल पुरी है। उनमें दिग्पाल रहते हैं। वे पुरियाँ क्रमसे अमरावती, संयमनी, सुखा तथा विभा [नामवाली] हैं॥ २-३॥

लोकपालोंकी पुरियोंके ऊपर सभी ओर दक्षिणायनमें बाणके समान गतिवाले सूर्यकी जो गति है, उसे [आपलोग] जानिये। दक्षिणायनमें सूर्य बाणकी तरह गमन करते हैं, वे नक्षत्रचक्रको साथ लेकर निरन्तर परिभ्रमण करते हैं॥ ४-५॥

हे द्विजो! जब प्रभु सूर्य इन्द्रकी पुरीमें प्रवेश करते हैं, तब संयमनीपुरीके सभी लोग सूर्यका उदय देखते हैं; जब वे सूर्य संयमनीपुरीमें होते हैं, तब [पश्चिममें] सुखावतीपुरीमें प्रातःकाल होता है। उस समय विश्वके नेत्रतुल्य भगवान् सूर्य विभापुरीमें अस्त होते हैं॥ ६-७॥

जिस प्रकार मैंने अमरावतीमें सूर्यकी गतिको कहा है, उसी प्रकार ये सूर्य संयमनीको पाकर 'सुखा' तथा 'विभा'को भी प्राप्त करते हैं॥ ८॥

हे द्विजो! जब आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) भागमें अपराह्न होता है, तब नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम) भागमें पूर्वाह्न, उस समय वायव्य (उत्तर-पश्चिम) भागमें भयानक रात्रिका उत्तरार्ध और उत्तर-पूर्व भागमें रात्रिका प्रथम काल होता है। सब प्रकारसे यही गति होती है। इसी प्रकार जब जलको सोखनेवाले सूर्य आकाशके मध्यमें संचरण करते हैं, तब वे एक मुहूर्तमें पृथ्वीपर तीस अंश चलते हैं। एक मुहूर्तमें सूर्यके द्वारा पार की गयी दूरीको योजनपरिमाणमें सुनिये॥ ९—११॥

पूर्णा शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता।
पञ्चाशच्च तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु॥ १२

मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा भास्करस्य महात्मनः।
एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्॥ १३

पर्यपृच्छेत्पतङ्गोऽपि सौम्याशां चोत्तरेऽहनि।
मध्ये तु पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने॥ १४

मानसोत्तरशैले तु महातेजा विभावसुः।
मण्डलानां शतं पूर्णं तदशीत्यधिकं विभुः॥ १५

बाह्यं चाभ्यन्तरं प्रोक्तमुत्तरायणदक्षिणे।
प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मण्डलानि तु॥ १६

कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्तते।
दक्षिणप्रक्रमे देवस्तथा शीघ्रं प्रवर्तते॥ १७

तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति।
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने॥ १८

त्रयोदशार्धमृक्षाणामह्ना तु चरते रविः।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्॥ १९

कुलालचक्रमध्यं तु यथा मन्दं प्रसर्पति।
तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः॥ २०

तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां तु गच्छति।
स रथोऽधिष्ठितो भानोरादित्यैर्मुनिभिस्तथा॥ २१

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः।
प्रदीपयन् सहस्रांशुरग्रतः पृष्ठतोऽप्यधः॥ २२

ऊर्ध्वतश्च करं त्यक्त्वा सभां ब्राह्मीमनुत्तमाम्।
अम्भोभिर्मुनिभिस्त्यक्तैः सन्ध्यायां तु निशाचरान्॥ २३

हत्वा हत्वा तु सम्प्राप्तान् ब्राह्मणैश्चरते रविः।
अष्टादश मुहूर्तं तु उत्तरायणपश्चिमम्॥ २४

अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः।
त्रयोदशार्धमृक्षाणि नक्तं द्वादशभी रविः।
मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि दिवाष्टादशभिश्चरन्॥ २५

ततो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा॥ २६

वह संख्या इकतीस लाख पचास हजार योजन कही गयी है। यह महात्मा भास्करकी एक मुहूर्तकी गति है। जब सूर्य इस गतिसे दक्षिण दिशाकी ओर जाते हैं, तब [वहाँ छः माह भ्रमण करनेके बाद] पुनः उत्तरायणकालमें उत्तर दिशाकी ओर लौटते हैं। दक्षिणायनके समय महातेजस्वी सूर्य मानसोत्तर पर्वतपर पुष्करके मध्य भ्रमण करते हैं। वे सूर्य एक सौ अस्सी मण्डलसे गुजरते हैं। उत्तरायण तथा दक्षिणायनको बाह्य एवं आभ्यन्तर कहा गया है। सूर्य प्रतिदिन उन्हीं मण्डलोंपर भ्रमण करते हैं। जैसे कुम्हारके चाकका बाहरी भाग शीघ्रतापूर्वक चारों ओर घूमता है, वैसे ही सूर्यदेव दक्षिणायनमें तेजीसे भ्रमण करते हैं। इसलिये वे थोड़े समयमें ही [अपेक्षाकृत] अधिक भूमिपर पहुँचते हैं। दक्षिणायनमें सूर्य मात्र बारह मुहूर्तोंमें शीघ्रतापूर्वक दिनमें साढ़े तेरह नक्षत्र चलते हैं, जबकि रात्रिमें अठारह मुहूर्तोंमें उतनी ही नक्षत्रकी दूरीको तय करते हैं॥ १२—१९॥

जैसे कुम्हारके चाकका मध्यभाग मन्द गतिसे चलता है, उसी प्रकार सूर्य उत्तरायणमें मन्दगतिसे भ्रमण करते हैं। इसलिये वे अधिक समयमें थोड़ी भूमिपर पहुँचते हैं। सूर्यका वह रथ आदित्यों, मुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों तथा राक्षसोंसे अधिष्ठित रहता है। हजार किरणोंवाले वे सूर्य आगेसे, पीछेसे, नीचेसे तथा ऊपरसे किरण छोड़कर ब्रह्माकी अत्युत्तम सभाको प्रकाशित करते हुए सन्ध्या-वन्दनके समय मुनियों तथा ब्राह्मणोंके द्वारा [अर्घ्यहेतु] छोड़े गये जलसे पास आनेवाले राक्षसोंको मार-मारकर आगे बढ़ते रहते हैं॥ २०—२३½॥

उत्तरायणके पश्चिम भागमें दिन अठारह मुहूर्तका होता है, उस समय सूर्य मन्दगतिवाले होकर चलते हैं। सूर्य रातमें बारह मुहूर्तमें साढ़े तेरह नक्षत्रदूरीको तय करते हैं और दिनमें चलते हुए वे उतनी ही नक्षत्रकी दूरी अठारह मुहूर्तोंमें तय करते हैं॥ २४-२५॥

जिस प्रकार नाभिमें चक्र अधिक मन्द गतिसे घूमता है, उसी प्रकार [चक्रके मध्यस्थित] मिट्टीके

त्रिंशन्मुहूर्तैरेवाहुरहोरात्रं पुराविदः।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु॥ २७

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते।
औत्तानपादो भ्रमति ग्रहैः सार्धं ग्रहाग्रणीः॥ २८

गणो मुनिज्योतिषां तु मनसा तस्य सर्पति।
अधिष्ठितः पुनस्तेन भानुस्त्वादाय तिष्ठति॥ २९

किरणैः सर्वतस्तोयं देवो वै ससमीरणः।
औत्तानपादस्य सदा ध्रुवत्वं वै प्रसादतः॥ ३०

विष्णोरौत्तानपादेन चाप्तं तातस्य हेतुना।
आपः पीतास्तु सूर्येण क्रमन्ते शशिनः क्रमात्॥ ३१

निशाकरान्निस्त्रवन्ते जीमूतान् प्रत्यपः क्रमात्।
वृन्दं जलमुचां चैव श्वसनेनाभिताडितम्॥ ३२

क्ष्मायां वृष्टिं विसृजतेऽभासयत्तेन भास्करः।
तोयस्य नास्ति वै नाशः तदैव परिवर्तते॥ ३३

हिताय सर्वजन्तूनां गतिः शर्वेण निर्मिता।
भूर्भुवः स्वस्तथा ह्यापो ह्यन्नं चामृतमेव च॥ ३४

प्राणा वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च।
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत्॥ ३५

अपां शिवस्य भगवानाधिपत्ये व्यवस्थितः।
अपां त्वधिपतिर्देवो भव इत्येव कीर्तितः॥ ३६

भवात्मकं जगत्सर्वमिति किं चेह चाद्भुतम्।
नारायणत्वं देवस्य हरेश्चाद्भिः कृतं विभोः।
जगतामालयो विष्णुस्त्वापस्तस्यालयानि तु॥ ३७

दन्दह्यमानेषु चराचरेषु
गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमन्ति।
या या ऊर्ध्वं मारुतेनेरिता वै
तास्तास्त्वभ्राण्यग्निना वायुना च॥ ३८

अतो धूमाग्निवातानां संयोगस्त्वभ्रमुच्यते।
वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्रदृक्॥ ३९

पिण्डकी भाँति मध्यमें स्थित ध्रुव घूमता है। प्राचीन विद्याके वेत्ता कहते हैं कि दिन और रात [मिलकर] तीस मुहूर्तके बराबर होते हैं। दोनों दिशाओंके बीचमें मण्डलोंमें सूर्य घूमता है। जैसे कुलालचक्रकी नाभि उसी स्थानपर रहती है और घूमती है, उसी प्रकार ग्रहोंमें श्रेष्ठ ध्रुव भी ग्रहोंके साथ घूमते हैं। मुनियों तथा नक्षत्रोंका समूह उसीके मनके अनुसार चलता है। उसी [ध्रुव]-के द्वारा अधिष्ठित सूर्यदेव वायुके साथ सभी ओरसे अपनी किरणोंके द्वारा जल ग्रहण करते हैं। उत्तानपादके पुत्रको ध्रुवपद भगवान् विष्णुकी कृपासे सुलभ हुआ और ध्रुवने इसे अपने पिताके कारण प्राप्त किया था॥ २६—३०$^1/_2$॥

सूर्यके द्वारा ग्रहण किया गया वह जल क्रमसे चन्द्रमाको प्राप्त होता है और पुनः वह जल चन्द्रमासे मेघोंको प्राप्त होता है। इसके बाद वायुद्वारा आघात करनेपर मेघोंका समूह पृथ्वीपर वृष्टि करता है। सूर्य सबको भासित करते हैं, इसलिये वे भास्कर [नामवाले] हैं। जलका कभी नाश नहीं होता, वही जल पुनः परिवर्तित हो जाता है। भगवान् शिवने सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये जलकी इस गतिका निर्माण किया है। जल ही भूः, भुवः, स्वः, अन्न तथा अमृत है। जल सभी लोकोंका प्राण है। अधिक कहनेसे क्या लाभ—सभी प्राणी, समस्त भुवन एवं यह चराचर जगत् जलसे बना हुआ है। भगवान् भी शिवरूपी जलके आधिपत्यमें व्यवस्थित हैं। भगवान् शिव जलके अधिपति कहे गये हैं। यह सम्पूर्ण जगत् शिवमय है—इसमें आश्चर्य क्या है? सर्वव्यापी विष्णुदेवको नारायणपद जलसे ही प्राप्त हुआ है। विष्णु सम्पूर्ण जगत्के निवासस्थान हैं और जल उनका निवासस्थान है॥ ३१—३७॥

चराचर समस्त प्राणियोंके वायुद्वारा उत्तेजित अग्निसे जल जानेपर धुएँके रूपमें जो-जो निकलता है और वायुद्वारा ऊपर ले जाया जाता है, उन्हींको अभ्र कहा गया है। अतः धूम, अग्नि तथा वायुके संयोगको अभ्र कहा जाता है। जो जलकी वर्षा करता है, वह अभ्र है। हजार नेत्रोंवाले इन्द्र अभ्रके स्वामी हैं॥ ३८-३९॥

यज्ञधूमोद्भवं चापि द्विजानां हितकृत्सदा।
दावाग्निधूमसम्भूतमभ्रं वनहितं स्मृतम्॥ ४०

मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति।
अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः॥ ४१

एवं धूमविशेषेण जगतां वै हिताहितम्।
तस्मादाच्छादयेद्धूममभिचारकृतं नरः॥ ४२

अनाच्छाद्य द्विजः कुर्याद्धूमं यश्चाभिचारिकम्।
एवमुद्दिश्य लोकस्य क्षयकृच्च भविष्यति॥ ४३

अपां निधानं जीमूताः षण्मासानिह सुव्रताः।
वर्षयन्त्येव जगतां हिताय पवनाज्ञया॥ ४४

स्तनितं चेह वायव्यं वैद्युतं पावकोद्भवम्।
त्रिधा तेषामिहोत्पत्तिरभ्राणां मुनिपुङ्गवाः॥ ४५

न भ्रश्यन्ति यतोऽभ्राणि मेहनान्मेघ उच्यते।
काष्ठा वाह्नाश्च वैरिंच्याः पक्षाश्चैव पृथग्विधाः॥ ४६

आज्यानां काष्ठसंयोगादग्नेर्धूमः प्रवर्तितः।
द्वितीयानां च सम्भूतिर्विरिञ्चोच्छ्वास वायुना॥ ४७

भूभृतां त्वथ पक्षैस्तु मघवच्छेदितैस्ततः।
वाह्नेयास्त्वथ जीमूतास्त्वावहस्थानगाः शुभाः॥ ४८

विरिञ्चोच्छ्वासजाः सर्वे प्रवहस्कन्धजास्ततः।
पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षन्ति च यदा जलम्॥ ४९

मूकाः सशब्ददुष्टाशास्त्वेतैः कृत्यं यथाक्रमम्॥
क्षामवृष्टिप्रदा दीर्घकालं शीतसमीरिणः॥ ५०

जीवकाश्च तथा क्षीणा विद्युद्ध्वनिविवर्जिताः।
तिष्ठन्त्याक्रोशमात्रं तु धरापृष्ठादितस्ततः॥ ५१

अर्धक्रोशे तु सर्वे वै जीमूता गिरिवासिनः।
मेघा योजनमात्रं तु साध्यत्वाद्बहुतोयदाः॥ ५२

यज्ञके धुएँसे उत्पन्न अभ्र (मेघ) सदा द्विजोंका हित करनेवाला होता है और दावानलके धूमसे उत्पन्न अभ्र वनके लिये हितकर कहा गया है। मृत प्राणियोंके जलानेपर उठे हुए धूमसे उत्पन्न अभ्र अशुभके लिये होता है और हे द्विजो! अभिचाराग्निके धूमसे उत्पन्न अभ्र प्राणियोंके नाशके लिये होता है। इस प्रकार अलग-अलग धूमोंसे संसारका हित तथा अहित होता है। अतः मनुष्यको चाहिये कि अभिचारकर्मसे उत्पन्न धूमको ढँक दे। यदि कोई द्विज धूमको ढँके बिना अभिचारकर्म करता है, तो यह संसारके विनाशका कारण हो जाता है॥ ४०—४३॥

हे सुव्रतो! जलके भण्डारस्वरूप मेघ वायुकी आज्ञासे जगत्के हितके लिये इस लोकमें छः महीने वृष्टि करते हैं। मेघका गर्जन वायुके द्वारा, विद्युत्के द्वारा तथा अग्निके द्वारा होता है। हे मुनिश्रेष्ठो! उन मेघोंकी उत्पत्ति तीन प्रकारसे होती है। 'अभ्र' शब्दका अर्थ है 'जो नष्ट नहीं होता है।' 'मेहन' शब्दसे 'मेघ' व्युत्पन्न कहा गया है। काष्ठ, वाह्न, वैरिंच्य तथा पक्ष—ये विभिन्न प्रकारके मेघ होते हैं। घृतका काष्ठसे संयोग होनेपर अग्निसे जो धूम निकलता है, उससे प्रथम प्रकारका मेघ बनता है। दूसरे प्रकारके मेघकी उत्पत्ति ब्रह्माकी श्वासवायुसे होती है। इन्द्रके द्वारा पर्वतोंके काटे गये पक्षोंसे तीसरे प्रकारके मेघ उत्पन्न होते हैं। अग्निसे उत्पन्न मेघ शुभ होते हैं और वे आवह नामक वायुके स्थानमें जाते हैं। ब्रह्माके श्वाससे उत्पन्न सभी मेघ प्रवह नामक वायुके स्कन्धपर रहते हैं। पुष्कर आदि मेघ पक्षसे उत्पन्न होते हैं। ये जब बरसते हैं, तब क्रमसे शान्त, ध्वनि करनेवाले तथा विनाशकारी होते हैं; इनके द्वारा यथाक्रम यह कृत्य होता है। कुछ मेघ अल्प वृष्टि करनेवाले होते हैं और कुछ मेघ दीर्घ कालतक शीतल वायुवाले होते हैं। कुछ मेघ जीवक होते हैं। कुछ मेघ क्षीण होते हैं और वे विद्युत् तथा ध्वनिसे रहित होते हैं। कुछ मेघ पृथ्वीतलसे एक कोसके भीतर आकाशमें इधर-उधर रहते हैं। पर्वतपर रहनेवाले सभी मेघ आधे कोसकी दूरीमें होते हैं।

धरापृष्ठाद् द्विजाः क्ष्मायां विद्युद्‌गुणसमन्विताः।
तेषां तेषां वृष्टिसर्गं त्रेधा कथितमत्र तु॥ ५३

पक्षजाः कल्पजाः सर्वे पर्वतानां महत्तमाः।
कल्पान्ते ते च वर्षन्ति रात्रौ नाशाय शारदाः॥ ५४

पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षन्ति च यदा जलम्।
तदार्णवमभूत्सर्वं तत्र शेते निशीश्वरः॥ ५५

आग्नेयानां श्वासजानां पक्षजानां द्विजर्षभाः।
जलदानां सदा धूमो ह्याप्यायन इति स्मृतः॥ ५६

पौण्ड्रास्तु वृष्टयः सर्वा वैद्युताः शीतसस्यदाः।
पुण्ड्रदेशेषु पतिता नागानां शीकरा हिमाः॥ ५७

गाङ्गा गङ्गाम्बुसम्भूता पर्जन्येन परावहैः।
नगानां च नदीनां च दिग्गजानां समाकुलम्॥ ५८

मेघानां च पृथग्भूतं जलं प्रायादगादगम्।
परावहो यः श्वसनश्चानयत्यम्बिकागुरुम्॥ ५९

मेनापतिमतिक्रम्य वृष्टिशेषं द्विजाः परम्।
अभ्येति भारते वर्षे त्वपरान्तविवृद्धये॥ ६०

वृष्टयः कथिता ह्यद्य द्विधा वस्तुविवृद्धये।
सस्यद्वयस्य सङ्क्षेपात्प्रब्रवीमि यथामति॥ ६१

स्त्रष्टा भानुर्महातेजा वृष्टीनां विश्वदृग्विभुः।
सोऽपि साक्षाद् द्विजश्रेष्ठाश्चेशानः परमः शिवः॥ ६२

स एव तेजस्त्वोजस्तु बलं विप्रा यशः स्वयम्।
चक्षुः श्रोत्रं मनो मृत्युरात्मा मन्युर्विदिग्दिशः॥ ६३

सत्यं ऋतं तथा वायुरम्बरं खचरश्च सः।
लोकपालो हरिर्ब्रह्मा रुद्रः साक्षान्महेश्वरः॥ ६४

सहस्त्रकिरणः श्रीमानष्टहस्तः सुमङ्गलः।
अर्धनारीवपुः साक्षात्त्रिनेत्रस्त्रिदशाधिपः॥ ६५

हे द्विजो! पृथ्वीतलसे योजन-मात्रकी दूरीवाले विद्युत्-युक्त मेघ साध्य होनेके कारण पृथ्वीपर अधिक जल-वृष्टि करनेवाले होते हैं। उन मेघोंका तीन प्रकारका वृष्टिसर्ग बता दिया गया॥ ४४—५३॥

पर्वतोंके [कटे हुए] पक्षोंसे उत्पन्न मेघ कल्पज होते हैं और वे अति महान् होते हैं। वे कल्पके अन्तमें विनाशके लिये रात्रिमें बरसते हैं। पुष्कर आदि पक्षजनित मेघ जब बरसते हैं, तब सम्पूर्ण जगत् सागरमय हो जाता है और उसमें भगवान् रातमें शयन करते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अग्निसे उत्पन्न, [ब्रह्माके] श्वाससे उत्पन्न तथा [कटे हुए पर्वतोंके] पक्षसे उत्पन्न मेघोंका धूम सदा आप्यायन कहा गया है॥ ५४—५६॥

समस्त पौण्ड्र (पुण्ड्र देशमें होनेवाली) वृष्टि विद्युन्मय, शीतल तथा अन्न प्रदान करनेवाली होती है। पुण्ड्र देशके मेघ बर्फके समान शीतल होते हैं और वे हाथीके सूँड़से गिरते हुए जलके छिड़कावकी भाँति प्रतीत होते हैं। गांग नामक मेघ गंगाके जलसे उत्पन्न होते हैं। ये परावहसंज्ञक वायुद्वारा पर्वतों, नदियों और दिग्गजोंको व्याकुल कर देते हैं। मेघोंसे अलग हुआ जल एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर पहुँचता है। परावह नामक जो वायु है, वह मेघोंको हिमालय (अम्बिकागुरु) पर्वतकी ओर ले जाती है। हे द्विजो! पुनः मेनापति हिमालयसे आगे बढ़कर ये मेघ समुद्रके मध्य देशोंकी वृद्धिके लिये भारतवर्षमें भारी वर्षा करते हैं॥ ५७—६०॥

वस्तुओंकी वृद्धिके लिये होनेवाली वृष्टियाँ दो प्रकारकी कही गयी हैं। मैं बुद्धिके अनुसार उन दोनोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। संसारके नेत्रस्वरूप महातेजस्वी भगवान् सूर्य वृष्टियोंका सृजन करनेवाले हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! वे भी साक्षात् ईशान परमेश्वर शिव ही हैं। हे विप्रो! वे ही तेज, ओज, बल, यश, नेत्र, श्रोत्र, मन, मृत्यु, आत्मा, मन्यु (क्रोध), दिशाएँ और विदिशाएँ हैं। वे ही सत्य, ऋत, वायु, आकाश, ग्रह, लोकपाल, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र तथा साक्षात् महेश्वर हैं। वे हजार किरणोंवाले, श्रीमान्, आठ भुजाओंवाले, परम कल्याणकारी, अर्धनारीश्वर, तीन नेत्रोंवाले तथा देवताओंके अधिपति हैं॥ ६१—६५॥

अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टिर्नानाभवद् द्विजाः।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते किरणैर्जलम्॥ ६६

जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः।
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः। ६७

ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले।
चारस्यान्ते विशत्यर्के ध्रुवेण समधिष्ठिता॥ ६८

हे द्विजो! इन्हींकी कृपासे नाना प्रकारकी वृष्टि होती है। ये हजार गुना जल देनेके लिये अपनी किरणोंसे जल ग्रहण करते हैं। विचारपूर्वक देखा जाय तो इस जलका नाश अथवा वृद्धि होती ही नहीं। ध्रुवके द्वारा अधिष्ठित वायु वृष्टिका पुनः हरण कर लेती है। तदनन्तर यह सूर्यग्रहसे निकलकर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलमें फैलती है। उसके बाद ध्रुवके द्वारा अधिष्ठित यह वृद्धि पुनः सूर्यमें प्रवेश करती है॥ ६६—६८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ज्योतिश्चक्रे सूर्यगत्यादिकथनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ज्योतिश्चक्रमें सूर्यगत्यादिकथन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

शिवस्वरूप भगवान् सूर्यके रथ तथा चैत्रादि बारह मासोंमें रथके साथ भ्रमण करनेवाले देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व आदिका वर्णन

सूत उवाच

सौरं सङ्क्षेपतो वक्ष्ये रथं शशिन एव च।
ग्रहाणामितरेषां च यथा गच्छति चाम्बुपः॥ १

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] मैं संक्षेपमें सूर्यके रथ और चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहोंके विषयमें बताऊँगा और जिस प्रकार जलका शोषण करनेवाले सूर्य गति करते हैं, उसका भी वर्णन करूँगा॥ १॥

सौरस्तु ब्रह्मणा सृष्टो रथस्त्वर्थवशेन सः।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितश्च द्विजर्षभाः॥ २

त्रिणाभिना तु चक्रेण पञ्चारेण समन्वितः।
सौवर्णः सर्वदेवानामावासो भास्करस्य तु॥ ३

नवयोजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः।
द्विगुणोऽपि रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः॥ ४

असङ्गैस्तु हयैर्युक्तो यतश्चक्रं ततः स्थितैः।
वाजिनस्तस्य वै सप्त छन्दोभिर्निर्मितास्तु ते॥ ५

चक्रपक्षे निबद्धास्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः।
सहाश्वचक्रो भ्रमते सहाक्षो भ्रमते ध्रुवः॥ ६

हे श्रेष्ठ द्विजो! ब्रह्माके द्वारा विशेष प्रयोजनके लिये निर्मित वह सूर्यरथ संवत्सरके अवयवोंसे कल्पित किया गया है। तीन नाभि तथा पाँच अरोंवाले चक्रसे युक्त यह सूर्यरथ सुवर्णमय है और सभी देवताओंका निवासस्थान है। यह लम्बाई तथा चौड़ाईमें नौ हजार योजनवाला कहा गया है। इसका ईषादण्ड प्रमाण (माप)-में रथोपस्थसे दुगुना है। जहाँ चक्र है, वहाँ स्थित अन्तरिक्षगामी घोड़ोंसे वह युक्त (जुता हुआ) है। उसके सातों घोड़े वेदके सात छन्दों [गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति]-से निर्मित हैं। वे चक्रके बगलमें बँधे हुए हैं। ध्रुवमें [रथका] अक्ष लगा हुआ है। वह रथ घोड़ों तथा चक्रसहित घूमता है और ध्रुव अक्षके साथ घूमता है॥ २—६॥

अक्षः सहैकचक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः।
प्रेरको ज्योतिषां धीमान् ध्रुवो वै वातरश्मिभिः॥ ७

युगाक्षकोटिसम्बद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तु।
ध्रुवेण भ्रमते रश्मिनिबद्धः स युगाक्षयोः॥ ८

भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु।
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य हि॥ ९

ध्रुवेण प्रगृहीते वै विचक्राश्वे च रज्जुभिः।
भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवं रश्मी च तावुभौ॥ १०

युगाक्षकोटिस्त्वेतस्य वातोर्मिस्यन्दनस्य तु।
कीले सक्ता यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतोदिशम्॥ ११

भ्राम्यतस्तस्य रश्मी तु मण्डलेषूत्तरायणे।
वर्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु॥ १२

आकृष्येते यदा ते वै ध्रुवेणाधिष्ठिते तदा।
आभ्यन्तरस्थः सूर्योऽथ भ्रमते मण्डलानि तु॥ १३

अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः।
ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु॥ १४

तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु।
उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति॥ १५

देवाश्चैव तथा नित्यं मुनयश्च दिवानिशम्।
यजन्ति सततं देवं भास्करं भवमीश्वरम्॥ १६

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥ १७

एते वसन्ति वै सूर्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
आप्याययन्ति चादित्यं तेजोभिर्भास्करं शिवम्॥ १८

ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते॥ १९

ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसङ्ग्रहम्।
सर्पा वहन्ति वै सूर्यं यातुधानानुयान्ति च॥ २०

वह अक्ष ध्रुवसे प्रेरित होकर एक ही चक्रके साथ घूमता है। बुद्धिमान् ध्रुव वायुकिरणोंके द्वारा ज्योतिर्गणों (ग्रह, नक्षत्र आदि)-को प्रेरित करता है। दो रश्मियाँ (किरणें) रथके जुए तथा अक्षके अग्रभागमें बँधी हुई हैं और [उन] जुए तथा अक्षमें रश्मियोंसे निबद्ध वह सूर्यरथ ध्रुवके द्वारा भ्रमण करता है॥ ७-८॥

इस प्रकार भ्रमण करते हुए आकाशमें विचरण करनेवाले रथके अनेक मण्डल होते हैं। वे [रश्मिनिबद्ध] जुए तथा अक्षकी कोटियाँ उस रथके दाहिनी ओर होती हैं। रज्जुओंके द्वारा ध्रुवसे प्रगृहीत अरुण, चक्र तथा घोड़े और वे दोनों रश्मियाँ घूमते हुए ध्रुवका अनुगमन करते हैं॥ ९-१०॥

इस रथकी वायुलहरीरूपा युगाक्षकोटि (जुए तथा अक्षकी कोटि) कीलमें बँधी हुई रस्सीकी भाँति सभी दिशाओंमें घूमती है। उत्तरायणमें मण्डलोंमें घूमते हुए उस सूर्यकी दोनों रश्मियाँ बढ़ जाती हैं और दक्षिणायनमें मण्डलोंमें घूमते हुए सूर्यके द्वारा वे रश्मियाँ खिंच जाती हैं। जब वे [रश्मियाँ] ध्रुवके द्वारा प्रेरित की जाती हैं, तब [रथके] भीतर स्थित सूर्य मण्डलोंमें घूमता है। उस समय सूर्य दोनों दिशाओंके एक सौ अस्सी मण्डलोंका चक्कर लगाता है॥ ११—१३ $^{1}/_{2}$ ॥

पुनः ध्रुवके द्वारा किरणोंके छोड़े जानेपर उसी भाँति सूर्य मण्डलोंके बाहर भ्रमण करता है; वह मण्डलोंको घेरते हुए वेगपूर्वक चलता है॥ १४-१५॥

देवता तथा मुनिगण नित्य दिन-रात भवस्वरूप ईश्वर सूर्यदेवका निरन्तर पूजन करते हैं। वह रथ देवताओं, आदित्यों, मुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों तथा राक्षसोंके द्वारा अधिष्ठित है। ये लोग सूर्यमें दो-दो महीने क्रमसे निवास करते हैं और कल्याणकारी आदित्य भास्करको अपने तेजोंसे तृप्त करते हैं॥ १६—१८॥

मुनिगण अपने वचनोंसे ग्रथित स्तुतियोंके द्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं; गन्धर्व तथा अप्सराएँ गान एवं नृत्यके द्वारा उनकी उपासना करते हैं; ग्रामणी, यक्ष तथा भूतगण किरणोंका संग्रह करते हैं; सर्पगण सूर्यका वहन

बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥ २१
मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्च शुचिरेव च।
नभोनभस्यौ विप्रेन्द्रा इषश्चोर्जस्तथैव च॥ २२
सहःसहस्यौ च तथा तपस्यश्च तपः पुनः।
एते द्वादश मासास्तु वर्षं वै मानुषं द्विजाः॥ २३
वासन्तिकस्तथा ग्रैष्मः शुभो वै वार्षिकस्तथा।
शारदश्च हिमश्चैव शैशिरो ऋतवः स्मृताः॥ २४
धातार्यमाथ मित्रश्च वरुणश्चेन्द्र एव च।
विवस्वांश्चैव पूषा च पर्जन्योंऽशुर्भगस्तथा॥ २५
त्वष्टा विष्णुः पुलस्त्यश्च पुलहश्चात्रिरेव च।
वसिष्ठश्चाङ्गिराश्चैव भृगुर्बुद्धिमतां वरः॥ २६
भारद्वाजो गौतमश्च कश्यपश्च क्रतुस्तथा।
जमदग्निः कौशिकश्च वासुकिः कङ्कणीकरः॥ २७
तक्षकश्च तथा नाग एलापत्रस्तथा द्विजाः।
शङ्खपालस्तथा चान्यस्त्वैरावत इति स्मृतः॥ २८
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटकः स्मृतः।
कम्बलोऽश्वतरश्चैव तुम्बुरुर्नारदस्तथा॥ २९
हाहा हूहूर्मुनिश्रेष्ठा विश्वावसुरनुत्तमः।
उग्रसेनोऽथ सुरुचिरन्यश्चैव परावसुः॥ ३०
चित्रसेनो महातेजाश्चोर्णायुश्चैव सुव्रताः।
धृतराष्ट्रः सूर्यवर्चा देवी साक्षात्कृतस्थला॥ ३१
शुभानना शुभश्रोणिर्दिव्या वै पुञ्जिकस्थला।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचाथ शुचिस्मिता॥ ३२
अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा।
पूर्वचित्तिरिति ख्याता देवी साक्षात्तिलोत्तमा॥ ३३
रम्भा चाम्भोजवदना रथकृद् ग्रामणीः शुभः।
रथौजा रथचित्रश्च सुबाहुर्वै रथस्वनः॥ ३४
वरुणश्च तथैवान्यः सुषेणः सेनजिच्छुभः।
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च क्षतजित्सत्यजित्तथा॥ ३५
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा।
सर्पो व्याघ्रः पुनश्चापो वातो विद्युद्दिवाकरः॥ ३६
ब्रह्मोपेतश्च रक्षेन्द्रो यज्ञोपेतस्तथैव च।
एते देवादयः सर्वे वसन्त्यर्के क्रमेण तु॥ ३७
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः।
धात्रादिविष्णुपर्यन्ता देवा द्वादश कीर्तिताः॥ ३८

करते हैं; यातुधान (राक्षसगण) उनका अनुगमन करते हैं और बालखिल्य [नामक ऋषिगण] उदयकालसे प्रारम्भ करके चारों ओरसे घेरकर सूर्यको अस्ताचलकी ओर ले जाते हैं। ये सब दो-दो महीने सूर्यमें निवास करते हैं॥ १९—२१॥

हे विप्रेन्द्रो! मधु (चैत्र), माधव (वैशाख), शुक्र (ज्येष्ठ), शुचि (आषाढ़), नभ (श्रावण), नभस्य (भाद्रपद), इष (आश्विन), ऊर्ज (कार्तिक), सह (मार्गशीर्ष), सहस्य (पौष), तपस्य (माघ) तथा तप (फाल्गुन)—ये बारह महीने मानव वर्षमें होते हैं। हे द्विजो! वसन्त, ग्रीष्म, शुभ वर्षा, शरद, हिम (हेमन्त) तथा शिशिर—ये ऋतुएँ कही गयी हैं॥ २२—२४॥

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा, विष्णु—ये बारह आदित्य हैं; पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अंगिरा, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भृगु, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि तथा कौशिक—ये बारह ऋषि हैं; हे द्विजो! वासुकि, कंकणीकर, तक्षक, नाग, एलापत्र, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल तथा अश्वतर—ये बारह सर्प कहे गये हैं; हे मुनिश्रेष्ठो! तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू, श्रेष्ठ विश्वावसु, उग्रसेन, सुरुचि, परावसु, चित्रसेन, महातेजस्वी ऊर्णायु, धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा—ये बारह गन्धर्व हैं; हे सुव्रतो! साक्षात् देवी कृतस्थला, सुन्दर मुखवाली—उत्तम श्रोणिवाली दिव्य पुंजिकस्थला, मेनका, सहजन्या, पवित्र मुसकानवाली प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, साक्षात् देवी तिलोत्तमा तथा कमलके समान मुखवाली रम्भा—ये बारह अप्सराएँ कही गयी हैं; रथकृत्, शुभ रथौजा, रथचित्र, सुबाहु, रथस्वन, वरुण, सुषेण, शुभ सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, क्षतजित् तथा सत्यजित्—ये बारह ग्रामणी हैं; हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, आप, वात, विद्युत्, दिवाकर, ब्रह्मोपेत और राक्षसराज यज्ञोपेत—ये बारह यातुधान (राक्षस) हैं—ये सभी देवता आदि क्रमसे सूर्यमें निवास करते हैं। बारहकी संख्यावाले ये सात गण अपने स्थानका अभिमान

आदित्यं परमं भानुं भाभिराप्याययन्ति ते।
पुलस्त्याद्याः कौशिकान्ता मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ ३९

द्वादशैव स्तवैर्भानुं स्तुवन्ति च यथाक्रमम्।
नागाश्चाश्वतरान्तास्तु वासुकिप्रमुखाः शुभाः ॥ ४०

द्वादशैव महादेवं वहन्त्येवं यथाक्रमम्।
क्रमेण सूर्यवर्चान्तास्तुम्बुरुप्रमुखाम्बुपम् ॥ ४१

गीतैरेनमुपासन्ते गन्धर्वा द्वादशोत्तमाः।
कृतस्थलाद्या रम्भान्ता दिव्याश्चाप्सरसो रविम् ॥ ४२

ताण्डवैः सरसैः सर्वाश्चोपासन्ते यथाक्रमम्।
दिव्याः सत्यजिदन्ताश्च ग्रामण्यो रथकृन्मुखाः ॥ ४३

द्वादशास्य क्रमेणैव कुर्वते भीषुसङ्ग्रहम्।
प्रयान्ति यज्ञोपेतान्ता रक्षोहेतिमुखाः सह ॥ ४४

सायुधा द्वादशैवैते राक्षसाश्च यथाक्रमम्।
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥ ४५

उरगो वासुकिश्चैव कङ्कणीकश्च तावुभौ।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ ॥ ४६

कृतस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला।
ग्रामणी रथकृच्चैव रथौजाश्चैव तावुभौ ॥ ४७

रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ।
मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥ ४८

वसन्ति ग्रीष्मकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह।
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको नाग एव च ॥ ४९

मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हहाहुहूः।
सुबाहुनामा ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ ॥ ५०

पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ।
एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥ ५१

ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्तीह देवताः।
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥ ५२

एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ।
विश्वावसूग्रसेनौ च वरुणश्च रथस्वनः ॥ ५३

करनेवाले हैं ॥ २५—३७$^{1}/_{2}$ ॥

धातासे लेकर विष्णुपर्यन्त जो बारह देवता (आदित्य) कहे गये हैं, वे अपने तेजसे परम भानुको सन्तृप्त करते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! पुलस्त्यसे लेकर कौशिकतक [कहे गये] बारह मुनिगण यथाक्रम स्तुतियोंके द्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं। इसी प्रकार वासुकिसे लेकर अश्वतरतक [कहे गये] बारह शुभ नाग यथाक्रम महादेव (सूर्य)-का वहन करते हैं। तुम्बुरुसे लेकर सूर्यवर्चातक [कहे गये] बारह उत्तम गन्धर्व क्रमसे गीतोंके द्वारा इन सूर्यकी उपासना करते हैं। कृतस्थलासे लेकर रम्भा-पर्यन्त [कही गयी] सभी दिव्य अप्सराएँ यथाक्रम सरस नृत्योंके द्वारा सूर्यकी उपासना करती हैं। रथकृत्से लेकर सत्यजित्पर्यन्त [कहे गये] बारह दिव्य ग्रामणी क्रमसे इस सूर्यकी रथरश्मियोंका संग्रह करते हैं। रक्षोहेतिसे लेकर यज्ञोपेततक [कहे गये]—ये प्रमुख बारह राक्षस शस्त्र धारण करके क्रमसे [सूर्यके] पीछे-पीछे चलते हैं ॥ ३८—४४$^{1}/_{2}$ ॥

धाता तथा अर्यमा [दो आदित्य], प्रजापति पुलस्त्य तथा पुलह [दो ऋषि], वे दोनों नाग वासुकि एवं कंकणीक, गान करनेवालोंमें श्रेष्ठ गन्धर्व तुम्बुरु तथा नारद, कृतस्थला एवं पुंजिकस्थला अप्सराएँ, वे दोनों ग्रामणी रथकृत् तथा रथौजा और यातुधान कहे गये राक्षस हेति तथा प्रहेति—यह समुदाय **चैत्र** एवं **वैशाख** महीनोंमें सूर्यमें निवास करता है ॥ ४५—४८ ॥

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुके दो महीनोमें भी ये लोग निवास करते हैं। [दो आदित्य] मित्र तथा वरुण, ऋषि अत्रि एवं वसिष्ठ, [सर्प] तक्षक तथा नाग, [दो अप्सराएँ] मेनका और सहजन्या, दो गन्धर्व हाहा तथा हूहू, रथचित्र एवं सुबाहु नामक वे दोनों ग्रामणी और यातुधान कहे गये पौरुषेय तथा वध—ये सब **शुक्र (ज्येष्ठ)** तथा **शुचि (आषाढ़)** महीनोंमें सूर्यमें निवास करते हैं ॥ ४९—५१ ॥

इसके बाद अन्य देवता सूर्यमें निवास करते हैं। [आदित्य] इन्द्र तथा विवस्वान्, [ऋषि] अंगिरा तथा भृगु, वे दोनों सर्प एलापत्र एवं शंखपाल, [गन्धर्व]

प्रम्लोचा चैव विख्याता अनुम्लोचा च ते उभे।
यातुधानास्तथा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ॥ ५४

नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे।
पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजोऽथ गौतमः॥ ५५

धनञ्जय इरावांश्च सुरुचिः सपरावसुः।
घृताची चाप्सरःश्रेष्ठा विश्वाची चातिशोभना॥ ५६

सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।
आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ॥ ५७

वसन्त्येते तु वै सूर्ये मास ऊर्ज इषे च ह।
हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति च दिवाकरे॥ ५८

अंशुर्भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुः सह।
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा॥ ५९

चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ।
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथैवाप्सरसावुभे॥ ६०

तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ।
विद्युद्दिवाकरश्चोभौ यातुधानावुदाहृतौ॥ ६१

सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे।
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै॥ ६२

त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च।
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ॥ ६३

धृतराष्ट्रः सगन्धर्वः सूर्यवर्चास्तथैव च।
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोहरा॥ ६४

रथजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ।
ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च यः स्मृतः॥ ६५

एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः॥ ६६

सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्।
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्॥ ६७

गन्धर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते।
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसङ्ग्रहम्॥ ६८

सर्पा वहन्ति वै सूर्यं यातुधानानुयान्ति वै।
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्॥ ६९

विश्वावसु तथा उग्रसेन, [ग्रामणी] वरुण एवं रथस्वन, विख्यात प्रम्लोचा तथा अनुम्लोचा—वे दोनों अप्सराएँ और वे दोनों यातुधान सर्प तथा व्याघ्र—यह समुदाय **नभ (श्रावण)** तथा **नभस्य (भाद्रपद)** महीनोंमें सूर्यमें निवास करता है॥ ५२—५४½॥

[आदित्य] पर्जन्य तथा पूषा, [ऋषि] भरद्वाज एवं गौतम, [सर्प] धनंजय तथा इरावान् (ऐरावत), [गन्धर्व] सुरुचि तथा परावसु, अप्सराओंमें श्रेष्ठ घृताची तथा परम सुन्दर विश्वाची, वे दोनों ग्रामणी-सेनानी सेनजित् तथा सुषेण और यातुधान कहे गये वे दोनों आप तथा वात—ये सब **इष (आश्विन)** तथा **ऊर्ज (कार्तिक)** महीनोंमें सूर्यमें निवास करते हैं॥ ५५—५७½॥

इसी प्रकार हेमन्त ऋतुके दो महीनोंमें भी ये लोग सूर्यमें निवास करते हैं। ये दोनों [आदित्य] अंशु तथा भग, [ऋषि] कश्यप तथा क्रतु, भुजंग महापद्म तथा सर्प कर्कोटक, वे दोनों गन्धर्व चित्रसेन तथा ऊर्णायु, दोनों अप्सराएँ उर्वशी तथा पूर्वचित्ति, ग्रामणी-सेनानी तार्क्ष्य तथा अरिष्टनेमि और यातुधान कहे गये दोनों विद्युत् तथा दिवाकर—ये सब **सह (मार्गशीर्ष)** तथा **सहस्य (पौष)** महीनोंमें सूर्यमें निवास करते हैं॥ ५८—६१½॥

इसके बाद [आदित्य] त्वष्टा तथा विष्णु, [ऋषि] जमदग्नि तथा विश्वामित्र, कद्रूके पुत्र दोनों नाग कम्बल तथा अश्वतर, गन्धर्व धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा, मनोहर अप्सरा देवी रम्भा तथा तिलोत्तमा, लोकमें प्रसिद्ध ग्रामणी रथजित् तथा सत्यजित् और ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत—जो यातुधान कहे गये हैं—ये सब शिशिर ऋतुके दो महीनों **(माघ और फाल्गुन)**-में [सूर्यमें] निवास करते हैं॥ ६२—६५॥

ये देवतागण क्रमसे दो-दो महीने सूर्यमें निवास करते हैं। बारहकी संख्यामें ये सात समूह अपने स्थानका अभिमान करनेवाले हैं। ये सब तेजके द्वारा उत्तम तेजवाले सूर्यको सन्तृप्त करते हैं। मुनिगण अपने द्वारा विरचित स्तुतियोंसे सूर्यका स्तवन करते हैं, गन्धर्व तथा अप्सराएँ नृत्य-गानोंसे उनकी उपासना करते हैं, ग्रामणी-यक्ष-भूत रथरश्मियोंको पकड़े रहते हैं, सर्पगण सूर्यका वहन करते हैं, यातुधान पीछे-पीछे चलते हैं और बालखिल्य

एतेषामेव देवानां यथा तेजो यथा तपः।
यथायोगं यथामन्त्रं यथाधर्मं यथाबलम्॥ ७०

तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा।
इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥ ७१

ऋषयो देवगन्धर्वपन्नगाप्सरसां गणाः।
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यतः॥ ७२

एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः॥ ७३

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति च दुरात्मनाम्।
दुरितं सुप्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित्क्वचित्॥ ७४

विमाने च स्थिता दिव्ये कामगे वातरंहसि।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः॥ ७५

वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै द्विजाः।
गोपायन्तीह भूतानि सर्वाणि ह्यामनुक्षयात्॥ ७६

स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै।
अतीतानागतानां वै वर्तन्ते साम्प्रतं च ये॥ ७७

एते वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश।
चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वन्तरेष्विह॥ ७८

सङ्क्षेपाद्विस्तराच्चैव यथावृत्तं यथाश्रुतम्।
कथितं मुनिशार्दूला देवदेवस्य धीमतः॥ ७९

एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः॥ ८०

इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु।
हरितैरक्षैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवाकरः॥ ८१

अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण तु भ्रमन्।
सप्तद्वीपसमुद्रां गां सप्तभिः सर्पते दिवि॥ ८२

[ऋषिगण] चारों ओरसे घेरकर सूर्यको उदयसे अस्तकी प्राप्ति कराते हैं॥ ६६—६९॥

इन्हीं देवताओंका जैसा तेज, जैसा तप, जैसा योग, जैसा मन्त्र, जैसा धर्म तथा जैसा बल होता है, उनसे समृद्ध होकर वे सूर्य तेजयुक्त होकर तपते हैं। ये सभी सूर्यमें दो-दो महीने निवास करते हैं। ऋषिगण, देवता, गन्धर्व, सर्प, अप्सराओंके समूह, ग्रामणी, यक्ष तथा यातुधान (राक्षस) ये ही मुख्यरूपसे तपते हैं, बरसते हैं, प्रकाश करते हैं, सृजन करते हैं और आराधित होकर प्राणियोंके अशुभ कर्मका नाश करते हैं। ये लोग दुरात्मा मनुष्योंके शुभका नाश करते हैं और कहीं-कहीं सज्जनोंके पापका हरण करते हैं॥ ७०—७४॥

ये इच्छानुसार चलनेवाले तथा वायुवेगसे गमन करनेवाले दिव्य विमानमें स्थित होकर सूर्यके साथ पूरे दिन भ्रमण करते हैं। हे द्विजो! ये वर्षा करते हुए, तपते हुए और [सबको] आह्लादित करते हुए सभी प्राणियोंको एक मन्वन्तरपर्यन्त विनाशसे बचाते हैं॥ ७५-७६॥

अतीत तथा अनागत (भविष्यमें होनेवाले) स्थानाभिमानियोंका तथा इस समय जो विद्यमान हैं, उन सभीका यह स्थान सभी मन्वन्तरोंमें हुआ करता है। ये चौदह गण सात-सातके समूहमें सभी चौदह मन्वन्तरोंमें सूर्यमें निवास करते हैं॥ ७७-७८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने बुद्धिमान् देवदेवके क्रिया-कलापका संक्षेपमें तथा विस्तारसे वर्णन कर दिया, जैसा घटित हुआ था और जैसा मैंने सुना था। ये देवता दो-दो महीने क्रमसे सूर्यमें निवास करते हैं। बारह-बारह देवताओंके ये सात समूह अपने स्थान (पद)-का अभिमान करनेवाले हैं॥ ७९-८०॥

इस प्रकार ये दिवाकर सूर्य हरितवर्णके [सात] अविनाशी अश्वोंद्वारा खींचे जाते हुए एक चक्रवाले रथसे वेगपूर्वक चलते हैं। ये सूर्य एक चक्रवाले रथसे [उक्त] सात समूहोंके साथ आकाशमें दिन-रात भ्रमण करते हुए सात द्वीपों तथा समुद्रोंवाली पृथ्वीके ऊपर भ्रमण करते हैं॥ ८१-८२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यरथनिर्णयो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सूर्यरथनिर्णय' नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

सोम (चन्द्रमा)-की स्थिति एवं गतिका निरूपण, चन्द्रकलाओंके ह्रास तथा वृद्धिका वर्णन

सूत उवाच

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि निशाकरः।
त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयस्तस्य वै रथः॥ १

शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः।
दशभिस्त्वकृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः॥ २

रथेनानेन देवैश्च पितृभिश्चैव गच्छति।
सोमो ह्यम्बुमयैर्गोभिः शुक्लैः शुक्लगभस्तिमान्॥ ३

क्रमते शुक्लपक्षादौ भास्करात्परमास्थितः।
आपूर्यते परस्यान्तः सततं दिवसक्रमात्॥ ४

देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यशः।
पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः॥ ५

आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमनुक्रमात्।
इत्येषा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः॥ ६

स पौर्णमास्यां दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः।
एवमाप्यायितं सोमं शुक्लपक्षे दिनक्रमात्॥ ७

ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशीम्।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामृतम्॥ ८

सम्भृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा।
पानार्थममृतं सोमं पौर्णमास्यामुपासते॥ ९

एकरात्रिं सुराः सर्वे पितृभिस्त्वृषिभिः सह।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च॥ १०

प्रक्षीयन्ते परस्यान्तः पीयमानाः कलाः क्रमात्।
त्रयस्त्रिंशच्छताश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च॥ ११

त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै।
एवं दिनक्रमात्पीते विबुधैस्तु निशाकरे॥ १२

पीत्वार्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम्॥ १३

सूतजी बोले—चन्द्रमा वीथियोंमें स्थित नक्षत्रोंमें चलता है। उसके रथको तीन पहियोंवाला तथा दोनों ओर घोड़ोंसे युक्त जानना चाहिये। यह सौ अरों (तीलियों)-वाले तीन पहियोंसे युक्त है एवं श्वेतवर्णवाले, उत्तम, पुष्ट, दिव्य जुएसे बिना नथे हुए और मनके समान वेगवाले दस घोड़ोंसे समन्वित है। श्वेत किरणोंवाले चन्द्रमा श्वेत रंगके अम्बुमय दस घोड़ोंसहित देवताओं तथा पितरोंके साथ इस रथसे चलते हैं॥ १—३॥

सूर्यसे दूरस्थित यह शुक्लपक्षके आदिसे क्रमशः बढ़ता है। दिनके क्रमसे यह निरन्तर शुक्लपक्षसे अन्ततक वृद्धिको प्राप्त होता है। सूर्य इस चन्द्रमाको विकसित करता है। देवतागण [कृष्णपक्षमें] इसको पीते हैं। देवताओंके द्वारा यह पन्द्रह दिनतक पीया जाता है। सूर्य [अपनी] सुषुम्ना नामक एक किरणके द्वारा क्रमशः इसके एक-एक भागको पूर्ण करते हैं। इन सूर्यके तेजसे चन्द्रमाका शरीर विकसित होता है। ये पूर्णिमा तिथिको पूर्णमण्डलवाले होकर श्वेतवर्णके दिखायी पड़ते हैं। इस शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे चन्द्रमा बढ़ते रहते हैं॥ ४—७॥

तत्पश्चात् कृष्णपक्षकी द्वितीयासे प्रारम्भ करके चतुर्दशी तिथितक देवतालोग चन्द्रमाके जलमय मधुर सुधामृतका पान करते हैं। वह अमृत सूर्यके तेजसे आधे महीनेतक चन्द्रमामें भरा रहता है। उस अमृतको पीनेके लिये पूर्णिमा तिथिको पूरी रात सभी देवता पितरों तथा ऋषियोंके साथ चन्द्रमाके पास स्थित रहते हैं। कृष्णपक्षके आदिसे सूर्याभिमुख चन्द्रमाकी पी जाती हुई कलाएँ क्रमशः क्षीण होती जाती हैं। वसु (८), रुद्र (११), आदित्य (१२) तथा अश्विनीद्वय (२)—ये तैंतीस देवता एवं इनके पुत्र-पौत्ररूप तैंतीस सौ तथा तैंतीस हजार देवता चन्द्रमाका पान करते हैं। इस प्रकार दिनके क्रमसे देवताओंके द्वारा चन्द्रमाका पान किये जानेपर

ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके।
अपराह्ने पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥ १४

पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य कला तु या।
निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्॥ १५

मासतृप्तिमवाप्याग्र्यां पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्।
पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्यां कला तु या॥ १६

यावत्तु क्षीयते तस्य भागः पञ्चदशस्तु सः।
अमावास्यां ततस्तस्या अन्तरा पूर्यते पुनः॥ १७

वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ।
एवं सूर्यनिमित्तैषा पक्षवृद्धिर्निशाकरे॥ १८

आधे महीनेतक पान करके वे श्रेष्ठ देवता अमावास्या तिथिको चले जाते हैं, उसके बाद उसी अमावास्या तिथिको पितृगण चन्द्रमाके पास स्थित होते हैं और शुक्लपक्षकी प्रतिपदातक बचे हुए अमृतका पान करते हैं। अन्तिम कलाके रूपमें पन्द्रहवें भागके शेष रहनेपर अपराह्नमें पितृगण चन्द्रमाके पास आ जाते हैं और उसकी जो कला बची रहती है, उसका पान दो कलावाले समय (दो घड़ी)-तक करते हैं। अमावास्या तिथिको किरणोंसे निकले हुए स्वधामृतको पीते हैं। इस प्रकार अमृत पीकर महीनेभरकी तृप्ति प्राप्त करके वे चले जाते हैं। प्रत्येक पक्षके आरम्भमें सोलहवें दिन चन्द्रमाकी वृद्धि तथा क्षयका होना बताया गया है। इस प्रकार पक्षमें चन्द्रमामें होनेवाली यह वृद्धि सूर्यके कारण होती है॥ ८—१८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सोमवर्णन' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

बुध आदि ग्रहोंके रथोंका स्वरूप, ग्रह-नक्षत्रों एवं तारागणोंद्वारा ध्रुवका परिभ्रमण, ग्रहोंका स्वरूप-विस्तार तथा उनकी गतिका निरूपण

सूत उवाच

अष्टभिश्च हयैर्युक्तः सोमपुत्रस्य वै रथः।
वारितेजोमयश्चाथ पिशङ्गैश्चैव शोभनैः॥ १

दशभिश्चाकृशैरश्वैर्नानावर्णै रथः स्मृतः।
शुक्रस्य क्ष्मामयैर्युक्तो दैत्याचार्यस्य धीमतः॥ २

अष्टाश्वश्चाथ भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः।
जीवस्य हैमश्चाष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मितः॥ ३

रथ आपोमयैरश्वैर्दशभिस्तु सितेतरैः।
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा चाष्टहयः स्मृतः॥ ४

सर्वे ध्रुवनिबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः।
एतेन भ्राम्यमाणाश्च यथायोगं व्रजन्ति वै॥ ५

यावन्त्यश्चैव ताराश्च तावन्तश्चैव रश्मयः।
सर्वे ध्रुवनिबद्धाश्च भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम्॥ ६

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] चन्द्रमाके पुत्र [बुध]-का रथ जल-अग्निमय और पिशंगवर्णवाले सुन्दर आठ घोड़ोंसे युक्त है। दैत्योंके आचार्य बुद्धिमान् शुक्रका रथ पुष्ट, विभिन्न वर्णोंवाले तथा पृथ्वीमय दस घोड़ोंसे युक्त कहा गया है। मंगलका रथ सुवर्णमय, परम सुन्दर एवं आठ घोड़ोंवाला है। बृहस्पतिका रथ सुवर्णमय है तथा आठ घोड़ोंसे युक्त है। शनैश्चरका रथ लोहेका बना हुआ है और वह काले वर्णवाले जलमय दस घोड़ोंसे युक्त है। राहु-केतुका रथ आठ घोड़ोंवाला कहा गया है॥ १—४॥

वे सभी ग्रह वायुरश्मियोंके द्वारा ध्रुवसे बँधे हुए हैं। इसके द्वारा घुमाये जाते हुए वे यथायोग चलते हैं। जितने तारे हैं, उतनी ही [वात] रश्मियाँ हैं। वे सब ध्रुवसे बँधे हुए हैं और [स्वयं] घूमते हुए उस ध्रुवको

अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु।
यस्माद्वहति ज्योतींषि प्रवहस्तेन स स्मृतः॥ ७

नक्षत्रसूर्याश्च तथा ग्रहतारागणैः सह।
उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूताः श्रिता दिवि॥ ८

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्।
प्रयान्ति चेश्वरं द्रष्टुं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि॥ ९

नवयोजनसाहस्त्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥ १०

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति॥ ११

उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्।
स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥ १२

चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाच्च प्रमाणतः॥ १३

भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः।
पादहीनौ वक्रसौरी तथायामप्रमाणतः॥ १४

विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः।
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै॥ १५

बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलादपि।
प्रायशश्चन्द्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्॥ १६

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥ १७

सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामण्डलानि तु।
योजनद्वयमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥ १८

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः॥ १९

तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥ २०

तावन्त्यस्तारकाः कोट्यो यावन्त्यृक्षाणि सर्वशः।
ध्रुवात्तु नियमाच्चैषामृक्षमार्गे व्यवस्थितिः॥ २१

सप्ताश्वस्यैव सूर्यस्य नीचोच्चत्वमनुक्रमात्।
उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चन्द्रमाः॥ २२

घुमाते हैं। वातचक्रसे प्रेरित तारागण अंगारचक्रके समान घूमते हैं। चूँकि इन ग्रह-नक्षत्रोंका वहन वायु करता है, इसलिये उसे प्रवह कहा गया है॥ ५—७॥

ग्रहों तथा तारागणोंके साथ नक्षत्र तथा सूर्य सब-के-सब चक्ररूपमें उन्मुख एवं अभिमुख होकर आकाशमें स्थित हैं। ध्रुवके द्वारा नियन्त्रित वे सब ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते हैं। वे धुरीरूप ईश्वर ध्रुवको देखनेके लिये आकाशमें भ्रमण करते हैं॥ ८-९॥

सूर्यका व्यास नौ हजार योजन कहा गया और इस प्रमाणके अनुसार उनके मण्डलका विस्तार तीन गुना है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना बताया गया है। उन दोनोंके बराबर होकर राहु नीचेसे चलता है। मण्डलाकार बनी हुई पृथ्वीछायाको लेकर राहुका तीसरा बड़ा स्थान है, जो अन्धकारमय है॥ १०—१२॥

योजनके प्रमाणसे शुक्रका व्यास तथा मण्डल चन्द्रमाके व्यास एवं मण्डलका सोलहवाँ भाग कहा गया है। [आकारमें] बृहस्पतिको शुक्रसे एक चौथाई कम कहा गया है। विस्तारके प्रमाणसे मंगल तथा शनि बृहस्पतिसे एक चौथाई कम हैं। [अर्थात् मंगल एवं शनि विस्तारमें बृहस्पतिके तीन चौथाई हैं] बुध विस्तार तथा मण्डलमें उन दोनोंका तीन चौथाई है। तारा-नक्षत्ररूप जो पिण्ड हैं, वे विस्तार तथा मण्डलमें बुधके तुल्य हैं, तत्त्ववेत्ताको चन्द्रमासे युक्त उन नक्षत्रोंको 'ऋक्ष' नामसे जानना चाहिये॥ १३—१६॥

छोटे-छोटे असंख्य तारे तथा नक्षत्र परस्पर पाँच, चार, तीन एवं दो योजनकी दूरीपर हैं। सबसे ऊपर अत्यन्त छोटे तारामण्डल हैं, जो केवल दो योजन विस्तारवाले हैं, उनसे छोटे तारे नहीं हैं। उनके ऊपर तीन ग्रह शनि, बृहस्पति तथा मंगल; जो दूरकी यात्रा करनेवाले हैं, उन्हें मन्दगतिवाला जानना चाहिये। उनके नीचे चार अन्य बड़े ग्रह सूर्य, चन्द्रमा, बुध तथा शुक्र हैं, जो तेजीसे चलनेवाले हैं॥ १७—२०॥

तारागण उतने ही करोड़ हैं, जितने सभी ऋक्ष (नक्षत्र) हैं। ऋक्षमार्गमें उनकी भी स्थिति ध्रुवके नियन्त्रणसे ही है। सात घोड़ोंवाले सूर्यका अनुक्रमसे

उच्चत्वाद् दृश्यते शीघ्रं नातिव्यक्तैर्गभस्तिभिः।
तदा दक्षिणमार्गस्थो नीचां वीथीमुपाश्रितः॥ २३

भूमिरेखावृतः सूर्यः पौर्णिमावास्ययोस्तदा।
ददृशे च यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च॥ २४

तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः।
ददृशे दक्षिणे मार्गे नियमाद् दृश्यते न च॥ २५

ज्योतिषां गतियोगेन सूर्यस्य तमसा वृतः।
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ॥ २६

उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमनोदयौ।
पौर्णिमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ॥ २७

दक्षिणायनमार्गस्थौ यदा चरति रश्मिवान्।
ग्रहाणां चैव सर्वेषां सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति॥ २८

विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति॥ २९

नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः।
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः॥ ३०

तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम्।
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवस्योर्ध्वं व्यवस्थितिः॥ ३१

तं विष्णुलोकं परमं ज्ञात्वा मुच्येत किल्बिषात्।
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च॥ ३२

ग्रहनक्षत्रतारासु उपरिष्टाद्यथाक्रमम्।
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ च युतौ दिव्येन तेजसा॥ ३३

नित्यमृक्षेषु युज्यन्ते गच्छन्तोऽहर्निशं क्रमात्।
ग्रहनक्षत्रसूर्यास्ते नीचोच्चऋजुसंस्थिताः॥ ३४

समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः।
ऋतवः षट् स्मृताः सर्वे समागच्छन्ति पञ्चधा॥ ३५

परस्परास्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम्।
असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः॥ ३६

नीचोच्चत्व (नीचा तथा ऊँचा होना) होता रहता है। जब सूर्य उत्तरायणमार्गमें स्थित होते हैं और चन्द्रमा पूर्ण मण्डलमें होते हैं, तब सूर्य कुछ अस्पष्ट किरणोंके साथ उच्चत्वके कारण शीघ्र दिखायी पड़ते हैं। जब सूर्य दक्षिणायनमार्गमें स्थित होते हैं, तब वे नीचेवाली वीथिमें रहते हैं। पृथ्वीकी रेखाद्वारा ढँका हुआ सूर्य उससे नीचे होता है। पूर्णिमा तथा अमावास्याके दिनोंमें यथासमय दिखायी देता है; क्योंकि यह शीघ्र अस्त हो जाता है। अतः नये चन्द्रमाकी तिथि [अमावास्या]-पर चन्द्रमा उत्तरायणमें होता है। यह दक्षिण मार्गमें दिखायी नहीं पड़ता; क्योंकि नक्षत्रोंके गतियोगके कारण यह [चन्द्रमा] सूर्यके अन्धकारसे ढँका हुआ होता है॥ २१—२५ $^{1}/_{2}$ ॥

सूर्य तथा चन्द्रमा विषुवत् स्थानोंपर समान कालमें अस्त एवं उदय होते हैं। उत्तरायणमें पूर्णिमा तथा अमावास्या तिथियोंपर ज्योतिश्चक्रका अनुसरण करनेवाले इन दोनोंको बिना किसी अन्तरके उदय तथा अस्त होनेवाला जानना चाहिये। जब सूर्य दक्षिणायनमार्गमें स्थित होकर चलता है, तब वह सभी ग्रहोंके नीचेसे गुजरता है, उस समय चन्द्रमा अपने मण्डलको विस्तृत करके उस [सूर्य]-के ऊपर चलते हैं और सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है। नक्षत्रोंसे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल, मंगलसे ऊपर बृहस्पति, उस बृहस्पतिसे ऊपर शनि और उससे ऊपर सप्तर्षिमण्डल विद्यमान है। सात ऋषियोंके ऊपर ध्रुवकी स्थिति है। उस परम विष्णुलोकको जानकर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है॥ २६—३१ $^{1}/_{2}$ ॥

दो सौ हजार योजन दूरीपर ग्रह-नक्षत्र-तारोंसे ऊपर यथाक्रम सभी ग्रह और दिव्य तेजसे युक्त चन्द्रमा-सूर्य दिन-रात भ्रमण करते हुए सदा नक्षत्रोंसे जुड़े रहते हैं। वे ग्रह, नक्षत्र तथा सूर्य कभी नीचे, कभी ऊँचे एवं कभी सीधी रेखामें स्थित रहते हैं। समागम तथा भेद दोनों स्थितियोंमें वे प्रजाओंको एक साथ देखते हैं। ऋतुएँ छः कही गयी हैं, वे सब पाँच प्रकारसे आती हैं। एक-दूसरेपर आश्रित होनेके कारण ये परस्पर जुड़ी

एवं सङ्क्षिप्य कथितं ग्रहाणां गमनं द्विजाः।
भास्करप्रमुखानां च यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ ३७

ग्रहाधिपत्ये भगवान् ब्रह्मणा पद्मयोनिना।
अभिषिक्तः सहस्रांशू रुद्रेण तु यथा गुहः॥ ३८

तस्माद् ग्रहार्चना कार्या अग्नौ चोद्यं यथाविधि।
आदित्यग्रहपीडायां सद्भिः कार्यार्थसिद्धये॥ ३९

होती हैं, किंतु उनका यह योग एक-दूसरेके साथ बिना संकर (मिश्रण)-के ही होता है—ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिये॥ ३२—३६॥

हे द्विजो! इस प्रकार मैंने जैसा देखा तथा सुना है, उसके अनुसार संक्षेपमें सूर्य आदि ग्रहोंकी गतिका वर्णन किया। पद्मयोनि ब्रह्माने ग्रहोंके अधिपतिके रूपमें हजार किरणोंवाले भगवान् सूर्यको अभिषिक्त किया है। जैसे रुद्रने कार्तिकेयको अभिषिक्त किया है। अतः सज्जनोंको [अपने] कार्यकी सिद्धिके लिये सूर्य ग्रहकी पीड़ाके समय कहे गये विधानके अनुसार यथाविधि अग्निमें ग्रहार्चन करना चाहिये॥ ३७—३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ज्योतिश्चक्रे ग्रहचारकथनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ज्योतिश्चक्रमें ग्रहचारकथन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

ब्रह्माद्वारा शिवके आदेशसे ग्रहों, नक्षत्रों, जलों आदिके अधिपतिके रूपमें सूर्य, चन्द्रमा, वरुण आदिकी प्रतिष्ठाका निरूपण

ऋषय ऊचुः

अभ्यषिञ्चत्कथं ब्रह्मा चाधिपत्ये प्रजापतिः।
देवदैत्यमुखान् सर्वान् सर्वात्मा वद साम्प्रतम्॥ १

सूत उवाच

ग्रहाधिपत्ये भगवानभ्यषिञ्चद्दिवाकरम्।
ऋक्षाणामोषधीनां च सोमं ब्रह्मा प्रजापतिः॥ २

अपां च वरुणं देवं धनानां यक्षपुङ्गवम्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनां पावकं तथा॥ ३

प्रजापतीनां दक्षं च मरुतां शक्रमेव च।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादं दैत्यपुङ्गवम्॥ ४

धर्मं पितॄणामधिपं निर्ऋतिं पिशिताशिनाम्।
रुद्रं पशूनां भूतानां नन्दिनां गणनायकम्॥ ५

वीराणां वीरभद्रं च पिशाचानां भयङ्करम्।
मातॄणां चैव चामुण्डां सर्वदेवनमस्कृताम्॥ ६

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] सर्वात्मा प्रजापति ब्रह्माजीने सभी प्रमुख देवताओं तथा दैत्योंको अधिपतिके रूपमें किस प्रकार अभिषिक्त किया, इस समय [हमलोगोंको] बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] भगवान् ब्रह्माने ग्रहोंके अधिपतिके रूपमें सूर्यका और नक्षत्रों तथा औषधियोंके अधिपतिके रूपमें चन्द्रमाका अभिषेक किया॥ २॥

उन पितामहने वरुणदेवको जलोंका अधिपति, यक्षोंमें श्रेष्ठ कुबेरको धनोंका अधिपति, विष्णुको आदित्योंका अधिपति, अग्निको वसुओंका अधिपति, दक्षको प्रजापतियोंका अधिपति, इन्द्रको मरुतोंका अधिपति, दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादको दैत्यों तथा दानवोंका अधिपति, धर्मको पितरोंका अधिपति, निर्ऋतिको राक्षसोंका अधिपति, रुद्रको पशुओंका अधिपति, गणोंके नायक नन्दीको भूतोंका अधिपति, भयंकर वीरभद्रको वीर पिशाचोंका अधिपति, सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत चामुण्डाको

रुद्राणां देवदेवेशं नीललोहितमीश्वरम्।
विघ्नानां व्योमजं देवं गजास्यं तु विनायकम्॥ ७

स्त्रीणां देवीमुमादेवीं वचसां च सरस्वतीम्।
विष्णुं मायाविनां चैव स्वात्मानं जगतां तथा॥ ८

हिमवन्तं गिरीणां तु नदीनां चैव जाह्नवीम्।
समुद्राणां च सर्वेषामधिपं पयसां निधिम्॥ ९

वृक्षाणां चैव चाश्वत्थं प्लक्षं च प्रपितामहः॥ १०

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणा-
मीशं पुनश्चित्ररथं चकार।
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं
सर्पाधिपं तक्षकमुग्रवीर्यम्॥ ११

दिग्वारणानामधिपं चकार
गजेन्द्रमैरावतमुग्रवीर्यम्।
सुपर्णमीशं पततामथाश्व-
राजानमुच्चैःश्रवसं चकार॥ १२

सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च
मृगाधिपानां शरभं चकार।
सेनाधिपानां गुहमप्रमेयं
श्रुतिस्मृतीनां लकुलीशमीशम्॥ १३

अभ्यषिञ्चत्सुधर्माणं तथा शङ्खपदं दिशाम्।
केतुमन्तं क्रमेणैव हेमरोमाणमेव च॥ १४

पृथिव्यां पृथुमीशानं सर्वेषां तु महेश्वरम्।
चतुर्मूर्तिषु सर्वज्ञं शङ्करं वृषभध्वजम्॥ १५

प्रसादाद्भगवाञ्छम्भोश्चाभ्यषिञ्चद्यथाक्रमम्।
पुराभिषिच्य पुण्यात्मा रराज भुवनेश्वरः॥ १६

एतद्वो विस्तरेणैव कथितं मुनिपुङ्गवाः।
अभिषिक्तास्ततस्त्वेते विशिष्टा विश्वयोनिना॥ १७

मातृगणोंका अधिपति, देवदेवेश ईश्वर नीललोहितको रुद्रोंका अधिपति, व्योमसे उत्पन्न तथा हाथीके समान मुखवाले विनायकको विघ्नोंका अधिपति, देवी उमाको स्त्रियोंका अधिपति, देवी सरस्वतीको वाणीका अधिपति, विष्णुको मायावियोंका अधिपति, स्वयं अपनेको सम्पूर्ण जगत्‌का अधिपति, हिमालयको पर्वतोंका अधिपति, गंगाको नदियोंका अधिपति, जलनिधि (महासागर)-को सभी समुद्रोंका अधिपति और अश्वत्थ तथा प्लक्षको वृक्षोंका अधिपति बनाया॥ ३—१०॥

उन्होंने चित्ररथको गन्धर्वों-विद्याधरों तथा किन्नरोंका अधिपति, उग्र तेजवाले वासुकिको नागोंका अधिपति और उग्र वीर्यवाले तक्षकको सर्पोंका अधिपति बनाया॥ ११॥

उन्होंने उग्र पराक्रमवाले गजेन्द्र ऐरावतको दिग्गजोंका स्वामी, गरुड़को पक्षियोंका स्वामी और उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका स्वामी बनाया॥ १२॥

उन्होंने सिंहको मृगोंका स्वामी, वृषभको गौओंका स्वामी, शरभको सिंहोंका स्वामी, अतुलनीय गुह (कार्तिकेय)-को सेनाधिपोंका स्वामी और लकुलीशको श्रुतियों तथा स्मृतियोंका स्वामी बनाया॥ १३॥

उन्होंने सुधर्मा, शंखपद, केतुमान् तथा हेमरोमको क्रमशः सभी दिशाओंके अधिपतिके रूपमें अभिषिक्त किया। उन्होंने पृथुको पृथ्वीका स्वामी, महेश्वरको सबका स्वामी और सब कुछ जाननेवाले वृषभध्वज शंकरको चारों (विश्व, प्राज्ञ, तैजस, तुरीय) मूर्तियोंका स्वामी बनाया॥ १४-१५॥

इस प्रकार भगवान् ब्रह्माने शम्भुकी कृपासे पूर्वकालमें [इन सभीको] क्रमसे अभिषिक्त किया। इन्हें अभिषिक्त करके लोकोंके स्वामी पुण्यात्मा ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हो गये॥ १६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने आपलोगोंको यह विस्तारसे बता दिया; विश्वको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माने [इसी तरहसे] विशिष्ट गुणोंसे युक्त इन सबको अभिषिक्त किया था॥ १७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्याद्यभिषेककथनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सूर्य आदिका अभिषेककथन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

पार्थिव, शुचि तथा वैद्युत नामसे अग्निके तीन रूपोंका वर्णन, बारह मासके बारह सूर्योंका नामनिर्देश एवं सूर्यरश्मियोंका वर्णन

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्तं संशयान्विताः।
पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते रोमहर्षणम्॥ १

सूतजी बोले—यह सुनकर मुनिलोग संशयमें पड़ गये और उन्होंने उन रोमहर्षण (सूतजी)-से पुनः यह बात पूछी॥ १॥

ऋषय ऊचुः

यदेतदुक्तं भवता सूतेह वदतां वर।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि ज्योतिषां च विनिर्णयम्॥ २

ऋषिगण बोले—वक्ताओंमें श्रेष्ठ हे सूतजी! आपने यहाँ जो कहा है, उसे तथा ग्रहोंके निर्णयको विस्तारसे बताइये॥ २॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः।
उवाच परमं वाक्यं तेषां संशयनिर्णये॥ ३

तब उनका वचन सुनकर उनके सन्देहको दूर करनेके लिये सूतजी एकाग्रचित्त होकर उत्तम बात कहने लगे॥ ३॥

अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं शान्तबुद्धिभिः।
एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि सूर्यचन्द्रमसोर्गतिम्॥ ४

यथा देवगृहाणीह सूर्यचन्द्रादयो ग्रहाः।
अतः परं तु त्रिविधमग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम्॥ ५

दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथोऽग्नेः पार्थिवस्य च।

इस विषयमें शान्तबुद्धिवाले महाज्ञानियोंने जो कुछ बताया है, उसे मैं आपलोगोंसे कहूँगा और चन्द्रमा तथा सूर्यकी गतिका वर्णन करूँगा। मैं यह बताऊँगा कि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह किस प्रकार देवताओंके निवासस्थान हैं, इसके बाद मैं अग्निकी तीन प्रकारकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा। दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि तथा पार्थिव अग्निके विषयमें बताऊँगा॥ ४–५½॥

व्युष्टायां तु रजन्यां च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ६

अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसा वृतम्।
चतुर्भागावशिष्टेऽस्मिन् लोके नष्टे विशेषतः॥ ७

स्वयंभूर्भगवांस्तत्र लोकसर्वार्थसाधकः।
खद्योतवत्स व्यचरदाविर्भावचिकीर्षया॥ ८

अव्यक्तसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माकी रात्रि बीत जानेपर यह दृश्य जगत् अस्पष्ट था और घोर अन्धकारसे आच्छन्न था। इस लोकके विशेष रूपसे नष्ट हो जानेपर तथा इसका चौथाई भाग अवशिष्ट रहनेपर संसारका कार्य सिद्ध करनेवाले वे भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकी कामनासे खद्योतकी भाँति वहाँ विचरण करने लगे॥ ६—८॥

सोऽग्निं सृष्ट्वाथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितः।
संहृत्य तत्प्रकाशार्थं त्रिधा व्यभजदीश्वरः॥ ९

पवनो यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवो वह्निरुच्यते।
यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः॥ १०

वैद्युतोऽब्जस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्ये तु लक्षणम्।
वैद्युतो जाठरः सौरो वारिगर्भास्त्रयोऽग्नयः॥ ११

तदनन्तर पृथ्वी तथा जलमें संश्रित उन जगदीश्वरने लोकके आदिमें अग्निका सृजन करके पृथ्वीके जलका संहरणकर उसके प्रकाशके लिये अग्निको तीन भागोंमें विभक्त किया। इस लोकमें जो पवन है, वह पार्थिव अग्नि कहा जाता है और जो अग्नि सूर्यमें तपती है, उसे शुचि अग्नि कहा गया है। विद्युत्से उत्पन्न अग्निको अब्ज जानना चाहिये। इस प्रकार जलके गर्भसे उत्पन्न वैद्युत, जाठर तथा सौर—ये तीन अग्नियाँ हैं। अब मैं उनके लक्षणोंको बताऊँगा॥ ९—११॥

तस्मादपः पिबन् सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ विभुः।
जले चाब्जः समाविष्टो नाद्भिरग्निः प्रशाम्यति॥ १२

मानवानां च कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः।
अर्चिष्मान् पवनः सोऽग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः॥ १३

यश्चायं मण्डली शुक्ली निरूष्मा सम्प्रजायते।
प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्तं याते दिवाकरे॥ १४

अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते।
उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमग्नेः समाविशेत्॥ १५

पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ।
प्रकाशोष्णस्वरूपे च सौराग्नेये तु तेजसी॥ १६

परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम्।
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे॥ १७

उत्तिष्ठति पुनः सूर्यः पुनर्वै प्रविशत्यपः।
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवा रात्रिप्रवेशनात्॥ १८

अस्तं याति पुनः सूर्यो अहर्वै प्रविशत्यपः।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो दृश्यन्ति भास्वराः॥ १९

एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे।
उदयास्तमने नित्यमहोरात्रं विशत्यपः॥ २०

यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन्नम्भो गभस्तिभिः।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः॥ २१

सहस्रपादसौ वह्निर्वृत्तकुम्भनिभः स्मृतः।
आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः॥ २२

नादेयीश्चैव सामुद्रीः कूपाश्चैव तथा घनाः।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव वापीकुल्यादिका अपः॥ २३

तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्णनिःस्रवम्।
तासां चतुःशता नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः॥ २४

भजनाश्चैव माल्याश्च केतनाः पतनास्तथा।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥ २५

विभु सूर्य अपनी किरणोंसे जलको पीते हुए चमकते हैं। जलसे उत्पन्न अग्नि जलमें समाविष्ट रहती है और वह जलसे नहीं बुझती है। मनुष्योंके उदरमें रहनेवाली अग्नि प्रशान्त नहीं होती। वह पवन अग्निज्वालायुक्त होती है, किंतु निष्प्रभ होती है, उसे जाठर अग्नि कहा गया है। यह जो अग्नि है, वह एक मण्डलके रूपमें, शुक्ल वर्णवाली तथा ऊष्मारहित होती है। सूर्यके अस्त हो जानेपर उनकी सम्पूर्ण प्रभा एक पाद (चौथाई) रह जाती है। वह प्रभा रात्रिके समय अग्निमें प्रविष्ट हो जाती है, इसलिये वह दूरसे प्रकाश दिया करती है। जब सूर्य पुनः उगता है, तब पार्थिव अग्निकी उष्णता एक चरणसे सूर्यमें प्रवेश कर जाती है, इसलिये अग्नि तपती है॥ १२—१५$^{1}/_{2}$॥

सूर्य तथा अग्निके तेज प्रकाश एवं उष्ण गुण-स्वरूपवाले हैं, ये दोनों परस्पर अनुप्रवेशके कारण एक-दूसरेको आप्यायित करते हैं। मेरुके दक्षिणी तथा उत्तरी भूम्यर्धमें, जब सूर्य उदित होता है, तब रात्रि जलमें प्रवेश कर जाती है, इसलिये दिनके समय रात्रिके [जलमें] प्रवेश करनेके कारण जल ताम्रवर्ण हो जाता है। जब सूर्य अस्त होता है, तब दिन जलमें प्रवेश कर जाता है, इसलिये रातमें जल पुनः शुक्ल वर्णवाला तथा चमकीला दिखायी पड़ता है। इसी क्रमयोगसे उदय एवं अस्त दोनों समयोंमें दिन और रात दक्षिणोत्तर भूम्यर्धमें जलमें प्रवेश किया करते हैं॥ १६—२०॥

जो यह सूर्य [अपनी] किरणोंसे जलको पीता हुआ तपता रहता है, उसे पार्थिवाग्निमिश्रित दिव्य शुचि (अग्नि) कहा गया है। हजार पाद (किरण)-वाली यह अग्नि वृत्तकुम्भके तुल्य कही गयी है। वह अपनी हजार नाड़ियों (किरणों)-से चारों ओरसे नदियों, समुद्रों, कूपों, बावलियों, नालों आदि स्थावर-जंगमसे जलोंको ग्रहण करती है। उसकी एक हजार नाड़ियाँ हैं; जो शीत, उष्ण और वर्षासे युक्त हैं। उनमेंसे विचित्र रूपोंवाली चार सौ नाड़ियाँ वर्षा करती हैं। वे भजना, माल्या, केतना तथा पतना हैं; अमृता नामवाली ये सभी रश्मियाँ वृष्टि करनेवाली हैं॥ २१—२५॥

हिमोद्वहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
रेशा मेघाश्च वात्स्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ॥ २६

चन्द्रभा नामतः सर्वाः पीताभाश्च गभस्तयः ।
शुक्लाश्च ककुभाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥ २७

शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशतीर्घर्मसर्जनाः ।
सोमो बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥ २८

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्तिसृभिस्तर्पयत्यसौ ॥ २९

वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः ।
वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः सम्प्रवर्षति ॥ ३०

हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजते त्रिभिः ।
इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ॥ ३१

अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च पर्जन्यो विष्णुरेव च।
वरुणो माघमासे तु सूर्य एव तु फाल्गुने ॥ ३२

चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापनः ।
ज्येष्ठे मासि भवेदिन्द्र आषाढे चार्यमा रविः ॥ ३३

विवस्वान् श्रावणे मासि प्रोष्ठपादे भगः स्मृतः ।
पर्जन्योऽश्वयुजे मासि त्वष्टा वै कार्तिके रविः ॥ ३४

मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः ।
पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि ॥ ३५

षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽशुः सप्तभिस्तथा।
धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः ॥ ३६

विवस्वान् दशभिर्याति यात्येकादशभिर्भगः ।
सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिः स्मृतः ॥ ३७

अर्यमा दशभिर्याति पर्जन्यो नवभिस्तथा।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति मेदिनीम् ॥ ३८

वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः ।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः ॥ ३९

तीन सौ हिमवाहिनी नाड़ियाँ हैं। वे रेशा, मेघा, वात्स्या तथा ह्लादिनी हैं; चन्द्रभा नामवाली वे सभी रश्मियाँ हिमका सर्जन करनेवाली हैं और पीत आभावाली हैं। शुक्ला, ककुभा, गौ तथा विश्वभृत्—ये रश्मियाँ शुक्ला नामवाली हैं; वे सब तीन सौ रश्मियाँ ऊष्मा उत्पन्न करनेवाली हैं। चन्द्रमा उन तीनों किरणोंके द्वारा मनुष्य, पितृगणों तथा देवताओंका भरण करता है। वह मनुष्योंको औषधिसे, पितरोंको स्वधासे और सभी देवताओंको अमृतसे तृप्त करता है ॥ २६—२९ ॥

वह [सूर्य] वसन्त तथा ग्रीष्ममें तीन सौ किरणोंसे तपता है, वर्षा तथा शरद्में चार सौ किरणोंसे वर्षा करता है और हेमन्त तथा शिशिरमें तीन सौ किरणोंसे हिम छोड़ता है। इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान्, त्वष्टा, पर्जन्य और विष्णु—ये [बारह] सूर्य हैं। वरुण माघमासमें सूर्य है एवं पूषा फाल्गुनमासमें सूर्य है। अंशु चैत्रमासमें सूर्य होता है और धाता वैशाखमासमें सूर्य होता है। इन्द्र ज्येष्ठमासमें सूर्य होता है और अर्यमा आषाढ़मासमें सूर्य होता है। विवस्वान् श्रावणमासमें और भग भाद्रपदमासमें सूर्य कहा गया है। पर्जन्य आश्विन मासमें सूर्य होता है और त्वष्टा कार्तिकमासमें सूर्य होता है। मित्र मार्गशीर्षमासमें सूर्य होता है और सनातन विष्णु पौषमासमें सूर्य होता है ॥ ३०—३४१/२ ॥

सूर्यसम्बन्धी कर्ममें वरुणकी पाँच हजार रश्मियाँ होती हैं। पूषा छः हजार किरणोंसे, अंशुदेव सात हजार किरणोंसे, धाता आठ हजार किरणोंसे और इन्द्र नौ हजार किरणोंसे सूर्यकर्म करते हैं। विवस्वान् दस हजार किरणोंसे गमन करता है और भग ग्यारह हजार किरणोंसे गमन करता है। मित्र सात हजार रश्मियोंसे तपता है। त्वष्टा आठ हजार किरणोंसे युक्त कहा गया है। अर्यमा दस हजार किरणोंसे तथा पर्जन्य नौ हजार किरणोंसे गमन करता है। विष्णु [नामक सूर्य] छः हजार रश्मियोंसे पृथ्वीपर तपता है ॥ ३५—३८ ॥

सूर्य वसन्त-ऋतुमें कपिल वर्णके और ग्रीष्म-ऋतुमें स्वर्णकी प्रभावाले होते हैं। वे सूर्य वर्षाऋतुमें

हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः।
इति वर्णाः समाख्याता मया सूर्यसमुद्भवाः॥ ४०

श्वेतवर्ण और शरद्-ऋतुमें पाण्डुवर्णके होते हैं। रवि हेमन्त-ऋतुमें ताम्र वर्णवाले और शिशिर-ऋतुमें लोहित वर्णवाले होते हैं। इस प्रकार मैंने सूर्यमें होनेवाले रंगोंका वर्णन किया॥ ३९-४०॥

ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृष्वपि।
सूर्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रयं त्रिषु नियच्छति॥ ४१

एवं रश्मिसहस्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम्।
भिद्यते लोकमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम्॥ ४२

सूर्य औषधियोंको बल देते हैं, स्वधासे पितरोंको तृप्त करते हैं और देवताओंको अमृत प्रदान करते हैं, इस प्रकार वे उन तीनोंको तीन वस्तुएँ देते हैं। इस प्रकार सूर्यकी वे हजारों किरणें लोककल्याण करती हैं। शीत, उष्ण तथा वर्षा करनेवाली ये किरणें लोकमें पहुँचकर भिन्न-भिन्न रूप धारण करती हैं॥ ४१-४२॥

इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्करं सूर्यसंज्ञितम्।
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च॥ ४३

चन्द्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः।
नक्षत्राधिपतिः सोमो नयनं वाममीशितुः॥ ४४

नयनं चैवमीशस्य दक्षिणं भास्करः स्वयम्।
तेषां जनानां लोकेऽस्मिन्नयनं नयते यतः॥ ४५

शुक्ल वर्णवाला तथा देदीप्यमान यह मण्डल सूर्य नामवाला है। यह नक्षत्रों, ग्रहों एवं चन्द्रमाकी प्रतिष्ठाका कारण है। चन्द्रमा, नक्षत्र तथा ग्रह—इन सभीको सूर्यसे उत्पन्न जानना चाहिये। चन्द्रमा नक्षत्रोंका अधिपति है और शिवजीका बायाँ नेत्र है। स्वयं सूर्य शिवजीके दाहिने नेत्र हैं। वे इस लोकमें लोगोंको ले जाते हैं, इसीलिये ये नयन कहे जाते हैं॥ ४३—४५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यरश्मिस्वरूपकथनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सूर्यरश्मिस्वरूपकथन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५९॥

साठवाँ अध्याय

मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों एवं सूर्यके माहात्म्यका वर्णन

सूत उवाच

शेषाः पञ्च ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः।
पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चन्द्रमाः स्मृतः॥ १

सूतजी बोले—सूर्य अग्निके रूपमें पढ़ा जाता है और चन्द्रमाको जल कहा गया है। शेष [भौम आदि] पाँच ग्रहोंको ईश्वर तथा इच्छाके अनुसार भ्रमण करनेवाला जानना चाहिये॥ १॥

शेषाणां प्रकृतिं सम्यग् वक्ष्यमाणां निबोधत।
सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः॥ २

नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो जनाः।
सर्वलोकप्रभुः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम्॥ ३

महाग्रहो द्विजश्रेष्ठा मन्दगामी शनैश्चरः।
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ॥ ४

प्रजापतिसुतावुक्तौ ततः शुक्रबृहस्पती।
आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः॥ ५

[हे ऋषियो!] मैं शेष ग्रहोंकी प्रकृति भलीभाँति बताता हूँ, आपलोग सुनिये। भौम (मंगल) ग्रहको देवताओंका सेनापति स्कन्द कहा जाता है। ज्ञानीलोग बुधको नारायण देव कहते हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! मन्द गतिवाला महाग्रह शनैश्चर समस्त लोकोंका स्वामी तथा लोकप्रभु साक्षात् यम है। देवताओं और असुरोंके गुरु भानुमान् महाग्रह बृहस्पति तथा शुक्र प्रजापतिके पुत्र कहे गये हैं। आदित्य ही सम्पूर्ण त्रैलोक्यका मूल है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २—५॥

भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्।
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राग्निदिवौकसाम्॥ ६

द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्।
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः॥ ७

सूर्य एव त्रिलोकेशो मूलं परमदैवतम्।
ततः सञ्जायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते॥ ८

भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा।
अविज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुप्रभो रविः॥ ९

अत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः॥ १०

मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च।
तदादित्यादृते ह्येषा कालसंख्या न विद्यते॥ ११

कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः।
ऋतूनां च विभागश्च पुष्पं मूलं फलं कुतः॥ १२

कुतः सस्यविनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोऽपि च।
अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च॥ १३

जगत्प्रतापनमृते भास्करं रुद्ररूपिणम्।
स एष कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः॥ १४

तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।
स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः॥ १५

उत्तमं मार्गमास्थाय रात्र्यहोभिरिदं जगत्।
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः॥ १६

यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलम्बितः।
पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥ १७

तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः।
सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वमादीपयति सर्वतः॥ १८

देवता, असुर तथा मनुष्यसहित सम्पूर्ण जगत् इसी [सूर्य]-से उत्पन्न होता है। वे सूर्य रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्रमा, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, अग्नि एवं देवताओं—इन सब द्युतिसम्पन्न देवोंकी द्युति हैं। उनका जो सम्पूर्ण तेज है, वह सार्वलौकिक है। वे सबकी आत्मा, सभी लोकोंके ईश्वर, महादेव और प्रजापति हैं। सूर्य ही तीनों लोकोंके ईश, सबके कारणस्वरूप एवं परम देवता हैं। उन्हींसे सब कुछ उत्पन्न होता है और उन्हींमें विलीन हो जाता है॥ ६—८॥

लोकोंके भाव तथा अभाव पूर्वकालमें आदित्यसे ही निकले थे। हे विप्रो! उत्तम प्रभावाला दीप्तिमान् सूर्य [नामक] ग्रह अविज्ञेय है॥ ९॥

क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर (वर्ष), ऋतु तथा युग इन्हीं सूर्यसे बार-बार उत्पन्न होते हैं और इन्हींमें समाप्त होते हैं। इसलिये सूर्यके बिना यह कालगणना नहीं होती है। कालके बिना न नियम हो सकता है, न दीक्षा हो सकती है और न दैनिक कृत्य ही हो सकता है। [इनके बिना] ऋतुओंका विभाजन, पुष्प, मूल तथा फल कैसे हो सकते हैं? धान्यकी उत्पत्ति कैसे सम्भव है और तृण तथा औषधियाँ भी कैसे हो सकती हैं? जगत्को तपानेवाले रुद्ररूप भास्करके बिना इस लोकमें तथा स्वर्गमें प्राणियोंके व्यवहारका अभाव हो जायगा। वे ही काल, अग्नि, द्वादश आत्मा तथा प्रजापति हैं॥ १०—१४॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ये ही सूर्य चराचरसहित त्रैलोक्यको प्रकाश देते हैं। ये ही तेजोंकी राशि, सम्पूर्ण स्वरूपवाले तथा सार्वलौकिक हैं। उत्तम मार्गका आश्रय लेकर ये [सूर्य] ही इस जगत्को पार्श्वभागसे, ऊपरसे, नीचेसे, सभी ओरसे दिन-रात ताप प्रदान करते हैं। जिस प्रकार घरमें रखा हुआ प्रभा करनेवाला दीपक पार्श्वभागमें, ऊपर तथा नीचे समान रूपसे अन्धकारका नाश करता है, उसी तरह हजार किरणोंवाले ग्रहोंके राजा एवं जगत्के स्वामी सूर्य [अपनी] किरणोंसे सारे जगत्को सभी ओरसे प्रकाशित करते हैं॥ १५—१८॥

रवे रश्मिसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम्।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः॥ १९
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचाः पुनश्चाद्यः सन्नद्धश्च ततः परः॥ २०
सर्वावसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु दक्षिणां राशिमैधयत्॥ २१
न्यगूर्ध्वाधः प्रचारोऽस्य सुषुम्नः परिकीर्तितः।
हरिकेशः पुरस्ताद्यो ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते॥ २२
दक्षिणे विश्वकर्मा च रश्मिर्वर्धयते बुधम्।
विश्वव्यचास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः॥ २३
सन्नद्धश्च तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य तु।
षष्ठः सर्वावसू रश्मिः स योनिस्तु बृहस्पतेः॥ २४
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट्।
एवं सूर्यप्रभावेन नक्षत्रग्रहतारकाः॥ २५
दृश्यन्ते दिवि ताः सर्वाः विश्वं चेदं पुनर्जगत्।
न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता॥ २६

मैं सूर्यकी जिन हजार किरणोंको पहले बता चुका हूँ, उनमें सात श्रेष्ठ किरणें ग्रहोंको उत्पन्न करनेवाली हैं। वे सुषुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, सन्नद्ध, सर्वावसु और स्वराट् [नामवाली] कही गयी हैं। सूर्यकी सुषुम्ना [नामक] रश्मि दक्षिण राशिकी वृद्धि करती है। इस सुषुम्नाका गमन पार्श्व, ऊपर तथा नीचे सभी ओर कहा गया है। सामनेकी ओर जो हरिकेश [रश्मि] है, उसे नक्षत्रोंकी योनि कहा जाता है। विश्वकर्मा [नामक] रश्मि दक्षिणमें बुधको विकसित करती है। पीछेकी ओर जो विश्वव्यचा [नामक रश्मि] है, उसे विद्वानोंने शुक्रकी योनि कहा है। जो सन्नद्ध [नामक] रश्मि है, वह मंगलकी योनि है। छठी जो सर्वावसु रश्मि है, वह बृहस्पतिकी योनि है। इसके बाद स्वराट् रश्मि शनैश्चरको पोषित करती है। इस प्रकार सूर्यके ही प्रभावसे सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे अन्तरिक्षमें दिखायी देते हैं और यह सम्पूर्ण जगत् दिखायी देता है। चूँकि वे नष्ट नहीं होते, इसलिये उन्हें नक्षत्र कहा गया है॥ १९—२६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यप्रभाववर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सूर्यप्रभाववर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

ज्योतिःसन्निवेशमें ग्रहोंके स्वरूप तथा नक्षत्रों और ग्रहोंकी पारस्परिक स्थितिका वर्णन

सूत उवाच

क्षेत्राण्येतानि सर्वाणि आतपन्ति गभस्तिभिः।
तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रतारकाः॥ १
चीर्णेन सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयाः।
तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः॥ २
दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः।
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसामपि॥ ३
सवने स्यन्दनेऽर्थे च धातुरेष विभाष्यते।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः॥ ४
बहुलश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते।
शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते॥ ५

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] रात्रिमें सूर्यकिरणोंसे प्रकाशित होनेवाले ये सभी क्षेत्र भारतवर्षमें अनुष्ठित पुण्योंद्वारा पुण्यात्माओंके होते हैं, तदनन्तर सूर्य सुकृतोंके पूर्ण होनेपर ग्रहोंके आश्रयमें रहनेवाले [ग्रहाश्रित] नक्षत्र-तारोंको [अपने प्रभामण्डलमें] ले लेते हैं। शुक्ल होनेसे तथा तारक होनेसे ये तारे कहलाते हैं॥ १-२॥

दिव्य, पार्थिव तथा रात्रिमें होनेवाले अन्धकारोंको अपने तेजसे ग्रहण कर लेनेके कारण वह आदित्य [नामवाला] है। फैलाने तथा बहाने अर्थमें यह [सु] धातु पढ़ी जाती है। अतः तेजको फैलाने तथा जलको बहानेके कारण इसे 'सविता' कहा गया है। यह [चदि] धातु आह्लाद करनेके अर्थमें कही जाती है, आह्लाद

सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे।
जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे॥ ६

घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम्।
घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु॥ ७

वसन्ति सर्वदेवाश्च स्थानान्येतानि सर्वशः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः॥ ८

तेन ग्रहा गृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च।
सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च॥ ९

शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान्।
बृहद् बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम्॥ १०

शनैश्चरं तथा स्थानं देवश्चापि शनैश्चरः।
बौधं बुधस्तु स्वर्भानुः स्वर्भानुस्थानमाश्रितः॥ ११

नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्ति च।
गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम्॥ १२

कल्पादौ सम्प्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा।
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १३

मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै।
अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ते देवाः स्थानं पुनः पुनः॥ १४

अतीतैस्तु सहैतानि भाव्याभाव्यैः सुरैः सह।
वर्तन्ते वर्तमानैश्च स्थानिभिस्तैः सुरैः सह॥ १५

अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे॥ १६

द्युतिमानृषिपुत्रस्तु सोमो देवो वसुः स्मृतः।
शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः॥ १७

बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योऽङ्गिरासुतः।
बुधो मनोहरश्चैव ऋषिपुत्रस्तु स स्मृतः॥ १८

शनैश्चरो विरूपस्तु संज्ञापुत्रो विवस्वतः।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवासौ लोहितार्चिषः॥ १९

करनेके कारण चन्द्रमाका नाम बहुल भी है। [इसके अतिरिक्त] यह शुक्लत्व, अमृतत्व तथा शीतत्वको भी प्रकट करता है॥ ३—५॥

सूर्य तथा चन्द्रमाके मण्डल दिव्य, प्रकाशमान, आकाशगामी, जल-तेजसे युक्त, शुक्लवर्णवाले, गोल घड़ेके समान तथा शुभ हैं। उनमें चन्द्रमाका मण्डल घने जलके स्वरूपवाला तथा सूर्यका मण्डल घने तेजके स्वरूपवाला शुक्लवर्णका कहा गया है॥ ६-७॥

सभी देवता इन स्थानोंमें भलीभाँति निवास करते हैं। वे सभी मन्वन्तरोंमें नक्षत्रों, सूर्य तथा ग्रहोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। इसलिये ग्रह [एक तरहसे] गृह ही हैं, और वे उन्हींके नामवाले होते हैं। सूर्यने सौरस्थानमें प्रवेश किया एवं सोम (चन्द्रमा)-ने सौम्यस्थानमें प्रवेश किया। सोलह किरणोंवाला प्रतापी शुक्र शौक्रस्थानमें प्रविष्ट हुआ। बृहस्पति बृहत् स्थानमें तथा लोहित (भौम) लोहितस्थानमें स्थित हुए। शनैश्चरदेव शनैश्चरस्थानमें, बुध बौधस्थानमें तथा स्वर्भानु (राहु) स्वर्भानुस्थानमें स्थित हुए। सभी नक्षत्र (अपने-अपने) नक्षत्र-स्थानोंमें प्रवेश करते हैं। ये सब ज्योतिस्थान पुण्यात्माओंके गृह हैं। ब्रह्माने इन स्थानोंको निर्मित किया है। ये कल्पके आदिमें प्रवृत्त हुए और प्रलयपर्यन्त बने रहते हैं। वे सभी मन्वन्तरोंमें देवताओंके निवासस्थान हुआ करते हैं। अभिमानी देवतालोग उनमें बार-बार निवास करते हैं। ये स्थान अतीत, भाव्य तथा अभाव्य देवताओंके साथ और वर्तमान स्थानी देवताओंके साथ विद्यमान रहते हैं॥ ८—१५॥

इस मन्वन्तरमें ग्रहोंको वैमानिक कहा गया है। वैवस्वत मन्वन्तरमें अदितिका पुत्र विवस्वान् सूर्य है। ऋषिपुत्र द्युतिमान् देवता वसुको सोम (चन्द्र) कहा गया है। असुरोंके याजक शुक्रदेवको भृगुका पुत्र जानना चाहिये। महातेजस्वी देवाचार्य बृहस्पतिको अंगिराऋषिका पुत्र कहा गया है। जो सुन्दर बुध है, उसे ऋषिपुत्र कहा गया है। विकृतरूपवाला शनैश्चर संज्ञाका पुत्र है; वह विवस्वान्से उत्पन्न हुआ है। लोहित आभावाला यह युवा भौम अग्निरूप रुद्रके द्वारा उनकी पत्नी विकेशीसे उत्पन्न

नक्षत्रर्क्षनामिन्यो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः॥ २०

सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः।
स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः॥ २१

सौरमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः।
हिमांशोस्तु स्मृतं स्थानमम्मयं शुक्लमेव च॥ २२

आप्यं श्यामं मनोज्ञं च बुधरश्मिगृहं स्मृतम्।
शुक्लस्याप्यम्मयं शुक्लं पदं षोडशरश्मिवत्॥ २३

नवरश्मि तु भौमस्य लोहितं स्थानमुत्तमम्।
हरिद्राभं बृहच्चापि षोडशार्चिर्बृहस्पतेः॥ २४

अष्टरश्मिगृहं चापि प्रोक्तं कृष्णं शनैश्चरे।
स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम्॥ २५

विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वृषयस्त्वेकरश्मयः।
आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां शुक्लाश्चापि स्ववर्णतः॥ २६

घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः।
आदित्यरश्मिसंयोगात्सम्प्रकाशात्मिकाः स्मृताः॥ २७

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥ २८

द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति॥ २९

उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्।
स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥ ३०

आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य समं गच्छति पर्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु॥ ३१

स्वर्भानुं नुदते यस्मात्तस्मात्स्वर्भानुरुच्यते।
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते॥ ३२

हुआ है। नक्षत्र-ऋक्ष नामवाली जो भी हैं, वे दक्षकी पुत्रियाँ कही गयी हैं। प्राणियोंके लिये कष्टकारी असुर राहु सिंहिकापुत्र है। इस प्रकार सोम, ऋक्ष, ग्रह तथा सूर्यमें उनके निवासस्थान हैं। इन स्थानोंका वर्णन मैंने कर दिया और अपने-अपने स्थानका अभिमान करनेवाले स्थानी देवताओंका भी वर्णन कर दिया॥ १६—२१॥

हजार किरणोंवाले सूर्यका अग्निमय सौरस्थान है। चन्द्रमाका स्थान जलमय तथा शुक्लवर्णका कहा गया है। बुधग्रहका निवासस्थान जलमय, श्याम तथा मनोहर बताया गया है। शुक्रका निवासस्थान भी जलमय, शुक्लवर्णवाला तथा सोलह किरणोंसे युक्त है। भौम (मंगल)-का स्थान उत्तम, लोहितवर्णवाला तथा नौ रश्मियोंसे युक्त है। बृहस्पतिका स्थान हरिद्रा (हल्दी)-की आभावाला, विशाल तथा सोलह रश्मियोंसे युक्त है। शनैश्चरका स्थान आठ रश्मियोंसे युक्त तथा कृष्ण वर्णवाला कहा गया है। राहुका स्थान अन्धकारमय है; यह प्राणियोंके लिये कष्टकारी स्थान है। सभी तारागणोंको ऋषिरूप तथा एक रश्मिवाला जानना चाहिये, ये पुण्यकीर्तिवालोंके आश्रय हैं तथा अपने वर्णसे शुक्ल हैं। इन्हें घने जलके स्वरूपवाला जानना चाहिये। ये कल्पके प्रारम्भमें ही निर्मित किये गये थे; ये सूर्यकी रश्मियोंके संयोगके कारण उत्तम प्रकाशसे युक्त कहे गये हैं॥ २२—२७॥

सूर्यका विष्कम्भ (व्यास) नौ हजार योजन बताया गया है और मण्डलके प्रमाणसे उसका विस्तार तीन गुना है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना कहा गया है। उन दोनोंके समान [विस्तारवाला] होकर राहु उनके नीचे गमन करता है। मण्डलके आकारकी बनी हुई पृथ्वी-छायाको लेकर राहुका तीसरा बड़ा स्थान है, जो अन्धकारमय है। वह राहु [चन्द्र] पर्वोंमें सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाकी ओर जाता है और सौर पर्वोंमें चन्द्रमासे [निकलकर] सूर्यकी ओर जाता है। चूँकि राहु भानु (सूर्य)-को प्रेरित करता है, अतः इसे स्वर्भानु कहा जाता है॥ २८—३१½॥

शुक्रका विस्तार योजनके प्रमाणसे विष्कम्भ तथा

विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः।
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः॥ ३३
बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरी उभौ स्मृतौ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः॥ ३४
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलाच्च वै॥ ३५
प्रायशश्चन्द्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥ ३६
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने।
सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामण्डलानि तु॥ ३७
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते।
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहास्ते दूरसर्पिणः॥ ३८
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः।
पूर्वमेव समाख्याता गतिस्तेषां यथाक्रमम्॥ ३९
एतेष्वेव ग्रहाः सर्वे नक्षत्रेषु समुत्थिताः।
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै मुनिसत्तमाः॥ ४०
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः।
त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो देवो वसुस्तु सः॥ ४१
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः।
षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनन्तरम्॥ ४२
ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्ये क्षेत्रे समुत्थितः।
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः॥ ४३
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वाख्यासु जगद्गुरुः।
नवार्चिर्लोहिताङ्गश्च प्रजापतिसुतो ग्रहः॥ ४४
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति स्मृतः।
रेवतीष्वेव सप्तार्चिःस्थाने सौरिः शनैश्चरः॥ ४५
सौम्यो बुधो धनिष्ठासु पञ्चार्चिरुदितो ग्रहः।
तमोमयो मृत्युसुतः प्रजाक्षयकरः शिखी॥ ४६
आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारी महाग्रहः।
तथा स्वनामधेयेषु दाक्षायण्यः समुत्थिताः॥ ४७
तमोवीर्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमण्डलः।
भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चन्द्रार्कमर्दनः॥ ४८

मण्डल (घेरा)-में चन्द्रमाका सोलहवाँ भाग कहा गया है। बृहस्पतिको शुक्रसे एक चौथाई कम जानना चाहिये। बृहस्पतिसे एक चौथाई कम मंगल तथा शनि—ये दोनों बताये गये हैं। बुध विस्तार तथा मण्डलमें उन दोनोंसे एक चौथाई कम है। तारा-नक्षत्ररूपवाले जो पिण्ड हैं, वे विस्तार तथा मण्डलमें बुधके बराबर हैं॥ ३२—३५॥

तत्त्ववेत्ताको प्रायः सभी नक्षत्रोंको चन्द्रमासे सम्बद्ध जानना चाहिये। तारा-नक्षत्ररूपवाले वे परस्पर बहुत छोटे हैं। वे [छोटे तारे] पाँच, चार, तीन तथा दो योजन विस्तारवाले हैं। इन सबके ऊपर अत्यन्त छोटे तारा-मण्डल हैं, जो केवल आधे योजनके हैं, उनसे छोटा कोई तारा नहीं है। उनके ऊपर तीन ग्रह हैं, वे दूर-दूर भ्रमण करनेवाले हैं। वे सौर, अंगिरा (बृहस्पति) तथा वक्र (भौम) हैं, इन्हें मन्दगतिसे भ्रमण करनेवाला जानना चाहिये। उनकी गतिके विषयमें पहले ही क्रमसे बता दिया गया है॥ ३६—३९॥

सभी ग्रह इन्हीं नक्षत्रोंमें उत्पन्न हुए हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! अदितिका पुत्र विवस्वान् सूर्य, जो ग्रहोंमें प्रथम है, विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। धर्मका पुत्र ओजस्वी सोम वसु देवता है, वह शीत रश्मिवाला चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। सोलह रश्मियोंवाला भृगुपुत्र शुक्र जो ताराग्रहोंमें श्रेष्ठ है, सूर्यके बाद तिष्य नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। बारह किरणोंवाला अंगिरापुत्र जगद्गुरु बृहस्पति ग्रह पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। नौ किरणोंसे युक्त तथा लोहित अंगवाला प्रजापतिपुत्र भौमग्रह पूर्वाषाढ नक्षत्रमें उत्पन्न होनेवाला कहा गया है। सात किरणोंसे युक्त सूर्यपुत्र शनैश्चर रेवती नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। पाँच किरणोंवाला चन्द्रपुत्र बुध ग्रह धनिष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। अन्धकारमय, प्रजाका क्षय करनेवाला तथा सबका विनाशक महाग्रह मृत्युपुत्र शिखी (केतु) आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। दक्षकी पुत्रियाँ अपने-अपने नामवाले नक्षत्रोंमें उत्पन्न हुई हैं। अन्धकार तथा ओजसे परिपूर्ण, प्रकृतिसे काले मण्डलवाला और सूर्य-चन्द्रका मर्दन करनेवाला ग्रह राहु भरणी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है॥ ४०—४८॥

एते तारा ग्रहाश्चापि बोद्धव्या भार्गवादयः।
जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः॥ ४९
मुच्यते तेन दोषेण ततस्तद् ग्रहभक्तितः।
सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते॥ ५०
ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनां चापि धूमवान्।
ध्रुवः किल ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम्॥ ५१
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम्।
वर्षाणां चैव पञ्चानामाद्यः सम्वत्सरः स्मृतः॥ ५२
ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ उच्यते।
पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा॥ ५३
अहोरात्रविभागानामहश्चादिः प्रकीर्तितः।
मुहूर्तानां तथैवादिर्मुहूर्तो रुद्रदैवतः॥ ५४
क्षणश्चापि निमेषादिः कालः कालविदां वराः।
श्रवणान्तं धनिष्ठादि युगं स्यात्पञ्चवार्षिकम्॥ ५५
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते।
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालकृद्विभुरीश्वरः॥ ५६
चतुर्विधानां भूतानां प्रवर्तकनिवर्तकः।
तस्यापि भगवान् रुद्रः साक्षाद्देवः प्रवर्तकः॥ ५७
इत्येष ज्योतिषामेवं सन्निवेशोऽर्थनिश्चयः।
लोकसंव्यवहारार्थं महादेवेन निर्मितः॥ ५८
बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ सम्प्रवर्तितः।
स आश्रयोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः॥ ५९
एकरूपप्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः।
नैष शक्यः प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित्॥ ६०
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा।
आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः॥ ६१
परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता।
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं मुनिसत्तमाः॥ ६२
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्मानविनिर्णये॥ ६३

इन शुक्र आदि ग्रहोंको ताराके नामसे भी जानना चाहिये। ये अपने-अपने जन्म-नक्षत्रोंमें उत्पन्न पीड़ाओंमें वैगुण्यताको प्राप्त होते हैं, तब उस ग्रहकी पूजा करनेसे मनुष्य उस दोषसे मुक्त हो जाता है। इन सभी ग्रहोंमें आदित्य (सूर्य) आदि (प्रधान) ग्रह कहा जाता है। ताराग्रहोंमें शुक्र, केतुओंमें धूमवान् तथा चारों दिशाओंमें विभक्त ग्रहोंमें ध्रुव प्रधान है। नक्षत्रोंमें धनिष्ठा और अयनोंमें उत्तरायण प्रधान है। पाँचों वर्षोंमें संवत्सरको प्रधान कहा गया है। ऋतुओंमें शिशिर तथा मासोंमें माघको आदिमास कहा जाता है। पक्षोंमें शुक्लपक्ष और तिथियोंमें प्रतिपदा प्रधान है। दिन तथा रातके विभागोंमें दिनको आदि कहा गया है। मुहूर्तोंमें रुद्रदैवत आदिमुहूर्त है॥ ४९—५४॥

हे कालवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! क्षणोंमें निमेष आदिकाल है। धनिष्ठासे श्रवणपर्यन्त पाँच वर्षोंका युग होता है। भानुकी विशेष गतिके कारण जगत् चक्रकी भाँति परिवर्तित होता रहता है, इसलिये सूर्यको कालकी रचना करनेवाला, व्यापक तथा ईश्वर कहा गया है। सूर्य चारों प्रकारके प्राणियोंका प्रवर्तक एवं निवर्तक है और साक्षात् भगवान् रुद्रदेव उस (सूर्य)-के भी प्रवर्तक हैं। इस प्रकार महादेवने लोकव्यवहारके लिये नक्षत्रोंका अर्थनिश्चयवाला यह सन्निवेश निर्मित किया है। उन भगवान्‌ने ही कल्पके आरम्भमें बुद्धिपूर्वक इनका प्रवर्तन किया है। वे सबके आश्रय, अभिमानी तथा ज्योतिस्वरूप हैं॥ ५५—५९॥

एक रूपवाले उन प्रधानका यह अद्भुत परिणाम है। यथार्थरूपसे इसका वर्णन किसीके द्वारा नहीं किया जा सकता है। भौतिक दृष्टिवाले विद्वान् मनुष्यको इन ज्योतिर्गणोंके प्रमाण तथा गतिके विषयमें आगम (वेद, शास्त्र), अनुमान, प्रत्यक्ष और उपपत्तिके द्वारा सावधानीपूर्वक बुद्धिसे परीक्षण करके इनपर श्रद्धा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! चक्षु, शास्त्र, जल, लेख्य तथा गणित—इन पाँचोंको नक्षत्रोंके प्रमाणके निर्णयमें साधन समझना चाहिये॥ ६०—६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ग्रहसंख्यावर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ग्रहसंख्यावर्णन' नामक इकसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

उत्तानपादके पुत्र ध्रुवका आख्यान, ध्रुवकी तपस्या तथा ध्रुवलोकसंस्थानका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं विष्णोः प्रसादाद्वै ध्रुवो बुद्धिमतां वरः।
मेढीभूतो ग्रहाणां वै वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ १

सूत उवाच

एतमर्थं मया पृष्टो नानाशास्त्रविशारदः।
मार्कण्डेयः पुरा प्राह मह्यं शुश्रूषवे द्विजाः॥ २

मार्कण्डेय उवाच

सार्वभौमो महातेजाः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
उत्तानपादो राजा वै पालयामास मेदिनीम्॥ ३

तस्य भार्याद्वयमभूत्सुनीतिः सुरुचिस्तथा।
अग्रजायामभूत्पुत्रः सुनीत्यां तु महायशाः॥ ४

ध्रुवो नाम महाप्राज्ञः कुलदीपो महामतिः।
कदाचित्सप्तवर्षोऽपि पितुरङ्कमुपाविशत्॥ ५

सुरुचिस्तं विनिर्धूय स्वपुत्रं प्रीतिमानसा।
न्यवेशयत्तं विप्रेन्द्रा ह्यङ्कं रूपेण मानिता॥ ६

अलब्ध्वा स पितुर्धीमानङ्कं दुःखितमानसः।
मातुः समीपमागम्य रुरोद स पुनः पुनः॥ ७

रुदन्तं पुत्रमाहेदं माता शोकपरिप्लुता।
सुरुचिर्दयिता भर्तुस्तस्याः पुत्रोऽपि तादृशः॥ ८

मम त्वं मन्दभाग्याया जातः पुत्रोऽप्यभाग्यवान्।
किं शोचसि किमर्थं त्वं रोदमानः पुनः पुनः॥ ९

सन्तप्तहृदयो भूत्वा मम शोकं करिष्यसि।
स्वस्थस्थानं ध्रुवं पुत्र स्वशक्त्या त्वं समाप्नुयाः॥ १०

इत्युक्तः स तु मात्रा वै निर्जगाम तदा वनम्।
विश्वामित्रं ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि॥ ११

उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा भगवन् वक्तुमर्हसि।
सर्वेषामुपरिस्थानं केन प्राप्स्यामि सत्तम॥ १२

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ध्रुव भगवान् विष्णुकी कृपासे ग्रहोंके मेढ़ीभूत (मध्य स्थानवाले) किस प्रकार हुए, [हमलोगोंको] इस समय बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! मैंने पूर्वकालमें अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता मार्कण्डेयजीसे इसी बातको पूछा था, तब उन्होंने सुननेकी इच्छावाले मुझको बताया था॥ २॥

मार्कण्डेयजी बोले—[प्राचीन कालमें] सार्वभौम (चक्रवर्ती सम्राट्), महान् तेजस्वी तथा सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राजा उत्तानपाद पृथ्वीका पालन करते थे। सुनीति तथा सुरुचि—ये उनकी दो भार्याएँ थीं। उनकी ज्येष्ठ भार्या सुनीतिसे ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था; वह महायशस्वी, महाज्ञानी, कुलका दीपक तथा महाबुद्धिमान् था। जब वह सात वर्षका था, तब किसी समय अपने पिताकी गोदमें बैठ गया। हे विप्रेन्द्रो! उस समय अपने रूपपर गर्व करनेवाली सुरुचिने उसे [गोदसे] उतारकर प्रसन्नचित्त होकर अपने पुत्रको [राजाकी] गोदमें बैठा दिया॥ ३—६॥

तदनन्तर पिताकी गोद न पाकर उस बुद्धिमान् [ध्रुव]-के हृदयमें दुःख हुआ और वह [अपनी] माताके पास आकर बार-बार रोने लगा॥ ७॥

तब शोकमें डूबी हुई माताने रोते हुए पुत्रसे कहा—सुरुचि [अपने] पतिकी प्रिय पत्नी है और उसका पुत्र भी उसी प्रकार उन्हें प्रिय है। तुम मुझ अभागिनके अभागे पुत्र उत्पन्न हुए हो। तुम क्यों चिन्ता करते हो और बार-बार किसलिये रो रहे हो? तुम दुःखितचित्त होकर मेरे शोकको ही बढ़ाओगे। हे पुत्र! तुम्हें अपनी शक्तिसे शान्त तथा अटल स्थान प्राप्त करना चाहिये॥ ८—१०॥

तब माताके इस प्रकार कहनेपर वह वनमें चला गया। वहाँ [ऋषि] विश्वामित्रको देखकर उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उसने कहा—हे

पितुरङ्के समासीनं माता मां सुरुचिर्मुने।
व्यधूनयत्स तां राजा पिता नोवाच किञ्चन॥ १३

एतस्मात्कारणाद् ब्रह्मंस्त्रस्तोऽहं मातरं गतः।
सुनीतिराह मे माता मा कृथाः शोकमुत्तमम्॥ १४

स्वकर्मणा परं स्थानं प्राप्तुमर्हसि पुत्रक।
तस्या हि वचनं श्रुत्वा स्थानं तव महामुने॥ १५

प्राप्तो वनमिदं ब्रह्मन्नद्य त्वां दृष्टवान् प्रभो।
तव प्रसादात्प्राप्स्येऽहं स्थानमद्भुतमुत्तमम्॥ १६

इत्युक्तः स मुनिः श्रीमान् प्रहसन्निदमब्रवीत्।
राजपुत्र शृणुष्वेदं स्थानमुत्तममाप्स्यसि॥ १७

आराध्य जगतामीशं केशवं क्लेशनाशनम्।
दक्षिणाङ्गभवं शम्भोर्महादेवस्य धीमतः॥ १८

जप नित्यं महाप्राज्ञ सर्वपापविनाशनम्।
इष्टदं परमं शुद्धं पवित्रममलं परम्॥ १९

ब्रूहि मन्त्रमिमं दिव्यं प्रणवेन समन्वितम्।
नमोऽस्तु वासुदेवाय इत्येवं नियतेन्द्रियः॥ २०

ध्यायन् सनातनं विष्णुं जपहोमपरायणः।
इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं विश्वामित्रं महायशाः॥ २१

प्राङ्मुखो नियतो भूत्वा जजाप प्रीतमानसः।
शाकमूलफलाहारः संवत्सरमतन्द्रितः॥ २२

जजाप मन्त्रमनिशमजस्त्रं स पुनः पुनः।
वेताला राक्षसा घोराः सिंहाद्याश्च महामृगाः॥ २३

तमभ्ययुर्महात्मानं बुद्धिमोहाय भीषणाः।
जपन् स वासुदेवेति न किञ्चित्प्रत्यपद्यत॥ २४

भगवन्! हे सत्तम! आप कृपा करके मुझे बतायें कि मैं किस उपायसे सबके ऊपर स्थान प्राप्त करूँगा? हे मुने! माता सुरुचिने पिताकी गोदमें बैठे हुए मुझको [गोदसे] उतार दिया और उन राजाने उन्हें कुछ नहीं कहा। हे ब्रह्मन्! इस कारणसे दुःखी होकर मैं माताके पास गया। तब मेरी माता सुनीतिने कहा—हे पुत्र! शोक मत करो, तुम अपने कर्मसे उत्तम तथा परम स्थान प्राप्त कर सकते हो। हे महामुने! उनका वचन सुनकर मैं इस वनमें आपके स्थानपर आया हूँ। हे ब्रह्मन्! आज मैंने आपका दर्शन किया, अतः हे प्रभो! आपकी कृपासे मैं अद्भुत तथा उत्तम स्थान [अवश्य] प्राप्त करूँगा॥ ११—१६॥

[ध्रुवके द्वारा] इस प्रकार कहे गये श्रीमान् मुनिने हँसते हुए यह कहा—हे राजपुत्र! सुनो, तुम जगत्‌के स्वामी, कष्टोंका नाश करनेवाले तथा बुद्धिमान् महादेव शम्भुके दक्षिण* अंगसे उत्पन्न केशव (विष्णु)-की आराधना करके इस श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त कर सकोगे। हे महाप्राज्ञ! तुम सभी पापोंका नाश करनेवाले, अभीष्ट प्रदान करनेवाले, परम शुद्ध, पवित्र, दोषरहित तथा श्रेष्ठ मन्त्रका नित्य जप करो। तुम इन्द्रियोंको वशमें करके प्रणवसहित **नमोऽस्तु वासुदेवाय** [अर्थात् **ॐ नमोऽस्तु वासुदेवाय**] इस दिव्य मन्त्रको जपो और सनातन विष्णुका ध्यान करते हुए जप-होममें संलग्न रहो॥ १७—२०½॥

उनके ऐसा कहनेपर महान् यशवाले ध्रुवने उन विश्वामित्रको प्रणाम करके पूर्वकी ओर मुख करके ध्यानमग्न होकर प्रसन्नचित्त हो जप आरम्भ किया। शाक, मूल तथा फलका आहार करते हुए उसने आलस्यरहित होकर दिन-रात निरन्तर एक वर्षतक मन्त्रका बार-बार जप किया। वेताल, भयंकर राक्षस तथा भयानक सिंह आदि बड़े जानवर बुद्धिको मोहित करनेके लिये उस महात्माके पास आये, किंतु वासुदेवका जप करता हुआ वह तनिक

* यहाँ मूलमें विष्णुको भगवान् शंकरके दक्षिणांग से उत्पन्न बताया गया है, किंतु इसी लिङ्गपुराणके ३८वें अध्यायमें भगवान् विष्णुने स्वयंको भगवान् शिवके वामांगसे और ब्रह्माजीको दक्षिणांगसे प्रादुर्भूत बताया है—'**अहं वामाङ्गजो ब्रह्मन् शङ्करस्य महात्मनः। भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणाङ्गभवः स्वयम्॥**' अतः यहाँ दक्षिणांगसे 'वामांग' अर्थ लेना चाहिये।

सुनीतिरस्य या माता तस्या रूपेण संवृता।
पिशाची समनुप्राप्ता रुरोद भृशदुःखिता॥ २५

मम त्वमेकः पुत्रोऽसि किमर्थं क्लिश्यते भवान्।
मामनाथामपहाय तप आस्थितवानसि॥ २६

एवमादीनि वाक्यानि भाषमाणां महातपाः।
अनिरीक्ष्यैव हृष्टात्मा हरेर्नाम जजाप सः॥ २७

ततः प्रशेमुः सर्वत्र विघ्नरूपाणि तत्र वै।
ततो गरुडमारुह्य कालमेघसमद्युतिः॥ २८

सर्वदेवैः परिवृतः स्तूयमानो महर्षिभिः।
आययौ भगवान् विष्णुः ध्रुवान्तिकमरातिहा॥ २९

समागतं विलोक्याथ कोसावित्येव चिन्तयन्।
पिबन्निव हृषीकेशं नयनाभ्यां जगत्पतिम्॥ ३०

जपन् स वासुदेवेति ध्रुवस्तस्थौ महाद्युतिः।
शङ्खप्रान्तेन गोविन्दः पस्पर्शास्यं हि तस्य वै॥ ३१

ततः स परमं ज्ञानमवाप्य पुरुषोत्तमम्।
तुष्टाव प्राञ्जलिर्भूत्वा सर्वलोकेश्वरं हरिम्॥ ३२

प्रसीद देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर।
लोकात्मन् वेदगुह्यात्मन् त्वां प्रपन्नोऽस्मि केशव॥ ३३

न विदुस्त्वां महात्मानं सनकाद्या महर्षयः।
तत्कथं त्वामहं विद्यां नमस्ते भुवनेश्वर॥ ३४

तमाह प्रहसन् विष्णुरेहि वत्स ध्रुवो भवान्।
स्थानं ध्रुवं समासाद्य ज्योतिषामग्रभुग्भव॥ ३५

मात्रा त्वं सहितस्तत्र ज्योतिषां स्थानमाप्नुहि।
मत्स्थानमेतत्परमं ध्रुवं नित्यं सुशोभनम्॥ ३६

तपसाराध्य देवेशं पुरा लब्धं हि शङ्करात्।
वासुदेवेति यो नित्यं प्रणवेन समन्वितम्॥ ३७

भी विचलित नहीं हुआ॥ २१—२४॥

इसकी माता जो सुनीति थी, उसका रूप धारण करके एक पिशाची उसके पास आयी और अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी—तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो, तुम कष्ट क्यों सह रहे हो, मुझे अनाथ छोड़कर तुम तपमें लग गये हो—इस प्रकारके वचन बोलती हुई उस स्त्रीकी ओर बिलकुल न देखकर वह महातपस्वी प्रसन्नचित्त होकर हरिका नाम जपता रहा॥ २५—२७॥

तदनन्तर वहाँ सर्वत्र विघ्नोंके स्वरूप शान्त हो गये। तब गरुड़पर सवार होकर कालमेघके समान (श्याम) कान्तिवाले, समस्त देवताओंसे घिरे हुए तथा महर्षियोंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए शत्रुसंहारक भगवान् विष्णु ध्रुवके पास आये॥ २८–२९॥

उनको आया हुआ देखकर यह कौन है—ऐसा सोचता हुआ तथा अपने नेत्रोंसे जगत्पति हृषीकेशका पान करता हुआ-सा वह महान् प्रभावाला ध्रुव '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस मन्त्रका जप करता रहा। तब गोविन्दने [अपने] शंखके अग्रभागसे उसके मुखका स्पर्श किया॥ ३०–३१॥

उसके बाद वह [ध्रुव] परम ज्ञान प्राप्त करके हाथ जोड़कर सभी लोकोंके स्वामी पुरुषोत्तम हरिकी [इस प्रकार] स्तुति करने लगा—हे देवदेवेश! हे शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले! हे लोकात्मन्! हे वेदगुह्यात्मन् (वेदोंके द्वारा अज्ञातस्वरूपवाले)! प्रसन्न होइये। हे केशव! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। सनक आदि महर्षि भी आप महात्माको नहीं जान सके, तब मैं आपको कैसे जान सकता हूँ। हे भुवनेश्वर! आपको नमस्कार है॥ ३२—३४॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने उससे हँसते हुए कहा—हे वत्स! आओ, तुम ध्रुव हो, तुम ध्रुव (अटल) स्थान प्राप्त करके ज्योतिर्गणोंमें अग्रणी हो जाओ। तुम अपनी मातासहित वहाँ ग्रहोंमें स्थान प्राप्त करो, यह मेरा स्थान है, जो उत्कृष्ट, अचल, शाश्वत तथा अत्यन्त सुन्दर है। पूर्वकालमें मैंने तपस्याके द्वारा देवेशकी आराधना करके शंकरसे इसे (मन्त्रको) प्राप्त

नमस्कारसमायुक्तं भगवच्छब्दसंयुतम्।
जपेदेवं हि यो विद्वान् ध्रुवं स्थानं प्रपद्यते॥ ३८

किया था। प्रणव (ॐ) तथा नमःसे युक्त और भगवत्—इस शब्दसे संयुक्त वासुदेव मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-को जो विद्वान् जपता है, वह ध्रुवस्थान प्राप्त करता है॥ ३५—३८॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
मात्रा सह ध्रुवं सर्वे तस्मिन् स्थाने न्यवेशयन्॥ ३९

विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य ज्योतिषां स्थानमाप्तवान्।
एवं ध्रुवो महातेजा द्वादशाक्षरविद्यया॥ ४०

अवाप महतीं सिद्धिमेतत्ते कथितं मया॥ ४१

तदनन्तर सभी देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा महर्षियोंने मातासहित ध्रुवको उस स्थानपर स्थापित किया। इस प्रकार महातेजस्वी ध्रुवने विष्णुकी आज्ञा स्वीकार करके द्वादशाक्षरमन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-के द्वारा ज्योतिर्गणोंमें स्थान प्राप्त किया तथा महती सिद्धि प्राप्त की। मैंने यह [वृत्तान्त] आपलोगोंसे कह दिया॥ ३९—४१॥

सूत उवाच

तस्माद्यो वासुदेवाय प्रणामं कुरुते नरः।
स याति ध्रुवसालोक्यं ध्रुवत्वं तस्य तत्तथा॥ ४२

सूतजी बोले—अतः जो मनुष्य वासुदेवको प्रणाम करता है, वह ध्रुवलोकको जाता है और उसे भी वह ध्रुवत्व प्राप्त हो जाता है॥ ४२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे ध्रुवसंस्थानवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भुवनकोशमें ध्रुवसंस्थानवर्णन' नामक बासठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

दक्षप्रजापतिद्वारा मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव, दक्षकन्याओंकी वंश-परम्परा तथा ऋषिवंशवर्णन

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं ब्रूहि सूताद्य यथाक्रममनुत्तमम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! अब आप देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, उरगों और राक्षसोंकी उत्पत्तिका उत्तम विधिसे यथाक्रम वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते।
दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा॥ २
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः॥ ३
दक्षः पुत्रसहस्त्राणि पञ्च सूत्यामजीजनत्।
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥ ४

सूतजी बोले—पूर्व पुरुषोंकी सृष्टि संकल्पसे, दर्शनसे तथा स्पर्शसे कही जाती है। प्रचेतसके पुत्र दक्षके बाद [स्त्री-पुरुषके] संयोगसे सृष्टि प्रारम्भ हुई। जब देवताओं, ऋषियों और पन्नगोंका सृजन करते हुए उन प्रजापतिसे लोक वृद्धिको प्राप्त नहीं हुआ, तब दक्षने मैथुनयोगसे [अपनी भार्या] सूतिसे पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये। तत्पश्चात् उन महाभाग्यवालोंको देखकर वे अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिके इच्छुक हो गये॥ २—४॥

नारदः प्राह हर्यश्वान् दक्षपुत्रान् समागतान्।
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च॥ ५

तब नारदजीने उत्पन्न हुए [उन] हर्यश्व नामवाले दक्ष-पुत्रोंसे कहा—ऊपर तथा नीचे पृथ्वीका प्रमाण

ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वं मुनिसत्तमाः।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम्॥ ६
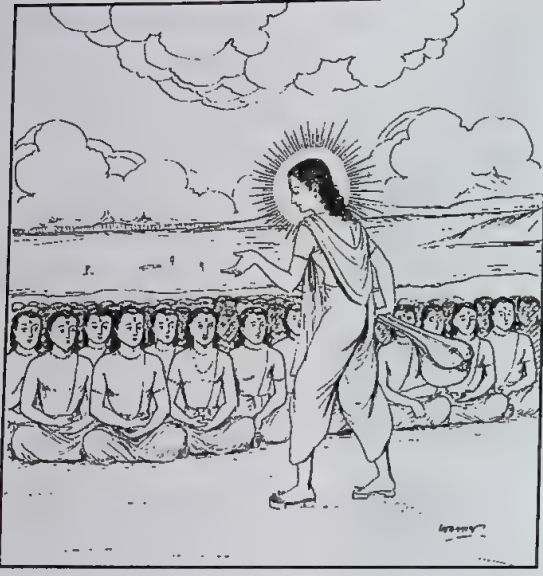
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः।
हर्यश्वेषु च नष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः॥ ७
सूत्यामेव च पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः।
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः॥ ८
नारदोऽनुगतान् प्राह पुनस्तान् सूर्यवर्चसः।
भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वा भ्रातॄन् पुनः पुनः॥ ९
आगत्य वाथ सृष्टिं वै करिष्यथ विशेषतः।
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृगतिं तथा॥ १०
ततस्तेष्वपि नष्टेषु षष्टिकन्याः प्रजापतिः।
वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा॥ ११
प्रादात्स दशकं धर्मे कश्यपाय त्रयोदश।
विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥ १२
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात्॥ १३
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तारमादितः।
मरुत्वती वसूर्यामिर्लम्बा भानुररुन्धती॥ १४
सङ्कल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् वदामि वः॥ १५
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥ १६
भानोस्तु भानवः प्रोक्ता मुहूर्ताया मुहूर्तकाः।
लम्बाया घोषनामानो नागवीथीस्तु यामिजः॥ १७
सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो वसुसर्गं वदामि वः।
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतोदिशम्॥ १८

जानकर आपलोग विशेष रूपसे सृष्टि कीजिये। हे मुनिश्रेष्ठो! उनका वचन सुनकर वे सभी दिशाओंमें चले गये। वे आजतक नहीं लौटे, जैसे नदियाँ [समुद्रमें मिलकर] समुद्रसे वापस नहीं लौटतीं॥ ५-६$^1/_2$॥

हर्यश्वसंज्ञक पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रजापति प्रभु दक्षने सूतिसे पुनः एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया। हे विप्रो! जब शबल नामवाले वे पुत्र सृष्टि करनेके लिये एकत्रित हुए, तब नारदने सूर्यके समान तेजवाले उन आये हुए पुत्रोंसे पुनः कहा—'पृथ्वीका सम्पूर्ण विस्तार जानकर तथा अपने भाइयोंका बार-बार पता लगाकर यहाँ आकरके आपलोग विशेषरूपसे सृष्टि कीजिये।' वे भी उसी मार्गसे [अपने] भाइयोंकी गतिको प्राप्त हुए॥ ७—१०॥

तदनन्तर उनके भी नष्ट हो जानेपर प्रचेतसके पुत्र प्रजापति दक्षने वैरिणी [नामक भार्या]-से साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन्होंने दस [कन्याएँ] धर्मको, तेरह [कन्याएँ] कश्यपको, सत्ताईस [कन्याएँ] चन्द्रमाको, चार [कन्याएँ] अरिष्टनेमिको, दो [कन्याएँ] भृगु-पुत्रको, दो [कन्याएँ] बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो [कन्याएँ] आंगिरसको प्रदान कीं। [हे विप्रो!] अब उन देवमाताओंके नाम तथा उनकी सन्तानोंके विस्तारको आरम्भसे सुनिये॥ ११—१३$^1/_2$॥

मरुत्वती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और परम सुन्दरी विश्वा धर्मकी पत्नियाँ कही गयी हैं। [हे ऋषियो!] अब मैं उनके पुत्रोंको बताता हूँ—विश्वासे विश्वेदेव हुए। साध्याने साध्योंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् हुए और वसुसे सभी वसु उत्पन्न हुए। भानुसे भानुगण तथा मुहूर्तासे मुहूर्तगण [उत्पन्न] बताये गये हैं। लम्बासे घोषनामवाले पुत्र हुए। यामिसे नागवीथि उत्पन्न हुआ। संकल्पासे संकल्प [नामक पुत्र] हुआ। अब मैं आपलोगोंको वसुओंकी सृष्टि बताता हूँ॥ १४—१७$^1/_2$॥

जो देवता ज्योतिष्मान् तथा सभी दिशाओंमें

वसवस्ते समाख्याताः सर्वभूतहितैषिणः।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः॥ १९
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षः सभैरवः॥ २०
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः।
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः॥ २१
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः।
कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकम्॥ २२
अदितिश्च दितिश्चैव अरिष्टा सुरसा मुनिः।
सुरभिर्विनता ताम्रा तद्वत् क्रोधवशा इला॥ २३
कद्रूस्त्विषा दनुस्तद्वत्तासां पुत्रान् वदामि वः।
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ २४
वैवस्वतान्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः।
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा॥ २५
विवस्वान् सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च।
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः॥ २६
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च॥ २७
दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्।
विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूत्तेषां मध्ये द्विजोत्तमाः॥ २८
ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुङ्गवाः।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवीं गृध्रिकां शुचिम्॥ २९
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुरङ्गांश्च व्यजीजनत्॥ ३०
गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान्।
हंससारसकारण्डप्लवांश्छुचिरजीजनत् ॥ ३१
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत्।
विनता जनयामास गरुडं चारुणं शुभा॥ ३२
सौदामिनीं तथा कन्यां सर्वलोकभयङ्करीम्।
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा॥ ३३
कद्रूः सहस्रशिरसां सहस्रं प्राप सुव्रता।
प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिरनुत्तमाः॥ ३४
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः।
धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः॥ ३५
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः।
शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः॥ ३६

व्यापक हैं, वे वसु कहे गये हैं; वे सभी प्राणियोंके हितैषी हैं। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, भैरव, हर, बहुरूप, सुरेश्वर त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित—ये गणेश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं॥ १८—२१½॥

[हे ऋषियो!] अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न पुत्रों तथा पौत्रोंको बताऊँगा। अदिति, दिति, अरिष्टा, सुरसा, मुनि, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू, त्विषा एवं दनु—ये कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब मैं आपलोगोंको उनके पुत्रोंको बताता हूँ। चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामवाले देवता थे, वे वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहे गये हैं। इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् तथा विष्णु—ये हजार किरणोंवाले बारह आदित्य कहे गये हैं॥ २२—२६॥

दितिने कश्यपसे हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष—इन दो पुत्रोंको प्राप्त किया था, ऐसा हमने सुना है। दनुने कश्यपसे बलके अभिमानवाले सौ पुत्र प्राप्त किये। हे श्रेष्ठ द्विजो! उनमें विप्रचित्ति प्रधान था। हे श्रेष्ठ द्विजो! ताम्राने शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका तथा शुचि—इन छः कन्याओंको जन्म दिया। शुकीने धर्मसे शुकों तथा उलूकोंको उत्पन्न किया। श्येनीने श्येनों (बाज) तथा भासीने कुरंगोंको जन्म दिया। गृध्रीने गीधोंको, कपोतों तथा पारावत पक्षियोंको जन्म दिया। शुचिने हंस, सारस तथा कारण्ड पक्षियोंको जन्म दिया। सुग्रीवीने अजों, अश्वों, मेषों, ऊँटों तथा गर्दभोंको जन्म दिया॥ २७—३१½॥

शुभ विनताने गरुड़ तथा अरुणको और सभी लोकोंको भय प्रदान करनेवाली सौदामिनी [नामक] कन्याको उत्पन्न किया। सुरसासे हजारों सर्प उत्पन्न हुए। उत्तम व्रतवाली कद्रूने हजार सिरवाले एक हजार सर्प उत्पन्न किये। उनमें छब्बीस [सर्प] उत्तम तथा प्रधान कहे गये हैं; वे शेष, वासुकि, कर्कोट, शंख, ऐरावत, कम्बल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल,

शङ्खलोमा च नहुषो वामनः फणितस्तथा।
कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृतः॥ ३७

रक्षोगणं क्रोधवशा महामायं व्यजीजनत्।
रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यौ वराङ्गना॥ ३८

सुरभिर्जनयामास कश्यपादिति नः श्रुतम्।
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा॥ ३९

तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून्।
तृणवृक्षलतागुल्ममिला सर्वमजीजनत्॥ ४०

त्विषा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः।
एते तु काश्यपेयाश्च सङ्क्षेपात्परिकीर्तिताः॥ ४१

एतेषां पुत्रपौत्रादिवंशाश्च बहवः स्मृताः।
एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना॥ ४२

प्रतिष्ठितासु सर्वासु चरासु स्थावरासु च।
अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यान् प्रजापतिः॥ ४३

ततो मनुष्याधिपतिं चक्रे वैवस्वतं मनुम्।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः॥ ४४

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।
यथोपदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते॥ ४५

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वे ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः।
ते ह्येते चाभिषिच्यन्ते मनवश्च भवन्ति ते॥ ४६

मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः।
एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे ततः॥ ४७

अतीतानागताः सर्वे नृपा मन्वन्तरे स्मृताः।
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात्॥ ४८

कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः।
पुत्रो गोत्रकरो मह्यं भवतादिति चिन्तयन्॥ ४९

तस्यैवं ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः।
ब्रह्मयोगात्सुतौ पश्चात्प्रादुर्भूतौ महौजसौ॥ ५०

वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः॥ ५१

महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंखलोमा, नहुष, वामन, फणित, कपिल, दुर्मुख तथा पतंजलि [नामवाले] कहे गये हैं॥ ३२—३७॥

क्रोधवशाने महामायावी राक्षसों तथा रुद्रगणोंको जन्म दिया और सुन्दर स्त्री सुरभिने कश्यपसे गायों तथा भैंसोंको जन्म दिया; ऐसा हमने सुना है। मुनि [नामक कश्यपभार्या]-ने मुनियों एवं अप्सराओंको और अरिष्टाने बहुत-से किन्नरों तथा गन्धर्वोंको जन्म दिया। इलाने समस्त तृणों, वृक्षों, लताओं तथा गुल्मोंको जन्म दिया। त्विषाने करोड़ों यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया। मैंने कश्यपकी इन सन्तानोंका संक्षेपमें वर्णन कर दिया। इन सबके बहुत-से पुत्र-पौत्र आदि वंश कहे गये हैं॥ ३८—४१ १/२॥

इस प्रकार महात्मा कश्यपके द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि कर लिये जानेपर तथा उन सभी चर-अचर प्रजाओंके प्रतिष्ठित हो जानेपर प्रजापतिने उनमेंसे मुख्योंको अधिपतिके पदपर अभिषिक्त करके वैवस्वत मनुको मनुष्योंका अधिपति बनाया। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पहले ब्रह्माने जिन्हें अभिषिक्त किया था, उन्हींके द्वारा पर्वतोंसहित सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वी आज भी आदेशके अनुसार धर्मपूर्वक पालित की जा रही है। ब्रह्माने पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जिनका अभिषेक किया था, वे ही यहाँ अभिषिक्त किये जाते हैं और मनु होते हैं। इन मन्वन्तरोंके बीत जानेपर राजा भी चले जाते हैं; इस प्रकार इनके बाद मन्वन्तर आनेपर अन्य [राजा] अभिषिक्त किये जाते हैं। अतीत तथा अनागत सभी राजा मन्वन्तरमें कहे गये हैं॥ ४२—४७ १/२॥

प्रजा-संतानके कारण इन पुत्रोंको उत्पन्न करके अपने वंशकी कामना रखनेवाले उन कश्यपने 'वंशको बढ़ानेवाला पुत्र मुझे उत्पन्न हो'—ऐसा सोचते हुए पुनः तप करना आरम्भ किया। इस प्रकार ध्यान करते हुए उन महात्मा कश्यपके ब्रह्मयोगसे पुनः महान् ओजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए। वत्सर तथा असित [नामवाले] वे दोनों ब्रह्मवादी थे। वत्सरसे महान् यशवाले नैध्रुव तथा रैभ्य उत्पन्न हुए। रैभ्यके पुत्रोंको

रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया नैध्रुवस्य वदामि वः।
च्यवनस्य तु कन्यायां सुमेधाः समपद्यत॥ ५२
नैध्रुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम्।
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत॥ ५३
शाण्डिल्यानां वरः श्रीमान् देवलः सुमहातपाः।
शाण्डिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः॥ ५४
नवप्रकृतयोऽदेवाः पुलस्त्यस्य वदामि वः।
चतुर्युगे ह्यतिक्रान्ते मनोरेकादशे प्रभोः॥ ५५
अर्धावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे सम्प्रवर्तिते।
मानवस्य नरिष्यन्तः पुत्र आसीद्दमः किल॥ ५६
दमस्य तस्य दायादस्तृणबिन्दुरिति स्मृतः।
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह॥ ५७
तस्य कन्या त्विलविला रूपेणाप्रतिमाभवत्।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥ ५८
ऋषिरैरविलो यस्यां विश्रवाः समपद्यत।
तस्य पत्न्यश्चतस्त्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः॥ ५९
बृहस्पतेः शुभा कन्या नाम्ना वै देववर्णिनी।
पुष्पोत्कटा बलाका च सुते माल्यवतः स्मृते॥ ६०
कैकसी मालिनः कन्या तासां वै शृणुत प्रजाः।
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्मात्सुषुवे देववर्णिनी॥ ६१
कैकसी चाप्यजनयद्रावणं राक्षसाधिपम्।
कुम्भकर्णं शूर्पणखां धीमन्तं च विभीषणम्॥ ६२
पुष्पोत्कटा ह्यजनयत्पुत्रांस्तस्माद् द्विजोत्तमाः।
महोदरं प्रहस्तं च महापार्श्वं खरं तथा॥ ६३
कुम्भीनसीं तथा कन्यां बलायाः शृणुत प्रजाः।
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः॥ ६४
कन्या वै मालिका चापि बलायाः प्रसवः स्मृतः।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा नव॥ ६५
विभीषणोऽतिशुद्धात्मा धर्मज्ञः परिकीर्तितः।
पुलस्त्यस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्याघ्राश्च दंष्ट्रिणः॥ ६६

भी रैभ्य [नामवाला] जानना चाहिये। [हे ऋषियो!] अब मैं नैध्रुवके पुत्रोंके विषयमें बताता हूँ। च्यवनकी कन्यासे सुमेधा उत्पन्न हुई। वह नैध्रुवकी पत्नी तथा कुण्डपायियोंकी माता थी। असितकी एकपर्णासे शाण्डिल्योंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मिष्ठ, श्रीमान् तथा महातपस्वी देवल उत्पन्न हुए। इस प्रकार शाण्डिल्य, नैध्रुव तथा रैभ्य—ये तीनों पक्ष काश्यप (कश्यपसे होनेवाले) हुए॥ ४८—५४॥

अब मैं पुलस्त्यके नौ राक्षसवंशजोंका वर्णन करता हूँ—प्रभु मनुके ग्यारहवें चतुर्युगके अतिक्रान्त होनेपर उसका आधा अवशिष्ट रह जानेपर जब द्वापरका आरम्भ हुआ, तब मनुकी पीढ़ीमें नरिष्यन्तका दम नामक पुत्र हुआ। उस दमका उत्तराधिकारी तृणबिन्दु कहा गया है; वह त्रेतायुगके तीन-चौथाई भागमें राजा हुआ। उसकी कन्या इलविला रूपमें अप्रतिम थी। उस राजर्षिने वह कन्या पुलस्त्यको दे दी। उस इलविलासे ऋषि विश्रवा उत्पन्न हुए। पौलस्त्यकुलकी वृद्धि करनेवाली उनकी चार पत्नियाँ थीं। पहली देववर्णिनी नामवाली थी, जो बृहस्पतिकी सुन्दर कन्या थी। [अन्य दो] पुष्पोत्कटा तथा बलाका माल्यवान्‌की पुत्रियाँ कही गयी हैं। कैकसी मालीकी कन्या थी। [हे ऋषियो!] अब उनकी सन्तानोंके विषयमें सुनिये॥ ५५—६०१/२॥

देववर्णिनीने उन [विश्रवा]-से ज्येष्ठ [पुत्र] वैश्रवणको उत्पन्न किया। कैकसीने राक्षसोंके राजा रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा बुद्धिमान् विभीषणको जन्म दिया। हे द्विजश्रेष्ठो! पुष्पोत्कटाने उन [विश्रवा]-से महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा खर [नामक] पुत्रोंको तथा कुम्भीनसी [नामक] कन्याको जन्म दिया। अब बलाकी सन्तानोंको सुनिये। त्रिशिरा, दूषण तथा विद्युज्जिह्व राक्षस और मालिका [नामक] कन्या—ये सब बलासे उत्पन्न कहे गये हैं। पुलस्त्यके ये नौ पौत्र क्रूर कर्मवाले राक्षस थे। विभीषण अत्यन्त शुद्ध आत्मावाले तथा धर्मज्ञ कहे गये हैं। मृग, व्याघ्र आदि दाढ़ोंवाले सभी पशु, भूत, पिशाच, सर्प, सूकर, हाथी,

भूताः पिशाचाः सर्पाश्च सूकरा हस्तिनस्तथा।
वानराः किन्नराश्चैव ये च किम्पुरुषास्तथा॥ ६७
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे।
अत्रेः पत्न्यो दशैवासन् सुन्दर्यश्च पतिव्रताः॥ ६८
भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः।
भद्राभद्रा च जलदा मन्दा नन्दा तथैव च॥ ६९
बलाबला च विप्रेन्द्रा या च गोपाबला स्मृता।
तथा तामरसा चैव वरक्रीडा च वै दश॥ ७०
आत्रेयवंशप्रभवास्तासां भर्ता प्रभाकरः।
स्वर्भानुपिहिते सूर्ये पतितेऽस्मिन् दिवो महीम्॥ ७१
तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन् प्रभा येन प्रवर्तिता।
स्वस्त्यस्तु हि तवेत्युक्ते पतन्निह दिवाकरः॥ ७२
ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य पपात न विभुर्दिवः।
ततः प्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिर्महर्षिभिः॥ ७३
भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम्।
स तासु जनयामास पुनः पुत्रांस्तपोधनः॥ ७४
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः।
तेषां द्वौ ख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ च महौजसौ॥ ७५
दत्तो ह्यत्रिवरो ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः।
यवीयसी स्वसा तेषाममला ब्रह्मवादिनी॥ ७६
तस्य गोत्रद्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि।
श्यावश्च प्रत्वसश्चैव ववल्गुश्चाथ गह्वरः॥ ७७
आत्रेयाणां च चत्वारः स्मृताः पक्षा महात्मनाम्।
काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोऽनुद्धत्तस्तथा॥ ७८
जज्ञिरे मानसा ह्येते अरुन्धत्या निबोधत।
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत्॥ ७९
ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः।
पुरा देवासुरे युद्धे घोरे वै तारकामये॥ ८०
अनावृष्ट्या हते लोके ह्युग्रे लोकेश्वरैः सह।
वसिष्ठस्तपसा धीमान् धारयामास वै प्रजाः॥ ८१

वानर, किन्नर तथा किम्पुरुष—ये सब पुलस्त्यके पुत्र हुए॥ ६१—६७॥

उस वैवस्वत मन्वन्तरमें क्रतु निःसन्तान कहा गया है। अत्रिकी दस सुन्दर तथा पतिव्रता भार्याएँ थीं। घृताची अप्सरासे भद्राश्वकी दस पुत्रियाँ हुईं। हे विप्रेन्द्रो! वे भद्रा, अभद्रा, जलदा, मन्दा, नन्दा, बला, अबला, गोपाबला, तामरसा तथा वरक्रीड़ा—ये दस कही गयी हैं। ये सब आत्रेयवंशमें उत्पन्न हुईं; इनके पति प्रभाकर थे। जब राहुने सूर्यको ढक लिया और यह सूर्य स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरने लगा; तब इस लोकके अन्धकारसे व्याप्त हो जानेपर अत्रि ऋषिने प्रभा फैलायी थी। 'तुम्हारा कल्याण हो' उनके ऐसा कहनेपर महर्षिके वचनसे उस समय गिरता हुआ विभु सूर्य स्वर्गलोकसे [पृथ्वीपर] नहीं गिरा। तब महर्षियोंने प्रभु अत्रिको 'प्रभाकर'—ऐसा कहा॥ ६८—७३॥

उन्होंने भद्रासे यशस्वी पुत्र 'सोम' को उत्पन्न किया। उन तपोधन [ऋषि]-ने उन पत्नियोंसे पुनः अन्य पुत्र भी उत्पन्न किये। वे सब स्वस्त्यात्रेय कहलाये और वेदोंके पारंगत ऋषि हुए। उनमें दो प्रसिद्ध यशवाले, ब्रह्मिष्ठ तथा महान् ओजस्वी हुए; दत्त अत्रिके ज्येष्ठ पुत्र थे और दुर्वासा उनके छोटे भाई थे। उनकी छोटी बहन अमला थी; वह ब्रह्मवादिनी थी। उनके दो गोत्रोंमें श्याव, प्रत्वस, ववल्गु तथा गह्वर—ये चार उत्पन्न हुए, जो भूलोकमें प्रसिद्ध हैं। महान् आत्मावाले आत्रेयोंके चार पक्ष कहे गये हैं—काश्यप, नारद, पर्वत और अनुद्धत। ये मानस पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। अब अरुन्धतीकी सन्तानोंके विषयमें सुनिये॥ ७४—७८$^{1}/_{2}$॥

नारदजीने वसिष्ठके लिये अरुन्धतीको प्रदान किया। महातेजस्वी नारद दक्षके शापसे ब्रह्मचारी हो गये। पूर्वकालमें तारकासुरके कारण भयानक देवासुर-संग्राममें अनावृष्टिसे हत लोकके उग्र हो जानेपर बुद्धिमान् वसिष्ठजीने [अपनी] तपस्यासे अन्न, जल, मूल, फल तथा औषधियाँ उत्पन्न करते हुए लोकेश्वरोंके साथ प्राणियोंकी रक्षा की थी और दयापूर्वक उन्होंने औषधिसे उन सबको जीवित किया था।

अन्नोदकं मूलफलं ओषधीश्च प्रवर्तयन्।
तानेताञ्जीवयामास कारुण्यादौषधेन च॥ ८२
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु सुतानुत्पादयच्छतम्।
ज्यायसोऽजनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम्॥ ८३
रक्षसा भक्षिते शक्तौ रुधिरेण तु वै तदा।
काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥ ८४
द्वैपायनो ह्यरण्यां वै शुकमुत्पादयत्सुतम्।
उपमन्युं च पीवर्यां विद्धीमे शुकसूनवः॥ ८५
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरस्तु पञ्चमः।
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता॥ ८६
जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सा त्वनुहस्य च।
श्वेतः कृष्णश्च गौरश्च श्यामो धूम्रस्तथारुणः॥ ८७
नीलो बादरिकश्चैव सर्वे चैते पराशराः।
पराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम्॥ ८८
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रमितिसम्भवम्।
वसिष्ठस्य कपिञ्जल्यो घृताच्यामुदपद्यत॥ ८९
त्रिमूर्तिर्यः समाख्यात इन्द्रप्रमितिरुच्यते।
पृथोः सुतायां सम्भूतो भद्रस्तस्याभवद्वसुः॥ ९०
उपमन्युः सुतस्तस्य बहवो ह्यौपमन्यवः।
मित्रावरुणयोश्चैव कौण्डिन्या ये परिश्रुताः॥ ९१
एकार्षेयास्तथा चान्ये वासिष्ठा नाम विश्रुताः।
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता दश महात्मनाम्॥ ९२
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा विश्रुता भुवि।
भर्तारश्च महाभागा एषां वंशाः प्रकीर्तिताः॥ ९३
त्रिलोकधारणे शक्ता देवर्षिकुलसम्भवाः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ९४
यैस्तु व्याप्तास्त्रयो लोकाः सूर्यस्येव गभस्तिभिः॥ ९५

वसिष्ठने अरुन्धतीसे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें ज्येष्ठ पुत्र शक्तिसे अदृश्यन्तीने पराशरको जन्म दिया था॥ ७९—८३॥

राक्षस रुधिरके द्वारा शक्तिका भक्षण कर लिये जानेपर कालीने पराशरसे प्रभु कृष्णद्वैपायन (व्यासजी)-को जन्म दिया। तदनन्तर कृष्णद्वैपायनने अरणीसे शुक और उपमन्युको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और पीवरीसे उत्पन्न शुकदेवके इन पुत्रोंको जानिये—भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण तथा पाँचवाँ गौर। उनकी कीर्तिमती [नामक] कन्या भी हुई, जो योगमाता तथा व्रत धारण करनेवाली थी। वह ब्रह्मदत्तकी माता एवं अनुहकी पत्नी थी। श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम, धूम्र, अरुण, नील तथा बादरिक—ये सब पराशरके वंशज थे। इस प्रकार महात्मा पराशरवंशजोंके वे आठ पक्ष कहे गये हैं॥ ८४—८८॥

[हे ऋषियो!] अब इसके आगे इन्द्रप्रमितिकी उत्पत्तिके विषयमें जानिये। वसिष्ठका पुत्र कपिंजल्य घृताचीसे उत्पन्न हुआ था, जो त्रिमूर्ति नामसे भी विख्यात हुआ; उसे इन्द्रप्रमिति कहा जाता है। पृथुकी पुत्रीसे भद्र उत्पन्न हुआ और उस [भद्र]-का पुत्र वसु हुआ। उसका पुत्र उपमन्यु और उपमन्युके बहुत पुत्र हुए। कौण्डिन्य नामसे जो प्रसिद्ध हैं, वे मित्र तथा वरुणकी सन्तानें हैं और जो अन्य एकार्षेय हैं, वे वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध हैं। महात्मा वसिष्ठवंशजोंके ये दस पक्ष कहे गये हैं॥ ८९—९२॥

ये सब ब्रह्माके मानस पुत्रके रूपमें पृथ्वीपर विख्यात हैं। ये महाभाग [सबका] भरण करनेवाले हैं। [हे विप्रो!] मैंने इनके वंशोंका वर्णन कर दिया। देवर्षिकुलमें उत्पन्न होनेवाले ये सब तीनों लोकोंको धारण करनेमें समर्थ हैं। उनके पुत्र-पौत्र सैकड़ों तथा हजारों हैं, जिनके द्वारा सूर्यकी किरणोंकी भाँति तीनों लोक व्याप्त हैं॥ ९३—९५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवादिसृष्टिकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'देवादिसृष्टिकथन' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

वसिष्ठपुत्र शक्तिका आख्यान तथा महर्षि पराशरकी कथा

ऋषय ऊचुः

कथं हि रक्षसा शक्तिर्भक्षितः सोऽनुजैः सह।
वासिष्ठो वदतां श्रेष्ठ सूत वक्तुमिहार्हसि॥ १

सूत उवाच

राक्षसो रुधिरो नाम वसिष्ठस्य सुतं पुरा।
शक्तिं स भक्षयामास शक्तेः शापात् सहानुजैः॥ २

वसिष्ठयाज्यं विप्रेन्द्रास्तदादिश्यैव भूपतिम्।
कल्माषपादं रुधिरो विश्वामित्रेण चोदितः॥ ३

भक्षितः स इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तेन रक्षसा।
शक्तिः शक्तिमतां श्रेष्ठो भ्रातृभिः सह धर्मवित्॥ ४

हा पुत्र पुत्र पुत्रेति क्रन्दमानो मुहुर्मुहुः।
अरुन्धत्या सह मुनिः पपात भुवि दुःखितः॥ ५

नष्टं कुलमिति श्रुत्वा मर्तुं चक्रे मतिं तदा।
स्मरन् पुत्रशतं चैव शक्तिज्येष्ठं च शक्तिमान्॥ ६

न तं विनाहं जीविष्ये इति निश्चित्य दुःखितः॥ ७

आरुह्य मूर्धानमजात्मजोऽसौ
तयात्मवान् सर्वविदात्मविच्च।
धराधरस्यैव तदा धरायां
पपात पत्न्या सहसाश्रुदृष्टिः॥ ८

धराधरात्तं पतितं धरा तदा
दधार तत्रापि विचित्रकण्ठी।
कराम्बुजाभ्यां करिखेलगामिनी
रुदन्तमादाय रुरोद सा च॥ ९

तदा तस्य स्नुषा प्राह पत्नी शक्तेर्महामुनिम्।
वसिष्ठं वदतां श्रेष्ठं रुदन्ती भयविह्वला॥ १०

भगवन् ब्राह्मणश्रेष्ठ तव देहमिदं शुभम्।
पालयस्व विभो द्रष्टुं तव पौत्रं ममात्मजम्॥ ११

न त्याज्यं तव विप्रेन्द्र देहमेतत्सुशोभनम्।
गर्भस्थो मम सर्वार्थसाधकः शक्तिजो यतः॥ १२

ऋषिगण बोले—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! राक्षस [रुधिर]-ने अनुजोंसहित वसिष्ठपुत्र शक्तिका भक्षण कैसे कर लिया; इसे आप कृपा करके बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—रुधिर नामक राक्षस पूर्वकालमें [विश्वामित्रद्वारा दिये गये] शापके कारण वसिष्ठके पुत्र शक्तिको उनके छोटे भाइयोंसहित खा गया था। हे विप्रो! उस रुधिरने विश्वामित्रसे प्रेरित होकर वसिष्ठके यजमान राजा कल्माषपादके शरीरमें प्रवेश करके उसका भक्षण किया था॥ २-३॥

राक्षसने भाइयोंसहित शक्तिशालियोंमें श्रेष्ठ शक्तिका भक्षण कर लिया—ऐसा सुनकर वसिष्ठजी अरुन्धतीके साथ दुःखित होकर 'हा पुत्र! पुत्र!'—बार-बार कहकर विलाप करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। [मेरा] कुल नष्ट हो गया—यह सुनकर अपने सौ पुत्रों तथा ज्येष्ठ पुत्र शक्तिका स्मरण करते हुए उन शक्तिमान् वसिष्ठने 'अब मैं उसके बिना जीवित नहीं रहूँगा'—ऐसा निश्चय करके दुःखित होकर मरनेका विचार किया॥ ४—७॥

नेत्रोंमें आँसू भरे हुए वे आत्मवान्, सर्वज्ञ तथा आत्मवेत्ता ब्रह्मापुत्र वसिष्ठजी पत्नी [अरुन्धती]-के साथ पर्वतके शिखरपर चढ़कर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८॥

तब विचित्र हार पहने हुए तथा हाथीके समान क्रीड़ायुक्त चालवाली पृथ्वीने पर्वतसे गिरे हुए उन वसिष्ठको धारण कर लिया और वह कमलके समान [अपने] हाथोंसे उन रोते हुए वसिष्ठको पकड़कर [स्वयं] रुदन करने लगी॥ ९॥

तदनन्तर उनकी पुत्रवधू तथा शक्तिकी पत्नी भयसे व्याकुल होकर रोती हुई वक्ताओंमें श्रेष्ठ महामुनि वसिष्ठसे कहने लगी—'हे भगवन्! हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हे विभो! अपने पौत्र तथा मेरे पुत्रकी देखभाल करनेके लिये आप अपने इस पवित्र देहकी रक्षा कीजिये। हे विप्रेन्द्र! आपको अपने इस परम सुन्दर शरीरका त्याग

एवमुक्त्वाथ धर्मज्ञा कराभ्यां कमलेक्षणा।
उत्थाप्य श्वशुरं नत्वा नेत्रे सम्मृज्य वारिणा॥ १३
दुःखितापि परित्रातुं श्वशुरं दुःखितं तदा।
अरुन्धतीं च कल्याणीं प्रार्थयामास दुःखिताम्॥ १४
स्नुषावाक्यं ततः श्रुत्वा वसिष्ठोत्थाय भूतलात्।
संज्ञामवाप्य चालिङ्ग्य सा पपात सुदुःखिता॥ १५
अरुन्धती कराभ्यां तां संस्पृश्यास्त्राकुलेक्षणाम्।
रुरोद मुनिशार्दूलो भार्यया सुतवत्सलः॥ १६
अथ नाभ्यम्बुजे विष्णोर्यथा तस्याश्चतुर्मुखः।
आसीनो गर्भशय्यायां कुमार ऋचमाह सः॥ १७
ततो निशम्य भगवान् वसिष्ठ ऋचमादरात्।
केनोक्तमिति सञ्चिन्त्य तदातिष्ठत्समाहितः॥ १८

व्योमाङ्गणस्थोऽथ हरिः पुण्डरीकनिभेक्षणः।
वसिष्ठमाह विश्वात्मा घृणया स घृणानिधिः॥ १९
भो वत्स वत्स विप्रेन्द्र वसिष्ठ सुतवत्सल।
तव पौत्रमुखाम्भोजादृगेषाद्य विनिःसृता॥ २०
मत्समस्तव पौत्रोऽसौ शक्तिजः शक्तिमान् मुने।
तस्मादुत्तिष्ठ सन्त्यज्य शोकं ब्रह्मसुतोत्तम॥ २१
रुद्रभक्तश्च गर्भस्थो रुद्रपूजापरायणः।
रुद्रदेवप्रभावेण कुलं ते सन्तरिष्यति॥ २२
एवमुक्त्वा घृणी विप्रं भगवान् पुरुषोत्तमः।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं तत्रैवान्तरधीयत॥ २३
ततः प्रणम्य शिरसा वसिष्ठो वारिजेक्षणम्।
अदृश्यन्त्या महातेजाः पस्पर्शोदरमादरात्॥ २४
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च सुदुःखितः।
ललापारुन्धतीं प्रेक्ष्य तदासौ रुदतीं द्विजाः॥ २५

नहीं करना चाहिये; क्योंकि सभी अर्थोंको सिद्ध करनेवाला शक्तिपुत्र मेरे गर्भमें स्थित है'॥ १०—१२॥

ऐसा कहकर कमलके समान नेत्रोंवाली उस धर्मज्ञाने अपने हाथोंसे श्वशुरको उठाकर [उन्हें] प्रणाम करके जलसे [उनके] नेत्रोंको धोकर स्वयं दुःखित होनेपर भी दुःखी श्वशुरकी रक्षा करनेके लिये दुःखसे युक्त कल्याणी अरुन्धतीसे प्रार्थना की॥ १३-१४॥

तदनन्तर पुत्रवधूका वचन सुनकर चैतन्य प्राप्तकर पुत्रवत्सल मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ भूमिसे उठकर अरुन्धतीका आश्रय ले अश्रुपूरित नेत्रोंवाली उस अदृश्यन्तीका हाथोंसे स्पर्श करके भार्यासहित रो पड़े। वह अदृश्यन्ती भी अत्यन्त दुःखित होकर भूमिपर गिर पड़ी॥ १५-१६॥

तदनन्तर विष्णुके नाभिकमलमें विराजमान ब्रह्माकी भाँति उसकी गर्भशय्यामें आसीन उस शिशुने एक ऋचाका उच्चारण किया॥ १७॥

तब उस ऋचाको आदरपूर्वक सुनकर 'किसने इसका उच्चारण किया'—ऐसा सोचकर भगवान् वसिष्ठ एकाग्रचित्त होकर बैठ गये॥ १८॥

उसके बाद कमलके समान नेत्रवाले, विश्वात्मा तथा कृपानिधि विष्णुने आकाशमें स्थित होकर कृपापूर्वक वसिष्ठसे कहा—'हे वत्स! हे वत्स! हे विप्रेन्द्र! हे वसिष्ठ! हे पुत्रवत्सल! आपके पौत्रके मुखकमलसे यह ऋचा निकली है। हे मुने! शक्तिका यह पुत्र तथा आपका पौत्र मेरे समान शक्तिशाली होगा, अतः हे ब्रह्मपुत्रोंमें श्रेष्ठ! शोकका त्याग करके उठिये। यह गर्भस्थ शिशु रुद्रका भक्त होगा और रुद्रकी पूजामें संलग्न रहेगा; यह रुद्रदेवकी कृपासे आपके कुलका उद्धार करेगा'। मुनिश्रेष्ठ विप्र वसिष्ठसे ऐसा कहकर दयालु भगवान् विष्णु वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १९—२३॥

तत्पश्चात् कमलके समान नेत्रवाले विष्णुको सिर झुकाकर प्रणाम करके महातेजस्वी वसिष्ठने आदरपूर्वक अदृश्यन्तीके उदरका स्पर्श किया; और हा पुत्र! पुत्र! पुत्र!—ऐसा कहकर अत्यन्त दुःखित होकर वे गिर

स्वपुत्रं च स्मरन् दुःखात्पुनरेह्येहि पुत्रक।
तव पुत्रमिमं दृष्ट्वा भो शक्ते कुलधारणम्॥ २६

तवान्तिकं गमिष्यामि तव मात्रा न संशयः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा रुदन् विप्र आलिङ्ग्यारुन्धतीं तदा॥ २७

पपात ताडयन्तीव स्वस्य कुक्षी करेण वै।
अदृश्यन्ती जघानाथ शक्तिजस्यालयं शुभा॥ २८

स्वोदरं दुःखिता भूमौ ललाप च पपात च।
अरुन्धती तदा भीता वसिष्ठश्च महामतिः॥ २९

समुत्थाप्य स्नुषां बालामूचतुर्भयविह्वलौ॥ ३०

विचारमुग्धे तव गर्भमण्डलं
करास्बुजाभ्यां विनिहत्य दुर्लभम्।
कुलं वसिष्ठस्य समस्तमप्यहो
निहन्तुमार्ये कथमुद्यता वद॥ ३१

तवात्मजं शक्तिसुतं च दृष्ट्वा
चास्वाद्य वक्त्रामृतमार्यसूनोः।
त्रातुं यतो देहमिमं मुनीन्द्रः
सुनिश्चितः पाहि ततः शरीरम्॥ ३२

सूत उवाच

एवं स्नुषामुपालभ्य मुनिं चारुन्धती स्थिता।
अरुन्धती वसिष्ठस्य प्राह चार्तेति विह्वला॥ ३३

त्वय्येव जीवितं चास्य मुनेर्यत्सुव्रते मम।
जीवितं रक्ष देहस्य धात्री च कुरु यद्धितम्॥ ३४

अदृश्यन्ती उवाच

मया यदि मुनिश्रेष्ठो त्रातुं वै निश्चितं स्वकम्।
ममाशुभं शुभं देहं कथञ्चित् पालयाम्यहम्॥ ३५

प्रियदुःखमहं प्राप्ता ह्यसती नात्र संशयः।
मुने दुःखादहं दग्धा यतः पुत्री मुने तव॥ ३६

अहोऽद्भुतं मया दृष्टं दुःखपात्री ह्यहं विभो।
दुःखत्राता भव ब्रह्मन् ब्रह्मसूनो जगद्गुरो॥ ३७

पड़े। हे द्विजो! उस समय वे रोती हुई अरुन्धतीकी ओर देखकर विलाप करने लगे और अपने पुत्रका स्मरण करते हुए दुःखपूर्वक बोले—'हे पुत्र! पुनः आ जाओ, आ जाओ। हे शक्ते! कुलको धारण करनेवाले तुम्हारे इस पुत्रको देखकर मैं तुम्हारी माताके साथ तुम्हारे पास आऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है'॥ २४—२६ $^1/_2$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहकर रोते हुए वे विप्र [वसिष्ठ] अरुन्धतीका आलिङ्गन करके गिर पड़े। शुभ अदृश्यन्ती भी [गर्भस्थ] शक्तिपुत्रके आश्रयस्वरूप अपने उदरको पीटने लगी और दुःखित होकर विलाप करने लगी तथा [पृथ्वीपर] गिर पड़ी। तब डरी हुई अरुन्धती एवं महामति वसिष्ठ बाला पुत्रवधूको उठाकर भयसे विह्वल होकर [उससे] कहने लगे॥ २७—३०॥

हे विचारमुग्धे! हे आर्ये! कमलके समान हाथोंसे अपने दुर्लभ गर्भमण्डलको पीटकर तुम वसिष्ठके समस्त वंशको नष्ट करनेके लिये क्यों उद्यत हो? इसे बताओ। तुम्हारे पुत्र तथा शक्तिपुत्रको देखकर और उस आर्यपुत्रके मुखामृतका आस्वादन करके मुझ मुनीन्द्रने इस अपने शरीरको बचानेका निश्चय किया है, अतः तुम [अपने] शरीरकी रक्षा करो॥ ३१-३२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार पुत्रवधू तथा मुनि वसिष्ठसे कहकर अरुन्धती स्थित हो गयी। पुनः दुःखी एवं व्याकुल अरुन्धतीने कहा—हे सुव्रते! अब इन मुनि वसिष्ठका तथा मेरा जीवन तुम्हारे ऊपर निर्भर है, अतः तुम धात्रीकी भाँति अपने देहकी रक्षा करो और जो हितकर हो, उसे करो॥ ३३-३४॥

अदृश्यन्ती बोली—यदि मुनिश्रेष्ठने अपने जीवनकी रक्षा करनेका निश्चय किया है, तो मैं भी किसी रूपमें अपने शुभ या अशुभ देहकी रक्षा करूँगी। मुझ असतीको [अपने] पतिके वियोगका दुःख प्राप्त हुआ है; इसमें सन्देह नहीं है। हे मुने! मैं दुःखसे दग्ध हूँ। हे मुने! मैं आपकी पुत्री हूँ; मैंने अद्भुत बात देखी है। हे विभो! मैं दुःखकी पात्र हूँ। अतः हे ब्रह्मन्! हे

तथापि भर्तृरहिता दीना नारी भवेदिह।
पाहि मां तत आर्येन्द्र परिभूता भविष्यति॥ ३८

पिता माता च पुत्राश्च पौत्राः श्वशुर एव च।
एते न बान्धवाः स्त्रीणां भर्ता बन्धुः परा गतिः॥ ३९

आत्मनो यद्धि कथितमप्यर्धमिति पण्डितैः।
तदप्यत्र मृषा ह्यासीद् गतः शक्तिरहं स्थिता॥ ४०

अहो ममात्र काठिन्यं मनसो मुनिपुङ्गव।
पतिं प्राणसमं त्यक्त्वा स्थिता यत्र क्षणं यतः॥ ४१

वसिष्ठाश्वत्थमाश्रित्य ह्यमृता तु यथा लता।
निर्मूलाप्यमृता भर्त्रा त्यक्ता दीना स्थिताप्यहम्॥ ४२

स्नुषावाक्यं निशम्यैव वसिष्ठो भार्यया सह।
तदा चक्रे मतिं धीमान् यातुं स्वाश्रममाश्रमी॥ ४३

कृच्छ्रात्सभार्यो भगवान् वसिष्ठः स्वाश्रमं क्षणात्।
अदृश्यन्त्या च पुण्यात्मा संविवेश स चिन्तयन्॥ ४४

सा गर्भं पालयामास कथञ्चिन्मुनिपुङ्गवाः।
कुलसन्धारणार्थाय शक्तिपत्नी पतिव्रता॥ ४५

ततः सासूत तनयं दशमे मासि सुप्रभम्।
शक्तिपत्नी यथा शक्तिं शक्तिमन्तमरुन्धती॥ ४६

असूत सादितिर्विष्णुं यथा स्वाहा गुहं सुतम्।
अग्निं यथारणिः पत्नी शक्तेः साक्षात्पराशरम्॥ ४७

यदा तदा शक्तिसूनुरवतीर्णो महीतले।
शक्तिस्त्यक्त्वा तदा दुःखं पितॄणां समतां ययौ॥ ४८

भ्रातृभिः सह पुण्यात्मा आदित्यैरिव भास्करः।
रराज पितृलोकस्थो वासिष्ठो मुनिपुङ्गवाः॥ ४९

ब्रह्मपुत्र! हे जगद्गुरो! इस दुःखसे मेरी रक्षा कीजिये। पतिरहित स्त्री इस लोकमें दीन तथा असहाय होती है, अतः हे आर्येन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। पिता, माता, पुत्र, पौत्र, श्वशुर—ये स्त्रियोंके बन्धु नहीं होते हैं; अर्थात् ये सब उसका सदाके लिये सम्पूर्ण हितसम्पादन करनेमें समर्थ नहीं होते, केवल पति ही उनका बन्धु तथा परम गति होता है॥ ३५—३९॥

विद्वानोंने जो कहा है कि पत्नी पतिका आधा अंग होती है, वह भी इसमें मिथ्या हो गया; [मेरे पति] शक्ति तो चले गये, किन्तु मैं [जीवित] रह गयी। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनकी यह कठोरता है, जो प्राणतुल्य [अपने] पतिको छोड़कर मैं क्षणभरके लिये भी जीवित हूँ। हे वसिष्ठ! जैसे पीपलके वृक्षपर चढ़ी हुई लता जड़को काट देनेपर भी जीवित रहती है, वैसे ही अपने पतिसे परित्यक्त हुई मैं भी दीन होकर जीवित हूँ॥ ४०—४२॥

तब पुत्रवधूका वचन सुनकर गृहस्थाश्रमवाले बुद्धिमान् वसिष्ठने [अपनी] भार्याके साथ अपने आश्रमको जानेका विचार किया। चिन्ता करते हुए उन भगवान् वसिष्ठने बड़े कष्टसे अपनी भार्या तथा [पुत्रवधू] अदृश्यन्तीके साथ क्षणभरमें अपने आश्रममें प्रवेश किया॥ ४३-४४॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! उस पतिव्रता शक्तिभार्याने [अपनी] वंशपरम्पराको सुरक्षित रखनेके लिये किसी प्रकार [अपने] गर्भकी रक्षा की। तदनन्तर दसवें महीनेमें उस शक्तिपत्नीने अत्यन्त तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया, जैसे अरुन्धतीने शक्तिशाली शक्तिको जन्म दिया था। उस शक्तिपत्नीने साक्षात् पराशरको उसी तरह जन्म दिया, जैसे अदितिने विष्णुको, स्वाहाने गुहको और अरणिने अग्निको पुत्ररूपमें जन्म दिया था॥ ४५—४७॥

जब शक्तिके पुत्रने पृथ्वीतलपर अवतार लिया, तब शक्तिने दुःख त्यागकर पितरोंकी समताको प्राप्त किया। हे श्रेष्ठ मुनियो! वे पुण्यात्मा वसिष्ठपुत्र [शक्ति] पितृलोकमें स्थित होकर [अपने] भाइयोंके साथ उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे सूर्य आदित्योंके साथ सुशोभित होते हैं॥ ४८-४९॥

जगुस्तदा च पितरो ननृतुश्च पितामहाः।
प्रपितामहाश्च विप्रेन्द्रा ह्यवतीर्णे पराशरे॥ ५०

ये ब्रह्मवादिनो भूमौ ननृतुर्दिवि देवताः।
पुष्कराद्याश्च ससृजुः पुष्पवर्षं च खेचराः॥ ५१

पुरेषु राक्षसानां च प्रणादं विषमं द्विजाः।
आश्रमस्थाश्च मुनयः समूहुर्हर्षसन्ततिम्॥ ५२

हे विप्रेन्द्रो! पराशरके अवतार लेनेपर उस समय सभी पितामह-प्रपितामह आदि पितृगण नाचने तथा गाने लगे। जो ब्रह्मवादी लोग थे, वे पृथ्वीपर एवं देवता लोग स्वर्गमें नृत्य करने लगे। पुष्कर आदि मेघोंने जलकी तथा अन्य आकाशचारियोंने पुष्पोंकी वर्षा की। [उस समय] राक्षसोंके नगरोंमें गृध्रादि अमंगल ध्वनि करने लगे और आश्रममें स्थित मुनियोंने अपार हर्ष मनाया॥ ५०—५२॥

अवतीर्णो यथा ह्यण्डाद्भानुः सोऽपि पराशरः।
अदृश्यन्त्याश्चतुर्वक्त्रो मेघजालाद्दिवाकरः॥ ५३

सुखं च दुःखमभवददृश्यन्त्यास्तथा द्विजाः।
दृष्ट्वा पुत्रं पतिं स्मृत्वा अरुन्धत्या मुनेस्तथा॥ ५४

दृष्ट्वा च तनयं बाला पराशरमतिद्युतिम्।
ललाप विह्वला बाला सन्नकण्ठी पपात च॥ ५५

जैसे अण्डसे चतुरानन (ब्रह्मा) और मेघसमूहोंसे सूर्य प्रकट होते हैं, उसी प्रकार वे पराशर भी अदृश्यन्तीसे अवतरित हुए। हे द्विजो! पुत्रको देखकर तथा पतिका स्मरण करके अदृश्यन्तीको सुख तथा दुःख दोनों ही हुआ और अरुन्धती तथा मुनि [वसिष्ठ]-को भी सुख-दुःख हुआ। अत्यधिक कान्तिवाले पुत्र पराशरको देखकर विह्वल तथा रुँधे कण्ठवाली वह बाला विलाप करने लगी और [भूमिपर] गिर पड़ी॥ ५३—५५॥

सा पराशरमहो महामतिं
देवदानवगणैश्च पूजितम्।
जातमात्रमनघं शुचिस्मिता
बुध्य साश्रुनयना ललाप च॥ ५६

हा वसिष्ठसुत कुत्रचिद् गतः
पश्य पुत्रमनघं तवात्मजम्।
त्यज्य दीनवदनां वनान्तरे
पुत्रदर्शनपरामिमां प्रभो॥ ५७

शक्ते स्वं च सुतं पश्य भ्रातृभिः सह षण्मुखम्।
यथा महेश्वरोऽपश्यत्सगणो हृषिताननः॥ ५८

पवित्र मुसकानवाली वह [अदृश्यन्ती] उत्पन्न हुए उस पराशरको महाबुद्धिमान्, देवताओं तथा दानवोंसे पूजित और निष्पाप जानकर आँखोंमें आँसू भरकर विलाप करने लगी—'हे वसिष्ठसुत [शक्ति]! हे प्रभो! पुत्र-दर्शनकी इच्छावाली इस दीनवदनाको तथा अपने पुत्रको वनके बीचमें छोड़कर आप कहाँ चले गये? अपने निष्पाप पुत्रका दर्शन कीजिये। हे शक्ते! आप भाइयोंके साथ अपने पुत्रको देखिये, जैसे महेश्वरने प्रसन्नमुख होकर [अपने] गणोंके साथ षण्मुख (कार्तिकेय)-को देखा था'॥ ५६—५८॥

अथ तस्यास्तदालापं वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
श्रुत्वा स्नुषामुवाचेदं मा रोदीरिति दुःखितः॥ ५९

तत्पश्चात् उसके विलापको सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने दुःखित होकर [अपनी] पुत्रवधूसे यह वचन कहा—'मत रोओ'॥ ५९॥

आज्ञया तस्य सा शोकं वसिष्ठस्य कुलाङ्गना।
त्यक्त्वा ह्यपालयद् बालं बाला बालमृगेक्षणा॥ ६०

तब बालमृगके समान नेत्रोंवाली वह कुलीन बाला वसिष्ठकी आज्ञासे शोक त्याग करके [उस] बालकका पालन करने लगी॥ ६०॥

दृष्ट्वा तामबलां प्राह मङ्गलाभरणैर्विना।
आसीनामाकुलां साध्वीं बाष्पपर्याकुलेक्षणाम्॥ ६१

तदनन्तर आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंवाली तथा व्याकुल उस साध्वी अबलाको आभूषणोंसे रहित होकर बैठी देखकर पराशर यह कहने लगे॥ ६१॥

शाक्तेय उवाच

अम्ब मङ्गलविभूषणैर्विना
देहयष्टिरनघे न शोभते।
वक्तुमर्हसि तवाद्य कारणं
चन्द्रबिम्बरहितेव शर्वरी॥ ६२
मातर्मातः कथं त्यक्त्वा मङ्गलाभरणानि वै।
आसीना भर्तृहीनेव वक्तुमर्हसि शोभने॥ ६३
अदृश्यन्ती तदा वाक्यं श्रुत्वा तस्य सुतस्य सा।
न किञ्चिदब्रवीत्पुत्रं शुभं वा यदि वेतरत्॥ ६४
अदृश्यन्तीं पुनः प्राह शाक्तेयो भगवान् मम।
मातः कुत्र महातेजाः पिता वद वदेति ताम्॥ ६५
श्रुत्वा रुरोद सा वाक्यं पुत्रस्यातीव विह्वला।
भक्षितो रक्षसा तातस्तवेति निपपात च॥ ६६
श्रुत्वा वसिष्ठोऽपि पपात भूमौ
पौत्रस्य वाक्यं स रुदन् दयालुः।
अरुन्धती चाश्रमवासिनस्तदा
मुनेर्वसिष्ठस्य मुनीश्वराश्च॥ ६७
भक्षितो रक्षसा मातुः पिता तव मुखादिति।
श्रुत्वा पराशरो धीमान् प्राह चास्राविलेक्षणः॥ ६८

पराशर उवाच

अभ्यर्च्य देवदेवेशं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
क्षणेन मातः पितरं दर्शयामीति मे मतिः॥ ६९
सा निशम्य वचनं तदा शुभं
सस्मिता तनयमाह विस्मिता।
तथ्यमेतदिति तं निरीक्ष्य सा
पुत्र पुत्र भवमर्चयेति च॥ ७०
ज्ञात्वा शक्तिसुतस्यास्य सङ्कल्पं मुनिपुङ्गवः।
वसिष्ठो भगवान् प्राह पौत्रं धीमान् घृणानिधिः॥ ७१
स्थाने पौत्र मुनिश्रेष्ठ सङ्कल्पस्तव सुव्रत।
तथापि शृणु लोकस्य क्षयं कर्तुं न चार्हसि॥ ७२
राक्षसानामभावाय कुरु सर्वेश्वरार्चनम्।
त्रैलोक्यं शृणु शाक्तेय अपराध्यति किं तव॥ ७३

शाक्तेय (शक्तिपुत्र पराशर) बोले—हे अम्ब! हे अनघे! जैसे चन्द्रमण्डलसे रहित रात्रि सुशोभित नहीं होती है, वैसे ही आपका यह शरीर मंगल आभूषणोंके बिना सुशोभित नहीं हो रहा है; कृपा करके आज इसका कारण बताइये। हे मातः! हे मातः! मंगल आभरणोंका त्याग करके पतिविहीनाकी भाँति आप क्यों बैठी हुई हैं? हे शोभने! कृपा करके बताइये॥ ६२-६३॥

तब उस पुत्रकी बात सुनकर उस अदृश्यन्तीने पुत्रसे अच्छा अथवा बुरा कुछ भी नहीं कहा॥ ६४॥

भगवान् शाक्तेय (पराशर)-ने उस अदृश्यन्तीसे पुनः कहा—'हे मातः! मेरे महातेजस्वी पिता कहाँ हैं; इसे बताइये, बताइये'॥ ६५॥

तब पुत्रका वचन सुनकर अत्यधिक व्याकुल होकर वह रोने लगी। 'हे तात! राक्षसने तुम्हारे पिताका भक्षण कर लिया'—ऐसा कहकर वह [भूमिपर] गिर पड़ी॥ ६६॥

तब पौत्रकी बात सुनकर दयालु वसिष्ठ भी रोते हुए भूमिपर गिर पड़े। मुनि वसिष्ठके आश्रममें रहनेवाले श्रेष्ठ मुनिगण तथा अरुन्धती—ये सब भी गिर पड़े॥ ६७॥

'तुम्हारे पिताको राक्षस खा गया'—माताके मुखसे ऐसा सुनकर अश्रुपूर्ण नेत्रवाले बुद्धिमान् पराशर कहने लगे॥ ६८॥

पराशर बोले—हे मातः! देवदेवेश्वर [शिव]-की पूजा करके तथा चराचरसहित तीनों लोकोंको दग्ध करके मैं क्षणभरमें पिताका दर्शन कराता हूँ—ऐसा मेरा विचार है॥ ६९॥

तब इस शुभ वचनको सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गयी; उसकी ओर देखकर मुसकराकर उसने पुत्रसे कहा—हे पुत्र! हे पुत्र! यह सत्य है; तुम शिवकी पूजा करो॥ ७०॥

तदनन्तर इस शक्तिपुत्र [पराशर]-के संकल्पको जानकर दयानिधि, बुद्धिमान् तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठने पौत्रसे कहा—हे पौत्र! हे मुनिश्रेष्ठ! हे सुव्रत! सुनो; तुम्हारा संकल्प उचित है, फिर भी तुम [सम्पूर्ण] लोकका विनाश मत करो। तुम राक्षसोंके नाशके लिये

ततस्तस्य वसिष्ठस्य नियोगाच्छक्तिनन्दनः।
राक्षसानामभावाय मतिं चक्रे महामतिः॥ ७४

अदृश्यन्तीं वसिष्ठं च प्रणम्यारुन्धतीं ततः।
कृत्वैकलिङ्गं क्षणिकं पांसुना मुनिसन्निधौ॥ ७५

सम्पूज्य शिवसूक्तेन त्र्यम्बकेन शुभेन च।
जप्त्वा त्वरितरुद्रं च शिवसङ्कल्पमेव च॥ ७६

नीलरुद्रं च शाक्तेयस्तथा रुद्रं च शोभनम्।
वामीयं पवमानं च पञ्चब्रह्म तथैव च॥ ७७

होतारं लिङ्गसूक्तं च अथर्वशिर एव च।
अष्टाङ्गमर्घ्यं रुद्राय दत्त्वाभ्यर्च्य यथाविधि॥ ७८

पराशर उवाच

भगवन् रक्षसा रुद्र भक्षितो रुधिरेण वै।
पिता मम महातेजा भ्रातृभिः सह शङ्कर॥ ७९

द्रष्टुमिच्छामि भगवन् पितरं भ्रातृभिः सह।
एवं विज्ञापयँल्लिङ्गं प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः॥ ८०

हा रुद्र रुद्र रुद्रेति रुरोद निपपात च।
तं दृष्ट्वा भगवान् रुद्रो देवीमाह च शङ्करः॥ ८१

पश्य बालं महाभागे बाष्पपर्याकुलेक्षणम्।
ममानुस्मरणे युक्तं मदाराधनतत्परम्॥ ८२

सा च दृष्ट्वा महादेवी पराशरमनिन्दिता।
दुःखात्संक्लिन्नसर्वाङ्गमस्त्राकुलविलोचनम्॥ ८३

लिङ्गार्चनविधौ सक्तं हर रुद्रेति वादिनम्।
प्राह भर्तारमीशानं शङ्करं जगतामुमा॥ ८४

ईप्सितं यच्छ सकलं प्रसीद परमेश्वर।
निशम्य वचनं तस्याः शङ्करः परमेश्वरः॥ ८५

भार्यामार्यामुमां प्राह ततो हालाहलाशनः।
रक्षाम्येनं द्विजं बालं फुल्लेन्दीवरलोचनम्॥ ८६

ददामि दृष्टिं मद्रूपदर्शनक्षम एष वै।
एवमुक्त्वा गणैर्दिव्यैर्भगवान्नीललोहितः॥ ८७

सर्वेश्वरका अर्चन करो। हे शक्तिपुत्र! सुनो, त्रैलोक्यने तुम्हारे प्रति क्या अपराध किया है?॥ ७१—७३॥

उसके बाद उन वसिष्ठकी आज्ञासे महाबुद्धिमान् शक्तिपुत्रने राक्षसोंके विनाशके लिये निश्चय किया। अदृश्यन्ती, वसिष्ठ तथा अरुन्धतीको प्रणाम करनेके अनन्तर मुनिके समीप मिट्टीका एक (पार्थिवेश्वर) क्षणिक लिङ्ग बनाकर शुभ शिवसूक्त तथा त्र्यम्बकमन्त्रसे विधिवत् पूजन करके त्वरितरुद्र, शिवसंकल्पसूक्त, नीलरुद्र, उत्तम रुद्र, वामीय, पवमान, पंचब्रह्म (सद्योजातादि पाँच मन्त्र), होतृसूक्त, लिङ्गसूक्त तथा अथर्वशीर्ष—इन मन्त्रोंका जप करके [भगवान्] रुद्रको अष्टांग अर्घ्य प्रदान करके यथाविधि अभ्यर्चनकर वे शाक्तेय (पराशर) प्रार्थना करने लगे॥ ७४—७८॥

पराशर बोले—'हे भगवन्! हे रुद्र! हे शंकर! राक्षस रुधिरने भाइयोंसहित मेरे महातेजस्वी पिताका भक्षण कर लिया। हे भगवन्! मैं अपने पिताको उनके भाइयोंसहित देखना चाहता हूँ।' इस प्रकार प्रार्थना करते हुए उस लिङ्गको बार-बार प्रणामकर 'हा रुद्र! रुद्र! रुद्र!'—यह कहते हुए वे रोने लगे और गिर पड़े॥ ७९-८०$^1/_2$॥

तब उन्हें देखकर कल्याणकारी भगवान् रुद्रने देवी [पार्वती]-से कहा—हे महाभागे! अश्रुसे भरे हुए नेत्रोंवाले, मेरे स्मरणमें लगे हुए तथा मेरी आराधनामें तत्पर [इस] बालकको देखो॥ ८१-८२॥

तब निष्कलंक उन महादेवी उमाने दुःखसे दुर्बल अंगोंवाले, अश्रुपूरित नेत्रोंवाले, लिङ्गार्चनके कर्ममें संलग्न तथा 'हे हर! हे रुद्र'—ऐसा उच्चारण करनेवाले पराशरको देखकर सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी अपने पति शंकरसे कहा—हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हो जाइये और इसे सम्पूर्ण अभीष्ट वर प्रदान कीजिये॥ ८३-८४$^1/_2$॥

तदनन्तर उनका वचन सुनकर विषपान करनेवाले परमेश्वर शंकरने [अपनी] भार्या साध्वी उमासे कहा—मैं खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले इस ब्राह्मण बालककी रक्षा करूँगा। मैं इसे [दिव्य] दृष्टि दे रहा हूँ; [जिससे] यह मेरे रूपका दर्शन करनेमें समर्थ होगा॥ ८५-८६$^1/_2$॥

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैः संवृतः परमेश्वरः।
ददौ च दर्शनं तस्मै मुनिपुत्राय धीमते॥ ८८

सोऽपि दृष्ट्वा महादेवमानन्दास्राविलेक्षणः।
निपपात च हृष्टात्मा पादयोस्तस्य सादरम्॥ ८९

पुनर्भवान्याः पादौ च नन्दिनश्च महात्मनः।
सफलं जीवितं मेऽद्य ब्रह्माद्यांस्तांस्तदाह सः॥ ९०

रक्षार्थमागतस्त्वद्य मम बालेन्दुभूषणः।
कोऽन्यः समो मया लोके देवो वा दानवोऽपि वा॥ ९१

अथ तस्मिन् क्षणादेव ददर्श दिवि संस्थितम्।
पितरं भ्रातृभिः सार्धं शाक्तेयस्तु पराशरः॥ ९२

सूर्यमण्डलसङ्काशे विमाने विश्वतोमुखे।
भ्रातृभिः सहितं दृष्ट्वा ननाम च जहर्ष च॥ ९३

तदा वृषध्वजो देवः सभार्यः सगणेश्वरः।
वसिष्ठपुत्रं प्राहेदं पुत्रदर्शनतत्परम्॥ ९४

श्रीदेव उवाच

शक्ते पश्य सुतं बालमानन्दास्राविलेक्षणम्।
अदृश्यन्तीं च विप्रेन्द्र वसिष्ठं पितरं तव॥ ९५

अरुन्धतीं महाभागां कल्याणीं देवतोपमाम्।
मातरं पितरं चोभौ नमस्कुरु महामते॥ ९६

तदा हरं प्रणम्याशु देवदेवमुमां तथा।
वसिष्ठं च तदा श्रेष्ठं शक्तिर्वै शङ्कराज्ञया॥ ९७

मातरं च महाभागां कल्याणीं पतिदेवताम्।
अरुन्धतीं जगन्नाथनियोगात्प्राह शक्तिमान्॥ ९८

वासिष्ठ उवाच

भो वत्स वत्स विप्रेन्द्र पराशर महाद्युते।
रक्षितोऽहं त्वया तात गर्भस्थेन महात्मना॥ ९९

अणिमादिगुणैश्वर्यं मया वत्स पराशर।
लब्धमद्याननं दृष्टं तव बाल ममाज्ञया॥ १००

ऐसा कहकर [अपने] दिव्य गणों तथा ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदिसे घिरे हुए भगवान् नीललोहित परमेश्वरने उन बुद्धिमान् मुनिपुत्र [पराशर]-को दर्शन दिया॥ ८७-८८॥

महादेवजीको देखकर आनन्दके अश्रुसे भरे हुए नेत्रोंवाले वे [पराशर] भी प्रसन्नचित्त होकर आदरपूर्वक उनके चरणोंपर गिर पड़े और पुनः भवानी [पार्वती] और महात्मा नन्दीके चरणोंपर गिर पड़े। तत्पश्चात् उन्होंने उन ब्रह्मा आदिसे कहा—'मेरा जीवन आज सफल हो गया। बाल चन्द्रमाके आभूषणवाले [साक्षात् शिवजी] मेरी रक्षाके लिये आज उपस्थित हुए हैं; अतः देवता अथवा दानव—दूसरा कौन इस लोकमें मेरे समान [भाग्यशाली] है'॥ ८९—९१॥

तदनन्तर शक्तिपुत्र पराशरने उसी क्षण [अपने] पिताको भाइयोंसहित अन्तरिक्षमें खड़े देखा। सूर्यमण्डलके समान [तेजवाले] तथा सभी ओर मुखवाले विमानमें [अपने] भाइयोंसहित पिताको देखकर उन्होंने प्रणाम किया और वे बहुत हर्षित हुए॥ ९२-९३॥

तब अपनी भार्या तथा गणेश्वरोंसहित विराजमान भगवान् वृषभध्वज (शिव) पुत्रको देखनेमें तत्पर वसिष्ठ-पुत्र [शक्ति]-से यह कहने लगे॥ ९४॥

श्रीदेव बोले—हे शक्ते! हे विप्रेन्द्र! आनन्दके आँसुओंसे सिक्त नेत्रोंवाले अपने पुत्र इस बालकको और अदृश्यन्ती, अपने पिता वसिष्ठ, महाभाग्यशालिनी-कल्याणमयी तथा देवतातुल्य [माता] अरुन्धतीको देखो। हे महामते! [अपने] माता तथा पिता—इन दोनोंको नमस्कार करो॥ ९५-९६॥

तदनन्तर शंकरजीकी आज्ञासे देवदेव हरको, उमाको, श्रेष्ठ वसिष्ठको तथा अपने पतिको देवता माननेवाली महाभाग्यवती कल्याणी माता अरुन्धतीको शीघ्र प्रणाम करके शक्तिमान् शक्तिने [पुनः] जगन्नाथ [शिव]-की आज्ञा पाकर कहा॥ ९७-९८॥

वासिष्ठ (शक्ति) बोले—हे वत्स! हे वत्स! हे विप्रेन्द्र! हे पराशर! हे महाद्युते! हे तात! गर्भमें स्थित रहते हुए तुम महात्माने मेरी रक्षा की। हे वत्स! हे

अदृश्यन्तीं महाभागां रक्ष वत्स महामते।
अरुन्धतीं च पितरं वसिष्ठं मम सर्वदा॥ १०१

अन्वयः सकलो वत्स मम सन्तारितस्त्वया।
पुत्रेण लोकान् जयतीत्युक्तं सद्भिः सदैव हि॥ १०२

ईप्सितं वरयेशानं जगतां प्रभवं प्रभुम्।
गमिष्याम्यभिवन्द्येशं भ्रातृभिः सह शङ्करम्॥ १०३

एवं पुत्रमुपामन्त्र्य प्रणम्य च महेश्वरम्।
निरीक्ष्य भार्यां सदसि जगाम पितरं वशी॥ १०४

गतं दृष्ट्वाथ पितरं तदाभ्यर्च्यैव शङ्करम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शाक्तेयः शशिभूषणम्॥ १०५

ततस्तुष्टो महादेवो मन्मथान्धकमर्दनः।
अनुगृह्याथ शाक्तेयं तत्रैवान्तरधीयत॥ १०६

गते महेश्वरे साम्बे प्रणम्य च महेश्वरम्।
ददाह राक्षसानां तु कुलं मन्त्रेण मन्त्रवित्॥ १०७

तदाह पौत्रं धर्मज्ञो वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः।
अलमत्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जहि॥ १०८

राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं तथा।
मूढानामेव भवति क्रोधो बुद्धिमतां न हि॥ १०९

हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान्।
सञ्चितस्यातिमहता वत्स क्लेशेन मानवैः॥ ११०

यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः स्मृतः।
अलं हि राक्षसैर्दग्धैर्दीनैरनपराधिभिः॥ १११

सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः।
एवं वसिष्ठवाक्येन शाक्तेयो मुनिपुङ्गवः॥ ११२

पराशर! हे बाल! मैंने अणिमा आदि सिद्धियों तथा ऐश्वर्यको प्राप्त कर लिया, जो कि तुम्हारे मुखका आज मुझे दर्शन हुआ। हे वत्स! हे महामते! अब तुम मेरी आज्ञासे महाभाग्यशालिनी अदृश्यन्ती, [माता] अरुन्धती तथा मेरे पिता वसिष्ठकी सर्वदा रक्षा करते रहो। हे वत्स! तुमने मेरे समस्त कुलका उद्धार कर दिया; सज्जनोंने सदा यही कहा है कि [मनुष्य अपने] पुत्रके द्वारा [सभी] लोकोंको जीत लेता है। अब तुम जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रभु महेश्वरसे अभीष्ट वर माँगो और मैं अब भगवान् शंकरको प्रणाम करके भाइयोंके साथ जाऊँगा॥ ९९—१०३॥

इस प्रकार पुत्रको परामर्श देकर महेश्वर तथा पिता वसिष्ठको प्रणाम करके सभामें [अपनी] भार्याकी ओर देखकर वे जितेन्द्रिय शक्ति चले गये॥ १०४॥

तत्पश्चात् पिताको गया हुआ देखकर वे शक्तिपुत्र [पराशर] चन्द्रभूषण शंकरकी पूजा करके प्रिय शब्दोंद्वारा [उनकी] स्तुति करने लगे॥ १०५॥

तदनन्तर कामदेव तथा अन्धकका नाश करनेवाले महादेव प्रसन्न हो गये और शक्तिपुत्र पराशरपर अनुग्रह करके वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १०६॥

तब पार्वतीसहित महेश्वरके चले जानेपर मन्त्रवेत्ता पराशर महेश्वरको प्रणाम करके मन्त्रके द्वारा राक्षसोंके कुलको जलाने लगे॥ १०७॥

उस समय मुनियोंसे घिरे हुए धर्मज्ञ वसिष्ठने पौत्र [पराशर]-से कहा—'हे तात! ऐसा महाकोप मत करो; इस क्रोधका त्याग करो। राक्षसोंने अपराध नहीं किया है; तुम्हारे पिताके लिये वैसा ही विहित था। मूर्खोंको ही क्रोध होता है; बुद्धिमानोंको नहीं। हे तात! कौन किसे मारता है; मनुष्य तो अपने किये हुएका फल भोगता है। हे वत्स! क्रोध मनुष्योंके द्वारा अत्यधिक कष्टसे अर्जित किये गये यश तथा तपका नाश करनेवाला कहा गया है। अतः तुम दीन तथा निरपराध राक्षसोंको मत जलाओ और अपने इस यज्ञको बन्द करो; सज्जन लोग तो क्षमाशील होते हैं'॥ १०८—१११$^1/_2$॥

इस प्रकार वसिष्ठकी आज्ञासे तथा उनके वचनोंकी

उपसंहतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात्।
ततः प्रीतश्च भगवान् वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ ११३
सम्प्राप्तश्च तदा सत्रं पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः।
वसिष्ठेन तु दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः॥ ११४
पराशरमुवाचेदं प्रणिपत्य स्थितं मुनिः।
वैरे महति यद्वाक्याद् गुरोरद्याश्रिता क्षमा॥ ११५
त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्छास्त्राणि वेत्स्यति।
सन्ततेर्मम न च्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः॥ ११६
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम्।
पुराणसंहिताकर्ता भवान् वत्स भविष्यति॥ ११७
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान्।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमला मतिः॥ ११८
मत्प्रसादादसन्दिग्धा तव वत्स भविष्यति।
ततश्च प्राह भगवान् वसिष्ठो वदतां वरः॥ ११९
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति।
अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः॥ १२०
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः।
षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसञ्चयम्॥ १२१
षट्साहस्रमितं सर्वं वेदार्थेन च संयुतम्।
चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु सुशोभनम्॥ १२२
एष वः कथितः सर्वो वासिष्ठानां समासतः।
प्रभवः शक्तिसूनोश्च प्रभावो मुनिपुङ्गवाः॥ १२३

गरिमाके कारण मुनिश्रेष्ठ पराशरने शीघ्र ही यज्ञको बन्द कर दिया। तब मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठ प्रसन्न हो गये॥ ११२-११३॥

उसी समय ब्रह्माके पुत्र [ऋषि] पुलस्त्य यज्ञमें आये। वसिष्ठने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया तथा आसन देकर बैठाया; तत्पश्चात् प्रणाम करके [सम्मुख] खड़े पराशरसे मुनि [पुलस्त्य]-ने कहा—'तुमने गुरुकी आज्ञासे आज महान् वैरमें क्षमाको आश्रित किया है, अतः तुम सभी शास्त्रोंको जान जाओगे और कुपित होनेपर भी तुमने मेरे वंशका नाश नहीं किया, अतः हे महाभाग! मैं तुम्हें अन्य महान् वर भी प्रदान करता हूँ—हे वत्स! तुम पुराणसंहिताके कर्ता होओगे और देवताओंके परम रहस्यको वास्तविकरूपमें जानोगे। हे वत्स! मेरी कृपासे प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके कर्मोंसे तुम्हारी बुद्धि विशुद्ध एवं सन्देहरहित होगी'॥ ११४—११८ $^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठने कहा—'[हे वत्स!] ऋषि पुलस्त्यने तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, यह सब होकर रहेगा।' तब उन पुलस्त्य तथा बुद्धिमान् वसिष्ठकी कृपासे पराशरने विष्णुपुराणकी रचना की। यह छः अंशोंवाला, सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाला, ज्ञानका भण्डार, छः हजार श्लोकोंसे युक्त, वेदार्थसे समन्वित, पुराण-संहिताओंमें चतुर्थ तथा परम सुन्दर है॥ ११९—१२२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने आपलोगोंसे संक्षेपमें वसिष्ठके पुत्रोंकी उत्पत्ति तथा शक्तिपुत्र [पराशर]-के सम्पूर्ण प्रभावका वर्णन कर दिया॥ १२३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वासिष्ठकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वासिष्ठकथन' नामक चौंसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका वर्णन एवं शिवभक्त तण्डीप्रोक्त रुद्रसहस्रनाम*

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशं सोमस्य वंशं वंशविदां वर।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सङ्क्षेपाद्रोमहर्षण॥ १

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपाद् द्विजाः।
तस्यादित्यस्य चैवासीद्भार्यात्रयमथापरम्॥ २
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां वदामि वः।
संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्॥ ३

ऋषिगण बोले—हे वंशविदोंमें श्रेष्ठ! हे रोमहर्षण! आप संक्षेपमें सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशके विषयमें हमलोगोंको बतानेकी कृपा करें॥ १॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! अदितिने कश्यपसे आदित्य नामक पुत्रको उत्पन्न किया। उस आदित्यकी ज्येष्ठ भार्याके अतिरिक्त तीन और भार्याएँ थीं। वे संज्ञा, राज्ञी, प्रभा तथा छाया थीं—मैं उनके पुत्रोंके विषयमें

* यहाँ जो रुद्रसहस्रनामस्तोत्र दिया है, वह महाभारतके अनुशासन पर्व अ० १७ के अन्तर्गत आये शिवसहस्रनामस्तोत्र से साम्य रखता है, वहाँ उसका विस्तृत माहात्म्य भी पूर्वमें वर्णित है।

यमं च यमुनाञ्चैव राज्ञी रेवतमेव च।
प्रभा प्रभातमादित्याच्छायां संज्ञाप्यकल्पयत्॥ ४

छाया च तस्मात्सुषुवे सावर्णिं भास्कराद् द्विजाः।
ततः शनिं च तपतीं विष्टिं चैव यथाक्रमम्॥ ५

छाया स्वपुत्राभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तदा।
पूर्वो मनुर्न चक्षाम यमस्तु क्रोधमूर्च्छितः॥ ६

सन्ताडयामास रुषा पादमुद्यम्य दक्षिणम्।
यमेन ताडिता सा तु छाया वै दुःखिताभवत्॥ ७

छायाशापात्पदं चैकं यमस्य क्लिन्नमुत्तमम्।
पूयशोणितसम्पूर्णं कृमीणां निचयान्वितम्॥ ८

सोऽपि गोकर्णमाश्रित्य फलकेनानिलाशनः।
आराधयन् महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम्॥ ९

भवप्रसादादागत्य लोकपालत्वमुत्तमम्।
पितृणामाधिपत्यं तु शापमोक्षं तथैव च॥ १०

लब्धवान् देवदेवस्य प्रभावाच्छूलपाणिनः।
असहन्ती पुरा भानोस्तेजोमयमनिन्दिता॥ ११

रूपं त्वाष्ट्री स्वदेहात्तु छायाख्यां सा त्वकल्पयत्।
वडवारूपमास्थाय तपस्तेपे तु सुव्रता॥ १२

कालात्प्रयत्नतो ज्ञात्वा छायां छायापतिः प्रभुः।
वडवामगमत्संज्ञामश्वरूपेण भास्करः॥ १३

वडवा च तदा त्वाष्ट्री संज्ञा तस्माद्दिवाकरात्।
सुषुवे चाश्विनौ देवौ देवानां तु भिषग्वरौ॥ १४

लिखितो भास्करः पश्चात्संज्ञा पित्रा महात्मना।
विष्णोश्चक्रं तु यद् घोरं मण्डलाद्भास्करस्य तु॥ १५

आप लोगोंको बताता हूँ। त्वष्टाकी पुत्री संज्ञाने सूर्यसे श्रेष्ठ मनुको उत्पन्न किया। राज्ञीने यम, यमुना तथा रेवतको जन्म दिया। प्रभाने सूर्यसे प्रभातको जन्म दिया। संज्ञाने ही छायाको अपने स्थानपर नियोजित किया॥ २—४॥

हे द्विजो! छायाने उन सूर्यसे सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टिको यथाक्रम जन्म दिया। छाया अपने पुत्र सावर्णि मनुसे अधिक स्नेह करती थी। पूर्व मनु (वैवस्वत मनु) तो इसे सहन कर गये, पर क्रोधसे विक्षुब्ध यम इसे सहन न कर सका और उसने क्रोधसे [अपना] दाहिना पैर उठाकर छायापर प्रहार किया। [पैरसे] यमके द्वारा मारे जानेपर वह छाया दुःखित हुई॥ ५—७॥

तब छायाके शापसे यमका वह सुन्दर पैर खराब हो गया, वह मवाद तथा रक्तसे भर गया और कीड़ोंके समूहसे युक्त हो गया। तदनन्तर वह [यम] गोकर्णमें रहकर एक फलक (पटरे)-पर बैठकर [केवल] वायु पीता हुआ दस हजार वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना करता रहा। शिवकी कृपासे श्रेष्ठ लोकपालत्व तथा पितरोंका स्वामित्व प्राप्त करके उसने देवदेव शूल-पाणि (शिव)-के प्रभावसे शापसे मुक्ति प्राप्त की॥ ८—१०$^{१}/_{२}$॥

पूर्वकालमें सूर्यके तेजोमय रूपको सहन न करती हुई त्वष्टाकी शुभ कन्या संज्ञाने अपने शरीरसे [दूसरी] छाया नामक स्त्रीकी रचना की और वह सुव्रता स्वयं वडवा (घोड़ी)-का रूप धारणकर तप करने लगी। कुछ समयके बाद प्रयत्नपूर्वक छायाको संज्ञाकी प्रतिकृति जानकर छायापति प्रभु सूर्यने घोड़ेका रूप धारणकर उस वडवारूपधारिणी संज्ञाके साथ रमण किया। तब घोड़ीके रूपवाली त्वष्टापुत्री संज्ञाने उन सूर्यसे देवस्वरूप दोनों अश्विनीकुमारोंको जन्म दिया; वे देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य थे॥ ११—१४॥

उसके बाद महान् आत्मावाले संज्ञापिता [त्वष्टा]-ने सूर्यको खरादा। भगवान् त्वष्टाने रुद्रकी कृपासे सूर्यके मण्डलसे विष्णुके चक्रका निर्माण किया, जो

निर्ममे भगवांस्त्वष्टा प्रधानं दिव्यमायुधम्।
रुद्रप्रसादाच्च शुभं सुदर्शनमिति स्मृतम्॥ १६

लब्धवान् भगवांश्चक्रं कृष्णः कालाग्निसन्निभम्।
मनोस्तु प्रथमस्यासन्नव पुत्रास्तु तत्समाः॥ १७

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्णुः शर्यातिरेव च।
नरिष्यन्तश्च वै धीमान् नाभागोऽरिष्ट एव च॥ १८

करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः।
इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च पुंस्त्वं प्राप च या पुरा॥ १९

सुद्युम्न इति विख्याता पुंस्त्वं प्राप्ता त्विला पुरा।
मित्रावरुणयोस्त्वत्र प्रसादान्मुनिपुङ्गवाः॥ २०

पुनः शरवणं प्राप्य स्त्रीत्वं प्राप्तो भवाज्ञया।
सुद्युम्नो मानवः श्रीमान् सोमवंशप्रवृद्धये॥ २१

इक्ष्वाकोरश्वमेधेन इला किम्पुरुषोऽभवत्।
इला किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते॥ २२

मासमेकं पुमान् वीरः स्त्रीत्वं मासमभूत्पुनः।
इला बुधस्य भवनं सोमपुत्रस्य चाश्रिता॥ २३

बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनाय प्रवर्तिता।
सोमपुत्राद् बुधाच्चापि ऐलो जज्ञे पुरूरवाः॥ २४

सोमवंशाग्रजो धीमान् भवभक्तः प्रतापवान्।
इक्ष्वाकोर्वंशविस्तारं पश्चाद्वक्ष्ये तपोधनाः॥ २५

पुत्रत्रयमभूत्तस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च॥ २६

उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमम्।
गया गयस्य चाख्याता पुरी परमशोभना॥ २७

सुराणां संस्थितिर्यस्यां पितॄणां च सदा स्थितिः।
इक्ष्वाकुज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥ २८

कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैव भागमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनात्त्वासीत्प्रतिष्ठाने महाद्युतिः॥ २९

प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य महात्मनः।
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥ ३०

बड़ा भयानक था; वह उनका प्रधान तथा दिव्य अस्त्र था, जिसे शुभ सुदर्शन [चक्र] कहा गया है। भगवान् कृष्णने कालाग्निसदृश उस चक्रको प्राप्त किया था॥ १५-१६१/२॥

प्रथम मनु [वैवस्वत]-के नौ पुत्र हुए, जो उन्हींके समान थे। इक्ष्वाकु, नभग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, बुद्धिमान् नाभाग, अरिष्ट, करूष तथा पृषध्र—ये नौ मनुपुत्र कहे गये हैं। उनकी ज्येष्ठ तथा वरिष्ठ पुत्री इला जो पूर्वकालमें पुरुष हो गयी थी, वह सुद्युम्न नामसे प्रसिद्ध हुई। हे श्रेष्ठ मुनियो! मित्र तथा वरुणकी कृपासे वह इला पूर्वकालमें पुरुषत्वको प्राप्त हुई थी; पुनः शिवकी आज्ञासे शरवण [नामक वन]-को प्राप्तकर सोमवंशकी वृद्धिके लिये वे मनुपुत्र श्रीमान् सुद्युम्न स्त्रीत्वको प्राप्त हुए। इक्ष्वाकुके अश्वमेधके समय वह इला किंपुरुष (पुरुष रूपवाली) हो गयी थी। वह इला किंपुरुष हो जानेपर 'सुद्युम्न'—इस नामसे कही जाती थी॥ १७—२२॥

वह इला एक महीनेतक वीर पुरुषके रूपमें और पुनः एक महीनेतक स्त्रीके रूपमें रहती थी। वह चन्द्रमाके पुत्र बुधके भवनमें रहने लगी। अवसर पाकर वह बुधके साथ मैथुनके लिये तत्पर हुई। तब सोमपुत्र बुध और इलासे पुरूरवा उत्पन्न हुए; जो सोमवंशमें प्रथम उत्पन्न होने वाले, बुद्धिमान्, शिवभक्त तथा प्रतापी थे। हे तपोधनो! अब इसके बाद मैं इक्ष्वाकुवंशके विस्तारका वर्णन करूँगा॥ २३—२५॥

हे उत्तम द्विजो! उन सुद्युम्नके तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय तथा विनताश्व। उत्कलका उत्कल [नामक] राष्ट्र था और विनताश्वका पश्चिमी प्रदेश था। गयकी गया [नामक] परम सुन्दर पुरी कही गयी है, जिसमें देवताओं तथा पितरोंकी स्थिति सर्वदा रहती है॥ २६-२७१/२॥

इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रने मध्यदेश प्राप्त किया। कन्या प्रकृतिवाले होनेके कारण महातेजस्वी सुद्युम्न [अपना] भाग नहीं पा सके; किंतु वसिष्ठके कहनेसे प्रतिष्ठानपुरमें धर्मराज महात्मा सुद्युम्नकी प्रतिष्ठा स्थापित

मानवेयो महाभागः स्त्रीपुंसोर्लक्षणान्वितः।
इक्ष्वाकोरभवद्वीरो विकुक्षिर्धर्मवित्तमः॥ ३१

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः।
अभूज्ज्येष्ठः ककुत्स्थश्च ककुत्स्थात्तु सुयोधनः॥ ३२

ततः पृथुर्मुनिश्रेष्ठा विश्वकः पार्थिवस्तथा।
विश्वकस्यार्द्रको धीमान् युवनाश्वस्तु तत्सुतः॥ ३३

शाबस्तिश्च महातेजा वंशकस्तु ततोऽभवत्।
निर्मिता येन शाबस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः॥ ३४

वंशाच्च बृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्तु तत्सुतः।
धुन्धुमारत्वमापन्नो धुन्धुं हत्वा महाबलम्॥ ३५

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः।
दृढाश्वश्चैव चण्डाश्वः कपिलाश्वश्च ते स्मृताः॥ ३६

दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य वै सुतः।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु संहताश्वस्तु तत्सुतः॥ ३७

कृशाश्वोऽथ रणाश्वश्च संहताश्वात्मजावुभौ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता तस्य वै सुतः॥ ३८

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्।
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः॥ ३९

हुई और स्त्री-पुरुषके लक्षणोंसे युक्त, महायशस्वी तथा महाभाग्यशाली मनुपुत्र [सुद्युम्न]-ने राज्य प्राप्त करके उसे पुरूरवाको दे दिया॥ २८—३०$^{1}/_{2}$॥

सौ पुत्रोंवाले इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि थे; वे महान् धर्मज्ञ थे। उनके पचास पुत्र हुए; उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़े थे। ककुत्स्थसे सुयोधन उत्पन्न हुए। हे श्रेष्ठ मुनियो! उन [सुयोधन]-से पृथु और पृथुसे विश्वक उत्पन्न हुए। विश्वकके पुत्र बुद्धिमान् आर्द्रक थे और उनके पुत्र युवनाश्व थे। हे श्रेष्ठ द्विजो! उनके पुत्र महातेजस्वी शाबस्ति थे, जिन्होंने गौड़देशमें शाबस्ती नगरीका निर्माण किया। उनसे वंशक [नामक पुत्र] उत्पन्न हुए और वंश [वंशक]-से बृहदश्व हुए। कुवलाश्व उन [बृहदश्वके] पुत्र थे; उन्होंने महाबली

'धुन्धु' को मारकर धुन्धुमार नाम प्राप्त किया था। धुन्धुमारके तीन पुत्र हुए, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे; वे दृढ़ाश्व, चण्डाश्व तथा कपिलाश्व [नामवाले] कहे गये हैं। दृढ़ाश्वके पुत्र प्रमोद और उनके पुत्र हर्यश्व थे। हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ और उन [निकुम्भ]-के पुत्र संहताश्व थे। संहताश्वके कृशाश्व तथा रणाश्व [नामक] दो पुत्र थे। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व थे और उन [युवनाश्व]-के पुत्र मान्धाता थे। मान्धाताके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, पराक्रमी अम्बरीष तथा पुण्यात्मा मुचुकुन्द;

अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः।
हरितो युवनाश्वस्य हरितास्तु यतः स्मृताः॥ ४०

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः।
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसद्दस्युर्महायशाः॥ ४१

नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तस्य चात्मजः।
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धा यतः स्मृताः॥ ४२

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेताः समाश्रिताः।
सम्भूतिरपरं पुत्रमनरण्यमजीजनत्॥ ४३

रावणेन हतो योऽसौ त्रैलोक्यविजये द्विजाः।
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तस्य चात्मजः॥ ४४

हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमना नृपः।
तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा भवभावितः॥ ४५

प्रसादाद् ब्रह्मसूनोर्वै तण्डिनः प्राप्य शिष्यताम्।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य तदाज्ञया॥ ४६

गणैश्वर्यमनुप्राप्तो भवभक्तः प्रतापवान्।
कथं चैवाश्वमेधं वै करोमीति विचिन्तयन्॥ ४७

धनहीनश्च धर्मात्मा दृष्टवान् ब्रह्मणः सुतम्।
तण्डिसंज्ञं द्विजं तस्माल्लब्धवान् द्विजसत्तमाः॥ ४८

नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य ब्रह्मणा कथितं पुरा।
तेन नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वा तण्डिर्महेश्वरम्॥ ४९

लब्धवान् गाणपत्यं च ब्रह्मयोनिर्द्विजोत्तमः।
ततस्तस्मान्नृपो लब्ध्वा तण्डिना कथितं पुरा॥ ५०

नाम्नां सहस्रं जप्त्वा वै गाणपत्यमवाप्तवान्।

ऋषय ऊचुः

नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य तण्डिना ब्रह्मयोनिना॥ ५१

कथितं सर्ववेदार्थसञ्चयं सूत सुव्रत।
नाम्नां सहस्रं विप्राणां वक्तुमर्हसि शोभनम्॥ ५२

सूत उवाच

सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां शृणुत सुव्रताः॥ ५३

ये तीनों लोकोंमें विख्यात थे। अम्बरीषके पुत्र युवनाश्व द्वितीय बताये गये हैं। युवनाश्वके पुत्र हरित थे, जिनसे उत्पन्न सभी पुत्र 'हरित' [नामवाले] कहे गये हैं। ये सब अंगिराके वंशके ब्राह्मण थे, किन्तु क्षत्रिय-स्वभाववाले थे॥ ३१—४०१/२॥

पुरुकुत्सके पुत्र महायशस्वी त्रसद्दस्यु थे। उनके पुत्र सम्भूति थे, जो नर्मदाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उन [सम्भूति]-के पुत्र विष्णुवृद्ध थे। विष्णुवृद्धके सभी वंशज विष्णुवृद्ध [नामवाले] कहे गये हैं। ये सब भी अंगिराके वंशमें [ब्राह्मण] थे, किंतु क्षत्रिय-स्वभावसे युक्त थे। हे द्विजो! सम्भूतिने अनरण्य नामक दूसरे पुत्रको उत्पन्न किया, जो त्रैलोक्य-विजयके समय रावणके द्वारा मार दिये गये। अनरण्यके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र हर्यश्व थे। हर्यश्वसे [उनकी पत्नी] दृषद्वतीके गर्भसे राजा 'वसुमना' उत्पन्न हुए। उनके त्रिधन्वा नामक पुत्र हुए; वे शिवभक्त थे। उन प्रतापी तथा शिवभक्तने ब्रह्माके पुत्र तण्डीकी कृपासे उनकी शिष्यता प्राप्त करके और उनकी आज्ञासे हजार अश्वमेधका फल प्राप्तकर गणोंके स्वामीका पद ग्रहण कर लिया था। 'मैं अश्वमेध कैसे करूँ'—[किसी समय] ऐसा सोचते हुए उन धनहीन धर्मात्मा [त्रिधन्वा]-ने ब्रह्माके पुत्र तण्डी नामक ब्राह्मणको देखा और हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! रुद्रसहस्रनामको उनसे प्राप्त कर लिया। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने [तण्डीको] रुद्रसहस्रनाम बताया था; उसी सहस्रनामसे महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्माजीके पुत्र द्विजश्रेष्ठ तण्डीने गणाधिप पद प्राप्त किया था। तदनन्तर पूर्वकालमें तण्डीके द्वारा बताये गये रुद्र सहस्रनामको ग्रहण करके राजा [त्रिधन्वा]-ने भी गणाधिप पद प्राप्त किया॥ ४१—५०१/२॥

ऋषिगण बोले—ब्रह्माके पुत्र तण्डीके द्वारा कहा गया रुद्रसहस्रनाम समग्र वेदार्थोंसे परिपूर्ण है; हे सूतजी! हे सुव्रत! उस उत्तम सहस्रनामको कृपा करके [हम] विप्रोंको बताइये॥ ५१-५२॥

सूतजी बोले—हे सुव्रतो! हे श्रेष्ठ मुनियो! सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप तथा अमित तेजवाले रुद्रके एक

यज्जप्त्वा तु मुनिश्रेष्ठा गाणपत्यमवाप्तवान्।
ॐस्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भानुः प्रवरो वरदो वरः॥ ५४
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः।
जटी दण्डी शिखण्डी च सर्वगः सर्वभावनः॥ ५५
हरिश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः स्मृतः।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च शान्तात्मा शाश्वतो ध्रुवः॥ ५६
श्मशानवासी भगवान् खचरो गोचरोऽर्दनः।
अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतधारणः॥ ५७
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नः सर्वलोकः प्रजापतिः।
महारूपो महाकायः सर्वरूपो महायशाः॥ ५८
महात्मा सर्वभूतश्च विरूपो वामनो नरः।
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादोऽभयदो विभुः॥ ५९
पवित्रश्च महांश्चैव नियतो नियताश्रयः।
स्वयम्भूः सर्वकर्मा च आदिरादिकरो निधिः॥ ६०
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः।
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्मतः॥ ६१
राजा राज्योदयः कर्ता मृगबाणार्पणो घनः।
महातपा दीर्घतपा अदृश्यो धनसाधकः॥ ६२
संवत्सरः कृतो मन्त्रः प्राणायामः परन्तपः।
योगी योगो महाबीजो महारेता महाबलः॥ ६३
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो वृषवाहनः।
दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः॥ ६४
विश्वरूपः स्वयंश्रेष्ठो बलवीरो बलाग्रणीः।
गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम्य एव च॥ ६५
मन्त्रवित्परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः।
कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान्॥ ६६
शरी शतघ्नी खड्गी च पट्टिशी चायुधी महान्।
अजश्च मृगरूपश्च तेजस्तेजस्करो विधिः॥ ६७
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा।
दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च॥ ६८
शृगालरूपः सर्वार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः।
सिंहशार्दूलरूपश्च गन्धकारी कपर्द्यपि॥ ६९
ऊर्ध्वरेतोर्ध्वलिङ्गी च ऊर्ध्वशायी नभस्तलः।
त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेना पतिर्विभुः॥ ७०
अहोरात्रं च नक्तं च तिग्ममन्युः सुवर्चसः।
गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः॥ ७१
सिंहशार्दूलरूपाणामार्द्रचर्माम्बरन्धरः।
कालयोगी महानादः सर्वावासश्चतुष्पथः॥ ७२

हजार आठ नामोंवाले स्तोत्रको सुनिये, जिसका जप करके तण्डीने गणाधिप पद प्राप्त किया था॥ ५३½॥

'ॐ स्थिर, स्थाणु, प्रभु, भानु, प्रवर, वरद, वर, सर्वात्मा, सर्वविख्यात, सर्व, सर्वकर, भव, जटी, दण्डी, शिखण्डी, सर्वग, सर्वभावन, हरि, हरिणाक्ष, सर्वभूतहर, स्मृत, प्रवृत्ति, निवृत्ति, शान्तात्मा, शाश्वत, ध्रुव, श्मशानवासी, भगवान्, खचर, गोचर, अर्दन, अभिवाद्य, महाकर्मा, तपस्वी, भूतधारण, उन्मत्तवेष, प्रच्छन्न, सर्वलोक, प्रजापति, महारूप, महाकाय, सर्वरूप, महायश॥ ५४—५८॥

महात्मा, सर्वभूत, विरूप, वामन, नर, लोकपाल, अन्तर्हितात्मा, प्रसाद, अभयद, विभु, पवित्र, महान्, नियत, नियताश्रय, स्वयम्भू, सर्वकर्मा, आदि, आदिकर, निधि, सहस्राक्ष, विशालाक्ष, सोम, नक्षत्रसाधक, चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, ग्रह (मंगल), ग्रहपति (बृहस्पति), मत (बुध), राजा (शुक्र), राज्योदय (राहु), कर्ता, मृगबाणार्पण, घन, महातप, दीर्घतप, अदृश्य, धनसाधक॥ ५९—६२॥

संवत्सर, कृत, मन्त्र, प्राणायाम, परन्तप, योगी, योग, महाबीज, महारेता, महाबल, सुवर्णरेता, सर्वज्ञ, सुबीज, वृषवाहन, दशबाहु, अनिमिष, नीलकण्ठ, उमापति, विश्वरूप, स्वयंश्रेष्ठ, बलवीर, बलाग्रणी, गणकर्ता, गणपति, दिग्वास, काम्य, मन्त्रवित्, परम, मन्त्र, सर्व-भावकर, हर, कमण्डलुधर, धन्वी, बाणहस्त, कपालवान्॥ ६३—६६॥

शरी, शतघ्नी, खड्गी, पट्टिशी, आयुधी, महान्, अज, मृगरूप, तेज, तेजस्कर, विधि, उष्णीषी, सुवक्त्र, उदग्र, विनत, दीर्घ, हरिकेश, सुतीर्थ, कृष्ण, शृगालरूप, सर्वार्थ, मुण्ड, सर्वशुभंकर, सिंहशार्दूलरूप, गन्धकारी, कपर्दी, ऊर्ध्वरेता, ऊर्ध्वलिङ्गी, ऊर्ध्वशायी, नभ, तल, त्रिजटी, चीरवासा, रुद्र, सेना, पति, विभु, अहोरात्र, नक्त, तिग्ममन्यु, सुवर्चस, गजहा, दैत्यहा, काल, लोकधाता, गुणाकर॥ ६७—७१॥

सिंहशार्दूलरूपाणामार्द्रचर्मांबरंधर, कालयोगी, महा-

निशाचरः प्रेतचारी सर्वदर्शी महेश्वरः।
बहु भूतो बहुधनः सर्वसारोऽमृतेश्वरः॥ ७३
नृत्यप्रियो नित्यनृत्यो नर्तनः सर्वसाधकः।
सकार्मुको महाबाहुर्महाघोरो महातपाः॥ ७४
महाशरो महापाशो नित्यो गिरिचरोऽमतः।
सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यनिन्दितः॥ ७५
अमर्षणो मर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशनः।
दक्षहा परिचारी च प्रहसो मध्यमस्तथा॥ ७६
तेजोऽपहारी बलवान् विदितोऽभ्युदितोऽबहुः।
गम्भीरघोषो योगात्मा यज्ञहा कामनाशनः॥ ७७
गम्भीररोषो गम्भीरो गम्भीरबलवाहनः।
न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो विश्वकर्मा च विश्वभुक्॥ ७८
तीक्ष्णोपायश्च हर्यश्वः सहायः कर्म कालवित्।
विष्णुः प्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः॥ ७९
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः।
उग्रतेजा महातेजा जयो विजयकालवित्॥ ८०
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सन्धिर्विग्रह एव च।
खड्गी शङ्खी जटी ज्वाली खचरो द्युचरो बली॥ ८१
वैणवी पणवी कालः कालकण्ठः कटङ्कटः।
नक्षत्रविग्रहो भावो निभावः सर्वतोमुखः॥ ८२
विमोचनस्तु शरणो हिरण्यकवचोद्भवः।
मेखला कृतिरूपश्च जलाचारः स्तुतस्तथा॥ ८३
वीणी च पणवी ताली नाली कलिकटुस्तथा।
सर्वतूर्यनिनादी च सर्वव्याप्यपरिग्रहः॥ ८४
व्यालरूपी बिलावासी गुहावासी तरङ्गवित्।
वृक्षः श्रीमालकर्मा च सर्वबन्धविमोचनः॥ ८५
बन्धनस्तु सुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः।
सखा प्रवासो दुर्वापः सर्वसाधुनिषेवितः॥ ८६
प्रस्कन्दोऽप्यविभावश्च तुल्यो यज्ञविभागवित्।
सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवो मतः॥ ८७
हैमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः।
आकाशो निर्विरूपश्च विवासा उरगः खगः॥ ८८
भिक्षुश्च भिक्षुरूपी च रौद्ररूपः सुरूपवान्।
वसुरेताः सुवर्चस्वी वसुवेगो महाबलः॥ ८९
मनो वेगो निशाचारः सर्वलोकशुभप्रदः।
सर्वावासी त्रयीवासी उपदेशकरो धरः॥ ९०
मुनिरात्मा मुनिर्लोकः सभाग्यश्च सहस्रभुक्।
पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो निशाकरः॥ ९१

नाद, सर्वावास, चतुष्पथ, निशाचर, प्रेतचारी, सर्वदर्शी, महेश्वर, बहु, भूत, बहुधन, सर्वसार, अमृतेश्वर, नृत्यप्रिय, नित्यनृत्य, नर्तन, सर्वसाधक, सकार्मुक, महाबाहु, महाघोर, महातप, महाशर, महापाश, नित्य, गिरिचर, अमत, सहस्रहस्त, विजय, व्यवसाय, अनिन्दित, अमर्षण, मर्षणात्मा, यज्ञहा, कामनाशन, दक्षहा, परिचारी, प्रहस, मध्यम॥ ७२—७६॥

तेज, अपहारी, बलवान्, विदित, अभ्युदित, अबहु, गम्भीरघोष, योगात्मा, यज्ञहा, कामना, अशन, गम्भीररोष, गम्भीर, गम्भीरबलवाहन, न्यग्रोधरूप, न्यग्रोध, विश्वकर्मा, विश्वभुक्, तीक्ष्णोपाय, हर्यश्व, सहाय, कर्म, कालवित्, विष्णु, प्रसादित, यज्ञ, समुद्र, वड़वामुख, हुताशनसहाय, प्रशान्तात्मा, हुताशन, उग्रतेज, महातेज, जय, विजय-कालवित्॥ ७७—८०॥

ज्योतिषामयन, सिद्धि, सन्धि, विग्रह, खड्गी, शंखी, जटी, ज्वाली, खचर, द्युचर, बली, वैणवी, पणवी, काल, कालकण्ठ, कटंकट, नक्षत्रविग्रह, भाव, निभाव, सर्वतोमुख, विमोचन, शरण, हिरण्यकवचोद्भव, मेखला, कृतिरूप, जलाचार, स्तुत, वीणी, पणवी, ताली, नाली कलिकटु, सर्वतूर्यनिनादी, सर्वव्याप्य-परिग्रह॥ ८१—८४॥

व्यालरूपी, बिलावासी, गुहावासी, तरंगवित्, वृक्ष, श्रीमालकर्मा, सर्वबन्धविमोचन, बन्धन, सुरेन्द्राणां युधि-शत्रुविनाशन, सखा, प्रवास, दुर्वाप, सर्वसाधु-निषेवित, प्रस्कन्द, अविभाव, तुल्य, यज्ञविभागवित्, सर्ववास, सर्वचारी, दुर्वासा, वासव, मत, हैम, हेमकर, यज्ञ, सर्वधारी, धरोत्तम, आकाश, निर्विरूप, विवास, उरग, खग॥ ८५—८८॥

भिक्षु, भिक्षुरूपी, रौद्ररूप, सुरूपवान्, वसुरेता, सुवर्चस्वी, वसुवेग, महाबल, मन, वेग, निशाचार, सर्वलोकशुभप्रद, सर्वावासी, त्रयीवासी, उपदेशकर, धर, मुनि, आत्मा, मुनि, लोक, सभाग्य, सहस्रभुक्, पक्षी,

समीरो दमनाकारो ह्यर्थो ह्यर्थकरो वशः।
वासुदेवश्च देवश्च वामदेवश्च वामनः॥ ९२
सिद्धियोगापहारी च सिद्धः सर्वार्थसाधकः।
अक्षुण्णः क्षुण्णरूपश्च वृषणो मृदुरव्ययः॥ ९३
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवां पतिः।
चक्रहस्तस्तु विष्टम्भी मूलस्तम्भन एव च॥ ९४
ऋतुर्ऋतुकरस्तालो मधुर्मधुकरो वरः।
वानस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः॥ ९५
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी सुचारवित्।
ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी ह्यनेकदृक्॥ ९६
निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो हरः।
नन्दीश्वरः सुनन्दी च नन्दनो विषमर्दनः॥ ९७
भगहारी नियन्ता च कालो लोकपितामहः।
चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च॥ ९८
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षः कालाध्यक्षो युगावहः।
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः॥ ९९
इतिहासश्च कल्पश्च दमनो जगदीश्वरः।
दम्भो दम्भकरो दाता वंशो वंशकरः कलिः॥ १००
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यधोक्षजः।
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवाञ्छुक्र एव च॥ १०१
नित्यो ह्यनीशः शुद्धात्मा शुद्धो मानो गतिर्हविः।
प्रासादस्तु बलो दर्पो दर्पणो हव्य इन्द्रजित्॥ १०२
वेदकारः सूत्रकारो विद्वांश्च परमर्दनः।
महामेघनिवासी च महाघोरो वशी करः॥ १०३
अग्निज्वालो महाज्वालः परिधूम्रावृतो रविः।
धिषणः शङ्करोऽनित्यो वर्चस्वी धूम्रलोचनः॥ १०४
नीलस्तथाङ्गलुप्तश्च शोभनो नरविग्रहः।
स्वस्ति स्वस्तिस्वभावश्च भोगी भोगकरो लघुः॥ १०५
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भः प्रतापवान्।
कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सर्ववर्णिकः॥ १०६
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः।
महामूर्धा महामात्रो महामित्रो नगालयः॥ १०७
महास्कन्धो महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः।
महानासो महाकण्ठो महाग्रीवः श्मशानवान्॥ १०८
महाबलो महातेजा ह्यन्तरात्मा मृगालयः।
लम्बितोष्ठश्च निष्ठश्च महामायः पयोनिधिः॥ १०९
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः।
महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः॥ ११०

पक्षरूप, अतिदीप्त, निशाकर, समीर, दमनाकार, अर्थ, अर्थकर, वश, वासुदेव, देव, वामदेव, वामन॥ ८९—९२॥

सिद्धियोगापहारी, सिद्ध, सर्वार्थसाधक, अक्षुण्ण, क्षुण्णरूप, वृषण, मृदु, अव्यय, महासेन, विशाख, षष्टिभाग, गवांपति, चक्रहस्त, विष्टम्भी, मूलस्तम्भन, ऋतु, ऋतुकर, ताल, मधु, मधुकर, वर, वानस्पत्य, वाजसन, नित्य, आश्रमपूजित, ब्रह्मचारी, लोकचारी, सर्वचारी, सुचारवित्, ईशान, ईश्वर, काल, निशाचारी, अनेकदृक्॥ ९३—९६॥

निमित्तस्थ, निमित्त, नन्दि, नन्दिकर, हर, नन्दीश्वर, सुनन्दी, नन्दन, विषमर्दन, भगहारी, नियन्ता, काल, लोकपितामह, चतुर्मुख, महालिङ्ग, चारुलिङ्ग, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, कालाध्यक्ष, युगावह, बीजाध्यक्ष, बीजकर्ता, अध्यात्म, अनुगत, बल, इतिहास, कल्प, दमन, जगदीश्वर, दम्भ, दम्भकर, दाता, वंश, वंशकर, कलि॥ ९७—१००॥

लोककर्ता, पशुपति, महाकर्ता, अधोक्षज, अक्षर, परम, ब्रह्म, बलवान्, शुक्र, नित्य, अनीश, शुद्धात्मा, शुद्ध, मान, गति, हवि, प्रासाद, बल, दर्प, दर्पण, हव्य, इन्द्रजित्, वेदकार, सूत्रकार, विद्वान्, परमर्दन, महामेघ-निवासी, महाघोर, वशी, कर, अग्निज्वाल, महाज्वाल, परिधूम्रावृत, रवि, धिषण, शंकर, अनित्य, वर्चस्वी, धूम्रलोचन॥ १०१—१०४॥

नील, अंगलुप्त, शोभन, नरविग्रह, स्वस्ति, स्वस्तिस्वभाव, भोगी, भोगकर, लघु, उत्संग, महांग, महागर्भ, प्रतापवान्, कृष्णवर्ण, सुवर्ण, इन्द्रिय, सर्ववर्णिक, महापाद, महाहस्त, महाकाय, महायश, महामूर्धा, महामात्र, महामित्र, नगालय, महास्कन्ध, महाकर्ण, महोष्ठ, महाहनु, महानास, महाकण्ठ, महाग्रीव, श्मशानवान्॥ १०५—१०८॥

महाबल, महातेज, अन्तरात्मा, मृगालय, लम्बितोष्ठ, निष्ठ, महामाय, पयोनिधि, महादन्त, महाद्रंष्ट्र महाजिह्व, महामुख, महानख, महारोम, महाकेश, महाजट,

असपत्नः प्रसादश्च प्रत्ययो गीतसाधकः।
प्रस्वेदनोऽस्वहेनश्च आदिकश्च महामुनिः॥ १११
वृषको वृषकेतुश्च अनलो वायुवाहनः।
मण्डली मेरुवासश्च देववाहन एव च॥ ११२
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रोर्जितेक्षणः।
यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशौजास्तथैव च॥ ११३
अमोघार्थप्रसादश्च अन्तर्भाव्यः सुदर्शनः।
उपहारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनस्थितः॥ ११४
नाभिर्नन्दिकरो हर्म्यः पुष्करः स्थपतिः स्थितः।
सर्वशास्त्रो धनश्चाद्यो यज्ञो यज्वा समाहितः॥ ११५
नगो नीलः कविः कालो मकरः कालपूजितः।
सगणो गणकारश्च भूतभावनसारथिः॥ ११६
भस्मशायी भस्मगोप्ता भस्मभूततनुर्गणः।
आगमश्च विलोपश्च महात्मा सर्वपूजितः॥ ११७
शुक्लः स्त्रीरूपसम्पन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः।
आश्रमस्थः कपोतस्थो विश्वकर्मा पतिर्विराट्॥ ११८
विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चितः।
कपिलः कलशः स्थूल आयुधश्चैव रोमशः॥ ११९
गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यो ह्यविज्ञेयः सुशारदः।
परश्वधायुधो देवो ह्यर्थकारी सुबान्धवः॥ १२०
तुम्बवीणो महाकोप ऊर्ध्वरेता जलेशयः।
उग्रो वंशकरो वंशो वंशवादी ह्यनिन्दितः॥ १२१
सर्वाङ्गरूपी मायावी सुहृदो ह्यनिलो बलः।
बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः॥ १२२
राक्षसघ्नोऽथ कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः।
लम्बितो लम्बितोष्ठश्च लम्बहस्तो वरप्रदः॥ १२३
बाहुस्त्वनिन्दितः सर्वः शङ्करोऽथाप्यकोपनः।
अमरेशो महाघोरो विश्वदेवः सुरारिहा॥ १२४
अहिर्बुध्न्यो निर्ऋतिश्च चेकितानो हली तथा।
अजैकपाच्च कापाली शं कुमारो महागिरिः॥ १२५
धन्वन्तरिर्धूमकेतुः सूर्यो वैश्रवणस्तथा।
धाता विष्णुश्च शक्रश्च मित्रस्त्वष्टा धरो ध्रुवः॥ १२६
प्रभासः पर्वतो वायुरर्यमा सविता रविः।
धृतिश्चैव विधाता च मान्धाता भूतभावनः॥ १२७
नीरस्तीर्थश्च भीमश्च सर्वकर्मा गुणोद्वहः।
पद्मगर्भो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रो नभोऽनघः॥ १२८
बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यकृत्तमः।
क्रूरकर्ता क्रूरवासी तनुरात्मा महौषधः॥ १२९

असपत्न, प्रसाद, प्रत्यय, गीतसाधक, प्रस्वेदन, अस्वहेन, आदिक, महामुनि, वृषक, वृषकेतु, अनल, वायुवाहन, मण्डली, मेरुवास, देववाहन॥ १०९—११२॥

अथर्वशीर्ष, सामास्य, ऋक्सहस्रोर्जितेक्षण, यजुःपादभुज, गुह्य, प्रकाशौज, अमोघार्थप्रसाद, अन्तर्भाव्य, सुदर्शन, उपहार, प्रिय, सर्व, कनक, कांचनस्थित, नाभि, नन्दिकर, हर्म्य, पुष्कर, स्थपति, स्थित, सर्वशास्त्र, धन, आद्य, यज्ञ, यज्वा, समाहित, नग, नील, कवि, काल, मकर, कालपूजित, सगण, गणकार, भूतभावन-सारथि॥ ११३—११६॥

भस्मशायी, भस्मगोप्ता, भस्मभूततनु, गण, आगम, विलोप, महात्मा, सर्वपूजित, शुक्ल, स्त्रीरूपसम्पन्न, शुचि, भूतनिषेवित, आश्रमस्थ, कपोतस्थ, विश्वकर्मा, पति, विराट्, विशालशाख, ताम्रोष्ठ, अम्बुजाल, सुनिश्चित, कपिल, कलश, स्थूल, आयुध, रोमश, गन्धर्व, अदिति, तार्क्ष्य, अविज्ञेय, सुशारद, परश्वधायुध, देव, अर्थकारी, सुबान्धव॥ ११७—१२०॥

तुम्बवीण, महाकोप, ऊर्ध्वरेता, जलेशय, उग्र, वंशकर, वंश, वंशवादी, अनिन्दित, सर्वांगरूपी, मायावी, सुहृद, अनिल, बल, बन्धन, बन्धकर्ता, सुबन्धन-विमोचन, राक्षसघ्न, कामारि, महादंष्ट्र, महायुध, लम्बित, लम्बितोष्ठ, लम्बहस्त, वरप्रद, बाहु, अनिन्दित, सर्व, शंकर, अकोपन, अमरेश, महाघोर, विश्वदेव, सुरारिहा॥ १२१—१२४॥

अहिर्बुध्न्य, निर्ऋति, चेकितान, हली, अजैकपात्, कापाली, शं, कुमार, महागिरि, धन्वन्तरि, धूमकेतु, सूर्य, वैश्रवण, धाता, विष्णु, शक्र, मित्र, त्वष्टा, धर, ध्रुव, प्रभास, पर्वत, वायु, अर्यमा, सविता, रवि, धृति, विधाता, मान्धाता, भूतभावन, नीर, तीर्थ, भीम, सर्वकर्मा, गुणोद्वह, पद्मगर्भ, महागर्भ, चन्द्रवक्त्र, नभ, अनघ॥ १२५—१२८॥

बलवान्, उपशान्त, पुराण, पुण्यकृत्, तम, क्रूरकर्ता,

सर्वाशयः सर्वचारी प्राणेशः प्राणिनां पतिः।
देवदेवः सुखोत्सिक्तः सदसत्सर्वरत्नवित्॥ १३०
कैलासस्थो गुहावासी हिमवद् गिरिसंश्रयः।
कुलहारी कुलाकर्ता बहुवित्तो बहुप्रजः॥ १३१
प्राणेशो बन्धकी वृक्षो नकुलश्चाद्रिकस्तथा।
ह्रस्वग्रीवो महाजानुरलोलश्च महौषधिः॥ १३२
सिद्धान्तकारी सिद्धार्थश्छन्दो व्याकरणोद्भवः।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहास्यः सिंहवाहनः॥ १३३
प्रभावात्मा जगत्कालः कालः कम्पी तरुस्तनुः।
सारङ्गो भूतचक्राङ्कः केतुमाली सुवेधकः॥ १३४
भूतालयो भूतपतिरहोरात्रो मलोऽमलः।
वसुभृत्सर्वभूतात्मा निश्चलः सुविदुर्बुधः॥ १३५
असुहृत्सर्वभूतानां निश्चलश्चलविद् बुधः।
अमोघः संयमो हृष्टो भोजनः प्राणधारणः॥ १३६
धृतिमान् मतिमांस्त्र्यक्षः सुकृतस्तु युधांपतिः।
गोपालो गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरः॥ १३७
हिरण्यबाहुश्च तथा गुहावासः प्रवेशनः।
महामना महाकामो चित्तकामो जितेन्द्रियः॥ १३८
गान्धारश्च सुरापश्च तापकर्मरतो हितः।
महाभूतो भूतवृतो ह्यप्सरो गणसेवितः॥ १३९
महाकेतुर्धराधाता नैकतानरतः स्वरः।
अवेदनीय आवेद्यः सर्वगश्च सुखावहः॥ १४०
तारणश्चरणो धाता परिधा परिपूजितः।
संयोगी वर्धनो वृद्धो गणिकोऽथ गणाधिपः॥ १४१
नित्यो धाता सहायश्च देवासुरपतिः पतिः।
युक्तश्च युक्तबाहुश्च सुदेवोऽपि सुपर्वणः॥ १४२
आषाढश्च सुषाढश्च स्कन्धदो हरितो हरः।
वपुरावर्तमानोऽन्यो वपुःश्रेष्ठो महावपुः॥ १४३
शिरो विमर्शनः सर्वलक्ष्यलक्षणभूषितः।
अक्षयो रथगीतश्च सर्वभोगी महाबलः॥ १४४
साम्नायोऽथ महाम्नायस्तीर्थदेवो महायशाः।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः सुभगो बहुकर्कशः॥ १४५
रत्नभूतोऽथ रत्नाङ्गो महार्णवनिपातवित्।
मूलं विशालो ह्यमृतं व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः॥ १४६
आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महातपाः।
महाकण्ठो महायोगी युगो युगकरो हरिः॥ १४७
युगरूपो महारूपो वहनो गहनो नगः।
न्यायो निर्वापणोऽपादः पण्डितो ह्यचलोपमः॥ १४८

क्रूरवासी, तनु, आत्मा, महौषध, सर्वाशय, सर्वचारी, प्राणेश, प्राणिनांपति, देवदेव, सुखोत्सिक्त, सत्, असत्, सर्वरत्नवित्, कैलासस्थ, गुहावासी, हिमवद्, गिरिसंश्रय, कुलहारी, कुलाकर्ता, बहुवित्त, बहुप्रज, प्राणेश, बन्धकी, वृक्ष, नकुल, अद्रिक, ह्रस्वग्रीव, महाजानु, अलोल, महौषधि॥ १२९—१३२॥

सिद्धान्तकारी, सिद्धार्थ, छन्द, व्याकरणोद्भव, सिंहनाद, सिंहदंष्ट्र, सिंहास्य, सिंहवाहन, प्रभावात्मा, जगत्काल, काल, कम्पी, तरु, तनु, सारंग, भूतचक्रांक, केतुमाली, सुवेधक, भूतालय, भूतपति, अहोरात्र, मल, अमल, वसुभृत्, सर्वभूतात्मा, निश्चल, सुविदु, बुध, सर्वभूतानामसुहृत्, निश्चल, चलविद्, बुध, अमोघ, संयम, हृष्ट, भोजन, प्राणधारण॥ १३३—१३६॥

धृतिमान्, मतिमान्, त्र्यक्ष, सुकृत, युधांपति, गोपाल, गोपति, ग्राम, गोचर्मवसन, हर, हिरण्यबाहु, गुहावास, प्रवेशन, महामना, महाकाम, चित्तकाम, जितेन्द्रिय, गान्धार, सुराप, तापकर्मरत, हित, महाभूत, भूतवृत, अप्सर, गणसेवित, महाकेतु, धराधाता, नैकतानरत, स्वर, अवेदनीय, आवेद्य, सर्वग, सुखावह॥ १३७—१४०॥

तारण, चरण, धाता, परिधा, परिपूजित, संयोगी, वर्धन, वृद्ध, गणिक, गणाधिप, नित्य, धाता, सहाय, देवासुरपति, पति, युक्त, युक्तबाहु, सुदेव, सुपर्वण, आषाढ़, सुषाढ़, स्कन्धद, हरित, हर, वपु, आवर्तमान, अन्य, वपुश्रेष्ठ, महावपु, शिर, विमर्शन, सर्वलक्ष्य-लक्षण-भूषित, अक्षय, रथगीत, सर्वभोगी, महाबल॥ १४१—१४४॥

साम्नाय, महाम्नाय, तीर्थदेव, महायश, निर्जीव, जीवन, मन्त्र, सुभग, बहुकर्कश, रत्नभूत, रत्नांग, महार्णवनिपातवित्, मूल, विशाल, अमृत, व्यक्ताव्यक्त, तपोनिधि, आरोहण, अधिरोह, शीलधारी, महातप, महाकण्ठ, महायोगी, युग, युगकर, हरि, युगरूप, महारूप, वहन, गहन, नग, न्याय, निर्वापण, अपाद, पण्डित, अचलोपम॥ १४५—१४८॥

बहुमालो महामालः शिपिविष्टः सुलोचनः।
विस्तारो लवणः कूपः कुसुमाङ्गः फलोदयः॥ १४९
ऋषभो वृषभो भङ्गो मणिबिम्बजटाधरः।
इन्दुर्विसर्गः सुमुखः शूरः सर्वायुधः सहः॥ १५०
निवेदनः सुधाजातः स्वर्गद्वारो महाधनुः।
गिरावासो विसर्गश्च सर्वलक्षणलक्षवित्॥ १५१
गन्धमाली च भगवाननन्तः सर्वलक्षणः।
सन्तानो बहुलो बाहुः सकलः सर्वपावनः॥ १५२
करस्थाली कपाली च ऊर्ध्वसंहननो युवा।
यन्त्रतन्त्रसुविख्यातो लोकः सर्वाश्रयो मृदुः॥ १५३
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः।
वार्यक्षः ककुभो वज्री दीप्ततेजाः सहस्रपात्॥ १५४
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः।
सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत्॥ १५५
पवित्रं त्रिमधुर्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः।
ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नः शतपाशधृक्॥ १५६
कला काष्ठा लवो मात्रा मुहूर्तोऽहः क्षपा क्षणः।
विश्वक्षेत्रप्रदो बीजं लिङ्गमाद्यस्तु निर्मुखः॥ १५७
सदसद् व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपः॥ १५८
निर्वाणं हृदयश्चैव ब्रह्मलोकः परागतिः।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः॥ १५९
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः॥ १६०
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः।
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः॥ १६१
देवासुरेश्वरो विष्णुर्देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मा स्वयम्भवः॥ १६२
उद्गतस्त्रिक्रमो वैद्यो वरदोऽवरजोऽम्बरः।
इज्यो हस्ती तथा व्याघ्रो देवसिंहो महर्षभः॥ १६३
विबुधाग्र्यः सुरः श्रेष्ठः स्वर्गदेवस्तथोत्तमः।
संयुक्तः शोभनो वक्ता आशानां प्रभवोऽव्ययः॥ १६४
गुरुः कान्तो निजः सर्गः पवित्रः सर्ववाहनः।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः॥ १६५
अभिरामः सुशरणो निरामः सर्वसाधनः।
ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणो ब्रह्मवर्चसः॥ १६६
स्थावराणां पतिश्चैव नियतेन्द्रियवर्तनः।
सिद्धार्थः सर्वभूतार्थोऽचिन्त्यः सत्यः शुचिव्रतः॥ १६७
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्तकेशश्च श्रीमाञ्छ्रीवर्धनो जगत्॥ १६८

बहुमाल, महामाल, शिपिविष्ट, सुलोचन, विस्तार, लवण, कूप, कुसुमांग, फलोदय, ऋषभ, वृषभ, भंग, मणिबिम्बजटाधर, इन्दु, विसर्ग, सुमुख, शूर, सर्वायुध, सह, निवेदन, सुधाजात, स्वर्गद्वार, महाधनु, गिरावास, विसर्ग, सर्वलक्षणलक्षवित्, गन्धमाली, भगवान्, अनन्त, सर्वलक्षण, सन्तान, बहुल, बाहु, सकल, सर्वपावन॥ १४९—१५२॥

करस्थाली, कपाली, ऊर्ध्वसंहनन, युवा, यन्त्रतन्त्रसुविख्यात, लोक, सर्वाश्रय, मृदु, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, कुण्डी, विकुर्वण, वार्यक्ष, ककुभ, वज्री, दीप्ततेज, सहस्रपात्, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वदेवमय, गुरु, सहस्रबाहु, सर्वांग, शरण्य, सर्वलोककृत्, पवित्र, त्रिमधु, मन्त्र, कनिष्ठ, कृष्णपिंगल, ब्रह्मदण्डविनिर्माता, शतघ्न, शतपाशधृक्॥ १५३—१५६॥

कला, काष्ठा, लव, मात्रा, मुहूर्त, अहः, क्षपा, क्षण, विश्वक्षेत्रप्रद, बीज, लिङ्ग, आद्य, निर्मुख, सदसद्, व्यक्त, अव्यक्त, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, मोक्षद्वार, प्रजाद्वार, त्रिविष्टप, निर्वाण, हृदय, ब्रह्मलोक, परागति, देवासुर-विनिर्माता, देवासुरपरायण, देवासुरगुरु, देव, देवासुरनमस्कृत, देवासुर-महामात्र, देवासुर-गणाश्रय॥ १५७—१६०॥

देवासुरगणाध्यक्ष, देवासुरगणाग्रणी, देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुरवरप्रद, देवासुरेश्वर, विष्णु, देवासुरमहेश्वर, सर्वदेवमय, अचिन्त्य, देवतात्मा, स्वयम्भव, उद्गत, त्रिक्रम, वैद्य, वरद, अवरज, अम्बर, इज्य, हस्ती, व्याघ्र, देवसिंह, महर्षभ, विबुधाग्र्य, सुर, श्रेष्ठ, स्वर्गदेव, उत्तम, संयुक्त, शोभन, वक्ता, आशानांप्रभव, अव्यय॥ १६१—१६४॥

गुरु, कान्त, निज, सर्ग, पवित्र, सर्ववाहन, शृंगी, शृंगप्रिय, बभ्रू, राजराज, निरामय, अभिराम, सुशरण, निराम, सर्वसाधन, ललाटाक्ष, विश्वदेह, हरिण, ब्रह्मवर्चस, स्थावराणां पति, नियतेन्द्रियवर्तन, सिद्धार्थ, सर्वभूतार्थ, अचिन्त्य, सत्य, शुचिव्रत, व्रताधिप, परब्रह्म, मुक्तानां परमा गति, विमुक्त, मुक्तकेश, श्रीमान्, श्रीवर्धन, जगत्॥ १६५—१६८॥

यथाप्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया।
भक्तिमेवं पुरस्कृत्य मया यज्ञपतिर्विभुः॥ १६९

ततो ह्यनुज्ञां प्राप्यैवं स्तुतो भक्तिमतां गतिः।
तस्माल्लब्ध्वा स्तवं शम्भोर्नृपस्त्रैलोक्यविश्रुतः॥ १७०

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य महायशाः।
गणाधिपत्यं सम्प्राप्तस्तण्डिनस्तेजसा प्रभोः॥ १७१

इन नामोंकी प्रधानताके अनुसार मैंने भक्तिपूर्वक समाहितचित्त होकर भगवान् यज्ञपति विभु शिवकी स्तुति की। इस प्रकार उनसे आज्ञा पाकर मैंने भक्तोंकी गतिस्वरूप शिवकी स्तुति की। उन तण्डीसे शिवजीका स्तोत्र प्राप्त करके तीनों लोकोंमें विख्यात तथा महायशस्वी राजा [त्रिधन्वा]-ने हजार अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्तकर प्रभु तण्डीके तेजसे गणाधिपपद प्राप्त किया॥ १६९—१७१॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद् ब्राह्मणानपि।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति वै द्विजाः॥ १७२

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः॥ १७३

मातृहा पितृहा चैव वीरहा भ्रूणहा तथा।
संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा त्रिसन्ध्यं शङ्कराश्रमे॥ १७४

देवमिष्ट्वा त्रिसन्ध्यं च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १७५

हे द्विजो! जो इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह हजार अश्वमेधयज्ञका फल अवश्य प्राप्त करता है। ब्राह्मणका वध करनेवाला, सुरापान करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला, शरणमें आये हुएका वध करनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता-पिताका वध करनेवाला, वीर-हत्या करनेवाला तथा भ्रूणहत्या करनेवाला भी शिवमन्दिरमें वर्षपर्यन्त तीनों सन्ध्याकालोंमें क्रमसे [इन नामोंका] जप करके एवं तीनों सन्ध्याकालोंमें देव [शिव]-का पूजन करके समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १७२—१७५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे रुद्रसहस्रनामकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'रुद्रसहस्रनामकथन' नामक पैंसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुवंशी राजाओंकी कथा तथा ययातिवंश-वर्णन

सूत उवाच

त्रिधन्वा देवदेवस्य प्रसादात्तण्डिनस्तथा।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य प्रयत्नतः॥ १
गाणपत्यं दृढं प्राप्तः सर्वदेवनमस्कृतः।
आसीत्त्रिधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यारुणो नृपः॥ २
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वामितौजसम्॥ ३
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठामप्रापितेष्विह।
तेनाधर्मेण संयुक्तं राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत्॥ ४

सूतजी बोले—[हे द्विजो!] त्रिधन्वाने देवदेव तण्डीकी कृपासे प्रयत्नपूर्वक हजार अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त करके सभी देवताओंसे नमस्कृत होकर महान् गणाधिपपद प्राप्त कर लिया। उन त्रिधन्वाके पुत्र विद्वान् राजा त्रय्यारुण थे। उन [त्रय्यारुण]-का सत्यव्रत नामक महाबली पुत्र हुआ। उसने अमित तेजवाले विदर्भ देशके राजाको मारकर पाणिग्रहणके मन्त्रोंके पूर्ण होनेसे पहले ही उसकी पत्नीका हरण कर लिया। तब राजा त्रय्यारुणने उस अधर्मसे युक्त [अपने] पुत्रका त्याग कर दिया॥ १—४॥

पितरं सोऽब्रवीत्त्यक्तः क्व गच्छामीति वै द्विजाः।
पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय॥ ५

हे द्विजो! तत्पश्चात् [पिताके द्वारा] त्यक्त उस [सत्यव्रत]-ने पितासे कहा—'मैं कहाँ जाऊँ?' तब

इत्युक्तः स विचक्राम नगराद्वचनात्पितुः।
स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिके॥ ६
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ।
सर्वलोकेषु विख्यातस्त्रिशङ्कुरिति वीर्यवान्॥ ७
वसिष्ठकोपात्पुण्यात्मा राजा सत्यव्रतः पुरा।
विश्वामित्रो महातेजा वरं दत्त्वा त्रिशङ्कवे॥ ८
राज्येऽभिषिच्य तं पित्र्ये याजयामास तं मुनिः।
मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः॥ ९

सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयद्विभुः।
तस्य सत्यव्रता नाम भार्या कैकयवंशजा॥ १०
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम्।
हरिश्चन्द्रस्य च सुतो रोहितो नाम वीर्यवान्॥ ११
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुर्हारित उच्यते।
विजयश्च सुतेजाश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः॥ १२
जेता क्षत्रस्य सर्वत्र विजयस्तेन स स्मृतः।
रुचकस्तस्य तनयो राजा परमधार्मिकः॥ १३
रुचकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद् बाहुश्च जज्ञिवान्।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः॥ १४
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा।
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया॥ १५
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्।
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं परा तथा॥ १६

पिताने उससे कहा—'तुम चाण्डालोंके साथ रहो'॥ ५॥

इस प्रकार कहा गया वह [सत्यव्रत] पिताके आदेशसे नगरसे निकल गया और पिताके द्वारा त्यक्त वह बुद्धिमान् सत्यव्रत चाण्डालोंके निवासस्थानके समीप रहने लगा और उसके पिता वनमें चले गये। पूर्वकालमें वसिष्ठके कोपके कारण वह पुण्यात्मा राजा सत्यव्रत सभी लोकोंमें पराक्रमी त्रिशंकु—इस नामसे विख्यात हुआ। उसके बाद महातेजस्वी मुनि विश्वामित्रने त्रिशंकुको वर प्रदानकर उसे पिताके राज्यपर अभिषिक्त करके उससे यज्ञ कराया था। देवताओं तथा वसिष्ठके निषेध करनेपर भी ऐश्वर्यशाली विश्वामित्रने उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया था॥ ६—९½॥

कैकयवंशमें उत्पन्न उसकी सत्यव्रता नामक भार्याने निष्पाप हरिश्चन्द्र नामक पुत्रको जन्म दिया। हरिश्चन्द्रका रोहित नामक पराक्रमी पुत्र था। रोहितका पुत्र हरित था। हरितका पुत्र धुंधु कहा जाता है। धुंधुके दो पुत्र हुए—विजय और सुतेज। उस [विजय]-ने समस्त क्षत्रियोंको जीत लिया था, अतः उसे विजय कहा गया है। उसका पुत्र रुचक महान् धार्मिक राजा था। रुचकका पुत्र वृक था। उस [वृक]-से बाहु उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र सगर हुआ; वह परम धार्मिक राजा था॥ १०—१४॥

सगरकी भी प्रभा तथा भानुमती [नामक] दो भार्याएँ थीं। उन दोनोंने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे अग्निसदृश और्व ऋषिकी आराधना की थी; और्वने प्रसन्न होकर उन्हें यथेष्ट उत्तम वर प्रदान किया। उनमेंसे एक [रानी]-ने

अगृह्णाद्वंशकर्तारं प्रभागृह्णात्सुतान् बहून्।
एकं भानुमतिः पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्॥ १७

ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे सा तु वै प्रभा।
खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुहुङ्कारमार्गणैः॥ १८

असमञ्जस्य तनयः सोंऽशुमान्नाम विश्रुतः।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः॥ १९

येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता।
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह॥ २०

नाभागस्तस्य दायादो भवभक्तः प्रतापवान्।
अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ २१

नाभागेनाम्बरीषेण भुजाभ्यां परिपालिता।
बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता॥ २२

अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्।
पुत्रोऽयुतायुषो धीमानृतुपर्णो महायशाः॥ २३

दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली।
नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ॥ २४

वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सार्वभौमः प्रजेश्वरः॥ २५

सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोऽभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः॥ २६

ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः।
वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके॥ २७

अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम्।
अश्मकस्योत्तरायां तु मूलकस्तु सुतोऽभवत्॥ २८

स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो वने।
बिभर्ति त्राणमिच्छन् वै नारीकवचमुत्तमम्॥ २९

मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः सुतः।
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विलविलो बली॥ ३०

आसीत्त्वैलविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा प्रतापवान्।
पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत्॥ ३१

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्॥ ३२

त्रयोऽग्नयस्त्रयो लोका बुद्ध्या सत्येन वै जिताः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥ ३३

साठ हजार तथा दूसरीने वंशको बढ़ानेवाले एक पुत्रको माँगा था। प्रभाने बहुत पुत्रोंको प्राप्त किया और भानुमतीने असमंजस नामक एक पुत्रको प्राप्त किया। उसके बाद प्रभाने जिन साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया था, वे पृथ्वीको खोदते हुए कपिलरूप विष्णुके हुंकाररूपी बाणोंसे दग्ध हो गये॥ १५—१८॥

असमंजसके पुत्र अंशुमान् नामसे विख्यात हुए। उन [अंशुमान्]-के पुत्र दिलीप थे और दिलीपसे भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गंगाका अवतरण कराया। भगीरथके श्रुत नामक पुत्र हुए। उन [श्रुत]-के पुत्र नाभाग हुए, जो शिवभक्त तथा प्रतापशाली थे। उन [नाभाग]-के अम्बरीष नामक पुत्र हुए। उन [अम्बरीष]-से सिन्धुद्वीप उत्पन्न हुए। नाभागपुत्र अम्बरीषके द्वारा भुजाओंसे भली-भाँति पालित की गयी पृथ्वी [दैहिक, दैविक, भौतिक] तीनों प्रकारके तापोंसे पूर्णरूपसे विहीन हो गयी थी॥ १९—२२॥

उन सिन्धुद्वीपके अयुतायु नामक पराक्रमी पुत्र हुए। अयुतायुके ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुए; वे बुद्धिमान् तथा महायशस्वी थे। वे बलवान् राजा [ऋतुपर्ण] नलके सखा और दिव्य द्यूतक्रीड़ाके मर्मज्ञ थे। पुराणोंमें दृढ़व्रतवाले दो नल प्रसिद्ध हैं। एक तो वीरसेनका पुत्र था और दूसरा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ था, ऋतुपर्णके पुत्र राजा सार्वभौम हुए और उनके पुत्र सुदास हुए, वे इन्द्रके समान थे। सुदासके पुत्र राजा सौदास कहे गये हैं। उनका नाम मित्रसह था, किंतु वे कल्माषपाद नामसे प्रसिद्ध हुए। महातेजस्वी वसिष्ठने कल्माषपादके क्षेत्रमें इक्ष्वाकुकुलकी वृद्धि करनेवाले अश्मकको उत्पन्न किया। उत्तराके गर्भसे अश्मकके मूलक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। वे परशुरामके भयसे स्त्रियोंसे घिरे रहते थे और वनमें अपनी रक्षाकी इच्छा करते हुए उत्तम नारीकवच धारण किये रहते थे। मूलकके शतरथ नामक पुत्र हुए, वे धर्मात्मा राजा थे। उन शतरथसे बलशाली राजा इलविल उत्पन्न हुए। इलविलके पुत्र वृद्धशर्मा थे, जो ऐश्वर्यसम्पन्न तथा प्रतापशाली थे। उनके पुत्र विश्वसह थे, जिन्हें पितृकन्याने जन्म दिया था। उनके पुत्र दिलीप हुए; वे खट्वांग नामसे प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने एक मुहूर्तका जीवन प्राप्त करके स्वर्गसे इस लोकमें आकर [अपनी] बुद्धि एवं सत्यके द्वारा तीनों अग्नियों तथा तीनों लोकोंको जीत लिया था। उनके पुत्र दीर्घबाहु

अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे च वीर्यवान्।
राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशकृत्॥ ३४
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः॥ ३५
तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान्।
रावणं समरे हत्वा यज्ञैरिष्ट्वा च धर्मवित्॥ ३६
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः॥ ३७
लवश्च सुमहाभागः सत्यवानभवत्सुधीः।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः॥ ३८
नलस्तु निषधाज्जातो नभस्तस्मादजायत।
नभसः पुण्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा ततः स्मृतः॥ ३९
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान्।
अहीनरः सुतस्तस्य सहस्राश्वस्ततः परः॥ ४०
शुभश्चन्द्रावलोकश्च तारापीडस्ततोऽभवत्।
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुचन्द्रस्ततोऽभवत्॥ ४१
श्रुतायुरभवत्तस्माद् बृहद्बल इति स्मृतः।
भारते यो महातेजा सौभद्रेण निपातितः॥ ४२
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥ ४३
सर्वे पाशुपते ज्ञानमधीत्य परमेश्वरम्।
समभ्यर्च्य यथाज्ञानमिष्ट्वा यज्ञैर्यथाविधि॥ ४४
दिवं गता महात्मानः केचिन्मुक्तात्मयोगिनः।
नृगो ब्राह्मणशापेन कृकलासत्वमागतः॥ ४५
धृष्टस्य धृष्टकेतुश्च यमबालश्च वीर्यवान्।
रणधृष्टस्य ते पुत्रास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ ४६
आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्या नाम दारिका।
आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान्॥ ४७
रोचमानस्य रेवोऽभूद्रेवाद्रैवत एव च।
ककुद्मी चापरो ज्येष्ठपुत्रः पुत्रशतस्य तु॥ ४८
रेवती यस्य सा कन्या पत्नी रामस्य विश्रुता।
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूज्जितात्मा तु महाबली॥ ४९
नाभागादम्बरीषस्तु विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
ऋतस्तस्य सुतः श्रीमान् सर्वधर्मविदां वरः॥ ५०

हुए तथा उनसे रघु उत्पन्न हुए। उन रघुसे अज नामक पुत्र उत्पन्न हुए और उन [अज]-से पराक्रमी दशरथ उत्पन्न हुए। उन दशरथसे ऐश्वर्यशाली, इक्ष्वाकुवंशको बढ़ानेवाले, वीर, धर्मज्ञ तथा लोकप्रसिद्ध राम और लक्ष्मण, भरत तथा महाबली शत्रुघ्न उत्पन्न हुए॥ २३—३५॥

उनमें राम श्रेष्ठ, महातेजस्वी तथा महान् ओजस्वी थे। उन धर्मज्ञ रामने युद्धमें रावणका वध करके तथा यज्ञोंके द्वारा यजन करके दस हजार वर्षोंतक राज्य किया था। रामके कुश नामसे एक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए और दूसरे लव उत्पन्न हुए, जो परम भाग्यशाली, सत्यनिष्ठ और सद्बुद्धिवाले थे। कुशसे अतिथि उत्पन्न हुए। उन [अतिथि]-के पुत्र निषध थे। निषधसे नल उत्पन्न हुए और उन [नल]-से नभ उत्पन्न हुए। नभसे पुण्डरीक नामक पुत्र उत्पन्न हुए और उनसे क्षेमधन्वा उत्पन्न कहे गये हैं। उनके देवानीक नामक वीर तथा प्रतापी पुत्र हुए। उनके पुत्र अहीनर थे तथा उनके पुत्र सहस्राश्व थे। उनसे कल्याणमय चन्द्रावलोक हुए और फिर उनसे तारापीड हुए। उन [तारापीड]-के पुत्र चन्द्रगिरि हुए और उनसे भानुचन्द्र हुए। उनसे श्रुतायु उत्पन्न हुए, उन्हें बृहद्बल कहा गया है, जिन महा-तेजस्वीको महाभारतके युद्धमें सुभद्रापुत्र [अभिमन्यु]-ने मार डाला था। ये सब प्रायः इक्ष्वाकुवंशके उत्तराधिकारी राजा कहे गये हैं। इस वंशके प्रधान राजाओंका वर्णन मुख्यरूपसे कर दिया गया। ये सब शिवका ज्ञान प्राप्त करके परमेश्वरका अर्चनकर अपने ज्ञानके अनुसार विधिपूर्वक यज्ञोंके द्वारा यजन करके स्वर्ग चले गये; इनमें कुछ महात्मा तथा मुक्त आत्मावाले योगी हुए। [राजा] नृग एक ब्राह्मणके शापसे गिरगिटकी योनिको प्राप्त हो गये थे॥ ३६—४५॥

धृष्टके तीन पुत्र थे—धृष्टकेतु, यमबाल तथा पराक्रमी रणधृष्ट; वे सब परम धार्मिक थे॥ ४६॥

शर्यातिके आनर्त नामक पुत्र हुए और सुकन्या नामक पुत्री हुई। आनर्तके प्रतापशाली पुत्र रोचमान उत्पन्न हुए। रोचमानके पुत्र रेव हुए और रेवसे रैवत हुए जो ककुद्मी इस दूसरे नामसे भी प्रसिद्ध थे, वे सौ पुत्रोंवाले रेवके ज्येष्ठ पुत्र थे, जिनकी कन्या रेवती थी; वह राम (बलराम)-की पत्नी कही गयी है। नरिष्यन्तके एक जितात्मा तथा महाबली पुत्र था। नाभागसे अम्बरीष हुए, वे विष्णुके भक्त एवं प्रतापशाली थे। उनके पुत्र

कृतस्तस्य सुधर्माभूत्पृषितो नाम विश्रुतः।
करूषस्य तु कारूषाः सर्वे प्रख्यातकीर्तयः॥ ५१
पृषितो हिंसयित्वा गां गुरोः प्राप सुकल्मषम्।
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्येति विश्रुतः॥ ५२
दिष्टपुत्रस्तु नाभागस्तस्मादपि भलन्दनः।
भलन्दनस्य विक्रान्तो राजासीदजवाहनः॥ ५३
एते समासतः प्रोक्ता मनुपुत्रा महाभुजाः।
इक्ष्वाकोः पुत्रपौत्राद्या ऐलस्याथ वदामि वः॥ ५४

ऋत हुए, जो ऐश्वर्यशाली तथा धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उनके पुत्र कृत हुए; उनके पुत्र सुधर्मा हुए, जो पृषित नामसे विख्यात हुए। करूषके पुत्र कारूष हुए, वे सब प्रसिद्ध कीर्तिवाले थे। पृषितने [अपने] गुरुकी गायका वध करके महान् पाप किया; वे च्यवनके शापसे शूद्रत्वको प्राप्त हुए थे—यह प्रसिद्ध है। दिष्टके पुत्र नाभाग हुए। उन [नाभाग]-से भलंदन हुए, भलंदनके पुत्र अजवाहन हुए; वे पराक्रमी राजा थे। [हे ऋषियो!] मैंने संक्षेपमें विशाल भुजाओंवाले मनुपुत्रोंका तथा इक्ष्वाकुके पुत्र, पौत्र आदिका वर्णन कर दिया; अब मैं आप लोगोंसे ऐल वंशका वर्णन करता हूँ॥ ४७—५४॥

सूत उवाच

ऐलः पुरूरवा नाम रुद्रभक्तः प्रतापवान्।
चक्रे त्वकण्टकं राज्यं देशे पुण्यतमे द्विजाः॥ ५५
उत्तरे यमुनातीरे प्रयागे मुनिसेविते।
प्रतिष्ठानाधिपः श्रीमान् प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठितः॥ ५६
तस्य पुत्राः सप्त भवन्सर्वे विततेजसः।
गन्धर्वलोकविदिता भवभक्ता महाबलाः॥ ५७
आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।
श्रुतायुश्च शतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः॥ ५८
आयुषस्तनया वीराः पञ्चैवासन् महौजसः।
स्वर्भानुतनयायां ते प्रभायां जज्ञिरे नृपाः॥ ५९
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥ ६०
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः।
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चमोऽन्धकः॥ ६१
विजातिश्चेति षडिमे सर्वे प्रख्यातकीर्तयः।
यतिर्ज्येष्ठश्च तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः॥ ६२
ज्येष्ठस्तु यतिर्मोक्षार्थी ब्रह्मभूतोऽभवत्प्रभुः।
तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः॥ ६३
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥ ६४

हे द्विजो! इलाका पुरूरवा नामक पुत्र रुद्रभक्त तथा प्रतापी था। उसने उत्तरमें यमुनाके तटपर मुनियोंके द्वारा सेवित अत्यन्त पवित्र देश प्रयागमें निष्कंटक राज्य किया। प्रतिष्ठानपुरका स्वामी वह पुरूरवा प्रतिष्ठानपुरमें प्रतिष्ठित हुआ। उसके सात पुत्र हुए। वे सब महान् तेजस्वी, गन्धर्वलोकमें प्रसिद्ध, शिवभक्त तथा महाबली थे। आयु, मायु, अमायु, विश्वायु, वीर्यवान्, श्रुतायु, शतायु—ये उर्वशीके दिव्य पुत्र थे। आयुके पाँच महान् ओजवाले तथा वीर पुत्र हुए; स्वर्भानुकी पुत्री प्रभासे वे राजा उत्पन्न हुए थे। उनमें पहला [पुत्र] नहुष था, जो धर्मज्ञ एवं लोकप्रसिद्ध था। नहुषके छः पुत्र हुए। इन्द्रके समान तेजवाले तथा महान् ओजस्वी वे सब पितृकन्या विरजासे उत्पन्न हुए थे। यति, ययाति, संयाति, आयाति, अन्धक, विजाति—ये छः पुत्र थे; सब-के-सब प्रसिद्ध कीर्तिवाले थे। उनमें यति ज्येष्ठ था और ययाति उससे कनिष्ठ था। ज्येष्ठ यति मोक्षका इच्छुक था और वह ब्रह्मस्वरूप हो गया। उन [शेष] पाँचोंमें ययाति महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न था। उसने उशना (शुक्राचार्य)-की पुत्री देवयानीको और वृषपर्वाकी पुत्री आसुरी शर्मिष्ठाको भार्यारूपमें प्राप्त किया था॥ ५५—६४॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
तावुभौ शुभकर्माणौ स्तुतौ विद्याविशारदौ॥ ६५
द्रुह्यं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
ययातये रथं तस्मै ददौ शुक्रः प्रतापवान्॥ ६६

देवयानीने यदु और तुर्वसुको उत्पन्न किया; वे दोनों ही उत्तम कर्मवाले, प्रशंसनीय तथा विद्यामें प्रवीण थे। वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्य, अनु एवं पूरुको जन्म दिया। उन ययातिके द्वारा सन्तुष्ट किये गये प्रतापी विप्रेन्द्र शुक्रने प्रसन्न होकर उन ययातिको दो अक्षय महान् तरकस और अत्यन्त चमकीला, सुन्दरतापूर्वक निर्मित, स्वर्णमय, दिव्य तथा मनके समान वेगवाले घोड़ोंसे जुता

तोषितस्तेन विप्रेन्द्रः प्रीतः परमभास्वरम्।
सुसङ्गं काञ्चनं दिव्यमक्षये च महेषुधी॥ ६७
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहन्।
स तेन रथमुख्येन षण्मासेनाजयन्महीम्॥ ६८
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानुषैः।
भवभक्तस्तु पुण्यात्मा धर्मनिष्ठः समञ्जसः॥ ६९
यज्ञयाजी जितक्रोधः सर्वभूतानुकम्पनः।
कौरवाणां च सर्वेषां स भवद्रथ उत्तमः॥ ७०
यावन्नरेन्द्रप्रवरः कौरवो जनमेजयः।
पूरोर्वंशस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारीक्षितस्य तु॥ ७१
जगाम स रथो नाशं शापाद् गर्गस्य धीमतः।
गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः॥ ७२
अक्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः।
स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः॥ ७३
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित्।
ततः स दुःखसन्तप्तो न लेभे संविदं क्वचित्॥ ७४
जगाम शौनकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा।
इन्द्रेतिर्नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः॥ ७५
याजयामास चेन्द्रेतिस्तं नृपं जनमेजयम्।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः॥ ७६
स लोहगन्धान्निर्मुक्त एनसा च महायशाः।
यज्ञस्यावभृथे मध्ये यातो दिव्यो रथः शुभः॥ ७७
तस्माद्वंशात्परिभ्रष्टो वसोश्चेदिपतेः पुनः।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद् बृहद्रथः॥ ७८
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम्।
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः॥ ७९

सूत उवाच

अभ्यषिञ्चत्पुरुं पुत्रं ययातिर्नाहुषः प्रभुः।
कृतोपकारस्तेनैव पुरुणा द्विजसत्तमाः॥ ८०
अभिषेक्तुकामं च नृपं पुरुं पुत्रं कनीयसम्।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्॥ ८१
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति॥ ८२
एते सम्बोधयामस्त्वां धर्मं च अनुपालय॥ ८३

हुआ रथ प्रदान किया, जिससे वह कन्याको [अपने घर] लाया था। उसने उस रथसे छः महीनेके भीतर ही [सम्पूर्ण] पृथ्वीको जीत लिया था। ययाति युद्धमें देवताओं, दानवों तथा मनुष्योंसे अजेय था। वह शिवभक्त, पुण्यात्मा, धर्मनिष्ठ, सामंजस्य रखनेवाला, यज्ञ करनेवाला, क्रोधको जीत लेनेवाला तथा सभी प्राणियोंपर दया करनेवाला था॥ ६५—६९ १/२॥

वह [रथ] सभी कौरवोंका तबतक उत्तम रथ था, जबतक कुरुवंशी महाराज जनमेजय थे। बुद्धिमान् [ऋषि] गर्गके शापके कारण पुरुवंशमें उत्पन्न परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयका वह रथ विनाशको प्राप्त हो गया। उन राजा जनमेजयने गर्गके पुत्र बालक अक्रूरको मार डाला था, जिससे उन्हें ब्रह्महत्या लग गयी। तब रुधिरकी गन्धवाले वे राजर्षि इधर-उधर भागने लगे। नगरवासियोंने उनका परित्याग कर दिया और उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल सकी। जब दुःखसे संतप्त उनको कहीं भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका, तब वे व्यथित होकर शौनक ऋषिकी शरणमें गये। उदार बुद्धिवाले वे मुनि इन्द्रेति नामसे विख्यात थे। हे श्रेष्ठ द्विजो! इन्द्रेतिने उन राजा जनमेजयको पवित्र करनेके लिये उनसे अश्वमेधयज्ञका यजन कराया॥ ७०—७६॥

तदनन्तर वे महायशस्वी जनमेजय रुधिरकी गन्धसे तथा ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो गये और उस यज्ञके अवभृथस्नानके समय वह दिव्य तथा उत्तम रथ लुप्त हो गया। तदनन्तर इन्द्रने प्रसन्न होकर उस वंशसे परिभ्रष्ट उस रथको चेदिदेशके राजा वसुको दे दिया। पुनः उनसे बृहद्रथने प्राप्त किया। उसके बाद कौरवनन्दन भीमने जरासंधको मारकर वह उत्तम रथ वासुदेवको प्रेमपूर्वक प्रदान कर दिया॥ ७७—७९॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! नहुषके पुत्र ययातिने अपने पुत्र पुरुको [राज्यपर] अभिषिक्त किया था; क्योंकि उस पुरुने उनका उपकार किया था। कनिष्ठ पुत्र पुरुका अभिषेक करनेकी इच्छावाले उन राजासे प्रमुख ब्राह्मणों तथा अन्य नागरिकोने यह वचन कहा था—'हे प्रभो! शुक्राचार्यके नाती तथा देवयानीके पुत्र ज्येष्ठ यदुका अतिक्रमण करके छोटा भाई [पुरु] राज्यका अधिकारी कैसे हो सकता है? हम लोग आपको यह समझा रहे हैं कि आप धर्मका पालन करें'॥ ८०—८३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'इक्ष्वाकुवंशवर्णन' नामक छाछठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

राजर्षि ययातिका आख्यान तथा ययातिगाथा

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः।
ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथञ्चन॥ १

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः।
प्रतिकूलमतिश्चैव न स पुत्रः सतां मतः॥ २

मातापित्रोर्वचनकृत्सद्भिः पुत्रः प्रशस्यते।
स पुत्रः पुत्रवद्यस्तु वर्तते मातृपितृषु॥ ३

यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च।
द्रुह्येन चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम्॥ ४

पुरुणा च कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः।
कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम॥ ५

शुक्रेण मे समादिष्टा देवयान्याः कृते जरा।
प्रार्थितेन पुनस्तेन जरा सञ्चारिणी कृता॥ ६

शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्।
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स ते राज्यधरस्त्विति॥ ७

भवन्तोऽप्यनुजानन्तु पूरू राज्येऽभिषिच्यते।

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा॥ ८

सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः।
अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतो वाक्यकृत्तव॥ ९

वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं कर्तुमन्यथा।

सूत उवाच

एवं जानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा॥ १०

अभिषिच्य ततो राज्ये पूरुं स सुतमात्मनः।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्॥ ११

दक्षिणायामथो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्।
प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु द्रुह्यं चानुं च तावुभौ॥ १२

ययाति बोले—श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा सभी वर्णके लोग मेरा वचन सुनें—'मैं ज्येष्ठ पुत्रको कभी भी राज्य नहीं दूँगा। ज्येष्ठ पुत्र यदुने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया है। जो [पिताके प्रति] विपरीत बुद्धिवाला हो, वह सज्जनोंके द्वारा पुत्र नहीं माना गया है। सज्जन लोग माता-पिताके वचनको माननेवाले पुत्रकी ही प्रशंसा करते हैं। [वास्तवमें] वही पुत्र है, जो माता-पिताके साथ पुत्रभावमें स्थित होकर व्यवहार करता है। यदुने मेरी अवज्ञा की है; उसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्य तथा अनुने भी मेरी बहुत अवहेलना की है। पुरुने मेरे वचनका पालन किया है और विशेषरूपसे मेरा सम्मान किया है। मेरा छोटा पुत्र [पुरु] ही मेरा उत्तराधिकारी है, जिसने मेरे बुढ़ापेको स्वीकार किया। शुक्राचार्यने देवयानीके लिये मुझे जरावस्था प्राप्त होनेकी आज्ञा दी थी। जब मैंने उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने पुनः बुढ़ापेको संचारिणी बना दिया। काव्य तथा उशना नामधारी शुक्रने स्वयं मुझे वर प्रदान किया था कि जो पुत्र आपके अनुकूल व्यवहार करे, वही आपके राज्यका अधिकारी होगा। अतः [हे ब्राह्मणो!] अब आपलोग भी मुझे आज्ञा दें कि यह पुरु राज्यपर अभिषिक्त किया जाय'॥ १—७$^1/_2$॥

प्रजागण बोले—जो पुत्र गुणसम्पन्न, सर्वदा माता-पिताका हित करनेवाला तथा समस्त कल्याणके योग्य हो, वह छोटा होनेपर भी [राज्यका] उत्तराधिकारी होता है। अतः पुत्र पुरु ही राज्यके योग्य है, जिसने आपके वचनका पालन किया है; शुक्रके वरदानसे विपरीत [कार्य] नहीं किया जा सकता है॥ ८-९$^1/_2$॥

सूतजी बोले—इस प्रकार जब प्रसन्न हुए नगरवासियोंने नहुषपुत्र [ययाति]-से कहा, तब उन्होंने अपने पुत्र पुरुको राज्यपर अभिषिक्त करके तुर्वसुको दक्षिण-पूर्व दिशामें रहनेकी आज्ञा प्रदान की। उसके बाद राजा [ययाति]-ने ज्येष्ठ पुत्र यदुको दक्षिण दिशामें

सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्।
व्यभजच्च त्रिधा राज्यं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा॥ १३

पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु हर्षनिर्भरमानसः।
प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥ १४

अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत्॥ १५

ताभिरेव नरः श्रीमान्नान्यथा कर्मकोटिकृत्।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति॥ १६

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः॥ १७

नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्।
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्॥ १८

कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
यदा परान्न बिभेति परे चास्मान्न बिभ्यति॥ १९

यदा न निन्देन्न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः॥ २०

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः॥ २१

चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका निरुपद्रवा।
जीर्यन्ति देहिनः सर्वे स्वभावादेव नान्यथा॥ २२

जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यते।
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्॥ २३

नियोजित कर दिया और उन दोनों द्रुह्यु तथा अनुको [क्रमशः] पश्चिम तथा उत्तर दिशामें नियुक्त कर दिया। नहुषपुत्र ययातिने सात द्वीपोंवाली सागरोंसहित पृथ्वीको जीतकर पुत्रोंमें राज्यको तीन भागोंमें बाँट दिया। इस प्रकार पुत्रोंमें राज्य संक्रमित करनेवाले तथा हर्षपूर्ण मनवाले राजा बन्धुओंपर उनका भार सौंपकर प्रसन्न हो गये॥ १०—१४॥

महाराज ययातिके द्वारा इस विषयमें पहले ये गाथाएँ गायी गयी थीं, जिनके द्वारा मनुष्य जिस प्रकार कछुआ अपने सभी अंगोंको समेट लेता है, वैसे ही अपनी समस्त कामनाओंको समेट लेता है और उन्हींसे वह श्रीमान् हो जाता है, अन्यथा नहीं; चाहे वह करोड़ों कर्म करनेवाला ही क्यों न हो। कामनाओंके उपभोगसे इच्छा शान्त नहीं होती है; जैसे हविके द्वारा अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार यह निरन्तर बढ़ती ही जाती है। पृथ्वीपर जो भी व्रीहि, जौ, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब वस्तुएँ [किसी] एकके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं—यह मानकर [मनुष्यको] कामनामुक्त हो जाना चाहिये। जब मनुष्य सभी प्राणियोंके प्रति मन, वचन तथा कर्मसे पापमय भाव नहीं रखता है, तब वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जब वह दूसरेसे डरता नहीं, दूसरे लोग भी उससे नहीं डरते; जब वह [दूसरेकी] निन्दा नहीं करता तथा उससे द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो तृष्णा दुष्ट बुद्धिवालोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे त्यागनेयोग्य है, जो [मनुष्यके] जीर्ण होनेपर भी [स्वयं] जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणका अन्त करनेवाला रोग है; उस तृष्णाका त्याग कर देनेवालेको सुख होता है। जीर्ण व्यक्तिके केश जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण व्यक्तिके दाँत जीर्ण हो जाते हैं और उसके नेत्र तथा कान भी जीर्ण हो जाते हैं; केवल तृष्णा ही [सदा] उपद्रवविहीन रहती है अर्थात् यह सदा तरुण बनी रहती है। सभी प्राणी स्वभावतः ही जीर्ण होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है, किंतु [मनुष्यके] जीर्ण हो जानेपर भी जीवनकी आशा एवं धनकी आशा जीर्ण नहीं होती है। संसारमें जो कामसुख है तथा जो स्वर्गका महान् सुख

तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलां नार्हति षोडशीम्।
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्॥ २४

भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः।
साधयित्वा त्वनशनं सदारः स्वर्गमाप्तवान्॥ २५

तस्य वंशास्तु पञ्चैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव मरीचिभिः॥ २६

धनी प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः।
ययातिचरितं पुण्यं पठञ्छृण्वंश्च बुद्धिमान्॥ २७

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ २८

है, वह तृष्णाके नाशके सुखकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है॥ १५—२३$^{1}/_{2}$॥

ऐसा कहकर वे राजर्षि [ययाति] पत्नीके साथ वनमें चले गये। उन महायशस्वीने वहीं भृगुतुंग शिखरपर निराहार रहकर [महान्] तपस्या करके भार्यासहित स्वर्गको प्राप्त किया। उनके ये पवित्र तथा देवर्षियोंद्वारा सत्कृत पाँच वंश हैं, जिनके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे वह सूर्यकी रश्मियोंसे व्याप्त है। ययातिके पुण्यप्रद चरित्रको पढ़ने तथा सुननेवाला मनुष्य धनी, सन्तानयुक्त, आयुष्मान्, कीर्तिशाली एवं बुद्धिमान् हो जाता है और सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २४—२८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवंशे ययातिचरितं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सोमवंशमें ययातिचरित' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

ययातिपुत्र यदुके वंशका वर्णन

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
सङ्क्षेपेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निबोधत॥ १
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रजित्सुतो ज्येष्ठो क्रोष्टुर्नीलोऽजको लघुः॥ २
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः।
सुताः शतजितः ख्यातास्त्रयः परमकीर्तयः॥ ३
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः।
हैहयस्य तु दायादो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥ ४
तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धर्मनेत्र इति श्रुतः।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु सञ्जयस्तस्य चात्मजः॥ ५
सञ्जयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम धार्मिकः।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्॥ ६
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः।
दुर्दमस्य सुतो धीमान् धनको नाम विश्रुतः॥ ७
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः।
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च॥ ८
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कार्तवीर्यस्ततोऽर्जुनः।
जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोत्तमः॥ ९

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] अब मैं [ययातिके] उत्तम तेजवाले ज्येष्ठ पुत्र यदुके वंशका क्रमानुसार संक्षेपमें वर्णन करूँगा; मुझ कहनेवालेसे [आपलोग] सुनें। यदुके देवपुत्रतुल्य पाँच पुत्र हुए; उनमें सहस्रजित् ज्येष्ठ पुत्र था और क्रोष्टु, नील, अजक तथा लघु अन्य पुत्र थे। सहस्रजित्का पुत्र उन्हींके समान था। वह शतजित् नामक राजा हुआ। शतजित्के महाकीर्तिशाली तीन पुत्र कहे गये हैं; वे हैहय, हय तथा राजा वेणुहय नामवाले थे। हैहयका जो पुत्र हुआ, वह धर्म नामसे प्रसिद्ध है। हे विप्रो! उसका धर्मनेत्र [नामक] पुत्र हुआ—ऐसा सुना गया है। धर्मनेत्रका पुत्र कीर्ति था और उस [कीर्ति]-का पुत्र संजय था। संजयका महिष्मान् नामक धार्मिक पुत्र था और महिष्मान्का पुत्र भद्रश्रेण्य था; वह प्रतापशाली था। भद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामक राजा था। दुर्दमका बुद्धिमान् पुत्र धनक नामसे प्रसिद्ध था॥ १—७॥

धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा कृतौजा—ये चार लोकमान्य पुत्र उत्पन्न हुए। उन कृतवीर्यसे कार्तवीर्यार्जुन (सहस्रार्जुन) उत्पन्न हुआ; वह [अपनी]

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युर्नारायणात्मकः।
तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः॥ १०

कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः।
शूरश्च शूरसेनश्च धृष्टः कृष्णस्तथैव च॥ ११

जयध्वजश्च राजासीदावन्तीनां विशां पतिः।
जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घो महाबलः॥ १२

शतं पुत्रास्तु तस्येह तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः।
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः॥ १३

वृषप्रभृतयश्चान्ये तत्सुताः पुण्यकर्मणः।
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥ १४

मधोः पुत्रशतं चासीद् वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक्।
वृष्णेस्तु वृष्णयः सर्वे मधोर्वै माधवाः स्मृताः।
यादवा यदुवंशेन निरुच्यन्ते तु हैहयाः॥ १५

तेषां पञ्चगणा ह्येते हैहयानां महात्मनाम्॥ १६

वीतिहोत्राश्च हर्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा।
शूरसेनास्तु विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च॥ १७

शूरश्च शूरसेनश्च वृषः कृष्णस्तथैव च।
जयध्वजः पञ्चमस्तु विख्याता हैहयोत्तमाः॥ १८

शूरश्च शूरवीरश्च शूरसेनस्य चानघाः।
शूरसेना इति ख्याता देशास्तेषां महात्मनाम्॥ १९

हजार भुजाओंके द्वारा सातों द्वीपोंका श्रेष्ठ स्वामी हो गया था। नारायणस्वरूपवाले परशुराम उस समय

उसकी मृत्युका कारण बने। उसके सौ पुत्र थे; उनमेंसे पाँच पुत्र महारथी, अस्त्रोंके ज्ञाता, बलशाली वीर, धर्मात्मा तथा मनस्वी थे। वे शूर, शूरसेन, धृष्ट, कृष्ण तथा जयध्वज [नामवाले] थे। राजा जयध्वज अवन्तीयोंका स्वामी था। जयध्वजको तालजंघ नामक महाबली पुत्र हुआ। उस [तालजंघ]-के सौ पुत्र हुए, जो इस लोकमें 'तालजंघ' नामसे प्रसिद्ध हुए। उनमें ज्येष्ठ [पुत्र] वीतिहोत्र महापराक्रमी राजा हुआ। वृष आदि उसके जो अन्य पुत्र थे, वे पुण्यकर्मवाले थे। उनमें वृष ही वंशको चलानेवाला हुआ। उसका पुत्र मधु हुआ। मधुके सौ पुत्र थे। उस [मधु]-का पुत्र वृष्णि ही वंशप्रवर्तक हुआ। वृष्णिके सभी वंशज 'वृष्णि' तथा मधुके वंशज माधव कहे गये हैं। यदुवंशसे सम्बन्धित यादव हैहय कहे जाते हैं॥ ८—१५॥

उन महात्मा हैहयोंके ये पाँच वंश हैं—वीतिहोत्र, हर्यात, भोज, अवन्ति तथा शूरसेन; ये तालजंघ भी कहे गये हैं। शूर, शूरसेन, वृष, कृष्ण एवं पाँचवाँ जयध्वज—ये उत्तम हैहय कहे गये हैं। शूरसेनके वंशज शूर तथा शूरवीर नामवाले थे; हे अनघ [ऋषियो]! उन महात्माओंके

वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनर्त इत्युत।
दुर्जयः कृष्णपुत्रस्तु बभूवामित्रकर्षणः॥ २०

क्रोष्टोश्च शृणु राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम्।
यस्यान्वये तु सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः॥ २१

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।
तस्य पुत्रोऽभवत्स्वाती कुशंकुस्तत्सुतोऽभवत्॥ २२

अथ प्रसूतिमिच्छन् वै कुशंकुः सुमहाबलः।
महाक्रतुभिरीजेऽसौ विविधैराप्तदक्षिणैः॥ २३

जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः।
अथ चैत्ररथो वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः॥ २४

शशबिन्दुस्तु वै राजा अन्वयाद् व्रतमुत्तमम्।

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः॥ २५

शशबिन्दोस्तु पुत्राणां सहस्राणामभूच्छतम्।
शंसन्ति तस्य पुत्राणामनन्तकमनुत्तमम्॥ २६

अनन्तकात्सुतो यज्ञो यज्ञस्य तनयो धृतिः।
उशनास्तस्य तनयः सम्प्राप्य तु महीमिमाम्॥ २७

आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः।
स्मृतश्चोशनसः पुत्रः सितेषुर्नाम पार्थिवः॥ २८

मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिर्वंशवर्धनः।
वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुतस्यात्मजः स्मृतः॥ २९

पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः।
निहत्य रुक्मकवचो वीरान् कवचिनो रणे॥ ३०

धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम्।
अश्वमेधे तु धर्मात्मा ऋत्विग्भ्यः पृथिवीं ददौ॥ ३१

जज्ञे तु रुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वाः परावृतः॥ ३२

रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः।
परिघं च हरिं चैव विदेहेषु पिता न्यसत्॥ ३३

देश भी 'शूरसेन'—इस नामवाले कहे गये हैं। वीतिहोत्रका पुत्र अनर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ। कृष्णका दुर्जय नामक पुत्र हुआ, वह शत्रुओंका दमन करनेवाला था। अब राजर्षि क्रोष्टुके उत्तम पौरुषवाले वंशका श्रवण कीजिये, जिसके कुलमें वृष्णिवंशको चलानेवाले विष्णु (कृष्ण) उत्पन्न हुए। क्रोष्टुका एक ही वृजिनीवान् नामक महायशस्वी पुत्र हुआ। उसका पुत्र स्वाती हुआ और उस [स्वाती]-का पुत्र कुशंकु हुआ। उसके बाद संतानकी इच्छा रखते हुए उन महाबली कुशंकुने अनेक प्रकारके पर्याप्त दक्षिणावाले महायज्ञोंके द्वारा यजन किया। [इसके परिणामस्वरूप] उसका चित्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो [शुभ] कर्मोंसे युक्त था। चित्ररथका पुत्र पराक्रमशाली शशबिन्दु था; उसने विपुल दक्षिणा देकर यज्ञ करके उत्तम तथा पवित्र व्रत आदि किया। [इस प्रकार] वह महाज्ञानी, महापराक्रमी तथा बहुत प्रजाओंवाला चक्रवर्ती राजा हो गया॥ १६—२५॥

शशबिन्दुके हजार पुत्र उपन्न हुए; लोग उनके पुत्रोंमें अनन्तकको सबसे उत्तम कहते हैं। अनन्तकसे यज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यज्ञका पुत्र धृति हुआ। उस [धृति]-का पुत्र उशना हुआ; उस परम धार्मिकने इस पृथ्वीको प्राप्त करके एक सौ अश्वमेध यज्ञ किया। उशनाका पुत्र सितेषु नामक राजा कहा गया है। उसका पुत्र मरुत था; वह वंशको बढ़ानेवाला राजर्षि हुआ। पराक्रमी कम्बलबर्हि [उस] मरुतका पुत्र बताया गया है। कम्बलबर्हिका पुत्र रुक्मकवच हुआ; वह विद्वान् था। रुक्मकवचने युद्धमें कवच तथा धनुष धारण करनेवाले वीरोंको [अपने] तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर उत्तम श्री प्राप्त कर ली थी। उस धर्मात्माने अश्वमेध-यज्ञमें [यज्ञ करानेवाले] ऋत्विजोंको पृथ्वीका दान किया था॥ २६—३१॥

रुक्मकवचसे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला परावृत् उत्पन्न हुआ। [उस] परावृत्से पाँच महाशक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुए—रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि। पिताने परिघ तथा हरिको विदेहदेशोंमें स्थापित किया। रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसके आश्रयमें

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयात्।
तैस्तु प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे॥ ३४

प्रशान्तः स वनस्थोऽपि ब्राह्मणैरेव बोधितः।
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी॥ ३५

नर्मदातीरमेकाकी केवलं भार्यया युतः।
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा त्यक्तमन्यैरुवास सः॥ ३६

ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या शीलवती सती।
सा चैव तपसोऽग्रेण शैब्या वै सम्प्रसूयत॥ ३७

सुतं विदर्भं सुभगा वयःपरिणता सती।
राजपुत्रसुतायां तु विद्वांसौ क्रथकैशिकौ॥ ३८

पुत्रौ विदर्भराजस्य शूरौ रणविशारदौ।
रोमपादस्तृतीयश्च बभ्रुस्तस्यात्मजः स्मृतः॥ ३९

सुधृतिस्तनयस्तस्य विद्वान् परमधार्मिकः।
कैशिकस्तनयस्तस्मात्तस्माच्चैद्यान्वयः स्मृतः॥ ४०

क्रथो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्।
कुन्तेर्वृतस्ततो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्॥ ४१

रणधृष्टस्य च सुतो निधृतिः परवीरहा।
दशार्हो नैधृतो नाम्ना महारिगणसूदनः॥ ४२

दशार्हस्य सुतो व्याप्तो जीमूत इति तत्सुतः।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः॥ ४३

अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो नवरथः किल।
दानधर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः॥ ४४

तस्य चासीद् दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः॥ ४५

देवरातादभूद्राजा देवरातिर्महायशाः।
देवगर्भोपमो जज्ञे यो देवक्षत्रनामकः॥ ४६

देवक्षत्रसुतः श्रीमान् मधुर्नाम महायशाः।
मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरुवंशकः॥ ४७

रहने लगा। उन सबके द्वारा [राज्यसे] हटा दिया गया राजा ज्यामघ आश्रममें निवास करने लगा। ब्राह्मणोंने शान्त होकर वनमें निवास करनेवाले उस ज्यामघको ज्ञान प्रदान किया और ध्वजा तथा रथ धारण करनेवाला वह [अपना] धनुष लेकर दूसरे देशमें चला गया। अन्य लोगोंद्वारा त्यक्त वह ऋक्षवान्-पर्वतपर जाकर अपनी भार्याके साथ नर्मदा नदीके तटपर अकेला निवास करने लगा॥ ३२—३६॥

ज्यामघकी पत्नी शैब्या शीलसम्पन्न तथा पतिव्रता थी। उस सौभाग्यशालिनी एवं पतिव्रता शैब्याने कठोर तपस्याके द्वारा [अपनी] वृद्धावस्थामें विदर्भ नामक पुत्रको जन्म दिया। राजकुमारीके गर्भसे राजा विदर्भके क्रथ तथा कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए; वे विद्वान्, पराक्रमी एवं युद्धमें प्रवीण थे। उसका तीसरा पुत्र रोमपाद भी था; उसका पुत्र बभ्रु कहा गया है। उस [बभ्रु]-का पुत्र सुधृति था; वह विद्वान् तथा परम धार्मिक था। उस विदर्भसे जो कैशिक नामक पुत्र था, उसीसे चैद्यवंश कहा गया है। विदर्भका जो पुत्र क्रथ था, उसका पुत्र कुन्ति हुआ। कुन्तिसे वृत उत्पन्न हुआ और उस [वृत]-से प्रतापी रणधृष्ट उत्पन्न हुआ॥ ३७—४१॥

रणधृष्टका पुत्र निधृति था; वह शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला था। निधृतिका दशार्ह नामक पुत्र था, जो बड़े-बड़े शत्रुओंका वध करनेवाला था। दशार्हका पुत्र व्याप्त था और उसका पुत्र जीमूत था। जीमूतका पुत्र विकृति था और उस [विकृति]-का पुत्र भीमरथ था। उसके बाद भीमरथके नवरथ [नामक] पुत्र उत्पन्न हुआ; वह सदा दान तथा धर्ममें लगा रहता था और सत्य तथा सदाचारके प्रति परायण था। उसका पुत्र दृढ़रथ था और उस [दृढ़रथ]-का पुत्र शकुनि था। उस शकुनिसे करम्भ उत्पन्न हुआ और उस [करम्भ]-से देवरात उत्पन्न हुआ॥ ४२—४५॥

देवरातसे देवराति उत्पन्न हुआ; वह महायशस्वी राजा था। उससे देवपुत्रतुल्य देवक्षत्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देवक्षत्रको मधु नामक पुत्र हुआ; जो ऐश्वर्यशाली,

कुरुवंशादनुस्तस्मात्पुरुत्वान् पुरुषोत्तमः ।
अंशुर्जज्ञे च वैदर्भ्यां भद्रवत्यां पुरुत्वतः ॥ ४८

ऐक्ष्वाकीमवहच्चांशुः सत्त्वस्तस्मादजायत।
सत्त्वात्सर्वगुणोपेतः सात्त्वतः कुलवर्धनः ॥ ४९

महायशस्वी तथा मधुवंशकी वृद्धि करनेवाला राजा हुआ। मधुसे कुरुवंश नामक पुत्र हुआ। कुरुवंशसे अनु हुआ और उस [अनु]-से पुरुषश्रेष्ठ पुरुत्वान् उत्पन्न हुआ। पुरुत्वान्से वैदर्भी भद्रवतीके गर्भसे अंशुने जन्म लिया। अंशुने ऐक्ष्वाकीसे विवाह किया; उस [अंशु]-से सत्त्व उत्पन्न हुआ। सत्त्वसे सात्त्वत उत्पन्न हुआ; वह समस्त गुणोंसे सम्पन्न तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ४६—४९ ॥

ज्यामघस्य मया प्रोक्ता सृष्टिर्वै विस्तरेण वः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि निसृष्टिं ज्यामघस्य तु ॥ ५०
प्रजीवत्येति वै स्वर्गं राज्यं सौख्यं च विन्दति ॥ ५१

[हे ऋषियो!] मैंने आपलोगोंसे ज्यामघकी सृष्टिका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। जो [व्यक्ति] ज्यामघकी सृष्टिको पढ़ता अथवा सुनता है; वह दीर्घकालतक जीवित रहता है, राज्य तथा सुख प्राप्त करता है और [अन्तमें] स्वर्गकी प्राप्ति करता है ॥ ५०—५१ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वंशानुवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वंशानुवर्णन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

चन्द्रवंश-वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्णके अवतारकी कथा तथा संक्षेपमें कृष्णचरितका वर्णन

सूत उवाच

सात्त्वतः सत्यसम्पन्नः प्रजज्ञे चतुरः सुतान्।
भजनं भ्राजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ १
अन्धकं च महाभागं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां निसर्गांश्चतुरः शृणुध्वं विस्तरेण वै ॥ २

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सत्यसम्पन्न सात्त्वतने तेजस्वी भजन, दिव्य राजा देवावृध, महाभाग्यशाली अन्धक तथा यदुनन्दन वृष्णि—इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया। अब उनके चारों वंशोंको विस्तारपूर्वक सुनिये ॥ १-२ ॥

सृञ्जय्यां भजनाच्चैव भ्राजमानाद्विजज्ञिरे।
अयुतायुः शतायुश्च बलवान् हर्षकृत्स्मृतः ॥ ३

तेजस्वी भजनके द्वारा सृंजयीसे अयुतायु, शतायु तथा बलवान् हर्षकृत् उत्पन्न हुए बताये गये हैं ॥ ३ ॥

तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्मरन् ॥ ४
तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोको नृपोत्तमः।
अनुवंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ ५
गुणान् देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः।
यथैव शृणुमो दूरात् सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥ ६
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
पुरुषाः पञ्चषष्टिस्तु षट् सहस्राणि चाष्ट च ॥ ७

[सात्त्वतके] उन पुत्रोंमें राजा देवावृधने 'मेरे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हो'—ऐसा स्मरण करते हुए घोर तपस्या की। तब उसे बभ्रु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पवित्र यशवाला उत्तम राजा था। वंशपरम्पराके प्राचीन ज्ञाता महान् आत्मावाले देवावृधके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए यह गाथा गाते हैं—बभ्रुके विषयमें हमलोग जैसा दूरसे सुनते हैं, वैसा ही समीपसे देखते हैं। देवताओंके समान देवावृधकी तरह बभ्रु मनुष्योंमें

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि।
यज्वा दानमतिर्वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रतः॥ ८

कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महारथः।
तस्यान्ववाये सम्भूता भोजा वै दैवतोपमाः॥ ९

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्॥ १०

माद्री लेभे च तं पुत्रं ततः सा देवमीढुषम्।
अनमित्रं शिनिं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ॥ ११

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः।
प्रसेनश्च महाभागः सत्राजिच्च सुतावुभौ॥ १२

तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्।
स्यमन्तको नाम मणिर्दत्तस्तस्मै विवस्वता॥ १३

पृथिव्यां सर्वरत्नानामसौ राजाभवन्मणिः।
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनेन सहैव सः॥ १४

वधं प्राप्तोऽसहायश्च सिंहादेव सुदारुणात्।
अथ पुत्रः शिनेर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्॥ १५

सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः।
सात्यकिर्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्॥ १६

असङ्गो युयुधानस्य कुणिस्तस्य सुतोऽभवत्।
कुणेर्युगन्धरः पुत्रः शैनेया इति कीर्तिताः॥ १७

माद्र्याः सुतस्य संजज्ञे सुतो वार्ष्णिर्युधाजितः।
श्वफल्क इति विख्यातस्त्रैलोक्यहितकारकः॥ १८

श्वफल्कश्च महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावृष्टिभयमप्युत॥ १९

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामवाप सः।
गान्दिनीं नाम काश्यो हि ददौ तस्मै स्वकन्यकाम्॥ २०

सा मातुरुदरस्था वै बहून् वर्षगणान् किल।
वसन्ती न च संजज्ञे गर्भस्थां तां पिताब्रवीत्॥ २१

श्रेष्ठ है। चौदह हजार पैंसठ [ऐसे] पुरुष थे, जिन्होंने देवावृधके पुत्र बभ्रुसे अमृतत्व प्राप्त किया था। वह यज्ञ करनेवाला, दानबुद्धिवाला, पराक्रमी, ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाला, दृढ़व्रतसे युक्त, कीर्तिशाली, महातेजस्वी तथा सात्त्वतोंमें महारथी था। उसके वंशमें देवतुल्य भोजलोग उत्पन्न हुए॥ ४—९॥

गान्धारी तथा माद्री—ये वृष्णिकी भार्याएँ थीं। गान्धारीने सुमित्र तथा मित्रनन्दनको जन्म दिया। माद्रीने देवमीढुष नामक पुत्रको उत्पन्न किया, उसके बाद उसने अनमित्र तथा शिनि नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया; वे दोनों उत्तम पुरुष थे॥ १०-११॥

अनमित्रका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके दो पुत्र हुए—प्रसेन तथा महाभाग्यशाली सत्राजित्। सूर्य उस सत्राजित्का प्राणतुल्य मित्र था। सूर्यने उसे स्यमन्तक नामक मणि दी थी। वह मणि पृथ्वीपर सभी रत्नोंमें श्रेष्ठ थी। किसी समय वह प्रसेन मणिसे युक्त होकर आखेटके लिये गया हुआ था; एक महाभयंकर सिंहने उसका वध कर दिया, उस समय वह असहाय था॥ १२—१४½॥

वृष्णिके कनिष्ठ पुत्र शिनिसे सत्यक नामक सत्यवादी तथा सत्यनिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र युयुधान था; जो सात्यकि नामसे प्रसिद्ध था। वह शिनिका प्रतापशाली नप्ता (नाती) था। युयुधानका पुत्र असंग तथा उस [असंग]-का पुत्र कुणि हुआ। कुणिका पुत्र युगन्धर हुआ। ये शिनिके वंशज कहे गये हैं॥ १५—१७॥

माद्री तथा वृष्णिसे पुत्र युधाजित् उत्पन्न हुआ; वह श्वफल्क नामसे विख्यात हुआ। वह तीनों लोकोंका हित करनेवाला था। धर्मात्मा महाराज श्वफल्क जहाँ रहते थे, वहाँ न व्याधिभय रहता था और न अनावृष्टिभय रहता था। उन श्वफल्कने काशिराजकी पुत्रीको भार्याके रूपमें प्राप्त किया था। काशिराजने अपनी गान्दिनी नामक कन्याको उन्हें प्रदान किया था॥ १८—२०॥

वह अपनी माताके गर्भमें बहुत वर्षोंतक स्थित रही और जब वहाँ निवास करती हुई उसने जन्म नहीं लिया,

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चाभितिष्ठसि।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गान्दिनी तदा॥ २२

वर्षत्रयं प्रतिदिनं गामेकां ब्राह्मणाय तु।
यदि दद्यास्ततः कुक्षेर्निर्गमिष्याम्यहं पितः॥ २३

तथेत्युवाच तस्या वै पिता काममपूरयत्।
दाता शूरश्च यज्वा च श्रुतवानतिथिप्रियः॥ २४

तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्काद्भूरिदक्षिणः।
रत्ना कन्या च शैवस्य ह्यक्रूरस्तामवाप्तवान्॥ २५

अस्यामुत्पादयामास तनयांस्तान्निबोधत।
उपमन्युस्तथा मागुर्वृतस्तु जनमेजयः॥ २६

गिरिरक्षस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नो योऽरिमर्दनः।
धर्मभृद् दृष्टधर्मा च गोधनोऽथ वरस्तथा॥ २७

आवाहप्रतिवाहौ च सुधारा च वराङ्गना।
अक्रूरस्योग्रसेन्यां तु पुत्रौ द्वौ कुलनन्दनौ॥ २८

देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसम्मतौ।
सुमित्रस्य सुतो जज्ञे चित्रकश्च महायशाः॥ २९

चित्रकस्याभवन् पुत्रा विपृथुः पृथुरेव च।
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधासूकगवेक्षणौ॥ ३०

अरिष्टनेमिरश्वश्च धर्मो धर्मभृदेव च।
सुभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥ ३१

अन्धकात्काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्।
कुकुरं भजमानं च शुचिं कम्बलबर्हिषम्॥ ३२

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेः शूरस्ततोऽभवत्।
कपोतरोमातिबलस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥ ३३

तस्यासीत्तुम्बुरुसखो विद्वान् पुत्रो नलः किल।
ख्यायते स सुनाम्ना तु चन्दनानकदुन्दुभिः॥ ३४

तस्मादप्यभिजित्पुत्र उत्पन्नोऽस्य पुनर्वसुः।
अश्वमेधं स पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः॥ ३५

तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितः।
ततस्तु विद्वान् सर्वज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः॥ ३६

तब पिताने गर्भमें विद्यमान उस [कन्या]-से कहा था—'तुम शीघ्र जन्म ग्रहण करो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम [गर्भमें ही] क्यों रुकी हुई हो?' तब गर्भमें स्थित उस कन्या गान्दिनीने उनसे कहा—'हे पितः! यदि आप तीन वर्षोंतक प्रतिदिन एक गाय ब्राह्मणको दानमें दें, तब मैं गर्भसे बाहर निकलूँगी।' इसपर पिताने कहा—'वैसा ही होगा।' इसके बाद पिताने उसकी कामना पूर्ण की। उसी कन्यासे श्वफल्कके द्वारा अक्रूर उत्पन्न कहा गया है, जो दानी, पराक्रमी, यज्ञ करनेवाला, विद्वान्, अतिथिप्रिय तथा विपुल दक्षिणा देनेवाला था। शैवकी रत्ना नामक कन्या थी, उसीको अक्रूरने [भार्यारूपमें] प्राप्त किया था। [हे ऋषियो!] उसने इस [कन्या]-से जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया, उन्हें आप सुनिये—वे उपमन्यु, मागु, वृत, जनमेजय, गिरिरक्ष, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मभृत्, दृष्टधर्मा, गोधन, वर, आवाह तथा प्रतिवाह [नामवाले] थे और सुधारा नामक एक सुन्दर कन्या भी उत्पन्न हुई थी। अक्रूरको उग्रसेनकी कन्यासे देववान् तथा उपदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए; वे कुलको आनन्द प्रदान करनेवाले एवं देवतुल्य थे॥ २१—२८$^1/_2$॥

सुमित्रको चित्रक नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। चित्रकके विपृथु, पृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुधासूक, गवेक्षण, अरिष्टनेमि, अश्व, धर्म, धर्मभृत्, सुभूमि, बहुभूमि [नामक] पुत्र उत्पन्न हुए और श्रविष्ठ तथा श्रवणा [नामक] दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। काशिराजकी पुत्रीने अन्धकसे कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हि नामक चार पुत्रोंको उत्पन्न किया। कुकुरका पुत्र वृष्णि हुआ और उस वृष्णिसे शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र कपोतरोमा हुआ; वह महाबलवान् था। उस [कपोतरोमा]-का पुत्र विलोमक हुआ। उसका पुत्र नल हुआ; वह तुम्बुरु (गन्धर्व)-का मित्र और विद्वान् था। वह चन्दनानकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ २९—३४॥

उससे अभिजित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस [अभिजित्]-का पुत्र पुनर्वसु हुआ। उस श्रेष्ठ राजाने पुत्रके लिये अश्वमेधयज्ञ किया था। उस यज्ञमें जब मन्त्रोंका उच्चारण हो रहा था, तब पूजनकर्ताओंके मध्य

तस्यापि पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ कीर्तिमतां वरौ॥ ३७
आहुकात्काश्यदुहितुर्द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ॥ ३८
देवकस्य सुता राज्ञो जज्ञिरे त्रिदशोपमाः।
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः॥ ३९
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ।
वृषदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता॥ ४०
श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा तथापरा।
देवकी चापि तासां च वरिष्ठाऽभूत्सुमध्यमा॥ ४१
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४२
देवकस्य सुता पत्नी वसुदेवस्य धीमतः।
बभूव वन्द्या पूज्या च देवैरपि पतिव्रता॥ ४३
रोहिणी च महाभागा पत्नी चानकदुन्दुभेः।
पौरवी बाह्लिकसुता सम्पूज्यासीत्सुरैरपि॥ ४४
असूत रोहिणी रामं बलश्रेष्ठं हलायुधम्।
आश्रितं कंसभीत्या च स्वात्मानं शान्ततेजसम्॥ ४५
जाते रामेऽथ निहते षड्गर्भे चातिदक्षिणे।

वसुदेवो हरिं धीमान् देवक्यामुदपादयत्॥ ४६
स एव परमात्मासौ देवदेवो जनार्दनः।
हलायुधश्च भगवाननन्तो रजतप्रभः॥४७
भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम्।
बभूव तस्यां देवक्यां वासुदेवो जनार्दनः॥४८
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी।
नियोगाद्देवदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत्॥ ४९
सा चैव प्रकृतिः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृता।
पुरुषो भगवान् कृष्णो धर्ममोक्षफलप्रदः॥ ५०

पुनर्वसुने जन्म लिया था। वह विद्वान्, सर्वज्ञ, दानी तथा यज्ञ करनेवाला हुआ। उस अभिजित्के जुड़वाँ पुत्र भी उत्पन्न हुए; कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ वे दोनों आहुक तथा आहुकि नामवाले कहे गये हैं। आहुकसे काश्यकी पुत्रीको देवक एवं उग्रसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए; वे दोनों देवताओंके पुत्रोंके समान थे। राजा देवकके देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देवरक्षित—ये देवतुल्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनकी सात बहनें थीं। राजाने उन्हें वसुदेवको दे दिया। वे वृषदेवा, उपदेवा, देव-रक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा तथा देवकी [नामवाली] थीं। उनमें देवकी वरिष्ठ एवं परम सुन्दरी थी॥ ३५—४१॥

उग्रसेनके नौ पुत्र थे; कंस उनमें ज्येष्ठ था। उन सबके सैकड़ों-हजारों पुत्र तथा पौत्र थे। देवककी पुत्री [देवकी] बुद्धिमान् वसुदेवकी भार्या हुई; वह देवताओंकी भी वन्दनीया तथा पूजनीया और पतिव्रता थी। बाह्लिकपुत्री पौरवी महाभाग्यशालिनी रोहिणी भी आनकदुन्दुभि (वसुदेव)-की पत्नी थी; वह देवताओंके द्वारा भी पूजाके योग्य थी॥ ४२—४४॥

कंसके भयसे [स्वयं देवकीके गर्भसे निकलकर] रोहिणीके गर्भका आश्रय लेनेवाले, बलशालियोंमें श्रेष्ठ, हलका आयुध धारण करनेवाले तथा शान्त तेजवाले बलरामको रोहिणीने उत्पन्न किया; परम सुन्दर छः गर्भोंके [कंसद्वारा] वध कर दिये जानेके बाद और बलरामके जन्म लेनेके बाद बुद्धिमान् वसुदेवने देवकीसे श्रीकृष्णको उत्पन्न किया। वे ही परमात्मा, देवदेव तथा जनार्दन हैं और रजत (चाँदी)-के समान कान्तिवाले हलायुध (बलराम) भगवान् अनन्त (शेष) हैं। वे जनार्दन (श्रीविष्णु) भृगुके शापके बहाने मानवशरीर धारण करना स्वीकार करते हुए उस देवकीसे वसुदेवके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ४५—४८॥

उसी समय देवदेव [श्रीविष्णु]-की आज्ञासे उमाके देहसे उत्पन्न योगनिद्रा [भगवती] कौशिकीने यशोदाकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया था। वे ही सभी देवताओंसे नमस्कृत साक्षात् प्रकृति हैं और धर्म तथा मोक्षका फल देनेवाले भगवान् कृष्ण पुरुष हैं॥ ४९-५०॥

तां कन्यां जगृहे रक्षन् कंसात्स्वस्यात्मजं तदा।
चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्सकृतलाञ्छनम्॥ ५१
शङ्खचक्रगदापद्मं धारयन्तं जनार्दनम्।
यशोदायै प्रदत्त्वा तु वसुदेवश्च बुद्धिमान्॥ ५२
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्षतामिति चाब्रवीत्।
रक्षकं जगतां विष्णुं स्वेच्छया धृतविग्रहम्॥ ५३
प्रसादाच्चैव देवस्य शिवस्यामिततेजसः।
रामेण सार्धं तं दत्त्वा वरदं परमेश्वरम्॥ ५४
भूभारनिग्रहार्थं च ह्यवतीर्णं जगद्गुरुम्।
अतो वै सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति॥ ५५
अयं स गर्भो देवक्या यो नः क्लेश्यान् हरिष्यति।
उग्रसेनात्मजायाथ कंसायानकदुन्दुभिः॥ ५६
निवेदयामास तदा जातां कन्यां सुलक्षणाम्।
अस्यास्तवाष्टमो गर्भो देवक्याः कंस सुव्रत॥ ५७
मृत्युरेव न सन्देह इति वाणी पुरातनी।
ततस्तां हन्तुमारेभे कंसः सोल्लङ्घ्य चाम्बरम्॥ ५८

उवाचाष्टभुजा देवी मेघगम्भीरया गिरा।
रक्षस्व तत्स्वकं देहमायातो मृत्युरेव ते॥ ५९
रक्षमाणस्य देहस्य मायावी कंसरूपिणः।
किं कृतं दुष्कृतं मूर्ख जातः खलु तवान्तकृत्॥ ६०
देवक्याः स भयात्कंसो जघानैवाष्टमं त्विति।
स्मरन्ति विहितो मृत्युर्देवक्यास्तनयोऽष्टमः॥ ६१
यस्तत्प्रतिकृतौ यत्नो भोजस्यासीद् वृथा हरेः।
प्रभावान्मुनिशार्दूलास्तया चैव जडीकृतः॥ ६२
कंसोऽपि निहतस्तेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
निहता बहवश्चान्ये देवब्राह्मणघातिनः॥ ६३

उस समय कंससे अपने पुत्रकी रक्षा करते हुए बुद्धिमान् वसुदेवने चार भुजाओंवाले, विशाल नेत्रोंवाले श्रीवत्सके चिह्नसे युक्त, शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करनेवाले जनार्दनको यशोदाको देकर उस कन्याको ले लिया। लोकोंके रक्षक तथा अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले इन विष्णुको देकर उन्होंने नन्दगोपसे कहा—'इसकी रक्षा कीजिये।' अमित तेजवाले देवदेव शिवकी कृपासे बलरामके साथ उन वरदायक, परमेश्वर, पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये अवतीर्ण तथा जगत्के गुरु [श्रीकृष्ण]-को प्रदान करके कहा था—'इससे यादवोंका सब प्रकारका कल्याण होगा। यह देवकीका वही पुत्र है, जो हम लोगोंके कष्टोंको दूर करेगा'॥ ५१—५५१/२॥

उसके बाद वसुदेवने उग्रसेनपुत्र कंससे सुन्दर लक्षणोंवाली उस उत्पन्न हुई कन्याके विषयमें बताया—हे कंस! हे सुव्रत! यह देवकीका आठवाँ गर्भ ही तुम्हारा मृत्युरूप होगा; इसमें सन्देह नहीं—यह पुरातन वाणी है। तब कंसने उसे मारना आरम्भ किया। किंतु [उसके हाथसे छूटकर] आकाशमें जाकर उस अष्टभुजा देवीने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा—'[हे कंस!] अब तुम अपने देहकी रक्षा करो। मायावी कंसके स्वरूपमें रहनेवाले इस देहकी रक्षा करते हुए तुम्हारी मृत्यु आ गयी है; अरे, मूर्ख! तुमने कैसा अपराध कर डाला, तुम्हारा अन्त करनेवाला तो उत्पन्न हो चुका है'॥ ५६—६०॥

उस कंसने भयसे देवकीके आठवें गर्भको मार डालनेका प्रयत्न किया था; क्योंकि उसने स्मरण कर रखा था कि जिससे उसकी मृत्यु निर्धारित है, वह देवकीका आठवाँ पुत्र है। हे श्रेष्ठ मुनियो! प्रतीकार करनेमें कंसका जो भी प्रयास था, वह व्यर्थ हो गया और [भगवान्] श्रीहरिके प्रभावसे उस वाणीके द्वारा वह कंस जड़ कर दिया गया था। [अन्तमें] अक्लिष्ट कर्म करनेवाले उन श्रीकृष्णने कंसको भी मार डाला और देवताओं तथा ब्राह्मणोंका वध करनेवाले अन्य बहुत-से दुष्टोंको भी मार डाला॥ ६१—६३॥

तस्य कृष्णस्य तनयाः प्रद्युम्नप्रमुखास्तथा।
बहवः परिसंख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ६४

कृष्णपुत्राः समाख्याताः कृष्णेन सदृशाः सुताः।
पुत्रेष्वेतेषु सर्वेषु चारुदेष्णादयो हरेः॥ ६५

विशिष्टा बलवन्तश्च रौक्मिणेयारिसूदनाः।
षोडशस्त्रीसहस्त्राणि शतमेकं तथाधिकम्॥ ६६

कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी।
तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ ६७

उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः।
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः॥ ६८

चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः साम्ब एव च।
एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः॥ ६९

तान् दृष्ट्वा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयांश्च रुक्मिणीम्।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या कृष्णस्य धीमतः॥ ७०

मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तरम्।
सुरेशसम्मितं पुत्रं प्रसन्नो दातुमर्हसि॥ ७१

जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथस्ततो हरिः।
तपस्तप्तुं समारेभे तपोनिधिरनिन्दितः॥ ७२

सोऽथ नारायणः कृष्णः शङ्खचक्रगदाधरः।
व्याघ्रपादस्य च मुनेर्गत्वा चैवाश्रमोत्तमम्॥ ७३

ऋषिं दृष्ट्वा त्वङ्गिरसं प्रणिपत्य जनार्दनः।
दिव्यं पाशुपतं योगं लब्धवांस्तस्य चाज्ञया॥ ७४

प्रलुप्तश्मश्रुकेशश्च घृताक्तो मुञ्जमेखली।
दीक्षितो भगवान् कृष्णस्तताप च परंतपः॥ ७५

ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बः पादाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठितः।
फलाम्ब्वनिलभोजी च ऋतुत्रयमधोक्षजः॥ ७६

तपसा तस्य सन्तुष्टो ददौ रुद्रौ बहून् वरान्।
साम्बं जाम्बवतीपुत्रं कृष्णाय च महात्मने॥ ७७

तथा जाम्बवती चैव साम्बं भार्या हरेः सुतम्।
प्रहर्षमतुलं लेभे लब्ध्वादित्यं यथादितिः॥ ७८

उन श्रीकृष्णके प्रद्युम्न आदि बहुत-से पुत्र बताये गये हैं; वे सब युद्धमें प्रवीण थे। कृष्णके पुत्र कृष्णके ही समान थे। श्रीकृष्णके इन सभी पुत्रोंमें चारुदेष्ण आदि पुत्र विशिष्ट तथा बलवान् थे; वे रुक्मिणीके पुत्र शत्रुओंका विनाश करनेवाले थे। कृष्णकी सोलह हजार एक सौ भार्याएँ थीं; उन सबमें रुक्मिणी [उनकी] ज्येष्ठ पत्नी थी। अक्लिष्ट कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने उस [रुक्मिणी]-के साथ बारह वर्षोंतक उपवास करते हुए [केवल] वायुभक्षणसे पुत्रहेतु [भगवान्] शिवका पूजन किया था। [परिणामस्वरूप] श्रीकृष्णने शूलपाणि (शिव)-की कृपासे चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयश, प्रद्युम्न तथा साम्ब—इन पुत्रोंको प्राप्त किया था॥ ६४—६९॥

रुक्मिणीके उन वीर पुत्रोंको तथा रुक्मिणीको देखकर बुद्धिमान् कृष्णकी पत्नी जाम्बवतीने कृष्णसे कहा—'हे कमलनयन! आप प्रसन्न होकर मुझे विशिष्ट, महान् गुणी तथा शिवजीको प्रिय पुत्र प्रदान कीजिये। तदनन्तर जाम्बवतीका वचन सुनकर अनिन्द्य एवं तपोनिधि जगन्नाथ श्रीहरिने तप करना प्रारम्भ किया॥ ७०—७२॥

शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले उन जनार्दन नारायण श्रीकृष्णने मुनि व्याघ्रपादके श्रेष्ठ आश्रममें जाकर उन अंगिरागोत्रिय ऋषिको देखकर उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञासे दिव्य पाशुपतयोग प्राप्त किया॥ ७३-७४॥

दाढ़ी तथा सिरको मुण्डित कराकर, शरीरको घृतसे अनुलिप्तकर तथा मूँजकी मेखला धारण करके [व्रतमें] दीक्षित होकर परंतप भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या करने लगे। उन श्रीकृष्णने हाथोंको ऊपर उठाकर, आश्रयरहित होकर तथा पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित होकर क्रमशः फल, जल एवं वायुका आहार ग्रहण करते हुए तीन ऋतुओंतक तपस्या की॥ ७५-७६॥

उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर [भगवान्] रुद्रने महात्मा कृष्णको अनेक वर प्रदान किया तथा जाम्बवतीसे साम्ब नामक पुत्र प्राप्त होनेका वर प्रदान किया। तब श्रीकृष्णकी भार्या जाम्बवती पुत्र साम्बको प्राप्त करके

बाणस्य च तदा तेन च्छेदितं मुनिपुङ्गवाः।
भुजानां चैव साहस्रं शापाद्रुद्रस्य धीमतः॥ ७९
अथ दैत्यवधं चक्रे हलायुधसहायवान्।
तथा दुष्टक्षितीशानां लीलयैव रणाजिरे॥ ८०
स हत्वा देवसम्भूतं नरकं दैत्यपुङ्गवम्।
ब्राह्मणस्योर्ध्वचक्रस्य वरदानान्महात्मनः॥ ८१
स्वोपभोग्यानि कन्यानां षोडशातुलविक्रमः।
शताधिकानि जग्राह सहस्राणि महाबलः॥ ८२
शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान् कुलम्।
संहृत्य तत्कुलं चैव प्रभासेऽतिष्ठदच्युतः॥ ८३
तदा तस्यैव तु गतं वर्षाणामधिकं शतम्।
कृष्णस्य द्वारकायां वै जराक्लेशापहारिणः॥ ८४
विश्वामित्रस्य कण्वस्य नारदस्य च धीमतः।
शापं पिण्डारकेऽरक्षद्वचो दुर्वाससस्तदा॥ ८५
त्यक्त्वा च मानुषं रूपं जरकास्त्रच्छलेन तु।
अनुगृह्य च कृष्णोऽपि लुब्धकं प्रययौ दिवम्॥ ८६
अष्टावक्रस्य शापेन भार्याः कृष्णस्य धीमतः।
चौरैश्चापहृताः सर्वास्तस्य मायाबलेन च॥ ८७
बलभद्रोऽपि सन्त्यज्य नागो भूत्वा जगाम च।
महिष्यस्तस्य कृष्णस्य रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः॥ ८८
सहाग्निं विविशुः सर्वाः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
रेवती च तथा देवी बलभद्रेण धीमता॥ ८९
प्रविष्टा पावकं विप्राः सा च भर्तृपथं गता।
प्रेतकार्यं हरेः कृत्वा पार्थः परमवीर्यवान्॥ ९०

उसी प्रकार परम हर्षित हुईं, जैसे अदिति आदित्यको प्राप्त करके हर्षित हुई थीं॥ ७७-७८॥

हे मुनिश्रेष्ठो! उन श्रीकृष्णने बुद्धिमान् रुद्रके शापके कारण बाणासुरकी हजार भुजाओंको काट डाला था। इसके बाद बलरामको सहायक बनाकर उन्होंने युद्धक्षेत्रमें लीलापूर्वक [अनेक] दैत्योंका तथा दुष्ट राजाओंका वध किया॥ ७९-८०॥

यज्ञवराहसे उत्पन्न दैत्यश्रेष्ठ नरकासुरका वध करके अतुलनीय पराक्रमवाले तथा महाबली उन श्रीकृष्णने ऊर्ध्वचक्रवाले वायुदेव तथा ब्रह्मापुत्र महात्मा नारदके वरदानसे अपने उपभोगके योग्य सोलह हजार एक सौ कन्याओंको ग्रहण किया था॥ ८१-८२॥

उन्होंने विप्रोंके शापके बहाने अपने कुलका संहार कर डाला और उस कुलका संहरण करके वे अच्युत (श्रीकृष्ण) प्रभासक्षेत्रमें रहने लगे। तदनन्तर वृद्धावस्थाके कष्टका हरण करनेवाले उन श्रीकृष्णका द्वारकामें रहते हुए सौ वर्षसे अधिक समय व्यतीत हुआ॥ ८३-८४॥

उन्होंने [द्वारकाके समीपवर्ती] पिण्डारकक्षेत्रमें निवास करनेवाले विश्वामित्र, कण्व, बुद्धिमान् नारद तथा दुर्वासाके शाप तथा वचनकी रक्षा की। [व्याधके द्वारा बनाये गये] जरकास्त्रके बहाने अपने मानवशरीरका परित्याग करके उस व्याधपर कृपा* करके वे श्रीकृष्ण द्युलोक [अपने धाम]-को चले गये॥ ८५-८६॥

अष्टावक्रमुनिके शापसे बुद्धिमान् श्रीकृष्णकी सभी भार्याएँ उनकी मायाके प्रभावसे चोरोंद्वारा अपहृत कर ली गयीं। बलराम भी अपने शरीरका त्याग करके शेषनागका रूप धारणकर [अपने लोक] चले गये। उन श्रीकृष्णकी रुक्मिणी आदि प्रमुख कल्याणमयी सभी पटरानियाँ अक्लिष्ट कर्मवाले श्रीकृष्णके साथ अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं। हे विप्रो! देवी रेवतीने भी बुद्धिमान् बलभद्रजीके साथ अग्निमें प्रवेश किया और उन्होंने अपने पतिके मार्गका अनुगमन किया॥ ८७—८९ १/२॥

* मा भैजरि त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे। याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम्॥ (श्रीमद्भा० ११। ३०। ३९)
[भगवान् श्रीकृष्णने कहा—] हे जरे! तू डर मत, उठ-उठ! यह तो तूने मेरे मनका काम किया है। जा, मेरी आज्ञासे तू उस स्वर्गमें निवास कर, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े पुण्यवानोंको होती है।

रामस्य च तथान्येषां वृष्णीनामपि सुव्रतः।
कन्दमूलफलैस्तस्य बलिकार्यं चकार सः॥ ९१

द्रव्याभावात्स्वयं पार्थो भ्रातृभिश्च दिवं गतः।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तः कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ९२

प्रभावो विलयश्चैव स्वेच्छयैव महात्मनः।
इत्येतत्सोमवंशानां नृपाणां चरितं द्विजाः॥ ९३

यः पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मणान् श्रावयेदपि।
स याति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥ ९४

तत्पश्चात् महाशक्तिशाली तथा उत्तम व्रतवाले उन अर्जुनने श्रीकृष्ण, बलराम तथा अन्य वृष्णिवंशियोंका और्ध्वदैहिक कृत्य करके द्रव्योंके अभावके कारण कन्द-मूल-फलोंके द्वारा बलि-कार्य (पिण्डदानादि श्राद्धकार्य) किया; इसके बाद वे अर्जुन अपने भाइयोंके साथ स्वयं स्वर्गलोक चले गये॥ ९०-९१$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार मैंने अक्लिष्ट कर्मवाले महात्मा श्रीकृष्णके प्रभाव तथा अपनी इच्छासे उनके तिरोधानका वर्णन संक्षेपमें कर दिया। हे द्विजो! जो [मनुष्य] सोमवंशीय राजाओंके इस चरित्रको पढ़ता है या सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह विष्णुलोक प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ९२—९४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवंशानुकीर्तनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सोमवंशानुकीर्तन' नामक उनहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

महेश्वरसे होनेवाली आदिसृष्टिका स्वरूप, नवविधसर्गवर्णन एवं प्राजापत्यसर्गनिरूपण तथा भगवती सतीकी देहसे अनेक देवियोंका प्रादुर्भाव

ऋषय ऊचुः

आदिसर्गस्त्वया सूत सूचितो न प्रकाशितः।
साम्प्रतं विस्तरेणैव वक्तुमर्हसि सुव्रत॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे सुव्रत! आपने आदिसृष्टिका परिचयमात्र दिया, उसपर प्रकाश नहीं डाला; अब आप [इसे] विस्तारसे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्य च।
परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः॥ २

अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारणं परम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ३

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ ४

जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम्॥ ५

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
अप्रकाशमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत॥ ६

अस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तं त्वासीच्छिवेच्छया।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोमये॥ ७

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! परमात्मा देव महेश्वर महादेव प्रकृति तथा पुरुषसे परे हैं। उन्हीं ईश्वरसे परम कारणस्वरूप अव्यक्त उत्पन्न हुआ, जिसे तत्त्वचिन्तक प्रधान तथा प्रकृति कहते हैं। यह गन्ध-वर्ण-रससे हीन, शब्द-स्पर्शसे रहित, अजर, स्थिर, अविनाशी, शाश्वत, अपनी आत्मामें स्थित, जगत्‌की उत्पत्तिका स्रोत, महाभूत, सनातन, परब्रह्म, सभी प्राणियोंका विग्रह (शरीर), ईश्वरकी आज्ञासे प्रेरित, आदि-अन्तसे रहित, अजन्मा, सूक्ष्म, तीनों गुणोंसे युक्त, उत्पत्तिका स्रोत तथा अव्यय है; सर्गके आदि कालमें अव्यक्त तथा अविज्ञेय यह ब्रह्मरूप ही था। उस समय तमोमय अविभागके रहनेपर एवं गुणोंके समभावमें रहनेपर शिवकी इच्छासे इस

सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै।
गुणभावाद् व्यज्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह॥ ८

सूक्ष्मेण महता चाथ अव्यक्तेन समावृतम्।
सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्तामात्रप्रकाशकः॥ ९

मनो महांस्तु विज्ञेयमेकं तत्कारणं स्मृतम्।
समुत्पन्नं लिङ्गमात्रं क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं हि तत्॥ १०

[अव्यक्त]-के स्वरूपसे यह सम्पूर्ण [उत्पद्यमान] जगत् व्याप्त था॥ २—७॥

सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञ (पुरुष)-के द्वारा अधिष्ठित प्रधानके गुणभावसे प्रेरित होता हुआ महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। पहले यह जगत् सूक्ष्म तथा महान् अव्यक्तसे आच्छादित था। इसके बाद सत्तामात्रका प्रकाशक सत्त्वगुण-प्रधान महत्तत्त्व प्रकट हुआ। महत्तत्त्वको मनके रूपमें जानना चाहिये; यह सृष्टिका कारण कहा गया है। लिङ्ग-मात्र यह [महत्तत्त्व] जीवोंसे अधिष्ठित होकर उत्पन्न हुआ॥ ८—१०॥

धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः।
महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया॥ ११

यह महान् (महत्तत्त्व) सृष्टिकी इच्छासे ईश्वरके द्वारा प्रेरित होकर सृष्टिको तथा सृष्ट जीवोंके परमार्थ कारणभूत वेदों, धर्म आदि रूपोंको विस्तारित करता है॥ ११॥

मनो महान् मतिर्ब्रह्म पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद्विश्वेशश्चेति स स्मृतः॥ १२

वे महेश्वर ही मन, महान्, मति, ब्रह्म, पूः, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् तथा विश्वेश कहे गये हैं॥ १२॥

मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टा फलं ततः।
सौक्ष्म्यात्तेन विभक्तं तु येन तन्मन उच्यते॥ १३

वे समस्त जीवोंका कर्मफल जानते हैं और इस मनके द्वारा सूक्ष्मताके कारण उस कर्मफलसे जगत् विभक्त है, इसलिये इन्हें 'मन' कहा जाता है॥ १३॥

तत्त्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः।
विशेषेभ्यो गुणेभ्योऽपि महानिति ततः स्मृतः॥ १४

ये सभी तत्त्वोंसे पहले उत्पन्न हुए हैं और परिमाणमें सत्त्व आदि गुणोंसे भी अधिक महान् हैं, इसलिये वे 'महान्' कहे गये हैं॥ १४॥

बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च।
पुरुषो भोगसम्बन्धात्तेन चासौ मतिः स्मृतः॥ १५

वे पुरुष [ईश्वर] भोगसम्बन्धके कारण सबका पोषण करते हैं, सम्पूर्ण प्रमाणको जानते हैं तथा समस्त भेद मानते हैं, इसलिये वे 'मति' कहे गये हैं॥ १५॥

बृहत्त्वात्बृंहणत्वाच्च भावानां सकलाश्रयात्।
यस्माद्धारयते भावान् ब्रह्म तेन निरुच्यते॥ १६

वे [महेश्वर] बृहत् होने, सबके पोषक होने तथा भावोंका सम्पूर्ण आश्रय होनेके कारण [समस्त] भावोंको धारण करते हैं, इसलिये उन्हें 'ब्रह्म' कहा जाता है॥ १६॥

यः पूरयति यस्माच्च कृत्स्नान् देवाननुग्रहैः।
नयते तत्त्वभावं च तेन पूरिति चोच्यते॥ १७

वे [महेश्वर] सभी देवताओंको [अपने] अनुग्रहोंसे परिपूर्ण करते हैं तथा उन्हें तत्त्वभाव प्राप्त कराते हैं, इसलिये वे 'पूः' कहे जाते हैं॥ १७॥

बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान् हितं तथा।
यस्माद् बोधयते चैव बुद्धिस्तेन निरुच्यते॥ १८

वे ईश्वर इस ब्रह्माण्डमें समस्त भावों तथा हित (धर्म)-को [स्वयं] जानते हैं एवं [जीवोंको] बोध

ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात्संवर्तते ततः।
भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः॥ १९

ख्यायते तद्गुणैर्वापि ज्ञानादिभिरनेकशः।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते॥ २०

साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः।
यस्माज्ज्ञानानुगश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते॥ २१

ज्ञानादीनि च रूपाणि बहुकर्मफलानि च।
चिनोति यस्माद्भोगार्थं तेनासौ चितिरुच्यते॥ २२

वर्तमानव्यतीतानि तथैवानागतान्यपि।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते॥ २३

कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं यस्मान्माहात्म्यमुत्तमम्।
तस्माद्विन्देर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते॥ २४

विद्यतेऽपि च सर्वत्र तस्मिन् सर्वं च विन्दति।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महद्भिर्मुनिसत्तमाः॥ २५

जानातेर्ज्ञानमित्याहुर्भगवान् ज्ञानसन्निधिः।
बन्धनादिपरीभावादीश्वरः प्रोच्यते बुधैः॥ २६

पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम्।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवसद्भावचिन्तकैः॥ २७

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम्॥ २८

त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत्।
महता च वृतः सर्गो भूतादिर्बाह्यतस्तु सः॥ २९

कराते हैं, इसलिये उन्हें 'बुद्धि' कहा जाता है॥ १८॥

ज्ञाननिष्ठाके कारण [विषय-सम्बन्धी] सुखकी ख्याति (प्रशंसा) तथा भोगकी प्राप्ति उन्हीं ईश्वरसे प्रवर्तित होती है, इसलिये वे 'ख्याति' कहे गये हैं। [आकाश आदिके शब्द आदि] गुणोंके द्वारा तथा ज्ञान आदिके द्वारा सत्पुरुष उनकी प्रशंसा करते हैं, इसलिये भी उन महान् (पूज्य) ईश्वरका नाम 'ख्याति' कहा जाता है॥ १९-२०॥

वे महात्मा शिव सम्पूर्ण जगत्को प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं, इसलिये 'ईश्वर' कहे जाते हैं और [स्वयं] ज्ञानरूप हैं, इसलिये 'प्रज्ञा' कहे जाते हैं॥ २१॥

वे [जीवोंको] भोगोंकी प्राप्तिके लिये ज्ञान आदि रूपों तथा अनेकविध कर्मफलोंका विस्तार करते हैं, इसलिये वे 'चिति' कहे जाते हैं॥ २२॥

वे [महेश्वर] वर्तमान, भूत तथा भविष्यके भी समस्त कार्योंका स्मरण करते हैं अर्थात् उनका ज्ञान रखते हैं, इसलिये वे 'स्मृति' कहे जाते हैं॥ २३॥

वे सम्पूर्ण ज्ञान तथा उत्तम माहात्म्यको जानते हैं, इसलिये वे 'विन्द्' तथा 'विद्' धातुसे व्युत्पन्न 'संविद्' रूप भी कहे जाते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियो! वे सर्वत्र विद्यमान हैं और भक्त उन [शिव]-में ही सब कुछ प्राप्त करता है, इसलिये वे महात्माओंद्वारा 'संविद्' कहे गये हैं॥ २४-२५॥

'ज्ञा' धातुसे 'ज्ञान' शब्द कहा गया है। ज्ञानसमुद्र भगवान् शिव बन्धन आदिका तिरस्कार करनेके कारण विद्वानोंद्वारा 'ईश्वर' कहे गये हैं॥ २६॥

इस प्रकार महेश्वरके उत्तम भावोंका चिन्तन करनेवाले तत्त्ववेत्ताओंने अनेक अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले शब्दोंके द्वारा आदि (सबसे पहले उत्पन्न) सर्वोत्तम 'शिव' नामक तत्त्वका वर्णन किया है॥ २७॥

सृष्टि करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर 'महत्' सृष्टिकार्यको विस्तारित करता है। संकल्प तथा अध्यवसाय—ये उसकी दो वृत्तियाँ कही गयी हैं॥ २८॥

रजोगुणप्रधान त्रिगुणके कारण वह [उत्पद्यमान] सर्ग, भूत आदि तथा अहंकार महत्के द्वारा बाहरसे ढके

तस्मादेव तमोद्रिक्तादहङ्कारादजायत।
भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः॥ ३०

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह।
आकाशं सुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम्॥ ३१

आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत्।
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह॥ ३२

ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते।
स्पर्शमात्रस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत्॥ ३३

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह।
सम्भवन्ति ततो ह्यापस्ता वै सर्वरसात्मिकाः॥ ३४

रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्रोऽग्निरावृणोत्।
आपश्चापि विकुर्वत्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे॥ ३५

सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः।
तस्मिंस्तस्मिंश्च तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता॥ ३६

अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततस्तु ते।
प्रशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः॥ ३७

भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परम्।
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात्॥ ३८

वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्तते।
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ ३९

साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश।
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्॥ ४०

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि तानि वै॥ ४१

पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत्।
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यं च कर्म तत्॥ ४२

हुए थे। उसी तमोगुणप्रधान अहंकारसे शब्द-स्पर्श आदि तन्मात्राओंका आकाश आदि तामस सर्ग हुआ। सृष्टिका विस्तार करते हुए भूतादिने शब्दमात्र आकाशका सृजन किया; उससे शब्दलक्षणवाला सुषिर (पुष्कर नामक) आकाश उत्पन्न हुआ। शब्दतन्मात्रावाले आकाशने स्पर्शतन्मात्रावाले वायुको आच्छादित किया। सृष्टिको आगे बढ़ाते हुए वायुने रूपतन्मात्रावाले अग्निको उत्पन्न किया। वायुसे जो ज्योति [अग्नि] उत्पन्न होती है, वह वायुके ही रूप तथा गुणवाली कही जाती है। इस प्रकार स्पर्शतन्मात्रावाले वायुने रूपतन्मात्रावाली अग्निको आच्छादित किया। सृष्टिको विस्तारित करती हुई ज्योति [अग्नि]-ने रसतन्मात्राको उत्पन्न किया; उससे सर्वरसमय जल उत्पन्न हुआ। रूपतन्मात्रावाली अग्निने उस रसतन्मात्रात्मक जलको आच्छादित किया। पुनः सृष्टिको आगे बढ़ाते हुए जलने गन्धतन्मात्राका सृजन किया, उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई; उसका गुण गन्ध माना गया है। वे शब्द आदि गुण अपने-अपने धर्मियोंमात्रमें ही स्थित रहते हैं। अतः उनमें तन्मात्रता कही गयी है॥ २९—३६॥

वे [शब्द आदि] अविशेषके वाचक होनेके कारण तन्मात्र शब्दका प्रतिपादक होनेके कारण तथा प्रशान्त (सात्त्विक), घोर (राजस) और मूढ़ (तामस) होनेके कारण अविशेष कहे गये हैं। इसे परस्पर (पंच) भूतोंकी तन्मात्राओंका सर्ग (सृष्टि) जानना चाहिये। वैकारिक [राजस] अहंकारसे और सत्त्वप्रधान सात्त्विक अहंकारसे वह वैकारिक सर्ग एक साथ प्रवर्तित होता है॥ ३७-३८½॥

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ—ये इन्द्रियाँ साधनस्वरूप हैं और उनके दस राजस अधिष्ठाता देवता हैं। जो ग्यारहवाँ मन है, वह अपने गुणसे उभयात्मक (ज्ञान-कर्मेन्द्रियात्मक) है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा पाँचवीं नासिका—ये इन्द्रियाँ शब्द आदिकी प्राप्तिके लिये ज्ञानयुक्त होती हैं। दोनों पैर, गुदा, जननेन्द्रिय, दोनों हाथ तथा दसवीं वाणी है; क्रमशः गति, विसर्ग (मलत्याग), आनन्द, शिल्प तथा बोलना उनका कार्य है॥ ३९—४२॥

आकाशं शब्दमात्रं च स्पर्शमात्रं समाविशत्।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥ ४३

रूपं तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ।
त्रिगुणस्तु ततस्त्वग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान्॥ ४४

सशब्दस्पर्शरूपं च रसमात्रं समाविशत्।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः॥ ४५

शब्दस्पर्शं च रूपं च रसो वै गन्धमाविशत्।
सङ्गता गन्धमात्रेण आविशन्तो महीमिमाम्॥ ४६

तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शस्यते।
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः॥ ४७

परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्।
भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकाचलावृतम्॥ ४८

विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः।
गुणं पूर्वस्य सर्गस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तराः॥ ४९

तेषां यावच्च यद्यच्च यच्च तावद् गुणं स्मृतम्।
उपलभ्याप्सु वै गन्धं केचिद् ब्रूयुरपां गुणम्॥ ५०

पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात्।
एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्॥ ५१

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥ ५२

एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवन्महत्तदुदकेशयम् ॥ ५३

अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणेनैतास्तेजसा बाह्यतो वृताः॥ ५४

तेजो दशगुणेनैव वायुना बाह्यतो वृतम्।
वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः॥ ५५

आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्।
भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेनावृतो महान्॥ ५६

शब्दतन्मात्रावाला आकाश स्पर्शतन्मात्रामें प्रविष्ट हुआ, अतः वायु शब्द तथा स्पर्शरूप दो गुणवाला हुआ। शब्द एवं स्पर्श—ये दोनों ही गुण रूपतन्मात्रामें प्रविष्ट हुए, अतः शब्द-स्पर्श-रूपयुक्त वह अग्नि तीन गुणोंवाला हुआ। शब्द-स्पर्श-रूपसहित अग्नि रसतन्मात्रामें प्रविष्ट हुआ, इसलिये रसमय जलको चार गुणोंवाला जानना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये गन्धतन्मात्रामें प्रविष्ट हुए। अतः गन्धतन्मात्राके साथ इस पृथ्वीमें इनके प्रवेश करनेपर पृथ्वी पाँच गुणोंवाली हुई, इसलिये यह स्थूलरूपा भूमि [पाँचों] भूतोंमें श्रेष्ठ कही जाती है। अतः [अधिक गुणके कारण] वे शब्द आदि गुण शान्त, घोर तथा मूढ़ तीन गुणवाले हैं; इसी कारणसे वे विशेष कहे गये हैं। परस्पर प्रवेश करनेके कारण वे एक-दूसरेको धारण करते हैं। भूमिके भीतर यह सब लोकालोकपर्वतसे आवृत है॥ ४३—४८॥

वे विशेष (शब्द आदि) नियतत्वके कारण इन्द्रिय-ग्राह्य कहे गये हैं। पूर्व सर्ग (आकाश आदि)-के गुणको उत्तरोत्तर वायु आदि प्राप्त करते हैं। उन शब्द आदिमें जितनी मात्रामें जो गुण होता है, उतनी ही मात्रामें उसे कहा गया है। जलमें गन्धका अनुभव होनेपर कुछ लोग कहते हैं कि यह जलका गुण है। पृथ्वीमें उस गन्धको जल तथा वायुके संयोगसे जानना चाहिये। महान् आत्मावाले ये सातों [महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द आदि पाँच गुण] एक-दूसरेके आश्रयसे रहते हैं। महत्तत्त्वसे लेकर [शब्द आदि] विशेषतक पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण तथा अव्यक्त [परमेश्वर]-के अनुग्रहसे ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं॥ ४९—५२॥

जलमें बुलबुलेकी भाँति एक विशाल अण्ड उन विशेषों (शब्द आदि)-से एक ही बारमें उत्पन्न हुआ; वह जलमें स्थित था। वह अण्ड [अपनेसे] दस गुना विस्तारवाले जलसे बाहरसे घिरा था; यह जल दस गुना विस्तारवाले तेज (अग्नि)-से बाहरसे घिरा था, तेज दस गुना विस्तारवाले वायुसे बाहरसे घिरा था और वायु भी दस गुना विस्तारवाले आकाशसे बाहरसे घिरा था, जिस आकाशसे वायु आवृत था, वह आकाश

शर्वश्चाण्डकपालस्थो भवश्चाम्भसि सुव्रताः।
रुद्रोऽग्निमध्ये भगवानुग्रो वायौ पुनः स्मृतः॥ ५७

भीमश्चावनिमध्यस्थो ह्यहङ्कारे महेश्वरः।
बुद्धौ च भगवानीशः सर्वतः परमेश्वरः॥ ५८

एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्।
एता आवृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः॥ ५९

प्रसर्गकाले स्थित्वा तु ग्रसन्त्येताः परस्परम्।
एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्॥ ६०

आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु।
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्॥ ६१

अण्डाज्जज्ञे स एवेशः पुरुषोऽर्कसमप्रभः।
तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं स्वेच्छयैव तु॥ ६२

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
तस्य वामाङ्गजो विष्णुः सर्वदेवनमस्कृतः॥ ६३

लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद्देव इच्छया परमेष्ठिनः।
दक्षिणाङ्गभवो ब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरुः॥ ६४

तस्मिन्नण्डे इमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥ ६५

लोकालोकद्वयं किञ्चिदण्डे ह्यस्मिन् समर्पितम्।
यत्तु सृष्टौ प्रसंख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः॥ ६६

एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम्।
रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः॥ ६७

अहस्तस्य तु या सृष्टिः रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः।
नाहस्तु विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत्॥ ६८

उपचारस्तु क्रियते लोकानां हितकाम्यया।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च॥ ६९

भूत आदिसे घिरा था। भूत आदि महत्तत्त्वसे घिरे थे और महत्तत्त्व [उस] अव्यक्तसे घिरा था॥ ५३—५६॥

हे सुव्रतो! शर्व [उस] अण्डके कपालपर स्थित हैं और भव जलमें स्थित हैं; रुद्र अग्निमें तथा भगवान् उग्र वायुमें [स्थित] कहे गये हैं; भीम पृथ्वीके मध्यमें स्थित हैं, महेश्वर अहंकारमें स्थित हैं, भगवान् ईश बुद्धिमें स्थित हैं और परमेश्वर सर्वत्र स्थित हैं॥ ५७-५८॥

अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे आवृत है और एक-दूसरेको आवृत करके ये आठ प्रकृतियाँ (मूर्तियाँ) स्थित हैं। इस प्रकार स्थित होकर ये प्रसर्गकालमें एक-दूसरेको ग्रसती हैं और सृष्टिकालमें साथ-साथ उत्पन्न होकर एक-दूसरेको धारण करती हैं। वे विकार आधार-आधेयभावसे विकारियोंमें रहते हैं। महेश्वर अव्यक्तसे परे हैं। अण्ड अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ है। सूर्यके समान प्रभावाले वे पुरुष परमेश्वर ही अण्डसे उत्पन्न हुए; उन पुरुषमें [उत्पद्यमान] सृष्टिका उत्पादन अपनी इच्छासे हुआ। वे ही प्रथम शरीरधारी और वे ही पुरुष कहे जाते है। सभी देवताओंसे नमस्कृत [भगवान्] विष्णु देवी लक्ष्मीके साथ शिवकी इच्छासे उनके बायें अंगसे उत्पन्न हुए और जगद्गुरु ब्रह्मा सरस्वतीके साथ [उनके] दाहिने अंगसे उत्पन्न हुए॥ ५९—६४॥

उस अण्डमें ये लोक और यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। नक्षत्रों, ग्रहों तथा वायुसहित सूर्य-चन्द्रमा भी इसीमें हैं। दोनों लोकालोक [पर्वत] तथा सब कुछ इस अण्डमें स्थित है। हे द्विजो! अब मैं सृष्टिमें कहे गये कालान्तरको बताता हूँ। इस कालान्तरको परमेश्वरका दिन जानना चाहिये और [उन] परमेश्वरकी पूर्णरूपसे उतने ही कालकी रात जाननी चाहिये। जो सृष्टि है, वही उनका दिन है और प्रलयकालको उनकी रात कहा गया है। ऐसा मानना चाहिये कि न तो उनका दिन है और न उनकी रात; [केवल] लोकोंके हितकी कामनासे [उनके द्वारा] रात-दिनका ऐसा उपचार किया जाता है॥ ६५—६८$^{1}/_{2}$॥

इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय, पाँच महाभूत, सभी

तस्मात्सर्वाणि भूतानि बुद्धिश्च सह दैवतैः।
अहस्तिष्ठन्ति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः॥ ७०

अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसम्भवः।
स्वात्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते॥ ७१

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ।
तमःसत्त्वरजोपेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ॥ ७२

अनुपृक्तावभूतान्तावोतप्रोतौ परस्परम्।
गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते॥ ७३

तिले यथा भवेत्तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्।
तथा तमसि सत्त्वे च रजस्यनुसृतं जगत्॥ ७४

प्राणी तथा बुद्धि—ये सब देवताओंके साथ बुद्धिमान् परमेश्वरके दिनके समय विद्यमान रहते हैं और दिनके अन्तमें विलीन हो जाते हैं। रात्रिका अन्त होनेपर पुनः विश्वकी उत्पत्ति होती है। उस समय व्यक्तके अपनी आत्मामें स्थित होनेपर तथा विकारके विलीन हो जानेपर प्रधान एवं पुरुष अपने लक्षणोंके साथ स्थित होते हैं। तम, सत्त्व तथा रजसे युक्त वे दोनों समत्वसे व्यवस्थित होकर एक-दूसरेमें मिलकर ओत-प्रोत हो जाते हैं। गुणोंकी साम्यस्थितिमें लयको जानना चाहिये और वैषम्यकी स्थितिमें सृष्टि कही जाती है। जैसे तिलमें तेल तथा दूधमें घी स्थित होता है, उसी प्रकार तम-सत्त्व-रजमें जगत् स्थित रहता है॥ ६९—७४॥

उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तथा।
अहर्मुखे प्रवृत्तश्च परः प्रकृतिसम्भवः॥ ७५

क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः।
प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्य स महेश्वरः॥ ७६

महेश्वरात् त्रयो देवा जज्ञिरे जगदीश्वरात्।
शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः॥ ७७

पूरी रात परात्पर माहेश्वरीकी उपासना करके दिनका आरम्भ होनेपर प्रकृतिसे उत्पन्न परमेश्वर सृष्टिके लिये प्रवृत्त होते हैं। वे परमेश्वर महेश्वर (शिव) प्रधान तथा पुरुषमें प्रवेश करके श्रेष्ठ योगके द्वारा क्षोभ उत्पन्न करते हैं। तब शाश्वत, परम गुह्य, सर्वात्मा तथा शरीर-धारी तीन देवता [उन] जगदीश महेश्वरसे उत्पन्न होते हैं॥ ७५—७७॥

एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः।
एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोऽग्नयः॥ ७८

परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः।
परस्परेण वर्तन्ते धारयन्ति परस्परम्॥ ७९

अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम्॥ ८०

ये ही तीनों [ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर] देवता, ये ही तीनों गुण, ये ही तीनों लोक तथा ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। ये देवता एक-दूसरेका आश्रय लेकर एक-दूसरेका अनुसरण करते हुए एक-दूसरेसे व्यवहार करते हैं और एक-दूसरेको धारण करते हैं। ये परस्पर संयोग करते हैं तथा एक-दूसरेके उपजीवी हैं; क्षणभरके लिये इनका वियोग नहीं होता है, ये एक-दूसरेका त्याग [कभी] नहीं करते हैं॥ ७८—८०॥

ईश्वरस्तु परो देवो विष्णुश्च महतः परः।
ब्रह्मा च रजसा युक्तः सर्गादौ हि प्रवर्तते॥ ८१

परः स पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिः सा परा स्मृता॥ ८२

महेश्वर सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, विष्णु महत्से परे हैं और ब्रह्मा रजोगुणसे युक्त होकर सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होते हैं। उस पुरुषको 'पर' जानना चाहिये और वह प्रकृति 'परा' कही गयी है॥ ८१-८२॥

अधिष्ठिता सा हि महेश्वरेण
प्रवर्तते चोद्यमने समन्तात्।
अनुप्रवृत्तस्तु महांस्तदेनां
चिरस्थिरत्वाद्विषयं श्रियः स्वयम्॥ ८३

महेश्वरके द्वारा अधिष्ठित वह प्रकृति सभी ओरसे सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होती है और उस समय चिरस्थायी होनेके कारण महत्तत्त्व ऐश्वर्यके विषयको स्वयं धारणकर इस प्रकृतिका अनुगमन करता है॥ ८३॥

प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकालः प्रवर्तते।
ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात्॥ ८४

संसिद्धः कार्यकरणे रुद्रश्चाग्रे ह्यवर्तत।
तेजसाप्रतिमो धीमानव्यक्तः सम्प्रकाशकः॥ ८५

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
ब्रह्मा च भगवाँस्तस्माच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः॥ ८६

संसिद्धः कार्यकरणे तथा वै समवर्तत।
एक एव महादेवस्त्रिधैवं स व्यवस्थितः॥ ८७

अप्रतीपेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण समन्वितः।
धर्मेण चाप्रतीपेन वैराग्येण च तेऽन्विताः॥ ८८

अव्यक्ताज्जायते तेषां मनसा यद्यदीहितम्।
वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यं सापेक्षत्वात्स्वभावतः॥ ८९

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तिकः स्मृतः।
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः॥ ९०

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् कालत्वे सङ्क्षिपत्यपि।
पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्त्रोऽवस्थाः प्रजापतेः॥ ९१

ब्रह्मा कमलगर्भाभो रुद्रः कालाग्निसन्निभः।
पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः॥ ९२

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च॥ ९३

नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च॥ ९४

त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते।
चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः॥ ९५

यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानयम्।
यच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते॥ ९६

सबसे पहले ईश्वरसे अधिष्ठित तथा सत्-असत्स्वरूप उस प्राकृत गुणवैषम्यके कारण सृष्टिका काल प्रवर्तित होता है। अपने तेजसे अनुपम, बुद्धिमान्, अव्यक्त तथा सम्यक् प्रकाश करनेवाले रुद्र सबसे पहले कार्य करनेमें तत्पर हुए। वे ही प्रथम शरीरधारी हैं और वे ही पुरुष कहे जाते हैं। चार मुखवाले तथा प्रजाओंके स्वामी भगवान् ब्रह्मा उन्हींसे उत्पन्न हुए और सृष्टिकार्य करनेमें समर्थ हुए। इस प्रकार वे एक ही महादेव तीन रूपोंमें व्यवस्थित हैं। वे [महादेव] अनुकूल ज्ञान तथा ऐश्वर्यसे युक्त हैं और वे तीनों देवता भी अनुकूल धर्म तथा वैराग्यसे युक्त हैं॥ ८४—८८॥

वशीभूत होने तथा सापेक्ष होनेके कारण उन देवताओंके मनमें जो-जो त्रिगुणात्मक सृष्टिविषयकी अभिलाषा थी, वह स्वभावसे ही अव्यक्तसे उत्पन्न हुई॥ ८९॥

वे परमेश्वर ही ब्रह्माके रूपमें चार मुखवाले तथा कालके रूपमें संहार करनेवाले कहे गये हैं। वे ही हजार सिरोंवाले पुरुष विष्णु भी हैं। इस प्रकार स्वयम्भू [परमेश्वर]-की तीन अवस्थाएँ हैं। ब्रह्माके रूपमें वे लोकोंका सृजन करते हैं, कालके रूपमें उनका संहार भी करते हैं और पुरुषके रूपमें उदासीन रहते हैं; उन प्रजापतिकी तीन अवस्थाएँ हैं। ब्रह्मा कमलगर्भकी आभावाले हैं, रुद्र कालाग्निके समान हैं तथा पुरुष [विष्णु] कमलके समान नेत्रवाले हैं—यह उन परमात्माका रूप है॥ ९०—९२॥

वे महेश्वर एक, दो, तीन तथा अनेक प्रकारके शरीर धारण करते हैं और उन्हें नष्ट भी कर देते हैं। वे महेश्वर अपनी लीलासे अनेक आकृति, क्रिया, रूप तथा नामवाले शरीरोंको धारण करते हैं और उन्हें नष्ट भी कर देते हैं॥ ९३-९४॥

वे [परमेश्वर] लोकमें तीन रूपोंमें विद्यमान हैं, इसलिये वे तीन गुणोंवाले कहे जाते हैं और चार भागोंमें विभक्त होनेके कारण 'चतुर्व्यूह' कहे गये हैं॥ ९५॥

ये विषयोंको प्राप्त करते हैं, ग्रहण करते हैं और उनका भक्षण कर जाते हैं; ऐसा इनका शाश्वत भाव

ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीरी सोऽस्य यत्प्रभुः।
स्वामित्वमस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात्॥ ९७

भगवान् भगवद्भावान्निर्मलत्वाच्छिवः स्मृतः।
परमः सम्प्रकृष्टत्वादवनादोमिति स्मृतः॥ ९८

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्यं सम्प्रवर्तते॥ ९९

सृजते ग्रसते चैव रक्षते च त्रिभिः स्वयम्।
आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः॥ १००

पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः।
देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः॥ १०१

सर्वगत्वाच्च देवानामवश्यत्वाच्च ईश्वरः।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते॥ १०२

क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानादेकत्वात्केवलः स्मृतः।
यस्मात्पुर्यां स शेते च तस्मात्पूरुष उच्यते॥ १०३

अनादित्वाच्च पूर्वत्वात्स्वयम्भूरिति संस्मृतः।
याज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात्॥ १०४

क्रमणः क्रमणीयत्वात्पालकश्चापि पालनात्।
आदित्यसंज्ञः कपिलो ह्यग्रजोऽग्निरिति स्मृतः॥ १०५

हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः।
तस्माद्धिरण्यगर्भत्वं पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते॥ १०६

है, इसलिये ये 'आत्मा' कहे जाते हैं॥ ९६॥

सर्वत्र गमन करनेके कारण ये ऋषि हैं; वे परमेश्वर इस शरीरके प्रभु हैं तथा इसपर उनका पूर्ण स्वामित्व है; अतः वे शरीरी हैं और सर्वत्र प्रवेश करनेके कारण वे विष्णु हैं॥ ९७॥

वे ऐश्वर्यमय भावसे युक्त होनेके कारण 'भगवान्' तथा निर्मल होनेके कारण 'शिव' कहे गये हैं। वे विशिष्ट होनेके कारण 'परम' तथा रक्षा करनेके कारण 'ओम्' कहे गये हैं। वे सब कुछ सम्यक् जाननेके कारण 'सर्वज्ञ' हैं तथा सर्वमय होनेके कारण 'सर्व' हैं; वे अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके तीनों लोकोंका संचालन करते हैं; वे तीन रूपोंसे स्वयं [जगत्‌का] सृजन करते हैं, पालन करते हैं तथा संहार करते हैं॥ ९८–९९ १/२॥

वे आदि (प्रारम्भ)-में प्रकट होनेके कारण 'आदिदेव' तथा अजन्मा होनेके कारण 'अज' कहे गये हैं। वे समस्त प्रजाओंकी रक्षा करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' कहे गये हैं। वे देवताओंमें [सबसे] महान् देवता हैं, इसलिये 'महादेव' कहे गये हैं। वे सर्वव्यापी होने तथा किसीके वशमें न होनेके कारण देवताओंके भी 'ईश्वर', बृहत् होनेके कारण 'ब्रह्मा' तथा अपने भूतत्व (अस्तित्व)-के कारण 'भूत' कहे जाते हैं। वे क्षेत्रोंका ज्ञान रखनेके कारण 'क्षेत्रज्ञ' तथा एकमात्र होनेके कारण 'केवल' कहे गये हैं। चूँकि वे पुरी (शरीर)-में शयन करते हैं, इसलिये 'पुरुष' कहे जाते हैं। वे अनादि होने तथा [सबसे] पहले होनेके कारण 'स्वयम्भू' कहे गये हैं। वे यजनके योग्य होनेके कारण 'यज्ञ' तथा इन्द्रियोंसे न दिखायी देनेवाली वस्तुओंको भी देखनेके कारण 'कवि' कहे जाते हैं॥ १००—१०४॥

वे क्रमणीय (पहुँचके योग्य) होनेके कारण 'क्रमण', [सबका] पालन करनेके कारण 'पालक', कपिलवर्ण होनेके कारण 'आदित्य' और सबसे पहले उत्पन्न होनेके कारण 'अग्नि' कहे गये हैं॥ १०५॥

हिरण्यमय अण्ड इनसे उत्पन्न हुआ और ये भी हिरण्यमय अण्डसे उत्पन्न हुए, अतः इस पुराणमें उन्हें

स्वयम्भुवोऽपि वृत्तस्य कालो विश्वात्मनस्तु यः।
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि॥ १०७

कालसंख्याविवृत्तस्य परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः।
तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते॥ १०८

कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परे तु ये।
यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहस्तं निबोधत॥ १०९

प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्तते द्विजाः।
यस्मिन् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवस्ते चतुर्दश॥ ११०

अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता॥ १११

पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या महेश्वरैः।
प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां श्रृणुत विस्तरम्॥ ११२

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च।
कथितानि भविष्यन्ति कल्पः कल्पेन चैव हि॥ ११३

अतीतानि च कल्पानि सोदर्काणि सहान्वयैः।
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता॥ ११४

आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टे च पृथिवीतले।
शान्ततारैकनीरेऽस्मिन्न प्राज्ञायत किञ्चन॥ ११५

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे।
तदा भवति वै ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ ११६

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥ ११७

सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदैक्षत।
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति॥ ११८

आपो नाराश्च सूनव इत्यपां नाम शुश्रुमः।
आपूर्य ताभिरयनं कृतवानात्मनो यतः॥ ११९

अप्सु शेते यतस्तस्मात्ततो नारायणः स्मृतः।
चतुर्युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्यतः॥ १२०

'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है॥ १०६॥

अतीत विश्वात्मा स्वयम्भूका जो काल है, उसकी गणना सौ वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती है। वर्तमान ब्रह्माकी कालसंख्याको परार्ध कहा गया है। उतने ही परिमाणवाला इनका काल [द्वितीय परार्ध] शेष रहता है; उसके अन्तमें जगत्का संहार हो जाता है। कल्पोंके हजारों करोड़ जो दिन व्यतीत हो गये हैं, उतने ही दूसरे अभी शेष हैं॥ १०७-१०८१/२॥

जो यह वाराहकल्प चल रहा है, उसके विषयमें सुनिये। हे द्विजो! यह वर्तमान कल्प उनमें प्रथम [कल्प] है, जिसमें स्वायम्भुव आदि चौदह मनु व्यवस्थित हैं। बीत चुके, वर्तमान तथा अभी होनेवाले जो मनु हैं, उन महेश्वर मनुओंद्वारा अपनी तपस्यासे प्रजाओंके साथ सातों द्वीपों तथा पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन पूरे हजार वर्षोंतक किया जाता है; अब उनका विस्तृत वर्णन सुनिये॥ १०९—११२॥

[हे ऋषियो!] एक मन्वन्तरके वर्णनसे सभी मन्वन्तरोंका तथा एक कल्पके वर्णनसे दूसरे कल्पका भी वर्णन हो जायगा। अपने वंशके राजाओंके साथ बीते हुए कल्प जिस रूपमें होते हैं, विद्वान्को वैसा ही तर्क (अनुमान) अनागत (भविष्य) कल्पोंके विषयमें भी कर लेना चाहिये॥ ११३-११४॥

पृथ्वीतलके नष्ट हो जानेपर सबसे पहले जल प्रादुर्भूत हुआ; विनष्ट नक्षत्रोंसे युक्त तथा उस विस्तृत जलमय ब्रह्माण्डमें कुछ भी नहीं मालूम पड़ता था। उस एकार्णव (प्रलयसागर)-में [समस्त] स्थावर-जंगमके विनष्ट हो जानेपर हजार नेत्रोंवाले, हजार पैरवाले, हजार सिरवाले तथा स्वर्णिम रंगवाले अतीन्द्रिय ब्रह्मा पुरुषरूपमें प्रकट हुए। उस समय नारायणसंज्ञक वे ब्रह्मा जलमें सोये हुए थे। पुनः सत्त्वगुणके उद्रेकके कारण जगे हुए उन ब्रह्माने लोकको शून्य देखा। लोग उन नारायणके प्रति इस श्लोकको उदाहृत करते हैं—जलका अर्थ है 'नार' तथा 'सूनु'—हमलोग जलके ये दो नाम सुनते हैं। उस जलसे पूरित करके उन्होंने अपना 'अयन' (निवासस्थान) बनाया और वे जलमें सोते हैं, इसलिये

शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्।
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा समाचरत्॥ १२१

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्तु सः।
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम्॥ १२२

अनुमानादसम्मूढो भूमेरुद्धरणं पुनः।
अकरोत्स तनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा॥ १२३

ततो महात्मा भगवान् दिव्यरूपमचिन्तयत्।
सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः॥ १२४

किन्नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं महीमिमाम्।
जलक्रीडानुसदृशं वाराहं रूपमाविशत्॥ १२५

अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्।
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥ १२६

अद्भिः सञ्छादितां भूमिं स तामाशु प्रजापतिः।
उपगम्योज्जहारैनामापश्चापि समाविशत्॥ १२७

सामुद्रा वै समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च।
रसातलतले मग्नां रसातलपुटे गताम्॥ १२८

प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्र्याभ्युज्जहार गाम्।
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः॥ १२९

मुमोच पूर्ववदसौ धारयित्वा धराधरः।
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता॥ १३०

तत्समा ह्युरुदेहत्वान्न मही याति सम्प्लवम्।
तत उत्क्षिप्य तां देवो जगतः स्थापनेच्छया॥ १३१

पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः।
पृथिवीं च समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन्॥ १३२

प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भूरि विस्तराः॥ १३३

शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना तेन संहताः।
निषिक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाभवन्॥ १३४

'नारायण' कहे गये हैं॥ ११५—११९½॥

हजार चतुर्युगीतक जलमें निवास करनेके पश्चात् रात्रिके अन्तमें उन्होंने सृष्टि करनेके उद्देश्यसे ब्रह्माका रूप धारण किया। ब्रह्माजी वायु होकर उस जलमें विचरण करने लगे, जैसे कि वर्षाऋतुमें रात्रिमें खद्योत विचरण करता है। तदनन्तर ज्ञानसम्पन्न उन ब्रह्माने अनुमानपूर्वक पृथ्वीको जलके भीतर गयी हुई जानकर पहलेके कल्पोंमें जैसा रूप धारण किया था, उस अन्य रूपको धारणकर पृथ्वीका उद्धार करनेका निश्चय किया। तत्पश्चात् महात्मा भगवान् [ब्रह्मा] उस दिव्य रूपका चिन्तन करने लगे। सभी ओरसे जलसे व्याप्त पृथ्वीको देखकर उन्होंने सोचा कि मैं कौन-सा रूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार करूँ॥ १२०—१२४½॥

उन्होंने जलक्रीड़ाके अनुरूप, सभी प्राणियोंसे अजेय, वेदमय तथा ब्रह्मसंज्ञक वाराहरूप धारण किया और पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश किया। उन [वाराहरूपधारी] प्रजापतिने जलसे घिरी हुई पृथ्वीके पास पहुँचकर उसे उठा लिया और समुद्रके जलको समुद्रोंमें तथा नदियोंके जलको नदियोंमें समाविष्ट कर दिया। इस प्रकार उन प्रभुने लोक-कल्याणके लिये रसातलमें गयी हुई तथा समुद्रतलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपने दंष्ट्रापर उठा लिया। इसके बाद उन धरणीधरने पृथ्वीको उसके [मूल] स्थानमें लाकरके पूर्वकी भाँति रखकर छोड़ दिया। वह पृथ्वी उस जलराशिके ऊपर विशाल नौकाकी भाँति स्थित हो गयी और उसीके समान विशाल देह होनेके कारण पृथ्वी [पुनः] डूब न सकी॥ १२५—१३०½॥

तत्पश्चात् कमलके समान नेत्रवाले भगवान्ने उसे उठा करके जगत्की स्थापनाकी इच्छासे पृथ्वीका विभाग करनेके लिये मनमें निश्चय किया। उन्होंने पृथ्वीको समतल करके पृथ्वीपर पर्वतोंको संग्रहीत किया। संवर्तक अग्निद्वारा पूर्व सृष्टिके दग्ध कर दिये जानेपर उस समय बहुत विस्तारवाले वे पर्वत उस अग्निसे विशीर्ण हो गये थे। उस एकार्णवमें वायुप्रवाहके द्वारा एकत्रित होकर शीतके कारण वे जहाँ-जहाँ जम

तदाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः।
गिरयो हि निगीर्णत्वाच्छयानत्वाच्छिलोच्चयाः॥ १३५

ततस्तेषु विकीर्णेषु कोटिशो हि गिरिष्वथ।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः॥ १३६

गये, वहाँ-वहाँ पर्वत बन गये। वे चलायमान न होनेके कारण 'अचल', पर्वोंसे युक्त होनेके कारण 'पर्वत', निगीर्ण होनेके कारण 'गिरि' तथा [भूमिपर] शयन करनेके कारण 'शिलोच्चय' कहे गये हैं। इस प्रकार [भगवान्] विश्वकर्मा प्रत्येक कल्पमें उन करोड़ों पर्वतोंके [इधर-उधर] बिखर जानेपर बार-बार उनका विभाग करते हैं॥ १३१—१३६॥

ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम्।
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पुनः सोऽथ व्यकल्पयत्॥ १३७

लोकान् प्रकल्पयित्वाथ प्रजासर्गं ससर्ज ह।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥ १३८

ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम्॥ १३९

बुद्ध्याश्च समकाले वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः॥ १४०

अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः।
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः॥ १४१

संवृतस्तमसा चैव बीजाङ्कुरवदावृतः।
बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धो निःसंज्ञ एव च॥ १४२

तदनन्तर उन्होंने समुद्रों, सातों द्वीपों तथा पर्वतोंसहित पृथ्वीको, भूः आदि चारों लोकोंको बनाया। इसके बाद लोकोंकी रचना करके उन्होंने प्रजासर्गकी रचना की, विविध प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छावाले स्वयम्भू भगवान् [ब्रह्मा]-ने उसी प्रकारकी सृष्टिकी रचना की, जैसा उन्होंने पहलेके कल्पोंमें किया था। सृष्टिके समय बुद्धिपूर्वक सर्गका चिन्तन करते हुए उन ब्रह्माकी बुद्धिसे तमोमय [अविद्यात्मक] सर्ग उत्पन्न हुआ; वह तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्ध—इन नामोंवाला है। इस प्रकार पाँच पर्वोंवाली यह अविद्या उन महात्मासे उत्पन्न हुई। ध्यान करते हुए अभिमानी ब्रह्माका वह सर्ग पाँच प्रकारसे अवस्थित हुआ। वह तमसे आवृत, बीजांकुरकी भाँति ढका हुआ, बाहर तथा भीतरसे प्रकाशरहित, स्तब्ध तथा निःसंज्ञ (चेतनाशून्य) था॥ १३७—१४२॥

यस्मात्तेषां वृता बुद्धिर्दुःखानि करणानि च।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः॥ १४३

उन [पर्वतों]-की बुद्धि ढँकी हुई थी और उनके दुःख तथा क्रिया-कलाप भी ढँके हुए थे, अतः संवृतात्मा (आवृत आत्मावाले) वे नग (पर्वत) प्रथम उत्पन्न (मुख्य) कहे गये हैं॥ १४३॥

मुख्यसर्गं तथाभूतं दृष्ट्वा ब्रह्मा ह्यसाधकम्।
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततोऽन्यं सो ह्यमन्यत॥ १४४

तस्याभिध्यायतश्चैव तिर्यक्स्रोता ह्यवर्तत।
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः॥ १४५

पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः।
तस्याभिध्यायतोऽन्यं वै सात्त्विकः समवर्तत॥ १४६

ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स वै चोर्ध्वं व्यवस्थितः।
यस्मात्प्रवर्तते चोर्ध्वमूर्ध्वस्रोतास्ततः स्मृतः॥ १४७

उस प्रकारके प्रथम सर्गको कार्यहेतु व्यर्थ समझकर वे ब्रह्मा अप्रसन्नचित्त हो गये। तब वे अन्य सर्गका विचार करने लगे। ऐसा चिन्तन करते हुए उन ब्रह्मासे तिर्यक्स्रोत (बहिर्मुख इन्द्रियप्रवाहवाला)-सर्ग उत्पन्न हुआ। वह [सर्ग] तिर्यक् प्रवृत्तिवाला था, इसलिये उसे तिर्यक्स्रोत कहा गया है। हे द्विजो! वे उत्पथग्राही पशु-पक्षी आदिके रूपमें प्रसिद्ध हुए। इसके बाद अन्य सर्गका ध्यान करते हुए उन ब्रह्मासे ऊर्ध्वस्रोत (ऊर्ध्व इन्द्रियप्रवाहवाला) तीसरा सात्त्विक सर्ग उत्पन्न हुआ;

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्त्रोतोभवाः स्मृताः॥ १४८

ते सत्त्वस्य च योगेन सृष्टाः सत्त्वोद्भवाः स्मृताः।
ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयो वै देवसर्गस्तु स स्मृतः॥ १४९

प्रकाशाद्बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्त्रोतोद्भवाः स्मृताः।
ते ऊर्ध्वस्त्रोतसो ज्ञेयास्तुष्टात्मानो बुधैः स्मृताः॥ १५०

ऊर्ध्वस्त्रोतस्सु सृष्टेषु देवेषु वरदः प्रभुः।
प्रीतिमानभवद् ब्रह्मा ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत॥ १५१

ससर्ज सर्गमन्यं हि साधकं प्रभुरीश्वरः।
ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा॥ १५२

प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्त्रोतास्तु साधकः।
यस्मादर्वाक् न्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्त्रोतसस्तु ते॥ १५३

ते च प्रकाशबहुलास्तमःपृक्ता रजोऽधिकाः।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः॥ १५४

संवृता बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते।
लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते ह्यष्टधा तु व्यवस्थिताः॥ १५५

सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्मिणः।
इत्येष तैजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्त्रोतः प्रकीर्तितः॥ १५६

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्त्या च सिद्ध्या तुष्ट्या तथैव च॥ १५७

स्थावरेषु विपर्यासस्तिर्यग्योनिषु शक्तितः।
सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः॥ १५८

इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः।
भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते॥ १५९

वह ऊर्ध्वरूपसे व्यवस्थित था। चूँकि यह ऊर्ध्वभावसे कार्य करता था, अतः यह [सर्ग] ऊर्ध्वस्रोत कहा गया है। वे सुख-प्रीतिकी अधिक प्रवृत्तिवाले, बाहर तथा भीतरसे संवृत और बाहर तथा भीतरसे प्रकाशमय थे, इसलिये वे ऊर्ध्वस्रोतसे उत्पन्न कहे गये हैं। वे सत्त्वगुणके योगसे सृजित किये गये, इसलिये वे सत्त्वोद्भव कहे गये हैं। ऊर्ध्वस्रोत नामक वह तीसरा सर्ग देवसर्ग कहा गया है। बाहर तथा भीतर प्रकाशसे युक्त रहनेके कारण वे ऊर्ध्वस्रोतसे उत्पन्न कहे गये हैं। ऊर्ध्वस्रोतके रूपमें ज्ञेय वे लोग विद्वानोंके द्वारा सन्तुष्ट आत्मावाले कहे गये हैं॥ १४४—१५०॥

ऊर्ध्वस्रोतवाले देवताओंके सृष्ट हो जानेपर वर प्रदान करनेवाले प्रभु भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उसके बाद वे दूसरी सृष्टिका विचार करने लगे। तब प्रभु ब्रह्माने अन्य साधक सर्गका सृजन किया। उस समय ध्यान करते हुए उन सत्यके अभिध्यायी व्यक्त ब्रह्मासे अर्वाक्स्रोत (बाहर तथा भीतरसे इन्द्रियप्रवाहवाला) साधक सर्ग उत्पन्न हुआ। इस सृष्टिके लोग अर्वाक्रूपसे कार्यमें प्रवृत्त हुए, इसलिये वे अर्वाक्स्रोता कहे गये हैं। वे प्रकाशबाहुल्यवाले, तमोगुणसे युक्त तथा रजोगुणकी अधिकतावाले थे, इसलिये वे बहुत दुःखसे युक्त थे तथा बार-बार कर्म करनेवाले थे। बाहर तथा भीतरसे संवृत वे लोग साधक (कार्यसाधनमें तत्पर) मनुष्य थे; वे तारक आदि लक्षणोंके द्वारा आठ प्रकारसे व्यवस्थित हुए। सिद्ध आत्मावाले वे मनुष्य गन्धर्वोंके समान गुणधर्मवाले थे। इस अर्वाक्स्रोत सृष्टिको 'तैजस' सर्ग कहा गया है॥ १५१—१५६॥

पाँचवाँ सर्ग 'अनुग्रह' है; यह विपर्यय, शक्ति, सिद्धि तथा तुष्टिके द्वारा चार प्रकारसे व्यवस्थित है। स्थावरों (वृक्ष आदि)-में विस्तारके कारण भेद होता है, पशु आदिमें सामर्थ्यसे होता है, मनुष्य प्रारब्धजन्य सिद्धिसे युक्त होते हैं और ऋषियों तथा देवताओंमें सम्पूर्ण तुष्टिके द्वारा चतुर्थ भेद होता है। चार प्रकारवाला यह प्राकृत (प्रकृतिनिरूपण विषयवाला) तथा विकारको प्राप्त अनुग्रह [नामक] सर्ग श्रेष्ठ कहा गया है॥ १५७-१५८$^{1}/_{2}$॥

निवृत्तं वर्तमानं च तेषां जानन्ति वै पुनः।
भूतादिकानां भूतानां सप्तमः सर्ग एव च॥ १६०

तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते॥ १६१

विपर्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः॥ १६२

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः॥ १६३

इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थश्च मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥ १६४

ततोऽर्वाक्स्त्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः॥ १६५

पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥ १६६

अबुद्धिपूर्वकाः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट् पुनर्ब्रह्मणस्तु ते॥ १६७

विस्तरानुग्रहः सर्गः कीर्त्यमानो निबोधत।
चतुर्धावस्थितः सोऽथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः॥ १६८

इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः।
परस्परानुरक्ताश्च कारणैश्च बुधैः स्मृताः॥ १६९

अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्।
ऋभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ॥ १७०

पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ।
व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणौ लोकसाक्षिणौ॥ १७१

मनु आदिका सर्ग भूतोंका छठा सर्ग कहा जाता है। उन उत्पद्यमान भूतोंके प्राक्कर्म, वर्तमान तथा भविष्यको वे भूतादिक निश्चित रूपसे जानते हैं। भूतादिक भूतों (मनुष्यों)-का सातवाँ सर्ग है। [पूर्वोक्त] उन सभी भूतादिकोंको निःस्पृह, दानशील, कर्मफलका आस्वादन करनेवाला तथा अशील जानना चाहिये। भूतादि (अहंकार) अज्ञानसे तथा विष्णुमायासे व्यवस्थित होता है॥ १५९—१६१ 1/2 ॥

महत्से होनेवाले सर्गको ब्रह्माका प्रथम सर्ग कहा गया है। तन्मात्राओंका जो दूसरा सर्ग है, वह भूतसर्ग कहा जाता है। वैकारिक तीसरा सर्ग ऐन्द्रियसर्ग कहा गया है। यह सब प्राकृत सर्ग है, जो बुद्धिपूर्वक हुआ है। चौथा मुख्य सर्ग है; सभी स्थावर मुख्य कहे गये हैं। इसके बाद [तिर्यक्स्त्रोत, ऊर्ध्वस्त्रोत तथा अर्वाक्स्त्रोतके क्रमसे] अर्वाक्-स्त्रोतोंका सर्ग है; उनमें सातवाँ जो अर्वाक्स्त्रोतोंका सर्ग है, वह मानुषसर्ग है। आठवाँ अनुग्रहसर्ग है; वह सात्त्विक, तामस तथा राजस भेदोंवाला होता है [सात्त्विकको देवताओंमें, तामसको पशुओंमें तथा राजसको मनुष्योंमें जानना चाहिये]। इस प्रकार ये पाँच वैकृत सर्ग तथा तीन प्राकृत सर्ग कहे गये हैं। [सनक आदिका] जो नौवाँ सर्ग है, वह प्राकृत तथा वैकृत [दोनों रूपोंवाला] कहा गया है। ब्रह्माके जो तीन प्राकृतसर्ग कहे गये हैं, वे अबुद्धिपूर्वक प्रवर्तित हुए हैं और जो [शेष] छः सर्ग हैं, वे बुद्धिपूर्वक प्रवर्तित हुए हैं॥ १६२—१६७॥

[हे ऋषियो!] अब मैं विस्तृत अनुग्रहसर्गका वर्णन कर रहा हूँ; आपलोग उसे जान लें। वह सभी भूतोंमें पूर्णरूपसे चार प्रकारसे अवस्थित है। ये जो प्राकृत तथा वैकृत [कुल] नौ सर्ग कहे गये हैं, उन्हें विद्वानोंने कारणोंके द्वारा एक-दूसरेसे अनुरक्त (सम्बद्ध) बताया है॥ १६८-१६९॥

आरम्भमें ब्रह्माजीने अपने ही सदृश मानस पुत्रोंका सृजन किया। उनमेंसे सबसे पहले उत्पन्न तथा सभीके पूर्वज ऋभु तथा सनत्कुमार—ये दोनों ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) थे। आठवाँ कल्प व्यतीत होनेपर प्राचीन एवं लोकसाक्षी

तौ वाराहे तु भूर्लोके तेजः सङ्क्षिप्य धिष्ठितौ।
तावुभौ मोक्षकर्माणावारोग्यात्मानमात्मनि॥ १७२

प्रजां धर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ।
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमारः स इहोच्यते॥ १७३

तस्मात्सनत्कुमारेति नामास्येह प्रकीर्तितम्।
सनन्दं सनकं चैव विद्वांसं च सनातनम्॥ १७४

विज्ञानेन निवृत्तास्ते व्यवर्तन्त महौजसः।
सम्बुद्धाश्चैव नानात्वे अप्रवृत्ताश्च योगिनः॥ १७५

असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः।
ततस्तेषु व्यतीतेषु ततोऽन्यान् साधकान् सुतान्॥ १७६

मानसानसृजद् ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः।
आभूतसम्प्लवावस्था यैरियं विधृता मही॥ १७७

आपोऽग्निं पृथिवीं वायुमन्तरिक्षं दिवं तथा।
समुद्रांश्च नदीश्चैव तथा शैलवनस्पतीन्॥ १७८

ओषधीनां तथात्मानो वल्लीनां वृक्षवीरुधाम्।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः सन्धिरात्र्यहान्॥ १७९

अर्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च।
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः॥ १८०

देवानृषींश्च महतो गदतस्तान्निबोधत।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥ १८१

दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजन्मानसान्नव।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥ १८२

तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम्।
स्थानानि कल्पयामास पूर्ववत्पद्मसम्भवः॥ १८३

ततोऽसृजच्च सङ्कल्पं धर्मञ्चैव सुखावहम्।
सोऽसृजद्व्यवसायात्तु धर्मं देवो महेश्वरः॥ १८४

सङ्कल्पञ्चैव सङ्कल्पात्सर्वलोकपितामहः।
मानसश्च रुचिर्नाम विजज्ञे ब्रह्मणः प्रभोः॥ १८५

वे दोनों वाराहकल्पमें [अपने] तेजको संक्षिप्त करके पृथ्वीलोकमें अधिष्ठित हुए। मोक्षके लिये कर्मपरायण वे दोनों [मानसपुत्र] आत्माको अपनेमें स्थिर करके प्रजा, धर्म तथा कामका त्याग करके वैराग्यमें स्थित हो गये। सनत्कुमार जिस रूपमें उत्पन्न हुए थे, वैसे ही कुमार-रूपमें विद्यमान कहे जाते हैं, इसलिये इनका नाम 'सनत्कुमार' प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार ब्रह्माने [जिन] सनन्द, सनक तथा विद्वान् सनातनको उत्पन्न किया था, वे विशेष ज्ञानके द्वारा सांसारिकतासे निवृत्त रहे। महान् ओजवाले वे सब अविद्यापरिकल्पित भेदके प्रति सम्बुद्ध होकर अर्थात् उसे मिथ्या समझकर प्रवृत्तिसे रहित योगी हुए। प्रजाओंकी सृष्टि किये बिना ही वे मोक्षको प्राप्त हुए॥ १७०—१७५ $^{1}/_{2}$॥

उन सबके मोक्षको प्राप्त हो जानेपर ब्रह्माने अपने स्थानके अभिमानी तथा कार्यक्षम अन्य मानस पुत्रोंका सृजन किया, जिन्होंने प्रलयपर्यन्त इस पृथ्वीको धारण किया। इसके बाद ब्रह्माने जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, समुद्रों, नदियों, पर्वतों, वनस्पतियों, औषधियों, वल्लियों, वृक्षों, झाड़ियों, लताओं, काष्ठाओं, कलाओं, मुहूर्तों, सन्धियों, रात्रि, दिन, पक्षों, मासों, अयनों, वर्षों तथा युगोंका सृजन किया। अपने स्थानोंके अभिमानी वे सब अपने स्थानोंके नामवाले कहे गये हैं॥ १७६—१८०॥

अब मैं महान् देवताओं तथा ऋषियोंके विषयमें बता रहा हूँ; आपलोग उन्हें जान लें। उन [ब्रह्मा]-ने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ—इन नौ मानस पुत्रोंका भी सृजन किया। ये लोग पुराणमें नौ ब्रह्माके रूपमें निर्धारित किये गये हैं। ब्रह्माने पूर्वकी भाँति ब्रह्माके स्वरूपवाले तथा ब्रह्मवादी उन सभीके लिये स्थानोंको कल्पित किया। इसके बाद उन्होंने सुख देनेवाले धर्म एवं संकल्पका भी सृजन किया। सभी लोकोंके पितामह देव महेश्वरने व्यवसायसे धर्मका तथा संकल्पके द्वारा संकल्पका सृजन किया। प्रभु ब्रह्माके मनसे [प्रजापति] रुचि नामक मानसपुत्र भी उत्पन्न हुआ॥ १८१—१८५॥

प्राणाद् ब्रह्मासृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम्।
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः॥ १८६

शिरसोऽङ्गिरसश्चैव श्रोत्रादत्रिं तथासृजत्।
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं पुनः॥ १८७

समानजो वसिष्ठश्च अपानान्निर्ममे क्रतुम्।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा दिव्या एकादश स्मृताः॥ १८८

धर्मादयः प्रथमजाः सर्वे ते ब्रह्मणः सुताः।
भृग्वादयस्तु ते सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः॥ १८९

गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः।
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः॥ १९०

क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः।
ऋभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ॥ १९१

पूर्वोत्पन्नौ परं तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ।
व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणौ लोकसाक्षिणौ॥ १९२

विराजेतामुभौ लोके तेजः सङ्क्षिप्य धिष्ठितौ।
तावुभौ योगकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि॥ १९३

प्रजां धर्मं च कामञ्च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ।
यथोत्पन्नः स एवेह कुमारः स इहोच्यते॥ १९४

तस्मात्सनत्कुमारेति नामास्येह प्रतिष्ठितम्।
ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः॥ १९५

तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह।
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः॥ १९६

ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम्।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत्॥ १९७

ततस्तु युञ्जतस्तस्य तमोमात्रसमुद्भवम्।
समभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नेन प्रजापतेः॥ १९८

ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः॥ १९९

ब्रह्माजीने [अपने] प्राणसे दक्षका तथा दोनों नेत्रोंसे मरीचिका सृजन किया। ऋषि भृगु जलमें जन्म लेनेवाले ब्रह्माके हृदयसे उत्पन हुए। उन्होंने सिरसे अंगिराको, कानसे अत्रिको, उदानवायुसे पुलस्त्यको तथा व्यानवायुसे पुलहको उत्पन्न किया। वसिष्ठ उनके समानवायुसे उत्पन्न हुए। उन्होंने अपानवायुसे क्रतुका सृजन किया। ये [संकल्प, धर्म, मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ] ब्रह्माके ग्यारह दिव्य पुत्र कहे गये हैं॥ १८६—१८८॥

प्रथम उत्पन्न धर्म आदि ब्रह्माजीके पुत्र हैं, जो भृगु आदि नौ [मानस पुत्र] सृजित किये गये, वे ब्रह्मवादी हुए। वे प्राचीन गृहस्थ थे और उन्हींके द्वारा धर्म प्रवर्तित हुआ। उनके दिव्य, देवगुणसम्पन्न, क्रियावान्, सन्तानवाले तथा महर्षियोंसे अलंकृत बारह वंश हुए॥ १८९-१९०½॥

ऋभु तथा सनत्कुमार—ये दोनों ब्रह्मचारी थे; ये उनसे पहले उत्पन्न हुए थे और सभीके पूर्वज थे। आठवें कल्पके व्यतीत होनेपर प्राचीन तथा लोकोंके साक्षी वे दोनों [अपने] तेजको संक्षिप्त करके लोकमें प्रतिष्ठित होकर विराजमान हुए। योगकर्मपरायण वे दोनों आत्माको अपनेमें आरोपित करके प्रजा, धर्म तथा कामका त्याग करके वैराग्यमें स्थित हो गये। वे सनत् जिस रूपमें उत्पन्न हुए थे, वैसे ही सदा रहनेके कारण इस लोकमें 'कुमार' कहे जाते हैं और इसीलिये उनका 'सनत्कुमार'—यह नाम प्रसिद्ध हो गया॥ १९१—१९४½॥

इसके बाद ध्यान करते हुए उन ब्रह्माकी मानस प्रजाएँ (सन्तानें) उत्पन्न हुईं। पुनः उनके शरीरसे उत्पन्न उन कार्यों तथा कारणोंके साथ बुद्धिमान् ब्रह्माके अंगोंसे क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए। इसके बाद देवता, असुर, पितर, मनुष्य—इन चार अम्भोंकी सृष्टि करनेकी इच्छावाले ब्रह्माने अपने मनको विचारयुक्त किया। तदनन्तर मनको विचारयुक्त करते हुए तथा प्रयत्नपूर्वक तमोमात्रसे उत्पन्न होनेवाले सर्गका चिन्तन करते हुए उन प्रजापतिकी जंघासे सर्वप्रथम असुरपुत्र उत्पन्न हुए।

यया सृष्टासुराः सर्वे तां तनुं स व्यपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत॥ २००

सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिर्नियामिका।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वपन्त्युत॥ २०१

सृष्ट्वासुरांस्ततः सो वै तनुमन्यामगृह्णत।
अव्यक्तां सत्त्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्यपूजयत्॥ २०२

ततस्तां युञ्जतस्तस्य प्रियमासीत्प्रजापतेः।
ततो मुखात्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः॥ २०३

यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः।
धातुर्दिविति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते॥ २०४

यस्मात्तस्य तु दीव्यन्तो जज्ञिरे तेन देवताः।
देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत॥ २०५

उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्योऽहः समजायत।
तस्मादहो धर्मयुक्तं देवताः समुपासते॥ २०६

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां सोऽभ्यमन्यत।
पितृवन्मन्यमानस्य पुत्रांस्तान् ध्यायतः प्रभोः॥ २०७

पितरो ह्युपपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरन्तरेऽभवन्।
तस्मात्ते पितरो देवाः पितृत्वं तेन तेषु तत्॥ २०८

यया सृष्टास्तु पितरस्तनुं तां स व्यपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत॥ २०९

यस्मादहर्देवतानां रात्रिर्या सासुरी स्मृता।
तयोर्मध्ये तु पैत्री या तनुः सा तु गरीयसी॥ २१०

तस्माद्देवासुराः सर्वे ऋषयो मानवास्तथा।
उपासन्ते मुदायुक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम्॥ २११

हे विप्रो! 'असुः' को प्राण कहा गया है; इसलिये उससे जन्म लेनेके कारण वे असुर हुए। जिस शरीरसे उन्होंने सभी असुरोंको उत्पन्न किया था, उस शरीरको छोड़ दिया। तब उनके द्वारा त्यक्त वह शरीर तत्काल रात्रि हो गयी। वह रात्रि अन्धकारकी अधिकतासे युक्त होती है, अतः वह नियामिका (सबको शयन करानेवाली) है। प्रजाएँ रातमें अन्धकारसे आवृत हो जाती हैं, इसलिये वे सोती हैं॥ १९५—२०१॥

तत्पश्चात् असुरोंका सृजन करके उन्होंने अन्य अव्यक्त तथा सत्त्वबहुल शरीर धारण किया; इसलिये उन्होंने उसकी पूजा की। तब उस शरीरको धारण करनेवाले उन ब्रह्माको प्रसन्नता हुई। इसके बाद क्रीड़ा करते हुए ब्रह्माके मुखसे देवता उत्पन्न हुए। चूँकि क्रीड़ा करते हुए इन ब्रह्मासे वे उत्पन्न हुए, इसलिये वे देवता कहे गये हैं। जो 'दिव्' धातु कही गयी है, वह क्रीड़ाके अर्थमें जानी जाती है। उन ब्रह्मासे वे क्रीड़ा करते हुए उत्पन्न हुए, इसलिये देवता कहे जाते हैं॥ २०२—२०४१/२॥

देवताओंका सृजन करके देवेशने अन्य शरीर धारण किया और उनके द्वारा छोड़ा गया वह [पहलेवाला] शरीर शीघ्र ही दिन बन गया। इसलिये देवतालोग धर्मयुक्त दिनकी उपासना करते हैं। उन्होंने सत्त्वगुणमय उस अन्य शरीरकी भी पूजा की। पिताके समान मानते हुए तथा उन [उत्पद्यमान] पुत्रोंका ध्यान करते हुए प्रभु (ब्रह्मा)-के [दाहिने-बाएँ] दोनों पार्श्वभागसे दिन तथा रातके बीच पितर उत्पन्न हुए, इसलिये वे पितर देवता हैं और उनमें पितृत्व है॥ २०५—२०८॥

उन्होंने जिस कायासे पितरोंका सृजन किया था, उस कायाको त्याग दिया। उनके द्वारा त्यक्त वह काया शीघ्र ही सन्ध्या हो गयी। चूँकि दिन देवताओंका होता है और जो रात है, वह आसुरी कही गयी है; अतः उन दोनोंके मध्य जो पैत्री (पितरोंकी) काया है, वह सबसे श्रेष्ठ है। इसी कारणसे सभी देवता, असुर, ऋषि तथा मनुष्य प्रसन्नतासे युक्त होकर रात्रि तथा दिनके मध्यकी काया (सन्ध्या)-की उपासना करते हैं॥ २०९—२११॥

ततो ह्यन्यां पुनर्ब्रह्मा तनुं वै समगृह्णत।
रजोमात्रात्मिकायां तु मनसा सोऽसृजत्प्रभुः॥ २१२

रजःप्रियांस्ततः सोऽथ मानसानसृजत्सुतान्।
मनस्विनस्ततस्तस्य मानवा जज्ञिरे सुताः॥ २१३

सृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनुं तामपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत॥ २१४

यस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः।
इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना॥ २१५

सद्यो रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे।
ज्योत्स्ना सन्ध्या अहश्चैव सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्॥ २१६

तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मान्निशात्मिका।
तस्माद्देवा दिवातन्वा तुष्ट्या सृष्टा मुखात्तु वै॥ २१७

यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन वै दिवा।
तन्वा ययासुरान् रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः॥ २१८

प्राणेभ्यो निशिजन्मानो बलिनो निशि तेन ते।
एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह॥ २१९

पितॄणां मानवानां च अतीतानागतेषु वै।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवन्ति हि॥ २२०

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्यम्भांसि तानि वै।
भान्ति यस्मात्ततोऽम्भांसि शब्दोऽयं सुमनीषिभिः॥ २२१

भातिर्दीप्तौ निगदितः पुनश्चाथ प्रजापतिः।
सोऽम्भांस्येतानि सृष्ट्वा तु देवमानुषदानवान्॥ २२२

पितॄंश्चैवासृजत्तन्वा आत्मना विविधान् पुनः।
तामुत्सृज्य तनुं ज्योत्स्नां ततोऽन्यां प्राप्य स प्रभुः॥ २२३

मूर्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्यपूजयत्।
अन्धकारे क्षुधाविष्टांस्ततोऽन्यान् सोऽसृजत्प्रभुः॥ २२४

तेन सृष्टाः क्षुधात्मानो अम्भांस्यादातुमुद्यताः।
अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवन्तस्तु तेषु ये॥ २२५

इसके बाद ब्रह्माने अन्य शरीर धारण किया। उन प्रभुने उस राजस तनुसे मानसिक सृजन करना आरम्भ किया। उन्होंने रजोगुणप्रिय मानस पुत्रोंका सृजन किया। तब उनके मनस्वी मानवपुत्र उत्पन्न हुए। उन सन्तानोंकी सृष्टि करके उन्होंने पुनः उस कायाका त्याग कर दिया। तब उनके द्वारा त्यक्त वह काया तुरंत ज्योत्स्ना हो गयी; इसीलिये ज्योत्स्नाका उद्भव होनेपर प्रजाएँ प्रसन्न हो जाती हैं॥ २१२—२१४½॥

इस प्रकार उन महात्मा [ब्रह्मा]-ने जब इन शरीरोंका त्याग किया, तब तुरंत रात, दिन, सन्ध्या तथा ज्योत्स्ना उत्पन्न हो गये। ज्योत्स्ना, सन्ध्या तथा दिन—ये तीनों सत्त्वमात्रात्मक हैं। रात्रि तमोमात्रात्मिका है, इसलिये वह निशास्वरूपिणी है। अतः देवतालोग दिनके तनुसे सुखपूर्वक ब्रह्माके मुखसे सृजित हुए। चूँकि उनका जन्म दिनमें हुआ, इसलिये वे दिनमें बलशाली होते हैं। प्रभुने अपने शरीरके द्वारा जघनसे असुरोंको रातमें उत्पन्न किया था, अतः प्राणोंसे रातमें जन्म लेनेवाले वे [असुर] रातमें बलवान् होते हैं। ये ही समय बीते हुए तथा आगे आनेवाले समस्त मन्वन्तरोंमें होनेवाले देवताओं, असुरों, पितरों एवं मानवोंके निमित्त (कारणभूत) होते हैं॥ २१५—२२०॥

ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन, सन्ध्या—ये चारों अम्भस्वरूप हैं; वे भासित होते हैं, इसलिये अम्भ हैं। विद्वानोंने 'भा' धातुको दीप्ति (प्रकाश) अर्थमें कहा है, उसीसे यह 'अम्भ' शब्द व्युत्पन्न है। उन ब्रह्माने इन अम्भोंका सृजन करके पुनः अपने शरीरसे विविध देवताओं, मनुष्यों, दानवों तथा पितरोंका सृजन किया था॥ २२१-२२२½॥

इसके बाद प्रभु [ब्रह्मा]-ने उस ज्योत्स्नामय शरीरका त्याग करके अन्य तमोमय तथा रजोमय शरीर धारण करके पुनः इसका पूजन किया। उन प्रभुने अन्धकारमें क्षुधापीड़ित अन्य लोगोंका सृजन किया। उनके द्वारा सृजित ये क्षुधायुक्त लोग [उन] अम्भोंको ग्रहण करनेके लिये उद्यत हुए। उनमें जिन्होंने कहा—'हम इन अम्भोंकी रक्षा करते हैं' वे राक्षस नामवाले हुए;

राक्षसा नाम ते यस्मात् क्षुधाविष्टा निशाचराः।
येऽब्रुवन्यक्षमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम्॥ २२६

तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका गूढकर्मणा।
रक्षेति पालने चापि धातुरेष विभाष्यते॥ २२७

एवं च यक्षतिर्धातुर्भक्षणे स निरुच्यते।
तं दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्णास्तु धीमतः॥ २२८

ते शीर्णाश्चोत्थिता ह्यूर्ध्वं ते चैवारुरुधुः प्रभुम्।
हीनास्तच्छिरसो बाला यस्माच्चैवावसर्पिणः॥ २२९

व्यालात्मानः स्मृता बाला हीनत्वादहयः स्मृताः।
पतत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवावसर्पणात्॥ २३०

तस्य क्रोधोद्भवो योऽसौ अग्निगर्भः सुदारुणः।
स तु सर्पान् सहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकः॥ २३१

सर्पान् सृष्ट्वा ततः क्रुद्धः क्रोधात्मानो विनिर्ममे।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः॥ २३२

भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात्।
प्रसन्नं गायतस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे यदा॥ २३३

धयतीत्येष वै धातुः गानत्वे परिपठ्यते।
धयन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः॥ २३४

अष्टस्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः।
ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसासृजत्॥ २३५

स्वच्छन्दतः स्वच्छन्दांसि वयसा च वयांसि च।
पशून् सृष्ट्वा स देवेशोऽसृजत्पक्षिगणानपि॥ २३६

मुखतोऽजाः ससर्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत्।
गाश्चैवाथोदराद् ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे॥ २३७

पद्भ्यां चाश्वान् समातङ्गान् रासभानावयान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव तथान्याश्चैव जातयः॥ २३८

क्योंकि वे क्षुधापीड़ित तथा रात्रिमें विचरण करनेवाले थे। उनमेंसे प्रसन्न होकर जिन्होंने परस्पर यह कहा—'हम इन अम्भोंका भक्षण करते हैं' वे अपने उस कर्मके कारण यक्ष तथा गूढ़ कर्मके कारण गुह्यक हुए। 'रक्ष' यह धातु पालन अर्थमें जानी जाती है और इसी प्रकार 'यक्षति' धातु भक्षण अर्थमें कही जाती है॥ २२३—२२७$^{1}/_{2}$॥

उस सृष्टिको देखकर अप्रसन्नतासे युक्त उन बुद्धिमान् ब्रह्माके बाल शीर्ण हो गये। वे शीर्ण बाल [पुनः] ऊपर उठ गये और उन्होंने प्रभुको अवरुद्ध कर दिया। वे बाल सिरसे हीन हो गये थे, इसलिये [नीचेकी ओर] अपसर्पण करनेवाले हो गये; वे बाल व्यालस्वरूप कहे गये। वे हीन होनेके कारण 'अहि', गिरनेके कारण 'पन्नग' और अपसर्पण करनेके कारण 'सर्प' कहे गये हैं। उनके क्रोधसे उत्पन्न जो महाभयंकर विषमय अग्निगर्भ था, वह साथमें उत्पन्न हुए सर्पोंमें प्रविष्ट हो गया॥ २२८—२३१॥

तब सर्पोंको देखकर ब्रह्माजी क्रुद्ध हुए और उन्होंने क्रोधमय स्वरूपवालोंको उत्पन्न किया। वे कपिश वर्ण, अत्यन्त उग्र तथा मांसका भक्षण करनेवाले भूत थे। वे भूतत्वके कारण 'भूत' तथा मांसभक्षण करनेके कारण 'पिशाच' कहे गये हैं। प्रसन्नतापूर्वक गान करते हुए उन ब्रह्मासे गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। 'धयति'—यह धातु गान अर्थमें पढ़ी जाती है; वे वाणीका गान करते हुए उत्पन्न हुए, इसलिये 'गन्धर्व' कहे गये हैं॥ २३२—२३४॥

इन आठ देवयोनियोंको सृजित करनेके अनन्तर उन प्रभुने स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी आयुसे अन्य पक्षियोंका सृजन किया। पुनः उन्होंने स्वच्छन्दतापूर्वक स्वेच्छासे विचरण करनेवाले पक्षियोंका सृजन किया। इस प्रकार उन देवेशने पशुओंकी सृष्टि करके पक्षिसमुदायका भी सृजन किया था॥ २३५-२३६॥

ब्रह्माने [अपने] मुखसे बकरियोंका तथा वक्ष (छाती)से भेड़ोंका सृजन किया। उन्होंने उदरसे तथा पार्श्वभागोंसे गायोंकी रचना की। उन्होंने [अपने] पैरोंसे घोड़ों, हाथियों, गधों, आवयों, मृगों, ऊँटों और खच्चरोंका

ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वायूयुजत्सोऽध्वरे प्रभुः॥ २३९

गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ।
एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यान्वै निबोधत॥ २४०

श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानराः पक्षिपञ्चमाः।
आदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः॥ २४१

महिषा गवयाक्षाश्च प्लवङ्गाः शरभा वृकाः।
सिंहस्तु सप्तमस्तेषामारण्याः पशवः स्मृताः॥ २४२

गायत्रं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम्।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥ २४३

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दस्तोमं पञ्चदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्थ्यं च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥ २४४

सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं सप्तदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥ २४५

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥ २४६

विद्युतो शनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
तेजांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः॥ २४७

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः॥ २४८

सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरनरान् पितॄन्।
ततोऽसृजत्स भूतानि स्थावराणि चराणि च॥ २४९

यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्त्वथैवाप्सरसां गणान्।
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान्॥ २५०

अव्ययं च व्ययं चापि यदिदं स्थाणुजङ्गमम्।
तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे॥ २५१

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे नृतानृते॥ २५२

सृजन किया; इसी प्रकार अन्य जातियाँ भी उत्पन्न हुईं। उनके रोमोंसे फल तथा मूलवाली औषधियाँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार पशुओं तथा औषधियोंका सृजन करके वे प्रभु यज्ञमें लग गये॥ २३७—२३९॥

गाय, अज, पुरुष (मनुष्य), मेष, अश्व, खच्चर तथा गधे—इन्हें ग्राम्य पशु कहा गया है। [नरमेधमें पशुत्वकी कल्पनाके कारण मनुष्यको पशुकोटिमें माना गया है] अब जंगली पशुओंको जान लीजिये। श्वापद (व्याघ्र आदि), द्विखुर (गवय आदि), हाथी, वानर, पाँचवाँ पक्षी, छठाँ आदक पशु तथा सातवाँ सरीसृप—ये जंगली पशु हैं। इनके अतिरिक्त महिष, गवय, हिरण, प्लवंग, शरभ, वृक तथा सातवाँ सिंह—ये जंगली पशु कहे गये हैं॥ २४०—२४२॥

ब्रह्माने [अपने] प्रथम (पूर्व) मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, [गीयमान] त्रिवृत् साम, रथन्तर साम तथा यज्ञोंमें मुख्य अग्निष्टोमकी रचना की। उन्होंने दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदशावृत्त साम, बृहत्साम तथा उक्थ्यकी रचना की। उन्होंने पश्चिम मुखसे साम, जगतीछन्द, सप्तदशावृत्त स्तोम, वैरूपसाम तथा अतिरात्रयज्ञकी रचना की। उन्होंने उत्तर मुखसे इक्कीस अथर्व प्रार्थना-मन्त्रों, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप् छन्द तथा वैराज छन्दकी रचना की। भगवान् ब्रह्माने कल्पके आरम्भमें विद्युत्, वज्र, मेघों, रोहित वर्णवाले इन्द्रधनुषों तथा तेजोंकी रचना की। प्रजाओंकी सृष्टि करते हुए उन प्रजापति ब्रह्माके अंगोंसे उच्च तथा निम्न भूत (प्राणी) उत्पन्न हुए॥ २४३—२४८॥

पहले देवता, असुर, मनुष्य तथा पितर—इन चारोंकी सृष्टि करके उन्होंने स्थावर तथा जंगम भूतोंका सृजन किया; उन्होंने यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों, अप्सरागणों, मनुष्यों, किन्नरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, मृगों और सर्पों तथा अव्यय एवं व्यय; जो भी स्थावर-जंगम हैं—उन सबका सृजन किया। पूर्व सृष्टिमें उनके जो कर्म थे, बार-बार सृजित किये जाते हुए वे प्राणी उन्हीं कर्मोंको प्राप्त करते हैं। वे अपने लिये अनुकूल हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म तथा मिथ्या-सत्यमें

तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते।
महाभूतेषु सृष्टेषु इन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु॥ २५३

विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम्।
केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्म सुमानवाः॥ २५४

दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिन्तकाः।
पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः॥ २५५

न चैकं न पृथग्भावमधिकं न ततो विदुः।
एतदेवं च नैकं च नामभेदेन नाप्युभे॥ २५६

कर्मस्था विषमं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शनाः।
नाम रूपं च भूतानां कृतानां च प्रपञ्चनम्॥ २५७

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः॥ २५८

शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः।
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ २५९

शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम्।
एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च॥ २६०

यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त सत्तमाः।
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदा शोकेन दुःखितः॥ २६१

ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्।
अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्॥ २६२

रजः सत्त्वं परित्यज्य वर्तमानां स्वधर्मतः।
ततः स तेन दुःखेन दुःखं चक्रे जगत्पतिः॥ २६३

तमश्च व्यनुदत्पश्चाद्रजः सत्त्वं तमावृणोत्।
तत्तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत॥ २६४

प्रवृत्त होते हैं; इसीलिये वे उनमें आनन्दका अनुभव करते हैं। महाभूतों, इन्द्रिय-विषयों तथा उनके स्वरूपोंकी सृष्टि हो जानेपर स्रष्टाने स्वयं उन भूतोंका विनियोग किया॥ २४९—२५३½॥

कुछ लोग होनेवाली घटनाओंका कारण पुरुषार्थको बताते हैं तथा कुछ श्रेष्ठ मनुष्य कर्मको उसका कारण बताते हैं। हे विप्रो! अन्य लोग दैव (भाग्य)-को और कुछ तत्त्वचिन्तक स्वभावको उसका कारण बताते हैं। इस प्रकार पुरुषार्थ, कर्म, दैव तथा स्वभावको कारण माना गया है। कर्ममार्गका अनुसरण करनेवाले जीव जगत्‌की विषमताके प्रति पूर्वोक्त चार कारणोंमेंसे किसी एकको कारण न मानकर उनके समुच्चयको कारण मानते हैं; क्योंकि वे इन चारोंसे भी परे सकलनियन्ता महेश्वरको नहीं जानते हैं। सत्त्वगुणमें स्थित समदर्शी लोग जगत्‌के मायामय होनेके कारण पूर्वोक्त कारणचतुष्टयोंमेंसे नामभेदके रूपमें न तो किसी एकको और न किन्हीं दोको कारण मानते हैं॥ २५४—२५६½॥

उन [ब्रह्मरूपी] महेश्वरने पूर्वकल्पके भूतोंके नाम, रूप तथा प्रपंचको सर्गके आदिमें वेदके शब्दोंसे ही निर्मित किया। ब्रह्माजी रात्रिके अन्तमें (प्रलय समाप्त होनेपर) उत्पन्न ऋषियोंके नाम एवं उनकी जो वृत्तियाँ वेदोंमें हैं, उन सबको उन्हें प्रदान करते हैं। अव्यक्तसे जन्म लेनेवाले ब्रह्माकी इस प्रकारकी सृष्टियाँ होती हैं। [ब्रह्माकी] रात्रिके अन्तमें मानसी सिद्धिका आश्रय लेकर सृजित किये गये इस प्रकारके स्थावर-जंगम प्राणी दिखायी देते हैं॥ २५७—२६०॥

हे सत्तमो! जब उनकी वे सृजित प्रजाएँ वृद्धिको प्राप्त नहीं हुईं; तब तमोमात्रासे आवृत ब्रह्मा शोकसे दुःखित हो उठे। इसके बाद उन्होंने अर्थका निश्चय करनेवाली बुद्धिको धारण किया और सत्त्व तथा रजोगुणोंका परित्याग करके अपने धर्मसे वर्तमान नियामिका तमोमात्राको अपने अन्दर देखा। तब वे जगत्पति उस दुःखसे बहुत दुःखित हुए॥ २६१—२६३॥

तदनन्तर उन्होंने तमोगुणको प्रेरित किया; उस तमने रज तथा सत्त्वको आवृत किया। इस प्रकार प्रेरित

अधर्मस्तमसो जज्ञे हिंसाशोकादजायत।
ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने दारुणात्मिके॥ २६५
गतासुर्भगवानासीत्प्रीतिश्चैनमशिश्रियत्।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥ २६६
द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत॥ २६७
प्रकृतिं भूतधात्रीं तां कामाद्वै सृष्टवान् प्रभुः।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्यधिष्ठिता॥ २६८
ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति।
या त्वर्धात्सृजतो नारी शतरूपा व्यजायत॥ २६९

सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
भर्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥ २७०
स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ २७१
लेभे स पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्।
तया सार्धं स रमते तस्मात्सा रतिरुच्यते॥ २७२
प्रथमः सम्प्रयोगात्मा कल्पादौ समपद्यत।
विराजमसृजद् ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषो विराट्॥ २७३
सम्राट् च शतरूपा वै वैराजः स मनुः स्मृतः।
स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषो मनुः॥ २७४
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ द्वौ लोकसम्मतौ॥ २७५
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाता इमाः प्रजाः।
देवी नाम तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते उभे॥ २७६
स्वायम्भुवः प्रसूतिं तु दक्षाय प्रददौ प्रभुः।
प्राणो दक्ष इति ज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते॥ २७७
रुचेः प्रजापतेः सोऽथ आकूतिं प्रत्यपादयत्।
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्॥ २७८

हुआ वह तम ही दो रूपोंमें उत्पन्न हुआ॥ २६४॥

तमसे अधर्म उत्पन्न हुआ और शोकसे हिंसा उत्पन्न हुई। तब भयानक रूपवाले उस मिथुन (अधर्म और हिंसा)-के प्रादुर्भूत होनेपर भगवान् [ब्रह्मा] प्राणहीन हो गये और प्रीतिने इनकी सेवा की। इसके बाद ब्रह्माने अपने उस दीप्त शरीरको अपोहित कर लिया। अपने देहको दो भागोंमें करके वे आधे शरीरसे पुरुष हो गये और उनके आधे शरीरसे नारी शतरूपा उत्पन्न हुईं। ब्रह्माने प्राणियोंकी धात्री उस प्रकृतिको कामनापूर्वक उत्पन्न किया था; वे अपनी महिमासे स्वर्ग तथा पृथ्वीको व्याप्त करके अधिष्ठित हैं। ब्रह्माका वह पूर्व शरीर स्वर्गको आवृत करके स्थित है। सृजन करनेवाले ब्रह्माके आधे शरीरसे जो नारी शतरूपा उत्पन्न हुई थीं, उन्होंने नियुत (दस लाख) वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तप करके दीप्त यशवाले पुरुषको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ २६५—२७०॥

वे पूर्वपुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं। उनका इकहत्तर चतुर्युगी मन्वन्तर कहा जाता है। उस पुरुषने अयोनिजा शतरूपाको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। वे उनके साथ रमण करते हैं, अतः वे 'रति' कही जाती हैं। कल्पके आदिमें [यह] पहला परस्पर संयोग हुआ। ब्रह्माने विराट्को उत्पन्न किया था; वे पुरुष ही विराट् थे। शतरूपा और वे वैराज (विराट्पुत्र) मनुको सम्राट् कहा गया है। उन वैराज पुरुष मनुने प्रजासर्गका सृजन किया। शतरूपाने वीर वैराज पुरुषसे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद [नामक] दो लोकमान्य पुत्रोंको उत्पन्न किया। उन्होंने दो महाभाग्यशालिनी कन्याओंको भी उत्पन्न किया, जिनसे ये प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं। वे दोनों देवी आकूति तथा प्रसूति नामवाली थीं॥ २७१—२७६॥

प्रभु स्वायम्भुव मनुने प्रसूतिको दक्षको अर्पित कर दिया। दक्षको प्राण जानना चाहिये और मनुको संकल्प कहा जाता है। उन्होंने आकूतिको रुचिप्रजापतिको दिया। ब्रह्माके मानसपुत्र रुचिकी मिथुन (जुड़वाँ) सन्तानें

यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलौ सम्बभूवतुः।
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे॥ २७९
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
एतस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामाश्च ते स्मृताः॥ २८०
अजितश्चैव शुक्रश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणा कृतौ।
यामाः पूर्वं प्रजाता ये तेऽभवंस्तु दिवौकसः॥ २८१
स्वायम्भुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः।
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः॥ २८२
सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः।
भोगवत्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः॥ २८३
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥ २८४
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदश।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः॥ २८५
दाराण्येतानि वै तस्य विहितानि स्वयम्भुवा।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥ २८६
सती ख्यात्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥ २८७
तास्तथा प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः।
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः॥ २८८
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च।
सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिं च भृगवे ततः॥ २८९
मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमङ्गिरसे ददौ।
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च॥ २९०
क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयां तथात्रये।
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहामप्यग्नये ददौ॥ २९१
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि बोधत।
एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्वनुसृताः स्थिताः॥ २९२
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाभूतसम्प्लवम्।
श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः॥ २९३
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष एव च।
पुष्ट्या लोभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा॥ २९४
क्रियायामभवत्पुत्रो दण्डः समय एव च।
बुद्ध्यां बोधः सुतस्तद्वत्प्रमादोऽप्युपजायत॥ २९५

आकूतिसे उत्पन्न हुईं। यज्ञ तथा दक्षिणा—ये जुड़वाँ सन्तानें हुईं। दक्षिणासे यज्ञके बारह पुत्रोंने जन्म लिया। वे देवगण, स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम'—इस नामसे प्रसिद्ध हुए; वे इस यज्ञके पुत्र थे, इसलिये वे 'याम' कहे गये हैं। ब्रह्माने अजित तथा शुक्र—इन दो गणोंको उत्पन्न किया था। पूर्वमें जो 'याम' उत्पन्न हुए थे, वे देवता हुए॥ २७७—२८१॥

प्रभु दक्षने स्वायम्भुव [मनु]-की पुत्री उस प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं; वे लोकमाताएँ हुईं। वे सभी महाभाग्यशालिनी, कमलके समान नेत्रवाली, भोगवती, योगमाताएँ, ब्रह्मवादिनी तथा विश्वकी माताएँ थीं। उनमें जो श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि एवं कीर्ति—तेरह [पुत्रियाँ] थीं, उन दक्षकन्याओंको प्रभु धर्मने पत्नीके रूपमें ग्रहण कर लिया। स्वायम्भुवने इन सबको उन धर्मकी पत्नी बनाया। उन सभीसे कनिष्ठ जो शिष्ट तथा सुन्दर नेत्रोंवाली ग्यारह [कन्याएँ] थीं, वे सती, ख्याति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा एवं स्वधा [नामवाली] थीं। उन्हें अन्य महर्षियोंने प्राप्त किया; वे रुद्र, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितर तथा अग्नि थे॥ २८२—२८८$^{१}/_{२}$॥

उन्होंने सतीको भव (रुद्र)-को तथा ख्यातिको भृगुको दे दिया। इसके बाद उन्होंने सम्भूतिको मरीचिको और स्मृतिको अंगिराको प्रदान कर दिया। उन्होंने प्रीतिको पुलस्त्यको, क्षमाको पुलहको, सन्नतिको क्रतुको, अनसूयाको अत्रिको तथा ऊर्जाको वसिष्ठको अर्पित कर दिया और स्वाहाको अग्निको तथा स्वधाको पितरोंको सौंप दिया। अब उनसे उत्पन्न सन्तानोंको जान लीजिये॥ २८९—२९१$^{१}/_{२}$॥

ये समस्त महाभाग्यवती कन्याएँ सभी मन्वन्तरोंमें प्रलयपर्यन्त प्रजाओंके सृजनमें लगी रहती थीं। श्रद्धाने कामको उत्पन्न किया। दर्प लक्ष्मीका पुत्र कहा गया है। धृतिका पुत्र नियम, तुष्टिका पुत्र सन्तोष, पुष्टिका पुत्र लोभ तथा मेधाका पुत्र श्रुत है। क्रियासे दण्ड तथा समय

लज्जायां विनयः पुत्रो व्यवसायो वसोः सुतः।
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत॥ २९६

यशः कीर्तिसुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः।
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्यां प्रीत्यां व्यजायत॥ २९७

इत्येष वै सुतोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः।
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम्॥ २९८

निकृत्यां तु द्वयं जज्ञे भयं नरक एव च।
माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः॥ २९९

भूयो जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्।
वेदनायाः सुतश्चापि दुःखं जज्ञे च रौरवः॥ ३००

मृत्योर्व्याधिजराशोकक्रोधासूयाश्च जज्ञिरे।
दुःखोत्तराः सुता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः॥ ३०१

नैषां भार्यास्तु पुत्राश्च सर्वे ह्येते परिग्रहाः।
इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः॥ ३०२

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसम्भवान्॥ ३०३

नाधिकान्न च हीनांस्तान् मानसानात्मनः समान्।
सहस्रं हि सहस्राणां सोऽसृजत्कृत्तिवाससः॥ ३०४

[नामक] पुत्र उत्पन्न हुए। बुद्धिसे बोध तथा प्रमाद [नामक] पुत्र उत्पन्न हुए। लज्जासे विनय नामक पुत्र हुआ। वसुका पुत्र व्यवसाय तथा शान्तिका पुत्र क्षेम है। सिद्धिसे सुख [नामक पुत्र] उत्पन्न हुआ। कीर्तिका पुत्र यश है। ये सब धर्मके पुत्र हैं। कामका पुत्र हर्ष देवी प्रीतिसे उत्पन्न हुआ। धर्मका यह सुतोदर्क सर्ग बता दिया गया॥ २९२—२९७ $^{1}/_{2}$॥

हिंसाने अधर्मसे निकृति [नामकी कन्या] तथा अनृत पुत्रको उत्पन्न किया। निकृतिसे भय तथा नरक [दो पुत्र] उत्पन्न हुए और इनकी [पत्नियाँ] माया तथा वेदना जुड़वाँ कन्याएँ हुईं। इसके बाद मायाने प्राणियोंका हरण करनेवाले मृत्युको जन्म दिया और वेदनासे रौरवके द्वारा पुत्ररूपमें 'दुःख' उत्पन्न हुआ। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, क्रोध तथा असूया उत्पन्न हुए। उत्तरोत्तर दुःख देनेवाले ये सभी पुत्र अधर्मके लक्षणोंसे युक्त थे। इन सबको भार्याएँ तथा पुत्र नहीं थे; ये सभी परिग्रह स्वभाववाले थे। इस प्रकार यह धर्मनियामक तामस सर्ग उत्पन्न हुआ॥ २९८—३०२॥

ब्रह्माने नीललोहित शिवसे कहा था—'प्रजाओंका सृजन कीजिये।' तब उन्होंने [अपनी] भार्या सतीका ध्यान करके पुत्रोंका सृजन किया। उन्होंने न अधिक, न कम, अपने ही समान तथा व्याघ्रचर्म धारण किये हुए

हजारों-हजार मानसपुत्रों [रुद्रगणों]-को उत्पन्न किया।

तुल्यानेवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः।
पिङ्गलान् सनिषङ्गांश्च सकपर्दान् सलोहितान्॥ ३०५

विशिष्टान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः।
महारूपान् विरूपांश्च विश्वरूपान् स्वरूपिणः॥ ३०६

रथिनश्चर्मिणश्चैव वर्मिणश्च वरूथिनः।
सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान्॥ ३०७

स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान्द्विजिह्वांस्तांस्त्रिलोचनान्।
अन्नादान् पिशिताशांश्च आज्यपान् सोमपानपि॥ ३०८

मीढुषोऽतिकपालांश्च शितिकण्ठोर्ध्वरेतसः।
हव्यादाञ्छ्रुतधर्मांश्च धर्मिणो ह्यथ बर्हिणः॥ ३०९

आसीनान् धावतश्चैव पञ्चभूतान् सहस्रशः।
अध्यापिनोऽध्यायिनश्च जपतो युञ्जतस्तथा॥ ३१०

धूमवन्तो ज्वलन्तश्च नदीमन्तोऽतिदीप्तिनः।
वृद्धान् बुद्धिमतश्चैव ब्रह्मिष्ठाञ्शुभदर्शनान्॥ ३११

नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाथ क्षमाकरान्।
अदृश्यान् सर्वभूतानां महायोगान् महौजसः॥ ३१२

भ्रमन्तोऽभिद्रवन्तश्च प्लवन्तश्च सहस्रशः।
अयातयामानसृजद्रुद्रानेतान् सुरोत्तमान्॥ ३१३

उन्होंने रूप-तेज-बल-ज्ञानमें अपने ही सदृश, पिंगलवर्णवाले, निषंगयुक्त, जटाजूटधारी, लोहितवर्णवाले, विशिष्ट, हरित केशवाले, देखनेमात्रसे नाश करनेवाले, कपालधारी, विशाल रूपवाले, विकृत रूपवाले, विश्वरूप, स्वरूपवान्, रथारूढ़, ढाल-कवच-वरूथ धारण किये हुए, लाखों भुजाओंवाले, स्वर्ग-पृथ्वी-अन्तरिक्षमें गमन करनेवाले, स्थूल सिरवाले, आठ दाढ़ोंवाले, दो जीभोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, अन्न खानेवाले, मांस भक्षण करनेवाले, घृत पीनेवाले, सोमपान करनेवाले, सुन्दर, बड़े-बड़े कपालवाले, नीले कण्ठवाले, ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी), हव्य खानेवाले, वेदपरायण, धार्मिक, मोरपंखसे सुशोभित, कुछ बैठे हुए, कुछ दौड़ते हुए, पाँच भूतोंवाले, कुछ अध्यापन करनेवाले, कुछ अध्ययन करनेवाले, कुछ जप करते हुए, कुछ योगाभ्यास करते हुए, कुछ धूमयुक्त, कुछ दीप्तिमान्, गंगाको धारण किये हुए, अत्यन्त कान्तिमान्, वृद्ध, बुद्धिसम्पन्न, ब्रह्मिष्ठ, शुभ दर्शनवाले, नीलग्रीवा (कण्ठ)-वाले, हजार नेत्रोंवाले, क्षमाकी निधि, सभी प्राणियोंसे अदृश्य, महान् योगवाले, महातेजस्वी, भ्रमण करते हुए, इधर-उधर भागते हुए, कूदते हुए तथा अयातयाम—इन हजारों-हजार उत्तम रुद्रदेवताओंको उत्पन्न किया॥ ३०३—३१३॥

ब्रह्मा दृष्ट्वाब्रवीदेनं मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः।
स्रष्टव्या नात्मनस्तुल्याः प्रजा देव नमोऽस्तु ते॥ ३१४

अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा वै मृत्युसंयुताः।
नारप्स्यन्ते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यवः॥ ३१५

इन्हें देखकर ब्रह्माजीने इन [नीललोहित]-से कहा—'ऐसी प्रजाओंका सृजन मत कीजिये; अपने सदृश प्रजाओंकी सृष्टि आपको नहीं करनी चाहिये। हे देव! आपको नमस्कार है। आपका कल्याण हो। आप मृत्युयुक्त अन्य प्रजाओंका सृजन कीजिये; क्योंकि मृत्युरहित प्रजाएँ कार्योंका आरम्भ नहीं करेंगी'॥ ३१४-३१५॥

एवमुक्तोऽब्रवीदेनं नाहं मृत्युजरान्विताः।
प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रं ते स्थितोऽहं त्वं सृज प्रजाः॥ ३१६

एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः।
सहस्राणां सहस्रं तु आत्मनो निःसृताः प्रजाः॥ ३१७

एते देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महाबलाः।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च दिक्षु चैव परिश्रिताः॥ ३१८

शतरुद्राः समात्मानो भविष्यन्तीति याज्ञिकाः।
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वदेवगणैः सह॥ ३१९

ब्रह्माके द्वारा ऐसा कहे गये रुद्रने उनसे कहा—मैं मृत्यु तथा जरासे युक्त प्रजाओंका सृजन नहीं करूँगा। आपका कल्याण हो। अब मैं [शान्त होकर] बैठता हूँ और आप ही सृजन कीजिये। जिन हजारों-हजार विरूप नीललोहित रुद्रोंको मैंने सृजित किया है, वे मेरी आत्मासे निकली हुई प्रजाएँ हैं। ये रुद्र नामवाले महाबली देवता होंगे। ये पृथ्वी, आकाश तथा सभी दिशाओंमें व्याप्त रहेंगे। इनमें समान आत्मावाले सौ रुद्र याज्ञिक होंगे; वे सभी देवताओंके साथ

मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह भेदतः।
सार्धं तैरीज्यमानास्ते स्थास्यन्तीहायुगक्षयात्॥ ३२०

एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता।
प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृष्यमाणः प्रजापतिः॥ ३२१

एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं विभो।
ब्रह्मणा समनुज्ञाते तथा सर्वमभूत्किल॥ ३२२

ततः प्रभृति देवेशो न चासूयत वै प्रजाः।
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ३२३

यस्मादुक्तः स्थितोऽस्मीति तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः।
एष देवो महादेवः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः॥ ३२४

अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः।
स्वेच्छयासौ द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक्॥ ३२५

स एवैकादशार्धेन स्थितोऽसौ परमेश्वरः।
तत्र या सा महाभागा शङ्करस्यार्धकायिनी॥ ३२६

प्रागुक्ता तु महादेवी स्त्री सैवेह सती ह्यभूत्।
हिताय जगतां देवी दक्षेणाराधिता पुरा॥ ३२७

कार्यार्थं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथासितम्।
आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवेन शम्भुना॥ ३२८

सा तथोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृण्वन्तु च समाहिताः॥ ३२९

यज्ञभाग ग्रहण करनेवाले होंगे। सभी मन्वन्तरोंमें जो देवता भेदपूर्वक यहाँपर होंगे, उनके साथ पूजित होते हुए वे सभी रुद्र युगक्षयपर्यन्त यहाँ स्थित रहेंगे॥ ३१६—३२०॥

बुद्धिमान् महादेवजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्न होकर प्रणाम करके उनसे बोले—'हे विभो! आपने जैसा कहा है, वैसा ही हो; आपका कल्याण हो।' ब्रह्माके ऐसा कहनेके बाद सब कुछ उसी प्रकारसे हुआ॥ ३२१-३२२॥

उसी समयसे देवताओंके स्वामी शिवने प्रजाओंका सृजन नहीं किया और वे प्रलयपर्यन्त स्थाणुवत् स्थित रहे तथा ब्रह्मचारी बने रहे। चूँकि उन्होंने कहा था कि 'मैं स्थित हूँ'—इसलिये वे 'स्थाणु' कहे गये। ये भगवान् महादेव पुरुषस्वरूप, सूर्यके समान तेजवाले, अपने तेजसे अग्निके समान प्रतीत होनेवाले तथा आधा भाग नर और आधा भाग नारीके शरीरवाले हैं। वे अपनी इच्छासे दो भागोंमें अलग-अलग स्त्री तथा पुरुषरूपमें विभक्त हुए। वे परमेश्वर आधे भागसे ग्यारह रूपोंमें स्थित हैं। उसमें जो शंकरकी अर्धांगिनी महाभागा महादेवी कही गयी हैं; वे ही भगवती पूर्वकालमें दक्षके द्वारा आराधित होकर

जगत्के हितके लिये सतीके रूपमें आविर्भूत हुई थीं। सृष्टिकार्यके लिये उनका दाहिना भाग श्वेत तथा बायाँ भाग कृष्ण था। जब भगवान् शम्भुने उनसे कहा कि अपनेको विभक्त करो, तब हे द्विजो! उनके ऐसा कहनेपर वे शुक्ल तथा कृष्ण दो रूपोंमें विभक्त हो गयीं। अब मैं उनके नाम बताऊँगा; आपलोग एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ३२३—३२९॥

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सती दाक्षायणी विद्या इच्छा शक्तिः क्रियात्मिका॥ ३३०
अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैवैकपाटला।
उमा हैमवती चैव कल्याणी चैकमातृका॥ ३३१
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता।
गणाम्बिका महादेवी नन्दिनी जातवेदसी॥ ३३२
एकरूपमथैतस्याः पृथग्देहविभावनात्।
सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता॥ ३३३
आज्ञा आवेशनी कृष्णा तामसी सात्त्विकी शिवा।
प्रकृतिर्विकृता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी॥ ३३४
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका।
द्वापरान्तविभागे च नामानीमानि सुव्रताः॥ ३३५
गौतमी कौशिकी चार्या चण्डी कात्यायनी सती।
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला॥ ३३६
बर्हिध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी।
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी दृषद्वत्येकशूलधृक्॥ ३३७
अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी।
शुम्भादिदैत्यहन्त्री च महामहिषमर्दिनी॥ ३३८
अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका।
देव्या नामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम्॥ ३३९
भद्रकाल्या मयोक्तानि सम्यक्फलप्रदानि च।
ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न च पातकम्॥ ३४०
अरण्ये पर्वते वापि पुरे वाप्यथवा गृहे।
रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वाथ स्थलेऽपि वा॥ ३४१
व्याघ्रकुम्भीनचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषतः।
आपत्स्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्तयेत्॥ ३४२
आर्यकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिस्तथा।
अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत्॥ ३४३
महादेवी कले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्तिते।
आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत्॥ ३४४
अनया देवदेवोऽसौ सत्या रुद्रो महेश्वरः।
आतिष्ठत्सर्वलोकानां हिताय परमेश्वरः॥ ३४५
रुद्रः पशुपतिश्चासीत्पुरा दग्धं पुरत्रयम्।
देवाश्च पशवः सर्वे बभूवुस्तस्य तेजसा॥ ३४६
यः पठेच्छृणुयाद्वापि आदिसर्गक्रमं शुभम्।
स याति ब्रह्मणो लोकं श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥ ३४७

स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सती, दाक्षायणी, विद्या, इच्छा, शक्ति, क्रियात्मिका, अपर्णा, एकपर्णा, एकपाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, एकमातृका, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा, लोकप्रसिद्ध गौरी, गणाम्बिका, महादेवी, नन्दिनी तथा जातवेदसी—ये नाम हैं। पृथक् देह धारण करनेसे पहले इनका एक ही रूप था। सावित्री, वरदा, पुण्या, पावनी, लोकविश्रुता, आज्ञा, आवेशनी, कृष्णा, तामसी, सात्त्विकी, शिवा, प्रकृति, विकृता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती, भूतनायिका—हे सुव्रतो! द्वापरयुगके अन्तमें ये उनके नाम हुए। इसी प्रकार गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी, देवी, वरदा, कृष्णपिंगला, बर्हिध्वजा, शूलधरा, परमा, ब्रह्मचारिणी, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, दृषद्वती, एकशूलधृक्, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, शुम्भादिदैत्यहन्त्री, महामहिषमर्दिनी, अमोघा, विन्ध्यनिलया, विक्रान्ता, गणनायिका—मैंने देवी भद्रकालीके इन नामविकारोंको यथाक्रम बता दिया, जो सम्यक् फल प्रदान करनेवाले हैं। जो लोग इनका पाठ करते हैं, उनका पाप शेष नहीं रह जाता है। जंगलमें, पर्वतपर, नगरमें, घरमें, जल अथवा स्थल कहीं भी रक्षाके लिये इनका प्रयोग करना चाहिये। विशेष रूपसे बाघ, हाथी तथा चोरोंसे भयके स्थानमें और सभी प्रकारकी विपत्तियोंमें देवीके नामोंको पढ़ना चाहिये। बुरे ग्रहों, भूतों, पूतना तथा मातृगणोंसे पीड़ित शिशुओंकी रक्षाके लिये इन नामोंका प्रयोग करना चाहिये॥ ३३०—३४३॥

'प्रज्ञा' तथा 'श्री'—ये महादेवीकी दो कलाएँ कही गयी हैं। इन दोनोंसे हजारों देवियाँ उत्पन्न हुई हैं, जिनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। देवदेव महेश्वर परमेश्वर रुद्र सभी लोकोंके हितके लिये इन सतीके साथ [सर्वदा] विद्यमान रहते हैं। रुद्र पशुपति हैं। इन्होंने ही पूर्वकालमें त्रिपुरको दग्ध किया था। उन्हींके तेजसे सभी देवता पशु [जीव] हुए। जो [व्यक्ति] आदिसृष्टिके शुभ क्रमको पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा उत्तम द्विजोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको जाता है॥ ३४४—३४७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सृष्टिविस्तारो नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सृष्टिविस्तार' नामक सत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

तारकासुरके पुत्रों—विद्युन्माली, तारकाक्ष तथा कमलाक्षका वृत्तान्त एवं तपस्याद्वारा इन्हें कामचारी तीन पुरोंकी प्राप्ति, त्रिपुरासुरके विनाशके लिये देवताओंका उद्योग तथा भगवान् शंकरका उनपर अनुग्रह

ऋषय ऊचुः

समासाद्विस्तराच्चैव सर्गः प्रोक्तस्त्वया शुभः।
कथं पशुपतिश्चासीत्पुरं दग्धुं महेश्वरः॥ १

कथं च पशवश्चासन् देवाः सब्रह्मकाः प्रभोः।
मयस्य तपसा पूर्वं सुदुर्गं निर्मितं पुरम्॥ २

हैमं च राजतं दिव्यमयस्मयमनुत्तमम्।
सुदुर्गं देवदेवेन दग्धमित्येव नः श्रुतम्॥ ३

कथं ददाह भगवान् भगनेत्रनिपातनः।
एकेनेषुनिपातेन दिव्येनापि तदा कथम्॥ ४

विष्णुनोत्पादितैर्भूतैर्न दग्धं तत्पुरत्रयम्।
पुरस्य सम्भवः सर्वो वरलाभः पुरा श्रुतः॥ ५

इदानीं दहनं सर्वं वक्तुमर्हसि सुव्रत।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः॥ ६

यथा श्रुतं तथा प्राह व्यासाद्विश्वार्थसूचकात्।

सूत उवाच

त्रैलोक्यस्यास्य शापाद्धि मनोवाक्कायसम्भवात्॥ ७

निहते तारके दैत्ये तारपुत्रे सबान्धवे।
स्कन्देन वा प्रयत्नेन तस्य पुत्रा महाबलाः॥ ८

विद्युन्माली तारकाक्षः कमलाक्षश्च वीर्यवान्।
तपस्तेपुर्महात्मानो महाबलपराक्रमाः॥ ९

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः।
तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान् दानवोत्तमाः॥ १०

तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम्।

दैत्या ऊचुः

अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु सर्वदा॥ ११

सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम्।
तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरव्ययः॥ १२

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपने संक्षेपमें तथा विस्तारसे शुभ सर्गका निरूपण कर दिया। पशुपति महेश्वरने पुरको कैसे दग्ध किया और ब्रह्मासहित सभी देवता प्रभुके पशु कैसे हो गये? मयकी तपस्याके द्वारा पूर्वकालमें उत्तम दुर्गमय पुर निर्मित किया गया था। हमने सुना है कि देवदेव [शिव]-ने सोने, चाँदी तथा लोहेसे निर्मित दिव्य, उत्तम तथा सुन्दर दुर्गको जला दिया था। भगके नेत्रका नाश करनेवाले भगवान् शिवने केवल एक बाणके प्रक्षेपसे उसे कैसे जला दिया और विष्णुके द्वारा उत्पन्न किये गये भूतगण उन तीनों पुरोंको क्यों नहीं जला सके? हमलोगोंने [उस] पुरकी उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण वरप्राप्तिके विषयमें पहले ही सुन लिया है; अब हे सुव्रत! [पुरके] दहनके विषयमें पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १—५१/२॥

तब उनका वचन सुनकर पौराणिकोंमें उत्तम सूतजीने समस्त अर्थोंके सूचक व्यासजीसे [इस विषयमें] जैसा सुना था, उसे बताया ॥ ६१/२॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस त्रिलोकीके मन-वाणी-शरीरजन्य शापके कारण स्कन्द (कार्तिकेय)-के द्वारा प्रयत्नपूर्वक बान्धवोंसहित तारपुत्र दैत्य तारकके मार दिये जानेपर उसके महाबली पुत्रों विद्युन्माली, तारकाक्ष तथा पराक्रमी कमलाक्षने तप किया। महान् बल तथा पराक्रमवाले वे महात्मा कठोर तपमें लीन होकर परम नियममें स्थित थे। उन श्रेष्ठ दानवोंने तपस्याके द्वारा अपने शरीरोंको दुर्बल बना दिया। तब उनपर प्रसन्न होकर वरदाता ब्रह्माजीने उन्हें वर प्रदान किया॥ ७—१०१/२॥

दैत्य बोले—'सभी प्राणियोंसे सर्वदा हम सभीका अवध्यत्व हो'—उन सभीने एक साथ सभी लोकोंके पितामहसे यह वर माँगा। तब लोकोंके स्वामी अव्यय

नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमतोऽसुराः।
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते॥ १३

ततस्ते सहिता दैत्याः सम्प्रधार्य परस्परम्।
ब्रह्माणमब्रुवन् दैत्याः प्रणिपत्य जगद्गुरुम्॥ १४

वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम्।
विचरिष्याम लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो॥ १५

तथा वर्षसहस्त्रेषु समेष्यामः परस्परम्।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ॥ १६

समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा।
एकेनैवेषुणा देवः स नो मृत्युर्भविष्यति॥ १७

एवमस्त्विति तान् देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम्।
ततो मयः स्वतपसा चक्रे वीरः पुराण्यथ॥ १८

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम्।
आयसं चाभवद्भूमौ पुरं तेषां महात्मनाम्॥ १९

एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम्।
काञ्चनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम्॥ २०

विद्युन्मालेश्चायसं वै त्रिविधं दुर्गमुत्तमम्।
मयश्च बलवांस्तत्र दैत्यदानवपूजितः॥ २१

हैरण्ये राजते चैव कृष्णायसमये तथा।
आलयं चात्मनः कृत्वा तत्रास्ते बलवांस्तदा॥ २२

देव ब्रह्माने उनसे कहा—'हे असुरो! सभीको अमरत्व नहीं हुआ करता, अतः इसे छोड़ो और दूसरा वर माँगो, जो तुमलोगोंको अच्छा लगता हो'॥ ११—१३॥

तदनन्तर उन दैत्योंने मिलकर आपसमें विचार

करके जगद्गुरु ब्रह्माको प्रणाम करके कहा—हे लोकेश! हे जगद्गुरो! तीन पुर स्थापित करके हमलोग आपकी कृपासे इस पृथ्वीपर विचरण करें। हमलोग एक हजार वर्षमें आपसमें मिलें और हे अनघ! ये तीनों पुर एकीभावको प्राप्त हों। हे भगवन्! जो इन इकट्ठे हुए पुरोंको एक ही बाणसे नष्ट कर दे, वह देव हमलोगोंका मृत्युस्वरूप हो॥ १४—१७॥

'ऐसा ही हो'—उनसे यह कहकर ब्रह्मदेव स्वर्गलोक चले गये। इसके बाद वीर [दानव] मयने अपनी तपस्याके द्वारा तीन पुरोंका निर्माण किया। उन महात्माओंका सुवर्णमय पुर स्वर्गमें, रजत (चाँदी)-मय पुर अन्तरिक्षमें तथा लौहमय पुर पृथ्वीपर था। उनमेंसे प्रत्येक पुर लम्बाई तथा चौड़ाईमें एक सौ योजनवाला और एक समान था। सोनेका पुर तारकाक्षका, चाँदीका पुर कमलाक्षका और लोहेका पुर विद्युन्मालीका था; तीनों प्रकारके दुर्ग उत्तम थे। बलशाली मय दैत्यों तथा दानवोंसे पूजित था; वह बलवान् मय वहाँ स्वर्णमय, रजतमय एवं काले लौहमय पुरमें अपना भवन बनाकर

एवं बभूवुर्दैत्यानामतिदुर्गाणि सुव्रताः।
पुराणि त्रीणि विप्रेन्द्रास्त्रैलोक्यमिव चापरम्॥ २३
पुरत्रये तदा जाते सर्वे दैत्या जगत्त्रये।
पुरत्रयं प्रविश्यैव बभूवुस्ते बलाधिकाः॥ २४
कल्पद्रुमसमाकीर्णं गजवाजिसमाकुलम्।
नानाप्रासादसङ्कीर्णं मणिजालैः समावृतम्॥ २५
सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैर्विश्वतोमुखैः ।
पद्मरागमयैः शुभ्रैः शोभितं चन्द्रसन्निभैः॥ २६
प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः।
शोभितं त्रिपुरं तेषां पृथक्पृथगनुत्तमैः॥ २७
दिव्यस्त्रीभिः सुसम्पूर्णं गन्धर्वैः सिद्धचारणैः।
रुद्रालयैः प्रतिगृहं साग्निहोत्रैर्द्विजोत्तमाः॥ २८
वापीकूपतडागैश्च दीर्घिकाभिस्तु सर्वतः।
मत्तमातङ्गयूथैश्च तुरङ्गैश्च सुशोभनैः॥ २९
रथैश्च विविधाकारैर्विचित्रैर्विश्वतोमुखैः।
सभाप्रपादिभिश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक् पृथक्॥ ३०
वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः समन्ततः।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्मयस्यैव च मायया॥ ३१
पतिव्रताभिः सर्वत्र सेवितं मुनिपुङ्गवाः।
कृत्वापि सुमहत्पापमपापैः शङ्करार्चनात्॥ ३२
दैत्येश्वरैर्महाभागैः सदारैः ससुतैर्द्विजाः।
श्रौतस्मार्तार्थधर्मज्ञैस्तद्धर्मनिरतैः सदा॥ ३३
महादेवेतरं त्यक्त्वा देवं तस्यार्चनं स्थितैः।
व्यूढोरस्कैर्वृषस्कन्धैः सर्वायुधधरैः सदा॥ ३४
सर्वदा क्षुधितैश्चैव दावाग्निसदृशेक्षणैः।
प्रशान्तैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा॥ ३५
नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुञ्चितमूर्धजैः ।
नीलाद्रिमेरुसङ्काशैर्नीरदोपमनिःस्वनैः ।
मयेन रक्षितैः सर्वैः शिक्षितैर्युद्धलालसैः॥ ३६
अथ समररतैः सदासमन्ता-
च्छिवपदपूजनया सुलब्धवीर्यैः।

रहा करता था॥ १८—२२॥

हे सुव्रतो! हे विप्रेन्द्रो! इस प्रकार दैत्योंके सुदृढ़ किलोंसे युक्त वे तीनों पुर दूसरे त्रिलोकीके समान थे। तब तीनों पुरोंके [निर्मित] हो जानेपर वे सभी दैत्य उन तीनों पुरोंमें प्रवेश करके तीनों लोकोंमें अत्यधिक बलशाली हो गये॥ २३-२४॥

उनके तीनों पुर कल्पवृक्षोंसे भरे हुए, हाथी-घोड़ोंसे परिपूर्ण, अनेक भवनोंसे सुशोभित, मणियोंके जालोंसे घिरे हुए, सभी ओर द्वारोंवाले, सूर्यमण्डलसदृश विमानोंसे युक्त, पद्मरागमय चन्द्रसदृश उज्ज्वल महलोंसे सुशोभित और कैलासशिखरके समान दिव्य तथा अत्युत्तम फाटकोंसे पृथक्-पृथक् मण्डित थे। हे श्रेष्ठ द्विजो! वे पुर दिव्य स्त्रियों, गन्धर्वों, सिद्धों एवं चारणोंसे भरे हुए थे। प्रत्येक घरमें रुद्रालय थे और अग्निहोत्र होता था। वे पुर सभी ओर बावलियों, कुओं, तालाबों और बड़ी-बड़ी झीलोंसे युक्त थे; मत्त हाथियोंके झुण्डों, अति सुन्दर घोड़ों, चारों ओर मुखवाले अनेक प्रकारके अद्भुत रथों, सभाभवनों, पानीय (जल)-की शालाओं तथा क्रीड़ास्थलोंसे पृथक्-पृथक् समन्वित थे। वे पुर चारों ओर अनेकविध वेदाध्ययनशालाओंसे युक्त थे और मय [दानव]-की मायासे अन्य लोगोंद्वारा मनसे भी अलंघ्य थे। हे मुनिश्रेष्ठो! वे पुर सर्वत्र पतिव्रता स्त्रियोंके द्वारा सेवित थे। हे द्विजो! वे पुर बड़े-बड़े पाप करके भी शंकरजीकी पूजाके कारण पापरहित, श्रौत-स्मार्त धर्मोंके ज्ञाता तथा अपने धर्मके प्रति परायण भार्यासहित महाभाग्यशाली दैत्योंसे सदा समन्वित थे; महादेवके अतिरिक्त अन्य देवताको छोड़कर उन [शिव]-के अर्चनमें स्थित, चौड़ी छातीवाले, बैलके समान कंधेवाले, सर्वदा समस्त आयुध धारण करनेवाले, सदा उपवास करनेवाले, दावानलके समान नेत्रोंवाले, उनमें कुछ शान्त तथा कुछ कुपित, कुबड़े, बौने, नील कमलदलकी आभाके सदृश, काले एवं घुँघराले बालोंवाले, नीलपर्वत तथा मेरुके समान प्रतीत होनेवाले, मेघके समान गर्जन करनेवाले, मयके द्वारा रक्षित तथा शिक्षित और युद्धकी तीव्र इच्छावाले दैत्योंसे परिपूर्ण थे। इस प्रकार वे पुर

रविमरुदमरेन्द्रसन्निकाशैः
सुरमथनैः सुदृढैः सुसेवितं तत्॥ ३७

सेन्द्रा देवा द्विजश्रेष्ठा द्रुमा दावाग्निना यथा।
पुरत्रयाग्निना दग्धा ह्यभवन् दैत्यवैभवात्॥ ३८

अथैवं ते तदा दग्धा देवा देवेश्वरं हरिम्।
अभिवन्द्य तदा प्राहुस्तमप्रतिमवर्चसम्॥ ३९

सोऽपि नारायणः श्रीमान् चिन्तयामास चेतसा।
किं कार्यं देवकार्येषु भगवानिति स प्रभुः॥ ४०

तदा सस्मार वै यज्ञं यज्ञमूर्तिर्जनार्दनः।
यज्वा यज्ञभुगीशानो यज्वनां फलदः प्रभुः॥ ४१

ततो यज्ञः स्मृतस्तेन देवकार्यार्थसिद्धये।
देवं ते पुरुषं चैव प्रणेमुस्तुष्टुवुस्तदा॥ ४२

भगवानपि तं दृष्ट्वा यज्ञं प्राह सनातनम्।
सनातनस्तदा सेन्द्रान् देवानालोक्य चाच्युतः॥ ४३

श्रीविष्णुरुवाच

अनेनोपसदा देवा यजध्वं परमेश्वरम्।
पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये॥ ४४

सूत उवाच

अथ तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः।
सिंहनादं महत्कृत्वा यज्ञेशं तुष्टुवुः सुराः॥ ४५

ततः सञ्चिन्त्य भगवान् स्वयमेव जनार्दनः।
पुनः प्राह स सर्वांस्तांस्त्रिदशांस्त्रिदशेश्वरः॥ ४६

हत्वा दग्ध्वा च भूतानि भुक्त्वा चान्यायतोऽपि वा।
यजेद्यदि महादेवमपापो नात्र संशयः॥ ४७

अपापा नैव हन्तव्याः पापा एव न संशयः।
हन्तव्याः सर्वयत्नेन कथं वध्याः सुरोत्तमाः॥ ४८

सदा युद्धपरायण, भलीभाँति शिवके चरणोंकी पूजाके द्वारा प्राप्त पराक्रमवाले, सूर्य-वायु-इन्द्रसदृश, देवताओंका दमन करनेवाले तथा अत्यन्त दृढ़ दैत्योंसे सेवित थे॥ २५—३७॥

हे द्विजश्रेष्ठो! दैत्योंके वैभवके कारण तीनों पुरोंकी अग्निसे इन्द्रसहित देवतागण उसी प्रकार दग्ध हो गये, जैसे दावाग्निसे वृक्ष दग्ध हो जाते हैं॥ ३८॥

इस प्रकार उन दग्ध देवताओंने अतुलनीय तेजवाले देवेश्वर विष्णुको प्रणाम करके उनको [यह सब] बताया॥ ३९॥

तब उन श्रीमान् प्रभु भगवान् नारायणने मनमें सोचा कि देवताओंके कार्यके विषयमें क्या किया जाना चाहिये। इसके बाद यज्ञभोक्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञकर्ताओंको फल प्रदान करनेवाले तथा यज्ञमूर्ति प्रभु जनार्दनने यज्ञदेवका स्मरण किया॥ ४०-४१॥

तदनन्तर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये उनके द्वारा स्मरण किये गये यज्ञदेव उपस्थित हुए। तब उन देवताओंने यज्ञदेवको प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। इसके बाद सनातन यज्ञको देखकर पुनः इन्द्रसहित देवताओंकी ओर देखकर सनातन भगवान् अच्युत (विष्णु) उनसे कहने लगे॥ ४२-४३॥

श्रीविष्णु बोले—हे देवताओ! तीनों पुरोंके विनाशके लिये तथा तीनों लोकोंकी समृद्धिके लिये इन [उपस्थित] उपसद नामक यज्ञके द्वारा परमेश्वरका यजन कीजिये॥ ४४॥

सूतजी बोले—उन बुद्धिमान् देवदेवका वचन सुनकर महान् सिंहनाद करके देवतागण [उन] यज्ञेशकी स्तुति करने लगे॥ ४५॥

इसके बाद स्वयं विचार करके देवताओंके स्वामी वे भगवान् जनार्दन पुनः सभी देवताओंसे बोले—प्राणियोंको मारकर तथा जलाकर और अन्यायपूर्वक भोग-विलास करके भी यदि कोई महादेवकी पूजा करे, तो वह पापरहित हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४६-४७॥

'निष्पाप लोगोंकी हत्या नहीं की जानी चाहिये; केवल पापियोंकी ही हत्या पूर्णप्रयत्नसे की जानी

असुरा दुर्मदाः पापा अपि देवैर्महाबलैः।
तस्मान्न वध्या रुद्रस्य प्रभावात्परमेष्ठिनः॥ ४९

कोऽहं ब्रह्माथवा देवा दैत्या देवारिसूदनाः।
मुनयश्च महात्मानः प्रसादेन विना प्रभोः॥ ५०

यः सप्तविंशको नित्यः परात्परतरः प्रभुः।
विश्वामरेश्वरो वन्द्यो विश्वाधारो महेश्वरः॥ ५१

स एव सर्वदेवेशः सर्वेषामपि शङ्करः।
लीलया देवदैत्येन्द्रविभागमकरोद्धरः॥ ५२

तस्यांशमेकं सम्पूज्य देवा देवत्वमागताः।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेव च॥ ५३

तमपूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति।
तस्मात्तेनैव हन्तव्या लिङ्गार्चनविधेर्बलात्॥ ५४

धर्मनिष्ठाश्च ते सर्वे श्रौतस्मार्तविधौ स्थिताः।
तथापि यजमानेन रौद्रेणोपसदा प्रभुम्।
रुद्रमिष्ट्वा यथान्यायं जेष्यामो दैत्यसत्तमान्॥ ५५

सतारकाक्षेण मयेन गुप्तं
स्वस्थं च गुप्तं स्फटिकाभमेकम्।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो
मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम्॥ ५६

सूत उवाच

एवमुक्त्वा हरिश्चेष्ट्वा यज्ञेनोपसदा प्रभुम्।
उपविष्टो ददर्शाथ भूतसङ्घान् सहस्रशः॥ ५७

शूलशक्तिगदाहस्तान् टङ्कोपलशिलायुधान्।
नानाप्रहरणोपेतान्नानावेषधरांस्तदा॥ ५८

कालाग्निरुद्रसङ्काशान् कालरुद्रोपमांस्तदा।
प्राह देवो हरिः साक्षात्प्रणिपत्य स्थितान् प्रभुः॥ ५९

चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है। हे श्रेष्ठ देवताओ! पापी होते हुए भी दुर्मद असुर महाबली देवताओंके द्वारा वध्य कैसे हो सकते हैं? क्योंकि परमेष्ठी रुद्रके प्रभावके कारण वे वध्य नहीं हैं। हे देवताओ! प्रभु [शिव]-की कृपाके बिना मैं कौन हूँ, ब्रह्मा कौन हैं, दैत्य कौन हैं, देवशत्रुओंके विनाशक कौन हैं और महात्मा मुनिगण कौन हैं?॥ ४८—५०॥

जो सत्ताईस तत्त्वोंसे युक्त, शाश्वत, महान्‌से भी महत्तर, प्रभुतासम्पन्न, सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी, वन्दनीय, विश्वके आधार, महेश्वर, सर्वदेवेश तथा सबके स्वामी हैं; उन हर शंकरने ही [अपनी] लीलासे देवताओं एवं दैत्योंका विभाजन किया है॥ ५१-५२॥

उनके एक अंश (लिङ्गरूप)-की पूजा करके देवताओंने देवत्व प्राप्त किया है, ब्रह्माने ब्रह्मत्व प्राप्त किया है और मुझ विष्णुने विष्णुत्व प्राप्त किया है। उनकी पूजा किये बिना इस जगत्‌में कौन व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है? अतः लिङ्गार्चनविधिके प्रभावसे उन्हींके द्वारा वे दैत्य हन्तव्य हैं। यद्यपि वे सभी [दैत्य] धर्मनिष्ठ हैं तथा श्रौत-स्मार्तविधानमें स्थित हैं, फिर भी उपसद नामक रुद्रयज्ञसे यजमानके द्वारा विधिपूर्वक प्रभु रुद्रका यजन करके हमलोग महादैत्योंको जीत सकेंगे। एकमात्र त्रिनेत्र भगवान् [शिव]-को छोड़कर तारकाक्षसहित [दानव] मयके द्वारा सुरक्षित, स्वस्थ, गुप्त तथा स्फटिकके समान आभावाले तीनों पुरोंको नष्ट करनेमें भला कौन समर्थ है?॥ ५३—५६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उपसद [नामक] यज्ञके द्वारा प्रभु [शिव]-का यजन करके बैठे हुए विष्णुने हजारों भूतसमुदायोंको देखा। तब शूल-शक्ति-गदासे युक्त हाथोंवाले, टंक-उपल-शिलाको आयुधके रूपमें धारण किये हुए, अनेक प्रकारके प्रहारयोग्य अस्त्रोंसे समन्वित, अनेक वेषोंको धारण किये हुए, कालाग्नि रुद्रके समान प्रतीत होनेवाले तथा कालरुद्रके सदृश उन उपस्थित भूतोंको प्रणाम करके साक्षात् प्रभु विष्णुदेव कहने लगे॥ ५७—५९॥

विष्णुरुवाच

दग्ध्वा भित्त्वा च भुक्त्वा च गत्वा दैत्यपुरत्रयम्।
पुनर्यथागतं वीरा गन्तुमर्हथ भूतले॥ ६०
ततः प्रणम्य देवेशं भूतसङ्घाः पुरत्रयम्।
प्रविश्य नष्टास्ते सर्वे शलभा इव पावकम्॥ ६१
ततस्तु नष्टास्ते सर्वे भूता देवेश्वराज्ञया।
ननृतुर्मुमुदुश्चैव जगुर्दैत्याः सहस्रशः॥ ६२
तुष्टुवुर्देवदेवेशं परमात्मानमीश्वरम्।
ततः पराजिता देवा ध्वस्तवीर्याः क्षणेन तु॥ ६३
सेन्द्राः सङ्गम्य देवेशमुपेन्द्रं धिष्ठिता भयात्।
तान् दृष्ट्वा चिन्तयामास भगवान् पुरुषोत्तमः॥ ६४
किं कृत्यमिति सन्तप्तः सन्तप्तान् सेन्द्रकान् क्षणम्।
कथं तु तेषां दैत्यानां बलं हत्वा प्रयत्नतः॥ ६५
देवकार्यं करिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः।
पापं विचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः॥ ६६
तस्माद्दैत्या न वध्यास्ते भूतैश्चोपसदोद्भवैः।
पापं नुदति धर्मेण धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ६७
धर्मादैश्वर्यमित्येषा श्रुतिरेषा सनातनी।
दैत्याश्चैते हि धर्मिष्ठाः सर्वे त्रिपुरवासिनः॥ ६८
तस्मादवध्यतां प्राप्ता नान्यथा द्विजपुङ्गवाः।
कृत्वापि सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ये॥ ६९
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाम्भसा।
पूजया भोगसम्पत्तिरवश्यं जायते द्विजाः॥ ७०
तस्मात्ते भोगिनो दैत्या लिङ्गार्चनपरायणाः।
तस्मात्कृत्वा धर्मविघ्नमहं देवाः स्वमायया॥ ७१
दैत्यानां देवकार्यार्थं जेष्येऽहं त्रिपुरं क्षणात्।

सूत उवाच

विचार्यैवं ततस्तेषां भगवान् पुरुषोत्तमः।
कर्तुं व्यवसितश्चाभूद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम्॥ ७२
असृजच्च महातेजाः पुरुषं चात्मसम्भवम्।
मायी मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः॥ ७३

विष्णु बोले—हे वीरो! उस [त्रिपुर] दैत्यके तीनों पुरोंमें जाकर सभीको जलाकर, छिन्न-भिन्न करके और उनका भक्षण करके पुनः आपलोग जैसे आये हैं, वैसे ही भूतलपर चले जायँ॥ ६०॥

तत्पश्चात् देवेशको प्रणाम करके तीनों पुरोंमें प्रवेश करके वे भूतगण उसी तरह नष्ट हो गये, जैसे अग्निमें प्रवेश करके शलभ (पतिंगे) नष्ट हो जाते हैं॥ ६१॥

तब देवेश्वरकी आज्ञासे उन सभी भूतोंके नष्ट हो जानेपर हजारों दैत्य आनन्द मनाने लगे, नाचने-गाने लगे और देवेश परमात्मा ईश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ६२ $^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर क्षणभरमें पराजित तथा नष्ट पराक्रमवाले इन्द्रसहित देवतागण देवेश विष्णुके पास पहुँचकर भयपूर्वक खड़े हो गये। तब इन्द्रसहित उन सन्तप्त देवताओंको देखकर भगवान् पुरुषोत्तम उस समय दु:खी होकर सोचने लगे—क्या किया जाना चाहिये? प्रयत्नपूर्वक उन दैत्योंका बल नष्ट करके मैं कैसे देवताओंका कार्य करूँगा? विचारपूर्वक देखा जाय, तो शिवकी कृपासे उन धर्मनिष्ठ दैत्योंमें पाप नहीं है, अतः वे दैत्य उपसद [नामक] यज्ञसे उत्पन्न भूतोंके द्वारा वध्य नहीं हैं। धर्मसे ही पाप नष्ट होता है; सब कुछ धर्ममें ही प्रतिष्ठित है। धर्मसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है—यह सनातनी श्रुति है। [सूतजीने कहा—] हे द्विजश्रेष्ठो! तीनों पुरोंमें निवास करनेवाले वे सभी दैत्य धर्मनिष्ठ थे, अर्थात् अनुष्ठानमें तत्पर थे। अतः वे अवध्यताको प्राप्त हो गये थे; इसमें सन्देह नहीं है। बहुत बड़ा पाप करके भी जो लोग रुद्रका अर्चन करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; जैसे जलसे कमल मुक्त रहता है। हे द्विजो! शिवकी पूजासे भोगसम्पदा अवश्य प्राप्त होती है; वे दैत्य लिङ्ग-पूजामें परायण हैं, अतः वे भोगोंसे युक्त हैं। [विष्णुने कहा—] हे देवताओ! इसलिये मैं देवताओंके कार्यके लिये अपनी मायासे दैत्योंके धर्म (अनुष्ठान)-में विघ्न डालकर क्षणभरमें तीनों पुरोंको जीत लूँगा॥ ६३—७१ $^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—ऐसा विचार करके भगवान् पुरुषोत्तम उन देवशत्रुओं (दैत्यों)-के धर्ममें विघ्न उत्पन्न करनेके लिये प्रवृत्त हुए। महातेजस्वी मायावी अच्युतने उनके धर्मविघ्नके

शास्त्रं च शास्ता सर्वेषामकरोत्कामरूपधृक्।
सर्वसम्मोहनं मायी दृष्टप्रत्ययसंयुतम्॥ ७४

एतत्स्वाङ्गभवायैव पुरुषायोपदिश्य तु।
मायी मायामयं शास्त्रं ग्रन्थषोडशलक्षकम्॥ ७५

श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्।
इहैव स्वर्गनरकं प्रत्ययं नान्यथा पुनः॥ ७६

तच्छास्त्रमुपदिश्यैव पुरुषायाच्युतः स्वयम्।
पुरत्रयविनाशाय प्राहैनं पुरुषं हरिः॥ ७७

गन्तुमर्हसि नाशाय भो तूर्णं पुरवासिनाम्।
धर्मास्तथा प्रणश्यन्तु श्रौतस्मार्ता न संशयः॥ ७८

ततः प्रणम्य तं मायी मायाशास्त्रविशारदः।
प्रविश्य तत्पुरं तूर्णं मुनिर्मायां तदाकरोत्॥ ७९

मायया तस्य ते दैत्याः पुरत्रयनिवासिनः।
श्रौतं स्मार्तं च सन्त्यज्य तस्य शिष्यास्तदाभवन्॥ ८०

तत्यजुश्च महादेवं शङ्करं परमेश्वरम्।
नारदोऽपि तदा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः॥ ८१

प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः।
मुनिः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च संवृतः सर्वतः स्वयम्॥ ८२

स्त्रीधर्मं चाकरोत्स्त्रीणां दुश्चारफलसिद्धिदम्।
चक्रुस्ताः सर्वदा लब्ध्वा सद्य एव फलं स्त्रियः॥ ८३

जनासक्ता बभूवुस्ता विनिन्द्य पतिदेवताः।
अद्यापि गौरवात्तस्य नारदस्य कलौ मुनेः॥ ८४

नार्यश्चरन्ति सन्त्यज्य भर्तॄन् स्वैरं वृथाधमाः।
स्त्रीणां माता पिता बन्धुः सखा मित्रं च बान्धवः॥ ८५

भर्ता एव न सन्देहस्तथाप्यासहमायया।
कृत्वापि सुमहत्पापं या भर्तुः प्रेमसंयुता॥ ८६

लिये अपने शरीरसे मायामय पुरुषका सृजन किया। सबके शासक तथा स्वेच्छासे रूप धारण करनेवाले मायापति [विष्णु]-ने देखनेमात्रसे विश्वास उत्पन्न करनेवाले भावसे युक्त अतएव सबको मोहित करनेवाले शास्त्रका निर्माण किया। षोडशलक्षक अर्थात् अत्यन्त विस्तृत श्रुति-स्मृतिसे विरुद्ध तथा वर्णाश्रम-धर्मोंसे रहित इस मायामय शास्त्रका उपदेश अपने शरीरसे उत्पन्न पुरुषको करना चाहिए और स्वर्ग-नरक यहींपर है, ऐसा विश्वास करना चाहिये, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं—इसे प्रतिपादित करनेवाले उस शास्त्रको उस पुरुषको स्वयं पढ़ाकर मायामय अच्युत विष्णुने तीनों पुरोंके विनाशहेतु उस पुरुषसे कहा—[हे पुरुष!] त्रिपुरवासियोंके नाशके लिये तुम शीघ्र जाओ और ऐसा प्रयत्न करो, जिससे [वहाँके] श्रौत-स्मार्त धर्म नष्ट हो जायँ; इसमें संशय नहीं है॥ ७२—७८॥

तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम करके मायाशास्त्रविशारद मायावी मुनिने उन पुरोंमें शीघ्र प्रवेश करके माया रची॥ ७९॥

तब तीनों पुरोंमें निवास करनेवाले वे दैत्य उसकी मायाके कारण श्रौत-स्मार्त धर्मोंका त्याग करके उसके शिष्य हो गये और उन्होंने महादेव परमेश्वर शंकरको छोड़ दिया॥ ८०१/२॥

तत्पश्चात् मायामय प्रभुके आदेशसे [अपने] शिष्यों-प्रशिष्योंसे चारों ओरसे घिरे हुए मायावी नारदमुनि भी उस पुरमें प्रवेश करके उस मायावी [पुरुष]-से स्वयं दीक्षित हुए। उन्होंने स्त्रियोंको दुराचार फलकी सिद्धि देनेवाले स्त्रीधर्मका उपदेश दिया। उन स्त्रियोंने उसका सदा पालन किया और शीघ्र ही उसका फल प्राप्तकर वे अपने पतिदेवोंकी अवहेलना करके अन्य लोगोंमें आसक्त हो गयीं। उन नारदमुनिके गुरुत्वके कारण आज भी कलियुगमें अधम स्त्रियाँ पतियोंका त्याग करके व्यभिचार करती हैं॥ ८१—८४१/२॥

पति ही स्त्रियोंका माता-पिता, बन्धु, सखा, मित्र तथा बान्धव होता है; इसमें सन्देह नहीं है। फिर भी विष्णुकी असह मायाके कारण उन स्त्रियोंने वैसा किया। बड़ा-से-बड़ा पाप करके भी जो [स्त्री] पतिके प्रति

प्राप्नुयात्परमं स्वर्गं नरकं च विपर्ययात्।
पुरैका मुनिशार्दूलाः सर्वधर्मान् सदा पतिम्॥ ८७

सन्त्यज्यापूजयन् साध्व्यो देवानन्याञ्जगद्गुरून्।
ताः स्वर्गलोकमासाद्य मोदन्ते विगतज्वराः॥ ८८

नरकं च जगामान्या तस्माद्भर्ता परा गतिः।
तथापि भर्तॄन् स्वांस्त्यक्त्वा बभूवुः स्वैरवृत्तयः॥ ८९

मायया देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभोः।
अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात्त्रिपुरं गता॥ ९०

या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वरादजात्।
बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः॥ ९१

बुद्धिमोहं तथाभूतं विष्णुमायाविनिर्मितम्।
तेषां दत्त्वा क्षणं देवस्तासां मायी च नारदः॥ ९२

सुखासीनौ ह्यसम्भ्रान्तौ धर्मविघ्नार्थमव्ययौ।
एवं नष्टे तदा धर्मे श्रौतस्मार्ते सुशोभने॥ ९३

पाषण्डे ख्यापिते तेन विष्णुना विश्वयोनिना।
त्यक्ते महेश्वरे दैत्यैस्त्यक्ते लिङ्गार्चने तथा॥ ९४

स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते।
कृतार्थ इव देवेशो देवैः सार्धमुमापतिम्॥ ९५

तपसा प्राप्य सर्वज्ञं तुष्टाव पुरुषोत्तमः।

श्रीभगवानुवाच

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने॥ ९६

नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः॥ ९७

सूत उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं दण्डवत्प्रणिपत्य च।
जजाप रुद्रं भगवान् कोटिवारं जले स्थितः॥ ९८

देवाश्च सर्वे ते देवं तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
सेन्द्राः ससाध्याः सयमाः सरुद्राः समरुद्गणाः॥ ९९

प्रेमयुक्त रहती है, वह परम स्वर्ग प्राप्त करती है और इससे विपरीत आचरणसे नरक प्राप्त करती है। हे मुनिश्रेष्ठो! पूर्वकालमें स्त्रियाँ सभी धर्मों, अन्य देवताओं तथा जगद्गुरुओंको त्यागकर सर्वदा पतिकी पूजा करती थीं; वे स्वर्गलोक प्राप्त करके निश्चिन्त होकर आनन्द मनाती थीं, [इसके विपरीत] अन्य स्त्रियाँ नरक जाती थीं। अतः पति ही [स्त्रियोंके लिये] परम गति है। तथापि देवदेव प्रभु विष्णुकी आज्ञासे तथा उनकी मायाके कारण वे [त्रिपुरवासिनी स्त्रियाँ] अपने पतियोंका त्याग करके व्यभिचारिणी हो गयीं॥ ८५—८९१/२॥

उन [विष्णु]-की आज्ञासे अलक्ष्मी तीनों पुरोंमें चली गयीं और जो लक्ष्मी उन [दैत्यों]-की तपस्याके द्वारा देवेश्वर ब्रह्मासे उन्हें प्राप्त थीं, वे [उन्हीं] प्रभु ब्रह्माके आदेशसे [त्रिपुरको] छोड़कर बाहर चली गयीं। इस प्रकार धर्मविघ्नके लिये उन दैत्योंको उस प्रकारका विष्णुमाया-निर्मित बुद्धिमोह देकर भगवान् [पुरुष] और उन स्त्रियोंको विपरीत आचरणका उपदेश देकर मायावी नारद—ये दोनों अव्यय देव निराकुल होकर सुखपूर्वक बैठ गये॥ ९०—९२१/२॥

इस प्रकार परम उत्तम श्रौत-स्मार्त धर्मके नष्ट हो जानेपर, विश्वकर्ता उन विष्णुके द्वारा [वहाँ] पाखण्ड स्थापित कर दिये जानेपर, दैत्योंके द्वारा महेश्वरका त्याग कर दिये जानेपर तथा लिङ्गपूजाका परित्याग कर दिये जानेपर, सम्पूर्ण स्त्रीधर्मके नष्ट हो जानेपर और दुराचार स्थापित हो जानेपर देवेश [विष्णु] कृतार्थ हो गये और वे पुरुषोत्तम सभी देवताओंके साथ तपस्याद्वारा सर्वज्ञ उमापतिको प्राप्त करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ९३—९५१/२॥

श्रीभगवान् बोले—आप महेश्वर, देव, परमात्माको नमस्कार है। आप नारायण, शर्व, ब्रह्म, ब्रह्मरूप, शाश्वत, अनन्त तथा अव्यक्तको नमस्कार है॥ ९६-९७॥

सूतजी बोले—इस प्रकार भगवान् [विष्णु]-ने महादेवकी स्तुति करके दण्डवत् प्रणाम करके जलमें स्थित होकर एक करोड़ बार रुद्रमन्त्रका जप किया। इसके बाद वे सभी देवता इन्द्र, साध्यगण, यम, रुद्रगण

देवा ऊचुः

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शङ्करायार्तिहारिणे।
रुद्राय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे॥ १००

गतिर्नः सर्वदास्माभिर्वन्द्यो देवारिमर्दनः।
त्वमादिस्त्वमनन्तश्च अनन्तश्चाक्षयः प्रभुः॥ १०१

प्रकृतिः पुरुषः साक्षात्स्त्रष्टा हर्ता जगद्गुरो।
त्राता नेता जगत्यस्मिन् द्विजानां द्विजवत्सल॥ १०२

वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचकवर्जितः।
याज्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगविभ्रमैः॥ १०३

हृत्पुण्डरीकसुषिरे योगिनां संस्थितः सदा।
वदन्ति सूरयः सन्तं परं ब्रह्मस्वरूपिणम्॥ १०४

भवन्तं तत्त्वमित्यार्यास्तेजोराशिं परात्परम्।
परमात्मानमित्याहुरस्मिञ्जगति तद्विभो॥ १०५

दृष्टं श्रुतं स्थितं सर्वं जायमानं जगद्गुरो।
अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोऽपि महत्तरम्॥ १०६

सर्वतः पाणिपादं त्वां सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि॥ १०७

महादेवमनिर्देश्यं सर्वज्ञं त्वामनामयम्।
विश्वरूपं विरूपाक्षं सदाशिवमनामयम्॥ १०८

कोटिभास्करसङ्काशं कोटिशीतांशुसन्निभम्।
कोटिकालाग्निसङ्काशं षड्विंशकमनीश्वरम्॥ १०९

प्रवर्तकं जगत्यस्मिन् प्रकृतेः प्रपितामहम्।
वदन्ति वरदं देवं सर्वावासं स्वयम्भुवम्॥ ११०

श्रुतयः श्रुतिसारं त्वां श्रुतिसारविदो जनाः॥ १११

अदृष्टमस्माभिरनेकमूर्ते
विना कृतं यद्भवताथ लोके।
त्वमेव दैत्यान् सुरभूतसङ्घान्
देवान्नरान् स्थावरजङ्गमांश्च॥ ११२

पाहि नान्या गतिः शम्भो विनिहत्यासुरोत्तमान्।
मायया मोहिताः सर्वे भवतः परमेश्वर॥ ११३

तथा मरुद्गणोंके साथ देव परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ९८-९९॥

देवता बोले—आप सर्वात्मा, शंकर, दुःखनाशक, रुद्र, नीलरुद्र, कद्रुद्र (प्रशस्त रुद्र) तथा प्रचेताको नमस्कार है। आप हमलोगोंकी गति हैं। दैत्योंका संहार करनेवाले आप हमलोगोंद्वारा सर्वदा वन्द्य हैं। आप आदि तथा अन्तरहित हैं; आप अनन्त (शेषरूप), अविनाशी एवं प्रभुतासम्पन्न हैं। हे जगद्गुरो! आप प्रकृति, पुरुष, साक्षात् स्त्रष्टा, रक्षक तथा संहारक हैं। हे द्विजवत्सल! आप इस जगत्में द्विजोंके नेता हैं। आप वरदाता, वाणीमय, वाच्य, वाच्य-वाचकसे रहित ईशान हैं; आप मुक्तिके लिये योगपरायण योगियोंके द्वारा पूज्य हैं। आप योगियोंके हृदयरूपी कमलके छिद्रमें सदा स्थित हैं। विद्वान्लोग आपको सर्वत्र विद्यमान्, श्रेष्ठ तथा ब्रह्मस्वरूप कहते हैं। हे विभो! ऋषिगण आपको इस जगत्में तत्त्वरूप, तेजोराशि, परात्पर एवं परमात्मा कहते हैं। हे जगद्गुरो! आप दृष्ट, श्रुत, स्थित तथा जायमान सब कुछ हैं। लोग आपको अणुसे भी अल्पतर, महान्से भी महत्तर, सभी ओर हाथ-पैरवाला, सभी ओर नेत्र-सिर-मुखवाला तथा सभी ओर कानवाला कहते हैं। आप संसारमें सभीको आच्छादित करके स्थित हैं॥ १००—१०७॥

लोग आपको महादेव, अनिर्देश्य, सर्वज्ञ, अनामय, विश्वरूप, विरूपाक्ष, सदाशिव, निर्विकार, करोड़ों सूर्योंके समान [तेजस्वी] करोड़ों चन्द्रमासदृश [प्रकाशमान], करोड़ों कालाग्निके समान [प्रज्वलित], छब्बीस तत्त्वोंसे युक्त, अनीश्वर, इस जगत्में प्रकृतिके प्रवर्तक, प्रपितामह, सबके आवास-स्वरूप तथा स्वयम्भू (स्वयं उत्पन्न होनेवाला) एवं वर देनेवाला देव कहते हैं; श्रुतियाँ तथा श्रुति-तत्त्वोंको जाननेवाले लोग आपको वेदोंका सार कहते हैं॥ १०८—१११॥

हे अनेक रूपोंवाले [प्रभो]! हमलोगोंने संसारमें ऐसा कुछ भी नहीं देखा है, जो आपके बिना [किसी अन्यके द्वारा] रचित हो; आपने ही दैत्यों, सुरोंके भूतसमुदायों, देवताओं, मनुष्यों, स्थावर-जंगम आदिको उत्पन्न किया है॥ ११२॥

हे शम्भो! हमलोगोंकी कोई अन्य गति नहीं है;

यथा तरङ्गा लहरीसमूहा
युध्यन्ति चान्योन्यमपांनिधौ च।
जलाश्रयादेव जडीकृताश्च
सुरासुरास्तद्वदजस्य सर्वम्॥ ११४

सूत उवाच

य इदं प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा जपेन्नरः।
शृणुयाद्वा स्तवं पुण्यं सर्वकाममवाप्नुयात्॥ ११५
स्तुतस्त्वेवं सुरैर्विष्णोर्जपेन च महेश्वरः।
सोमः सोमामथालिङ्ग्य नन्दिदत्तकरः स्मयन्॥ ११६
प्राह गम्भीरया वाचा देवानालोक्य शङ्करः।
ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वराः॥ ११७
विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः।
तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तमाः॥ ११८
पुरत्रयविनाशं च करिष्येऽहं सुरोत्तमाः।

सूत उवाच

अथ सब्रह्मका देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समागताः॥ ११९
श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं प्रणेमुस्तुष्टुवुश्च ते।
अप्येतदन्तरं देवी देवमालोक्य विस्मिता॥ १२०
लीलाम्बुजेन चाहत्य कलमाह वृषध्वजम्।

देव्युवाच

क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसन्निभम्॥ १२१
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठ भूषितं भूषणैः शुभैः।
मुकुटैः कटकैश्चैव कुण्डलैर्वलयैः शुभैः॥ १२२
नूपुरैश्छन्नवारैश्च तथा ह्युदरबन्धनैः।
किङ्किणीभिरनेकाभिर्हेमैरश्वत्थपत्रकैः ॥ १२३
कल्पकद्रुमजैः पुष्पैः शोभितैरलकैः शुभैः।
हारैर्वारीजरागादिमणिचित्रैस्तथाङ्गदैः ॥ १२४
मुक्ताफलमयैर्हारैः पूर्णचन्द्रसमप्रभैः।
तिलकैश्च महादेव पश्य पुत्रं सुशोभनम्॥ १२५
अङ्कितं कुङ्कुमाद्यैश्च वृत्तं भसितनिर्मितम्।
वक्त्रवृन्दं च पश्येश वृन्दं कामलकं यथा॥ १२६

महादैत्योंका संहार करके आप [हमारी] रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर! सभीलोग आपकी मायासे मोहित हैं॥ ११३॥

जिस प्रकार तरंगें तथा लहरें समुद्रमें परस्पर टकराती हैं और जलाश्रयसे ही जड़ीभूत होकर उसीमें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्माकी सृष्टिके देवता-असुर सभी कोई आपसमें टकराते हैं और अन्तमें जड़ीभूत होकर आपमें ही विलीन हो जाते हैं॥ ११४॥

सूतजी बोले—जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शुद्ध होकर इस पवित्र स्तुतिको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ११५॥

इस प्रकार देवताओंके द्वारा स्तुति किये जाने तथा विष्णुके जपसे प्रसन्न हुए महेश्वर शंकरने उमाका आलिङ्गन करके नन्दीके ऊपर हाथ रखकर देवताओंकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें मुसकराते हुए कहा—'हे सुरेश्वरो! अब मैंने इस देवकार्यको और विष्णु तथा बुद्धिमान् नारदके मायाबलको जान लिया है। हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं अधर्ममें निष्ठा रखनेवाले उन दैत्योंके तीनों पुरोंका विनाश [अवश्य] करूँगा'॥ ११६—११८½॥

सूतजी बोले—इसके बाद [वहाँ] आये हुए वे इन्द्र-ब्रह्मा-विष्णुसहित देवताओंने प्रभुका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की। इसके अनन्तर शिवकी ओर देखकर विस्मित देवी भी अपने लीला-कमलसे शिवजीको मारकर (स्पर्शकर) यह वचन कहने लगीं॥ ११९-१२०½॥

देवी बोलीं—हे विभो! हे पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ! उत्तम आभूषणोंसे सुशोभित तथा सूर्यके समान प्रतीत होनेवाले [अपने] इस खेलते हुए श्रेष्ठ पुत्र षडाननको देखिये। हे महादेव! मुकुटों, कटकों, कुण्डलों, सुन्दर कंगनों, नूपुरों, छन्नवारों, करधनियों, अनेक किंकिणियों, सुवर्णमय पीपलके पत्तों, कल्पद्रुमके पुष्पोंसे शोभित सुन्दर अलकों, पद्मराग आदि मणियोंसे चमत्कृत हारों तथा बाजूबन्दों, पूर्णचन्द्रमाके समान प्रभावाले मुक्ताफलमय हारों और तिलकोंसे मण्डित परम सुन्दर पुत्रको देखिये। हे ईश! कुंकुम आदिसे अंकित तथा भस्मनिर्मित

नेत्राणि च विभो पश्य शुभानि त्वं शुभानि च।
अञ्जनानि विचित्राणि मङ्गलार्थं च मातृभिः॥ १२७

गङ्गादिभिः कृत्तिकाद्यैः स्वाहया च विशेषतः।
इत्येवं लोकमातुश्च वाग्भिः सम्बोधितः शिवः॥ १२८

न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन् स्कन्दाननामृतम्।
न सस्मार च तान् देवान् दैत्यशस्त्रनिपीडितान्॥ १२९

स्कन्दमालिङ्ग्य चाघ्राय नृत्य पुत्रेत्युवाच ह।
सोऽपि लीलालसो बालो ननर्तार्तिहरः प्रभुः॥ १३०

सहैव ननृतुश्चान्ये सह तेन गणेश्वराः।
त्रैलोक्यमखिलं तत्र ननर्तेशाज्ञया क्षणम्॥ १३१

नागाश्च ननृतुः सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्गणपाः स्कन्दं मुमोदाम्बा च मातरः॥ १३२

ससृजुः पुष्पवर्षाणि जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
नृत्यामृतं तदा पीत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ।
अवापतुस्तदा तृप्तिं नन्दिना च गणेश्वराः॥ १३३

ततः स नन्दी सह षण्मुखेन
तथा च सार्धं गिरिराजपुत्र्या।
विवेश दिव्यं भवनं भवोऽपि
यथाम्बुदोऽन्याम्बुदमम्बुदाभः ॥ १३४

द्वारस्य पार्श्वे ते तस्थुर्देवा देवस्य धीमतः।
तुष्टुवुश्च महादेवं किञ्चिदुद्विग्नचेतसः॥ १३५

किन्तु किन्त्विति चान्योन्यं प्रेक्ष्य चैतत्समाकुलाः।
पापा वयमिति ह्यन्ये अभाग्याश्चेति चापरे॥ १३६

भाग्यवन्तश्च दैत्येन्द्रा इति चान्ये सुरेश्वराः।
पूजाफलमिमं तेषामित्यन्ये नेति चापरे॥ १३७

एतस्मिन्नन्तरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः।
कुम्भोदरो महातेजा दण्डेनाताडयत्सुरान्॥ १३८

दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेतिवादिनः।
अपतन् मुनयश्चान्ये देवाश्च धरणीतले॥ १३९

वृत्ताकार तिलकसे युक्त इसके कमलसमूह-सदृश मुखोंको देखिये। हे विभो! आप इसके अत्यन्त सुन्दर नेत्रोंको देखिये, गंगा आदि, कृत्तिका आदि तथा विशेष रूपसे स्वाहा माताओंके द्वारा मंगलके लिये लगाये गये भव्य तथा विचित्र काजलोंको देखिये॥ १२१—१२७½॥

इस प्रकार जगज्जननी [उमा]-के वचनोंसे सम्बोधित किये गये ईशान शिव कार्तिकेयके मुखामृतका पान करते हुए तृप्त नहीं हुए। उन्हें दैत्योंके शस्त्रोंसे पीड़ित उन देवताओंका स्मरण नहीं रहा। उन्होंने स्कन्दका आलिङ्गन करके उसका सिर सूँघकर कहा—'हे पुत्र! नृत्य करो।' तब कष्ट दूर करनेवाले बालकरूप प्रभु [स्कन्द] भी लीला करते हुए नाचने लगे। सभी गणेश्वर भी उनके साथ नृत्य करने लगे और क्षणभरमें शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण त्रिलोकी वहाँ नृत्य करने लगा। नाग और इन्द्रसहित सभी देवता भी नाचने लगे। गणेश्वरोंने स्कन्दकी स्तुति की। [उस समय] पार्वती तथा [अन्य] माताएँ आनन्दित हुईं। गन्धर्व तथा किन्नर पुष्पवृष्टि करने लगे एवं गाने लगे। तब [उस] नृत्यरूपी अमृतका पान करके पार्वती तथा परमेश्वर तृप्त हो गये और नन्दीसहित गणेश्वर भी तृप्त हुए॥ १२८—१३३॥

तदनन्तर सूर्यके समान कान्तिवाले शिवजीने भी नन्दी, षडानन (स्कन्द) तथा गिरिराजपुत्री [पार्वती]-के साथ दिव्य भवनमें प्रवेश किया, जैसे मेघ अन्य मेघमें प्रवेश करता है॥ १३४॥

वे देवता उन बुद्धिमान् शिवके द्वारके पास खड़े हो गये और कुछ-कुछ व्याकुलचित्त होकर महादेवकी स्तुति करने लगे। वे व्याकुल होकर एक-दूसरेकी ओर देखकर कहने लगे—'यह क्या, यह क्या; हमलोग पापी हैं' अन्य दूसरोंने कहा—'हम अभागे हैं' अन्य सुरेश्वरोंने कहा—'ये महादैत्य भाग्यशाली हैं।' कुछने कहा—'यह उनकी पूजाका फल है' और कुछने कहा—'ऐसा नहीं है'॥ १३५—१३७॥

इसी बीच उनके अनेक शब्दोंको सुनकर महातेजस्वी कुम्भोदर [नामक शिवगण] दण्डसे देवताओंको पीटने लगा। तब वे देवता भयभीत होकर 'हा-हा' कहते हुए

अहो विधेर्बलं चेति मुनयः कश्यपादयः।
दृष्ट्वापि देवदेवेशं देवानां चासुरद्विषाम्॥ १४०

अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः।
प्रोचुर्नमः शिवायेति पूज्य चाल्पतरं हृदि॥ १४१

ततः कपर्दी नन्दीशो महादेवप्रियो मुनिः।
शूली माली तथा हाली कुण्डली वलयी गदी॥ १४२

वृषमारुह्य सुश्वेतं ययौ तस्याज्ञया तदा।
ततो वै नन्दिनं दृष्ट्वा गणः कुम्भोदरोऽपि सः॥ १४३

प्रणम्य नन्दिनं मूर्ध्ना सह तेन त्वरन् ययौ।
नन्दी भाति महातेजा वृषपृष्ठे वृषध्वजः॥ १४४

सगणो गणसेनानीर्मेघपृष्ठे यथा भवः।
दशयोजनविस्तीर्णं मुक्ताजालैरलङ्कृतम्॥ १४५

सितातपत्रं शैलादेराकाशमिव भाति तत्।
तत्रान्तर्बद्धमाला सा मुक्ताफलमयी शुभा॥ १४६

गङ्गाकाशान्निपतिता भाति मूर्ध्नि विभोर्यथा।
अथ दृष्ट्वा गणाध्यक्षं देवदुन्दुभयः शुभाः॥ १४७

नियोगाद्वज्रिणः सर्वे विनेदुर्मुनिपुङ्गवाः।
तुष्टुवुश्च गणेशानं वाग्भिरिष्टप्रदं शुभम्॥ १४८

यथा देवा भवं दृष्ट्वा प्रीतिकण्टकितत्वचः।
नियोगाद्वज्रिणो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं च खेचराः॥ १४९

ववृषुश्च सुगन्धाढ्यं नन्दिनो गगनोदितम्।
वृष्ट्या तुष्टस्तदा रेजे तुष्ट्या पुष्ट्या यथार्थया॥ १५०

नन्दी भवश्चान्द्रया तु स्नातया गन्धवारिणा।
पुष्पैर्नानाविधैस्तत्र भाति पृष्ठं वृषस्य तत्॥ १५१

सङ्कीर्णं तु दिवः पृष्ठं नक्षत्रैरिव सुव्रताः।
कुसुमैः संवृतो नन्दी वृषपृष्ठे रराज सः॥ १५२

भागने लगे; कुछ मुनि तथा देवता पृथ्वीतलपर गिर पड़े॥ १३८-१३९॥

कश्यप आदि मुनियोंने कहा—'विधिका बल कैसा अद्भुत है!' हे द्विजो! अन्य लोगोंने कहा—'देव-देवेशका दर्शन करके भी असुरशत्रु देवताओंके अभाग्यसे ही कार्य पूर्ण नहीं हो सका। इसके बाद वे सब हृदयमें थोड़ा अर्चन करके 'शिवको नमस्कार है'—ऐसा कहने लगे॥ १४०-१४१॥

तत्पश्चात् जटाजूट धारण किये, [हाथमें] त्रिशूल लिये, माला पहने हुए, हाला धारण किये हुए, कुण्डल धारण किये हुए, कंगन पहने हुए तथा गदा धारण किये हुए महादेवप्रिय मुनि नन्दीश सुन्दर श्वेत बैलपर चढ़कर उन [शिव]-की आज्ञासे वहाँ जाने लगे। तब नन्दीको देखकर कुम्भोदर [नामक] वह गण भी नन्दीको प्रणाम करके शीघ्रता करते हुए उनके साथ चल दिया। गणसहित वे महातेजस्वी वृषध्वज गणोंके सेनापति नन्दी बैलकी पीठपर उसी तरह प्रतीत हो रहे थे, मानो मेघरूप विष्णुके पृष्ठपर शिवजी विराजमान हों। नन्दीश्वरका दस योजन विस्तृत तथा मुक्ताजालोंसे अलंकृत श्वेत छत्र आकाशकी भाँति प्रतीत हो रहा था। उस छत्रमें भीतरसे बँधी हुई मुक्ताफलोंकी वह श्वेत माला ऐसी लग रही थी, मानो शिवजीके सिरपर आकाशसे गंगा गिर रही हों॥ १४२—१४६½॥

हे मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर गणाध्यक्ष [नन्दी]-को देखकर इन्द्रकी आज्ञासे दिव्य देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं; सभी लोग वाणीद्वारा वांछित फल प्रदान करनेवाले शुभ गणेश्वरकी स्तुति करने लगे, जैसे शिवको देखकर देवतालोग प्रसन्नतासे रोमांचित होकर उनकी स्तुति करते हैं॥ १४७-१४८½॥

आकाशचारियोंने इन्द्रकी आज्ञासे नन्दीके सिरपर आकाशसे सुगन्धमय पुष्पवृष्टि की। तुष्टि-पुष्टिसे युक्त यथार्थ वृष्टिसे प्रसन्न होकर नन्दी उसी तरह शोभा पा रहे थे, जैसे शिवजी गन्धजलसे अभिसिंचित चन्द्रलेखासे शोभा प्राप्त करते हैं। हे सुव्रतो! वृषभका पृष्ठ अनेक प्रकारके पुष्पोंसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो आकाशपृष्ठ

दिवः पृष्ठे यथा चन्द्रो नक्षत्रैरिव सुव्रताः।
तं दृष्ट्वा नन्दिनं देवाः सेन्द्रोपेन्द्रास्तथाविधम्॥ १५३

तुष्टुवुर्गणपेशानं देवदेवमिवापरम्।

देवा ऊचुः

नमस्ते रुद्रभक्ताय रुद्रजाप्यरताय च॥ १५४

रुद्रभक्तार्तिनाशाय रौद्रकर्मरताय ते।
कूष्माण्डगणनाथाय योगिनां पतये नमः॥ १५५

सर्वदाय शरण्याय सर्वज्ञायार्तिहारिणे।
वेदानां पतये चैव वेदवेद्याय ते नमः॥ १५६

वज्रिणे वज्रदंष्ट्राय वज्रिवज्रनिवारिणे।
वज्रालङ्कृतदेहाय वज्रिणाराधिताय ते॥ १५७

रक्ताय रक्तनेत्राय रक्ताम्बरधराय ते।
रक्तानां भवपादाब्जे रुद्रलोकप्रदायिने॥ १५८

नमः सेनाधिपतये रुद्राणां पतये नमः।
भूतानां भुवनेशानां पतये पापहारिणे॥ १५९

रुद्राय रुद्रपतये रौद्रपापहराय ते।
नमः शिवाय सौम्याय रुद्रभक्ताय ते नमः॥ १६०

सूत उवाच

ततः प्रीतो गणाध्यक्षः प्राह देवांश्छिलात्मजः।
रथं च सारथिं शम्भोः कार्मुकं शरमुत्तमम्॥ १६१

कर्तुमर्हथ यत्नेन नष्टं मत्वा पुरत्रयम्।
अथ ते ब्रह्मणा सार्धं तथा वै विश्वकर्मणा॥ १६२

रथं चक्रुः सुसंरब्धा देवदेवस्य धीमतः॥ १६३

तारोंसे भर गया हो। हे सुव्रतो! पुष्पोंसे ढँके हुए नन्दी बैलकी पीठपर उसी प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे आकाशपृष्ठपर [विराजमान] चन्द्रमा तारोंसे आच्छादित होकर सुशोभित होते हैं॥ १४९—१५२¹/₂॥

उस प्रकारकी शोभावाले उन नन्दीको देखकर इन्द्र तथा विष्णुसहित देवता साक्षात् महादेवजीकी भाँति प्रतीत होनेवाले गणाधिपोंके स्वामी नन्दीकी स्तुति करने लगे॥ १५३¹/₂॥

देवता बोले—आप रुद्रभक्त तथा रुद्रजपपरायणको नमस्कार है। रुद्रभक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले, रौद्रकर्ममें संलग्न, कूष्माण्डगणोंके स्वामी तथा योगियोंके पति आप [नन्दी]-को नमस्कार है। सब कुछ प्रदान करनेवाले, शरण देनेवाले, सब कुछ जाननेवाले, कष्ट दूर करनेवाले, वेदोंके पति तथा वेदोंसे जाननेयोग्य आप [नन्दी]-को नमस्कार है। वज्रधारी, वज्रतुल्य दंष्ट्रावाले, इन्द्रके वज्रका निवारण करनेवाले, वज्रसे अलंकृत देहवाले तथा इन्द्रके द्वारा आराधित आप [नन्दी]-को नमस्कार है। रक्त वर्णवाले, रक्त नेत्रवाले, रक्त वस्त्र धारण करनेवाले तथा शिवके चरणकमलमें अनुरागयुक्त लोगोंको रुद्रलोक प्रदान करनेवाले आप [नन्दी]-को नमस्कार है। सेनाके अधिपति, रुद्रोंके पति, भूतों तथा भुवनेशोंके पति और पापोंका हरण करनेवाले आप [नन्दी]-को नमस्कार है। रुद्र, रुद्रपति, रौद्र पापोंका हरण करनेवाले आप [नन्दी]-को नमस्कार है। शिवस्वरूप, सौम्य [स्वभाववाले] तथा रुद्रभक्त आप [नन्दी]-को नमस्कार है॥ १५४—१६०॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तदनन्तर प्रसन्न हुए शिलादपुत्र गणेश्वर [नन्दी]-ने देवताओंसे कहा—'अब तीनों पुरोंको नष्ट मानकर आपलोग शम्भुके लिये रथ, सारथि, धनुष तथा उत्तम बाण प्रयत्नपूर्वक तैयार कराइये।' इसके बाद उन देवताओंने अतिशीघ्रतासे युक्त होकर ब्रह्माके साथ विश्वकर्माके द्वारा बुद्धिमान् देवदेव [शिव]-का रथ बनवाया॥ १६१—१६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पुरदाहे नन्दिकेश्वरवाक्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पुरदाहप्रसंगमें नन्दिकेश्वरवाक्य' नामक इकहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

त्रिपुरासुरके वधके लिये विश्वकर्माद्वारा एक दिव्य रथका निर्माण तथा भगवान् महेश्वरका उस रथपर आरूढ़ हो त्रिपुरासुरको दग्ध करना एवं ब्रह्माद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

सूत उवाच

अथ रुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम्॥ १

सर्वभूतमयश्चैव सर्वदेवनमस्कृतः।
सर्वदेवमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः॥ २

रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यो वामाङ्गं सोम एव च।
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्॥ ३

अरेषु तेषु विप्रेन्द्राश्चादित्या द्वादशैव तु।
शशिनः षोडशारेषु कला वामस्य सुव्रताः॥ ४

ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैव तु भूषणम्।
नेम्यः षड्ऋतवश्चैव तयोर्वै विप्रपुङ्गवाः॥ ५

पुष्करं चान्तरिक्षं वै रथनीडश्च मन्दरः।
अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौ तौ कूबरौ स्मृतौ॥ ६

अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केसराचलाः।
वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसङ्गमौ॥ ७

मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः।
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा चाक्षदण्डाः क्षणाश्च वै॥ ८

निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषा चास्य लवाः स्मृताः।
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ॥ ९

धर्मो विरागो दण्डोऽस्य यज्ञा दण्डाश्रयाः स्मृताः।
दक्षिणाः सन्धयस्तस्य लोहाः पञ्चाशदग्नयः॥ १०

युगान्तकोटी तौ तस्य धर्मकामावुभौ स्मृतौ।
ईषादण्डस्तथाव्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः॥ ११

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] विश्वकर्माने प्रयत्नके साथ आदरपूर्वक भगवान् रुद्रका रथ बनाया; वह सर्वलोकमय, दिव्य, सर्वभूतमय, सभी देवताओंसे नमस्कृत, सभी देवताओंसे युक्त, सुवर्णमय तथा सबके अनुकूल था। उसका दाहिना चक्र सूर्य एवं बायाँ चक्र चन्द्रमा थे। दाहिना चक्र बारह अरोंवाला तथा बायाँ चक्र सोलह अरोंवाला था। हे विप्रेन्द्रो! हे सुव्रतो! [दाहिने चक्रके] उन अरोंमें बारह आदित्य थे और बायें चक्रके सोलह अरोंमें चन्द्रमाकी [सोलह] कलाएँ थीं। हे मुनिश्रेष्ठो! नक्षत्रगण उस बाएँ चक्रके भूषण थे और छः ऋतुएँ उन दोनों चक्रोंकी नेमियाँ थीं। आकाश इसकी छत थी और मन्दर पर्वत रथका सारथि-स्थान था। अस्ताचल तथा उदयाचल उसके दोनों स्तम्भ कहे गये हैं। महामेरु [पर्वत] उसका अधिष्ठान [मुख्य स्थान] था और केसरपर्वत मेरुको आश्रय देनेवाले थे। संवत्सर उसका वेग था और दोनों अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) उसके चक्रसंगम (अक्षके प्रान्तभाग) थे। मुहूर्त उस रथके बंधुर [तल्पभाग] और कलाएँ उसकी शम्या (वर्तुलपट्टिकाएँ) कही गयी हैं। काष्ठाएँ उसकी नासिका तथा क्षण उसके अक्षदण्ड (चक्रोंका आधारदण्ड) कहे गये हैं। निमेष इस रथके अनुकर्ष (नीचेका तल) तथा लव (निमेषसे भी छोटा समय) इसकी ईषा (दोनों अक्षोंको जोड़नेवाला काष्ठ) कहे गये हैं॥ १—८$^1/_2$॥

अन्तरिक्ष इस रथका वरूथ (कवच) था और स्वर्ग तथा मोक्ष इस रथके दोनों ध्वज थे। धर्म तथा विराग इसके दण्ड थे; यज्ञ इस दण्डको आश्रय (सहारा) देनेवाले कहे गये हैं। दक्षिणाएँ उस रथकी सन्धियाँ थीं और पचासों अग्नियाँ इसकी कीलें थीं। धर्म तथा काम—ये दोनों उसके जुओंके सिरे कहे गये हैं। अव्यक्त [तत्त्व] उसका ईषादण्ड था तथा बुद्धि इसका

कोणस्तथा ह्यहङ्कारो भूतानि च बलं स्मृतम्।
इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समन्ततः॥ १२

श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्य हयाः स्मृताः।
पदानि भूषणान्येव षडङ्गान्युपभूषणम्॥ १३

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः।
वालाश्रयाः पटाश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः॥ १४

मन्त्रा घण्टाः स्मृतास्तेषां वर्णाः पादास्तथाश्रमाः।
अवच्छेदो ह्यनन्तस्तु सहस्रफणभूषितः॥ १५

दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह।
पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः॥ १६

समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकम्बलिकाः स्मृताः।
गङ्गाद्याः सरितः श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः॥ १७

चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः।
तत्र तत्र कृतस्थानाः शोभयाञ्चक्रिरे रथम्॥ १८

आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम्।
सारथिर्भगवान् ब्रह्मा देवाभीषुधराः स्मृताः॥ १९

प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम्।
लोकालोकाचलस्तस्य ससोपानः समन्ततः॥ २०

विषमश्च तदा बाह्यो मानसाद्रिः सुशोभनः।
नासाः समन्ततस्तस्य सर्व एवाचलाः स्मृताः॥ २१

तलाः कपोताः कापोताः सर्वे तलनिवासिनः।
मेरुरेव महाछत्रं मन्दरः पार्श्वडिण्डिमः॥ २२

शैलेन्द्रः कार्मुकं चैव ज्याभुजङ्गाधिपः स्वयम्।
कालरात्र्या तथैवेह तथेन्द्रधनुषा पुनः॥ २३

घण्टा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी।
इषुर्विष्णुर्महातेजाः शल्यं सोमः शरस्य च॥ २४

नड्वल (अक्षको स्निग्ध बनानेवाले द्रव्यका पात्र) थी। अहंकार इसका कोण था। पंचमहाभूतोंको इसका बल बताया गया है। [सभी] इन्द्रियाँ उसके सभी ओर लगे हुए आभूषण थे। श्रद्धा इस [रथ]-की गति थी। वेद उसके घोड़े कहे गये हैं। वेदोंके पदविभाग इसके भूषण थे तथा [शिक्षा आदि] छः वेदांग इसके उपभूषण थे। हे सुव्रतो! पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र इसके वालाश्रय पट थीं, जो सभी लक्षणोंसे युक्त थे। [गायत्री आदि] मन्त्र, [क आदि] वर्ण, पाद (छन्दोंके चतुर्थांश) तथा [ब्रह्मचर्य आदि] आश्रम उन पटोंके घंटे कहे गये हैं। हजार फणोंसे विभूषित अनन्त [शेषनाग] उसके बन्धनरज्जु थे॥ ९—१५॥

दिशाएँ तथा उपदिशाएँ इस रथके पाद थे। पुष्कर आदि [मेघ] रत्नभूषित सुवर्णनिर्मित पताकाएँ थीं। चारों समुद्र उस रथके बाह्य कम्बल कहे गये हैं। गंगा आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ समस्त आभूषणोंसे अलंकृत होकर [अपने] हाथोंके अग्रभागमें चामर (चँवर) धारण किये हुए स्त्रीरूपसे शोभित होती हुई जहाँ-तहाँ अपना स्थान बनाकर रथको सुशोभित कर रही थीं॥ १६—१८॥

आवह आदि सात वायु उसकी सुवर्णमय उत्तम सीढ़ियाँ थीं। भगवान् ब्रह्मा सारथि थे और देवतालोग रथकी रश्मियोंको पकड़नेवाले कहे गये हैं। ब्रह्मदैवत प्रणव ब्रह्माके हाथमें स्थित उसका प्रतोद (चाबुक) था। विस्तृत लोकालोक पर्वत उसके सात वायुओंके स्कन्धरूप सोपानसे युक्त था। परम सुन्दर मानस पर्वत उसमें पैर रखनेका अधोभाग (पायदान) था। समस्त पर्वत सभी ओर इस रथकी नासा (नासिका) कहे गये हैं॥ १९—२१॥

सातों तल उस रथके मज्जन थे; उन तलोंमें रहनेवाले सभी लोग कपोतपक्षीके समान थे। मेरु पर्वत उस रथका महाछत्र था और मन्दर पर्वत पृष्ठवाद्यके रूपमें था। शैलराज [मेरु] धनुष थे और स्वयं भुजंगपति [वासुकि] कालरात्रि तथा इन्द्रधनुषके साथ ज्या (धनुषकी डोरी) थे। वेदस्वरूपिणी सरस्वती देवी [उस] धनुषकी घण्टा थीं, महातेजस्वी विष्णु बाण थे

कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षात्तीक्ष्णः सुदारुणः।
अनीकं विषसम्भूतं वायवो वाजकाः स्मृताः॥ २५

एवं कृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकं च शरं तथा।
सारथिं जगतां चैव ब्रह्माणं प्रभुमीश्वरम्॥ २६

आरुरोह रथं दिव्यं रणमण्डनधृग्भवः।
सर्वदेवगणैर्युक्तं कम्पयन्निव रोदसी॥ २७

ऋषिभिः स्तूयमानश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः।
उपनृत्यश्चाप्सरसां गणैर्नृत्यविशारदैः॥ २८

सुशोभमानो वरदः सम्प्रेक्ष्यैव च सारथिम्।
तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसम्भृतम्॥ २९

शिरोभिः पतिता भूमिं तुरगा वेदसम्भवाः।
अथाधस्ताद्रथस्यास्य भगवान् धरणीधरः॥ ३०

वृषेन्द्ररूपी चोत्थाप्य स्थापयामास वै क्षणम्।
क्षणान्तरे वृषेन्द्रोऽपि जानुभ्यामगमद्धराम्॥ ३१

अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयान् विभुः।
स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं शुभम्॥ ३२

ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः।
पुराण्युद्दिश्य खस्थानि दानवानां तरस्विनाम्॥ ३३

अथाह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शङ्करः।
पशूनामाधिपत्यं मे दत्तं हन्मि ततोऽसुरान्॥ ३४

पृथक्पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः।
कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा नैव सत्तमाः॥ ३५

इति श्रुत्वा वचः सर्वं देवदेवस्य धीमतः।
विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रति शङ्किताः॥ ३६

तेषां भावं ततो ज्ञात्वा देवस्तानिदमब्रवीत्।
मा वोऽस्तु पशुभावेऽस्मिन् भयं विबुधसत्तमाः॥ ३७

श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः।
यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति॥ ३८

और चन्द्रमा [उस] बाणके शल्य (लौहनिर्मित अग्रभाग) थे। साक्षात् प्रलयाग्नि उस बाणके तीक्ष्ण तथा अतिभयंकर विषमय अनीक (बल) थे। [आवह आदि] वायु [उस बाणके] पंख कहे गये हैं॥ २२—२५॥

इस प्रकार [देवताओंके द्वारा] दिव्य रथ, धनुष, बाण तथा जगत्के स्वामी प्रभु ब्रह्माको सारथि बनाकर तथा [कवच, मुकुट आदि] रणभूषणोंको धारण करनेवाले शिवजी सभी देवताओंसहित पृथ्वी तथा स्वर्गको कम्पित करते हुए [उस] दिव्य रथपर आरूढ़ हुए॥ २६-२७॥

ऋषियोंके द्वारा स्तुत होते हुए और बन्दीजनों तथा नृत्य करती हुई नृत्यप्रवीण अप्सराओंके द्वारा वन्दित होते हुए वे वरद शिव अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। सारथिकी ओर देखकर उस लोकसम्भृत कल्पित रथपर उनके आरूढ़ होते ही वेदसम्भूत घोड़े सिरके बल भूमिपर गिर पड़े। तदनन्तर वृषेन्द्रका रूप धारण किये हुए भगवान् शेषने इस रथको नीचेसे उठाकर क्षणभरमें स्थापित करना चाहा, किंतु वे वृषेन्द्र भी एक क्षणके बाद घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े। तब हाथमें लगाम पकड़े हुए सर्वव्यापी भगवान् [ब्रह्माने] शिवके आदेशसे घोड़ोंको उद्यत (उत्साहित) करके [उस] शुभ रथको स्थापित कर दिया और उन्होंने मन तथा वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको साहसी दानवोंके आकाश-स्थित पुरोंको उद्देश्य करके प्रेरित किया॥ २८—३३॥

इसके बाद भगवान् शंकर रुद्रने देवताओंको देखकर कहा—'मुझे ही पशुओं (जीवों)-का आधिपत्य दिया गया है; अतः मैं असुरोंका हनन करता हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! देवों तथा असुरोंके लिये पृथक्-पृथक् पशुत्व होनेके कारण ही वे महादानव वधके योग्य होंगे; अन्यथा नहीं॥ ३४-३५॥

बुद्धिमान् देवदेव [शिव]-का सम्पूर्ण वचन सुनकर पशुत्वके प्रति शंकित होते हुए सभी देवता विषादग्रस्त हो गये॥ ३६॥

तब उनके इस भावको जानकर शिवजीने उनसे यह वचन कहा—'हे श्रेष्ठ देवताओ! इस पशुभावमें आपलोगोंको भय नहीं होना चाहिये। अब पशुभावकी

पशुत्वादिति सत्यं च प्रतिज्ञातं समाहिताः।
ये चाप्यन्ये चरिष्यन्ति व्रतं पाशुपतं मम॥ ३९

मोक्ष्यन्ति ते न सन्देहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः।
नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्धं वर्षकत्रयम्॥ ४०

शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते।
तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः॥ ४१

तथेति चाब्रुवन् देवाः शिवे लोकनमस्कृते।
तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभोः॥ ४२

रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः।
यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन सन्त्यजेत्॥ ४३

तत्कृत्वा न च पापीयानिति शास्त्रस्य निश्चयः।
ततो विनायकः साक्षाद् बालोऽबालपराक्रमः॥ ४४

अपूजितस्तदा देवैः प्राह देवान्निवारयन्।

श्रीविनायक उवाच

मामपूज्य जगत्यस्मिन् भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥ ४५

कः पुमान् सिद्धिमाप्नोति देवो वा दानवोऽपि वा।
ततस्तस्मिन् क्षणादेव देवकार्ये सुरेश्वराः॥ ४६

विघ्नं करिष्ये देवेशः कथं कर्तुं समुद्यताः।
ततः सेन्द्राः सुराः सर्वे भीताः सम्पूज्य तं प्रभुम्॥ ४७

भक्ष्यभोज्यादिभिश्चैव उण्डरैश्चैव मोदकैः।
अब्रुवंस्ते गणेशानं निर्विघ्नं चास्तु नः सदा॥ ४८

भवोऽप्यनेकैः कुसुमैर्गणेशं
भक्ष्यैश्च भोज्यैः सुरसैः सुगन्धैः।
आलिङ्ग्य चाघ्राय सुतं तदानी-
मपूजयत्सर्वसुरेन्द्रमुख्यः॥ ४९

सम्पूज्य पूज्यं सह देवसङ्घै-
र्विनायकं नायकमीश्वराणाम्।
गणेश्वरैरेव नगेन्द्रधन्वा
पुरत्रयं दग्धुमसौ जगाम॥ ५०

मुक्तिका उपाय सुनिये और उसे कीजिये। जो दिव्य पाशुपतव्रतको करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा; यह सत्य तथा प्रतिज्ञात है। हे श्रेष्ठ देवताओ! एकाग्रचित्त होकर जो अन्य लोग भी मेरे पाशुपतव्रतको करेंगे, वे पशुत्वसे मुक्त हो जायँगे; इसमें सन्देह नहीं है। जो निष्ठापूर्वक बारह वर्ष, उसके आधे [छः वर्ष] अथवा तीन वर्षतक शुश्रूषा करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा। अतः हे श्रेष्ठ देवताओ! [आपलोग] इस परम दिव्य व्रतको कीजिये'॥ ३७—४१॥

लोकनमस्कृत शिवके ऐसा कहनेपर देवताओंने कहा—'ऐसा ही होगा।' अतः समस्त देवता, असुर तथा मनुष्य शिवजीके पशु हैं। रुद्र पशुपति हैं और पशुपाशसे मुक्त करनेवाले हैं। जो पशु है, उसे इस व्रतके द्वारा पशुभावका त्याग कर देना चाहिये; इसे करके वह पापी नहीं रह जाता है—यह शास्त्रका निश्चय है॥ ४२-४३१/२॥

तत्पश्चात् अमित पराक्रमवाले बालकरूप साक्षात् विनायक देवताओंद्वारा पूजित न होनेके कारण उन्हें रोकते हुए कहने लगे॥ ४४१/२॥

श्रीविनायक बोले—शुभ भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंके द्वारा मेरी पूजा किये बिना इस संसारमें कौन मनुष्य, देवता अथवा दानव सिद्धि प्राप्त कर सकता है? अतः हे सुरेश्वरो! मैं देवेश क्षणभरमें ही उस देवकार्यमें विघ्न करूँगा; [मेरी पूजा किये बिना] आपलोग कार्य करनेमें कैसे तत्पर हो गये?॥ ४५-४६१/२॥

तत्पश्चात् इन्द्रसहित सभी देवता भयभीत हो गये और भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थों, आटेसे बने लड्डुओं तथा मोदकोंसे उन प्रभुकी विधिवत् पूजा करके वे गणेश्वरसे बोले—'हमलोगोंका कार्य सदा निर्विघ्न सम्पन्न हो'॥ ४७-४८॥

उस समय समस्त सुरेश्वरोंमें मुख्य शिवने भी [अपने] पुत्र गणेशका आलिङ्गन करके उनका सिर सूँघकर अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्पों, भक्ष्य-भोज्य पदार्थों तथा उत्तम रसोंसे उनकी पूजा की॥ ४९॥

इसके बाद वे मेरुधन्वा शिवजी देवताओंके साथ

तं देवदेवं सुरसिद्धसङ्घा
महेश्वरं भूतगणाश्च सर्वे।
गणेश्वरा नन्दिमुखास्तदानीं
स्ववाहनैरन्वयुरीशमीशाः ॥ ५१

अग्रे सुराणां च गणेश्वराणां
तदाथ नन्दी गिरिराजकल्पम्।
विमानमारुह्य पुरं प्रहर्तुं
जगाम मृत्युं भगवानिवेशः॥ ५२

यान्तं तदानीं तु शिलादपुत्र-
मारुह्य नागेन्द्रवृषाश्ववर्यान्।
देवास्तदानीं गणपाश्च सर्वे
गणा ययुः स्वायुधचिह्नहस्ताः॥ ५३

खगेन्द्रमारुह्य नगेन्द्रकल्पं
खगध्वजो वामत एव शम्भोः।
जगाम तूर्णं जगतां हिताय
पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तिः॥ ५४

तं सर्वदेवाः सुरलोकनाथं
समन्ततश्चान्वयुरप्रमेयम् ।
सुरासुरेशं शितशक्तिटङ्क-
गदात्रिशूलासिवरायुधैश्च ॥ ५५

रराज मध्ये भगवान् सुराणां
विवाहनो वारिजपत्रवर्णः।
यथा सुमेरोः शिखराधिरूढः
सहस्त्ररश्मिर्भगवान् सुतीक्ष्णः॥ ५६

सहस्त्रनेत्रः प्रथमः सुराणां
गजेन्द्रमारुह्य च दक्षिणेऽस्य।
जगाम रुद्रस्य पुरं निहन्तुं
यथोरगांस्तत्र तु वैनतेयः॥ ५७

तं सिद्धगन्धर्वसुरेन्द्रवीराः
सुरेन्द्रवृन्दाधिपमिन्द्रमीशम् ।
समन्ततस्तुष्टुवुरिष्टदं ते
जयेति शक्रं वरपुष्पवृष्ट्या॥ ५८

तदा ह्यहल्योपपतिं सुरेशं
जगत्पतिं देवपतिं दिविष्ठाः।

ईश्वरोंके नायक पूजनीय विनायककी पूजा करके तीनों पुरोंको जलानेके लिये गणेश्वरोंके साथ चल पड़े॥ ५०॥

उस समय सभी देवता, सिद्ध, भूतगण, नन्दी आदि गणेश्वर तथा अन्य ईश्वर अपने-अपने वाहनोंसे उन देवदेव ईश महेश्वरके पीछे-पीछे चले॥ ५१॥

हिमालयसदृश विमानपर चढ़कर नन्दी [सभी] देवताओं तथा गणेश्वरोंके आगे होकर त्रिपुरपर प्रहार करनेके लिये चले, मानो भगवान् शिव मृत्युपर प्रहारहेतु चले हों॥ ५२॥

उस समय जाते हुए शिलादपुत्र [नन्दी]-के पीछे सभी देवता, गणेश्वर तथा गणलोग विशाल हाथियों, बैलों और घोड़ोंपर आरूढ़ होकर हाथोंमें अपने शस्त्र तथा चिह्न धारण किये हुए चले॥ ५३॥

महाशक्तिशाली गरुड़ध्वज [विष्णु] गिरीन्द्रसदृश पक्षिराज [गरुड़]-पर आरूढ़ होकर लोकोंके हितार्थ तीनों पुरोंको दग्ध करनेके लिये शिवजीके बायें होकर शीघ्रतापूर्वक चले॥ ५४॥

सभी देवता तीक्ष्ण शक्ति (बर्छी), टंक, गदा, त्रिशूल, खड्ग आदि उत्तम आयुधोंसे युक्त होकर देवलोकके नाथ, देवताओं तथा असुरोंके स्वामी और अप्रमेय उन शिवके पीछे-पीछे सभी ओरसे चले॥ ५५॥

कमलपत्रके समान वर्णवाले गरुड़वाहन भगवान् विष्णु देवताओंके मध्य ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो सुमेरु [पर्वत]-के शिखरपर आरूढ़ हजार किरणोंवाले भगवान् सूर्य हों॥ ५६॥

गजेन्द्र (ऐरावत)-पर आरूढ़ होकर देवताओंके प्रमुख सहस्त्र नेत्रवाले [इन्द्र] रुद्रके दाहिनी ओर होकर त्रिपुरका नाश करनेके लिये चले; मानो गरुड़ सर्पोंका नाश करनेके लिये चल दिये हों॥ ५७॥

सिद्ध, गन्धर्व, श्रेष्ठ देवता तथा अन्य वीर देवताओंके स्वामी प्रभु उन इन्द्रकी स्तुति कर रहे थे और वे श्रेष्ठ पुष्पवृष्टिके साथ कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले इन्द्रकी जय-जयकार कर रहे थे॥ ५८॥

उस समय स्वर्गमें स्थित देवताओंने अहल्याके उपपति, देवताओंके ईश, जगत्के स्वामी, देवताओंके

प्रणेमुरालोक्य सहस्रनेत्रं
सलीलमम्बा तनयं यथेन्द्रम्॥ ५९

स्वामी तथा हजार नेत्रोंवाले इन्द्रको देखकर लीलापूर्वक उसी प्रकार प्रणाम किया, जैसे माता पार्वती पुत्र कार्तिकेयको प्रणाम करती हैं॥ ५९॥

यमपावकवित्तेशा वायुर्निर्ऋतिरेव च।
अपां पतिस्तथेशानो भवं चानुसमागताः॥ ६०

यम, अग्नि, कुबेर, वायु, निर्ऋति, वरुण तथा ईशान भी शिवजीके पीछे-पीछे चले॥ ६०॥

वीरभद्रो रणे भद्रो नैर्ऋत्यां वै रथस्य तु।
वृषभेन्द्रं समारुह्य रोमजैश्च समावृतः॥ ६१
सेवां चक्रे पुरं हन्तुं देवदेवं त्रियम्बकम्।
महाकालो महातेजा महादेव इवापरः॥ ६२
वायव्यां सगणैः सार्धं सेवां चक्रे रथस्य तु॥ ६३

युद्धमें प्रवीण वीरभद्र वृषभेन्द्रपर आरूढ़ होकर रथके नैर्ऋत्यकोण (दक्षिण-पश्चिम)-में होकर त्रिपुरका नाश करनेके लिये चले; अपने रोमजसंज्ञक बाणोंसे घिरे हुए वे देवदेव त्रियम्बककी सेवा कर रहे थे। दूसरे महादेवके समान प्रतीत होनेवाले महातेजस्वी महाकाल रथके वायव्यकोण (उत्तर-पश्चिम)-में होकर गणोंके साथ रथकी सेवा कर रहे थे॥ ६१—६३॥

षण्मुखोऽपि सह सिद्धचारणैः
सेनया च गिरिराजसन्निभः।
देवनाथगणवृन्दसंवृतो
वारणेन च तथाग्निसम्भवः॥ ६४

गिरिराजके समान प्रतीत होनेवाले तथा अग्निसे उत्पन्न षडानन भी सिद्धों, चारणों एवं देवसेनाके साथ शिवके गणोंसे आवृत होकरके हाथीपर सवार होकर चले॥ ६४॥

विघ्नं गणेशोऽप्यसुरेश्वराणां
कृत्वा सुराणां भगवानविघ्नम्।
विघ्नेश्वरो विघ्नगणैश्च सार्धं
तं देशमीशानपदं जगाम॥ ६५

विघ्नेश्वर भगवान् गणेश भी असुरेश्वरोंका विघ्न करके तथा देवताओंका अविघ्न करके विघ्नगणोंके साथ उस देश (त्रिपुर)-की ओर शिवजीके पीछे-पीछे चले॥ ६५॥

काली तदा कालनिशाप्रकाशं
शूलं कपालाभरणा करेण।
प्रकम्पयन्ती च तदा सुरेन्द्रान्
महासुरासृङ्मधुपानमत्ता॥ ६६
मत्तेभगामी मदलोलनेत्रा
मत्तैः पिशाचैश्च गणैश्च मत्तैः।
मत्तेभचर्माम्बरवेष्टिताङ्गी
ययौ पुरस्ताच्च गणेश्वरस्य॥ ६७

उस समय हाथमें कालरात्रिके समान प्रकाशमान त्रिशूल धारण किये, कपालके आभूषणवाली, बड़े-बड़े असुरोंके रक्तरूपी मधुके पानसे मत्त, मतवाले हाथीके समान चालवाली, मदसे चंचल नेत्रोंवाली, मतवाले हाथियोंके चर्मरूपी वस्त्रसे वेष्टित अंगोंवाली काली देवताओंको कम्पित करती हुई मत्तपिशाचों तथा मतवाले गणोंके साथ गणेशजीके आगे-आगे चलीं॥ ६६-६७॥

तां सिद्धगन्धर्वपिशाचयक्ष-
विद्याधराहीन्द्रसुरेन्द्रमुख्याः।
प्रणेमुरुच्चैरभितुष्टुवुश्च
जयेति देवीं हिमशैलपुत्रीम्॥ ६८

सिद्धों, गन्धर्वों, पिशाचों, यक्षों, विद्याधरों, सर्पों तथा प्रमुख देवताओंने उन देवी पार्वतीको प्रणाम किया, उच्च स्वरसे उनकी स्तुति की तथा उनका जयकार किया॥ ६८॥

मातरः सुरवरारिसूदनाः
सादरं सुरगणैः सुपूजिताः।
मातरं ययुरथ स्ववाहनैः
स्वैर्गणैर्ध्वजधरैः समन्ततः॥ ६९

इसी प्रकार देवशत्रुओंका संहार करनेवाली तथा देवताओंके द्वारा आदरपूर्वक पूजित देवमाताएँ सभी ओर ध्वज धारण किये हुए अपने-अपने गणोंके साथ अपने-अपने वाहनोंसे माताके पीछे-पीछे चलीं॥ ६९॥

दुर्गारूढमृगाधिपा दुरतिगा दोर्दण्डवृन्दैः शिवा
बिभ्राणाङ्कुशशूलपाशपरशुं चक्रासिशङ्खायुधम्।
प्रौढादित्यसहस्रवह्निसदृशैर्नेत्रैर्दहन्ती पथं
बाला बालपराक्रमा भगवती दैत्यान् प्रहर्तुं ययौ॥ ७०

तं देवमीशं त्रिपुरं निहन्तुं
तदा तु देवेन्द्ररविप्रकाशाः।
गजैर्हयैः सिंहवरैरथैश्च
वृषैर्ययुस्ते गणराजमुख्याः॥ ७१

हलैश्च फालैर्मुसलैर्भुशुण्डै-
र्गिरीन्द्रकूटैर्गिरिसन्निभास्ते ।
ययुः पुरस्ताद्धि महेश्वरस्य
सुरेश्वरा भूतगणेश्वराश्च॥ ७२

तथेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः
सुरा गणेशाश्च गणेशमीशम्।
जयेति वाग्भिर्भगवन्तमूचुः
किरीटदत्ताञ्जलयः समन्तात्॥ ७३

ननृतुर्मुनयः सर्वे दण्डहस्ता जटाधराः।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः।
पुरत्रयं च विप्रेन्द्राः प्राणदत्सर्वतस्तथा॥ ७४

गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृङ्गी
समावृतः सर्वगणेन्द्रवर्यः।
जगाम योगी त्रिपुरं निहन्तुं
विमानमारुह्य यथा महेन्द्रः॥ ७५

केशो विगतवासाश्च महाकेशो महाज्वरः।
सोमवल्ली सवर्णश्च सोमपः सेनकस्तथा॥ ७६
सोमधृक् सूर्यवाचश्च सूर्यपेषणकस्तथा।
सूर्याक्षः सूरिनामा च सुरः सुन्दर एव च॥ ७७
प्रकुदः ककुदन्तश्च कम्पनश्च प्रकम्पनः।
इन्द्रश्चेन्द्रजयश्चैव महाभीर्भीमकस्तथा॥ ७८
शताक्षश्चैव पञ्चाक्षः सहस्राक्षो महोदरः।
यमजिह्वः शताश्वश्च कण्ठनः कण्ठपूजनः॥ ७९
द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथा पञ्चशिखो द्विजाः।
मुण्डोऽर्धमुण्डो दीर्घश्च पिशाचास्यः पिनाकधृक्॥ ८०
पिप्पलायतनश्चैव तथा ह्यङ्गारकाशनः।
शिथिलः शिथिलास्यश्च अक्षपादो ह्यजः कुजः॥ ८१
अजवक्त्रो हयवक्त्रो गजवक्त्रोर्ध्ववक्त्रकः।
इत्याद्याः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः॥ ८२
वृन्दशस्तं समावृत्य जग्मुः सोमं गणैर्वृताः।
सहस्राणां सहस्राणि रुद्राणामूर्ध्वरेतसाम्॥ ८३

बालरूपा होते हुए भी अमित पराक्रमवाली तथा [सबके द्वारा] अनतिक्रमणीय भगवती दुर्गा सिंहपर सवार होकर [अपनी] भुजाओंमें अंकुश, शूल, पाश, परशु, चक्र, खड्ग, शंख आदि आयुध धारण किये हुए और मध्याह्नकालीन सूर्य तथा हजार अग्नियोंके समान [देदीप्यमान] नेत्रोंसे मार्गको जलाती हुई [उन] दैत्योंपर प्रहार करनेके लिये चलीं॥ ७०॥

उस समय इन्द्र तथा सूर्यके समान कान्तिवाले मुख्य गणेश्वर त्रिपुरका नाश करनेके लिये हाथियों, घोड़ों, उत्तम सिंहों, रथों तथा वृषभोंपर सवार होकर उन भगवान् शिवके पीछे चले॥ ७१॥

हलों, फालों, मुसलों, लौहनिर्मित गदाओं तथा पर्वतशिखरोंको धारण किये हुए गिरिसदृश वे सुरेश्वर, भूत तथा गणेश्वर महेश्वरके आगे-आगे चले॥ ७२॥

इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता और [सभी] गणेश्वर अपने मुकुटोंको अंजलिपर टिकाकर [प्रणाम करते हुए] चारों ओरसे वाणीद्वारा ईश भगवान् गणेशकी जय बोल रहे थे॥ ७३॥

हाथमें दण्ड लिये हुए जटाधारी सभी मुनियोंने नृत्य किया और आकाशचारी सिद्धों तथा चारणोंने पुष्पवर्षा की। हे विप्रेन्द्रो! त्रिपुर चारों ओरसे गूँज उठा॥ ७४॥

सभी गणेश्वरोंमें श्रेष्ठ योगपरायण भृंगी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति गणेश्वरोंसे घिरे होकर विमानपर चढ़कर त्रिपुरका नाश करनेके लिये चले॥ ७५॥

हे द्विजो! केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सेनक, सोमधृक्, सूर्यवाच, सूर्यपेषण, सूर्याक्ष, सूरिनामा, सुर, सुन्दर, प्रकुद, ककुदन्त, कम्पन, प्रकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजय, महाभी, भीमक, शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, यमजिह्व, शताश्व, कण्ठन, कण्ठपूजन, द्विशिख, त्रिशिख, पंचशिख, मुण्ड, अर्धमुण्ड, दीर्घ, पिशाचास्य, पिनाकधृक्, पिप्पलायतन, अंगारकाशन, शिथिल, शिथिलास्य, अक्षपाद, अज, कुज, अजवक्त्र, हयवक्त्र, गजवक्त्र, ऊर्ध्ववक्त्र तथा अन्य लक्ष्यलक्षण-वर्जित गणेश्वर एक साथ मिलकर

समावृत्य महादेवं देवदेवं महेश्वरम्।
दग्धुं पुरत्रयं जग्मुः कोटिकोटिगणैर्वृताः॥ ८४

अपने गणसमुदायोंके साथ उन शिवजीको घेरकर चले। इसी प्रकार [अपने] करोड़ों-करोड़ गणोंसे घिरे हुए हजारों-हजार रुद्र तीनों पुरोंको दग्ध करनेके लिये महादेव देवदेव महेश्वरको घेरकर चले॥ ७६—८४॥

त्रयस्त्रिंशत्सुराश्चैव त्रयश्च त्रिशतास्तथा।
त्रयश्च त्रिसहस्राणि जग्मुर्देवाः समन्ततः॥ ८५

[वसु, रुद्र, आदित्य आदि] तैंतीस देवता; ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों देवता और उनके भेदरूप तीन सौ तथा तीन हजार तीन अन्य देवता सभी ओरसे वहाँ गये॥ ८५॥

मातरः सर्वलोकानां गणानां चैव मातरः।
भूतानां मातरश्चैव जग्मुर्देवस्य पृष्ठतः॥ ८६

सभी लोकोंकी माताएँ, गणोंकी माताएँ तथा भूतोंकी माताएँ शिवजीके पीछे-पीछे चलीं॥ ८६॥

भाति मध्ये गणानां च रथमध्ये गणेश्वरः।
नभस्यमलनक्षत्रे तारामध्य इवोडुराट्॥ ८७

रथके मध्य [विराजमान] गणेश्वर गणोंके बीच उसी तरह प्रतीत हो रहे थे, जैसे निर्मल नक्षत्रोंवाले आकाशमें ताराओंके बीच चन्द्रमा॥ ८७॥

रराज देवी देवस्य गिरिजा पार्श्वसंस्थिता।
तदा प्रभावतो गौरी भवस्येव जगन्मयी॥ ८८

शुभावती तदा देवी पार्श्वसंस्था विभाति सा।
चामरासक्तहस्ताग्रा सा हेमाम्बुजवर्णिका॥ ८९

उस समय शिवके प्रभाव (सामर्थ्य)-के कारण ही जगन्मयी पार्वती देवी [उन] शिवके वामभागमें स्थित होकर सुशोभित हो रही थीं। उस समय सुवर्णकमलके समान वर्णवाली देवी शुभावती (पार्वतीकी सखी) हाथके अग्रभागमें चँवर लिये हुए उनके बगलमें स्थित होकर सुशोभित हो रही थीं॥ ८८-८९॥

अथ विभाति विभोर्विशदं वपु-
र्भसितभासितमम्बिकया तया।
सितमिवाभ्रमहो इह विद्युता
नभसि देवपतेः परमेष्ठिनः॥ ९०

सर्वव्यापी देवेश्वर शिवका भस्मसे दीप्यमान अतिस्वच्छ विग्रह उन पार्वतीके साथ उसी प्रकार प्रतीत हो रहा था, जैसे आकाशमें विद्युत्के साथ श्वेत बादल॥ ९०॥

भातीन्द्रधनुषाकाशं मेरुणा च यथा जगत्।
हिरण्यधनुषा सौम्यं वपुः शम्भोः शशिद्युति॥ ९१

सुवर्णमय धनुषसे युक्त तथा चन्द्रमाकी प्रभावाला शंकरजीका सौम्य शरीर इन्द्रधनुषसे युक्त आकाश अथवा मेरुपर्वतसे युक्त जगत्की भाँति प्रतीत हो रहा था॥ ९१॥

सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं परमेष्ठिनः।
यथोदये शशाङ्कस्य भात्यखण्डं हि मण्डलम्॥ ९२

रत्नोंकी किरणोंसे मिश्रित शिवजीका श्वेत छत्र उदयकालमें चन्द्रमाके पूर्णमण्डलके समान प्रतीत हो रहा था॥ ९२॥

सदुकूला शिवे रक्ता लम्बिता भाति मालिका।
छत्रान्ता रत्नजाकाशात्पतन्तीव सरिद्वरा॥ ९३

शिवजीके गलेमें रेशमी वस्त्रसहित लटकती हुई रत्नमयी मोतियोंकी माला उनके छत्रके पास आकाशसे गिरती हुई गंगाके समान प्रतीत हो रही थी॥ ९३॥

अथ महेन्द्रविरिञ्चिविभावसु-
प्रभृतिभिर्नतपादसरोरुहः।
सह तदा च जगाम तयाम्बया
सकललोकहिताय पुरत्रयम्॥ ९४

इस प्रकार महेन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि आदिके द्वारा वन्दित चरणकमलवाले शिवजीने समस्त संसारके हितके लिये उन पार्वतीके साथ त्रिपुरके लिये प्रस्थान किया॥ ९४॥

दग्धुं समर्थो मनसा क्षणेन
चराचरं सर्वमिदं त्रिशूली।
किमत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी
स्वयं गतश्चात्र गणैश्च सार्धम्॥ ९५
रथेन किं चेषुवरेण तस्य
गणैश्च किं देवगणैश्च शम्भोः।
पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तेः
किमेतदित्याहुरजेन्द्रमुख्याः ॥ ९६
मन्वाम नूनं भगवान् पिनाकी
लीलार्थमेतत्सकलं प्रवर्तुम्।
व्यवस्थितश्चेति तथान्यथा चे-
दाडम्बरेणास्य फलं किमन्यत्॥ ९७
पुरत्रयस्यास्य समीपवर्ती
सुरेश्वरैर्नन्दिमुखैश्च नन्दी।
गणैर्गणेशस्तु रराज देव्या
जगद्रथो मेरुरिवाष्टशृङ्गैः॥ ९८
अथ निरीक्ष्य सुरेश्वरमीश्वरं
सगणमद्रिसुतासहितं तदा।
त्रिपुररङ्गतलोपरि संस्थितः
सुरगणोऽनुजगाम स्वयं तथा॥ ९९
जगत्त्रयं सर्वमिवापरं तत्
पुरत्रयं तत्र विभाति सम्यक्।
नरेश्वरैश्चैव गणैश्च देवैः
सुरेतरैश्च त्रिविधैर्मुनीन्द्राः॥ १००
अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वः सन्धाय तं शरम्।
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत्॥ १०१
तस्मिंस्थिते महादेवे रुद्रे विततकार्मुके।
पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै॥ १०२
एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते।
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम्॥ १०३
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः।
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तोऽष्टमूर्तिनम्॥ १०४
अथाह भगवान् ब्रह्मा भगनेत्रनिपातनम्।
पुष्ययोगेऽपि सम्प्राप्ते लीलावशमुमापतिम्॥ १०५
स्थाने तव महादेव चेष्टेयं परमेश्वर।
पूर्वदेवाश्च देवाश्च समास्तव यतः प्रभो॥ १०६
तथापि देवा धर्मिष्ठाः पूर्वदेवाश्च पापिनः।
यतस्तस्माज्जगन्नाथ लीलां त्यक्तुमिहार्हसि॥ १०७

त्रिशूलधारी पिनाकी (शिव) मनसे ही क्षणभरमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को दग्ध करनेमें समर्थ हैं, तो फिर वे त्रिपुरको जलानेके लिये गणोंके साथ वहाँ क्यों जा रहे हैं? तीनों पुरोंको जलानेके लिये उन अलुप्त शक्तिवाले शम्भुको रथसे, उत्तम बाणसे, गणोंसे तथा देवताओंसे क्या प्रयोजन है—ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रमुख देवोंने ऐसा कहा। हमलोग तो समझते हैं कि पिनाकधारी भगवान् [शिव]-लीलाके लिये यह सब करनेके लिये प्रवृत्त हैं; अन्यथा [इस] आडम्बरसे इन्हें दूसरा कौन-सा लाभ है?॥ ९५—९७॥

इस त्रिपुरके समीपस्थित नन्दी, नन्दिकेश्वर आदि सुरेश्वरोंके साथ, गणेशजी गणोंके साथ तथा मेरुपर्वत आठ शिखरोंके साथ जिस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, उसी प्रकार जगद्रथ (शिव) देवी [पार्वती]-के साथ शोभायमान थे॥ ९८॥

इसके बाद गणों तथा पार्वतीसहित सुरेश्वर शिवको देखकर त्रिपुरके युद्धक्षेत्रमें उपस्थित देवसमूहने स्वयं उनका अनुगमन किया॥ ९९॥

हे मुनीश्वरो! युद्धकालमें तीन प्रकारके दैत्योंसे युक्त वे तीनों पुर राजाओं, [सिद्ध आदि] गणों तथा देवताओंसे युक्त तीनों लोकके समान प्रतीत हो रहे थे॥ १००॥

इसके बाद धनुषपर डोरी चढ़ाकर उसपर बाण रखकर उसे पाशुपत-अस्त्रसे युक्त करके शिवजीने त्रिपुरका चिन्तन किया॥ १०१॥

धनुष ताने हुए उन महादेवके खड़े होनेपर उसी समय तीनों पुर शीघ्र ही आपसमें जुड़ गये। तीनों पुरोंके एकमें मिल जानेपर तथा समीपमें आ जानेपर महान् आत्मावाले [इन्द्र आदि] देवताओंको परम हर्ष हुआ॥ १०२-१०३॥

तदनन्तर सभी देवगण, सिद्ध तथा महर्षिगण अष्टमूर्ति [शिव]-की स्तुति करते हुए उनकी जय बोलने लगे॥ १०४॥

इसके बाद पुष्य नक्षत्रका योग प्राप्त होनेपर भगवान् ब्रह्माने भगके नेत्रका विनाश करनेवाले लीलासक्त उमापतिसे कहा—हे महादेव! हे परमेश्वर! हे प्रभो! इस स्थानपर आपकी यह भावना है कि दैत्य तथा देवता आपके लिये समान हैं, फिर भी देवता धर्मनिष्ठ हैं और दैत्य पापी हैं; अतः हे जगन्नाथ!

किं रथेन ध्वजेनेश तव दग्धुं पुरत्रयम्।
इषुणा भूतसङ्घैश्च विष्णुना च मया प्रभो॥ १०८
पुष्ययोगे त्वनुप्राप्ते पुरं दग्धुमिहार्हसि।
यावन्न यान्ति देवेश वियोगं तावदेव तु॥ १०९
दग्धुमर्हसि शीघ्रं त्वं त्रीण्येतानि पुराणि वै।
अथ देवो महादेवः सर्वज्ञस्तदवैक्षत॥ ११०
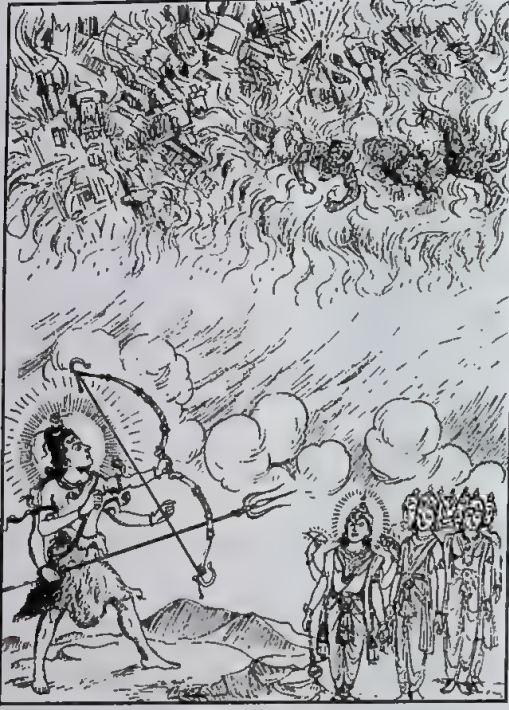
पुरत्रयं विरूपाक्षस्तत्क्षणाद्भस्म वै कृतम्।
सोमश्च भगवान् विष्णुः कालाग्निर्वायुरेव च॥ १११
शरे व्यवस्थिताः सर्वे देवमूचुः प्रणम्य तम्।
दग्धमप्यथ देवेश वीक्षणेन पुरत्रयम्॥ ११२
अस्मद्धितार्थं देवेश शरं मोक्तुमिहार्हसि।
अथ सम्मृज्य धनुषो ज्यां हसन् त्रिपुरार्दनः॥ ११३
मुमोच बाणं विप्रेन्द्रा व्याकृष्याकर्णमीश्वरः।
तत्क्षणात् त्रिपुरं दग्ध्वा त्रिपुरान्तकरः शरः॥ ११४
देवदेवं समासाद्य नमस्कृत्य व्यवस्थितः।
रेजे पुरत्रयं दग्धं दैत्यकोटिशतैर्वृतम्॥ ११५
इषुणा तेन कल्पान्ते रुद्रेणेव जगत्त्रयम्।
ये पूजयन्ति तत्रापि दैत्या रुद्रं सबान्धवाः॥ ११६
गाणपत्यं तदा शम्भोर्ययुः पूजाविधेर्बलात्।
न किञ्चिदब्रुवन् देवाः सेन्द्रोपेन्द्रा गणेश्वराः॥ ११७
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं हिमवतः सुताम्।
दृष्ट्वा भीतं तदानीकं देवानां देवपुङ्गवः॥ ११८
किं चेत्याह तदा देवान् प्रणेमुस्तं समन्ततः॥ ११९

आप यहाँ अपनी लीलाका त्याग करें। हे ईश! हे प्रभो! तीनों पुरोंको दग्ध करनेके लिये आपको रथ, ध्वज, बाण, भूतगणों, विष्णु तथा मुझ [ब्रह्मा]-से क्या प्रयोजन है? पुष्ययोग प्राप्त होनेपर आप कृपा करके त्रिपुरको दग्ध कर दीजिये। हे देवेश! जबतक ये तीनों पुर अलग-अलग न हो जायँ, तबतक आप इन्हें जला दीजिये॥ १०५—१०९१/२ ॥

तदनन्तर सब कुछ जाननेवाले तथा विरूपाक्ष (त्रिलोचन) भगवान् महादेवने त्रिपुरकी ओर देखा और उसी क्षण उसे भस्म कर दिया। तब उनके बाणमें स्थित चन्द्र, भगवान् विष्णु, कालाग्नि तथा वायु—इन सभीने उन शिवजीको प्रणाम करके कहा—हे देवेश! आपके देखनेमात्रसे त्रिपुर दग्ध हो गया, फिर भी हे देवेश! हमलोगोंके हितके लिये आप बाणको छोड़ दीजिये॥ ११०—११२१/२ ॥

हे विप्रेन्द्रो! इसके बाद धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसे कानतक खींचकर त्रिपुरका नाश करनेवाले शिवने हँसते हुए बाण छोड़ दिया। त्रिपुरका नाश करनेवाला वह बाण उसी क्षण त्रिपुरको जलाकर देवदेवके पास आकर उन्हें प्रणाम करके व्यवस्थित हो गया॥ ११३-११४१/२ ॥

उस बाणके द्वारा सैकड़ों-करोड़ दैत्योंसहित दग्ध किया गया वह त्रिपुर कल्पके अन्तमें रुद्रके द्वारा दग्ध किये गये त्रिलोकके समान प्रतीत हो रहा था। वहाँ [त्रिपुरमें] भी जिन दैत्योंने बान्धवोंके साथ रुद्रका पूजन किया, उन्होंने शम्भुकी पूजाविधिके प्रभावसे गाणपत्य (गणपतिपद) प्राप्त किया॥ ११५-११६१/२ ॥

इन्द्र-विष्णुसहित सभी देवता तथा गणेश्वर शिव तथा हिमालयपुत्री देवी [पार्वती]-की ओर देखकर भयवश कुछ नहीं बोले। तब देवताओंकी सेनाको भयभीत देखकर देवश्रेष्ठ [शिव]-ने देवताओंसे कहा—'क्या बात है?' इसपर वे सभी ओरसे उन्हें केवल

ववन्दिरे नन्दिनमिन्दुभूषणं
ववन्दिरे पर्वतराजसम्भवाम्।
ववन्दिरे चाद्रिसुतासुतं प्रभुं
ववन्दिरे देवगणा महेश्वरम्॥ १२०

तुष्टाव हृदये ब्रह्मा देवैः सह समाहितः।
विष्णुना च भवं देवं त्रिपुरारातिमीश्वरम्॥ १२१

श्रीपितामह उवाच

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर।
प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानन्ददाव्यय॥ १२२

पञ्चास्य रुद्ररुद्राय पञ्चाशत्कोटिमूर्तये।
आत्मत्रयोपविष्टाय विद्यातत्त्वाय ते नमः॥ १२३

शिवाय शिवतत्त्वाय अघोराय नमो नमः।
अघोराष्टकतत्त्वाय द्वादशात्मस्वरूपिणे॥ १२४

विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकाशं सुशोभनम्।
रूपमास्थाय लोकेऽस्मिन् संस्थिताय शिवात्मने॥ १२५

अग्निवर्णाय रौद्राय अम्बिकार्धशरीरिणे।
धवलश्यामरक्तानां मुक्तिदायामराय च॥ १२६

ज्येष्ठाय रुद्ररूपाय सोमाय वरदाय च।
त्रिलोकाय त्रिदेवाय वषट्काराय वै नमः॥ १२७

मध्ये गगनरूपाय गगनस्थाय ते नमः।
अष्टक्षेत्राष्टरूपाय अष्टतत्त्वाय ते नमः॥ १२८

चतुर्धा च चतुर्धा च चतुर्धा संस्थिताय च।
पञ्चधा पञ्चधा चैव पञ्चमन्त्रशरीरिणे॥ १२९

चतुःषष्टिप्रकाराय अकाराय नमो नमः।
द्वात्रिंशत्तत्त्वरूपाय उकाराय नमो नमः॥ १३०

षोडशात्मस्वरूपाय मकाराय नमो नमः।
अष्टधात्मस्वरूपाय अर्धमात्रात्मने नमः॥ १३१

प्रणाम करते रहे। देवताओंने इन्दुभूषण नन्दीको प्रणाम किया, पर्वतराजकी पुत्री [पार्वती]-को प्रणाम किया, पार्वतीपुत्र [गणेश]-को प्रणाम किया और प्रभु महेश्वरको प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्माजी एकाग्रचित्त होकर देवताओं तथा विष्णुके साथ त्रिपुरशत्रु भगवान् भव ईश्वरकी हृदयसे स्तुति करने लगे॥ ११७—१२१॥

श्रीपितामह बोले—हे देवदेवेश! प्रसन्न हो जाइये। हे परमेश्वर! प्रसन्न हो जाइये। हे जगन्नाथ! प्रसन्न हो जाइये। हे आनन्ददाता! हे अव्यय! हे पंचमुख! प्रसन्न हो जाइये। [यम आदि] रुद्रोंको भी रुलानेवाले, पचास करोड़ मूर्तिवाले, [विश्व-प्राज्ञ-तैजस] तीन रूपोंमें स्थित रहनेवाले तथा विद्याओंमें मुख्य कारणस्वरूप आपको नमस्कार है। शिव, शिवतत्त्व, अघोर, भैरवाष्टकके कारणरूप तथा द्वादश आत्मास्वरूपीको बार-बार नमस्कार है॥ १२२—१२४॥

करोड़ों विद्युत्के समान तथा पृथिवी आदिमें प्रकाशमान अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके इस लोकमें विराजमान शिवस्वरूपको नमस्कार है॥ १२५॥

अग्निके समान वर्णवाले, भयानक, अम्बिकाको अपने आधे शरीरमें धारण करनेवाले (अर्धनारीश्वर), रुद्र-विष्णु-ब्रह्माको मुक्ति देनेवाले, मृत्युरहित, ज्येष्ठ, भयंकर रूपवाले, सोमस्वरूप, वर प्रदान करनेवाले, त्रिलोकस्वरूप, त्रिदेवस्वरूप तथा वषट्कारस्वरूप शिवको नमस्कार है॥ १२६-१२७॥

हृदयकमलके मध्य गगनसदृशरूपवाले तथा गगनमें स्थित आपको नमस्कार है। [सूर्य आदि] आठ स्थानोंमें [रुद्र आदि] आठ रूपोंवाले तथा पृथ्वी आदि आठ तत्त्वोंवाले आपको नमस्कार है। चारों वेदरूपसे, चारों आश्रमरूपसे तथा चतुर्व्यूहरूपसे अवस्थित, आकाश आदि पंचभूत प्रकारसे, सद्योजात आदि पाँचरूपसे अवस्थित, सद्योजात आदि पंचमन्त्ररूप शरीरवाले शिवको नमस्कार है॥ १२८-१२९॥

चौंसठ प्रकारके शिक्षोक्त वर्णरूपवाले अकारको बार-बार नमस्कार है। बत्तीस मातृकारूपवाले उकारको बार-बार नमस्कार है। सोलह तत्त्व रूपवाले मकारको

ओङ्काराय नमस्तुभ्यं चतुर्धा संस्थिताय च।
गगनेशाय देवाय स्वर्गेशाय नमो नमः॥ १३२

सप्तलोकाय पातालनरकेशाय वै नमः।
अष्टक्षेत्राष्टरूपाय परात्परतराय च॥ १३३

सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राय च ते नमः।
सहस्रपादयुक्ताय शर्वाय परमेष्ठिने॥ १३४

नवात्मतत्त्वरूपाय नवाष्टात्मात्मशक्तये।
पुनरष्टप्रकाशाय तथाष्टाष्टकमूर्तये॥ १३५

चतुःषष्ट्यात्मतत्त्वाय पुनरष्टविधाय ते।
गुणाष्टकवृतायैव गुणिने निर्गुणाय ते॥ १३६

मूलस्थाय नमस्तुभ्यं शाश्वतस्थानवासिने।
नाभिमण्डलसंस्थाय हृदि निःस्वनकारिणे॥ १३७

कन्धरे च स्थितायैव तालुरन्ध्रस्थिताय च।
भ्रूमध्ये संस्थितायैव नादमध्ये स्थिताय च॥ १३८

चन्द्रबिम्बस्थितायैव शिवाय शिवरूपिणे।
वह्निसोमार्करूपाय षट्त्रिंशच्छक्तिरूपिणे॥ १३९

त्रिधा संवृत्य लोकान् वै प्रसुप्तभुजगात्मने।
त्रिप्रकारं स्थितायैव त्रेताग्निमयरूपिणे॥ १४०

सदाशिवाय शान्ताय महेशाय पिनाकिने।
सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय वै नमः॥ १४१

अघोराय नमस्तुभ्यं वामदेवाय ते नमः।
तत्पुरुषाय नमोऽस्तु ईशानाय नमो नमः॥ १४२

नमस्त्रिंशत्प्रकाशाय शान्तातीताय वै नमः।
अनन्तेशाय सूक्ष्माय उत्तमाय नमोऽस्तु ते॥ १४३

बार-बार नमस्कार है। आठ प्रकारके आत्मस्वरूपवाले अर्धमात्रात्मक नादरूपको नमस्कार है। [अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रात्मक नादरूप] चार प्रकारसे स्थित आप ओंकार (प्रणवरूप)-को नमस्कार है। आकाशके स्वामी तथा स्वर्गके स्वामी शिवको बार-बार नमस्कार है॥ १३०—१३२॥

सात लोकस्वरूप, पाताल तथा नरकके स्वामी, [पृथ्वी आदि] आठ क्षेत्रोंके रूपमें आठ स्वरूपोंवाले तथा परात्परतर (सर्वोत्कृष्ट) शिवको नमस्कार है॥ १३३॥

हजार सिरोंवाले, हजार रूपोंवाले, हजार पैरोंसे युक्त आप शर्व परमेष्ठीको नमस्कार है। [पुरुष, प्रकृति, व्यक्त, अहंकार, नभ, अनिल, ज्योति, आप (जल), पृथ्वी] नौ आत्मतत्त्वमय स्वरूपवाले, सत्रह आत्मशक्तियोंवाले, अष्टप्रकाशस्वरूप (उर आदि स्थानोंमें वर्णोंको अभिव्यंजित करनेवाले), आठ मूर्तियोंवाले, चौंसठ योगिनियोंके प्राणतत्त्वरूप, भव आदि आठ नामोंवाले, आठ गुणोंसे युक्त, [सत्त्व, रज, तम] तीनों गुणोंसे युक्त तथा गुणोंसे शून्य आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १३४—१३६॥

मूलाधारचक्रमें विराजमान, शाश्वत स्थानमें निवास करनेवाले, नाभिमण्डलमें स्थित तथा हृदयमें प्राणवायु ध्वनि करनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। ग्रीवामें स्थित, तालुछिद्रमें स्थित, भौहोंके मध्यमें स्थित, नादके मध्यमें स्थित, चन्द्रबिम्बमें स्थित, कल्याणकारी, शिवस्वरूप, अग्नि-चन्द्र-सूर्यरूपवाले, छत्तीस शक्तिरूपवाले, तीन प्रकारके [सत्त्व, रज, तम] गुणोंसे लोकोंको वेष्टितकर सोये हुए सर्परूप [कुण्डलिनीरूप]-वाले, [गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि] तीन रूपसे स्थित त्रेताग्निमय रूपवाले, सदाशिव, शान्तस्वभाववाले, महेश्वर, पिनाकधारी, सब कुछ जाननेवाले तथा शरण देनेवाले सद्योजातको नमस्कार है। आप अघोरको नमस्कार है। आप वामदेवको नमस्कार है। तत्पुरुषको नमस्कार है। ईशानको बार-बार नमस्कार है॥ १३७—१४२॥

तीसों मुहूर्तोंमें सदा प्रकाशमान रहनेवालेको नमस्कार है। शान्तातीतको नमस्कार है। आप अनन्तेश, सूक्ष्म तथा

एकाक्षाय नमस्तुभ्यमेकरुद्राय ते नमः।
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं श्रीकण्ठाय शिखण्डिने॥ १४४

अनन्तासनसंस्थाय अनन्तायान्तकारिणे।
विमलाय विशालाय विमलाङ्गाय ते नमः॥ १४५

विमलासनसंस्थाय विमलार्थार्थरूपिणे।
योगपीठान्तरस्थाय योगिने योगदायिने॥ १४६

योगिनां हृदि संस्थाय सदा नीवारशूकवत्।
प्रत्याहाराय ते नित्यं प्रत्याहाररताय ते॥ १४७

प्रत्याहाररतानां च प्रतिस्थानस्थिताय च।
धारणायै नमस्तुभ्यं धारणाभिरताय ते॥ १४८

धारणाभ्यासयुक्तानां पुरस्तात्संस्थिताय च।
ध्यानाय ध्यानरूपाय ध्यानगम्याय ते नमः॥ १४९

ध्येयाय ध्येयगम्याय ध्येयध्यानाय ते नमः।
ध्येयानामपि ध्येयाय नमो ध्येयतमाय ते॥ १५०

समाधानाभिगम्याय समाधानाय ते नमः।
समाधानरतानां तु निर्विकल्पार्थरूपिणे॥ १५१

दग्ध्वोद्धृतं सर्वमिदं त्वयाद्य
जगत्त्रयं रुद्र पुरत्रयं हि।
कः स्तोतुमिच्छेत्कथमीदृशं त्वां
स्तोष्ये हि तुष्टाय शिवाय तुभ्यम्॥ १५२

भक्त्या च तुष्ट्याद्भुतदर्शनाच्च
मर्त्या अमर्त्या अपि देवदेव।
एते गणाः सिद्धगणैः प्रणामं
कुर्वन्ति देवेश गणेश तुभ्यम्॥ १५३

निरीक्षणादेव विभोऽसि दग्धुं
पुरत्रयं चैव जगत्त्रयं च।
लीलालसेनाम्बिकया क्षणेन
दग्धं किलेषुश्च तदाथ मुक्तः॥ १५४

उत्तमको नमस्कार है। आप एकाक्ष (एकमात्र ज्ञानरूपी नेत्रवाले)-को नमस्कार है। आप अद्वितीय रुद्रको नमस्कार है। आप त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डीको नमस्कार है॥ १४३-१४४॥

अनन्त (शेष)-रूपी आसनपर स्थित, अनन्तस्वरूप, अन्त करनेवाले, विशुद्ध, विशाल तथा स्वच्छ अंगोंवाले आपको नमस्कार है। विमल आसनपर विराजमान, विमल ज्ञानके अर्थस्वरूप, योगपीठके मध्यस्थित योगी, योग प्रदान करनेवाले, नीवार (जंगली धान्य)-के शूक (सूक्ष्म अग्रभाग)-की भाँति योगियोंके हृदयमें सदा स्थित रहनेवाले आपको नमस्कार है। प्रत्याहारस्वरूप, प्रत्याहारमें निरत, प्रत्याहारमें रत लोगोंके हृदयमें विराजमान, धारणास्वरूप तथा धारणामें निरत आपको नमस्कार है॥ १४५—१४८॥

धारणाके अभ्यासमें लगे हुए लोगोंके सामने [सदा] विराजमान, ध्यान, ध्यानरूप तथा ध्यानगम्य आपको नमस्कार है। ध्येय, ध्येयगम्य, ध्यान करनेयोग्य, ध्यानवाले आपको नमस्कार है। ध्यानयोग्य [ब्रह्मा, विष्णु आदि]-के भी ध्येय तथा सबसे अधिक ध्यानयोग्य आपको नमस्कार है। समाधानके द्वारा प्राप्य, समाधानस्वरूप, समाधान (ध्यान)-में रत लोगोंके लिये निर्विकल्प अर्थस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १४९—१५१॥

हे रुद्र! त्रिपुरको दग्ध करके आपने तीनों लोकोंका उद्धार कर दिया। ऐसे प्रभावशाली आपकी स्तुति करनेका सामर्थ्य कौन रखता है; फिर भी [स्वयं] सन्तुष्ट रहनेवाले आप शिवकी मैं स्तुति करता हूँ॥ १५२॥

हे देवदेव! आपकी भक्ति, तुष्टि तथा अद्भुत दर्शनके कारण ये मानव, देवता तथा सिद्धगणोंसहित समस्त गण आपको प्रणाम करते हैं। हे देवेश! हे गणेश! आपको नमस्कार है॥ १५३॥

हे विभो! आप तो देखनेमात्रसे ही तीनों पुरों तथा तीनों लोकोंको जला देनेमें समर्थ हैं। अम्बिकाके साथ लीलासक्त आपने क्षणभरमें त्रिपुरको जला दिया और [सोम आदिके प्रार्थना करनेपर] उस समय बाणको भी मुक्त कर दिया॥ १५४॥

कृतो रथश्चेषुवरश्च शुभ्रं
शरासनं ते त्रिपुरक्षयाय।
अनेकयत्नैश्च मयाथ तुभ्यं
फलं न दृष्टं सुरसिद्धसङ्घैः॥ १५५

आपके द्वारा त्रिपुरके नाशके लिये मैंने अनेक यत्नोंसे रथ, श्रेष्ठ बाण तथा सुन्दर धनुष आपके लिये निर्मित किया था; किंतु देवताओं तथा सिद्धजनोंद्वारा युद्धरूपी फलको नहीं जाना जा सका अर्थात् परम महिमावाले आपने क्षणभरमें त्रिपुरका नाश कर दिया॥ १५५॥

रथो रथी देववरो हरिश्च
रुद्रः स्वयं शक्रपितामहौ च।
त्वमेव सर्वे भगवन् कथं तु
स्तोष्ये ह्यतोष्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥ १५६

रथ, रथी, देवश्रेष्ठ विष्णु, स्वयं रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा—ये सब आप ही हैं। हे भगवन्! मैं आप अतोष्य (स्तुति न किये जा सकनेवाले)-की स्तुति कैसे करूँ; अतः सिर झुकाकर [केवल] प्रणाम करता हूँ॥ १५६॥

अनन्तपादस्त्वमनन्तबाहु-
रनन्तमूर्धान्तकरः शिवश्च।
अनन्तमूर्तिः कथमीदृशं त्वां
तोष्ये ह्यतोष्यं कथमीदृशं त्वाम्॥ १५७

आप अनन्त चरणोंवाले, अनन्त भुजाओंवाले, अनन्त सिरवाले, अनन्त रूपोंवाले, संहार करनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं—ऐसे प्रभाववाले आपकी स्तुति कैसे करूँ; आप अतोष्यकी स्तुति कैसे करूँ?॥ १५७॥

नमो नमः सर्वविदे शिवाय
रुद्राय शर्वाय भवाय तुभ्यम्।
स्थूलाय सूक्ष्माय सुसूक्ष्मसूक्ष्म-
सूक्ष्माय सूक्ष्मार्थविदे विधात्रे॥ १५८

आप सर्ववेत्ता, शिव, रुद्र, शर्व, भव, स्थूल, सूक्ष्म, अत्यन्त सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, सूक्ष्म अर्थोंको जाननेवाले तथा विधाताको नमस्कार है॥ १५८॥

स्रष्ट्रे नमः सर्वसुरासुराणां
भर्त्रे च हर्त्रे जगतां विधात्रे।
नेत्रे सुराणामसुरेश्वराणां
दात्रे प्रशास्त्रे मम सर्वशास्त्रे॥ १५९

सभी देवताओं तथा असुरोंके स्रष्टा, लोकोंका सृजन-पालन-संहार करनेवाले, देवताओं तथा असुरोंके नायक, सब कुछ देनेवाले और मुझपर तथा सभीपर शासन करनेवालेको नमस्कार है॥ १५९॥

वेदान्तवेद्याय सुनिर्मलाय
वेदार्थविद्भिः सततं स्तुताय।
वेदात्मरूपाय भवाय तुभ्य-
मन्ताय मध्याय सुमध्यमाय॥ १६०

वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य, परम शुद्ध, वेदार्थके ज्ञाताओंद्वारा निरन्तर स्तुत, वेदके आत्मास्वरूप, भव, अन्त, मध्य तथा सुमध्यम आपको नमस्कार है॥ १६०॥

आद्यन्तशून्याय च संस्थिताय
तथा त्वशून्याय च लिङ्गिने च।
अलिङ्गिने लिङ्गमयाय तुभ्यं
लिङ्गाय वेदादिमयाय साक्षात्॥ १६१

आदि तथा अन्तसे रहित, सर्वत्र विद्यमान, शून्यत्वसे रहित, लिङ्गी, अलिङ्गी, लिङ्गमय, लिङ्गस्वरूप तथा साक्षात् वेदादिमय (प्रणवरूप) आपको नमस्कार है॥ १६१॥

रुद्राय मूर्धाननिकृन्तनाय
ममादिदेवस्य च यज्ञमूर्तेः।
विध्वान्तभङ्गं मम कर्तुमीश
दृष्ट्वैव भूमौ करजाग्रकोट्या॥ १६२

मेरे भी आदिदेव यज्ञमूर्ति विष्णुके तथा मुझ ब्रह्माके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये अपराधस्थानमें देखकर [अपने] नाखूनके अग्रभागसे मेरे मस्तकका छेदन करनेवाले हे ईश! आप रुद्रको नमस्कार है॥ १६२॥

अहो विचित्रं तव देवदेव
विचेष्टितं सर्वसुरासुरेश।
देहीव देवैः सह देवकार्यं
करिष्यसे निर्गुणरूपतत्त्व॥ १६३

हे देवदेव! हे समस्त देवताओं तथा असुरोंके ईश! आपका क्रिया-कलाप विचित्र है। हे निर्गुणरूपतत्त्व! आप देवताओंके साथ देहधारीकी भाँति देवोंका कार्य करेंगे॥ १६३॥

एकं स्थूलं सूक्ष्ममेकं सुसूक्ष्मं
मूर्तामूर्तं मूर्तमेकं ह्यमूर्तम्।
एकं दृष्टं वाङ्मयं चैकमीशं
ध्येयं चैकं तत्त्वमत्राद्भुतं ते॥ १६४

स्वप्ने दृष्टं यत्पदार्थं ह्यलक्ष्यं
दृष्टं नूनं भाति मन्ये न चापि।
मूर्तिर्नो वै देवमीशानदेवै-
र्लक्ष्या यत्नैरप्यलक्ष्यं कथं तु॥ १६५

दिव्यः क्व देवेश भवत्प्रभावो
वयं क्व भक्तिः क्व च ते स्तुतिश्च।
तथापि भक्त्या विलपन्तमीश
पितामहं मां भगवन् क्षमस्व॥ १६६

सूत उवाच

य इमं शृणुयाद् द्विजोत्तमा
भुवि देवं प्रणिपत्य वा पठेत्।
स च मुञ्चति पापबन्धनं
भवभक्त्या पुरशासितुः स्तवम्॥ १६७

श्रुत्वा च भक्त्या चतुराननेन
स्तुतो हसञ्शैलसुतां निरीक्ष्य।
स्तवं तदा प्राह महानुभावं
महाभुजो मन्दरशृङ्गवासी॥ १६८

शिव उवाच

स्तवेनानेन तुष्टोऽस्मि तव भक्त्या च पद्मज।
वरान् वरय भद्रं ते देवानां च यथेप्सितान्॥ १६९

सूत उवाच

ततः प्रणम्य देवेशं भगवान् पद्मसम्भवः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्राहेदं प्रीतमानसः॥ १७०

श्रीपितामह उवाच

भगवन् देवदेवेश त्रिपुरान्तक शङ्कर।
त्वयि भक्तिं परां मेऽद्य प्रसीद परमेश्वर॥ १७१

देवानां चैव सर्वेषां त्वयि सर्वार्थदेश्वर।
प्रसीद भक्तियोगेन सारथ्येन च सर्वदा॥ १७२

इस ब्रह्माण्डमें आपका एक स्थूल रूप (पृथ्वीरूप), एक सूक्ष्म रूप (जलरूप), एक सुसूक्ष्म रूप (अग्निरूप), मूर्तामूर्त रूप (क्षय-वृद्धिके आश्रयके कारण चन्द्ररूप), एक मूर्तरूप (सूर्यरूप), एक अमूर्तरूप (वायुरूप), एक दृष्ट वाङ्मयरूप (शब्दगुणसे ज्ञात गगनरूप) और एक ध्येय अद्भुत ईशरूप है॥ १६४॥

स्वप्नमें जो पदार्थ दिखायी देता है, वह प्रत्यक्षकी भाँति प्रतीत होता है; उसे मैं अलक्ष्य नहीं मानता हूँ। वैसे ही हे ईशान! देवताओंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक देखा गया आपका विग्रह हमारे लिये निर्गुण तथा अलक्ष्य कैसे हो सकता है?॥ १६५॥

हे देवेश! कहाँ आपका दिव्य प्रभाव और कहाँ हमलोग, कहाँ हमारी भक्ति और कहाँ आपकी [यह] स्तुति; फिर भी हे देवेश! हे भगवन्! भक्तिपूर्वक विलाप करते हुए मुझ ब्रह्माको क्षमा कीजिये॥ १६६॥

सूतजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठो! पृथ्वीपर जो भी शिवको प्रणाम करके त्रिपुरके शास्ता भगवान् शिवकी इस स्तुतिको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भवभक्तिके द्वारा पापबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ १६७॥

तब ब्रह्माके द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुत हुए मन्दरशिखरवासी तथा महान् भुजाओंवाले शिवजी उस स्तुतिको सुनकर पार्वतीकी ओर देखकर महानुभाव ब्रह्मासे हँसते हुए कहने लगे—॥ १६८॥

शिवजी बोले—हे पद्मयोने! भक्तिपूर्वक की गयी आपकी इस स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ। आप यथेष्ट वर माँगिये; आपका तथा देवताओंका कल्याण हो॥ १६९॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् पद्मयोनि ब्रह्माजी देवेशको प्रणाम करके हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त होकर यह [वचन] कहने लगे—॥ १७०॥

श्रीपितामह बोले—'हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रिपुरविनाशक! हे शंकर! आपमें अपनी परम भक्ति चाहता हूँ। हे परमेश्वर! अब प्रसन्न हो जाइये। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हे ईश्वर! आपमें सभी देवताओंकी भक्ति हो; मेरे भक्तियोगसे तथा सारथीरूपसे आप सदा प्रसन्न रहें'॥ १७१-१७२॥

जनार्दनोऽपि भगवान्नमस्कृत्य महेश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्राह साम्बं त्रियम्बकम्॥ १७३

वाहनत्वं तवेशान नित्यमीहे प्रसीद मे।
त्वयि भक्तिं च देवेश देवदेव नमोऽस्तु ते॥ १७४

सामर्थ्यं च सदा मह्यं भवन्तं वोढुमीश्वरम्।
सर्वज्ञत्वं च वरद सर्वगत्वं च शङ्कर॥ १७५

सूत उवाच

तयोः श्रुत्वा महादेवो विज्ञप्तिं परमेश्वरः।
सारथ्ये वाहनत्वे च कल्पयामास वै भवः॥ १७६

दत्त्वा तस्मै ब्रह्मणे विष्णवे च
दग्ध्वा दैत्यान् देवदेवो महात्मा।
सार्धं देव्या नन्दिना भूतसङ्घै-
रन्तर्धानं कारयामास शर्वः॥ १७७

ततस्तदा महेश्वरे गते रणाद् गणैः सह।
सुरेश्वराः सुविस्मिता भवं प्रणम्य पार्वतीम्॥ १७८

ययुश्च दुःखवर्जिताः स्ववाहनैर्दिवं ततः।
सुरेश्वरा मुनीश्वरा गणेश्वराश्च भास्कराः॥ १७९

त्रिपुरारेरिमं पुण्यं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
यः पठेच्छ्राद्धकाले वा दैवे कर्मणि च द्विजाः॥ १८०

श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति।
मानसैर्वाचिकैः पापैस्तथा वै कायिकैः पुनः॥ १८१

स्थूलैः सूक्ष्मैः सुसूक्ष्मैश्च महापातकसम्भवैः।
पातकैश्च द्विजश्रेष्ठा उपपातकसम्भवैः॥ १८२

पापैश्च मुच्यते जन्तुः श्रुत्वाध्यायमिमं शुभम्।
शत्रवो नाशमायान्ति सङ्ग्रामे विजयी भवेत्॥ १८३

सर्वरोगैर्न बाध्येत आपदो न स्पृशन्ति तम्।
धनमायुर्यशो विद्यां प्रभावमतुलं लभेत्॥ १८४

भगवान् विष्णुने भी पार्वतीसहित त्रिनेत्र शिवको प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनसे कहा—'हे ईशान! मैं [वृषभ आदि रूपसे] सदा आपका वाहन होनेकी अभिलाषा करता हूँ और हे देवेश! आपमें [अपनी] भक्ति चाहता हूँ। हे देवदेव! आपको नमस्कार है। हे वरद! हे शंकर! आप ईश्वरको सदा वहन करनेका सामर्थ्य, सर्वज्ञत्व तथा सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति मुझे प्रदान कीजिये॥ १७३—१७५॥

सूतजी बोले—उन दोनोंकी प्रार्थना सुनकर महादेव परमेश्वर शिवने उन्हें सारथि तथा वाहन होनेका वर प्रदान किया॥ १७६॥

इस प्रकार दैत्योंको दग्ध करके और उन ब्रह्मा तथा विष्णुको वर प्रदान करके देवदेव महात्मा शिव देवी [पार्वती], नन्दी तथा भूतगणोंसहित अन्तर्धान हो गये॥ १७७॥

इसके बाद युद्धभूमिसे गणोंसहित शिवके चले जानेपर श्रेष्ठ देवतालोग अतिविस्मित हुए। हे मुनीश्वरो! शिव तथा पार्वतीको प्रणाम करके दुःखरहित होकर सुरेश्वर, गणेश्वर तथा आदित्यगण अपने-अपने वाहनोंसे स्वर्ग चले गये॥ १७८-१७९॥

हे द्विजो! जो [व्यक्ति] पूर्वकालमें ब्रह्माके द्वारा निर्मित किये गये त्रिपुरशत्रु [शिव]-के इस पवित्र स्तोत्रको श्राद्धके समय अथवा देवकार्यमें भक्तिपूर्वक पढ़ता है अथवा द्विजोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको जाता है। हे द्विजश्रेष्ठो! इस शुभ अध्यायको सुनकर प्राणी मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक पापोंसे; स्थूल, सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म पापोंसे; घोर अपराधसे होनेवाले पापोंसे तथा अल्प अपराधसे होनेवाले पापोंसे मुक्त हो जाता है; उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं, वह संग्राममें विजयी होता है, सभी रोग उसे बाधा नहीं पहुँचाते, आपदाएँ उसे स्पर्शतक नहीं करतीं और वह धन-आयु-यश-विद्या तथा अतुलनीय प्रभाव प्राप्त करता है॥ १८०—१८४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे त्रिपुरदाहे ब्रह्मस्तवो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें त्रिपुरदाहप्रसंगमें 'ब्रह्मस्तव' नामक बहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

लिङ्गार्चनकी विधि तथा उसकी महिमा

सूत उवाच

गते महेश्वरे देवे दग्ध्वा च त्रिपुरं क्षणात्।
सदस्याह सुरेन्द्राणां भगवान् पद्मसम्भवः॥ १

पितामह उवाच

सन्त्यज्य देवदेवेशं लिङ्गमूर्तिं महेश्वरम्।
तारपौत्रो महातेजास्तारकस्य सुतो बली॥ २

तारकाक्षोऽपि दितिजः कमलाक्षश्च वीर्यवान्।
विद्युन्माली च दैत्येशः अन्ये चापि सबान्धवाः॥ ३

त्यक्त्वा देवं महादेवं मायया च हरेः प्रभोः।
सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः स्वपुरैः पुरसम्भवैः॥ ४

तस्मात्सदा पूजनीयो लिङ्गमूर्तिः सदाशिवः।
यावत्पूजा सुरेशानां तावदेव स्थितिर्यतः॥ ५

पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुङ्गवैः।
सर्वलिङ्गमयो लोकः सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्॥ ६

तस्मात् सम्पूजयेल्लिङ्गं य इच्छेत्सिद्धिमात्मनः।
सर्वे लिङ्गार्चनादेव देवा दैत्याश्च दानवाः॥ ७

यक्षा विद्याधराः सिद्धा राक्षसाः पिशिताशनाः।
पितरो मुनयश्चापि पिशाचाः किन्नरादयः॥ ८

अर्चयित्वा लिङ्गमूर्तिं संसिद्धा नात्र संशयः।
तस्माल्लिङ्गं यजेन्नित्यं येन केनापि वा सुराः॥ ९

पशवश्च वयं तस्य देवदेवस्य धीमतः।
पशुत्वं च परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं ततः॥ १०

पूजनीयो महादेवो लिङ्गमूर्तिः सनातनः।
विशोध्य चैव भूतानि पञ्चभिः प्रणवैः समम्॥ ११

प्राणायामैः समायुक्तैः पञ्चभिः सुरपुङ्गवाः।
चतुर्भिः प्रणवैश्चैव प्राणायामपरायणैः॥ १२

त्रिभिश्च प्रणवैर्देवाः प्राणायामैस्तथाविधैः।
द्विधा न्यस्य तथोङ्कारं प्राणायामपरायणः॥ १३

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] क्षणभरमें त्रिपुरको जलाकर देव महेश्वरके चले जानेपर भगवान् पद्मयोनि (ब्रह्मा)-ने श्रेष्ठ देवताओंकी सभामें [इस प्रकार] कहा— ॥ १ ॥

पितामह बोले—लिङ्गमूर्ति देवदेवेश महेश्वरकी उपेक्षा करके दितिसे उत्पन्न महातेजस्वी तारकपौत्र और तारकका बलवान् पुत्र तारकाक्ष, पराक्रमी कमलाक्ष, दैत्यराज विद्युन्माली तथा अन्य राक्षस भी [अपने] बन्धुओंसहित मारे गये। [इस प्रकार] प्रभु श्रीहरिकी मायासे भगवान् महादेवका त्याग करके वे सब अपने पुरों तथा नागरिकोंसहित विनष्ट तथा ध्वस्त हो गये॥ २—४॥

अतः लिङ्गमूर्ति सदाशिवकी सर्वदा पूजा करनी चाहिये। जबतक उनकी पूजा होगी, तभीतक देवताओंकी स्थिति बनी रहेगी, अतः श्रेष्ठ देवताओंको नित्य श्रद्धापूर्वक शिवका पूजन करना चाहिये। समस्त जगत् लिङ्गमय है, सब कुछ लिङ्गमें प्रतिष्ठित है, अतः जो आत्मसिद्धि चाहता है, उसे [शिव] लिङ्गकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ५-६$^{1}/_{2}$॥

सभी देवता, दैत्य तथा दानव लिङ्गार्चनसे ही प्रतिष्ठित हैं। यक्ष, विद्याधर, सिद्धगण, मांसभक्षी राक्षस, पितर, मुनि, पिशाच, किन्नर आदि लिङ्गमूर्तिका अर्चन करके सिद्धिको प्राप्त हुए हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७-८$^{1}/_{2}$॥

अतः हे देवताओ! जिस किसी भी प्रकारसे नित्य लिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। हम लोग उन बुद्धिमान् देवाधिदेवके पशु हैं। अतः पाशुपत व्रत करके पशुत्वका त्याग करके लिङ्गमूर्ति सनातन महादेवकी पूजा करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ देवताओ! पाँच प्रणवयुक्त पाँच प्राणायामोंके द्वारा पंचभूतोंका शोधन करके; हे देवताओ! चार प्रणवोंके साथ चार प्राणायामोंद्वारा, पुनः उसी प्रकारके तीन प्रणवोंके साथ [तीन] प्राणायामोंद्वारा,

ततश्चोङ्कारमुच्चार्य प्राणापानौ नियम्य च।
ज्ञानामृतेन सर्वाङ्गान्यापूर्य प्रणवेन च॥ १४

गुणत्रयं चतुर्थाख्यमहङ्कारं च सुव्रताः।
तन्मात्राणि च भूतानि तथा बुद्धीन्द्रियाणि च॥ १५

कर्मेन्द्रियाणि संशोध्य पुरुषं युगलं तथा।
चिदात्मानं तनुं कृत्वा चाग्निर्भस्मेति संस्पृशेत्॥ १६

वायुर्भस्मेति च व्योम तथाम्भः पृथिवी तथा।
त्रियायुषं त्रिसन्ध्यं च धूलयेद्भसितेन यः॥ १७

स योगी सर्वतत्त्वज्ञो व्रतं पाशुपतं त्विदम्।
भवेन पाशमोक्षार्थं कथितं देवसत्तमाः॥ १८

पुनः दो प्रणवोंसहित [दो] प्राणायामोंके द्वारा शोधन करके; प्राणायामपरायण होकर ओंकारका न्यास करके; तदनन्तर ओंकारका उच्चारण करके प्राण तथा अपान [वायु]-को नियन्त्रितकर ज्ञानामृतरूपी प्रणवसे सभी अंगोंको आप्लावित मानकर; हे सुव्रतो! तीनों गुणों, चौथा अहंकार, [पाँच] तन्मात्राओं, [पाँच] भूतों, [पाँच] ज्ञानेन्द्रियों, [पाँच] कर्मेन्द्रियोंका शोधन करके; पुनः युगलपुरुषका शोधन करके [अपने] शरीरको चिदात्मस्वरूप मानकर अग्नि भस्म है, वायु भस्म है, व्योम [आकाश] भस्म है, जल भस्म है, पृथ्वी भस्म है—ऐसा कहकर भस्मका स्पर्श करना चाहिये। जो तीनों सन्ध्याओंमें भस्मस्नान करता है, वह योगी तथा सभी तत्त्वोंका ज्ञाता हो जाता है। हे श्रेष्ठ देवताओ! [स्वयं] भगवान् शिवने पाश (बन्धन)-से मुक्तिके लिये इस पाशुपतव्रतको कहा है॥ ९—१८॥

एवं पाशुपतं कृत्वा सम्पूज्य परमेश्वरम्।
लिङ्गे पुरा मया दृष्टे विष्णुना च महात्मना॥ १९

पशवो नैव जायन्ते वर्षमात्रेण देवताः।
अस्माभिः सर्वकार्याणां देवमभ्यर्च्य यत्नतः॥ २०

बाह्ये चाभ्यन्तरे चैव मन्ये कर्तव्यमीश्वरम्।
प्रतिज्ञा मम विष्णोश्च दिव्यैषा सुरसत्तमाः॥ २१

मुनीनां च न सन्देहस्तस्मात्सम्पूजयेच्छिवम्।

हे देवताओ! इस प्रकार पाशुपतव्रत करके पूर्वकालमें मेरे तथा महात्मा विष्णुके द्वारा देखे गये लिङ्गमें परमेश्वरकी विधिपूर्वक पूजा करके लोग एक वर्षमें पशुत्वसे मुक्त हो जाते हैं। हम लोगोंको सभी कर्मोंके देव महेश्वरकी पूजा यत्नपूर्वक बाह्य तथा आभ्यन्तर विधिसे करनी चाहिए—ऐसा मैं मानता हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मेरी, विष्णुकी तथा मुनियोंकी यह दिव्य प्रतिज्ञा है; इसमें सन्देह नहीं है। अतः शिवका पूजन [अवश्य] करना चाहिये॥ १९—२१ $^1/_2$॥

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता॥ २२

यत्क्षणं वा मुहूर्तं वा शिवमेकं न चिन्तयेत्।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः॥ २३

भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भाजनम्।
भवनानि मनोज्ञानि दिव्यमाभरणं स्त्रियः॥ २४

धनं वा तुष्टिपर्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम्।
ये वाञ्छन्ति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये।
तेऽर्चयन्तु सदा कालं लिङ्गमूर्तिं महेश्वरम्॥ २५

हत्वा भित्त्वा च भूतानि दग्ध्वा सर्वमिदं जगत्॥ २६

यदि कोई एक क्षण या एक मुहूर्त भी शिवका चिन्तन नहीं करता, तो वही [उसकी] हानि है, वही दोष है, वही उसका अज्ञान है और वही उसकी मूकता है। जो लोग शिवभक्तिमें संलग्न हैं, अन्तःकरणसे शिवको प्रणाम करनेवाले हैं तथा भगवान् शिवके स्मरणमें लगे हुए हैं, वे दुःखके पात्र नहीं होते हैं। सुन्दर भवन, दिव्य आभूषण, स्त्रियाँ तथा तुष्टिपर्यन्त धन—यह सब शिवपूजाविधिका फल है। जो लोग महाभोगों तथा स्वर्गका राज्य चाहते हैं, वे सभी समयोंमें लिङ्गमूर्ति महेश्वरका अर्चन करें। सभी प्राणियोंका वध तथा छेदन करके और इस सम्पूर्ण

यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः स प्रलिप्यते।
शैलं लिङ्गं मदीयं हि सर्वदेवनमस्कृतम्॥ २७

जगत्को जलाकर भी जो एकमात्र विरूपाक्ष [शिव]-की पूजा करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है, मेरे द्वारा पूजित यह शिलामय लिङ्ग सभी देवताओंके द्वारा नमस्कृत है॥ २२—२७॥

इत्युक्त्वा पूर्वमभ्यर्च्य रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्देवदेवं त्रियम्बकम्॥ २८

तदाप्रभृति शक्राद्याः पूजयामासुरीश्वरम्।
साक्षात्पाशुपतं कृत्वा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥ २९

ऐसा कहकर पहले ब्रह्माजीने तीनों लोकोंके स्वामी, देवोंके भी देव तथा तीन नेत्रोंवाले रुद्रकी पूजा करके प्रिय वचनोंसे [उनकी] स्तुति की। उसी समयसे इन्द्रादि [देवता] शरीरमें भस्म पोतकर पाशुपतव्रत करके साक्षात् महेश्वरकी पूजा करने लगे॥ २८-२९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मप्रोक्तलिङ्गार्चनविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'ब्रह्मप्रोक्तलिङ्गार्चनविधि' नामक तिहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माकी आज्ञासे विश्वकर्माद्वारा विभिन्न लिङ्गोंका निर्माण करके देवताओंको प्रदान करना एवं देवताओंद्वारा उन-उन लिङ्गोंका पूजन, लिङ्गोंके विविध भेद तथा उनकी स्थापनाका माहात्म्य

सूत उवाच

लिङ्गानि कल्पयित्वैवं स्वाधिकारानुरूपतः।
विश्वकर्मा ददौ तेषां नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः॥ १

सूतजी बोले—विश्वकर्माने प्रभु ब्रह्माकी आज्ञासे अपने अधिकारके अनुरूप लिङ्गोंका निर्माण करके उन [देवताओं]-को दिया॥ १॥

इन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुना पूजितं सदा।
पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः॥ २

विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवः कान्तिकं शुभम्।
आरकूटमयं वायुरश्विनौ पार्थिवं सदा॥ ३

विष्णुने इन्द्रनील (नीलकान्तमणि)-से निर्मित लिङ्गकी सदा पूजा की। इन्द्रने पद्मरागनिर्मित लिङ्गकी, विश्रवाके पुत्र कुबेरने सुवर्णनिर्मित लिङ्गकी, विश्वेदेवोंने चाँदीसे बने हुए लिङ्गकी, वसुओंने चन्द्रकान्तमणिसे बने हुए सुन्दर लिङ्गकी, वायुने आरकूट (पीतल)-से बने हुए लिङ्गकी तथा [दोनों] अश्विनीकुमारोंने मिट्टीसे बने हुए लिङ्गकी सदा पूजा की॥ २-३॥

स्फाटिकं वरुणो राजा आदित्यास्ताम्रनिर्मितम्।
मौक्तिकं सोमराड् धीमांस्तथा लिङ्गमनुत्तमम्॥ ४

अनन्ताद्या महानागाः प्रवालकमयं शुभम्।
दैत्या ह्ययोमयं लिङ्गं राक्षसाश्च महात्मनः॥ ५

राजा वरुणने स्फटिकसे बने हुए लिङ्गकी, आदित्योंने ताँबेसे बने हुए लिङ्गकी, बुद्धिमान् सोमराट्ने मोतीसे बने हुए अत्युत्तम लिङ्गकी, अनन्त आदि महानागोंने प्रवालनिर्मित शुभ लिङ्गकी और महात्मा दैत्यों तथा राक्षसोंने लोहेसे बने हुए लिङ्गकी पूजा की॥ ४-५॥

त्रैलोहिकं गुह्यकाश्च सर्वलोहमयं गणाः।
चामुण्डा सैकतं साक्षान्मातरश्च द्विजोत्तमाः॥ ६

दारुजं नैर्ऋतिर्भक्त्या यमो मारकतं शुभम्।
नीलाद्याश्च तथा रुद्राः शुद्धं भस्ममयं शुभम्॥ ७

हे द्विजोत्तमो! गुह्यकोंने तीन प्रकारके लोहेसे निर्मित लिङ्गकी, गणोंने सर्वलोहमय लिङ्गकी और चामुण्डा तथा [सभी] माताओंने बालूसे बने हुए लिङ्गकी पूजा की। नैर्ऋतिने लकड़ीसे बने लिङ्गकी, यमने मरकतसे बने शुभ

लक्ष्मीवृक्षमयं लक्ष्मीर्गुहो वै गोमयात्मकम्।
मुनयो मुनिशार्दूलाः कुशाग्रमयमुत्तमम्॥ ८

वामाद्याः पुष्पलिङ्गं तु गन्धलिङ्गं मनोन्मनी।
सरस्वती च रत्नेन कृतं रुद्रस्य वाम्भसा॥ ९

दुर्गा हैमं महादेवं सवेदिकमनुत्तमम्।
उग्रा पिष्टमयं सर्वे मन्त्रा ह्याज्यमयं शुभम्॥ १०

वेदाः सर्वे दधिमयं पिशाचाः सीसनिर्मितम्।
लेभिरे च यथायोग्यं प्रसादाद् ब्रह्मणः पदम्॥ ११

बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत्।
शिवलिङ्गं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः॥ १२

षड्विधं लिङ्गमित्याहुर्द्रव्याणां च प्रभेदतः।
तेषां भेदाश्चतुर्युक्तचत्वारिंशदिति स्मृताः॥ १३

शैलजं प्रथमं प्रोक्तं तद्धि साक्षाच्चतुर्विधम्।
द्वितीयं रत्नजं तच्च सप्तधा मुनिसत्तमाः॥ १४

तृतीयं धातुजं लिङ्गमष्टधा परमेष्ठिनः।
तुरीयं दारुजं लिङ्गं तत्तु षोडशधोच्यते॥ १५

मृन्मयं पञ्चमं लिङ्गं द्विधा भिन्नं द्विजोत्तमाः।
षष्ठं तु क्षणिकं लिङ्गं सप्तधा परिकीर्तितम्॥ १६

श्रीप्रदं रत्नजं लिङ्गं शैलजं सर्वसिद्धिदम्।
धातुजं धनदं साक्षाद्दारुजं भोगसिद्धिदम्॥ १७

मृन्मयं चैव विप्रेन्द्राः सर्वसिद्धिकरं शुभम्।
शैलजं चोत्तमं प्रोक्तं मध्यमं चैव धातुजम्॥ १८

लिङ्गकी, नील आदि रुद्रोंने भस्मनिर्मित शुद्ध तथा शुभ लिङ्गकी भक्तिपूर्वक पूजा की॥ ६-७॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! लक्ष्मीने लक्ष्मीवृक्ष (बेल)-से निर्मित लिङ्गकी, गुहने गोमयसे निर्मित लिङ्गकी, मुनियोंने कुशके अग्रभागसे निर्मित उत्तम लिङ्गकी, वामदेव आदिने पुष्पके लिङ्गकी, मनोन्मनीने गन्धोंसे निर्मित लिङ्गकी और सरस्वतीने रत्न अथवा रुद्रके जलसे निर्मित लिङ्गकी पूजा की। दुर्गाने वेदीसहित सुवर्णनिर्मित अत्युत्तम शिवलिङ्गकी, उग्रोंने आटेसे बने हुए लिङ्गकी, सभी मन्त्रोंने घृतनिर्मित शुभ लिङ्गकी, सभी वेदोंने दधिनिर्मित लिङ्गकी एवं पिशाचोंने सीसनिर्मित लिङ्गकी पूजा की। इन सभीने [पूजा करके] ब्रह्माजीकी कृपासे यथायोग्य पद प्राप्त किया, इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? शिवलिङ्गकी पूजा करनेसे ही यह चराचर जगत् स्थित है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ८—१२॥

द्रव्योंके भेदसे छः प्रकारका लिङ्ग कहा गया है। उनके कुल चौवालीस भेद कहे गये हैं। प्रथम प्रकारका लिङ्ग पाषाणनिर्मित कहा गया है; वह चार प्रकारका होता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! द्वितीय प्रकारका लिङ्ग रत्ननिर्मित होता है; वह सात प्रकारका होता है। शिवजीका तीसरे प्रकारका लिङ्ग धातुनिर्मित होता है; वह आठ प्रकारका होता है। चौथे प्रकारका लिङ्ग लकड़ीसे बना होता है; वह सोलह प्रकारका कहा जाता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! पाँचवें प्रकारका लिङ्ग मिट्टीसे बना होता है; वह दो विभागोंवाला होता है। छठे प्रकारका लिङ्ग क्षणिक (रंगवल्लीनिर्मित) होता है; वह सात प्रकारका कहा गया है॥ १३—१६॥

रत्ननिर्मित लिङ्ग श्री (लक्ष्मी) प्रदान करनेवाला, पाषाणनिर्मित लिङ्ग समस्त सिद्धियोंको देनेवाला, धातुनिर्मित लिङ्ग साक्षात् धन प्रदान करनेवाला तथा काष्ठनिर्मित लिङ्ग भोग-सिद्धि प्रदान करनेवाला है। हे श्रेष्ठ विप्रो! मिट्टीसे बना हुआ (पार्थिव) शुभ लिङ्ग सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। पाषाणनिर्मित लिङ्ग उत्तम तथा धातुनिर्मित लिङ्ग मध्यम कहा गया है॥ १७-१८॥

बहुधा लिङ्गभेदाश्च नव चैव समासतः।
मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः॥ १९

रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः।
लिङ्गवेदी महादेवी त्रिगुणा त्रिमयाम्बिका॥ २०

तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ।
शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्॥ २१

मृन्मयं क्षणिकं वापि भक्त्या स्थाप्य फलं शुभम्।
सुरेन्द्राम्भोजगर्भाग्नियमाम्बुपधनेश्वरैः ॥ २२

सिद्धविद्याधराहीन्द्रैर्यक्षदानवकिन्नरैः ।
स्तूयमानः सुपुण्यात्मा देवदुन्दुभिनिःस्वनैः॥ २३

भूर्भुवःस्वर्महर्लोकान् क्रमाद्वै जनतः परम्।
तपः सत्यं पराक्रम्य भासयन् स्वेन तेजसा॥ २४

लिङ्गस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना ।
आशु ब्रह्माण्डमुद्भिद्य निर्गच्छेन्निर्विशङ्कया॥ २५

शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्।
मृन्मयं क्षणिकं त्यक्त्वा स्थापयेत्सकलं वपुः॥ २६

विधिना चैव कृत्वा तु स्कन्दोमासहितं शुभम्।
कुन्दगोक्षीरसङ्काशं लिङ्गं यः स्थापयेन्नरः॥ २७

नृणां तनुं समास्थाय स्थितो रुद्रो न संशयः।
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य लभन्ते निर्वृतिं नराः॥ २८

तस्य पुण्यं मया वक्तुं सम्यग्युगशतैरपि।
शक्यते नैव विप्रेन्द्रास्तस्माद्वै स्थापयेत्तथा॥ २९

सर्वेषामेव मर्त्यानां विभोर्दिव्यं वपुः शुभम्।
सकलं भावनायोग्यं योगिनामेव निष्कलम्॥ ३०

लिङ्गोंके बहुत भेद हैं; संक्षेपमें वे नौ हैं। [लिङ्गके] मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें तीनों लोकोंके ईश्वर विष्णु तथा ऊपरी भागमें प्रणवसंज्ञक महादेव रुद्र सदाशिव विराजमान रहते हैं। लिङ्गकी वेदी महादेवी अम्बिका हैं; वे [सत्, रज, तम] तीनों गुणोंसे तथा त्रिदेवोंसे युक्त रहती हैं। जो उस [वेदी]-के साथ लिङ्गकी पूजा करता है, उसने मानो महादेव तथा भगवती [पार्वती]-का पूजन कर लिया। पाषाणनिर्मित, रत्ननिर्मित, धातुनिर्मित, काष्ठनिर्मित, पार्थिव अथवा क्षणिक जो भी लिङ्ग हो—उसे भक्तिपूर्वक स्थापित करके [व्यक्ति] शुभ फल प्राप्त करता है। वह परम पुण्यात्मा इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, यम, वरुण, कुबेर, सिद्धों, विद्याधरों, नागराज, यक्षों, दानवों तथा किन्नरोंके द्वारा देवदुन्दुभियोंकी ध्वनिसे स्तुत होता हुआ क्रमशः भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप तथा सत्य लोकोंको लाँघकर अपने तेजसे प्रकाशित होता हुआ लिङ्गस्थापन आदि सन्मार्गमें निहित स्वाधीन खड्गसे शीघ्र ही ब्रह्माण्डका भेदन करके निःशंक भावसे मुक्त हो जाता है॥ १९—२५॥

पाषाणनिर्मित, रत्ननिर्मित, धातुनिर्मित, काष्ठनिर्मित, पार्थिव अथवा क्षणिक लिङ्गकी अपेक्षा चन्द्रकलादिसहित बाणलिङ्ग आदिकी स्थापना करनी चाहिये। विधिपूर्वक लिङ्ग बनाकर जो मनुष्य कार्तिकेय-पार्वतीसहित कुन्द पुष्प तथा गायके दूधके समान वर्णवाले शुभ लिङ्गको स्थापित करता है, वह मानव-शरीर धारण करके भी रुद्रके रूपमें स्थित रहता है; इसमें सन्देह नहीं है। उसके दर्शन तथा स्पर्शसे [अन्य] मनुष्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। हे विप्रेन्द्रो! मैं उसके पुण्यका सम्यक् वर्णन सैकड़ों युगोंमें भी नहीं कर सकता हूँ, अतः विधिपूर्वक लिङ्गको स्थापित करना चाहिये। सभी मनुष्योंके लिये प्रभुका सकल (सगुण), दिव्य तथा शुभ विग्रह भावनाके योग्य है, किंतु योगियोंके लिये निष्कल (निर्गुण) विग्रह भावनाके योग्य है॥ २६—३०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवलिङ्गभेदसंस्थापनादिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवलिङ्गभेदसंस्थापनादिवर्णन' नामक चौहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

शिवके निर्गुण एवं सगुणस्वरूपका निरूपण

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यः सकलत्वं कथं गतः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं यथाश्रुतम्॥ १

ऋषिगण बोले—निष्कल (निर्गुण), निर्मल तथा नित्य (शाश्वत) शिव सकलत्व (सगुणता)-को कैसे प्राप्त हुए? [हे सूतजी!] आपने जैसा पहले सुना है, उसे हम लोगोंको बताइये॥ १॥

सूत उवाच

परमार्थविदः केचिदूचुः प्रणवरूपिणम्।
विज्ञानमिति विप्रेन्द्राः श्रुत्वा श्रुतिशिरस्यजम्॥ २

शब्दादिविषयं ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते।
तज्ज्ञानं भ्रान्तिरहितमित्यन्ये नेति चापरे॥ ३

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ विप्रो! कुछ तत्त्वज्ञोंने उपनिषदोंमें शिवको अजन्मा सुनकर उन्हें प्रणवरूप विज्ञान कहा है। शब्द आदि विषयोंका जो ज्ञान है, उसे 'ज्ञान' कहा जाता है। अन्य लोग कहते हैं कि जो भ्रान्तिरहित ज्ञान है, वही ज्ञान है; दूसरे लोग कहते हैं कि ऐसा कुछ नहीं है॥ २-३॥

यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निराश्रयम्।
गुरुप्रकाशकं ज्ञानमित्यन्ये मुनयो द्विजाः॥ ४

हे द्विजो! अन्य मुनि लोग कहते हैं कि जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प, आश्रयरहित तथा गुरुके द्वारा प्रकाशित है, वह [वास्तविक] ज्ञान है॥ ४॥

ज्ञानेनैव भवेन्मुक्तिः प्रसादो ज्ञानसिद्धये।
उभाभ्यां मुच्यते योगी तत्रानन्दमयो भवेत्॥ ५

वदन्ति मुनयः केचित्कर्मणा तस्य सङ्गतिम्।
कल्पनाकल्पितं रूपं संहृत्य स्वेच्छयैव हि॥ ६

ज्ञानसे ही मुक्ति प्राप्त होती है; ज्ञानसिद्धिके लिये [ईश्वरकी] प्रसन्नता आवश्यक है। दोनोंके द्वारा योगी मुक्त हो जाता है और वह आनन्दमय हो जाता है। कुछ मुनि स्वेच्छासे मायाविरचित रूपको हृदयमें भावित करके (विचारकर) विधिप्रतिपादित निष्काम कर्मद्वारा उस ज्ञानकी संगतिको बताते हैं॥ ५-६॥

द्यौर्मूर्धा तु विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः।
सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रं महात्मनः॥ ७

चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य चाम्बरम्।
देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम्॥ ८

प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिङ्गमुच्यते।
वक्त्राद्वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान् प्रभुः॥ ९

इन्द्रोपेन्द्रौ भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः।
वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिनः॥ १०

पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः।
वायवो घ्राणजास्तस्य गतिः श्रौतं स्मृतिस्तथा॥ ११

द्यौ (स्वर्ग) उन विभुका सिर है, आकाश उन परमेश्वरकी नाभि है, चन्द्र-सूर्य-अग्नि [उनके] नेत्र हैं, दिशाएँ [उन] महात्माके कान हैं, पाताल ही [उनके] दोनों चरण हैं, समुद्र उनका वस्त्र है, सभी देवता उनकी भुजाएँ हैं, [सभी] नक्षत्र [उनके] आभूषण हैं। प्रकृतिको [उनकी] पत्नी तथा पुरुषको [उनका] लिङ्ग कहा जाता है। सभी ब्राह्मण, ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, इन्द्र तथा उपेन्द्र उनके मुखसे; महात्मा क्षत्रिय भुजाओंसे; वैश्य उनके उरुप्रदेशसे तथा शूद्र उन पिनाकधारीके पैरसे उत्पन्न हुए हैं। पुष्कर, आवर्त आदि [मेघ] उनके केश कहे गये हैं। सभी वायु उनकी नासिकासे उत्पन्न हुए हैं। श्रुति तथा स्मृतिमें कथित कर्म उनकी गति हैं॥ ७—११॥

अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः।
पुंसां तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो न चान्यथा॥ १२

कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते।
तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥ १३

जपयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्॥ १४

यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति।
ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहितः शिवः॥ १५

नास्ति विज्ञानिनां शौचं प्रायश्चित्तादिचोदना।
विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जनाः॥ १६

नास्ति क्रिया च लोकेषु सुखं दुःखं विचारतः।
धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिनां सन्निधिः सदा॥ १७

परानन्दात्मकं लिङ्गं विशुद्धं शिवमक्षरम्।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम्॥ १८

लिङ्गं तु द्विविधं प्राहुर्बाह्यमाभ्यन्तरं द्विजाः।
बाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः॥ १९

कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिङ्गार्चने रताः।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः॥ २०

आध्यात्मिकं च यल्लिङ्गं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत्।
असौ मूढो बहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा॥ २१

ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम्।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्॥ २२

अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्त्वार्थवेदिनः।
निष्कलः सकलश्चेति सर्वं शिवमयं ततः॥ २३

इसी [शरीर]-से वे [परमात्मा] कर्मरूप होकर प्रकृतिका प्रवर्तन करते हैं। वे ऐश्वर्यशाली पुरुष (परमात्मा) मनुष्योंके लिये ज्ञानगम्य हैं; इसमें सन्देह नहीं है। तपोयज्ञ हजार कर्मयज्ञोंसे बढ़कर है, जपयज्ञ हजार तपोयज्ञोंसे बढ़कर है और ध्यानयज्ञ हजार जपयज्ञोंसे बढ़कर है। ध्यानयज्ञसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है; ध्यान ज्ञानका साधन है। जब योगी समरसमें स्थित होकर ध्यानके द्वारा देखता है, तब शिव ध्यानयज्ञमें लीन उस [योगी]-को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं॥ १२—१५॥

विज्ञानियोंके लिये शुद्धि, प्रायश्चित्त आदि कर्म आवश्यक नहीं हैं; ब्रह्मविद्याको जाननेवाले सभी लोग [ब्रह्म] विद्यासे पूर्णरूपसे शुद्ध हो जाते हैं। विचारकी दृष्टिसे ध्यानियोंके लिये लोकोंमें क्रिया, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, जप, होम आदि [आवश्यक] नहीं हैं; उनके लिये शिव-सन्निधि ही मुख्य है। परम आनन्दमय, विशुद्ध, कल्याणकारी, अविनाशी, निष्कल तथा सर्वव्यापी लिङ्गको योगियोंके हृदयमें [सदा] विराजमान जानना चाहिये॥ १६—१८॥

हे द्विजो! लिङ्ग दो प्रकारका कहा गया है—बाह्य तथा आभ्यन्तर। हे श्रेष्ठ मुनियो! स्थूल [लिङ्ग] बाह्य होता है और सूक्ष्म [लिङ्ग] आभ्यन्तर होता है॥ १९॥

कर्मयज्ञमें निरत तथा स्थूलस्वभाववाले स्थूललिङ्गके अर्चनमें संलग्न रहते हैं। अज्ञानी जनोंकी भावनासिद्धिके लिये ही स्थूलविग्रह कल्पित किया गया है; इसमें दूसरा हेतु नहीं है। जो आध्यात्मिक सूक्ष्मलिङ्ग है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन जिसे नहीं होता है, ऐसा वह अज्ञानी व्यक्ति 'सब कुछ बाहर है'—यह कल्पना करके ही पूजनादिमें प्रवृत्त होता है; इसमें सन्देह नहीं है। जैसे ज्ञानियोंके लिये प्रत्यक्षरूपसे सूक्ष्म, निर्मल तथा अव्यय (अविनाशी) लिङ्गकी कल्पना की गयी है, वैसे ही सामान्य लोगोंके लिये मिट्टी, काष्ठ आदिसे निर्मित स्थूल लिङ्ग प्रकल्पित है। अतः विचार करनेसे निरवयव तथा सावयव—सब कुछ शिवमय ही है। मोक्षरूप पुरुषार्थकी भी सत्ता नहीं है*—ऐसा अन्य तत्त्ववेत्तालोग कहते हैं।

* श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके अनुसार बन्धन मायामूलक है अर्थात् मिथ्या है, अतः मोक्षकी भी कोई सत्ता नहीं है।

व्योमैकमपि दृष्टं हि शरावं प्रति सुव्रताः।
पृथक्त्वञ्चापृथक्त्वं च शङ्करस्येति चापरे॥ २४

प्रत्ययार्थं हि जगतामेकस्थोऽपि दिवाकरः।
एकोऽपि बहुधा दृष्टो जलाधारेषु सुव्रताः॥ २५

जन्तवो दिवि भूमौ च सर्वे वै पाञ्चभौतिकाः।
तथापि बहुला दृष्टा जातिव्यक्तिविभेदतः॥ २६

दृश्यते श्रूयते यद्यत्तत्तद्विद्धि शिवात्मकम्।
भेदो जनानां लोकेऽस्मिन् प्रतिभासो विचारतः॥ २७

स्वप्ने च विपुलान् भोगान् भुक्त्वा मर्त्यः सुखी भवेत्।
दुःखी च भोगं दुःखं च नानुभूतं विचारतः॥ २८

एवमाहुस्तथान्ये च सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः।
हृदि संसारिणां साक्षात्सकलः परमेश्वरः॥ २९

योगिनां निष्कलो देवो ज्ञानिनां च जगन्मयः।
त्रिविधं परमेशस्य वपुर्लोके प्रशस्यते॥ ३०

निष्कलं प्रथमं चैकं ततः सकलनिष्कलम्।
तृतीयं सकलं चैव नान्यथेति द्विजोत्तमाः॥ ३१

अर्चयन्ति मुहुः केचित्सदा सकलनिष्कलम्।
सर्वज्ञं हृदये केचिच्छिवलिङ्गे विभावसौ॥ ३२

सकलं मुनयः केचित्सदा संसारवर्तिनः।
एवमभ्यर्चयन्त्येव सदाराः ससुता नराः॥ ३३

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
तस्मादभेदबुद्ध्यैव सप्तविंशत्प्रभेदतः॥ ३४

यजन्ति देहे बाह्ये च चतुष्कोणे षडस्त्रके।
दशारे द्वादशारे च षोडशारे त्रिरस्त्रके॥ ३५

आकाशके एक होते हुए भी जैसे वह शराव (मिट्टीका कसोरा)-[आदि उपाधियोंके भेदसे] अनेक रूपोंमें प्रतीत होता है, वैसे ही भगवान् शिवके एक होनेपर भी उनकी एकता तथा अनेकता दिखायी देती है—ऐसा दूसरे लोग कहते हैं। हे सुव्रतो! एक स्थानपर स्थित होते हुए तथा एक होनेपर भी सूर्य जलके आश्रयभूत विभिन्न पात्रोंमें अनेक रूपोंमें दिखायी देते हैं—यह दृष्टान्त लोगोंको ज्ञान करानेके लिये है॥ २०—२५॥

स्वर्ग तथा पृथ्वीके सभी प्राणी पंचभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश)-से निर्मित हैं; तथापि जाति तथा व्यक्तिके भेदसे वे अनेक रूपोंमें दिखायी देते हैं। जो कुछ भी दिखायी देता है अथवा सुनायी पड़ता है, उसे शिवमय जानिये; विचार करनेपर इस लोकमें लोगोंका भेद तो प्रतिभास (भ्रम)-मात्र है॥ २६-२७॥

स्वप्नमें बहुत-से सुखोंका उपभोग करके मनुष्य सुखी तथा दुःखी हो जाता है; विचार करनेसे देखा जाय, तो वास्तवमें सुख-दुःखका अनुभव नहीं होता। इसी प्रकार अन्य सभी वेदार्थतत्त्वज्ञ बन्धन तथा मोक्षको भी स्वप्नकी भाँति बताते हैं। परमेश्वर [शिव] संसारी लोगोंके हृदयमें साक्षात् सकल (सगुण)-रूपसे विराजमान रहते हैं और वे ही जगन्मय देव योगियों तथा ज्ञानियोंके हृदयमें निष्कल (निर्गुण)-रूपसे विराजमान रहते हैं॥ २८-२९ $^1/_2$ ॥

परमेश्वरका तीन प्रकारका विग्रह लोकमें पूजित होता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! पहला निष्कल (निर्गुण), दूसरा सकल-निष्कल (सगुण-निर्गुण) और तीसरा सकल (सगुण); इसमें सन्देह नहीं है॥ ३०-३१॥

कुछ लोग सदा सकल-निष्कल रूपकी पूजा करते हैं; कुछ लोग उन सर्वज्ञकी पूजा हृदयमें, शिवलिङ्गमें तथा अग्निमें करते हैं और हे मुनियो! संसारमें रहनेवाले कुछ मनुष्य स्त्री-पुत्रोंसहित सकल (सगुण) रूपकी सर्वदा पूजा करते हैं॥ ३२-३३॥

जैसे शिव हैं, वैसे ही देवी हैं और जैसे देवी हैं, वैसे ही शिव हैं; अतः लोग सत्ताईस प्रभेदसे अभेद बुद्धिसे शरीरमें तथा शरीरके बाहर चतुष्कोण (मूलाधार)-में,

स स्वेच्छया शिवः साक्षाद्देव्या सार्धं स्थितः प्रभुः।
सन्तारणार्थं च शिवः सदसद्व्यक्तिवर्जितः॥ ३६

षडस्र (स्वाधिष्ठान)-में, दस अरों (मूर्धा)-में, बारह अरों (हृदय)-में, सोलह अरों (कण्ठ)-में तथा तीन अरों (भ्रूमध्य)-में उनकी पूजा करते हैं॥ ३४-३५॥

सत्-असत्से रहित अर्थात् विलक्षण वे प्रभु शिव जगत्के उद्धारके लिये अपनी इच्छासे साक्षात् देवीके साथ स्थित हैं॥ ३६॥

तमेकमाहुर्द्विगुणं च केचित्
केचित्तमाहुस्त्रिगुणात्मकं च।
ऊचुस्तथा तं च शिवं तथान्ये
संसारिणं वेदविदो वदन्ति॥ ३७

कुछ लोग उन अद्वितीय शिवको द्विगुण (प्रकृति-पुरुषरूप) कहते हैं, कुछ लोग त्रिगुणात्मक (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप) कहते हैं और अन्य वेदज्ञ लोग उन्हें संसारका कारण बताते हैं॥ ३७॥

भक्त्या च योगेन शुभेन युक्ता
विप्राः सदा धर्मरता विशिष्टाः।
यजन्ति योगेशमशेषमूर्तिं
षडस्रमध्ये भगवन्तमेव॥ ३८

भक्ति तथा शुभ योगसे समन्वित, धर्मपरायण तथा विशिष्ट ब्राह्मण [उन] योगेश्वर, अशेषमूर्ति भगवान्का पूजन षडस्रमें करते हैं॥ ३८॥

ये तत्र पश्यन्ति शिवं त्रिरस्रे
त्रितत्त्वमध्ये त्रिगुणं त्रियक्षम्।
ते यान्ति चैनं न च योगिनोऽन्ये
तया च देव्या पुरुषं पुराणम्॥ ३९

जो लोग त्रिरस्र (भ्रूमध्य)-में, तीन तत्त्वोंके मध्यमें त्रिगुण तथा त्रिनेत्र शिवका दर्शन करते हैं, वे ही उन देवीके साथ इन पुरातन पुरुष [शिव]-को प्राप्त करते हैं; अन्य योगी नहीं॥ ३९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवाद्वैतकथनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवाद्वैतकथन' नामक पचहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

विविध शिवस्वरूपोंकी प्रतिष्ठा एवं उपासनाका फल

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वेच्छाविग्रहसम्भवम्।
प्रतिष्ठायाः फलं सर्वं सर्वलोकहिताय वै॥ १

सूतजी बोले—[हे विप्रो!] इसके आगे मैं सभी लोकोंके कल्याणके लिये अपनी इच्छासे उनके विग्रहकी उत्पत्ति तथा [मूर्ति] प्रतिष्ठाके सम्पूर्ण फलका वर्णन करूँगा॥ १॥

स्कन्दोमासहितं देवमासीनं परमासने।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २

स्कन्द (कार्तिकेय) तथा उमासहित महादेवकी मूर्ति बनाकर उन्हें उत्तम आसनपर विराजमान करके भक्तिपूर्वक [उस मूर्तिकी] प्रतिष्ठाकर सभी कामनाओंको प्राप्त करना चाहिये॥ २॥

स्कन्दोमासहितं देवं सम्पूज्य विधिना सकृत्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि यथाश्रुतम्॥ ३

कार्तिकेय तथा उमासहित शिवकी विधिपूर्वक एक बार भी पूजा करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, उसे जैसा मैंने सुना है; वैसा बताता हूँ॥ ३॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः।
रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयनाट्यसमन्वितैः ॥ ४

शिववत्क्रीडते योगी यावदाभूतसम्प्लवम्।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः ॥ ५

औमं कौमारमैशानं वैष्णवं ब्राह्ममेव च।
प्राजापत्यं महातेजा जनलोकं महस्तथा ॥ ६

ऐन्द्रमासाद्य चैन्द्रत्वं कृत्वा वर्षायुतं पुनः।
भुक्त्वा चैव भुवर्लोके भोगान् दिव्यान् सुशोभनान् ॥ ७

मेरुमासाद्य देवानां भवनेषु प्रमोदते।
एकपादं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं शूलसंयुतम् ॥ ८

सृष्ट्वा स्थितं हरिं वामे दक्षिणे चतुराननम्।
अष्टाविंशतिरुद्राणां कोटिः सर्वाङ्गसुप्रभम् ॥ ९

पञ्चविंशतिकं साक्षात्पुरुषं हृदयात्तथा।
प्रकृतिं वामतश्चैव बुद्धिं वै बुद्धिदेशतः ॥ १०

अहङ्कारमहङ्कारात्तन्मात्राणि तु तत्र वै।
इन्द्रियाणीन्द्रियादेव लीलया परमेश्वरम् ॥ ११

पृथिवीं पादमूलात्तु गुह्यदेशाज्जलं तथा।
नाभिदेशात्तथा वह्निं हृदयाद्भास्करं तथा ॥ १२

कण्ठात्सोमं तथात्मानं भ्रूमध्यान्मस्तकाद्दिवम्।
सृष्ट्वैवं संस्थितं साक्षाज्जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १३

सर्वज्ञं सर्वगं देवं कृत्वा विद्याविधानतः।
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १४

त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृङ्गं द्विशीर्षकम्।
कृत्वा यज्ञेशमीशानं विष्णुलोके महीयते ॥ १५

तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पलक्षं सुखी नरः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् सर्वयज्ञान्तगो भवेत् ॥ १६

वह योगी करोड़ों सूर्योंके समान तेजवाले, सभी अभीष्ट वस्तुओंसे सम्पन्न, रुद्रकन्याओंसे युक्त, गान-नृत्य आदिसे परिपूर्ण विमानोंमें [भगवान्] शिवकी भाँति प्रलयपर्यन्त विहार करता है। वहाँ महान् सुखोंका उपभोग करके वह महातेजस्वी [योगी] सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंसे [क्रमशः] उमालोक, कुमारलोक, ईशानलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक, प्रजापतिलोक, जनलोक तथा महर्लोक पहुँच जाता है; पुनः इन्द्रलोकमें पहुँचकर वहाँ दस हजार वर्षोंतक इन्द्रपदका भोग करनेके अनन्तर भुवर्लोकमें दिव्य तथा परम सुन्दर सुखोंको भोगकर मेरु पर्वतपर पहुँचकर देवताओंके भवनोंमें आनन्द प्राप्त करता है ॥ ४—७$^{1}/_{2}$ ॥

जो एक पैर, चार भुजाओं, तीन नेत्रों तथा त्रिशूलसे युक्त हैं; जो अपने वाम भागसे विष्णु तथा दक्षिण भागसे ब्रह्माको उत्पन्न करके विराजमान हैं; जिनसे अट्ठाईस करोड़ रुद्र उत्पन्न हुए हैं; जो सभी अंगोंसे अत्यन्त प्रभावाले तथा पचीस तत्त्वोंवाले जीवात्मा साक्षात् पुरुषको हृदयसे, अपने बायें भागसे प्रकृतिको, बुद्धिदेशसे बुद्धिको, अपने अहंकारसे अहंकारको, तन्मात्राओंसे तन्मात्राओंको, अपनी इन्द्रियोंसे लीलापूर्वक इन्द्रियोंको, पैरके मूलभागसे पृथ्वीको, गुह्यदेशसे जलको, नाभिस्थलसे अग्निको, हृदयदेशसे सूर्यको, कण्ठसे चन्द्रमाको, भौहोंके मध्यभागसे आत्मा (रुद्र)-को, मस्तकसे स्वर्गको—इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके साक्षात् विराजमान हैं, उन सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी परमेश्वरकी मूर्तिको विद्याविधानके अनुसार बनाकर विधिपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त करता है ॥ ८—१४ ॥

तीन पैरोंवाले, सात हाथोंवाले, चार शृंगोंवाले तथा दो सिरोंवाले यज्ञेश्वर अग्निस्वरूप ईशानको स्थापित करके मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ एक लाख कल्पतक महान् भोगोंको भोगकर मनुष्य सुखी रहता है और [पुनः] क्रमसे इस लोकमें आकर समस्त यज्ञोंको सम्पन्न करता है ॥ १५-१६ ॥

वृषारूढं तु यः कुर्यात्सोमं सोमार्धभूषणम्।
हयमेधायुतं कृत्वा यत्पुण्यं तदवाप्य सः॥ १७
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं तत्रैव स विमुच्यते॥ १८
नन्दिना सहितं देवं साम्बं सर्वगणैर्वृतम्।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति वक्ष्ये तद्वै यथाश्रुतम्॥ १९
सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैर्वृषसंयुतैः।
अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः॥ २०
नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैः सर्वतः सर्वशोभितैः।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २१
नृत्यन्तं देवदेवेशं शैलजासहितं प्रभुम्।
सहस्रबाहुं सर्वज्ञं चतुर्बाहुमथापि वा॥ २२
भृग्वाद्यैर्भूतसङ्घैश्च संवृतं परमेश्वरम्।
शैलजासहितं साक्षाद् वृषभध्वजमीश्वरम्॥ २३
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसोमाद्यैः सदा सर्वैर्नमस्कृतम्।
मातृभिर्मुनिभिश्चैव संवृतं परमेश्वरम्॥ २४
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य यत्फलं तद्वदाम्यहम्।
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थदेवेषु यत् फलम्॥ २५
तत्फलं कोटिगुणितं लब्ध्वा याति शिवं पदम्।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ २६
सृष्ट्यन्तरे पुनः प्राप्ते मानवं पदमाप्नुयात्।
नग्नं चतुर्भुजं श्वेतं त्रिनेत्रं सर्पमेखलम्॥ २७
कपालहस्तं देवेशं कृष्णकुञ्चितमूर्धजम्।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ २८
इभेन्द्रदारकं देवं साम्बं सिद्धार्थदं प्रभुम्।
सुधूम्रवर्णं रक्ताक्षं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्॥ २९
काकपक्षधरं मूर्ध्ना नागटङ्कधरं हरम्।
सिंहाजिनोत्तरीयं च मृगचर्माम्बरं प्रभुम्॥ ३०

जो मनुष्य उमासहित वृषपर आरूढ़ अर्धचन्द्रधारी शिवकी मूर्तिको स्थापित करता है, वह दस हजार अश्वमेध यज्ञोंको करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्तकर किंकिणीजालोंसे युक्त स्वर्ण-विमानसे दिव्य शिवलोकमें जाकर वहींपर मुक्त हो जाता है॥ १७-१८॥

नन्दी तथा उमासहित और सभी गणोंसे घिरे हुए महादेवकी प्रतिष्ठा करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, जैसा मैंने सुना है, उसे बता रहा हूँ। वह सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान वृषभोंसे जुते हुए, अप्सराओंसे भरे हुए, देव-दानवोंके लिये दुर्लभ और नृत्य करती हुई अप्सराओंसे चारों ओरसे पूर्णतः सुशोभित विमानोंसे दिव्य शिवलोकमें जाकर गणाधिपति पदको प्राप्त करता है॥ १९—२१॥

पार्वतीसहित नृत्य करते हुए, हजार भुजाओंवाले अथवा चार भुजाओंवाले, भृगु आदि तथा भूतसमूहोंसे घिरे हुए, पार्वतीके साथ, ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्र आदि सभी देवताओंसे सदा नमस्कृत और मातृकाओं तथा मुनियोंसे घिरे हुए देवदेवेश्वर-प्रभु-सर्वज्ञ-परमेश्वर-वृषभध्वज शिवकी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करके [मनुष्य] जो फल प्राप्त करता है, उसे मैं बताता हूँ—सभी यज्ञ, तप, दान, तीर्थ तथा देवदर्शन करनेमें जो फल होता है, उसका करोड़ों गुना फल प्राप्त करके वह शिवलोकको जाता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त महान् सुखोंको भोगकर पुनः दूसरी सृष्टिका प्रारम्भ होनेपर मनु-पद प्राप्त करता है॥ २२—२६ १/२॥

दिगम्बर, चार भुजाओंवाले, श्वेतवर्णवाले, तीन नेत्रोंवाले, सर्पकी मेखलावाले, हाथमें कपाल धारण किये हुए और काले तथा घुँघराले केशवाले देवेश्वरको [मूर्तिरूपमें] बनाकर भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा करके मनुष्य शिव-सायुज्य प्राप्त करता है॥ २७-२८॥

गजासुरको विदीर्ण करनेवाले, उमासहित, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कृष्ण वर्णवाले, लाल नेत्रोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, सिरपर काकपक्ष धारण करनेवाले,

तीक्ष्णदंष्ट्रं गदाहस्तं कपालोद्यतपाणिनम्।
हुंफट्कारे महाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखम्॥ ३१

पुण्डरीकाजिनं दोर्भ्यां बिभ्रन्तं कम्बुकं तथा।
हसन्तं च नदन्तं च पिबन्तं कृष्णसागरम्॥ ३२

नृत्यन्तं भूतसङ्घैश्च गणसङ्घैस्स्वलङ्कृतम्।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य यथाविभवविस्तरम्॥ ३३

सर्वविघ्नानतिक्रम्य शिवलोके महीयते।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ३४

ज्ञानं विचारतो लब्ध्वा रुद्रेभ्यस्तत्र मुच्यते।
अर्धनारीश्वरं देवं चतुर्भुजमनुत्तमम्॥ ३५

वरदाभयहस्तं च शूलपद्मधरं प्रभुम्।
स्त्रीपुम्भावेन संस्थानं सर्वाभरणभूषितम्॥ ३६

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोके महीयते।
तत्र भुक्त्वा महाभोगानणिमादिगुणैर्युतः॥ ३७

आचन्द्रतारकं ज्ञानं ततो लब्ध्वा विमुच्यते।
यः कुर्याद्देवदेवेशं सर्वज्ञं लकुलीश्वरम्॥ ३८

वृतं शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्यानोद्यतपाणिनम्।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोकं स गच्छति॥ ३९

भुक्त्वा तु विपुलांस्तत्र भोगान् युगशतं नरः।
ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव च विमुच्यते॥ ४०

पूर्वदेवामराणां च यत्स्थानं सकलेप्सितम्।
कृतमुद्रस्य देवस्य चिताभस्मानुलेपिनः॥ ४१

त्रिपुण्ड्रधारिणस्तेषां शिरोमालाधरस्य च।
ब्रह्मणः केशकेनैकमुपवीतं च बिभ्रतः॥ ४२

बिभ्रतो वामहस्तेन कपालं ब्रह्मणो वरम्।
विष्णोः कलेवरं चैव बिभ्रतः परमेष्ठिनः॥ ४३

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य मुच्यते भवसागरात्।
ओं नमो नीलकण्ठाय इति पुण्याक्षराष्टकम्॥ ४४

नागटंक धारण करनेवाले, व्याघ्रचर्मको उत्तरीयके रूपमें लपेटे हुए, मृगचर्मको वस्त्ररूपमें धारण किये हुए, तीक्ष्ण दाँतोंवाले, हाथमें गदा लिये हुए, हाथमें कपाल लिये हुए, हुं-फट् महाशब्दसे सभी दिशाओंको गुंजित करते हुए, दोनों हाथोंमें व्याघ्रचर्म तथा कमण्डलु धारण किये हुए, हँसते हुए, गरजते हुए, काले समुद्रको पीते हुए, भूतसमूहोंके साथ नृत्य करते हुए और गणसमुदायोंसे सुशोभित होते हुए देवेश्वर प्रभु शिवको [मूर्तिरूपमें] अपने सामर्थ्यके अनुसार बनाकर तथा प्रतिष्ठा करके [मनुष्य] सभी विघ्नोंसे रहित होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त महान् सुखोंको भोगकर रुद्रोंसे विचारपूर्वक ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जाता है॥ २९—३४ $^1/_2$ ॥

अर्धनारीश्वर, चार भुजाओंवाले, वर तथा अभय मुद्रायुक्त हाथवाले, त्रिशूल तथा पद्म धारण किये हुए, स्त्री तथा पुरुष भावमें स्थित और समस्त आभूषणोंसे सुशोभित अत्युत्तम प्रभु महादेवको [मूर्तिरूपमें] बनाकर भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठा करके वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँ चन्द्रमा तथा तारोंकी स्थितिपर्यन्त महान् सुखोंको भोगकर अणिमा आदि गुणोंसे युक्त होकर ज्ञान प्राप्त करके वह मुक्त हो जाता है॥ ३५—३७ $^1/_2$ ॥

जो [मनुष्य] शिष्य-प्रशिष्योंसे घिरे हुए, उपदेशकी मुद्रामें उठे हुए हाथवाले, देवदेवेश तथा सर्वज्ञ लकुलीश्वरको [मूर्तिरूपमें] बनाकर और पुनः भक्तिपूर्वक उन्हें स्थापित करके शिवलोकको जाता है। वह मनुष्य सौ युगोंतक वहाँ महान् सुखोंको भोगकर [पुनः] ज्ञानयोग प्राप्त करके वहींपर मुक्त हो जाता है, जो पूर्वदेवों तथा अमरोंका सर्वाभीष्ट स्थान है॥ ३८—४० $^1/_2$ ॥

ध्यानमुद्रामें स्थित, चिताकी भस्म लगाये हुए, त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए, मुण्डमाला धारण किये हुए, ब्रह्माके केशसे निर्मित एक यज्ञोपवीत धारण किये हुए, बाएँ हाथमें ब्रह्माका श्रेष्ठ कपाल धारण किये हुए और भगवान् विष्णुका शरीर धारण किये हुए महादेव शिवकी मूर्ति बनाकर तथा भक्तिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करके मनुष्य भवसागरसे पार हो

मन्त्रमाह सकृद्वा यः पातकैः स विमुच्यते।
मन्त्रेणानेन गन्धाद्यैर्भक्त्या वित्तानुसारतः॥ ४५
सम्पूज्य देवदेवेशं शिवलोके महीयते।
जालन्धरान्तकं देवं सुदर्शनधरं प्रभुम्॥ ४६
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य द्विधाभूतं जलन्धरम्।
प्रयाति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥ ४७
सुदर्शनप्रदं देवं साक्षात्पूर्वोक्तलक्षणम्।

अर्चमानेन देवेन चार्चितं नेत्रपूजया॥ ४८
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोके महीयते।
तिष्ठतोऽथ निकुम्भस्य पृष्ठतश्चरणाम्बुजम्॥ ४९
वामेतरं सुविन्यस्य वामे चालिङ्ग्य चाद्रिजाम्।
शूलाग्रे कूर्परं स्थाप्य किङ्किणीकृतपन्नगम्॥ ५०
सम्प्रेक्ष्य चान्धकं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं स्थितम्।
रूपं कृत्वा यथान्यायं शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५१
यः कुर्याद्देवदेवेशं त्रिपुरान्तकमीश्वरम्।
धनुर्बाणसमायुक्तं सोमं सोमार्धभूषणम्॥ ५२
रथे सुसंस्थितं देवं चतुराननसारथिम्।
तदाकारतया सोऽपि गत्वा शिवपुरं सुखी॥ ५३
क्रीडते नात्र सन्देहो द्वितीय इव शङ्करः।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदिच्छा द्विजोत्तमाः॥ ५४
ज्ञानं विचारितं लब्ध्वा तत्रैव स विमुच्यते।
गङ्गाधरं सुखासीनं चन्द्रशेखरमेव च॥ ५५

जाता है। जो एक बार भी **'ओम् नमो नीलकण्ठाय'**—इस पुण्यदायक अष्टाक्षर मन्त्रका उच्चारण करता है, वह पापोंसे छूट जाता है; और अपने सामर्थ्यके अनुसार गन्ध आदि [उपचारों]-से इस मन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक देवदेवेश्वरकी विधिवत् पूजा करके शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४१—४५½॥

सुदर्शन चक्र धारण किये हुए तथा जलन्धरको दो टुकड़ोंमें किये हुए स्वरूपमें जलन्धर-विनाशक प्रभु महादेवको [मूर्तिरूपमें] बनाकर भक्तिपूर्वक [उनकी] प्रतिष्ठा करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। पूर्वकथित लक्षणोंवाले, सुदर्शन चक्रके दाता तथा पूज्यमान विष्णुके द्वारा नेत्रदानरूपी पूजासे अर्चित देवेश्वरको [मूर्तिरूपमें] बनाकर तथा भक्तिपूर्वक उन्हें स्थापित करके मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ४६—४८½॥

निकुम्भकी पीठपर स्थित, [अपना] दाहिना चरणकमल उसकी पीठपर टिकाये हुए, वामभागमें पार्वतीको बैठाये हुए, सर्परूपी किंकिणीसे वेष्टित कुहनीको [अपने] त्रिशूलके अग्रभागपर टिकाये हुए और पासमें हाथ जोड़कर खड़े अन्धकको ओर देखते हुए स्वरूप (मूर्ति)-को विधिके अनुसार बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करनेसे मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ ४९—५१॥

जो [भक्त] त्रिपुरका विनाश करनेवाले देवदेवेश ईश्वरको इस स्वरूपमें स्थापित करता है—जिसमें वे धनुषबाण लिये हुए हों, अर्धचन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण किये हुए हों, उमाके साथ रथपर बैठे हुए हों, ब्रह्माजी [उनके] सारथि हों; वह भी उसी स्वरूपसे शिवलोकमें जाकर आनन्दपूर्वक दूसरे शिवकी भाँति क्रीड़ा करता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार महान् सुखोंको भोगकर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके वह वहींपर मुक्त हो जाता है॥ ५२—५४½॥

गंगाको धारण किये हुए; सुखसे बैठे हुए;

गङ्गया सहितं चैव वामोत्सङ्गेऽम्बिकान्वितम्।
विनायकं तथा स्कन्दं ज्येष्ठं दुर्गां सुशोभनाम्॥ ५६

भास्करं च तथा सोमं ब्रह्माणीं च महेश्वरीम्।
कौमारीं वैष्णवीं देवीं वाराहीं वरदां तथा॥ ५७

इन्द्राणीं चैव चामुण्डां वीरभद्रसमन्वितम्।
विघ्नेशेन च यो धीमान् शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५८

चन्द्रमाको सिरपर धारण किये हुए; गंगासहित; बाएँ गोदमें पार्वतीको बैठाये हुए और विनायक, ज्येष्ठ कार्तिकेय, सुन्दरी दुर्गा, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवीदेवी, वरदायिनी वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, वीरभद्र तथा विघ्नेशसहित शिवको [मूर्तिरूपमें] जो बुद्धिमान् स्थापित करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ ५५—५८॥

लिङ्गमूर्तिं महाज्वालामालासंवृतमव्ययम्।
लिङ्गस्य मध्ये वै कृत्वा चन्द्रशेखरमीश्वरम्॥ ५९

व्योम्नि कुर्यात्तथा लिङ्गं ब्रह्माणं हंसरूपिणम्।
विष्णुं वराहरूपेण लिङ्गस्याधस्त्वधोमुखम्॥ ६०

ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य कृताञ्जलिपुटं स्थितम्।
मध्ये लिङ्गं महाघोरं महाम्भसि च संस्थितम्॥ ६१

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
क्षेत्रसंरक्षकं देवं तथा पाशुपतं प्रभुम्॥ ६२

कृत्वा भक्त्या यथान्यायं शिवलोके महीयते॥ ६३

ऐसी मूर्ति जिसमें अव्यय शिवजी लिङ्गके रूपमें हों, बड़ी-बड़ी ज्वालाओंके समूहोंसे घिरे हुए हों, लिङ्गके मध्यमें चन्द्रमाको धारण किये हुए स्थित हों, हंसरूपधारी ब्रह्मा उनके दाहिने भागमें हाथ जोड़े हुए विराजमान हों, वाराहरूपधारी विष्णु नीचेकी ओर मुख किये हुए लिङ्गके अधोभागमें स्थित हों, अघोर महान् लिङ्ग अत्यधिक जलके मध्यमें स्थित हो—उसे बनाकर तथा भक्तिपूर्वक स्थापित करके भक्त शिवसायुज्य प्राप्त करता है। क्षेत्रकी रक्षा करनेवाले क्षेत्रपाल तथा प्रभु पशुपति शिवको [मूर्तिरूपमें] बनाकर भक्तिपूर्वक विधानके अनुसार उनको स्थापित करके भक्त शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ५९—६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवमूर्तिप्रतिष्ठाफलकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवमूर्तिप्रतिष्ठाफलकथन' नामक छिहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

शिवमन्दिरोंके निर्माणका फल, शिवक्षेत्रों तथा शिवतीर्थोंके सेवनकी महिमा, शिवमन्दिरके उपलेपन आदिका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

लिङ्गप्रतिष्ठापुण्यं च लिङ्गस्थापनमेव च।
लिङ्गानां चैव भेदाश्च श्रुतं तव मुखादिह॥ १

मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं वक्तुमर्हसि॥ २

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] हमलोगोंने आपके मुखसे लिङ्गकी स्थापना, लिङ्गप्रतिष्ठाके फल तथा लिङ्गोंके भेदोंको सुना; अब आप मिट्टीसे लेकर रत्नोंतक द्रव्योंसे शिवालयका निर्माण करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, उस फलको कृपापूर्वक बतायें॥ १-२॥

सूत उवाच

यस्य भक्तोऽपि लोकेऽस्मिन् पुत्रदारगृहादिभिः।
बाध्यते ज्ञानयुक्तश्चेन्न च तस्य गृहैस्तु किम्॥ ३

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] जिन शिवका ज्ञानसम्पन्न भक्त इस लोकमें पुत्र, स्त्री, घर आदिसे बन्धनको प्राप्त नहीं होता, उसे गृहोंसे क्या प्रयोजन?

तथापि भक्ताः परमेश्वरस्य
कृत्वेष्टलोष्टैरपि रुद्रलोकम्।
प्रयान्ति दिव्यं हि विमानवर्यं
सुरेन्द्रपद्मोद्भववन्दितस्य ॥ ४

बाल्यात्तु लोष्टेन शिवं च कृत्वा
मृदापि वा पांसुभिरादिदेवम्।
गृहं च तादृग्विधमस्य शम्भोः
सम्पूज्य रुद्रत्वमवाप्नुवन्ति॥ ५

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्या भक्तैः शिवालयम्।
कर्तव्यं सर्वयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥ ६

केशरं नागरं वापि द्राविडं वा तथापरम्।
कृत्वा रुद्रालयं भक्त्या शिवलोके महीयते॥ ७

कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासादं परमेष्ठिनः।
कैलासशिखराकारैर्विमानैर्मोदते सुखी॥ ८

मन्दरं वा प्रकुर्वीत शिवाय विधिपूर्वकम्।
भक्त्या वित्तानुसारेण उत्तमाधममध्यमम्॥ ९

मन्दराद्रिप्रतीकाशैर्विमानैर्विश्वतोमुखैः।
अप्सरोगणसङ्कीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः॥ १०

गत्वा शिवपुरं रम्यं भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
ज्ञानयोगं समासाद्य गाणपत्यं लभेन्नरः॥ ११

यः कुर्यान्मेरुनामानं प्रासादं परमेष्ठिनः।
स यत्फलमवाप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः॥ १२

सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्।
तत्फलं सकलं लब्ध्वा शिववन्मोदते चिरम्॥ १३

निषधं नाम यः कुर्यात्प्रासादं भक्तितः सुधीः।
शिवलोकमनुप्राप्य शिववन्मोदते चिरम्॥ १४

कुर्याद्वा यः शुभं विप्रा हिमशैलमनुत्तमम्।
हिमशैलोपमैर्यानैर्गत्वा शिवपुरं शुभम्॥ १५

फिर भी इन्द्र तथा ब्रह्माके द्वारा नमस्कृत परमेश्वरके भक्त ईंटों अथवा पत्थरोंसे उनका उत्तम मन्दिर बनवाकर दिव्य रुद्रलोकको जाते हैं॥ ३-४॥

बालभावसे भी पत्थर, मिट्टी अथवा धूलसे इन शम्भुका उस प्रकारका आलय (मन्दिर) बनाकर आदिदेव शिवका विधिपूर्वक पूजन करके वे रुद्रत्व प्राप्त करते हैं॥ ५॥

अतः भक्तोंको धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धिके लिये पूर्ण प्रयत्नसे भक्तिपूर्वक शिवालयका निर्माण करना चाहिये॥ ६॥

केसर, नागर, द्राविड़ अथवा अन्य प्रकारका शिवालय भक्तिपूर्वक बनाकर भक्त शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७॥

जो [भक्त] कैलास नामक शिवालयका निर्माण करता है, वह कैलासशिखरके आकारवाले विमानोंमें सुखपूर्वक आनन्द मनाता है॥ ८॥

जो मनुष्य शिवके लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार भक्तिके साथ विधिपूर्वक उत्तम, मध्यम अथवा अधम [श्रेणीका] मन्दरनामक शिवालय बनाता है, वह मन्दरपर्वतके सदृश, सभी ओर मुखवाले, अप्सराओंसे युक्त तथा देवदानवोंके लिये दुर्लभ विमानोंसे रम्य शिवलोकमें जाकर अभीष्ट सुखोंका उपभोग करके ज्ञानयोग प्राप्तकर गणाधिपति पद प्राप्त करता है॥ ९—११॥

जो मेरु नामक शिवालय बनाता है, वह जो फल प्राप्त करता है, वह फल सभी महायज्ञोंके द्वारा भी सम्भव नहीं है; सभी प्रकारके यज्ञ, तप, दान, तीर्थ तथा वेदाध्ययन करनेसे जो फल होता है, उस समस्त फलको प्राप्त करके वह [मनुष्य] शिवकी भाँति चिरकालतक आनन्दित रहता है॥ १२-१३॥

जो बुद्धिमान् [मनुष्य] भक्तिपूर्वक निषध नामक शिवालय बनाता है, वह शिवलोक प्राप्त करके शिवके समान चिरकालतक आनन्दित रहता है॥ १४॥

हे विप्रो! जो [मनुष्य] हिमशैल नामक अत्युत्तम शुभ शिवालय बनाता है, वह हिमशैलके समान

ज्ञानयोगं समासाद्य गाणपत्यमवाप्नुयात्।
नीलाद्रिशिखराख्यं वा प्रासादं यः सुशोभनम्॥ १६

कृत्वा वित्तानुसारेण भक्त्या रुद्राय शम्भवे।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं प्रवदाम्यहम्॥ १७

हिमशैले कृते भक्त्या यत्फलं प्राक्तवोदितम्।
तत्फलं सकलं लब्ध्वा सर्वदेवनमस्कृतः॥ १८

रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते।
महेन्द्रशैलनामानं प्रासादं रुद्रसम्मतम्॥ १९

कृत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं प्रवदाम्यहम्।
महेन्द्रपर्वताकारैर्विमानैर्वृषसंयुतैः ॥ २०

गत्वा शिवपुरं दिव्यं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्।
ज्ञानं विचारितं रुद्रैः सम्प्राप्य मुनिपुङ्गवाः॥ २१

विषयान् विषवत्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
हेम्ना यस्तु प्रकुर्वीत प्रासादं रत्नशोभितम्॥ २२

द्राविडं नागरं वापि केसरं वा विधानतः।
कूटं वा मण्डपं वापि समं वा दीर्घमेव च॥ २३

न तस्य शक्यते वक्तुं पुण्यं शतयुगैरपि।
जीर्णं वा पतितं वापि खण्डितं स्फुटितं तथा॥ २४

पूर्ववत्कारयेद्यस्तु द्वाराद्यैः सुशुभं द्विजाः।
प्रासादं मण्डपं वापि प्राकारं गोपुरं तु वा॥ २५

कर्तुरप्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म शिवालये॥ २६

यः स याति न सन्देहः स्वर्गलोकं सबान्धवः।
यश्चात्मभोगसिद्ध्यर्थमपि रुद्रालये सकृत्॥ २७

कर्म कुर्याद्यदि सुखं लब्ध्वा चापि प्रमोदते।
तस्मादायतनं भक्त्या यः कुर्यान्मुनिसत्तमाः॥ २८

काष्ठेष्टकादिभिर्मर्त्यः शिवलोके महीयते।
प्रसादार्थं महेशस्य प्रासादो मुनिपुङ्गवाः॥ २९

विमानोंसे दिव्य शिवलोक पहुँचकर ज्ञानयोग प्राप्त करके गणाधिपति पद प्राप्त करता है॥ १५½॥

जो मनुष्य अपने सामर्थ्यके अनुसार रुद्र शिवके लिये भक्तिपूर्वक नीलाद्रिशिखर नामक परम सुन्दर शिवालय बनाता है, वह जो फल प्राप्त करता है, उसे मैं बता रहा हूँ। भक्तिपूर्वक हिमशैल [नामक शिवालय]-का निर्माण करनेपर जो फल पहले बताया गया है, उस सम्पूर्ण फलको प्राप्त करके वह सभी देवताओंसे नमस्कृत होता हुआ रुद्रलोक प्राप्त करके रुद्रोंके साथ आनन्द मनाता है॥ १६—१८½॥

रुद्रका अत्यन्त प्रिय महेन्द्रशैल नामक शिवालय बनाकर मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, उस फलको मैं बता रहा हूँ—हे मुनिश्रेष्ठो! वह [मनुष्य] महेन्द्रपर्वतके आकारवाले तथा वृषभोंसे जुते हुए विमानोंसे दिव्य शिवलोकमें जाकर [वहाँ] यथेष्ट सुखोंको भोगकर रुद्रोंसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके विषयोंको विषकी भाँति त्यागकर शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ १९—२१½॥

जो [मनुष्य] रत्नजटित सोनेका द्राविड़, नागर अथवा केसर कोटिका शिवालय विधानपूर्वक बनवाता है अथवा सम अथवा दीर्घ शिखर (चोटी) या मण्डप बनवाता है, उसके पुण्यका वर्णन सैकड़ों युगोंमें भी नहीं किया जा सकता है। हे द्विजो! जो [मनुष्य] जीर्ण (पुराने), गिरे हुए, टूटे हुए अथवा फूटे हुए शिवालय, उसके मण्डप, चहारदीवारी, फाटक अथवा द्वार आदिको पूर्वकी भाँति अत्यन्त सुन्दर करा देता है; वह [वास्तविक] निर्मातासे भी अधिक पुण्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २२—२५½॥

जो मनुष्य आजीविकाके लिये शिवालयमें कार्य करता है, वह [अपने] बान्धवोंसहित स्वर्गलोक जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। जो अपने सुखकी सिद्धिके लिये शिवालयमें एक बार भी [कुछ] कार्य कर देता है, वह सुख प्राप्त करके प्रसन्न रहता है॥ २६-२७½॥

अतः हे उत्तम मुनियो! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक काष्ठ, पत्थर आदिसे शिवालय बनवाता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! महेशकी प्रसन्नताके

कर्तव्यः सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये।
अशक्तश्चेन्मुनिश्रेष्ठाः प्रासादं कर्तुमुत्तमम्॥ ३०

सम्मार्जनादिभिर्वापि सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
सम्मार्जनं तु यः कुर्यान्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया॥ ३१

चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते।
यः कुर्याद्वस्त्रपूतेन गन्धगोमयवारिणा॥ ३२

आलेपनं यथान्यायं वर्षचान्द्रायणं लभेत्।
अर्धक्रोशं शिवक्षेत्रं शिवलिङ्गात्समन्ततः॥ ३३

यस्त्यजेद्दुस्त्यजान् प्राणाञ्शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
स्वायम्भुवस्य मानं हि तथा बाणस्य सुव्रताः॥ ३४

स्वायम्भुवे तदर्धं स्यात्स्यादार्षे च तदर्धकम्।
मानुषे च तदर्धं स्यात्क्षेत्रमानं द्विजोत्तमाः॥ ३५

एवं यतीनामावासे क्षेत्रमानं द्विजोत्तमाः।
रुद्रावतारे चाद्यं यच्छिष्ये चैव प्रशिष्यके॥ ३६

नरावतारे तच्छिष्ये तच्छिष्ये च प्रशिष्यके।
श्रीपर्वते महापुण्ये तस्य प्रान्ते च वा द्विजाः॥ ३७

तस्मिन् वा यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।
वाराणस्यां तथाप्येवमविमुक्ते विशेषतः॥ ३८

केदारे च महाक्षेत्रे प्रयागे च विशेषतः।
कुरुक्षेत्रे च यः प्राणान् सन्त्यजेद्याति निर्वृतिम्॥ ३९

प्रभासे पुष्करेऽवन्त्यां तथा चैवामरेश्वरे।
वणीशेलाकुले चैव मृतो याति शिवात्मताम्॥ ४०

वाराणस्यां मृतो जन्तुर्न जातु जन्तुतां व्रजेत्।
त्रिविष्टपे विमुक्ते च केदारे सङ्गमेश्वरे॥ ४१

लिये तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके लिये पूर्ण प्रयत्नके साथ शिवालयका निर्माण करना चाहिये॥ २८-२९ $^{1}/_{2}$ ॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यदि कोई उत्तम शिवालय बनानेमें असमर्थ हो, तो वह [शिवालयमें] सम्मार्जन (बुहारना) आदिके द्वारा भी समस्त वांछित फलोंको प्राप्त कर लेता है। जो [व्यक्ति] कोमल तथा सूक्ष्म झाड़ूसे सफाई करता है, वह महीने भरमें हजार चान्द्रायण व्रतका फल प्राप्त करता है। जो [मनुष्य] पवित्र वस्त्रसे छने हुए गन्ध तथा गोमयके जलसे विधानके अनुसार आलेपन (लीपनेका कार्य) करता है, वह वर्षपर्यन्त चान्द्रायणव्रत करनेका फल प्राप्त करता है॥ ३०—३२ $^{1}/_{2}$ ॥

शिवलिङ्गके चारों ओर आधा कोशका क्षेत्र शिवक्षेत्र होता है। जो [अपने] दुस्त्यज प्राणोंको [इस क्षेत्रमें] छोड़ता है, वह शिव-सायुज्य प्राप्त करता है। हे सुव्रतो! यह [अर्धकोश] मान स्वयम्भू बाणलिङ्ग अर्थात् केवल ज्योतिर्लिङ्गका है। हे द्विजोत्तमो! अन्य स्वयम्भू लिङ्गके लिये शिवक्षेत्रका मान उसका आधा (कोशका चतुर्थांश), ऋषिस्थापित लिङ्गके लिये उसका आधा (कोशका आठवाँ भाग) और मनुष्यके द्वारा स्थापित लिङ्गके लिये उसका भी आधा (कोशका सोलहवाँ) भाग होता है। हे द्विजोत्तमो! इसी प्रकार यतियोंके निवासस्थानसे कोशके सोलहवें भागका क्षेत्र शिवक्षेत्र है। रुद्रोंके अवतारस्थल, उनके शिष्यों-प्रशिष्योंके अवतारस्थल, योगाचार्योंके अवतारस्थल, उनके शिष्योंके अवतारस्थल तथा उनके भी शिष्य-प्रशिष्योंके अवतारस्थलसे आधे कोशका मण्डल शिवक्षेत्र होता है॥ ३३—३६ $^{1}/_{2}$ ॥

हे द्विजो! महापुण्यप्रद श्रीपर्वत तथा उसके प्रान्तभाग—इस शिवक्षेत्रमें जो प्राणोंका त्याग करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है। जो [मनुष्य] वाराणसीमें तथा विशेषकर वहाँ अविमुक्त क्षेत्रमें, केदारमें, विशेषकर महाक्षेत्र प्रयागमें तथा कुरुक्षेत्रमें प्राणत्याग करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। प्रभास, पुष्कर, अवन्ती, अमरेश्वर तथा वणीशेलाकुलमें मृत प्राणी शिवात्मताको प्राप्त होता है। वाराणसीमें मरनेवाला प्राणी पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता है। जो [प्राणी]

शालके वा त्यजेत्प्राणांस्तथा वै जम्बुकेश्वरे।
शुक्रेश्वरे वा गोकर्णे भास्करेशे गुहेश्वरे॥ ४२

हिरण्यगर्भे नन्दीशे स याति परमां गतिम्।
नियमैः शोष्य यो देहं त्यजेत्क्षेत्रे शिवस्य तु॥ ४३

स याति शिवतां योगी मानुषे दैविकेऽपि वा।
आर्षे वापि मुनिश्रेष्ठास्तथा स्वायम्भुवेऽपि वा॥ ४४

स्वयम्भूते तथा देवे नात्र कार्या विचारणा।
आधायाग्निं शिवक्षेत्रे सम्पूज्य परमेश्वरम्॥ ४५

स्वदेहपिण्डं जुहुयाद्यः स याति परां गतिम्।
यावत्तावन्निराहारो भूत्वा प्राणान् परित्यजेत्॥ ४६

शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
छित्त्वा पादद्वयं चापि शिवक्षेत्रे वसेत्तु यः॥ ४७

स याति शिवतां चैव नात्र कार्या विचारणा।
क्षेत्रस्य दर्शनं पुण्यं प्रवेशस्तच्छताधिकः॥ ४८

तस्माच्छतगुणं पुण्यं स्पर्शनं च प्रदक्षिणम्।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं जलस्नानमतः परम्॥ ४९

क्षीरस्नानं ततो विप्राः शताधिकमनुत्तमम्।
दध्ना सहस्रमाख्यातं मधुना तच्छताधिकम्॥ ५०

घृतस्नानेन चानन्तं शार्करे तच्छताधिकम्।
शिवक्षेत्रसमीपस्थां नदीं प्राप्यावगाह्य च॥ ५१

त्यजेद्देहं विहायान्नं शिवलोके महीयते।
शिवक्षेत्रसमीपस्था नद्यः सर्वाः सुशोभनाः॥ ५२

वापीकूपतडागाश्च शिवतीर्था इति स्मृताः।
स्नात्वा तेषु नरो भक्त्या तीर्थेषु द्विजसत्तमाः॥ ५३

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
प्रातः स्नात्वा मुनिश्रेष्ठाः शिवतीर्थेषु मानवः॥ ५४

त्रिविष्टप, विमुक्त, केदारक्षेत्र, संगमेश्वर, शालक, जम्बुकेश्वर, शुक्रेश्वर, गोकर्ण, भास्करेश, गुहेश्वर, हिरण्यगर्भ तथा नन्दीशक्षेत्रमें प्राण छोड़ता है, वह परम गति प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! [अपने] शरीरको नियमोंसे सुखाकर जो योगी मानुष (मानवस्थापित), दैविक (देवस्थापित), आर्ष (मुनि-स्थापित) या स्वयम्भू (स्वयं उत्पन्न) किसी भी शिवक्षेत्रमें प्राणत्याग करता है, वह शिवत्वको प्राप्त होता है। ज्योतिर्लिङ्ग-क्षेत्र तथा देवक्षेत्रके विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३७—४४१/२॥

शिवक्षेत्रमें भलीभाँति परमेश्वरकी पूजा करके आग जलाकर जो [प्राणी] अपने शरीरको उसमें होम कर देता है, वह परम गति प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! जो [मनुष्य] निराहार रहकर शिवक्षेत्रमें प्राणका त्याग करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है। जो [अपने] दोनों पैरोंको काटकर भी शिवक्षेत्रमें निवास करता है, वह शिवत्वको प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४५—४७१/२॥

शिवक्षेत्रका दर्शन पुण्यदायक होता है, वहाँपर प्रवेश करना उससे सौ गुना अधिक पुण्यदायक होता है और उसका स्पर्श तथा प्रदक्षिणा उससे भी सौ गुना पुण्यप्रद होता है। वहाँपर [मूर्तिको] जल-स्नान करानेसे उससे भी सौ गुना पुण्य होता है। हे विप्रो! दुग्धसे स्नान करानेसे उससे सौ गुना, दहीसे स्नान करानेसे उससे हजार गुना, मधुसे स्नान करानेसे उससे सौ गुना, घृतसे स्नान करानेसे उससे अनन्त गुना और शर्करासे स्नान करानेसे उससे भी सौ गुना अधिक पुण्य कहा गया है॥ ४८—५०१/२॥

शिवक्षेत्रके समीपमें स्थित [किसी] नदीपर जाकर उसमें स्नान करके और अन्नका त्याग करके जो [अपना] शरीर छोड़ता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। शिवक्षेत्रके समीपमें स्थित सभी सुन्दर नदियाँ, बावलियाँ, कुएँ तथा तालाब शिवतीर्थ कहे गये हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! उन तीर्थोंमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५१—५३१/२॥

अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति।
मध्याह्ने शिवतीर्थेषु स्नात्वा भक्त्या सकृन्नरः॥ ५५

गङ्गास्नानसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
अस्तं गते तथा चार्के स्नात्वा गच्छेच्छिवं पदम्॥ ५६

पापकञ्चुकमुत्सृज्य शिवतीर्थेषु मानवः।
द्विजास्त्रिषवणं स्नात्वा शिवतीर्थे सकृन्नरः॥ ५७

शिवसायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
पुराथ सूकरः कश्चित् श्वानं दृष्ट्वा भयात्पथि॥ ५८

प्रसङ्गाद्द्वारमेकं तु शिवतीर्थेऽवगाह्य च।
मृतः स्वयं द्विजश्रेष्ठा गाणपत्यमवाप्तवान्॥ ५९

हे श्रेष्ठ मुनियो! शिवतीर्थोंमें प्रातःकाल स्नान करके वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकको जाता है। मध्याह्नकालमें शिवतीर्थोंमें एक बार भी भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य गंगास्नानके समान पुण्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। सूर्यके अस्त हो जानेपर शिवतीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य पापकंचुक छोड़कर शिवपद प्राप्त करता है। हे द्विजो! शिवतीर्थोंमें एक बार भी त्रिस्रवण (तीनों कालोंमें) स्नान करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो! पूर्वकालमें कोई सुअर मार्गमें कुत्तेको देखकर डरके मारे संयोगवश शिवतीर्थमें गिर पड़ा और वह एक बार डुबकी लगाकर स्वयं मर गया; इससे उसने गणाधिपति पदको प्राप्त किया॥ ५४—५९॥

यः प्रातर्देवदेवेशं शिवं लिङ्गस्वरूपिणम्।
पश्येत्स याति सर्वस्मादधिकां गतिमेव च॥ ६०

मध्याह्ने च महादेवं दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत्।
सायाह्ने सर्वयज्ञानां फलं प्राप्य विमुच्यते॥ ६१

मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च महत्तरैः।
तथोपपातकैश्चैव पापैश्चैवानुपातकैः॥ ६२

सङ्क्रमे देवमीशानं दृष्ट्वा लिङ्गाकृतिं प्रभुम्।
मासेन यत्कृतं पापं त्यक्त्वा याति शिवं पदम्॥ ६३

अयने चार्धमासेन दक्षिणे चोत्तरायणे।
विषुवे चैव सम्पूज्य प्रयाति परमां गतिम्॥ ६४

जो प्रातःकाल लिङ्गस्वरूपी देवदेवेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह सबसे उच्च पद प्राप्त करता है; मध्याह्नमें महादेवका दर्शन करके वह यज्ञका फल प्राप्त करता है और सायंकाल दर्शन करके सभी यज्ञोंका फल प्राप्तकर मानसिक तथा वाचिक पापों, बड़े-से-बड़े शारीरिक पापों, उपपातकों और अनुपातकोंसे मुक्त हो जाता है। सूर्यकी सभी संक्रान्तियोंमें लिङ्गके आकारवाले महादेव प्रभु ईशानका दर्शन करके मनुष्य महीनेभरमें किये गये पापका त्याग करके शिवलोकको जाता है। दक्षिणायन (कर्कसंक्रान्ति) तथा उत्तरायण (मकरसंक्रान्ति) तथा विषुवत् (मेष-तुला)-संक्रान्तिमें अर्धमासपर्यन्त विधिवत् शिवकी पूजा करके मनुष्य परम गति प्राप्त करता है॥ ६०—६४॥

प्रदक्षिणात्रयं कुर्याद्यः प्रासादं समन्ततः।
सव्यापसव्यन्यायेन मृदुगत्या शुचिर्नरः॥ ६५

पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात्।
वाचा यस्तु शिवं नित्यं संरौति परमेश्वरम्॥ ६६

सोऽपि याति शिवं स्थानं प्राप्य किं पुनरेव च।
कृत्वा मण्डलकं क्षेत्रं गन्धगोमयवारिणा॥ ६७

पवित्रावस्थामें जो मनुष्य सव्य-अपसव्य-विधिसे अर्थात् सोमसूत्रका उल्लंघन किये बिना धीमी गतिसे चारों ओरसे शिवालयकी तीन प्रदक्षिणा करता है, वह प्रत्येक पदपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। जो [मनुष्य] वाणीसे नित्य परमेश्वर शिवका जप करता है, वह भी शिवलोकको जाता है; उसे पाकर [उसके लिये] फिर क्या शेष रह जाता है॥ ६५-६६ $^{1}/_{2}$॥

मुक्ताफलमयैश्चूर्णैरिन्द्रनीलमयैस्तथा।
पद्मरागमयैश्चैव स्फाटिकैश्च सुशोभनैः॥ ६८

तथा मारकतैश्चैव सौवर्णै राजतैस्तथा।
तद्वर्णैर्लौकिकैश्चैव चूर्णैर्वित्तविवर्जितैः॥ ६९

हे महाभागो! गन्ध तथा गोमय-मिश्रित जलसे मण्डलाकार क्षेत्र बनाकर उसमें मोती, इन्द्रनील, पद्मराग, स्फटिक, मरकत, स्वर्ण तथा रजत (चाँदी)-के अति सुन्दर चूर्णोंके द्वारा अथवा धनके अभावमें उसी वर्णके

आलिख्य कमलं भद्रं दशहस्तप्रमाणतः।
सकर्णिकं महाभागा महादेवसमीपतः॥ ७०

तत्रावाह्य महादेवं नवशक्तिसमन्वितम्।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिरष्टाभिश्चेष्टदं परम्॥ ७१

पुनरष्टाभिरीशानं दशारे दशभिस्तथा।
पुनर्बाह्ये च दशभिः सम्पूज्य प्रणिपत्य च॥ ७२

निवेद्य देवदेवाय क्षितिदानफलं लभेत्।
शालिपिष्टादिभिर्वापि पद्ममालिख्य निर्धनः॥ ७३

पूर्वोक्तमखिलं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
द्वादशारं तथालिख्य मण्डले पद्ममुत्तमम्॥ ७४

रत्नचूर्णादिभिश्चूर्णैस्तथा द्वादशमूर्तिभिः।
मण्डलस्य च मध्ये तु भास्करं स्थाप्य पूजयेत्॥ ७५

ग्रहैश्च संवृतं वापि सूर्यसायुज्यमुत्तमम्।
एवं प्राकृतमप्यार्यां षडस्त्रं परिकल्प्य च॥ ७६

मध्यदेशे च देवेशीं प्रकृतिं ब्रह्मरूपिणीम्।
दक्षिणे सत्त्वमूर्तिं च वामतश्च रजोगुणम्॥ ७७

अग्रतस्तु तमोमूर्तिं मध्ये देवीं तथाम्बिकाम्।
पञ्चभूतानि तन्मात्रापञ्चकं चैव दक्षिणे॥ ७८

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धीन्द्रियाणि च।
उत्तरे विधिवत्पूज्य षडस्त्रे चैव पूजयेत्॥ ७९

आत्मानं चान्तरात्मानं युगलं बुद्धिमेव च।
अहङ्कारं च महता सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ८०

एवं वः कथितं सर्वं प्राकृतं मण्डलं परम्।
अतो वक्ष्यामि विप्रेन्द्राः सर्वकामार्थसाधनम्॥ ८१

गोचर्ममात्रमालिख्य मण्डलं गोमयेन तु।
चतुरस्त्रं विधानेन चाद्भिरभ्युक्ष्य मन्त्रवित्॥ ८२

अलङ्कृत्य वितानाद्यैश्छत्रैर्वापि मनोरमैः।
बुद्बुदैरर्धचन्द्रैश्च हैमैरश्वत्थपत्रकैः॥ ८३

लौकिक चूर्णोंके द्वारा महादेवके समीप कर्णिकासहित दस हाथ परिमापका शुभ कमल बनाकर वहाँ पाँच, छः, आठ तथा नौ वाम आदि शक्तियोंके सहित परम इष्ट प्रदान करनेवाले महादेवका आवाहन करके पुनः आठ शक्तियोंसहित ईशानका आवाहन करके दस कोणोंमें दस शक्तियोंके सहित एवं उसके बाहर दस शक्तियोंके सहित शिवजीका पूजन करके तथा उन्हें प्रणाम करके देवदेवके लिये उसे निवेदित करनेसे पृथ्वीदानका फल प्राप्त होता है। निर्धन [भक्त] शालि चावलके चूर्ण आदिसे भी कमल बनाकर [पूजन करके] पूर्वोक्त समस्त पुण्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६७—७३१/२॥

मण्डलमें रत्नोंके चूर्ण आदिसे अथवा अन्य चूर्णोंसे बारह दलोंवाला उत्तम कमल बनाकर मण्डलके मध्यमें बारह मूर्तियोंके साथ सूर्यको स्थापित करके ग्रहोंसे घिरे हुए सूर्यकी पूजा करनी चाहिये; इससे वह [भक्त] उत्तम सूर्यसायुज्य प्राप्त करता है॥ ७४-७५१/२॥

इसी प्रकार प्राकृत मण्डल बनाकर उसमें छः दलोंवाला कमल बनाकर इसके मध्य भागमें आर्या ब्रह्मरूपिणी देवेशी प्रकृति, दाहिनी ओर सत्त्वमूर्ति, बायीं ओर रजोगुण, सामने तमोमूर्ति, मध्यमें देवी अम्बिका, दक्षिणमें पाँच भूतों तथा पाँच तन्मात्राओं और उत्तरमें पाँच कर्मेन्द्रियों तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियोंकी विधिवत् पूजा करके उस षट्दलकमलमें आत्मा-अन्तरात्मा इन दोनोंकी, बुद्धिकी तथा महत्सहित अहंकारकी पूजा करनी चाहिये; इससे वह समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। [हे मुनियो!] इस प्रकार मैंने आप लोगोंको सम्पूर्ण उत्तम प्राकृत मण्डल बता दिया॥ ७६—८०१/२॥

हे श्रेष्ठ विप्रो! अब मैं सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले साधनका वर्णन करूँगा। मन्त्रको जाननेवाला [भक्त] विधानपूर्वक गायके गोबरसे गोचर्म*के बराबर चौकोर मण्डल बनाकर जलसे अभ्युक्षण (छिड़काव) करके उसे वितान आदि अथवा मनोहर छत्रोंसे, स्वर्णनिर्मित अर्धचन्द्राकार बुद्बुदोंसे, सुवर्णमय पीपलकी पत्तियोंसे,

* जितने स्थानपर एक हजार गौएँ और दस बैल बिना बाँधे इधर-उधर स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण कर सकें, उतना स्थान गोचर्म कहलाता है—गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्। तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम्॥ (पराशरस्मृति १२।४६)

सितैर्विकसितैः पद्मै रक्तैर्नीलोत्पलैस्तथा।
मुक्तादामैर्वितानान्ते लम्बितैस्तु सितैर्ध्वजैः॥ ८४

सितमृत्पात्रकैश्चैव सुश्लक्ष्णैः पूर्णकुम्भकैः।
फलपल्लवमालाभिर्वैजयन्तीभिरंशुकैः ॥ ८५

पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैः पञ्चविधैस्तथा।
पञ्चाशद्दलसंयुक्तमालिखेत्पद्ममुत्तमम् ॥ ८६

तत्तद्वर्णैस्तथा चूर्णैः श्वेतचूर्णैरथापि वा।
एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः॥ ८७

कर्णिकायां न्यसेद्देवं देव्या देवेश्वरं भवम्।
वर्णानि च न्यसेत्पत्रे रुद्रैः प्रागाद्यनुक्रमात्॥ ८८

प्रणवादिनमोऽन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रताः।
सम्पूज्यैवं मुनिश्रेष्ठा गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ८९

ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम्।
अक्षमालोपवीतं च कुण्डलं च कमण्डलुम्॥ ९०

आसनं च तथा दण्डमुष्णीषं वस्त्रमेव च।
दत्त्वा तेषां मुनीन्द्राणां देवदेवाय शम्भवे॥ ९१

महाचरुं निवेद्यैवं कृष्णं गोमिथुनं तथा।
अन्ते च देवदेवाय दापयेच्चूर्णमण्डलम्॥ ९२

यागोपयोगद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत्।
ओङ्काराद्यं जपेद्धीमान् प्रतिवर्णमनुक्रमात्॥ ९३

खिले हुए श्वेत कमलों तथा लाल कमलों और नीलकमलोंसे, वितानके किनारे लटकती हुई मोतियोंकी मालाओंसे, श्वेत ध्वजोंसे, श्वेत मिट्टीके पात्रोंसे, मनोहर जलपूरित घड़ोंसे, फल-पल्लव-मालाओंसे, वैजयन्तियोंसे, अंशुकों (रेशमी वस्त्र)-से, पचास दीप मालाओंसे तथा पाँच प्रकारके [सुगन्धित] धूपोंसे अलंकृत करके पचास दलोंसे युक्त उत्तम कमल बनाये। इस प्रकार विविध रंगके चूर्णोंसे अथवा सफेद चूर्णोंसे विधानपूर्वक एक हाथ परिमापका कमल बनाकर [उसकी] कर्णिकामें देवीसहित देवेश्वर शिवकी स्थापना करे। हे सुव्रतो! [कमलके] पत्रोंमें पूर्व दिशा आदिके क्रमसे रुद्रोंके साथ [अकार आदि] वर्णोंको स्थापित करे, जो आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें नमः से युक्त हों। हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार [भक्त] क्रमसे गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन करके वहाँ विधिपूर्वक पचास ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जपमाला, यज्ञोपवीत, कुण्डल, कमण्डलु, आसन, छड़ी, पगड़ी तथा वस्त्र प्रदान करके देवदेव शम्भुको महाचरु निवेदित करके एक काली गाय तथा काला वृषभ प्रदान करे; अन्तमें चूर्णनिर्मित मण्डल तथा पूजनके उपयोगके द्रव्योंको देवदेव शिवको समर्पित कर दे और आदिमें 'ओम्' लगाकर बुद्धिमान् [भक्त] प्रत्येक वर्णको अनुक्रमसे जपे॥ ८१—९३॥

एवमालिख्य यो भक्त्या सर्वमण्डलमुत्तमम्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः॥ ९४

साङ्गान् वेदान् यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकम्।
इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात्॥ ९५

ततो विश्वजिदन्तैश्च पुत्रानुत्पाद्य तादृशान्।
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः साग्निरेव च॥ ९६

चान्द्रायणादिकाः सर्वाः कृत्वा न्यस्य क्रिया द्विजाः।
ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमासाद्य यत्नतः॥ ९७

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगी यत्काममाप्नुयात्।
तत्फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात्॥ ९८

[हे विप्रो!] इस प्रकार जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उत्तम सम्पूर्ण मण्डल बनाकर जिस फलको प्राप्त करता है, उसे मैं संक्षेपमें बता रहा हूँ। समुचित रूपसे विधिपूर्वक अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन करके विधानके अनुसार क्रमसे ज्योतिष्टोम आदिसे लेकर विश्वजित्‌तक सभी यज्ञोंको करके अपने सदृश पुत्रोंको उत्पन्न करके पत्नीसहित वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर अग्निकर्म करके; पुनः हे द्विजो! चान्द्रायण आदि सभी व्रत सम्पन्न करके और इसके बाद सभी क्रियाओंका त्याग करके ब्रह्मविद्याका अध्ययनकर यत्नपूर्वक ज्ञान प्राप्तकर पुनः उस ज्ञानके द्वारा ज्ञेयका दर्शन करके वह योगी जो फल पाता है, उस फलको वह सम्पूर्ण वर्णमण्डलके दर्शनमात्रसे प्राप्त कर लेता है॥ ९४—९८॥

येन केनापि वा मर्त्यः प्रलिप्यायतनाग्रतः।
उत्तरे दक्षिणे वापि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः॥ ९९

चतुष्कोणं तु वा चूर्णैरलङ्कृत्य समन्ततः।
पुष्पाक्षतादिभिः पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १००

यस्तु गर्भगृहं भक्त्या सकृदालिप्य सर्वतः।
चन्दनाद्यैः सकर्पूरैर्गन्धद्रव्यैः समन्ततः॥ १०१

विकीर्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्धूप्य चतुर्विधैः।
प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति॥ १०२

तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पकोटिशतं नरः।
स्वदेहगन्धकुसुमैः पूरयञ्छिवमन्दिरम्॥ १०३

क्रमाद् गान्धर्वमासाद्य गन्धर्वैश्च सुपूजितः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्यवान्॥ १०४

आदिदेवो महादेवः प्रलयस्थितिकारकः।
सर्गश्च भुवनाधीशः सर्वव्यापी सदाशिवः।
शिवब्रह्मामृतं ग्राह्यं मोक्षसाधनमुत्तमम्॥ १०५

व्यक्ताव्यक्तं सदा नित्यमचिन्त्यमर्चयेत्प्रभुम्॥ १०६

हे श्रेष्ठ द्विजो! जिस किसी भी प्रकार शिवालयको लीपकर सामने, पीछे, उत्तरमें तथा दक्षिणमें चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसे चारों ओरसे चूर्णोंसे सजाकर पुष्प, अक्षत आदिसे पूजन करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो [मनुष्य] एक बार भी भक्तिपूर्वक गर्भगृहको चन्दन आदि तथा कपूरसहित गन्धद्रव्योंसे चारों ओरसे लीपकर सभी ओर सुगन्धित पुष्प बिखेरकर चार प्रकारके धूपोंसे उसे धूपित करके भगवान् ईशान (शिव)-की प्रार्थना करता है, वह शिवलोकको जाता है। वह मनुष्य वहाँ सौ करोड़ कल्पोंतक महान् सुखोंको भोगकर अपने देहरूपी सुगन्धित पुष्पोंसे शिवमन्दिरको पूरित करता हुआ क्रमसे गन्धर्वलोक पहुँचकर वहाँ गन्धर्वोंसे भलीभाँति पूजित होता है, [पुनः] क्रमसे इस लोकमें आकर पराक्रमी राजा होता है॥ ९९—१०४॥

वे सदाशिव आदिदेव, महादेव, सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले, जगत्के स्वामी तथा सर्वव्यापी हैं। शिवरूपी ब्रह्मसे [मोक्षसुखरूपी] अमृतको ग्रहण करना चाहिये और मोक्षके साधनस्वरूप उत्तम, व्यक्त, अव्यक्त, नित्य तथा अचिन्त्य प्रभुका सदा अर्चन करना चाहिये॥ १०५-१०६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उपलेपनादिकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'उपलेपनादिकथन' नामक सतहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

शिवाचारके परिपालनमें अहिंसाधर्मकी महिमा एवं शिवभक्तिका माहात्म्य

सूत उवाच

वस्त्रपूतेन तोयेन कार्यं चैवोपलेपनम्।
शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा नान्यथा सिद्धिरिष्यते॥ १

आपः पूता भवन्त्येता वस्त्रपूताः समुद्धृताः।
अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषतः॥ २

तस्माद्वै सर्वकार्याणि दैविकानि द्विजोत्तमाः।
अद्भिः कार्याणि पूताभिः सर्वकार्यप्रसिद्धये॥ ३

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! शिवक्षेत्रमें वस्त्रके द्वारा छाने हुए पवित्र जलसे ही उपलेपन-कार्य करना चाहिये; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती है। हे श्रेष्ठ मुनियो! विशेषकर नदीसे ग्रहण किया गया फेनरहित जल, जो पुनः वस्त्रसे छाना गया हो—ऐसा जल पवित्र होता है॥ १-२॥

अतः हे उत्तम द्विजो! समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये सभी देवकार्योंको पवित्र जलसे करना चाहिये।

जन्तुभिर्मिश्रिता ह्यापः सूक्ष्माभिस्तान्निहत्य तु।
यत्पापं सकलं चाद्भिरपूताभिश्चिरं लभेत्॥ ४

सम्मार्जने तथा नृणां मार्जने च विशेषतः।
अग्नौ कण्डनके चैव पेषणे तोयसङ्ग्रहे॥ ५

हिंसा सदा गृहस्थानां तस्माद्धिंसां विवर्जयेत्।
अहिंसेयं परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां द्विजाः॥ ६

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतं समाचरेत्।
तद्दानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ ७

तस्मात्तु परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वदाहिंसकं नरम्॥ ८

रक्षन्ति जन्तवः सर्वे हिंसकं बाधयन्ति च।
त्रैलोक्यमखिलं दत्त्वा यत्फलं वेदपारगे॥ ९

तत्फलं कोटिगुणितं लभतेऽहिंसको नरः।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः॥ १०

दयादर्शितपन्थानो रुद्रलोकं व्रजन्ति च।
स्वामिवत्परिरक्षन्ति बहूनि विविधानि च॥ ११

ये पुत्रपौत्रवत्स्नेहाद्रुद्रलोकं व्रजन्ति ते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा॥ १२

कार्यमभ्युक्षणं नित्यं स्नपनं च विशेषतः।
त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्फलं परिकीर्त्यते॥ १३

शिवालये निहत्यैकमपि तत्सकलं लभेत्।
शिवार्थं सर्वदा कार्या पुष्पहिंसा द्विजोत्तमाः॥ १४

यज्ञार्थं पशुहिंसा च क्षत्रियैर्दुष्टशासनम्।
विहिताविहितं नास्ति योगिनां ब्रह्मवादिनाम्॥ १५

यतस्तस्मान्न हन्तव्या निषिद्धानां निषेवणात्।
सर्वकर्माणि विन्यस्य संन्यस्ताद् ब्रह्मवादिनः॥ १६

जल सूक्ष्म कीटाणुओंसे युक्त रहता है, अतः निश्चय ही अपवित्र जलसे देवकार्य करनेपर वही सारा पाप होता है, जो उन्हें मारनेसे होता है। झाड़ू लगाने, सफाई करने, विशेष करके अग्निकर्ममें, कूटने-पीसनेमें तथा जलके संग्रहमें गृहस्थ मनुष्योंसे हिंसा हो जाती है, अतः हिंसासे बचना चाहिये। हे द्विजो! सभी प्राणियोंके प्रति यह अहिंसा [भाव] सबसे बड़ा धर्म है, अतः पूर्ण प्रयत्नसे वस्त्रसे पवित्र किया हुआ (छाना हुआ) जल प्रयोग करना चाहिये॥ ३—६१/२॥

वह दान पुण्यप्रद तथा सभी दानोंमें उत्तमोत्तम है, जो अभय देनेवाला होता है, अतः सभी जगह सर्वदा हिंसाका त्याग करना चाहिये। मन-वाणी तथा कर्मसे जो किसीकी हिंसा नहीं करता अर्थात् उन्हें दुःख नहीं पहुँचाता, ऐसे अहिंसक व्यक्तिकी सभी प्राणी सदा रक्षा करते हैं और हिंसकको कष्ट पहुँचाते हैं। वेदके पारगामी विद्वान्‌को सम्पूर्ण त्रिलोकका दान देकर मनुष्य जो फल पाता है, उसका करोड़ों गुना फल अहिंसक मनुष्य प्राप्त करता है॥ ७—९१/२॥

मन, वचन तथा कर्मसे सभी प्राणियोंके हितमें संलग्न और दयादृष्टिके मार्गपर चलनेवाले रुद्रलोकको जाते हैं। जो लोग स्वामीके समान विभिन्न प्राणियोंको अपने पुत्र-पौत्रके समान समझकर स्नेहपूर्वक उनकी रक्षा करते हैं, वे रुद्रलोकको जाते हैं। अतः पूरे प्रयत्नसे वस्त्रसे पवित्र किये गये जलके द्वारा सदा अभ्युक्षण तथा विशेषरूपसे स्नान कराना चाहिये। सम्पूर्ण त्रिलोकका संहार करनेपर जो [पापका] फल कहा गया है, उस सम्पूर्ण पापको मनुष्य शिवालयमें मात्र एक प्राणीकी हत्या करके प्राप्त करता है॥ १०—१३१/२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! शिवके निमित्त सदा पुष्पहिंसा की जानी चाहिये। यज्ञके लिये पशुहिंसा दुष्ट शासन है; यह क्षत्रियोंके द्वारा की जा सकती है। ब्रह्मवादी योगियोंके लिये [कोई] विधिनिषेध नहीं है। अतः निषिद्धका सेवन करनेपर भी वे वध्य नहीं हैं। सभी कर्मोंका त्याग करके संन्यास

न हन्तव्याः सदा पूज्याः पापकर्मरता अपि।
पवित्रास्तु स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसम्भवाः॥ १७

ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेयीं विनिहत्य च।
स्त्रियः सर्वा न हन्तव्याः पापकर्मरता अपि॥ १८

न यज्ञार्थं स्त्रियो ग्राह्याः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा।
सर्ववर्णेषु विप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि॥ १९

मलिना रूपवत्यश्च विरूपा मलिनाम्बराः।
न हन्तव्याः सदा मर्त्यैः शिववच्छङ्कया तथा॥ २०

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः।
पाषण्डिन इति ख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः॥ २१

न स्प्रष्टव्या न द्रष्टव्या दृष्ट्वा भानुं समीक्षते।
तथापि ते न वध्याश्च नृपैरन्यैश्च जन्तुभिः॥ २२

प्रसङ्गाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम्॥ २३

भवन्ति दुःखिताः सर्वे निर्दया मुनिसत्तमाः।
भक्तिहीना नराः सर्वे भवे परमकारणे॥ २४

ये भक्ता देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः।
भाग्यवन्तो विमुच्यन्ते भुक्त्वा भोगानिहैव ते॥ २५

पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणां
भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे।
सकृत्प्रसङ्गाद्यतितापसानां
तेषां न दूरः परमेशलोकः॥ २६

लिये हुए ब्रह्मवादी लोगोंका वध नहीं करना चाहिये; वे पापकर्ममें लगे रहनेपर भी सदा पूज्य हैं॥ १४—१६१/२॥

अत्रिके कुलमें उत्पन्न सभी स्त्रियाँ पवित्र होती हैं। अत्रिवंशकी स्त्रीकी हत्या करनेपर ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है, अतः पापकर्ममें रत होनेपर भी उन स्त्रियोंकी हत्या नहीं करनी चाहिये। सभी लोगोंको चाहिये कि यज्ञहेतु सर्वत्र सर्वदा स्त्रियोंको ग्रहण न करें; हे विप्रेन्द्रो! सभी वर्णोंकी स्त्रियाँ चाहे वे पापकर्ममें रत हों, मलिन हों, रूपवती हों, कुरूप हों अथवा मलिन वस्त्रोंवाली हों, मनुष्योंके द्वारा वध्य नहीं हैं; उनमें शिवभाव रखना चाहिये॥ १७—२०॥

वेदविरुद्ध व्रत तथा आचारवाले और श्रुति तथा स्मृतिसे विमुख लोग पाखण्डी कहे गये हैं। द्विजातियोंको उनके साथ बातचीत नहीं करनी चाहिये, उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये और उन्हें देखना नहीं चाहिये; उन्हें देखनेपर सूर्यका दर्शन करना चाहिये; फिर भी राजाओं तथा अन्य प्राणियोंको चाहिये कि उनका वध न करें॥ २१–२२॥

हे द्विजो! मनुष्य सज्जनोंके संसर्गवश एक बार भी महेश्वरका पूजन करके रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! सभी दयारहित लोग तथा परमकारण शिवमें भक्तिसे हीन सभी मनुष्य दुःख भोगते हैं। जो लोग देवदेव परमेष्ठी शिवके भक्त हैं, वे भाग्यशाली हैं और इस लोकमें सुखोंको भोगकर मुक्त हो जाते हैं॥ २३—२५॥

जैसे [गृहस्थ] मनुष्योंका चित्त पुत्रों, स्त्रियों तथा घरोंमें आसक्त रहता है, उसी प्रकार उनका चित्त यदि यतियों तथा तपस्वियोंके सान्निध्यसे एक बार भी आदिदेवमें लग जाय तो परमेश्वरका लोक उनके लिये दूर नहीं है॥ २६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भक्तिमहिमावर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'भक्तिमहिमावर्णन' नामक अठहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

शिवपूजासे सभीका कल्याण, शिवपूजाकी विधि एवं शिवमन्दिरमें दीपदानकी महिमा

ऋषय ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो मर्त्यैर्मन्दैर्महामते।
अल्पायुषैरल्पवीर्यैरल्पसत्त्वैः प्रजापतिः॥ १
संवत्सरसहस्रैश्च तपसा पूज्य शङ्करम्।
न पश्यन्ति सुराश्चापि कथं देवं यजन्ति ते॥ २

सूत उवाच

कथितं तथ्यमेवात्र युष्माभिर्मुनिपुङ्गवाः।
तथापि श्रद्धया दृश्यः पूज्यः सम्भाष्य एव च॥ ३
प्रसङ्गाच्चैव सम्पूज्य भक्तिहीनैरपि द्विजाः।
भावानुरूपफलदो भगवानिति कीर्तितः॥ ४
उच्छिष्टः पूजयन् याति पैशाचं तु द्विजाधमः।
सङ्क्रुद्धो राक्षसं स्थानं प्राप्नुयान्मूढधीर्द्विजाः॥ ५
अभक्ष्यभक्षी सम्पूज्य याक्षं प्राप्नोति दुर्जनः।
गानशीलश्च गान्धर्वं नृत्यशीलस्तथैव च॥ ६
ख्यातिशीलस्तथा चान्द्रं स्त्रीषु सक्तो नराधमः।
मदार्तः पूजयन् रुद्रं सोमस्थानमवाप्नुयात्॥ ७
गायत्र्या देवमभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात्।
ब्राह्मं हि प्रणवेनैव वैष्णवं चाभिनन्द्य च॥ ८
श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम्।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते॥ ९
संशोध्य च शुभं लिङ्गममरासुरपूजितम्।
जलैः पूतैस्तथा पीठे देवमावाह्य भक्तितः॥ १०
दृष्ट्वा देवं यथान्यायं प्रणिपत्य च शङ्करम्।
कल्पिते चासने स्थाप्य धर्मज्ञानमये शुभे॥ ११
वैराग्यैश्वर्यसम्पन्ने सर्वलोकनमस्कृते।
ओङ्कारपद्ममध्ये तु सोमसूर्याग्निसम्भवे॥ १२

ऋषिगण बोले—हे महामते! मन्दबुद्धिवाले, अल्प आयुवाले, अल्प पराक्रमवाले तथा अल्प सामर्थ्यवाले मनुष्योंको प्रजापति महादेवकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये? हजार वर्षोंतक तपस्याके द्वारा शंकरकी पूजा करके देवता भी उनका दर्शन नहीं कर पाते; तो फिर वे [मनुष्य] भगवान् शिवकी पूजा कैसे करें?॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! आपलोगोंने यथार्थ बात कही है, फिर भी श्रद्धापूर्वक [शिवकी] पूजा करनेपर उनका दर्शन हो सकता है और उनसे सम्भाषण किया जा सकता है। हे द्विजो! प्रसंगवश भक्तिहीन लोगोंके द्वारा भी पूजित होकर वे भगवान् उनके भावके अनुरूप फल देनेवाले कहे गये हैं॥ ३-४॥

हे द्विजो! उच्छिष्ट अधम ब्राह्मण शिवकी पूजा करके पिशाचलोकको जाता है और क्रोधमें भरकर पूजन करनेवाला मूढ़बुद्धि राक्षसका स्थान (लोक) प्राप्त करता है। अभक्ष्य [भोजन]-का भक्षण करनेवाला दुष्ट मनुष्य [शिवकी] पूजा करके यक्षलोक प्राप्त करता है और नृत्य-गान करनेवाला उनकी पूजा करके गन्धर्वलोक प्राप्त करता है। प्रसिद्धिका इच्छुक और स्त्रियोंमें आसक्त नराधम बुधलोक प्राप्त करता है। मदोन्मत्त व्यक्ति रुद्रकी पूजा करता हुआ सोमलोक प्राप्त करता है॥ ५—७॥

[रुद्र] गायत्री [मन्त्र] द्वारा शिवका पूजन करके मनुष्य प्रजापतिलोकको और प्रणवके द्वारा पूजन करके ब्रह्मलोक तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है। श्रद्धापूर्वक एक बार भी महेश्वरका पूजन करके मनुष्य रुद्रलोकमें पहुँचकर रुद्रोंके साथ आमोद-प्रमोद करता है॥ ८-९॥

देवताओं तथा असुरोंसे पूजित शुभ लिङ्गको पवित्र जलसे स्वच्छ करके पीठमें भक्तिपूर्वक शिवका आवाहन करके उन्हें देखकर विधिपूर्वक प्रणाम करके धर्मज्ञानमय, उत्तम, वैराग्य-ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सभी लोगोंसे नमस्कृत, ओंकार पद्मसे युक्त मध्यभागवाले तथा चन्द्र-सूर्य-अग्निसे उत्पन्न कल्पित आसनपर स्थापित करके रुद्र शम्भुको

पाद्यमाचमनं चार्घ्यं दत्त्वा रुद्राय शम्भवे।
स्नापयेद्दिव्यतोयैश्च घृतेन पयसा तथा॥ १३
दध्ना च स्नापयेद् रुद्रं शोधयेच्च यथाविधि।
ततः शुद्धाम्बुना स्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत्॥ १४
रोचनाद्यैश्च सम्पूज्य दिव्यपुष्पैश्च पूजयेत्।
बिल्वपत्रैरखण्डैश्च पद्मैर्नानाविधैस्तथा॥ १५
नीलोत्पलैश्च राजीवैर्नन्द्यावर्तैश्च मल्लिकैः।
चम्पकैर्जातिपुष्पैश्च बकुलैः करवीरकैः॥ १६
शमीपुष्पैर्बृहत्पुष्पैरुन्मत्तागस्त्यजैरपि ।
अपामार्गकदम्बैश्च भूषणैरपि शोभनैः॥ १७
दत्त्वा पञ्चविधं धूपं पायसं च निवेदयेत्।
दधिभक्तं च मध्वाज्यपरिप्लुतमतः परम्॥ १८
शुद्धान्नं चैव मुद्गान्नं षड्विधं च निवेदयेत्।
अथ पञ्चविधं वापि सघृतं विनिवेदयेत्॥ १९
केवलं चापि शुद्धान्नमाढकं तण्डुलं पचेत्।
कृत्वा प्रदक्षिणं चान्ते नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः॥ २०
स्तुत्वा च देवमीशानं पुनः सम्पूज्य शङ्करम्।
ईशानं पुरुषं चैव अघोरं वाममेव च॥ २१
सद्योजातं जपंश्चापि पञ्चभिः पूजयेच्छिवम्।
अनेन विधिना देवः प्रसीदति महेश्वरः॥ २२
वृक्षाः पुष्पादिपत्राद्यैरुपयुक्ताः शिवार्चने।
गावश्चैव द्विजश्रेष्ठाः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ २३
पूजयेद्यः शिवं रुद्रं शर्वं भवमजं सकृत्।
स याति शिवसायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥ २४
अर्चितं परमेशानं भवं शर्वमुमापतिम्।
सकृत्प्रसङ्गाद्वा दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २५
पूजितं वा महादेवं पूज्यमानमथापि वा।
दृष्ट्वा प्रयाति वै मर्त्यो ब्रह्मलोकं न संशयः॥ २६
श्रुत्वानुमोदयेच्चापि स याति परमां गतिम्।
यो दद्याद् घृतदीपं च सकृल्लिङ्गस्य चाग्रतः॥ २७
स तां गतिमवाप्नोति स्वाश्रमैर्दुर्लभां स्थिराम्।
दीपवृक्षं पार्थिवं वा दारवं वा शिवालये॥ २८

पाद्य-आचमन-अर्घ्य प्रदान करके उन्हें दिव्य जलोंसे स्नान कराना चाहिये। पुनः घी, दूध तथा दहीसे रुद्रको स्नान कराना चाहिये एवं विधिपूर्वक स्वच्छ करना चाहिये। तत्पश्चात् शुद्ध जलसे स्नान कराकर चन्दन आदिसे पूजन करना चाहिये; पुनः रोचन आदिसे पूजन करके दिव्य पुष्पों, अखण्ड बिल्वपत्रों, अनेक प्रकारके पद्मों, नीलकमलों, रक्तकमलों, नन्द्यावर्तपुष्पों, मल्लिका, चम्पक, जातिपुष्पों, बकुलों, कनैरके पुष्पों, शमीपुष्पों, बृहत्पुष्पों, धतूरके पुष्पों, अगस्त्यके उदित होनेपर खिलनेवाले पुष्पों, अपामार्ग-कदम्बके गुच्छों तथा सुन्दर आभूषणोंसे पूजन करके पाँच प्रकारके धूप प्रदान करके पायस (खीर) निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर दधिमिश्रित भात, मधु-घृत मिला हुआ भात, पका हुआ अन्न और मूँगका पका हुआ अन्न—यह छः प्रकारका अन्न निवेदित करे; अथवा पाँच प्रकारका घृतमिश्रित अन्न निवेदित करे; अथवा केवल एक आढ़क (चार प्रस्थ) शुद्ध चावल पकाये और उसे निवेदित करे। अन्तमें प्रदक्षिणा करके बार-बार नमस्कारकर देवता ईशानकी स्तुति करके पुनः शंकरजीकी विधिवत् पूजा करके ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात मन्त्रोंका जप करते हुए इन पाँच मन्त्रोंसे शिवकी पूजा करे। इस विधिसे [पूजा करनेपर] देव महेश्वर प्रसन्न होते हैं॥ १०—२२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! शिवपूजनमें उपयोग किये गये पुष्प, पत्र आदिके साथ वृक्ष और गायें—ये सब परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो एक बार भी शिव, रुद्र, शर्व, भव, अजकी पूजा करता है; वह पुनर्जन्मरहित शिवसायुज्यको प्राप्त कर लेता है। एक बार अथवा प्रसंगवश भी पूजित परमेश्वर, भव, उमापतिका दर्शन करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पूजित किये गये अथवा पूजित होते हुए महादेवका दर्शनकर मनुष्य ब्रह्मलोकको जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २३—२६॥

जो [शिवके सम्बन्धमें] कुछ भी सुनकर उसका अनुमोदन करता है, वह परमगति प्राप्त करता है। जो शिवके समक्ष एक बार भी घृतका दीपक अर्पित करता है, वह वर्णाश्रमी लोगोंके लिये दुर्लभ स्थिर गति प्राप्त

दत्त्वा कुलशतं साग्रं शिवलोके महीयते।
आयसं ताम्रजं वापि रौप्यं सौवर्णिकं तथा॥ २९

शिवाय दीपं यो दद्याद्विधिना वापि भक्तितः।
सूर्यायुतसमैः श्लक्ष्णैर्यानैः शिवपुरं व्रजेत्॥ ३०

कार्तिके मासि यो दद्याद् घृतदीपं शिवाग्रतः।
सम्पूज्यमानं वा पश्येद्विधिना परमेश्वरम्॥ ३१

स याति ब्रह्मणो लोकं श्रद्धया मुनिसत्तमाः।
आवाहनं सुसान्निध्यं स्थापनं पूजनं तथा॥ ३२

सम्प्रोक्तं रुद्रगायत्र्या आसनं प्रणवेन वै।
पञ्चभिः स्नपनं प्रोक्तं रुद्राद्यैश्च विशेषतः॥ ३३

एवं सम्पूजयेन्नित्यं देवदेवमुमापतिम्।
ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य प्रणवेन समर्चयेत्॥ ३४

उत्तरे देवदेवेशं विष्णुं गायत्रिया यजेत्।
वह्नौ हुत्वा यथान्यायं पञ्चभिः प्रणवेन च॥ ३५

स याति शिवसायुज्यमेवं सम्पूज्य शङ्करम्।
इति सङ्क्षेपतः प्रोक्तो लिङ्गार्चनविधिक्रमः॥ ३६

व्यासेन कथितः पूर्वं श्रुत्वा रुद्रमुखात्स्वयम्॥ ३७

करता है। शिवालयमें मिट्टी अथवा लकड़ीका बना हुआ दीपवृक्ष (दीवट) प्रदान करके मनुष्य आगेके सौ कुलोंसहित शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो विधानके अनुसार भक्तिपूर्वक लोहे, ताँबे, चाँदी अथवा सोनेका बना हुआ दीपक शिवको समर्पित करता है, वह दस हजार सूर्योंके समान देदीप्यमान विमानोंसे शिवलोकको जाता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! जो कार्तिक महीनेमें शिवके सामने घृतका दीपक समर्पित करता है अथवा विधानके साथ पूजित होते हुए परमेश्वरका दर्शन श्रद्धापूर्वक करता है, वह ब्रह्मलोकको जाता है॥ २७—३१$^{1}/_{2}$॥

[शिवका] आवाहन, उत्तम सान्निध्य, स्थापन तथा पूजन रुद्रगायत्री [मन्त्र]-द्वारा और आसन प्रणव-द्वारा बताया गया है। [सद्योजात आदि] पाँच मन्त्रोंसे तथा विशेषरूपसे रुद्रमन्त्रोंसे उनका स्नान बताया गया है। इस प्रकार देवदेव उमापतिकी पूजा नित्य करे। उनके दक्षिणमें ब्रह्माकी पूजा प्रणवसे करे और उत्तरमें देवदेवेश विष्णुकी पूजा गायत्री [मन्त्र]-से करे। विधिके अनुसार [सद्योजात आदि] पाँच मन्त्रोंसे तथा प्रणवसे अग्निमें होम करे। इस प्रकार शंकरकी भलीभाँति पूजा करके वह [मनुष्य] शिवसायुज्य प्राप्त करता है। [हे ऋषियो!] मैंने संक्षेपमें लिङ्गार्चनविधिका क्रम बता दिया; पहले स्वयं रुद्रके मुखसे इसे सुनकर व्यासजीने मुझको बताया था॥ ३२—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवार्चनविधिर्नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवार्चनविधि' नामक उन्यासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

देवताओंका कैलासपुरी आकर वहाँ विराजमान उमासहित भगवान् शिवके दर्शन करना तथा भगवान् शिवद्वारा देवताओंको पाशुपतव्रतका उपदेश प्रदान करना

ऋषय ऊचुः

कथं पशुपतिं दृष्ट्वा पशुपाशविमोक्षणम्।
पशुत्वं तत्यजुर्देवास्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥ १

सूत उवाच

पुरा कैलासशिखरे भोग्याख्ये स्वपुरे स्थितम्।
समेत्य देवाः सर्वज्ञमाजग्मुस्तत्प्रसादतः॥ २

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] पशुपतिका दर्शन करके पशुपाशसे मुक्ति किस प्रकार होती है; देवताओंने पशुत्वका कैसे त्याग किया? इसे आप कृपा करके हम लोगोंको बतायें॥ १॥

सूतजी बोले—पूर्वकालमें कैलास-शिखरपर भोग्य नामक अपने पुरमें स्थित सर्वज्ञ शिवके पास सभी देवता

हिताय सर्वदेवानां ब्रह्मणा च जनार्दनः।
गरुडस्य तथा स्कन्धमारुह्य पुरुषोत्तमः॥ ३

जगाम देवताभिर्वै देवदेवान्तिकं हरिः।
सर्वे सम्प्राप्य देवस्य सार्धं गिरिवरं शुभम्॥ ४

सेन्द्राः ससाध्याः सयमाः प्रणेमुर्गिरिमुत्तमम्।
भगवान् वासुदेवोऽसौ गरुडाद् गरुडध्वजः।
अवतीर्य गिरिं मेरुमारुरोह सुरोत्तमैः॥ ५

सकलदुरितहीनं सर्वदं भोगमुख्यं
मुदितकुररवृन्दं नादितं नागवृन्दैः।
मधुररणितगीतं सानुकूलान्धकारं
पदरचितवनान्तं कान्तवातान्ततोयम्॥ ६

भवनशतसहस्रैर्जुष्टमादित्यकल्पै-
र्ललितगतिविदग्धैर्हंसवृन्दैश्च भिन्नम्।
धवखदिरपलाशैश्चन्दनाद्यैश्च वृक्षै-
र्द्विजवरगणवृन्दैः कोकिलाद्यैर्द्विरेफैः॥ ७

क्वचिदशेषसुरद्रुमसङ्कुलं
कुरबकैः प्रियकैस्तिलकैस्तथा।
बहुकदम्बतमाललतावृतं
गिरिवरं शिखरैर्विविधैस्तथा॥ ८

गिरेः पृष्ठे पुरं शार्वं कल्पितं विश्वकर्मणा।
क्रीडार्थं देवदेवस्य भवस्य परमेष्ठिनः॥ ९

अपश्यंस्तत्पुरं देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समाहिताः।
प्रणेमुर्दूरतश्चैव प्रभावादेव शूलिनः॥ १०

सहस्रसूर्यप्रतिमं महान्तं
सहस्रशः सर्वगुणैश्च भिन्नम्।
जगाम कैलासगिरिं महात्मा
मेरुप्रभागे पुरमादिदेवः॥ ११

ततोऽथ नारीगजवाजिसङ्कुलं
रथैरनेकैरमरारिसूदनः।
गणैर्गणेशैश्च गिरीन्द्रसन्निभं
महापुरद्वारमजो हरिश्च॥ १२

उनकी कृपासे एक साथ मिलकर आये। सभी देवताओंके हितके लिये जनार्दन पुरुषोत्तम विष्णु भी गरुड़के स्कन्धपर बैठकर ब्रह्मा तथा सभी देवताओंके साथ देवदेव शिवके पास पहुँचे॥ २–३$^{1}/_{2}$॥

इन्द्र, साध्यगण तथा यमसहित सभी लोगोंने एक साथ शिवके गिरिश्रेष्ठ, शुभ तथा उत्तम पर्वतश्रेष्ठ मेरुपर आकर उस गिरिको प्रणाम किया। वे गरुड़ध्वज भगवान् वासुदेव गरुड़से उतरकर उत्तम देवताओंके साथ मेरु पर्वतपर चढ़ गये; वह समस्त पापोंसे रहित, सबकुछ देनेवाला, उत्तम भोगोंसे युक्त, आनन्दित कुरर पक्षियोंसे समन्वित, हाथियोंकी ध्वनियोंसे निनादित, मधुर गीतोंसे गुंजित, अन्य पर्वतोंके पृष्ठभागको अपने छायारूपी अन्धकारसे युक्त करनेवाला, पदचिह्नोंसे युक्त वन-प्रदेशवाला, सुन्दर हवाओं तथा जलसे परिपूर्ण, सूर्यके समान प्रदीप्त सैकड़ों-हजारों भवनोंसे युक्त, मनोहर गतिवाले हंससमूहोंसे मण्डित, धव-खदिर-पलाश-चन्दन आदि वृक्षोंसे परिपूर्ण, उत्तम पक्षियोंके समूहोंसे युक्त, कोकिल आदि तथा भौंरोंसे शोभायमान, कहीं-कहीं बहुत-से दिव्य वृक्षोंसे भरा हुआ, कुरबक-प्रियक-तिलक पुष्पवृक्षोंसे सम्पन्न, बहुत-से कदम्ब-तमाल-लताओंसे घिरा हुआ तथा अनेक प्रकारके शिखरोंसे युक्त श्रेष्ठ पर्वत है॥ ४—८॥

[इस] पर्वतके पृष्ठपर देवदेव परमेश्वर शिवके विहारके लिये विश्वकर्माने एक शिवपुरका निर्माण किया है। इन्द्र तथा उपेन्द्रसहित सभी देवताओंने उस पुरको ध्यानपूर्वक देखा और शिवजीके प्रभावसे दूरसे ही उसे प्रणाम किया॥ ९-१०॥

महात्मा आदिदेव [विष्णु] मेरुके एक भागमें [स्थित] हजारों सूर्योंके समान देदीप्यमान, हजारों तरहसे महान्, सभी गुणोंसे युक्त कैलासगिरिपर गये। तदनन्तर ब्रह्मा तथा देवशत्रुओंका विनाश करनेवाले विष्णु उस महान् पुरके द्वारपर पहुँचे; जो स्त्रियों, हाथियों, घोड़ों, अनेक रथों, गणों तथा गणेश्वरोंसे भरा हुआ था और महापर्वतके समान प्रतीत हो रहा था॥ ११-१२॥

अथ जाम्बूनदमयैर्भवनैर्मणिभूषितैः।
विमानैर्विविधाकारैः प्राकारैश्च समावृतम्॥ १३
दृष्ट्वा शम्भोः पुरं बाह्यं देवैः सब्रह्मकैर्हरिः।
प्रहृष्टवदनो भूत्वा प्रविवेश ततः पुरम्॥ १४
हर्म्यप्रासादसम्बाधं महाट्टालसमन्वितम्।
द्वितीयं देवदेवस्य चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥ १५
वज्रवैडूर्यमाणिक्यमणिजालैः समावृतम्।
दोलाविक्षेपसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्॥ १६
मृदङ्गमुरजैर्जुष्टं वीणावेणुनिनादितम्।
नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैर्भूतसङ्घैश्च संवृतम्।
देवेन्द्रभवनाकारैर्भवनैर्दृष्टिमोहनैः॥ १७
प्रासादशृङ्गेष्वथ पौरनार्यः
सहस्रशः पुष्पफलाक्षताद्यैः।
स्थिताः करैस्तस्य हरेः समन्तात्
प्रचिक्षिपुर्मूर्ध्नि यथा भवस्य॥ १८
दृष्ट्वा नार्यस्तदा विष्णुं मदाघूर्णितलोचनाः॥ १९
विशालजघनाः सद्यो ननृतुर्मुमुदुर्जगुः।
काश्चिद् दृष्ट्वा हरिं नार्यः किञ्चित्प्रहसिताननाः॥ २०
किञ्चिद्विस्रस्तवस्त्राश्च स्रस्तकाञ्चीगुणा जगुः।
चतुर्थं पञ्चमं चैव षष्ठं च सप्तमं तथा॥ २१
अष्टमं नवमं चैव दशमं च पुरोत्तमम्।
अतीत्यासाद्य देवस्य पुरं शम्भोः सुशोभनम्॥ २२
सुवृत्तं सुतरां शुभ्रं कैलासशिखरे शुभे।
सूर्यमण्डलसङ्काशैर्विमानैश्च विभूषितम्॥ २३
स्फाटिकैर्मण्डपैः शुभ्रैर्जाम्बूनदमयैस्तथा।
नानारत्नमयैश्चैव दिग्विदिक्षु विभूषितम्॥ २४
गोपुरैर्गोपतेः शम्भोर्नानाभूषणभूषितैः।
अनेकैः सर्वतोभद्रैः सर्वरत्नमयैस्तथा॥ २५
प्राकारैर्विविधाकारैरष्टाविंशतिभिर्वृतम्।
उपद्वारैर्महाद्वारैर्विदिक्षु विविधैर्दृढैः॥ २६
गुह्यालयैर्गुह्यगृहैर्गुहस्य भवनैः शुभैः।
ग्राम्यैरन्यैर्महाभागा मौक्तिकैर्दृष्टिमोहनैः॥ २७

तदनन्तर सुवर्णमय भवनों, मणिभूषित विमानों तथा अनेक आकारवाले प्राकारों (चहारदीवारियों)-से घिरे हुए शिवके बाहरी पुरको देखकर प्रसन्नमुख होकर विष्णुने ब्रह्मासहित सभी देवताओंके साथ देवदेवके उस दूसरे पुरमें प्रवेश किया; जो विशाल भवनों तथा महलोंसे अवरुद्ध, ऊँची अट्टालिकाओंसे समन्वित, चार द्वारोंवाला, परम सुन्दर, हीरा-वैडूर्य-माणिक्य-मणियोंके जालोंसे आवृत, आन्दोलित हो रहे हिण्डोलोंसे समन्वित, घण्टा तथा चामरसे विभूषित, मृदंग-मुरज आदि वाद्ययन्त्रोंसे परिपूर्ण, वीणा-वेणुसे निनादित, नृत्य करती हुई अप्सराओं तथा भूतगणोंसे घिरा हुआ और दृष्टिको मोह लेनेवाले देवेन्द्रभवनके आकारवाले भवनोंसे मण्डित था॥ १३—१७॥

[तीसरे पुरमें प्रवेश करनेपर] महलोंके शिखरोंपर विराजमान हजारों पुरस्त्रियाँ [अपने] हाथोंसे सभी ओरसे शिवकी भाँति विष्णुके मस्तकपर भी पुष्प, फल, अक्षत आदिकी वर्षा करने लगीं। उस समय विष्णुको देखकर मदसे घूर्णित नेत्रोंवाली तथा विशाल जाँघोंवाली स्त्रियाँ शीघ्र ही आनन्दमग्न हो गयीं और वे नाचने तथा गाने लगीं। विष्णुको देखकर कुछ स्त्रियोंका मुखमण्डल मन्द मुसकानसे भर गया, कुछके वस्त्र शिथिल हो गये और कुछकी करधनी ढीली पड़ गयी; वे सब गीत गाने लगीं॥ १८—२०½॥

हे महाभागो! तदनन्तर चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें, आठवें, नौवें तथा दसवें उत्तम पुरोंको क्रमसे पार करके शुभ कैलास-शिखरपर [स्थित] देवदेव गोपति परमेश्वर भगवान् शिवके परम सुन्दर; पूर्ण गोलाकार; सूर्यमण्डलके समान भवनोंसे विभूषित; स्फटिकके शुभ्र मण्डपोंसे शोभायमान; सभी दिशाओंमें सुवर्णमय तथा विविध रत्नमय फाटकोंसे विभूषित; विविध आभूषणोंसे अलंकृत, अनेक सर्वतोभद्रोंसे युक्त; अनेक आकारवाले रत्नजटित अट्ठाईस प्राकारों (चहारदीवारियों)-से घिरे हुए; उपदिशाओंमें अनेक प्रकारके दृढ़ उपद्वारों तथा महाद्वारोंसे युक्त; गुह (कार्तिकेय)-के गुप्त भवनों

गणेशायतनैर्दिव्यैः पद्मरागमयैस्तथा।
चन्दनैर्विविधाकारैः पुष्पोद्यानैश्च शोभनैः॥ २८

तडागैर्दीर्घिकाभिश्च हेमसोपानपङ्क्तिभिः।
स्त्रीणां गतिजितैर्हंसैः सेविताभिः समन्ततः॥ २९

मयूरैश्चैव कारण्डैः कोकिलैश्चक्रवाककैः।
शोभिताभिश्च वापीभिर्दिव्यामृतजलैस्तथा॥ ३०

संलापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः।
स्तनभारावनम्रैश्च मदाघूर्णितलोचनैः॥ ३१

गेयनादरतैर्दिव्यै रुद्रकन्यासहस्त्रकैः।
नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैरमरैरपि दुर्लभैः॥ ३२

प्रफुल्लाम्बुजवृन्दाद्यैस्तथा द्विजवरैरपि।
रुद्रस्त्रीगणसङ्कीर्णैर्जलक्रीडारतैस्तथा॥ ३३

रतोत्सवरतैश्चैव ललितैश्च पदे पदे।
ग्रामरागानुरक्तैश्च पद्मरागसमप्रभैः॥ ३४

स्त्रीसङ्घैर्देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नास्तस्थुर्देवाः समन्ततः॥ ३५

तथा गुप्त कक्षोंसे सुशोभित; दृष्टिको मोह लेनेवाले मोतीके बने हुए अन्य सुन्दर ग्राम्य भवनोंसे युक्त; पद्मरागसे बने हुए दिव्य गणेश्वर-मन्दिरोंसे विभूषित; चन्दनके वृक्षोंसहित अनेक आकारवाले सुन्दर पुष्प-उद्यानोंसे सुशोभित; सोनेकी सीढ़ियोंकी पंक्तियोंसे युक्त और स्त्रियोंकी चालको तिरस्कृत करनेवाले हंसोंसे सभी ओरसे सेवित सरोवरों तथा बावलियोंसे विभूषित; मयूर, कारण्ड, कोकिल तथा चक्रवाकसे सुशोभित और दिव्य अमृतमय जलसे युक्त वापियोंसे विभूषित; वार्तालापमें कुशल, सभी आभूषणोंसे अलंकृत, वक्षःस्थलके भारसे झुकी हुई, मदसे घूर्णित नेत्रोंवाली, गाने-बजानेमें तल्लीन तथा नृत्य करती हुई देवदुर्लभ दिव्य हजारों रुद्र-कन्याओं एवं अप्सराओंसे सुशोभित; विकसित कमल आदिसे युक्त; उत्तम पक्षियोंसे परिपूर्ण; रुद्रस्त्रीगणोंसे भरे हुए; जलक्रीड़ामें रत, रतोत्सवमें तल्लीन, प्रत्येक पदपर ललित, संगीतमें अनुरक्त तथा पद्मरागके समान कान्तिवाली स्त्रियोंसे सुशोभित पुरको देखकर सभी देवता पूर्णरूपसे आश्चर्यचकित होकर वहीं खड़े हो गये॥ २१—३५॥

तत्रैव ददृशुर्देवा वृन्दं रुद्रगणस्य च।
गणेश्वराणां वीराणामपि वृन्दं सहस्त्रशः॥ ३६

सुवर्णकृतसोपानान् वज्रवैडूर्यभूषितान्।
स्फाटिकान् देवदेवस्य ददृशुस्ते विमानकान्॥ ३७

वहींपर देवताओंने रुद्रगणों, हजारों वीर गणेश्वरों, हीरे तथा वैडूर्यमणिसे जटित सुवर्णमय सीढ़ियों और देवदेवके स्फटिकनिर्मित भवनोंको देखा॥ ३६-३७॥

तेषां शृङ्गेषु हृष्टाश्च नार्यः कमललोचनाः।
विशालजघना यक्षा गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ ३८

किन्नर्यः किन्नराश्चैव भुजङ्गाः सिद्धकन्यकाः।
नानावेषधराश्चान्या नानाभूषणभूषिताः॥ ३९

नानाप्रभावसंयुक्ता नानाभोगरतिप्रियाः।
नीलोत्पलदलप्रख्याः पद्मपत्रायतेक्षणाः॥ ४०

पद्मकिञ्जल्कसङ्काशैरंशुकैरतिशोभनाः।
वलयैर्नूपुरैर्हारैश्छत्रैश्चित्रैस्तथांशुकैः।
भूषिता भूषितैश्चान्यैर्मण्डिता मण्डनप्रियाः॥ ४१

उन [भवनों]-के शिखरोंपर हृष्ट, कमलके समान नेत्रोंवाली तथा विशाल जाँघोंवाली स्त्रियाँ, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नरियाँ, किन्नर, नाग, सिद्धगणोंकी कन्याएँ, तथा अन्य स्त्रियाँ विराजमान थीं; वे अनेक वेष धारण की हुई थीं, अनेक आभूषणोंसे अलंकृत थीं, अनेक हाव-भावोंसे युक्त थीं, अनेक भोग तथा रतिसे प्रेम करनेवाली थीं, नील कमलके पत्रके समान शोभावाली थीं, कमल-पत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली थीं, कमलकी पंखुड़ीके समान [कोमल] वस्त्रोंसे सुशोभित थीं, कंकण-नूपुर-हार-रंग-बिरंगे छत्र तथा वस्त्रोंसे भूषित थीं, अन्य प्रकारके आभूषणोंसे मण्डित थीं और सजावटसे प्रीति करनेवाली थीं॥ ३८—४१॥

दृष्ट्वाथ वृन्दं सुरसुन्दरीणां
गणेश्वराणां सुरसुन्दरीणाम्।
जग्मुर्गणेशस्य पुरं सुरेशाः
पुरद्विषः शक्रपुरोगमाश्च॥ ४२

दृष्ट्वा च तस्थुः सुरसिद्धसङ्घाः
पुरस्य मध्ये पुरुहूतपूर्वाः।
भवस्य बालार्कसहस्रवर्णं
विमानमाद्यं परमेश्वरस्य॥ ४३

अथ तस्य विमानस्य द्वारि संस्थं गणेश्वरम्।
नन्दिनं ददृशुः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः॥ ४४

तं दृष्ट्वा नन्दिनं सर्वे प्रणम्याहुर्गणेश्वरम्।
जयेति देवास्तं दृष्ट्वा सोऽप्याह च गणेश्वरः॥ ४५

भो भो देवा महाभागाः सर्वे निर्धूतकल्मषाः।
सम्प्राप्ताः सर्वलोकेशा वक्तुमर्हथ सुव्रताः॥ ४६

तमाहुर्वरदं देवं वारणेन्द्रसमप्रभम्।
पशुपाशविमोक्षार्थं दर्शयास्मान् महेश्वरम्॥ ४७

पुरा पुरत्रयं दग्धुं पशुत्वं परिभाषितम्।
शङ्किताश्च वयं तत्र पशुत्वं प्रति सुव्रत॥ ४८

व्रतं पाशुपतं प्रोक्तं भवेन परमेष्ठिना।
व्रतेनानेन भूतेश पशुत्वं नैव विद्यते॥ ४९

अथ द्वादशवर्षं वा मासद्वादशकं तु वा।
दिनद्वादशकं वापि कृत्वा तद् व्रतमुत्तमम्॥ ५०

मुच्यन्ते पशवः सर्वे पशुपाशैर्भवस्य तु।
दर्शयामास तान् देवान्नारायणपुरोगमान्॥ ५१

नन्दी शिलादतनयः सर्वभूतगणाग्रणीः।
तं दृष्ट्वा देवमीशानं साम्बं सगणमव्ययम्॥ ५२

प्रणेमुस्तुष्टुवुश्चैव प्रीतिकण्टकितत्वचः।
विज्ञाप्य शितिकण्ठाय पशुपाशविमोक्षणम्॥ ५३

तस्थुस्तदाग्रतः शम्भोः प्रणिपत्य पुनः पुनः।
ततः सम्प्रेक्ष्य तान् सर्वान् देवदेवो वृषध्वजः॥ ५४

देवताओंकी सुन्दर स्त्रियों तथा गणेश्वरोंकी सुन्दर स्त्रियोंको देखकर इन्द्र आदि प्रमुख देवता त्रिपुरके शत्रु गणाधीशके पुरमें गये॥ ४२॥

[उस] पुरके मध्यमें स्थित परमेश्वर शिवके हजारों उगते हुए सूर्यके समान आभावाले भवनको देखकर इन्द्रसहित देवता तथा सिद्धगण वहाँ रुक गये॥ ४३॥

इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवताओंने उस भवनके द्वारपर स्थित गणेश्वर नन्दीको देखा॥ ४४॥

उन गणेश्वर नन्दीको देखकर सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'जय हो'। तब गणेश्वरने भी उन्हें देखकर कहा—'हे महाभाग्यशाली देवताओ! हे सुव्रतो! निष्पाप तथा सभी लोकोंके स्वामी आपलोग किसलिये आये हैं; कृपा करके बतायें॥ ४५-४६॥

तत्पश्चात् देवताओंने उनसे कहा—'पशुपाश (जीवभाव)-से मुक्तिके लिये आप हमलोगोंको गजराज (ऐरावत)-के समान शुभ्र कान्तिवाले एवं वर प्रदान करनेवाले देव महेश्वरका दर्शन कराइये॥ ४७॥

हे सुव्रत! पूर्वकालमें तीनों पुरोंको दग्ध करनेके लिये पशुत्व स्वीकार किया गया था; उस पशुत्वके विषयमें हमलोग शंकाग्रस्त हैं॥ ४८॥

परमेश्वर शिवके द्वारा पाशुपतव्रत कहा गया है; हे भूतेश! इस व्रतके करनेसे पशुत्व नहीं रहता है। बारह वर्षोंतक, बारह महीनोंतक अथवा बारह दिनोंतक भी उस उत्तम व्रतको करके समस्त पशु [भगवान्] शिवके पशुपाशोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ४९-५०१/२॥

तदनन्तर सभी भूतगणोंमें अग्रणी शिलादपुत्र नन्दीने नारायण आदि उन देवताओंको [शिवका] दर्शन कराया। तब उमा तथा गणोंसहित उन सनातन प्रभु ईशानका दर्शन करके प्रीतिके कारण रोमांचित देवताओंने उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की तथा [उन] शितिकण्ठ (शिव)-से पशुपाशसे मुक्तिका निवेदन करके बार-बार प्रणामकर उन शम्भुके सामने वे खड़े हो गये॥ ५१—५३१/२॥

तत्पश्चात् उन सबकी ओर देखकर देवदेव, वृषभध्वज, परमेश्वर भगवान् महेश्वर उन देवताओं तथा

विशोध्य तेषां देवानां पशुत्वं परमेश्वरः।
व्रतं पाशुपतं चैव स्वयं देवो महेश्वरः॥ ५५

उपदिश्य मुनीनां च सहास्ते चाम्बया भवः।
तदाप्रभृति ते देवाः सर्वे पाशुपताः स्मृताः॥ ५६

पशूनां च पतिर्यस्मात्तेषां साक्षाद्धि देवताः।
तस्मात्पाशुपताः प्रोक्तास्तपस्तेपुश्च ते पुनः॥ ५७

ततो द्वादशवर्षान्ते मुक्तपाशाः सुरोत्तमाः।
ययुर्यथागतं सर्वे ब्रह्मणा सह विष्णुना॥ ५८

एतद्वः कथितं सर्वं पितामहमुखाच्छ्रुतम्।
पुरा सनत्कुमारेण तस्माद् व्यासेन धीमता॥ ५९

यः श्रावयेच्छुचिर्विप्राञ्छृणुयाद्वा शुचिर्नरः।
स देहभेदमासाद्य पशुपाशैः प्रमुच्यते॥ ६०

मुनियोंके पशुत्वभावका शोधनकर उन्हें पाशुपतव्रतका स्वयं उपदेश करके उमाके साथ बैठ गये। तभीसे वे सब देवता पाशुपत कहे जाने लगे। वे शिव उन पशुओंके साक्षात् पति हैं, अतः देवता पाशुपत कहे गये हैं। इसके बाद उन सबने पुनः तपस्या की। तदनन्तर बारह वर्षके अन्तमें सभी श्रेष्ठ देवता पशुपाशसे मुक्त हो गये और जैसे आये थे, वैसे ही ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ वापस लौट गये॥ ५४—५८॥

[हे मुनियो!] मैंने आप लोगोंसे यह सब कह दिया; पूर्वकालमें इसे सनत्कुमारने ब्रह्माजीके मुखसे तथा बुद्धिमान् व्यासजीने उन [सनत्कुमार]-से सुना था। जो मनुष्य शुद्ध होकर इसे ब्राह्मणोंको सुनाता है अथवा शुद्ध होकर [स्वयं] सुनता है, वह दूसरा शरीर प्राप्त करके पशुपाशोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५९-६०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पाशुपतव्रतमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पाशुपतव्रतमाहात्म्य' नामक अस्सीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

विविध मासोंमें किये जानेवाले पशुपाशविमोचक लिङ्गव्रतका विधान तथा उसका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

व्रतमेतत्त्वया प्रोक्तं पशुपाशविमोक्षणम्।
व्रतं पाशुपतं लैङ्गं पुरा देवैरनुष्ठितम्॥ १

वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतम्।

सूत उवाच

पुरा सनत्कुमारेण पृष्टः शैलादिरादरात्॥ २

नन्दी प्राह वचस्तस्मै प्रवदामि समासतः।
देवैर्दैत्यैस्तथा सिद्धैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः॥ ३

मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम्।
व्रतं द्वादशलिङ्गाख्यं पशुपाशविमोक्षणम्॥ ४

भोगदं योगदं चैव कामदं मुक्तिदं शुभम्।
अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनम्॥ ५

षडङ्गसहितान् वेदान् मथित्वा तेन निर्मितम्।
सर्वदानोत्तमं पुण्यमश्वमेधायुताधिकम्॥ ६

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपने पशुपाशसे मुक्त करनेवाले इस व्रतको बता दिया; पूर्वकालमें देवताओंने लिङ्गसम्बन्धी पाशुपतव्रतका अनुष्ठान किया था, अतः आपने पहले [इसके विषयमें] जैसा भी श्रवण किया था, उसे हम लोगोंको बताइये॥ १½॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] पूर्वकालमें सनत्कुमारने [इस सम्बन्धमें] शिलादपुत्र नन्दीसे आदरपूर्वक पूछा था; तब नन्दीने उनसे जो बात कही थी, वही मैं भी आप लोगोंको संक्षेपमें बताता हूँ—देवताओं, दैत्यों, सिद्धों, गन्धर्वों, चारणों तथा महाभाग्यवान् मुनियोंने पशुपाशसे मुक्त करनेवाले इस अत्युत्तम द्वादश लिङ्ग नामक व्रतको किया था। यह भोग (सुख) प्रदान करनेवाला, योग देनेवाला, मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मुक्ति देनेवाला, शिवसे सदा अवियोग करानेवाला, पुण्य देनेवाला, भक्तोंके भयका नाश करनेवाला, छः अंगोंसहित वेदोंका मंथन करके उन [शिव]-के द्वारा निर्मित, समस्त

सर्वमङ्गलदं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामपि मोक्षदम्॥ ७

सर्वव्याधिहरं चैव सर्वज्वरविनाशनम्।
देवैरनुष्ठितं पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा॥ ८

कृत्वाकनीयसं लिङ्गं स्नाप्य चन्दनवारिणा।
चैत्रमासादि विप्रेन्द्राः शिवलिङ्गव्रतं चरेत्॥ ९

कृत्वा हैमं शुभं पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम्।
नवरत्नैश्च खचितमष्टपत्रं यथाविधि॥ १०

कर्णिकायां न्यसेल्लिङ्गं स्फाटिकं पीठसंयुतम्।
तत्र भक्त्या यथान्यायमर्चयेद् बिल्वपत्रकैः॥ ११

सितैः सहस्रकमलै रक्तैर्नीलोत्पलैरपि।
श्वेतार्ककर्णिकारैश्च करवीरैर्बकैरपि॥ १२

एतैरन्यैर्यथालाभं गायत्र्या तस्य सुव्रताः।
सम्पूज्य चैव गन्धाद्यैर्धूपैर्दीपैश्च मङ्गलैः॥ १३

नीराजनाद्यैश्चान्यैश्च लिङ्गमूर्तिं महेश्वरम्।
अगरुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमाः॥ १४

पश्चिमे सद्यमन्त्रेण दिव्यां चैव मनःशिलाम्।
उत्तरे वामदेवेन चन्दनं वापि दापयेत्॥ १५

पुरुषेण मुनिश्रेष्ठा हरितालं च पूर्वतः।
सितागरूद्भवं विप्रास्तथा कृष्णागरूद्भवम्॥ १६

तथा गुग्गुलुधूपं च सौगन्धिकमनुत्तमम्।
सितारं नाम धूपं च दद्यादीशाय भक्तितः॥ १७

महाचरुर्निवेद्यः स्यादाढकान्नमथापि वा।
एतद्वः कथितं पुण्यं शिवलिङ्गमहाव्रतम्॥ १८

सर्वमासेषु सामान्यं विशेषोऽपि च कीर्त्यते।
वैशाखे वज्रलिङ्गं च ज्येष्ठे मारकतं तथा॥ १९

आषाढे मौक्तिकं लिङ्गं श्रावणे नीलनिर्मितम्।
मासि भाद्रपदे लिङ्गं पद्मरागमयं शुभम्॥ २०

आश्विने चैव विप्रेन्द्राः गोमेदकमयं शुभम्।
प्रवालेनैव कार्तिक्यां तथा वै मार्गशीर्षके॥ २१

दानोंमें उत्तम, दस हजार अश्वमेध यज्ञोंसे अधिक पुण्य देनेवाला, सभी मंगल प्रदान करनेवाला, पवित्र, समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला, संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला, सभी रोगोंको नष्ट करनेवाला तथा सभी ज्वरोंका विनाश करनेवाला है; इसे पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंने किया था॥ २—८॥

हे विप्रेन्द्रो! एक विशाल लिङ्ग बनाकर इसे चन्दनमिश्रित जलसे स्नान कराकर चैत्र महीनेसे प्रारम्भ करके इस शिवलिङ्गव्रतको करना चाहिये। केसरकी कर्णिकासे युक्त, नौ रत्नोंसे जटित तथा आठ दलोंवाले एक सुन्दर सुवर्णमय कमलकी रचना करके उसकी कर्णिकामें विधिके अनुसार वेदीयुक्त स्फटिकके लिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। हे सुव्रतो! उसमें भक्तिपूर्वक विधिके अनुसार बिल्वपत्रोंसे, हजार श्वेत-लाल-नीले कमलोंसे, श्वेतमदारके कर्णिकारोंसे, कनैल पुष्पोंसे, कुरबकपुष्पोंसे तथा अन्य उपलब्ध पुष्पोंसे रुद्रगायत्री मन्त्रद्वारा उस लिङ्गका अर्चन करना चाहिये। हे उत्तम द्विजो! गन्ध, धूप, दीप, नीराजन आदि मंगल उपचारोंसे लिङ्गमूर्ति महेश्वरका पूजन करके अघोर मन्त्रसे दक्षिणभागमें अगरु देना चाहिये, सद्योजात मन्त्रसे पश्चिम भागमें दिव्य मन:शिला और वामदेव मन्त्रसे उत्तर भागमें चन्दन अर्पित करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! तत्पुरुष मन्त्रसे पूर्व भागमें हरिताल प्रदान करना चाहिये। हे विप्रो! श्वेत अगरुसे तथा कृष्ण अगरुसे उत्पन्न धूप, सुगन्धित तथा उत्तम गुग्गुलधूप और सितार नामक धूप भक्तिपूर्वक महेश्वरको अर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् महाचरुको नैवेद्यके रूपमें अर्पित करना चाहिये अथवा आढ़क-परिमाणमें अन्न निवेदित करना चाहिये। [हे विप्रो!] मैंने आप लोगोंको यह पुण्यदायक शिवलिङ्ग महाव्रत बता दिया॥ ९—१८॥

यह सभी महीनोंमें सामान्य शिवलिङ्गव्रत है; अब मैं विशेषका वर्णन करता हूँ। हे विप्रेन्द्रो! वैशाखमें वज्र (हीरा)-निर्मित लिङ्ग, ज्येष्ठमें मरकतनिर्मित लिङ्ग, आषाढ़में मोतीसे निर्मित लिङ्ग, सावनमें नीलमणिसे निर्मित लिङ्ग, भाद्रपदमासमें पद्मरागसे निर्मित सुन्दर लिङ्ग, आश्विन (क्वार)-में गोमेदसे निर्मित शुभ लिङ्ग, कार्तिकमें प्रवाल

वैडूर्यनिर्मितं लिङ्गं पुष्परागेण पुष्यके।
माघे च सूर्यकान्तेन फाल्गुने स्फाटिकेन च॥ २२

सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते।
अलाभे राजतं वापि केवलं कमलं तु वा॥ २३

रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा राजतेन वा।
रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत्॥ २४

शैलं वा दारुजं वापि मृन्मयं वा सवेदिकम्।
सर्वगन्धमयं वापि क्षणिकं परिकल्पयेत्॥ २५

हैमन्तिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत्।
सर्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा॥ २६

राजतं वापि कमलं हैमकर्णिकमुत्तमम्।
राजतस्याप्यभावे तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्॥ २७

सहस्रकमलालाभे तदर्धेनापि पूजयेत्।
तदर्धार्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा॥ २८

बिल्वपत्रे स्थिता लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता।
नीलोत्पलेऽम्बिका साक्षादुत्पले षण्मुखः स्वयम्॥ २९

पद्माश्रितो महादेवः सर्वदेवपतिः शिवः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीपत्रं न त्यजेद् बुधः॥ ३०

नीलोत्पलं चोत्पलं च कमलं च विशेषतः।
सर्ववश्यकरं पद्मं शिला सर्वार्थसिद्धिदा॥ ३१

कृष्णागरुसमुद्भूतं सर्वपापनिकृन्तनम्।
गुग्गुलुप्रभृतीनां च दीपानां च निवेदनम्॥ ३२

सर्वरोगक्षयं चैव चन्दनं सर्वसिद्धिदम्।
सौगन्धिकं तथा धूपं सर्वकामार्थसाधकम्॥ ३३

श्वेतागरूद्भवं चैव तथा कृष्णागरूद्भवम्।
सौम्यं सीतारिधूपं च साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥ ३४

(मूँगा)-से निर्मित लिङ्ग, मार्गशीर्ष (अगहन)-में वैडूर्यसे निर्मित लिङ्ग, पौषमें पुष्पराग (पुखराज)-से निर्मित लिङ्ग, माघमें सूर्यकान्तमणिसे निर्मित लिङ्ग तथा फाल्गुनमें स्फटिकसे निर्मित लिङ्गका यजन करना चाहिये॥ १९—२२॥

सभी महीनोंमें सुवर्णमय एक कमल बनानेका विधान है। सुवर्णके अभावमें चाँदीका कमल बनाना चाहिये। रत्नोंके अभावमें सोने अथवा चाँदीसे निर्माण करना चाहिये। चाँदीके भी अभावमें ताँबे अथवा लोहेसे बनाना चाहिये। वेदीसहित पाषाणका अथवा काष्ठका अथवा मिट्टीका सर्वगन्धमय लिङ्ग बनाये अथवा क्षणिक लिङ्गकी रचना करे॥ २३—२५॥

हेमन्त ऋतुमें बिल्वपत्रसे महादेवकी पूजा करनी चाहिये। सभी महीनोंमें एक सुवर्णमय कमल बनाना चाहिये अथवा सुवर्णकी कर्णिकायुक्त चाँदीका उत्तम कमल बनाना चाहिये और चाँदीके अभावमें बिल्वपत्रोंसे ही [शिवका] पूजन करना चाहिये। हजार कमलोंके अभावमें उसके आधेसे ही पूजन करना चाहिये अथवा उसके भी आधेसे अथवा कम-से-कम एक सौ आठ कमलोंसे रुद्रका पूजन करना चाहिये॥ २६—२८॥

बिल्वपत्रमें सर्वलक्षणयुक्त देवी लक्ष्मी, नीलोत्पलमें साक्षात् अम्बिका और उत्पलमें स्वयं षडानन विराजमान रहते हैं; सभी देवताओंके स्वामी महादेव शिव पद्ममें निवास करते हैं, अतः बुद्धिमान् मनुष्यको पूरे प्रयत्नसे बिल्वपत्रका [कभी भी] त्याग नहीं करना चाहिये और नीलोत्पल, उत्पल तथा विशेषकर कमलका त्याग नहीं करना चाहिये। पद्म सभीको वशमें करनेवाला होता है और शिला (मन:शिला) सभी सिद्धियोंको देनेवाली होती है। कृष्ण अगरुसे उत्पन्न धूप सभी पापोंको हरनेवाला, गुग्गुल आदिके दीपोंका निवेदन सभी रोगोंका क्षय करनेवाला, चन्दन सभी सिद्धियोंको देनेवाला और सुगन्धित धूप सभी कामनाओं तथा अर्थोंका साधक है। श्वेत अगरु तथा कृष्ण अगरुसे बनाया हुआ धूप और सौम्य सीतारि [नामक] धूप साक्षात् निर्वाण-सिद्धि प्रदान करनेवाला है॥ २९—३४॥

श्वेतार्ककुसुमे साक्षाच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः।
कर्णिकारस्य कुसुमे मेधा साक्षाद् व्यवस्थिता॥ ३५

करवीरे गणाध्यक्षो बके नारायणः स्वयम्।
सुगन्धिषु च सर्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा॥ ३६

तस्मादेतैर्यथालाभं पुष्पधूपादिभिः शुभैः।
पूजयेद्देवदेवेशं भक्त्या वित्तानुसारतः॥ ३७

श्वेत मदारके पुष्पमें साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्मा निवास करते हैं और कर्णिकारके पुष्पमें साक्षात् [देवी] मेधा निवास करती हैं। करवीरके पुष्पमें गणाध्यक्ष, बक पुष्पमें स्वयं नारायण और सभी सुगन्धित पुष्पोंमें [भगवती] पार्वती विराजमान हैं। अतः यथोपलब्ध इन पुष्पोंसे तथा शुभ पुष्प, धूप, दीप आदिसे भक्तिपूर्वक अपने वित्त-सामर्थ्यके अनुसार देवदेवेश [शिव]-की पूजा करनी चाहिये॥ ३५—३७॥

निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसं च महाचरुम्।
सघृतं सोपदंशं च सर्वद्रव्यसमन्वितम्॥ ३८

शुद्धान्नं वापि मुद्गान्नमाढकं चार्धकं तु वा।
चामरं तालवृन्तं च तस्मै भक्त्या निवेदयेत्॥ ३९

उपहाराणि पुण्यानि न्यायेनैवार्जितान्यपि।
नानाविधानि चार्हाणि प्रोक्षितान्यम्भसा पुनः॥ ४०

निवेदयेच्च रुद्राय भक्तियुक्तेन चेतसा।

तदनन्तर भक्तिपूर्वक पायस तथा महाचरु निवेदित करे और घृतयुक्त, व्यंजनोंसहित तथा अन्य द्रव्ययुक्त शुद्ध अन्न अथवा मूँगका अन्न एक आढ़क (चार प्रस्थ) अथवा उसका आधा समर्पित करे। पुनः चामर और तालवृन्त (ताड़का पंखा) उन्हें भक्तिपूर्वक निवेदित करे। इसी प्रकार न्यायपूर्वक अर्जित किये गये अनेक प्रकारके पवित्र पूजायोग्य उपहारोंको जलसे प्रोक्षित करके भक्तियुक्त चित्तसे [भगवान्] रुद्रको समर्पित करे॥ ३८—४०½॥

क्षीराद्वै सर्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं ध्रुवम्॥ ४१

विष्णुना जिष्णुना साक्षादन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
भूतानामन्नदानेन प्रीतिर्भवति शङ्करे॥ ४२

तस्मात्सम्पूजयेद्देवमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
उपहारे तथा तुष्टिर्व्यजने पवनः स्वयम्॥ ४३

सर्वात्मको महादेवो गन्धतोये ह्यपांपतिः।
पीठे वै प्रकृतिः साक्षान्महदाद्यैर्व्यवस्थिता॥ ४४

तस्माद्देवं यजेद्भक्त्या प्रतिमासं यथाविधि।
पौर्णमास्यां व्रतं कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये॥ ४५

सत्यं शौचं दया शान्तिः सन्तोषो दानमेव च।
पौर्णमास्याममावास्यामुपवासं च कारयेत्॥ ४६

जीतनेकी इच्छावाले विष्णुने सभी देवताओंकी स्थितिके लिये क्षीरसागरसे सारा अमृत खींचकर साक्षात् अन्नके भीतर स्थापित कर दिया। प्राणियोंको अन्नदान करनेसे शिवजीके प्रति अनुराग हो जाता है, अतः अन्नसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। अन्नमें प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं। उपहारमें तुष्टि विद्यमान रहती है। पंखेमें स्वयं वायुदेव वास करते हैं। महादेव सभी वस्तुओंमें विराजमान रहते हैं। जलदेवता (वरुण) सुगन्धित जलमें विद्यमान हैं। पीठ (वेदी)-में महत् आदिके साथ साक्षात् [देवी] प्रकृति विराजमान हैं। अतः प्रत्येक महीने विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करनी चाहिये। समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये पूर्णिमाको व्रत [अवश्य] करना चाहिये। [व्रतमें] सत्य, शुद्धता, दया, शान्ति, सन्तोष तथा दानशीलताका पालन करना चाहिये। पूर्णिमा तथा अमावस्याके दिन उपवास करना चाहिये॥ ४१—४६॥

संवत्सरान्ते गोदानं वृषोत्सर्गं विशेषतः।
भोजयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या श्रोत्रियान् वेदपारगान्॥ ४७

तल्लिङ्गं पूजितं तेन सर्वद्रव्यसमन्वितम्।
स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दापयेद् ब्राह्मणाय वा॥ ४८

वर्षके अन्तमें गोदान तथा विशेषरूपसे वृषोत्सर्ग करना चाहिये। वेदके पारगामी श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये। पूजा किये गये उस शिवलिङ्गको

य एवं सर्वमासेषु शिवलिङ्गमहाव्रतम्।
कुर्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठाः स एव तपतां वरः॥ ४९

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानै रत्नभूषितैः।
गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन॥ ५०

अथवा ह्येकमासं वा चरेदेवं व्रतोत्तमम्।
शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ५१

अथवा सक्तचित्तश्चेद्यान्यान् सञ्चिन्तयेद्वरान्।
वर्षमेकं चरेदेवं तांस्तान् प्राप्य शिवं व्रजेत्॥ ५२

देवत्वं वा पितृत्वं वा देवराजत्वमेव च।
गाणपत्यपदं वापि सक्तोऽपि लभते नरः॥ ५३

विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्।

द्रव्यार्थी च निधिं पश्येदायुःकामश्चिरायुषम्॥ ५४

यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान्प्राप्येह मोदते।
एकमासव्रतादेव सोऽन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात्॥ ५५

इदं पवित्रं परमं रहस्यं
व्रतोत्तमं विश्वसृजापि सृष्टम्।
हिताय देवासुरसिद्धमर्त्य-
विद्याधराणां परमं शिवेन॥ ५६

सम्पूज्य पूज्यं विधिनैवमीशं
प्रणम्य मूर्ध्ना सह भृत्यपुत्रैः।
व्यपोहनं नाम जपेत्स्तवं च
प्रदक्षिणं कृत्य शिवं प्रयत्नात्॥ ५७

पुराकृतं विश्वसृजा स्तवं च
हिताय देवेन जगत्त्रयस्य।
पितामहेनैव सुरैश्च सार्धं
महानुभावेन महार्घ्यमेतत्॥ ५८

सभी सामग्रियोंसहित शिवक्षेत्रमें स्थापित कर देना चाहिये अथवा ब्राह्मणको समर्पित कर देना चाहिये॥ ४७-४८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! जो इस प्रकार सभी मासोंमें शिवलिङ्ग महाव्रतको करता है, वही तप करनेवालोंमें श्रेष्ठ है और वह करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान तथा रत्नोंसे सुशोभित विमानोंसे शिवलोक पहुँचकर [वहाँसे] कभी भी इस लोकमें वापस नहीं आता है; अथवा जो एक महीने भी इसी प्रकार [इस] उत्तम व्रतको करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अथवा [सांसारिक भोगोंमें] आसक्तचित्तवाला व्यक्ति एक वर्षतक यदि इस प्रकार करे, तो वह जिन-जिन कामनाओंको [मनमें] संचित किये रहता है, उन-उनको प्राप्त करके शिवलोक जाता है। आसक्त मनुष्य भी [इसे करके] देवत्व, पितृत्व, इन्द्रत्व तथा गणाधिपतित्व प्राप्त कर लेता है॥ ४९—५३॥

विद्या चाहनेवाला विद्या प्राप्त करता है, भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त करता है, धन चाहनेवाला धन प्राप्त करता है और आयुकी कामना करनेवाला दीर्घ आयु प्राप्त करता है। जिन-जिन कामनाओंका मनुष्य चिन्तन करता है, उन-उनको एक मासके ही व्रतसे प्राप्त करके इस लोकमें आनन्दित रहता है और अन्तमें वह रुद्रत्व प्राप्त करता है॥ ५४-५५॥

विश्वका सृजन करनेवाले शिवने देवताओं, असुरों, सिद्धों, मनुष्यों तथा विद्याधरोंके हितके लिये इस परम पवित्र, परम रहस्यमय एवं उत्तम व्रतकी सृष्टि की है॥ ५६॥

इस प्रकार विधिपूर्वक ईश्वरकी पूजा करके सेवकों तथा पुत्रोंके साथ सिर झुकाकर प्रणाम करके प्रयत्नपूर्वक शिवकी प्रदक्षिणा करके व्यपोहन नामक स्तवका जप करना चाहिये॥ ५७॥

पूर्व कालमें विश्वकी रचना करनेवाले महानुभाव देव पितामह (ब्रह्मा)-ने देवताओंके साथ तीनों लोकोंके हितके लिये इस महामूल्यवान् स्तवको बनाया था॥ ५८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पशुपाशविमोचनलिङ्गपूजादिकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पशुपाशविमोचनलिङ्गपूजादिकथन' नामक इक्यासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८१॥

बयासीवाँ अध्याय

सभी पापोंका उच्छेदक तथा शिवसायुज्य प्रदान करनेवाला व्यपोहनस्तव और उसके पाठका फल

सूत उवाच

व्यपोहनस्तवं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदं शुभम्।
नन्दिनश्च मुखाच्छ्रुत्वा कुमारेण महात्मना॥ १
व्यासाय कथितं तस्माद् बहुमानेन वै मया।
नमः शिवाय शुद्धाय निर्मलाय यशस्विने॥ २
दुष्टान्तकाय सर्वाय भवाय परमात्मने।
पञ्चवक्त्रो दशभुजो ह्यक्षपञ्चदशैर्युतः॥ ३
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वोपरि सुसंस्थितः॥ ४
पद्मासनस्थः सोमेशः पापमाशु व्यपोहतु।
ईशानः पुरुषश्चैव अघोरः सद्य एव च॥ ५
वामदेवश्च भगवान् पापमाशु व्यपोहतु।
अनन्तः सर्वविद्येशः सर्वज्ञः सर्वदः प्रभुः॥ ६
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु।
सूक्ष्मः सुरासुरेशानो विश्वेशो गणपूजितः॥ ७
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु।
शिवोत्तमो महापूज्यः शिवध्यानपरायणः॥ ८
सर्वगः सर्वदः शान्तः स मे पापं व्यपोहतु।
एकाक्षो भगवानीशः शिवार्चनपरायणः॥ ९
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु।
त्रिमूर्तिर्भगवानीशः शिवभक्तिप्रबोधकः॥ १०
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु।
श्रीकण्ठः श्रीपतिः श्रीमान् शिवध्यानरतः सदा॥ ११
शिवार्चनरतः साक्षात् स मे पापं व्यपोहतु।
शिखण्डी भगवान् शान्तः शवभस्मानुलेपनः॥ १२
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु।
त्रैलोक्यनमिता देवी सोल्काकारा पुरातनी॥ १३
दाक्षायणी महादेवी गौरी हैमवती शुभा।
एकपर्णाग्रजा सौम्या तथा वै चैकपाटला॥ १४
अपर्णा वरदा देवी वरदानैकतत्परा।
उमासुरहरा साक्षात्कौशिकी वा कपर्दिनी॥ १५

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] अब मैं सभी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले मंगलमय व्यपोहनस्तवको बताऊँगा; इसे नन्दीके मुखसे सुनकर महात्मा सनत्कुमारने व्यासजीको बताया और उनसे परम आदरपूर्वक मैंने सुना। कल्याणकारी, शुद्ध, निर्मल, यशस्वी, दुष्टोंका नाश करनेवाले, सर्व, भव तथा परमात्माको नमस्कार है। पाँच मुखोंवाले, दस भुजाओंवाले, पन्द्रह नेत्रोंसे युक्त, शुद्ध स्फटिकके सदृश कान्तिमान्, सभी आभूषणोंसे विभूषित, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, शान्त, सबसे ऊपर प्रतिष्ठित तथा पद्मासनपर स्थित उमासहित भगवान् शिव पापको शीघ्र दूर करें॥ १—४$^{1}/_{2}$॥

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात तथा भगवान् वामदेव पापको शीघ्र दूर करें। वे अनन्त, सर्वविद्येश, सर्वज्ञ, सर्वद, प्रभु तथा शिवध्यानैकसम्पन्न मेरे पापको दूर करें। वे सूक्ष्म, सुरासुरेशान, विश्वेश, गणपूजित तथा शिवध्यानैकसम्पन्न मेरे पापको दूर करें। वे शिवोत्तम, महापूज्य, शिवध्यानपरायण, सर्वग, सर्वद तथा शान्त मेरे पापको दूर करें। वे एकाक्ष, भगवान्, ईश, शिवार्चन-परायण तथा शिवध्यानैकसम्पन्न सदा मेरे पापको दूर करें॥ ५—९$^{1}/_{2}$॥

वे त्रिमूर्ति, भगवान्, ईश, शिवभक्तिप्रबोधक तथा शिवध्यानैकसम्पन्न मेरे पापको दूर करें। वे श्रीकण्ठ, श्रीपति, श्रीमान्, सदा शिवध्यानरत तथा शिवार्चनरत मेरे पापको दूर करें। वे शिखण्डी, भगवान्, शान्त, शवभस्मानुलेपन, शिवार्चनरत तथा श्रीमान् मेरे पापको दूर करें॥ १०—१२$^{1}/_{2}$॥

जो तीनों लोकोंद्वारा नमस्कृत, उल्काके आकारवाली, सनातनी देवी, दक्षकन्या, महादेवी, गौरी, हिमालयपुत्री, कल्याणमयी, एकपर्णा, अग्रजा, सौम्या, एकपाटला, अपर्णा, वरदायिनी, वरप्रदान करनेमें सदा तत्पर, उमा, असुरोंका संहार करनेवाली साक्षात् कौशिकी, कपर्दिनी,

खट्वाङ्गधारिणी दिव्या कराग्रतरुपल्लवा।
नैगमेयादिभिर्दिव्यैश्चतुर्भिः पुत्रकैर्वृता॥ १६
मेनाया नन्दिनी देवी वारिजा वारिजेक्षणा।
अम्बा या वीतशोकस्य नन्दिनश्च महात्मनः॥ १७
शुभावत्याः सखी शान्ता पञ्चचूडा वरप्रदा।
सृष्ट्यर्थं सर्वभूतानां प्रकृतित्वं गताव्यया॥ १८
त्रयोविंशतिभिस्तत्त्वैर्महदाद्यैर्विजृम्भिता।
लक्ष्म्यादिशक्तिभिर्नित्यं नमिता नन्दनन्दिनी॥ १९
मनोन्मनी महादेवी मायावी मण्डनप्रिया।
मायया या जगत्सर्वं ब्रह्माद्यं सचराचरम्॥ २०
क्षोभिणी मोहिनी नित्यं योगिनां हृदि संस्थिता।
एकानेकस्थिता लोके इन्दीवरनिभेक्षणा॥ २१
भक्त्या परमया नित्यं सर्वदेवैरभिष्टुता।
गणेन्द्राम्भोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशपूर्वकैः॥ २२
संस्तुता जननी तेषां सर्वोपद्रवनाशिनी।
भक्तानामार्तिहा भव्या भवभावविनाशनी॥ २३
भुक्तिमुक्तिप्रदा दिव्या भक्तानामप्रयत्नतः।
सा मे साक्षान्महादेवी पापमाशु व्यपोहतु॥ २४
चण्डः सर्वगणेशानो मुखाच्छम्भोर्विनिर्गतः।
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥ २५
शालङ्कायनपुत्रस्तु हलमार्गोत्थितः प्रभुः।
जामाता मरुतां देवः सर्वभूतमहेश्वरः॥ २६
सर्वगः सर्वदृक् शर्वः सर्वेशसदृशः प्रभुः।
सनारायणकैर्देवैः सेन्द्रचन्द्रदिवाकरैः॥ २७
सिद्धैश्च यक्षगन्धर्वैर्भूतैर्भूतविधायकैः।
उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥ २८
स्तुतस्त्रैलोक्यनाथस्तु मुनिरन्तःपुरं स्थितः।
सर्वदा पूजितः सर्वैर्नन्दी पापं व्यपोहतु॥ २९

खट्वांग धारण करनेवाली, दिव्य, हाथके अग्रभागमें वृक्षका पल्लव धारण करनेवाली, नैगमेय* आदि चारों दिव्य पुत्रोंसे घिरी हुई, मेनाकी पुत्री, जलसे उत्पन्न, कमलके समान नेत्रोंवाली, शोकरहित महात्मा नन्दीकी अम्बा (माता), शुभावतीकी सखी, शान्त स्वभाववाली, पंचचूड़ा, वर प्रदान करनेवाली, सभी प्राणियोंकी सृष्टिके लिये प्रकृतिके स्वरूपको प्राप्त, अव्यय (शाश्वत), महत् आदि तेईस तत्त्वोंसे सम्पन्न, लक्ष्मी आदि शक्तियोंसे सदा नमस्कृत, नन्दनन्दिनी, महादेवी मनोन्मनी, मायामयी, अलंकरणसे प्रीति करनेवाली, [अपनी] मायासे ब्रह्मा आदि तथा चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्को क्षुब्ध एवं मोहित करनेवाली, योगियोंके हृदयमें सर्वदा विराजमान, संसारमें एक तथा अनेक रूपोंमें स्थित, नीलकमलके समान नेत्रोंवाली, गणेश्वरों-ब्रह्मा-इन्द्र-यम-कुबेर आदि सभी देवताओंके द्वारा परम भक्तिसे नित्य स्तुत होनेवाली, [उनके द्वारा] स्तुत होकर उनकी माताके रूपमें सभी विपत्तियोंका नाश करनेवाली, भक्तोंके कष्टोंका हरण करनेवाली, भव्य, सांसारिक भावोंको नष्ट करनेवाली, दिव्य और बिना प्रयासके भक्तोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं—वे साक्षात् महादेवी मेरे पापको शीघ्र दूर करें॥ १३—२४॥

जो सभी गणोंके ईश, शम्भुके मुखसे निकले हुए, शिवार्चनमें लीन तथा श्रीयुक्त चण्ड हैं; वे मेरे पापको दूर करें। शालंकायनके पुत्र, हलमार्गसे उत्पन्न, ऐश्वर्यशाली, मरुतोंके जामाता, देवता, सभी भूतोंके महेश्वर, सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा, शर्व, सर्वेश्वरके समान प्रभुत्वसम्पन्न, नारायण-इन्द्र-चन्द्र-सूर्य आदि देवताओं-सिद्धों-यक्षों-गन्धर्वों-भूतों, भूतोंका सृजन करनेवालों-उरगों-ऋषियों-महात्मा ब्रह्माके द्वारा स्तुत, तीनों लोकोंके स्वामी, मुनियोंके हृदयमें विराजमान और सबके द्वारा सर्वदा पूजित नन्दी [मेरे] पापको दूर करें॥ २५—२९॥

* सुश्रुतसंहिताके उत्तरतन्त्र अध्याय २७—३७ तकमें छोटे शिशुओंमें जो रोग होते हैं, उन्हें ग्रहोंसे उत्पन्न बताया गया है। स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेय (पितृग्रह)—ये नौ ग्रह बताये गये हैं। इन नौ ग्रहोंसे पीड़ित बालकके लक्षण अलग-अलग होते हैं। लक्षणोंके आधारपर यह ज्ञान होता है कि बालक अमुक ग्रहसे पीड़ित है। नैगम ग्रहसे पीड़ित बालकके मुखसे झाग गिरता है, वह हर समय बेचैन रहता है तथा ऊपरकी ओर देखता हुआ बराबर रोता है,

महाकायो महातेजा महादेव इवापरः।
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥ ३०

मेरुमन्दारकैलासतटकूटप्रभेदनः ।
ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैश्च सुपूजितः॥ ३१

सप्तपातालपादश्च सप्तद्वीपोरुजङ्घकः।
सप्तार्णवाङ्कुशश्चैव सर्वतीर्थोदरः शिवः॥ ३२

आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः।
हतासुरमहावृक्षो ब्रह्मविद्यामहोत्कटः॥ ३३

ब्रह्माद्याधोरणैर्दिव्यैर्योगपाशसमन्वितैः ।
बद्धो हृत्पुण्डरीकाख्ये स्तम्भे वृत्तिं निरुध्य च॥ ३४

नागेन्द्रवक्त्रो यः साक्षाद् गणकोटिशतैर्वृतः।
शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहतु॥ ३५

महातेजस्वी, दूसरे महादेवसदृश, श्रीयुक्त तथा शिवके अर्चनमें लीन महाकाय मेरे पापको दूर करें। जो मेरु, मन्दर, कैलासकी चोटियोंका भेदन करनेवाले हैं; जो ऐरावत आदि दिव्य दिग्गजोंसे सम्यक् पूजित हैं; सातों पाताल जिनके पैर हैं; सातों द्वीप जिनके ऊरु तथा जंघा हैं; सातों समुद्र जिनके अंकुश हैं; सभी तीर्थ जिनके उदर हैं; जो कल्याणकारी हैं; आकाश जिनका शरीर है; दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं; चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि जिनके नेत्र हैं; जिन्होंने असुररूपी महावृक्षको काट डाला है; जो ब्रह्मविद्यासे परम उत्कट हैं; अपनी चित्तवृत्तिको रोककर दिव्य तथा योगपाशसे समन्वित ब्रह्मा आदि महावतोंके द्वारा जो हृदयकमलरूपी स्तम्भमें आबद्ध किये गये हैं; जो गजराजके समान मुखवाले हैं; जो साक्षात् करोड़ों गणोंसे घिरे हुए हैं तथा जो एकमात्र शिवध्यानमें लीन हैं, वे [गजानन] मेरे पापको दूर करें॥ ३०—३५॥

भृङ्गीशः पिङ्गलाक्षोऽसौ भसिताशस्तु देहयुक्।
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥ ३६

चतुर्भिस्तनुभिर्नित्यं सर्वासुरनिबर्हणः।
स्कन्दः शक्तिधरः शान्तः सेनानीः शिखिवाहनः॥ ३७

देवसेनापतिः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु।
भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्तथा॥ ३८

उग्रो भीमो महादेवः शिवार्चनरतः सदा।
एताः पापं व्यपोहन्तु मूर्तयः परमेष्ठिनः॥ ३९

जो पिंगल वर्णके नेत्रवाले, भस्मको ग्रहण करनेवाले, विशिष्ट देहयुक्त, शिवार्चनमें लीन तथा ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, वे भृंगीश मेरे पापको दूर करें। जो [अपने] चार शरीरोंसे सर्वदा सभी असुरोंका संहार करनेवाले, शक्तिधर, शान्तस्वभाव, सेनानी, मयूर वाहनवाले, देवसेनाके सेनापति तथा श्रीसम्पन्न हैं, वे स्कन्द मेरे पापको दूर करें। शिवार्चनमें सदा संलग्न, भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम तथा महादेव, परमेष्ठी [सदाशिव]-की ये मूर्तियाँ [मेरे] पापको दूर करें॥ ३६—३९॥

महादेवः शिवो रुद्रः शङ्करो नीललोहितः।
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः॥ ४०

कपालीशश्च विज्ञेयो रुद्रा रुद्रांशसम्भवाः।
शिवप्रणामसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम॥ ४१

महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव भवोद्भव, कपाली तथा ईश—ये रुद्रके अंशसे उत्पन्न हैं, अतः इन्हें रुद्र ही जानना चाहिये; शिवको प्रणाम करनेमें तत्पर ये [रुद्र] मेरे पापको दूर करें॥ ४०-४१॥

विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः॥ ४२

विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि,

ज्वरसे पीड़ित रहता है, उसके शरीरसे वसाके समान गन्ध आती है, वह बार-बार बेहोश हो जाता है इत्यादि। सुश्रुतसंहितामें इन अरिष्टकारी बालग्रहोंकी चिकित्सा भी बतायी गयी है और इन ग्रहोंके स्वामी स्कन्दग्रहसे प्रार्थना की गयी है कि मेरा बच्चा वेदना और रोगसे शीघ्र कष्टमुक्त हो स्वस्थ हो जाय—'नीरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मे जायतां द्रुतम्' (सुश्रुत० उत्त० २७। २१)। ये सभी ग्रह दिव्य तथा ऐश्वर्यशाली हैं। कृत्तिका, पार्वती, अग्नि तथा महादेवजीने अपने पुत्र कार्तिकेयकी रक्षाके लिये इन्हें उत्पन्न किया है। नैगमेयको पार्वतीका पुत्र बताया गया है। इसका मुख भेड़के समान है।

आदित्यश्च तथा सूर्यश्चांशुमांश्च दिवाकरः।
एते वै द्वादशादित्या व्यपोहन्तु मलं मम॥ ४३
गगनं स्पर्शनं तेजो रसश्च पृथिवी तथा।
चन्द्रः सूर्यस्तथात्मा च तनवः शिवभाषिताः॥ ४४
पापं व्यपोहन्तु मम भयं निर्नाशयन्तु मे।
वासवः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च॥ ४५
वरुणो वायुसोमौ च ईशानो भगवान् हरिः।
पितामहश्च भगवान् शिवध्यानपरायणः॥ ४६
एते पापं व्यपोहन्तु मनसा कर्मणा कृतम्।
नभस्वान् स्पर्शनो वायुरनिलो मारुतस्तथा॥ ४७
प्राणः प्राणेशजीवेशौ मारुतः शिवभाषिताः।
शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहन्तु मलं मम॥ ४८
खेचरी वसुचारी च ब्रह्मेशो ब्रह्म ब्रह्मधीः।
सुषेणः शाश्वतः पुष्टः सुपुष्टश्च महाबलः॥ ४९
एते वै चारणाः शम्भोः पूजयातीव भाविताः।
व्यपोहन्तु मलं सर्वं पापं चैव मया कृतम्॥ ५०
मन्त्रज्ञो मन्त्रवित्प्राज्ञो मन्त्रराट् सिद्धपूजितः।
सिद्धवत्परमः सिद्धः सर्वसिद्धिप्रदायिनः॥ ५१
व्यपोहन्तु मलं सर्वे सिद्धाः शिवपदार्चकाः।
यक्षो यक्षेश धनदो जृम्भको मणिभद्रकः॥ ५२
पूर्णभद्रेश्वरो माली शितिकुण्डलिरेव च।
नरेन्द्रश्चैव यक्षेशा व्यपोहन्तु मलं मम॥ ५३
अनन्तः कुलिकश्चैव वासुकिस्तक्षकस्तथा।
कर्कोटको महापद्मः शङ्खपालो महाबलः॥ ५४
शिवप्रणामसम्पन्नाः शिवदेहप्रभूषणाः।
मम पापं व्यपोहन्तु विषं स्थावरजङ्गमम्॥ ५५
वीणाज्ञः किन्नरश्चैव सुरसेनः प्रमर्दनः।
अतीशयः सप्रयोगी गीतज्ञश्चैव किन्नराः॥ ५६
शिवप्रणामसम्पन्नाः व्यपोहन्तु मलं मम।
विद्याधरश्च विबुधो विद्याराशिर्विदां वरः॥ ५७
विबुद्धो विबुधः श्रीमान् कृतज्ञश्च महायशाः।
एते विद्याधराः सर्वे शिवध्यानपरायणाः॥ ५८
व्यपोहन्तु मलं घोरं महादेवप्रसादतः।
वामदेवी महाजम्भः कालनेमिर्महाबलः॥ ५९
सुग्रीवो मर्दकश्चैव पिङ्गलो देवमर्दनः।
प्रह्लादश्चाप्यनुह्लादः संह्लादः किल बाष्कलौ॥ ६०
जम्भः कुम्भश्च मायावी कार्तवीर्यः कृतञ्जयः।
एतेऽसुरा महात्मानो महादेवपरायणाः॥ ६१
व्यपोहन्तु भयं घोरमासुरं भावमेव च।
गरुत्मान् खगतिश्चैव पक्षिराट् नागमर्दनः॥ ६२

लोकप्रकाशक, लोकसाक्षी, त्रिविक्रम, आदित्य, सूर्य, अंशुमान् तथा दिवाकर—ये बारह आदित्य मेरे पापको दूर करें॥ ४२-४३॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य तथा आत्मा—ये शिवजीकी मूर्तियाँ कही गयी हैं; ये मेरे पापको दूर करें और मेरे भयका नाश करें। इन्द्र, पावक, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, भगवान् हरि तथा शिवध्यानमें लीन प्रभु ब्रह्मा—ये मेरेद्वारा मन तथा कर्मसे किये गये पापको दूर करें॥ ४४—४६½॥

नभस्वान्, स्पर्शन, वायु, अनिल, मारुत, प्राण, प्राणेश और जीवेश—ये सब शिवभाषित तथा शिवार्चनपरायण मारुत मेरे पापको दूर करें। खेचरी, वसुचारी, ब्रह्मेश, ब्रह्म, ब्रह्मधी, सुषेण, शाश्वत, पुष्ट, सुपुष्ट, महाबल—ये चारण जो शम्भुकी पूजासे अत्यन्त पवित्र हैं, मेरेद्वारा किये गये समस्त पाप तथा दोषको दूर करें॥ ४७—५०॥

मन्त्रज्ञ, मन्त्रविद्, प्राज्ञ, मन्त्रराट्, सिद्धपूजित, सिद्धवत् और परमसिद्ध—ये सभी [सप्त] सिद्धगण जो सभी सिद्धियोंके प्रदाता तथा शिवके चरणोंके उपासक हैं, मेरे पापको दूर करें। यक्ष, यक्षेश, धनद, जृम्भक, मणिभद्रक, पूर्णभद्रेश्वर, माली, शितिकुण्डलि और नरेन्द्र—ये यक्षोंके स्वामी मेरे पापको दूर करें॥ ५१—५३॥

शिवके प्रणाममें रत तथा शिवके शरीरके आभूषणस्वरूप अनन्त, कुलिक, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, महापद्म, शंखपाल और महाबल मेरे पापको तथा स्थावर-जंगम विषको दूर करें॥ ५४-५५॥

शिवको प्रणाम करनेमें तल्लीन वीणाज्ञ, किन्नर, सुरसेन, प्रमर्दन, अतीशय, सप्रयोगी और गीतज्ञ—ये किन्नरगण मेरे पापको दूर करें। विद्याधर विबुध, विद्याराशि, विदांवर, विबुद्ध, विबुध, श्रीमान्, कृतज्ञ और महायश—ये सभी शिवध्यानपरायण विद्याधर महादेवकी कृपासे मेरे घोर पापको दूर करें॥ ५६—५८½॥

वामदेवी, महाजम्भ, कालनेमि, महाबल, सुग्रीव, मर्दक, पिंगल, देवमर्दन, प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, बाष्कलद्वय, जम्भ, कुम्भ, मायावी, कार्तवीर्य, कृतंजय—ये महादेवपरायण महात्मा असुर मेरे घोर भय तथा

नागशत्रुर्हिरण्याङ्गो वैनतेयः प्रभञ्जनः।
नागाशीर्विषनाशश्च विष्णुवाहन एव च॥ ६३
एते हिरण्यवर्णाभा गरुडा विष्णुवाहनाः।
नानाभरणसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम॥ ६४
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च अङ्गिरा भृगुरेव च।
काश्यपो नारदश्चैव दधीचश्च्यवनस्तथा॥ ६५
उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः।
शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहन्तु मलं मम॥ ६६
पितरः पितामहाश्च तथैव प्रपितामहाः।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदस्तथा मातामहादयः॥ ६७
व्यपोहन्तु भयं पापं शिवध्यानपरायणाः।
लक्ष्मीश्च धरणी चैव गायत्री च सरस्वती॥ ६८
दुर्गा उषा शची ज्येष्ठा मातरः सुरपूजिताः।
देवानां मातरश्चैव गणानां मातरस्तथा॥ ६९
भूतानां मातरः सर्वा यत्र या गणमातरः।
प्रसादाद्देवदेवस्य व्यपोहन्तु मलं मम॥ ७०
उर्वशी मेनका चैव रम्भारतितिलोत्तमाः।
सुमुखी दुर्मुखी चैव कामुकी कामवर्धनी॥ ७१
तथान्याः सर्वलोकेषु दिव्याश्चाप्सरसस्तथा।
शिवाय ताण्डवं नित्यं कुर्वन्त्योऽतीव भाविताः॥ ७२
देव्यः शिवार्चनरता व्यपोहन्तु मलं मम।
अर्कः सोमोऽङ्गारकश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः॥ ७३
शुक्रः शनैश्चरश्चैव राहुः केतुस्तथैव च।
व्यपोहन्तु भयं घोरं ग्रहपीडां शिवार्चकाः॥ ७४
मेषो वृषोऽथ मिथुनस्तथा कर्कटकः शुभः।
सिंहश्च कन्या विपुला तुला वै वृश्चिकस्तथा॥ ७५
धनुश्च मकरश्चैव कुम्भो मीनस्तथैव च।
राशयो द्वादश ह्येते शिवपूजापरायणाः॥ ७६
व्यपोहन्तु भयं पापं प्रसादात्परमेष्ठिनः।
अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा॥ ७७
श्रीमन्मृगशिरश्चार्द्रा पुनर्वसुपुष्यसार्पकाः।
मघा वै पूर्वफाल्गुन्य उत्तराफाल्गुनी तथा॥ ७८
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका।
ज्येष्ठा मूलं महाभागा पूर्वाषाढा तथैव च॥ ७९
उत्तराषाढिका चैव श्रवणं च श्रविष्ठिका।
शतभिषक्पूर्वभद्रा च तथा प्रोष्ठपदा तथा॥ ८०
पौष्णं च देव्यः सततं व्यपोहन्तु मलं मम।
ज्वरः कुम्भोदरश्चैव शङ्कुकर्णो महाबलः॥ ८१

आसुरी भावको दूर करें। गरुत्मान्, खगति, पक्षिराट्, नागमर्दन, नागशत्रु, हिरण्यांग, वैनतेय, प्रभंजन, नागाशी, विषनाश, विष्णुवाहन—ये सुवर्णके रंगवाले तथा अनेकविध आभूषणोंसे युक्त विष्णुवाहन गरुड़ मेरे पापको दूर करें॥ ५९—६४॥

अगस्त्य, वसिष्ठ, अंगिरा, भृगु, काश्यप, नारद, दधीच, च्यवन, उपमन्यु—ये तथा अन्य शिवभक्त और शिवार्चनपरायण समस्त ऋषि मेरे पापको दूर करें॥ ६५-६६॥

शिवके ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले पिता, पितामह, प्रपितामह, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् तथा मातामह आदि [मेरे] भय तथा पापको दूर करें। लक्ष्मी, धरणी, गायत्री, सरस्वती, दुर्गा, उषा, शची तथा ज्येष्ठा—ये देवपूजित माताएँ, देवताओंकी माताएँ, गणोंकी माताएँ, भूतोंकी माताएँ तथा अन्य जो भी गणमाताएँ जहाँ-कहीं भी हों—वे सब देवदेव [शिव]-के अनुग्रहसे मेरे पापको दूर करें॥ ६७—७०॥

अत्यन्त भक्तियुक्त होकर शिवके लिये नित्य ताण्डव [नृत्य] करनेवाली तथा शिवार्चनमें रत रहनेवाली उर्वशी, मेनका, रम्भा, रति, तिलोत्तमा, सुमुखी, दुर्मुखी, कामुकी, कामवर्धनी—ये तथा सभी लोकोंकी अन्य दिव्य अप्सराएँ और देवियाँ मेरे पापको दूर करें॥ ७१-७२$^{1}/_{2}$॥

शिवका अर्चन करनेवाले सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु [मेरे] घोर भय तथा ग्रहकष्टका निवारण करें। मेष, वृष, मिथुन, शुभ कर्क, सिंह, कन्या, विशद तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—ये बारह शिवपूजापरायण राशियाँ महेश्वरकी कृपासे [मेरे] भय तथा पापको दूर करें। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, श्रीयुक्त मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, महाभाग पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद तथा रेवती—ये देवियाँ निरन्तर मेरे पापको दूर करें॥ ७३—८०$^{1}/_{2}$॥

ज्वर, कुम्भोदर, शंकुकर्ण, महाबल, महाकर्ण,

महाकर्णः प्रभातश्च महाभूतप्रमर्दनः।
श्येनजिच्छिवदूतश्च प्रमथाः प्रीतिवर्धनाः॥ ८२

कोटिकोटिशतैश्चैव भूतानां मातरः सदा।
व्यपोहन्तु भयं पापं महादेवप्रसादतः॥ ८३

शिवध्यानैकसम्पन्नो हिमराडम्बुसन्निभः।
कुन्देन्दुसदृशाकारः कुम्भकुन्देन्दुभूषणः॥ ८४

वडवानलशत्रुर्यो वडवामुखभेदनः।
चतुष्पादसमायुक्तः क्षीरोद इव पाण्डुरः॥ ८५

रुद्रलोके स्थितो नित्यं रुद्रैः सार्धं गणेश्वरैः।
वृषेन्द्रो विश्वधृग्देवो विश्वस्य जगतः पिता॥ ८६

वृतो नन्दादिभिर्नित्यं मातृभिर्मखमर्दनः।
शिवार्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहतु॥ ८७

गङ्गा माता जगन्माता रुद्रलोके व्यवस्थिता।
शिवभक्ता तु या नन्दा सा मे पापं व्यपोहतु॥ ८८

भद्रा भद्रपदा देवी शिवलोके व्यवस्थिता।
माता गवां महाभागा सा मे पापं व्यपोहतु॥ ८९

सुरभिः सर्वतोभद्रा सर्वपापप्रणाशनी।
रुद्रपूजारता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥ ९०

सुशीला शीलसम्पन्ना श्रीप्रदा शिवभाविता।
शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥ ९१

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वकार्याभिचिन्तकः।
समस्तगुणसम्पन्नः सर्वदेवेश्वरात्मजः॥ ९२

ज्येष्ठः सर्वेश्वरः सौम्यो महाविष्णुतनुः स्वयम्।
आर्यः सेनापतिः साक्षाद् गहनो मखमर्दनः॥ ९३

ऐरावतगजारूढः कृष्णकुञ्चितमूर्धजः।
कृष्णाङ्गो रक्तनयनः शशिपन्नगभूषणः॥ ९४

भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कूष्माण्डैश्च समावृतः।
शिवार्चनरतः साक्षात् स मे पापं व्यपोहतु॥ ९५

प्रभात, महाभूतप्रमर्दन, श्येनजित्, शिवदूत—ये प्रीतिवर्धक प्रमथगण और करोड़ों-करोड़ों भूतोंसहित माताएँ महादेवकी कृपासे [मेरे] भय तथा पापको सर्वदा दूर करें॥ ८१—८३॥

जो एकमात्र शिवके ध्यानमें तल्लीन, हिमालयसे प्रादुर्भूत गंगाके जलके समान पापनाशक, कुन्द [पुष्प] तथा चन्द्रमाके समान आकारवाले, कुम्भ-कुन्दपुष्पों तथा इन्दुको भूषणके रूपमें धारण करनेवाले, बड़वानलके शत्रु, बड़वाके मुखका भेदन करनेवाले हैं, चार पैरोंवाले, क्षीरसागरके समान पाण्डुर वर्णवाले, रुद्रों तथा गणेश्वरोंके साथ सदा रुद्रलोकमें रहनेवाले, विश्वको धारण करनेवाले, सम्पूर्ण जगत‍्के पिता, नन्दा आदि माताओंसे सदा घिरे हुए, यज्ञका नाश करनेवाले तथा शिवार्चनपरायण हैं—वे वृषेन्द्र मेरे पापको सदा दूर करें॥ ८४—८७॥

रुद्रलोकमें स्थित जगज्जननी गंगामाता मेरे पापको दूर करें। जो शिवभक्त नन्दा नामक गौ हैं, वे मेरे पापको दूर करें। भद्रपदवाली, शिवलोकमें स्थित, गायोंकी माता महाभाग्यशालिनी जो देवी भद्रा नामक गौ हैं, वे मेरे पापको दूर करें। सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली, सभी पापोंका नाश करनेवाली तथा सदा रुद्रपूजामें लीन रहनेवाली वे सुरभि नामक गौ मेरे पापको दूर करें। शीलसे सम्पन्न, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, शिवभक्त तथा नित्य शिवलोकमें रहनेवाली वे सुशीला नामक गौ मेरे पापको दूर करें॥ ८८—९१॥

वेदों तथा शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वके ज्ञाता, समस्त कार्योंका चिन्तन करनेवाले, सभी गुणोंसे सम्पन्न, सर्वदेवेश्वर [शिव]-के पुत्र, श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, सौम्य, साक्षात् महाविष्णुके विग्रहस्वरूप, देवताओंके सेनापति, गम्भीरतासे युक्त, यज्ञको विनष्ट करनेवाले, ऐरावत हाथीपर सवार, काले तथा घुँघराले केशवाले, कृष्णवर्णके अंगवाले, लाल नेत्रोंवाले, चन्द्रमा तथा सर्पके आभूषणवाले, भूतों-प्रेतों-पिशाचों तथा कूष्माण्डोंसे घिरे हुए और शिवार्चनमें तल्लीन वे आर्य कालभैरव मेरे पापको दूर करें॥ ९२—९५॥

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाग्नेयिका तथा॥ ९६

एता वै मातरः सर्वाः सर्वलोकप्रपूजिताः।
योगिनीभिर्महापापं व्यपोहन्तु समाहिताः॥ ९७

ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, आग्नेयिका—समस्त लोकोंसे पूजित तथा योगिनियोंसे घिरी हुई ये सभी माताएँ [मेरे] महापापको दूर करें॥ ९६-९७॥

वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः।
रुद्रस्य तनयो रौद्रः शूलासक्तमहाकरः॥ ९८

सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वायुधधरः स्वयम्।
त्रेताग्निनयनो देवस्त्रैलोक्याभयदः प्रभुः॥ ९९

मातॄणां रक्षको नित्यं महावृषभवाहनः।
त्रैलोक्यनमितः श्रीमान् शिवपादार्चने रतः॥ १००

यज्ञस्य च शिरश्छेत्ता पूष्णो दन्तविनाशनः।
वह्नेर्हस्तहरः साक्षाद् भगनेत्रनिपातनः॥ १०१

पादाङ्गुष्ठेन सोमाङ्गपेषकः प्रभुसंज्ञकः।
उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गरक्षकः॥ १०२

सरस्वत्या महादेव्या नासिकोष्ठावकर्तनः।
गणेश्वरो यः सेनानीः स मे पापं व्यपोहतु॥ १०३

महातेजस्वी, हिम (बर्फ)-कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमाके सदृश, रुद्रके पुत्र, भयानक, शूलयुक्त विशाल भुजावाले, हजार भुजाओंवाले, सब कुछ जाननेवाले, सभी प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, तीन अग्निरूप नेत्रवाले, देवस्वरूप, तीनों लोकोंको अभय प्रदान करनेवाले, ऐश्वर्यशाली, माताओंकी सर्वदा रक्षा करनेवाले, महान् वृषभपर आरूढ़, तीनों लोकोंसे नमस्कृत, श्रीयुक्त, शिवके पादार्चनमें तल्लीन, यज्ञके सिरका छेदन करनेवाले, पूषाके दाँतको तोड़नेवाले, अग्निके हाथको नष्ट करनेवाले, साक्षात् भगके नेत्रको नीचे गिरानेवाले, [अपने] पैरके अँगूठेसे सोमके अंगको पीसनेवाले, प्रभु नामवाले, उपेन्द्र-इन्द्र-यम आदि देवताओंके अंगरक्षक, महादेवी सरस्वतीके ओठ तथा नाकको काटनेवाले, गणोंके ईश्वर (स्वामी) तथा सेनानायक जो वीरभद्र हैं—वे मेरे पापको दूर करें॥ ९८—१०३॥

ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा वराभरणभूषिता।
महालक्ष्मीर्जगन्माता सा मे पापं व्यपोहतु॥ १०४

महामोहा महाभागा महाभूतगणैर्वृता।
शिवार्चनरता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥ १०५

लक्ष्मीः सर्वगुणोपेता सर्वलक्षणसंयुता।
सर्वदा सर्वगा देवी सा मे पापं व्यपोहतु॥ १०६

सिंहारूढा महादेवी पार्वत्यास्तनयाव्यया।
विष्णोर्निद्रा महामाया वैष्णवी सुरपूजिता॥ १०७

त्रिनेत्रा वरदा देवी महिषासुरमर्दिनी।
शिवार्चनरता दुर्गा सा मे पापं व्यपोहतु॥ १०८

ज्येष्ठ, वरिष्ठ, वरदायिनी, श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित तथा जगज्जननी जो महालक्ष्मी हैं—वे मेरे पापको दूर करें। महाभाग्यवती, महान् भूतगणोंसे घिरी हुई तथा शिवपूजनमें सदा रत जो महामोहा (महामाया) हैं—वे मेरे पापको दूर करें। सभी गुणोंसे सम्पन्न, सभी लक्षणोंसे युक्त, सब कुछ देनेवाली और सर्वत्र गमन करनेवाली जो देवी लक्ष्मी हैं—वे मेरे पापको दूर करें। सिंहपर आरूढ़, पार्वतीकी पुत्री, शाश्वत, विष्णुकी निद्रारूपा, महामाया, वैष्णवी (विष्णुकी शक्ति), देवताओंसे पूजित, तीन नेत्रोंवाली, वर प्रदान करनेवाली, महिषासुरका संहार करनेवाली तथा शिवके अर्चनमें तल्लीन जो महादेवी भगवती दुर्गा हैं—वे मेरे पापको दूर करें॥ १०४—१०८॥

ब्रह्माण्डधारका रुद्राः सर्वलोकप्रपूजिताः।
सत्याश्च मानसाः सर्वे व्यपोहन्तु भयं मम॥ १०९

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्माण्डगणनायकाः।
कूष्माण्डकाश्च ते पापं व्यपोहन्तु समाहिताः॥ ११०

ब्रह्माण्डको धारण करनेवाले तथा सभी लोकोंद्वारा पूजित सभी सत्य और मानस रुद्र मेरे भयको दूर करें। जो भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्डगणनायक तथा

अनेन देवं स्तुत्वा तु चान्ते सर्वं समापयेत्।
प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रतिमासे द्विजोत्तमाः ॥ १११

व्यपोहनस्तवं दिव्यं यः पठेच्छृणुयादपि।
विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते ॥ ११२

कन्यार्थी लभते कन्यां जयकामो जयं लभेत्।
अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामो बहून् सुतान् ॥ ११३

विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्।
यान् यान् प्रार्थयते कामान् मानवः श्रवणादिह ॥ ११४

तान् सर्वान् शीघ्रमाप्नोति देवानां च प्रियो भवेत्।
पठ्यमानमिदं पुण्यं यमुद्दिश्य तु पठ्यते ॥ ११५

तस्य रोगा न बाधन्ते वातपित्तादिसम्भवाः।
नाकाले मरणं तस्य न सर्पैरपि दंश्यते ॥ ११६

यत्पुण्यं चैव तीर्थानां यज्ञानां चैव यत्फलम्।
दानानां चैव यत्पुण्यं व्रतानां च विशेषतः ॥ ११७

तत्पुण्यं कोटिगुणितं जप्त्वा चाप्नोति मानवः।
गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा ब्रह्महा भवेत् ॥ ११८

शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः।
दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा ॥ ११९

व्यपोह्य सर्वपापानि शिवलोके महीयते ॥ १२०

कूष्माण्ड हैं—वे समाहितचित्त होकर [मेरे] पापको दूर करें ॥ १०९-११० ॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! प्रत्येक महीनेमें इस [व्यपोहनस्तव]-से शिवकी स्तुति करके भूमिपर मस्तक टेककर प्रणाम करके अन्तमें सम्पूर्ण अनुष्ठानका समापन करना चाहिये ॥ १११ ॥

जो [इस] दिव्य व्यपोहनस्तवको पढ़ता अथवा सुनता है, वह समस्त पापोंको ध्वस्त करके रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ ११२ ॥

कन्याकी अभिलाषा रखनेवाला कन्या प्राप्त करता है, विजयकी कामना करनेवाला विजय प्राप्त करता है, धनकी इच्छा रखनेवाला धन प्राप्त करता है, पुत्रकी कामना करनेवाला अनेक पुत्र प्राप्त करता है, विद्या चाहनेवाला विद्या प्राप्त करता है और सुख चाहनेवाला सुख प्राप्त करता है; मनुष्य जिन-जिन कामनाओंकी प्रार्थना करता है, इसके श्रवणसे इस लोकमें उन सबको शीघ्र प्राप्त कर लेता है और देवताओंका प्रिय हो जाता है। जिस किसीके निमित्त इस पवित्र स्तवको पढ़ा जाता है, उसे वात, पित्त आदिसे होनेवाले रोग पीड़ित नहीं करते हैं, असमयमें उसकी मृत्यु नहीं होती है और उसे सर्प नहीं डँसते हैं ॥ ११३—११६ ॥

जो पुण्य तीर्थोंकी यात्रा करनेसे, जो फल यज्ञोंके करनेसे, जो पुण्य दान करनेसे और जो पुण्य विशेषरूपसे व्रतोंके करनेसे होता है; उससे करोड़ों गुना फल इसे जप करके मनुष्य प्राप्त करता है। जो गायकी हत्या करनेवाला, कृतघ्न, वीरघाती, ब्रह्महत्यारा, शरणागतका वध करनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, दुष्ट, पापमय आचरणवाला और माता-पिताका वध करनेवाला होता है, वह भी [इसके पाठसे] सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ ११७—१२० ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे व्यपोहनस्तवनिरूपणं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'व्यपोहनस्तवनिरूपण' नामक बयासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८२ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

विभिन्न मासोंमें किये जानेवाले शिवव्रतोंका विधान

ऋषय ऊचुः

व्यपोहनस्तवं पुण्यं श्रुतमस्माभिरादरात्।
प्रसङ्गाल्लिङ्गदानस्य व्रतान्यपि वदस्व नः॥ १

सूत उवाच

व्रतानि वः प्रवक्ष्यामि शुभानि मुनिसत्तमाः।
नन्दिना कथितानीह ब्रह्मपुत्राय धीमते॥ २

तानि व्यासादुपश्रुत्य युष्माकं प्रवदाम्यहम्।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि॥ ३

वर्षमेकं तु भुञ्जानो नक्तं यः पूजयेच्छिवम्।
सर्वयज्ञफलं प्राप्य स याति परमां गतिम्॥ ४

पृथिवीं भाजनं कृत्वा भुक्त्वा पर्वसु मानवः।
अहोरात्रेण चैकेन त्रिरात्रफलमश्नुते॥ ५

द्वयोर्मासस्य पञ्चम्योर्द्वयोः प्रतिपदोर्नरः।
क्षीरधाराव्रतं कुर्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ६

कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन यावत्कृष्णचतुर्दशी।
भुञ्जन् भोगानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥ ७

योऽब्दमेकं प्रकुर्वीत नक्तं पर्वसु पर्वसु।
ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवध्यानपरायणः॥ ८

संवत्सरान्ते विप्रेन्द्रान् भोजयेद्विधिपूर्वकम्।
स याति शाङ्करं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥ ९

उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम्।
अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्तयेत्॥ १०

देवैर्भुक्तं तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा।
अपराह्णे च पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः॥ ११

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] हम लोगोंने आदरपूर्वक पवित्र व्यपोहनस्तवको सुन लिया; अब आप प्रसंगसे लिङ्गदानके व्रतोंको भी हमलोगोंको बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! मैं आप लोगोंको शुभ व्रत बताऊँगा; नन्दीने बुद्धिमान् ब्रह्मापुत्र सनत्कुमारको उन्हें बताया था, उन्हीं [व्रतों]-को व्यासजीसे सुनकर मैं आप लोगोंको बता रहा हूँ॥ २½॥

एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको केवल रात्रिमें आहार ग्रहण करता हुआ जो [मनुष्य] शिवकी पूजा करता है, वह समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त करके परमगति प्राप्त करता है। पर्वोंपर एक दिन-रात इस व्रतको करके और पृथ्वीको पात्र बनाकर भोजन करनेसे मनुष्य तीन रात्रियोंका फल प्राप्त करता है॥ ३—५॥

जो मनुष्य महीनेकी दोनों पंचमी तथा प्रतिपदा तिथियोंमें क्षीरधाराव्रत करता है अर्थात् केवल दुग्धके आहारपर रहता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक [केवल] रातमें भोजन करनेवाला भोगोंको प्राप्त करता है और [अन्तमें] ब्रह्मलोक जाता है॥ ६-७॥

जो [मनुष्य] ब्रह्मचर्यमें स्थित रहकर, क्रोधको वशमें करके तथा शिवध्यानपरायण होकर एक वर्षतक सभी पर्वोंमें नक्तव्रत करता है और वर्षके अन्तमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराता है, वह शिवलोक जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ८-९॥

उपवासकी अपेक्षा भिक्षा श्रेष्ठ है, भिक्षाकी अपेक्षा बिना माँगे प्राप्त भोजन श्रेष्ठ है और बिना माँगे प्राप्त भोजनकी अपेक्षा नक्तव्रत श्रेष्ठ है; अतः नक्तव्रत करना चाहिये॥ १०॥

पूर्वाह्णमें किया गया भोजन देवताओंका, मध्याह्नमें ऋषियोंका, अपराह्णमें पितरोंका और सन्ध्यामें गुह्यकोंका

सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम्।
हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्॥ १२

अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी समाचरेत्।
प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि शिवव्रतमनुत्तमम्॥ १३

धर्मकामार्थमोक्षार्थं सर्वपापविशुद्धये।
पुष्यमासे च सम्पूज्य यः कुर्यान्नक्तभोजनम्॥ १४

सत्यवादी जितक्रोधः शालिगोधूमगोरसैः।
पक्षयोरष्टमीं यत्नादुपवासेन वर्तयेत्॥ १५

भूमिशय्यां च मासान्ते पौर्णमास्यां घृतादिभिः।
स्नाप्य रुद्रं महादेवं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्॥ १६

यावकं चौदनं दत्त्वा सक्षीरं सघृतं द्विजाः।
भोजयेद् ब्राह्मणाञ्छिष्टाञ्जपेच्छान्तिं विशेषतः॥ १७

तथा गोमिथुनं चैव कपिलं विनिवेदयेत्।
भवाय देवदेवाय शिवाय परमेष्ठिने॥ १८

स याति मुनिशार्दूल वाह्नेयं लोकमुत्तमम्।
भुक्त्वा स विपुलान् लोकान् तत्रैव स विमुच्यते॥ १९

माघमासे तु सम्पूज्य यः कुर्यान्नक्तभोजनम्।
कृशरं घृतसंयुक्तं भुञ्जानः संयतेन्द्रियः॥ २०

सोपवासं चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः।
रुद्राय पौर्णमास्यां तु दद्याद्वै घृतकम्बलम्॥ २१

कृष्णं गोमिथुनं दद्यात्पूजयेच्चैव शङ्करम्।
भोजयेद् ब्राह्मणांश्चैव यथाविभवविस्तरम्॥ २२

याम्यमासाद्य वै लोकं यमेन सह मोदते।
फाल्गुने चैव सम्प्राप्ते कुर्याद्वै नक्तभोजनम्॥ २३

श्यामाकान्नघृतक्षीरैर्जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
चतुर्दश्यामथाष्टम्यामुपवासं च कारयेत्॥ २४

होता है, किन्तु सभी कालोंका अतिक्रमण करके रातमें किया गया भोजन उत्तम होता है। रातमें भोजन करनेवालेको हविष्यान्न ग्रहण करना चाहिये, स्नान करना चाहिये, सत्यका पालन करना चाहिये, कम खाना चाहिये, अग्निहोत्र करना चाहिये और भूमिपर शयन करना चाहिये॥ ११-१२ $^{1}/_{2}$ ॥

अब मैं प्रत्येक महीनेमें किये जानेवाले उत्तम शिवव्रतका वर्णन करूँगा, जो धर्म-काम-अर्थ-मोक्षके लिये और सभी पापोंकी शुद्धिके लिये होता है। जो [मनुष्य] सत्यवादी तथा जितक्रोध (क्रोधको वशमें किया हुआ) होकर पुष्य (पौष) मासमें [शिवका] विधिवत् पूजन करके चावल, गेहूँ और गोदुग्धसे बने हुए भोजनको केवल रातमें ग्रहण करता है; दोनों पक्षोंकी अष्टमी तिथिमें यत्नपूर्वक उपवास करता है तथा भूमिपर शयन करता है और हे द्विजो! मासके अन्तमें पूर्णिमाके दिन घृत आदिसे महादेवको स्नान कराकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दुग्ध तथा घृतमिश्रित पके हुए यव तथा चावलका भोजन कराता है एवं विशेषरूपसे शान्तिमन्त्रोंका जप करता है और देवदेव परमेश्वर भव शिवजीको कपिल वर्णका गोमिथुन (गाय तथा वृषभ) समर्पित करता है—हे श्रेष्ठ मुनियो! वह [मनुष्य] उत्तम अग्निलोकको जाता है और अनेक लोकोंके सुखोंका भोग करके वहींपर मुक्त हो जाता है॥ १३—१९ ॥

माघ मासमें जो [मनुष्य] पूजन करके केवल नक्त भोजन करता है, घृतयुक्त कृशरका आहार ग्रहण करता है, इन्द्रियोंको वशमें किये रहता है, दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीमें उपवास करता है, पूर्णिमाके दिन रुद्रको घृतकम्बल अर्पित करता है, कृष्ण वर्णका गोमिथुन प्रदान करता है, शिवकी पूजा करता है, [अपने] सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह यमलोक पहुँचकर यमके साथ आनन्द मनाता है॥ २०—२२ $^{1}/_{2}$ ॥

फाल्गुन मास आनेपर जो घी तथा दूधमें पकाये हुए साँवाँके अन्नका नक्त भोजन करता है, इन्द्रियोंको तथा क्रोधको वशमें किये रहता है, अष्टमी तथा चतुर्दशीके

पौर्णमास्यां महादेवं स्नाप्य सम्पूज्य शङ्करम्।
दद्याद् गोमिथुनं वापि ताम्राभं शूलपाणये॥ २५

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रार्थयेत्परमेश्वरम्।
स याति चन्द्रसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥ २६

चैत्रेऽपि रुद्रमभ्यर्च्य कुर्याद्वै नक्तभोजनम्।
शाल्यन्नं पयसा युक्तं घृतेन च यथासुखम्॥ २७

गोष्ठशायी मुनिश्रेष्ठाः क्षितौ निशि भवं स्मरेत्।
पौर्णमास्यां शिवं स्नाप्य दद्याद् गोमिथुनं सितम्॥ २८

ब्राह्मणान् भोजयेच्चैव निर्ऋतेः स्थानमाप्नुयात्।
वैशाखे च तथा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥ २९

पौर्णमास्यां भवं स्नाप्य पञ्चगव्यघृतादिभिः।
श्वेतं गोमिथुनं दत्त्वा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ३०

ज्येष्ठे मासे च देवेशं भवं शर्वमुमापतिम्।
सम्पूज्य श्रद्धया भक्त्या कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥ ३१

रक्तशाल्यन्नमध्वा च अद्भिः पूतं घृतादिभिः।
वीरासनी निशार्धं च गवां शुश्रूषणे रतः॥ ३२

पौर्णमास्यां तु सम्पूज्य देवदेवमुमापतिम्।
स्नाप्य शक्त्या यथान्यायं चरुं दद्याच्च शूलिने॥ ३३

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च यथाविभवविस्तरम्।
धूम्रं गोमिथुनं दत्त्वा वायुलोके महीयते॥ ३४

आषाढे मासि चाप्येवं नक्तभोजनतत्परः।
भूरिखण्डाज्यसम्मिश्रं सक्तुभिश्चैव गोरसम्॥ ३५

पौर्णमास्यां घृताद्यैस्तु स्नाप्य पूज्य यथाविधि।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च श्रोत्रियान् वेदपारगान्॥ ३६

दद्याद् गोमिथुनं गौरं वारुणं लोकमाप्नुयात्।
श्रावणे च द्विजा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥ ३७

क्षीरषष्टिकभक्तेन सम्पूज्य वृषभध्वजम्।
पौर्णमास्यां घृताद्यैस्तु स्नाप्य पूज्य यथाविधि॥ ३८

दिन उपवास करता है, पूर्णिमाके दिन महादेव शंकरको स्नान कराकर उनकी पूजा करके उन शूलपाणि [शिव]-को ताम्रवर्णका गोमिथुन प्रदान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर परमेश्वरसे प्रार्थना करता है, वह चन्द्रमाका सायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २३—२६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! जो चैत्र महीनेमें रुद्रकी पूजा करके घी और दूधसे युक्त तथा पके हुए शालि-चावलको अपनी रुचिके अनुसार रात्रिमें ग्रहण करता है, रातमें गोशालामें भूमिपर शयन करता है, शिवजीका स्मरण करता है, पूर्णमासीके दिन शिवको स्नान कराकर श्वेतवर्णका गोमिथुन प्रदान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह निर्ऋतिलोकको प्राप्त करता है॥ २७-२८½॥

वैशाख महीनेमें नक्तभोजन करके पूर्णमासी तिथिमें पंचगव्य, घृत आदिसे शिवजीको स्नान कराकर श्वेतवर्णका गोमिथुन अर्पित करके वह [मनुष्य] अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है॥ २९-३०॥

ज्येष्ठ मासमें देवेश, भव, शर्व, उमापतिकी श्रद्धापूर्वक पूजा करके मधु-जल-घृतमिश्रित पवित्र शालिचावलका केवल रातमें आहार ग्रहण करके वीर आसनमें स्थित होकर आधी रातमें गायोंकी सेवामें तत्पर रहकर पूर्णिमाके दिन देवदेव उमापतिको स्नान कराकर उनकी पूजा करके विधानपूर्वक शिवजीको चरु अर्पित करके पुनः अपने सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर धूम्रवर्णका गोमिथुन [शिवजीको] अर्पित करनेसे वह वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३१—३४॥

इसी प्रकार आषाढ़ महीनेमें भी चीनी, घृत तथा गोदुग्धमिश्रित सत्तूके नक्त-भोजनमें तत्पर रहते हुए पूर्णिमाके दिन घृत आदिसे [शिवजीको] स्नान कराकर विधिपूर्वक पूजन करके वेदमें पारंगत श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको भोजन कराकर जो गौरवर्णका गोमिथुन अर्पित करता है, वह वरुणलोक प्राप्त करता है॥ ३५-३६½॥

हे द्विजो! सावन महीनेमें दूधमिश्रित षष्टिक (साठ दिनमें उत्पन्न होनेवाले शालिचावल)-के भातका नक्तभोजन करके वृषभध्वजकी पूजा करके [अन्तमें]

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च श्रोत्रियान् वेदपारगान्।
श्वेताग्रपादं पौण्ड्रं च दद्याद् गोमिथुनं पुनः॥ ३९

स याति वायुसायुज्यं वायुवत्सर्वगो भवेत्।
प्राप्ते भाद्रपदे मासे कृत्वैवं नक्तभोजनम्॥ ४०

हुतशेषं च विप्रेन्द्रान् वृक्षमूलाश्रितो दिवा।
पौर्णमास्यां तु देवेशं स्नाप्य सम्पूज्य शङ्करम्॥ ४१

नीलस्कन्धं वृषं गां च दत्त्वा भक्त्या यथाविधि।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ४२

यक्षलोकमनुप्राप्य यक्षराजो भवेन्नरः।
ततश्चाश्वयुजे मासि कृत्वैवं नक्तभोजनम्॥ ४३

सघृतं शङ्करं पूज्य पौर्णमास्यां च पूर्ववत्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च शिवभक्तान् सदा शुचीन्॥ ४४

वृषभं नीलवर्णाभमुरोदेशसमुन्नतम्।
गां च दत्त्वा यथान्यायमैशानं लोकमाप्नुयात्॥ ४५

कार्तिके च तथा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्।
क्षीरोदनेन साज्येन सम्पूज्य च भवं प्रभुम्॥ ४६

पौर्णमास्यां च विधिवत्स्नाप्य दत्त्वा चरुं पुनः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च यथाविभवविस्तरम्॥ ४७

दत्त्वा गोमिथुनं चैव कापिलं पूर्ववद् द्विजाः।
सूर्यसायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ४८

मार्गशीर्षे च मासेऽपि कृत्वैवं नक्तभोजनम्।
यवान्नेन यथान्यायमाज्यक्षीरादिभिः समम्॥ ४९

पौर्णमास्यां च पूर्वोक्तं कृत्वा शर्वाय शम्भवे।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च दरिद्रान् वेदपारगान्॥ ५०

दत्त्वा गोमिथुनं चैव पाण्डुरं विधिपूर्वकम्।
सोमलोकमनुप्राप्य सोमेन सह मोदते॥ ५१

पूर्णिमाके दिन घृत आदिसे स्नान कराकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके वेदमें पारंगत श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको भोजन कराकर जो [मनुष्य] सफेद खुरवाला तथा चितकबरा गोमिथुन शिवजीको अर्पित करता है, वह वायुदेवका सायुज्य प्राप्त करता है और वायुके समान सर्वगामी हो जाता है॥ ३७—३९½॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इसी प्रकार भाद्रपद महीना आनेपर हवनसे बची हुई सामग्रीका नक्तभोजन करके दिनमें वृक्षके मूलका आश्रय लेकर विश्राम करते हुए [अन्तमें] पूर्णिमाके दिन देवेश शंकरको स्नान कराकर [उनकी] पूजा करके भक्तिपूर्वक विधिके अनुसार नीलवर्णके स्कन्धवाला वृषभ तथा एक गाय शिवजीको अर्पित करके वेद-वेदांगमें पारंगत ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य यक्षलोक प्राप्त करके यक्षोंका राजा हो जाता है॥ ४०—४२½॥

इसके बाद इसी तरह आश्विन (क्वार) मासमें केवल रातमें घीसे बना हुआ भोजन करके पूर्णिमा तिथिमें पूर्वकी भाँति शंकरकी पूजा करके ब्राह्मणों तथा सर्वदा पवित्र रहनेवाले शिवभक्तोंको भोजन कराकर नीलवर्णकी आभावाले तथा उन्नत उरुदेशवाले एक वृषभ और एक गायका विधिपूर्वक दान करके मनुष्य ईशानलोक प्राप्त करता है॥ ४३—४५॥

हे द्विजो! कार्तिक मासमें रात्रिमें घृतयुक्त दुग्धोदनका भोजन करके भगवान् शिवका पूजनकर [अन्तमें] पूर्णिमा तिथिमें विधिपूर्वक [शिवजीको] स्नान कराकर पुनः उन्हें चरुका नैवेद्य अर्पित करके अपने सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पूर्वकी भाँति कपिल वर्णका गोमिथुन शिवजीको समर्पित करके मनुष्य सूर्यसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४६—४८॥

मार्गशीर्ष (अगहन) महीनेमें भी विधिपूर्वक दूध तथा घीमें पकाये हुए जौका रात्रिमें भोजन करके [अन्तमें] पूर्णिमाके दिन पूर्वकी भाँति शर्व शम्भुको स्नान कराकर उनकी पूजा करके वेदमें पारंगत निर्धन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर तथा विधिपूर्वक पाण्डुरवर्णका

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा दया।
त्रिःस्नानं चाग्निहोत्रं च भूशय्या नक्तभोजनम्॥ ५२

पक्षयोरुपवासं च चतुर्दश्यष्टमीषु च।
इत्येतदखिलं प्रोक्तं प्रतिमासं शिवव्रतम्॥ ५३

कुर्याद्वर्षं क्रमेणैव व्युत्क्रमेणापि वा द्विजाः।
स याति शिवसायुज्यं ज्ञानयोगमवाप्नुयात्॥ ५४

गोमिथुन [शिवजीको] समर्पित करके मनुष्य सोमलोक प्राप्त करके [वहाँपर] सोमके साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ ४९—५१॥

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, क्षमा, दया, तीनों कालमें स्नान, अग्निहोत्र, पृथ्वीपर शयन, रात्रिभोजन और दोनों पक्षोंकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको उपवास—इन सबको तथा प्रत्येक महीनेके शिवव्रतको मैंने कह दिया; हे द्विजो! जो [मनुष्य] क्रमसे अथवा विपरीत क्रमसे वर्षभर इसे करता है, वह शिवसायुज्य तथा ज्ञानयोग प्राप्त करता है॥ ५२—५४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवव्रतकथनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवव्रतकथन' नामक तिरासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

उमामहेश्वरव्रतका वर्णन तथा पूजाविधान

सूत उवाच

उमामहेश्वरं वक्ष्ये व्रतमीश्वरभाषितम्।
नरनार्यादिजन्तूनां हिताय मुनिसत्तमाः॥ १

पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च।
नक्तमब्दं प्रकुर्वीत हविष्यं पूजयेद्भवम्॥ २

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! अब मैं नर, नारी आदि प्राणियोंके हितके लिये [स्वयं] शिवजीद्वारा कहे गये उमामहेश्वरव्रतको बताऊँगा। वर्षभर अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमाको रातमें हविष्य ग्रहण करना चाहिये और शिवजीकी पूजा करनी चाहिये॥ १-२॥

उमामहेशप्रतिमां हेम्ना कृत्वा सुशोभनाम्।
राजतीं वाथ वर्षान्ते प्रतिष्ठाप्य यथाविधि॥ ३

[शैलादि बोले—] हे प्रभो [सनत्कुमार]! जो [मनुष्य] सुवर्ण अथवा चाँदीकी उमा-महेशकी परम सुन्दर

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च दत्त्वा शक्त्या च दक्षिणाम्।
रथाद्यैर्वापि देवेशं नीत्वा रुद्रालयं प्रति॥ ४

सर्वातिशयसंयुक्तैश्छत्रचामरभूषणैः।
निवेदयेद् व्रतं चैव शिवाय परमेष्ठिने॥ ५

स याति शिवसायुज्यं नारी देव्या यदि प्रभो।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नियता ब्रह्मचारिणी॥ ६

वर्षमेकं न भुञ्जीत कन्या वा विधवापि वा।
वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा पूर्वोक्तविधिना ततः॥ ७

प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं दत्त्वा रुद्रालये पुनः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च भवान्या सह मोदते॥ ८

या नार्येवं चरेदब्दं कृष्णामेकां चतुर्दशीम्।
वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा येन केनापि वा द्विजाः॥ ९

पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्या सह मोदते।
अमावास्यां निराहारा भवेदब्दं सुयन्त्रिता॥ १०

शूलं च विधिना कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत्।
स्नाप्येशानं यजेद् भक्त्या सहस्रैः कमलैः सितैः॥ ११

राजतं कमलं चैव जाम्बूनदसुकर्णिकम्।
दत्त्वा भवाय विप्रेभ्यः प्रदद्याद्दक्षिणामपि॥ १२

कामतोऽपि कृतं पापं भ्रूणहत्यादिकं च यत्।
तत्सर्वं शूलदानेन भिन्द्यान्नारी न संशयः॥ १३

सायुज्यं चैवमाप्नोति भवान्या द्विजसत्तमाः।
कुर्याद्यद्वा नरः सोऽपि रुद्रसायुज्यमाप्नुयात्॥ १४

पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता।
उपवासरता नारी नरोऽपि द्विजसत्तमाः॥ १५

नियोगादेव तत्कार्यं भर्तॄणां द्विजसत्तमाः।
जपं दानं तपः सर्वमस्वतन्त्राः यतः स्त्रियः॥ १६

प्रतिमा बनाकर वर्षके अन्तमें विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करके पूर्ण सौन्दर्ययुक्त तथा छत्र-चामर-आभूषणोंसे अलंकृत रथ आदिसे देवेश [शिव]-को शिवालयमें ले जाकर इस व्रतको परमेश्वर शिवको निवेदित करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है और यदि नारी हो, तो वह भगवती उमाका सायुज्य प्राप्त करती है॥ ३—५१/२॥

कन्या हो अथवा विधवा हो—वह एक वर्षतक अष्टमी तथा चतुर्दशीको नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर भोजन न करे; वर्षके अन्तमें पूर्वोक्त विधिसे प्रतिमा बनाकर विधानके अनुसार उसकी प्रतिष्ठा करके उसे रुद्रालयमें प्रदान करके पुनः ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वह भवानी (पार्वती)-के साथ आनन्द मनाती है। हे द्विजो! जो स्त्री वर्षपर्यन्त केवल कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको यह व्रत करती है और वर्षके अन्तमें जिस किसी पदार्थसे प्रतिमा बनाकर पूर्वोक्त समस्त विधान सम्पन्न करती है, वह भवानीके साथ आनन्द मनाती है॥ ६—९१/२॥

स्त्रीको चाहिये कि वर्षपर्यन्त नियन्त्रित रहती हुई अमावस्याके दिन आहार ग्रहण न करे और वर्षके अन्तमें विधिपूर्वक त्रिशूल बनवाकर शिवको निवेदित करे तथा ईशानको स्नान कराकर हजार श्वेत कमलोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और सुवर्णमयी कर्णिकासे युक्त चाँदीका कमल शिवजीको समर्पित करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी प्रदान करे। वह स्त्री [शिवजीके निमित्त] त्रिशूलके दानसे जानबूझकर भ्रूणहत्या आदि जो भी पाप होता है, उन सबको ध्वस्त कर डालती है; इसमें सन्देह नहीं है और हे श्रेष्ठ द्विजो! वह भवानीका सायुज्य प्राप्त कर लेती है। यदि [कोई] मनुष्य इसे करता है, तो वह भी रुद्रसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १०—१४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! पूरे एक वर्षभर पूर्णमासी तथा अमावस्याको आलस्यरहित तथा उपवासपरायण होकर नारीको तथा नरको भी इसे करना चाहिये। हे श्रेष्ठ द्विजो! पतिकी आज्ञासे ही स्त्रियोंको यह व्रत, जप, दान, तप—सब कुछ करना चाहिये; क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं। हे सुव्रतो! वर्षके अन्तमें सभी प्रकारके गन्धोंसे युक्त उस

वर्षान्ते सर्वगन्धाढ्यां प्रतिमां सन्निवेदयेत्।
सा भवान्याश्च सायुज्यं सारूप्यं चापि सुव्रता॥ १७
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।
कार्तिक्यां वा तु या नारी एकभक्तेन वर्तते॥ १८
क्षमाहिंसादिनियमैः संयुक्ता ब्रह्मचारिणी।
दद्यात्कृष्णतिलानां च भारमेकमतन्द्रिता॥ १९
सघृतं सगुडं चैव ओदनं परमेष्ठिने।
दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च यथाविभवविस्तरम्॥ २०
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासरता च सा।
भवान्या मोदते सार्धं सारूप्यं प्राप्य सुव्रता॥ २१
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो रुद्रपूजनम्॥ २२
समासाद्वः प्रवक्ष्यामि प्रतिमासमनुक्रमात्।
मार्गशीर्षकमासादि कार्तिक्यान्तं यथाक्रमम्॥ २३
व्रतं सुविपुलं पुण्यं नन्दिना परिभाषितम्।
मार्गशीर्षकमासेऽथ वृषं पूर्णाङ्गमुत्तमम्॥ २४
अलङ्कृत्य यथान्यायं शिवाय विनिवेदयेत्।
सा च सार्धं भवान्या वै मोदते नात्र संशयः॥ २५
पुष्यमासे तु वै शूलं प्रतिष्ठाप्य निवेदयेत्।
पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्या सह मोदते॥ २६
माघमासे रथं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम्।
दद्यात्सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ २७
सा च देव्या महाभागा मोदते नात्र संशयः।
फाल्गुने प्रतिमां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि॥ २८

प्रतिमाको शिवको निवेदित कर देना चाहिये; वह सुव्रता [स्त्री] भवानीका सायुज्य तथा सारूप्य प्राप्त कर लेती है; इसमें सन्देह नहीं है, मैं यह पूर्णतः सत्य कह रहा हूँ॥ १५—१७½॥

जो स्त्री कार्तिक मासमें एक बार भोजन करती है, क्षमा-अहिंसा आदि नियमोंसे युक्त रहती है, ब्रह्मचर्यका पालन करती है, आलस्यरहित होकर एक भार* काला तिल तथा घृत-गुड़ मिलाकर पकाया भात परमेश्वरको निवेदित करती है, ब्राह्मणोंको अपने सामर्थ्यके अनुसार दान देती है और अष्टमी तथा चतुर्दशीको उपवास करती है—वह उत्तम व्रतवाली [स्त्री] भवानीका सारूप्य प्राप्त करके उनके साथ आनन्द मनाती है॥ १८—२१॥

समस्त व्रतोंमें क्षमा, सत्य, दया, दान, शुद्धि तथा इन्द्रियोंका निग्रह और रुद्रपूजन—यह सामान्य धर्म है॥ २२॥

अब मैं संक्षेपमें क्रमसे मार्गशीर्षसे प्रारम्भ करके कार्तिकतक प्रत्येक महीनेके व्रतको बताऊँगा; इस परम पुण्यप्रद व्रतको [स्वयं] नन्दीने कहा था॥ २३½॥

जो [स्त्री] मार्गशीर्ष मासमें पूर्ण अंगोंवाले उत्तम वृषभको अलंकृत करके विधिपूर्वक शिवको निवेदित करती है, वह भवानीके साथ आनन्दित रहती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २४-२५॥

जो पौष मासमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार सम्पूर्ण कृत्य करके त्रिशूलकी स्थापनाकर उसे [शिवको] समर्पित करती है, वह भवानीके साथ आनन्द मनाती है॥ २६॥

हे महाभाग मुनियो! जो माघ महीनेमें सभी लक्षणोंसे युक्त रथ बनाकर देवेशकी पूजा करके उसे शिवको समर्पित करती है और ब्राह्मणोंको भोजन कराती है, वह देवी [पार्वती]-के साथ आनन्द करती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २७½॥

जो फाल्गुन मासमें अपने सामर्थ्यके अनुसार विधिपूर्वक सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी प्रतिमा बनाकर

* भारका परिमाण इस प्रकार है—
चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्।
अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्। तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः॥
अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)-की एक गुंजा, पाँच गुंजाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

राजतेनापि ताम्रेण यथाविभवविस्तरम्।
प्रतिष्ठाप्य समभ्यर्च्य स्थापयेच्छङ्करालये॥ २९
सा च सार्धं महादेव्या मोदते नात्र संशयः।
चैत्रे भवं कुमारं च भवानीं च यथाविधि॥ ३०
ताम्राद्यैर्विधिवत्कृत्वा प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
भवान्या मोदते सार्धं दत्त्वा रुद्राय शम्भवे॥ ३१
कृत्वालयं हि कौबेरं राजतं रजतेन वै।
ईश्वरोमासमायुक्तं गणेशैश्च समन्ततः॥ ३२
सर्वरत्नसमायुक्तं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
स्थापयेत्परमेशस्य भवस्यायतने शुभे॥ ३३
वैशाखे वै चरेदेवं कैलासाख्यं व्रतोत्तमम्।
कैलासपर्वतं प्राप्य भवान्या सह मोदते॥ ३४
ज्येष्ठे मासि महादेवं लिङ्गमूर्तिमुमापतिम्।
कृताञ्जलिपुटेनैव ब्रह्मणा विष्णुना तथा॥ ३५
मध्ये भवेन संयुक्तं लिङ्गमूर्तिं द्विजोत्तमाः।
हंसेन च वराहेण कृत्वा ताम्रादिभिः शुभाम्॥ ३६
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः।
शिवाय शिवमासाद्य शिवस्थाने यथाविधि॥ ३७
ब्राह्मणैः सहितां स्थाप्य देव्याः सायुज्यमाप्नुयात्।
आषाढे च शुभे मासे गृहं कृत्वा सुशोभनम्॥ ३८
पक्वेष्टकाभिर्विधिवद्यथाविभवविस्तरम्।
सर्वबीजरसैश्चापि सम्पूर्णं सर्वशोभनैः॥ ३९
गृहोपकरणैश्चैव मुसलोलूखलादिभिः।
दासीदासादिभिश्चैव शयनैरशनादिभिः॥ ४०
सम्पूर्णैश्च गृहं वस्त्रैराच्छाद्य च समन्ततः।
देवं घृतादिभिः स्नाप्य महादेवमुमापतिम्॥ ४१
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयित्वा यथाविधि।
विद्याविनयसम्पन्नं ब्राह्मणं वेदपारगम्॥ ४२
प्रथमाश्रमिणं भक्त्या सम्पूज्य च यथाविधि।
कन्यां सुमध्यमां यावत्कालजीवनसंयुताम्॥ ४३
क्षेत्रं गोमिथुनं चैव तद्गृहे च निवेदयेत्।
सायनैर्विविधैर्दिव्यैर्मेरुपर्वतसन्निभैः॥ ४४

उसकी प्रतिष्ठा तथा पूजा करके शिवालयमें स्थापित करती है, वह महादेवीके साथ आनन्दित रहती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २८-२९ १/२॥

चैत्र मासमें ताँबे आदिसे शिव, कुमार (कार्तिकेय) तथा भवानीकी मूर्तियाँ यथाविधि बनाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करके उन्हें रुद्र शम्भुको अर्पण करनेसे स्त्री भवानीके साथ आनन्दित रहती है॥ ३०-३१॥

कुबेरका रजतमय कैलास आलय बनाकर उसे चारों ओरसे सभी रत्नोंसे युक्त करके उसमें शिव, उमा तथा गणेश्वरोंकी रजतमय मूर्ति रखकर उसकी यथाविधि प्रतिष्ठा करके उसे परमेश्वर शिवके सुन्दर मन्दिरमें स्थापित करना चाहिये; जो [स्त्री] वैशाख मासमें इस प्रकार कैलास नामक उत्तम व्रतको करती है, वह कैलासपर्वत पहुँचकर भवानीके साथ आनन्द करती है॥ ३२—३४॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! ज्येष्ठ मासमें उमापति महादेवकी ताम्र आदिसे एक शुभ्र लिङ्गमूर्ति बनवाये, जो हाथ जोड़े हुए हंसपर सवार ब्रह्मा तथा वाराहपर सवार विष्णुसे संयुक्त हो और मध्यमें भव (महेश्वर) विराजमान हों—ऐसी लिङ्गमूर्ति बनवाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा करनेके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये और अपने कल्याणके लिये शिवको प्रसन्न करके ब्राह्मणोंको साथ लेकर शिवालयमें उसे विधिपूर्वक स्थापित करके वह देवीका सायुज्य प्राप्त कर लेती है॥ ३५—३७॥

जो स्त्री शुभ आषाढ़ महीनेमें अपने सामर्थ्यके अनुसार पके हुए ईंटोंसे विधिवत् गृह बनवाकर उसे सभी बीजरसोंसे, परम सुन्दर मूसल-उलूखल आदि गृहोपयोगी सामग्रियोंसे, दास-दासी आदिसे, [पलंग-विस्तर आदि] शयन-वस्तुओंसे, [अन्न आदि] खाद्य पदार्थोंसे युक्त करके उस गृहको सभी ओरसे पूर्ण वस्त्रोंसे ढँककर उमापति प्रभु महादेवको घृत आदिसे स्नान कराकर विधिपूर्वक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर विद्या-विनयसे सम्पन्न तथा वेदमें पारंगत ब्रह्मचारी ब्राह्मणकी भक्तिपूर्वक यथाविधि पूजा करके पूर्ण जीवनभरके लिये एक परम सुन्दरी कन्या, क्षेत्र (खेत), गोमिथुन और मेरुपर्वतके समान महाराशिवाले अनेक प्रकारके दिव्य सामानोंसहित

गोलोकं समनुप्राप्य भवान्या सह मोदते।
भवान्या सदृशी भूत्वा सर्वकल्पेषु साव्यया॥ ४५

भवान्याश्चैव सायुज्यं लभते नात्र संशयः।
सर्वधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितम्॥ ४६

निवेदयीत शर्वाय श्रावणे तिलपर्वतम्।
वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत्॥ ४७

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूर्वोक्तमखिलं भवेत्।
कृत्वा भाद्रपदे मासि शोभनं शालिपर्वतम्॥ ४८

वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च दापयेच्च यथाविधि॥ ४९

सा च सूर्यांशुसङ्काशा भवान्या सह मोदते।
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्वतम्॥ ५०

सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं दत्त्वा सम्पूज्य शङ्करम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूर्वोक्तमखिलं भवेत्॥ ५१

सर्वधान्यसमायुक्तं सर्वबीजरसादिभिः।
सर्वधातुसमायुक्तं सर्वरत्नोपशोभितम्॥ ५२

शृङ्गैश्चतुर्भिः संयुक्तं वितानच्छत्रशोभितम्।
गन्धमाल्यैस्तथा धूपैश्चित्रैश्चापि सुशोभितम्॥ ५३

विचित्रैर्नृत्यगेयैश्च शङ्खवीणादिभिस्तथा।
ब्रह्मघोषैर्महापुण्यं मङ्गलैश्च विशेषतः॥ ५४

महाध्वजाष्टसंयुक्तं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम्।
नगेन्द्रं मेरुनामानं त्रैलोक्याधारमुत्तमम्॥ ५५

तस्य मूर्ध्नि शिवं कुर्यान्मध्यतो धातुनैव तु।
दक्षिणे च यथान्यायं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम्॥ ५६

उत्तरे देवदेवेशं नारायणमनामयम्।
इन्द्रादिलोकपालांश्च कृत्वा भक्त्या यथाविधि॥ ५७

प्रतिष्ठाप्य ततः स्नाप्य समभ्यर्च्य महेश्वरम्।
देवस्य दक्षिणे हस्ते शूलं त्रिदशपूजितम्॥ ५८

वह गृह [शिवको] समर्पित करती है; वह गोलोक प्राप्त करके भवानीके साथ आनन्द करती है, भवानीके सदृश होकर सभी कल्पोंमें अव्यय (शाश्वत) बनी रहती है और [अन्तमें] भवानीका सायुज्य प्राप्त करती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८—४५½॥

सावन महीनेमें सभी धातुओंसे युक्त तथा विचित्र ध्वजोंसे सुशोभित तिलपर्वत शिवको समर्पित करना चाहिये। जो [स्त्री] वितान, ध्वज, वस्त्र, धातु आदि सहित तिलपर्वत निवेदित करती है और [अन्तमें] ब्राह्मणोंको भोजन कराती है, उसे पूर्वमें कहा गया सबकुछ प्राप्त हो जाता है॥ ४६-४७½॥

जो भाद्रपद मासमें वितान, ध्वज, वस्त्र, धातु आदिसहित शालि चावलका सुन्दर पर्वत बनाकर उसे शिवको समर्पित करती है और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर विधिपूर्वक उसका दान करती है, वह सूर्यकी किरणोंके समान होकर भवानीके साथ आनन्द करती है॥ ४८-४९½॥

आश्विन महीनेमें सुवर्ण तथा वस्त्रसे युक्त एक विशाल धान्यपर्वत बनाकर उसे शिवको अर्पण करके शंकरकी विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पूर्वमें कहा गया सबकुछ प्राप्त हो जाता है। तीनों लोकोंके आधारस्वरूप मेरु नामक उत्तम पर्वतराजका निर्माण करे, जो सभी धान्योंसे युक्त हो, सभी बीजों तथा रसोंसे परिपूर्ण हो, सभी धातुओंसे संयुक्त हो, सभी रत्नोंसे सुशोभित हो, चार शृंगों (शिखर)-से युक्त हो, वितान तथा छत्रसे सुशोभित हो, गन्ध-पुष्प एवं अद्भुत धूपोंसे सुशोभित हो, विचित्र नृत्य-गानोंसे शोभायमान हो, शंख-वीणाकी ध्वनियोंसे युक्त हो, वेदध्वनियोंसे और विशेषकर मंगलसूचक प्रार्थना आदिसे अत्यन्त पवित्र हो, आठ बड़ी ध्वजाओंसे युक्त हो और विचित्र पुष्पोंसे सुशोभित हो। उस [पर्वत]-के शिखरपर मध्यमें धातुनिर्मित शिवको विराजमान करे। दक्षिणमें चतुर्मुख ब्रह्मा, उत्तरमें निर्विकार देवदेवेश नारायण, इन्द्र आदि लोकपालोंको भक्तिपूर्वक यथाविधि विराजमान करके उनकी प्रतिष्ठा करनेके अनन्तर स्नान कराकर महेश्वरकी पूजा करके महादेवके दाहिने हाथमें देवपूजित त्रिशूल तथा बायें हाथमें पाश, भवानीके

वामे पाशं भवान्याश्च कमलं हेमभूषितम्।
विष्णोश्च शङ्खं चक्रं च गदामब्जं प्रयत्नतः॥ ५९

ब्रह्मणश्चाक्षसूत्रं च कमण्डलुमनुत्तमम्।
इन्द्रस्य वज्रमग्नेश्च शक्त्याख्यं परमायुधम्॥ ६०

यमस्य दण्डं निर्ऋतेः खड्गं निशिचरस्य तु।
वरुणस्य महापाशं नागाख्यं रुद्रमद्भुतम्॥ ६१

वायोर्यष्टिं कुबेरस्य गदां लोकप्रपूजिताम्।
टङ्कं चेशानदेवस्य निवेद्यैवं क्रमेण च॥ ६२

शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा चरुसमन्विताम्।
पूजयेत्सर्वदेवांश्च यथाविभवविस्तरम्॥ ६३

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूजां कृत्वा प्रयत्नतः।
महामेरुव्रतं कृत्वा महादेवाय दापयेत्॥ ६४

महामेरुमनुप्राप्य महादेव्या प्रमोदते।
चिरं सायुज्यमाप्नोति महादेव्या न संशयः॥ ६५

कार्तिक्यामपि या नारी कृत्वा देवीमुमां शुभाम्।
सर्वाभरणसम्पूर्णां सर्वलक्षणलक्षिताम्॥ ६६

हेमताम्रादिभिश्चैव प्रतिष्ठाप्य विधानतः।
देवं च कृत्वा देवेशं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ६७

तयोरग्रे हुताशं च स्रुवहस्तं पितामहम्।
नारायणं च दातारं सर्वाभरणभूषितम्॥ ६८

लोकपालैस्तथा सिद्धैः संवृतं स्थाप्य यत्नतः।
रुद्रालये व्रतं तस्मै दापयेद्भक्तिपूर्वकम्॥ ६९

सा भवान्यास्तनुं गत्वा भवेन सह मोदते।
एकभक्तव्रतं पुण्यं प्रतिमासमनुक्रमात्॥ ७०

मार्गशीर्षकमासादिकार्तिकान्तं प्रवर्तितम्।
नरनार्यादिजन्तूनां हिताय मुनिसत्तमाः॥ ७१

नरः कृत्वा व्रतं चैव शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
नारी देव्या न सन्देहः शिवेन परिभाषितम्॥ ७२

हाथमें हेमभूषित कमल, विष्णुके हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म, ब्रह्माके हाथोंमें अक्षमाला तथा उत्तम कमण्डलु, इन्द्रके हाथमें वज्र, अग्निके हाथमें शक्ति नामक महान् आयुध, यमके हाथमें दण्ड, निशिचर निर्ऋतिके हाथमें खड्ग, वरुणके हाथमें नाग नामक भयंकर तथा अद्भुत महापाश, वायुदेवके हाथमें यष्टि (छड़ी), कुबेरके हाथमें लोकपूजित गदा और ईशान देवके हाथमें टंक—इस प्रकार क्रमसे निवेदित करके शिवकी चरुसमन्वित महान् पूजा करके अपने सामर्थ्यके अनुसार सभी देवताओंकी पूजा करे। इसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर प्रयत्नपूर्वक उनका सम्मान करके महामेरुव्रत सम्पन्नकर महादेवको समर्पित कर दे। ऐसा करनेवाली स्त्री महामेरुपर्वत पहुँचकर महादेवीके साथ आनन्द करती है और चिरकालतक महादेवीका सायुज्य प्राप्त किये रहती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०—६५॥

जो स्त्री कार्तिक मासमें सोने अथवा ताँबेकी सभी आभरणोंसे युक्त तथा सभी लक्षणोंसे समन्वित देवी उमाकी सुन्दर प्रतिमा बनाकर; साथ ही देवेश महादेवकी भी सभी लक्षणोंसे युक्त मूर्ति बनाकर विधानपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करके उन दोनोंके सम्मुख अग्निको, हाथमें स्रुव लिये हुए ब्रह्माको और लोकपालों तथा सिद्धोंसे घिरे हुए एवं सभी आभूषणोंसे विभूषित कन्या-दाता नारायणको यत्नपूर्वक स्थापित करके भक्तिपूर्वक इस व्रतको रुद्रालयमें उन [शिव]-को समर्पित करती है, वह भवानीका स्वरूप प्राप्त करके शिवके साथ आनन्द करती है॥ ६६—६९ १/२॥

एक बार भोजन करके प्रत्येक मासके पुण्यप्रद व्रतको क्रमसे करे; हे श्रेष्ठ मुनियो! नर, नारी आदि प्राणियोंके कल्याणके लिये मार्गशीर्षसे आरम्भ करके कार्तिकतक किये जानेवाले इस व्रतको प्रवर्तित किया गया है। शिवके द्वारा बताये गये इस व्रतको करके पुरुष शिवका सायुज्य प्राप्त करता है और नारी देवी [पार्वती]-का सायुज्य प्राप्त करती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७०—७२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उमामहेश्वरव्रतं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'उमामहेश्वरव्रत' नामक चौरासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८४॥

पचासीवाँ अध्याय

पंचाक्षरीविद्या (पंचाक्षरमन्त्र), जपविधान तथा उसकी महिमा

सूत उवाच

सर्वव्रतेषु सम्पूज्य देवदेवमुमापतिम्।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः॥ १

जपादेव न सन्देहो व्रतानां वै विशेषतः।
समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरीं शुभाम्॥ २

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो ! समस्त व्रतोंमें देवदेव उमापतिकी पूजा करके विधिपूर्वक पंचाक्षरीविद्या (मन्त्र)-का जप करना चाहिये। जपसे ही विशेषकर व्रतोंकी पूर्णता होती है, अन्यथा नहीं; इसमें सन्देह नहीं है। अतः उत्तम पंचाक्षरीविद्याका जप [अवश्य] करना चाहिये॥ १-२॥

ऋषय ऊचुः

कथं पञ्चाक्षरी विद्या प्रभावो वा कथं वद।
क्रमोपायं महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥ ३

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] पंचाक्षरीविद्या क्या है और इसका प्रभाव कैसा होता है? हे महाभाग! क्रमसे इसकी विधि बताइये; इसे सुननेकी हमलोगोंकी [बड़ी] उत्सुकता है॥ ३॥

सूत उवाच

पुरा देवेन रुद्रेण देवदेवेन शम्भुना।
पार्वत्याः कथितं पुण्यं प्रवदामि समासतः॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] पूर्वकालमें देवदेव रुद्र भगवान् शम्भुके द्वारा पार्वतीसे कहे गये इस पुण्यप्रद मन्त्रको मैं संक्षेपमें बता रहा हूँ॥ ४॥

श्रीदेव्युवाच

भगवन् देवदेवेश सर्वलोकमहेश्वर।
पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ५

श्रीदेवी बोलीं—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे सर्वलोक-महेश्वर! मैं यथार्थरूपसे पंचाक्षरमन्त्रका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ॥ ५॥

श्रीभगवानुवाच

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्सङ्क्षेपतः शृणु॥ ६

श्रीभगवान् बोले—हे देवि! सौ करोड़ वर्षोंमें भी पंचाक्षरमन्त्रका माहात्म्य नहीं कहा जा सकता है; अतः इसे संक्षेपमें सुनिये॥ ६॥

प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टे देवासुरे चैव नष्टे चोरगराक्षसे॥ ७

हे देवि! प्रलयके उपस्थित होनेपर जब समस्त

सर्वं प्रकृतिमापन्नं त्वया प्रलयमेष्यति।
एकोऽहं संस्थितो देवि न द्वितीयोऽस्ति कुत्रचित्॥ ८

तस्मिन् वेदाश्च शास्त्राणि मन्त्रे पञ्चाक्षरे स्थिताः।
ते नाशं नैव सम्प्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः॥ ९

अहमेको द्विधाप्यासं प्रकृत्यात्मप्रभेदतः।
स तु नारायणः शेते देवो मायामयीं तनुम्॥ १०

आस्थाय योगपर्यङ्कशयने तोयमध्यगः।
तन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः॥ ११

सिसृक्षमाणो लोकान् वै त्रीनशक्तोऽसहायवान्।
दश ब्रह्मा ससर्जादौ मानसानमितौजसः॥ १२

तेषां सृष्टिप्रसिद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः।
मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर॥ १३

इति तेन समादिष्टः पञ्चवक्त्रधरो ह्यहम्।
पञ्चाक्षरान् पञ्चमुखैः प्रोक्तवान् पद्मयोनये॥ १४

तान् पञ्चवदनैर्गृह्णन् ब्रह्मा लोकपितामहः।
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान् परमेश्वरम्॥ १५

वाच्यः पञ्चाक्षरैर्देवि शिवस्त्रैलोक्यपूजितः।
वाचकः परमो मन्त्रस्तस्य पञ्चाक्षरः स्थितः॥ १६

ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं
लब्ध्वा तथा पञ्चमुखो महात्मा।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय
मन्त्रं महार्थं किल पञ्चवर्णम्॥ १७

ते लब्ध्वा मन्त्ररत्नं तु साक्षाल्लोकपितामहात्।
तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम्॥ १८

ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः।
दत्तवानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम्॥ १९

चराचर जगत्, देवता तथा असुर, नाग एवं राक्षस नष्ट हो जाते हैं और आपसहित सभी पदार्थ प्रकृतिमें लीन होकर प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं, उस समय एकमात्र मैं रह जाता हूँ; दूसरा कुछ भी नहीं रह जाता है। उस समय सभी वेद तथा शास्त्र उसी पंचाक्षरमन्त्रमें स्थित रहते हैं; मेरी शक्तिसे अनुपालित होनेके कारण वे नष्ट नहीं होते हैं॥ ७—९॥

मैं एक होता हुआ भी उस समय प्रकृति तथा आत्माके भेदसे दो रूपोंमें रहता हूँ। वे भगवान् नारायण मायामय शरीर धारणकर जलके मध्यमें योगरूपी पर्यंकपर शयन करते हैं। उनके नाभिकमलसे पाँच मुखवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए; तीनों लोकोंका सृजन करनेकी इच्छावाले उन ब्रह्माने [इस कार्यमें] असमर्थ तथा सहायकविहीन होनेके कारण प्रारम्भमें अमित तेजवाले दस मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ १०—१२॥

उनकी सृष्टिकी वृद्धिके लिये ब्रह्माने मुझसे कहा—'हे महादेव! हे महेश्वर! मेरे पुत्रोंको शक्ति प्रदान कीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर पाँच मुख धारण करनेवाले मैंने कमलयोनि (ब्रह्मा)-के लिये [अपने] पाँचमुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। अपने पाँच मुखोंसे उन [अक्षरों]-को ग्रहण करते हुए लोकपितामह ब्रह्माने वाच्यवाचक भावसे परमेश्वरको जान लिया। हे देवि! तीनों लोकोंमें पूजित शिव पंचाक्षरोंसे वाच्य हैं और [यह] परम पंचाक्षरमन्त्र उनके वाचकके रूपमें स्थित है॥ १३—१६॥

पाँच मुखवाले महात्मा ब्रह्माने विधिपूर्वक इसके प्रयोगको जानकर तथा सिद्धि प्राप्त करके जगत्‌के कल्याणके लिये अपने पुत्रोंको महान् अर्थवाले इस पंचाक्षरमन्त्रका उपदेश किया॥ १७॥

तदनन्तर साक्षात् लोकपितामहसे इस मन्त्ररत्नको प्राप्तकर वे उन परात्पर देव शिवकी आराधना करनेमें तत्पर हो गये॥ १८॥

तब त्रिदेवोंमें श्रेष्ठ भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उन्होंने उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान तथा अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्रदान कीं॥ १९॥

तेऽपि लब्ध्वा वरान् विप्रास्तदाराधनकाङ्क्षिणः।
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुञ्जवान्नाम पर्वतः॥ २०

मत्प्रियः सततं श्रीमान् मद्भूतैः परिरक्षितः।
तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकसृष्टिसमुत्सुकाः॥ २१

दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन्।
तिष्ठन्तोऽनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषयः पुरा॥ २२

तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम्।
पञ्चाक्षरमृषिच्छन्दो दैवतं शक्तिबीजवत्॥ २३

न्यासं षडङ्गं दिग्बन्धं विनियोगमशेषतः।
प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया॥ २४

तच्छ्रुत्वा मन्त्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः।
मन्त्रस्य विनियोगं च कृत्वा सर्वमनुष्ठिताः॥ २५

तन्माहात्म्यात्तदा लोकान् सदेवासुरमानुषान्।
वर्णान् वर्णविभागांश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान्॥ २६

पूर्वकल्पसमुद्भूताञ्छ्रुतवन्तो यथा पुरा।
पञ्चाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः॥ २७

तिष्ठन्ति शाश्वता धर्मा देवाः सर्वमिदं जगत्।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणु चावहिताखिलम्॥ २८

अल्पाक्षरं महार्थं च वेदसारं विमुक्तिदम्।
आज्ञासिद्धमसन्दिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्॥ २९

नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचित्तानुरञ्जकम्।
सुनिश्चितार्थं गम्भीरं वाक्यं मे पारमेश्वरम्॥ ३०

मन्त्रं मुखसुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसाधकम्।
तद्बीजं सर्वविद्यानां मन्त्रमाद्यं सुशोभनम्॥ ३१

अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्।
वेदः स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः॥ ३२

ओमित्येकाक्षरं मन्त्रं स्थितः सर्वगतः शिवः।
मन्त्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पञ्चाक्षरतनुः शिवः॥ ३३

तत्पश्चात् [उन] वरोंको प्राप्तकर वे विप्र [मेरी] आराधनाकी आकांक्षा करने लगे। मेरुके रम्य शिखरपर मुंजवान् नामक पर्वत है। शोभासम्पन्न यह पर्वत मुझे प्रिय है और मेरे भूतोंके द्वारा भलीभाँति रक्षित है। हे देवि! पूर्वकालमें उस [पर्वत]-के समीप स्थित रहते हुए लोकसृष्टिके इच्छुक उन ऋषियोंने मेरे अनुग्रहहेतु वायुके आहारपर रहकर हजार दिव्य वर्षोंतक कठोर तप किया॥ २०—२२॥

[हे देवि!] उनकी भक्ति देखकर मैं शीघ्र ही उनके समक्ष प्रकट हो गया और मैंने लोकोंके कल्याणकी इच्छासे उन महात्माओंको पंचाक्षरमन्त्र, उसके ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीजसहित षडंग न्यास, दिग्बन्ध तथा विनियोग पूर्ण रूपसे बता दिया॥ २३-२४॥

उस मन्त्रका माहात्म्य सुनकर उन तपोधन ऋषियोंने मन्त्रका विनियोग करके सभी अनुष्ठान पूर्ण किये। उसके बाद उन्होंने उस मन्त्रकी महिमासे लोकों, देवताओं, असुरों, मनुष्यों, वर्णों, वर्णविभागों तथा समस्त उत्तम धर्मोंको जो पूर्व कल्पमें उत्पन्न हुए थे—उन सबका श्रवण किया। पंचाक्षरमन्त्रके प्रभावसे ही लोक, वेद, महर्षिगण, शाश्वत धर्म, देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। अब मैं उसके विषयमें सब कुछ बताऊँगा; सावधान होकर सुनिये॥ २५—२८॥

यह मन्त्र अल्प अक्षरोंवाला, महान् अर्थोंवाला, वेदोंका सार, मुक्तिप्रद, आज्ञासिद्ध, असन्दिग्ध तथा शिवस्वरूप है॥ २९॥

यह मेरा मन्त्र अनेक सिद्धियोंसे युक्त, अलौकिक, लोगोंके चित्तको आनन्दित करनेवाला, सुनिश्चित अर्थोंवाला, गम्भीर तथा परमेश्वरस्वरूप है॥ ३०॥

यह मन्त्र मुखसे सुखपूर्वक उच्चारणयोग्य, सम्पूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला, सभी विद्याओंका बीजस्वरूप, आद्य (सबसे पहला) मन्त्र, परम सुन्दर, अति सूक्ष्म एवं महान् अर्थोंवाला है। इसे वटवृक्षके बीजकी भाँति समझना चाहिये। यह वेदस्वरूप, तीनों गुणोंसे परे, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाला तथा सर्वसमर्थ है॥ ३१-३२॥

ॐ—यह एक अक्षरवाला मन्त्र है; सर्वव्यापी

वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः।
वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मन्त्रस्तद्वाचकः स्मृतः॥ ३४

वाच्यवाचकभावोऽयमनादिः संस्थितस्तयोः।
वेदे शिवागमे वापि यत्र यत्र षडक्षरः॥ ३५

मन्त्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पञ्चाक्षरो मतः।
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तृतैः॥ ३६

यस्यैवं हृदि संस्थोऽयं मन्त्रः स्यात्पारमेश्वरः।
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्॥ ३७

यो विद्वान् वै जपेत्सम्यगधीत्यैव विधानतः।
एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्॥ ३८

एतावद् ब्रह्मविद्या च तस्मान्नित्यं जपेद् बुधः।
पञ्चाक्षरैः सप्रणवो मन्त्रोऽयं हृदयं मम॥ ३९

गुह्याद् गुह्यतरं साक्षान्मोक्षज्ञानमनुत्तमम्।
अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि ऋषिच्छन्दोऽधिदैवतम्॥ ४०

बीजं शक्तिं स्वरं वर्णं स्थानं चैवाक्षरं प्रति।
वामदेवो नाम ऋषिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतः॥ ४१

देवता शिव एवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने।
नकारादीनि बीजानि पञ्चभूतात्मकानि च॥ ४२

आत्मानं प्रणवं विद्धि सर्वव्यापिनमव्ययम्।
शक्तिस्त्वमेव देवेशि सर्वदेवनमस्कृते॥ ४३

त्वदीयं प्रणवं किञ्चिन्मदीयं प्रणवं तथा।
त्वदीयं देवि मन्त्राणां शक्तिभूतं न संशयः॥ ४४

अकारोकारमकारा मदीये प्रणवे स्थिताः।
उकारं च मकारं च अकारं च क्रमेण वै॥ ४५

त्वदीयं प्रणवं विद्धि त्रिमात्रं प्लुतमुत्तमम्।
ओङ्कारस्य स्वरोदात्त ऋषिर्ब्रह्मा सितं वपुः॥ ४६

छन्दो देवी च गायत्री परमात्माधिदेवता।
उदात्तः प्रथमस्तद्वच्चतुर्थश्च द्वितीयकः॥ ४७

पञ्चमः स्वरितश्चैव मध्यमो निषधः स्मृतः।
नकारः पीतवर्णश्च स्थानं पूर्वमुखं स्मृतम्॥ ४८

शिव इसमें स्थित रहते हैं। पाँच अक्षररूपी शरीरवाले शिव स्वभावसे ही सूक्ष्म षडक्षर (छः अक्षरोंवाले)-मन्त्रमें वाच्य-वाचक भावसे विराजमान हैं। प्रमेयत्वके कारण शिव वाच्य हैं तथा मन्त्र उनका वाचक कहा गया है। यह वाच्य-वाचक भाव (सम्बन्ध) उन दोनोंमें अनादि है। वेद अथवा शिवागममें षडक्षरमन्त्र स्थित है; किंतु लोकमें पंचाक्षरमन्त्रको मुख्य माना गया है। जिसके हृदयमें परमेश्वररूप यह मन्त्र स्थित है उसे बहुत मन्त्रों अथवा अतिविस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन! जो विद्वान् विधानपूर्वक इसका ज्ञान प्राप्तकर इसे ठीक-ठीक जपता है, उसने मानो वेदोंका अध्ययन कर लिया और सबकुछ अनुष्ठित कर लिया। मात्र यही शिवज्ञान है, यही परम पद है और यही ब्रह्मविद्या है; अतः विद्वान्‌को नित्य इसका जप करना चाहिये। प्रणव (ॐ)-सहित पाँच अक्षरोंसे युक्त यह मन्त्र [**ॐ नमः शिवाय**] मेरा हृदय है। यह गूढ़से भी गूढ़ है और साक्षात् सर्वोत्तम मोक्षज्ञान है॥ ३३—३९½॥

[हे देवि!] अब मैं इस मन्त्रके और प्रत्येक अक्षरके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, स्वर, वर्ण तथा स्थानका वर्णन करूँगा। इस मन्त्रके ऋषि वामदेव तथा छन्द पंक्ति कहा गया है। हे वरानने! इस मन्त्रका देवता [स्वयं] मैं शिव ही हूँ। पंचभूतस्वरूप 'न'कार आदि इसके बीज हैं। प्रणवको सर्वव्यापी तथा शाश्वत आत्मा समझो। हे सभी देवताओंसे नमस्कृत देवेशि! [स्वयं] तुम ही इसकी शक्ति हो। कुछ प्रणव तुम्हारा है और कुछ प्रणव हमारा है। हे देवि! तुम्हारा प्रणव सभी मन्त्रोंका शक्तिस्वरूप है; इसमें संशय नहीं है॥ ४०—४४॥

हे देवि! 'अ', 'उ', 'म' मेरे प्रणवमें स्थित हैं। क्रमसे 'उ', 'म', 'अ' तुम्हारे प्रणवके हैं; तुम इस उत्तम प्रणवको प्लुत तीन मात्राओंवाला जानो। ओंकारका स्वर उदात्त है, इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, इसका शरीर श्वेत है, छन्द देवी गायत्री हैं और इसके अधिदेवता परमात्मा हैं। इसका पहला, दूसरा तथा चौथा वर्ण उदात्त; पाँचवाँ वर्ण स्वरित और मध्यम वर्ण निषध [निषादस्वर] कहा गया है॥ ४५—४७½॥

इन्द्रोऽधिदैवतं छन्दो गायत्री गौतमो ऋषिः।
मकारः कृष्णवर्णोऽस्य स्थानं वै दक्षिणामुखम्॥ ४९

छन्दोऽनुष्टुप् ऋषिश्चात्री रुद्रो दैवतमुच्यते।
शिकारो धूम्रवर्णोऽस्य स्थानं वै पश्चिमं मुखम्॥ ५०

विश्वामित्र ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दो विष्णुस्तु दैवतम्।
वाकारो हेमवर्णोऽस्य स्थानं चैवोत्तरं मुखम्॥ ५१

ब्रह्माधिदैवतं छन्दो बृहती चाङ्गिरा ऋषिः।
यकारो रक्तवर्णश्च स्थानमूर्ध्वं मुखं विराट्॥ ५२

छन्दो ऋषिर्भरद्वाजः स्कन्दो दैवतमुच्यते।
न्यासमस्य प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं शुभम्॥ ५३

सर्वपापहरं चैव त्रिविधो न्यास उच्यते।
उत्पत्तिस्थितिसंहारभेदतस्त्रिविधः स्मृतः॥ ५४

ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनां क्रमशो भवेत्।
उत्पत्तिर्ब्रह्मचारीणां गृहस्थानां स्थितिः सदा॥ ५५

यतीनां संहृतिन्यासः सिद्धिर्भवति नान्यथा।
अङ्गन्यासः करन्यासो देहन्यास इति त्रिधा॥ ५६

उत्पत्त्यादित्रिभेदेन वक्ष्यते ते वरानने।
न्यसेत्पूर्वं करन्यासं देहन्यासमनन्तरम्॥ ५७

अङ्गन्यासं ततः पश्चादक्षराणां विधिक्रमात्।
मूर्धादिपादपर्यन्तमुत्पत्तिन्यास उच्यते॥ ५८

पादादिमूर्धपर्यन्तं संहारो भवति प्रिये।
हृदयास्यगलन्यासः स्थितिन्यास उदाहृतः॥ ५९

ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनां चैव शोभने।
सशिरस्कं ततो देहं सर्वमन्त्रेण संस्पृशेत्॥ ६०

स देहन्यास इत्युक्तः सर्वेषां सम एव सः।
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठान्त एव हि॥ ६१

'न' पीले रंगका है और स्थान पूर्वमुख (पूरबकी ओर मुखवाला) कहा गया है। इसके अधिदेवता इन्द्र हैं, इसका छन्द गायत्री है और इसके ऋषि गौतम हैं। 'म' कृष्ण वर्णवाला है, इसका स्थान दक्षिणमुख है, इसका छन्द अनुष्टुप् है, इसके ऋषि अत्रि हैं और इसके अधिदेवता रुद्र कहे जाते हैं। 'शि' धूम्र वर्णवाला है, इसका स्थान पश्चिममुख है, इसके ऋषि विश्वामित्र हैं, इसका छन्द त्रिष्टुप् है और इसके देवता विष्णु हैं। 'वा' हेम वर्णवाला है, इसका स्थान उत्तरमुख है, इसके अधिदेवता ब्रह्मा हैं, इसका छन्द बृहती है और इसके ऋषि अंगिरा हैं। 'य' लाल रंगवाला है, इसका स्थान ऊर्ध्वमुख है, इसका छन्द विराट् है, इसके ऋषि भरद्वाज हैं और इसके देवता स्कन्द कहे जाते हैं॥ ४८—५२१/२॥

[हे देवि!] अब मैं सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले, मंगलमय तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाले इसके न्यासको बताऊँगा। न्यास तीन प्रकारका कहा जाता है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) तथा संहारके भेदसे यह तीन प्रकारका कहा गया है; यह क्रमशः ब्रह्मचारियों, गृहस्थों तथा यतियोंके लिये होता है। उत्पत्ति [न्यास] ब्रह्मचारियोंका, स्थिति [न्यास] गृहस्थोंका और संहृति (संहार) न्यास यतियोंका होता है; अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती॥ ५३—५५१/२॥

अंगन्यास, करन्यास, देहन्यास—यह तीन प्रकारका न्यास होता है; हे वरानने! अब मैं उत्पत्ति आदि तीन भेदोंसे इन्हें भी आपको बताऊँगा। सबसे पहले करन्यास उसके बाद देहन्यास पुनः अंगन्यास मन्त्रके अक्षरोंके क्रमसे करना चाहिये। सिरसे प्रारम्भ होकर पैरोंतकका न्यास उत्पत्तिन्यास कहा जाता है। हे प्रिये! पैरोंसे प्रारम्भ होकर सिरतकका न्यास संहारन्यास होता है। हृदय, मुख और कण्ठका न्यास स्थितिन्यास कहा गया है। हे शोभने! यह न्यास [क्रमशः] ब्रह्मचारियों, गृहस्थों तथा यतियोंके लिये है॥ ५६—५९१/२॥

तत्पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्रसे सिरसहित देहका स्पर्श करना चाहिये। वह देहन्यास कहा गया है; वह सबके

न्यस्यते यत्तदुत्पत्तिर्विपरीतं तु संहृतिः।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यस्यते हस्तयोर्द्वयोः॥ ६२

अतीव भोगदो देवि स्थितिन्यासः कुटुम्बिनाम्।
करन्यासं पुरा कृत्वा देहन्यासमनन्तरम्॥ ६३

अङ्गन्यासं न्यसेत्पश्चादेष साधारणो विधिः।
ओङ्कारं सम्पुटीकृत्य सर्वाङ्गेषु च विन्यसेत्॥ ६४

करयोरुभयोश्चैव दशाग्राङ्गुलिषु क्रमात्।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य शुचिर्भूत्वा समाहितः॥ ६५

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न्यासकर्म समाचरेत्।
स्मरेत्पूर्वमृषिं छन्दो दैवतं बीजमेव च॥ ६६

शक्तिं च परमात्मानं गुरुं चैव वरानने।
मन्त्रेण पाणी सम्मृज्य तलयोः प्रणवं न्यसेत्॥ ६७

अङ्गुलीनां च सर्वेषां तथा चाद्यन्तपर्वसु।
सबिन्दुकानि बीजानि पञ्चमध्यमपर्वसु॥ ६८

उत्पत्त्यादित्रिभेदेन न्यसेदाश्रमतः क्रमात्।
उभाभ्यामेव पाणिभ्यामापादतलमस्तकम्॥ ६९

मन्त्रेण संस्पृशेद्देहं प्रणवेनैव सम्पुटम्।
मूर्ध्नि वक्त्रे च कण्ठे च हृदये गुह्यके तथा॥ ७०

पादयोरुभयोश्चैव गुह्ये च हृदये तथा।
कण्ठे च मुखमध्ये च मूर्ध्नि च प्रणवादिकम्॥ ७१

हृदये गुह्यके चैव पादयोर्मूर्ध्नि वाचि वा।
कण्ठे चैव न्यसेदेव प्रणवादित्रिभेदतः॥ ७२

कृत्वाङ्गन्यासमेवं हि मुखानि परिकल्पयेत्।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्यन्तं नकारादि यथाक्रमम्॥ ७३

षडङ्गानि न्यसेत्पश्चाद्यथास्थानं च शोभनम्।
नमः स्वाहा वषड्ढुं च वौषट्फट्कारकैः सह॥ ७४

प्रणवं हृदयं विद्यान्नकारः शिर उच्यते।
शिखा मकार आख्यातः शिकारः कवचं तथा॥ ७५

लिये समान है। दाहिने हाथके अँगूठेसे प्रारम्भ करके बायें हाथके अँगूठेतक जो न्यास किया जाता है, वह उत्पत्तिन्यास है और इसके विपरीत करना संहति (संहार) न्यास है। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे प्रारम्भ करके कनिष्ठातक जो न्यास किया जाता है, वह स्थितिन्यास होता है; हे देवि! वह [न्यास] गृहस्थोंको परम सुख प्रदान करनेवाला है। सर्वप्रथम करन्यास करके देहन्यास करना चाहिये और उसके बाद अंगन्यास करना चाहिये; यह सामान्य विधि है॥ ६०—६३½॥

प्रत्येक मन्त्रको ओंकारसे सम्पुटित करके सभी अंगोंमें, दोनों हाथोंमें तथा दसों अँगुलियोंके अग्रभागमें क्रमसे न्यास करना चाहिये। दोनों पैर धोकर आचमन करके शुद्ध होकर समाहित चित्त होकर पूर्वकी ओर अथवा उत्तरकी ओर मुख करके न्यासकर्म करना चाहिये॥ ६४-६५½॥

हे वरानने! प्रारम्भमें ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, परमात्मा तथा गुरुका स्मरण करना चाहिये। मन्त्रके उच्चारणके साथ दोनों हाथोंको धोकर दोनों करतलोंमें प्रणवका न्यास करना चाहिये। सभी अँगुलियोंके आदि-अन्त पर्वोंपर और पाँचों मध्यम पर्वोंपर बिन्दुयुक्त पाँच बीजोंका उत्पत्ति आदि तीन भेदोंसे तथा ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे न्यास करना चाहिये। दोनों हाथोंसे मस्तकसे लेकर पैरतक प्रणवके द्वारा सम्पुटित मन्त्रसे देहका स्पर्श करना चाहिये। प्रणवयुक्त मन्त्रसे सिर, मुख, कण्ठ, हृदय, गुह्यस्थान एवं दोनों पैरोंमें; गुह्यस्थान, हृदय, कण्ठ, मुख तथा सिरमें; पुनः हृदय, गुह्यस्थान, दोनों पैरों, सिर, मुख तथा कण्ठमें तीन प्रकारका न्यास करना चाहिये। इस प्रकार अंगन्यास करके प्रणवसहित नकारसे प्रारम्भ होकर यकारपर पूर्ण होनेवाले इन नकार आदि वर्णोंकी क्रमशः अपने शरीरमें भावना करे। इसके बाद मन्त्रमें नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् तथा फट्के साथ यथास्थान छहों अंगोंमें उत्तम रीतिसे न्यास करना चाहिये॥ ६६—७४॥

प्रणवको हृदय जानना चाहिये, 'न' को सिर कहा जाता है, 'म' को शिखा कहा गया है, 'शि' को कवच

वाकारो नेत्रमस्त्रं तु यकारः परिकीर्तितः।
इत्थमङ्गानि विन्यस्य ततो वै बन्धयेद्दिशः॥ ७६
विघ्नेशो मातरो दुर्गा क्षेत्रज्ञो देवता दिशः।
आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्ष्वपि यथाक्रमम्॥ ७७
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां संस्थाप्य सुमुखं शुभम्।
रक्षध्वमिति चोक्त्वा तु नमस्कुर्यात्पृथक् पृथक्॥ ७८

कहा गया है, 'वा' को नेत्र और 'य' को अस्त्र कहा गया है। इस प्रकार अंगोंका न्यास करनेके अनन्तर दिशाओंको बाँधना चाहिये। आग्नेय आदि चारों कोणोंमें क्रमशः विघ्नेश, माताएँ, दुर्गा तथा क्षेत्रज्ञ दिशाओंके देवता हैं। अंगुष्ठ तथा तर्जनीके अग्रभागोंसे कल्याणप्रद तथा सुन्दर मुखवाले गणेश आदिको दिशाओंमें स्थापित करके 'रक्षा कीजिये'—ऐसा कहकर इन्हें पृथक्-पृथक् नमस्कार करना चाहिये॥ ७५—७८॥

गले मध्ये तथाङ्गुष्ठे तर्जन्याद्यङ्गुलीषु च।
अङ्गुष्ठेन करन्यासं कुर्यादेव विचक्षणः॥ ७९
एवं न्यासमिमं प्रोक्तं सर्वपापहरं शुभम्॥
सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वरक्षाकरं शिवम्॥ ८०
न्यस्ते मन्त्रेऽथ सुभगे शङ्करप्रतिमो भवेत्।
जन्मान्तरकृतं पापमपि नश्यति तत्क्षणात्॥ ८१
एवं विन्यस्य मेधावी शुद्धकायो दृढव्रतः।
जपेत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं लब्ध्वाचार्यप्रसादतः॥ ८२

बुद्धिमान्‌को चाहिये कि कण्ठमें, मध्यमें, अँगूठेमें, तर्जनी आदि अँगुलियोंमें अँगूठेसे ही करन्यास करे। इस प्रकार यह न्यास सभी पापोंको हरनेवाला, शुभ, सभी सिद्धियाँ देनेवाला, पुण्यप्रद, सबकी रक्षा करनेवाला तथा कल्याणकारी कहा गया है। हे सुभगे! मन्त्रका न्यास कर लेनेपर साधक शिवतुल्य हो जाता है और उसके द्वारा पूर्व जन्ममें किया गया पाप भी उसी क्षण नष्ट हो जाता है। इस प्रकार न्यास करके मेधावीको शुद्ध शरीरवाला तथा दृढ़व्रती होकर आचार्यकी कृपासे ग्रहण करके पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ७९—८२॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसङ्ग्रहणं शुभे।
यं विना निष्फलं नित्यं येन वा सफलं भवेत्॥ ८३
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनममानसम्।
आज्ञप्तं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम्॥ ८४
आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं सुमानसम्।
एवं च दक्षिणासिद्धं मन्त्रं सिद्धं यतस्ततः॥ ८५

हे शुभे! अब मैं इस मन्त्रको ग्रहण करनेकी विधि बताऊँगा, जिसके बिना यह निष्फल हो जाता है और जिसके द्वारा यह सफल होता है। आज्ञाहीन, क्रियाहीन, श्रद्धाहीन, ध्यानहीन, आज्ञप्त तथा दक्षिणाहीन मन्त्र जपे जानेपर सदा निष्फल होता है। आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध, सुमानस (पूर्ण ध्यानयुक्त) तथा दक्षिणासिद्ध मन्त्र सदा सफल होता है॥ ८३—८५॥

उपगम्य गुरुं विप्रं मन्त्रतत्त्वार्थवेदिनम्।
ज्ञानिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्॥ ८६
तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः।
वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च॥ ८७
आचार्यं पूजयेच्छिष्यः सर्वदातिप्रयत्नतः।
हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥ ८८
भूषणानि च वासांसि धान्यानि विविधानि च।
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति॥ ८९
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः।
पश्चान्निवेदयेद्देवि आत्मानं सपरिच्छदम्॥ ९०

शिष्यको चाहिये कि मन्त्रके वास्तविक अर्थके ज्ञाता, ज्ञानसम्पन्न, सद्‌गुणोंसे युक्त तथा ध्यानयोगपरायण ब्राह्मण गुरुके पास जाकर भावशुद्धिसे युक्त हो मन-वचन-शरीर तथा धनसे उन्हें प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे और बड़े प्रयत्नके साथ उन आचार्यकी सर्वदा पूजा करे। वैभव रहनेपर हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र, गृह, आभूषण, वस्त्र तथा विविध धान्य—ये सब गुरुको भक्तिपूर्वक देना चाहिये। यदि वह अपनी सिद्धि चाहता हो तो धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। हे देवि!

एवं सम्पूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववञ्चयन्।
आददीत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु॥ ९१

एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजितं वत्सरोषितम्।
शुश्रूषुमनहङ्कारमुपवासकृशं शुचिम्॥ ९२

स्नापयित्वा तु शिष्याय ब्राह्मणानपि पूज्य च।
समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा॥ ९३

शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ।
नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदा दोषवर्जिते॥ ९४

अनुगृह्य ततो दद्याच्छिवज्ञानमनुत्तमम्।
स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकान्तेऽपि प्रसन्नधीः॥ ९५

उच्चार्योच्चारयित्वा तु आचार्यः सिद्धिदः स्वयम्।
शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति॥ ९६

एवं लब्ध्वा परं मन्त्रं ज्ञानं चैव गुरोस्ततः।
जपेन्नित्यं ससङ्कल्पं पुरश्चरणमेव च॥ ९७

यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्त्रकम्।
अनश्नंस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम्॥ ९८

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्।
नक्ताशी संयमी यश्च पौरश्चरणिकः स्मृतः॥ ९९

पुरश्चरणजापी वा अपि वा नित्यजापकः।
अचिरात्सिद्धिकाङ्क्षी तु तयोरन्यतरो भवेत्॥ १००

यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेन्नरः।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो वशी॥ १०१

आसनं रुचिरं बद्ध्वा मौनी चैकाग्रमानसः।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि जपेन्मन्त्रमनुत्तमम्॥ १०२

आद्यन्तयोर्जपस्यापि कुर्याद्वै प्राणसंयमान्।
तथा चान्ते जपेद्बीजं शतमष्टोत्तरं शुभम्॥ १०३

इसके बाद सेवक आदि सहित अपने आपको भी समर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक यथाशक्ति [गुरुकी] पूजा करके निष्कपट भाव रखते हुए [शिष्यको] गुरुसे क्रमपूर्वक मन्त्र तथा ज्ञान ग्रहण करना चाहिये॥ ८६—९१॥

इस प्रकार सन्तुष्ट गुरु वर्षपर्यन्त पास रहकर सेवामें परायण, अहंकाररहित, उपवाससे दुर्बल शरीरवाले तथा शुद्धियुक्त पूजित शिष्यको स्नान कराकर ब्राह्मणोंकी पूजा करके [किसी] समुद्रतटपर, नदीतटपर, गोशालामें, देवालयमें, पवित्र स्थानमें अथवा घरमें ही सिद्धिकारक समयमें, उत्तम तिथिमें तथा दोषरहित नक्षत्र एवं शुभयोगमें शिष्यपर अनुग्रह करके उसे अत्युत्तम शिवज्ञान प्रदान करे; साथ ही प्रसन्नचित्त होकर एकान्तमें स्वरसे सम्यक् उच्चारण करे। स्वयं उच्चारणकर तथा उच्चारण कराकर मन्त्रदाता आचार्य बोले—[तुम्हारा] कल्याण हो, शुभ हो, कुशल हो, प्रिय हो॥ ९२—९६॥

इस प्रकार गुरुसे श्रेष्ठ मन्त्र तथा ज्ञान प्राप्त करके नित्य इसका ससंकल्प जप करना चाहिये और पुरश्चरण भी करना चाहिये। जो बिना भोजन किये तत्पर होकर आजीवन नित्य इसका एक हजार आठ बार जप करता है, वह परम गति प्राप्त करता है॥ ९७-९८॥

नक्तव्रत करते हुए तथा नियमोंका पालन करते हुए जो श्रद्धापूर्वक मन्त्रकी अक्षरसंख्याका चार लाख गुना जप करता है, उसे पुरश्चरणकर्ता कहा गया है। पुरश्चरणजप करनेवाला अथवा नित्य जप करनेवाला शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। दोनोंमें किसी एकको अवश्य करना चाहिये॥ ९९-१००॥

जो मनुष्य पुरश्चरण करके इसका नित्य जप करनेवाला है, उसके समान लोकमें कोई नहीं है; वह सिद्ध, सिद्धिदाता तथा इन्द्रियजित् होता है॥ १०१॥

सुखदायक आसन लगाकर मौन तथा एकाग्रचित्त होकर पूर्वकी ओर अथवा उत्तरकी ओर मुख करके [इस] सर्वोत्तम मन्त्रका जप करना चाहिये॥ १०२॥

जपके प्रारम्भ और अन्तमें [तीन-तीन] प्राणायाम करना चाहिये और अन्तमें एक सौ आठ बार बीजमन्त्रका

चत्वारिंशत्समावृत्ति प्राणानायम्य संस्मरेत्।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य प्राणायाम उदाहृतः॥ १०४

प्राणायामाद्भवेत्क्षिप्रं सर्वपापपरिक्षयः।
इन्द्रियाणां वशित्वं च तस्मात्प्राणांश्च संयमेत्॥ १०५

गृहे जपः समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत्।
नद्यां शतसहस्रं तु अनन्तः शिवसन्निधौ॥ १०६

समुद्रतीरे देवह्रदे गिरौ देवालयेषु च।
पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत्॥ १०७

शिवस्य सन्निधाने च सूर्यस्याग्रे गुरोरपि।
दीपस्य गोर्जलस्यापि जपकर्म प्रशस्यते॥ १०८

अङ्गुलीजपसंख्यानमेकमेकं शुभानने।
रेखैरष्टगुणं प्रोक्तं पुत्रजीवफलैर्दश॥ १०९

शतं वै शङ्खमणिभिः प्रवालैश्च सहस्रकम्।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते॥ ११०

पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणमुच्यते॥ १११

पञ्चविंशति मोक्षार्थं सप्तविंशति पौष्टिकम्।
त्रिंशच्च धनसम्पत्त्यै पञ्चाशच्चाभिचारिकम्॥ ११२

तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम्।
पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिकं भवेत्॥ ११३

अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशनी।
मध्यमा धनदा शान्तिं करोत्येषा ह्यनामिका॥ ११४

जप करना चाहिये। श्वास रोककर चालीस बार जप करना चाहिये। यह पंचाक्षरमन्त्रका प्राणायाम कहा गया है। प्राणायामसे शीघ्र ही सभी पापोंका नाश और इन्द्रियोंका निग्रह हो जाता है, अतः प्राणायाम [अवश्य] करना चाहिये॥ १०३—१०५॥

घरमें किये गये जपको सामान्य फलवाला जानना चाहिये। गोशालामें किया गया जप उससे सौ गुना फलदायक होता है। नदीके तटपर किया गया जप लाख गुना और शिवके सान्निध्यमें किया गया जप अनन्त गुना फलदायक होता है। समुद्रके तटपर, देवसरोवरमें, पर्वतपर, देवालयमें अथवा सभी पवित्र आश्रमोंमें किया गया जप करोड़ गुना फलदायक होता है। शिवकी सन्निधिमें, सूर्य, गुरु, दीपक, गौ अथवा जलके समक्ष जपकर्म श्रेष्ठ माना जाता है॥ १०६—१०८॥

हे शुभानने! एक-एक करके अँगुलीसे जपकी गणना करनेपर वह सामान्य फल प्रदान करता है; रेखाओंसे करनेपर वह आठ गुना फलदायक कहा गया है। पुत्रजीव-फलोंसे जप करनेपर दस गुना, शंखमणियोंसे करनेपर सौ गुना, प्रवालों (मूँगा)-से करनेपर हजार गुना, स्फटिकोंसे करनेपर दस हजार गुना और मोतियोंसे करनेपर लाख गुना फलदायक कहा जाता है। कमलके बीजसे करनेपर दस लाख गुना और सोनेके सुवर्णखण्डोंसे करनेपर जप करोड़ गुना फलदायक कहा जाता है। कुशाकी ग्रन्थिसे तथा रुद्राक्षोंसे गणना करनेपर जप अनन्त गुना फलदायक होता है॥ १०९—१११॥

पचीस मणियोंकी माला मोक्षके लिये, सत्ताईसकी [माला] पुष्टिके लिये, तीसकी धन-सम्पदाके लिये और पचासकी अभिचार कर्मके लिये होती है। पूर्वकी ओर मुख करके किया गया जप वशीकरणकी शक्ति देनेवाला और दक्षिणकी ओर मुख करके किया गया जप अभिचारकर्मकी शक्ति देनेवाला होता है। पश्चिमकी ओर मुख करके किये गये जपको धन प्रदान करनेवाला जानना चाहिये। उत्तरकी ओर मुख करके किया गया जप शान्ति प्रदान करनेवाला होता है॥ ११२-११३॥

अँगूठेको मोक्ष देनेवाला जानना चाहिये। तर्जनी

कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने।
अङ्गुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरङ्गुलिभिः सह॥ ११५

अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः।
शृणुष्व सर्वयज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥ ११६

हिंसया ते प्रवर्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया।
यावन्तः कर्म यज्ञाः स्युः प्रदानानि तपांसि च॥ ११७

सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
माहात्म्यं वाचिकस्यैव जपयज्ञस्य कीर्तितम्॥ ११८

तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः।
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः॥ ११९

मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ तु चालयेत्॥ १२०

किञ्चित्कर्णान्तरं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः।
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्॥ १२१

शब्दार्थं चिन्तयेद्भूयः स तूक्तो मानसो जपः।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः॥ १२२

भवेद्यज्ञविशेषेण वैशिष्ट्यं तत्फलस्य च।
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति॥ १२३

प्रसन्ना विपुलान् भोगान् दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सर्वे च भीषणाः।
जापिनं नोपसर्पन्ति भयभीताः समन्ततः॥ १२४

जपेन पापं शमयेदशेषं
यत्तत्कृतं जन्मपरम्परासु।
जपेन भोगान् जयते च मृत्युं
जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम्॥ १२५

एवं लब्ध्वा शिवं ज्ञानं ज्ञात्वा जपविधिक्रमम्॥ १२६

[अँगुली] शत्रुका नाश करनेवाली तथा मध्यमा धन प्रदान करनेवाली है। अनामिका शान्ति प्रदान करती है। हे शोभने! जपकर्ममें कनिष्ठा रक्षणीय होती है। अँगूठेसे अन्य अँगुलियोंके साथ मन्त्रका जप करना चाहिये; क्योंकि बिना अँगूठेके जो जपकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है॥ ११४-११५$^1/_2$॥

[हे देवि!] सुनो, जपयज्ञ सभी यज्ञोंसे श्रेष्ठ है; वे सभी यज्ञ हिंसाके साथ हुआ करते हैं, किंतु जपयज्ञ बिना हिंसाके होता है। जितने भी अनुष्ठान, यज्ञ, दान तथा तप हैं, वे सब [इस] जपयज्ञकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ११६-११७$^1/_2$॥

वाचिक जपयज्ञका जो माहात्म्य बताया गया है; उपांशु [जपयज्ञ] उससे सौ गुना और मानस [जपयज्ञ] हजार गुना [फलप्रद] कहा गया है। यदि साधक स्पष्ट पद-अक्षरोंवाले शब्दोंके साथ उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरोंमें वाणीके द्वारा मन्त्रका उच्चारण करता है, तो वह जपयज्ञ वाचिक होता है। यदि साधक धीमे स्वरमें मन्त्रका उच्चारण करता है और कुछ-कुछ ओठोंको चलाता है तथा उसे कुछ-कुछ कानमें सुनायी पड़ता है, तो वह जप उपांशु कहा गया है। यदि साधक मनमें अक्षरसमूहके वर्णसे वर्ण तथा पदसे पद शब्दार्थका बार-बार चिन्तन करता है, तो उस जपको मानस जप कहा गया है। तीनों जपयज्ञोंमें उत्तरोत्तर (बादवाला पहलेकी अपेक्षा) श्रेष्ठ है। यज्ञविशेषसे उसके फलका वैशिष्ट्य होता है॥ ११८—१२२$^1/_2$॥

जपके द्वारा नित्य स्तुति किये जाते हुए देवता प्रसन्न हो जाते हैं और प्रसन्न होकर अत्यधिक भोग तथा चिरस्थायी मुक्ति प्रदान करते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा सभी भयंकर ग्रह जप करनेवालेके पास नहीं जाते और उससे पूर्णरूपसे भयभीत रहते हैं॥ १२३-१२४॥

मनुष्य जन्म-जन्मान्तरमें जो भी पाप किये रहता है, उसे जपके द्वारा नष्ट कर देता है; जपके द्वारा भोगोंको प्राप्त करता है; मृत्युको जीत लेता है; जपके द्वारा सिद्धि तथा मुक्तिको भी प्राप्त कर लेता है॥ १२५॥

इस प्रकार शिवज्ञान प्राप्त करके और जपके

सदाचारी जपन्नित्यं ध्यायन् भद्रं समश्नुते।
सदाचारं प्रवक्ष्यामि सम्यक् धर्मस्य साधनम्॥ १२७

यस्मादाचारहीनस्य साधनं निष्फलं भवेत्।
आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः॥ १२८

आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः।
सदाचारवतां पुंसां सर्वत्राप्यभयं भवेत्॥ १२९

तद्वदाचारहीनानां सर्वत्रैव भयं भवेत्।
सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च वरानने॥ १३०

उपयान्ति कुयोनित्वं तद्वदाचारलङ्घनात्।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः॥ १३१

तस्मात्संसिद्धिमन्विच्छन् सम्यगाचारवान् भवेत्।
दुर्वृत्तो शुद्धिभूयिष्ठो पापीयाज्ज्ञानदूषकः॥ १३२

वर्णाश्रमविधानोक्तं धर्मं कुर्वीत यत्नतः॥ १३३

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कुर्वन् मत्प्रियः सदा।
सन्ध्योपासनशीलः स्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः॥ १३४

उदयास्तमयात्पूर्वमारभ्य विधिना शुचिः।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्सन्ध्यां नातिक्रमेद् द्विजः॥ १३५

सन्ध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पतते यतः।
असत्यं न वदेत्किञ्चिन्न सत्यं च परित्यजेत्॥ १३६

यत्सत्यं ब्रह्म इत्याहुरसत्यं ब्रह्मदूषणम्।
अनृतं परुषं शाठ्यं पैशुन्यं पापहेतुकम्॥ १३७

परदारान् परद्रव्यं परहिंसां च सर्वदा।
क्वचिच्चापि न कुर्वीत वाचा च मनसा तथा॥ १३८

शूद्रान्नं यातयामान्नं नैवेद्यं श्राद्धमेव च।
गणान्नं समुदायान्नं राजान्नं च विवर्जयेत्॥ १३९

विधिक्रमको जानकर सदाचारी [मनुष्य] नित्य जप करता हुआ तथा शिवका ध्यान करता हुआ कल्याण प्राप्त करता है॥ १२६$^{1}/_{2}$॥

[हे देवि!] अब मैं धर्मके साधनस्वरूप सदाचारका सम्यक् वर्णन करूँगा; क्योंकि आचारहीन [व्यक्ति]-का साधन निष्फल हो जाता है। आचार सर्वश्रेष्ठ धर्म है, आचार परम तप है, आचार परम विद्या है और आचार परम गति है। जिस तरह सदाचारी मनुष्योंको सभी जगह अभय रहता है; उसी तरह आचारहीनोंको सर्वत्र भय ही रहता है॥ १२७—१२९$^{1}/_{2}$॥

हे वरानने! जो सदाचारका पालन करते हैं, वे देवत्व तथा ऋषित्व प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार जो आचारका उल्लंघन करते हैं, वे कुत्सित योनि प्राप्त करते हैं। आचारसे विहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है, अतः सिद्धिकी इच्छा रखनेवालेको पूर्णरूपसे आचारवान् होना चाहिये। महान् शुद्धिसे युक्त होता हुआ भी दुराचारी व्यक्ति पापी तथा ज्ञानको दूषित करनेवाला होता है॥ १३०—१३२॥

वर्णाश्रम-विधानके अनुसार बताये गये धर्मका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। जिसका जो कर्म विहित है, उसे करनेवाला सर्वदा मुझे प्रिय है। प्रसन्नचित्त होकर प्रातः तथा सायंकाल सन्ध्योपासन करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि सूर्योदय तथा सूर्यास्तके पूर्व आरम्भ करके पवित्र होकर विधिपूर्वक सन्ध्या करे और काम, मोह, भय तथा लोभके कारण सन्ध्याका उल्लंघन न करे; क्योंकि सन्ध्याका उल्लंघन करनेसे विप्र ब्राह्मणत्वसे पतित हो जाता है॥ १३३—१३५$^{1}/_{2}$॥

कुछ भी असत्य नहीं बोलना चाहिये और सत्यका त्याग नहीं करना चाहिये। सत्यको ब्रह्म कहा गया है; असत्य ब्रह्मको दूषित करनेवाला है। असत्य, कठोर वचन, शठता तथा परनिन्दा—ये पापके कारण हैं। वाणी तथा मनसे भी परायी स्त्री तथा पराये धनका हरण और परहिंसा कभी भी नहीं करनी चाहिये॥ १३६—१३८॥

शूद्रके अन्न, बासी अन्न, [शिवका] नैवेद्य, श्राद्धके अन्न, अनेक लोगोंके अधिकारवाले अन्न, समुदायविशेषके

अन्नशुद्धौ सत्त्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै।
सत्त्वशुद्धौ भवेत्सिद्धिस्ततोऽन्नं परिशोधयेत्॥ १४०

राजप्रतिग्रहैर्दग्धान् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
स्विन्नानामपि बीजानां पुनर्जन्म न विद्यते॥ १४१

राजप्रतिग्रहो घोरो बुद्ध्वा चादौ विषोपमः।
बुधेन परिहर्तव्यः श्वमांसं चापि वर्जयेत्॥ १४२

अस्नात्वा न च भुञ्जीयादजपोऽग्निमपूज्य च।
पर्णपृष्ठे न भुञ्जीयाद्रात्रौ दीपं विना तथा॥ १४३

भिन्नभाण्डे च रथ्यायां पतितानां च सन्निधौ।
शूद्रशेषं न भुञ्जीयात्सहान्नं शिशुकैरपि॥ १४४

शुद्धान्नं स्निग्धमश्नीयात्संस्कृतं चाभिमन्त्रितम्।
भोक्ता शिव इति स्मृत्वा मौनी चैकाग्रमानसः॥ १४५

आस्येन न पिबेत्तोयं तिष्ठन्नाञ्जलिनापि वा।
वामहस्तेन शय्यायां तथैवान्यकरेण वा॥ १४६

विभीतकार्ककारञ्जस्नुहिच्छायां न चाश्रयेत्।
स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा॥ १४७

एको न गच्छेदध्वानं बाहुभ्यां नोत्तरेन्नदीम्।
नावरोहेत कूपादिं नारोहेदुच्चपादपान्॥ १४८

सूर्याग्निजलदेवानां गुरूणां विमुखः शुभे।
न कुर्यादिह कार्याणि जपकर्म शुभानि वा॥ १४९

लिये निर्मित अन्नका तथा राजाके अन्नका त्याग करना चाहिये। अन्नकी शुद्धिसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, न कि मिट्टी अथवा जलसे। अन्तःकरणकी पवित्रतासे सिद्धि प्राप्त होती है, अतः अन्नका शोधन करना चाहिये अर्थात् पवित्र अन्न ग्रहण करना चाहिये॥ १३९-१४०॥

जैसे भुने हुए बीजोंका अंकुरण नहीं होता है, वैसे ही ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको भी राजाओंके प्रतिग्रहसे दग्ध जानना चाहिये। अर्थात् वे ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाते हैं। राजाओंसे प्रतिग्रह लेना पाप है तथा विषके समान है— प्रारम्भमें ही ऐसा जानकर बुद्धिमान्‌को इसे ग्रहण नहीं करना चाहिये और कुत्तेके मांसके समान इसका त्याग कर देना चाहिये॥ १४१-१४२॥

बिना स्नान किये, बिना जप किये तथा बिना अग्निपूजन किये भोजन नहीं करना चाहिये। पत्तेके पृष्ठपर भोजन नहीं करना चाहिये तथा रातमें बिना दीपक जलाये भोजन नहीं करना चाहिये। टूटे हुए पात्रमें, मार्गमें एवं पतितजनोंके समीप भोजन नहीं करना चाहिये। शूद्रोंका छोड़ा हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये और शिशुओंके साथ भी भोजन नहीं करना चाहिये॥ १४३-१४४॥

शुद्ध, स्निग्ध (चिकना), पका हुआ तथा अभिमन्त्रित अन्न ग्रहण करना चाहिये; भोजन करनेवाला शिव है— ऐसा समझकर मौन तथा एकाग्रचित्त होकर भोजन करना चाहिये। खड़े-खड़े, अंजुलिसे, मुख लगाकर, बायें हाथसे, शय्यापर तथा दायें हाथसे भी पानी नहीं पीना चाहिये॥ १४५-१४६॥

बहेड़ा, अर्क (मदार), करंज तथा सेंहुड़के वृक्षकी छायामें शरण नहीं लेना चाहिये। किसी खम्भे, दीप, मनुष्यों तथा अन्य प्राणियोंकी छायामें खड़े नहीं होना चाहिये॥ १४७॥

दूर यात्रापर अकेले नहीं जाना चाहिये, भुजाओंके सहारे तैरकर नदीको पार नहीं करना चाहिये, कूप आदिमें नहीं उतरना चाहिये और लम्बे वृक्षोंपर नहीं चढ़ना चाहिये॥ १४८॥

हे शुभे! सूर्य, अग्नि, जल, देवता तथा गुरुजनोंके

विमुख होकर जपकर्म तथा [अन्य] शुभ कर्म नहीं करने चाहिये॥ १४९॥

अग्नौ न तापयेत्पादौ हस्तं पद्भ्यां न संस्पृशेत्।
अग्नेर्नोच्छ्रयमासीत नाग्नौ किञ्चिन्मलं त्यजेत्॥ १५०

अग्निमें पैरोंको तपाना नहीं चाहिये, पैरोंसे हाथका स्पर्श नहीं करना चाहिये, अग्निके ऊपर आसन नहीं बनाना चाहिये और अग्निमें कोई मल (दूषित पदार्थ) नहीं डालना चाहिये॥ १५०॥

न जलं ताडयेत्पद्भ्यां नाम्भस्यङ्गमलं त्यजेत्।
मलं प्रक्षालयेत्तीरे प्रक्षाल्य स्नानमाचरेत्॥ १५१

पैरोंसे जल नहीं उछालना चाहिये, शरीरकी मैलको जलमें नहीं छोड़ना चाहिये; तटपर ही मलको साफ करना चाहिये और उसे साफ करके स्नान करना चाहिये॥ १५१॥

नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम् ।
अश्रीकरं मनुष्याणामशुद्धं संस्पृशेद्यदि॥ १५२

नाखून तथा केशसे टपकता हुआ जल और स्नानवस्त्रका तथा घटका जल मनुष्योंके लिये श्रेयस्कर नहीं होता है; यदि कोई इसे स्पर्श करता है, तो अशुद्ध हो जाता है॥ १५२॥

अजाश्वानखरोष्ट्राणां मार्जनात्तुषरेणुकान्।
संस्पृशेद्यदि मूढात्मा श्रियं हन्ति हरेरपि॥ १५३

यदि कोई मूढ़ बुद्धिवाला [मनुष्य] बकरी, कुत्ता, गधा, ऊँट आदिसे उठी हुई धूल और झाड़ू लगानेसे उठी हुई धूलका स्पर्श करता है, तो उसकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है, चाहे वह विष्णु ही क्यों न हों॥ १५३॥

मार्जारश्च गृहे यस्य सोऽप्यन्त्यजसमो नरः।
भोजयेद्यस्तु विप्रेन्द्रान् मार्जारान् सन्निधौ यदि॥ १५४

तच्चाण्डालसमं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।

जिसके घरमें बिल्ली रहती है, वह चाण्डालके समान होता है। यदि कोई मनुष्य बिल्लीकी सन्निधिमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, तो उसे चाण्डालके समान जानना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १५४$^{1}/_{2}$॥

स्फिग्वातं शूर्पवातं च वातं प्राणमुखानिलम्॥ १५५
सुकृतानि हरन्त्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्य तु।
उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो मलावृतः॥ १५६
अपवित्रकरोऽशुद्धः प्रलपन्न जपेत्क्वचित्।

दूषित वायु, सूपकी वायु और प्राणियोंके मुखसे निकली हुई वायु—इनका सम्पर्क हो जानेपर ये मनुष्यके पुण्योंको नष्ट कर देते हैं। पगड़ी धारण करके, कंचुक पहनकर, नग्न होकर, केशोंको खोलकर, मैलसे युक्त होकर, अपवित्र हाथसे, अशुद्ध होकर तथा बात-चीत करते हुए कभी भी जप नहीं करना चाहिये॥ १५५-१५६$^{1}/_{2}$॥

क्रोधो मदः क्षुधा तन्द्रा निष्ठीवनविजृम्भणे॥ १५७
श्वनीचदर्शनं निद्रा प्रलापास्ते जपद्विषः।
एतेषां सम्भवे वापि कुर्यात्सूर्यादिदर्शनम्॥ १५८
आचम्य वा जपेच्छेषं कृत्वा वा प्राणसंयमम्।
सूर्योऽग्निश्चन्द्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः॥ १५९

क्रोध, अहंकार, भूख, आलस्य, थूकना, जम्हाई, कुत्ते तथा नीच व्यक्तिका दर्शन, निद्रा तथा वार्तालाप—ये जपके शत्रु हैं; इनके उत्पन्न होनेपर सूर्य आदिका दर्शन करना चाहिये। पुनः आचमन करके अथवा प्राणायाम करके शेष जप करना चाहिये। सूर्य, अग्नि,

एते ज्योतींषि प्रोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा।
प्रसार्य पादौ न जपेत्कुक्कुटासन एव च॥ १६०

अनासनः शयानो वा रथ्यायां शूद्रसन्निधौ।
रक्तभूम्यां च खट्वायां न जपेज्जापकस्तथा॥ १६१

आसनस्थो जपेत्सम्यक् मन्त्रार्थगतमानसः।
कौशेयं व्याघ्रचर्म वा चैलं तौलमथापि वा॥ १६२

दारवं तालपर्णं वा आसनं परिकल्पयेत्।
त्रिसन्ध्यं तु गुरोः पूजा कर्तव्या हितमिच्छता॥ १६३

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः॥ १६४

शिवविद्या गुरोस्तस्माद्भक्त्या च सदृशं फलम्।
सर्वदेवमयो देवि सर्वशक्तिमयो हि सः॥ १६५

सगुणो निर्गुणो वापि तस्याज्ञां शिरसा वहेत्।
श्रेयोऽर्थी यस्तु गुर्वाज्ञां मनसापि न लङ्घयेत्॥ १६६

गुर्वाज्ञापालकः सम्यक् ज्ञानसम्पत्तिमश्नुते।
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् यद्यत्कर्म समाचरेत्॥ १६७

समक्षं यदि तत्सर्वं कर्तव्यं गुर्वनुज्ञया।
गुरोर्देवसमक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत्॥ १६८

गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम्।
पापिनां च यथासङ्गात्तत्पापैः पतनं भवेत्॥ १६९

तद्वदाचार्यसङ्गेन तद्धर्मफलभाग्भवेत्।
यथैव वह्निसम्पर्कान्मलं त्यजति काञ्चनम्॥ १७०

तथैव गुरुसम्पर्कात्पापं त्यजति मानवः।
यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते॥ १७१

तथा पापं विलीयेत आचार्यस्य समीपतः।
यथा प्रज्वलितो वह्निर्विष्ठां काष्ठं च निर्दहेत्॥ १७२

चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारे—ये विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा ज्योतिर्गण कहे गये हैं॥ १५७—१५९१/२॥

पैरोंको फैलाकर अथवा कुक्कुट आसनमें बैठकर जप नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जापकको बिना आसनके, लेटे हुए, मार्गपर, शूद्रके पास, रक्तभूमिपर अथवा चारपाईपर जप नहीं करना चाहिये। आसनपर बैठकर मनमें मन्त्रके अर्थका चिन्तन करते हुए भली-भाँति जप करना चाहिये। रेशमी वस्त्र, व्याघ्रचर्म, वस्त्र, रूई, लकड़ी अथवा ताड़के पत्तेका आसन बनाना चाहिये॥ १६०—१६२१/२॥

अपना हित चाहनेवालेको तीनों सन्ध्याओंमें गुरुकी पूजा करनी चाहिये। जो गुरु हैं, वे शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे गुरु कहे गये हैं। जैसे शिव हैं, वैसे ही विद्या; जैसी विद्या वैसे ही गुरु होते हैं। शिवविद्या उन गुरुसे ही ग्रहण की जा सकती है और भक्तिके द्वारा अनुकूल फल प्राप्त होता है। हे देवि! वे [गुरु] सर्वदेवस्वरूप तथा सर्वशक्तिस्वरूप हैं। गुरु सगुण हों अथवा निर्गुण—उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये। जो कल्याणका इच्छुक है, उसे मनसे भी गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। पूर्णरूपसे गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला [शिष्य] ज्ञानसम्पदा प्राप्त करता है। चलते हुए, बैठते हुए, सोते हुए अथवा खाते हुए [शिष्य] जो भी कर्म यदि गुरुके समक्ष करे, वह समस्त कार्य उनकी आज्ञासे ही करना चाहिये॥ १६३—१६७१/२॥

गुरुदेवके समक्ष इच्छानुसार आसनपर नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि गुरु साक्षात् देवता हैं और उनका घर देवमन्दिर है। जिस प्रकार पापियोंकी संगतिके कारण उनके पापोंसे [व्यक्तिका] पतन हो जाता है, उसी प्रकार गुरुकी संगतिसे [व्यक्ति] उनके धर्मफलका भागी होता है। जैसे सुवर्ण अग्निके सम्पर्कसे अपने मैलका त्याग करता है, वैसे ही मनुष्य गुरुके सम्पर्कसे पापका त्याग करता है। जैसे अग्निके समीप स्थित कुम्भका घृत पिघल जाता है, वैसे ही आचार्य (गुरु)-के सम्पर्कसे [मनुष्यका] पाप विलीन हो जाता है। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि मल तथा काष्ठको जला डालती है, उसी प्रकार प्रसन्न

गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मन्त्रतेजसा।
ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा॥ १७३

कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः।
कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्॥ १७४

तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुःश्रीर्ज्ञानसत्क्रियाः।
तत्क्रोधं ये करिष्यन्ति तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः॥ १७५

जपान्यनियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा।
गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेत्सर्वयत्नतः॥ १७६

वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्।
चित्तेनैव च वित्तेन तथा वाचा च सुव्रताः *॥ १७७

मिथ्या न कारयेद्देवि क्रियया च गुरोः सदा।
दुर्गुणे ख्यापिते तस्य नैर्गुण्यशतभाग्भवेत्॥ १७८

गुणे तु ख्यापिते तस्य सार्वगुण्यफलं भवेत्।
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा॥ १७९

असमक्षं समक्षं वा गुरोः कार्यं समाचरेत्।
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः॥ १८०

कुर्वन् पतत्यधो गत्वा तत्रैव परिवर्तते।
तस्मात्स सर्वदोपास्यो वन्दनीयश्च सर्वदा॥ १८१

समीपस्थोऽप्यनुज्ञाप्य वदेत्तद्विमुखो गुरुम्।
एवमाचारवान् भक्तो नित्यं जपपरायणः॥ १८२

गुरुप्रियकरो मन्त्रं विनियोक्तुं ततोऽर्हति।
विनियोगं प्रवक्ष्यामि सिद्धमन्त्रप्रयोजनम्॥ १८३

दौर्बल्यं याति तन्मन्त्रं विनियोगमजानतः।
यस्य येन वियुञ्जीत कार्येण तु विशेषतः॥ १८४

विनियोगः स विज्ञेय ऐहिकामुष्मिकं फलम्।
विनियोगजमायुष्यमारोग्यं तनुनित्यता॥ १८५

राज्यैश्वर्यं च विज्ञानं स्वर्गो निर्वाण एव च।
प्रोक्षणं चाभिषेकं च अघमर्षणमेव च॥ १८६

हुए गुरु अपने मन्त्रके तेजसे [शिष्यके] पापको भस्म कर देते हैं॥ १६८—१७२½॥

गुरुके प्रसन्न रहनेपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सभी देवता तथा मुनि भी [उस व्यक्तिपर] प्रसन्न होकर कृपा करते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। मन, वचन तथा कर्मसे गुरुको क्रोधित नहीं करना चाहिये; उनके क्रोधसे आयु, लक्ष्मी (वैभव), ज्ञान और सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं। जो लोग उन्हें कुपित करते हैं, उनके यज्ञ, जप तथा अन्य अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १७३—१७५½॥

पूर्ण प्रयत्नपूर्वक गुरुके विरुद्ध कुछ भी वचन नहीं बोलना चाहिए; यदि कोई अज्ञानवश ऐसा बोलता है, तो वह रौरव नरकमें पड़ता है। हे देवि! मन, धन, वचन तथा कर्मसे गुरुको कभी झूठा सिद्ध नहीं करना चाहिये। उनका दुर्गुण कहनेपर व्यक्ति सौ दुर्गुणोंसे युक्त हो जाता है और उनका गुण कहनेपर सभी गुणोंका फल मिलता है। गुरुने आदेश दिया हो अथवा नहीं, सर्वदा उनका हित तथा प्रिय करना चाहिये; गुरु सामने हों अथवा परोक्षमें हों, उनका कार्य करना चाहिये। मन, वचन, शरीर तथा कर्मसे गुरुका हित तथा प्रिय करना चाहिये। ऐसा न करनेवाला नरकमें गिरता है और वहाँ जाकर वहींपर विचरण करता रहता है। अतः सर्वदा उनकी उपासना तथा वन्दना करनी चाहिये। पास रहते हुए भी गुरुसे आज्ञा लेकर तथा उनकी ओर मुख न करके बोलना चाहिये। ऐसा आचारवान्, भक्ति-सम्पन्न, नित्य जप करनेवाला तथा गुरुका प्रिय करनेवाला [शिष्य] इस मन्त्रका विनियोग करनेके योग्य होता है॥ १७६—१८२½॥

[हे देवि!] अब मैं सिद्धमन्त्रके प्रयोजनस्वरूप विनियोगको बताऊँगा; विनियोग न जाननेवालेका वह मन्त्र प्रभावहीन हो जाता है। जिसका जिस कार्यके साथ विशेष रूपसे संयोजन किया जाय, उसे विनियोग कहा गया है। यह इस लोकमें तथा परलोकमें फल प्रदान करता है। विनियोगसे आयु, आरोग्य, शरीरकी नित्यता, राज्य, ऐश्वर्य, उत्तम ज्ञान, स्वर्ग तथा मोक्ष—ये सब

* सुव्रताः—यह सम्बोधन सूतजीद्वारा ऋषियोंके लिये प्रयुक्त है।

स्नाने च सन्ध्ययोश्चैव कुर्यादेकादशेन वै।
शुचिः पर्वतमारुह्य जपेल्लक्षमतन्द्रितः ॥ १८७

महानद्यां द्विलक्षं तु दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
दूर्वाङ्कुरास्तिला वाणी गुडूची घुटिका तथा ॥ १८८

तेषां तु दशसाहस्रं होममायुष्यवर्धनम्।
अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य जपेल्लक्षद्वयं सुधीः ॥ १८९

शनैश्चरदिने स्पृष्ट्वा दीर्घायुष्यं लभेन्नरः।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं पाणिभ्यां संस्पृशेत्सुधीः ॥ १९०

जपेदष्टोत्तरशतं सोऽपमृत्युहरो भवेत्।
आदित्याभिमुखो भूत्वा जपेल्लक्षमनन्यधीः ॥ १९१

अर्कैरष्टशतं नित्यं जुह्वन् व्याधेर्विमुच्यते।
समस्तव्याधिशान्त्यर्थं पलाशसमिधैर्नरः ॥ १९२

हुत्वा दशसहस्रं तु निरोगी मनुजो भवेत्।
नित्यमष्टशतं जप्त्वा पिबेदम्भोऽर्कसन्निधौ ॥ १९३

औदर्यैर्व्याधिभिः सर्वैर्मासेनैकेन मुच्यते।
एकादशेन भुञ्जीयादन्नं चैवाभिमन्त्रितम् ॥ १९४

भक्ष्यं चान्यत्तथा पेयं विषमप्यमृतं भवेत्।
जपेल्लक्षं तु पूर्वाह्णे हुत्वा चाष्टशतेन वै ॥ १९५

सूर्यं नित्यमुपस्थाय सम्यगारोग्यमाप्नुयात्।
नदीतोयेन सम्पूर्णं घटं संस्पृश्य शोभनम् ॥ १९६

जप्त्वायुतं च तत्स्नानाद्रोगाणां भेषजं भवेत्।
अष्टाविंशज्जपित्वान्नमश्नीयादन्वहं शुचिः ॥ १९७

हुत्वा च तावत्पालाशैरेवं वारोग्यमश्नुते।
चन्द्रसूर्यग्रहे पूर्वमुपोष्य विधिना शुचिः ॥ १९८

प्राप्त होते हैं ॥ १८३—१८५ $^{1}/_{2}$ ॥

स्नानमें तथा [प्रातः-सायं] दोनों सन्ध्याओंमें ग्यारह बार पंचाक्षरमन्त्रसे प्रोक्षण, अभिषेक तथा अघमर्षण करना चाहिए। जो शुद्ध होकर पर्वतपर चढ़कर आलस्यरहित हो एक लाख बार मन्त्रका जप करता है अथवा किसी महानदीके तटपर दो लाख बार जप करता है, वह दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ १८६-१८७ $^{1}/_{2}$ ॥

दूर्वांकुर, तिल, वाणी, गुरुच और घुटिका—इनका दस हजार होम आयुकी वृद्धि करनेवाला होता है। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि पीपलके वृक्षका आश्रय लेकर दो लाख जप करे। शनिवारको पीपल वृक्षका स्पर्श करके मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। बुद्धिमान्‌को शनैश्चरके दिन [अपने] दोनों हाथोंसे पीपलके वृक्षका स्पर्श करना चाहिये और एक सौ आठ बार [मन्त्रका] जप करना चाहिये; यह भी अकाल मृत्युको दूर करनेवाला होता है ॥ १८८—१९० $^{1}/_{2}$ ॥

सूर्यकी ओर मुख करके एकाग्रचित्त होकर एक लाख जप करना चाहिये; अर्कको समिधाओंसे प्रतिदिन एक सौ आठ होम करनेवाला [व्यक्ति] रोगसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको समस्त रोगोंके शमनके लिये पलाश-समिधाओंसे होम करना चाहिये; इससे दस हजार होम करके मनुष्य रोगरहित हो जाता है। प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करके सूर्यके समक्ष जल पीना चाहिये; ऐसा करनेवाला एक महीनेमें ही सभी उदर-सम्बन्धी रोगोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९१—१९३ $^{1}/_{2}$ ॥

ग्यारह बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अन्न तथा अन्य भक्ष्य-पेय पदार्थ ग्रहण करना चाहिये; इससे विष भी अमृत हो जाता है। प्रतिदिन पूर्वाह्णमें एक सौ आठ आहुति देकर तथा सूर्योपस्थान करके एक लाख जप करना चाहिये; ऐसा करनेवाला पूर्ण आरोग्य प्राप्त करता है। नदीके जलसे भरे हुए सुन्दर घड़ेको स्पर्श करते हुए दस हजार जप करनेसे तथा उसी जलसे स्नान करनेसे सभी रोगोंकी चिकित्सा हो जाती है ॥ १९४—१९६ $^{1}/_{2}$ ॥

पवित्र होकर प्रतिदिन अट्ठाईस बार [मन्त्रका] जप करके अन्न ग्रहण करना चाहिये और बादमें उतनी

यावद्ग्रहणमोक्षं तु तावन्नद्यां समाहितः।
जपेत्समुद्रगामिन्यां विमोक्षे ग्रहणस्य तु॥ १९९

अष्टोत्तरसहस्त्रेण पिबेद् ब्राह्मीरसं द्विजाः।
ऐहिकां लभते मेधां सर्वशास्त्रधरां शुभाम्॥ २००

सारस्वती भवेद्देवी तस्य वागतिमानुषी।
ग्रहनक्षत्रपीडासु जपेद्भक्त्यायुतं नरः॥ २०१

हुत्वा चाष्टसहस्त्रं तु ग्रहपीडां व्यपोहति।
दुःस्वप्नदर्शने स्नात्वा जपेद्वै चायुतं नरः॥ २०२

घृतेनाष्टशतं हुत्वा सद्यः शान्तिर्भविष्यति।
चन्द्रसूर्यग्रहे लिङ्गं समभ्यर्च्य यथाविधि॥ २०३

यत्किञ्चित्प्रार्थयेद्देवि जपेदयुतमादरात्।
सन्निधावस्य देवस्य शुचिः संयतमानसः॥ २०४

सर्वान् कामानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः।
गजानां तुरगाणां तु गोजातीनां विशेषतः॥ २०५

व्याध्यागमे शुचिर्भूत्वा जुहुयात्समिधाहुतिम्।
मासमभ्यर्च्य विधिनायुतं भक्तिसमन्वितः॥ २०६

तेषामृद्धिश्च शान्तिश्च भविष्यति न संशयः।
उत्पाते शत्रुबाधायां जुहुयादयुतं शुचिः॥ २०७

पालाशसमिधैर्देवि तस्य शान्तिर्भविष्यति।
आभिचारिकबाधायामेतद्देवि समाचरेत्॥ २०८

प्रत्यग् भवति तच्छक्तिः शत्रोः पीडा भविष्यति।
विद्वेषणार्थं जुहुयाद् वैभीतसमिधाष्टकम्॥ २०९

अक्षरप्रातिलोम्येन आर्द्रेण रुधिरेण वा।
विषेण रुधिराभ्यक्तो विद्वेषणकरं नृणाम्॥ २१०

ही पलाश-समिधाओंसे हवन करनेसे [व्यक्ति] आरोग्य प्राप्त करता है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर पवित्र होकर विधिपूर्वक उपवास करके जबतक ग्रहणका मोक्ष हो, तबतक किसी समुद्रगामिनी नदीमें एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये और हे द्विजो! ग्रहणके समाप्त होनेपर एक हजार आठ मन्त्रका जप करके ब्राह्मीरसका पान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला सभी शास्त्रोंको धारण करनेवाली कल्याणमयी लौकिक प्रतिभा प्राप्त करता है और उसकी वाणी अतिमानुषी होकर देवी सरस्वतीकी वाणीके तुल्य हो जाती है॥ १९७—२००१/२॥

ग्रह तथा नक्षत्रके कारण कष्ट होनेपर मनुष्य भक्तिपूर्वक दस हजार जप करके तथा आठ हजार आहुति देकर ग्रहपीड़ासे मुक्त हो जाता है। दुःस्वप्न देखनेपर स्नान करके मनुष्यको दस हजार जप करना चाहिये; इसके बाद घृतकी एक सौ आठ आहुति देनेसे उसे शीघ्र ही शान्ति प्राप्त होगी॥ २०१-२०२१/२॥

चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके समय विधिपूर्वक लिङ्गका पूजन करके शुद्ध तथा एकाग्रचित्त होकर इन महादेवके समीप आदरपूर्वक दस हजार जप करना चाहिये; हे देवि! वह मनुष्य जो कुछ भी माँगता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०३-२०४१/२॥

हाथियों, घोड़ों तथा विशेषकर गोजातिके पशुओंमें रोग उत्पन्न होनेपर शुद्ध होकर तथा भक्तियुक्त होकर विधिपूर्वक महीनेभर पूजन करके समिधाकी दस हजार आहुति देनेसे उन पशुओंके रोगकी शान्ति तथा उनकी वृद्धि होती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०५-२०६१/२॥

हे देवि! उपद्रव तथा शत्रुबाधा उत्पन्न होनेपर जो [व्यक्ति] पवित्र होकर पलाशकी समिधाओंसे दस हजार होम करता है; उसकी शान्ति होती है। हे देवि! आभिचारिक बाधामें भी ऐसा ही करना चाहिये; ऐसा करनेसे उसकी शक्ति प्रकट होती है और शत्रुको पीड़ा उत्पन्न होती है। विद्वेषणके लिये बहेड़ेकी समिधाओंसे आठ आहुति डालनी चाहिये; अथवा रुधिरसे स्नान करके विपरीत अक्षरसे मन्त्रका जप करते हुए गीले

प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविशुद्धये।
पापशुद्धिर्यथा सम्यक् कर्तुमभ्युद्यतो नरः॥ २११

पापशुद्धिर्यतः सम्यग् ज्ञानसम्पत्तिहैतुकी।
पापशुद्धिर्न चेत्पुंसः क्रियाः सर्वाश्च निष्फलाः॥ २१२

ज्ञानं च हीयते तस्मात्कर्तव्यं पापशोधनम्।
विद्यालक्ष्मीविशुद्ध्यर्थं मां ध्यात्वाञ्जलिना शुभे॥ २१३

शिवेनैकादशेनाद्भिरभिषिञ्चेत्समन्ततः ।
अष्टोत्तरशतेनैव स्नायात्पापविशुद्धये॥ २१४

सर्वतीर्थफलं तच्च सर्वपापहरं शुभम्।
सन्ध्योपासनविच्छेदे जपेदष्टशतं नरः॥ २१५

विड्वराहैश्च चाण्डालैर्दुर्जनैः कुक्कुटैरपि।
स्पृष्टमन्नं न भुञ्जीत भुक्त्वा चाष्टशतं जपेत्॥ २१६

ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं जपेल्लक्षायुतं नरः।
पातकानां तदर्धं स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ २१७

उपपातकदुष्टानां तदर्धं परिकीर्तितम्।
शेषाणामपि पापानां जपेत्पञ्चसहस्रकम्॥ २१८

आत्मबोधपरं गुह्यं शिवबोधप्रकाशकम्।
शिवः स्यात्स जपेन्मन्त्रं पञ्चलक्षमनाकुलः॥ २१९

पञ्चवायुजयं भद्रे प्राप्नोति मनुजः सुखम्।
जपेच्च पञ्चलक्षं तु विगृहीतेन्द्रियः शुचिः॥ २२०

पञ्चेन्द्रियाणां विजयो भविष्यति वरानने।
ध्यानयुक्तो जपेद्यस्तु पञ्चलक्षमनाकुलः॥ २२१

रक्तसे या विषसे होम करना चाहिये; यह मनुष्योंके लिये विद्वेषणकारी है॥ २०७—२१०॥

[हे देवि!] अब मैं समस्त पापोंसे शुद्धिके लिये प्रायश्चित्तका वर्णन करूँगा। मनुष्यको पापशुद्धि करनेहेतु पूर्णरूपसे प्रयत्नशील होना चाहिये; क्योंकि सम्यक् पापशुद्धि ज्ञान-सम्पदाका मूल कारण होती है। यदि पापशुद्धि नहीं होती है, तो मनुष्यकी सभी क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं और उसका ज्ञान क्षीण होता रहता है, इसलिये पापका शोधन [अवश्य] करना चाहिये॥ २११-२१२½॥

हे शुभे! विद्या तथा लक्ष्मीकी विशुद्धिके लिये अंजलिमें जल लेकर मेरा ध्यान करके ग्यारह बार शिव-मन्त्रका जप करके उस जलसे अभिषेक करना चाहिये। पाप-शोधनके लिये एक सौ आठ बार मन्त्रका जप करके स्नान करना चाहिये; यह सभी तीर्थोंका फल देनेवाला, सभी पापोंको दूर करनेवाला तथा कल्याणकारक है। सन्ध्योपासनके छूट जानेपर मनुष्यको एक सौ आठ बार मन्त्रका जप करना चाहिये। सुअर, चाण्डाल, दुर्जन तथा कुक्कुटका स्पर्श किया हुआ अन्न नहीं खाना चाहिये और खा लेनेपर एक सौ आठ बार मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २१३—२१६॥

ब्रह्महत्याके शोधनके लिये मनुष्यको सौ हजार करोड़ बार मन्त्रका जप करना चाहिये, अन्य बड़े पापोंके शोधनके लिये उसका आधा जप होना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। उपपातक शोधनके लिये उसका आधा जप करना बताया गया है। शेष [छोटे] पापोंकी शुद्धिके लिये भी पाँच हजार बार मन्त्रको जपना चाहिये॥ २१७-२१८॥

जो शान्त होकर आत्मबोध करानेवाले, गोपनीय तथा शिवज्ञानको प्रकाशित करनेवाले इस मन्त्रका पाँच लाख जप करता है, वह [साक्षात्] शिव हो जाता है और हे भद्रे! वह मनुष्य सुखपूर्वक पाँचों वायुपर विजय प्राप्त कर लेता है। हे सुमुखि! जो शुद्ध होकर इन्द्रियोंको वशमें करके पाँच लाख मन्त्र जप करता है, वह पाँचों

विषयाणां च पञ्चानां जयं प्राप्नोति मानवः।
चतुर्थं पञ्चलक्षं तु यो जपेद्भक्तिसंयुतः॥ २२२

भूतानामिह पञ्चानां विजयं मनुजो लभेत्।
चतुर्लक्षं जपेद्यस्तु मनः संयम्य यत्नतः॥ २२३

सम्यग्विजयमाप्नोति करणानां वरानने।
पञ्चविंशतिलक्षाणां जपेन कमलानने॥ २२४

पञ्चविंशतितत्त्वानां विजयं मनुजो लभेत्।
मध्यरात्रेति निर्वाते जपेदयुतमादरात्॥ २२५

ब्रह्मसिद्धिमवाप्नोति व्रतेनानेन सुन्दरि।
जपेल्लक्षमनालस्यो निर्वाते ध्वनिवर्जिते॥ २२६

मध्यरात्रे च शिवयोः पश्यत्येव न संशयः।
अन्धकारविनाशश्च दीपस्येव प्रकाशनम्॥ २२७

हृदयान्तर्बहिर्वापि भविष्यति न संशयः।
सर्वसम्पत्समृद्ध्यर्थं जपेदयुतमात्मवान्॥ २२८

सबीजसम्पुटं मन्त्रं शतलक्षं जपेच्छुचिः।
मत्सायुज्यमवाप्नोति भक्तिमान् किमतः परम्॥ २२९

इति ते सर्वमाख्यातं पञ्चाक्षरविधिक्रमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्॥ २३०

श्रावयेच्च द्विजाञ्छुद्धान् पञ्चाक्षरविधिक्रमम्।
दैवे कर्मणि पित्र्ये वा शिवलोके महीयते॥ २३१

इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो शान्त होकर ध्यानमग्न हो पाँच लाख बार मन्त्रका जप करता है, वह पाँचों विषयोंपर विजय प्राप्त करता है। जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर चौथी बार इस मन्त्रको पाँच लाख बार जपता है, वह इस लोकमें [पृथ्वी आदि] पंचभूतोंपर विजय प्राप्त कर लेता है॥ २१९—२२२$^{1}/_{2}$॥

हे वरानने! जो [अपने] मनको नियन्त्रित करके प्रयत्नपूर्वक चार लाख बार मन्त्रका जप करता है, वह [मन, बुद्धि आदि] अन्तःकरणोंपर पूर्णरूपसे विजय प्राप्त कर लेता है। हे कमलमुखि! पचीस लाख बार मन्त्रके जपसे मनुष्य पचीस तत्त्वोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। हे सुन्दरि! जो मध्यरात्रिमें वातरहित स्थानमें आदरपूर्वक दस हजार जप करता है, वह इस व्रतके द्वारा ब्रह्मसिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो [मनुष्य] आलस्यरहित होकर मध्यरात्रिमें वातशून्य तथा ध्वनि-रहित स्थानमें एक लाख बार जप करता है, वह शिव तथा पार्वतीका दर्शन कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है। उस समय अन्धकारका विनाश हो जाता है और हृदयके बाहर तथा भीतर दीपककी भाँति प्रकाश हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। आत्मज्ञको सभी प्रकारकी सम्पदा तथा समृद्धिके लिये मन्त्रका दस हजार जप करना चाहिये। [हे देवि!] जो पवित्र तथा भक्तियुक्त होकर बीजके सम्पुटसहित मन्त्रका सौ लाख (एक करोड़) जप करता है, वह मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है; इससे बढ़कर [फल] क्या हो सकता है!॥ २२३—२२९॥

[हे देवि!] मैंने तुम्हें पंचाक्षरमन्त्रके जपकी सम्पूर्ण विधि बता दी। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह परम गति प्राप्त करता है। जो देवकर्म अथवा पितृकर्ममें शुद्ध ब्राह्मणोंको पंचाक्षर विधिके क्रमका श्रवण कराता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २३०-२३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पञ्चाक्षरमाहात्म्यं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पंचाक्षरमाहात्म्य' नामक पचासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८५॥

छियासीवाँ अध्याय

पाशुपतयोगज्ञानका स्वरूप तथा उसकी महिमा

ऋषय ऊचुः

जपाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुर्ब्राह्मणा दग्धकिल्बिषाः।
विरक्तानां प्रबुद्धानां ध्यानयज्ञं सुशोभनम्॥ १

तस्माद्वदस्व सूताद्य ध्यानयज्ञमशेषतः।
विस्तरात्सर्वयत्नेन विरक्तानां महात्मनाम्॥ २

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्।
रुद्रेण कथितं प्राह गुहां प्राप्य महात्मनाम्॥ ३

संहृत्य कालकूटाख्यं विषं वै विश्वकर्मणा।

सूत उवाच

गुहां प्राप्य सुखासीनं भवान्या सह शङ्करम्॥ ४

मुनयः संशितात्मानः प्रणेमुस्तं गुहाश्रयम्।
अस्तुवंश्च ततः सर्वे नीलकण्ठमुमापतिम्॥ ५

अत्युग्रं कालकूटाख्यं संहृतं भगवंस्त्वया।
अतः प्रतिष्ठितं सर्वं त्वया देव वृषध्वज॥ ६

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः।
प्रहसन् प्राह विश्वात्मा सनन्दनपुरोगमान्॥ ७

किमनेन द्विजश्रेष्ठा विषं वक्ष्ये सुदारुणम्।
संहरेत्तद्विषं यस्तु स समर्थो ह्यनेन किम्॥ ८

न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संहरेत सुदारुणम्॥ ९

संसारो द्विविधः प्रोक्तः स्वाधिकारानुरूपतः।
पुंसां सम्मूढचित्तानामसङ्क्षीणः सुदारुणः॥ १०

ईषणारागदोषेण सर्गो ज्ञानेन सुव्रताः।
तद्वशादेव सर्वेषां धर्माधर्मौ न संशयः॥ ११

ऋषिगण बोले—दग्ध पापवाले ब्राह्मणोंने विरक्त ज्ञानियोंके उत्तम ध्यानयज्ञको जपसे श्रेष्ठ कहा है; अतः हे सूतजी! अब आप विरक्त महात्माओंके ध्यानयज्ञके विषयमें पूर्णरूपसे विस्तारपूर्वक पूर्णप्रयत्नके साथ [हमलोगोंको] बताइये॥ १-२॥

दीर्घ कालतक यज्ञ करनेवाले उन ऋषियोंका वचन सुनकर सूतजीने वह सारा वृत्तान्त कहा, जिसे विश्वकी रचना करनेवाले रुद्रने कालकूट नामक विषको निष्क्रिय करके [मेरुपर्वतकी] गुफामें आकर महात्माओंको बताया था॥ ३½॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] गुफामें पहुँचकर पार्वतीके साथ सुखपूर्वक बैठे हुए उन शंकरको महात्मा मुनियोंने प्रणाम किया। उसके बाद उन सभीने गुफामें विराजमान उमापति [भगवान्] नीलकण्ठकी स्तुति की और कहा—हे भगवन्! आपने अति भयंकर कालकूट नामक विषको निष्क्रिय कर दिया; अतः हे देव! हे वृषध्वज! आपके द्वारा ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ ४—६॥

उनका वह वचन सुनकर विश्वात्मा भगवान् नीललोहित सनन्दन आदि [मुनियों]-से हँसते हुए कहने लगे—हे श्रेष्ठ द्विजो! यह [विष] क्या है! मैं अति भयंकर विषके विषयमें बताऊँगा, जो इस [कालकूट] विषको भी निष्क्रिय कर देता है, वह [परम] समर्थ है; यह कालकूट विष कौन-सी चीज है। कालकूट नामक विष [वास्तवमें] विष नहीं है, बल्कि संसार ही विष कहा जाता है। अतः पूर्ण प्रयत्नसे इस संसाररूपी अत्यन्त भीषण विषको नष्ट करना चाहिये अर्थात् संसारमें मिथ्यात्वका भाव रखना चाहिये॥ ७—९॥

अपने अधिकारके अनुसार यह संसार दो प्रकारका कहा गया है; मूढ़चित्तवाले मनुष्योंके लिये यह असंक्षीण (क्षय न होनेवाला) तथा अत्यन्त भयंकर है। हे सुव्रतो! यह सृष्टि इच्छा तथा रागजनित दोषके कारण है; इसका

असन्निकृष्टे त्वर्थेऽपि शास्त्रं तच्छ्रवणात्सताम्।
बुद्धिमुत्पादयत्येव संसारे विदुषां द्विजाः॥ १२

तस्माद् दृष्टानुश्रविकं दुष्टमित्युभयात्मकम्।
सन्त्यजेत्सर्वयत्नेन विरक्तः सोऽभिधीयते॥ १३

शास्त्रमित्युच्यतेऽभागं श्रुतेः कर्मसु तद् द्विजाः।
मूर्धानं ब्रह्मणः सारं ऋषीणां कर्मणः फलम्॥ १४

ननु स्वभावः सर्वेषां कामो दृष्टो न चान्यथा।
श्रुतिः प्रवर्तिका तेषामिति कर्मण्यतद्विदः॥ १५

निवृत्तिलक्षणो धर्मः समर्थानामिहोच्यते।
तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्॥ १६

कला संशोषमायाति कर्मणान्यस्वभावतः।
सकलस्त्रिविधो जीवो ज्ञानहीनस्त्वविद्यया॥ १७

नारकी पापकृत्स्वर्गी पुण्यकृत्पुण्यगौरवात्।
व्यतिमिश्रेण वै जीवश्चतुर्धा संव्यवस्थितः॥ १८

उद्भिजः स्वेदजश्चैव अण्डजो वै जरायुजः।
एवं व्यवस्थितो देही कर्मणाज्ञो ह्यनिर्वृतः॥ १९

प्रजया कर्मणा मुक्तिर्धनेन च सतां न हि।
त्यागेनैकेन मुक्तिः स्यात्तदभावाद् भ्रमत्यसौ॥ २०

एवमज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च।
षट्कौशिकं समुद्भूतं भजत्येष कलेवरम्॥ २१

ज्ञान होनेपर संसार बाधित हो जाता है। उन्हीं (ईषणा और ज्ञान)-के वशमें होनेसे ही सभी लोगोंकी धर्म तथा अधर्ममें प्रवृत्ति होती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १०-११॥

हे ब्राह्मणो! पारलौकिक पदार्थके प्रत्यक्ष न रहनेपर भी शास्त्रके द्वारा उसके विषयमें श्रवण कर लेनेसे उसमें सज्जनों तथा विद्वानोंकी प्रवृत्ति हो जाती है। अतः जो इहलौकिक तथा पारलौकिक—इन दोनों पदार्थोंको हेय समझकर पूर्ण प्रयत्नसे इनका परित्याग कर देता है; वह विरक्त कहा जाता है॥ १२-१३॥

हे द्विजो! श्रुतिप्रतिपादित सकाम कर्मोंमें, जिसमें सबकी प्रवृत्ति है तथा वेदके मस्तकस्वरूप एवं मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंके सारस्वरूप निष्कामकर्मफलको प्रतिपादित करनेवाला जो अध्यात्मशास्त्र है, वही शास्त्र कहा जाता है॥ १४॥

जो श्रुतिके रहस्यको नहीं जानते हैं, वे ही ऐसा कहते हैं कि चूँकि सभी लोगोंका स्वभाव कामनामूलक दिखायी देता है, अतः श्रुति सकामकर्मकी ही प्रवर्तिका है॥ १५॥

वास्तविक रूपमें विरक्त जनोंके लिये निष्कामकर्मका प्रतिपादन करनेमें ही श्रुतिका तात्पर्य है, अतः सभी देहधारियोंके लिये संसार अज्ञानमूलक है। वेदोक्त निष्कामकर्मके द्वारा जीवभाव क्षीण होता है। अविद्यासे उत्पन्न जो अज्ञान है, उसके कारण सकामकर्मके वशीभूत तीन प्रकारका जीवभाव दृढ़ होता है॥ १६-१७॥

पापकर्म करनेवाला नारकी होता है, पुण्यकर्म करनेवाला अपने पुण्यकी महिमाके कारण स्वर्गी होता है और पाप-पुण्यकर्मके मिश्रणवाला जीव उद्भिज, स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज—इन चार रूपोंमें व्यवस्थित होता है। इस प्रकारसे व्यवस्थित वह अज्ञानी जीव अपने कर्मके कारण [संसारचक्रसे] मुक्त नहीं हो पाता है॥ १८-१९॥

सन्तान, कर्म तथा धनसे सज्जनोंकी मुक्ति नहीं होती है; एकमात्र त्यागके द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होती है और उसके अभावके कारण यह जीव भ्रमण करता रहता है। इस प्रकार अज्ञानके दोषके कारण तथा अनेक

गर्भे दुःखान्यनेकानि योनिमार्गे च भूतले।
कौमारे यौवने चैव वार्धके मरणेऽपि वा॥ २२

विचारतः सतां दुःखं स्त्रीसंसर्गादिभिर्द्विजाः।
दुःखेनैकेन वै दुःखं प्रशाम्यन्तीह दुःखिनः॥ २३

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ २४

तस्माद्विचारतो नास्ति संयोगादपि वै नृणाम्।
अर्थानामर्जनेऽप्येवं पालने च व्यये तथा॥ २५

पैशाचे राक्षसे दुःखं याक्षे चैव विचारतः।
गान्धर्वे च तथा चान्द्रे सौम्यलोके द्विजोत्तमाः॥ २६

प्राजापत्ये तथा ब्राह्मे प्राकृते पौरुषे तथा।
क्षयसातिशयाद्यैस्तु दुःखैर्दुःखानि सुव्रताः॥ २७

तानि भाग्यान्यशुद्धानि सन्त्यजेच्च धनानि च।
तस्मादष्टगुणं भोगं तथा षोडशधा स्थितम्॥ २८

चतुर्विंशत्प्रकारेण संस्थितं चापि सुव्रताः।
द्वात्रिंशद्भेदमनघाश्चत्वारिंशद्गुणं पुनः॥ २९

तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पञ्चाशत्प्रकारतः।
चतुःषष्टिविधं चैव दुःखमेव विवेकिनः॥ ३०

पार्थिवं च तथाप्यं च तैजसं च विचारतः।
वायव्यं च तथा व्यौम मानसं च यथाक्रमम्॥ ३१

आभिमानिकमप्येवं बौद्धं प्राकृतमेव च।
दुःखमेव न सन्देहो योगिनां ब्रह्मवादिनाम्॥ ३२

गौणं गणेश्वराणां च दुःखमेव विचारतः।
आदौ मध्ये तथा चान्ते सर्वलोकेषु सर्वदा॥ ३३

कर्मोंके वशीभूत होनेके कारण यह जीव छः कोशों (स्नायु, अस्थि, मज्जा, त्वचा, मांस, रक्त)-से निर्मित इस शरीरको धारण करता है॥ २०-२१॥

गर्भमें, योनिमार्गमें, पृथ्वीतलपर, कुमारावस्थामें, युवावस्थामें, वृद्धावस्थामें और मृत्युके समय प्राणीको अनेक दुःख होते हैं। हे द्विजो! विचारपूर्वक देखा जाय तो स्त्रीसंसर्ग आदिसे ही सज्जनोंको दुःख उत्पन्न होता है; वे एक दुःखसे दूसरे दुःखको शान्त करना चाहते हैं और दुःखी होते रहते हैं। विषयोंके उपभोगसे कामकी शान्ति कभी नहीं होती है; जैसे हविसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही वह [वासना] निरन्तर बढ़ती ही जाती है॥ २२—२४॥

अतः विचार किया जाय तो मनुष्योंको विषयोंके प्राप्त होनेपर भी सुख नहीं प्राप्त होता है। धनके अर्जनमें, उसकी सुरक्षा करनेमें तथा व्ययमें भी दुःख है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! विचार करनेपर देखा जाय, तो पिशाचलोक, राक्षसलोक, यक्षलोक, गन्धर्वलोक, चन्द्रलोक, बुधलोक, प्रजापतिलोक, ब्राह्मलोक और प्रकृतिलोक तथा पुरुषलोकमें भी भोगोंके नाशकी सम्भावनासे तथा एक-दूसरेसे श्रेष्ठ होनेके कारण ईर्ष्याजन्य दुःखोंसे वे भी दुःखी ही रहते हैं। अतः हे सुव्रतो! भाग्यसे प्राप्त अशुद्ध भोगों तथा अशुद्ध धनोंका त्याग कर देना चाहिये; हे सुव्रतो! चाहे वह भोग (सुख) आठ प्रकारका हो, अथवा सोलह प्रकारका हो, अथवा चौबीस प्रकारका हो, अथवा बत्तीस प्रकारका हो, अथवा चालीस प्रकारका हो, अथवा अड़तालीस प्रकारका हो, अथवा छप्पन प्रकारका हो अथवा चौंसठ प्रकारका हो,* विवेकयुक्त व्यक्तिके लिये भोग दुःखरूप ही होता है॥ २५—३०॥

विचार किया जाय तो पृथ्वीसम्बन्धी, जलसम्बन्धी, अग्निसम्बन्धी, वायुसम्बन्धी, आकाशसम्बन्धी, मनसम्बन्धी, अहंकारसम्बन्धी, बुद्धिसम्बन्धी तथा प्रकृतिसम्बन्धी भोग भी ब्रह्मवादी योगियोंके लिये दुःख ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है। विचारपूर्वक देखा जाय, तो गणेश्वरोंके गुण

* अष्टगुणयुक्त पार्थिव आदि सुखभोग (ऐश्वर्य)-से लेकर चौंसठ प्रकारके सुखभोग (ऐश्वर्य) इसी लिङ्गपुराणके पूर्वभाग अध्याय ९ में विस्तारसे बताये गये हैं।

वर्तमानानि दुःखानि भविष्याणि यथातथम्।
दोषदुष्टेषु देशेषु दुःखानि विविधानि च॥ ३४

न भावयन्त्यतीतानि ह्यज्ञाने ज्ञानमानिनः।
क्षुद्व्याधेः परिहारार्थं न सुखायान्नमुच्यते॥ ३५

यथेतरेषां रोगाणामौषधं न सुखाय तत्।
शीतोष्णवातवर्षाद्यैस्तत्तत्कालेषु देहिनाम्॥ ३६

दुःखमेव न सन्देहो न जानन्ति ह्यपण्डिताः।
स्वर्गेऽप्येवं मुनिश्रेष्ठा ह्यविशुद्धक्षयादिभिः॥ ३७

रोगैर्नानाविधैर्ग्रस्ता रागद्वेषभयादिभिः।
छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतति क्षितौ॥ ३८

पुण्यवृक्षक्षयात्तद्वद् गां पतन्ति दिवौकसः।
दुःखाभिलाषनिष्ठानां दुःखभोगादिसम्पदाम्॥ ३९

अस्मात्तु पततां दुःखं कष्टं स्वर्गाद्दिवौकसाम्।
नरके दुःखमेवात्र नरकाणां निषेवणात्॥ ४०

विहिताकरणाच्चैव वर्णिनां मुनिपुङ्गवाः॥ ४१

भी [वास्तवमें] दुःख ही हैं। समस्त लोकोंमें प्रारम्भ, मध्य तथा अन्तमें सर्वदा दुःख ही है। वास्तवमें वर्तमानमें भी दुःख है और भविष्यमें भी दुःख होंगे। दोषोंसे ग्रस्त सभी देशोंमें अनेक प्रकारके दुःख हैं; अपनेको ज्ञानी समझनेवाले [कुछ लोग] अज्ञानके कारण अतीतका स्मरण नहीं करते हैं। जिस प्रकार औषधि रोगोंके उपचारके लिये होती है; न कि सुखके लिये, उसी प्रकार आहारको भूखरूपी रोगको दूर करनेके लिये बताया गया है, न कि सुखके लिये। शीत, ताप, वायु, वर्षा आदिके द्वारा उन-उन कालोंमें शरीरधारियोंको दुःख ही होता है, इसमें सन्देह नहीं है; किंतु अज्ञानी लोग इसे नहीं समझ पाते हैं॥ ३१—३६ $^{1}/_{2}$ ॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! इसी प्रकार स्वर्गमें भी लोग पुण्यके क्षय आदि दुःखोंसे तथा राग, द्वेष, भय आदि नानाविध रोगोंसे ग्रस्त होते हैं। जैसे जड़से कटा हुआ वृक्ष विवश होकर पृथ्वीपर गिर जाता है, वैसे ही स्वर्गमें रहनेवाले भी पुण्यरूपी वृक्षके क्षय होनेसे पृथ्वीपर पुनः आ जाते हैं। दुःखमय कामनाओंसे युक्त तथा दुःखमय भोगसम्पदासे परिपूर्ण स्वर्गवासी [देवताओं]-को भी इस स्वर्गसे पतित होनेपर दुःख तथा कष्ट ही होता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! शास्त्रोचित कर्मोंको न करनेसे विभिन्न वर्णके लोगोंको नरकोंमें पड़नेके कारण वहाँ दुःख ही भोगना पड़ता है॥ ३७—४१ ॥

यथा मृगो मृत्युभयस्य भीतो
उच्छिन्नवासो न लभेत निद्राम्।
एवं यतिर्ध्यानपरो महात्मा
संसारभीतो न लभेत निद्राम्॥ ४२

जैसे उजड़े हुए निवासवाला मृग मृत्युसे भयभीत होकर निद्रा ग्रहण नहीं कर पाता, उसी प्रकार ध्यानपरायण महात्मा संन्यासी संसारसे भयभीत होकर निद्रा ग्रहण नहीं कर पाता अर्थात् प्रमादरहित होकर सर्वथा सजग रहता है॥ ४२॥

कीटपक्षिमृगाणां च पशूनां गजवाजिनाम्।
दृष्टमेवासुखं तस्मात्त्यजतः सुखमुत्तमम्॥ ४३

वैमानिकानामप्येवं दुःखं कल्पाधिकारिणाम्।
स्थानाभिमानिनां चैव मन्वादीनां च सुव्रताः॥ ४४

देवानां चैव दैत्यानामन्योन्यविजिगीषया।
दुःखमेव नृपाणां च राक्षसानां जगत्त्रये॥ ४५

कीटों, पक्षियों, मृगों, घोड़ा-हाथी आदि पशुओंमें भी [सर्वदा] दुःख ही देखा गया है; अतः भोगका त्याग करनेवालेको उत्तम सुख प्राप्त होता है। हे सुव्रतो! वैमानिक देवताओं और कल्पोंके अधिकारी तथा अपने पदका अभिमान करनेवाले मनु आदिको भी दुःख प्राप्त होता है। तीनों लोकोंमें एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छाके कारण देवताओं तथा दैत्योंको और राजाओं तथा राक्षसोंको भी

श्रमार्थमाश्रमश्चापि वर्णानां परमार्थतः।
आश्रमैर्न च देवैश्च यज्ञैः सांख्यैर्व्रतैस्तथा॥ ४६
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधैरपि।
न लभन्ते तथात्मानं लभन्ते ज्ञानिनः स्वयम्॥ ४७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चरेत्पाशुपतव्रतम्।
भस्मशायी भवेन्नित्यं व्रते पाशुपते बुधः॥ ४८
पञ्चार्थज्ञानसम्पन्नः शिवतत्त्वे समाहितः।
कैवल्यकरणं योगविधिकर्मच्छिदं बुधः॥ ४९
पञ्चार्थयोगसम्पन्नो दुःखान्तं व्रजते सुधीः।
परया विद्यया वेद्यं विदन्त्यपरया न हि॥ ५०
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा।
अपरा तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः॥ ५१
सामवेदस्तथाथर्वो वेदः सर्वार्थसाधकः।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च॥ ५२
ज्योतिषं चापरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम्।
तददृश्यं तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम्॥ ५३
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम्।
तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः॥ ५४
अस्पर्शं तदरूपं च रसगन्धविवर्जितम्।
अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्यं सर्वगं विभुम्॥ ५५
महान्तं तद् बृहन्तञ्च तदजं चिन्मयं द्विजाः।
अप्राणममनस्कं च तदस्निग्धमलोहितम्॥ ५६
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घं तदनुल्बणम्।
अह्रस्वं तदपारं च तदानन्दं तदच्युतम्॥ ५७
अनपावृतमद्वैतं तदनन्तमगोचरम्।
असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा॥ ५८
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः।
अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत्॥ ५९
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते।
मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा॥ ६०
सर्वमात्मनि सम्पश्येत्सच्चासच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि सम्पश्यन्न बाह्ये कुरुते मनः॥ ६१

दुःख प्राप्त होता है॥ ४३—४५॥

वस्तुतः समस्त वर्णोंके आश्रम भी श्रमके कारण दुःख ही देते हैं। लोग आश्रमों, देवों, यज्ञों, सांख्यों, व्रतों, विविध कठोर तपों तथा अनेक प्रकारके दानोंसे भी आत्मतत्त्व नहीं प्राप्त करते; अपितु ज्ञानवान् लोग स्वतः प्राप्त कर लेते हैं, अतः पूर्ण प्रयत्नसे पाशुपतव्रत करना चाहिये। बुद्धिमान्को पाशुपतव्रतमें स्थित होकर नित्य भस्मशायी होना चाहिये। सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंके अर्थ-ज्ञानसे सम्पन्न तथा शिवतत्त्वमें समाहित बुद्धिमान् व्यक्तिको मुक्तिदायक तथा कर्मका नाश करनेवाले पाशुपत योगका आश्रय लेना चाहिये। पंचार्थयोगसे युक्त विद्वान् दुःखके अन्तको प्राप्त होता है॥ ४६—४९ १/२॥

भक्तजन परा विद्यासे ही ज्ञान प्राप्त करते हैं, अपरा विद्यासे नहीं। परा तथा अपरा—ये दो प्रकारकी विद्याएँ कही गयी हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, सभी अर्थोंको सिद्ध करनेवाला अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—ये अपरा विद्या हैं। परा विद्या अक्षररूपमें स्थित है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वह अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, वर्णरहित, नेत्र-कान-हाथ-पैर आदिसे रहित, अजात, अभूत तथा शब्दविहीन है। हे द्विजो! वह स्पर्शरहित, रूपरहित, रस-गन्धहीन, अव्यय, आधारहीन, नित्य, सर्वगामी, सर्वशक्तिशाली, महान्, बृहत्, अज तथा चित्स्वरूप है। वह प्राणरहित, मनरहित, स्नेहरहित तथा अलोहित है। वह अप्रमेय, अस्थूल, अदीर्घ तथा अनुल्बण है। वह अह्रस्व, अपार आनन्दमय एवं अच्युत है। वह अनपावृत, अद्वैत, अनन्त, अगोचर, आवरणरहित तथा आत्मस्वरूप है; उस पराविद्याका अन्य प्रकारसे वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ ५०—५८॥

जो परा तथा अपरा विद्याएँ कही गयी हैं; वे परमार्थकी दृष्टिसे नहीं हैं। वास्तवमें मैं ही सम्पूर्ण जगत् हूँ; मुझमें ही सम्पूर्ण जगत् स्थित है। यह जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है, मुझमें ही स्थित रहता है और [अन्तमें] मुझमें ही विलीन हो जाता है। मुझसे पृथक् कुछ नहीं है—ऐसा मन, वचन तथा कर्मसे अनुभव करना चाहिये। एकाग्रचित्त होकर सत् तथा असत् सब कुछ

अधोदृष्ट्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति।
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्॥ ६२

हृदयस्यास्य मध्ये तु पुण्डरीकमवस्थितम्।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्॥ ६३

ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्।
छिद्राणि च दिशो यस्य प्राणाद्याश्च प्रतिष्ठिताः॥ ६४

प्राणाद्यैश्चैव संयुक्तः पश्यते बहुधा क्रमात्।
दशप्राणवहा नाड्यः प्रत्येकं मुनिपुङ्गवाः॥ ६५

द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः सम्परिकीर्तिताः।
नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समादिशेत्॥ ६६

सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्धनि स्थितम्।
जाग्रे ब्रह्मा च विष्णुश्च स्वप्ने चैव यथाक्रमात्॥ ६७

ईश्वरस्तु सुषुप्ते तु तुरीये च महेश्वरः।
वदन्त्येवमथान्येऽपि समस्तकरणैः पुमान्॥ ६८

वर्तमानस्तदा तस्य जाग्रदित्यभिधीयते।
मनोबुद्धिरहङ्कारं चित्तं चेति चतुष्टयम्॥ ६९

यदा व्यवस्थितस्त्वेतैः स्वप्न इत्यभिधीयते।
करणानि विलीनानि यदा स्वात्मनि सुव्रताः॥ ७०

सुषुप्तः करणैर्भिन्नस्तुरीयः परिकीर्त्यते।
परस्तुरीयातीतोऽसौ शिवः परमकारणम्॥ ७१

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीयं चाधिभौतिकम्।
आध्यात्मिकं च विप्रेन्द्राश्चाधिदैविकमुच्यते॥ ७२

तत्सर्वमहमेवेति वेदितव्यं विजानता।
बुद्धीन्द्रियाणि विप्रेन्द्रास्तथा कर्मेन्द्रियाणि च॥ ७३

मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्।
अध्यात्मं पृथगेवेदं चतुर्दशविधं स्मृतम्॥ ७४

आत्मामें ही देखना चाहिये; आत्मामें ही सब कुछ देखनेवाला [साधक] अपने मनको बाह्य जगत्में आसक्त नहीं करता है॥ ५९—६१॥

नाभिसे बारह अंगुल ऊपर अधोमुख हृत्कमल-स्थित है; उसे विश्वका महान् गृह समझना चाहिये। इस हृदयके मध्यमें कमल विराजमान है; जो धर्मरूपी कन्दसे उत्पन्न, ज्ञानरूपी नालवाला, अत्यन्त सुन्दर, आठ सिद्धिस्वरूप अष्ट दलसे युक्त और श्वेत तथा उत्तम वैराग्यरूपी कर्णिकावाला है एवं जिसके छिद्र प्राणवायुरूपी दिशाओंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ ६२—६४॥

प्राण आदिसे युक्त होनेपर साधक बहुत रूपोंमें इसे क्रमसे देख सकता है। हे श्रेष्ठ मुनियो! प्रत्येक नाड़ी दस प्राणोंका वहन करती है; कुल बहत्तर हजार नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। जाग्रत् [अवस्था]-को नेत्रमें स्थित जानना चाहिये और स्वप्नको कण्ठमें स्थित जानना चाहिये। इसी प्रकार सुषुप्तको हृदयमें स्थित तथा तुरीयको सिरमें स्थित जानना चाहिये। क्रमके अनुसार जाग्रत्-अवस्थामें ब्रह्मा, स्वप्नावस्थामें विष्णु, सुषुप्तावस्थामें ईश्वर (शिव) तथा तुरीयावस्थामें महेश्वर प्रतिष्ठित रहते हैं। अन्य लोग ऐसा भी कहते हैं कि जब मनुष्य सभी इन्द्रियोंके द्वारा संयमित रहता है, तब उसकी जाग्रत्-अवस्था कही जाती है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त—यह अन्तःकरणचतुष्टय है; इनके द्वारा जब मनुष्य व्यवस्थित रहता है, तब उसकी स्वप्नावस्था कही जाती है। हे सुव्रतो! जब मनुष्यकी इन्द्रियाँ उसकी आत्मामें विलीन हो जाती हैं, तब उसकी सुषुप्तावस्था कही जाती है। इन्द्रियोंसे अतीत मनुष्य तुरीय-अवस्थावाला कहा जाता है। [जगत्के] परम कारण तथा परस्वरूप ये शिव तुरीयसे भी अतीत हैं॥ ६५—७१॥

हे विप्रेन्द्रो! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीयके पश्चात् अब मैं आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक स्वरूपका वर्णन करूँगा; यह सब मैं ही हूँ—ऐसा बुद्धिमान्को जानना चाहिये। मन-बुद्धि-अहंकार-चित्त—यह चतुर्वर्ग, [पाँच] ज्ञानेन्द्रियाँ और [पाँच] कर्मेन्द्रियाँ—ये पृथक् रूपसे चौदह आध्यात्मिक पदार्थ

द्रष्टव्यं चैव श्रोतव्यं घ्रातव्यं च यथाक्रमम्।
रसितव्यं मुनिश्रेष्ठाः स्पर्शितव्यं तथैव च॥ ७५
मन्तव्यं चैव बोद्धव्यमहङ्कर्तव्यमेव च।
तथा चेतयितव्यं च वक्तव्यं मुनिपुङ्गवाः॥ ७६
आदातव्यं च गन्तव्यं विसर्गायितमेव च।
आनन्दितव्यमित्येते ह्यधिभूतमनुक्रमात्॥ ७७
आदित्योऽपि दिशश्चैव पृथिवी वरुणस्तथा।
वायुश्चन्द्रस्तथा ब्रह्मा रुद्रः क्षेत्रज्ञ एव च॥ ७८
अग्निरिन्द्रस्तथा विष्णुर्मित्रो देवः प्रजापतिः।
आधिदैविकमेवं हि चतुर्दशविधं क्रमात्॥ ७९
राज्ञी सुदर्शना चैव जिता सौम्या यथाक्रमम्।
मोघा रुद्रामृता सत्या मध्यमा च द्विजोत्तमाः॥ ८०
नाडी राशिशुका चैव असुरा चैव कृत्तिका।
भास्वती नाडयश्चैताश्चतुर्दश निबन्धनाः॥ ८१
वायवो नाडिमध्यस्था वाहकाश्च चतुर्दश।
प्राणो व्यानस्त्वपानश्च उदानश्च समानकः॥ ८२
वैरम्भश्च तथा मुख्यो ह्यन्तर्यामः प्रभञ्जनः।
कूर्मकश्च तथा श्येनः श्वेतः कृष्णस्तथानिलः॥ ८३
नाग इत्येव कथिता वायवश्च चतुर्दश।
यश्चक्षुष्वथ द्रष्टव्ये तथादित्ये च सुव्रताः॥ ८४
नाड्यां प्राणे च विज्ञाने त्वानन्दे च यथाक्रमम्।
हृद्याकाशे य एतस्मिन् सर्वस्मिन्नन्तरे परः॥ ८५
आत्मा एकश्च चरति तमुपासीत मां प्रभुम्।
अजरं तमनन्तं च अशोकममृतं ध्रुवम्॥ ८६
चतुर्दशविधेष्वेव सञ्चरत्येक एव सः।
लीयन्ते तानि तत्रैव यदन्यं नास्ति वै द्विजाः॥ ८७
एक एव हि सर्वज्ञः सर्वेशस्त्वेक एव सः।
एष सर्वाधिपो देवस्त्वन्तर्यामी महाद्युतिः॥ ८८
उपास्यमानः सर्वस्य सर्वसौख्यः सनातनः।
उपास्यति न चैवेह सर्वसौख्यं द्विजोत्तमाः॥ ८९
उपास्यमानो वेदैश्च शास्त्रैर्नानाविधैरपि।
न वैष वेदशास्त्राणि सर्वज्ञो यास्यति प्रभुः॥ ९०
अस्यैवान्नमिदं सर्वं न सोऽन्नं भवति स्वयम्।
स्वात्मना रक्षितं चाद्यादन्नभूतं न कुत्रचित्॥ ९१
सर्वत्र प्राणिनामन्नं प्राणिनां ग्रन्थिरस्म्यहम्।
प्रशास्ता नयनश्चैव पञ्चात्मा स विभागशः॥ ९२

कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! हे मुनिपुंगवो! जो भी देखनेयोग्य, सुननेयोग्य, सूँघनेयोग्य, स्वाद लेनेयोग्य, स्पर्श करनेयोग्य, चिन्तन करनेयोग्य, जाननेयोग्य, गर्व करनेयोग्य, चेतनाके योग्य, बोलनेयोग्य, ग्रहण करनेयोग्य, गमन करनेयोग्य, छोड़नेयोग्य तथा आनन्दके योग्य हैं—ये सब क्रमसे आधिभौतिक हैं। सूर्य, दिशाएँ, पृथ्वी, वरुण, वायु, चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्रज्ञ, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और देव प्रजापति—ये चौदह क्रमसे आधिदैविक हैं॥ ७२—७९॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! राज्ञी, सुदर्शना, जिता, सौम्या, मोघा, रुद्रा, अमृता, सत्या, मध्यमा, नाड़ी, राशिशुका, असुरा, कृत्तिका और भास्वती—ये चौदह निबन्धन नाड़ियाँ हैं। नाड़ियोंके मध्य चौदह वाहक वायु स्थित हैं। प्राण, व्यान, अपान, उदान, समान, वैरम्भ, मुख्य अन्तर्याम, प्रभंजन, कूर्म, श्येन, श्वेत, कृष्ण, अनिल तथा नाग—ये चौदह वायु कहे गये हैं॥ ८०—८३½॥

हे सुव्रतो! नेत्रोंमें, द्रष्टव्य पदार्थोंमें, सूर्यमें, नाड़ीमें, प्राणमें, विज्ञानमें, आनन्दमें, हृदयाकाशमें तथा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें जो एकमात्र आत्माके रूपमें संचरण करता है, उस मुझ अजर, अनन्त, शोकरहित, अमृतस्वरूप तथा अटल प्रभुकी उपासना करनी चाहिये। एकमात्र वह ही चौदहों प्रकारकी नाड़ियोंमें संचरण करता है और हे द्विजो! वे सब उसीमें लीन हो जाते हैं; क्योंकि उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। एकमात्र वह ही सर्वज्ञ है और एकमात्र वह ही सर्वेश्वर है। वह सबका स्वामी, देवता, अन्तर्यामी तथा महाज्योतिसे युक्त है। हे उत्तम द्विजो! सभी प्रकारका सुख देनेवाले सनातन परमात्मा सभीके द्वारा उपासना किये जानेपर स्वयं सर्वसौख्यकी अपेक्षा नहीं करते। वेदों तथा नानाविध शास्त्रोंसे उपासित होकर उन सर्वज्ञ प्रभुको वेद-शास्त्र आदिकी अपेक्षा नहीं रहती॥ ८४—९०॥

यह सारा जगत् इस आत्माका भोग्य है और वह आत्मा स्वयं भोग्य नहीं होता है अर्थात् वह भोक्ता है। अपने द्वारा रक्षित अन्न (भोग)-को वह भोगता है और जीवोंके भोग्यको कभी नहीं भोगता। मैं सभी प्राणियोंका अन्न हूँ, मैं प्राणियोंकी [प्राणापानरूप] ग्रन्थि हूँ, मैं ही

अन्नमयोऽसौ भूतात्मा चाद्यते ह्यन्नमुच्यते।
प्राणमयश्चेन्द्रियात्मा सङ्कल्पात्मा मनोमयः॥ ९३

कालात्मा सोम एवेह विज्ञानमय उच्यते।
सदानन्दमयो भूत्वा महेशः परमेश्वरः॥ ९४

सोऽहमेवं जगत्सर्वं मय्येव सकलं स्थितम्।
परतन्त्रं स्वतन्त्रेऽपि तदभावाद्विचारतः॥ ९५

एकत्वमपि नास्त्येव द्वैतं तत्र कुतस्त्वहो।
एवं नास्त्यथ मर्त्यं च कुतोऽमृतमजोद्भवः॥ ९६

नान्तःप्रज्ञो बहिःप्रज्ञो न चोभयगतस्तथा।
न प्रज्ञानघनस्त्वेवं न प्राज्ञो ज्ञानपूर्वकः॥ ९७

विदितं नास्ति वेद्यं च निर्वाणं परमार्थतः।
निर्वाणं चैव कैवल्यं निःश्रेयसमनामयम्॥ ९८

अमृतं चाक्षरं ब्रह्म परमात्मा परापरम्।
निर्विकल्पं निराभासं ज्ञानं पर्यायवाचकम्॥ ९९

प्रसन्नं च यदेकाग्रं तदा ज्ञानमिति स्मृतम्।
अज्ञानमितरत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ १००

इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसम्पर्कजं ध्रुवम्।
रागद्वेषानृतक्रोधं कामतृष्णादिभिः सदा॥ १०१

अपरामृष्टमद्वैव विज्ञेयं मुक्तिदं त्विदम्।
अज्ञानमलपूर्वत्वात्पुरुषो मलिनः स्मृतः॥ १०२

तत्क्षयाद्धि भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः।
ज्ञानमेकं विना नास्ति पुण्यपापपरिक्षयः॥ १०३

ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मान्मुक्त्यर्थं ब्रह्मवित्तमाः।
ज्ञानाभ्यासाद्धि वै पुंसां बुद्धिर्भवति निर्मला॥ १०४

तस्मात्सदाभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायणः।
ज्ञानेनैकेन तृप्तस्य त्यक्तसङ्गस्य योगिनः॥ १०५

सबपर शासन करनेवाला, सबको ले जानेवाला और विभागपूर्वक [पंचकोशरूप] पंचात्मा हूँ। जो ग्रहण किया जाता है, वह अन्न कहा जाता है। वह भूतात्मा अन्नमयकोश है, इन्द्रियात्मा प्राणमयकोश है, संकल्पात्मा मनोमयकोश है और सोमस्वरूप कालात्मा विज्ञानमयकोश कहा जाता है। सर्वदा आनन्दमग्न होकर महेश परमेश्वर आनन्दमयकोशके रूपमें विद्यमान हैं। वह पंचकोश मैं ही हूँ; विचारपूर्वक देखा जाय, तो उस जगत्‌के अभावके कारण परतन्त्ररूप सम्पूर्ण जगत् मुझ स्वतन्त्रमें ही स्थित है॥ ९१—९५॥

एकत्व भी नहीं है, तब द्वैत कैसे हो सकता है? इसी प्रकार कोई मर्त्य नहीं है। तब वे अजोद्भव भी अमर कैसे होंगे? इस प्रकार वह न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न दोनों प्रकारकी प्रज्ञावाला है, न प्रज्ञानघन है और न तो ज्ञानसम्पन्न प्राज्ञ ही है। वस्तुतः वह ब्रह्म न विदित है, न वेद्य (जाननेयोग्य) है और न तो निर्वाणस्वरूप है। निर्वाण, कैवल्य, निःश्रेयस, अनामय, अमृत, अक्षर, ब्रह्म, परमात्मा, परापर, निर्विकल्प, निराभास और ज्ञान—ये पर्यायवाची हैं। जिसके अन्तःकरणमें एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म स्थित है तथा जो समरस है, जब वह प्रसन्न तथा एकाग्र होता है, वह ज्ञानस्वरूप कहा जाता है, इसके अतिरिक्त सब कुछ अज्ञान है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ९६—१००॥

इस प्रकार पूर्ण ज्ञान निश्चित रूपसे गुरुके सान्निध्यसे उत्पन्न होता है। यह राग, द्वेष, मिथ्या, क्रोध, काम, तृष्णा आदिसे सदा रहित होता है; इसे मुक्ति देनेवाला जानना चाहिये। अज्ञान-मलसे युक्त रहनेके कारण पुरुष मलिन कहा गया है; उस [अज्ञानमल]-के नाशसे ही मुक्ति होती है, अन्यथा करोड़ों जन्मोंमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती॥ १०१-१०२$^1/_2$॥

एकमात्र ज्ञानके बिना पाप तथा पुण्यका क्षय नहीं होता है, अतः हे श्रेष्ठ ब्रह्मवादियो! मुक्तिके लिये ज्ञानका [निरन्तर] अभ्यास करना चाहिये। ज्ञानके अभ्याससे ही मनुष्योंकी बुद्धि निर्मल होती है, अतः उसके प्रति निष्ठावान् तथा तत्पर होकर सदा ज्ञानका

कर्तव्यं नास्ति विप्रेन्द्रा अस्ति चेत्तत्त्वविन्न च।
इह लोके परे चापि कर्तव्यं नास्ति तस्य वै॥ १०६

जीवन्मुक्तो यतस्तस्माद् ब्रह्मवित्परमार्थतः।
ज्ञानाभ्यासरतो नित्यं ज्ञानतत्त्वार्थवित्स्वयम्॥ १०७

कर्तव्याभ्यासमुत्सृज्य ज्ञानमेवाधिगच्छति।
वर्णाश्रमाभिमानी यस्त्यक्तक्रोधो द्विजोत्तमाः॥ १०८

अन्यत्र रमते मूढः सोऽज्ञानी नात्र संशयः।
संसारहेतुरज्ञानं संसारस्तनुसङ्ग्रहः॥ १०९

मोक्षहेतुस्तथा ज्ञानं मुक्तः स्वात्मन्यवस्थितः।
अज्ञाने सति विप्रेन्द्राः क्रोधाद्या नात्र संशयः॥ ११०

क्रोधो हर्षस्तथा लोभो मोहो दम्भो द्विजोत्तमाः।
धर्माधर्मौ हि तेषां च तद्वशात्तनुसङ्ग्रहः॥ १११

शरीरे सति वै क्लेशः सोऽविद्यां सन्त्यजेद् बुधः।
अविद्यां विद्यया हित्वा स्थितस्यैव च योगिनः॥ ११२

क्रोधाद्या नाशमायान्ति धर्माधर्मौ च वै द्विजाः।
तत्क्षयाच्च शरीरेण न पुनः सम्प्रयुज्यते॥ ११३

स एव मुक्तः संसाराद्दुःखत्रयविवर्जितः।
एवं ज्ञानं विना नास्ति ध्यानं ध्यातुर्द्विजर्षभाः॥ ११४

ज्ञानं गुरोर्हि सम्पर्कान्न वाचा परमार्थतः।
चतुर्व्यूहमिति ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समभ्यसेत्॥ ११५

सहजागन्तुकं पापमस्थिवागुद्भवं तथा।
ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः॥ ११६

अभ्यास करना चाहिये। हे श्रेष्ठ विप्रो! एकमात्र ज्ञानसे सन्तुष्ट मुक्तसंग (आसक्तिरहित) योगीके लिये कुछ भी करणीय नहीं रह जाता है; यदि है तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है। इस लोकमें तथा परलोकमें उसके लिये कुछ भी करनेयोग्य नहीं रहता है। चूँकि वह जीवन्मुक्त है, अतः वास्तविक रूपसे ब्रह्मवेत्ता है। ज्ञानके अभ्यासमें संलग्न तथा ज्ञानतत्त्वार्थविद् स्वयं कर्तव्योंके अभ्यासका त्याग करके ज्ञानको ही प्राप्त होता है॥ १०३—१०७½॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! जो अपने वर्णाश्रमपर गर्व करनेवाला है तथा क्रोधका त्याग कर चुका है, किंतु मूढ़ होकर ज्ञानातिरिक्त अन्य साधनोंमें सुखका अनुभव करता है। वह अज्ञानी है; इसमें सन्देह नहीं है। अज्ञान ही संसारका कारण है; शरीर धारण करना ही संसार है। ज्ञान मोक्षका हेतु है; मुक्त [व्यक्ति] अपनेमें ही अवस्थित रहता है॥ १०८-१०९½॥

हे श्रेष्ठ विप्रो! अज्ञान रहनेपर क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हे उत्तम द्विजो! क्रोध, हर्ष, लोभ, मोह, दम्भ, धर्म, अधर्म लोगोंको होता है और उनके कारण शरीर धारण करना पड़ता है और शरीर रहनेपर क्लेश अवश्य होता है, अतः बुद्धिमान्‌को चाहिये कि अज्ञानका त्याग कर दे। हे द्विजो! विद्या (ज्ञान)-के द्वारा अविद्या (अज्ञान)-को नष्ट करके स्थित हुए योगीके क्रोध आदि तथा धर्म-अधर्म [स्वयं] नष्ट हो जाते हैं। उनका नाश हो जानेसे पुनः शरीरसे प्राणीका संयोग नहीं होता है, वह संसारसे मुक्त हो जाता है और तीनों प्रकारके तापोंसे रहित हो जाता है॥ ११०—११३½॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इस प्रकार ज्ञानके बिना ध्यान करनेवालेका ध्यान सिद्ध नहीं होता है, वास्तवमें ज्ञान गुरुके सम्पर्कसे ही होता है, केवल शब्दसे नहीं। चतुर्व्यूह (तैजस, विश्व, प्राज्ञ, तुरीय)-का ज्ञान करके ध्यान करनेवालेको ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ज्ञानरूपी अग्नि सहज, आगन्तुक और अस्थि (शरीर) तथा वाणीसे होनेवाले पापको उसी प्रकार शीघ्र जला डालती है, जैसे

ज्ञानात्परतरं नास्ति सर्वपापविनाशनम्।
अभ्यसेच्च सदा ज्ञानं सर्वसङ्गविवर्जितः॥ ११७

ज्ञानिनः सर्वपापानि जीर्यन्ते नात्र संशयः।
क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि॥ ११८

ज्ञानं यथा तथा ध्यानं तस्माद्ध्यानं समभ्यसेत्।
ध्यानं निर्विषयं प्रोक्तमादौ सविषयं तथा॥ ११९

षट्प्रकारं समभ्यस्य चतुःषट्दशभिस्तथा।
तथा द्वादशधा चैव पुनः षोडशधा क्रमात्॥ १२०

द्विधाभ्यस्य च योगीन्द्रो मुच्यते नात्र संशयः।
शुद्धजाम्बूनदाकारं विधूमाङ्गारसन्निभम्॥ १२१

पीतं रक्तसितं विद्युत्कोटिकोटिसमप्रभम्।
अथवा ब्रह्मरन्ध्रस्थं चित्तं कृत्वा प्रयत्नतः॥ १२२

न सितं वासितं पीतं न स्मरेद् ब्रह्मविद्भवेत्।
अहिंसकः सत्यवादी अस्तेयी सर्वयत्नतः॥ १२३

परिग्रहविनिर्मुक्तो ब्रह्मचारी दृढव्रतः।
सन्तुष्टः शौचसम्पन्नः स्वाध्यायनिरतः सदा॥ १२४

मद्भक्तश्चाभ्यसेद्ध्यानं गुरुसम्पर्कजं ध्रुवम्।
न बुध्यति तथा ध्याता स्थाप्य चित्तं द्विजोत्तमाः॥ १२५

न चाभिमन्यते योगी न पश्यति समन्ततः।
न घ्राति न शृणोत्येव लीनः स्वात्मनि यः स्वयम्॥ १२६

न च स्पर्शं विजानाति स वै समरसः स्मृतः।
पार्थिवे पटले ब्रह्मा वारितत्त्वे हरिः स्वयम्॥ १२७

वाह्नेये कालरुद्राख्यो वायुतत्त्वे महेश्वरः।
सुषिरे स शिवः साक्षात्क्रमादेवं विचिन्तयेत्॥ १२८

क्षितौ शर्वः स्मृतो देवो ह्यपां भव इति स्मृतः।
रुद्र एव तथा वह्नौ उग्रो वायौ व्यवस्थितः॥ १२९

अग्नि सूखे ईंधनको जला डालती है॥ ११४—११६॥

ज्ञानसे बढ़कर पापका नाश करनेवाला अन्य कुछ भी नहीं है, अतः संसारसे आसक्तिरहित होकर ज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। ज्ञानीके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। आमोद-प्रमोद करता हुआ भी ज्ञानी व्यक्ति नानाविध पापोंसे लिप्त नहीं होता है॥ ११७-११८॥

जैसा ज्ञान है, वैसा ही ध्यान भी है, अतः ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ध्यान निर्विषय बताया गया है; जो आदिमें सविषय होता है। चार, छः, दस, बारह तथा सोलह और पुनः दो प्रकारसे—इन छः रूपोंमें क्रमशः अभ्यास करके श्रेष्ठ योगी मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। साधकको विशुद्ध सुवर्णके आकारवाले, धूमरहित अंगारके सदृश, पीले-लाल या श्वेत वर्णवाले, करोड़ों विद्युत्‌के समान कान्तिवाले आकारमें ध्यान लगाना चाहिये, अथवा चित्तको प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित करके श्वेत, कृष्ण अथवा पीतवर्णसे रहित ब्रह्मका स्मरण करे; ऐसा ध्यान करनेवाला ब्रह्मवेत्ता होता है॥ ११९—१२२ $^{1}/_{2}$॥

पूर्ण प्रयत्नके साथ अहिंसक, सत्यवादी, चौरवृत्तिसे रहित, परिग्रहरहित, ब्रह्मचारी, दृढ़ व्रतवाला, सन्तुष्ट, शुद्धिसे युक्त, सर्वदा स्वाध्यायपरायण और मेरी भक्तिसे युक्त होकर गुरुके सान्निध्यमें ध्यानका अविचल अभ्यास करना चाहिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! ध्यान-साधना करनेवाला योगी अपने चित्तको स्थिर करके किसी अन्य वस्तुका बोध नहीं करता, उसे कुछ भी भान नहीं होता, वह अपने चारों ओर कुछ नहीं देखता, वह न सूँघता है, न सुनता है और न स्पर्शका ही अनुभव करता है; जिसने स्वयंको पूर्णतः अपनी आत्मामें लीन कर दिया है, वह समरस कहा गया है॥ १२३—१२६ $^{1}/_{2}$॥

पार्थिव पटलमें ब्रह्मा, जलतत्त्वमें स्वयं विष्णु, अग्नितत्त्वमें कालरुद्र, वायुतत्त्वमें महेश्वर और आकाश तत्त्वमें वे साक्षात् शिव विद्यमान हैं—ऐसा क्रमसे चिन्तन करना चाहिये। शर्व पृथ्वीमें विद्यमान कहे गये हैं। भव देवता जलमें विद्यमान कहे गये हैं। रुद्र

भीमः सुषिरनाकेऽसौ भास्करे मण्डले स्थितः।
ईशानः सोमबिम्बे च महादेव इति स्मृतः॥ १३०

पुंसां पशुपतिर्देवश्चाष्टधाहं व्यवस्थितः।
काठिन्यं यत्तनौ सर्वं पार्थिवं परिगीयते॥ १३१

आप्यं द्रवमिति प्रोक्तं वर्णाख्यो वह्निरुच्यते।
यत्सञ्चरति तद्वायुः सुषिरं यद् द्विजोत्तमाः॥ १३२

तदाकाशं च विज्ञानं शब्दजं व्योमसम्भवम्।
तथैव विप्रा विज्ञानं स्पर्शाख्यं वायुसम्भवम्॥ १३३

रूपं वाह्नेयमित्युक्तमाप्यं रसमयं द्विजाः।
गन्धाख्यं पार्थिवं भूयश्चिन्तयेद्भास्करं क्रमात्॥ १३४

नेत्रे च दक्षिणे वामे सोमं हृदि विभुं द्विजाः।
आजानु पृथिवीतत्त्वमानाभेर्वारिमण्डलम्॥ १३५

आकण्ठं वह्नितत्त्वं स्याल्ललाटान्तं द्विजोत्तमाः।
वायव्यं वै ललाटाद्यं व्योमाख्यं वा शिखाग्रकम्॥ १३६

हंसाख्यं च ततो ब्रह्म व्योम्नश्चोर्ध्वं ततः परम्।
व्योमाख्यो व्योममध्यस्थो ह्ययं प्राथमिकः स्मरेत्॥ १३७

न जीवः प्रकृतिः सत्त्वं रजश्चाथ तमः पुनः।
महांस्तथाभिमानश्च तन्मात्राणीन्द्रियाणि च॥ १३८

व्योमादीनि च भूतानि नैवेह परमार्थतः।
व्याप्य तिष्ठद्यतो विश्वं स्थाणुरित्यभिधीयते॥ १३९

उदेति सूर्यो भीतश्च पवते वात एव च।
द्योतते चन्द्रमा वह्निर्ज्वलत्यापो वहन्ति च॥ १४०

दधाति भूमिराकाशमवकाशं ददाति च।
तदाज्ञया ततं सर्वं तस्माद्वै चिन्तयेद् द्विजाः॥ १४१

तेनैवाधिष्ठितं तस्मादेतत्सर्वं द्विजोत्तमाः।
सर्वरूपमयः शर्व इति मत्त्वा स्मरेद्भवम्॥ १४२

अग्निमें और उग्र वायुमें प्रतिष्ठित हैं। भीम आकाशमें और ईशान सूर्यके मण्डलमें स्थित हैं। महादेवजी चन्द्रमण्डलमें स्थित कहे गये हैं। पुरुषोंमें भगवान् पशुपति विद्यमान हैं। इस प्रकार मैं आठ रूपोंमें व्यवस्थित हूँ॥ १२७—१३०१/२॥

शरीरमें जो सम्पूर्ण कठोरता है, वह पृथ्वीतत्त्वमय कही जाती है, आप्य (तरल) पदार्थको जलतत्त्वसे सम्बन्धित कहा गया है। वर्ण (रंग)-को अग्निसे सम्बन्धित कहा जाता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! जो शरीरमें संचरण करता है, वह वायुसे सम्बन्धित है। जो शरीरमें अवकाश (रिक्त स्थान) है, वह आकाशतत्त्व है। शब्दसे होनेवाला ज्ञान आकाशसे उत्पन्न होता है; उसी प्रकार हे विप्रो! स्पर्शसे होनेवाला ज्ञान वायुसे उत्पन्न होता है। हे द्विजो! रूपका ज्ञान अग्निसे और रसका ज्ञान जलसे उत्पन्न कहा गया है; गन्धका ज्ञान पृथ्वीसे उत्पन्न होता है। पुनः हे विप्रो! दाहिने नेत्रमें सूर्य, बायें नेत्रमें सोम तथा हृदयमें सर्वव्यापक पुरुषका चिन्तन करना चाहिये। हे द्विजोत्तमो! [देहमें] घुटनोंतक पृथ्वीतत्त्व, नाभिपर्यन्त जल-तत्त्व, कण्ठपर्यन्त वह्नितत्त्व, ललाटपर्यन्त वायुतत्त्व, ललाटाग्र अथवा शिखाग्रमें आकाशतत्त्व; तदनन्तर आकाशसे ऊपर हंससंज्ञक ब्रह्म और व्योमके मध्यमें व्योमसंज्ञक ये शिव स्थित हैं—प्राथमिक ध्याताको इनका ध्यान करना चाहिये॥ १३१—१३७॥

जीव, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम, महान् (बुद्धि), अहंकार, पंच तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, आकाश आदि पंच भूत—ये सब यथार्थ रूपमें नहीं हैं। चूँकि विश्वको व्याप्त करके वे शिव स्थित हैं, अतः उन्हें स्थाणु कहा जाता है। उन्हींकी आज्ञासे डरकर सूर्य उगता है, हवा बहती है, चन्द्रमा प्रकाशित होता है, अग्नि जलती है, जल प्रवाहित होता है, भूमि [सबको] धारण करती है और आकाश स्थान देता है; सब कुछ उन्हींसे व्याप्त है, अतः हे द्विजो! उन्हींका चिन्तन करना चाहिये। हे द्विजोत्तमो! उन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् अधिष्ठित है, अतः शर्व सर्वरूपमय हैं—ऐसा मानकर [महेश्वर] भवका स्मरण करना चाहिये॥ १३८—१४२॥

संसारविषतप्तानां ज्ञानध्यानामृतेन वै।
प्रतीकारः समाख्यातो नान्यथा द्विजसत्तमाः॥ १४३

ज्ञानं धर्मोद्भवं साक्षाज्ज्ञानाद्वैराग्यसम्भवः।
वैराग्यात्परमं ज्ञानं परमार्थप्रकाशकम्॥ १४४

ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य योगसिद्धिर्द्विजोत्तमाः।
योगसिद्ध्या विमुक्तिः स्यात्सत्त्वनिष्ठस्य नान्यथा॥ १४५

तमोविद्यापदच्छन्नं चित्रं यत्पदमव्ययम्।
सत्त्वशक्तिं समास्थाय शिवमभ्यर्चयेद् द्विजाः॥ १४६

यः सत्त्वनिष्ठो मद्भक्तो मदर्चनपरायणः।
सर्वतो धर्मनिष्ठश्च सदोत्साही समाहितः॥ १४७

सर्वद्वन्द्वसहो धीरः सर्वभूतहिते रतः।
ऋजुस्वभावः सततं स्वस्थचित्तो मृदुः सदा॥ १४८

अमानी बुद्धिमाञ्छान्तस्त्यक्तस्पर्धो द्विजोत्तमाः।
सदा मुमुक्षुर्धर्मज्ञः स्वात्मलक्षणलक्षणः॥ १४९

ऋणत्रयविनिर्मुक्तः पूर्वजन्मनि पुण्यभाक्।
जरायुक्तो द्विजो भूत्वा श्रद्धया च गुरोः क्रमात्॥ १५०

अन्यथा वापि शुश्रूषां कृत्वा कृत्रिमवर्जितः।
स्वर्गलोकमनुप्राप्य भुक्त्वा भोगाननुक्रमात्॥ १५१

आसाद्य भारतं वर्षं ब्रह्मविज्जायते द्विजाः।
सम्पर्काज्ज्ञानमासाद्य ज्ञानिनो योगविद्भवेत्॥ १५२

क्रमोऽयं मलपूर्णस्य ज्ञानप्राप्तेर्द्विजोत्तमाः।
तस्मादनेन मार्गेण त्यक्तसङ्गो दृढव्रतः॥ १५३

संसारकालकूटाख्यान्मुच्यते मुनिपुङ्गवाः।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं मया युष्माकमच्युतम्॥ १५४

ज्ञानस्यैवेह माहात्म्यं प्रसङ्गादिह शोभनम्।
एवं पाशुपतं योगं कथितं त्वीश्वरेण तु॥ १५५

न देयं यस्य कस्यापि शिवोक्तं मुनिपुङ्गवाः।
दातव्यं योगिने नित्यं भस्मनिष्ठाय सुप्रियम्॥ १५६

हे श्रेष्ठ द्विजो! ज्ञान-ध्यानरूपी अमृतसे ही संसाररूपी विषसे संतप्त लोगोंका प्रतीकार बताया गया है; अन्यथा नहीं। धर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है, साक्षात् ज्ञानसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे परमार्थप्रकाशक परम ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् ज्ञानके अनुसार व्यवहारमें प्रवृत्ति होने लगती है॥ १४३-१४४॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त [साधक]-को ही योगकी सिद्धि होती है, पुनः योगसिद्धिके द्वारा उस सत्त्वनिष्ठकी मुक्ति हो जाती है; अन्यथा नहीं। हे द्विजो! तम तथा अविद्या पदसे आच्छादित, अद्भुत एवं अविनाशी जो शिवपद है, सत्त्वशक्तिका आश्रय लेकर उसका अर्चन करना चाहिये॥ १४५-१४६॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! जो मेरा भक्त सत्त्वनिष्ठ, मेरी पूजामें लीन रहनेवाला, सब प्रकारसे धर्ममें निष्ठा रखनेवाला, सदा उत्साहसे सम्पन्न, एकाग्रचित्त, सभी द्वन्द्वोंको सहनेवाला, धैर्यशाली, सभी प्राणियोंके हितमें रत, सरल स्वभाववाला, सदा स्वस्थ मनवाला, कोमल चित्तवाला, मानरहित, बुद्धिमान्, शान्त, प्रतिद्वन्द्वितासे रहित, सदा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला, धर्मज्ञ, आत्माके लक्षणोंको जाननेवाला, तीनों प्रकारके ऋणोंसे मुक्त तथा पूर्वजन्ममें पुण्यशाली होता है; वह द्विज श्रद्धाके साथ पाखण्डरहित होकर गुरुकी सेवा करके वृद्ध होनेपर स्वर्गलोक प्राप्त करके वहाँ क्रमसे सुखोंका भोग करके पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर ब्रह्मवेत्ता होता है और हे द्विजो! ज्ञानीके सम्पर्कसे ज्ञान प्राप्त करके योगवेत्ता होता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! अज्ञानीके लिये ज्ञानप्राप्तिकी यही विधि है; अतः हे श्रेष्ठ मुनियो! इसी मार्गके द्वारा आसक्तिरहित तथा दृढ़ व्रतवाला व्यक्ति संसाररूपी कालकूट (विष)-से मुक्त हो जाता है॥ १४७—१५३ $^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार मैंने आप लोगोंको संक्षेपमें प्रसंगवश ज्ञानका अचल तथा उत्तम माहात्म्य बता दिया। इस पाशुपत योगको [स्वयं] महेश्वरने कहा है। हे श्रेष्ठ मुनियो! शिवके द्वारा कहे गये इस योगको जिस किसीको भी नहीं बताना चाहिये, अपितु भस्मनिष्ठ अर्थात् शिवतत्त्वनिष्ठ योगीको ही इस अत्यन्त प्रिय योगका

यः पठेच्छृणुयाद्वापि संसारशमनं नरः।
स याति ब्रह्मसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥ १५७

सदा उपदेश करना चाहिये। जो मनुष्य इस संसाररूपी विषका नाश करनेवाले आख्यानको पढ़ता अथवा सुनता है, वह ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १५४—१५७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे संसारविषकथनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'संसारविषकथन' नामक छियासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८६॥

सत्तासीवाँ अध्याय

सनकादि मुनीश्वरोंको शिवज्ञानका उपदेश

ऋषय ऊचुः

निशम्य ते महाप्राज्ञाः कुमाराद्याः पिनाकिनम्।
प्रोचुः प्रणम्य वै भीताः प्रसन्नं परमेश्वरम्॥ १

एवं चेदनया देव्या हैमवत्या महेश्वर।
क्रीडसे विविधैर्भोगैः कथं वक्तुमिहार्हसि॥ २

ऋषिगण बोले—यह सुनकर कुमार आदि उन महाबुद्धिमान् मुनियोंने भयभीत होकर प्रसन्न पिनाकधारी परमेश्वरको प्रणाम करके उनसे कहा—'हे महेश्वर! यदि ऐसा है, तो आप इन देवी पार्वतीके साथ अनेकविध भोगोंके द्वारा क्रीड़ा क्यों करते हैं; कृपा करके यह बतायें'॥ १-२॥

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रहस्येशः पिनाकी नीललोहितः।
प्राह तामम्बिकां प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितान् द्विजान्॥ ३

बन्धमोक्षौ न चैवेह मम स्वेच्छाशरीरिणः।
अकर्ताज्ञः पशुर्जीवो विभुर्भोक्ता ह्यणुः पुमान्॥ ४

मायी च मायया बद्धः कर्मभिर्युज्यते तु सः।
ज्ञानं ध्यानं च बन्धश्च मोक्षो नास्त्यात्मनो द्विजाः॥ ५

यदेवं मयि विद्वान् यस्तस्यापि न च सर्वतः।
एषा विद्या ह्यहं वेद्यः प्रज्ञैषा च श्रुतिः स्मृतिः॥ ६

धृतिरेषा मया निष्ठा ज्ञानशक्तिः क्रिया तथा।
इच्छाख्या च तथा ह्याज्ञा द्वे विद्ये न च संशयः॥ ७

न ह्येषा प्रकृतिर्जैवी विकृतिश्च विचारतः।
विकारो नैव मायैषा सदसद्व्यक्तिवर्जिता॥ ८

पुरा ममाज्ञा मद्वक्त्रात्समुत्पन्ना सनातनी।
पञ्चवक्त्रा महाभागा जगतामभयप्रदा॥ ९

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहे जानेपर पिनाकधारी नीललोहित ईश्वरने हँसकर उन अम्बिकाकी ओर देखकर वहाँ स्थित द्विजोंको प्रणाम करके उनसे कहा—'अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले मेरे लिये न बन्धन है, न मोक्ष है। मैं सर्वव्यापी, कर्तृत्वरहित तथा सर्वज्ञ हूँ; जबकि यह जीव अणुरूप, भोक्ता तथा अज्ञ है। जो मायी है, वह मायासे सकाम कर्मद्वारा बँधा हुआ है और वह कर्मोंसे लिप्त है। हे द्विजो! आत्माके लिये ज्ञान, ध्यान, बन्धन तथा मोक्ष नहीं हैं। जो विद्वान् मुझमें ऐसा अनुभव कर लेता है, उसके लिये भी ये सब नहीं होते हैं। ये [पार्वती] विद्या हैं और मैं वेद्य हूँ। ये प्रज्ञा, श्रुति तथा स्मृति हैं। ये मेरे द्वारा प्रतिष्ठित धृति, निष्ठा, ज्ञानशक्ति, क्रिया, इच्छा तथा आज्ञा हैं। ये (परा-अपरा) दोनों विद्याएँ हैं; इसमें सन्देह नहीं है। ये जीवसम्बन्धी प्रकृति नहीं हैं। विचार किया जाय, तो ये विकृति भी नहीं हैं। विकार नहीं हैं; ये माया हैं, जो सत्-असत्से रहित अर्थात् अनिर्वचनीय हैं। पूर्वकालमें लोगोंको अभय प्रदान करनेवाली, महाभाग्यवती तथा पाँच मुखवाली

तामाज्ञां सम्प्रविश्याहं चिन्तयञ्जगतां हितम्।
सप्तविंशत्प्रकारेण सर्वं व्याप्यानया शिवः॥ १०

तदाप्रभृति वै मोक्षप्रवृत्तिर्द्विजसत्तमाः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तदापश्यद्भवानीं परमेश्वरः॥ ११

भवानी च तमालोक्य मायामहरदव्यया।
ते मायामलनिर्मुक्ता मुनयः प्रेक्ष्य पार्वतीम्॥ १२

प्रीता बभूवुर्मुक्ताश्च तस्मादेषा परा गतिः।
उमाशङ्करयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः॥ १३

द्विधासौ रूपमास्थाय स्थित एव न संशयः।
यदा विद्वानसङ्गः स्यादाज्ञया परमेष्ठिनः॥ १४

तदा मुक्तिः क्षणादेव नान्यथा कर्मकोटिभिः।
क्रमोऽविवक्षितो भूतविवृद्धः परमेष्ठिनः॥ १५

प्रसादेन क्षणान्मुक्तिः प्रतिज्ञैषा न संशयः।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा॥ १६

वृद्धो वा मुच्यते जन्तुः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
अण्डजश्चोद्भिजो वापि स्वेदजो वापि मुच्यते॥ १७

प्रसादाद्देवदेवस्य नात्र कार्या विचारणा।
एष एव जगन्नाथो बन्धमोक्षकरः शिवः॥ १८

भूर्भुवःस्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपः स्वयम्।
सत्यलोकस्तथाण्डानां कोटिकोटिशतानि च॥ १९

विग्रहं देवदेवस्य तथाण्डावरणाष्टकम्।
सप्तद्वीपेषु सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च॥ २०

समुद्रेषु च सर्वेषु वायुस्कन्धेषु सर्वतः।
तथान्येषु च लोकेषु वसन्ति च चराचराः॥ २१

सर्वे भवांशजा नूनं गतिस्त्वेषां स एव वै।
सर्वो रुद्रो नमस्तस्मै पुरुषाय महात्मने॥ २२

विश्वं भूतं तथा जातं बहुधा रुद्र एव सः।
रुद्राज्ञैषा स्थिता देवी ह्यनया मुक्तिरम्बिका॥ २३

मेरी यह सनातनी आज्ञा मेरे मुखसे उत्पन्न हुई थी। तब जगत्के कल्याणका चिन्तन करता हुआ मैं शिव उस आज्ञामें प्रविष्ट होकर इनके साथ सत्ताईस तत्त्वोंसे सबको व्याप्त करके स्थित हुआ। हे श्रेष्ठ द्विजो! तभीसे मुक्ति प्रारम्भ हुई'॥ ३—१०१/२॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहकर परमेश्वरने भवानीकी ओर देखा और सनातनी भवानीने उन [परमेश्वर]-को देखकर मायाको हटा लिया; तब मायाके मलसे मुक्त हुए वे मुनिगण पार्वतीको देखकर प्रसन्न होकर मुक्त हो गये। अतः ये [पार्वती] ही परागति हैं। वस्तुतः उमा तथा शंकरमें भेद नहीं है; वे [शिव] दो रूप धारण करके स्थित हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ११—१३१/२॥

जब शिवकी मायासे विद्वान् अनासक्त हो जाता है, तब क्षणभरमें [उसकी] मुक्ति हो जाती है; अन्यथा करोड़ों कर्मोंसे भी मुक्ति नहीं होती। ऋषियोंके द्वारा बताया गया मुक्तिक्रम परमेष्ठी शिवके लिये विवक्षित नहीं है। परमेश्वरकी कृपासे क्षणभरमें मुक्ति हो जाती है, यह उनकी प्रतिज्ञा है; इसमें सन्देह नहीं है। परमेष्ठी शिवकी कृपासे जीव मुक्त हो जाता है, चाहे वह गर्भमें स्थित हो, उत्पन्न हो रहा हो, बालक हो, तरुण हो अथवा वृद्ध हो। देवोंके देव [महेश्वर]-के अनुग्रहसे अण्डज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज [प्राणी] भी मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १४—१७१/२॥

ये जगत्पति शिव ही बन्धन तथा मोक्ष करनेवाले हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्यम्—ये लोक और करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड तथा अण्डोंके आठों आवरण—ये सब उन देवदेव [महेश्वर]-के विग्रह (शरीर) हैं। सातों द्वीपोंमें, सभी पर्वतोंमें, वनोंमें, समुद्रोंमें, सभी वायुके स्कन्धोंमें तथा अन्य लोकोंमें जो चराचर जीव निवास करते हैं—वे सब शिवके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; निश्चित रूपसे इनकी गति वे ही हैं। सब कुछ रुद्र ही हैं। उन महात्मा पुरुषको नमस्कार है॥ १८—२२॥

उन रुद्रने ही सम्पूर्ण जगत्को तथा सभी जीवोंको

इत्येवं खेचराः सिद्धा जजल्पुः प्रीतमानसाः।
यदावलोक्य तान् सर्वान् प्रसादादनयाम्बिका ॥ २४
तदा तिष्ठन्ति सायुज्यं प्राप्तास्ते खेचराः प्रभोः ॥ २५

उत्पन्न किया है। ये देवी अम्बिका रुद्रकी आज्ञाके रूपमें विराजमान हैं; मुक्ति इन्हींसे प्राप्त होती है—ऐसा आकाशचारी सिद्धोंने प्रसन्नचित्त होकर कहा है। जब वे [शिव] इन आज्ञारूपी अम्बिकाके साथ स्थित होकर उन सबको कृपापूर्वक देखते हैं, तब वे आकाशचारी सिद्धगण प्रभुका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं और सदाके लिये उसीमें स्थित हो जाते हैं ॥ २३—२५ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मुनिमोहशमनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मुनिमोहशमन' नामक सत्तासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८७ ॥

अट्ठासीवाँ अध्याय

पाशुपतयोगसे प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धियोंका वर्णन तथा प्राणाग्निहोमका स्वरूप

ऋषय ऊचुः

केन योगेन वै सूत गुणप्राप्तिः सतामिह।
अणिमादिगुणोपेता भवन्त्येवेह योगिनः।
तत्सर्वं विस्तरात्सूत वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ १

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम्।
पञ्चधा संस्मरेदादौ स्थाप्य चित्ते सनातनम् ॥ २

कल्पयेच्चासनं पद्मं सोमसूर्याग्निसंयुतम्।
षड्विंशच्छक्तिसंयुक्तमष्टधा च द्विजोत्तमाः ॥ ३

ततः षोडशधा चैव पुनर्द्वादशधा द्विजाः।
स्मरेच्च तत्तथा मध्ये देव्या देवमुमापतिम् ॥ ४

अष्टशक्तिसमायुक्तमष्टमूर्तिमजं प्रभुम्।
ताभिश्चाष्टविधा रुद्राश्चतुःषष्टिविधाः पुनः ॥ ५

शक्तयश्च तथा सर्वा गुणाष्टकसमन्विताः।
एवं स्मरेत्क्रमेणैव लब्ध्वा ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ६

एवं पाशुपतं योगं मोक्षसिद्धिप्रदायकम्।
तस्याणिमादयो विप्रा नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ ७

तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम्।
तत्सर्वं क्रमयोगेन ह्युच्यमानं निबोधत ॥ ८

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! किस योगसे सज्जनोंको इस लोकमें मोक्षकी प्राप्ति होती है और योगिजन अणिमा आदि गुणोंसे युक्त होते हैं? हे सूतजी! इस समय आप विस्तारपूर्वक यह सब बतायें ॥ १ ॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] अब मैं परम दुर्लभ योगका वर्णन करूँगा। सबसे पहले चित्तमें सनातन शिवको स्थापित करके उनके [सद्योजात आदि] पाँच रूपोंका स्मरण करना चाहिये और हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! चन्द्र-सूर्य-अग्निसे युक्त तथा छब्बीस शक्तियोंसे समन्वित अष्टदलकमल, उसके ऊपर षोडशदल-कमल, पुनः उसके ऊपर द्वादशदलकमलरूप आसनकी भावना करनी चाहिये। तदनन्तर हे द्विजो! उसके मध्यमें देवीके साथ आठ शक्तियोंसहित अष्टमूर्ति, अजन्मा, ऐश्वर्यमय भगवान् उमापतिका स्मरण करना चाहिये। उन शक्तियोंके साथ आठ रुद्र और आठों सिद्धियोंसे सम्पन्न सभी चौंसठ शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं—ऐसा क्रमसे स्मरण करना चाहिये। हे विप्रो! इस प्रकार उत्तम ज्ञान प्राप्त करके जो मोक्षसिद्धि प्रदान करनेवाले पाशुपतयोगको करता है, उसे अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; अन्यथा करोड़ों उपाय करनेपर भी नहीं मिल सकतीं ॥ २—७ ॥

हे मुनियो! योगियोंका आठ गुणोंसे युक्त ऐश्वर्य

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च।
प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैव सर्वतः॥ ९

वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता।
तच्चापि त्रिविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम्॥ १०

सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मं चैव प्रवर्तते।
सावद्यं नाम यत्तत्र पञ्चभूतात्मकं स्मृतम्॥ ११

इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च यः स्मृतः।
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तिस्तु पञ्चभूतात्मिका पुनः॥ १२

इन्द्रियाणि मनश्चित्तबुद्ध्यहङ्कारसंज्ञितम्।
तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च॥ १३

संयोग एव त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्तते।
पुनरष्टगुणश्चापि सूक्ष्मेष्वेव विधीयते॥ १४

तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभुः।
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु यथास्य नियमः स्मृतः॥ १५

अणिमाद्यं तथाव्यक्तं सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम्।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम्॥ १६

तत्तस्य भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलम्।
लङ्घनं प्लवनं लोके रूपमस्य सदा भवेत्॥ १७

शीघ्रत्वं सर्वभूतेषु द्वितीयं तु पदं स्मृतम्।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां महिम्ना चैव वन्दितम्॥ १८

महित्वं चापि लोकेऽस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते।
त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु यथेष्टगमनं स्मृतम्॥ १९

प्राकामान् विषयान् भुङ्क्ते तथाप्रतिहतः क्वचित्।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुखदुःखं प्रवर्तते॥ २०

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित्।
वश्यानि चास्य भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे॥ २१

कहा गया है। उन सबको क्रमसे बता रहा हूँ; [आपलोग] सुनिये। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता—ये आठ सिद्धियाँ हैं। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उस ऐश्वर्यको भी तीन प्रकारका जानना चाहिये; सावद्य, निरवद्य तथा सूक्ष्म—ये तीन प्रकार होते हैं। उनमें जो सावद्य है, वह पंचभूतात्मक कहा गया है। इन्द्रियाँ, मन तथा जो अहंकार कहा गया है—ये निरवद्य ऐश्वर्य हैं। आत्मामें पंचभूतोंकी तन्मात्रारूपा सूक्ष्म प्रवृत्ति ही सूक्ष्म ऐश्वर्य है। इस प्रकार इन्द्रियाँ, मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार निरवद्य ऐश्वर्य हैं; पंचभूतमय ऐश्वर्य सावद्य नामवाला है और शब्द आदि विषयरूप ऐश्वर्य सूक्ष्म है। तीन प्रकारका यह भेद [अणिमा आदि] सूक्ष्म ऐश्वर्योंमें प्रवृत्त होता है। पुनः आठ गुणोंका भेद भी सूक्ष्म ऐश्वर्योंमें होता है। तीनों लोकोंके सभी प्राणियोंमें सर्वत्र यह अणिमादि अव्यक्त ऐश्वर्य जिस प्रकारसे प्रतिष्ठित है और जैसा इसका नियम बताया गया है—भगवान् प्रभुने इस विषयमें जैसा कहा है, उसके स्वरूपको मैं बताऊँगा। जो ऐश्वर्य त्रिलोकीमें सभी प्राणियोंके लिये दुर्लभ बताया गया है, वह योगियोंके लिये प्राप्त होनेवाला अणिमारूप पहला बल होता है; इसका स्वरूप संसारमें कहीं भी, कभी भी लंघन तथा प्लवन करनेका होता है॥ ८—१७॥

सभी प्राणियोंकी अपेक्षा शीघ्रत्व गुणसे सम्पन्न होना लघिमा नामक दूसरी सिद्धि कही गयी है। तीनों लोकोंमें सभी प्राणियोंमें माहात्म्यबलसे वन्दित तथा पूजित होना इस लोकमें महिमारूप तीसरी सिद्धि कही जाती है। त्रिलोकीमें सभी प्राणियोंके भीतर स्वेच्छासे प्रवेश करना प्राप्ति नामक सिद्धि कही गयी है॥ १८-१९॥

प्राकाम्य ऐश्वर्यसे युक्त व्यक्ति तीनों लोकोंमें कहीं भी बाधारहित होकर विषयोंका भोग करता है और सभी प्राणियोंको सुख-दुःखमें प्रवृत्त कर सकता है। ईशित्व ऐश्वर्यके द्वारा वह योगवेत्ता यथेष्ट देहधारणके द्वारा सभी जगह स्वामी बन जाता है। वशित्वसे

इच्छया तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च।
यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे॥ २२

शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा।
प्रवर्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति यथेच्छया॥ २३

न जायते न म्रियते छिद्यते न च भिद्यते।
न दह्यते न मुह्येत लीयते न च लिप्यते॥ २४

न क्षीयते न क्षरति खिद्यते न कदाचन।
क्रियते वा न सर्वत्र तथा विक्रीयते न च॥ २५

अगन्धरसरूपस्तु अस्पर्शः शब्दवर्जितः।
अवर्णो ह्यस्वरश्चैव असवर्णस्तु कर्हिचित्॥ २६

स भुङ्क्ते विषयांश्चैव विषयैर्न च युज्यते।
अणुत्वात्तु परः सूक्ष्मः सूक्ष्मत्वादपवर्गिकः॥ २७

व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापकात्पुरुषः स्मृतः।
पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परमे स्थितः॥ २८

गुणोत्तरमथैश्वर्ये सर्वतः सूक्ष्ममुच्यते।
ऐश्वर्यं चाप्रतीघातं प्राप्य योगमनुत्तमम्॥ २९

अपवर्गं ततो गच्छेत्सूक्ष्मं तत्परमं पदम्।
एवं पाशुपतं योगं ज्ञातव्यं मुनिपुङ्गवाः॥ ३०

स्वर्गापवर्गफलदं शिवसायुज्यकारणम्।
अथवा गतविज्ञानो रागात्कर्म समाचरेत्॥ ३१

राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव मुच्यते।
तथा सुकृतकर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते॥ ३२

तस्मात्स्थानात्पुनः श्रेष्ठो मानुष्यमुपपद्यते।
तस्माद् ब्रह्म परं सौख्यं ब्रह्म शाश्वतमुत्तमम्॥ ३३

ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव हि परं सुखम्।
परिश्रमो हि यज्ञानां महतार्थेन वर्तते॥ ३४

चराचरसहित त्रिलोकीमें सभी प्राणी उसके वशमें हो जाते हैं। जिसके पास कामावसित्व [ऐश्वर्य] होता है, चराचरसहित तीनों लोकोंमें उसके रूप इच्छाके अनुसार बन सकते हैं और नहीं भी बन सकते हैं। शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप तथा मन उसकी इच्छासे होते हैं और उसकी इच्छाके अनुसार नहीं भी होते हैं। वह कभी भी न उत्पन्न होता है, न मरता है, न कट सकता है, न भेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न मूर्च्छित होता है, न आकर्षित होता है, न लिप्त (आसक्त) होता है, न उसका क्षय होता है, वह नष्ट नहीं होता है और न तो खिन्न होता है। वह सर्वत्र न तो कुछ करता है और न तो विकृत ही होता है। वह शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस तथा रूपसे रहित होता है। वह सदा अवर्ण, स्वररहित तथा असवर्ण होता है। वह विषयोंका भोग करता है, किन्तु उनसे लिप्त नहीं होता है॥ २०—२६॥

अणुभाववाला होनेके कारण जीव सूक्ष्म है और सूक्ष्म होनेके कारण मुक्तिके योग्य है। मुक्त होनेके कारण व्यापक है और व्यापक होनेके कारण वह पुरुष कहा गया है। सूक्ष्म भाव होनेके कारण वह पुरुष परम ऐश्वर्यमें स्थित होता है। ऐश्वर्योंका गुण क्रमशः सूक्ष्म होता जाता है—ऐसा कहा गया है। अबाधित ऐश्वर्य तथा उत्तम योग प्राप्त करके साधक मुक्ति प्राप्त करता है; वही सूक्ष्म परम पद है॥ २७—२९½॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार पाशुपतयोगको जानना चाहिये, जो स्वर्ग तथा मोक्षका फल प्रदान करनेवाला और शिव-सायुज्यका कारण है। विज्ञानरहित व्यक्ति रागके कारण कर्म करता है और राजस अथवा तामस भोग करके वहींपर मुक्त हो जाता है। पुण्यकर्म करनेवाला स्वर्गमें फल प्राप्त करता है; तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ प्राणी [पुण्यके क्षीण होनेपर] पुनः मनुष्यलोकमें वापस आता है। अतः ब्रह्म ही परम सुख है और ब्रह्म ही परम शाश्वत है। ब्रह्मकी ही उपासना करनी चाहिये; क्योंकि ब्रह्म ही परम आनन्दस्वरूप है॥ ३०—३३½॥

भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम्।
अथवा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मतत्त्वपरायणः॥ ३५

न तु च्यावयितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि।
दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वतोमुखम्॥ ३६

विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वरूपिणम्।
विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम्॥ ३७

गोभिर्महीं सम्पतते पतत्त्रिणो
नैवं भूयो जनयत्येवमेव।
कविं पुराणमनुशासितारं
सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम्॥ ३८

योगेन पश्येन्न च चक्षुषा पुन-
र्निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम्।
आलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनं च
नित्यं सदा सर्वगं सर्वसारम्॥ ३९

पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलप्रकाशं
तद्भावितास्तेजसा दीप्यमानम्।
अपाणिपादोदरपार्श्वजिह्वो
ह्यतीन्द्रियो वापि सुसूक्ष्म एकः॥ ४०

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णो
न चास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति।
स वेद सर्वं न च सर्ववेद्यं
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥ ४१

अचेतनां सर्वगतां सूक्ष्मां प्रसवधर्मिणीम्।
प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति योगिनः॥ ४२

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ ४३

युक्तो योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम्।
पुरुषं सर्वभूतानां तं विद्वान्न विमुह्यति॥ ४४

भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम्।
सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्याता न मुह्यति॥ ४५

यज्ञोंमें बहुत धनके व्ययके साथ ही परिश्रम होता है; उसके बाद भी मनुष्यको मृत्युके वशमें होना पड़ता है, अतः मोक्ष ही परम आनन्द है। विश्व नामवाले, सभी ओर मुख-पैर-सिर-ग्रीवावाले, विश्वके स्वामी, सभी रूपोंवाले, सभी गन्धोंसे युक्त, सम्पूर्ण विश्वको माला तथा वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले (सर्वव्यापक) भगवान् दिव्य पुरुषका दर्शन करके ध्यानयुक्त तथा ब्रह्मतत्त्वपरायण व्यक्तिको सैकड़ों मन्वन्तरोंमें भी [उसके पदसे] च्युत नहीं किया जा सकता है॥ ३४—३७॥

पुरुषरूप ईश्वर सूर्यकी किरणोंके माध्यमसे पृथ्वीपर पहुँचता है और निरन्तर ही पूर्वसदृश जगत्को उत्पन्न करता है; किंतु प्रलयकालमें उत्पन्न नहीं करता। योगी उस कवि, पुरातन, सभीपर शासन करनेवाले, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्से भी महान्, इन्द्रियोंसे रहित, स्वर्णके रंगवाले, सर्वरूपमय, निर्गुण, चैतन्यस्वरूप, नित्य सर्वत्र गमन करनेवाले (सर्वव्यापी) तथा सर्वसारस्वरूप पुरुषको योगसे देख सकता है न कि चक्षुसे। उसी ब्रह्ममें लीन रहनेवाले साधक उस अचल प्रकाशवाले तथा अपने तेजसे प्रकाशित प्रभुको योगसे देखते हैं। वह [ब्रह्म] हाथ-पैर-उदर-पार्श्व-जिह्वासे रहित है, इन्द्रियोंसे अतीत है, अत्यन्त सूक्ष्म है तथा अद्वितीय है। वह नेत्ररहित होता हुआ भी देखता है, कानोंसे रहित होता हुआ भी सुनता है और बुद्धिरहित होता हुआ भी सब कुछ जानता है। वह सबको जानता है, किंतु सबके द्वारा वेद्य नहीं है। उसे आदि महान् पुरुष कहा गया है॥ ३८—४१॥

उनसे युक्त योगिजन सभी प्राणियोंकी प्रकृतिको अचेतन, सर्वव्यापिनी, सूक्ष्म तथा प्रसवधर्मिणी (सृष्टि-उत्पादनकर्त्री)-के रूपमें देखते हैं॥ ४२॥

वह [ब्रह्म] सभी ओर हाथ तथा पैरवाला है। वह सभी ओर नेत्र, सिर तथा मुखवाला है। वह सभी ओर कानवाला है तथा संसारमें सभीको व्याप्त करके स्थित है। योगसे युक्त विद्वान् [व्यक्ति] ईशान, सनातन तथा सभी प्राणियोंके परम पुरुष उन ब्रह्मके विषयमें मोहित नहीं होता है। जो व्यक्ति सभी प्राणियोंकी आत्मा, महात्मा, परमात्मा,

पवनो हि यथाग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिषु।
पुरि शेते सुदुर्ग्राह्यस्तस्मात्पुरुष उच्यते॥ ४६

अथ चेल्लुप्तधर्मा तु सावशेषैः स्वकर्मभिः।
ततस्तु ब्रह्मगर्भे वै शुक्रशोणितसंयुते॥ ४७

स्त्रीपुंसोः सम्प्रयोगे हि जायते हि ततः प्रभुः।
ततस्तु गर्भकालेन कललं नाम जायते॥ ४८

कालेन कललं चापि बुद्बुदं सम्प्रजायते।
मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रावर्तेन पीडितः॥ ४९

हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु बिम्बत्वमनुगच्छति।
एवमाध्यात्मिकैर्युक्तो वायुना सम्प्रपूरितः॥ ५०

यदि योनिं विमुञ्चामि तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
यावद्धि वैष्णवो वायुर्जातमात्रं न संस्पृशेत्॥ ५१

तावत्कालं महादेवमर्चयामीति चिन्तयेत्।
जायते मानुषस्तत्र यथारूपं यथावयः॥ ५२

वायुः सम्भवते खात्तु वाताद्भवति वै जलम्।
जलात्सम्भवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्धते॥ ५३

रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशद्रेतोभागाश्चतुर्दश।
भागतोऽर्धफलं कृत्वा ततो गर्भो निषिच्यते॥ ५४

ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः।
पितुः शरीरात्प्रत्यङ्गं रूपमस्योपजायते॥ ५५

ततोऽस्य मातुराहारात्पीतलीढप्रवेशनात्।
नाभिदेशेन वै प्राणास्ते ह्याधारा हि देहिनाम्॥ ५६

नवमासात्परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः।
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्याप्तप्रवेशनः॥ ५७

अविनाशी तथा सर्वात्मा परब्रह्मका ध्यान करनेवाला है, वह मोहको प्राप्त नहीं होता है॥ ४३—४५॥

जिस प्रकार सभी प्राणियोंके भीतर विचरण करता हुआ भी वायु अग्राह्य है, ठीक उसी तरह देहमें स्थित होते हुए भी परमात्मा सुदुर्ग्राह्य है। वह देहरूपी पुरमें शयन करता है, अतः पुरुष कहा जाता है॥ ४६॥

पुण्यफलके भोगके अनन्तर लुप्त धर्मवाला जीव अपने अवशिष्ट कर्मोंके साथ पुनः ब्राह्मणयोनिमें जन्म लेता है। स्त्री-पुरुषके संयोग होनेके अनन्तर शुक्र तथा रक्तके मिलनेपर गर्भकी उत्पत्ति होती है, पुनः वह कललके रूपमें हो जाता है और कुछ समय बाद वह कलल भी बुलबुला बन जाता है। जिस प्रकार मिट्टीका पिण्ड घूमते हुए चाकपर कुम्हारके हाथोंसे आकार प्राप्त करता है, वैसे ही यह जीव पंचमहाभूतोंसे युक्त होकर तथा वायुसे पूरित होकर आकार प्राप्त करता है॥ ४७—५०॥

गर्भमें जीव सोचता है कि यदि मैं गर्भसे निकलूँगा, तो महेश्वरकी शरणमें जाऊँगा और उत्पन्न होनेपर जबतक वैष्णव वायु अर्थात् माया मेरा स्पर्श नहीं करेगी, तबतक मैं महादेवका अर्चन करूँगा। इस प्रकार जीव अपने रूप तथा वयके अनुसार अर्थात् अपने प्रारब्धके अनुसार मनुष्य बनता है॥ ५१-५२॥

आकाशसे वायु उत्पन्न होता है, वायुसे जल उत्पन्न होता है, जलसे प्राण होता है और प्राणसे शुक्र बढ़ता है। रक्तके तैंतीस भाग तथा शुक्रके चौदह भाग मिश्रित होते हैं; उन दोनोंके भागसे आधे जातीफलके सदृश देह प्राप्त करके गर्भकी वृद्धि होती है। तत्पश्चात् गर्भसे युक्त जीव पाँच वायुओंसे घिर जाता है। पिताके शरीरसे इसके अंग-प्रत्यंग तथा रूपका विकास होता है और माताके आहारसे नाभिदेशसे पीये गये तथा चूसे गये रस आदिके प्रवेशसे जीवका पोषण होता है। वे प्राण (वायु) देहधारियोंके आधार हैं॥ ५३—५६॥

नौ महीनेतक शिशु बहुत कष्टमें रहता है, उसकी गर्दन नाभिनालसे लिपटी रहती है, उसका सम्पूर्ण शरीर संकुचित रहता है, वह गर्भमें अपर्याप्त (सीमित)

नवमासोषितश्चापि योनिच्छिद्राद‌वाङ्मुखः।
ततः स्वकर्मभिः पापैर्निरयं सम्प्रपद्यते॥ ५८

असिपत्रवनं चैव शाल्मलिच्छेदनं तथा।
ताडनं भक्षणं चैव पूयशोणितभक्षणम्॥ ५९

यथा ह्यापस्तु संछिन्नाः संश्लेष्ममुपयान्ति वै।
तथा छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः॥ ६०

एवं जीवास्तु तैः पापैस्तप्यमानाः स्वयंकृतैः।
प्राप्नुयुः कर्मभिः शेषैर्दुःखं वा यदि वेतरत्॥ ६१

एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमुत्सृज्य वै जनम्।
एकेनैव तु भोक्तव्यं तस्मात्सुकृतमाचरेत्॥ ६२

न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद् गच्छन्तमनुगच्छति।
यदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति॥ ६३

ते नित्यं यमविषयेषु सम्प्रवृत्ताः
क्रोशन्तः सततमनिष्टसम्प्रयोगैः।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा
बह्वीभिः सुभृशमनन्तयातनाभिः॥ ६४

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदभ्यासो हरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत्॥ ६५

अनादिमान् प्रबन्धः स्यात्पूर्वकर्मणि देहिनः।
संसारं तामसं घोरं षड्विधं प्रतिपद्यते॥ ६६

मानुष्यात्पशुभावश्च पशुभावान्मृगो भवेत्।
मृगत्वात्पक्षिभावश्च तस्माच्चैव सरीसृपः॥ ६७

सरीसृपत्वाद् गच्छेद्वै स्थावरत्वं न संशयः।
स्थावरत्वे पुनः प्राप्ते यावदुन्मिलते जनः॥ ६८

कुलालचक्रवद् भ्रान्तस्तत्रैव परिवर्तते।
इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारस्थावरान्तिकः॥ ६९

स्थानमें पड़ा रहता है। नौ महीनेतक गर्भमें रहनेके बाद वह शिशु नीचेकी ओर मुख किये हुए योनिमार्गसे बाहर निकलता है। इसके पश्चात् अपने पापमय कर्मोंके कारण नरकमें गिरता है; असिपत्रवन तथा शाल्मलिछेदन नामक नरकमें उसका ताड़न तथा भक्षण किया जाता है और उसे पीव तथा रक्तका भक्षण करना पड़ता है। जैसे गर्म किये जानेपर जल श्लेष्मायुक्त (बुलबुलायुक्त) हो जाता है, वैसे ही जीव यातनास्थानको प्राप्त करके छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जीव अपने द्वारा किये गये उन पापोंसे तप्त होते हैं; वे अपने अवशिष्ट कर्मोंके अनुसार दुःख या सुख प्राप्त करते हैं॥ ५७—६१॥

सभीलोगोंको छोड़कर जीवको अकेला ही जाना पड़ता है और अकेला ही भोगना पड़ता है; अतः उत्तम आचरण करना चाहिये। [मृत्युके पश्चात्] प्रस्थान करनेवाले इस जीवके पीछे-पीछे कोई भी नहीं जाता है; इस जीवके द्वारा जो कर्म किया गया होता है, वही इसके साथ जाता है॥ ६२-६३॥

वे जीव [यमलोकमें] निरन्तर अनिष्ट दण्डोंके द्वारा कराहते हुए नित्य यमविषयोंमें प्रवृत्त रहते हैं; अनेक प्रकारकी बड़ी-बड़ी अनन्त यातनाओंके द्वारा वेदनाओंसे घिरे हुए शरीरवाले वे जीव शोकसन्तप्त रहते हैं॥ ६४॥

व्यक्ति मन, वाणी तथा कर्मद्वारा बार-बार जो भी आचरण करता है, वही अभ्यास बनकर इसे उधर ही ले जाता है, अतः [सर्वदा] शुभाचरण करना चाहिये। जीवात्माका पूर्वकर्ममें अनादि दृढ़बन्धन है, उसीसे जीव घोर तामसिक षड्विध संसारको प्राप्त होता है। जीव मनुष्ययोनिसे पशुभावको प्राप्त होता है और पशुभावसे वह मृग होता है, पुनः वह मृगजन्मसे पक्षीका जन्म और पक्षीसे सरीसृप (रेंगनेवाला जन्तु) होता है, इसके बाद वह सरीसृपसे स्थावरत्वको प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं है। पुनः स्थावररूप प्राप्त होनेपर जबतक जीव पुनः मनुष्ययोनि नहीं प्राप्त कर

विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्तते।
सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्तितः ॥ ७०

पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम्।
ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः ॥ ७१

चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः।
मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्तस्य देहिनः ॥ ७२

ततस्तत्परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति।
संसारः पूर्वधर्मस्य भावनाभिः प्रणोदितः ॥ ७३

मानुषं भजते नित्यं तस्माद्ध्यानं समाचरेत्।
चतुर्दशविधं ह्येतद् बुद्ध्वा संसारमण्डलम् ॥ ७४

नित्यं समारभेद्धर्मं संसारभयपीडितः।
ततस्तरति संसारं क्रमेण परिवर्तितः ॥ ७५

तस्माच्च सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः।
तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति ॥ ७६

एष आपः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः।
विवृत्या ह्येष सम्भेदाद्भूतानां चैव शाश्वतः ॥ ७७

तदेनं सेतुमात्मानमग्निं वै विश्वतोमुखम्।
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत महेश्वरम् ॥ ७८

तथान्तःसंस्थितं देवं स्वशक्त्या परिमण्डितम्।
अष्टधा चाष्टधा चैव तथा चाष्टविधेन च ॥ ७९

सृष्ट्यर्थं संस्थितं वह्निं सङ्क्षिप्य च हृदि स्थितम्।
ध्यात्वा यथावद्देवेशं रुद्रं भुवननायकम् ॥ ८०

हुत्वा पञ्चाहुतीः सम्यक् तच्चिन्तागतमानसः।
वैश्वानरं हृदिस्थं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ ८१

आपः पूताः सकृत्प्राश्य तूष्णीं हुत्वा ह्युपाविशन्।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥ ८२

लेता, तबतक कुम्हारके चाककी भाँति वह एक ही स्थानपर चक्कर लगाता रहता है। इस प्रकार मनुष्ययोनिसे प्रारम्भ होकर स्थावरयोनितकके इस संसारको तामस जानना चाहिये। ब्रह्मासे प्रारम्भ करके पिशाचतकके संसारको सात्त्विक कहा गया है; इसे देहधारियोंके लिये स्वर्गस्थानमें जानना चाहिये। ब्राह्म जीवनमें केवल सत्त्व, स्थावरमें केवल तम और चौदह स्थानोंके मध्यमें वेदनासे व्याकुल प्राणीके मर्मस्थानोंका वेधन करनेवाला रज विद्यमान है। ऐसी स्थितिमें विप्र उस परम ब्रह्मको कैसे याद कर सकेगा। पूर्व धर्मकी भावनाओंसे प्रेरित होकर यह संसार सदा मनुष्य-योनिसे युक्त रहता है; अतः ध्यान [अवश्य] करना चाहिये ॥ ६५—७३½ ॥

इस संसारमण्डलको चौदह भुवनस्वरूप जानकर संसारभयसे पीड़ित प्राणीको सदा धर्मका आचरण करना चाहिये; तब वह क्रमसे परिवर्तित होकर इस संसारको पार कर लेता है। अतएव निरन्तर ध्यानमग्न होकर योगीको योगका आचरण करना चाहिये, जिससे वह आत्म-साक्षात्कार कर ले ॥ ७४—७६ ॥

सभी जीवोंमें सम्भेद तथा पार्थक्य होनेपर भी ये [शिव] परम ज्योति (सर्वात्मस्वरूप) हैं, ये ही संसारसागरके जलस्वरूप हैं और ये ही उत्तम तथा शाश्वत सेतु भी हैं। अतः सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित इन आत्मस्वरूप, सेतुस्वरूप तथा सभी ओर मुखवाले अग्निस्वरूप महेश्वरकी उपासना करनी चाहिये। अपनी शक्तिके साथ अन्तःकरणमें स्थित, [पृथ्वी आदि] आठ प्रकारसे, [भव आदि] आठ रूपोंमें तथा वामदेव आदि आठ विग्रहोंके रूपमें विद्यमान रहनेवाले और सृष्टिके लिये अग्निको संक्षिप्त करके हृदयमें विराजमान देवदेवेश लोकनायक भगवान् रुद्रका ध्यान करके उनके चित्तमें मनको लगाकर हृदयमें स्थित वैश्वानरको भली-भाँति क्रमशः पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। शान्तचित्त होकर बैठ करके एक बार पवित्र जलसे आचमन करके आहुति देनी चाहिये। **'प्राणाय स्वाहा'**

अपानाय द्वितीया च व्यानायेति तथा परा।
उदानाय चतुर्थी स्यात्समानायेति पञ्चमी॥ ८३

स्वाहाकारैः पृथग् हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः।
अपः पुनः सकृत्प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत्॥ ८४

प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः।
रुद्रो वै ह्यात्मनः प्राण एवमाप्याययेत्स्वयम्॥ ८५

प्राणे निविष्टो वै रुद्रस्तस्मात्प्राणमयः स्वयम्।
प्राणाय चैव रुद्राय जुहोत्यमृतमुत्तमम्॥ ८६

शिवाविशेह मामीश स्वाहा ब्रह्मात्मने स्वयम्।
एवं पञ्चाहुतीश्चैव श्राद्धे कुर्वीत शासनात्॥ ८७

पुरुषोऽसि पुरे शेषे त्वमङ्गुष्ठप्रमाणतः।
आश्रितश्चैव चाङ्गुष्ठमीशः परमकारणम्॥ ८८

सर्वस्य जगतश्चैव प्रभुः प्रीणातु शाश्वतः।
त्वं देवानामसि ज्येष्ठो रुद्रस्त्वं च पुरो वृषा॥ ८९

मृदुस्त्वमन्नमस्मभ्यमेतदस्तु हुतं तव।
इत्येवं कथितं सर्वं गुणप्राप्तिविशेषतः॥ ९०

योगाचारः स्वयं तेन ब्रह्मणा कथितः पुरा।
एवं पाशुपतं ज्ञानं ज्ञातव्यं च प्रयत्नतः॥ ९१

भस्मस्नायी भवेन्नित्यं भस्मलिप्तः सदा भवेत्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥ ९२

दैवे कर्मणि पित्र्ये वा स याति परमां गतिम्॥ ९३

पहली आहुति कही गयी है। दूसरी आहुति '**अपानाय स्वाहा**', तीसरी '**व्यानाय स्वाहा**', चौथी '**उदानाय स्वाहा**' और पाँचवीं आहुति '**समानाय स्वाहा**' है। इस प्रकार स्वाहाकारके द्वारा पृथक्-पृथक् आहुति देकर शेषान्नको यथेष्ट ग्रहण करना चाहिये, तत्पश्चात् एक बार जलसे प्राशन तथा पुनः आचमन करके हृदयका स्पर्श करना चाहिये॥ ७७—८४॥

आप रुद्र ही प्राणोंकी ग्रन्थि हैं, रुद्र ही आत्मा हैं, अहंकार-देवतारूप आप ही दुःखका नाश करनेवाले हैं और रुद्र ही जीवके प्राण हैं—इस प्रकार [कहकर] स्वयंको तृप्त करना चाहिये। रुद्र प्राणमें निविष्ट हैं, अतः रुद्र स्वयं प्राणस्वरूप हैं। प्राणको तथा रुद्रको उत्तम अमृत समर्पित करना चाहिये; हे शिव! हे ईश! आप मुझमें प्रवेश करें, साक्षात् ब्रह्मात्माको स्वाहा—इस प्रकार श्राद्धके अवसरपर शास्त्रानुसार पाँच आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये॥ ८५—८७॥

आप पुरुष हैं; आप शरीरमें अँगूठेके परिमाणमें विराजमान हैं। अँगूठेके बराबर होते हुए भी आप ईश्वर परम कारणस्वरूप हैं। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी तथा सनातन प्रभु प्रसन्न हों। आप देवताओंमें ज्येष्ठ हैं, आप रुद्र हैं, आप प्रथम इन्द्र थे, आप हमारे लिये कल्याणकारी हों और [हमारे द्वारा] ग्रहण किया गया यह अन्न आपके लिये आहुतिस्वरूप हो॥ ८८-८९ १/२॥

[हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने विशेषरूपसे अणिमादि-गुणप्राप्ति-सम्बन्धी सबकुछ कह दिया। पूर्वकालमें स्वयं ब्रह्माने इस योगविद्याको कहा था। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक पाशुपतविद्याका ज्ञान करना चाहिये, नित्य भस्म-स्नान करना चाहिये और सदा भस्म लगाना चाहिये। जो [व्यक्ति] देवपूजन या पितृकर्म (श्राद्ध)-के अवसरपर इसे पढ़ता है या सुनता है या श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह परमगति प्राप्त करता है॥ ९०—९३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽणिमाद्यष्टसिद्धित्रिगुणसंसारप्राणाग्नौ होमादिवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अणिमा आदि आठ सिद्धि-त्रिगुणसंसारप्राणाग्निमें होमादिका वर्णन' नामक अट्ठासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ अध्याय

सदाचार तथा शौचाचारका निरूपण, द्रव्यशुद्धि, अशौचप्रवृत्ति एवं स्त्रीधर्मविवेचन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा परेत्य गतिमाप्नुयात्॥ १

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सर्वभूतहिताय वै।
सङ्क्षेपात्सर्ववेदार्थं सञ्चयं ब्रह्मवादिनाम्॥ २

उदयार्थं तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम्।
यस्तत्राथाप्रमत्तः स्यात्स मुनिर्नावसीदति॥ ३

मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते।
अवमानोऽमृतं तत्र सन्मानो विषमुच्यते॥ ४

गुरोरपि हिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत्।
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्॥ ५

प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम्।
अविरोधेन धर्मस्य चरेत पृथिवीमिमाम्॥ ६

चक्षुःपूतं चरेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्॥ ७

मत्स्यगृह्यस्य यत्पापं षण्मासाभ्यन्तरे भवेत्।
एकाहं तत्समं ज्ञेयमपूतं यज्जलं भवेत्॥ ८

अपूतोदकपाने तु जपेच्च शतपञ्चकम्।
अघोरलक्षणं मन्त्रं ततः शुद्धिमवाप्नुयात्॥ ९

अथवा पूजयेच्छम्भुं घृतस्नानादिविस्तरैः।
त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य शुद्ध्यते नात्र संशयः॥ १०

आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित्क्वचित्।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारितम्॥ ११

वह्नौ विधूमेऽत्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने।
चरेत्तु मतिमान् भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः॥ १२

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] अब मैं इसके बाद शौचाचारका लक्षण बताऊँगा, जिसे करके शुद्ध अन्तःकरणवाला [व्यक्ति] परलोकमें जाकर [उत्तम] गति प्राप्त करता है। पूर्वकालमें ब्रह्माने सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये इसे कहा था। यह संक्षिप्त रूपमें सभी वेदोंका सार है, ब्रह्मवादियोंकी निधि है, आचरणके उत्थानके लिये उपयोगी है और मुनियोंका उत्तम पद है। जो इसे करनेमें सदा सावधान रहता है, वह मुनि है और वह दुःखित नहीं होता है॥ १—३॥

मान तथा अपमान—ये विष तथा अमृत कहे गये हैं। उनमें अपमान अमृत तथा सम्मान विष कहा जाता है। शिष्यको चाहिये कि गुरुके हितमें संलग्न रहकर एक वर्षतक उनके पास निवास करे, नियमों तथा यमोंमें सदा सावधान रहे और उनसे उत्तम ज्ञानयोग ग्रहण करके पुनः आज्ञा लेकर धर्मका विरोध न करते हुए इस पृथ्वीपर विचरण करे॥ ४—६॥

भलीभाँति नेत्रसे देखकर मार्गपर चलना चाहिये, वस्त्रसे पवित्र किये गये अर्थात् छाने हुए जलको पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र वचन बोलना चाहिये और मनसे पवित्र प्रतीत होनेवाले आचरणको करना चाहिये। मत्स्य ग्रहण करनेवालेको छः महीनोंमें जो पाप लगता है, उसे एक दिन अपवित्र जलके पानसे होनेवाले पापके बराबर जानना चाहिये। अपवित्र जलका पान कर लेनेपर पाँच सौ बार अघोर मन्त्रका जप करना चाहिये; उससे व्यक्ति शुद्धि प्राप्त कर लेता है; अथवा घृतस्नान आदि विस्तृत उपचारोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये, इसके बाद उनकी तीन बार प्रदक्षिणा करके वह शुद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७—१०॥

योगवेत्ताको आतिथ्य, श्राद्ध तथा [सोम आदि] यज्ञमें कहीं नहीं जाना चाहिये; इस प्रकार योगी अहिंसक हो सकता है—यह भलीभाँति निर्णीत बात है। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि अग्निके धूमरहित तथा

अथैनमवमन्यन्ते परे परिभवन्ति च।
तथा युक्तं चरेद्भैक्ष्यं सतां धर्ममदूषयन्॥ १३

भैक्ष्यं चरेद्वनस्थेषु यायावरगृहेषु च।
श्रेष्ठा तु प्रथमा हीयं वृत्तिरस्योपजायते॥ १४

अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शीलीनेषु चरेद् द्विजाः।
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु॥ १५

अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च।
भैक्ष्यचर्या हि वर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते॥ १६

भैक्ष्यं यवागूस्तक्रं वा पयो यावकमेव च।
फलमूलादि पक्वं वा कणपिण्याकसक्तवः॥ १७

इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्धनाः।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्ष्यमिति स्मृतम्॥ १८

अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते।
न्यायतो यश्चरेद्भैक्ष्यं पूर्वोक्तात्स विशिष्यते॥ १९

जरामरणगर्भेभ्यो भीतस्य नरकादिषु।
एवं दाययते तस्मात्तद्भैक्ष्यमिति संस्मृतम्॥ २०

दधिभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये जीवक्षीणकाः।
सर्वे ते भैक्ष्यभक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २१

भस्मशायी भवेन्नित्यं भिक्षाचारी जितेन्द्रियः।
य इच्छेत्परमं स्थानं व्रतं पाशुपतं चरेत्॥ २२

योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं भवेत्।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत्॥ २३

अंगाररहित हो जानेपर अर्थात् अग्निके शीतल हो जानेपर और सभीलोगोंके भोजन कर चुकनेपर [उस घरमें] भिक्षा प्राप्त करे एवं उन घरोंमें प्रतिदिन भिक्षा ग्रहण न करे, अन्यथा दूसरे लोग अपमान करेंगे तथा निन्दा करेंगे। अतः सज्जनोंके धर्मको दूषित न करते हुए उचित भिक्षा प्राप्त करनी चाहिये॥ ११—१३॥

वनमें रहनेवालोंके यहाँ तथा यायावरोंके घरोंमें भिक्षा माँगनी चाहिये। यह योगीकी सर्वश्रेष्ठ वृत्ति होती है। हे ब्राह्मणो! इसके बाद श्रेष्ठ आचारवाले, दानशील, श्रद्धालु, श्रोत्रिय तथा महात्मा गृहस्थोंके यहाँ भिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। इसके बाद दुष्टतारहित तथा अपतित लोगोंके यहाँ भी भिक्षा ग्रहण करे, किंतु सभी वर्णोंके यहाँ भिक्षा माँगना जघन्य वृत्ति कही जाती है॥ १४—१६॥

यवागू, मट्ठा, दूध, यावक (जौसे बना भोजन), पके हुए फल-मूल, टूटे हुए अनाज, तिल और सत्तू भिक्षामें ग्रहण करना चाहिये। [हे ऋषियो!] मैंने योगियोंकी सिद्धिकी वृद्धि करनेवाले उन आहारोंको बता दिया; उनके प्राप्त हो जानेपर इसे श्रेष्ठ भिक्षा कहा गया है॥ १७-१८॥

जो [व्यक्ति] प्रत्येक महीनेमें कुशाके अग्र भागसे जलबिन्दु ग्रहण करता है और न्यायपूर्वक भिक्षाटन करता है; वह पूर्वमें कहे गये [भिक्षार्थी]-से श्रेष्ठ होता है। वृद्धावस्था, मृत्यु, गर्भवास तथा नरक आदिसे भयभीत संन्यासीकी भिक्षा दायभागके समान है, इसीलिये इसे भैक्ष्य कहा जाता है॥ १९-२०॥

जो दही तथा दूधका सेवन करनेवाले हैं और जो अन्य लोग [कृच्छ्र आदि व्रतोंके द्वारा] शरीरको क्षीण करनेवाले हैं; वे सब भिक्षावृत्तिवालेकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। जो परम पद चाहता है, उसे नित्य भस्ममें शयन करना चाहिये, भिक्षाटन करना चाहिये, इन्द्रियोंको वशमें रखना चाहिये और पाशुपतव्रत करना चाहिये॥ २१-२२॥

चान्द्रायणव्रत सभी योगियोंके लिये उत्तम होता है। [अपनी] शक्तिके अनुसार इसे एक, दो, तीन

अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च।
व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह॥ २४

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः॥ २५

बीजयोनिगुणा वस्तुबन्धः कर्मभिरेव च।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते॥ २६

देवैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु
यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमाहुश्च जाप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागादपेतं
तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलम्भः॥ २७

दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं
मौनं च भूतेष्वखिलेषु चार्जवम्।
अतीन्द्रियं ज्ञानमिदं तथा शिवं
प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धबुद्धयः॥ २८

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा
महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ॥ २९

प्राप्यतेऽभिमतान् देशानङ्कुशेन निवारितः।
एतन्मार्गेण शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः॥ ३०

सदाचाररताः शान्ताः स्वधर्मपरिपालकाः।
सर्वान् लोकान् विनिर्जित्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते॥ ३१

पितामहेनोपदिष्टो धर्मः साक्षात्सनातनः।
सर्वलोकोपकारार्थं शृणुध्वं प्रवदामि वः॥ ३२

गुरूपदेशयुक्तानां वृद्धानां क्रमवर्तिनाम्।
अभ्युत्थानादिकं सर्वं प्रणामं चैव कारयेत्॥ ३३

अष्टाङ्गप्रणिपातेन त्रिधा न्यस्तेन सुव्रताः।
त्रिःप्रदक्षिणयोगेन वन्द्यो वै ब्राह्मणो गुरुः॥ ३४

अथवा चार बार करना चाहिये। भिक्षुकोंके लिये ये पाँच व्रत हैं—अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अलोभ, त्याग और परम अहिंसा। क्रोध न करना, गुरुकी सेवा, शुद्धता, आहारकी अल्पता और प्रतिदिन स्वाध्याय—ये नियम बताये गये हैं॥ २३—२५॥

माता-पितासे प्राप्त संस्कार, अपने स्वभाव, धन आदि तथा संचितकर्म—इन सबसे देवताओंके द्वारा मनुष्य वनमें दुर्ग्रह हाथीकी भाँति बन्धनग्रस्त हो जाता है॥ २६॥

सभी यज्ञ-क्रियाएँ देवतुल्य (स्वर्ग प्राप्त करानेवाली) हैं। यज्ञसे श्रेष्ठ जपको तथा जपसे श्रेष्ठ ज्ञानको बताया गया है; किंतु आसक्ति तथा रागसे रहित ध्यान ज्ञानसे भी श्रेष्ठ है; उसके प्राप्त हो जानेसे शाश्वत पदकी प्राप्ति हो जाती है॥ २७॥

ज्ञानसे विशुद्ध बुद्धिवाले लोगोंने इन्द्रियोंके दमन, मनपर नियन्त्रण, सत्य, पापहीनता, मौन, समस्त प्राणियोंके प्रति सरलता और अतीन्द्रिय ज्ञानको शिवस्वरूप बताया है॥ २८॥

एकाग्रचित्तवाला, ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, शुद्ध, एकान्तका सेवन करनेवाला तथा जितेन्द्रिय महात्मा ही इस [पाशुपत] योगको प्राप्त कर सकता है—ऐसा निष्कलंक तथा निष्पाप महर्षिगण कहते हैं॥ २९॥

इस शुद्ध योगमार्गरूपी अंकुशसे नियन्त्रित व्यक्ति दग्धबीजवाला तथा पापरहित होकर अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है॥ ३०॥

जो सदाचारपरायण, शान्त (अन्तःकरणकी वृत्तियोंको निगृहीत कर लेनेवाले) तथा अपने धर्मका पालन करनेवाले हैं, वे सभी लोकोंको जीतकर ब्रह्मलोक चले जाते हैं॥ ३१॥

साक्षात् पितामहने सभी लोकोंके उपकारके लिये सनातनधर्मका उपदेश किया था; मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ, उसे सुनिये॥ ३२॥

गुरुके उपदेशसे युक्त तथा नियमोंका पालन करनेवाले वृद्धजनोंका स्वागत आदि तथा प्रणाम—यह सब करना चाहिये। हे सुव्रतो! तीन बार प्रदक्षिणा करके

ज्येष्ठान्येऽपि च ते सर्वे वन्दनीया विजानता।
आज्ञाभङ्गं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम्॥ ३५

धातुशून्यबिलक्षेत्रक्षुद्रमन्त्रोपजीवनम् ।
विषग्रहविडम्बादीन् वर्जयेत्सर्वयत्नतः॥ ३६

कैतवं वित्तशाठ्यं च पैशुन्यं वर्जयेत्सदा।
अतिहासमवष्टम्भं लीलास्वेच्छाप्रवर्तनम्॥ ३७

वर्जयेत्सर्वयत्नेन गुरूणामपि सन्निधौ।
तद्वाक्यप्रतिकूलं च अयुक्तं वै गुरोर्वचः॥ ३८

न वदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा।
यतीनामासनं वस्त्रं दण्डाद्यं पादुके तथा॥ ३९

माल्यं च शयनस्थानं पात्रं छायां च यत्नतः।
यज्ञोपकरणाङ्गं च न स्पृशेद्वै पदेन च॥ ४०

देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात्सर्वयत्नतः।
कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत्॥ ४१

देवद्रोहगुरुद्रोहात्कोटिमात्रेण शुध्यति।
महापातकशुद्ध्यर्थं तथैव च यथाविधि॥ ४२

पातकी च तदर्धेन शुध्यते वृत्तवान् यदि।
उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः॥ ४३

सन्ध्यालोपे कृते विप्रः त्रिरावृत्त्यैव शुद्ध्यति।
आह्निकच्छेदने जाते शतमेकमुदाहृतम्॥ ४४

लङ्घने समयानां तु अभक्ष्यस्य च भक्षणे।
अवाच्यवाचने चैव सहस्राच्छुद्धिरुच्यते॥ ४५

काकोलूककपोतानां पक्षिणामपि घातने।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः॥ ४६

आठों अंगोंको पृथ्वीसे स्पर्श करके तीन बार ब्राह्मण गुरुको प्रणाम करना चाहिये। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि जो अन्य ज्येष्ठ लोग हैं, उन सबको प्रणाम करे। यदि कोई उत्तम सिद्धिकी कामना करता है, तो उनकी आज्ञाका उल्लंघन न करे॥ ३३—३५॥

धातुवाद, नास्तिकवाद, ऊसर स्थानमें निवास, क्षुद्र-मन्त्रोंका उपयोग, सर्पोंको पकड़ना आदि निन्दनीय कार्योंका पूर्ण प्रयत्नसे परित्याग करना चाहिये। धूर्तता, धनकी कृपणता तथा पिशुनता (परनिन्दा)-का सदा त्याग करना चाहिये। गुरुजनोंके सान्निध्यमें अत्यधिक हँसना, अशिष्टता तथा मनमाना कार्य करना—इन सबका पूर्ण प्रयत्नसे परित्याग करना चाहिये। गुरुकी आज्ञाके प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिये और पूर्ण प्रयत्नपूर्वक कभी भी उनका अनिष्ट (बुरा) नहीं सोचना चाहिये॥ ३६—३८½॥

यतियों (संन्यासियों)-के आसन, वस्त्र, दण्ड, खड़ाऊँ, माला, शयनस्थान, पात्र, छाया तथा यज्ञके उपकरणोंको पैरसे कभी नहीं छूना चाहिये। हे विप्रो! देवताओं तथा गुरुजनोंसे द्रोह न हो, इसका पूर्ण प्रयास करना चाहिये; प्रमादवश द्रोह कर लेनेपर प्रणवका दस हजार जप करना चाहिये। [जानबूझकर] गुरुद्रोह तथा देवद्रोह करनेपर एक करोड़ जपके द्वारा [व्यक्ति] शुद्ध होता है। महापातकोंसे शुद्धिके लिये भी वही विधि है, जो इसके लिये है। पातकी यदि चरित्रवान् है, तो वह उसके आधे जपसे शुद्ध हो जाता है। हे सुव्रतो! सभी उपपातकी उसके भी आधे जपसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३९—४३॥

सन्ध्यावन्दनका लोप करनेपर विप्र इसकी तीन आवृत्ति करके शुद्ध हो जाता है और दैनिक कृत्यका उल्लंघन होनेपर एक सौ बार जप करना बताया गया है॥ ४४॥

[नियत] समयका उल्लंघन करनेपर, अभक्ष्य [पदार्थ]-का भक्षण करनेपर और न बोलनेयोग्य वचन बोलनेपर एक हजार जपसे शुद्धि कही जाती है॥ ४५॥

कौआ, उल्लू तथा कबूतर पक्षियोंका वध करनेपर

य: पुनस्तत्त्ववेत्ता च ब्रह्मविद् ब्राह्मणोत्तमः।
स्मरणाच्छुद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ४७

नैवमात्मविदामस्ति प्रायश्चित्तानि चोदना।
विश्वस्यैव हि ते शुद्धा ब्रह्मविद्याविदो जनाः॥ ४८

योगध्यानैकनिष्ठाश्च निर्लेपाः काञ्चनं यथा।
शुद्धानां शोधनं नास्ति विशुद्धा ब्रह्मविद्यया॥ ४९

उद्धृतानुष्णफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा।
अद्भिः समाचरेत्सर्वं वर्जयेत्कलुषोदकम्॥ ५०

गन्धवर्णरसैर्दुष्टमशुचिस्थानसंस्थितम् ।
पङ्काश्मदूषितं चैव सामुद्रं पल्वलोदकम्॥ ५१

सशैवालं तथान्यैर्वा दोषैर्दुष्टं विवर्जयेत्।
वस्त्रशौचान्वितः कुर्यात्सर्वकार्याणि वै द्विजाः॥ ५२

नमस्कारादिकं सर्वं गुरुशुश्रूषणादिकम्।
वस्त्रशौचविहीनात्मा ह्यशुचिर्नात्र संशयः॥ ५३

देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते।
इतरेषां हि वस्त्राणां शौचं कार्यं मलागमे॥ ५४

वर्जयेत्सर्वयत्नेन वासोऽन्यैर्विधृतं द्विजाः।
कौशेयाविकयो रूक्षैः क्षौमाणां गौरसर्षपैः॥ ५५

श्रीफलैरंशुपट्टानां कुतपानामरिष्टकैः।
चर्मणां विदलानां च वेत्राणां वस्त्रवन्मतम्॥ ५६

वल्कलानां तु सर्वेषां छत्रचामरयोरपि।
चैलवच्छौचमाख्यातं ब्रह्मविद्भिर्मुनीश्वरैः॥ ५७

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं क्षारेणायसमुच्यते।
ताम्रमम्लेन वै विप्रास्त्रपुसीसकयोरपि॥ ५८

एक सौ आठ बार जप करनेसे [पापसे] मुक्ति हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। जो तत्त्वज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता तथा उत्तम ब्राह्मण है, वह तो केवल [प्रणवके] स्मरणसे शुद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४६-४७॥

आत्मज्ञानियोंके लिये प्रायश्चित्त होते ही नहीं हैं; ब्रह्मविद्याको जाननेवाले लोग विश्वके कल्याणके प्रेरक होते हैं, अतः वे [स्वतः] शुद्ध हैं। योगध्यानमें एकनिष्ठ वे लोग निर्लेप (शुद्ध) होते हैं, जैसे सुवर्ण शुद्ध होता है। शुद्ध लोगोंका शोधन नहीं होता है; वे तो ब्रह्मविद्याके द्वारा [पहले ही] शुद्ध होते हैं॥ ४८-४९॥

नदी आदिसे ग्रहण किये गये, वस्त्र तथा नेत्रसे [भलीभाँति] पवित्र, शीतल तथा फेनरहित जलसे सभी अनुष्ठान करना चाहिये; अशुद्ध जलका प्रयोग नहीं करना चाहिये। गन्ध-रंग-रससे दूषित जल, अपवित्र स्थानमें रखे हुए जल, कीचड़ तथा कंकड़से दूषित जल, समुद्री जल, तालाबके जल, शैवालयुक्त जल और अन्य दोषोंसे विकृत जलका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये॥ ५०-५१ $^1/_2$ ॥

हे द्विजो! वस्त्रकी शुद्धिसे युक्त होकर नमस्कार आदि तथा गुरुसेवा आदि समस्त कार्य करने चाहिये; वस्त्रशुद्धिसे रहित व्यक्ति निश्चित रूपसे अपवित्र रहता है; इसमें सन्देह नहीं है। देवकार्यमें उपयोग किये जानेवाले वस्त्रोंकी शुद्धि प्रतिदिन आवश्यक है; मैले हो जानेपर अन्य वस्त्रोंकी शुद्धि करनी चाहिये। हे द्विजो! दूसरोंके द्वारा धारण किये गये वस्त्रका पूर्ण प्रयत्नसे त्याग करना चाहिये॥ ५२—५४ $^1/_2$ ॥

रेशमी तथा ऊनी वस्त्रोंकी शुद्धि [रीठे आदि] रुक्ष पदार्थोंसे, क्षौम (दुकूल) वस्त्रोंकी शुद्धि श्वेत सरसोंसे, स्वर्णकिरणयुक्त वस्त्रोंकी शुद्धि बिल्व फलोंसे, कुशास्तरणों या छाग-कम्बलोंकी शुद्धि मट्ठेके सेचनसे और चमड़े-शणवस्त्रों-बेंतसे बनी वस्तुओंकी शुद्धि सामान्य वस्त्रोंकी भाँति कही गयी है। ब्रह्मवेत्ता मुनीश्वरोंने समस्त वल्कल वस्त्रोंकी तथा छत्र-चामरकी शुद्धि वस्त्रशुद्धिकी भाँति बतायी है। हे विप्रो! कांस्यपात्रकी

हैममद्भिः शुभं पात्रं रौप्यपात्रं द्विजोत्तमाः।
मण्यश्मशङ्खमुक्तानां शौचं तैजसवत्स्मृतम्॥ ५९

अग्नेरपां च संयोगादत्यन्तोपहतस्य च।
रसानामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम्॥ ६०

तृणकाष्ठादिवस्तूनां शुभेनाभ्युक्षणं स्मृतम्।
उष्णेन वारिणा शुद्धिस्तथा स्रुक्स्रुवयोरपि॥ ६१

तथैव यज्ञपात्राणां मुशलोलूखलस्य च।
शृङ्गास्थिदारुदन्तानां तक्षणेनैव शोधनम्॥ ६२

संहतानां महाभागा द्रव्याणां प्रोक्षणं स्मृतम्।
असंहतानां द्रव्याणां प्रत्येकं शौचमुच्यते॥ ६३

अभुक्तराशिधान्यानामेकदेशस्य दूषणे।
तावन्मात्रं समुद्धृत्य प्रोक्षयेद्वै कुशाम्भसा॥ ६४

शाकमूलफलादीनां धान्यवच्छुद्धिरिष्यते।
मार्जनोन्मार्जनैर्वेश्म पुनःपाकेन मृन्मयम्॥ ६५

उल्लेखनेनाञ्जनेन तथा सम्मार्जनेन च।
गोनिवासेन वै शुद्धा सेचनेन धरा स्मृता॥ ६६

भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गौर्व्रजेत्।
अव्याप्तं यदमेध्येन गन्धवर्णरसान्वितम्॥ ६७

वत्सः शुचिः प्रस्रवणे शकुनिः फलपातने।
स्वदारास्यं गृहस्थानां रतौ भार्याभिकाङ्क्षया॥ ६८

हस्ताभ्यां क्षालितं वस्त्रं कारुणा च यथाविधि।
कुशाम्बुना सुसम्प्रोक्ष्य गृह्णीयाद्धर्मवित्तमः॥ ६९

शुद्धि भस्मसे होती है, लौहपात्रकी शुद्धि क्षारसे, ताँबा-राँगा-सीसेके पात्रकी शुद्धि अम्लसे कही जाती है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! सोने तथा चाँदीके पवित्र पात्र जलसे शुद्ध होते हैं; मणि, पत्थर, शंख तथा मोतीकी शुद्धि भी सुवर्णपात्रकी भाँति कही गयी है। अत्यधिक दूषित पदार्थकी शुद्धि अग्नि तथा जलके संयोगसे होती है। सभी रसोंकी शुद्धि उत्प्लवन-क्रियाद्वारा बतायी गयी है॥ ५५—६०॥

तृण, काष्ठ आदि वस्तुओंकी शुद्धिहेतु पवित्र जलसे अभ्युक्षण (छिड़काव) बताया गया है और स्रुक्-स्रुवाकी शुद्धि उष्ण जलसे होती है। उसी प्रकार यज्ञपात्रों, मूसल, उलूखल (ओखली), सींग-अस्थि-काष्ठ तथा हाथीदाँतकी बनी वस्तुओंकी शुद्धि तक्षण (छीलने)-से होती है। हे महाभागो! संहत (मिली-जुली) वस्तुओंकी शुद्धिहेतु प्रोक्षण बताया गया है और असंहत (पृथक्) वस्तुओंको अलग-अलग शुद्ध करना बताया गया है॥ ६१—६३॥

भोजनहेतु अनाजकी राशिके एक भागके दूषित हो जानेपर उतने भागको निकालकर शेष भागका कुशके जलसे प्रोक्षण करना चाहिये। शाक, मूल, फल आदिकी शुद्धि धान्य (अनाज)-की शुद्धिकी भाँति कही जाती है। घरकी शुद्धि मार्जन (जलसेचन) तथा गोबरसे लीपनेसे होती है। मिट्टीका पात्र अग्निमें गर्म करनेसे शुद्ध होता है। भूमिकी शुद्धि खनन (खोदने)-से, गायके गोबरसे लीपनेसे, मलापकरणसे, गायके निवाससे तथा जलके द्वारा सेचनसे बतायी गयी है। भूमिपर ठहरा हुआ जल जो अपवित्र पदार्थसे युक्त न हो तथा गन्ध, वर्ण, रससे युक्त हो, वह गायके द्वारा प्यास बुझनेतक पी लिये जानेपर शुद्ध हो जाता है। बछड़ा गोदोहनके समय शुद्ध होता है और पक्षी [चोंचद्वारा] फल गिरानेके समय शुद्ध होता है। भार्याकी आकांक्षासे रतिके समय गृहस्थोंके लिये पत्नी शुद्ध होती है। धर्मवेत्ताको चाहिये कि धोबीके द्वारा हाथसे धोये गये वस्त्रको विधिपूर्वक कुशके जलसे प्रोक्षित करके धारण करे॥ ६४—६९॥

पण्यं प्रसारितं चैव वर्णाश्रमविभागशः।
शुचिराकरजं तेषां श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥ ७०

खानसे निकालकर विक्रयहेतु फैलायी गयी वस्तुओंमें वर्णाश्रमविभागके अनुसार शुद्धता होती है और [मृगयामें] हरिण आदि पशुओंको पकड़ते समय श्वान शुद्ध होता है॥ ७०॥

छाया च विप्लुषो विप्रा मक्षिकाद्या द्विजोत्तमाः।
रजोभूर्वायुरग्निश्च मेध्यानि स्पर्शने सदा॥ ७१

सुप्त्वा भुक्त्वा च वै विप्राः क्षुत्त्वा पीत्वा च वै तथा।
ष्ठीवित्वाध्ययनादौ च शुचिरप्याचमेत्पुनः॥ ७२

पादौ स्पृशन्ति ये चापि पराचमनबिन्दवः।
ते पार्थिवैः समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ ७३

हे द्विजश्रेष्ठो! अनिषिद्ध छाया, वेदपाठके समय मुखसे निकली बूँदें, विप्र, मक्खियाँ, धूल, भूमि, वायु, अग्नि—ये सब स्पर्शके लिये सदा शुद्ध होते हैं। हे विप्रो! सोकर उठनेपर, भोजनके अनन्तर, छींक आनेपर, जल आदि पीनेपर, थूकनेपर और अध्ययनके आदिमें पवित्र होते हुए भी फिरसे आचमन करना चाहिये। अन्य लोगोंके द्वारा किये गये आचमनकी जो बूँदें पैरोंपर पड़ जायँ, उन्हें धूलके समान समझना चाहिये; उनसे कोई अशुद्ध नहीं होता है॥ ७१—७३॥

कृत्वा च मैथुनं स्पृष्ट्वा पतितं कुक्कुटादिकम्।
सूकरं चैव काकादि श्वानमुष्ट्रं खरं तथा॥ ७४

यूपं चाण्डालकाद्यांश्च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति।
रजस्वलां सूतिकां च न स्पृशेदन्त्यजामपि॥ ७५

सूतिकाशौचसंयुक्तः शावाशौचसमन्वितः।
संस्पृशेन्न रजस्तासां स्पृष्ट्वा स्नात्वैव शुध्यति॥ ७६

मैथुनके अनन्तर, पतितका स्पर्श करके, मुर्गा-सूअर-कौवा-कुत्ता-ऊँट-गधा-यूप, चाण्डाल आदिका स्पर्श करके व्यक्ति स्नानके द्वारा शुद्ध होता है। रजस्वला, प्रसूता तथा शूद्रा स्त्रीका स्पर्श नहीं करना चाहिये। जननाशौच तथा मरणाशौचसे युक्त व्यक्तिको चाहिये कि अपने सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंमें रजस्वला स्त्रीको न छुए और छू लेनेपर वह स्नान करके ही शुद्ध होता है॥ ७४—७६॥

नैवाशौचं यतीनां च वनस्थब्रह्मचारिणाम्।
नैष्ठिकानां नृपाणां च मण्डलीनां च सुव्रताः॥ ७७

ततः कार्यविरोधाद्धि नृपाणां नान्यथा भवेत्।
वैखानसानां विप्राणां पतितानामसम्भवात्॥ ७८

असञ्चयद्विजानां च स्नानमात्रेण नान्यथा।
तथासन्निहितानां च यज्ञार्थं दीक्षितस्य च॥ ७९

एकाहाद्यज्ञयाजीनां शुद्धिरुक्ता स्वयम्भुवा।
ततस्त्वधीतशाखानां चतुर्भिः सर्वदेहिनाम्॥ ८०

सूतकं प्रेतकं नास्ति त्र्यहादूर्ध्वममुत्र वै।
अर्वागेकादशाहान्तं बान्धवानां द्विजोत्तमाः॥ ८१

हे सुव्रतो! संन्यासियों, वानप्रस्थियों, नैष्ठिक ब्रह्मचारियों, राजाओं तथा [उनके] मन्त्रियोंको अशौच नहीं लगता है। कार्यमें अवरोध न हो, इसलिये राजाओंको, भ्रमणशील संन्यासियों और ब्राह्मणोंको तथा पतितजनोंके लिये सम्भव न होनेके कारण अशौच नहीं होता है। कुछ भी संचय न करनेवाले ब्राह्मणों, यज्ञके लिये दीक्षित यजमान तथा जिन्हें अशौचकालमें उसकी जानकारी न हुई हो—ऐसे लोगोंकी स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है। यज्ञमें दीक्षित ऋत्विजों तथा उनकी वैदिक शाखाका अध्ययन करनेवालोंका अशौच ब्रह्माजीने एक दिनका बताया है। अपने गोत्रसे भिन्न जनोंकी शुद्धि चार दिनोंमें हो जाती है; क्योंकि उनके लिये जननाशौच तथा मरणाशौच तीन दिनोंसे अधिक नहीं होता है। [परिवारमें] मृत्यु हो जानेपर बान्धवोंकी दस दिनोंमें शुद्धि हो जाती

स्नानमात्रेण वै शुद्धिर्मरणे समुपस्थिते।
तत ऋतुत्रयादर्वागेकाहः परिगीयते॥ ८२

सप्तवर्षात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं हि ततः परम्।
दशाहं ब्राह्मणानां वै प्रथमेऽहनि वा पितुः॥ ८३

दशाहं सूतिकाशौचं मातुरप्येवमव्ययाः।
अर्वाक् त्रिवर्षात्स्नानेन बान्धवानां पितुः सदा॥ ८४

अष्टाब्दादेकरात्रेण शुद्धिः स्याद् बान्धवस्य तु।
द्वादशाब्दात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं स्त्रीषु सुव्रताः॥ ८५

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।
अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥ ८६

ततः सन्निहितो विप्रश्चार्वाक् पूर्वं तदेव वै।
संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्रेण शुद्ध्यति॥ ८७

स्पृष्ट्वा प्रेतं त्रिरात्रेण धर्मार्थं स्नानमुच्यते।
दाहकानां च नेतॄणां स्नानमात्रमबान्धवे॥ ८८

अनुगम्य च वै स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति।
आचार्यमरणे चैव त्रिरात्रं श्रोत्रिये मृते॥ ८९

पक्षिणी मातुलानां च सोदराणां च वा द्विजाः।
भूपानां मण्डलीनां च सद्यो नीराष्ट्रवासिनाम्॥ ९०

केवलं द्वादशाहेन क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः।
नाभिषिक्तस्य चाशौचं सम्प्रमादेषु वै रणे॥ ९१

वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति।
इति सङ्क्षेपतः प्रोक्ता द्रव्यशुद्धिरनुत्तमा॥ ९२

है। जन्मके दस दिनके बाद छः मासके भीतर बालककी मृत्यु होनेपर एक दिनका अशौच होता है। तत्पश्चात् सात वर्षसे छोटे बालककी मृत्यु होनेपर तीन रातका अशौच होता है। सात वर्षसे बड़े उपनीत ब्राह्मण-बालककी मृत्युपर दस दिनका अशौच होता है, किंतु विकल्पसे पिताके लिये एक दिनका भी अशौच बताया गया है, माताके लिये तो दस दिनका अशौच रहता ही है। तीन वर्षसे कमके बालककी मृत्युपर बान्धवोंकी शुद्धि स्नानमात्रसे हो जाती है, किंतु पिताकी शुद्धि सदा ही तीन रात्रिके उपरान्त ही होती है। आठ वर्षसे अधिकके सम्बन्धीकी मृत्यु होनेपर बान्धवोंकी शुद्धि एक दिनमें हो जाती है। हे सुव्रतो! आठ वर्षके बाद बारह वर्षके पहलेतक स्त्रियोंको तीन रातका अशौच होता है। सातवीं पीढ़ीके बाद सपिण्डता समाप्त हो जाती है। दस दिन बीत जानेपर अशौचका ज्ञान होनेपर तीन रातका अशौच होता है। हे विप्रो! छः मासके पहले मृत्युकी जानकारी होनेपर पक्षिणी (दो रात-एक दिन)-का अशौच होता है और उसके बाद एक वर्षसे पहले एक दिनका अशौच होता है। वर्ष व्यतीत हो जानेपर स्नानमात्रसे सपिण्डोंकी शुद्धि हो जाती है॥ ७७—८७॥

शवका स्पर्श कर लेनेपर तीन रातमें शुद्धि होती है। धर्मके लिये स्नान ही शुद्धिहेतु कहा जाता है। बान्धव न होनेपर शवका दाह करनेवाले तथा उसे ले जानेवालोंके लिये स्नानमात्र ही विहित है। शवके साथ [यात्रामें] जानेपर स्नान करके तथा घृतका प्राशन करनेपर व्यक्ति शुद्ध होता है। हे द्विजो! आचार्य तथा श्रोत्रियके मरणमें तीन रातका अशौच होता है। माताके भाइयोंके मरणमें पक्षिणी अशौच होता है और उपकारी जनोंके मरणमें तीन रातका अशौच होता है। राजाओं, सामन्तों तथा देशान्तरवासियोंके मरणमें स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! क्षत्रियोंका अशौच बारह दिनका होता है। अभिषिक्त राजाके रणमें मरनेपर बान्धवोंको अशौच नहीं होता है। वैश्य पन्द्रह दिनोंमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है। [हे विप्रो!] इस

अशौचं चानुपूर्व्येण यतीनां नैव विद्यते।
त्रेताप्रभृति नारीणां मासि मास्यार्तवं द्विजाः॥ ९३

कृते सकृद्युगवशाज्जायन्ते वै सहैव तु।
प्रयान्ति च महाभागा भार्याभिः कुरवो यथा॥ ९४

वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताप्रभृति सुव्रताः।
भारते दक्षिणे वर्षे व्यवस्था नेतरेष्वथ॥ ९५

महावीते सुवीते च जम्बूद्वीपे तथाष्टसु।
शाकद्वीपादिषु प्रोक्तो धर्मो वै भारते यथा॥ ९६

रसोल्लासा कृते वृत्तिस्त्रेतायां गृहवृक्षजा।
सैवार्तवकृताद्दोषाद्रागद्वेषादिभिर्नृणाम्॥ ९७

मैथुनात्कामतो विप्रास्तथैव परुषादिभिः।
यवाद्याः सम्प्रजायन्ते ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥ ९८

ओषध्यश्च रजोदोषाः स्त्रीणां रागादिभिर्नृणाम्।
अकालकृष्टा विध्वस्ताः पुनरुत्पादितास्तथा॥ ९९

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न सम्भाष्या रजस्वला।
प्रथमेऽहनि चाण्डाली यथा वर्ज्या तथाङ्गना॥ १००

द्वितीयेऽहनि विप्रा हि यथा वै ब्रह्मघातिनी।
तृतीयेऽह्नि तदर्धेन चतुर्थेऽहनि सुव्रताः॥ १०१

स्नात्वार्धमासात्संशुद्धा ततः शुद्धिर्भविष्यति।
आषोडशात्ततः स्त्रीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते॥ १०२

पञ्चरात्रं तथास्पृश्या रजसा वर्तते यदि।
सा विंशद्दिवसादूर्ध्वं रजसा पूर्ववत्तथा॥ १०३

प्रकार मैंने संक्षेपमें अत्युत्तम द्रव्यशुद्धिका वर्णन कर दिया॥ ८८—९२॥

पूर्वकी भाँति यतियोंका अशौच होता ही नहीं है। हे द्विजो! [अब मैं स्त्रियोंके रजोधर्मकी प्रवृत्तिका वर्णन करता हूँ] त्रेता आदि युगमें प्रत्येक मासमें स्त्रियोंको रजोधर्म होता है। युगकी प्रकृतिके अनुसार सत्ययुगमें लोग स्त्रियोंके साथ एक बार सहवास करते थे और सन्तानें उत्पन्न होती थीं, जिस प्रकार भाग्यशाली कुरुवर्षनिवासी करते थे॥ ९३-९४॥

हे सुव्रतो! दक्षिणमें भारतवर्षमें वर्णाश्रम-व्यवस्था त्रेतायुगसे लेकर है; यह व्यवस्था अन्य आठ किंपुरुष आदि वर्षोंमें, महावीतमें तथा सुवीतमें नहीं है। शाकद्वीप आदि द्वीपोंमें भारतके ही समान धर्मकी व्यवस्था बतायी गयी है॥ ९५-९६॥

सत्ययुगमें लोगोंकी वृत्ति सहज आनन्दकी थी, त्रेतामें गृह, वृक्ष आदिपर आधारित वृत्ति थी। वही वृत्ति बादमें रजोदोषके कारण लोगोंके राग-द्वेषपर आधारित हो गयी। हे विप्रो! कामवश स्त्रीसंग, क्रोध इत्यादि दोषोंके कारण जौ आदि हविष्यान्न एवं औषधियाँ चौदह प्रकारके ग्राम्य तथा वन्य पदार्थोंके रूपमें उत्पन्न होने लगीं; जो अकालमें नष्ट होकर पुनः उत्पन्न होती थीं, इसलिये प्रयत्नपूर्वक रजस्वला स्त्रीसे सम्भाषण आदि नहीं करना चाहिये॥ ९७—९९१/२॥

पहले दिन रजस्वला स्त्री चाण्डालीकी भाँति वर्ज्य होती है। हे विप्रो! दूसरे दिन वह ब्रह्मघातिनीके समान होती है और तीसरे दिन उसके आधे पापसे युक्त रहती है। हे सुव्रतो! चौथे दिन स्नान करके वह आधे महीनेतक देवपूजन आदिके लिये शुद्ध रहती है। पाँचवें दिनसे सोलहवें दिनतक रजोदोष रहनेके कारण स्त्रीस्पर्श आदिकी शुद्धि मूत्रोत्सर्गकी शुद्धिकी तरह कही गयी है। इसके बाद ही उसकी पूर्ण शुद्धि होगी॥ १००—१०२॥

यदि स्त्री रजोदोषसे युक्त है, तो पाँच रात्रितक वह अस्पृश्य (अगम्य) होती है। बीस दिनके बाद भी वह यदि रजोदोषसे युक्त है, तो वह पूर्वकी भाँति अस्पृश्य होती है॥ १०३॥

स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा।
यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम्॥ १०४

दिवास्वप्नं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम्।
मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम्॥ १०५

वर्जयेत्सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला।
रजस्वलाङ्गनास्पर्शसम्भाषे च रजस्वला॥ १०६

सन्त्यागं चैव वस्त्राणां वर्जयेत्सर्वयत्नतः।
स्नात्वान्यपुरुषं नारी न स्पृशेत्तु रजस्वला॥ १०७

ईक्षयेद्भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत्।
केवलं पञ्चगव्यं वा क्षीरं वा चात्मशुद्धये॥ १०८

चतुर्थ्यां स्त्री न गम्या तु गतोऽल्पायुः प्रसूयते।
विद्याहीनं व्रतभ्रष्टं पतितं पारदारिकम्॥ १०९

दारिद्र्यार्णवमग्नं च तनयं सा प्रसूयते।
कन्यार्थिनैव गन्तव्या पञ्चम्यां विधिवत्पुनः॥ ११०

रक्ताधिक्याद्भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान्।
समे नपुंसकं चैव पञ्चम्यां कन्यका भवेत्॥ १११

षष्ठ्यां गम्या महाभागा सत्पुत्रजननी भवेत्।
पुत्रत्वं व्यञ्जयेत्तस्य जातपुत्रो महाद्युतिः॥ ११२

पुमिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः।
पुंसस्त्राणान्वितं पुत्रं तथाभूतं प्रसूयते॥ ११३

सप्तम्यां चैव कन्यार्थी गच्छेत्सैव प्रसूयते।
अष्टम्यां सर्वसम्पन्नं तनयं सम्प्रसूयते॥ ११४

नवम्यां दारिकायार्थी दशम्यां पण्डितो भवेत्।
एकादश्यां तथा नारीं जनयेत्सैव पूर्ववत्॥ ११५

रजस्वला स्त्रीको स्नान, शौच, गायन, रोदन, हास-परिहास, यात्रा करना, अभ्यंग, द्यूत, अनुलेपन, विशेष रूपसे दिनमें शयन, दन्तधावन, मैथुन, मन तथा वाणीसे भी देवपूजन, नमस्कार आदिको पूर्णप्रयत्नसे त्याग देना चाहिये। रजस्वलाको चाहिये कि अन्य रजस्वला स्त्रीके अंगस्पर्श तथा उसके साथ बातचीतका त्याग कर दे; उसे पूर्णप्रयत्नके साथ वस्त्र बदलनेका त्याग कर देना चाहिये। रजस्वला स्त्रीको चाहिये कि स्नान करके शुद्ध होनेपर [पतिके अतिरिक्त] अन्य पुरुषका स्पर्श न करे और सूर्यदेवका दर्शन करे। तदनन्तर आत्मशुद्धिके लिये ब्रह्मकूर्च अथवा केवल पंचगव्य अथवा दुग्धका पान करे॥ १०४—१०८॥

रजोधर्मके चौथे दिन स्त्री गमनके योग्य नहीं होती है; वह स्त्री नष्ट तथा अल्प आयुवाले [पुत्र]-को जन्म देती है। वह विद्यारहित, व्रतसे च्युत, पतित, दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेवाले तथा दरिद्रताके समुद्रमें डूबे रहनेवाले पुत्रको उत्पन्न करती है। पुत्रीकी कामना करनेवालेको पाँचवें दिन स्त्रीके साथ गमन करना चाहिये। रक्तका आधिक्य होनेपर कन्या होती है, शुक्रका आधिक्य होनेपर पुत्र होता है और दोनोंके समान होनेपर नपुंसक संतान उत्पन्न होती है। पाँचवें दिन सहवास करनेपर कन्या उत्पन्न होती है। छठें दिन यदि स्त्रीके साथ गमन किया जाय, तो वह महाभाग्यवती स्त्री उत्तम पुत्रको उत्पन्न करती है, उसके पुत्रत्वको प्रकट करती है और वह पैदा हुआ पुत्र महातेजस्वी होता है। 'पुम्'—यह एक नरकका नाम है और नरकको दुःखपूर्ण कहा गया है; वह स्त्री पुम् [नरक]-से त्राण (रक्षा) करनेवाले उस प्रकारके पुत्रको जन्म देती है॥ १०९—११३॥

कन्याकी इच्छावालेको सातवीं रात्रिमें गमन करना चाहिये; किंतु वह कन्या वन्ध्या होती है। आठवीं रात्रिमें स्त्री सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको जन्म देती है। कन्याकी इच्छावाले व्यक्तिको नौवीं रातमें सहवास करना चाहिये। दसवीं रातमें संभोग करनेपर विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है। ग्यारहवीं रातमें सहवास करनेपर वह स्त्री पूर्वकी

द्वादश्यां धर्मतत्त्वज्ञं श्रौतस्मार्तप्रवर्तकम्।
त्रयोदश्यां जडां नारीं सर्वसङ्करकारिणीम्॥ ११६

जनयत्यङ्गना यस्मान्न गच्छेत्सर्वयत्नतः।
चतुर्दश्यां यदा गच्छेत्सा पुत्रजननी भवेत्॥ ११७

पञ्चदश्यां च धर्मिष्ठां षोडश्यां ज्ञानपारगम्।
स्त्रीणां वै मैथुने काले वामपार्श्वे प्रभञ्जनः॥ ११८

चरेद्यदि भवेन्नारी पुमांसं दक्षिणे लभेत्।
स्त्रीणां मैथुनकाले तु पापग्रहविवर्जिते॥ ११९

उक्तकाले शुचिर्भूत्वा शुद्धां गच्छेच्छुचिस्मिताम्।
इत्येवं सम्प्रसङ्गेन यतीनां धर्मसङ्ग्रहे॥ १२०

सर्वेषामेव भूतानां सदाचारः प्रकीर्तितः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सदाचारं शुचिर्नरः॥ १२१

श्रावयेद्वा यथान्यायं ब्राह्मणान् दग्धकिल्बिषान्।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते॥ १२२

भाँति कन्या उत्पन्न करती है। बारहवें दिन स्त्री धर्मतत्त्वके ज्ञाता तथा श्रुति-स्मृतिके धर्मोंको चलानेवाले पुत्रको उत्पन्न करती है और तेरहवीं रातमें गमन करनेपर मूर्ख तथा वर्णसंकर [दोष] फैलानेवाली कन्या उत्पन्न करती है; अतः पूरे प्रयत्नसे उस दिन स्त्री-सहवास नहीं करना चाहिये। यदि चौदहवीं रातमें गमन किया जाय, तो वह स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेवाली होती है। पन्द्रहवीं रातमें गमन करनेपर वह धर्मनिष्ठ कन्याको तथा सोलहवीं रातमें गमन करनेपर ज्ञानमें पारंगत पुत्रको उत्पन्न करती है॥ ११४—११७१/२॥

मैथुनके समय यदि स्त्रियोंके बायें पार्श्वमें वायु प्रवाहित होता हो, तो कन्या होती है और दक्षिण पार्श्वमें प्रवाहित हो, तो पुत्र प्राप्त होता है। पापग्रहसे रहित मैथुन-कालमें स्त्रियोंसे सहवास करना चाहिये। ऐसे बताये गये [शुभ] समयमें पवित्र होकर उत्तम मुसकानवाली भार्याके साथ गमन करना चाहिये॥ ११८-११९१/२॥

[हे विप्रो!] इस प्रकार मैंने यतियोंके धर्मसंग्रहमें प्रसंगपूर्वक सभी प्राणियोंके सदाचारका वर्णन कर दिया। जो मनुष्य पवित्र होकर इस सदाचारको विधिपूर्वक पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा दग्ध पापवाले ब्राह्मणोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करके ब्रह्माके साथ आनन्द करता है॥ १२०—१२२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सदाचारकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥
॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सदाचारकथन' नामक नवासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८९॥

नब्बेवाँ अध्याय

यतियोंके लिये प्रायश्चित्तनिरूपण

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चितम्।
प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनां पापशोधनम्॥ १
पापं हि त्रिविधं ज्ञेयं वाङ्मनःकायसम्भवम्।
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं वेष्ट्यते जगत्॥ २
तत्कर्मणा विनाप्येष तिष्ठतीति परा श्रुतिः।
क्षणमेवं प्रयोज्यं तु आयुष्यं तु विधारणम्॥ ३

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसके बाद मैं यतियोंके लिये निश्चित किये गये प्रायश्चित्तका वर्णन करूँगा; शिवके द्वारा कहा गया यह [प्रायश्चित्त] यतियोंके पापका शोधन करनेवाला है॥ १॥

मन, वाणी तथा शरीरसे होनेवाले पापको तीन प्रकारका जानना चाहिये, जिसके द्वारा दिन-रात निरन्तर यह जगत् व्याप्त है। यति कर्मके बिना भी स्थित रहता है—

भवेद्योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम्।
न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणां दृश्यते शुभम्॥ ४

तस्माद्योगं प्रशंसन्ति धर्मयुक्ता मनीषिणः।
अविद्यां विद्यया जित्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम्॥ ५

दृष्ट्वा परावरं धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम्।
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च॥ ६

एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते।
उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥ ७

प्राणायामसमायुक्तं चरेत्सान्तपनं व्रतम्।
ततश्चरति निर्देशात्कृच्छ्रं चान्ते समाहितः॥ ८

पुनराश्रममागत्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः।
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः॥ ९

तथापि न च कर्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः।
अहोरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा॥ १०

असद्वादो न कर्तव्यो यतिना धर्मलिप्सुना।
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमप्युत॥ ११

स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः।
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा स्तैन्यं वै कथितं तथा॥ १२

यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः।
स तस्य हरते प्राणान् यो यस्य हरते धनम्॥ १३

एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्युतः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्॥ १४

विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः।
ततः संवत्सरस्यान्ते भूयः प्रक्षीणकल्मषः।
पुनर्निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ १५

अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् कृमीन्॥ १६

यह उपनिषद्का कथन है; प्रत्येक क्षणको योगमें प्रयुक्त करना चाहिये; क्योंकि आयु अत्यन्त चलायमान है। प्रमादरहितको ही योग प्राप्त होता है। योग महान् बल है; मनुष्योंके लिये योगसे बढ़कर कल्याणकारी कुछ भी नहीं दिखायी देता है। अतः धर्मयुक्त विद्वान् लोग योगकी प्रशंसा करते हैं। विद्याके द्वारा अविद्याको जीतकर अत्युत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करके पुनः ब्रह्म तथा मायाविलासका भली-भाँति विचार करके धीर लोग [शिवनामक] उस परम पदको प्राप्त करते हैं॥ २—५१/२॥

यतियोंके लिये जो व्रत तथा उपव्रत हैं; उनमें प्रत्येकका अतिक्रम (उल्लंघन) होनेपर उनके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया गया है। [गृहस्थको भी] कामनापूर्वक स्त्री-गमन करनेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये; यतिको प्राणायामयुक्त सान्तपनव्रत करना चाहिये, इसके बाद एकाग्रचित्त होकर नियमानुसार कृच्छ्रव्रत करना चाहिये, तत्पश्चात् अपने आश्रममें लौटकर आलस्यरहित होकर भिक्षुक (यति)-को आचारपूर्वक रहना चाहिये॥ ६—८१/२॥

धर्मार्थ असत्य [किसीको] दूषित नहीं करता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं; फिर भी उसे नहीं करना चाहिये। यह असत्य प्रसंग भयंकर होता है। [यदि यह हो जाता है, तो] एक दिन तथा एक रात उपवास और सौ प्राणायाम इसका प्रायश्चित्त है। धर्मके इच्छुक यतिको असद्वाद नहीं करना चाहिये; बड़ी-से-बड़ी विपत्ति पड़नेपर भी उसे चोरी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि चोरीसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है—ऐसा श्रुति कहती है। चोरीको प्राणवधके समान होनेवाली हिंसाके रूपमें कहा गया है। जो यह धन है, वह मनुष्योंका बाहर विचरण करनेवाला प्राण ही है। जो जिसके धनका हरण करता है, वह मानो उसका प्राण ही हर लेता है। इस [चौर] कर्मको करके वह अत्यन्त दुष्ट मनवाला व्यक्ति आचाररहित तथा व्रतच्युत हो जाता है। उसे फिरसे वैराग्ययुक्त होकर शास्त्रोक्त विधिसे एक वर्षतक चान्द्रायणव्रत करना चाहिये—ऐसा श्रुति कहती है। वर्षके अन्तमें वह पापरहित हो जाता है; इसके बाद यतिको वैराग्ययुक्त होकर आलस्यरहित हो सदाचारका पालन करना चाहिये॥ ९—१५॥

सभी प्राणियोंके प्रति मन, वचन तथा कर्मसे अहिंसा भाव रखना चाहिये। यदि यति अनजानमें भी पशुओं तथा

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा।
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि॥ १७

तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश।
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥ १८

त्रिरात्रमुपवासाश्च प्राणायामशतं तथा।
रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नात्वा द्वादशैव तु धारणाः॥ १९

प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजाः।
एकान्नं मधुमांसं वा अशृतान्नं तथैव च॥ २०

अभोज्यानि यतीनां तु प्रत्यक्षलवणानि च।
एकैकातिक्रमात्तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते॥ २१

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते।
व्यतिक्रमाश्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसम्भवाः॥ २२

सद्भिः सह विनिश्चित्य यद् ब्रूयुस्तत्समाचरेत्॥ २३

चरेद्धि शुद्धः समलोष्ठकाञ्चनः
समस्तभूतेषु च सत्समाहितः।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं तु
परं हि गत्वा न पुनर्हि जायते॥ २४

कीड़ोंतककी हिंसा कर दे, तो उसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। स्त्रीको देखकर इन्द्रिय-दौर्बल्यके कारण यदि यति स्खलित हो जाता है, तो उसे सोलह बार प्राणायाम करना चाहिये। दिनमें वीर्यस्खलन करनेवाले विप्रके लिये प्रायश्चित्तस्वरूप तीन राततक उपवास और सौ प्राणायामका विधान है। यदि रातमें स्खलन होता है, तो स्नान करके बारह धारणा (प्राणायाम) करनेके अनन्तर वह शुद्ध हो जाता है। हे द्विजो! प्राणायामके द्वारा विप्र शुद्धमनवाला तथा पापसे रहित हो जाता है॥ १६—१९½॥

किसी एक व्यक्तिसे प्राप्त अन्न, मधु (शहद), मांस, बिना पका हुआ भोजन तथा प्रत्यक्ष लवण—ये सभी पदार्थ यतियोंके लिये अभोज्य हैं। इनमें किसी एकका भी उल्लंघन होनेपर उनके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया गया है; कृच्छ्रप्राजापत्यव्रतके द्वारा उस पापसे यति छूट जाता है। मन, वाणी तथा शरीरसे जो कोई भी अन्य व्यतिक्रम हो जाय, तो उनके प्रायश्चित्तके लिये सत्पुरुषोंके साथ निर्णय करके वे जो बतायें, उसे करना चाहिये॥ २०—२३॥

जो शुद्ध मनसे मिट्टीके ढेले तथा सुवर्णमें समान भाव रखता है और सभी प्राणियोंमें ब्रह्मका चिन्तन करता है; वह स्थिर, शाश्वत तथा अविनाशी परम धामको प्राप्त करके पुनः जन्म नहीं ग्रहण करता है॥ २४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे यतिप्रायश्चित्तं नाम नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'यतिप्रायश्चित्त' नामक नब्बेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९०॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

आसन्नमृत्युसूचक लक्षण एवं योगसाधनामें प्रणवका माहात्म्य तथा शिवोपासनानिरूपण

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत।
येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यन्ति योगिनः॥ १

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव सोमच्छायां महापथम्।
यो न पश्येन्न जीवेत्स नरः संवत्सरात्परम्॥ २

अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तं च पावकम्।
यः पश्यति न जीवेद्वै मासादेकादशात्परम्॥ ३

वमेन्मूत्रं पुरीषं च सुवर्णं रजतं तथा।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसके बाद मैं अरिष्टों (मृत्युको सूचित करनेवाले चिह्नों)-को बताऊँगा, जिस ज्ञानविशेषसे योगीलोग मृत्युको देखते हैं; आपलोग उन्हें जानिये॥ १॥

जो मनुष्य अरुन्धती, ध्रुव, सोमछाया (छायापुरुष) तथा आकाशगंगामार्गको नहीं देख पाता है, वह एक वर्षसे अधिक नहीं जीवित रहता है। जो रश्मिरहित सूर्यको तथा रश्मियुक्त अग्निको देखता है, वह ग्यारह महीनेसे अधिक नहीं जीता है। जो प्रत्यक्ष अथवा

रुक्मवर्णं द्रुमं पश्येद् गन्धर्वनगराणि च।
पश्येत्प्रेतपिशाचांश्च नवमासान् स जीवति॥ ५

अकस्माच्च भवेत्स्थूलो ह्यकस्माच्च कृशो भवेत्।
प्रकृतेश्च निवर्तेत चाष्टौ मासांश्च जीवति॥ ६

अग्रतः पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदं भवेत्।
पांशुके कर्दमे वापि सप्तमासान् स जीवति॥ ७

काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्धनि।
क्रव्यादो वा खगो यस्य षण्मासान्नातिवर्तते॥ ८

गच्छेद्वायसपङ्क्तीभिः पांसुवर्षेण वा पुनः।
स्वच्छायां विकृतां पश्येच्चतुः पञ्च स जीवति॥ ९

अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमास्थिताम्।
उदके धनुरैन्द्रं वा त्रीणि द्वौ वा स जीवति॥ १०

अप्सु वा यदि वादर्शे यो ह्यात्मानं न पश्यति।
अशिरस्कं तथा पश्येन्मासादूर्ध्वं न जीवति॥ ११

शवगन्धि भवेद् गात्रं वसागन्धमथापि वा।
मृत्युर्ह्युपागतस्तस्य अर्धमासान्न जीवति॥ १२

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं परिशुष्यति।
धूमं वा मस्तकात्पश्येद्दशाहान्न स जीवति॥ १३

सम्भिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति।
अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येत तस्य मृत्युरुपस्थितः॥ १४

ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशां च दक्षिणाम्।
गायन्नृत्यन् व्रजेत्स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः॥ १५

कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाप्यथाङ्गना।
यं नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति॥ १६

स्वप्नमें मूत्र, पुरीष (विष्ठा), सुवर्ण अथवा रजत (चाँदी)-का वमन करता है, वह दस महीनेसे अधिक नहीं जीता है। जो स्वप्नमें सुनहरे वृक्षको देखता है और गन्धर्वनगरों तथा प्रेतपिशाचोंको देखता है, वह नौ महीनेतक जीवित रहता है। जो अकस्मात् स्थूल हो जाता है, अकस्मात् दुर्बल हो जाता है और अपने स्वभावसे दूर हो जाता है, वह आठ महीनेतक जीवित रहता है॥ २—६॥

जिसके पैरकी आकृति धूल या कीचड़में सामने या पीछेसे खण्डित दिखायी दे, वह सात महीनेतक जीता है। जिसके सिरपर कौआ, कबूतर, गीध अथवा मांसभक्षी अन्य पक्षी बैठ जाता है, वह छः महीनेसे अधिक नहीं जीता है। जो कौओंकी पंक्तियोंके साथ गमन करता है अथवा धूलवृष्टि (आँधी)-के साथ गमन करता है और अपनी छायाको विकृत देखता है, वह चार-पाँच महीनेतक जीता है। जो मेघरहित आकाशमें विद्युत्को दक्षिण दिशामें स्थित देखता है अथवा जलमें इन्द्रधनुषको देखता है, वह दो अथवा तीन महीनेतक जीवित रहता है॥ ७—१०॥

जो जलमें अथवा दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको नहीं देख पाता है और अपनेको सिरविहीन देखता है, वह एक महीनेसे अधिक नहीं जीता है। यदि किसीका शरीर शवकी गन्धवाला अथवा चर्बीकी गन्धवाला हो जाता है, तो उसकी मृत्यु समीप आयी हुई होती है; वह आधे महीनेसे अधिक नहीं जीवित रहता है। स्नान करनेके तुरंत बाद जिसका हृदय सूख जाता है अथवा मस्तकसे धुआँ दिखायी देता है, वह दस दिनसे अधिक नहीं जीता है॥ ११—१३॥

प्रवाहमय वायु जिसके मर्मस्थानोंको भेद देता है और जो जलसे स्पृष्ट होकर प्रसन्न नहीं होता है, उसकी मृत्युको उपस्थित समझना चाहिये। यदि कोई स्वप्नमें ऋक्ष (भालू) तथा बन्दरसे जुते हुए रथसे दक्षिण दिशाकी ओर गाते तथा नाचते हुए यात्रा करता है, तो उसकी मृत्युको उपस्थित समझना चाहिये। स्वप्नमें काले रंगका वस्त्र धारण किये कृष्ण वर्णवाली

छिद्रं वा स्वस्य कण्ठस्य स्वप्ने यो वीक्षते नरः।
नग्नं वा श्रमणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्॥ १७

आमस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे।
दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति॥ १८

भस्माङ्गारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजङ्गमान्।
पश्येद्यो दशरात्रं तु न स जीवति तादृशः॥ १९

कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति॥ २०

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवाः।
क्रोशन्त्यभिमुखं प्रेत्य स गतायुर्भवेन्नरः॥ २१

यस्य वा स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम्।
जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत्॥ २२

भूयो भूयस्त्रसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा।
दीपगन्धं च नाघ्राति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्॥ २३

रात्रौ चेन्द्रधनुः पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम्।
परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति॥ २४

नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः।
वक्रा च नासा भवति विज्ञेयो गतजीवितः॥ २५

यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पद्माभासं च वै मुखम्।
गण्डे वा पिण्डिकारक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः॥ २६

मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन्नृत्यंश्च यो नरः।
याम्यामभिमुखं गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम्॥ २७

यस्य श्वेतघनाभासा श्वेतसर्षपसन्निभा।
श्वेता च मूर्तिर्ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः॥ २८

स्त्री गाती हुई जिसे दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय, वह भी जीवित नहीं रहता है॥ १४—१६॥

जो मनुष्य स्वप्नमें अपने कण्ठका छिद्र देखता है अथवा नग्न श्रमण (भिक्षु)-को देखता है, उसे अपनी मृत्युको उपस्थित समझना चाहिये। जो मनुष्य [स्वप्नमें] अपनेको पैरसे मस्तकतक कीचड़के समुद्रमें डूबा हुआ पाता है; वह उस प्रकारके स्वप्नको देखनेपर जीवित नहीं रहता है और शीघ्र ही मर जाता है। जो भस्म, अंगारों, केशों, सूखी नदी तथा सर्पोंको स्वप्नमें देखता है; वह दस राततक जीवित नहीं रह पाता है। जो उठाये हुए शस्त्रोंवाले काले तथा विकट (विकराल) पुरुषोंके द्वारा पत्थरोंसे स्वप्नमें मारा जाता है, वह जीवित नहीं रहता है॥ १७—२०॥

सूर्योदयके समय प्रातःकाल जिसके सामने प्रत्यक्ष आकर सियार रुदन करते हैं, वह मनुष्य समाप्त आयुवाला होता है। स्नान करनेके तुरंत बाद जिसके हृदयमें तीव्र वेदना होती है और दाँतोंमें कम्पन होता है, उसे समाप्त आयुवाला समझना चाहिये। जो मनुष्य दिनमें अथवा रातमें बार-बार भयभीत होता हो और दीपककी गन्धको न सूँघ पाता हो, उसे अपनी मृत्युको उपस्थित जानना चाहिये। जो रातमें इन्द्रधनुषको तथा दिनमें तारामण्डलको देखे और दूसरोंके नेत्रोंमें अपना प्रतिबिम्ब न देख सके; वह जीवित नहीं रहता है॥ २१—२४॥

जिसके एक नेत्रसे पानी आता हो, दोनों कान अपने स्थानसे खिसके हुए हों और जिसकी नाक टेढ़ी हो गयी हो, उसे समाप्त जीवनवाला समझना चाहिये। जिसकी जीभ काली तथा खुरदुरी हो जाय, मुख पाण्डुरवर्णवाला हो जाय और दोनों गाल खजूर फलके समान रक्तवर्णके हो जायँ, उसकी मृत्यु सन्निकट होती है। जो मनुष्य स्वप्नमें खुले बालोंवाला होकर हँसता हुआ, गाता हुआ तथा नाचता हुआ दक्षिण दिशाकी ओर जाता है, उसका जीवन समाप्त हो जाता है॥ २५—२७॥

जिसका शरीर श्वेत मेघोंकी आभाके समान और

उष्ट्रा वा रासभा वाभियुक्ताः स्वप्ने रथे शुभाः।
यस्य सोऽपि न जीवेत्तु दक्षिणाभिमुखो गतः॥ २९

द्वे वाथ परमेऽरिष्टे एकीभूतः परं भवेत्।
घोषं न शृणुयात्कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति॥ ३०

श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्ने द्वारं चापि पिधीयते।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम्॥ ३१

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा
रक्ता पुनः सम्परिवर्तमाना।
मुखस्य शोषः सुषिरा च नाभि-
रत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव॥ ३२

दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं यो निहन्यते।
हन्तारं न च पश्येच्च स गतायुर्न जीवति॥ ३३

अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः।
स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदन्तं तस्य जीवितम्॥ ३४

यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः।
कृष्णं रक्तमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः॥ ३५

अरिष्टे सूचिते देहे तस्मिन् काल उपस्थिते।
त्यक्त्वा खेदं विषादं च उपेक्षेद् बुद्धिमान्नरः॥ ३६

प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जन्तुवर्जिते॥ ३७

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थश्चाचान्त एव च।
स्वस्तिकेनोपविष्टस्तु नमस्कृत्वा महेश्वरम्॥ ३८

समकायशिरोग्रीवो धारयन्नावलोकयेत्।
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता॥ ३९

श्वेत सरसोंके समान गौर वर्णका हो जाय, उसकी मृत्यु सन्निकट होती है। जिसके स्वप्नमें रथमें जुते हुए अशुभ ऊँट अथवा गधे दिखायी पड़ें और वह दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा हो, वह [व्यक्ति] जीवित नहीं रहता है। जो कानमें ध्वनि न सुन सके और नेत्रमें प्रकाश न देख सके—यदि ये दो बहुत अनिष्टकारी घटनाएँ स्वप्नमें एक साथ घटित हों, तो वह व्यक्ति मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वप्नमें गड्ढेमें गिर पड़े तथा उसका द्वार बन्द हो जाय और वह गड्ढेसे निकल न सके, उसका जीवन समाप्त हो जाता है॥ २८—३१॥

जिसके नेत्र ऊपरकी ओर उलट जायँ, स्थिर हो जायँ, रक्तवर्णके हो जायँ, बार-बार घूमते हों, मुख सूखने लगे, नाभि छिद्रयुक्त हो जाय, मूत्र अत्यधिक गर्म हो; वह संकटग्रस्त होता है अर्थात् उसकी मृत्यु आसन्न होती है॥ ३२॥

जो दिनमें अथवा रातमें किसीके द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे मारा जाय, किंतु मारनेवालेको देख न सके; वह समाप्त आयुवाला होता है और जीवित नहीं रह पाता है। जो मनुष्य स्वप्नमें अग्निमें प्रवेश करे और स्वप्नके अन्तमें इसका स्मरण न कर सके; उसका जीवन समाप्त हो जाता है। जो मनुष्य स्वप्नमें अपने श्वेत प्रावरण (ओढ़नेके वस्त्र)-को काला तथा लाल देखता है, उसकी मृत्यु सन्निकट होती है॥ ३३—३५॥

उस मृत्युकालके उपस्थित होनेपर और शरीरमें अरिष्टके सूचित होनेपर बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि खेद तथा विषादका परित्यागकर उपेक्षाभाव धारण करे॥ ३६॥

पूरब या उत्तर दिशामें जाकर पवित्र हो करके किसी समतल, अतिस्थावर (आकाशरहित), एकान्त तथा जन्तुविहीन स्थानमें पूरब या उत्तरकी ओर मुख करके स्वस्तिक आसनमें बैठ जाय और शान्त होकर आचमन करके महेश्वरको प्रणामकर शरीर, सिर तथा गरदनको सीधा करके धारणा करते हुए किसी वस्तुकी ओर न देखे, जैसे वायुरहित स्थानमें रखे दीपककी लौ विचलित नहीं होती है; इसके लिये यह उपमा बतायी

प्रागुदक्प्रवणे देशे तथा युञ्जीत शास्त्रवित्।
कामं वितर्कं प्रीतिं च सुखदुःखे उभे तथा॥ ४०
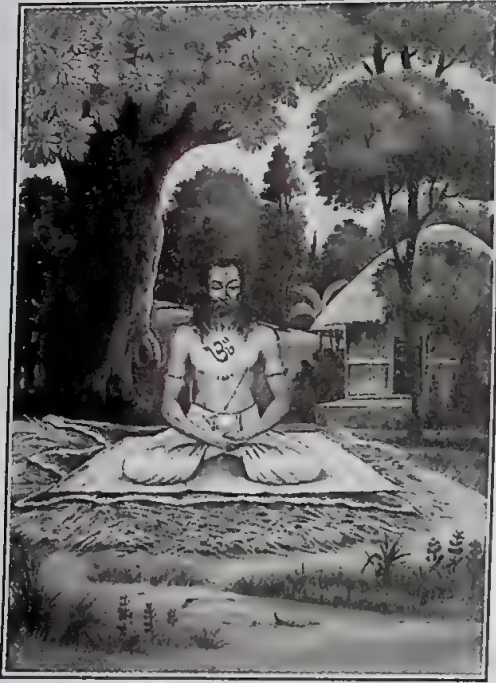
निगृह्य मनसा सर्वं शुक्लं ध्यानमनुस्मरेत्।
घ्राणे च रसने नित्यं चक्षुषी स्पर्शने तथा॥ ४१
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तत्र वक्षसि धारयेत्।
कालकर्माणि विज्ञाय समूहेष्वेव नित्यशः॥ ४२
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते।
शतमर्धशतं वापि धारणां मूर्ध्नि धारयेत्॥ ४३
खिन्नस्य धारणायोगाद्वायुरूर्ध्वं प्रवर्तते।
ततश्चापूरयेद्देहमोङ्कारेण समन्वितः॥ ४४
तथोङ्कारमयो योगी अक्षरे त्वक्षरी भवेत्।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओङ्कारप्राप्तिलक्षणम्॥ ४५
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यञ्जनं चात्र चेश्वरः।
प्रथमा विद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता॥ ४६
तृतीयां निर्गुणां चैव मात्रामक्षरगामिनीम्।
गान्धारी चैव विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा॥ ४७
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते।
यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्धनि॥ ४८
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरी भवेत्।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मलक्षणमुच्यते॥ ४९
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।
ओमित्येकाक्षरं ह्येतद् गुहायां निहितं पदम्॥ ५०
ओमित्येतत् त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च॥ ५१

गयी है॥ ३७—३९॥

शास्त्रवेत्ताको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर विस्तारवाले स्थानमें ध्यानपरायण होवे। उसे कामना, तर्क, आसक्ति तथा सुख-दुःखको मनसे नियन्त्रित करके पूर्ण विशुद्ध ध्यानमें लीन हो जाना चाहिये। काल तथा कर्मोंको सदा लिङ्गशरीरोंके अन्तर्गत समझकर नाक, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, मन, बुद्धि तथा हृदयमें धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार योगधारणको द्वादशाध्यात्म (बारह अध्यात्म) नामवाला कहा जाता है। सौ अथवा पचास धारणाको सिरमें धारण करना चाहिये। धारणाके अभ्याससे श्रान्त योगीकी वायु ऊपरकी ओर होने लगती है; तब ओंकारसे युक्त होकर शरीरको वायुसे पूर्ण करना चाहिये। इस प्रकार ओंकारमय योगी [अपनेको] ब्रह्ममें लीन करके ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ४०—४४$^1/_2$॥

[हे ऋषियो!] इसके बाद मैं ओंकारकी प्राप्तिका लक्षण बताऊँगा। इसे तीन मात्रावाला जानना चाहिये। इसमें व्यंजनसहित मकार ईश्वर (शिव) है। इसमें पहली मात्रा विद्युती (राजसी) एवं दूसरी मात्रा तामसी कही गयी है। तीसरी मकाररूप अक्षरगामिनी मात्राको सत्त्वगुणरूपवाली जानना चाहिये। इसे गान्धारी नामसे भी जानना चाहिये; क्योंकि यह गान्धारस्वरसे उत्पन्न है और पिपीलिकाकी गतिके स्पर्शके समान सूक्ष्म गतिवाली है तथा यह मूर्धदेशमें लक्षित होती है। जिस प्रकार उच्चारित किया गया ओंकार मूर्धा देशमें गमन करता है, वैसे ही ओंकारमय योगी ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर लेता है। परमेश्वरका वाचक प्रणव ही धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसके लक्ष्य हैं। तत्परतासे उनकी उपासना करनेवाले प्रमादरहित साधकके द्वारा ही वह लक्ष्य वेधा जा सकता है, इसलिये उस लक्ष्यको वेधकर बाणकी ही भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये॥ ४५—४९$^1/_2$॥

'ओम्'—यह एकाक्षर पद गुहा (बुद्धि)-में निहित है। यह 'ओम्' तीनों लोकों, [ऋक्-यजुः-साम] तीनों वेदों, तीनों अग्नियों तथा विष्णुके तीनों पदोंके स्वरूपवाला

मात्रा चार्धं च तिस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः।
तत्प्रयुक्तस्तु यो योगी तस्य सालोक्यमाप्नुयात्॥ ५२

अकारो ह्यक्षरो ज्ञेय उकारः सहितः स्मृतः।
मकारसहितोङ्कारस्त्रिमात्र इति संज्ञितः॥ ५३

अकारस्त्वेष भूर्लोक उकारो भुव उच्यते।
सव्यञ्जनो मकारस्तु स्वर्लोक इति गीयते॥ ५४

ओङ्कारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्।
भुवनाङ्गं च तत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते॥ ५५

मात्रापादो रुद्रलोको ह्यमात्रं तु शिवं पदम्।
एवं ज्ञानविशेषेण तत्पदं समुपास्यते॥ ५६

तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम्।
उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं सुखमिच्छता॥ ५७

ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम्।
ततः प्लुतवती चैव तृतीया चोपदिश्यते॥ ५८

एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः।
यावदेव तु शक्यन्ते धार्यन्ते तावदेव हि॥ ५९

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा।
अर्धं तन्मात्रमपि चेच्छृणु यत्फलमाप्नुयात्॥ ६०

मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
तेन यत्प्राप्यते पुण्यं मात्रया तदवाप्नुयात्॥ ६१

न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः।
यत्फलं प्राप्यते सम्यङ्मात्रया तदवाप्नुयात्॥ ६२

तत्र चैषा तु या मात्रा प्लुता नामोपदिश्यते।
एषा एव भवेत्कार्या गृहस्थानां तु योगिनाम्॥ ६३

एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे।
अणिमाद्ये तु विज्ञेया तस्माद्युञ्जीत तां द्विजाः॥ ६४

है; वस्तुतः अर्धमात्रासहित इसकी तीन मात्राएँ जाननी चाहिये। जो योगी इस प्रणवसे प्रेरित होता है, वह ब्रह्मका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ५०—५२॥

अकारको अक्षर जानना चाहिये; इसके साथ उकारका संयोग कहा गया है। पुनः मकार (अनुस्वार)-के योगसे बना हुआ ओंकार तीन मात्रावाला कहा गया है। अकारको भूलोक तथा उकारको भुवर्लोक कहा जाता है। व्यंजनसहित मकारको स्वर्लोक कहा जाता है। ओंकार त्रिलोकस्वरूप है, उसका सिर स्वर्ग है, सभी भुवन अंग हैं। ब्रह्मलोकको उसका पाद कहा जाता है। रुद्रलोक मात्रापादरूप है। शिवपद मात्रासे अतीत है—इस ज्ञानविशेषके द्वारा उस तुरीय पदकी उपासना की जाती है। इसलिये सदा ध्यानपरायणता होनी चाहिये। शाश्वत (स्थिर) सुख चाहनेवालेको उस मात्रातीत अक्षर [शिवतत्त्व]-की प्रयत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिये॥ ५३—५७॥

[ॐकी] पहली मात्रा ह्रस्व है और दूसरी मात्रा दीर्घ है। तीसरी मात्रा प्लुत कही जाती है। इन मात्राओंको क्रमशः यथावत् जानना चाहिये। जितना अपना सामर्थ्य हो सके, उतना मनीषी लोग इन्हें धारण कर सकते हैं। इन्द्रियों, मन तथा बुद्धिको नियन्त्रित करके यदि जो कोई आत्मामें सदा अर्धमात्राका ध्यान करता है, तो वह जिस फलको प्राप्त करता है, उसे सुनिये। जो सौ वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासमें अश्वमेध यज्ञ करता है, वह उसके द्वारा जो पुण्य पाता है, उसे इस मात्रासे प्राप्त कर लेता है। जो फल न तो कठोर तपस्यासे और न तो विपुल दक्षिणावाले यज्ञोंसे प्राप्त किया जा सकता है, वह फल इस मात्राके द्वारा सम्यक् प्राप्त हो जाता है॥ ५८—६२॥

उस प्रणवमें जो यह प्लुत नामक मात्रा बतायी गयी है, गृहस्थ योगियोंको उसका अभ्यास करना चाहिये। विशेषरूपसे आठ लक्षणोंवाले अणिमा आदि ऐश्वर्यों (सिद्धियों)-के लिये इस मात्राको जानना चाहिये; अतः हे द्विजो! उस मात्राकी साधना करनी चाहिये॥ ६३-६४॥

एवं हि योगसंयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः।
आत्मानं विद्यते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजाः॥ ६५

तस्मात्पाशुपतैर्योगैरात्मानं चिन्तयेद् बुधः।
आत्मानं जानते ये तु शुचयस्ते न संशयः॥ ६६

ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणोऽध्यात्मचिन्तकः॥ ६७

सर्वदेवमयो भूत्वा अभूतः स तु जायते।
योनिसङ्क्रमणं त्यक्त्वा याति वै शाश्वतं पदम्॥ ६८

यथा वृक्षात्फलं पक्वं पवनेन समीरितम्।
नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति॥ ६९

यत्र रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवः।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥ ७०

तस्मात् त्रिःप्रवणं योगी उपासीत महेश्वरम्।
दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्मविस्तरैः॥ ७१

एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजेत्।
स याति शिवसायुज्यं समुद्धृत्य कुलत्रयम्॥ ७२

अथवारिष्टमालोक्य मरणे समुपस्थिते।
अविमुक्तेश्वरं गत्वा वाराणस्यां तु शोधनम्॥ ७३

येन केनापि वा देहं सन्त्यजेन्मुच्यते नरः।
श्रीपर्वते वा विप्रेन्द्राः सन्त्यजेत्स्वतनुं नरः॥ ७४

स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा।
अविमुक्तं परं क्षेत्रं जन्तूनां मुक्तिदं सदा॥ ७५

सेवेत सततं धीमान् विशेषान्मरणान्तिके॥ ७६

हे द्विजो! इस प्रकार योगसम्पन्न, विशुद्ध, मनपर नियन्त्रण करनेवाला तथा जितेन्द्रिय जो व्यक्ति आत्माको जान लेता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। अतः बुद्धिमान्‌को पाशुपत योगोंके द्वारा आत्मचिन्तन करना चाहिये। जो आत्माको जान लेते हैं, वे शुद्ध हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६५-६६॥

अध्यात्मका चिन्तन करनेवाला ब्राह्मण योगज्ञानके द्वारा ऋक्-यजुः-सामकी ऋचाओं, सभी वेदों तथा उपनिषदोंका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। वह सर्वदेवमय होकर लिङ्गशरीरसे शून्य हो जाता है और पुनर्जन्मका त्याग करके शाश्वत पद (शिवपद)-को प्राप्त करता है॥ ६७-६८॥

जिस प्रकार पका हुआ फल वायुद्वारा हिलाये जानेपर वृक्षसे गिर पड़ता है, उसी प्रकार भगवान् सदाशिवके नमस्कारसे पाप नष्ट हो जाता है। रुद्रनमस्कार निश्चितरूपसे सभी कर्मोंका फल देनेवाला है; अन्य देवताओंको नमस्कार करनेसे उनका फल प्राप्त नहीं होता है, अतः मन, वचन, कर्म—इन तीनोंसे विनम्र होकर योगीको महेश्वर तथा दसों इन्द्रियोंका विस्तार करनेवाले ब्रह्माकी उपासना दसों इन्द्रियोंसे करनी चाहिये॥ ६९—७१॥

इस प्रकार ध्यानमग्न होकर जो अपने शरीरका त्याग करता है, वह तीनों कुलोंका उद्धार करके शिवसायुज्य प्राप्त करता है। अथवा [योगोपासनामें असमर्थ होनेपर] कुछ अरिष्ट देखनेपर और मृत्यु आसन्न होनेपर वाराणसीमें अविमुक्तेश्वरमें जाकर शुद्धि (प्रायश्चित्त) करनी चाहिये; जिस-किसी तरह वहाँ देहत्याग कर देना चाहिये; इससे वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। हे विप्रेन्द्रो! जो मनुष्य श्रीपर्वतपर अपने शरीरको छोड़ता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् [व्यक्ति]-को प्राणियोंको सदा मुक्ति देनेवाले उत्तम अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-में विशेषरूपसे मरणकालमें वास करना चाहिये॥ ७२—७६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अरिष्टकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अरिष्टकथन' नामक इक्यानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९१॥

बानबेवाँ अध्याय

अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका माहात्म्य तथा श्रीविश्वेश्वरपूजाविधिवर्णन

ऋषय ऊचुः

एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महामते।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्प्रभावं हि साम्प्रतम्॥ १

क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शोभनम्।
विस्तरेण यथान्यायं श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥ २

सूत उवाच

वक्ष्ये सङ्क्षेपतः सम्यक् वाराणस्याः सुशोभनम्।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं यथाह भगवान् भवः॥ ३

विस्तरेण मया वक्तुं ब्रह्मणा च महात्मना।
शक्यते नैव विप्रेन्द्रा वर्षकोटिशतैरपि॥ ४

देवः पुरा कृतोद्वाहः शङ्करो नीललोहितः।
हिमवच्छिखराद्देव्या हैमवत्या गणेश्वरैः॥ ५

वाराणसीमनुप्राप्य दर्शयामास शङ्करः।
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं वासं तत्र चकार सः॥ ६

वाराणसीकुरुक्षेत्रश्रीपर्वतमहालये।
तुङ्गेश्वरे च केदारे तत्स्थाने यो यतिर्भवेत्॥ ७

योगे पाशुपते सम्यक् दिनमेकं यतिर्भवेत्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य चरेत्पाशुपतं व्रतम्॥ ८

देवोद्याने वसेत्तत्र शर्वोद्यानमनुत्तमम्।
मनसा निर्ममे रुद्रो विमानं च सुशोभनम्॥ ९

दर्शयामास च तदा देवोद्यानमनुत्तमम्।
हैमवत्याः स्वयं देवः सनन्दी परमेश्वरः॥ १०

ऋषिगण बोले—हे महाबुद्धिमान् सूतजी! यदि वाराणसी ऐसी पुण्यदायिनी है, तो अब हमलोगोंको उसका प्रभाव कृपापूर्वक बताइये; हमलोगोंको इस अविमुक्तक्षेत्रके उत्तम माहात्म्यको विस्तारपूर्वक विधिके अनुसार सुननेकी बड़ी उत्सुकता है॥ १-२॥

सूतजी बोले—वाराणसीके अविमुक्तक्षेत्रके अति उत्तम माहात्म्यको मैं भली-भाँति संक्षेपमें बता रहा हूँ, जैसा कि भगवान् शिवने कहा था। हे विप्रेन्द्रो! मेरे तथा महात्मा ब्रह्माके द्वारा सौ करोड़ वर्षोंमें भी विस्तारसे इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ ३-४॥

प्राचीन कालमें विवाह करनेके पश्चात् नीललोहित भगवान् शंकरने हिमालयके शिखरसे देवी पार्वती तथा गणेश्वरोंके साथ वाराणसीमें पहुँचकर [अपने] अविमुक्तेश्वर

लिङ्गका दर्शन कराया और वे वहीं रहने लगे। वाराणसी, कुरुक्षेत्र, श्रीपर्वत, महालय, तुंगेश्वर और केदार—इन स्थानोंमें जो यति होता है; वह दूसरे जन्ममें पाशुपतयोग सिद्ध हो जानेपर एक ही दिनमें सम्यक् (ब्रह्मज्ञानसम्पन्न) यति हो जाता है। अतः सबकुछ छोड़कर पाशुपतव्रत करना चाहिये और वहाँ देवोद्यानमें वास करना चाहिये। शिवजीका उद्यान अत्यन्त उत्तम है। रुद्रने मनसे एक परम सुन्दर भवनका निर्माण किया है। तब नन्दीसहित देव परमेश्वरने स्वयं पार्वतीको उस अत्युत्तम देवोद्यान

क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शङ्करः।
उक्तवान् परमेशानः पार्वत्याः प्रीतये भवः॥ ११

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं
लताप्रतानादिमनोहरं बहिः।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः
सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः॥ १२

तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभि-
र्निकामपुष्पैर्बकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागशतैः सुपुष्पितै-
र्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः॥ १३

क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितै-
र्विहङ्गमैश्चानुकलप्रणादिभिः।
विनादितं सारसचक्रवाकैः
प्रमत्तदात्यूहवरैश्च सर्वतः॥ १४

क्वचिच्च केकारुतनादितं शुभं
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितम्।
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतं
मदाकुलाभिर्भ्रमराङ्गनादिभिः॥ १५

निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पकैः
क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैः।
लतोपगूढैस्तिलकैश्च गूढं
प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणम्॥ १६

प्रवृत्तनृत्तानुगताप्सरोगणं
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम्।
प्रवृत्तहारीतकुलोपनादितं
मृगेन्द्रनादाकुलमत्तमानसैः॥ १७

क्वचित्क्वचिद्गन्धकदम्बकैर्मृगै-
र्विलूनदर्भाङ्कुरपुष्पसञ्चयम्।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः
सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित्॥ १८

विटपनिचयलीनं नीलकण्ठाभिरामं
मदमुदितविहङ्गं प्राप्तनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं
नवकिसलयशोभाशोभितं प्रांशुशाखम्॥ १९

(आनन्दकानन)-को दिखाया। भगवान् परमेश्वर शंकरने पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये इस अविमुक्तक्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन किया॥ ५—११॥

वह उद्यान अनेक प्रकारके विकसित गुल्मोंसे सुशोभित था, बाहरसे लता-शाखाओं आदिसे अत्यन्त मनोहर था और विरूढ़ पुष्पोंवाले प्रियंगुसे तथा पूर्ण रूपसे खिले हुए काँटेदार केतकीवृक्षोंसे युक्त था। वह सुगन्धसे युक्त तमालके गुच्छोंसे घिरा हुआ था, अत्यधिक पुष्पोंवाले बकुलके वृक्षोंसे सभी ओरसे सुशोभित था और भौरोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान तथा खिले हुए पुष्पोंवाले सैकड़ों अशोक एवं पुन्नागके वृक्षोंसे युक्त था॥ १२-१३॥

वह उद्यान कहीं विकसित कमलोंके परागसे भूषित पक्षियों सारस, चक्रवाक तथा उन्मत्त श्रेष्ठ पपीहा नामक पक्षियोंकी मधुर ध्वनियोंसे सभी ओर विशेष रूपसे गुंजित था॥ १४॥

वह सुन्दर उद्यान कहीं-कहीं मयूरोंकी ध्वनिसे निनादित था, कहीं-कहीं कारण्डव पक्षीकी ध्वनिसे शब्दायमान था और कहीं-कहीं मत्त भ्रमर-समूहोंसे तथा मदसे आकुल भ्रमरांगनाओंसे गुंजायमान था॥ १५॥

वह उद्यान कहीं-कहीं अति सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त था, कहीं-कहीं सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए आमके वृक्षोंसे सुशोभित था, लताओंसे परिपूर्ण तिलक वृक्षोंसे समन्वित था और विद्याधरों-सिद्धों तथा चारणोंके गायनसे युक्त था॥ १६॥

वहाँ अप्सराओंका समूह नृत्य करनेमें लीन था, अनेक प्रकारके प्रसन्न पक्षी वहाँ निवास करते थे, वह उद्यान नृत्य करते हुए हारीत पक्षियोंके समुदायोंसे निनादित था। वह कहीं-कहीं सिंहोंके नादसे आकुल तथा मत्त मनवाले कस्तूरीमृग-समुदायोंसे चरे गये दर्भांकुरों तथा पुष्पोंसे सुशोभित था और कहीं-कहीं अनेकविध विकसित सुन्दर कमलोंसे युक्त सरोवरों तथा तड़ागोंसे सुशोभित था॥ १७-१८॥

वह उद्यान वृक्षोंके समुदायोंसे सम्पन्न था, नीलकण्ठ पक्षियोंके द्वारा सुन्दर प्रतीत होता था, प्रसन्न मनवाले

क्वचिच्च दन्तक्षतचारुवीरुधं
क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिनीभि-
र्निषेवितं किम्पुरुषाङ्गनाभिः ॥ २०

पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गै-
रभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकरप्रविभक्तहंसै-
र्विभ्राजितं त्रिदशदिव्यकुलैरनेकैः ॥ २१

फुल्लोत्पलाम्बुजवितानसहस्रयुक्तं
तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम् ।
मार्गान्तराकलितपुष्पविचित्रपंक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विविधैरुपेतम् ॥ २२

तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पैस्तबकभरनतप्रांशुशाखैरशोकै-
र्दोलाप्रान्तान्तलीनश्रुतिसुखजनकैर्भासितान्तं मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदूर्वाङ्कुराग्रम् ॥ २३

हंसानां पक्षवातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रचकितकदलीचाटुनृत्यन्मयूरम् ।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदवनिगतैरञ्जितक्ष्माप्रदेशं
देशे देशे विलीनप्रमुदितविलसन् मत्तहारीतवृन्दम् ॥ २४

सारङ्गैः क्वचिदुपशोभितप्रदेशं
प्रच्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः ।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभि-
र्वीणाभिः सुमधुरगीतनृत्तकण्ठम् ॥ २५

पक्षियोंसे युक्त था, [सभी ओर] ध्वनि होनेसे यह अति सुन्दर था, खिले हुए पुष्पोंवाले वृक्षोंकी शाखाओंमें विद्यमान मस्त भौरोंसे सुशोभित था, नूतन कलियोंकी सुन्दरतासे सुशोभित था और ऊँची-ऊँची शाखाओंसे युक्त था ॥ १९ ॥

वह उद्यान कहीं-कहीं दाँतोंसे क्षत की गयी सुन्दर लताओंसे सुशोभित था, कहीं-कहीं लताओंसे वेष्टित वृक्षोंसे मण्डित था और कहीं-कहीं विलासके कारण मन्थर गतिवाली किंपुरुष अंगनाओंसे सेवित था ॥ २० ॥

वह उद्यान पारावत पक्षियोंकी ध्वनिसे निनादित तथा गगनचुम्बी शृंगोंवाले वृक्षोंसे, बिखरे हुए पुष्पसमूहोंको विभक्त कर देनेवाले श्वेत वर्णके मनोहर तथा सुन्दर रूपवाले हंसोंसे और अनेक देवताओंके दिव्य कुलोंसे सुशोभित है। वह विकसित नीलकमलके हजारों वितानोंसे युक्त है, जलाशयोंसे सुशोभित देवमार्गवाला है और मार्गके मध्यमें खिले हुए विचित्र पुष्पोंकी पंक्तिसे सम्बद्ध विविध गुल्मों तथा विटपोंसे समन्वित है ॥ २१-२२ ॥

उस वनका प्रान्तभाग तुंग अग्रभागवाले, नीलपुष्प-गुच्छोंके भारसे झुकी हुई ऊँची शाखाओंवाले, वायुके द्वारा आन्दोलित होनेपर कानोंको सुख देनेवाली ध्वनिसे भासित अन्तर्भागवाले मनोहर अशोक वृक्षोंसे युक्त है। वह रात्रिमें चन्द्रकी किरणोंसे कुसुमित तिलक वृक्षोंके साथ एकताको प्राप्त है और छायामें सोकर उठे हुए हरिणके समुदायके द्वारा चरे गये दूर्वांकुरोंके अग्रभागोंसे युक्त है। वह हंसोंके पंखोंकी वायुसे हिले हुए कमल तथा स्वच्छ और विस्तीर्ण जलसे समन्वित है, सरोवरोंके तटपर उत्पन्न तथा चकित कर देनेवाले कदलीपत्रोंकी चाटुकारितामें नाचते हुए मयूरोंसे युक्त है, कहीं पृथ्वीपर मयूरोंके पंखमें स्थित चन्दासे अलंकृत भूभागसे सुशोभित है और स्थान-स्थानपर छिपे हुए प्रमुदित, मत्त तथा क्रीड़ा करते हुए हारीत पक्षिसमूहोंसे सुशोभित है ॥ २३-२४ ॥

वह उद्यान सारंग हरिणोंसे कहीं-कहीं सुशोभित भागवाला है, कहीं-कहीं विकसित पुष्पोंसे आच्छादित है। कहीं-कहीं प्रसन्नचित्त किन्नरांगनाओंके द्वारा बजायी गयी वीणाओंकी मधुर ध्वनि-गान-नृत्यसे सुशोभित है।

संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पै-
रावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात्फलनिचितैः क्वचिद्विशालै-
रुत्तुङ्गैः पनसमहीरुहैरुपेतम्॥ २६

वह कहीं लीपी हुई, परस्पर सटी हुई तथा बिखरे पुष्पोंसे सुशोभित मुनियोंकी कुटियोंसे घिरे हुए वृक्षोंसे समन्वित है। वह कहीं जड़से ही फलोंसे लदे हुए, विशाल तथा ऊँचे कटहलके वृक्षोंसे व्याप्त है॥ २५-२६॥

फुल्लातिमुक्तकलतागृहनीतसिद्ध-
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुररावरम्यम्।
रम्यं प्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं
भृङ्गावलीकवलिताम्रकदम्बपुष्पम्॥ २७

वह उद्यान पूर्णतः पुष्पित लतागृहोंमें ले जायी गयी सिद्धोंकी सिद्धांगनाओंके सुवर्णमय नूपुरकी ध्वनिसे रमणीय है, प्रियंगु वृक्षोंकी मंजरियोंपर मँडराते हुए भौंरोंसे सुशोभित है और भौंरोंकी पंक्तियोंसे आस्वादित आम्र तथा कदम्बके पुष्पोंसे समन्वित है॥ २७॥

पुष्पोत्करानिलविघूर्णितवारिरम्यं
रम्यद्विरेफविनिपातितमञ्जुगुल्मम्।
गुल्मान्तरप्रसभभीतमृगीसमूहं
वातेरितं तनुभृतामपवर्गदातृ॥ २८

वह उद्यान पुष्पसमूहोंसे सुवासित वायुसे आन्दोलित जलाशयोंसे सुशोभित है, भौंरोंके द्वारा गिराये गये सुन्दर पुष्पोंके गुच्छोंसे युक्त है, वृक्षकुंजोंमें अत्यधिक डरी हुई हिरणियोंके झुण्डोंसे मण्डित है और वायुसे प्रेरित है। वह उद्यान मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है॥ २८॥

चन्द्रांशुजालशबलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः।
चामीकरद्युतिसमैरथ कर्णिकारैः
पुष्पोत्करैरुपचितं सुविशालशाखैः॥ २९

वह चन्द्रमाकी किरणोंके जालसे विविध रंगोंवाले मनोहर तिलकवृक्षोंसे युक्त है, सिन्दूर-कुंकुम तथा कुसुम्भ रंगकी आभावाले अशोक वृक्षोंसे युक्त है और सुवर्णकी कान्तिवाले, विशाल शाखाओंवाले तथा पुष्पोंसे लदे हुए कनेर वृक्षोंसे युक्त है॥ २९॥

क्वचिदञ्जनचूर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः।
क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम्॥ ३०

उस उद्यानकी भूमि कहीं-कहीं अंजनके चूर्णके समान आभावाले, कहीं विद्रुमके समान कान्तिवाले और कहीं सुवर्णसदृश प्रभावाले पुष्पोंसे आच्छादित रहती थी॥ ३०॥

पुन्नागेषु द्विजशतविरुतं
रक्ताशोकस्तबकभरनतम्।
रम्योपान्तक्लमहरभवनं
फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम्॥ ३१

उस उद्यानमें पुन्नागके वृक्षोंपर सैकड़ों पक्षियोंकी ध्वनि होती रहती थी, गुच्छोंके भारसे रक्त अशोकवृक्ष झुके रहते थे, रम्य सीमास्थलपर थकानको हरनेवाले भवन थे और खिले हुए कमलोंपर भौंरे मँडराते रहते थे॥ ३१॥

सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं
तुहिनशिखरपुत्र्या सार्धमिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्नपुष्टै-
रुपवनमतिरम्यं दर्शयामास देव्याः॥ ३२

उस समय हिमालयपुत्री [पार्वती] और मत्त, प्रसन्न तथा शरीरसे पुष्ट प्रिय गणेश्वरोंके साथ विद्यमान सम्पूर्ण भवनोंके भर्ता शिवने अनेकविध विशाल वृक्षोंवाले अत्यन्त रम्य उपवनको देवीको दिखाया॥ ३२॥

पुष्पैर्वन्यैः शुभशुभतमैः कल्पितैर्दिव्यभूषै-
र्देवीं दिव्यामुपवनगतां भूषयामास शर्वः।
सा चाप्येनं तुहिनगिरिसुता शङ्करं देवदेवं
पुष्पैर्दिव्यैः शुभतरतमैर्भूषयामास भक्त्या॥ ३३

शिवजीने अत्यन्त सुन्दर वन्य पुष्पोंसे बनाये गये दिव्य आभूषणोंसे उपवनमें गयी हुई दिव्य देवीको सजाया और उन पार्वतीने भी अत्यन्त सुन्दर दिव्य

सम्पूज्य पूज्यं त्रिदशेश्वराणां
सम्प्रेक्ष्य चोद्यानमतीव रम्यम्।
गणेश्वरैर्नन्दिमुखैश्च सार्ध-
मुवाच देवं प्रणिपत्य देवी॥ ३४

श्रीदेव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव प्रभया परया युतम्।
क्षेत्रस्य च गुणान् सर्वान् पुनर्मे वक्तुमर्हसि॥ ३५
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य सर्वथा।
वक्तुमर्हसि देवेश देवदेव वृषध्वज॥ ३६

सूत उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वरप्रभुः।
आघ्राय वदनाम्भोजं तदाह गिरिजां हसन्॥ ३७

श्रीभगवानुवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥ ३८
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः॥ ३९
अभ्यस्यन्ति परं योगं युक्तात्मानो जितेन्द्रियाः।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगशोभिते॥ ४०
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे॥ ४१
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु।
मन्मना मम भक्तश्च मयि नित्यार्पितक्रियः॥ ४२
यथा मोक्षमवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्।
कामं ह्यत्र मृतो देवि जन्तुर्मोक्षाय कल्पते॥ ४३
एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतमं महत्।
ब्रह्मादयो विजानन्ति ये च सिद्धा मुमुक्षवः॥ ४४
अतः परमिदं क्षेत्रं परा चेयं गतिर्मम।
विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन॥ ४५

पुष्पोंसे इन देवदेव शंकरको भक्तिपूर्वक अलंकृत किया॥ ३३॥

तदनन्तर उस अत्यन्त रम्य उद्यानको देखकर नन्दी आदि गणेश्वरोंके साथ देवताओंके लिये पूज्य देव [शंकर]-की पूजा करके और उन्हें प्रणामकर देवी [पार्वती] कहने लगीं॥ ३४॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देव! आपने परम शोभासे युक्त उद्यानको मुझे दिखाया; अब आप इस क्षेत्रके समस्त गुणोंको मुझे बतानेकी कृपा करें। हे देवेश! हे देवदेव! हे वृषभध्वज! आप इस अविमुक्तक्षेत्रका माहात्म्य पूर्णरूपसे बतायें॥ ३५-३६॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तब देवीका वह वचन सुनकर देवदेव श्रेष्ठ प्रभु उनके मुखकमलको सूँघकर हँसते हुए पार्वतीसे कहने लगे॥ ३७॥

श्रीभगवान् बोले—वाराणसी नामक यह मेरा नित्य गुह्यतम क्षेत्र है; यह सर्वदा सभी प्राणियोंके मोक्षका हेतु है। हे देवि! इस [क्षेत्र]-में सिद्ध लोग सदा मेरे व्रतमें स्थित रहते हैं और मेरे लोककी अभिलाषा करनेवाले लोग नित्य अनेकविध लिङ्गोंको धारण किये रहते हैं। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त, अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित, कमल तथा उत्पलके पुष्पोंसे सम्पन्न सरोवरोंसे अलंकृत और अप्सराओं तथा गन्धर्वोंसे सेवित इस शुभ क्षेत्रमें युक्तात्मा जितेन्द्रिय लोग श्रेष्ठ योगका अभ्यास करते हैं॥ ३८—४१॥

[हे देवि!] जिस कारणसे मुझे यहाँ निवास करना अच्छा लगता है, उसे सुनो। मुझमें अपने मनको स्थिर रखनेवाला तथा मुझमें सदा सभी क्रियाएँ अर्पित करनेवाला मेरा भक्त जिस प्रकारका मोक्ष यहाँ प्राप्त करता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं। हे देवि! यहाँ मरनेवाला प्राणी मोक्ष प्राप्त करता है। मेरा यह पुर दिव्य, गुह्यसे भी गुह्यतम तथा महान् है—इसे ब्रह्मा आदि, सिद्धगण तथा मुक्तिके इच्छुक लोग जानते हैं। अतः यह परम क्षेत्र मेरी परम गति है। मैंने कभी भी इसका त्याग नहीं किया है और न तो कभी इसका त्याग करूँगा, अतः मेरा यह क्षेत्र अविमुक्त कहा गया

मम क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम्।
नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे॥ ४६
स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः।
इह सम्प्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते॥ ४७
प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात्।
प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादविमुक्तमिदं शुभम्॥ ४८
धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषच्छमः।
क्षेत्रतीर्थोपनिषदं न विदुर्बुधसत्तमाः॥ ४९
कामं भुञ्जन् स्वपन् क्रीडन् कुर्वन् हि विविधाः क्रियाः।
अविमुक्ते त्यजेत्प्राणान् जन्तुर्मोक्षाय कल्पते॥ ५०
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्।
न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना॥ ५१
तस्मात्संसेवनीयं हि अविमुक्तं हि मुक्तये।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं गतो यत्र महातपाः॥ ५२
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावितः।
जैगीषव्यगुहा श्रेष्ठा योगिनां स्थानमिष्यते॥ ५३
ध्यायन्तस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम्।
कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम्॥ ५४
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः।
इह सम्प्राप्यते मोक्षो दुर्लभोऽन्यत्र कर्हिचित्॥ ५५
तेभ्यश्चाहं प्रवक्ष्यामि योगैश्वर्यमनुत्तमम्।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च॥ ५६
कुबेरोऽत्र मम क्षेत्रे मयि सर्वार्पितक्रियः।
क्षेत्रसंसेवनादेव गणेशत्वमवाप ह॥ ५७
संवर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्तो ममैव तु।
इहैवाराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम्॥ ५८
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः।
मम भक्तो भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः॥ ५९

है॥ ४२—४५ $^{1}/_{2}$ ॥

नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार तथा पुष्करमें स्नान करने तथा वहाँ निवास करनेसे मोक्ष नहीं प्राप्त होता है, बल्कि यहाँ प्राप्त हो जाता है, अतः यह [अन्य तीर्थोंसे] विशिष्ट है। प्रयागमें अथवा यहाँपर मेरे परिग्रहके कारण मुक्ति होती है; तीर्थोंमें अग्रणी (श्रेष्ठ) प्रयागसे भी शुभ यह अविमुक्त [क्षेत्र] है॥ ४६—४८ $^{1}/_{2}$ ॥

धर्मका सारतत्त्व सत्य है, मोक्षका सारतत्त्व शम है; किंतु क्षेत्रतीर्थके सारतत्त्वको ऋषिगण भी नहीं जानते हैं॥ ४९॥

इच्छानुसार खाता हुआ, सोता हुआ, क्रीड़ा करता हुआ तथा अनेक क्रियाएँ करता हुआ भी प्राणी इस अविमुक्तक्षेत्रमें प्राणत्याग करे, तो वह मोक्ष प्राप्त करता है॥ ५०॥

यहाँ हजारों पाप करके पिशाचत्वको प्राप्त होना मनुष्योंके लिये अच्छा है, किंतु काशीपुरीको छोड़कर स्वर्गमें हजार बार इन्द्र होना अच्छा नहीं है। अतएव मुक्तिके लिये इस अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करना चाहिये। महातपस्वी महर्षि जैगीषव्यने इस क्षेत्रके माहात्म्यसे तथा मेरी भक्तिसे युक्त होकर परम सिद्धि प्राप्त की थी। महर्षि जैगीषव्यकी श्रेष्ठ गुफा योगियोंकी स्थली मानी जाती है। योगी लोग वहाँ सदा मेरा ध्यान करते हैं और वहाँ योगकी अग्नि तीव्रतासे प्रज्वलित होती रहती है। मनुष्य [यहाँ] परम कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त करता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ५१—५४॥

अव्यक्त लिङ्गोंवाले तथा सभी सिद्धान्तोंको जाननेवाले मुनिगण यहाँ मोक्ष प्राप्त करते हैं, जो अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। मैं उनके लिये अत्युत्तम योगैश्वर्य तथा अपने सायुज्यरूप अभीष्ट स्थानको बताऊँगा। मेरे क्षेत्रमें अपनी सभी क्रियाएँ मुझमें समर्पित करनेवाले कुबेरने क्षेत्रके सेवनसे ही गणेशत्वको प्राप्त किया था। हे देवि! जो ऋषि संवर्त नामक मेरे भक्त जन्म लेंगे, वे भी यहाँ मेरी आराधना करके उत्तम सिद्धि प्राप्त करेंगे। हे कमलनयने! महातपस्वी पराशरपुत्र योगी ऋषि व्यास मेरे भक्त होंगे; वेदसंहिताओंका प्रवर्तन

रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः॥ ६०
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।
उपासते महात्मानः सर्वे मामिह सुव्रते॥ ६१

करनेवाले वे मुनिश्रेष्ठ भी इस क्षेत्रमें विहार करेंगे। हे सुव्रते! देवर्षियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, देवराज इन्द्र अन्य देवता लोग तथा महात्मा—ये सब यहाँपर मेरी उपासना करते हैं॥ ५५—६१॥

अन्येऽपि योगिनो दिव्याश्छन्नरूपा महात्मनः।
अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा॥ ६२
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत्॥ ६३
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेन्द्रियाः।
व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः॥ ६४
देवदेवं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।
गता इह परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते॥ ६५
जन्मान्तरसहस्रेषु यं न योगी समाप्नुयात्।
तमिहैव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते॥ ६६

अन्य दिव्य योगी तथा महात्मा लोग भी प्रच्छन्न [गुप्त] रूप धारणकर एकाग्रचित्त होकर यहाँपर सदा मेरी उपासना करते रहते हैं। विषयोंमें आसक्त मनवाला तथा धर्मका त्याग किया हुआ मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मृत हो जाय, तो वह भी संसारमें पुनः जन्म नहीं प्राप्त करता है; तो फिर हे सुव्रते! जो ममतारहित, धीर, सत्त्वगुणमें स्थित, जितेन्द्रिय, व्रती, कर्मप्रवृत्तिसे रहित, मुझमें ध्यानरत, बुद्धिमान् तथा संगरहित हैं—वे सब [मुझ] देवदेवको प्राप्त करके मेरी कृपासे यहाँ श्रेष्ठ मोक्ष अवश्य प्राप्त करते हैं। हे सुव्रते! हजारों जन्मोंमें भी योगी जिस [मोक्ष]-को प्राप्त नहीं कर पाता है, उस उत्तम मोक्षको वह यहाँपर मेरी कृपासे प्राप्त कर लेता है॥ ६२—६६॥

गोप्रेक्षकमिदं क्षेत्रं ब्रह्मणा स्थापितं पुरा।
कैलासभवनं चात्र पश्य दिव्यं वरानने॥ ६७
गोप्रेक्षकमथागम्य दृष्ट्वा मामत्र मानवः।
न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते॥ ६८
कपिलाह्रदमित्येवं तथा वै ब्रह्मणा कृतम्।
गवां स्तन्यजतोयेन तीर्थं पुण्यतमं महत्॥ ६९
अत्रापि स्वयमेवाहं वृषध्वज इति स्मृतः।
सान्निध्यं कृतवान् देवि सदाहं दृश्यते त्वया॥ ७०

हे वरानने! पूर्वकालमें यहाँ ब्रह्माके द्वारा स्थापित किये गये कैलास भवन नामक इस गोप्रेक्षक क्षेत्रको देखो। इस गोप्रेक्षक [क्षेत्र]-में आकर मेरा दर्शन करके मनुष्य दुर्गति नहीं प्राप्त करता है और पापोंसे छूट जाता है। इसी प्रकार यहाँपर ब्रह्माने गायोंके दूधसे कपिलाह्रद नामक विशाल तथा पुण्यतम तीर्थका निर्माण किया है। यहाँ भी मैं स्वयं वृषध्वज—इस नामसे विख्यात हूँ। हे देवि! मैंने सदासे यहाँ निवास किया है; ऐसा आप देखती भी हैं॥ ६७—७०॥

भद्रतोयं च पश्येह ब्रह्मणा च कृतं ह्रदम्।
सर्वैर्देवैरहं देवि अस्मिन् देशे प्रसादितः॥ ७१
गच्छोपशममीशेति उपशान्तः शिवस्तथा।
अत्राहं ब्रह्मणानीय स्थापितः परमेष्ठिना॥ ७२
ब्रह्मणा चापि सङ्गृह्य विष्णुना स्थापितः पुनः।
ब्रह्मणापि ततो विष्णुः प्रोक्तः संविग्नचेतसा॥ ७३
मयानीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि।
तमुवाच पुनर्विष्णुर्ब्रह्माणं कुपिताननम्॥ ७४

यहाँ ब्रह्माके द्वारा निर्मित किये गये भद्रतोय नामक सरोवरको देखो। हे देवि! सभी देवताओंने 'हे ईश! शान्त हो जाइए'—ऐसा कहकर इस स्थानपर मुझ शिवको प्रसन्न किया था, तब मैं शान्त हो गया था। परमेष्ठी ब्रह्माने यहाँ लाकर मुझे स्थापित किया। ब्रह्माजीसे प्राप्त करके विष्णुने पुनः स्थापित किया। तब दुःखी चित्तवाले ब्रह्माने विष्णुसे कहा—आपने मेरे द्वारा लाये गये इस लिङ्गको क्यों स्थापित किया? तत्पश्चात् विष्णु कुपितमुखवाले उन ब्रह्मासे पुनः बोले—रुद्र

रुद्रे देवे ममात्यन्तं परा भक्तिर्महत्तरा।
मयैव स्थापितं लिङ्गं तव नाम्ना भविष्यति॥ ७५

हिरण्यगर्भ इत्येवं ततोऽत्राहं समास्थितः।
दृष्ट्वैनमपि देवेशं मम लोकं व्रजेन्नरः॥ ७६

ततः पुनरपि ब्रह्मा मम लिङ्गमिदं शुभम्।
स्थापयामास विधिवद्भक्त्या परमया युतः॥ ७७

स्वर्लीनेश्वर इत्येवमत्राहं स्वयमागतः।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न पुनर्जायते क्वचित्॥ ७८

अनन्या सा गतिस्तस्य योगिनां चैव या स्मृता।
अस्मिन्नपि मया देशे दैत्यो दैवतकण्टकः॥ ७९

व्याघ्ररूपं समास्थाय निहतो दर्पितो बली।
व्याघ्रेश्वर इति ख्यातो नित्यमत्राहमास्थितः॥ ८०

न पुनर्दुर्गतिं याति दृष्ट्वैनं व्याघ्रमीश्वरम्।
उत्पलो विदलश्चैव यौ दैत्यौ ब्रह्मणा पुरा॥ ८१

स्त्रीवध्यौ दर्पितौ दृष्ट्वा त्वयैव निहतौ रणे।
सावज्ञं कन्दुकेनात्र तस्येदं देहमास्थितम्॥ ८२

आदावत्राहमागम्य प्रस्थितो गणपैः सह।
ज्येष्ठस्थानमिदं तस्मादेतन्मे पुण्यदर्शनम्॥ ८३

देवैः समन्तादेतानि लिङ्गानि स्थापितान्यतः।
दृष्ट्वापि नियतो मर्त्यो देहभेदे गणो भवेत्॥ ८४

पित्रा ते शैलराजेन पुरा हिमवता स्वयम्।
मम प्रियहितं स्थानं ज्ञात्वा लिङ्गं प्रतिष्ठितम्॥ ८५

शैलेश्वरमिति ख्यातं दृश्यतामिह चादरात्।
दृष्ट्वैतन्मनुजो देवि न दुर्गतिमतो व्रजेत्॥ ८६

नद्येषा वरुणा देवि पुण्या पापप्रमोचनी।
क्षेत्रमेतदलङ्कृत्य जाह्नव्या सह सङ्गता॥ ८७

देवतामें मेरी अत्यधिक, श्रेष्ठ तथा महत्तर भक्ति है; मेरे द्वारा स्थापित किया गया यह लिङ्ग आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ७१—७५॥

[हे देवि!] मैं तभीसे यहाँ हिरण्यगर्भ—इस नामसे स्थित हूँ। इन देवेश्वरका दर्शन करके मनुष्य मेरा लोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् ब्रह्माने परम भक्तिसे युक्त होकर मेरे इस पवित्र लिङ्गको विधिपूर्वक पुनः स्थापित किया। मैं यहाँ स्वर्लीनेश्वर नामसे स्वयं विद्यमान हूँ; यहाँ प्राणत्याग करनेपर मनुष्य कभी जन्म नहीं लेता है। जो गति योगियोंकी कही गयी है, वह अनन्य गति उसकी भी होती है॥ ७६—७८½॥

इसी स्थानपर मैंने व्याघ्रका रूप धारण करके देवताओंके लिये कंटकस्वरूप एक अभिमानी तथा बलवान् दैत्यका वध किया था; [तभीसे] व्याघ्रेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध होकर मैं यहाँ सदा स्थित हूँ। इन व्याघ्रेश्वरका दर्शन करके मनुष्य पुनः दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है। पूर्वकालमें उत्पल तथा विदल नामक जिन दो दैत्योंके लिये ब्रह्माने स्त्रीके द्वारा वध्य होनेका विधान किया था, उन्हें अभिमानयुक्त देखकर आपने ही रणमें अवज्ञापूर्वक एक कन्दुकसे मार डाला था; आपके उसी कन्दुकका यह देह यहाँ स्थापित हो गया अर्थात् वह कन्दुक लिङ्गरूपमें परिणत होकर स्थापित हो गया॥ ७९—८२॥

प्रारम्भमें गणपोंके साथ आकर मैं यहाँ स्थित हो गया, अतः यह ज्येष्ठस्थान है; यहाँ मेरा दर्शन पुण्यप्रद है। देवताओंने यहाँ सभी ओर इन लिङ्गोंको स्थापित किया है; अतः भक्तियुक्त होकर इन लिङ्गोंका केवल दर्शन करके मनुष्य मृत्यु होनेपर [शिवका] गण हो जाता है॥ ८३-८४॥

[हे देवि!] पूर्वकालमें स्वयं तुम्हारे पिता पर्वतराज हिमालयने इसे मेरा प्रिय तथा हितकर स्थान समझकर यहाँ लिङ्गकी स्थापना की थी। शैलेश्वर नामसे प्रसिद्ध इस लिङ्गको तुम आदरपूर्वक देखो। हे देवि! इसका दर्शन करके मनुष्य दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है॥ ८५-८६॥

हे देवि! पुण्यमयी तथा पापको नष्ट करनेवाली

स्थापितं ब्रह्मणा चापि सङ्गमे लिङ्गमुत्तमम्।
सङ्गमेश्वरमित्येवं ख्यातं जगति दृश्यताम्॥ ८८
सङ्गमे देवनद्या हि यः स्नात्वा मनुजः शुचिः।
अर्चयेत्सङ्गमेशानं तस्य जन्मभयं कुतः॥ ८९
इदं मन्ये महाक्षेत्रं निवासो योगिनां परम्।
क्षेत्रमध्ये च यत्राहं स्वयं भूत्वाग्रमास्थितः॥ ९०
मध्यमेश्वरमित्येवं ख्यातः सर्वसुरासुरैः।
सिद्धानां स्थानमेतद्धि मदीयव्रतधारिणाम्॥ ९१
योगिनां मोक्षलिप्सूनां ज्ञानयोगरतात्मनाम्।
दृष्ट्वैनं मध्यमेशानं जन्म प्रति न शोचति॥ ९२

स्थापितं लिङ्गमेतत्तु शुक्रेण भृगुसूनुना।
नाम्ना शुक्रेश्वरं नाम सर्वसिद्धामरार्चितम्॥ ९३
दृष्ट्वैनं नियतः सद्यो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
मृतश्च न पुनर्जन्तुः संसारी तु भवेन्नरः॥ ९४
पुरा जम्बुकरूपेण असुरो देवकण्टकः।
ब्रह्मणो हि वरं लब्ध्वा गोमायुर्बन्धशङ्कितः॥ ९५
निहतो हिमवत्पुत्रि जम्बुकेशस्ततो ह्यहम्।
अद्यापि जगति ख्यातं सुरासुरनमस्कृतम्॥ ९६
दृष्ट्वैनमपि देवेशं सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
ग्रहैः शुक्रपुरोगैश्च एतानि स्थापितानि ह॥ ९७
पश्य पुण्यानि लिङ्गानि सर्वकामप्रदानि तु।
एवमेतानि पुण्यानि मन्निवासानि पार्वति॥ ९८
कथितानि मम क्षेत्रे गुह्यं चान्यदिदं शृणु।
चतुःक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम्॥ ९९

यह वरुणा नदी इस क्षेत्रको अलंकृत करके गंगाके साथ मिल जाती है। इनके संगमपर भी ब्रह्माके द्वारा उत्तम लिङ्ग स्थापित किया गया है; यह संगमेश्वर—इस नामसे जगत्‌में प्रसिद्ध है, तुम इसका दर्शन करो। देवनदीके संगमपर स्नान करके शुद्ध होकर जो मनुष्य संगमेश्वरकी पूजा करता है, उसे जन्मभय कहाँसे हो सकता है!॥ ८७—८९॥

[हे देवि!] मैं इसे महाक्षेत्र मानता हूँ; यह योगियोंका परम निवास-स्थान है। इस श्रेष्ठ क्षेत्रके मध्यमें मैं स्वयं प्रकट होकर अधिष्ठित हूँ। सभी सुर तथा असुर [यहाँ] मुझे मध्यमेश्वर—इस नामसे कहते हैं। मेरा व्रत धारण करनेवाले सिद्धों और मोक्षकी अभिलाषावाले तथा ज्ञानयोगमें परायण मनवाले योगियोंका यह निवास-स्थान है। इन मध्यमेश्वरका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य अपने जन्मके विषयमें चिन्ता नहीं करता है॥ ९०—९२॥

भृगुपुत्र शुक्राचार्यने भी यहाँ लिङ्गको स्थापित किया है; शुक्रेश्वर नामसे विख्यात यह लिङ्ग सभी सिद्धों तथा देवताओंसे पूजित है। नियमित होकर इनका दर्शन करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और मरनेपर पुनः संसारी जीव नहीं होता है॥ ९३-९४॥

पूर्वकालमें देवताओंके लिये कंटकस्वरूप एक दैत्य सियारके रूपमें विद्यमान था। अपने बन्धनसे सशंकित उस दैत्यने ब्रह्मासे वर प्राप्त करके गोमायु (सियार)-का रूप धारण कर लिया था। हे पार्वति! मैंने उसका वध किया और तब मैं जम्बुकेश कहा जाने लगा; आज भी लोकमें प्रसिद्ध तथा देवताओं और असुरोंसे नमस्कृत इन देवेश्वरका दर्शन करके मनुष्य समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। [हे देवि!] शुक्र आदि प्रधान ग्रहोंके द्वारा स्थापित किये गये इन पुण्यमय तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले लिङ्गोंका दर्शन करो। हे पार्वति! इस प्रकार मैंने अपने निवासस्वरूप इन पवित्र लिङ्गोंका वर्णन किया; मेरे क्षेत्रमें एक अन्य गुप्त रहस्य भी है, इसे सुनो॥ ९५—९८ $^1/_2$॥

योजनं विद्धि चार्वङ्गि मृत्युकालेऽमृतप्रदम्।
महालयगिरिस्थं मां केदारे च व्यवस्थितम्॥ १००

गणत्वं लभते दृष्ट्वा ह्यस्मिन् मोक्षो ह्यवाप्यते।
गाणपत्यं लभेद्यस्माद्यतः सा मुक्तिरुत्तमा॥ १०१

ततो महालयात्तस्मात्केदारान्मध्यमादपि।
स्मृतं पुण्यतमं क्षेत्रमविमुक्तं वरानने॥ १०२

केदारं मध्यमं क्षेत्रं स्थानं चैव महालयम्।
मम पुण्यानि भूर्लोके तेभ्यः श्रेष्ठतमं त्विदम्॥ १०३

यतः सृष्टास्त्विमे लोकास्ततः क्षेत्रमिदं शुभम्।
कदाचिन्न मया मुक्तमविमुक्तं ततोऽभवत्॥ १०४

अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं मम दृष्ट्वेह मानवः।
सद्यः पापविनिर्मुक्तः पशुपाशैर्विमुच्यते॥ १०५

शैलेशं सङ्गमेशं च स्वर्लीनं मध्यमेश्वरम्।
हिरण्यगर्भमीशानं गोप्रेक्षं वृषभध्वजम्॥ १०६

उपशान्तं शिवं चैव ज्येष्ठस्थाननिवासिनम्।
शुक्रेश्वरं च विख्यातं व्याघ्रेशं जम्बुकेश्वरम्॥ १०७

दृष्ट्वा न जायते मर्त्यः संसारे दुःखसागरे।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा महादेवो दिशः सर्वा व्यलोकयत्॥ १०८

विलोक्य संस्थिते पश्चाद्देवदेवे महेश्वरे।
अकस्मादभवत्सर्वः स देशोज्ज्वलितो यथा॥ १०९

ततः पाशुपताः सिद्धा भस्माभ्यङ्गसितप्रभाः।
माहेश्वरा महात्मानस्तथा वै नियतव्रताः॥ ११०

बहवः शतशोऽभ्येत्य नमश्चक्रुर्महेश्वरम्।
पुनर्निरीक्ष्य योगेशं ध्यानयोगं च कृत्स्नशः॥ १११

तस्थुरात्मानमास्थाय लीयमाना इवेश्वरे।
स्थितानां स तदा तेषां देवदेव उमापतिः॥ ११२

स बिभ्रत्परमां मूर्तिं बभूव पुरुषः प्रभुः।
कृत्स्नं जगदिहैकस्थं कर्तुमन्त इव स्थितः॥ ११३

यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें चार कोस अतएव एक योजनमें कहा गया है; हे सुन्दर अंगोंवाली! मृत्युकालमें इसे अमरता प्रदान करनेवाला जानो। महालय गिरिमें विराजमान और केदारपर स्थित मेरा दर्शन करके मनुष्य गणत्व प्राप्त करता है, किंतु इस क्षेत्रमें मोक्षकी प्राप्ति होती है। उन स्थानोंमें गणपति पद प्राप्त होता है और यहाँपर उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है, अतः हे वरानने! उस महालय, केदार तथा मध्यम क्षेत्र—इन सबसे पुण्यप्रद यह अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है। केदार, मध्यमक्षेत्र तथा महालय स्थान—ये तीनों पृथ्वीलोकमें मेरे पवित्र क्षेत्र हैं, किंतु यह [अविमुक्तक्षेत्र] उनसे भी अधिक श्रेष्ठ है॥ ९९—१०३॥

जबसे इन लोकोंकी सृष्टि की गयी है, तबसे मैंने इस पवित्र क्षेत्रका परित्याग कभी नहीं किया, इसलिये यह अविमुक्त [क्षेत्र] हो गया। यहाँ मेरे अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य शीघ्र ही पापोंसे मुक्त होकर पशुपाशों (जीवबन्धन)-से छूट जाता है। शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भ, ईशान, गोप्रेक्ष, वृषभध्वज, उपशान्त, ज्येष्ठस्थानमें निवास करनेवाले शिव, शुक्रेश्वर, प्रसिद्ध व्याघ्रेश्वर तथा जम्बुकेश्वरका दर्शन करके मनुष्य दुःखके सागररूप संसारमें [पुनः] जन्म नहीं लेता है॥ १०४—१०७½॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहकर महादेवने सभी दिशाओंकी ओर देखा। [दिशाओंकी ओर] देखकर देवदेव महेश्वरके बैठ जानेके अनन्तर वह सम्पूर्ण स्थान सहसा देदीप्यमान हो गया। तत्पश्चात् भस्म लगानेसे श्वेत प्रभावाले, नियम-व्रत धारण करनेवाले, पशुपतिके भक्त और महेश्वरके प्रति समर्पित बहुत-से सैकड़ों सिद्ध तथा महात्माओंने वहाँ आकर महेश्वरको प्रणाम किया; पुनः वे ध्यानयोगमें स्थित योगेश्वर [शिव]-को बार-बार देखकर अपने मनको स्थिर करके उन ईश्वरमें लीन होते हुए-से स्थित हो गये। उनके इस प्रकार स्थित होनेपर वे देवदेव उमापति परम मूर्ति धारण करते हुए विराट् पुरुषके रूपमें हो गये; वे सम्पूर्ण जगत्को एक स्थानपर एकत्र करनेके

तस्य तां परमां मूर्तिमास्थितस्य जगत्प्रभोः।
न शशाक पुनर्द्रष्टुं हृष्टरोमा गिरीन्द्रजा॥ ११४
ततस्त्वदृष्टमाकारं बुद्ध्वा सा प्रकृतिस्थितम्।
प्रकृतेर्मूर्तिमास्थाय योगेन परमेश्वरी॥ ११५
तं शशाक पुनर्द्रष्टुं हरस्य च महात्मनः।
ततस्ते लयमाधाय योगिनः पुरुषस्य तु॥ ११६
विविशुर्हृदयं सर्वे दग्धसंसारबीजिनः।
पञ्चाक्षरस्य वै बीजं संस्मरन्तः सुशोभनम्॥ ११७
सर्वपापहरं दिव्यं पुरा चैव प्रकाशितम्।
नीललोहितमूर्तिस्थं पुनश्चक्रे वपुः शुभम्॥ ११८
तं दृष्ट्वा शैलजा प्राह हृष्टसर्वतनूरुहा।
स्तुवती चरणौ नत्वा क इमे भगवन्निति॥ ११९
तामुवाच सुरश्रेष्ठस्तदा देवीं गिरीन्द्रजाम्।

श्रीभगवानुवाच

मदीयं व्रतमाश्रित्य भक्तिमद्भिर्द्विजोत्तमैः॥ १२०
यैर्यैर्योगा इहाभ्यस्तास्तेषामेकेन जन्मना।
क्षेत्रस्यास्य प्रभावेन भक्त्या च मम भामिनि॥ १२१
अनुग्रहो मया ह्येवं क्रियते मूर्तितः स्वयम्।
तस्मादेतन्महत्क्षेत्रं ब्रह्माद्यैः सेवितं तथा॥ १२२
श्रुतिमद्भिश्च विप्रेन्द्रैः संसिद्धैश्च तपस्विभिः।
प्रतिमासं तथाष्टम्यां प्रतिमासं चतुर्दशीम्॥ १२३
उभयोः पक्षयोर्देवि वाराणस्यामुपास्यते।
शशिभानूपरागे च कार्तिक्यां च विशेषतः॥ १२४
सर्वपर्वसु पुण्येषु विषुवेष्वयनेषु च।
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि वाराणस्यां तु जाह्नवीम्॥ १२५
उत्तरप्रवहां पुण्यां मम मौलिविनिःसृताम्।
पितुस्ते गिरिराजस्य शुभां हिमवतः सुताम्॥ १२६
पुण्यस्थानस्थितां पुण्यां पुण्यदिक्प्रवहां सदा।
भजन्ते सर्वतोऽभ्येत्य ये ताञ्छृणु वरानने॥ १२७

लिये प्रलयकालके समान खड़े हो गये॥ १०८—११३॥

तब पुलकित रोमोंवाली पार्वती वहाँ स्थित उन जगत्प्रभुकी उस परम मूर्तिको पुनः देखनेमें समर्थ न हो सकीं। तदनन्तर पहले कभी न देखे गये उस स्वरूपको प्रकृतिमें स्थित समझकर वे परमेश्वरी योगके द्वारा प्रकृतिका रूप धारणकर महात्मा शिवके उस स्वरूपको पुनः देखनेमें समर्थ हो गयीं॥ ११४-११५$^1/_2$॥

तब अत्यन्त सुन्दर पंचाक्षर मन्त्रका स्मरण करते हुए दग्ध लिङ्गवाले वे सभी योगी शिवके ध्यानमें लीन होकर उन [विराट्] पुरुषके हृदयमें प्रविष्ट हुए। तदनन्तर शिवजीने सभी पापोंका हरण करनेवाले, दिव्य तथा पूर्वमें प्रकट किये गये नीललोहितमूर्तिस्थ रूपको पुनः धारण किया॥ ११६—११८॥

उस रूपको देखकर पुलकित समस्त रोमोंवाली पार्वतीने स्तुति करते हुए तथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'हे भगवन्! ये कौन हैं?' तब सुरश्रेष्ठ [शिव] पर्वतराजकी उन पुत्रीसे कहने लगे॥ ११९$^1/_2$॥

श्रीभगवान् बोले—हे भामिनि! मेरे व्रतका आश्रय लेकर जिन-जिन भक्तियुक्त श्रेष्ठ द्विजोंने यहाँ योगका अभ्यास किया है, उनके एक जन्ममें ही इस क्षेत्रके प्रभाव तथा उनकी भक्तिके कारण मैं स्वयं विग्रहरूपसे इस प्रकारका अनुग्रह करता हूँ। अतः यह महान् क्षेत्र ब्रह्मा आदि [देवताओं], वेदज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणों, सिद्धों तथा तपस्वियोंके द्वारा सेवित है। हे देवि! प्रत्येक महीनेमें दोनों पक्षोंकी अष्टमी तथा चतुर्दशीको वाराणसीमें शिवकी पूजा की जाती है। सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके अवसरपर, विशेषकर कार्तिक महीनेमें, पुण्यप्रद सभी पर्वोंमें, विषुवत् एवं अयन संक्रान्तियोंमें पृथ्वीपर स्थित सभी तीर्थ वाराणसीमें विद्यमान उत्तरवाहिनी, पुण्यमयी, मेरे सिरसे निकली हुई, तुम्हारे पिता गिरिराज हिमालयकी पुत्री, पुण्यमयस्थानमें विराजमान और सदा पुण्य दिशाकी ओर प्रवाहित होनेवाली पवित्र गंगाका सेवन करते हैं। हे वरानने! सभी ओरसे आकर जो उन भागीरथीका सेवन करते हैं, उन्हें सुनो॥ १२०—१२७॥

सन्निहत्य कुरुक्षेत्रं सार्धं तीर्थशतैस्तथा।
पुष्करं निमिषं चैव प्रयागं च पृथूदकम्॥ १२८
द्रुमक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं नैमिषं तीर्थसंयुतम्।
क्षेत्राणि सर्वतो देवि देवता ऋषयस्तथा॥ १२९
सन्ध्या च ऋतवश्चैव सर्वा नद्यः सरांसि च।
समुद्राः सप्त चैवात्र देवतीर्थानि कृत्स्नशः॥ १३०
भागीरथीं समेष्यन्ति सर्वपर्वसु सुव्रते।
अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा चैव त्रिविष्टपम्॥ १३१
कालभैरवमासाद्य धूतपापानि सर्वशः।
भवन्ति हि सुरेशानि सर्वपर्वसु पर्वसु॥ १३२
पृथिव्यां यानि पुण्यानि महत्यायतनानि च।
प्रविशन्ति सदाभ्येत्य पुण्यं पर्वसु पर्वसु।
अविमुक्तं क्षेत्रवरं महापापनिबर्हणम्॥ १३३
केदारे चैव यल्लिङ्गं यच्च लिङ्गं महालये॥ १३४
मध्यमेश्वरसंज्ञं च तथा पाशुपतेश्वरम्।
शङ्कुकर्णेश्वरं चैव गोकर्णौ च तथा ह्युभौ॥ १३५
द्रुमचण्डेश्वरं नाम भद्रेश्वरमनुत्तमम्।
स्थानेश्वरं तथैकाग्रं कालेश्वरमजेश्वरम्॥ १३६
भैरवेश्वरमीशानं तथोङ्कारकसंज्ञितम्।
अमरेशं महाकालं ज्योतिषं भस्मगात्रकम्॥ १३७
यानि चान्यानि पुण्यानि स्थानानि मम भूतले।
अष्टषष्टिसमाख्यानि रूढान्यन्यानि कृत्स्नशः॥ १३८
तानि सर्वाण्यशेषाणि वाराणस्यां विशन्ति माम्।
सर्वपर्वसु पुण्येषु गुह्यं चैतदुदाहृतम्॥ १३९
तेनेह लभते जन्तुर्मृतो दिव्यामृतं पदम्।
स्नातस्य चैव गङ्गायां दृष्टेन च मया शुभे॥ १४०
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यमिष्टैः शतसहस्रशः।
सद्य एव समाप्नोति किं ततः परमाद्भुतम्॥ १४१
सर्वायतनमुख्यानि दिवि भूमौ गिरिष्वपि।
परात्परतरं देवि बुध्यस्वेति मयोदितम्॥ १४२
अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते॥ १४३

हे देवि! हे सुव्रते! कुरुक्षेत्र, पुष्कर, निमिष, प्रयाग, पृथूदक, द्रुमक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, तीर्थमय नैमिष, सभी क्षेत्र, देवता, ऋषिगण, सन्ध्या, ऋतुएँ, सभी नदियाँ, सभी सरोवर, सातों समुद्र तथा समस्त देवतीर्थ एकीभूत होकर सैकड़ों तीर्थोंसहित सभी पर्वोंके अवसरपर भागीरथीमें आकर मिल जाते हैं और हे सुरेशानि! सभी पर्वोंपर अविमुक्तेश्वर तथा त्रिविष्टपका दर्शन करके पुनः कालभैरव पहुँचकर पूर्णरूपसे पापमुक्त हो जाते हैं। पृथ्वीपर जो भी पवित्र तथा महान् आयतन (देवालय) हैं, वे समस्त पर्वोंके अवसरपर महापापोंका नाश करनेवाले क्षेत्रश्रेष्ठ पुण्यमय अविमुक्तमें आकर प्रविष्ट हो जाते हैं॥ १२८—१३३॥

केदार [खण्ड]-में स्थित लिङ्ग, महालयमें स्थित लिङ्ग, मध्यमेश्वर नामक लिङ्ग, पाशुपतेश्वर, शंकु-कर्णेश्वर, दोनों गोकर्णेश्वर, द्रुमचण्डेश्वर, अत्युत्तम भद्रेश्वर, स्थानेश्वर, एकाग्रेश्वर, कालेश्वर, अजेश्वर, भैरवेश्वर, ईशान, ओंकारेश्वर, अमरेश्वर, महाकालेश्वर, ज्योतिष, भस्मगात्र आदि तथा अन्य जो प्रसिद्ध अरसठ मेरे पवित्र स्थान इस भूतलपर हैं एवं जो अन्य सभी लोकप्रसिद्ध स्थान हैं; वे सब वाराणसीमें मेरे पास सभी पुण्यप्रद पर्वोंपर आ जाते हैं। [हे देवि!] इसी कारणसे यहाँपर मृत्युको प्राप्त प्राणी दिव्य अमृत (अमर) पद प्राप्त करता है; मैंने यह रहस्यमय बात कही है॥ १३४—१३९ $^{1}/_{2}$॥

हे शुभे! [वाराणसीमें] गंगामें स्नान करके मेरा दर्शन करनेसे मनुष्य सैकड़ों-हजारों समस्त यज्ञोंके अभीष्ट फलोंके समान फल शीघ्र ही प्राप्त करता है, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है? हे देवि! स्वर्गमें, पृथ्वीपर तथा पर्वतोंपर जो भी सभी प्रधान देवस्थान हैं, उनमें मेरे द्वारा बताये गये इस वाराणसीक्षेत्रको सबसे श्रेष्ठ जानो। ब्राह्मणोंने वेदोंमे वर्णित पापको 'अवि' शब्दसे कहा है; यह क्षेत्र उस [पाप]-से मुक्त है तथा मेरे द्वारा सेवित है, अतः इसे 'अविमुक्त' कहा जाता है॥ १४०—१४३॥

इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रः सर्वलोकमहेश्वरः।
सुदृष्टं कुरु देवेशि अविमुक्तं गृहं मम॥ १४४
इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तया सार्धमुमापतिः।
दर्शयामास भगवान् श्रीपर्वतमनुत्तमम्॥ १४५
अविमुक्तेश्वरे नित्यमवसच्च सदा तया।
सर्वगत्वाच्च सर्वत्वात्सर्वात्मा सदसन्मयः॥ १४६
श्रीपर्वतमनुप्राप्य देव्या देवेश्वरो हरः।
क्षेत्राणि दर्शयामास सर्वभूतपतिर्भवः॥ १४७

ऐसा कहकर सभी लोकोंके स्वामी भगवान् रुद्र पुनः बोले—'देवेशि! मेरे इस अविमुक्त निवास-स्थानको भली-भाँति देखो।' ऐसा कहनेके बाद उन देवीको साथ लेकर भगवान् उमापतिने उन्हें अत्युत्तम श्रीपर्वत दिखाया और वे वहाँ अविमुक्तेश्वरमें उनके साथ नित्य रहने लगे। सर्वत्र गमनकी शक्तिसे युक्त होने तथा सर्वव्यापी होनेके कारण सर्वात्मा, सत्-असत्स्वरूपवाले, देवताओंके स्वामी तथा सभी प्राणियोंके स्वामी भगवान् शिव उन देवीके साथ श्रीपर्वतपर पहुँचकर वहाँके [पवित्र] क्षेत्र दिखाने लगे॥ १४४—१४७॥

कुण्डिप्रभं च परमं दिव्यं वैश्रवणेश्वरम्।
आशालिङ्गं च देवेशं दिव्यं यच्च बिलेश्वरम्॥ १४८
रामेश्वरं च परमं विष्णुना यत्प्रतिष्ठितम्।
दक्षिणद्वारपार्श्वे तु कुण्डलेश्वरमीश्वरम्॥ १४९
पूर्वद्वारसमीपस्थं त्रिपुरान्तकमुत्तमम्।
विवृद्धं गिरिणा सार्धं देवदेवनमस्कृतम्॥ १५०
मध्यमेश्वरमित्युक्तं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अमरेश्वरं च वरदं देवैः पूर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १५१
गोचर्मेश्वरमीशानं तथेन्द्रेश्वरमद्भुतम्।
कर्मेश्वरं च विपुलं कार्यार्थं ब्रह्मणा कृतम्॥ १५२
श्रीमत्सिद्धवटं चैव सदावासो ममाव्यये।
अजेन निर्मितं दिव्यं साक्षादजबिलं शुभम्॥ १५३
तत्रैव पादुके दिव्ये मदीये च बिलेश्वरे।
तत्र शृङ्गाटकाकारं शृङ्गाटाचलमध्यमे॥ १५४
शृङ्गाटकेश्वरं नाम श्रीदेव्या तु प्रतिष्ठितम्।
मल्लिकार्जुनकं चैव मम वासमिदं शुभम्॥ १५५
रजेश्वरं च पर्याये रजसा सुप्रतिष्ठितम्।
गजेश्वरं च वैशाखं कपोतेश्वरमव्ययम्॥ १५६
कोटीश्वरं महातीर्थं रुद्रकोटिगणैः पुरा।
सेवितं देवि पश्याद्य सर्वस्मादधिकं शुभम्॥ १५७

यहाँ कुण्डिप्रभ, परम दिव्य वैश्रवणेश्वर, आशालिङ्ग, देवेश्वर, दिव्य बिलेश्वर, विष्णुके द्वारा स्थापित महान् रामेश्वर, दक्षिण द्वारके पार्श्वभागमें भगवान् कुण्डलेश्वर, पूर्व द्वारके समीप स्थित और पर्वतके साथ वृद्धिको प्राप्त सर्वदेवनमस्कृत उत्तम त्रिपुरान्तक, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मध्यमेश्वर, पूर्वकालमें देवताओंके द्वारा स्थापित वरप्रद अमरेश्वर, गोचर्मेश्वर, ईशान, अद्भुत इन्द्रेश्वर और अपने कार्यके लिये ब्रह्माके द्वारा स्थापित विशाल कर्मेश्वर लिङ्ग हैं। हे अव्यये! श्रीमत्सिद्धवट सदा मेरा निवासस्थान है। साक्षात् ब्रह्माके द्वारा निर्मित यह दिव्य तथा पवित्र अजबिल नामक स्थान है; वहीं बिलेश्वरमें मेरी दिव्य पादुकाएँ भी हैं। वहाँ शृंगाटक पर्वतके मध्य शिखरपर शृंगाटकके आकारवाला (त्रिकोण) शृंगाटकेश्वर नामक लिङ्ग है, जो श्रीदेवी (लक्ष्मी)-के द्वारा स्थापित किया गया है। यह मल्लिकार्जुन [लिङ्ग] मेरा शुभ निवासस्थान है। हे देवि! युगादिके परिवर्तित होनेपर ब्रह्माके द्वारा स्थापित रजेश्वरको, स्कन्दके द्वारा स्थापित गजेश्वरको, अविनाशी कपोतेश्वरको तथा सबसे अधिक शुभ और करोड़ों रुद्रगणोंके द्वारा सेवित कोटीश्वर नामक महातीर्थको इस समय देखो॥ १४८—१५७॥

द्विदेवकुलसंज्ञं च ब्रह्मणा दक्षिणे शुभम्।
उत्तरे स्थापितं चैव विष्णुना चैव शैलजम्॥ १५८
महाप्रमाणलिङ्गं च मया पूर्वं प्रतिष्ठितम्।
पश्चिमे पर्वते पश्य ब्रह्मेश्वरमलेश्वरम्॥ १५९

दक्षिणमें ब्रह्माके द्वारा तथा उत्तरमें विष्णुके द्वारा स्थापित किये गये पाषाणनिर्मित सुन्दर द्विजदेवकुल नामक लिङ्गको, पूर्वमें मेरे द्वारा स्थापित महाप्रमाण लिङ्ग तथा पश्चिममें पर्वतपर स्थित ब्रह्मेश्वर अलेश्वर नामक

अलङ्कृतं त्वया ब्रह्मन् पुरस्तान्मुनिभिः सह।
इत्युक्त्वा तद्गृहेऽतिष्ठदलङ्गृहमिति स्मृतम्॥ १६०

तत्रापि तीर्थं तीर्थज्ञे व्योमलिङ्गं च पश्य मे।
कदम्बेश्वरमेतद्धि स्कन्देनैव प्रतिष्ठितम्॥ १६१

गोमण्डलेश्वरं चैव नन्दाद्यैः सुप्रतिष्ठितम्।
देवैः सर्वैस्तु शक्राद्यैः स्थापितानि वरानने॥ १६२

श्रीमद्देवह्रदप्रान्ते स्थानानीमानि पश्य मे।
तथा हारपुरे देवि तव हारे निपातिते॥ १६३

त्वया हिताय जगतां हारकुण्डमिदं कृतम्।
शिवरुद्रपुरे चैव तत्कायोपरि सुव्रते॥ १६४

तत्र पित्रा सुशैलेन स्थापितं त्वचलेश्वरम्।
अलङ्कृतं मया ब्रह्मपुरस्तान्मुनिभिः सह॥ १६५

चण्डिकेश्वरकं देवि चण्डिकेशा तवात्मजा।
चण्डिकानिर्मितं स्थानमम्बिकातीर्थमुत्तमम्॥ १६६

रुचिकेश्वरकं चैव धारैषा कपिला शुभा।
एतेषु देवि स्थानेषु तीर्थेषु विविधेषु च॥ १६७

पूजयेन्मां सदा भक्त्या मया सार्धं हि मोदते।
श्रीशैले सन्त्यजेद्देहं ब्राह्मणो दग्धकिल्बिषः॥ १६८

मुच्यते नात्र सन्देहो ह्यविमुक्ते यथा शुभम्।
महास्नानं च यः कुर्याद् घृतेन विधिनैव तु॥ १६९

स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते।
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशति॥ १७०

पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम्।
स्नाप्य लिङ्गं मदीयं तु गव्येनैव घृतेन च॥ १७१

विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु वारिभिरभिषिञ्चति।
सम्मार्ज्य शतयज्ञानां स्नानेन प्रयुतं तथा॥ १७२

पूजया शतसाहस्रमनन्तं गीतवादिनाम्।
महास्नाने प्रसक्ते तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम्॥ १७३

जलेन केवलेनैव गन्धतोयेन भक्तितः।
अनुलेपनं तु तत्सर्वं पञ्चविंशत्पलेन वै॥ १७४

लिङ्गको देखो। महादेवने ब्रह्मासे कहा था—'हे ब्रह्मन्! आपने मुनियोंके साथ इसे अलंकृत किया है'—ऐसा कहकर वे रुद्र उस गृहमें स्थित हो गये, अतः उसे अलंगृह कहा गया है॥ १५८—१६०॥

हे तीर्थज्ञे! वहाँपर स्थित मेरे व्योमलिङ्ग तीर्थको भी देखो; कदम्बेश्वर नामवाला यह तीर्थ स्कन्दके द्वारा स्थापित किया गया है। नन्द आदिके द्वारा विधिवत् स्थापित गोमण्डलेश्वरको भी देखो। हे वरानने! शोभासम्पन्न देव-ह्रद (सरोवर)-के तटपर इन्द्र आदि सभी देवताओंके द्वारा स्थापित किये गये मेरे इन स्थानोंका अवलोकन करो। हे देवि! हारपुरमें तुम्हारे हारके गिर जानेपर तुमने जगत्के हितके लिये इसे हारकुण्ड बना दिया था। हे सुव्रते! शिवरुद्रपुरमें उस पर्वतपर तुम्हारे पिता सुशैलने अचलेश्वरकी स्थापना की थी, जिसे मैंने ब्रह्मा आदि ऋषियोंके साथ सुशोभित किया था। हे देवि! तुम्हारी पुत्री चण्डिकेशाने चण्डिकेश्वरको स्थापित किया है; चण्डिकाके द्वारा स्थापित यह स्थान उत्तम अम्बिकातीर्थ है। यह रुचिकेश्वर तीर्थ है; यह पवित्र कपिलधारा [तीर्थ] है॥ १६१—१६६½॥

हे देवि! जो इन विविध स्थानों तथा तीर्थोंमें भक्तिपूर्वक सदा मेरी पूजा करता है, वह मेरे साथ आनन्द करता है। जो ब्राह्मण श्रीशैलपर शरीरत्याग करता है, वह पापरहित होकर मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार अविमुक्तक्षेत्रमें शुभ फल होता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रते! जो इन स्थानोंमें विधिपूर्वक घृतसे महास्नान कराता है, वह मेरा सायुज्य प्राप्त करता है। पचीस पल [घृत]-का 'अभ्यंग' तथा सौ पलका 'स्नान' जानना चाहिये। दो हजार पलोंसे स्नान करानेको 'महास्नान' कहा गया है॥ १६७—१७०½॥

जो मेरे लिङ्गको गायके घीसे स्नान कराकर सभी पूजाद्रव्योंसे विशुद्ध करके जलसे मेरा अभिषेक करता है—इस प्रकार मार्जन करनेसे सौ यज्ञोंका, स्नान करानेसे तथा पूजा करानेसे लाख-लाख यज्ञोंका, गीतवाद्य आदिसे अर्चन करनेपर अनन्त यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। महास्नानमें रुचि रखनेवाले भक्तोंको स्नानका आठ गुना (आठ लाख यज्ञोंका) फल बताया गया है। केवल जलसे अथवा भक्ति-

शमीपुष्पं च विधिना बिल्वपत्रं च पङ्कजम्।
अन्यान्यपि च पुष्पाणि बिल्वपत्रं न सन्त्यजेत्॥ १७५

चतुर्द्रोणैर्महादेवमष्टद्रोणैरथापि वा।
दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथापि वा॥ १७६

शतद्रोणसमं पुण्यमाढकेऽपि विधीयते।
वित्तहीनस्य विप्रस्य नात्र कार्या विचारणा॥ १७७

भेरीमृदङ्गमुरजतिमिरापटहादिभिः।
वादित्रैर्विविधैश्चान्यैर्निनादैर्विविधैरपि॥ १७८

जागरं कारयेद्यस्तु प्रार्थयेच्च यथाक्रमम्।
स भृत्यपुत्रदारैश्च तथा सम्बन्धिबान्धवैः॥ १७९

सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेल्लिङ्गमुत्तमम्।
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं सुरेश्वर॥ १८०

कृतं वा न कृतं वापि क्षन्तुमर्हसि शङ्कर।
इत्युक्त्वा वै जपेद्रुद्रं त्वरितं शान्तिमेव च॥ १८१

जपित्वैवं महाबीजं तथा पञ्चाक्षरस्य वै।
स एवं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्॥ १८२

तत्फलं समवाप्नोति वाराणस्यां यथा मृतः।
तथैव मम सायुज्यं लभते नात्र संशयः॥ १८३

मत्प्रियार्थमिदं कार्यं मद्भक्तैर्विधिपूर्वकम्।
ये न कुर्वन्ति ते भक्ता न भवन्ति न संशयः॥ १८४

सूत उवाच

निशम्य वचनं देवी गत्वा वाराणसीं पुरीम्।
अविमुक्तेश्वरं लिङ्गं पयसा च घृतेन च॥ १८५

अर्चयामास देवेशं रुद्रं भुवननायकम्।
अविमुक्ते च तपसा मन्दरस्य महात्मनः॥ १८६

कल्पयामास वै क्षेत्रं मन्दरे चारुकन्दरे।
तत्रान्धकं महादैत्यं हिरण्याक्षसुतं प्रभुः॥ १८७

पूर्वक गन्धयुक्त जलसे अभ्यंग पचीस पलसे करना चाहिये॥ १७१—१७४॥

विधिपूर्वक शमीपुष्प, बिल्वपत्र, कमल तथा अन्य पुष्प अर्पित करना चाहिये; बिल्वपत्रका त्याग [कभी नहीं] करना चाहिये। महादेवकी पूजा चार अथवा आठ द्रोण पुष्पोंसे करनी चाहिये और दस अथवा आठ द्रोण नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। धनहीन ब्राह्मणके लिये एक आढक नैवेद्यका पुण्य सौ द्रोण नैवेद्यके पुण्यके समान बताया गया है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १७५—१७७॥

भेरी, मृदंग, मुरज, तिमिर, पटह आदि विविध वाद्य यन्त्रों और अन्य प्रकारके निनादोंके द्वारा [रात्रिमें] जो जागरण करे, उसे अपने सेवकों, पुत्रों, पत्नी, सम्बन्धियों तथा बन्धुओंके साथ प्रदक्षिणा करके उत्तम लिङ्गसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'हे सुरेश्वर! हे शंकर! मैंने जो भी द्रव्यहीन, क्रियाहीन तथा श्रद्धाहीन [पूजन] किया है अथवा जो नहीं भी किया गया है, उसे आप कृपा करके क्षमा करें'—यह प्रार्थना करके त्वरित रुद्र तथा शान्तिमन्त्रका जप करना चाहिये। पंचाक्षरके महाबीजका जप करके वह सभी तीर्थोंमें जाने तथा सभी यज्ञोंको करनेसे जो फल होता है, उस फलको प्राप्त कर लेता है और वाराणसीमें मरनेपर जो सायुज्य गति होती है, मेरे उस सायुज्यको प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है। [हे देवि!] मेरे भक्तोंको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये विधिपूर्वक यह सब करें। जो ऐसा नहीं करते, वे मेरे भक्त नहीं होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ १७८—१८४॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] यह वचन सुनकर वाराणसीपुरी जाकर देवीने दूध तथा घीसे अविमुक्तेश्वर लिङ्गको स्नान कराकर भुवननायक देवेश रुद्रका अर्चन किया और अविमुक्त [काशी]-में तपस्याके द्वारा मन्दर-पर्वतपर एक सुन्दर कन्दरामें महात्मा मन्दरका क्षेत्र निर्मित किया; वहाँ प्रभु [शिव]-ने हिरण्याक्षके

अनुगृह्य गणत्वं च प्रापयामास लीलया।
एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमादरात्॥ १८८

य: पठेच्छृणुयाद्वापि क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
सर्वक्षेत्रेषु यत्पुण्यं तत्सर्वं सहसा लभेत्॥ १८९

श्रावयेद्वा द्विजान् सर्वान् कृतशौचान् जितेन्द्रियान्।
स एव सर्वयज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ १९०

पुत्र महादैत्य अन्धकपर अनुग्रह करके लीलापूर्वक उसे गणत्व प्राप्त कराया था। [हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे आदरपूर्वक सम्पूर्ण कथासार कहा। जो मनुष्य इस क्षेत्रके उत्तम माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सभी क्षेत्रोंमें वासका जो पुण्य होता है, वह सब तत्काल प्राप्त कर लेता है अथवा जो सभी पवित्र तथा जितेन्द्रिय द्विजोंको सुनाता है, वह भी समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है॥ १८५—१९०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्यकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्यकथन' नामक बानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९२॥

तिरानबेवाँ अध्याय

हिरण्याक्षपुत्र अन्धकासुरका आख्यान तथा शिवानुग्रहसे उसे गाणपत्यपदकी प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

अन्धको नाम दैत्येन्द्रो मन्दरे चारुकन्दरे।
दमितस्तु कथं लेभे गाणपत्यं महेश्वरात्॥ १

वक्तुमर्हसि चास्माकं यथावृत्तं यथाश्रुतम्।

सूत उवाच

अन्धकानुग्रहं चैव मन्दरे शोषणं तथा॥ २

वरलाभमशेषं च प्रवदामि समासतः।
हिरण्याक्षस्य तनयो हिरण्यनयनोपमः॥ ३

पुरान्धक इति ख्यातस्तपसा लब्धविक्रमः।
प्रसादाद् ब्रह्मणः साक्षादवध्यत्वमवाप्य च॥ ४

त्रैलोक्यमखिलं भुक्त्वा जित्वा चेन्द्रपुरं पुरा।
लीलया चाप्रयत्नेन त्रासयामास वासवम्॥ ५

बाधितास्ताडिता बद्धाः पातितास्तेन ते सुराः।
विविशुर्मन्दरं भीता नारायणपुरोगमाः॥ ६

एवं सम्पीड्य वै देवानन्धकोऽपि महासुरः।
यदृच्छया गिरिं प्राप्तो मन्दरं चारुकन्दरम्॥ ७

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] अन्धक नामक दैत्यराजने मन्दरपर्वतकी सुन्दर गुफामें दमित होकर किस प्रकार महेश्वरसे गाणपत्य (गणपतिपद) प्राप्त किया; जिस प्रकार यह घटित हुआ और जैसा आपने सुना है, वह कृपापूर्वक हम लोगोंको बताइये॥ १$^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] मैं अन्धकपर [शिवजीके] अनुग्रह, मन्दरपर उसके दमन तथा वरप्राप्ति—यह सब संक्षेपमें बता रहा हूँ। प्राचीनकालमें हिरण्याक्षका एक पुत्र था; हिरण्याक्षके समान शक्तिशाली वह अन्धक—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसने तपस्यासे महान् पराक्रम प्राप्त कर लिया। वह साक्षात् ब्रह्माकी कृपासे [किसीसे] न मारे जानेका वर प्राप्त करके सम्पूर्ण त्रिलोकोंका उपभोग करके इन्द्रलोकको लीलापूर्वक बिना प्रयासके ही जीतकर इन्द्रको पीड़ित करने लगा॥ २—५॥

उसके द्वारा कष्ट पहुँचाये गये, पीटे गये, बाँधे गये, गिराये गये नारायण आदि वे देवता डरकर मन्दरपर्वतकी गुफामें प्रविष्ट हो गये॥ ६॥

इस प्रकार देवताओंको बहुत पीड़ित करके

ततस्ते समस्ताः सुरेन्द्राः ससाध्याः
सुरेशं महेशं पुरेत्याहुरेवम्।
द्रुतं चाल्पवीर्यप्रभिन्नाङ्गभिन्ना
वयं दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ताः॥ ८

इतीदमखिलं श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम्।
गणेश्वरैश्च भगवानन्धकाभिमुखं ययौ॥ ९

तत्रेन्द्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः
सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे।
जयेति वाचा भगवन्तमूचुः
किरीटबद्धाञ्जलयः समन्तात्॥ १०

अथाशेषासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्ततः।
भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदान्धकं तदा॥ ११

शूलेन शूलिना प्रोतं दग्धकल्मषकञ्चुकम्।
दृष्ट्वान्धकं ननादेशं प्रणम्य स पितामहः॥ १२

तन्नादश्रवणान्नेदुर्देवा देवं प्रणम्य तम्।
ननृतुर्मुनयः सर्वे मुमुदुर्गणपुङ्गवाः॥ १३

ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवाः शम्भोस्तदोपरि।
त्रैलोक्यमखिलं हर्षान्ननन्द च ननाद च॥ १४

दग्धोऽग्निना च शूलेन प्रोतः प्रेत इवान्धकः।
सात्त्विकं भावमास्थाय चिन्तयामास चेतसा॥ १५

जन्मान्तरेऽपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै।
आराधितो मया शम्भुः पुरा साक्षान्महेश्वरः॥ १६

तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते।
यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणान्ते सकृदेव वा॥ १७

स याति शिवसायुज्यं किं पुनर्बहुशः स्मरन्।
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः॥ १८

महादैत्य अन्धक भी अपनी इच्छासे सुन्दर गुफावाले मन्दरपर्वतपर पहुँच गया॥ ७॥

तब साध्योंसहित वे सभी देवगण शीघ्र ही सुरेश्वर महेशके सामने पहुँचकर इस प्रकार बोले—'दैत्यराज [अन्धक]-के शस्त्रोंसे काटे गये हमलोग छिन्न-भिन्न अंगोंवाले हो गये हैं और अल्प पराक्रमवाले हो गये हैं'॥ ८॥

तब दैत्यका अद्भुत आगमन-सम्बन्धी यह सब वृत्तान्त सुनकर भगवान् शिव अपने गणेश्वरोंके साथ अन्धकके समक्ष पहुँचे॥ ९॥

उस समय इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रधान सुरेश्वर तथा श्रेष्ठ विप्र—ये सब बद्ध अंजलियोंको सिरसे लगाकर चारों ओरसे भगवान् शिवकी जय बोलने लगे॥ १०॥

तब महादेवने सैकड़ों-करोड़ों सैनिकोंके साथ उस अन्धकके समस्त राक्षसोंको भस्म करके अन्धकको [अपने त्रिशूलसे] बींध डाला॥ ११॥

शिवके द्वारा त्रिशूलसे बींधे गये उस दग्धपापरूपी कंचुकवाले अन्धकको देखकर ब्रह्माजी ईश्वर (शिव)-को प्रणाम करके [प्रसन्नतासे] निनाद करने लगे॥ १२॥

उस ध्वनिको सुनकर सभी देवता, मुनि तथा श्रेष्ठ गण भी उन्हें प्रणाम करके हर्षध्वनि करने लगे, नाचने लगे और आनन्द मनाने लगे। देवताओंने उस समय शिवजीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की और सम्पूर्ण त्रैलोक्य हर्षके कारण आनन्दित हो उठा तथा ध्वनि करने लगा॥ १३-१४॥

प्रज्वलित अग्निवाले त्रिशूलसे बींधा हुआ प्रेततुल्य वह अन्धक सात्त्विक भावमें स्थित होकर मनमें सोचने लगा—'पूर्वजन्ममें भी शिवने मुझे दग्ध किया था, मैंने पहले साक्षात् महेश्वर शिवकी आराधना की थी, इसीलिये मैंने ऐसी गति प्राप्त की, अन्यथा ऐसा कभी न होता। जो [व्यक्ति] मृत्युकालके समय एक बार भी मनसे शिवका स्मरण करता है, वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है, तो फिर जो बहुत बार स्मरण करे, उसका कहना ही क्या! ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और इन्द्रसहित सभी

शरणं प्राप्य तिष्ठन्ति तमेव शरणं व्रजेत्।
एवं सञ्चिन्त्य तुष्टात्मा सोऽन्धकश्चान्धकार्दनम्॥ १९

सगणं शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात्।
प्रार्थितस्तेन भगवान् परमार्तिहरो हरः॥ २०

हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः।
प्रोवाच दानवं प्रेक्ष्य घृणया नीललोहितः॥ २१

तुष्टोऽस्मि वत्स भद्रं ते कामं किं करवाणि ते।
वरान् वरय दैत्येन्द्र वरदोऽहं तवान्धक॥ २२

श्रुत्वा वाक्यं तदा शम्भोर्हिरण्यनयनात्मजः।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाचेदं महेश्वरम्॥ २३

भगवन् देवदेवेश भक्तार्तिहर शङ्कर।
त्वयि भक्तिः प्रसीदेश यदि देयो वरश्च मे॥ २४

श्रुत्वा भवोऽपि वचनमन्धकस्य महात्मनः।
प्रददौ दुर्लभां श्रद्धां दैत्येन्द्राय महाद्युतिः॥ २५

गाणपत्यं च दैत्याय प्रददौ चावरोप्य तम्।
प्रणेमुस्तं सुरेन्द्राद्या गाणपत्ये प्रतिष्ठितम्॥ २६

देवता उन्हींकी शरण ग्रहण करके स्थित हैं, अतः उन्हीं [शिव]-की शरणमें जाना चाहिये'॥ १५—१८½॥

इस प्रकार विचार करके वह अन्धक अपने पुण्यगौरवके कारण गणोंसहित अन्धकका संहार करनेवाले उन ईशान शिवकी स्तुति करने लगा। तब उसके द्वारा प्रार्थित होकर बड़े-से-बड़े दुःखका हरण करनेवाले नीललोहित सुरेश्वर भगवान् हर [अपने] त्रिशूलके अग्रभागपर स्थित हिरण्याक्षपुत्र [अन्धक]-की ओर दयापूर्वक देखकर उससे बोले—'हे वत्स! मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो; मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? हे दैत्येन्द्र! वर माँगो। हे अन्धक! मैं तुम्हें वर देनेवाला हूँ'॥ १९—२२॥

तब शम्भुका वचन सुनकर हिरण्याक्षपुत्रने हर्षके कारण गद्गद वाणीमें महेश्वरसे यह कहा—'हे भगवन्! हे देवदेवेश! भक्तोंका कष्ट हरनेवाले हे शंकर! मुझपर प्रसन्न होइये। हे ईश! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर प्रदान करें कि आपमें [सदा] मेरी भक्ति हो'॥ २३-२४॥

महान् आत्मावाले अन्धकका वचन सुनकर परम कान्तिवाले शिवने [उस] दैत्येन्द्रको [अपनी] दुर्लभ भक्ति प्रदान की और उस दैत्यको त्रिशूलपरसे उतारकर उसे गणाधिप पद प्रदान किया। तब इन्द्र आदि देवताओंने गाणपत्य पदपर प्रतिष्ठित उस अन्धकको प्रणाम किया॥ २५-२६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अन्धकगाणपत्यात्मको नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'अन्धकगाणपत्यात्मक' नामक तिरानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

भगवान्‌के वाराहावतारकी कथा, हिरण्याक्षका वध तथा देवताओंद्वारा भगवान् वाराहकी स्तुति

ऋषय ऊचुः

कथमस्य पिता दैत्यो हिरण्याक्षः सुदारुणः।
विष्णुना सूदितो विष्णुर्वाराहत्वं कथं गतः॥ १
तस्य शृङ्गं महेशस्य भूषणत्वं कथं गतम्।
एतत्सर्वं विशेषेण सूत वक्तुमिहार्हसि॥ २

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! [भगवान्] विष्णुके द्वारा इस [अन्धक]-का पिता महाभयंकर दैत्य हिरण्याक्ष कैसे मारा गया, विष्णुने वाराहका रूप क्यों धारण किया और उनकी सींगने महेश्वरका भूषणत्व कैसे प्राप्त किया? यह सब आप विशेषरूपसे बताइये॥ १-२॥

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोर्भ्राता हिरण्याक्ष इति स्मृतः।
पुरान्धकासुरेशस्य पिता कालान्तकोपमः॥ ३

देवाञ्जित्वाथ दैत्येन्द्रो बद्ध्वा च धरणीमिमाम्।
नीत्वा रसातलं चक्रे बन्दीमिन्दीवरप्रभाम्॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुका भाई कहा गया है। पूर्वकालमें असुरेन्द्र अन्धकके पिता दैत्येन्द्र हिरण्याक्षने, जो कालान्तकके समान था, देवताओंको जीतकर कमलके समान प्रभावाली इस पृथ्वीको बाँधकर रसातलमें ले जाकर उसे बन्दी बना लिया॥ ३-४॥

ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः।
बाधितास्ताडिता बद्धा हिरण्याक्षेण तेन वै॥ ५

बलिना दैत्यमुख्येन क्रूरेण सुदुरात्मना।
प्रणम्य शिरसा विष्णुं दैत्यकोटिविमर्दनम्॥ ६

सर्वे विज्ञापयामासुर्धरणीबन्धनं हरेः।

तदनन्तर बलशाली, क्रूर तथा अति दुरात्मा उस महादैत्य हिरण्याक्षके द्वारा सताये गये, पीटे गये तथा बाँधे गये ब्रह्मासहित मुरझाये मुखश्रीवाले सभी देवताओंने करोड़ों दैत्योंका संहार करनेवाले विष्णुको प्रणाम करके पृथ्वीके बन्धनका वृत्तान्त उन हरिको बताया॥ ५-६१/२॥

श्रुत्वैतद्भगवान् विष्णुर्धरणीबन्धनं हरिः॥ ७

भूत्वा यज्ञवराहोऽसौ यथा लिङ्गोद्भवे तथा।
दैत्यैश्च सार्धं दैत्येन्द्रं हिरण्याक्षं महाबलम्॥ ८

दंष्ट्राग्रकोट्या हत्वैनं रेजे दैत्यान्तकृत्प्रभुः।
कल्पादिषु यथापूर्वं प्रविश्य च रसातलम्॥ ९

आनीय वसुधां देवीमङ्कस्थामकरोद् बहिः।

इस पृथ्वीबन्धनको सुनकर उन भगवान् श्रीहरि विष्णुने लिङ्ग-प्रादुर्भावके समय जैसा रूप धारण किया था, वैसा ही यज्ञवाराहका रूप धारणकर वे अपने दाँतोंके आगेके नुकीले भागसे [सभी] दैत्योंसहित महाबली दैत्यराज हिरण्याक्षका वध करके सुशोभित हुए। दैत्योंका अन्त करनेवाले उन प्रभुने जैसे पूर्व कल्पोंमें रसातलमें प्रवेश किया था, वैसे ही रसातलमें प्रवेश करके पृथ्वीदेवीको अपनी गोदमें रखकर वहाँसे लाकर पुनः बाहर स्थापित कर दिया॥ ७—९१/२॥

ततस्तुष्टाव देवेशं देवदेवः पितामहः॥ १०

शक्राद्यैः सहितो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा।
शाश्वताय वराहाय दंष्ट्रिणे दण्डिने नमः॥ ११

नारायणाय सर्वाय ब्रह्मणे परमात्मने।
कर्त्रे धर्त्रे धरायास्तु हर्त्रे देवारिणां स्वयम्।
कर्त्रे नेत्रे सुरेन्द्राणां शास्त्रे च सकलस्य च॥ १२

तत्पश्चात् देवदेव ब्रह्मा हर्षयुक्त गद्गद वाणीमें इन्द्र आदि [देवताओं]-के साथ मिलकर [उन] देवेशकी स्तुति करने लगे—शाश्वत, दंष्ट्र (दाढ़)-वाले, दण्डधारी, नारायण, सर्वमय, ब्रह्मस्वरूप, परमात्मा, पृथ्वीकी रचना तथा रक्षा करनेवाले, देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले, सुरेन्द्रोंके जनक एवं नायक और सबके नियन्ता [भगवान्] वाराहको नमस्कार है॥ १०—१२॥

त्वमष्टमूर्तिस्त्वमनन्तमूर्ति-
स्त्वमादिदेवस्त्वमनन्तवेदितः।
त्वया कृतं सर्वमिदं प्रसीद
सुरेश लोकेश वराह विष्णो॥ १३

हे सुरेश! हे लोकेश! हे वाराह! हे विष्णो! आप अष्टमूर्ति हैं, आप अनन्तमूर्ति हैं, आप आदिदेव हैं, आप सर्वज्ञ हैं; आपने ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की रचना की है; आप प्रसन्न होइये॥ १३॥

तथैकदंष्ट्राग्रमुखाग्रकोटि-
भागैकभागार्धतमेन विष्णो।
हताः क्षणात्कामददैत्यमुख्याः
स्वदंष्ट्रकोट्या सह पुत्रभृत्यैः॥ १४

हे विष्णो! आपने एक दाढ़के अग्र भागकी कोटिके एक भागके आधे भागके बराबर अपनी दाढ़की कोटिसे ही पुत्रों तथा सेवकोंसमेत कामद आदि प्रधान दैत्योंको क्षणभरमें मार डाला॥ १४॥

त्वयोद्धृता देव धरा धरेश
धराधराकार धृताग्रदंष्ट्रे।
धराधरैः सर्वजनैः समुद्रैः
सुरासुरैः सेवितचन्द्रवक्त्र॥ १५

हे देव! हे धरेश! हे पर्वताकार! हे सेवितचन्द्रवक्त्र! आपने दिग्गजों, सभी प्राणियों, समुद्रों, देवताओं तथा
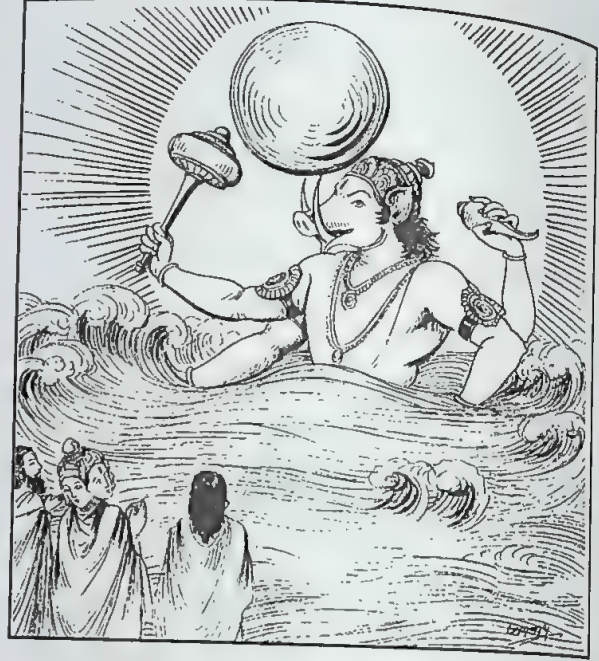
असुरोंसहित पृथ्वीको उठा लिया और उसे अपनी दाढ़के अग्र भागपर रख लिया॥ १५॥

त्वयैव देवेश विभो कृतश्च
जयः सुराणामसुरेश्वराणाम्।
अहो प्रदत्तस्तु वरः प्रसीद
वाग्देवतावारिजसम्भवाय ॥ १६

हे देवेश! हे विभो! आपने ही असुरोंपर देवताओंकी विजय दिलायी है। अहो, आपने ही सरस्वतीयुक्त ब्रह्माको वर दिया था; आप प्रसन्न हो जाइये॥ १६॥

तव रोम्णि सकलामरेश्वरा
नयनद्वये शशिरवी पदद्वये।
निहिता रसातलगता वसुन्धरा
तव पृष्ठतः सकलतारकादयः॥ १७

सभी देवता आपके रोममें स्थित हैं, चन्द्रमा तथा सूर्य आपके दोनों नेत्रोंमें विराजमान हैं, रसातलमें गयी हुई पृथ्वी आपके दोनों चरणोंमें निहित है, सम्पूर्ण तारे आदि आपकी पीठपर स्थित हैं॥ १७॥

जगतां हिताय भवता वसुन्धरा
भगवन् रसातलपुटं गता तदा।
अबलोद्धृता च भगवंस्तवैव
सकलं त्वयैव हि धृतं जगद्गुरो॥ १८

हे भगवन्! आपने रसातलमें गयी हुई अबला पृथ्वीका उद्धार जगत्के हितके लिये किया है। हे भगवन्! हे जगद्गुरो! आपने ही सबको धारण किया है॥ १८॥

इति वाक्पतिर्बहुविधैस्तवार्चनैः
प्रणिपत्य विष्णुममरैः प्रजापतिः।
विविधान् वरान् हरिमुखात्तु लब्धवान्
हरिनाभिवारिजदेहभृत्स्वयम् ॥ १९

इस प्रकार श्रीहरिके नाभिकमलसे उत्पन्न होनेवाले प्रजापति ब्रह्माने देवताओंके साथ अनेक प्रकारके स्तुतिवचनोंसे [वाराहरूपधारी] विष्णुको प्रणाम करके उन [भगवान्] विष्णुके मुखसे अनेक वर प्राप्त किये॥ १९॥

अथ तामुद्धृतां तेन धरां देवा मुनीश्वराः।
मूर्ध्न्यारोप्य नमश्चक्रुश्चक्रिणः सन्निधौ तदा॥ २०

इसके बाद सभी देवताओं तथा मुनीश्वरोंने उन विष्णुके द्वारा लायी गयी पृथ्वीको [अपने] सिरसे

अनेनैव वराहेण चोद्धृतासि वरप्रदे।
कृष्णेनाक्लिष्टकार्येण शतहस्तेन विष्णुना॥ २१

धरणि त्वं महाभोगे भूमिस्त्वं धेनुरव्यये।
लोकानां धारणी त्वं हि मृत्तिके हर पातकम्॥ २२

मनसा कर्मणा वाचा वरदे वारिजेक्षणे।
त्वया हतेन पापेन जीवामस्त्वत्प्रसादतः॥ २३

इत्युक्ता सा तदा देवी धरा देवैरथाब्रवीत्।
वराहदंष्ट्राभिन्नायां धरायां मृत्तिकां द्विजाः॥ २४

मन्त्रेणानेन योऽबिभ्रत् मूर्ध्नि पापात्प्रमुच्यते।
आयुष्मान् बलवान् धन्यः पुत्रपौत्रसमन्वितः॥ २५

क्रमाद्भुवि दिवं प्राप्य कर्मान्ते मोदते सुरैः।
अथ देवे गते त्यक्त्वा वराहे क्षीरसागरम्॥ २६

वाराहरूपमनघं चचाल च धरा पुनः।

तस्य दंष्ट्राभराक्रान्ता देवदेवस्य धीमतः॥ २७

यदृच्छया भवः पश्यन् जगाम जगदीश्वरः।
दंष्ट्रां जग्राह दृष्ट्वा तां भूषणार्थमथात्मनः॥ २८

दधार च महादेवः कूर्चान्ते वै महोरसि।
देवाश्च तुष्टुवुः सेन्द्रा देवदेवस्य वैभवम्॥ २९

धरा प्रतिष्ठिता ह्येवं देवदेवेन लीलया।
भूतानां सम्प्लवे चापि विष्णोश्चैव कलेवरम्॥ ३०

ब्रह्मणश्च तथान्येषां देवानामपि लीलया।
विभुरङ्गविभागेन भूषितो न यदि प्रभुः॥ ३१

कथं विमुक्तिर्विप्राणां तस्माद्दंष्ट्री महेश्वरः॥ ३२

लगाकर चक्रधारी विष्णुके सामने ही उसे नमस्कार किया। [वे बोले—] हे वरप्रदे! सहज क्रिया-कलापोंवाले तथा सैकड़ों हाथोंवाले वाराहरूपधारी इन विष्णुने ही आपका उद्धार किया है। हे धरणि! हे महाभोगे! आप भूमि हैं। हे अव्यये! आप धेनु हैं। हे मृत्तिके! आप लोकोंको धारण करनेवाली हैं; [हमारे] पापको दूर कीजिये। हे वरदे! हे कमलनयने! हमलोगोंद्वारा मन-वचन-कर्मसे किये गये पाप आपके द्वारा नष्ट किये जानेपर ही हमलोग आपकी कृपासे जीते हैं॥ २०—२३॥

देवताओंके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन पृथ्वीदेवीने कहा—'हे द्विजो! जो [व्यक्ति] वाराहके दंष्ट्रासे खोदी गयी पृथ्वीकी मिट्टीको [पूर्वोक्त] इस मन्त्रसे अपने सिरपर धारण करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है; वह क्रमसे पृथ्वीलोकमें दीर्घजीवी, बलवान्, धन्य और पुत्र-पौत्रसे युक्त होता है, पुनः प्रारब्ध कर्मके क्षीण होनेपर स्वर्ग प्राप्त करके देवताओंके साथ आनन्द मनाता है'॥ २४-२५½॥

इसके बाद निष्पाप वाराहरूपको त्यागकर भगवान् वाराहके क्षीरसागर चले जानेपर उन बुद्धिमान् देवदेवके दाढ़ोंके भारसे आक्रान्त पृथ्वी एक बार पुनः हिल गयी। संयोगवश यह सब देखते हुए जगत्के स्वामी शिव वहाँ पहुँच गये और उन्होंने उस दंष्ट्राको देखकर उसे अपने भूषणके लिये ग्रहण कर लिया। महादेवने उसे अपने श्मश्रु (दाढ़ी)-के केशके समीप विशाल वक्षःस्थलपर धारण कर लिया॥ २६—२८½॥

तब इन्द्रसहित सभी देवगण देवदेव [शिव]-के ऐश्वर्यकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार देवदेवने लीलापूर्वक पृथ्वीको प्रतिष्ठित किया। महाप्रलयकालमें भी विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंके कलेवरको देखकर यदि सर्वव्यापक प्रभु [शिव] भक्तवात्सल्यके कारण [विष्णुके] अंगके अंश [उस द्रंष्टा]-से विभूषित न होते, तो विप्रोंकी मुक्ति कैसे होती; अतः महेश्वर दंष्ट्री हैं॥ २९—३२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वाराहप्रादुर्भावो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥ ९४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'वाराहप्रादुर्भाव' नामक चौरानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९४॥

पंचानबेवाँ अध्याय

नृसिंहावतारके सन्दर्भमें भक्त प्रह्लादकी कथा, हिरण्यकशिपुका वध, भगवान् नृसिंहके उग्ररूपको देखकर देवताओंका भयभीत होकर भगवान् महेश्वरकी स्तुति करना, महेश्वरके शरभावतारका प्राकट्य

ऋषय ऊचुः

नृसिंहेन हतः पूर्वं हिरण्याक्षाग्रजः श्रुतम्।
कथं निषूदितस्तेन हिरण्यकशिपुर्वद॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] यह सुना गया है कि पूर्वकालमें हिरण्याक्षका ज्येष्ठ भ्राता हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंहद्वारा मारा गया था; आप [हमलोगोंको] बतायें कि उनके द्वारा उसका वध कैसे किया गया?॥ १॥

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लाद इति विश्रुतः।
धर्मज्ञः सत्यसम्पन्नस्तपस्वी चाभवत्सुधीः॥ २

जन्मप्रभृति देवेशं पूजयामास चाव्ययम्।
सर्वज्ञं सर्वगं विष्णुं सर्वदेवभवोद्भवम्॥ ३

तमादिपुरुषं भक्त्या परब्रह्मस्वरूपिणम्।
ब्रह्मणोऽधिपतिं सृष्टिस्थितिसंहारकारणम्॥ ४

सूतजी बोले—हिरण्यकशिपुका पुत्र 'प्रह्लाद' इस नामसे विख्यात था। वह धर्मज्ञ, सत्यनिष्ठ, तपस्वी तथा बुद्धिमान् था। वह जन्मसे ही अविनाशी, सर्वज्ञ, सभी देवताओंकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप, आदिपुरुष, परब्रह्मरूप, ब्रह्माके अधिपति और सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले उन देवेश्वर विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करता था॥ २—४॥

सोऽपि विष्णोस्तथाभूतं दृष्ट्वा पुत्रं समाहितम्।
नमो नारायणायेति गोविन्देति मुहुर्मुहुः॥ ५

स्तुवन्तं प्राह देवारिः प्रदहन्निव पापधीः।
न मां जानासि दुर्बुद्धे सर्वदैत्यामरेश्वरम्॥ ६

प्रह्लाद वीर दुष्पुत्र द्विजदेवार्तिकारणम्।
को विष्णुः पद्मजो वापि शक्रश्च वरुणोऽथ वा॥ ७

वायुः सोमस्तथेशानः पावको मम यः समः।
मामेवार्चय भक्त्या च स्वल्पं नारायणं सदा॥ ८

प्रह्लाद जीविते वाञ्छा तवैषा शृणु चास्ति चेत्।

अपने पुत्रको एकाग्रचित्त होकर विष्णुकी उस प्रकारकी भक्तिमें तत्पर और बार-बार **'नमो नारायणाय, नमो गोविन्दाय'**—इस प्रकार स्तुति करते हुए देखकर उस पापबुद्धि तथा देवशत्रु हिरण्यकशिपुने हँसते हुए कहा—हे दुर्बुद्धे! हे प्रह्लाद! हे वीर! हे दुष्पुत्र! सभी दैत्यों तथा देवताओंके स्वामी और ब्राह्मणों तथा देवताओंको दुःख देनेवाले मुझ [हिरण्यकशिपु]-को नहीं जानते हो। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, वायु, चन्द्र, ईशान अथवा अग्नि—इनमें ऐसा कौन है, जो मेरे समान है; अतः तुम नारायणको पूर्णरूपसे छोड़कर सदा भक्तिपूर्वक मेरी ही पूजा करो। हे प्रह्लाद! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो, तो [ध्यान देकर] इस बातको सुन लो॥ ५—८ $^{1}/_{2}$॥

श्रुत्वापि तस्य वचनं हिरण्यकशिपोः सुधीः॥ ९

प्रह्लादः पूजयामास नमो नारायणेति च।
नमो नारायणायेति सर्वदैत्यकुमारकान्॥ १०

अध्यापयामास च तां ब्रह्मविद्यां सुशोभनाम्।
दुर्लङ्घ्यां चात्मनो दृष्ट्वा शक्रादिभिरपि स्वयम्॥ ११

उस हिरण्यकशिपुका वचन सुनकर भी बुद्धिमान् प्रह्लाद [विष्णुकी] पूजा करता रहा और **'नमो नारायणाय, नमो नारायणाय'**—ऐसा उच्चारण करता रहा। उसने सभी दैत्यकुमारोंको [नारदोपदिष्ट] वह उत्तम ब्रह्मविद्या भी सिखायी। तब इन्द्र आदिके द्वारा भी दुर्लंघ्य अपनी

पुत्रेण लङ्घितामाज्ञां हिरण्यः प्राह दानवान्।
एतं नानाविधैर्वध्यं दुष्पुत्रं हन्तुमर्हथ॥ १२

आज्ञाको स्वयं अपने पुत्रके द्वारा उल्लंघित देखकर हिरण्यकशिपुने दानवोंसे कहा—इस वधयोग्य कुपुत्रको अनेकविध उपायोंसे मार डालो॥ ९—१२॥

एवमुक्तास्तदा तेन दैत्येन सुदुरात्मना।
निजघ्नुर्देवदेवस्य भृत्यं प्रह्लादमव्ययम्॥ १३

तब उस दुरात्मा दैत्यके कहनेपर वे दानव देवदेव
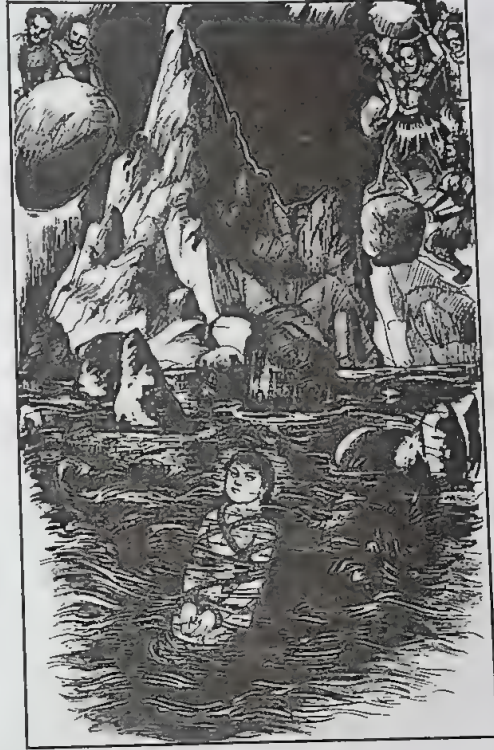
[विष्णु]-के नाशरहित भक्त प्रह्लादको मारने लगे॥ १३॥

तत्र तत्प्रतिकृतं तदा सुरै-
दैंत्यराजतनयं द्विजोत्तमाः।
क्षीरवारिनिधिशायिनः प्रभो-
र्निष्फलं त्वथ बभूव तेजसा॥ १४

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस समय असुरोंके द्वारा दैत्यराज [हिरण्यकशिपु]-के पुत्रके प्रति किया गया समस्त उपाय क्षीरसागरमें शयन करनेवाले विष्णुके तेजसे निष्फल (व्यर्थ) हो गया॥ १४॥

तदाथ गर्वभिन्नस्य हिरण्यकशिपोः प्रभुः।
तत्रैवाविरभूद्धन्तुं नृसिंहाकृतिमास्थितः॥ १५

जघान च सुतं प्रेक्ष्य पितरं दानवाधमम्।
बिभेद तत्क्षणादेव करजैर्निशितैः शतैः॥ १६

ततो निहत्य तं दैत्यं सबान्धवमघापहः।
पीडयामास दैत्येन्द्रं युगान्ताग्निरिवापरः॥ १७

नादैस्तस्य नृसिंहस्य घोरैर्वित्रासितं जगत्।
आब्रह्मभुवनाद्विप्राः प्रचचाल च सुव्रताः॥ १८

तत्पश्चात् अभिमानके मदमें चूर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये विष्णुजी नृसिंहरूप धारण करके वहींपर प्रकट हुए और उन्होंने पुत्र [प्रह्लाद]-की ओर देखकर उसके पिता दानवाधम हिरण्यकशिपुका वध कर दिया। उन्होंने उसी क्षण अपने तीक्ष्ण सैकड़ों नाखूनोंसे उसे विदीर्ण कर दिया। इसके बाद पापोंका नाश करनेवाले वे विष्णु बान्धवोंसहित उस दैत्यका वध करके पुनः उस दैत्येन्द्रको पीसने लगे; वे उस समय प्रलयकालीन दूसरी अग्निके समान प्रतीत हो रहे थे। हे सुव्रतो! हे विप्रो! उस समय ब्रह्मलोकपर्यन्त

दृष्ट्वा सुरासुरमहोरगसिद्धसाध्या-
स्तस्मिन् क्षणे हरिविरिञ्चिमुखा नृसिंहम्।
धैर्यं बलं च समवाप्य ययुर्विसृज्य
आदिङ्मुखान्तमसुरक्षणतत्पराश्च ॥ १९

सम्पूर्ण जगत् उन नृसिंहके गर्जनसे भयभीत हो गया और काँपने लगा॥ १५—१८॥

उस समय नृसिंहको देखकर अपने प्राणकी रक्षामें तत्पर सभी देवता, दानव, नाग, सिद्ध, साध्य, ब्रह्मा-विष्णु आदि भी किसी तरह धैर्य तथा बल धारणकर उस स्थानको छोड़कर सभी दिशाओंमें भाग गये॥ १९॥

ततस्तैर्गतैः सैष देवो नृसिंहः
सहस्राकृतिः सर्वपात्सर्वबाहुः।
सहस्रेक्षणः सोमसूर्याग्निनेत्र-
स्तदा संस्थितः सर्वमावृत्य मायी॥ २०

तदनन्तर उनके चले जानेपर मायामय ये भगवान् नृसिंह हजाररूपवाले, सभी ओर पैरोंवाले, सभी ओर भुजाओंवाले, हजार नेत्रोंवाले, चन्द्र-सूर्य-अग्निरूप नेत्रोंवाले होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त करके स्थित हो गये॥ २०॥

तं तुष्टुवुः सुरश्रेष्ठा लोकालोकाचले स्थिताः।
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च सयमाः समरुद्गणाः॥ २१

परात्परतरं ब्रह्म तत्त्वातत्त्वतमं भवान्।
ज्योतिषां तु परं ज्योतिः परमात्मा जगन्मयः॥ २२

स्थूलं सूक्ष्मं सुसूक्ष्मं च शब्दब्रह्ममयः शुभः।
वागतीतो निरालम्बो निर्द्वन्द्वो निरुपप्लवः॥ २३

यज्ञभुग्यज्ञमूर्तिस्त्वं यज्ञिनां फलदः प्रभुः।
भवान् मत्स्याकृतिः कौर्ममास्थाय जगति स्थितः॥ २४

वाराहीं चैव तां सैंहीमास्थायेह व्यवस्थितः।
देवानां देवरक्षार्थं निहत्य दितिजेश्वरम्॥ २५

द्विजशापच्छलेनैवमवतीर्णोऽसि लीलया।
न दृष्टं यत्त्वदन्यं हि भवान् सर्वं चराचरम्॥ २६

भवान् विष्णुर्भवान् रुद्रो भवानेव पितामहः।
भवानादिर्भवानन्तो भवानेव वयं विभो॥ २७

भवानेव जगत्सर्वं प्रलापेन किमीश्वर।
मायया बहुधा संस्थमद्वितीयमयं प्रभो॥ २८

तब लोकालोक [मर्यादा] पर्वतपर एकत्र हुए श्रेष्ठ देवता ब्रह्मा, साध्यगण, यम तथा मरुद्गणोंके साथ उनकी स्तुति करने लगे—आप परसे भी परतर ब्रह्म हैं, तत्त्वसे भी तत्त्वतम हैं, नक्षत्रोंकी परम ज्योति हैं, परमात्मा हैं, जगन्मय हैं, स्थूल-सूक्ष्म तथा अत्यन्त सूक्ष्म हैं, शब्दब्रह्ममय हैं, परम पवित्र हैं, वाणीसे परे हैं, आश्रयरहित हैं, [सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि] द्वन्द्वोंसे रहित हैं और उपद्रवशून्य हैं। आप प्रभु यज्ञभोक्ता हैं, आप यज्ञकी मूर्ति हैं, आप यज्ञकर्ताओंको फल प्रदान करनेवाले हैं, आपने मत्स्यरूप धारण किया, आप कूर्म (कच्छप)-का रूप धारण करके जगत्में स्थित हैं। देवताओंकी रक्षाके लिये वाराह तथा नृसिंहका रूप धारणकर दैत्येन्द्रका वध करके आप इस लोकमें प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकार भृगुमुनिके शापके बहाने अपनी लीलासे आपने अवतार ग्रहण किया। आपसे पृथक् अन्य कुछ भी नहीं देखा गया है; आप चर-अचर सब कुछ हैं। हे विभो! आप ही विष्णु हैं, आप ही रुद्र हैं, आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही आदि हैं, आप ही अन्त हैं और आप ही हम सब हैं। आप [स्वयं] सम्पूर्ण जगत् हैं; हे ईश्वर! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन? हे प्रभो! अद्वितीय (एक) होते हुए भी [अपनी] मायासे अनेक रूपोंमें स्थित आप [प्रभु]-

स्तोष्यामस्त्वां कथं भासि देवदेव मृगाधिप।
स्तुतोऽपि विविधैः स्तुत्यैर्भावैर्नानाविधैः प्रभुः॥ २९

न जगाम द्विजाः शान्तिं मानयन् योनिमात्मनः।
यो नृसिंहस्तवं भक्त्या पठेद्वार्थं विचारयेत्॥ ३०

श्रावयेद्वा द्विजान् सर्वान् विष्णुलोके महीयते।
तदन्तरे शिवं देवाः सेन्द्राः सब्रह्मकाः प्रभुम्॥ ३१

सम्प्राप्य तुष्टुवुः सर्वं विज्ञाप्य मृगरूपिणः।
ततो ब्रह्मादयस्तूर्णं संस्तूय परमेश्वरम्॥ ३२

आत्मत्राणाय शरणं जग्मुः परमकारणम्।
मन्दरस्थं महादेवं क्रीडमानं सहोमया॥ ३३

सेवितं गणगन्धर्वैः सिद्धैरप्सरसां गणैः।
देवताभिः सह ब्रह्मा भीतभीतः सगद्गदम्।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ३४

ब्रह्मोवाच

नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्र मन्यवे।
नमः शिवाय रुद्राय शङ्कराय शिवाय ते॥ ३५

उग्रोऽसि सर्वभूतानां नियन्तासि शिवोऽसि नः।
नमः शिवाय शर्वाय शङ्करायार्तिहारिणे॥ ३६

मयस्कराय विश्वाय विष्णवे ब्रह्मणे नमः।
अन्तकाय नमस्तुभ्यमुमायाः पतये नमः॥ ३७

हिरण्यबाहवे साक्षाद्धिरण्यपतये नमः।
शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय नमो नमः॥ ३८

सदसद्व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते।
नित्याय विश्वरूपाय जायमानाय ते नमः॥ ३९

जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमो नमः।
रुद्राय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे॥ ४०

की स्तुति हम लोग कैसे करें? हे देवदेव! हे नृसिंह! आप बहुत देदीप्यमान हो रहे हैं॥ २१—२८½॥

हे द्विजो! विविध भावोंसे युक्त नानाविध स्तुतियोंसे प्रार्थना किये जानेपर भी वे प्रभु अपने सिंहरूपका सम्मान करते हुए शान्त नहीं हुए। जो नृसिंह-स्तुतिको भक्तिपूर्वक पढ़ता है अथवा इसके अर्थका चिन्तन करता है अथवा सभी द्विजोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २९-३०½॥

तत्पश्चात् इन्द्र तथा ब्रह्मासहित सभी देवता प्रभु शिवका ध्यान करके नृसिंहरूपधारी विष्णुके विषयमें सब कुछ कहकर उनकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर परमेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा आदि [देवता] अपनी रक्षाके लिये मन्दर पर्वतपर स्थित, उमाके साथ विहार करते हुए और गन्धर्वों, सिद्धों-अप्सराओंसे सेवित परमकारण महादेवकी शरणमें गये। भयभीत ब्रह्माजी देवताओंके साथ दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर गद्गद वाणीमें परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ३१—३४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे शिव!] आप कालान्तकको नमस्कार है। हे रुद्र! आप क्रोधरूपको नमस्कार है। आप मोक्षरूप रुद्र, शंकर तथा शिवको नमस्कार है। आप उग्र हैं, सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं और हम भक्तोंके लिये कल्याणकारक हैं। दुःखका नाश करनेवाले शिव, शर्व तथा शंकरको नमस्कार है॥ ३५-३६॥

आप सुखकर, विश्वरूप, विष्णु, ब्रह्माको नमस्कार है। आप अन्तक (संहारकर्ता)-को नमस्कार है; उमापतिको नमस्कार है। सुवर्णमय बाहुवाले तथा साक्षात् हिरण्यपतिको बार-बार नमस्कार है; शर्व, सर्वरूप तथा पुरुषको बार-बार नमस्कार है। सत्-असत्‌रूपसे रहित और महत्तत्त्वके उत्पादक आपको नमस्कार है; आप नित्य, विश्वरूप तथा उत्पन्न होनेवालेको नमस्कार है। संसारमें अनेक रूपोंमें अवतार लेनेवाले और प्रभूतको नमस्कार है; आप रुद्र, नीलरुद्र, कद्रुद्र नामक मन्त्ररूप तथा प्रचेताको नमस्कार है॥ ३७—४०॥

कालाय कालरूपाय नमः कालाङ्गहारिणे।
मीढुष्टमाय देवाय शितिकण्ठाय ते नमः॥ ४१

महीयसे नमस्तुभ्यं हन्त्रे देवारिणां सदा।
ताराय च सुताराय तारणाय नमो नमः॥ ४२

हरिकेशाय देवाय शम्भवे परमात्मने।
देवानां शम्भवे तुभ्यं भूतानां शम्भवे नमः॥ ४३

आप काल तथा कालरूपको नमस्कार है; आप कालविनाशक, मीढुष्टम तथा भगवान् शितिकण्ठको नमस्कार है। आप महान्को तथा सदा देवशत्रुओंके संहार-कर्ताको नमस्कार है; तार (प्रणवरूप), सुतार तथा उद्धारकर्ताको नमस्कार है। हरितवर्णके केशवाले, परमात्मस्वरूप, देवताओंके कल्याणकारक तथा [समस्त] प्राणियोंके कल्याणकारक आप भगवान् शम्भुको नमस्कार है॥ ४१—४३॥

शम्भवे हैमवत्याश्च मन्यवे रुद्ररूपिणे।
कपर्दिने नमस्तुभ्यं कालकण्ठाय ते नमः॥ ४४

हिरण्याय महेशाय श्रीकण्ठाय नमो नमः।
भस्मदिग्धशरीराय दण्डमुण्डीश्वराय च॥ ४५

नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमो नमः।
नम उग्रत्रिशूलाय उग्राय च नमो नमः॥ ४६

भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय ते।
अग्रेवधाय वै भूत्वा नमो दूरेवधाय च॥ ४७

आप पार्वतीके कल्याणकारक, यज्ञरूप, रुद्ररूप तथा कपर्दीको नमस्कार है; आप कालकण्ठको नमस्कार है। सुवर्णमय वर्णवाले महेशको तथा श्रीकण्ठको नमस्कार है। भस्मसे लिप्त शरीरवाले तथा दण्ड मुण्डीश्वरको नमस्कार है। ह्रस्व (लघु), दीर्घ तथा वामनको नमस्कार है। भयानक त्रिशूल धारण करनेवाले तथा उग्र स्वभाववालेको बार-बार नमस्कार है। आप भयंकर स्वरूपवाले तथा भयानक कर्ममें रत रहनेवाले भीमको नमस्कार है। सबसे आगे होकर [शत्रुओंका] वध करनेवाले और दूर स्थानसे भी वध करनेवाले [शिव]-को नमस्कार है॥ ४४—४७॥

धन्विने शूलिने तुभ्यं गदिने हलिने नमः।
चक्रिणे वर्मिणे नित्यं दैत्यानां कर्मभेदिने॥ ४८

सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय ते नमः।
वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः॥ ४९

अघोररूपाय विकटाय विकटशरीराय ते नमः।
पुरुषरूपाय पुरुषैकतत्पुरुषाय वै नमः॥ ५०

पुरुषार्थप्रदानाय पतये परमेष्ठिने।
ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमो नमः॥ ५१

आप धनुर्धारी, शूलधारी, गदाधारी, हलधारी, चक्रधारी, कवचधारी तथा [गजाननरूपसे] सदा दैत्योंके कर्मका नाश करनेवाले [शिव]-को नमस्कार है। आप सद्यमन्त्ररूप, सद्यरूप, सद्योजात अवतार स्वरूपको नमस्कार है। वाम-मन्त्ररूप, सुन्दररूपवाले तथा सुन्दर नेत्रवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। अघोरमन्त्ररूप, विकट रूपवाले तथा विकट शरीरवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। पुरुषरूपवाले तथा पुरुषोंमें एकमात्र तत्पुरुष (उत्तम पुरुष) आपको नमस्कार है। पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले, सबके स्वामी, परमेष्ठी तथा ईशानमन्त्ररूप आप शिवको नमस्कार है। आप ईश्वरको बार-बार नमस्कार है। ब्रह्मरूपवाले तथा साक्षात् सगुण शिवरूपवाले आप ब्रह्मको नमस्कार है॥ ४८—५१$^{1}/_{2}$॥

ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमः साक्षाच्छिवाय ते।
सर्वविष्णुर्नृसिंहस्य रूपमास्थाय विश्वकृत्॥ ५२

विश्वकी सृष्टि करनेवाले तथा सर्वरूप प्रभु विष्णु नृसिंहका रूप धारण करके जगत्के कल्याणके

हिरण्यकशिपुं हत्वा करजैर्निशितैः स्वयम्।
दैत्येन्द्रैर्बहुभिः सार्धं हितार्थं जगतां प्रभुः॥ ५३

सैंहीं समानयन् योनिं बाधते निखिलं जगत्।
यत्कृत्यमत्र देवेश तत्कुरुष्व भवानिह॥ ५४

उग्रोऽसि सर्वदुष्टानां नियन्तासि शिवोऽसि नः।
कालकूटादिवपुषा त्राहि नः शरणागतान्॥ ५५

शुक्रं तु वृत्तं विश्वेश क्रीडा वै केवलं वयम्।
तवोन्मेषनिमेषाभ्यामस्माकं प्रलयोदयौ॥ ५६

उन्मीलये त्वयि ब्रह्मन् विनाशोऽस्ति न ते शिव।
सन्तप्ताः स्मो वयं देव हरिणामिततेजसा॥ ५७

सर्वलोकहितायैनं तत्त्वं संहर्तुमिच्छसि।

सूत उवाच

विज्ञापितस्तथा देवः प्रहसन् प्राह तान् सुरान्॥ ५८

अभयं च ददौ तेषां हनिष्यामीति तं प्रभुः।
सोऽपि शक्रः सुरैः सार्धं प्रणिपत्य यथागतम्॥ ५९

जगाम भगवान् ब्रह्मा तथान्ये च सुरोत्तमाः।
अथोत्थाय महादेवः शारभं रूपमास्थितः॥ ६०

ययौ प्रान्ते नृसिंहस्य गर्वितस्य मृगाशिनः।
अपहृत्य तदा प्राणान् शरभः सुरपूजितः॥ ६१

सिंहात्ततो नरो भूत्वा जगाम च यथाक्रमम्।
एवं स्तुतस्तदा देवैर्जगाम स यथाक्रमम्॥ ६२

यः पठेच्छृणुयाद्वापि संस्तवं शार्वमुत्तमम्।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते॥ ६३

लिये अनेक प्रमुख दैत्योंसहित हिरण्यकशिपुको अपने तीक्ष्ण नखोंसे स्वयं मारकर सिंहरूपका सम्मान करते हुए सम्पूर्ण जगत्‌को सन्त्रस्त कर रहे हैं; हे देवेश! अब इस विषयमें जो उचित कार्य हो, उसे आप करें॥ ५२—५४॥

आप उग्र हैं, सभी दुष्टोंको नियन्त्रणमें रखनेवाले हैं और हम लोगोंके लिये कल्याणकारक हैं। कालकूट आदि शरीरसे हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे विश्वेश! आपका आचरण शुद्ध है और हम लोग आपके क्रीड़ामात्र हैं। आपके उन्मेष तथा निमेषसे हम लोगोंके प्रलय तथा उदय होते हैं। हे ब्रह्मन्! हे शिव! आपके उन्मीलन करनेपर भी आपका विनाश नहीं होता है। हे देव! अमित तेजवाले नृसिंहरूपधारी विष्णुके द्वारा हमलोग सन्तप्त हो रहे हैं; अतः सभी लोकोंके हितके लिये आप इस [नृसिंहरूप]-को समाप्त करनेका विचार करें॥ ५५—५७१/२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर प्रभु महादेवने उन देवताओंको अभयदान दिया और मुसकराते हुए उनसे कहा—'मैं उनका संहार करूँगा।' इसके बाद शिवको प्रणाम करके इन्द्र सभी देवताओंके साथ जैसे आये थे, वैसे ही चले गये और भगवान् ब्रह्मा तथा अन्य श्रेष्ठ देवता भी चले गये॥ ५८-५९१/२॥

तदनन्तर [वहाँसे] उठकर शरभका रूप धारणकर महादेवजी असुरभक्षक गर्वयुक्त नृसिंहके पास पहुँचे। तब प्राणोंका हरण करके वे शरभरूपधारी शिव देवताओंद्वारा पूजित हुए। तत्पश्चात् नृसिंहरूपसे मानवरूप होकर वे विष्णु [वहाँसे] चले गये। इस प्रकार उस समय देवताओंसे स्तुत होकर शिवजी भी [अपने स्थानको] चले गये॥ ६०—६२॥

जो [व्यक्ति] शिवजीकी इस उत्तम स्तुतिको पढ़ता अथवा सुनता है, वह रुद्रलोक प्राप्त करके [भगवान्] रुद्रके साथ आनन्दित रहता है॥ ६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नृसिंहलीलावर्णनं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'नृसिंहलीलावर्णन' नामक पंचानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९५॥

छानबेवाँ अध्याय

भगवान् महेश्वरद्वारा वीरभद्रका आवाहन और नृसिंहके तेजको शमन करनेके लिये भेजना, वीरभद्र तथा नृसिंहका संवाद, भगवान् शिवका शरभावतार धारणकर नृसिंहतेजको शान्त करना एवं नृसिंहद्वारा शिवस्तुति

ऋषय ऊचुः

कथं देवो महादेवो विश्वसंहारकारकः।
शरभाख्यं महाघोरं विकृतं रूपमास्थितः॥ १

किं किं धैर्यं कृतं तेन ब्रूहि सर्वमशेषतः।

सूत उवाच

एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः॥ २

यत्तेजस्तु नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः।
तदर्थं स्मृतवान् रुद्रो वीरभद्रं महाबलम्॥ ३

आत्मनो भैरवं रूपं महाप्रलयकारकम्।
आजगाम पुरा सद्यो गणानामग्रतो हसन्॥ ४

साट्टहासैर्गणवरैरुत्पतद्भिरितस्ततः।
नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः॥ ५

तावद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः।
क्रीडद्भिश्च महाधीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव॥ ६

अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः।
कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः॥ ७

आत्तशस्त्रो जटाजूटे ज्वलद्बालेन्दुमण्डितः।
बालेन्दुद्वितयाकारतीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरद्वयः॥ ८

आखण्डलधनुः खण्डसन्निभभ्रूलतायुतः।
महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्मुखः॥ ९

नीलमेघाञ्जनाकारभीषणश्मश्रुरद्भुतः।
वादखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः॥ १०

वीरभद्रोऽपि भगवान् वीरशक्तिविजृम्भितः।
स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम्॥ ११

आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियतां मयि।

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] विश्वका संहार करनेवाले भगवान् महादेवने अत्यन्त भयंकर तथा विकृत शरभनामक रूप कैसे धारण किया और उन्होंने कौन-सा साहसपूर्ण कृत्य किया; यह सब पूर्णरूपसे बताइये॥ १½॥

सूतजी बोले—इस प्रकार देवताओंके प्रार्थना करनेपर कृपानिधान शिवने नृसिंहसंज्ञक तेजको नष्ट करनेका निश्चय किया और इसके लिये रुद्रने महाप्रलय करनेवाले अपने भैरवरूप महाबली वीरभद्रका स्मरण किया॥ २-३½॥

तब वे [वीरभद्र] गणोंके आगे होकर हँसते हुए शीघ्र ही वहाँ आये। वे करोड़ों श्रेष्ठ गणोंसे घिरे हुए थे, जो अट्टहास कर रहे थे, इधर-उधर उछल रहे थे, नृसिंहके रूपवाले थे तथा अत्यन्त उग्र थे। वे नृत्य करते हुए तथा महाधीर ब्रह्मा आदिके साथ गेंदकी भाँति खेलते हुए प्रसन्न वीरोंसे घिरे हुए थे। वे वीरवन्द्य [वीरभद्र] कभी न देखे गये अन्य वीरोंसे भी आवृत थे। वे [वीरभद्र] प्रलयाग्निकी ज्वालाके समान थे, वे तीन नेत्रोंसे विभूषित थे, वे शस्त्र धारण किये हुए थे, उनके जटाजूटमें देदीप्यमान बालचन्द्रमा शोभा दे रहा था, वे बालचन्द्रके समान आकारवाले अति शुभ्र तथा तीक्ष्ण दो दाँतोंसे सुशोभित थे, वे इन्द्रधनुषके समान भौंहोंसे युक्त थे, वे अपने महाप्रचण्ड हुंकारसे दिशाओंको वधिर बना दे रहे थे, वे नील मेघ तथा अंजनके समान आकारवाले भयंकर श्मश्रु (दाढ़ी)-से युक्त थे, वे अद्भुत रूपवाले थे और अपनी अपराजित भुजाओंसे विवादका शमन करनेवाले त्रिशूलको बार-बार घुमा रहे थे। इस प्रकारकी वीरताकी शक्तिसे परिपूर्ण भगवान् वीरभद्रने स्वयं निवेदन किया—'हे जगत्स्वामिन्! यहाँपर मुझको स्मरण करनेका क्या कारण है? आज्ञा प्रदान

श्रीभगवानुवाच

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरव॥ १२

ज्वलितः स नृसिंहाग्निः शमयैनं दुरासदम्।
सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किं नोपशाम्यति॥ १३

ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय।
सूक्ष्मं सूक्ष्मेण संहृत्य स्थूलं स्थूलेन तेजसा॥ १४

वक्त्रमानय कृत्तिं च वीरभद्र ममाज्ञया।
इत्यादिष्टो गणाध्यक्षः प्रशान्तवपुरास्थितः॥ १५

जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी।
ततस्तं बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम्॥ १६

उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम्।

श्रीवीरभद्र उवाच

जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव॥ १७

स्थित्यर्थेन च युक्तोऽसि परेण परमेष्ठिना।
जन्तुचक्रं भगवता रक्षितं मत्स्यरूपिणा॥ १८

पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा।
बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धृता मही॥ १९

अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः।
वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः॥ २०

त्वमेव सर्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः।
यदा यदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजायते॥ २१

तदा तदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम्।
नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायण॥ २२

त्वया धर्माश्च वेदाश्च शुभे मार्गे प्रतिष्ठिताः।
यदर्थमवतारोऽयं निहतः सोऽपि केशव॥ २३

कीजिये और मुझपर कृपा कीजिये॥ ४—११½॥

श्रीभगवान् बोले—हे भैरव! असमयमें देवताओंके समक्ष भय उत्पन्न हो गया है; वह नृसिंहरूपी अग्नि प्रज्वलित हो रही है; इस अति भयंकर अग्निको शान्त करो। उसे सान्त्वना देते हुए पहले समझाओ, यदि उससे वह शान्त नहीं होती है, तब मेरे महाभयंकर भैरवरूपको दिखाओ। हे वीरभद्र! मेरी आज्ञासे सूक्ष्मरूपको सूक्ष्म तेजसे तथा स्थूलरूपको स्थूल तेजसे विनष्ट करके उसके मुख तथा उसकी त्वचाको [मेरे पास] ले आओ॥ १२—१४½॥

इस प्रकार आज्ञा प्राप्त किये हुए गणेश्वर वीरभद्र शान्तस्वरूप धारण करके वेगपूर्वक वहाँ पहुँच गये, जहाँ नृसिंह विराजमान थे। तदनन्तर भगवान् वीरभद्रने नृसिंहरूपधारी उन विष्णुको समझाया और जैसे पिता औरस पुत्रसे कहता है, उसी प्रकार ईशान [वीरभद्र] उनसे यह वचन कहने लगे॥ १५-१६½॥

श्रीवीरभद्र बोले—हे भगवन्! हे माधव! आप तो जगत्के सुखके लिये अवतीर्ण हुए हैं; श्रेष्ठ ब्रह्माने [संसारकी] स्थितिके कार्यमें आपको लगाया है। पूर्वकालमें अपनी पूँछमें [नावको] बाँधकर विशाल सागरमें भ्रमण करते हुए मत्स्यरूपधारी आप भगवान् [विष्णु]-ने जीव-समुदायकी रक्षा की थी। आप कूर्मके रूपसे जगत्को धारण करते हैं और वाराहरूपके द्वारा आपने पृथ्वीका उद्धार किया है। आपने इस सिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका वध किया है। आपने वामनरूप धारणकर तीन पगोंद्वारा त्रिलोकीको मापकर बलिको बाँध लिया था॥ १७—२०॥

आप ही सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, सबके स्वामी और अविनाशी हैं। जब-जब संसारपर कोई विपत्ति पड़ी है, तब-तब आपने अवतार लेकर उसे दुःखरहित किया है। हे हरे! हे शिवपरायण! आपसे बढ़कर अन्य कोई भी नहीं है। आपने [समस्त] धर्मों तथा वेदोंको उत्तम मार्गपर प्रतिष्ठित किया है। हे केशव! जिसके लिये आपने यह अवतार लिया है, वह [हिरण्यकशिपु भी] आपके द्वारा मारा जा चुका है।

अत्यन्तघोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव।
उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ॥ २४

अतः हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! हे नरसिंह! आप मेरी उपस्थितिमें अपने इस अत्यन्त भयानक रूपको समेट लीजिये॥ २१—२४॥

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा।
ततोऽधिकं महाघोरं कोपं प्रज्वालयद्धरिः॥ २५

सूतजी बोले—वीरभद्रके द्वारा शान्त वाणीमें इस प्रकार कहे जानेपर नृसिंहरूपधारी विष्णुने पहलेसे भी अधिक तथा महाभयानक कोपको प्रज्वलित किया॥ २५॥

श्रीनृसिंह उवाच

आगतोऽसि यतस्तत्र गच्छ त्वं मा हितं वद।
इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम्॥ २६

संहर्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा।
शासितं मम सर्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते॥ २७

मत्प्रसादेन सकलं समर्यादं प्रवर्तते।
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः॥ २८

श्रीनृसिंह बोले—[हे वीरभद्र!] तुम जहाँसे आये हो, वहाँ चले जाओ; हितकी बात मत बोलो। मैं इस समय इस चराचर जगत्का संहार कर डालूँगा। संहारकर्ताका संहार अपनेसे अथवा दूसरेसे भी नहीं हो सकता है। सभी जगह मेरा ही शासन है; अन्य कोई भी शासन करनेवाला नहीं है। मेरी कृपासे सम्पूर्ण जगत् मर्यादायुक्त होकर क्रियाशील है; मैं ही सभी शक्तियोंका प्रवर्तक तथा निवर्तक हूँ॥ २६—२८॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम तेजोविजृम्भितम्॥ २९

देवतापरमार्थज्ञा ममैव परमं विदुः।
मदंशाः शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयः सुराः॥ ३०

मन्नाभिपङ्कजाज्जातः पुरा ब्रह्मा चतुर्मुखः।
तल्ललाटसमुत्पन्नो भगवान् वृषभध्वजः॥ ३१

हे गणाध्यक्ष! जो-जो विभूतिसम्पन्न, सत्त्वमय, श्रीयुक्त तथा ऊर्जासे परिपूर्ण है, उसे मेरे ही तेजसे परिवर्धित जानो। देवताओंके परम अर्थको जाननेवाले मेरे महान् सामर्थ्यको जानते हैं। शक्तिसम्पन्न ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता मेरे ही अंश हैं। पूर्वकालमें चतुर्मुख ब्रह्मा मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए थे और उनके ललाटसे भगवान् वृषभध्वज (शिव) उत्पन्न हुए थे॥ २९—३१॥

रजसाधिष्ठितः स्रष्टा रुद्रस्तामस उच्यते।
अहं नियन्ता सर्वस्य मत्परं नास्ति दैवतम्॥ ३२

विश्वाधिकः स्वतन्त्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः।
इदं तु मत्परं तेजः कः पुनः श्रोतुमिच्छति॥ ३३

अतो मां शरणं प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः।
अवेहि परमं भावमिदं भूतमहेश्वरः॥ ३४

ब्रह्मा रजोगुणसे अधिष्ठित हैं। रुद्र तमोगुणसे युक्त कहे जाते हैं। मैं सबका नियन्ता हूँ; मुझसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। मैं सबसे बढ़कर हूँ, स्वतन्त्र हूँ, सबका स्रष्टा हूँ, संहार करनेवाला हूँ तथा सबका स्वामी हूँ। मेरे इस [नृसिंह नामक] परम तेजके विषयमें कौन सुनना चाहता है? अतः मेरी शरण प्राप्त करके तुम संतापरहित होकर [यहाँसे] जाओ; भूतोंके महेश्वर तुम मेरे इस परम भावको समझो॥ ३२—३४॥

कालोऽस्म्यहं कालविनाशहेतु-
र्लोकान् समाहर्तुमहं प्रवृत्तः।
मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र
जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः॥ ३५

मैं काल हूँ, मैं कालके भी विनाशका कारण हूँ। मैं लोकोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हूँ। हे वीरभद्र! तुम मुझको मृत्युकी भी मृत्यु जानो; ये देवता भी मेरी कृपासे जी रहे हैं॥ ३५॥

सूत उवाच

साहङ्कारमिदं श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः।
विहस्योवाच सावज्ञं ततो विस्फुरिताधरः॥ ३६

सूतजी बोले—विष्णुका यह अहंकारपूर्ण वचन सुनकर असीम पराक्रमवाले वीरभद्र स्फुरित ओठोंवाले

श्रीवीरभद्र उवाच

किं न जानासि विश्वेशं संहर्तारं पिनाकिनम्।
असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः॥ ३७

तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम्।
कृतानि येन केनापि कथाशेषो भविष्यति॥ ३८

दोषं त्वं पश्य एतत्त्वमवस्थामीदृशीं गतः।
तेन संहारदक्षेण क्षणात्सङ्क्षयमेष्यसि॥ ३९

प्रकृतिस्त्वं पुमान् रुद्रस्त्वयि वीर्यं समाहितम्।
त्वन्नाभिपङ्कजाज्जातः पञ्चवक्त्रः पितामहः॥ ४०

सृष्ट्यर्थेन जगत्पूर्वं शङ्करं नीललोहितम्।
ललाटे चिन्तयामास तपस्युग्रे व्यवस्थितः॥ ४१

तल्ललाटादभूच्छम्भोः सृष्ट्यर्थं तन्न दूषणम्।
अंशोऽहं देवदेवस्य महाभैरवरूपिणः॥ ४२

त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च।
एवं रक्षो विदार्यैव त्वं शक्तिकलया युतः॥ ४३

अहङ्कारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्द्रितः।
उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम्॥ ४४

यदि सिंह महेशानं स्वपुनर्भूत मन्यसे।
न त्वं स्रष्टा न संहर्ता न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित्॥ ४५

कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोऽसि पिनाकिना।
अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः॥ ४६

हरहारलतामध्ये मुग्ध कस्मान्न बुध्यसे।
विस्मृतं किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितः॥ ४७

वाराहविग्रहस्तेऽद्य साक्रोशं तारकारिणा।
दग्धोऽसि यस्य शूलाग्रे विष्वक्सेनच्छलाद्भवान्॥ ४८

होकर तिरस्कारपूर्ण भावसे हँसकर नृसिंहसे कहने लगे॥ ३६॥

श्रीवीरभद्र बोले—क्या आप संहारकर्ता, पिनाकधारी विश्वेश्वर (शिव)-को नहीं जानते हैं? मिथ्या वाद-विवाद आपके लिये केवल विनाशस्वरूप ही है। जिस किसी प्रकारसे आपके द्वारा लिये गये विभिन्न अवतारोंमें कौन शेष रह गये हैं; अब तो केवल आप ही बचे हुए हैं। आप इस दोषको देखिये, जो आप इस दशाको प्राप्त हुए हैं। संहारमें दक्ष उन [शिव]-के द्वारा आप क्षणभरमें विनाशको प्राप्त हो जायँगे॥ ३७—३९॥

आप प्रकृति हैं, रुद्र पुरुष हैं; आपमें [सम्पूर्ण] तेज समाहित है। पाँच मुखवाले पितामह (ब्रह्मा) आपके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत हुए हैं। घोर तपस्यामें लीन उन्होंने पूर्वकालमें जगत्‌की सृष्टिके लिये अपने ललाटमें नीललोहित शंकरका चिन्तन किया। तब सृष्टिके लिये उनके ललाटसे शम्भु आविर्भूत हुए, अतः यह शिवका दूषण नहीं है। महाभैरवरूप देवदेव रुद्रका अंशस्वरूप मैं विनय तथा बलसे आपके संहारके लिये नियुक्त किया गया हूँ। इस प्रकार शक्तिकी कलासे युक्त आप इस राक्षसको विदीर्ण करके अहंकारके वशीभूत होकर निरालस्य हो गर्जन कर रहे हैं। दुष्टोंके लिये किया गया उपकार केवल अपकारके लिये होता है। हे सिंह! यदि आप महेश्वरको अपनेसे बादमें उत्पन्न समझते हैं, तो यह आपका भ्रम है। आप न तो सृष्टिकर्ता हैं, न संहारकर्ता हैं और न तो किसी प्रकार स्वतन्त्र ही हैं; आप कुम्हारके चक्रकी भाँति शिवके द्वारा प्रेरित हैं॥ ४०—४५ १/२॥

कूर्मरूपधारी आपका कपाल आज भी शिवके गलेके हारके मध्य स्थित है; हे मुग्ध! इसे आप क्यों नहीं याद कर रहे हैं? उनके अंशसे उत्पन्न तारकासुरशत्रु स्कन्दके द्वारा आक्रोशपूर्वक आपके वाराहविग्रहसे दाँत उखाड़ लिये जानेसे आपको बहुत कष्ट हुआ था; क्या इसे भी आप भूल गये हैं? विष्वक्सेनरूपसे आप उन रुद्रके त्रिशूलके अग्रभागसे छलपूर्वक जला दिये गये थे॥ ४६—४८॥

दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया ते यज्ञरूपिणः।
अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः॥ ४९

छिन्नं तमेनाभिसन्धं तदंशं तस्य तद्बलम्।
निर्जितस्त्वं दधीचेन सङ्ग्रामे समरुद्गणः॥ ५०

कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया।
चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम्॥ ५१

कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम्।
ते मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ॥ ५२

निद्रापरवशः शेषे स कथं सात्त्विको भवान्।
त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृम्भितम्॥ ५३

मैंने दक्षके यज्ञमें यज्ञरूपधारी आपके सिरको काट दिया था। आपके पुत्र ब्रह्माका तमोमय कटा हुआ उनका अंशभूत पाँचवाँ सिर आज भी विद्यमान है; क्या आप उन रुद्रके उस बलको नहीं जानते हैं? ऋषि दधीचने सिर खुजलाते हुए आपको मरुद्गणोंसहित संग्राममें पराजित कर दिया था; इसे आप कैसे भूल गये? हे चक्रपाणे! आपका प्रिय चक्र उन्हींके पराक्रमके कारण है; आपने उसे कहाँसे प्राप्त किया, उसे किसने बनाया—यह सब भी आप भूल गये! मैंने आपके सभी लोकोंको छीन लिया था और उस समय आप निद्राके वशीभूत होकर क्षीरसागरमें शयन करते रहे; आप सात्त्विक (पालकमूर्ति) कैसे हो सकते हैं, आप [विष्णु]-से लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ रुद्रशक्तिसे समन्वित है॥ ४९—५३॥

शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलस्त्वं च मोहितः।
तत्तेजसोऽपि माहात्म्यं युवां द्रष्टुं न हि क्षमौ॥ ५४

स्थूला ये हि प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।
द्यावापृथिव्या इन्द्राग्नियमस्य वरुणस्य च॥ ५५

ध्वान्तोदरे शशाङ्कस्य जनित्वा परमेश्वरः।
कालोऽसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वरः॥ ५६

अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि।
स्थिरधन्वाक्षयोऽवीरो वीरो विश्वाधिकः प्रभुः॥ ५७

उपहस्ता ज्वरं भीमो मृगपक्षिहिरण्मयः।
शास्ताशेषस्य जगतो न त्वं नैव चतुर्मुखः॥ ५८

इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना।
नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः॥ ५९

वज्राशनिरिव स्थाणोस्त्वेवं मृत्युः पतिष्यति।

मोहको प्राप्त आप तथा अग्नि दोनों ही रुद्रकी शक्तिसे सामर्थ्ययुक्त हैं; उनके तेजके प्रभावको देखनेमें आप दोनों (विष्णु, अग्नि) समर्थ नहीं हैं। जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे ही विष्णुके परम पदको देखते हैं। स्वर्ग-पृथ्वीके वामनरूपसे, इन्द्रके जयन्तरूपसे, अग्निके कार्तिकेय-रूपसे, धर्मराजके नारायणरूपसे, वरुणके भृगुरूपसे और चन्द्रमाके कलंकित उदरमें बुधरूपसे उत्पन्न होकर आप परमेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। आप काल, महाकाल एवं कालके भी काल महेश्वर हैं; अतः आप शिवके अंशसे कालके भी काल होंगे। वे स्थिर धनुषवाले शिव अनश्वर, सबसे अधिक पराक्रमी, वीर, सर्वश्रेष्ठ तथा सबके स्वामी हैं। वे रोगको नष्ट करनेवाले, भयानक तथा सुवर्णमय मृगाकार पक्षी (शरभरूप) हैं। सम्पूर्ण जगत्के शासक न तो आप हैं और न चतुर्मुख ब्रह्मा। इस प्रकार सब कुछ सोचकर अपने रूपको पूर्णरूपसे समेट लीजिये, अन्यथा महाभैरवरूपी रुद्रके क्रोधका शरभरूपी वज्र आपकी मृत्यु बनकर उसी तरह गिरेगा, जैसे पर्वतपर वज्र गिरता है॥ ५४—५९$^{1}/_{2}$॥

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः॥ ६०

ननाद तनुवेगेन तं गृहीतुं प्रचक्रमे।
अत्रान्तरे महाघोरं विपक्षभयकारणम्॥ ६१

सूतजी बोले—वीरभद्रके इस प्रकार कहनेपर नृसिंह क्रोधसे व्याकुल होकर गरजने लगे और तीव्र वेगसे

गगनव्यापि दुर्धर्षशैवतेजः समुद्भवम्।
वीरभद्रस्य तद्रूपं तत्क्षणादेव दृश्यते॥ ६२

न तद्धिरणमयं सौम्यं न सौरं नाग्निसम्भवम्।
न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यं महेश्वरम्॥ ६३

तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिन् लीनानि शाङ्करे।
ततोऽव्यक्तो महातेजा व्यक्ते सम्भवतस्ततः॥ ६४

रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति।
ततः संहाररूपेण सुव्यक्तः परमेश्वरः॥ ६५

पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमङ्गलैः।
सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्रार्धकृतशेखरः॥ ६६

स मृगार्धशरीरेण पक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजाः।
अतितीक्ष्णमहादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः॥ ६७

कण्ठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसम्भवः।
युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिःस्वनः॥ ६८

समं कुपितवृत्ताग्निव्यावृत्तनयनत्रयः।
स्पष्टदंष्ट्रोऽधरोष्ठश्च हुङ्कारेण युतो हरः॥ ६९

हरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः।
बिभ्रदौर्म्यं सहस्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम्॥ ७०

अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादेऽभ्युदारयन्।
पादावाबध्य पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम्॥ ७१

भिदन्नुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम्।
ततो जगाम गगनं देवैः सह महर्षिभिः॥ ७२

सहसैव भयाद्विष्णुं विहगश्च यथोरगम्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य सङ्गृह्य निपात्य च निपात्य च॥ ७३

उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षाघातविमोहितम्।
हरिं हरं तं वृषभं विश्वेशानं तमीश्वरम्॥ ७४

उसे पकड़नेका प्रयास करने लगे। इसी बीच विपक्षमें भय उत्पन्न करनेवाला, महाभयंकर, गगनव्यापी तथा दुर्धर्ष शिव-तेज उत्पन्न हुआ। उस क्षण वीरभद्रका जो रूप दिखायी पड़ा; वह न सुवर्णमय था, न चन्द्रमासे उत्पन्न था, न सूर्यसे उत्पन्न था, न अग्निसे उत्पन्न था, न विद्युत्के समान था और न चन्द्रके तुल्य था। वह शिवसे सम्बन्धित अनुपम रूप था। उस समय सभी तेज उस शिव-रूपमें विलीन हो गये; इससे वह महातेज अव्यक्तरूपमें स्थित हो गया और शरभ-नृसिंह—ये दो व्यक्तरूप प्रकट हुए॥ ६०—६४॥

उस समय भयंकर आकृतिवाला तथा रुद्रके विशिष्ट चिह्नोंसे युक्त रूप प्रकट हुआ। तदनन्तर वे परमेश्वर महाप्रलयकालिक रूपसे व्यक्त (प्रकट) हो गये। हे द्विजो! सभी देवताओंके देखते-देखते जयशब्द आदि मंगलोंसे युक्त होकर वे शिव हजार भुजाओंवाले, जटाधारी, सिरपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए, पशुके आधा भाग शरीरसे, दो पंखोंसे तथा चोंचसे युक्त हो गये। उनके दाँत विशाल तथा अति तीक्ष्ण थे। वे वज्रतुल्य नखरूपी अस्त्रसे सुशोभित हो रहे थे। उनका कण्ठ कृष्णवर्णका था। वे चार भुजाओंवाले तथा चार पैरोंवाले और अग्निसे उत्पन्न प्रतीत हो रहे थे। वे युगके अन्तमें उत्पन्न मेघके समान भयंकर तथा गम्भीर ध्वनि कर रहे थे। उनके तीनों नेत्र क्रोधसे फैले हुए विशाल आगके गोले हो गये थे। उनके दाँत, अधर तथा ओष्ठ स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे। वे हर हुंकारसे युक्त थे॥ ६५—६९॥

उन्हें देखते ही विष्णुका बल तथा पराक्रम नष्ट हो गया। वे सूर्यके सम्मुख खद्योत (जुगुनू)-के समान प्रकाश धारण किये हुए प्रतीत होने लगे। इसके बाद हररूप शरभने अपने पंखोंसे उन्हें जकड़कर नाभि तथा पैरको विदीर्ण करते हुए अपनी पूँछसे पैरोंको बाँधकर भुजाओंसे उनके भुजाओंको कसकर उनके वक्षपर प्रहार करते हुए उन हरिको अपनी भुजाओंमें जकड़ लिया। तदनन्तर वे भगवान् [शरभ] जैसे गरुड़ सर्पपर आक्रमण करता है, वैसे ही उड़-उड़कर उन्हें ऊपरकी ओर उछालकर बार-

अनुयान्ति सुराः सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः।
नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः॥ ७५
तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः।

श्रीनृसिंह उवाच

नमो रुद्राय शर्वाय महाग्रासाय विष्णवे॥ ७६
नम उग्राय भीमाय नमः क्रोधाय मन्यवे।
नमो भवाय शर्वाय शङ्कराय शिवाय ते॥ ७७
कालकालाय कालाय महाकालाय मृत्यवे।
वीराय वीरभद्राय क्षयद्वीराय शूलिने॥ ७८
महादेवाय महते पशूनां पतये नमः।
एकाय नीलकण्ठाय श्रीकण्ठाय पिनाकिने॥ ७९
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्युमन्यवे।
पराय परमेशाय परात्परतराय ते॥ ८०
परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्तये।
नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे॥ ८१
कैवर्ताय किराताय महाव्याधाय शाश्वते।
भैरवाय शरण्याय महाभैरवरूपिणे॥ ८२
नमो नृसिंहसंहर्त्रे कामकालपुरारये।
महापाशौघसंहर्त्रे विष्णुमायान्तकारिणे॥ ८३
त्र्यम्बकाय त्र्यक्षराय शिपिविष्टाय मीढुषे।
मृत्युञ्जयाय शर्वाय सर्वज्ञाय मखारये॥ ८४
मखेशाय वरेण्याय नमस्ते वह्निरूपिणे।
महाघ्राणाय जिह्वाय प्राणापानप्रवर्तिने॥ ८५
त्रिगुणाय त्रिशूलाय गुणातीताय योगिने।
संसाराय प्रवाहाय महायन्त्रप्रवर्तिने॥ ८६
नमश्चन्द्राग्निसूर्याय मुक्तिवैचित्र्यहेतवे।
वरदायावताराय सर्वकारणहेतवे॥ ८७
कपालिने करालाय पतये पुण्यकीर्तये।
अमोघायाग्निनेत्राय लकुलीशाय शम्भवे॥ ८८
भिषक्तमाय मुण्डाय दण्डिने योगरूपिणे।
मेघवाहाय देवाय पार्वतीपतये नमः॥ ८९

बार उन्हें गिराकर पंखोंके आघातसे मूर्छित तथा डरे हुए विष्णुको लेकर देवताओं तथा महर्षियोंके साथ आकाश-मण्डलमें चले गये॥ ७०—७३$^{1}/_{2}$॥

सभी देवता विष्णु तथा उन श्रेष्ठ [शरभरूप] विश्वेश ईश्वरके पीछे-पीछे चलने लगे और 'नमः' वाक्यसे उनकी स्तुति करने लगे। परवश होकर ले जाये जाते हुए विष्णु दीनमुख होकर हाथ जोड़कर ललित अक्षरोंद्वारा उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ७४-७५$^{1}/_{2}$॥

श्रीनृसिंह बोले—शर्व, महाग्रास (जगत् जिनका ग्रास है) तथा विष्णु (सर्वव्यापी) एवं रुद्रको नमस्कार है। उग्र तथा भीमको नमस्कार है। क्रोध तथा मन्युको नमस्कार है। आप भव, शर्व, शंकर तथा शिवको नमस्कार है। कालके भी काल, कालरूप, महाकाल, मृत्युरूप, वीर, वीरभद्र, पापके विनाशक, शूलधारी, महादेव, महान् तथा पशुपतिको नमस्कार है। एक, नीलकण्ठ, श्रीकण्ठ, पिनाकी तथा अनन्तको नमस्कार है। आप सूक्ष्मको नमस्कार है। आप मृत्युमन्यु (मृत्यु ही जिसका क्रोध है), पर, परमेश तथा परात्परतरको नमस्कार है। आप परात्पर, विश्व तथा विश्वमूर्तिको नमस्कार है। विष्णुकलत्र, विष्णुक्षेत्र तथा भानुको नमस्कार है। कैवर्त (संसाररूपी सागरसे तारनेवाले), किरात, महाव्याध, शाश्वत, भैरव, शरण्य (शरणदाता) तथा महाभैरवरूपको नमस्कार है। नृसिंहसंहर्ता, कामकालपुरारि (कामदेव-यम-त्रिपुर)-के शत्रु, महापाशौघ-संहर्ता, विष्णुमायान्तकारी, त्र्यम्बक (तीन नेत्रोंवाले), त्र्यक्षर (भूत, भविष्य, वर्तमानमें नाशरहित), शिपिविष्ट, मीढुष, मृत्युंजय, शर्व, सर्वज्ञ, मखारि, मखेश, वरेण्य, अग्निरूप, महाघ्राण, (महानासिकावाले), जिह्व (बड़ी जिह्वावाले) तथा प्राणापानप्रवर्ती (प्राण-अपान वायुको गति देनेवाले)-को नमस्कार है। त्रिगुण-त्रिशूल, गुणातीत, योगी, संसार, प्रवाह, महायन्त्रप्रवर्तीको नमस्कार है। चन्द्र-अग्नि-सूर्य, मुक्ति-विचित्र्यहेतु, वरद, अवतार (अभिमानियोंका पतन करनेवाले), सर्वकारणहेतु, कपाली, कराल, पति, पुण्यकीर्ति, अमोघ, अग्निनेत्र, लकुलीश, शम्भु (कल्याण करनेवाले), भिषक्तम,

अव्यक्ताय विशोकाय स्थिराय स्थिरधन्विने।
स्थाणवे कृत्तिवासाय नमः पञ्चार्थहेतवे॥ ९०

वरदायैकपादाय नमश्चन्द्रार्धमौलिने।
नमस्तेऽध्वरराजाय वयसां पतये नमः॥ ९१

योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमेष्ठिने।
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वेश्वराय ते॥ ९२

एकद्वित्रिचतुःपञ्चकृत्वस्तेऽस्तु नमो नमः।
दशकृत्वस्तु साहस्रकृत्वस्ते च नमो नमः॥ ९३

नमोऽपरिमितं कृत्वानन्तकृत्वो नमो नमः।
नमो नमो नमो भूयः पुनर्भूयो नमो नमः॥ ९४

सूत उवाच

नाम्नामष्टशतेनैवं स्तुत्वामृतमयेन तु।
पुनस्तु प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम्॥ ९५

यदा यदा ममाज्ञानमत्यहङ्कारदूषितम्।
तदा तदापनेतव्यं त्वयैव परमेश्वर॥ ९६

एवं विज्ञापयन् प्रीतः शङ्करं नरकेसरी।
नन्वशक्तो भवान् विष्णो जीवितान्तं पराजितः॥ ९७

तद्वक्त्रशेषमात्रान्तं कृत्वा सर्वस्य विग्रहम्।
शुक्तिशित्यं तदा मङ्गं वीरभद्रः क्षणात्ततः॥ ९८

देवा ऊचुः

अथ ब्रह्मादयः सर्वे वीरभद्र त्वया दृशा।
जीविताः स्मो वयं देवाः पर्जन्येनेव पादपाः॥ ९९

यस्य भीषा दहत्यग्निरुदेति च रविः स्वयम्।
वातो वाति च सोऽसि त्वं मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ १००

यदव्यक्तं परं व्योम कलातीतं सदाशिवम्।
भगवंस्त्वामेव भवं वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ १०१

मुण्ड, दण्डी, योगरूपी, मेघवाह, देव तथा पार्वतीपतिको नमस्कार है। अव्यक्त, विशोक (शोकरहित), स्थिर, स्थिरधन्वी, स्थाणु (जगत्के आधाररूप), कृत्तिवास तथा पंचार्थहेतुको नमस्कार है। वर तथा एकपाद (एकमात्र ज्ञानियोंके द्वारा प्राप्य)-को नमस्कार है। चन्द्रार्धमौलिको नमस्कार है। अध्वरराज तथा वयसाम्पति (शरभरूप)-को नमस्कार है। आप योगीश्वर, नित्य, सत्य, परमेष्ठी तथा सर्वात्माको नमस्कार है। आप सर्वेश्वरको नमस्कार है। आपको एक, दो, तीन, चार, पाँच बार नमस्कार है। आपको दस बार तथा हजार बार नमस्कार है। आपको अपरिमित बार, अनन्त बार नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है; पुनः बार-बार नमस्कार है॥ ७६—९४॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस प्रकार नृसिंह [विष्णु]-ने एक सौ आठ अमृतमय नामोंसे शरभरूप ईश्वर (शिव)-की स्तुति करके पुनः उनसे प्रार्थना की—हे परमेश्वर! जब-जब अति अहंकारसे दूषित अज्ञान मुझमें उत्पन्न हो, तब-तब आप उसे दूर करें। इस प्रकार शंकरसे प्रार्थना करते हुए वे नृसिंह प्रसन्न हो गये; तब वीरभद्रने कहा—'हे विष्णो! आप वास्तवमें अशक्त हैं और जीवनके अन्तमें पराजित हुए हैं।' इसके बाद वीरभद्रने क्षणभरमें ही [नृसिंहरूपधारी] विष्णुके विग्रहको बचे हुए मुखवाला करके शेष विग्रहसे त्वचा खींचकर उसे मात्र हड्डियोंसे युक्त कर दिया और इस प्रकार वह विग्रह अति श्वेत वर्णवाला हो गया॥ ९५—९८॥

देवता बोले—हे वीरभद्र! ब्रह्मा आदि हम सभी देवता आपकी दृष्टिसे उसी प्रकार जीवित हैं, जैसे वृक्ष मेघसे जीवन प्राप्त करते हैं॥ ९९॥

जिसके भयसे अग्नि जलती है, साक्षात् सूर्य उगता है, वायु बहती है और पाँचवीं* मृत्यु दौड़ती है; वह आप ही हैं॥ १००॥

हे भगवन्! ब्रह्मवादी लोग आपको ही अनिर्वाच्य, चिदाकाश, कलातीत, सदाशिव तथा भव कहते हैं॥ १०१॥

* कठोपनिषद् २।३।३, तैत्तिरीयोपनिषद् २।८।१

के वयमेव धातुक्ये वेदने परमेश्वरः।
न विद्धि परमं धाम रूपलावण्यवर्णने॥ १०२

उपसर्गेषु सर्वेषु त्रायस्वास्मान् गणाधिप।
एकादशात्मन् भगवान् वर्तते रूपवान् हरः॥ १०३

ईदृशान् तेऽवताराणि दृष्ट्वा शिव बहूंस्तमः।
कदाचित्सन्दिहेन्नास्मांस्त्वच्चिन्तास्तमया तथा॥ १०४

गुञ्जागिरिवरतटामितरूपाणि सर्वशः।
अभ्यसंहर गम्यं ते न नीतव्यं परापरा॥ १०५

द्वे तनू तव रुद्रस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोराप्यन्या शिवाप्यन्या ते प्रत्येकमनेकधा॥ १०६

इहास्मान् पाहि भगवन्नित्याहतमहाबलः।
भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव तेजसा॥ १०७

ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रचन्द्रादि वयं च प्रमुखाः सुराः।
सुरासुराः सम्प्रसूत्तास्त्वत्तः सर्वे महेश्वर॥ १०८

ब्रह्मा च इन्द्रो विष्णुश्च यमाद्या न सुरासुरान्।
ततो निगृह्य च हरिं सिंह इत्युपचेतसम्॥ १०९

यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा।
अतोऽस्मान् पाहि भगवन्सुरान् दानैरभीप्सितैः॥ ११०

उवाच तान् सुरान् देवो महर्षींश्च पुरातनान्।
यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरे घृतं घृते॥ १११

एक एव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा।
एष एव नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः॥ ११२

जगत्संहारकारेण प्रवृत्तो नरकेसरी।
याजनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तिसिद्धिकाङ्क्षिभिः॥ ११३

आप जगदाधारके विषयमें जाननेमें हम असमर्थ हैं। आप हमारे परमेश्वर हैं। आपके रूपलावण्यवर्णनका अन्त नहीं है—ऐसा जानिये॥ १०२॥

हे गणाधिप! सभी विपत्तियोंमें हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे एकादशरुद्ररूप! आप भगवान् हर विशिष्ट विग्रहवाले हैं॥ १०३॥

हे शिव! आपके इस प्रकारके अनेक अवतारोंको देखकर हमारा अज्ञान हममें कदाचित् सन्देह न उत्पन्न करे तथा आपका ध्यान नष्ट न हो। जैसे गुंजाके महान् पर्वतके प्रान्तभागसे गुंजाओंकी अमित संख्या होती है, वैसे ही आपके अनन्त रूप हैं, जिन्हें आप चारों ओरसे उपसंहृत कर लीजिये। यह संसार आपके प्रवेशयोग्य हो, इसका संहार मत कीजिये। वेदवेत्ता ब्राह्मण कहते हैं कि आप रुद्रके पर-अपर दो शरीर हैं—एक घोर तथा दूसरा शिव (शान्त); उनमें प्रत्येकके अनेक प्रकार हैं। हे भगवन्! कभी भी हत न होनेवाले महान् बलसे युक्त आप यहाँपर हम लोगोंकी रक्षा कीजिये। आपने अपने ही तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है॥ १०४—१०७॥

हे महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्र आदि हम प्रमुख देवतागण तथा अन्य देवता और असुर—सभी लोग आपसे उत्पन्न हुए हैं॥ १०८॥

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, यम आदि देवता, असुर तथा भ्रान्त अन्तःकरणवाले नृसिंह हरिका निग्रह करके अपने शरीरको आठ प्रकारसे [सूर्य आदि रूपमें] विभाजित करके आप सभीका धारण-पोषण करते हैं; अतः हे भगवन्! अभीष्ट दानोंके द्वारा हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ १०९-११०॥

तत्पश्चात् देव [वीरभद्र]-ने उन देवताओं तथा प्राचीन ऋषियोंसे कहा—जैसे जलमें जल, दूधमें दूध तथा घृतमें घृत डाले जानेपर एक हो जाता है; वैसे ही विष्णु शिवमें लीन हैं; इसमें सन्देह नहीं है। ये गर्वयुक्त तथा महाबली नृसिंह जगत्‌का संहार करनेवाले रूपसे प्रकट हुए हैं। मेरी भक्तिकी सिद्धिकी इच्छा रखनेवालोंको नृसिंहकी पूजा करनी चाहिये; उन [नृसिंहरूपधारी

एतावदुक्त्वा भगवान् वीरभद्रो महाबलः।
अपश्यन् सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत॥ ११४

नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शङ्करः।
वक्त्रं तन्मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम्॥ ११५

ततो देवा निरातङ्काः कीर्तयन्तः कथामिमाम्।
विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम्॥ ११६

य इदं परमाख्यानं पुण्यं वेदैः समन्वितम्।
पठित्वा शृणुते चैव सर्वदुःखविनाशनम्॥ ११७

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुष्टिवर्धनम्।
सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्॥ ११८

अपमृत्युप्रशमनं महाशान्तिकरं शुभम्।
अरिचक्रप्रशमनं सर्वाधिप्रविनाशनम्॥ ११९

ततो दुःस्वप्नशमनं सर्वभूतनिवारणम्।
विषग्रहक्षयकरं पुत्रपौत्रादिवर्धनम्॥ १२०

योगसिद्धिप्रदं सम्यक् शिवज्ञानप्रकाशकम्।
शेषलोकस्य सोपानं वाञ्छितार्थैकसाधनम्॥ १२१

विष्णुमायानिरसनं देवतापरमार्थदम्।
वाञ्छासिद्धिप्रदं चैव ऋद्धिप्रज्ञादिसाधनम्॥ १२२

इदं तु शरभाकारं परं रूपं पिनाकिनः।
प्रकाशितव्यं भक्तेषु चिरेषूद्यमितेषु च॥ १२३

तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः।
शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च॥ १२४

पठेत्प्रतिष्ठाकालेषु शिवसन्निधिकारणम्।
चोरव्याघ्राहिसिंहान्तकृतो राजभयेषु च॥ १२५

अत्रान्योत्पातभूकम्पदावाग्निपांसुवृष्टिषु ।
उल्कापाते महावाते विना वृष्ट्यातिवृष्टिषु॥ १२६

विष्णु]-को नमस्कार है॥ १११—११३॥

इतना कहकर महाबली भगवान् वीरभद्र सभी देवताओंके देखते-देखते वहींपर अन्तर्धान हो गये। उसी समयसे शंकरजी नृसिंहके चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करने लगे और [नृसिंहका] मुण्ड उनकी मुण्डमालामें मणिके रूपमें शोभा पाने लगा॥ ११४-११५॥

तदनन्तर विस्मयसे प्रसन्न नेत्रवाले सभी देवतागण भयरहित होकर इस कथाको कहते हुए जैसे आये थे, वैसे ही वापस चले गये॥ ११६॥

जो [मनुष्य] इस पुण्यप्रद तथा वेदमय श्रेष्ठ आख्यानको पढ़ता अथवा सुनता है, उसके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है। यह [आख्यान] धन्य बनानेवाला, यश देनेवाला, आयु प्रदान करनेवाला, रोगरहित करनेवाला, पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, सभी विघ्नोंको शान्त करनेवाला, सभी व्याधियोंको नष्ट करनेवाला, अकाल मृत्युका शमन करनेवाला, परमशान्ति प्रदान करनेवाला, मंगलकारक, शत्रु-समूहका दमन करनेवाला, सभी मानसिक रोगोंका विनाश करनेवाला, बुरे स्वप्नोंका निवारण करनेवाला, सभी भूत-प्रेतको दूर करनेवाला, दुष्ट ग्रहोंका क्षय करनेवाला, पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला, योग-सिद्धि प्रदान करनेवाला, भली-भाँति शिवज्ञानको प्रकाशित करनेवाला, शेषलोकका सोपानस्वरूप, वांछित फलोंको सिद्ध करनेवाला, विष्णुमायाको दूर करनेवाला, देवताओंके परमार्थको देनेवाला, वांछाकी सिद्धि प्रदान करनेवाला और ऋद्धि, प्रज्ञा आदि देनेवाला है॥ ११७—१२२॥

पिनाकधारी [शिव]-के इस शरभकी आकृतिवाले श्रेष्ठ रूपको स्थिर प्रज्ञावाले उत्सुक भक्तोंमें प्रकाशित करना चाहिये और उन्हीं शिवसमर्पित मनवाले भक्तोंके द्वारा शिवके सभी उत्सवोंमें और अष्टमी तथा चतुर्दशीके दिन इसका पाठ तथा श्रवण किया जाना चाहिये। शिव-प्रतिष्ठाके अवसरोंपर शिवकी सन्निधि प्राप्त करनेवाले इस स्तोत्रको पढ़ना चाहिये। अतः चोर-बाघ-सर्प-सिंह आदिसे भय होनेपर, राजासे भय उत्पन्न होनेपर, इस लोकमें अन्य उत्पात-भूकम्प-दावाग्नि, धूलवृष्टि (आँधी)

अतस्तत्र पठेद्विद्वाञ्छिवभक्तो दृढव्रतः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स्तवं सर्वमनुत्तमम्॥ १२७

स रुद्रत्वं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥ १२८

होनेपर, उल्कापात होनेपर, तेज हवा चलनेपर, अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि होनेपर दृढ़ व्रतवाले विद्वान् शिवभक्तको इस [शरभचरित]-को पढ़ना चाहिये। जो इस सर्वोत्तम स्तोत्रको पढ़ता अथवा सुनता है, वह रुद्रत्व प्राप्त करके रुद्रका अनुचर हो जाता है॥ १२३—१२८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शरभप्रादुर्भावो नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शरभप्रादुर्भाव' नामक छानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

जलन्धर-वधकी कथा

ऋषय ऊचुः

जलन्धरं जटामौलिः पुरा जम्भारिविक्रमम्।
कथं जघान भगवान् भगनेत्रहरो हरः॥ १
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सुव्रत।

सूत उवाच

जलन्धर इति ख्यातो जलमण्डलसम्भवः॥ २
आसीदन्तकसङ्काशस्तपसा लब्धविक्रमः।
तेन देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥ ३
निर्जिताः समरे सर्वे ब्रह्मा च भगवानजः।
जित्वैव देवसङ्घातं ब्रह्माणं वै जलन्धरः॥ ४
जगाम देवदेवेशं विष्णुं विश्वहरं गुरुम्।
तयोः समभवद्युद्धं दिवारात्रमविश्रमम्॥ ५
जलन्धरेशयोस्तेन निर्जितो मधुसूदनः।
जलन्धरोऽपि तं जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥ ६
प्रोवाचेदं दितेः पुत्रान् न्यायधीर्जेतुमीश्वरम्।
सर्वे जिता मया युद्धे शङ्करो ह्यजितो रणे॥ ७
तं जित्वा सर्वमीशानं गणपैर्नन्दिना क्षणात्।
अहमेव भवत्वं च ब्रह्मत्वं वैष्णवं तथा॥ ८
वासवत्वं च युष्माकं दास्ये दानवपुङ्गवाः।
जलन्धरवचः श्रुत्वा सर्वे ते दानवाधमाः॥ ९
जगर्जुरुच्चैः पापिष्ठा मृत्युदर्शनतत्पराः।
दैत्यैरेतैस्तथान्यैश्च रथनागतुरङ्गमैः॥ १०

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हे सुव्रत! सिरपर जटाधारण करनेवाले तथा भगके नेत्रोंका हरण करनेवाले भगवान् शिवने इन्द्रके समान पराक्रमी जलन्धरका वध कैसे किया; हम लोगोंको यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ $1^1/_2$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] जलमण्डलसे उत्पन्न जलन्धर नामसे प्रसिद्ध यमराजतुल्य एक असुर था; वह अपनी तपस्यासे बड़ा पराक्रमी हो गया था। उसने युद्धमें गन्धर्व, यक्ष, उरग तथा राक्षसोंसहित सभी देवताओंको और अजन्मा भगवान् ब्रह्माको भी जीत लिया था॥ २-$3^1/_2$॥

देवसमुदाय तथा ब्रह्माको जीत करके वह जलन्धर विश्वविनाशक देवदेवेश्वर गुरु विष्णुके यहाँ पहुँचा। उन दोनोंमें दिन-रात निरन्तर युद्ध होता रहा और उसने मधुसूदन (विष्णु)-को भी पराजित कर दिया॥ ४-$5^1/_2$॥

उन देवदेव जनार्दनको भी जीतकर न्यायबुद्धिवाले जलन्धरने ईश्वर (शिव)-को जीतनेके लिये दितिके पुत्रोंसे कहा—'मैंने युद्धमें सबको जीत लिया है, केवल शंकर ही अजित रह गये हैं। हे श्रेष्ठ दानवो! गणेश्वरों तथा नन्दीसहित उन सर्व ईशानको क्षणभरमें जीतकर मैं तुम लोगोंको शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रका पद प्रदान कर दूँगा'॥ ६—$8^1/_2$॥

तब जलन्धरका वचन सुनकर वे सभी अधम, पापी तथा मृत्युके दर्शनमें तत्पर दानव उच्च स्वरमें

सन्नद्धैः सह सन्नह्य शर्वं प्रति ययौ बली।
भवोऽपि दृष्ट्वा दैत्येन्द्रं मेरुकूटमिव स्थितम्॥ ११

अवध्यत्वमपि श्रुत्वा तथान्यैर्भगनेत्रहा।
ब्रह्मणो वचनं रक्षन् रक्षको जगतां प्रभुः॥ १२

साम्बः सनन्दी सगणः प्रोवाच प्रहसन्निव।
किं कृत्यमसुरेशान युद्धेनानेन साम्प्रतम्॥ १३

मद्बाणैर्भिन्नसर्वाङ्गो मर्तुमभ्युद्यते मुदा।
जलन्धरोऽपि तद्वाक्यं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम्॥ १४

सुरेश्वरमुवाचेदं सुरेतरबलेश्वरः।
वाक्येनालं महाबाहो देवदेव वृषध्वज॥ १५

चन्द्रांशुसन्निभैः शस्त्रैर्हर योद्धुमिहागतः।
निशम्यास्य वचः शूली पादाङ्गुष्ठेन लीलया।
महाम्भसि चकाराशु रथाङ्गं रौद्रमायुधम्॥ १६

कृत्वार्णवाम्भसि सितं भगवान् रथाङ्गं
स्मृत्वा जगत्त्रयमनेन हताः सुराश्च।
दक्षान्धकान्तकपुरत्रययज्ञहर्ता
लोकत्रयान्तककरः प्रहसंस्तदाह॥ १७

पादेन निर्मितं दैत्यजलन्धरमहार्णवे।
बलवान् यदि चोद्धर्तुं तिष्ठ योद्धुं न चान्यथा॥ १८

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः।
प्रदहन्निव नेत्राभ्यां प्राहालोक्य जगत्त्रयम्॥ १९

गरजने लगे। इसके बाद वह बलशाली जलन्धर रथ, हाथी तथा घोड़ोंपर सवार शस्त्रयुक्त इन दैत्यों तथा अन्य [सैनिकों]-के साथ सावधान होकर शिवजीकी ओर चल पड़ा॥ ९-१०१/२॥

तब मेरुके शिखरके समान स्थित उस दैत्यराजको देखकर तथा उसके अवध्यत्वको दूसरोंसे सुनकर भगके नेत्रका हरण करनेवाले तथा लोकोंकी रक्षा करनेवाले प्रभु शिवने, जो पार्वती, नन्दी तथा गणोंसहित वहाँ थे, ब्रह्माके वचनकी रक्षा करते हुए हँसते हुए [उस दैत्यसे] कहा—'हे असुरेश्वर! अब इस युद्धसे कौन-सा कार्य सिद्ध होगा? मेरे बाणोंके द्वारा छिन्न-भिन्न अंगोंवाला होकर प्रसन्नतापूर्वक मरनेके लिये तैयार हो जाओ'॥ ११—१३१/२॥

कानोंको विदीर्ण करनेवाले उस वचनको सुनकर असुरसेनाके स्वामी जलन्धरने भी सुरेश्वर [शिव]-से यह [वचन] कहा—हे महाबाहो, हे देवदेव! हे वृषभध्वज! ऐसी बात मत बोलिये; हे हर! मैं चन्द्रकिरणोंके समान [चमकते हुए] शस्त्रोंसे युद्ध करनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ १४-१५१/२॥

उसके वचनको सुनकर शिवजीने शीघ्र ही लीलापूर्वक [अपने] पैरके अँगूठेसे महासागरमें भयानक चक्ररूपी आयुध निर्मित कर दिया॥ १६॥

तब समुद्रजलमें इस शुभ्र चक्रको स्थित करके और यह सोचकर कि 'इसके द्वारा तीनों लोक तथा देवतागण मार दिये जायेंगे' दक्ष, अन्धक, अन्तक और त्रिपुरके यज्ञको नष्ट करनेवाले तथा तीनों लोकोंका संहार करनेवाले भगवान् [शिव] हँसते हुए कहने लगे—हे दैत्य! हे जलन्धर! महासागरमें [मेरे] पादांगुष्ठसे निर्मित किये गये अस्त्रको उठानेमें यदि तुम समर्थ हो जाओ, तब तो युद्ध करनेके लिये ठहरो; अन्यथा नहीं॥ १७-१८॥

उनके उस वचनको सुनकर क्रोधसे प्रदीप्त नेत्रोंवाला वह [जलन्धर] तीनों लोकोंको [अपने] नेत्रोंसे दग्ध-सा करता हुआ शिवजीकी ओर देखकर कहने लगा॥ १९॥

जलन्धर उवाच

गदामुद्धृत्य हत्वा च नन्दिनं त्वां च शङ्कर।
हत्वा लोकान् सुरैः सार्धं डुण्डुभान् गरुडो यथा॥ २०

हन्तुं चराचरं सर्वं समर्थोऽहं सवासवम्।
को महेश्वर मद्बाणैरच्छेद्यो भुवनत्रये॥ २१

बालभावे च भगवान् तपसैव विनिर्जितः।
ब्रह्मा बली यौवने वै मुनयः सुरपुङ्गवैः॥ २२

दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तपसा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि॥ २३

इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः।
न सेहिरे यथा नागा गन्धं पक्षिपतेरिव॥ २४

न लब्ध्वा दिवि भूमौ च बाहवो मम शङ्कर।
समस्तान् पर्वतान् प्राप्य घर्षिताश्च गणेश्वर॥ २५

गिरीन्द्रो मन्दरः श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभनः।
घर्षितो बाहुदण्डेन कण्डूनोदार्थमापतत्॥ २६

गङ्गा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलार्थं हिमवद्गिरौ।
नारीणां मम भृत्यैश्च वज्रो बद्धो दिवौकसाम्॥ २७

वडवाया मुखं भग्नं गृहीत्वा वै करेण तु।
तत्क्षणादेव सकलं चैकार्णवमभूदिदम्॥ २८

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिन्धुजलोपरि।
सरथो भगवानिन्द्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम्॥ २९

गरुडोऽपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना।
उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहान्तरम्॥ ३०

कथञ्चिल्लब्धवान् शक्रः शचीमेकां प्रणम्य माम्।
मां न जानासि दैत्येन्द्रं जलन्धरमुमापते॥ ३१

सूत उवाच

एवमुक्तो महादेवः प्रादहद्वै रथं तदा।
तस्य नेत्राग्निभागैककलार्धार्धेन चाकुलम्॥ ३२

जलन्धर बोला—हे शंकर! जिस प्रकार गरुड़ [विषहीन] डुंडुभ सर्पोंको मार डालता है, वैसे ही अपनी गदा उठाकर नन्दीको तथा तुमको मारकर पुनः देवताओंसहित सभी लोकोंका संहार करके मैं इन्द्रसहित सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार करनेमें समर्थ हूँ। हे महेश्वर! तीनों लोकोंमें ऐसा कौन है, जो मेरे बाणोंद्वारा छेदनके योग्य न हो! मैंने बचपनमें तपस्यासे भगवान् विष्णुको जीत लिया था और युवावस्थामें बलशाली ब्रह्माको तथा बड़े-बड़े देवताओंसहित मुनियोंको जीत लिया था॥ २०—२२॥

मैंने चराचरसहित त्रिलोकीको क्षणभरमें दग्ध कर दिया था। हे रुद्र! क्या तुमने तपस्यासे भगवान् विष्णुको पराजित किया है? जैसे सर्प गरुड़की गन्धको सहन नहीं कर सकते, उसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु, वरुण आदि भी मेरी गन्धको सहन नहीं कर सकते हैं। हे शंकर! स्वर्गमें तथा पृथ्वीपर अपना प्रतिद्वन्द्वी न पाकर सभी पर्वतोंपर जाकर मैंने अपनी भुजाओंको घर्षित किया था। हे गणेश्वर! खुजलाहट मिटानेके लिये मैंने अपने बाहुदण्डसे गिरिराज मन्दर, श्रीसम्पन्न नीलपर्वत और अति सुन्दर मेरु पर्वतको घर्षित किया था और वे गिर पड़े थे॥ २३—२६॥

हिमालय पर्वतपर लीलावश मेरी भुजाओंके द्वारा गंगा रोक ली गयी थी और मेरी स्त्रियोंके सेवकोंद्वारा देवताओंका वज्र बाँध लिया गया था। मैंने हाथसे पकड़कर बड़वाग्निके मुखको भंग कर दिया था; उसी क्षण यह सब एकार्णव हो गया था। मैंने ऐरावत आदि हाथियोंको समुद्रजलके ऊपर फेंक दिया था और भगवान् इन्द्रको रथसहित सौ योजन दूर फेंक दिया था। मैंने विष्णुसहित गरुड़को भी नागपाशसे बाँध लिया था। मैंने उर्वशी आदि नारियोंको कारागृहके अन्दर डाल दिया था और इन्द्रने मुझको प्रणाम करके किसी प्रकार केवल शचीको वापस प्राप्त किया था। हे उमापते! [क्या] आप मुझ दैत्यराज जलन्धरको नहीं जानते हैं?॥ २७—३१॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तब उसके इस प्रकार कहनेपर महादेवने अपने नेत्रकी अग्निके एक

दैत्यानामतुलबलैर्हयैश्च नागै-
दैत्येन्द्रास्त्रिपुररिपोर्निरीक्षणेन ।
नागाद्वैशसमनुसंवृतश्च नागै-
र्देवेशं वचनमुवाच चाल्पबुद्धिः ॥ ३३

किं कार्यं मम युधि देवदैत्य-
सङ्घैर्हन्तुं यत्सकलमिदं क्षणात्समर्थः ।
यत्तस्माद्भयमिह नास्ति योद्धु-
मीश वाञ्छैषा विपुलतरा न संशयोऽत्र ॥ ३४

तस्मात्त्वं मम मदनारिदक्षशत्रो
यज्ञारे त्रिपुररिपो ममैव वीरैः ।
भूतेन्द्रैर्हरिवदनेन देवसङ्घैर्योद्धुं
ते बलमिह चास्ति चेद्धि तिष्ठ ॥ ३५

इत्युक्त्वाथ महादेवं महादेवारिनन्दनः ।
न चचाल न सस्मार निहतान् बान्धवान् युधि ॥ ३६

दुर्मदेनाविनीतात्मा दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात् ।
सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं तेन हन्तुं समुद्यतः ॥ ३७

दुर्धरेण रथाङ्गेन कृच्छ्रेणापि द्विजोत्तमाः ।
स्थापयामास वै स्कन्धे द्विधाभूतश्च तेन वै ॥ ३८

कुलिशेन यथा छिन्नो द्विधा गिरिवरो द्विजाः ।
पपात दैत्यो बलवानञ्जनाद्रिरिवापरः ॥ ३९

तस्य रक्तेन रौद्रेण सम्पूर्णमभवत्क्षणात् ।
तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च ॥ ४०

महारौरवमासाद्य रक्तकुण्डमभूदहो ।
जलन्धरं हतं दृष्ट्वा देवगन्धर्वपार्षदाः ॥ ४१

सिंहनादं महत्कृत्वा साधु देवेति चाब्रुवन् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि जलन्धरविमर्दनम् ॥ ४२

श्रावयेद्वा यथान्यायं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ४३

भागकी कलाके आधेके भी आधे भागसे उसके समूचे रथको जला दिया ॥ ३२ ॥

त्रिपुरशत्रु शिवके देखनेमात्रसे दैत्योंकी विशाल सेनाओं, घोड़ों तथा हाथियोंके साथ सभी दैत्येन्द्र दग्ध हो गये। गजोंसे चारों ओरसे घिरा हुआ वह अल्पबुद्धि जलन्धर हाथीसे उतरकर विनाशके लिये उद्यत देवेश [शिव]-से बोला—मुझे युद्ध करनेसे क्या प्रयोजन; क्योंकि मैं देवदैत्य-सहित इस समस्त जगत्को क्षणभरमें नष्ट करनेमें समर्थ हूँ। अतः हे ईश! मुझे कोई भय नहीं है, किंतु आपसे युद्ध करनेकी मेरी तीव्र इच्छा है; इसमें सन्देह नहीं है। अतएव हे मदनारि! हे दक्षशत्रु! हे यज्ञशत्रु! हे त्रिपुरशत्रु! यदि भूतगणों, नन्दी, देवसमुदायसहित मेरे वीरोंके साथ युद्ध करनेका तुम्हारा सामर्थ्य है, तो यहाँ ठहरो ॥ ३३—३५ ॥

महादेवसे ऐसा कहकर महादेवके शत्रुओंको आनन्दित करनेवाला वह [जलन्धर] न तो हिला-डुला और न तो उसने युद्धमें मारे गये बान्धवोंका स्मरण किया। अभिमानके कारण उद्दण्ड स्वभाववाला जलन्धर भुजाओंसे शब्द करके [शिवको] मारनेके लिये उद्यत हुआ और उसने [रुद्रनिर्मित] जो सुदर्शन नामक चक्र था, उसे अपने भुजाबलसे बड़े प्रयासके द्वारा अपने कन्धेपर रखा; हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उसी समय उस दुर्धर (भयानक) चक्रसे उस जलन्धरके दो टुकड़े उसी प्रकार हो गये, जैसे वज्रके द्वारा काटा गया कोई महापर्वत दो भागोंमें हो जाता है। हे द्विजो! वह बलवान् दैत्य दूसरे अंजन पर्वतकी भाँति गिर पड़ा ॥ ३६—३९ ॥

उसके भयानक रक्तसे उसी क्षण वह स्थान भर गया; अहो, रुद्रकी आज्ञासे उसका सारा रक्त तथा मांस महारौरव नरकमें पहुँचकर रक्तकुण्ड बन गया। उस समय जलन्धरको मरा हुआ देखकर देवता, गन्धर्व तथा पार्षद महान् सिंहनाद करके 'हे देव! बहुत अच्छा हुआ'—ऐसा कहने लगे। जो [व्यक्ति] जलन्धर-वधकी इस कथाको विधिपूर्वक पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा सुनाता है, वह गणपतिपद प्राप्त करता है ॥ ४०—४३ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे जलन्धरवधो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'जलन्धर-वध' नामक सत्तानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९७ ॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुद्वारा एक सहस्र नामोंसे भगवान् शिवकी स्तुति करना तथा प्रसन्न होकर महेश्वरद्वारा उन्हें सुदर्शनचक्र प्रदान करना

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन वै सूत देवदेवान्महेश्वरात्।
सुदर्शनाख्यं वै लब्धं वक्तुमर्हसि विष्णुना॥ १

सूत उवाच

देवानामसुरेन्द्राणामभवच्च सुदारुणः।
सर्वेषामेव भूतानां विनाशकरणो महान्॥ २

ते देवाः शक्तिमुशलैः सायकैर्नतपर्वभिः।
प्रभिद्यमानाः कुन्तैश्च दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥ ३

पराजितास्तदा देवा देवदेवेश्वरं हरिम्।
प्रणेमुस्तं सुरेशानं शोकसंविग्नमानसाः॥ ४

तान् समीक्ष्याथ भगवान् देवदेवेश्वरो हरिः।
प्रणिपत्य स्थितान् देवानिदं वचनमब्रवीत्॥ ५

वत्साः किमिति वै देवाश्च्युतालङ्कारविक्रमाः।
समागताः ससन्तापाः वक्तुमर्हथ सुव्रताः॥ ६

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तथाभूताः सुरोत्तमाः।
प्रणम्याहुर्यथावृत्तं देवदेवाय विष्णवे॥ ७

भगवन् देवदेवेश विष्णो जिष्णो जनार्दन।
दानवैः पीडिताः सर्वे वयं शरणमागताः॥ ८

त्वमेव देवदेवेश गतिर्नः पुरुषोत्तम।
त्वमेव परमात्मा हि त्वं पिता जगतामपि॥ ९

त्वमेव भर्ता हर्ता च भोक्ता दाता जनार्दन।
हन्तुमर्हसि तस्मात्त्वं दानवान् दानवार्दन॥ १०

दैत्याश्च वैष्णवैर्ब्राह्मै रौद्रैर्याम्यैः सुदारुणैः।
कौबेरैश्चैव सौम्यैश्च नैर्ऋत्यैर्वारुणैर्दृढैः॥ ११

वायव्यैश्च तथाग्नेयैरैशानैर्वार्षिकैः शुभैः।
सौरै रौद्रैस्तथा भीमैः कम्पनैर्जृम्भणैर्दृढैः॥ १२

अवध्या वरलाभात्ते सर्वे वारिजलोचन।
सूर्यमण्डलसम्भूतं त्वदीयं चक्रमुद्यतम्॥ १३

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! भगवान् विष्णुने देवदेव महेश्वरसे सुदर्शन नामक चक्र कैसे प्राप्त किया; इसे आप बतानेकी कृपा करें॥ १॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] देवताओं तथा महान् असुरोंके बीच सभी प्राणियोंके लिये विनाशकारी अति भयंकर तथा महान् युद्ध हुआ। शक्ति, मुसलों, झुके पर्वोंवाले बाणों तथा भालोंसे प्रहार किये जानेपर वे देवतागण भयसे व्याकुल होकर भाग गये॥ २-३॥

तदनन्तर पराजित होकर शोकसंतप्त मनवाले देवताओंने देवदेवेश्वर सुरेशान विष्णुके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४॥

प्रणाम करके स्थित हुए उन देवताओंकी ओर देखकर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुने यह वचन कहा—हे वत्स देवतागण! हे सुव्रतो! अलंकार तथा पराक्रमसे विहीन आप लोग दुःखी होकर यहाँपर किसलिये आये हैं; इसे बताइये॥ ५-६॥

उनके उस वचनको सुनकर वैसी दशाको प्राप्त श्रेष्ठ देवतागण प्रणाम करके जैसा घटित हुआ था, वह सब उन देवदेव विष्णुसे कहने लगे॥ ७॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे विष्णो! हे जिष्णो! हे जनार्दन! दानवोंसे पीड़ित होकर हम सभी आपकी शरणमें आये हैं। हे देवदेवेश! हे पुरुषोत्तम! आप ही हमलोगोंकी गति हैं, आप ही परमात्मा हैं और आप ही सभी लोकोंके पिता भी हैं। हे जनार्दन! आप ही भर्ता (भरण करनेवाले), हर्ता (संहार करनेवाले), भोक्ता तथा दाता हैं; अतः हे दैत्यमर्दन! आप दानवोंका वध करनेकी कृपा कीजिये॥ ८—१०॥

हे कमलनयन! वे सभी दैत्य वर प्राप्त कर लेनेके कारण विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, यम, कुबेर, चन्द्र, निर्ऋति, वरुण, वायु, अग्नि, ईशान, पर्जन्य तथा सूर्यके अत्यन्त दृढ़-दारुण-भयानक-कँपा देनेवाले तथा शक्तिरहित कर

कुण्ठितं हि दधीचेन च्यावनेन जगद्गुरो।
दण्डं शार्ङ्गं तवास्त्रं च लब्धं दैत्यैः प्रसादतः॥ १४

पुरा जलन्धरं हन्तुं निर्मितं त्रिपुरारिणा।
रथाङ्गं सुशितं घोरं तेन तान् हन्तुमर्हसि॥ १५

तस्मात्तेन निहन्तव्या नान्यैः शस्त्रशतैरपि।
ततो निशम्य तेषां वै वचनं वारिजेक्षणः॥ १६

वाचस्पतिमुखानाह स हरिश्चक्रभृत्स्वयम्।

श्रीविष्णुरुवाच

भो भो देवा महादेवं सर्वैर्देवैः सनातनैः॥ १७

सम्प्राप्य साम्प्रतं सर्वं करिष्यामि दिवौकसाम्।
देवा जलन्धरं हन्तुं निर्मितं हि पुरारिणा॥ १८

लब्ध्वा रथाङ्गं तेनैव निहत्य च महासुरान्।
सर्वान् धुन्धुमुखान् दैत्यानष्टषष्टिशतान् सुरान्॥ १९

सबान्धवान् क्षणादेव युष्मान् सन्तारयाम्यहम्।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठान् सुरश्रेष्ठमनुस्मरन्॥ २०

सुरश्रेष्ठस्तदा श्रेष्ठं पूजयामास शङ्करम्।
लिङ्गं स्थाप्य यथान्यायं हिमवच्छिखरे शुभे॥ २१

मेरुपर्वतसङ्काशं निर्मितं विश्वकर्मणा।
त्वरिताख्येन रुद्रेण रौद्रेण च जनार्दनः॥ २२

स्नाप्य सम्पूज्य गन्धाद्यैर्ज्वालाकारं मनोरमम्।
तुष्टाव च तदा रुद्रं सम्पूज्याग्नौ प्रणम्य च॥ २३

देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन यथाक्रमम्।
पूजयामास च शिवं प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥ २४

देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन महेश्वरम्।
प्रतिनाम सपद्मेन पूजयामास शङ्करम्॥ २५

अग्नौ च नामभिर्देवं भवाद्यैः समिदादिभिः।
स्वाहान्तैर्विधिवद्धुत्वा प्रत्येकमयुतं प्रभुम्॥ २६

देनेवाले अस्त्रोंसे भी अवध्य हो गये हैं। हे जगद्गुरो! च्यवनपुत्र दधीचने सूर्यमण्डलसे उत्पन्न आपके उठे हुए चक्रको कुण्ठित कर दिया था। आपकी कृपासे दैत्योंने आपके दण्ड, धनुष तथा अस्त्रको प्राप्त कर लिया है। पूर्वकालमें त्रिपुरशत्रु [शिव]-के द्वारा जलन्धरका संहार करनेके लिये एक भयानक तथा तेज धारवाले चक्रका निर्माण किया गया था; उसीसे आप उन [दानवों]-का वध कर सकते हैं। उसी अस्त्रसे ये दानव मारे जा सकते हैं, अन्य सैकड़ों अस्त्रोंसे नहीं॥ ११—१५$^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर उनका वचन सुनकर कमलके समान नेत्रवाले चक्रधारी वे विष्णु वाचस्पति आदि प्रधान देवताओंसे स्वयं कहने लगे॥ १६$^{1}/_{2}$॥

श्रीविष्णु बोले—हे देवताओ! मैं इस समय सभी सनातन देवताओंके साथ महादेवके पास पहुँचकर [आप] देवताओंका सम्पूर्ण कार्य करूँगा। हे देवताओं! जलन्धरका वध करनेके लिये शिवजीके द्वारा बनाये गये चक्रको प्राप्त करके उसीके द्वारा सभी महान् असुरों, धुन्धु आदि दैत्यों तथा अरसठ सौ अन्य असुरोंको बान्धवोंसहित क्षणभरमें मारकर मैं आप देवताओंका उद्धार करूँगा॥ १७—१९$^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] श्रेष्ठ देवताओंसे यह कहकर देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णुने सुरश्रेष्ठ शिवका स्मरण करते हुए उन श्रेष्ठ शंकरकी पूजा की। विश्वकर्माद्वारा निर्मित मेरुपर्वत-सदृश लिङ्गको हिमवान्के उत्तम शिखरपर विधिपूर्वक स्थापित करके त्वरितरुद्र तथा रुद्रसूक्तके द्वारा अभिषेक करके गन्ध आदिके द्वारा पूजा करके जनार्दनने ज्योतिरूप मनोरम शिवकी स्तुति की। पुनः अग्निमें देव रुद्रकी पूजा करके और उन्हें प्रणाम करके आदिमें भव नामवाले सहस्रनामके द्वारा क्रमसे आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः लगाकर शिवकी पूजा की। प्रारम्भमें भव नामवाले सहस्रनामके द्वारा प्रत्येक नामका उच्चारण करते हुए उन्होंने कमलपुष्पसे महेश्वर भगवान् शंकरकी पूजा की। तदनन्तर उन्होंने अन्तमें स्वाहावाले भव आदि नामोंसे समिधा आदिके द्वारा विधिपूर्वक अग्निमें प्रत्येक नामकी दस हजार आहुति

तुष्टाव च पुनः शम्भुं भवाद्यैर्भवमीश्वरम्।

देकर पुनः भव आदि नामोंसे [उन] प्रभु भव ईश्वर शम्भुकी इस प्रकार स्तुति की—॥ २०—२६½॥

श्रीविष्णुरुवाच

भवः शिवो हरो रुद्रः पुरुषः पद्मलोचनः॥ २७
अर्थितव्यः सदाचारः सर्वशम्भुर्महेश्वरः।
ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ २८

श्रीविष्णु बोले—भव-शिव, हर-रुद्र, पुरुष, पद्मलोचन, अर्थितव्य, सदाचार, सर्वशम्भुमहेश्वर, ईश्वर, स्थाणु, ईशान, सहस्राक्ष-सहस्रपात्॥ २७-२८॥

वरीयान् वरदो वन्द्यः शङ्करः परमेश्वरः।
गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजनः॥ २९

वरीयान् वरद-वन्द्य, शङ्कर, परमेश्वर, गंगाधर, शूलधर, परार्थैकप्रयोजन॥ २९॥

सर्वज्ञः सर्वदेवादिगिरिधन्वा जटाधरः।
चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विद्वान् विश्वामरेश्वरः॥ ३०

सर्वज्ञ, सर्वदेवादिगिरिधन्वा, जटाधर, चन्द्रापीड, चन्द्रमौलि, विद्वान्, विश्वामरेश्वर॥ ३०॥

वेदान्तसारसन्दोहः कपाली नीललोहितः।
ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः॥ ३१

वेदान्तसारसन्दोह, कपालीनीललोहित, ध्यानाधार, अपरिच्छेद्य, गौरीभर्ता, गणेश्वर॥ ३१॥

अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः।
ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः॥ ३२

अष्टमूर्ति-विश्वमूर्ति, त्रिवर्ग, स्वर्गसाधन, ज्ञानगम्य, दृढ़प्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन॥ ३२॥

वामदेवो महादेवः पाण्डुः परिदृढोऽदृढः।
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिरन्तरः॥ ३३

वामदेव, महादेव, पाण्डु, परिदृढ, अदृढ, विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, शुचि, अन्तर॥ ३३॥

सर्वप्रणयसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः।
ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः॥ ३४

सर्वप्रणयसंवादी, वृषांक, वृषवाहन, ईश-पिनाकी, खट्वाङ्गी, चित्रवेष, चिरन्तन॥ ३४॥

तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माङ्गहृज्जटी।
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः॥ ३५

तमोहर, महायोगी-गोप्ता, ब्रह्मांगहृज्जटी, कालकाल, कृत्तिवासा, सुभग, प्रणवात्मक॥ ३५॥

उन्मत्तवेषश्चक्षुष्यो दुर्वासाः स्मरशासनः।
दृढायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठीपरायणः॥ ३६

उन्मत्तवेष, चक्षुष्य, दुर्वासा, स्मरशासन, दृढ़ायुध-स्कन्दगुरु, परमेष्ठीपरायण॥ ३६॥

अनादिमध्यनिधनो गिरिशो गिरिबान्धवः।
कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमोत्तमः॥ ३७

अनादिमध्यनिधन, गिरिश-गिरिबान्धव, कुबेरबन्धु-श्रीकण्ठ, लोकवर्णोत्तमोत्तम॥ ३७॥

सामान्यदेवः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधी।
विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः॥ ३८

सामान्यदेव, कोदण्डी, नीलकण्ठ, परश्वधी, विशालाक्ष, मृगव्याध, सुरेश, सूर्यतापन॥ ३८॥

धर्मकर्माक्षमः क्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित्।
उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यप्रियभक्तः प्रियंवदः॥ ३९

धर्मकर्माक्षम, क्षेत्र-भगवान्, भगनेत्रभिद्-उग्र, पशुपति, तार्क्ष्यप्रियभक्त, प्रियंवद॥ ३९॥

दान्तोदयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः।
श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः॥ ४०

दान्तोदयाकर, दक्ष, कपर्दी, कामशासन, श्मशाननिलय-सूक्ष्म, श्मशानस्थ, महेश्वर॥ ४०॥

लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महौषधी।
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः॥ ४१

लोककर्ता, भूतपति, महाकर्ता, महौषधी, उत्तर, गोपति, गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन॥ ४१॥

नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमसोमरतः सुखी।
सोमपोऽमृतपः सोमो महानीतिर्महामतिः॥ ४२

नीति, सुनीति, शुद्धात्मा, सोमसोमरत, सुखी, सोमप, अमृतप, सोम, महानीति, महामति॥ ४२॥

अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः।
लोककारो वेदकारः सूत्रकारः सनातनः॥ ४३

अजातशत्रु, आलोक, सम्भाव्य, हव्यवाहन, लोककार, वेदकार, सूत्रकार, सनातन॥ ४३॥

महर्षिः कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः।
पिनाकपाणिभूर्देवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सदा॥ ४४
त्रिधामा सौभगः शर्वः सर्वज्ञः सर्वगोचरः।
ब्रह्मधृग्विश्वसृक्स्वर्गः कर्णिकारः प्रियः कविः॥ ४५
शाखो विशाखो गोशाखः शिवो नैकः क्रतुः समः।
गङ्गाप्लवोदको भावः सकलः स्थपतिस्थिरः॥ ४६
विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः।
सगणो गणकार्यश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥ ४७
कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः॥ ४८
समायुक्तो निवृत्तात्मा धर्मयुक्तः सदाशिवः।
चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः॥ ४९
दुर्गमो दुर्लभो दुर्गः सर्वायुधविशारदः।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः॥ ५०
शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशोऽमृताशनः।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः॥ ५१
हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालयः।
महाह्रदो महागर्भः सिद्धवृन्दारवन्दितः॥ ५२
व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधिः।
अमृताङ्गोऽमृतवपुः पञ्चयज्ञः प्रभञ्जनः॥ ५३
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः पारिजातः परावरः।
सुलभः सुव्रतः शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधिः॥ ५४
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः।
आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलाचलः॥ ५५
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः।
धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः॥ ५६
अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः।
अभिवाद्यो महाचार्यो विश्वकर्मा विशारदः॥ ५७
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामोऽजितप्रियः॥ ५८
कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः।
तपस्वी तारको धीमान् प्रधानप्रभुरव्ययः॥ ५९
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रयः॥ ६०
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्विरामो विद्रुमच्छविः।
भक्तिगम्यः परं ब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः॥ ६१

महर्षि कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, त्रिलोचन, पिनाकपाणिभूदेव, स्वस्तिद, सदास्वस्तिकृत्॥ ४४॥

त्रिधामा, सौभग, शर्व-सर्वज्ञ, सर्वगोचर, ब्रह्मधृग्विश्वसृक्स्वर्ग, कर्णिकार, प्रिय, कवि॥ ४५॥

शाख-विशाख, गोशाख, शिव, नैक, क्रतु, सम, गंगाप्लवोदक, भाव, सकल, स्थपतिस्थिर॥ ४६॥

विजितात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहनसारथि, सगण, गणकार्य, सुकीर्ति, छिन्नसंशय॥ ४७॥

कामदेव, कामपाल, भस्मोद्धूलितविग्रह, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी-कान्त, कृतागम॥ ४८॥

समायुक्त, निवृत्तात्मा, धर्मयुक्त, सदाशिव, चतुर्मुखचतुर्बाहु, दुरावास, दुरासद॥ ४९॥

दुर्गमदुर्लभ, दुर्ग, सर्वायुधविशारद, अध्यात्म-योगनिलय, सुतन्तु, तन्तुवर्धन॥ ५०॥

शुभाङ्ग, लोकसारंग, जगदीश, अमृताशन, भस्मशुद्धिकर, मेरु, ओजस्वी, शुद्धविग्रह॥ ५१॥

हिरण्यरेता, तरणि-मरीचि, महिमालय, महाह्रद, महागर्भ, सिद्धवृन्दारवन्दित॥ ५२॥

व्याघ्रचर्मधर, व्याली, महाभूत, महानिधि, अमृतांग, अमृतवपु, पंचयज्ञ, प्रभंजन॥ ५३॥

पंचविंशतितत्त्वज्ञ, पारिजात, परावर, सुलभ, सुव्रतशूर, वाङ्मयैकनिधि, निधि॥ ५४॥

वर्णाश्रमगुरु, वर्णी, शत्रुजिच्छत्रुतापन, आश्रम, क्षपण, क्षाम, ज्ञानवान्, अचलाचल॥ ५५॥

प्रमाणभूत, दुर्ज्ञेय, सुपर्ण, वायुवाहन, धनुर्धरधनुर्वेद, गुणराशि, गुणाकर॥ ५६॥

अनन्तदृष्टि, आनन्द, दण्डदमयिता, दम, अभिवाद्य, महाचार्य, विश्वकर्मा, विशारद॥ ५७॥

वीतराग, विनीतात्मा, तपस्वी, भूतभावन, उन्मत्तवेषप्रच्छन्न, जितकाम, अजितप्रिय॥ ५८॥

कल्याणप्रकृति, कल्प, सर्वलोकप्रजापति, तपस्वीतारक, धीमान्, प्रधानप्रभु, अव्यय॥ ५९॥

लोकपाल, अन्तर्हितात्मा, कल्पादि, कमलेक्षण, वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ, नियम, नियमाश्रय॥ ६०॥

चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, विराम, विद्रुमच्छवि,

अद्रिराजालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
सर्वकर्माचलस्त्वष्टा मङ्गल्यो मङ्गलावृतः॥ ६२
महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः।
अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः॥ ६३
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वदर्शनः।
अजः सर्वेश्वरः स्निग्धो महारेता महाबलः॥ ६४
योगी योग्यो महारेताः सिद्धः सर्वादिरग्निदः।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः॥ ६५
अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्।
कमण्डलुधरो धन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः॥ ६६
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनेता दुराधरः।
अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः॥ ६७
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः।
महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरन्दरः॥ ६८
निशाचरः प्रेतचारिमहाशक्तिर्महाद्युतिः।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वहार्यमितो गतिः॥ ६९
बहुश्रुतो बहुमयो नियतात्मा भवोद्भवः।
ओजस्तेजोद्युतिकरो नर्तकः सर्वकामकः॥ ७०
नृत्यप्रियो नृत्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रतापनः।
बुद्धस्पष्टाक्षरो मन्त्रः सन्मानः सारसम्प्लवः॥ ७१
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः।
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शरभः शरभो धनुः॥ ७२
अपां निधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित्।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः॥ ७३
विरोचनः सुरगणो विद्येशो विबुधाश्रयः।
बालरूपो बलोन्माथी विवर्तो गहनो गुरुः॥ ७४
करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः।
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता निशाकरः॥ ७५
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः।
दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्मात्मनि संस्थितः॥ ७६
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरहा वीरभृद्विराट्।
वीरचूडामणिर्वेत्ता तीव्रनादो नदीधरः॥ ७७
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः।
वालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्निधिरव्ययः॥ ७८

भक्तिगम्य, परं-ब्रह्ममृगबाणार्पण, अनघ॥ ६१॥

अद्रिराजालय, कान्त, परमात्मा, जगद्गुरु, सर्वकर्माचल, त्वष्टा, मंगल्यमंगलावृत॥ ६२॥

महातपा, दीर्घतपा, स्थविष्ठ, स्थविर, ध्रुव, अहः, संवत्सर, व्याप्ति, प्रमाण, परम, तप॥ ६३॥

संवत्सरकर, मन्त्र-प्रत्यय, सर्वदर्शन, अज, सर्वेश्वर, स्निग्ध, महारेतामहाबलः॥ ६४॥

योगी, योग्य, महारेता, सिद्ध, सर्वादि, अग्निदः, वसु, वसुमना, सत्यसर्वपापहर, हर॥ ६५॥

अमृतशाश्वत, शान्त, बाणहस्तप्रतापवान्, कमण्डलुधर, धन्वी, वेदाङ्ग, वेदविद्, मुनि॥ ६६॥

भ्राजिष्णु, भोजनभोक्ता, लोकनेता, दुराधर, अतीन्द्रिय, महामाय, सर्वावास, चतुष्पथ॥ ६७॥

कालयोगी, महानाद, महोत्साह, महाबल, महाबुद्धि, महावीर्य, भूतचारी, पुरन्दर॥ ६८॥

निशाचर, प्रेतचारिमहाशक्ति, महाद्युति, अनिर्देश्यवपु, श्रीमान्, सर्वहार्यमित, गति॥ ६९॥

बहुश्रुत, बहुमय, नियतात्मा, भवोद्भव, ओजस्तेजोद्युतिकर, नर्तक, सर्वकामक॥ ७०॥

नृत्यप्रिय, नृत्यनृत्य, प्रकाशात्माप्रतापन, बुद्धस्पष्टाक्षर, मन्त्र, सन्मान, सारसंप्लव॥ ७१॥

युगादिकृद्युगावर्त, गम्भीर, वृषवाहन, इष्ट, विशिष्ट-शिष्टेष्ट, शरभ, शरभधनुः॥ ७२॥

अपांनिधि, अधिष्ठानविजय, जयकालवित्, प्रतिष्ठित, प्रमाणज्ञ, हिरण्यकवच, हरि॥ ७३॥

विरोचन, सुरगण, विद्येशविबुधाश्रय, बालरूप, बलोन्माथी, विवर्त, गहनगुरु॥ ७४॥

करण, कारण, कर्ता, सर्वबन्धविमोचन, विद्वत्तमवीतभय, विश्वभर्ता, निशाकर॥ ७५॥

व्यवसाय, व्यवस्थान, स्थानद, जगदादिज, दुन्दुभ, ललित, विश्व, भवात्मात्मनिसंस्थित॥ ७६॥

वीरेश्वरवीरभद्र, वीरहा, वीरभृद्विराट्, वीरचूड़ामणि, वेत्ता, तीव्रनाद, नदीधर॥ ७७॥

आज्ञाधार, त्रिशूली, शिपिविष्ट, शिवालय, वालखिल्य, महाचाप, तिग्मांशु, निधि-अव्यय॥ ७८॥

अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः।
मघवान् कौशिको गोमान् विश्रामः सर्वशासनः॥ ७९
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत्।
अमोघदण्डी मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी॥ ८०
परमार्थः परमयः शम्बरो व्याघ्रकोऽनलः।
रुचिर्वररुचिर्वन्द्यो वाचस्पतिरहर्पतिः॥ ८१
रविर्विरोचनः स्कन्धः शास्ता वैवस्वतोऽजनः।
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तरागः पराजयः॥ ८२
कैलासपतिकामारिः सविता रविलोचनः।
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वहर्तानिवारितः॥ ८३
नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः॥ ८४
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहोऽभयः।
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटित्रिदशाधिपः॥ ८५
विश्वगोप्ता विश्वभर्ता सुधीरो रुचिराङ्गदः।
जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्नयः॥ ८६
विशिष्टः काश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः।
प्रणवः सप्तधाचारो महाकायो महाधनुः॥ ८७
जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः।
तत्त्वातत्त्वविवेकात्मा विभूष्णुर्भूतिभूषणः॥ ८८
ऋषिर्ब्राह्मणविज्जिष्णुर्जन्ममृत्युजरातिगः।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञान्तोऽमोघविक्रमः॥ ८९
महेन्द्रो दुर्भरः सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः॥ ९०
आत्मयोनिरनाद्यन्तो षड्विंशत्सप्तलोकधृक्।
गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः॥ ९१
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा।
अमोघोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वरः॥ ९२
स्वयंज्योतिरनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः।
पिङ्गलः कपिलश्मश्रुः शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनुः॥ ९३
ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानी निरुत्पत्तिरुपप्लवः।
भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो बृहस्पतिः॥ ९४
उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः।
नक्षत्रमाली राकेशः साधिष्ठानः षडाश्रयः॥ ९५
पवित्रपाणिः पापारिर्मणिपूरो मनोगतिः।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शुक्लः शान्तो वृषाकपिः॥ ९६

अभिराम, सुशरण, सुब्रह्मण्य, सुधापति, मघवान्कौशिक, गोमान्, विश्राम, सर्वशासन॥ ७९॥ ललाटाक्ष, विश्वदेह, सार, संसारचक्रभृत्, अमोघदण्डी, मध्यस्थ, हिरण्य, ब्रह्मवर्चसी॥ ८०॥ परमार्थ, परमय, शम्बर, व्याघ्रक, अनल, रुचि, वररुचि, वन्द्य, वाचस्पति, अहर्पति॥ ८१॥ रविविरोचन, स्कन्ध, शास्तावैवस्वत, अजन, युक्ति, उन्नतकीर्ति, शान्तराग, पराजय॥ ८२॥ कैलासपतिकामारि, सविता, रविलोचन, विद्वत्तम, वीतभय, विश्वहर्तानिवारित॥ ८३॥ नित्य, नियतकल्याण, पुण्यश्रवणकीर्तन, दूरश्रवा, विश्वसह, ध्येय, दुःस्वप्ननाशन॥ ८४॥ उत्तारक, दुष्कृतिहा, दुर्धर्ष, दुःसह, अभय, अनादि, भू, भुवोलक्ष्मी, किरीटित्रिदशाधिप॥ ८५॥ विश्वगोप्ता, विश्वभर्ता, सुधीर, रुचिरांगद, जनन, जनजन्मादि, प्रीतिमान्, नीतिमान्, नय॥ ८६॥ विशिष्ट, काश्यप, भानु, भीम, भीमपराक्रम, प्रणव, सप्तधाचार, महाकायमहाधनु॥ ८७॥ जन्माधिप, महादेव, सकलागमपारग, तत्त्वातत्त्वविवेकात्मा, विभूष्णु, भूतिभूषण॥ ८८॥ ऋषि, ब्राह्मणविज्जिष्णु, जन्ममृत्युजरातिग, यज्ञयज्ञपति, यज्वा, यज्ञान्त, अमोघविक्रम॥ ८९॥ महेन्द्र, दुर्भर, सेनी, यज्ञांगयज्ञवाहन, पंचब्रह्मसमुत्पत्ति, विश्वेश, विमलोदय॥ ९०॥ आत्मयोनि, अनाद्यन्त, षड्विंशत्सप्तलोकधृक्, गायत्रीवल्लभ, प्रांशु, विश्वावास, प्रभाकर॥ ९१॥ शिशु, गिरिरत, सम्राट्सुषेण, सुरशत्रुहा, अमोघ, अरिष्टमथन, मुकुन्द, विगतज्वर॥ ९२॥ स्वयंज्योति, अनुज्योति, आत्मज्योति, अचंचल, पिंगल, कपिलश्मश्रु, शास्त्रनेत्रत्रयीतनु॥ ९३॥ ज्ञानस्कन्ध, महाज्ञानी, निरुत्पत्ति, उपप्लव, भग, विवस्वान्-आदित्य, योगाचार्य, बृहस्पति॥ ९४॥ उदारकीर्ति, उद्योगी, सद्योगी, सदसन्मय, नक्षत्रमालीराकेश, साधिष्ठान, षडाश्रय॥ ९५॥ पवित्रपाणि, पापारि, मणिपूर, मनोगति,

विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः।
अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः॥ ९७
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः।
जगद्धितैषिसुगतः कुमारः कुशलागमः॥ ९८
हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतधरो ध्वनिः।
अरोगो नियमाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजोत्तमः॥ ९९
बृहज्ज्योतिः सुधामा च महाज्योतिरनुत्तमः।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक्॥ १००
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः।
निरावरणधर्मज्ञो विरिञ्चो विष्टरश्रवाः॥ १०१
आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रिज्ञानमूर्तिर्महायशाः।
लोकचूडामणिर्वीरः चण्डसत्यपराक्रमः॥ १०२
व्यालकल्पो महाकल्पो महावृक्षः कलाधरः।
अलङ्करिष्णुस्त्वचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः॥ १०३
आशुशब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रः प्रमाथी पापनाशनः॥ १०४
वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः।
जर्यो जराधिशमनो लोहितश्च तनूनपात्॥ १०५
पृषदश्वो नभो योनिः सुप्रतीकस्तमिस्त्रहा।
निदाघस्तपनो मेघः पक्षः परपुरञ्जयः॥ १०६
मुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः॥ १०७
अङ्गिरा मुनिरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः।
पावनः पुरुजिच्छक्रस्त्रिविद्यो नरवाहनः॥ १०८
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः।
तेजोनिधिर्ज्ञाननिधिर्विपाको विघ्नकारकः॥ १०९
अधरोऽनुत्तरो ज्ञेयो ज्येष्ठो निःश्रेयसालयः।
शैलो नगस्तनुर्दोहो दानवारिररिन्दमः॥ ११०
चारुधीर्जनकश्चारुविशल्यो लोकशल्यकृत्।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः॥ १११
आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः॥ ११२
न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरञ्जनः।
सहस्त्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः॥ ११३

हृत्पुण्डरीकमासीन, शुक्ल, शान्तवृषाकपि॥ ९६॥

विष्णु, ग्रहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थनाशन, अधर्मशत्रु, अक्षय्य, पुरुहूतपुरुष्टुत॥ ९७॥

ब्रह्मगर्भ, बृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैषिसुगत, कुमार, कुशलागम॥ ९८॥

हिरण्यवर्ण, ज्योतिष्मान्, नानाभूतधर, ध्वनि, अरोग, नियमाध्यक्ष, विश्वामित्रद्विजोत्तम॥ ९९॥

बृहज्ज्योति, सुधामा, महाज्योति, अनुत्तम, मातामह, मातरिश्वा, नभस्वान्, नागहारधृक्॥ १००॥

पुलस्त्य, पुलह, अगस्त्य, जातूकर्ण्य, पराशर, निरावरणधर्मज्ञ, विरिंच, विष्टरश्रवा॥ १०१॥

आत्मभू, अनिरुद्ध, अत्रिज्ञानमूर्ति, महायशा, लोकचूडामणि, वीर, चण्डसत्यपराक्रम॥ १०२॥

व्यालकल्प, महाकल्प, महावृक्ष, कलाधर, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम॥ १०३॥

आशुशब्दपति, वेगी, प्लवन, शिखिसारथि, असंसृष्ट, अतिथि, शक्रप्रमाथी, पापनाशन॥ १०४॥

वसुश्रवा, कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जर्य, जराधिशमन, लोहित, तनूनपात्॥ १०५॥

पृषदश्व, नभ, योनि, सुप्रतीक, तमिस्त्रहा, निदाघतपन, मेघपक्ष, परपुरंजय॥ १०६॥

मुखानिल, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशिरात्मक, वसन्तमाधव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन॥ १०७॥

अंगिरा, मुनिआत्रेय, विमल, विश्ववाहन, पावन, पुरुजित्, शक्र, त्रिविद्य, नरवाहन॥ १०८॥

मनोबुद्धि, अहंकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक, तेजोनिधि, ज्ञाननिधि, विपाक, विघ्नकारक॥ १०९॥

अधर, अनुत्तर, ज्ञेय, ज्येष्ठ, निःश्रेयसालय, शैल, नग, तनु, दोह, दानवारि, अरिन्दम॥ ११०॥

चारुधीर्जनक, चारुविशल्य, लोकशल्यकृत्, चतुर्वेद, चतुर्भाव, चतुरचतुरप्रिय॥ १११॥

आम्नाय, समाम्नाय, तीर्थदेवशिवालय, बहुरूप, महारूप, सर्वरूप, चराचर॥ ११२॥

न्यायनिर्वाहक, न्याय, न्यायगम्य, निरंजन, सहस्त्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशस्त्रप्रभंजन॥ ११३॥

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः।
पिङ्गलाक्षोऽथ हर्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः॥ ११४
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकभृत्।
पद्मासनः परंज्योतिः परावरपरंफलः॥ ११५
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः।
परावरज्ञो बीजेशः सुमुखः सुमहास्वनः॥ ११६
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः।
देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः॥ ११७
देवादिदेवो देवर्षिदेवासुरवरप्रदः।
देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः॥ ११८
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः।
ईड्योऽनीशः सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः॥ ११९
विबुधाग्रवरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः।
शिवज्ञानरतः श्रीमान् शिखिश्रीपर्वतप्रियः॥ १२०
जयस्तम्भो विशिष्टम्भो नरसिंहनिपातनः।
ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः॥ १२१
नन्दी नन्दीश्वरो नग्नो नग्नव्रतधरः शुचिः।
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगावहः॥ १२२
स्ववशः सवशः स्वर्गस्वरः स्वरमयस्वनः।
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता धनकृद्धर्मवर्धनः॥ १२३
दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः।
श्मशाननिलयस्तिष्यः सेतुरप्रतिमाकृतिः॥ १२४
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः।
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः॥ १२५
वीतदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तहृत्।
धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः॥ १२६
आधारः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः॥ १२७
सामगेयः प्रियकरः पुण्यकीर्तिरनामयः।
मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः॥ १२८
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रियः।
सद्गतिः सत्कृतिः सक्तः कालकण्ठः कलाधरः॥ १२९
मानी मान्यो महाकालः सद्भूतिः सत्परायणः।
चन्द्रसञ्जीवनः शास्ता लोकगूढोऽमराधिपः॥ १३०
लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृतिभूषणः।
अनपाय्यक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः॥ १३१

मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, दान्त, गुणोत्तम, पिङ्गलाक्ष, हर्यक्ष, नीलग्रीव, निरामय॥ ११४॥

सहस्रबाहुसर्वेश, शरण्य, सर्वलोकभृत्, पद्मासन, परंज्योति, परावरपरंफल॥ ११५॥

पद्मगर्भ, महागर्भ, विश्वगर्भ, विचक्षण, परावरज्ञ, बीजेश, सुमुखसुमहास्वन॥ ११६॥

देवासुरगुरुदेव, देवासुरनमस्कृत, देवासुरमहामात्र, देवासुरमहाश्रय॥ ११७॥

देवादिदेव, देवर्षिदेवासुरवरप्रद, देवासुरेश्वर, दिव्य, देवासुरमहेश्वर॥ ११८॥

सर्वदेवमय, अचिन्त्य, देवतात्मा, आत्मसम्भव, ईड्य, अनीश, सुरव्याघ्र, देवसिंह, दिवाकर॥ ११९॥

विबुधाग्रवरश्रेष्ठ, सर्वदेवोत्तमोत्तम, शिवज्ञानरत, श्रीमान्, शिखिश्रीपर्वतप्रिय॥ १२०॥

जयस्तम्भ, विशिष्टम्भ, नरसिंहनिपातन, ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिप॥ १२१॥

नन्दी, नन्दीश्वर, नग्न, नग्नव्रतधर, शुचि, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, युगाध्यक्ष, युगावह॥ १२२॥

स्ववश, सवश, स्वर्गस्वर, स्वरमयस्वन, बीजाध्यक्ष, बीजकर्ता, धनकृद्धर्मवर्धन॥ १२३॥

दम्भ, अदम्भ, महादम्भ, सर्वभूतमहेश्वर, श्मशाननिलय, तिष्य, सेतु, अप्रतिमाकृति॥ १२४॥

लोकोत्तरस्फुटालोक, त्र्यम्बक, नागभूषण, अन्धकारि, मखद्वेषी, विष्णुकन्धरपातन॥ १२५॥

वीतदोष, अक्षयगुण, दक्षारि, पूषदन्तहृत्, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकल, निष्कल, अनघ॥ १२६॥

आधार, सकलाधार, पाण्डुराभ, मृड, नट, पूर्ण, पूरयिता, पुण्य, सुकुमार, सुलोचन॥ १२७॥

सामगेय, प्रियकर, पुण्यकीर्ति, अनामय, मनोजव, तीर्थकर, जटिल, जीवितेश्वर॥ १२८॥

जीवितान्तकर, नित्य, वसुरेता, वसुप्रिय, सद्गति, सत्कृति, सक्त, कालकण्ठ, कलाधर॥ १२९॥

मानी, मान्य, महाकाल, सद्भूति, सत्परायण, चन्द्रसंजीवन, शास्तालोकगूढ़, अमराधिप॥ १३०॥

लोकबन्धु, लोकनाथ, कृतज्ञ–कृतिभूषण,

तेजोमयो द्युतिधरो लोकमायोऽग्रणीरणुः।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः॥ १३२
ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः।
तुम्बवीणी महाकायो विशोकः शोकनाशनः॥ १३३
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः शुद्धः शुद्धी रथाक्षजः।
अव्यक्तलक्षणोऽव्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशाम्पतिः॥ १३४
वरशीलो वरतुलो मानो मानधनो मयः।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्यमः॥ १३५
वेधा धाता विधाता च अत्ताहर्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सतां गतिः॥ १३६
हिरण्यगर्भो हरिणः पुरुषः पूर्वजः पिता।
भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वरः॥ १३७
संयोगी योगविद्ब्रह्मा ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः।
देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः॥ १३८
विषमाक्षः कलाध्यक्षो वृषाङ्को वृषवर्धनः।
निर्मदो निरहङ्कारो निर्मोहो निरुपद्रवः॥ १३९
दर्पहा दर्पितो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः।
सप्तजिह्वः सहस्रार्चिः स्निग्धः प्रकृतिदक्षिणः॥ १४०
भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भ्रान्तिनाशनः।
अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः॥ १४१
निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो व्याजमर्दनः।
सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यकीर्तिस्तम्भकृतागमः॥ १४२
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत्।
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणोऽनलः॥ १४३
स्कन्धः स्कन्धधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः।
अपराजितः सर्वसहो विदग्धः सर्ववाहनः॥ १४४
अधृतः स्वधृतः साध्यः पूर्तमूर्तिर्यशोधरः।
वराहशृङ्गधृग्वायुर्बलवानेकनायकः॥ १४५
श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेकधृक्।
श्रीवल्लभशिवारम्भः शान्तभद्रः समञ्जसः॥ १४६
भूशयो भूतिकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः।
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी कलावपुः॥ १४७
सत्यव्रतमहात्यागी निष्ठाशान्तिपरायणः।
परार्थवृत्तिर्वरदो विविक्तः श्रुतिसागरः॥ १४८

अनपाय्यक्षर, कान्त, सर्वशास्त्रभृतांवर॥ १३१॥

तेजोमयद्युतिधर, लोकमाय, अग्रणी, अणु, शुचिस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरतिक्रम॥ १३२॥

ज्योतिर्मय, निराकार, जगन्नाथ, जलेश्वर, तुम्बवीणी, महाकाय, विशोक, शोकनाशन॥ १३३॥

त्रिलोकात्मा, त्रिलोकेश, शुद्ध, शुद्धि, रथाक्षज, अव्यक्तलक्षण, अव्यक्त, व्यक्ताव्यक्तविशाम्पति॥ १३४॥

वरशील, वरतुल, मान, मानधनमय, ब्रह्मा, विष्णुप्रजापाल, हंस, हंसगति, यम॥ १३५॥

वेधा, धाता, विधाता, अत्ताहर्ता, चतुर्मुख, कैलासशिखरावासी, सर्वावासी, सतांगति॥ १३६॥

हिरण्यगर्भ, हरिण, पुरुष, पूर्वजपिता, भूतालय, भूतपति, भूतिद, भुवनेश्वर॥ १३७॥

संयोगी, योगविद्ब्रह्मा, ब्रह्मण्य, ब्राह्मणप्रिय, देवप्रिय, देवनाथ, देवज्ञ, देवचिन्तक॥ १३८॥

विषमाक्ष, कलाध्यक्ष, वृषांक, वृषवर्धन, निर्मद-निरहंकार, निर्मोह, निरुपद्रव॥ १३९॥

दर्पहा, दर्पित, दृप्त, सर्वऋतुपरिवर्तक, सप्तजिह्व, सहस्रार्चि, स्निग्ध, प्रकृतिदक्षिण॥ १४०॥

भूतभव्यभवन्नाथ, प्रभव, भ्रान्तिनाशन, अर्थ, अनर्थ, महाकोश, परकार्यैकपण्डित॥ १४१॥

निष्कण्टक, कृतानन्द, निर्व्याज, व्याजमर्दन, सत्त्ववान्, सात्त्विक, सत्यकीर्तिस्तम्भकृतागम॥ १४२॥

अकम्पित, गुणग्राही, नैकात्मा–नैककर्मकृत्, सुप्रीत, सुमुख, सूक्ष्म, सुकर, दक्षिण, अनल॥ १४३॥

स्कन्ध, स्कन्धधर, धुर्य, प्रकट, प्रीतिवर्धन, अपराजित, सर्वसह, विदग्ध, सर्ववाहन॥ १४४॥

अधृत, स्वधृत, साध्य, पूर्तमूर्ति, यशोधर, वराहशृङ्गधृक्, वायु, बलवान्, एकनायक॥ १४५॥

श्रुतिप्रकाश, श्रुतिमान्, एकबन्धु, अनेकधृक्, श्रीवल्लभशिवारम्भ, शान्तभद्र, समंजस॥ १४६॥

भूशय, भूतिकृद्भूति, भूषण, भूतवाहन, अकाय, भक्तकायस्थ, कालज्ञानी, कलावपु॥ १४७॥

सत्यव्रतमहात्यागी, निष्ठाशान्तिपरायण, परार्थवृत्ति, वरद, विविक्त, श्रुतिसागर॥ १४८॥

अनिर्विण्णो गुणग्राही कलङ्काङ्कः कलङ्कहा।
स्वभावरुद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो मध्यनाशकः॥ १४९
शिखण्डी कवची शूली चण्डी मुण्डी च कुण्डली।
मेखली कवची खड्गी मायी संसारसारथिः॥ १५०
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान् कार्यकोविदः ॥ १५१
वेद्यो वेदार्थविद्गोप्ता सर्वाचारो मुनीश्वरः।
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः॥ १५२
सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्मसताङ्गतिः।
कालभक्षः कलङ्कारिः कङ्कणीकृतवासुकिः॥ १५३
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः।
द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥ १५४
निवृत्तः संवृतः शिल्पो व्यूढोरस्को महाभुजः।
एकज्योतिर्निरातङ्को नरो नारायणप्रियः॥ १५५
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः।
स्तव्यस्तवप्रियः स्तोता व्यासमूर्तिरनाकुलः॥ १५६
निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरविक्रमः।
प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्रः क्षुद्रहा नित्यसुन्दरः॥ १५७
धैर्याग्र्यधुर्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः।
परमार्थगुरुर्दृष्टिर्गुरुराश्रितवत्सलः ॥ १५८
रसो रसज्ञः सर्वज्ञः सर्वसत्त्वावलम्बनः।

सूत उवाच

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव वृषभध्वजम्॥ १५९
स्नापयामास च विभुः पूजयामास पङ्कजैः।
परीक्षार्थं हरेः पूजाकमलेषु महेश्वरः॥ १६०
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः।
हृतपुष्पो हरिस्तत्र किमिदं त्वभ्यचिन्तयन्॥ १६१
ज्ञात्वा स्वनेत्रमुद्धृत्य सर्वसत्त्वावलम्बनम्।
पूजयामास भावेन नाम्ना तेन जगद्गुरुम्॥ १६२
ततस्तत्र विभुर्दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम्।
तस्मादवततprovidराशु मण्डलात्पावकस्य च॥ १६३
कोटिभास्करसङ्काशं जटामुकुटमण्डितम्।
ज्वालामालावृतं दिव्यं तीक्ष्णदंष्ट्रं भयङ्करम्॥ १६४

अनिर्विण्ण, गुणग्राही, कलंकांक, कलंकहा, स्वभावरुद्र, मध्यस्थ, शत्रुघ्न, मध्यनाशक॥ १४९॥

शिखण्डी, कवची, शूली, चण्डी, मुण्डी, कुण्डली, मेखली, कवची, खड्गी, मायीसंसारसारथि॥ १५०॥

अमृत्युसर्वदृक्, सिंह, तेजोराशि-महामणि, असंख्येय, अप्रमेयात्मा, वीर्यवान्, कार्यकोविद॥ १५१॥

वेद्य, वेदार्थविद्गोप्ता, सर्वाचार, मुनीश्वर, अनुत्तम, दुराधर्ष, मधुर, प्रियदर्शन॥ १५२॥

सुरेश, शरण, सर्व, शब्दब्रह्मसतांगति, कालभक्ष, कलंकारि, कंकणीकृतवासुकि॥ १५३॥

महेष्वास, महीभर्ता, निष्कलंक, विशृंखल, द्युमणितरणि, धन्य, सिद्धिद, सिद्धिसाधन॥ १५४॥

निवृत्त, संवृत, शिल्प, व्यूढोरस्क, महाभुज, एकज्योति, निरातंक, नरनारायणप्रिय॥ १५५॥

निर्लेप, निष्प्रपंचात्मा, निर्व्यग्र, व्यग्रनाशन, स्तव्यस्तवप्रिय, स्तोताव्यासमूर्ति, अनाकुल॥ १५६॥

निरवद्यपदोपाय, विद्याराशि, अविक्रम, प्रशान्तबुद्धिअक्षुद्र, क्षुद्रहा, नित्यसुन्दर॥ १५७॥

धैर्याग्र्यधुर्य, धात्रीश, शाकल्य, शर्वरीपति, परमार्थगुरुदृष्टि, गुरु, आश्रितवत्सल, रस, रसज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वसत्त्वावलम्बन॥ १५८१/२॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस प्रकार विष्णुने एक हजार नामोंसे वृषभध्वजकी स्तुति की; पुनः उन्हें स्नान कराया और कमलोंसे उनका पूजन किया। उस समय विष्णुकी परीक्षा लेनेके लिये जगत्के स्वामी महेश्वरने पूजाके कमलोंमेंसे एक कमलको छिपा लिया॥ १५९-१६०१/२॥

तब हृतपुष्पवाले विष्णुने 'यह क्या'—ऐसा सोचते हुए बादमें वास्तविकता समझकर अपने नेत्रको निकाल करके सर्वसत्त्वावलम्बन (सभी प्राणियोंको अवलम्ब देनेवाले) जगद्गुरु [शिव]-की पूजा प्रेमपूर्वक उस [अन्तिम सर्वसत्त्वावलम्बन] नामसे की॥ १६१-१६२॥

तत्पश्चात् समर्पित नेत्रवाले विष्णुको देखकर भगवान् शिव उस लिङ्गसे तथा अग्नि-मण्डलसे शीघ्र उतरे। तब करोड़ों सूर्योंके समान तेजसम्पन्न,

शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरं हरम्।
वरदाभयहस्तं च द्वीपिचर्मोत्तरीयकम्॥ १६५

इत्थंभूतं तदा दृष्ट्वा भवं भस्मविभूषितम्।
हृष्टो नमश्चकाराशु देवदेवं जनार्दनः॥ १६६

दुद्रुवुस्तं परिक्रम्य सेन्द्रा देवास्त्रिलोचनम्।
चचाल ब्रह्मभुवनं चकम्पे च वसुन्धरा॥ १६७

ददाह तेजस्तच्छम्भोः प्रान्तं वै शतयोजनम्।
अधस्ताच्चोर्ध्वतश्चैव हाहेत्यकृत भूतले॥ १६८

तदा प्राह महादेवः प्रहसन्निव शङ्करः।
सम्प्रेक्ष्य प्रणयाद्विष्णुं कृताञ्जलिपुटं स्थितम्॥ १६९

ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं जनार्दन।
सुदर्शनाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम्॥ १७०

यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकभयङ्करम्।
हिताय तव यत्नेन तव भावाय सुव्रत॥ १७१

शान्तं रणाजिरे विष्णो देवानां दुःखसाधनम्।
शान्तस्य चास्त्रं शान्तः स्याच्छान्तेनास्त्रेण किं फलम्॥ १७२

शान्तस्य समरे चास्त्रं शान्तिरेव तपस्विनम्।
योद्धुः शान्त्या बलच्छेदः परस्य बलवृद्धिदः॥ १७३

देवैरशान्तैर्यद्रूपं मदीयं भावयाव्ययम्।
किमायुधेन कार्यं वै योद्धुं देवारिसूदन॥ १७४

क्षमा युधि न कार्या वै योद्धुं देवारिसूदन।
अनागते व्यतीते च दौर्बल्ये स्वजनोत्करे॥ १७५

अकालिके त्वधर्मे च अनर्थे वारिसूदन।
एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्॥ १७६

नेत्रं च नेता जगतां प्रभुर्वै पद्मसन्निभम्।
तदाप्रभृति तं प्राहुः पद्माक्षमिति सुव्रतम्॥ १७७

जटारूपी मुकुटसे मण्डित, ज्वालासमूहसे घिरे हुए, दिव्य, तीक्ष्ण दाँतोंवाले, भयंकर, शूल-टंक-गदा-चक्र-भाला-पाश धारण किये हुए, वर तथा अभय मुद्रायुक्त हाथवाले, बाघके चर्मको उत्तरीयके रूपमें धारण किये हुए तथा भस्मसे विभूषित—इस प्रकारके रूपवाले हर भवको देखकर प्रसन्न हुए जनार्दनने उन देवदेव [शिव]-को शीघ्र प्रणाम किया॥ १६३—१६६॥

इन्द्रसहित देवतागण त्रिलोचनकी परिक्रमा करके भागने लगे, ब्रह्मलोक हिल उठा और पृथ्वी काँपने लगी। शिवका वह तेज नीचेसे तथा ऊपरसे सौ योजन स्थानको जलाने लगा; इससे पृथ्वीतलपर हाहाकार मच गया॥ १६७-१६८॥

तदनन्तर महादेव शंकरने हाथ जोड़कर [सामने] खड़े विष्णुकी ओर प्रेमपूर्वक देखकर हँसते हुए कहा—हे जनार्दन! अब मैं देवताओंके इस कार्यको जान गया और आपको सुदर्शन नामक उत्तम चक्र प्रदान करता हूँ॥ १६९-१७०॥

हे सुव्रत! आपने सभी लोकोंके लिये भयंकर मेरे जिस रूपको देखा है, वह पूर्णरूपसे आपके हित तथा भक्तिभावके लिये है। हे विष्णो! युद्धभूमिमें सौम्यरूप धारण करना देवताओंके लिये दुःखदायक है। शान्त व्यक्तिका अस्त्र यदि शान्त हो, तो उस शान्त अस्त्रसे कोई फल नहीं होता है। [केवल] तपस्वीके प्रति युद्धमें शान्त व्यक्तिका अस्त्र शान्त होता है। योद्धाकी शान्तिसे उसकी बलहीनता शत्रुके बलको बढ़ानेवाली होती है। हे देवशत्रुनाशक! अशान्त देवताओंके साथ आप मेरे अव्यय स्वरूपका ध्यान कीजिये; युद्ध करनेके लिये अस्त्रसे क्या प्रयोजन? हे देवारिसूदन! युद्धमें क्षमा नहीं करनी चाहिये। युद्धके लिये अनुपस्थित शत्रु तथा बलशाली स्वजनोंके प्रति और अधर्म-अनर्थकी स्थितिमें अनुपयुक्त समयमें भी क्षमाका आश्रय नहीं लेना चाहिये॥ १७१—१७५ $^{1}/_{2}$॥

ऐसा कहकर लोकनायक प्रभु [शिव]-ने उन्हें दस हजार सूर्योंके समान तेजस्वी [सुदर्शन] चक्र तथा कमलसदृश एक नेत्र भी प्रदान किया; उसी समयसे

दत्त्वैनं नयनं चक्रं विष्णवे नीललोहितः।
पस्पर्श च कराभ्यां वै सुशुभाभ्यामुवाच ह॥ १७८

वरदोऽहं वरश्रेष्ठ वरान् वरय चेप्सितान्।
भक्त्या वशीकृतो नूनं त्वयाहं पुरुषोत्तम॥ १७९

इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम्।
त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम्॥ १८०

नान्यमिच्छामि भक्तानामार्तयो नास्ति यत्प्रभो।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावान् सुतरां भवः॥ १८१

पस्पर्श च ददौ तस्मै श्रद्धां शीतांशुभूषणः।
प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्॥ १८२

मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः।
भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम॥ १८३

यदा सती दक्षपुत्री विनिन्द्यैव सुलोचना।
मातरं पितरं दक्षं भविष्यति सुरेश्वरी॥ १८४

दिव्या हैमवती विष्णो तदा त्वमपि सुव्रत।
भगिनीं तव कल्याणीं देवीं हैमवतीमुमाम्। १८५

नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं प्रदास्यसि ममैव ताम्।
मत्सम्बन्धी च लोकानां मध्ये पूज्यो भविष्यसि॥ १८६

मां दिव्येन च भावेन तदाप्रभृति शङ्करम्।
द्रक्ष्यसे च प्रसन्नेन मित्रभूतमिवात्मना॥ १८७

इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रो भगवान्नीललोहितः।
जनार्दनोऽपि भगवान् देवानामपि सन्निधौ॥ १८८

अयाचत महादेवं ब्रह्माणं मुनिभिः समम्।
मया प्रोक्तं स्तवं दिव्यं पद्मयोने सुशोभनम्॥ १८९

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्।
प्रतिनाम्नि हिरण्यस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात्॥ १९०

उन सुव्रत [विष्णु]-को पद्माक्ष (कमलनयन) कहा जाता है॥ १७६-१७७॥

विष्णुको चक्र तथा नेत्र प्रदान करके नीललोहित [शिव]-ने अपने परम पवित्र हाथोंसे उनका स्पर्श किया और कहा—'हे वरश्रेष्ठ! मैं वरदाता हूँ, आप अभीष्ट वरोंको माँगिये। हे पुरुषोत्तम! आपने निश्चित रूपसे अपनी भक्तिसे मुझे वशमें कर लिया है'॥ १७८-१७९॥

देवाधिदेवके इस प्रकार कहनेपर विष्णुने उन देवदेवेश्वरको प्रणाम करके कहा—'हे महादेव! आपमें मेरी [पूर्ण] भक्ति हो, आप मुझपर प्रसन्न होइये। हे प्रभो! मैं अन्य उत्तम वर नहीं चाहता; क्योंकि भक्तोंकी अन्य कामनाएँ नहीं होती हैं'॥ १८०१/२॥

उनका वचन सुनकर परम दयालु शिवने उनका स्पर्श किया और उन्हें [अपनी] भक्ति प्रदान की। तत्पश्चात् चन्द्रमाको भूषणके रूपमें धारण करनेवाले महादेवने परमात्मा अच्युत (विष्णु)-से कहा—'हे सुरोत्तम! मेरी कृपासे आप मुझमें भक्ति रखनेवाले और देवताओं तथा असुरोंके वन्दनीय तथा पूजनीय होंगे; इसमें सन्देह नहीं है। हे विष्णो! हे सुव्रत! जब सुन्दर नेत्रोंवाली दक्षपुत्री सती अपनी माता तथा पिता दक्षकी निन्दा करके सुरेश्वरीके रूपमें हिमवान्‌की दिव्य कन्या होकर उत्पन्न होंगी; उस समय आप ब्रह्माके आदेशसे अपनी भगिनीरूपा उन हिमवान्‌की पुत्री कल्याणी साध्वी देवी उमाको मुझे प्रदान करेंगे। तब लोकोंके बीच मेरे सम्बन्धीके रूपमें आप पूज्य होंगे। उस समयसे आप दिव्य भावसे तथा प्रसन्न मनसे मुझ शंकरको मित्रकी भाँति देखेंगे'—ऐसा कहकर नीललोहित भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये॥ १८१—१८७१/२॥

भगवान् जनार्दनने भी देवताओंकी उपस्थितिमें मुनियोंके साथ महान् देवता ब्रह्मासे प्रार्थना की—हे पद्मयोने! जो मेरे द्वारा कहे गये दिव्य तथा परम सुन्दर स्तव (सहस्रनाम स्तोत्र)-को पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा श्रेष्ठ द्विजोंको सुनाता है; वह प्रत्येक नामके उच्चारणपर सुवर्णके दानका फल प्राप्त करता है और उसे हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे होनेवाला फल मिलता है। जो घृत

अश्वमेधसहस्रेण फलं भवति तस्य वै।
घृताद्यैः स्नापयेद् रुद्रं स्थाल्या वै कलशैः शुभैः॥ १९१

नाम्नां सहस्रेणानेन श्रद्धया शिवमीश्वरम्।
सोऽपि यज्ञसहस्रस्य फलं लब्ध्वा सुरेश्वरैः॥ १९२

पूज्यो भवति रुद्रस्य प्रीतिर्भवति तस्य वै।
तथास्त्विति तथा प्राह पद्मयोनिर्जनार्दनम्॥ १९३

जग्मतुः प्रणिपत्यैनं देवदेवं जगद्गुरुम्।
तस्मान्नाम्नां सहस्रेण पूजयेदनघो द्विजाः॥ १९४

जपेन्नाम्नां सहस्रं च स याति परमां गतिम्॥ १९५

आदिसे परिपूर्ण स्थाली अथवा शुभ कलशोंसे इस सहस्रनामके द्वारा भगवान् रुद्र शिवको श्रद्धापूर्वक स्नान कराता है, वह भी हजार यज्ञोंका फल प्राप्त करके सुरेश्वरोंके द्वारा पूजित होता है और उसके प्रति रुद्रकी प्रीति होती है॥ १८८—१९२½॥

तब ब्रह्माने विष्णुसे कहा—'ऐसा ही हो।' इसके बाद इन जगद्गुरु देवदेव [शिव]-को प्रणाम करके वे दोनों (ब्रह्मा-विष्णु) चले गये। अतः हे द्विजो! जो निष्पाप व्यक्ति [इस] हजार नामोंसे शिवकी पूजा करता है और हजार नामोंका जप करता है, वह परम गति प्राप्त करता है॥ १९३—१९५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सहस्रनामभिः पूजनाद्विष्णुचक्रलाभो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'सहस्रनामोंद्वारा पूजनसे विष्णुको चक्रलाभ' नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

भगवान् शिवके वामभागसे शिवाका प्रादुर्भाव तथा शिवाका दक्षपुत्री सतीके रूपमें पुनः मेनाकी कन्या पार्वतीके रूपमें प्राकट्य

ऋषय ऊचुः

सम्भवः सूचितो देव्यास्त्वया सूत महामते।
सविस्तरं वदस्वाद्य सतीत्वे च यथातथम्॥ १

मेनाजत्वं महादेव्या दक्षयज्ञविमर्दनम्।
विष्णुना च कथं दत्ता देवदेवाय शम्भवे॥ २

कल्याणं वा कथं तस्य वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः॥ ३

सम्भवं च महादेव्याः प्राह तेषां महात्मनाम्।

सूत उवाच

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं दण्डिने तत्सुविस्तरम्॥ ४

युष्माभिर्वै कुमाराय तेन व्यासाय धीमते।
तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवदामि सुविस्तरम्॥ ५

वचनाद्वो महाभागाः प्रणम्योमां तथा भवम्।
सा भगाख्या जगद्धात्री लिङ्गमूर्तेस्त्रिवेदिका॥ ६

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महामते! आपने देवीकी उत्पत्तिके विषयमें बताया; अब उनके सतीत्वके विषयमें ठीक-ठीक विस्तारपूर्वक बताइये और महादेवीका मेनासे उत्पन्न होने तथा दक्षके यज्ञविध्वंसका भी वर्णन कीजिये; विष्णुने देवदेव शम्भुको उन्हें कैसे प्रदान किया और उन विष्णुका कल्याण किस प्रकार हुआ—यह सब इस समय बतानेकी कृपा कीजिये॥ १-२½॥

उनका यह वचन सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी उन महात्माओंसे महादेवीके जन्मके विषयमें बताने लगे॥ ३½॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] आपलोगोंने जो पूछा है, उस विषयमें सर्वप्रथम ब्रह्माने दण्डी सनत्कुमारको विस्तारसे बताया था, पुनः उन सनत्कुमारने बुद्धिमान् व्यासजीको बताया और हे महाभागो! उन [व्यासजी]-से सुन करके मैं आपलोगोंके कहनेपर उमा तथा शिवको प्रणाम करके विस्तारपूर्वक आप लोगोंको बता रहा हूँ॥ ४-५½॥

वे जगन्माता भग नामवाली और लिङ्गरूप शिवकी

लिङ्गस्तु भगवान् द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः।
लिङ्गमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थितः॥ ७

लिङ्गवेदिसमायोगादर्धनारीश्वरोऽभवत्।
ब्रह्माणं विदधे देवमग्रे पुत्रं चतुर्मुखम्॥ ८

प्राहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानं ज्ञानमयो हरः।
विश्वाधिकोऽसौ भगवानर्धनारीश्वरो विभुः॥ ९

हिरण्यगर्भं तं देवो जायमानमपश्यत।
सोऽपि रुद्रं महादेवं ब्रह्मापश्यत शङ्करम्॥ १०

तं दृष्ट्वा संस्थितं देवमर्धनारीश्वरं प्रभुम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं वारिजोद्भवः॥ ११

विभजस्वेति विश्वेशं विश्वात्मानमजो विभुः।
ससर्ज देवीं वामाङ्गात्पत्नीं चैवात्मनः समाम्॥ १२

श्रद्धा ह्यस्य शुभा पत्नी ततः पुंसः पुरातनी।
सैवाज्ञया विभोर्देवी दक्षपुत्री बभूव ह॥ १३

सतीसंज्ञा तदा सा वै रुद्रमेवाश्रिता पतिम्।
दक्षं विनिन्द्य कालेन देवी मैना ह्यभूत्पुनः॥ १४

नारदस्यैव दक्षोऽपि शापादेवं विनिन्द्य च।
अवज्ञादुर्मदो दक्षो देवदेवमुमापतिम्॥ १५

अनादृत्य कृतिं ज्ञात्वा सती दक्षेण तत्क्षणात्।
भस्मीकृत्वात्मनो देहं योगमार्गेण सा पुनः॥ १६

बभूव पार्वती देवी तपसा च गिरेः प्रभोः।
ज्ञात्वैतद्भगवान् भर्गो ददाह रुषितः प्रभुः॥ १७

दक्षस्य विपुलं यज्ञं च्यावनेर्वचनादपि।
च्यवनस्य सुतो धीमान् दधीच इति विश्रुतः॥ १८

विजित्य विष्णुं समरे प्रसादात् त्र्यम्बकस्य च।
विष्णुना लोकपालांश्च शशाप च मुनीश्वरः॥ १९

रुद्रस्य क्रोधजेनैव वह्निना हविषा सुराः।
विनाशो वै क्षणादेव मायया शङ्करस्य वै॥ २०

त्रिगुणवेदिका प्रकृतिरूपा हैं। लिङ्गरूप शिव सदा भगयुक्त रहते हैं। हे उत्तम द्विजो! इन्हीं दोनों [लिङ्ग तथा भग]-से ही जगत्की सृष्टि होती है। लिङ्गस्वरूप शिव प्रकाशरूप हैं और सदा मायारूपी तम (अन्धकार)-के ऊपर विराजमान हैं। लिङ्ग तथा वेदीके समायोगसे शिव अर्धनारीश्वर हो गये। उन्होंने पहले चतुर्मुख देव ब्रह्माको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ ६—८॥

ज्ञानमय तथा विश्वमें सबसे बढ़कर विभु अर्धनारीश्वर भगवान् हरने उन [ब्रह्मा]-को ज्ञान प्रदान किया। शिवजीने उत्पन्न हुए ब्रह्माको देखा और उन ब्रह्माने भी रुद्र शंकर महादेवको देखा। वहाँ स्थित अर्धनारीश्वर प्रभु शिवको देखकर ब्रह्माने अभीष्ट वचनोंसे उन वरदाता [शिव]-की स्तुति की। इसके बाद प्रभु अजने विश्वेश्वर विश्वात्मा [शिव]-से प्रार्थना की—'अपनेको विभक्त कीजिये।' तब उन्होंने अपने बायें अंगसे पत्नीके रूपमें अपने ही समान देवीका सृजन किया॥ ९—१२॥

इन [आत्मरूप] पुरुषकी पुरातन शुभा पत्नी श्रद्धा हैं; शिवकी आज्ञासे वे देवी दक्षपुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं। उस समय उनका नाम सती पड़ा और उन्होंने रुद्रको पतिके रूपमें स्वीकार किया। कुछ समयके बाद दक्षकी निन्दा करके वे देवी पुनः मेनाकी पुत्री हुईं॥ १३-१४॥

नारदके शापके कारण अवज्ञासे दुर्मद दक्षने भी देवदेव उमापतिकी निन्दा करके यज्ञ किया। तब शिवके प्रति अनादरपूर्ण दक्षकृत्यको जानकर सतीने उसी क्षण अपनी देहको योगमार्गसे भस्म करके पुनः पर्वतराज हिमाचलकी तपस्यासे [उनकी पुत्री होकर] देवी पार्वतीके रूपमें जन्म लिया। यह जानकर च्यवनके पुत्रके कहनेसे भगवान् प्रभु भर्गने कुपित होकर दक्षके विस्तृत यज्ञको जला दिया। च्यवनके बुद्धिमान् पुत्र दधीच नामसे प्रसिद्ध थे। शिवकी कृपासे युद्धमें विष्णुको जीतकर उन मुनीश्वरने विष्णुसहित लोकपालोंको यह शाप दे दिया—'हे देवताओ! शंकरकी मायाके कारण रुद्रके क्रोधसे उत्पन्न हविष्याग्निके द्वारा क्षणभरमें [आपलोगोंका] विनाश हो जायगा'॥ १५—२०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवीसम्भवो नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥ ९९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'देवीकी उत्पत्ति' नामक निन्यानबेवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९९॥

सौवाँ अध्याय

वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञभंग तथा भगवान् महेश्वरका दक्षप्रजापतिपर अनुग्रह

ऋषय ऊचुः

विजित्य विष्णुना सार्धं भगवान् परमेश्वरः।
सर्वान् दधीचवचनात्कथं भेजे महेश्वरः॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] परमेश्वर भगवान् महेश्वरने दधीचके कहनेसे विष्णुसहित सबको जीतकर पुनः यज्ञका सेवन कैसे किया?॥ १॥

सूत उवाच

दक्षयज्ञे सुविपुले देवान् विष्णुपुरोगमान्।
ददाह भगवान् रुद्रः सर्वान् मुनिगणानपि॥ २

भद्रो नाम गणस्तेन प्रेषितः परमेष्ठिना।
विप्रयोगेन देव्या वै दुःसहेनैव सुव्रताः॥ ३

सोऽसृजद्वीरभद्रश्च गणेशान् रोमजाञ्छुभान्।
गणेश्वरैः समारुह्य रथं भद्रः प्रतापवान्॥ ४

गन्तुं चक्रे मतिं यस्य सारथिर्भगवानजः।
गणेश्वराश्च ते सर्वे विविधायुधपाणयः॥ ५

विमानैर्विश्वतो भद्रैस्तमन्वयुरथो सुराः।
हिमवच्छिखरे रम्ये हेमशृङ्गे सुशोभने॥ ६

यज्ञवाटस्तथा तस्य गङ्गाद्वारसमीपतः।
तद्देशे चैव विख्यातं शुभं कनखलं द्विजाः॥ ७

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] भगवान् रुद्रने दक्षके अति महान् यज्ञमें विष्णु आदि प्रमुख देवताओं तथा सभी मुनियोंको जला दिया। हे सुव्रतो! देवीके असहनीय वियोगके कारण उन शिवजीने [अपने] भद्र नामक गणको भेजा। उस वीरभद्रने अपने रोमोंसे उत्तम गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। तब गणेश्वरोंके साथ रथपर सवार होकर प्रतापशाली वीरभद्रने प्रस्थान करनेका निश्चय किया; जिनके सारथि भगवान् ब्रह्मा थे। हाथोंमें विविध आयुध लिये हुए वे सभी गणेश्वर तथा देवता शुभ विमानोंपर आरूढ़ होकर सभी ओरसे उन वीरभद्रके पीछे-पीछे चले। हे द्विजो! हिमवान्‌के रमणीय तथा परम सुन्दर सुवर्णमय शिखरपर गंगाद्वारके समीप कनखल नामक शुभ तथा विख्यात स्थान है; उसी स्थानमें उन दक्षकी यज्ञशाला थी॥ २—७॥

दग्धुं वै प्रेषितश्चासौ भगवान् परमेष्ठिना।
तदोत्पातो बभूवाथ लोकानां भयशंसनः॥ ८

जब शिवजीने भगवान् वीरभद्रको [यज्ञको] दग्ध

करनेके लिये भेजा, उस समय लोकोंको भयभीत

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त प्रचकम्पे वसुन्धरा।
मरुतश्चाप्यघूर्णन्त चुक्षुभे मकरालयः॥ ९

अग्नयो नैव दीप्यन्ति न च दीप्यति भास्करः।
ग्रहाश्च न प्रकाश्यन्ते न देवा न च दानवाः॥ १०

ततः क्षणात् प्रविश्यैव यज्ञवाटं महात्मनः।
रोमजैः सहितो भद्रः कालाग्निरिव चापरः॥ ११

उवाच भद्रो भगवान् दक्षं चामिततेजसम्।
सम्पर्कादेव दक्षाद्य मुनीन् देवान् पिनाकिना॥ १२

दग्धुं सम्प्रेषितश्चाहं भवन्तं समुनीश्वरैः।
इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गवः॥ १३

गणेश्वराश्च सङ्क्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः।
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च दग्धं चैव गणेश्वरैः॥ १४

गृहीत्वा गणपाः सर्वान् गङ्गास्त्रोतसि चिक्षिपुः।
वीरभद्रो महातेजाः शक्रस्योद्यच्छतः करम्॥ १५

व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्।
भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया॥ १६

निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवं न्यपातयत्।
तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया॥ १७

घर्षयामास भगवान् वीरभद्रः प्रतापवान्।
चिच्छेद च शिरस्तस्य शक्रस्य भगवान् प्रभोः॥ १८

वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया।
जघान मूर्ध्नि पादेन वीरभद्रो महाबलः॥ १९

यमस्य दण्डं भगवान् प्रचिच्छेद स्वयं प्रभुः।
जघान देवमीशानं त्रिशूलेन महाबलम्॥ २०

त्रयस्त्रिंशत्सुरानेवं विनिहत्याप्रयत्नतः।
त्रयश्च त्रिशतं तेषां त्रिसाहस्त्रं च लीलया॥ २१

त्रयं चैव सुरेन्द्राणां जघान च मुनीश्वरान्।
अन्यांश्च देवान् देवोऽसौ सर्वान् युद्धाय संस्थितान्॥ २२

जघान भगवान् रुद्रः खड्गमुष्ट्यादिसायकैः।
अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः॥ २३

करनेवाला उत्पात होने लगा। पर्वत फटने लगे, पृथ्वी काँप उठी, वायु घूर्णित हो गये, समुद्र क्षुब्ध हो गया, अग्निने जलना बन्द कर दिया, सूर्य दीप्तिरहित हो गया, ग्रह प्रकाशहीन हो गये और देवता तथा दानव कोई भी प्रसन्न नहीं थे॥ ८—१०॥

उसी क्षण दूसरी कालाग्निके समान भगवान् वीरभद्रने अपने रोमोंसे उत्पन्न किये गये गणेश्वरोंके साथ महात्मा [दक्ष]-के यज्ञस्थलमें प्रवेश करके अमित तेजवाले दक्षसे कहा—'हे दक्ष! आज पिनाकधारी शिवने मुनियों, देवताओं तथा मुनीश्वरोंसहित आपको केवल स्पर्शमात्रसे दग्ध करनेके लिये मुझको भेजा है।'—ऐसा कहकर उस श्रेष्ठ गणने उस यज्ञशालाको जला डाला॥ ११—१३॥

अत्यन्त क्रुद्ध गणेश्वरोंने [यज्ञके] यूपों (स्तम्भों)-को उखाड़कर फेंक दिया। गणेश्वरोंने प्रस्तोता तथा होतासहित सबको जला दिया। उन गणेश्वरोंने सभीको पकड़कर गंगाकी धारामें फेंक दिया। महातेजस्वी तथा अदीन आत्मावाले वीरभद्रने उठे हुए इन्द्रके वज्र-युक्त हाथको स्तम्भित कर दिया और अन्य देवताओंके हाथोंको भी स्तम्भित कर दिया। उन्होंने लीलापूर्वक अपने नाखूनोंके अग्रभागसे भगके नेत्रोंको निकालकर पुनः मुष्टिकासे प्रहार करके पूषाके दाँतोंको तोड़कर गिरा दिया॥ १४—१६१/२॥

इसके बाद प्रतापी भगवान् वीरभद्रने [अपने] पैरके अँगूठेसे बिना प्रयासके चन्द्रदेवको घर्षित कर दिया और उन प्रभु इन्द्रके सिरको काट दिया। महाबली वीरभद्रने लीलापूर्वक अग्निदेवके दोनों हाथोंको काटकर तथा जीभ उखाड़कर पैरसे उनके सिरपर प्रहार किया॥ १७—१९॥

तत्पश्चात् प्रभु भगवान् वीरभद्रने स्वयं यमके दण्डको काट दिया और महाबली ईशानदेवको त्रिशूलसे मारा। उन्होंने [वसु, रुद्रादित्यरूप] तैंतीस देवताओं तथा इन्हीं तीनोंके तीन सौ तथा तीन हजार भेदोंको लीलापूर्वक अनायास ही मार करके [इन्द्र, अग्नि, सोमरूप] तीन प्रधान देवों, मुनीश्वरों तथा युद्धके लिये सन्नद्ध अन्य सभी देवताओंको भी मार डाला॥ २०—२२१/२॥

युयोध भगवांस्तेन रुद्रेण सह माधवः।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥ २४

विष्णोर्योगबलात्तस्य दिव्यदेहाः सुदारुणाः॥ २५

शङ्खचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे।
तान् सर्वानपि देवोऽसौ नारायणसमप्रभान्॥ २६

निहत्य गदया विष्णुं ताडयामास मूर्धनि।
ततश्चोरसि तं देवं लीलयैव रणाजिरे॥ २७

पपात च तदा भूमौ विसंज्ञः पुरुषोत्तमः।
पुनरुत्थाय तं हन्तुं चक्रमुद्यम्य स प्रभुः॥ २८

क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमानतिष्ठत्पुरुषर्षभः।
तस्य चक्रं च यद्रौद्रं कालादित्यसमप्रभम्॥ २९

व्यष्टम्भयददीनात्मा करस्थं न चचाल सः।
अतिष्ठत्स्तम्भितस्तेन शृङ्गवानिव निश्चलः॥ ३०

त्रिभिश्च धर्षितं शार्ङ्गं त्रिधाभूतं प्रभोस्तदा।
शार्ङ्गकोटिप्रसङ्गाद्वै चिच्छेद च शिरः प्रभोः॥ ३१

छिन्नं च निपपाताशु शिरस्तस्य रसातले।
वायुना प्रेरितं चैव प्राणजेन पिनाकिना॥ ३२

प्रविवेश तदा चैव तदीयाहवनीयकम्।
तत्प्रविध्वस्तकलशं भग्नयूपं सतोरणम्॥ ३३

प्रदीपितमहाशालं दृष्ट्वा यज्ञोऽपि दुद्रवे।
तं तदा मृगरूपेण धावन्तं गगनं प्रति॥ ३४

वीरभद्रः समाधाय विशिरस्कमथाकरोत्।
ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च जगद्गुरुम्॥ ३५

अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रं मुनीश्वरम्।
मुनिमङ्गिरसं चैव कृष्णाश्वं च महाबलः॥ ३६

जघान मूर्ध्नि पादेन दक्षं चैव यशस्विनम्।
चिच्छेद च शिरस्तस्य ददाहाग्नौ द्विजोत्तमाः॥ ३७

इसके बाद महातेजस्वी लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु [अपना] चक्र उठाकर आवेशयुक्त होकर उन रुद्रके साथ युद्ध करने लगे; उन दोनोंके बीच अतिभयंकर तथा रोमांचकारी युद्ध हुआ। उन विष्णुके योगबलसे हाथोंमें शंख-चक्र-गदा धारण किये हुए, दिव्य देहवाले तथा परम दारुण असंख्य योद्धा उत्पन्न हो गये॥ २३—२५$^{1}/_{2}$॥

तब उन वीरभद्रदेवने नारायणके समान प्रभावाले उन सबको भी मार करके रणभूमिमें ही गदासे लीलापूर्वक विष्णुदेवके सिरपर प्रहार किया; इसके बाद उनके वक्षःस्थलपर प्रहार किया, तब वे पुरुषोत्तम (विष्णु) अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इसके बाद उठ करके उन [वीरभद्र]-को मारनेके लिये चक्र उठाकर वे श्रीमान् पुरुषश्रेष्ठ प्रभु क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले होकर खड़े हो गये॥ २६—२८$^{1}/_{2}$॥

उन [विष्णु]-का भयानक तथा कालादित्यके समान तेजवाला जो चक्र था, उसको अदीन आत्मावाले वीरभद्रने स्तम्भित कर दिया; वह हाथमें पड़ा ही रह गया और हिलातक नहीं और वीरभद्रके द्वारा स्तम्भित कर दिये गये वे विष्णु भी पर्वतकी भाँति स्थिर होकर खड़े रहे॥ २९-३०॥

इसके बाद वीरभद्रने तीन बाणोंसे विष्णुके शार्ङ्ग [नामक] धनुषको काट दिया और वह तीन टुकड़ोंमें हो गया एवं शार्ङ्ग धनुषके सिरेसे लग जानेके कारण विष्णुका सिर कट गया। उनका कटा हुआ सिर शीघ्र ही [भगवान्] शंकरकी निःश्वास वायुसे प्रेरित होकर रसातलमें चला गया। तत्पश्चात् वहाँ उनकी आहवनीय अग्निने प्रवेश किया। ध्वस्त कलशवाले तथा तोरणों-सहित टूटे हुए यूपवाले उस जलते हुए यज्ञवाटको देखकर यज्ञदेव भी भाग गये। तब मृगके रूपसे आकाशकी ओर भागते हुए उस यज्ञदेवको पकड़कर वीरभद्रने उसे सिरविहीन कर दिया। तत्पश्चात् महाबली वीरभद्रने प्रजापति, धर्म, जगद्गुरु कश्यप, अरिष्टनेमि, मुनीश्वर बहुपुत्र, मुनि अंगिरा और कृष्णाश्वके सिरपर पैरसे प्रहार किया; हे श्रेष्ठ द्विजो! उसने यशस्वी दक्षके सिरपर भी पैरसे प्रहार किया और उनके सिरको काट लिया तथा उसे अग्निमें जला दिया।

सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च।
निकृत्य करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान्॥ ३८

तस्थौ श्रिया वृतो मध्ये प्रेतस्थाने यथा भवः।
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान् पद्मसम्भवः॥ ३९

भद्रमाह महातेजाः प्रार्थयन् प्रणतः प्रभुः।
अलं क्रोधेन वै भद्र नष्टाश्चैव दिवौकसः॥ ४०

प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैः सह सुव्रत।
सोऽपि भद्रः प्रभावेण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ४१

शमं जगाम शनकैः शान्तस्तस्थौ तदाज्ञया।
देवोऽपि तत्र भगवानन्तरिक्षे वृषध्वजः॥ ४२

सगणः सर्वदः शर्वः सर्वलोकमहेश्वरः।
प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भवः॥ ४३

हतानां च तदा तेषां प्रददौ पूर्ववत्तनुम्।
इन्द्रस्य च शिरस्तस्य विष्णोश्चैव महात्मनः॥ ४४

दक्षस्य च मुनीन्द्रस्य तथान्येषां महेश्वरः।
वागीश्याश्चैव नासाग्रं देवमातुस्तथैव च॥ ४५

नष्टानां जीवितं चैव वराणि विविधानि च।
दक्षस्य ध्वस्तवक्त्रस्य शिरसा भगवान् प्रभुः॥ ४६

कल्पयामास वै वक्त्रं लीलया च महान् भवः।
दक्षोऽपि लब्धसंज्ञश्च समुत्थाय कृताञ्जलिः॥ ४७

तदनन्तर प्रतापशाली वीरभद्र अपने नाखूनके अग्रभागसे देवमाता सरस्वतीकी नासिकाका अग्रभाग काटकर ऐश्वर्ययुक्त होकर सबके बीच उसी तरह स्थित हुए जैसे श्मशानमें [भगवान्] भव॥ ३१—३८१/२॥

इसी समय महातेजस्वी प्रभु ब्रह्माजी प्रार्थना करते हुए प्रणत होकर वीरभद्रसे बोले—'हे भद्र! क्रोध मत कीजिये, देवतागण नष्ट हो गये हैं, हे सुव्रत! प्रसन्न होइये और अपने रोमोंसे उत्पन्न गणेश्वरोंसहित सबको क्षमा कीजिये'॥ ३९-४०१/२॥

तब वे वीरभद्र भी परमेष्ठी ब्रह्माके प्रभावसे धीरे-धीरे शान्तिको प्राप्त हुए; उनकी आज्ञासे शान्त होकर वे खड़े हो गये। उस समय भगवान् महादेव वृषभध्वज अन्तरिक्षमें स्थित थे; देव ब्रह्माने गणोंसहित उन सर्वदाता, शर्व, सभी लोकोंके स्वामी भगवान् भवसे प्रार्थना की। तब उन्होंने मारे गये उन सभीको पूर्वकी भाँति शरीर प्रदान कर दिया। महेश्वरने इन्द्र, महात्मा विष्णु, दक्ष, मुनीन्द्र तथा अन्य लोगोंको सिर प्रदान कर दिया, देवमाता सरस्वतीको नासिका प्रदान कर दी, नष्ट हुए लोगोंको जीवन प्रदान कर दिया; साथ ही उन्होंने विविध वर भी प्रदान किये। भगवान् महाप्रभु भवने लीलापूर्वक ध्वस्तमुखवाले दक्षका सिरसहित मुख बना दिया॥ ४१—४६१/२॥
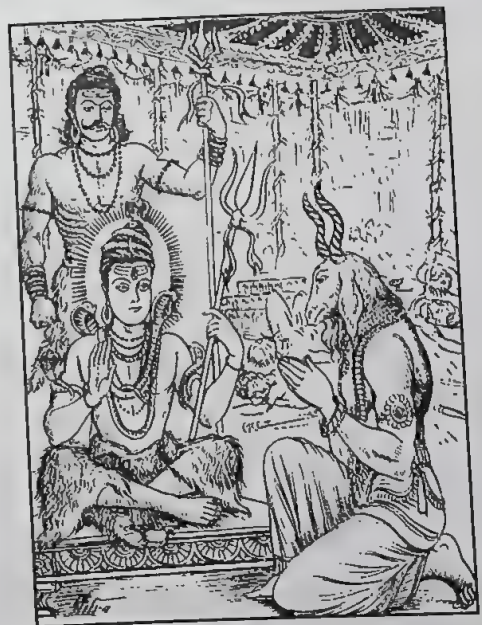
तब चेतनाप्राप्त दक्षने भी उठकर हाथ जोड़ करके

तुष्टाव देवदेवेशं शङ्करं वृषभध्वजम्।
स्तुतस्तेन महातेजाः प्रदाय विविधान् वरान्॥ ४८

गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्लिष्टकर्मणे।
देवाश्च सर्वे देवेशं तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ ४९

नारायणश्च भगवान् तुष्टाव च कृताञ्जलिः।
ब्रह्मा च मुनयः सर्वे पृथक्पृथगजोद्भवम्॥ ५०

तुष्टुवुर्देवदेवेशं नीलकण्ठं वृषध्वजम्।
तान् देवाननुगृह्यैव भवोऽप्यन्तरधीयत॥ ५१

देवदेवेश वृषभध्वज शंकरकी स्तुति की। उनके द्वारा स्तुत होकर महातेजस्वी शिवने उत्तम कर्मवाले उन दक्षको विविध वर प्रदान करके उन्हें गाणपत्य [पद] प्रदान किया॥ ४७-४८१/२॥

तब सभी देवताओंने देवेश परमेश्वरकी स्तुति की। भगवान् नारायणने भी हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की। ब्रह्मा तथा सभी मुनियोंने भी ब्रह्माकी सृष्टि करनेवाले देवदेवेश नीलकण्ठ वृषभध्वजकी पृथक्-पृथक् स्तुति की। इसके बाद उन देवताओंपर अनुग्रह करके शिवजी भी अन्तर्धान हो गये॥ ४९—५१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवकृदक्षयज्ञविध्वंसनो नाम शततमोऽध्यायः॥ १००॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवकृत दक्षयज्ञविध्वंसन' नामक सौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १००॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

सतीका हिमवान्‌की पुत्री पार्वतीके रूपमें प्राकट्य, शिवकी प्राप्तिके लिये उनका कठोर तप, तारकासुरद्वारा देवताओंको पराजित करना, शिवद्वारा कामदेवका दहन तथा पुनः जीवित करना

ऋषय ऊचुः

कथं हिमवतः पुत्री बभूवाम्बा सती शुभा।
कथं वा देवदेवेशमवाप पतिमीश्वरम्॥ १

सूत उवाच

सा मेनातनुमाश्रित्य स्वेच्छयैव वराङ्गना।
तदा हैमवती जज्ञे तपसा च द्विजोत्तमाः॥ २

जातकर्मादिकाः सर्वाश्चकार च गिरीश्वरः।
द्वादशे च तदा वर्षे पूर्णे हैमवती शुभा॥ ३

तपस्तेपे तया सार्धमनुजा च शुभानना।
अन्या च देवी ह्यनुजा सर्वलोकनमस्कृता॥ ४

ऋषयश्च तदा सर्वे सर्वलोकमहेश्वरीम्।
तुष्टुवुस्तपसा देवीं समावृत्य समन्ततः॥ ५

ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना।
तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला॥ ६

तपसा च महादेव्याः पार्वत्याः परमेश्वरः।
वशीकृतो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः॥ ७

ऋषिगण बोले—कल्याणमयी अम्बा सती हिमवान्‌की पुत्री कैसे हुईं और उन्होंने देवदेवेश महेश्वरको पतिके रूपमें कैसे प्राप्त किया?॥ १॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो! उस श्रेष्ठ अंगनाने तपस्याके द्वारा अपनी इच्छासे मेनाके शरीरका आश्रय लेकर हिमालयकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। पर्वतराजने उसके जातकर्म आदि समस्त संस्कार सम्पन्न किये। तब बारहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर हिमवान्‌की वह सुन्दर पुत्री तपस्या करने लगी; उसके साथ सुन्दर मुखवाली उसकी छोटी बहन और सर्वलोकनमस्कृत एक दूसरी छोटी बहन भी थी॥ २—४॥

तब सभी ऋषि सभी लोकोंकी महेश्वरी उस देवीको चारों ओरसे घेरकर तपके लिये उसकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

उनमें सबसे बड़ी अपर्णा थी, उससे छोटी सुन्दर मुखवाली एकपर्णा थी और तीसरी परम सुन्दरी एकपाटला [नामवाली] थी। महादेवी पार्वतीकी तपस्यासे

एतस्मिन्नेव काले तु तारको नाम दानवः।
तारात्मजो महातेजा बभूव दितिनन्दनः॥ ८

तस्य पुत्रास्त्रयश्चापि तारकाक्षो महासुरः।
विद्युन्माली च भगवान् कमलाक्षश्च वीर्यवान्॥ ९

पितामहस्तथा चैषां तारो नाम महाबलः।
तपसा लब्धवीर्यश्च प्रसादाद् ब्रह्मणः प्रभोः॥ १०

सोऽपि तारो महातेजास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।
विजित्य समरे पूर्वं विष्णुं च जितवानसौ॥ ११

तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिवारात्रमविश्रमम्॥ १२

सरथं विष्णुमादाय चिक्षेप शतयोजनम्।
तारेण विजितः संख्ये दुद्राव गरुडध्वजः॥ १३

तारो वराच्छतगणं लब्ध्वा शतगुणं बलम्।
पितामहाज्जगत्सर्वमवाप दितिनन्दनः॥ १४

देवेन्द्रप्रमुखाञ्जित्वा देवान् देवेश्वरेश्वरः।
वारयामास तैर्देवान् सर्वलोकेषु मायया॥ १५

देवताश्च सहेन्द्रेण तारकाद्भयपीडिताः।
न शान्तिं लेभिरे शूराः शरणं वा भयार्दिताः॥ १६

तदामरपतिः श्रीमान् सन्निपत्यामरप्रभुः।
उवाचाङ्गिरसं देवो देवानामपि सन्निधौ॥ १७

भगवंस्तारको नाम तारजो दानवोत्तमः।
तेन सन्निहता युद्धे वत्सा गोपतिना यथा॥ १८

भयात्तस्मान्महाभाग बृहद्युद्धे बृहस्पते।
अनिकेता भ्रमन्त्येते शकुन्ता इव पञ्जरे॥ १९

सभी प्राणियोंके स्वामी परमेश्वर महादेव शिव [उनके] वशमें हो गये॥ ६-७॥

इसी समय तारक नामवाला एक दानव हुआ; दितिको आनन्दित करनेवाला वह तारपुत्र (तारक) महातेजस्वी था। उसके तीन पुत्र थे—महान् असुर तारकाक्ष, भाग्यशाली विद्युन्माली और पराक्रमी कमलाक्ष। तार नामक इनके महाबली पितामहने प्रभु ब्रह्माकी कृपासे [अपनी] तपस्याके द्वारा [अतुलनीय] पराक्रम प्राप्त कर लिया था। उस महातेजस्वी तारने चराचरसहित तीनों लोकोंको जीतकर संग्राममें विष्णुको भी जीत लिया था॥ ८—११॥

उन दोनोंमें दिन-रात बिना विश्रामके (निरन्तर) एक हजार दिव्य वर्षोंतक अत्यन्त भयानक तथा रोमांचकारी युद्ध हुआ। उसने रथसहित विष्णुको पकड़कर सौ योजन दूर फेंक दिया। तारके द्वारा युद्धमें पराजित होकर विष्णु भाग गये। ब्रह्मासे एक सौ वर तथा सैकड़ों गुना बल प्राप्त करके दितिनन्दन तारने सम्पूर्ण जगत्पर अधिकार कर लिया। देवेन्द्र आदि देवताओंको जीतकर देवेश्वरेश्वरके रूपमें होकर उसने अपनी मायासे देवताओंको सभी लोकोंमें उनके कार्योंसे वंचित कर दिया॥ १२—१५॥

इन्द्रसहित देवतागण तारकासुरके भयसे पीड़ित हो गये; वीर होते हुए भी वे भयग्रस्त होनेके कारण [कहीं भी] शान्ति अथवा शरण प्राप्त नहीं कर सके। तब देवताओंके स्वामी श्रीमान् प्रभु इन्द्र बृहस्पतिकी शरणमें जाकर देवताओंकी उपस्थितिमें उनसे कहने लगे॥ १६-१७॥

हे भगवन्! तारसे उत्पन्न तारक नामक एक महादानव है; उसने युद्धमें हमलोगोंको उसी तरह आहत किया है, जैसे बैल बछड़ोंको आहत कर देता है। अतः हे महाभाग! हे बृहस्पते! भयके कारण इस विशाल युद्धमें देवतालोग आश्रयविहीन होकर उसी प्रकार भ्रमण कर रहे हैं, जैसे पिँजरेमें पक्षी। हे अंगिरोवर! हमलोगोंके जो अस्त्र पहले

अस्माकं यान्यमोघानि आयुधान्यङ्गिरोवर।
तानि मोघानि जायन्ते प्रभावादमरद्विषः॥ २०

दशवर्षसहस्राणि द्विगुणानि बृहस्पते।
विष्णुना योधितो युद्धे तेनापि न च सूदितः॥ २१

यस्तेनानिर्जितो युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना।
कथमस्मद्विधस्तस्य स्थास्यते समरेऽग्रतः॥ २२

एवमुक्तस्तु शक्रेण जीवः सार्धं सुराधिपैः।
सहस्राक्षेण च विभुं सम्प्राप्याह कुशध्वजम्॥ २३

सोऽपि तस्य मुखाच्छ्रुत्वा प्रणयात्प्रणतार्तिहा।
देवैरशेषैः सेन्द्रैस्तु जीवमाह पितामहः॥ २४

जाने वोऽर्तिं सुरेन्द्राणां तथापि शृणु साम्प्रतम्।
विनिन्द्य दक्षं या देवी सती रुद्राङ्गसम्भवा॥ २५

उमा हैमवती जज्ञे सर्वलोकनमस्कृता।
तस्याश्चैवेह रूपेण यूयं देवाः सुरोत्तमाः॥ २६

विभोर्यतध्वमाक्रष्टुं रुद्रस्यास्य मनो महत्।
तयोर्योगेन सम्भूतः स्कन्दः शक्तिधरः प्रभुः॥ २७

अमोघ थे, वे उस देवशत्रुके प्रभावके कारण निष्फल हो गये हैं। हे बृहस्पते! विष्णुने बीस हजार वर्षोंतक उसके साथ युद्ध किया; किंतु वह उनके भी द्वारा युद्धमें नहीं मारा गया। महाशक्तिसम्पन्न विष्णुके द्वारा भी युद्धमें जो जीता नहीं जा सका, तब हम-जैसे लोग युद्धमें उसके समक्ष कैसे टिक सकते हैं?॥ १८—२२॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर श्रेष्ठ देवताओं तथा इन्द्रको साथ लेकर बृहस्पतिने विभु ब्रह्माके पास पहुँचकर

[सब कुछ] बताया॥ २३॥

उनके मुखसे [सारा वृत्तान्त] सुनकर शरणागतोंका कष्ट दूर करनेवाले उन पितामहने इन्द्रसहित सभी देवताओंके साथ आये हुए बृहस्पतिसे प्रेमपूर्वक कहा—मैं आप सब देवताओंकी विपत्तिको जानता हूँ; फिर भी इस समय सुनिये। रुद्रके अंगसे उत्पन्न जो देवी सती हैं, वे दक्षकी निन्दा करके समस्त लोकोंद्वारा नमस्कृत उमाके रूपमें हिमवान्‌की पुत्री होकर उत्पन्न हुई हैं। हे उत्तम देवताओं! आप देवतागण उन्हींके रूपके द्वारा इन विभु रुद्रके महान् मनको आकृष्ट करानेका प्रयत्न कीजिये। उन दोनोंके संयोगसे शक्तिधर प्रभु स्कन्द उत्पन्न होंगे; वे षडास्य (छः मुखवाले),

षडास्यो द्वादशभुजः सेनानीः पावकिः प्रभुः।
स्वाहेयः कार्तिकेयश्च गाङ्गेयः शरधामजः॥ २८

देवः शाखो विशाखश्च नैगमेशश्च वीर्यवान्।
सेनापतिः कुमाराख्यः सर्वलोकनमस्कृतः॥ २९

लीलयैव महासेनः प्रबलं तारकासुरम्।
बालोऽपि विनिहत्यैको देवान् सन्तारयिष्यति॥ ३०

एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
बृहस्पतिस्तथा सेन्द्रैर्देवैर्देवं प्रणम्य तम्॥ ३१

मेरोः शिखरमासाद्य स्मरं सस्मार सुव्रतः।
स्मरणाद्देवदेवस्य स्मरोऽपि सह भार्यया॥ ३२

रत्या समं समागम्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः।
सशक्रमाह तं जीवं जगज्जीवो द्विजोत्तमाः॥ ३३

स्मृतो यद्भवता जीव सम्प्राप्तोऽहं तवान्तिकम्।
ब्रूहि यन्मे विधातव्यं तमाह सुरपूजितः॥ ३४

तमाह भगवान् शक्रः सम्भाव्य मकरध्वजम्।
शङ्करेणाम्बिकामद्य संयोजय यथासुखम्॥ ३५

तया स रमते येन भगवान् वृषभध्वजः।
तेन मार्गेण मार्गस्व पत्न्या रत्यानया सह॥ ३६

सोऽपि तुष्टो महादेवः प्रदास्यति शुभां गतिम्।
विप्रयुक्तस्तया पूर्वं लब्ध्वा तां गिरिजामुमाम्॥ ३७

एवमुक्तो नमस्कृत्य देवदेवं शचीपतिम्।
देवदेवाश्रमं गन्तुं मतिं चक्रे तया सह॥ ३८

गत्वा तदाश्रमे शम्भोः सह रत्या महाबलः।
वसन्तेन सहायेन देवं योक्तुमनाभवत्॥ ३९

ततः सम्प्रेक्ष्य मदनं हसन् देवस्त्रियम्बकः।
नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत॥ ४०

ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्मदनं पार्श्वतः स्थितम्।
अदहत्तत्क्षणादेव ललाप करुणं रतिः॥ ४१

द्वादशभुज (बारह भुजाओंवाले), सेनानी, पावकि, प्रभु, स्वाहेय, कार्तिकेय, गांगेय, शरधामज, देव, शाख, विशाख, नैगमेश, वीर्यवान्, सेनापति और कुमार नामवाले होकर सभी लोकोंसे नमस्कृत होंगे। वे महासेन बालक होते हुए भी बिना प्रयासके अकेले ही [उस] महाबली तारकासुरका वध करके देवताओंका उद्धार करेंगे॥ २४—३०॥

तब उन परमेष्ठी ब्रह्माके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रसहित सभी देवताओंके साथ सुव्रत बृहस्पतिने देवदेव उन ब्रह्माको प्रणाम करके मेरुके शिखरपर पहुँचकर कामदेवका स्मरण किया। हे श्रेष्ठ द्विजो! देवगुरु ब्रह्माके स्मरण करनेसे जगत्‌का जीवस्वरूप कामदेव भी [अपनी] भार्या रतिके साथ वहाँ आकर हाथ जोड़कर नमस्कार करके इन्द्रसहित उन बृहस्पतिसे बोला—'हे बृहस्पते! आपने मेरा स्मरण किया है, अतः मैं आपके पास आया हूँ; मुझे जो करना हो, उसे बताइये।' तब देवपूजित बृहस्पति उससे कुछ बोलने ही वाले थे कि उत्सुकतावश भगवान् इन्द्रने कामदेवकी प्रशंसा करके उससे कहा—'अब आप सुखपूर्वक शंकरके साथ अम्बिकाका संयोग कराइये। वे भगवान् वृषभध्वज जिस भी उपायसे उनके साथ रमण करें; अपनी पत्नी रतिके साथ आप उस उपायको खोजिये। पहलेसे ही उन [अम्बिका]-से वियुक्त हुए वे महादेव भी उन पार्वती उमाको [पुनः] प्राप्त करके प्रसन्न होकर आपको शुभ गति प्रदान करेंगे'॥ ३१—३७॥

उनके ऐसा कहनेपर देवदेव इन्द्रको नमस्कार करके कामदेवने उस [रति]-के साथ शंकरजीके आश्रममें जानेका निश्चय किया। तब रति तथा अपने सहायक वसन्तके साथ शिवजीके आश्रममें जाकर महाबली कामदेवने पार्वतीके साथ महादेवका संयोग करानेका मन बनाया॥ ३८-३९॥

तत्पश्चात् कामदेवको देखकर हँसते हुए त्रिनेत्र शिवने अवज्ञापूर्वक उसे [अपने] तीसरे नेत्रसे देखा। इसके बाद उनके नेत्रसे उत्पन्न अग्निने पासमें ही खड़े कामदेवको उसी क्षण जला दिया। तब रति करुण

रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः।
कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च॥ ४२

अमूर्तोऽपि ध्रुवं भद्रे कार्यं सर्वं पतिस्तव।
रतिकाले ध्रुवं भद्रे करिष्यति न संशयः॥ ४३

यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवो महायशाः।
शापाद् भृगोर्महातेजाः सर्वलोकहिताय वै॥ ४४

तदा तस्य सुतो यश्च स पतिस्ते भविष्यति।
सा प्रणम्य तदा रुद्रं कामपत्नी शुचिस्मिता॥ ४५

जगाम मदनं लब्ध्वा वसन्तेन समन्विता॥ ४६

विलाप करने लगी। रतिके विलापको सुनकर देवदेव वृषध्वजने परम कृपासे कामदेवकी पत्नीकी ओर देखकर उससे कहा—'हे भद्रे! तुम्हारा पति देहरहित होते हुए भी रतिकालमें निश्चित रूपसे सम्पूर्ण कार्य करेगा; हे भद्रे! इसमें सन्देह नहीं है। जब [भगवान्] विष्णु भृगुके शापसे सभी लोकोंके हितके लिये महायशस्वी तथा महातेजस्वी वासुदेव (वसुदेवपुत्र)-के रूपमें अवतीर्ण होंगे, तब उनका [प्रद्युम्न नामक] जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुम्हारा पति होगा'॥ ४०—४४$^{1}/_{2}$॥

इसके बाद रुद्रको प्रणाम करके पवित्र मुसकानवाली वह कामपत्नी अनंगको प्राप्त करके वसन्तके साथ चली गयी॥ ४५-४६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मदनदाहो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'मदनदाह' नामक एक सौ एकवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०१॥

एक सौ दोवाँ अध्याय

पार्वतीकी तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शिवका ब्राह्मणवेषमें आकर उन्हें वरदान देना, हिमालयद्वारा पार्वतीस्वयंवरकी घोषणा, स्वयंवरमें भगवान् शिवका बालरूपमें उपस्थित होकर सभीको मोहित करना, पुनः ब्रह्माकी स्तुतिसे प्रसन्न हो महेश्वरका मनोहर वररूप धारणकर सबको आनन्दित करना

सूत उवाच

तपसा च महादेव्याः पार्वत्या वृषभध्वजः।
प्रीतश्च भगवान् शर्वो वचनाद् ब्रह्मणस्तदा॥ १

हिताय चाश्रमाणां च क्रीडार्थं भगवान् भवः।
तदा हैमवतीं देवीमुपयेमे यथाविधि॥ २

जगाम स स्वयं ब्रह्मा मरीच्याद्यैर्महर्षिभिः।
तपोवनं महादेव्याः पार्वत्याः पद्मसम्भवः॥ ३

प्रदक्षिणीकृत्य च तां देवीं स जगतोऽरणीम्।
किमर्थं तपसा लोकान् सन्तापयसि शैलजे॥ ४

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं मातस्त्वं मा विनाशय।
त्वं हि सन्धारये लोकानिमान् सर्वान् स्वतेजसा॥ ५

सर्वदेवेश्वरः श्रीमान् सर्वलोकपतिर्भवः।
यस्य वै देवदेवस्य वयं किङ्करवादिनः॥ ६

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] भगवान् वृषभध्वज शर्व पार्वतीकी तपस्यासे प्रसन्न हो गये। इसके बाद ब्रह्माजीके कहनेसे भगवान् भवने सभी आश्रमोंके हितके लिये और क्रीड़ा करनेके लिये विधिपूर्वक पार्वतीके साथ विवाह किया॥ १-२॥

उस समय कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी स्वयं मरीचि आदि महर्षियोंके साथ महादेवी पार्वतीके तपोवनमें गये थे। उन्होंने जगत्की निमित्तकारणस्वरूपा उन देवीकी प्रदक्षिणा करके कहा—'हे शैलजे! आप तपस्यासे लोकोंको किसलिये संतप्त कर रही हैं? हे मातः! आपने ही सम्पूर्ण जगत्का सृजन किया है, अतः आप इसका विनाश मत कीजिये; आप अपने तेजसे इन समस्त लोकोंको धारण कीजिये। श्रीमान् शिवजी सभी देवताओंके ईश्वर तथा सभी लोकोंके स्वामी हैं।

स एवं परमेशानः स्वयं च वरयिष्यति।
वरदे येन सृष्टासि न विना यस्त्वयाम्बिके॥ ७

वर्तते नात्र सन्देहस्तव भर्ता भविष्यति।
इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य मुहुः सम्प्रेक्ष्य पार्वतीम्॥ ८

गते पितामहे देवो भगवान् परमेश्वरः।
जगामानुग्रहं कर्तुं द्विजरूपेण चाश्रमम्॥ ९

सा च दृष्ट्वा महादेवं द्विजरूपेण संस्थितम्।
प्रतिभाद्यैः प्रभुं ज्ञात्वा ननाम वृषभध्वजम्॥ १०

सम्पूज्य वरदं देवं ब्राह्मणं छद्मनागतम्।
तुष्टाव परमेशानं पार्वती परमेश्वरम्॥ ११

अनुगृह्य तदा देवीमुवाच प्रहसन्निव।
कुलधर्माश्रयं रक्षन् भूधरस्य महात्मनः॥ १२

क्रीडार्थं च सतां मध्ये सर्वदेवपतिर्भवः।
स्वयंवरे महादेवि तव दिव्यसुशोभने॥ १३

आस्थाय रूपं यत्सौम्यं समेष्येऽहं सह त्वया।
इत्युक्त्वा तां समालोक्य देवो दिव्येन चक्षुषा॥ १४

जगामेष्टं तदा दिव्यं स्वपुरं प्रययौ च सा।
दृष्ट्वा हृष्टस्तदा देवीं मेनया तुहिनाचलः॥ १५

हमलोग जिन देवाधिदेवके सेवक कहे जाते हैं, वे परमेश्वर ही स्वयं आपका वरण करेंगे। हे वरदे! जिन्होंने आपका सृजन किया है और हे अम्बिके! जो आपके बिना रह नहीं सकते; वे [शिवजी] आपके पति होंगे; इसमें सन्देह नहीं है'॥ ३—७१/२॥

ऐसा कहकर उन पार्वतीको नमस्कार करके बार-बार उनकी ओर देखकर पितामह (ब्रह्मा)-के चले जानेपर भगवान् परमेश्वर [शिव] अनुग्रह करनेके लिये ब्राह्मणके रूपमें उस आश्रममें गये॥ ८-९॥

द्विजरूपसे उपस्थित महादेवको देखकर उन पार्वतीने उनकी दीप्ति आदिके द्वारा उन्हें भगवान् वृषभध्वज

जानकर प्रणाम किया। ब्राह्मणके छद्मरूपमें आये हुए वरदाता महादेवकी पूजा करके पार्वतीने उन परमेशान परमेश्वरकी स्तुति की॥ १०-११॥

तदनन्तर देवीपर अनुग्रह करके शिवजी हँसते हुए बोले—'हे महादेवि! सभी देवताओंका स्वामी मैं शिव महात्मा हिमालयके कुलधर्मकी परम्पराकी रक्षा करता हुआ क्रीड़ा करनेके लिये सज्जनोंके मध्य तुम्हारे दिव्य तथा अतिसुन्दर स्वयंवरमें सौम्य रूप धारण करके तुमसे मिलूँगा'॥ १२-१३१/२॥

ऐसा कह करके उन्हें दिव्य दृष्टिसे देखकर शिवजी अपने अभीष्ट (प्रिय) दिव्य लोकको चले गये

आलिङ्ग्याघ्राय सम्पूज्य पुत्रीं साक्षात्तपस्विनीम्।
दुहितुर्देवदेवेन न जानन्नभिमन्त्रितम्॥ १६

स्वयंवरं तदा देव्याः सर्वलोकेष्वघोषयत्।
अथ ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः साक्षाज्जनार्दनः॥ १७

शक्रश्च भगवान् वह्निर्भास्करो भग एव च।
त्वष्टार्यमा विवस्वांश्च यमो वरुण एव च॥ १८

वायुः सोमस्तथेशानो रुद्राश्च मुनयस्तथा।
अश्विनौ द्वादशादित्या गन्धर्वा गरुडस्तथा॥ १९

यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किंपुरुषोरगाः।
समुद्राश्च नदा वेदा मन्त्राः स्तोत्रादयः क्षणाः॥ २०

नागाश्च पर्वताः सर्वे यज्ञाः सूर्यादयो ग्रहाः।
त्रयस्त्रिंशच्च देवानां त्रयश्च त्रिशतं तथा॥ २१

त्रयश्च त्रिसहस्त्रं च तथान्ये बहवः सुराः।
जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्र्यास्तु स्वयंवरमनुत्तमम्॥ २२

अथ शैलसुता देवी हैममारुह्य शोभनम्।
विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलङ्कृतम्॥ २३

अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिः सर्वाभरणभूषितैः।
गन्धर्वसिद्धैर्विविधैः किन्नरैश्च सुशोभनैः॥ २४

वन्दिभिः स्तूयमाना च स्थिता शैलसुता तदा।
सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं चावहत्तथा॥ २५

मालिनी गिरिपुत्र्यास्तु सन्ध्यापूर्णेन्दुमण्डलम्।
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्च संवृता॥ २६

मालां गृह्य जया तस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम्।
विजया व्यजनं गृह्य स्थिता देव्याः समीपगा॥ २७

मालां प्रगृह्य देव्यां तु स्थितायां देवसंसदि।
शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः॥ २८

उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान् भवः।
अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्या उत्सङ्गवर्तिनम्॥ २९

कोऽयमत्रेति सम्मन्त्र्य चुक्षुभुश्च समागताः।
वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्य वृत्रहा॥ ३०

और इसके बाद वे भी चली गयीं। तब देवीको देखकर मैनासहित हिमालय साक्षात् तपस्विनी अपनी पुत्रीका आलिंगन करके, उनका मस्तक सूँघकर और उनकी पूजा करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् देवाधिदेव [शिव]-द्वारा अपनी पुत्रीको दिये गये संकेतको न जानते हुए भी हिमालयने सभी लोकोंमें देवीके स्वयंवरकी घोषणा कर दी॥ १४—१६$^1/_2$॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा, साक्षात् भगवान् जनार्दन विष्णु, ऐश्वर्यशाली इन्द्र, अग्निदेव, सूर्य, भग, त्वष्टा, अर्यमा, विवस्वान्, यम, वरुण, वायु, सोम, ईशान, सभी रुद्र, मुनिगण, दोनों अश्विनीकुमार, बारहों आदित्य, समस्त गन्धर्व, गरुड़, यक्ष, सिद्ध, साध्य, दैत्य, किंपुरुष, उरग, समुद्र, नद, वेद, मन्त्र, स्तोत्र आदि, क्षण, नाग, पर्वत, सभी यज्ञ, सूर्य आदि ग्रह, वसु, रुद्र तथा आदित्य आदि तैंतीस देवताओंके भेद-प्रभेदरूप ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ये तीन, तीन सौ तथा तीन हजार तीन देवता तथा अन्य बहुत-से देवता पर्वतराजकी पुत्रीके अत्युत्तम स्वयंवरमें पहुँचे॥ १७—२२॥

तदनन्तर पार्वती देवी स्वर्णनिर्मित तथा सभी रत्नोंसे अलंकृत सर्वतोभद्र नामक उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर नृत्य करती हुई अप्सराओं, सभी आभूषणोंसे विभूषित विविध गन्धर्वों, सिद्धों तथा परम सुन्दर किन्नरोंके साथ और बन्दीजनोंद्वारा स्तुत होती हुई वहाँ उपस्थित हुईं। [उनकी सखी] मालिनी रत्नकिरणोंसे मिश्रित श्वेत वर्णका सन्ध्याकालीन चन्द्रमण्डलसदृश छत्र [उन] पार्वतीके ऊपर लगाये हुए थी। वे पार्वती हाथोंमें चँवर लिये हुई दिव्य स्त्रियोंसे घिरी हुई थीं। कल्पवृक्षके पुष्पोंसे निर्मित माला [हाथमें] लेकर जया [नामक सखी] खड़ी थी और विजया व्यजन (पंखा) लेकर देवीके समीप खड़ी थी॥ २३—२७॥

देवताओंकी सभामें [अपने हाथमें] माला लेकर देवी पार्वतीके स्थित होनेपर भगवान् वृषभध्वज भव महादेव क्रीड़ा करनेके लिये एक शिशुके रूपमें होकर देवीकी गोदमें सोये हुएकी भाँति स्थित हो गये। तब उनकी गोदमें स्थित शिशुको देखकर 'यहाँपर यह कौन है'—ऐसा विचार करके [वहाँ] उपस्थित देवतागण

स बाहुरुद्यमस्तस्य तथैव समुपस्थितः।
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया॥ ३१

वज्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुं चालयितुं तथा।
वह्निः शक्तिं तथा क्षेप्तुं न शशाक तथा स्थितः॥ ३२

यमोऽपि दण्डं खड्गं च निर्ऋतिर्मुनिपुङ्गवाः।
वरुणो नागपाशं च ध्वजयष्टिं समीरणः॥ ३३

सोमो गदां धनेशश्च दण्डं दण्डभृतां वरः।
ईशानश्च तथा शूलं तीव्रमुद्यम्य संस्थितः॥ ३४

रुद्राश्च शूलमादित्या मुशलं वसवस्तथा।
मुद्गरं स्तम्भिताः सर्वे देवेनाशु दिवौकसः॥ ३५

स्तम्भिता देवदेवेन तथान्ये च दिवौकसः।
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुश्चक्रमुद्यम्य संस्थितः॥ ३६

तस्यापि शिरसो बालः स्थिरत्वं प्रचकार ह।
चक्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहूंश्चालयितुं न च॥ ३७

पूषा दन्तान् दशन् दन्तैर्बालमैक्षत मोहितः।
तस्यापि दशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्य शम्भुना॥ ३८

क्षुब्ध हो उठे॥ २८-२९½॥

वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्रने भुजा उठाकर उस

[शिशु]-के ऊपर वज्र चलाना चाहा, किंतु उनका उठा हुआ वह बाहु वैसा ही रह गया। शिशुरूपधारी देवदेव [शिव]-के द्वारा लीलापूर्वक स्तम्भित कर दिये गये वे इन्द्र वज्र फेंकने तथा अपनी भुजा चलानेमें समर्थ नहीं हुए। [इसी प्रकार] अग्निदेव भी अपनी शक्ति चलानेमें समर्थ नहीं हुए और वैसे ही खड़े रह गये॥ ३०—३२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! इसी प्रकार यम अपने दण्डको, निर्ऋति अपने खड्गको, वरुण अपने नागपाशको, वायुदेव अपने ध्वजदण्डको, सोम अपनी गदाको, दण्डधारियोंमें श्रेष्ठ कुबेर अपने दण्डको तथा ईशान अपने तीक्ष्ण त्रिशूलको उठाकर खड़े ही रह गये। सभी रुद्र शूलको, सभी आदित्य मुसलको तथा वसुगण मुद्गरको उठाये ही रह गये; सभी देवता शीघ्र ही महादेवके द्वारा स्तम्भित कर दिये गये। [इसी प्रकार] देवाधिदेवने अन्य देवताओंको भी स्तम्भित कर दिया॥ ३३—३५½॥

विष्णु [अपने] सिरको हिलाते हुए चक्र उठाकर खड़े रहे। उस बालकने उनके भी सिरको स्थिर कर दिया। वे [विष्णु] अपना चक्र फेंकने तथा बाहुओंको चलानेमें समर्थ नहीं हुए। पूषाने मोहित होकर अपने दाँतोंसे दाँतोंको किटकिटाते हुए उस बालककी ओर देखा। शिवके देखनेमात्रसे ही उसके दाँत गिर गये।

बलं तेजश्च योगं च तथैवास्तम्भयद्विभुः।
अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्वपि॥ ३९

ब्रह्मापरमसंविग्नो ध्यानमास्थाय शङ्करम्।
बुबुधे देवमीशानमुमोत्सङ्गे तमास्थितम्॥ ४०

स बुद्ध्वा देवमीशानं शीघ्रमुत्थाय विस्मितः।
ववन्दे चरणौ शम्भोरस्तुवच्च पितामहः॥ ४१

पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः।
स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तकः॥ ४२

बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वरः।
भूतानामिन्द्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्तकः॥ ४३

तवाहं दक्षिणाद्धस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः।
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः॥ ४४

इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण।
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता॥ ४५

नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नमः।
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः॥ ४६

देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः।
कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे॥ ४७

सूत उवाच

विज्ञाप्यैवं तदा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम्।
संस्तम्भितांस्तदा तेन भगवानाह पद्मजः॥ ४८

मूढास्थ देवताः सर्वा नैव बुध्यत शङ्करम्।
देवदेवमिहायान्तं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ४९

गच्छध्वं शरणं शीघ्रं देवाः शक्रपुरोगमाः।
सनारायणकाः सर्वे मुनिभिः शङ्करं प्रभुम्॥ ५०

सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमीश्वरम्।
अनया हैमवत्या च प्रकृत्या सह सत्तमम्॥ ५१

तत्र ते स्तम्भितास्तेन तथैव सुरसत्तमाः।
प्रणेमुर्मनसा सर्वे सनारायणकाः प्रभुम्॥ ५२

अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः।
यथापूर्वं चकाराशु वचनाद् ब्रह्मणः प्रभुः॥ ५३

उसी प्रकार विभु शिवने सबके बल, तेज तथा योगको स्तम्भित कर दिया॥ ३६—३८१/२॥

इसके बाद क्रोधमें भरे हुए उन समस्त देवताओंके स्तम्भित हो जानेपर अत्यन्त व्याकुल ब्रह्माने शंकरका ध्यान करके यह जान लिया कि उमाकी गोदमें वे भगवान् ईशान ही विराजमान हैं। ईशानदेवको पहचानकर शीघ्र उन्हें उठाकर विस्मित हुए पितामहने शम्भुके चरणोंकी वन्दना की और प्राचीन सामगानों, उनके पवित्र नामों तथा गुप्त नामोंके द्वारा उनकी स्तुति की॥ ३९—४११/२॥

[ब्रह्माने कहा—] आप समस्त लोकोंके स्रष्टा तथा प्रकृतिके प्रवर्तक हैं। आप सभी लोकोंकी बुद्धि एवं अहंकार हैं। आप ईश्वर हैं। हे ईश! आप ही सभी प्राणियोंकी इन्द्रियोंके प्रवर्तक हैं। हे महाबाहो! सर्वप्रथम आपके दाहिने हाथसे पुरातन मैं [ब्रह्मा] उत्पन्न हुआ हूँ और बायें हाथसे भगवान् प्रभु नारायण उत्पन्न हुए हैं। हे सृष्टिकारण! ये देवी प्रकृति सर्वदा आपकी पत्नीका रूप धारणकर जगत्की कारणभूता बनी हैं। हे महादेव! आपको नमस्कार है; महादेवीको बार-बार नमस्कार है। हे देवेश! मैंने आपकी कृपासे तथा आपके आदेशसे इन प्रजाओं तथा देवता आदिका सृजन किया है। आपके योगसे मोहित होकर ये देवगण अब मूढ़ताको प्राप्त हो गये हैं। अब आप इनपर अनुग्रह कीजिये, जिससे ये पूर्वकी भाँति हो जायँ॥ ४२—४७॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस प्रकार देवदेव महेश्वरका स्तवन करके पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माने उन [शिव]-के द्वारा स्तम्भित किये गये देवताओंसे कहा—मूढ़ताको प्राप्त आप सभी देवताओंने सभी देवोंसे नमस्कृत होनेवाले यहाँ आये हुए देवदेव शंकरको नहीं पहचाना। हे देवताओ! इन्द्र आदि आप सभी देवगण नारायणको, सभी मुनियोंको तथा मुझको साथ लेकर इन प्रकृतिस्वरूपा पार्वतीके साथ विराजमान सर्वश्रेष्ठ, प्रभु, देवेश, परमात्मा, ईश्वर शंकरकी शरणमें शीघ्र चलिये॥ ४८—५१॥

तब उन शिवके द्वारा वहाँपर स्तम्भित किये गये नारायणसहित उन सभी श्रेष्ठ देवताओंने प्रभु [शिव]-को मनसे प्रणाम किया॥ ५२॥

इसके बाद देवदेव त्रिलोचन [शिव] उनपर

तत एवं प्रसन्ने तु सर्वदेवनिवारणम्।
वपुश्चकार देवेशो दिव्यं परममद्भुतम्॥ ५४

तेजसा तस्य देवास्ते सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः।
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च सनारायणकास्तथा॥ ५५

सयमाश्च सरुद्राश्च चक्षुरप्रार्थयन् विभुम्।
तेभ्यश्च परमं चक्षुः सर्वदृष्टौ च शक्तिमत्॥ ५६

ददावम्बापतिः शर्वो भवान्याश्च चलस्य च।
लब्ध्वा चक्षुस्तदा देवा इन्द्रविष्णुपुरोगमाः॥ ५७

सब्रह्मकाः सशक्राश्च तमपश्यन् महेश्वरम्।
ब्रह्माद्या नेमिरे तूर्णं भवानी च गिरीश्वरः॥ ५८

मुनयश्च महादेवं गणेशाः शिवसम्मताः।
ससर्जुः पुष्पवृष्टिं च खेचराः सिद्धचारणाः॥ ५९

देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुर्मुनयः प्रभुम्।
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ६०

मुमुहुर्गणपाः सर्वे मुमोदाम्बा च पार्वती।
तस्य देवी तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम्॥ ६१

पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम्।
साधु साध्विति सम्प्रोच्य तया तत्रैव चार्चितम्॥ ६२

प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने ब्रह्माके वचनानुसार सबको पूर्वकी भाँति कर दिया॥ ५३॥

इस प्रकार प्रसन्न हो जानेपर उन देवेश्वरने सभी देवताओंके द्वारा न देखे जा सकनेवाला, दिव्य तथा परम अद्भुत शरीर धारण किया॥ ५४॥

तब उनके तेजसे इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, साध्यगण, नारायण, यम, सभी रुद्र आदिके सहित वे देवता प्रतिहत (नष्ट) दृष्टिवाले हो गये। तब उन लोगोंने प्रभुसे [दिव्य] दृष्टिके लिये प्रार्थना की। इसपर उमापति शर्वने उन्हें सब कुछ देखनेमें समर्थ दिव्य दृष्टि प्रदान की; साथ ही उन्होंने भवानी तथा हिमालयको भी दिव्य दृष्टि दी॥ ५५-५६ १/२॥

तब दिव्य दृष्टि प्राप्त करके ब्रह्मा तथा शक्र-सहित इन्द्र, विष्णु आदि प्रधान देवताओंने उन महेश्वरका दर्शन किया। ब्रह्मा आदि देवताओं, भवानी (पार्वती), गिरीश्वर [हिमालय], मुनियों तथा शिवप्रिय गणेश्वरोंने शीघ्र ही महादेवको प्रणाम किया। आकाशचारी सिद्धों तथा चारणोंने [उनपर] पुष्पवृष्टि की, देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं, मुनिगण प्रभुकी स्तुति करने लगे, प्रधान गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं, सभी गणेश्वर आनन्दित हो उठे और अम्बा पार्वती भी आनन्दविभोर हो गयीं॥ ५७—६० १/२॥

उस समय आह्लादित देवी [पार्वती]-ने त्रिदेवोंके
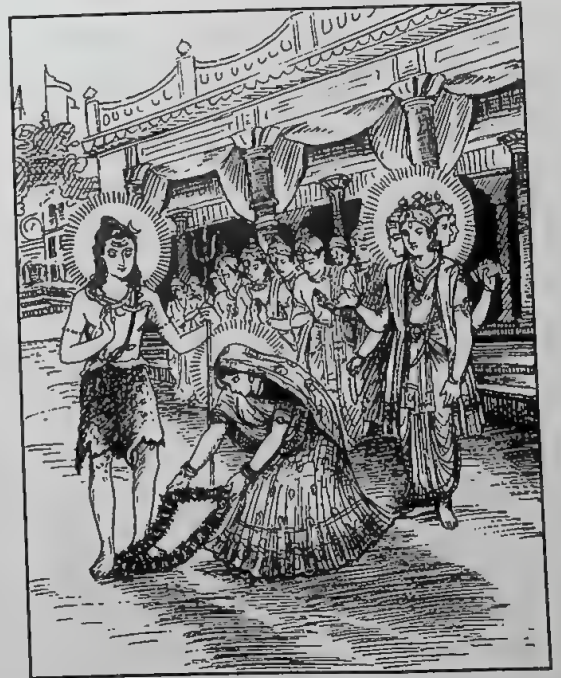
समक्ष उन शिवके चरणोंमें दिव्य तथा सुगन्धित माला

सहदेव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः।
सर्वे सब्रह्मका देवाः सयक्षोरगराक्षसाः॥ ६३

समर्पित कर दी। ब्रह्मा-यक्ष-उरग-राक्षसोंसहित सभी देवताओंने 'साधु-साधु' कहकर वहाँपर उन पार्वतीके द्वारा पूजित शिवको उन देवीसमेत पृथ्वीतलपर मस्तक टेककर प्रणाम किया॥ ६१—६३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उमास्वयंवरो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'उमास्वयंवर' नामक एक सौ दोवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ अध्याय

भगवान् शिव एवं पार्वतीके विवाहकी मांगलिक कथा तथा विवाहके अनन्तर भगवान् शिवका काशी-आगमन और पार्वतीको मुक्तिक्षेत्र काशीकी महिमा बताना

सूत उवाच

अथ ब्रह्मा महादेवमभिवन्द्य कृताञ्जलिः।
उद्वाहः क्रियतां देव इत्युवाच महेश्वरम्॥ १
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
यथेष्टमिति लोकेशं प्राह भूतपतिः प्रभुः॥ २
उद्वाहार्थं महेशस्य तत्क्षणादेव सुव्रताः।
ब्रह्मणा कल्पितं दिव्यं पुरं रत्नमयं शुभम्॥ ३
अथादितिर्दितिः साक्षाद्दनुः कद्रुः सुकालिका।
पुलोमा सुरसा चैव सिंहिका विनता तथा॥ ४
सिद्धिर्माया क्रिया दुर्गा देवी साक्षात्सुधा स्वधा।
सावित्री वेदमाता च रजनी दक्षिणा द्युतिः॥ ५
स्वाहा स्वधा मतिर्बुद्धिर्ऋद्धिर्वृद्धिः सरस्वती।
राका कुहूः सिनीवाली देवी अनुमती तथा॥ ६
धरणी धारणी चेला शची नारायणी तथा।
एताश्चान्याश्च देवानां मातरः पत्नयस्तथा॥ ७
उद्वाहः शङ्करस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः।
उरगा गरुडा यक्षा गन्धर्वाः किन्नरा गणाः॥ ८
सागरा गिरयो मेघा मासाः संवत्सरास्तथा।
वेदा मन्त्रास्तथा यज्ञाः स्तोमा धर्माश्च सर्वशः॥ ९
हुङ्कारः प्रणवश्चैव प्रतिहाराः सहस्रशः।
कोटिरप्सरसो दिव्यास्तासां च परिचारिकाः॥ १०
याश्च सर्वेषु द्वीपेषु देवलोकेषु निम्नगाः।
ताश्च स्त्रीविग्रहाः सर्वाः सञ्जग्मुर्हृष्टमानसाः॥ ११
गणपाश्च महाभागाः सर्वलोकनमस्कृताः।
उद्वाहः शङ्करस्येति तत्राजग्मुर्मुदान्विताः॥ १२

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसके बाद ब्रह्माने हाथ जोड़कर महादेव महेश्वरको प्रणाम करके यह कहा—'हे देव! अब विवाह कीजिये'॥ १॥

उन परमेष्ठी ब्रह्माका वह वचन सुनकर भूतपति शिवने लोकेश [ब्रह्मा]-से कहा—'जो आपकी इच्छा हो'॥ २॥

हे सुव्रतो! ब्रह्माने महेशके विवाहके लिये उसी क्षण रत्नमय, दिव्य तथा सुन्दर नगरका निर्माण किया॥ ३॥

इसके बाद अदिति, दिति, साक्षात् दनु, कद्रु, सुकालिका, पुलोमा, सुरसा, सिंहिका, विनता, सिद्धि, माया, क्रिया, साक्षात् देवी दुर्गा, सुधा, स्वधा, वेदमाता सावित्री, रजनी, दक्षिणा, द्युति, स्वाहा, स्वधा, मति, बुद्धि, ऋद्धि, वृद्धि, सरस्वती, राका, कुहू, सिनीवाली, देवी अनुमती, धरणी, धारणी, इला, शची, नारायणी—ये सब एवं अन्य सभी देवमाताएँ तथा देवपत्नियाँ 'शंकरका विवाह हो रहा है'—ऐसा सोचकर आनन्दमग्न होकर [वहाँ] गयीं। सभी उरग, गरुड़, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, गण, समुद्र, पर्वत, मेघ, मास, संवत्सर, वेद, मन्त्र, यज्ञ, स्तोम, धर्म, हुंकार, प्रणव, हजारों प्रतिहार, करोड़ों दिव्य अप्सराएँ तथा उनकी परिचारिकाएँ और समस्त द्वीपों तथा देवलोकोंमें जो भी नदियाँ हैं, वे सब स्त्रीका रूप धारण करके प्रसन्नचित्त होकर वहाँ गयीं। सभी लोकोंसे नमस्कृत महाभाग गणेश्वर भी 'यह शंकरका विवाह है'—यह सोचकर प्रसन्नतासे युक्त हो वहाँ आये॥ ४—१२॥

अभ्ययुः शङ्खवर्णाश्च गणकोट्यो गणेश्वराः।
दशभिः केकराक्षश्च विद्युतोऽष्टाभिरेव च॥ १३

चतुःषष्ट्या विशाखाश्च नवभिः पारयात्रिकः।
षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमान् तथैव विकृताननः॥ १४

ज्वालाकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः।
सप्तभिः समदः श्रीमान् दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च॥ १५

पञ्चभिश्च कपालीशः षड्भिः सन्दारकः शुभः।
कोटिकोटिभिरेवेह गण्डकः कुम्भकस्तथा॥ १६

विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेह गणपः सर्वसत्तमः।
पिप्पलश्च सहस्रेण सन्नादश्च तथा द्विजाः॥ १७

आवेष्टनस्तथाष्टाभिः सप्तभिश्चन्द्रतापनः।
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः॥ १८

कुण्डी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतकः शुभः।
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै॥ १९

आग्निकः शतकोट्या वै कोट्याग्निमुख एव च।
आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव धनावहः॥ २०

सन्नामश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा।
अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या सुमन्त्रकः॥ २१

काकपादोऽपरः षष्ट्या षष्ट्या सन्तानकः प्रभुः।
महाबलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च पिङ्गलः॥ २२

नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च।
कोटीनां चैव सप्तत्या चतुर्वक्त्रो महाबलः॥ २३

कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृताः।
तत्राजग्मुस्तथा देवास्ते सर्वे शङ्करं भवम्॥ २४

शंखके समान वर्णवाले गणेश्वर [अपने] करोड़ों गणोंके साथ पहुँचे। केकराक्ष दस करोड़ गणोंके साथ, विद्युत आठ करोड़ गणोंके साथ, विशाख चौंसठ करोड़ गणोंके साथ, पारयात्रिक नौ करोड़ गणोंके साथ, श्रीमान् सर्वान्तक छः करोड़ गणोंके साथ, विकृतानन भी छः करोड़ गणोंके साथ, गणोंमें श्रेष्ठ ज्वालाकेश बारह करोड़ गणोंके साथ, श्रीमान् समद सात करोड़ गणोंके साथ, दुन्दुभ आठ करोड़ गणोंके साथ, कपालीश पाँच करोड़ गणोंके साथ, उत्तम संदारक छः करोड़ गणोंके साथ और गण्डक तथा कुम्भक करोड़ों-करोड़ों गणोंके साथ आये॥ १३—१६॥

हे द्विजो! सर्वश्रेष्ठ गणेश्वर विष्टम्भ आठ करोड़ गणोंके साथ और पिप्पल तथा सन्नाद एक-एक हजार करोड़ गणोंके साथ आये। आवेष्टन [नामक गणेश्वर] आठ करोड़ गणोंके साथ, चन्द्रतापन सात करोड़ गणोंके साथ और गणेश्वर महाकेश हजार करोड़ गणोंके साथ आये॥ १७-१८॥

पराक्रमशाली [गणेश्वर] कुण्डी तथा शुभ पर्वतक बारह करोड़ गणोंके साथ और काल, कालक तथा महाकाल सौ करोड़ गणोंके साथ आये। आग्निक सौ करोड़ गणोंके साथ तथा अग्निमुख एक करोड़ गणोंके साथ आये। उसी प्रकार आदित्यमूर्धा तथा धनावह [नामक गणेश्वर] भी एक करोड़ गणोंके साथ आये॥ १९-२०॥

सन्नाम तथा कुमुद सौ करोड़ गणोंके साथ आये। अमोघ, कोकिल तथा सुमन्त्रक करोड़-करोड़ गणोंके साथ आये। दूसरे गणेश्वर काकपाद साठ करोड़ गणोंके साथ, प्रभुतासम्पन्न सन्तानक साठ करोड़ गणोंके साथ और महाबल, मधु, पिंग तथा पिंगल नौ करोड़ गणोंके साथ आये। नील, देवेश तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणोंके साथ और महाबलशाली चतुर्वक्त्र सत्तर करोड़ गणोंके साथ आये। वे सभी देव अपने बीस सौ हजार करोड़ गणोंसे घिरे हुए वहाँ भगवान् शंकरके पास पहुँचे॥ २१—२४॥

भूतकोटिसहस्रेण प्रमथः कोटिभिस्त्रिभिः।
वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या रोमजाश्चैव कोटिभिः॥ २५
करणश्चैव विंशत्या नवत्या केवलः शुभः।
पञ्चाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युस्तथैव च॥ २६
काष्ठकूटश्चतुःषष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा।
विरूपाक्षश्च भगवान् चतुःषष्ट्या सनातनः॥ २७
तालकेतुः षडास्यश्च पञ्चास्यश्च सनातनः।
संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः॥ २८
लोकान्तकश्च दीप्तास्यो तथा दैत्यान्तकः प्रभुः।
मृत्युहृत्कालहा कालो मृत्युञ्जयकरस्तथा॥ २९
विषादो विषदश्चैव विद्युतः कान्तकः प्रभुः।
देवो भृङ्गी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा॥ ३०
अशनिर्भासकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रपात्।
एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः॥ ३१
सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः॥ ३२
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुसङ्काशा अणिमादिगुणैर्वृताः॥ ३३
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः।
पातालचारिणश्चैव सर्वलोकनिवासिनः॥ ३४
तुम्बरुर्नारदो हाहा हूहूश्चैव तु सामगाः।
रत्नान्यादाय वाद्यांश्च तत्राजग्मुस्तदा पुरम्॥ ३५
ऋषयः कृत्स्नशस्तत्र देवगीतास्तपोधनाः।
पुण्यान् वैवाहिकान् मन्त्रानजपुर्हृष्टमानसाः॥ ३६
तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वतश्च समागमे।
गिरिजां तामलङ्कृत्य स्वयमेव शुचिस्मिताम्॥ ३७
पुरं प्रवेशयामास स्वयमादाय केशवः।
सदस्याह च देवेशं नारायणमजो हरिम्॥ ३८
भवानग्रे समुत्पन्नो भवान्या सह दैवतैः।
वामाङ्गादस्य रुद्रस्य दक्षिणाङ्गादहं प्रभो॥ ३९
मन्मूर्तिस्तुहिनाद्रीशो यज्ञार्थं सृष्ट एव हि।
एषा हैमवती जज्ञे मायया परमेष्ठिनः॥ ४०

प्रमथ [अपने] हजार करोड़ भूतों तथा तीन करोड़ गणोंके साथ आये। वीरभद्र चौंसठ करोड़ गणोंके साथ और रोमज करोड़ों गणोंके साथ आये। करण बीस करोड़ गणोंके साथ और केवल, शुभ, पंचाक्ष, शतमन्यु तथा मेघमन्यु भी नब्बे करोड़ गणोंके साथ आये। काष्ठकूट, सुकेश तथा वृषभ चौंसठ करोड़ गणोंके साथ और भगवान् सनातन विरूपाक्ष भी चौंसठ करोड़ गणोंके साथ आये। इसी प्रकार तालकेतु, षडास्य, पंचास्य, सनातन, संवर्तक, चैत्र, साक्षात् प्रभु लकुलीश, लोकान्तक, दीप्तास्य, प्रभु दैत्यान्तक, मृत्युहृत्, कालहा, काल, मृत्युंजयकर, विषाद, विषद, विद्युत, प्रभु कान्तक, देव, भृंगी, रिटि, श्रीमान् देवदेवप्रिय, अशनि, भासक तथा सहस्रपात् चौंसठ करोड़ गणोंके साथ आये। ये सब तथा अन्य असंख्य महाबली गणेश्वर भी वहाँ आये। वे सभी हजार हाथोंवाले, जटा-मुकुट धारण किये हुए, मस्तकपर चन्द्ररेखासे विभूषित, नीलकण्ठवाले, तीन नेत्रोंवाले, हार-कुण्डल-केयूर-मुकुट आदिसे अलंकृत, ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णुके समान प्रतीत होनेवाले, अणिमा आदि सिद्धियोंसे युक्त थे; करोड़ों सूर्योंके सदृश आभावाले पाताललोकमें विचरण करनेवाले तथा सभी लोकोंमें निवास करनेवाले वे गणेश्वर वहाँ आये। तुम्बुरु, नारद, हाहा, हुहू एवं साम गान करनेवाले भी रत्नों तथा वाद्ययन्त्रोंको लेकर उस पुरमें आये॥ २५—३५॥

देवताओंद्वारा स्तुत तथा तपोधन बहुत-से ऋषिगण प्रसन्नचित्त होकर विवाहसम्बन्धी पवित्र मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे॥ ३६॥

इस प्रकार पूर्णरूपसे सबके उपस्थित हो जानेपर विष्णुने स्वयं पवित्र मुसकानवाली पार्वतीको अलंकृत करके तथा स्वयं उन्हें ला करके पुरमें प्रवेश कराया। तदनन्तर ब्रह्माने देवताओंके स्वामी नारायण विष्णुसे सभामें कहा—'हे प्रभो! पहले आप इन रुद्रके बाएँ अंगसे भवानी तथा देवताओंके साथ उत्पन्न हुए और मैं इनके दाहिने अंगसे उत्पन्न हुआ। मेरे अंशस्वरूप पर्वतराज हिमालय वास्तवमें इस यज्ञके लिये ही उत्पन्न

श्रौतस्मार्तप्रवृत्त्यर्थमुद्वाहार्थमिहागतः ।
अतोऽसौ जगतां धात्री धाता तव ममापि च॥ ४१

अस्य देवस्य रुद्रस्य मूर्तिभिर्विहितं जगत्।
क्ष्माबग्निखेन्दुसूर्यात्मपवनात्मा यतो भवः॥ ४२

तथापि तस्मै दातव्या वचनाच्च गिरेर्मम।
एषा ह्यजा शुक्लकृष्णा लोहिता प्रकृतिर्भवान्॥ ४३

श्रेयोऽपि शैलराजेन सम्बन्धोऽयं तवापि च।
तव पाद्मे समुद्भूतः कल्पे नाभ्यम्बुजादहम्॥ ४४

मदंशस्यास्य शैलस्य ममापि च गुरुर्भवान्।

सूत उवाच

बाढमित्यजमाहासौ देवदेवो जनार्दनः॥ ४५

देवाश्च मुनयः सर्वे देवदेवश्च शङ्करः।
ततश्चोत्थाय विद्वान् सः पद्मनाभः प्रणम्य ताम्॥ ४६

पादौ प्रक्षाल्य देवस्य कराभ्यां कमलेक्षणः।
अभ्युक्षदात्मनो मूर्ध्नि ब्रह्मणश्च गिरेस्तथा॥ ४७

त्वदीयैषा विवाहार्थं मेनजा ह्यनुजा मम।
इत्युक्त्वा सोदकं दत्त्वा देवीं देवेश्वराय ताम्॥ ४८

स्वात्मानमपि देवाय सोदकं प्रददौ हरिः।
अथ सर्वे मुनिश्रेष्ठाः सर्ववेदार्थपारगाः॥ ४९

ऊचुर्दाता गृहीता च फलं द्रव्यं विचारतः।
एष देवो हरो नूनं मायया हि ततो जगत्॥ ५०

इत्युक्त्वा तं प्रणेमुश्च प्रीतिकण्टकितत्वचः।
ससृजुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः॥ ५१

देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
वेदाश्च मूर्तिमन्तस्ते प्रणेमुस्तं महेश्वरम्॥ ५२

किये गये हैं। इन पार्वतीने परमेष्ठी [शिव]-की मायासे हिमवान्‌की पुत्रीके रूपमें जन्म लिया है। अतः ये सभी लोकोंकी, आपकी तथा मेरी भी धात्री (जननी) हैं और श्रौत-स्मार्त प्रवृत्तिके लिये विवाहके उद्देश्यसे यहाँ आये हुए ये रुद्र सबके धाता (जनक) हैं। चूँकि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, चन्द्र, सूर्य, आत्मा तथा पवन शिवके ही विग्रहस्वरूप हैं, अतः इन रुद्रदेवकी [इन्हीं] मूर्तियोंसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है। तथापि हिमवान्‌के तथा मेरे वचनसे शुक्ल-कृष्ण-लोहित वर्णवाली मायारूपा इन पार्वतीको उन शिवके निमित्त प्रदान कर देना चाहिये; [हे विष्णो!] आप भी प्रकृतिरूप हैं। पर्वतराजके साथ यह सम्बन्ध आपके लिये भी कल्याणप्रद है। मैं पद्मकल्पमें आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ था; अतः आप मेरे अंशस्वरूप इन हिमालयके तथा मेरे भी गुरु हैं'॥ ३७—४४$^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तब उन देवदेव जनार्दनने ब्रह्मासे कहा—'ठीक है।' तब देवतागण, सभी मुनि तथा देवदेव शिव प्रसन्न हो गये। तदनन्तर कमलके समान नेत्रवाले उन विद्वान् पद्मनाभ विष्णुने उठकर उन [पार्वती]-को प्रणाम करके अपने हाथोंसे शिवके दोनों चरणोंको धोकर अपने, ब्रह्माके तथा हिमालयके सिरपर जल छिड़का। '[हे शिव!] आपकी नित्यसम्बन्धिनी ये [पार्वती] विवाहविधिकी सिद्धिके लिये ही मेनासे उत्पन्न हुई हैं; ये मेरी छोटी बहन हैं'—ऐसा कहकर विष्णुने उन पार्वतीको देवेश्वरके लिये जलसहित समर्पित करके स्वयं अपनेको भी उन देवके लिये जलसहित समर्पित कर दिया॥ ४५—४८$^{1}/_{2}$॥

इसके बाद सभी वेदोंके अर्थोंमें पारंगत श्रेष्ठ मुनियोंने कहा—'विचार करनेपर वस्तुतः ये महादेव शिव ही दाता, गृहीता, द्रव्य तथा फल सब कुछ हैं और इन्हींकी मायासे यह जगत् स्थित है'—ऐसा कहकर प्रसन्नतासे रोमांचित उन सभीने शिवजीको प्रणाम किया॥ ४९-५०$^{1}/_{2}$॥

उस समय आकाशचारी सिद्धों तथा चारणोंने पुष्पवृष्टि की, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और

ब्रह्मणा मुनिभिः सार्धं देवदेवमुमापतिम्।
देवोऽपि देवीमालोक्य सलज्जां हिमशैलजाम्॥ ५३

न तृप्यत्यनवद्याङ्गी सा च देवं वृषध्वजम्।
वरदोऽस्मीति तं प्राह हरिं सोऽप्याह शङ्करम्॥ ५४

त्वयि भक्तिः प्रसीदेति ब्रह्माख्यां च ददौ तु सः।
ततस्तु पुनरेवाह ब्रह्मा विज्ञापयन् प्रभुम्॥ ५५

हविर्जुहोमि वह्नौ तु उपाध्यायपदे स्थितः।
ददासि मम यद्याज्ञां कर्तव्यो ह्यकृतो विधिः॥ ५६

तमाह शङ्करो देवं देवदेवो जगत्पतिः।
यद्यदिष्टं सुरश्रेष्ठ तत्कुरुष्व यथेप्सितम्॥ ५७

कर्तास्मि वचनं सर्वं देवदेव पितामह।
ततः प्रणम्य हृष्टात्मा ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ५८

हस्तं देवस्य देव्याश्च युयोज परमं प्रभुः।
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिरुपस्थितः॥ ५९

श्रौतैरेतैर्महामन्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः।
यथोक्तविधिना हुत्वा लाजानपि यथाक्रमम्॥ ६०

आनीतान् विष्णुना विप्रान् सम्पूज्य विविधैर्वरैः।
त्रिश्च तं ज्वलनं देवं कारयित्वा प्रदक्षिणम्॥ ६१

मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितैः सर्वदैवतैः।
सुरैश्च मानवैः सर्वैः प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ६२

ननाम भगवान् ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम्।
ततः पाद्यं तयोर्दत्वा शम्भोराचमनं तथा॥ ६३

मधुपर्कं तथा गां च प्रणम्य च पुनः शिवम्।
अतिष्ठद्भगवान् ब्रह्मा देवैरिन्द्रपुरोगमैः॥ ६४

अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी वेदोंने शरीर धारण करके ब्रह्मा तथा मुनियोंके साथ उन देवदेव उमापति महेश्वरको प्रणाम किया॥ ५१-५२½॥

लज्जासे भरी हुई देवी पार्वतीको देखकर शिव तृप्त नहीं होते थे और दूषणरहित शरीरवाली वे [पार्वती] भी देवदेव वृषभध्वजको देखकर तृप्त नहीं होती थीं। तब शिवने विष्णुसे कहा—'मैं वरदाता हूँ।' इसपर उन्होंने भी शंकरसे कहा—'आपमें मेरी भक्ति बनी रहे; मुझपर प्रसन्न होइये।' तब शिवने उन्हें ब्रह्मत्व प्रदान किया। इसके बाद ब्रह्माने पुनः प्रभुसे प्रार्थना करते हुए कहा—'मैं उपाध्याय (आचार्य)-के पदपर स्थित होकर अग्निमें हवन करता हूँ और यदि आप आज्ञा दें, तो जो विधि अभीतक नहीं की गयी है, उसे सम्पन्न करूँ'॥ ५३—५६॥

तब जगत्के स्वामी देवदेव शंकरने उन देव ब्रह्मासे कहा—'हे सुरश्रेष्ठ! जो-जो अभीष्ट हो, उसे आप इच्छानुसार कीजिये। हे देवदेव! हे पितामह! मैं [आपके] समस्त वचनका पालन करूँगा'॥ ५७½॥

तदनन्तर [उन्हें] प्रणाम करके प्रसन्नचित्त परम प्रभु लोकपितामह ब्रह्माने शिव तथा देवी [पार्वती]-के हाथोंको [परस्पर] मिला दिया। स्वयं अग्निदेव हाथ जोड़े हुए वहाँ उपस्थित हुए। [साक्षात्] मूर्तिमान् होकर उपस्थित वैवाहिक श्रौत महामन्त्रोंके द्वारा यथोक्त विधिसे हवन करनेके अनन्तर विष्णुके द्वारा लाये गये लाजा (धानका लावा)-का भी यथाक्रम हवन करके विविध गोदानोंसे विप्रोंकी पूजाकर पुनः तीन बार अग्निदेवकी प्रदक्षिणा कराकर उनके मिले हुए हाथको मुक्त कराकर भगवान् ब्रह्माने प्रसन्न मनसे सभी देवताओं, ऋषियों तथा मनुष्योंके साथ देवदेव उमापतिको प्रणाम किया॥ ५८—६२½॥

तत्पश्चात् उन दोनोंको पाद्य जल देकर और शम्भुको आचमन, मधुपर्क तथा गौ प्रदान करके पुनः शिवको प्रणाम करके भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंके साथ स्थित हो बैठ गये॥ ६३-६४॥

भृग्वाद्या मुनयः सर्वे चाक्षतैस्तिलतण्डुलैः।
सूर्यादयः समभ्यर्च्य तुष्टुवुर्वृषभध्वजम्॥ ६५

शिवः समाप्य देवोक्तं वह्निमारोप्य चात्मनि।
तया समागतो रुद्रः सर्वलोकहिताय वै॥ ६६

यः पठेच्छृणुयाद्वापि भवोद्वाहं शुचिस्मितः।
श्रावयेद्वा द्विजान् शुद्धान् वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ६७

स लब्ध्वा गाणपत्यं च भवेन सह मोदते।
यत्रायं कीर्त्यते विप्रैस्तावदास्ते तदा भवः॥ ६८

तस्मात्सम्पूज्य विधिवत्कीर्तयेनान्यथा द्विजाः।
उद्वाहे च द्विजेन्द्राणां क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः॥ ६९

कीर्तनीयमिदं सर्वं भवोद्वाहमनुत्तमम्।
कृतोद्वाहस्तदा देव्या हैमवत्या वृषध्वजः॥ ७०

सगणो नन्दिना सार्धं सर्वदेवगणैर्वृतः।
पुरीं वाराणसीं दिव्यामाजगाम महाद्युतिः॥ ७१

अविमुक्ते सुखासीनं प्रणम्य वृषभध्वजम्।
अपृच्छत् क्षेत्रमाहात्म्यं भवानी हर्षितानना॥ ७२

अथाहार्धेन्दुतिलकः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं विस्तराच्छक्यते नहि॥ ७३

वक्तुं मया सुरेशानि ऋषिसङ्घाभिपूजितम्।
किं मया वर्ण्यते देवि ह्यविमुक्तफलोदयः॥ ७४

पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना।
अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां व्यपोहति॥ ७५

वाराणस्यां कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम्।
कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्॥ ७६

न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना।
यत्र त्रिविष्टपो देवो यत्र विश्वेश्वरो विभुः॥ ७७

समस्त भृगु आदि मुनियों तथा सूर्य आदि ग्रहोंने अक्षतों तथा तिल-तण्डुलोंसे वृषभध्वजका अर्चन करके उनकी स्तुति की॥ ६५॥

तत्पश्चात् वे रुद्र शिव ब्रह्मोक्त समस्त [वैवाहिक] कृत्य सम्पन्न करके तथा अग्निको अपनेमें आरोपित करके सभी लोकोंके हितके लिये उन पार्वतीके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए॥ ६६॥

जो [व्यक्ति] पवित्र होकर प्रसन्नतापूर्वक शिवके विवाह-आख्यानको पढ़ता अथवा सुनता है अथवा वेद-वेदांगमें पारंगत शुद्ध द्विजोंको सुनाता है, वह गणपति-पद प्राप्त करके शिवके साथ आनन्दित होता है। जहाँ भी ब्राह्मणोंद्वारा इस विवाह-प्रसंगको कहा जाता है, वहाँपर शिवजी विराजमान रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। अतः हे द्विजो! विधिवत् उनकी पूजा करके इस आख्यानको अवश्य कहना चाहिये। हे उत्तम ब्राह्मणो! श्रेष्ठ द्विजों तथा क्षत्रियोंके विवाहमें इस अत्युत्तम सम्पूर्ण शिवविवाह-प्रसंगका कीर्तन करना चाहिये॥ ६७—६९½॥

तब विवाह कर लेनेके उपरान्त महाकान्तिसम्पन्न शिवजी [अपने] गणों, नन्दी तथा देवी पार्वतीके साथ दिव्य वाराणसीपुरीमें आये॥ ७०-७१॥

इसके बाद हर्षयुक्त मुखमण्डलवाली भवानी अविमुक्त (वाराणसी)-में सुखपूर्वक आसीन वृषभध्वजको प्रणाम करके [उस] क्षेत्रका माहात्म्य पूछने लगीं॥ ७२॥

तब अर्धचन्द्रको तिलकरूपमें धारण करनेवाले शिवजी उत्तम क्षेत्रमाहात्म्यका वर्णन करने लगे—'हे सुरेशानि! मेरे द्वारा अविमुक्तक्षेत्रका माहात्म्य विस्तारपूर्वक नहीं कहा जा सकता है; यह क्षेत्र ऋषियोंद्वारा पूजित है। हे देवि! मैं अविमुक्तक्षेत्रमें होनेवाले पुण्यफलका वर्णन कैसे करूँ, जहाँपर मरनेवाले पापियोंकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है। [लोगोंद्वारा] अन्यत्र किया गया पाप वाराणसीमें नष्ट हो जाता है और वाराणसीमें किया गया पाप पिशाचयोनिरूपी नरककी प्राप्ति करानेवाला होता है। हजारों पाप करके मनुष्योंके लिये पिशाचत्व श्रेष्ठ है, किंतु काशीपुरीके बिना स्वर्गमें हजार बार इन्द्रपद

ओङ्कारेशः कृत्तिवासा मृतानां न पुनर्भवः।
उक्त्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं सङ्क्षेपाच्छशिशेखरः॥ ७८

दर्शयामास चोद्यानं परित्यज्य गणेश्वरान्।
तत्रैव भगवान् जातो गजवक्त्रो विनायकः॥ ७९

दैत्यानां विघ्नरूपार्थमविघ्नाय दिवौकसाम्।
एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम्॥ ८०

यथाश्रुतं मया सर्वं प्रसादाद्वः सुशोभनम्॥ ८१

प्राप्त करना भी श्रेष्ठ नहीं है। जहाँपर भगवान् त्रिविष्टप, विभु, विश्वेश्वर तथा कृत्तिवास ओंकारेश [सदा] विराजमान हैं, उस काशीमें मरनेवालोंका पुनर्जन्म नहीं होता'॥ ७३—७७१/२ ॥

इस प्रकार संक्षेपमें क्षेत्रका माहात्म्य कहकर गणेश्वरोंको विदा करके चन्द्रशेखरने पार्वतीको [अपना] उद्यान दिखाया। भगवान् गजानन विनायक दैत्योंको विघ्न उत्पन्न करनेके लिये तथा देवताओंका विघ्न दूर करनेके लिये वहींपर उत्पन्न हुए थे। [हे ऋषियो!] मैंने आपलोगोंको कथाका सम्पूर्ण उत्तम तथा सुन्दर तत्त्व संक्षेपमें बता दिया, जैसा कि मैंने व्यासजीकी कृपासे सुना था॥ ७८—८१ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पार्वतीविवाहवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पार्वतीविवाहवर्णन' नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०३॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

गजाननका प्राकट्य करानेके लिये देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

ऋषय ऊचुः

कथं विनायको जातो गजवक्त्रो गणेश्वरः।
कथं प्रभावस्तस्यैवं सूत वक्तुमिहार्हसि॥ १

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समेत्य ते।
धर्मविघ्नं तदा कर्तुं दैत्यानामभवन् द्विजाः॥ २
असुरा यातुधानाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः।
तामसाश्च तथा चान्ये राजसाश्च तथा भुवि॥ ३
अविघ्नं यज्ञदानाद्यैः समभ्यर्च्य महेश्वरम्।
ब्रह्माणं च हरिं विप्रा लब्धेप्सितवरा यतः॥ ४
ततोऽस्माकं सुरश्रेष्ठाः सदाविजयसम्भवः।
तेषां ततस्तु विघ्नार्थमविघ्नाय दिवौकसाम्॥ ५
पुत्रार्थं चैव नारीणां नराणां कर्मसिद्धये।
विघ्नेशं शङ्करं स्त्रष्टुं गणपं स्तोतुमर्हथ॥ ६
इत्युक्त्वान्योऽन्यमनघं तुष्टुवुः शिवमीश्वरम्।
नमः सर्वात्मने तुभ्यं सर्वज्ञाय पिनाकिने॥ ७

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] गणोंके स्वामी गजानन विनायक कैसे उत्पन्न हुए; उनका प्रभाव कैसा है? इसे आप बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! इसी बीच इन्द्र तथा उपेन्द्रसहित देवतागण एकत्र होकर दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये प्रवृत्त हुए। हे विप्रो! [वे विचार करने लगे कि] असुर, यातुधान, क्रूर कर्मवाले राक्षस तथा पृथ्वीपर जो अन्य तमोगुणी तथा रजोगुणी लोग हैं, उन्होंने अविघ्नतापूर्वक कार्य करनेहेतु यज्ञ-दान आदिके द्वारा महेश्वर, ब्रह्मा तथा विष्णुकी सम्यक् पूजा करके अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया है; अतः हे सुरश्रेष्ठो! सर्वदा हम लोगोंका पराभव हो रहा है। इसलिये उनके विघ्नके लिये, देवताओंके अविघ्नके लिये, स्त्रियोंको पुत्रप्राप्तिके लिये तथा पुरुषोंके कर्मकी सिद्धिके लिये आप सभीलोग विघ्नेश गणपतिके सृजनहेतु शंकरकी स्तुति कीजिये॥ २—६॥

आपसमें ऐसा कहकर वे [देवता] निष्पाप ईश्वर

अनघाय विरिञ्चाय देव्याः कार्यार्थदायिने।
अकायायार्थकायाय हरेः कायापहारिणे॥ ८

कायान्तस्थामृताधारमण्डलावस्थिताय ते।
कृतादिभेदकालाय कालवेगाय ते नमः॥ ९

कालाग्निरुद्ररूपाय धर्माद्यष्टपदाय च।
कालीविशुद्धदेहाय कालिकाकारणाय ते॥ १०

कालकण्ठाय मुख्याय वाहनाय वराय ते।
अम्बिकापतये तुभ्यं हिरण्यपतये नमः॥ ११

हिरण्यरेतसे चैव नमः शर्वाय शूलिने।
कपालदण्डपाशासिचर्माङ्कुशधराय च॥ १२

पतये हैमवत्याश्च हेमशुक्लाय ते नमः।
पीतशुक्लाय रक्षार्थं सुराणां कृष्णवर्त्मने॥ १३

पञ्चमाय महापञ्चयज्ञिनां फलदाय च।
पञ्चास्यफणिहाराय पञ्चाक्षरमयाय ते॥ १४

पञ्चधा पञ्चकैवल्यदेवैरर्चितमूर्तये।
पञ्चाक्षरदृशे तुभ्यं परात्परतराय ते॥ १५

षोडशस्वरवज्राङ्गवक्त्रायाक्षयरूपिणे।
कादिपञ्चकहस्ताय चादिहस्ताय ते नमः॥ १६

टादिपादाय रुद्राय तादिपादाय ते नमः।
पादिमेण्ढ्राय यद्यङ्गधातुसप्तकधारिणे॥ १७

शिवकी स्तुति करने लगे—आप सर्वात्मा, सर्वज्ञ तथा पिनाकधारीको नमस्कार है। निष्पाप, विशेष रूपसे ब्रह्माण्डकी रचना करनेवाले, देवी [पार्वती]-को तपस्याका फल प्रदान करनेवाले, कायारहित, प्रयोजनके लिये शरीर धारण करनेवाले, विष्णुकी कायाका अपहरण करनेवाले, देहके भीतर अमृताधार-मण्डलमें विराजमान रहनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। कृत (सत्ययुग) आदि कालभेदोंको उत्पन्न करनेवाले तथा कालवेग आप [शिव]-को नमस्कार है॥ ७—९॥

कालाग्निके समान भयंकर रूपवाले, धर्म आदि आठ पदों (स्थानों) वाले, महाकालीको विशुद्ध (गौर) देह करनेवाले तथा कालिका (चण्डिका)-की उत्पत्ति करनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १०॥

कालकण्ठ, प्रधानस्वरूप, वाहन (कर्मफलकी प्राप्ति करानेवाले) तथा सर्वश्रेष्ठ आप [शिव]-को नमस्कार है। अम्बिकापति तथा हिरण्यपति आप [शिव]-को नमस्कार है॥ ११॥

हिरण्यरेता, शर्व, शूली और कपाल-दण्ड-पाश-असि-चर्म-अंकुश धारण करनेवाले [शिव]-को नमस्कार है। पार्वतीपति, सुवर्णके समान शुक्ल (शुद्ध), [अर्धनारीश्वररूप होनेके कारण] पीत-शुक्ल वर्णवाले तथा देवताओंकी रक्षाके लिये अग्निरूपवाले आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १२-१३॥

तुरीयातीत, [देवयज्ञ आदि] पंच महायज्ञोंके कर्ताओंको फल देनेवाले, पंचमुख सर्पको हारके रूपमें धारण करनेवाले तथा पंचाक्षर [मन्त्र]-मय आप [शिव]-को नमस्कार है। पाँच प्रकारसे [रुद्र आदि] पंच कैवल्य देवोंद्वारा पूजित मूर्तिवाले, पंचाक्षर मन्त्ररूप दृष्टिवाले तथा परात्परतर आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १४-१५॥

[अकार आदि] सोलह स्वरमय वज्रके समान [अभेद्य] अंगों तथा मुखवाले, अक्षय रूपवाले, 'क' से प्रारम्भ होनेवाले पाँच अक्षररूप हाथवाले, 'च' आदि [पाँच वर्णरूप] हाथवाले, 'ट' आदि [पाँच वर्णरूप] पादवाले, 'त' आदि [पाँच वर्णरूप] पादवाले, 'प' आदि

सान्तात्मरूपिणे साक्षात्क्षदन्तक्रोधिने नमः।
लवरेफहळाङ्गाय निरङ्गाय च ते नमः॥ १८

सर्वेषामेव भूतानां हृदि निःस्वनकारिणे।
भ्रुवोरन्ते सदासद्भिर्दृष्टायात्यन्तभानवे॥ १९

भानुसोमाग्निनेत्राय परमात्मस्वरूपिणे।
गुणत्रयोपरिस्थाय तीर्थपादाय ते नमः॥ २०

तीर्थतत्त्वाय साराय तस्मादपि पराय ते।
ऋग्यजुःसामवेदाय ओङ्काराय नमो नमः॥ २१

ओङ्कारे त्रिविधं रूपमास्थायोपरिवासिने।
पीताय कृष्णवर्णाय रक्तायात्यन्ततेजसे॥ २२

स्थानपञ्चकसंस्थाय पञ्चधाण्डबहिःक्रमात्।
ब्रह्मणे विष्णवे तुभ्यं कुमाराय नमो नमः॥ २३

अम्बायाः परमेशाय सर्वोपरिचराय ते।
मूलसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्माय ते नमः॥ २४

सर्वसङ्कल्पशून्याय सर्वस्माद्रक्षिताय ते।
आदिमध्यान्तशून्याय चित्संस्थाय नमो नमः॥ २५

यमाग्निवायुरुद्राम्बुसोमशक्रनिशाचरैः ।
दिङ्मुखे दिङ्मुखे नित्यं सगणैः पूजिताय ते॥ २६

सर्वेषु सर्वदा सर्वमार्गे सम्पूजिताय ते।
रुद्राय रुद्रनीलाय कद्रुद्राय प्रचेतसे।
महेश्वराय धीराय नमः साक्षात् शिवाय ते॥ २७

अथ शृणु भगवन् स्तवच्छलेन
कथितमजेन्द्रमुखैः सुरासुरेशैः।

[पाँच वर्णरूप] मेढ्र (लिंग) वाले, 'य' कारमय अंगसम्बन्धी सात धातुओंको धारण करनेवाले आप रुद्रको नमस्कार है। श-ष-स वर्णमय आत्मरूपवाले तथा 'क्ष' कारमय प्रलयरूप क्रोधवाले [शिवको] नमस्कार है। ल, व, रेफ, ह, ळ—पाँच वर्णरूप हृदयोंवाले तथा निरंग आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १६—१८॥

सभी प्राणियोंके हृदयमें अनाहत ध्वनि करनेवाले, भक्तोंके द्वारा भ्रुवोंके मध्य सदा दिखायी देनेवाले, अत्यन्त भानु (सर्वप्रकाशक), सूर्य-चन्द्र-अग्निरूप नेत्रवाले, परमात्म-स्वरूपी, तीनों गुणोंसे ऊपर स्थित तथा तीर्थरूप पादवाले आप [शिव]-को नमस्कार है॥ १९-२०॥

तीर्थरूप तत्त्ववाले, सारस्वरूप (तीर्थफलरूप) और उस तीर्थफलके भी अधिष्ठाता आप [शिव]-को नमस्कार है। ऋक्-यजुः-सामवेदस्वरूप तथा ओंकारस्वरूप [शिव]-को बार-बार नमस्कार है॥ २१॥

[ब्रह्मा, विष्णु, हर] तीन प्रकारके रूपको धारण करके प्रणवानन्तनादमें तुरीयरूपसे स्थित रहनेवाले, पीत-कृष्ण-रक्त वर्णवाले, अपरिमित तेजवाले, ब्रह्माण्डके बाहर क्रमसे पाँच प्रकारसे [जल आदि] पाँच स्थानोंमें स्थित रहनेवाले और ब्रह्मा-विष्णु-कुमारस्वरूप आप [शिव]-को बार-बार नमस्कार है॥ २२-२३॥

अम्बिकाके परमेश्वर तथा सबके ऊपर विचरण करनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। मूल सूक्ष्म स्वरूपवाले तथा स्थूल-सूक्ष्मस्वरूप आप [शिव]-को नमस्कार है॥ २४॥

समस्त संकल्पोंसे रहित, सबसे रक्षित (गुप्त), आदि-मध्य-अन्तसे रहित तथा ज्ञानमें स्थित आप [शिव]-को बार-बार नमस्कार है॥ २५॥

गणोंसहित यम, अग्नि, वायु, रुद्र, वरुण, सोम, इन्द्र तथा निशाचरोंके द्वारा दिशाओं-विदिशाओंमें नित्य पूजित आप [शिव]-को नमस्कार है। सभी लोकोंमें तथा सभी मार्गोंमें सर्वदा पूजित आपको नमस्कार है। रुद्र, रुद्रनील, कद्रुद्र, प्रचेता, महेश्वर, धीर साक्षात् आप शिवको नमस्कार है॥ २६-२७॥

हे भगवन्! सुनिये; देवताओं तथा दैत्योंके स्वामी

मखमदनयमाग्निदक्षयज्ञ-
क्षपणविचित्रविचेष्टितं क्षमस्व॥ २८

ब्रह्मा-इन्द्र आदिने मख, कामदेव, यम, अग्नि तथा दक्षयज्ञके विध्वंसरूपी आपके विचित्र क्रिया-कलापका वर्णन स्तुतिके बहाने किया है; आप क्षमा करें॥ २८॥

सूत उवाच

यः पठेत्तु स्तवं भक्त्या शक्राग्निप्रमुखैः सुरैः।
कीर्तितं श्रावयेद्विद्वान् स याति परमां गतिम्॥ २९

सूतजी बोले—जो विद्वान् [व्यक्ति] इन्द्र, अग्नि आदि प्रधान देवताओंके द्वारा किये गये इस स्तवको भक्तिपूर्वक पढ़ता है अथवा [दूसरोंको] सुनाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ २९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवस्तुतिर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'देवस्तुति' नामक एक सौ चारवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

विघ्ननाशक श्रीगणेशजीके प्राकट्यकी कथा

सूत उवाच

यदा स्थिताः सुरेश्वराः प्रणम्य चैवमीश्वरम्।
तदाम्बिकापतिर्भवः पिनाकधृङ् महेश्वरः॥ १

ददौ निरीक्षणं क्षणाद्भवः स तान् सुरोत्तमान्।
प्रणेमुरादराद्धरं सुरा मुदार्द्रलोचनाः॥ २

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] शिवजीको प्रणाम करके जब सुरेश्वर लोग [यथास्थान] स्थित हो गये, तब अम्बिकापति, पिनाकधारी, भव महेश्वरने उन श्रेष्ठ देवताओंको क्षणभरमें दिव्य दृष्टि प्रदान की। तब अश्रुसे भीगे नेत्रवाले देवताओंने प्रसन्नतासे युक्त होकर आदरपूर्वक शिवको प्रणाम किया॥ १-२॥

भवः सुधामृतोपमैर्निरीक्षणैर्निरीक्षणात्।
तदाह भद्रमस्तु वः सुरेश्वरान् महेश्वरः॥ ३

इसके बाद महेश्वर भवने सुधामृततुल्य दृष्टिसे देखकर सुरेश्वरोंसे कहा—'आपलोगोंका कल्याण हो'॥ ३॥

वरार्थमीश वीक्ष्य ते सुरा गृहं गतास्त्विमे।
प्रणम्य चाह वाक्पतिः पतिं निरीक्ष्य निर्भयः॥ ४

सुरेतरादिभिः सदा ह्यविघ्नमर्थितो भवान्।
समस्तकर्मसिद्धये सुरापकारकारिभिः॥ ५

ततः प्रसीदताद्भवान् सुविघ्नकर्मकारणम्।
सुरापकारकारिणामिहैष एव नो वरः॥ ६

तदनन्तर स्वामी शिवको देखकर निर्भय होकर बृहस्पतिने उन्हें प्रणाम करके कहा—'हे ईश! ये देवता आपका दर्शन करके वरप्राप्तिके लिये आपके घर आये हुए हैं। देवताओंका अपकार करनेवाले दैत्यों आदिके द्वारा निर्विघ्नतापूर्वक समस्त कर्मोंकी सिद्धिके लिये आप सदा प्रार्थित हैं। अतः आप देवताओंके अपकारी दैत्योंके विघ्नयुक्त कर्मका कारण बनिये और प्रसन्न होइये; यही हमलोगोंका वर है'॥ ४—६॥

ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वरः।
गणेश्वरं सुरेश्वरं वपुर्दधार सः शिवः॥ ७

गणेश्वराश्च तुष्टुवुः सुरेश्वरा महेश्वरम्।
समस्तलोकसम्भवं भवार्तिहारिणं शुभम्॥ ८

तब यह सुनकर उन पिनाकधारी सुरेश्वर शिवने देवताओंके स्वामी गणेश्वरका शरीर धारण किया। तदनन्तर गणेश्वरों तथा [ब्रह्मा आदि] सुरेश्वरोंने समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले तथा संसारका कष्ट दूर करनेवाले शुभ [गजाननरूपी] महेश्वरकी स्तुति की॥ ७-८॥

इभाननाश्रितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम्।
समस्तलोकसम्भवं गजाननं तदाम्बिका॥ ९

इसके बाद अम्बिका [पार्वती]-ने हाथीके समान मुख धारण किये हुए और [हाथोंमें] त्रिशूल तथा पाश

ददुः पुष्पवर्षं हि सिद्धा मुनीन्द्रा-
स्तथा खेचरा देवसङ्घास्तदानीम्।
तदा तुष्टुवुश्चैकदन्तं सुरेशाः
प्रणेमुर्गणेशं महेशं वितन्द्राः॥ १०

तदा तयोर्विनिर्गतः सुभैरवः समूर्तिमान्।
स्थितो ननर्त बालकः समस्तमङ्गलालयः॥ ११

विचित्रवस्त्रभूषणैरलङ्कृतो गजाननः।
महेश्वरस्य पुत्रकोऽभिवन्द्य तातमम्बिकाम्॥ १२

जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा चकार भगवान् भवः।
गजाननाय कृत्यांस्तु सर्वान् सर्वेश्वरः स्वयम्॥ १३

आदाय च कराभ्यां च सुसुखाभ्यां भवः स्वयम्।
आलिङ्ग्याघ्राय मूर्धानं महादेवो जगद्गुरुः॥ १४

तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज।
देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥ १५

यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले।
तस्य धर्मस्य विघ्नं च कुरु स्वर्गपथे स्थितः॥ १६

लिये हुए समस्त लोकोंके उत्पादक कल्याणकारी

गजाननको जन्म दिया॥ ९॥

उस समय सिद्धों, मुनियों, आकाशचारियों तथा देवताओंने पुष्पवृष्टि की; तब सुरेश्वरोंने आलस्यरहित होकर एकदन्त महेश्वर गणेशको प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ १०॥

उस समय उन शिवा-शिवसे उत्पन्न, विचित्र वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत तथा सभी मंगलोंका आलय महेश्वर-पुत्र वह बालक गजानन मूर्तिमान् सुन्दर भैरवकी भाँति स्थित होकर पिता [शिव] तथा माताकी वन्दना करके नृत्य करने लगा॥ ११-१२॥

उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर भगवान् सर्वेश्वर भवने गजाननके लिये सभी [जातकर्म आदि] संस्कारोंको स्वयं किया॥ १३॥

इसके बाद जगद्गुरु महादेव भवने स्वयं [अपने] परम सुखदायक हाथोंसे उसे उठाकर, आलिंगन करके तथा उसके सिरको सूँघकर कहा—'हे मेरे पुत्र! तुम्हारा अवतार दैत्योंके विनाशके लिये और देवताओं तथा ब्रह्मवादी द्विजोंके उपकारके लिये हुआ है। जिसने पृथ्वीतलपर दक्षिणाविहीन यज्ञ किया है, तुम स्वर्गपथमें स्थित रहते हुए उसके धर्ममें विघ्न डालो। इस पृथ्वीतलपर जो

अध्यापनं चाध्ययनं व्याख्यानं कर्म एव च।
योऽन्यायतः करोत्यस्मिंस्तस्य प्राणान् सदा हर॥ १७

वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणां नरपुङ्गव।
स्वधर्मरहितानां च प्राणानपहर प्रभो॥ १८

याः स्त्रियस्त्वां सदा कालं पुरुषाश्च विनायक।
यजन्ति तासां तेषां च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि॥ १९

त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बालगणेश्वर।
यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजितः॥ २०

जगत्त्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वरः।
सम्पूज्यो वन्दनीयश्च भविष्यसि न संशयः॥ २१

मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक।
यजन्ति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि॥ २२

त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
कुरुते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति॥ २३

ब्राह्मणैः क्षत्त्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन।
सम्पूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥ २४

त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्॥ २५

अभ्यर्चयन्ति ये लोका मानवास्तु विनायकम्।
ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यन्ति न संशयः॥ २६

अजं हरिं च मां वापि शक्रमन्यान् सुरानपि।
विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयन्ति फलार्थिनः॥ २७

अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान तथा [अन्य] कर्म करता हो; उसके प्राणोंको तुम सदा हरते रहो। हे नरश्रेष्ठ! हे प्रभो! वर्णसे च्युत तथा अपने धर्मसे रहित पुरुषों एवं स्त्रियोंके प्राणोंको हर लो। हे विनायक! जो स्त्रियाँ तथा पुरुष सदा कालरूप तुम्हारी पूजा करें, तुम उन्हें अपना साम्य प्रदान करो। हे बालगणेश्वर! तुम इस लोक तथा परलोकमें पूजित होकर युवा और वृद्ध भक्तोंकी रक्षा सम्पूर्ण प्रयत्नसे करो। तुम तीनों लोकोंमें सर्वत्र विघ्नगणेश्वरके रूपमें पूजनीय तथा वन्दनीय होओगे; इसमें संशय नहीं है। हे पुत्र! जो [विप्र] मेरी, विष्णुकी तथा ब्रह्माकी पूजा करते हैं अथवा [अग्निष्टोम आदि] यज्ञोंके द्वारा यजन करते हैं, उन ब्राह्मणोंके द्वारा भी सबसे पहले तुम पूज्य होओगे। तुम्हारी पूजा न करके जो कल्याणके लिये श्रौत-स्मार्त-लौकिक कर्म करेगा, उसका मंगल अमंगलके रूपमें परिवर्तित हो जायेगा। हे गजानन! तुम समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रोंके द्वारा शुभ भक्ष्य-भोज्य आदिसे भली-भाँति पूजाके योग्य होओगे। गन्ध, पुष्प, धूप आदिसे तुम्हारी पूजा किये बिना तीनों लोकोंमें कहीं भी देवताओं तथा अन्य लोगोंसे भी कुछ नहीं प्राप्त हो सकता है। जो मानव विनायककी पूजा करेंगे, वे इन्द्र आदिके द्वारा भी पूजनीय होंगे; इसमें सन्देह नहीं है। यदि फलकी इच्छा रखनेवाले तुम्हारी पूजा नहीं करते हों, तो वे चाहे ब्रह्मा, विष्णु, स्वयं मैं, इन्द्र अथवा अन्य देवता ही क्यों न हों, उन्हें तुम विघ्नोंसे बाधित करो'॥ १४—२७॥

ससर्ज च तदा विघ्नगणं गणपतिः प्रभुः।
गणैः सार्धं नमस्कृत्वाप्यतिष्ठत्तस्य चाग्रतः॥ २८

तब प्रभु गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और वे गणोंके साथ शिवजीको नमस्कार करके उनके आगे खड़े हो गये॥ २८॥

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् पूजयन्ति गणेश्वरम्।
दैत्यानां धर्मविघ्नं च चकारासौ गणेश्वरः॥ २९

एतद्वः कथितं सर्वं स्कन्दाग्रजसमुद्भवम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा सुखी भवेत्॥ ३०

उसी समयसे लोग इस लोकमें गणपतिकी पूजा करने लगे और वे गणेश्वर दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालने लगे। [हे ऋषियो!] मैंने आप लोगोंको स्कन्द (कार्तिकेय)-के अग्रजकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण आख्यान बता दिया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा सुनाता है, वह सुखी हो जाता है॥ २९-३०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विनायकोत्पत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'विनायकोत्पत्ति' नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०५॥

एक सौ छठा अध्याय

दारुकासुरके विनाशके लिये भगवान् शिवद्वारा अपने शरीरसे काली तथा अष्टभैरवोंको प्रकट करना एवं शिवताण्डवनृत्यकी कथा

ऋषय ऊचुः

नृत्यारम्भः कथं शम्भोः किमर्थं वा यथातथम्।
वक्तुमर्हसि चास्माकं श्रुतः स्कन्दाग्रजोद्भवः॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] हमलोगोंने स्कन्दके अग्रजका प्रादुर्भाव तो सुन लिया; अब आप हमलोगोंको यथार्थरूपसे यह बतायें कि शम्भुके नृत्यका आरम्भ कैसे तथा किसलिये हुआ?॥ १॥

सूत उवाच

दारुकोऽसुरसम्भूतस्तपसा लब्धविक्रमः।
सूदयामास कालाग्निरिव देवान् द्विजोत्तमान्॥ २

सूतजी बोले—दारुक नामक एक दैत्य असुरोंमें उत्पन्न हुआ। तपस्यासे पराक्रम प्राप्त करके कालाग्निके समान वह [असुर] देवताओं तथा उत्तम द्विजोंको पीड़ित करने लगा॥ २॥

दारुकेण तदा देवास्ताडिताः पीडिता भृशम्।
ब्रह्माणं च तथेशानं कुमारं विष्णुमेव च॥ ३

यममिन्द्रमनुप्राप्य स्त्रीवध्य इति चासुरः।
स्त्रीरूपधारिभिः स्तुत्यैर्ब्रह्माद्यैर्युधि संस्थितैः॥ ४

उस समय वह दारुक ब्रह्मा, ईशान, कुमार, विष्णु, यम, इन्द्र आदिके पास पहुँचकर उन देवताओंको सताने लगा, इससे वे देवता बहुत पीड़ित हुए। 'यह असुर स्त्रीवध्य है'—ऐसा सोचकर स्त्रीरूपधारी तथा युद्धके लिये स्थित उन स्तुत्य ब्रह्मा आदिके साथ वह असुर युद्ध करने लगा॥ ३-४॥

बाधितास्तेन ते सर्वे ब्रह्माणं प्राप्य वै द्विजाः।
विज्ञाप्य तस्मै तत्सर्वं तेन सार्धमुमापतिम्॥ ५

सम्प्राप्य तुष्टुवुः सर्वे पितामहपुरोगमाः।
ब्रह्मा प्राप्य च देवेशं प्रणम्य बहुधा नतः॥ ६

दारुणो भगवान् दारुः पूर्वं तेन विनिर्जिताः।
निहत्य दारुकं दैत्यं स्त्रीवध्यं त्रातुमर्हसि॥ ७

हे द्विजो! तब उसके द्वारा बाधित किये गये वे सभी [देवतागण] ब्रह्माके पास पहुँचकर उनसे सब कुछ निवेदन करके पुनः उन [ब्रह्माके] साथ उमापतिके यहाँ जाकर पितामहको आगे करके [शिवकी] स्तुति करने लगे। इसके बाद देवेशके निकट जाकर अत्यन्त विनम्र होकर प्रणाम करके ब्रह्माने कहा—'हे भगवन्! दारुक महाभयंकर है; हमलोग उससे पहले ही पराजित हो चुके हैं। स्त्रीके द्वारा वध्य उस दैत्य दारुकका संहार करके आप हमलोगोंकी रक्षा कीजिये'॥ ५—७॥

विज्ञप्तिं ब्रह्मणः श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा।
देवीमुवाच देवेशो गिरिजां प्रहसन्निव॥ ८

भवतीं प्रार्थयाम्यद्य हिताय जगतां शुभे।
वधार्थं दारुकस्यास्य स्त्रीवध्यस्य वरानने॥ ९

ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर भगके नेत्रोंको नष्ट करनेवाले भगवान् देवेशने देवी गिरिजासे हँसते हुए कहा—'हे शुभे! हे वरानने! मैं सभी लोकोंके हितके लिये इस स्त्रीवध्य दारुकके वधहेतु आज आपसे प्रार्थना करता हूँ'॥ ८-९॥

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः।
विवेश देहे देवस्य देवेशी जन्मतत्परा॥ १०

एकेनांशेन देवेशं प्रविष्टा देवसत्तमम्।
न विवेद तदा ब्रह्मा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः॥ ११

तब उनका वचन सुनकर संसारको उत्पन्न करनेवाली उन देवेश्वरीने जन्मके लिये तत्पर होकर शिवके शरीरमें प्रवेश किया। वे [पार्वती] देवताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वरमें

गिरिजां पूर्ववच्छम्भोर्दृष्ट्वा पार्श्वस्थितां शुभाम्।
मायया मोहितस्तस्याः सर्वज्ञोऽपि चतुर्मुखः॥ १२

अपने सोलहवें अंशसे प्रविष्ट हुईं; उस समय ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रधान देवता भी इसे नहीं जान पाये। मंगलमयी पार्वतीको पूर्ववत् शम्भुके समीप स्थित देखकर सब कुछ जाननेवाले ब्रह्मा भी उनकी मायासे मोहित हो गये थे॥ १०—१२॥

सा प्रविष्टा तनुं तस्य देवदेवस्य पार्वती।
कण्ठस्थेन विषेणास्य तनुं चक्रे तदात्मनः॥ १३

उन देवदेवके शरीरमें प्रविष्ट हुईं उन पार्वतीने उनके कण्ठमें स्थित विषसे अपने शरीरको बनाया॥ १३॥

तां च ज्ञात्वा तथाभूतां तृतीयेनेक्षणेन वै।
ससर्ज कालीं कामारिः कालकण्ठीं कपर्दिनीम्॥ १४

इसके बाद उन पार्वतीको विषभूता जानकर कामशत्रु [शिव]-ने अपने तीसरे नेत्रसे कालकण्ठी (कृष्णवर्णके कण्ठवाली) कपर्दिनी कालीको उत्पन्न किया॥ १४॥

जाता यदा कालिमकालकण्ठी
जाता तदानीं विपुला जयश्रीः।
देवेतराणामजयस्त्वसिद्ध्या
तुष्टिर्भवान्याः परमेश्वरस्य॥ १५

जब विषके कारण कृष्णवर्णके कण्ठवाली काली प्रादुर्भूत हुईं, उस समय विपुल विजयश्री भी उत्पन्न हुईं। अब असिद्धिके कारण दैत्योंकी पराजय निश्चित है, इससे भवानी तथा परमेश्वर [शिव]-को प्रसन्नता हुई॥ १५॥

जातां तदानीं सुरसिद्धसङ्घा
दृष्ट्वा भयाद्दुद्रुवुरग्निकल्पाम्।
कालीं गरालङ्कृतकालकण्ठी-
मुपेन्द्रपद्मोद्भवशक्रमुख्याः॥ १६

विषसे अलंकृत कृष्णवर्णके कण्ठवाली तथा अग्निके सदृश स्वरूपवाली उस प्रादुर्भूत कालीको देखकर सभी देवता, सिद्धगण और विष्णु-ब्रह्मा-इन्द्र आदि प्रधान देवता भी उस समय भयके कारण भागने लगे॥ १६॥

तथैव जातं नयनं ललाटे
सितांशुलेखा च शिरस्युदग्रा।
कण्ठे करालं निशितं त्रिशूलं
करे करालं च विभूषणानि॥ १७

उनके ललाटमें शिवकी भाँति [तीसरा] नेत्र था, मस्तकपर अति तीव्र चन्द्ररेखा थी, कण्ठमें [कालकूट] विष था, हाथमें विकराल तीक्ष्ण त्रिशूल था और वे [सर्पोंके हार-कुण्डल आदि] आभूषण धारण किये हुए थीं॥ १७॥

सार्धं दिव्याम्बरा देव्यः सर्वाभरणभूषिताः।
सिद्धेन्द्रसिद्धाश्च तथा पिशाचा जज्ञिरे पुनः॥ १८

कालीके साथ दिव्य वस्त्र धारण किये हुईं तथा सभी आभूषणोंसे विभूषित देवियाँ, सिद्धोंके स्वामी, सिद्धगण तथा पिशाच भी उत्पन्न हुए॥ १८॥

आज्ञया दारुकं तस्याः पार्वत्याः परमेश्वरी।
दानवं सूदयामास सूदयन्तं सुराधिपान्॥ १९

तब उन पार्वतीकी आज्ञासे परमेश्वरी [काली]-ने सुराधिपोंको मारनेवाले असुर दारुकका वध कर दिया॥ १९॥

संरम्भातिप्रसङ्गाद्वै तस्याः सर्वमिदं जगत्।
क्रोधाग्निना च विप्रेन्द्राः सम्बभूव तदातुरम्॥ २०

भवोऽपि बालरूपेण श्मशाने प्रेतसङ्कुले।
रुरोद मायया तस्याः क्रोधाग्निं पातुमीश्वरः॥ २१

हे श्रेष्ठ विप्रो! उनके अतिशय वेग तथा क्रोधकी अग्निसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हो उठा। तब ईश्वर भव भी मायासे बालरूप धारणकर उन कालीकी क्रोधाग्निको पीनेके लिये [काशीमें] श्मशानमें [जाकर]

तं दृष्ट्वा बालमीशानं मायया तस्य मोहिता।
उत्थाप्याघ्राय वक्षोजं स्तनं सा प्रददौ द्विजाः॥ २२

रोने लगे॥ २०-२१॥

हे द्विजो! उन बालरूप ईशानको देखकर उनकी मायासे मोहित उन कालीने उन्हें उठाकर मस्तक सूँघकर अपना वक्षस्थित स्तन ग्रहण कराया॥ २२॥

स्तनजेन तदा सार्धं कोपमस्याः पपौ पुनः।
क्रोधेनानेन वै बालः क्षेत्राणां रक्षकोऽभवत्॥ २३

मूर्तयोऽष्टौ च तस्यापि क्षेत्रपालस्य धीमतः।
एवं वै तेन बालेन कृता सा क्रोधमूर्च्छिता॥ २४

तब वे बालरूप शिव दूधके साथ उनका क्रोध भी पी गये और इस प्रकार वे इस क्रोधसे क्षेत्रोंकी रक्षा करनेवाले हो गये। उन बुद्धिमान् क्षेत्रपाल [भैरव]-की भी आठ मूर्तियाँ हो गयीं। इस प्रकार वे काली उस बालकके द्वारा क्रोधमूर्च्छित (नष्ट संज्ञावाली) कर दी गयीं॥ २३-२४॥

कृतमस्याः प्रसादार्थं देवदेवेन ताण्डवम्।
सन्ध्यायां सर्वभूतेन्द्रैः प्रेतैः प्रीतेन शूलिना॥ २५

इसके बाद प्रीतियुक्त देवदेव शिवने इन [काली]-की प्रसन्नताके लिये सन्ध्याकालमें श्रेष्ठ भूतों तथा प्रेतोंके साथ ताण्डव [नृत्य] किया॥ २५॥

पीत्वा नृत्तामृतं शम्भोराकण्ठं परमेश्वरी।
ननर्त सा च योगिन्यः प्रेतस्थाने यथासुखम्॥ २६

शम्भुके नृत्यामृतका कण्ठपर्यन्त पान करके वे परमेश्वरी [उस] श्मशानमें सुखपूर्वक नाचने लगीं और योगिनियाँ भी उनके साथ नाचने लगीं॥ २६॥

तत्र सब्रह्मका देवाः सेन्द्रोपेन्द्राः समन्ततः।
प्रणेमुस्तुष्टुवुः कालीं पुनर्देवीं च पार्वतीम्॥ २७

वहाँपर ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्रसहित सभी देवताओंने सभी ओरसे कालीको तथा पुनः देवी पार्वतीको प्रणाम किया और उनकी स्तुति की॥ २७॥

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं ताण्डवं शूलिनः प्रभोः।
योगानन्देन च विभोः ताण्डवं चेति चापरे॥ २८

[हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपमें शूलधारी प्रभुके ताण्डवनृत्यका वर्णन कर दिया; 'योगके आनन्दके कारण विभु [शिव]-का ताण्डव होता है'—ऐसा अन्य लोग कहते हैं॥ २८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवताण्डवकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'शिवताण्डवकथन' नामक एक सौ छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

शिवभक्त उपमन्युकी कथा तथा उमामहेश्वरद्वारा उसपर अनुग्रह करना

ऋषय ऊचुः

पुरोपमन्युना सूत गाणपत्यं महेश्वरात्।
क्षीरार्णवः कथं लब्धो वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! पूर्वकालमें उपमन्युने महेश्वरसे गणाधिप पद प्राप्त करके पुनः क्षीरसागरको कैसे प्राप्त किया; आप इस समय बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

एवं कालीमुपालभ्य गते देवे त्रियम्बके।
उपमन्युः समभ्यर्च्य तपसा लब्धवान् फलम्॥ २

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस प्रकार कालीको उत्पन्न करके त्रिनेत्र शिवके चले जानेपर उपमन्युने तपस्याके द्वारा उनकी पूजा करके फल प्राप्त किया था॥ २॥

उपमन्युरिति ख्यातो मुनिश्च द्विजसत्तमाः।
कुमार इव तेजस्वी क्रीडमानो यदृच्छया॥ ३

कदाचित्क्षीरमल्पं च पीतवान् मातुलाश्रमे।
ईर्ष्यया मातुलसुतो ह्यपिबत् क्षीरमुत्तमम्॥ ४

पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा प्रोवाच मातरम्।
मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि॥ ५

गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं नमाम्यहम्।

सूत उवाच

उपलालितैवं पुत्रेण पुत्रमालिङ्ग्य सादरम्॥ ६

दुःखिता विललापार्ता स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः।
स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युरपि द्विजाः।
देहि देहीति तामाह रोदमानो महाद्युतिः॥ ७

उञ्छवृत्त्यार्जितान् बीजान् स्वयं पिष्ट्वा च सा तदा।
बीजपिष्टं तदालोड्य तोयेन कलभाषिणी॥ ८

एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम्।
आलिङ्ग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः॥ ९

पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रा दत्तं द्विजोत्तमः।
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः॥ १०

दुःखिता सा तदा प्राह सम्प्रेक्ष्याघ्राय मूर्धनि।
सम्मार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते॥ ११

तटिनी रत्नपूर्णास्ते स्वर्गपातालगोचराः।
भाग्यहीना न पश्यन्ति भक्तिहीनाश्च ये शिवे॥ १२

राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसम्भवम्।
न लभन्ते प्रियाण्येषां नो तुष्यति सदा भवः॥ १३

हे श्रेष्ठ द्विजो! 'उपमन्यु'—इस नामसे प्रसिद्ध एक मुनि थे; कुमारके समान तेजस्वी उन्होंने किसी समय स्वेच्छानुसार खेलते हुए [अपने] मामाके आश्रममें थोड़ा-सा दूध पी लिया, तब ईर्ष्याके कारण उनके मामाके पुत्रने उत्तम दुग्धका पान किया॥ ३-४॥

तब इच्छानुसार दुग्ध पीकर उसे पासमें खड़ा देखकर उपमन्युने अपनी मातासे कहा—हे मातः! हे महाभागे! हे तपस्विनि! आप मुझको गायका दुग्ध दीजिये, जो अत्यन्त स्वादिष्ट हो, गर्म हो तथा अल्प न हो; मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ५१/२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार पुत्रके द्वारा स्नेह-पूर्वक कही गयी वह बात सुनकर माता आदरके साथ पुत्रका आलिंगन करके दुःखित हो गयी और अपनी निर्धनताका स्मरणकर व्याकुल होकर विलाप करने लगी। हे द्विजो! बार-बार दूधका स्मरण करके महातेजस्वी उपमन्यु भी मातासे रोते हुए यही कहते थे—'मुझे दो, मुझे दो'॥ ६-७॥

तत्पश्चात् उंछवृत्ति (फसल कट जानेके बाद खेतमें पड़े दानोंको बटोरना)-से अर्जित बीजोंको स्वयं पीसकर पुनः बीजके उस आटेको जलके साथ मिलाकर मधुरभाषिणी वह माता बोली, 'हे मेरे पुत्र! आओ, आओ।' इसके बाद सान्त्वनापूर्वक पुत्रको पकड़कर आलिंगन करके दुःखसे व्याकुल माताने उसे कृत्रिम दुग्ध दे दिया॥ ८-९॥

तब माताके द्वारा दिये गये उस कृत्रिम दुग्धको पीकर द्विजश्रेष्ठ [उपमन्यु]-ने अति विह्वल होकर मातासे कहा—'यह दूध नहीं है'॥ १०॥

तब दुःखसे भरी हुई उस माताने बालककी ओर देखकर उसका मस्तक सूँघकर अपने हाथोंसे पुत्रके कमलसदृश विशाल नेत्रोंको पोंछकर कहा—'[हे पुत्र!] जो शिवके प्रति भक्तिरहित हैं, वे भाग्यहीन लोग रत्नोंसे परिपूर्ण तथा स्वर्ग-पातालमें गोचर होनेवाली नदियोंको नहीं देख पाते हैं। शिवजी जिनके ऊपर सदा प्रसन्न नहीं रहते हैं, वे लोग राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और दुग्धसे बने हुए भोजन तथा अन्य प्रिय वस्तुओंको नहीं प्राप्त कर सकते

भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेवप्रसादजम्।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्ता विभ्रमन्ति च॥ १४

क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं महादेवो न पूजितः।
पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत॥ १५

तदेव लभ्यं नान्यत्तु विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम्।
निशम्य वचनं मातुरुपमन्युर्महाद्युतिः॥ १६

बालोऽपि मातरं प्राह प्रणिपत्य तपस्विनीम्।
त्यज शोकं महाभागे महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्॥ १७

चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम्।

सूत उवाच

तां प्रणम्यैवमुक्त्वा स तपः कर्तुं प्रचक्रमे॥ १८

तमाह माता सुशुभं कुर्विति सुतरां सुतम्।
अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे सुदुस्तरम्॥ १९

हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः।
तपसा तस्य विप्रस्य विधूपितमभूज्जगत्॥ २०

प्रणम्याहुस्तु तत्सर्वे हरये देवसत्तमाः।
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् पुरुषोत्तमः॥ २१

किमिदं त्विति सञ्चिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः।
जगाम मन्दरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया॥ २२

दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः।
भगवन् ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरिति श्रुतः॥ २३

क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तं निवारय।
एतस्मिन्नन्तरे देवः पिनाकी परमेश्वरः।
शक्ररूपं समास्थाय गन्तुं चक्रे मतिं तदा॥ २४

अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं
गजवरेण सितेन सदाशिवः।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगै-
रमरराजतनुं स्वयमास्थितः॥ २५

हैं। शिवकी कृपासे ही सबकुछ प्राप्त होता है, अन्य देवताओंकी कृपासे नहीं; अन्य देवताओंमें परायण रहनेवाले दुःखसे व्यथित होकर [संसारचक्रमें] भ्रमण करते रहते हैं। हमलोगोंको दूध कैसे मिल सकता है; क्योंकि हमलोगोंने महादेवकी पूजा नहीं की है। हे पुत्र! शिवको उद्देश्य करके पूर्वजन्ममें जो कुछ समर्पित किया जाता है, वही प्राप्त होता है; विष्णु अथवा अन्य देवताको उद्देश्य करके देनेपर कुछ नहीं प्राप्त होता है'॥ ११—१५ १/२॥

तब माताका वचन सुनकर महातेजस्वी बालक उपमन्यु भी तपस्विनी माताको प्रणाम करके बोला—'हे महाभागे! शोकका त्याग करो; महादेवजी चाहे कहीं भी हों, मैं शीघ्र अथवा विलम्बसे क्षीरसमुद्रको प्राप्त कर लूँगा'॥ १६-१७ १/२॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] उसे प्रणामकर वे [उपमन्यु] तप करनेके लिये प्रवृत्त हुए। तब माताने पुत्रसे कहा—'पूर्णरूपसे अत्यन्त शुभ तपस्या करो।' उससे आज्ञा प्राप्त करके हिमवान् पर्वतपर जाकर वायुका आहार करते हुए एकाग्रचित्त होकर वे अति कठोर तप करने लगे॥ १८-१९ १/२॥

उस विप्रकी तपस्यासे [सम्पूर्ण] जगत् तप्त हो उठा। तब सभी श्रेष्ठ देवताओंने विष्णुको प्रणाम करके वह बात बतायी। इसके बाद उनका वचन सुनकर वे भगवान् पुरुषोत्तम 'यह क्या है'—ऐसा सोचकर पुनः उसका कारण जानकर महेश्वरके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक मन्दर पर्वतपर गये॥ २०—२२॥

शिवको देखकर उन्हें प्रणाम करके विष्णुने हाथ जोड़कर यह कहा—'हे भगवन्! उपमन्यु नामसे प्रसिद्ध किसी ब्राह्मणने दुग्धके लिये [अपनी] तपस्यासे सबको जला डाला; आप उसे रोकिये'॥ २३ १/२॥

इसके अनन्तर पिनाकधारी देव परमेश्वरने इन्द्रका रूप धारणकर वहाँ जानेका विचार किया। तत्पश्चात् वे सदाशिव देवराज [इन्द्र]-का रूप धारणकर श्वेत गजराजपर आरूढ़ होकर सुरों, असुरों, सिद्धों तथा महान् नागोंके साथ मुनिके तपोवनमें गये॥ २४-२५॥

सहैव चारुह्य तदा द्विपं तं
प्रगृह्य बालव्यजनं विवस्वान्।
वामेन शच्या सहितं सुरेन्द्रं
करेण चान्येन सितातपत्रम्॥ २६

उनके साथ ही उस हाथीपर चढ़कर सूर्यदेव [अपने] बाएँ हाथमें बालव्यजन तथा दाएँ हाथमें श्वेत छत्र लेकर शचीसहित सुरेन्द्रकी सेवा कर रहे थे॥ २६॥

रराज भगवान् सोमः शक्ररूपी सदाशिवः।
सितातपत्रेण यथा चन्द्रबिम्बेन मन्दरः॥ २७

उस समय उमासहित शक्ररूपी भगवान् सदाशिव श्वेत छत्रसे उसी तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे चन्द्रबिम्बसे मन्दर [पर्वत] सुशोभित होता है॥ २७॥

आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः।
जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम्॥ २८

इस प्रकार इन्द्रका स्वरूप धारण करके परमेश्वर [उस] उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये उसके आश्रममें गये॥ २८॥

तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम्।
प्रणम्य शिरसा प्राह मुनिर्मुनिवराः स्वयम्॥ २९

पावितश्चाश्रमश्चायं मम देवेश्वरः स्वयम्।
प्राप्तः शक्रो जगन्नाथो भगवान् भानुना प्रभुः॥ ३०

हे मुनिवरो! इन्द्ररूपधारी उन परमेशान शिवको
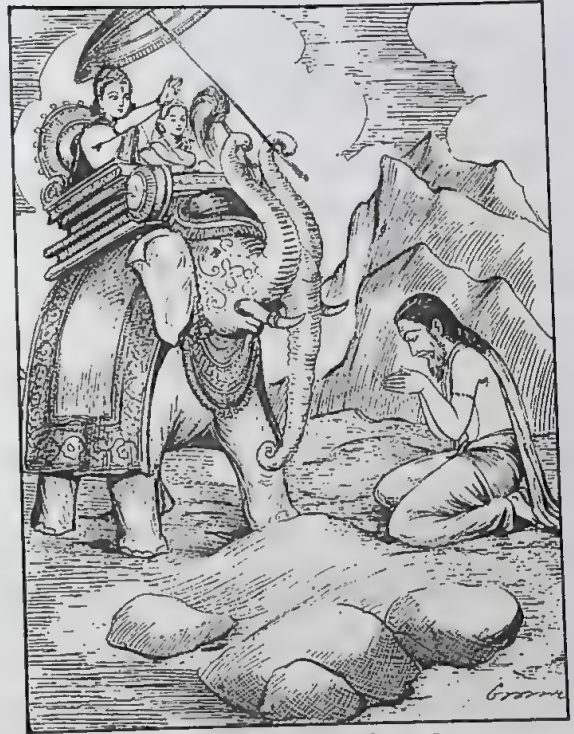
देखकर सिर झुकाकर प्रणाम करके मुनि [उपमन्यु]-ने स्वयं कहा—'मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया; क्योंकि देवताओंके स्वामी, जगत्पति, भगवान् प्रभु इन्द्र सूर्यके साथ [यहाँ] स्वयं आये हुए हैं'॥ २९-३०॥

एवमुक्त्वा स्थितं वीक्ष्य कृताञ्जलिपुटं द्विजम्।
प्राह गम्भीरया वाचा शक्ररूपधरो हरः॥ ३१

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत।
ददामि चेप्सितान् सर्वान् धौम्याग्रज महामते॥ ३२

ऐसा कहकर हाथ जोड़कर खड़े हुए द्विजको देखकर इन्द्ररूपधारी शिव गम्भीर वाणीमें बोले—'हे सुव्रत! मैं तुम्हारे इस तपसे प्रसन्न हो गया हूँ; वर माँगो। हे [ऋषि] धौम्यके अग्रज! हे महामते! मैं [तुम्हें] समस्त अभीष्ट प्रदान करता हूँ'॥ ३१-३२॥

एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिसत्तमः।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ ३३

तब शक्ररूपी शिवके द्वारा ऐसा कहे जानेपर मुनिश्रेष्ठने हाथ जोड़कर कहा—'मैं शिवमें भक्तिका वर माँगता हूँ'॥ ३३॥

ततो निशम्य वचनं मुनेः कुपितवत्प्रभुः।
प्राह सव्यग्रमीशानः शक्ररूपधरः स्वयम्॥ ३४

मां न जानासि देवर्षे देवराजानमीश्वरम्।
त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ३५

मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम्॥ ३६

ततः शक्रस्य वचनं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम्।
उपमन्युरिदं प्राह जपन् पञ्चाक्षरं शुभम्॥ ३७

मन्ये शक्रस्य रूपेण नूनमत्रागतः स्वयम्।
कर्तुं दैत्याधमः कश्चिद्धर्मविघ्नं च नान्यथा॥ ३८

त्वयैव कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै।
प्रसङ्गाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः॥ ३९

बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत्।
भवान्तरकृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य तु॥ ४०

श्रुत्वा निन्दां भवस्याथ तत्क्षणादेव सन्त्यजेत्।
स्वदेहं तं निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति॥ ४१

यो वाचोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिन्दारतस्य तु।
त्रिः सप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति॥ ४२

आस्तां तावन्ममेच्छा या क्षीरं प्रति सुराधमम्।
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥ ४३

पुरा मात्रा तु कथितं तथ्यमेव न संशयः।
पूर्वजन्मनि चास्माभिरपूजित इति प्रभुः॥ ४४

एवमुक्त्वा तु तं देवमुपमन्युरभीतवत्।
शक्रं चक्रे मतिं हन्तुमथर्वास्त्रेण मन्त्रवित्॥ ४५

भस्माधारान्महातेजा भस्ममुष्टिं प्रगृह्य च।
अथर्वास्त्रं ततस्तस्मै ससर्ज च ननाद च॥ ४६

दग्धुं स्वदेहमाग्नेयीं ध्यात्वा वै धारणां तदा।
अतिष्ठच्च महातेजाः शुष्केन्धनमिवाव्ययः॥ ४७

एवं व्यवसिते विप्रे भगवान् भगनेत्रहा।
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥ ४८

तब मुनिका वचन सुनकर इन्द्रका रूप धारण करनेवाले प्रभु ईशान कुपितकी भाँति व्यग्रतापूर्वक बोले—'हे देवर्षे! तीनों लोकोंके अधिपति तथा सभी देवताओंसे नमस्कार किये जानेवाले मुझ ईश्वर देवराज इन्द्रको क्या तुम नहीं जानते हो? हे विप्रर्षे! तुम मेरे भक्त हो जाओ और सर्वदा मेरी ही पूजा करो, मैं तुम्हें सब कुछ प्रदान करता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो; तुम निर्गुण शिवका त्याग कर दो'॥ ३४—३६॥

तब इन्द्रका कर्णविदारक वचन सुनकर उपमन्युने पवित्र पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए यह कहा—'अब मैं समझता हूँ कि निश्चय ही कोई अधम दैत्य स्वयं इन्द्रके स्वरूपमें मेरे धर्ममें विघ्न डालनेके लिये यहाँ आया है; इसमें सन्देह नहीं है। शिवनिन्दापरायण आपने ही प्रसंगवश महात्मा देवदेव [शिव]-की निर्गुणता भी बतायी है। अधिक कहनेसे क्या लाभ; मैंने आज अनुमान किया है कि पूर्वजन्ममें किया हुआ मेरा कोई महापाप अवश्य है, जिसके कारण मैंने शिवकी निन्दा सुनी है। जो शिवकी निन्दा सुनकर उसी क्षण उस [शिवनिन्दक]-को मारकर अपने शरीरको त्याग देता है, वह शिवलोकको जाता है। जो [व्यक्ति] वाणीसे शिवनिन्दा करनेवालेकी जीभ उखाड़ लेता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके शिवलोकको जाता है। दूधके लिये मेरी जो इच्छा है, वह अब दूर रहे; शिवके अस्त्रसे तुझ सुराधमका वध करके मैं [अपने] इस शरीरका भी त्याग कर दूँगा। माताने पहले जो कहा था, वह सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है। हमलोगोंने पूर्वजन्ममें शिवकी पूजा नहीं की थी'॥ ३७—४४॥

ऐसा कहकर निडरकी भाँति होकर मन्त्रवेत्ता उपमन्युने उन इन्द्रदेवको अथर्वास्त्रसे मार देनेका विचार किया। उस महातेजस्वीने भस्मके आधारसे एक मुट्ठी भस्म लेकर उसके लिये अथर्वास्त्रका सृजन किया और जोरसे ध्वनि की। तब आग्नेयी धारणाका ध्यान करके अपने देहको सूखे ईंधनकी तरह जलानेके लिये वह अव्यय तेजस्वी खड़ा हो गया॥ ४५—४७॥

उस विप्रके ऐसा निश्चय करनेपर भगके नेत्रको

अथर्वास्त्रं तदा तस्य संहृतं चन्द्रिकेण तु।
कालाग्निसदृशं चेदं नियोगान्नन्दिनस्तथा॥ ४९

स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः।
दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम्॥ ५०

क्षीरधारासहस्त्रं च क्षीरोदार्णवमेव च।
दध्यादेरर्णवं चैव घृतोदार्णवमेव च॥ ५१

फलार्णवं च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा।
अपूपगिरयश्चैव तथातिष्ठन् समन्ततः॥ ५२

उपमन्युमुवाच सस्मितो
भगवान् बन्धुजनैः समावृतम्।
गिरिजामवलोक्य सस्मितां सघृणं
प्रेक्ष्य तु तं तदा घृणी॥ ५३

भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं बान्धवैः पश्य वत्स मे।
उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती॥ ५४

मया पुत्रीकृतोऽस्यद्य दत्तः क्षीरोदधिस्तथा।
मधुनश्चार्णवश्चैव दध्नश्चार्णव एव च॥ ५५

आज्योदनार्णवश्चैव फललेह्यार्णवस्तथा।
अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवः पुनः॥ ५६

पिता तव महादेवः पिता वै जगतां मुने।
माता तव महाभागा जगन्माता न संशयः॥ ५७

अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्।
वरान् वरय दास्यामि नात्र कार्या विचारणा॥ ५८

एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्।
आघ्राय मूर्धनि विभुर्ददौ देव्यास्तदा भवः॥ ५९

देवी तनयमालोक्य ददौ तस्मै गिरीन्द्रजा।
योगैश्वर्यं तदा तुष्टा ब्रह्मविद्यां द्विजोत्तमाः॥ ६०

सोऽपि लब्ध्वा वरं तस्याः कुमारत्वं च सर्वदा।
तुष्टाव च महादेवं हर्षगद्गदया गिरा॥ ६१

नष्ट करनेवाले भगवान् शिवने सोमधारणायोगसे उस योगी [उपमन्यु]-की [आग्नेयी] धारणाको रोक दिया। तब नन्दीके आदेशसे चन्द्रिक [नामक गण]-ने उसके कालाग्नि-सदृश अथर्वास्त्रका संहरण कर लिया॥ ४८-४९॥

इसके बाद भगवान् परमेश्वरने बालचन्द्रमासे शोभित मस्तकवाले [अपने] स्वरूपको धारण करके विप्रको दिखाया॥ ५०॥

उस समय बालक [उपमन्यु]-के चारों ओर हजारों दुग्धधाराएँ, क्षीरसागर, मधुका समुद्र, दधिका सागर, घृतका सागर, फलका सागर, [अन्य] भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका सागर तथा अपूपोंके पर्वत उपस्थित हो गये॥ ५१-५२॥

तदनन्तर दयालु भगवान् [शिव]-ने मुसकानयुक्त गिरिजाको देखकर तथा बन्धुजनोंसे घिरे हुए उपमन्युकी ओर दयापूर्वक देखकर मुसकराकर उससे कहा—'हे मेरे पुत्र! तुम अपने बान्धवोंके साथ इच्छानुसार भोगोंका उपभोग करो। हे उपमन्यो! हे महाभाग! देखो, ये पार्वती तुम्हारी माता हैं। मैंने आज तुम्हें अपना पुत्र बना लिया है और तुम्हें क्षीरसागर, मधुसागर, दधिसागर, घृत तथा ओदनका सागर, फलोंका सागर, लेह्य पदार्थोंका सागर, अपूपोंके पर्वत तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका सागर प्रदान किया है। हे मुने! सभी लोकोंके पिता महादेव तुम्हारे पिता हैं और जगज्जननी महाभागा पार्वती तुम्हारी माता हैं; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने तुम्हें अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य प्रदान कर दिया, अब तुम अन्य वरोंको भी माँग लो, मैं तुम्हें दूँगा; इसमें तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये'॥ ५३—५८॥

ऐसा कहकर महादेव विभु शिवने उसे दोनों हाथोंसे उठाकर उसका सिर सूँघकर पुनः उसे देवी [पार्वती]-को दे दिया॥ ५९॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तब [अपने] पुत्रको देखकर गिरिराजपुत्री देवी [पार्वती]-ने प्रसन्न होकर उसे योगैश्वर्य तथा ब्रह्मविद्या प्रदान की॥ ६०॥

उसने भी उन पार्वतीसे वर तथा शाश्वत कुमारत्व प्राप्त करके हर्षके कारण गद्गद वाणीसे महादेवकी

वरयामास च तदा वरेण्यं विरजेक्षणम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ ६२

प्रसीद देवदेवेश त्वयि चाव्यभिचारिणी।
श्रद्धा चैव महादेव सान्निध्यं चैव सर्वदा॥ ६३

स्तुति की और इसके बाद हाथ जोड़कर विरजेक्षण (सात्त्विकजनोंपर दृष्टि डालनेवाले) वरेण्य शिवको

बार-बार प्रणाम करके वर माँगा—'हे देवदेवेश! प्रसन्न होइए। हे महादेव! आपमें मेरी अव्यभिचारिणी श्रद्धा रहे तथा सर्वदा आपका सान्निध्य प्राप्त हो'॥ ६१—६३॥

एवमुक्तस्तदा तेन प्रहसन्निव शङ्करः।
दत्त्वेप्सितं हि विप्राय तत्रैवान्तरधीयत॥ ६४

तब उसके ऐसा कहनेपर शंकरजी हँसते हुए उस विप्रको वांछित वर प्रदान करके वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ ६४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उपमन्युचरितं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'उपमन्युचरित' नामक एक सौ सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका गुरु उपमन्युके आश्रममें जाना और उनसे पाशुपतज्ञान प्राप्त करना तथा पाशुपतव्रतका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
धौम्याग्रजस्ततो लब्धं दिव्यं पाशुपतं व्रतम्॥ १
कथं लब्धं तदा ज्ञानं तस्मात्कृष्णेन धीमता।
वक्तुमर्हसि तां सूत कथां पातकनाशिनीम्॥ २

ऋषिगण बोले—अक्लिष्ट कर्मवाले वासुदेव श्रीकृष्णने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता [उपमन्यु]-का दर्शन किया था और उनसे दिव्य पाशुपतव्रत ग्रहण किया था। हे सूतजी! बुद्धिमान् श्रीकृष्णने उनसे यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया; उस पापनाशिनी कथाको बतानेकी कृपा

सूत उवाच

स्वेच्छया ह्यवतीर्णोऽपि वासुदेवः सनातनः।
निन्दयन्नेव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः॥ ३

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम च।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम्॥ ४

नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः।
बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिः कृत्वा वै प्रदक्षिणम्॥ ५

तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा॥ ६

भस्मनोद्धूलनं कृत्वा उपमन्युर्महाद्युतिः।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात्॥ ७

दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः॥ ८

तपसा त्वेकवर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः॥ ९

तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः संशितव्रताः।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वदा॥ १०

कीजिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सनातन वासुदेव अपनी इच्छासे अवतीर्ण हुए थे, फिर भी उन्होंने मानवरूपकी निन्दा करते हुए देहशुद्धि की थी॥ ३॥

भगवान् [श्रीकृष्ण] पुत्रप्राप्तिहेतु तप करनेके लिये उपमन्युके आश्रममें गये और उन्होंने वहाँ उन मुनिका दर्शन किया। हे द्विजो! उन धौम्याग्रजको देखकर अत्यन्त सम्मानके साथ उनकी तीन बार
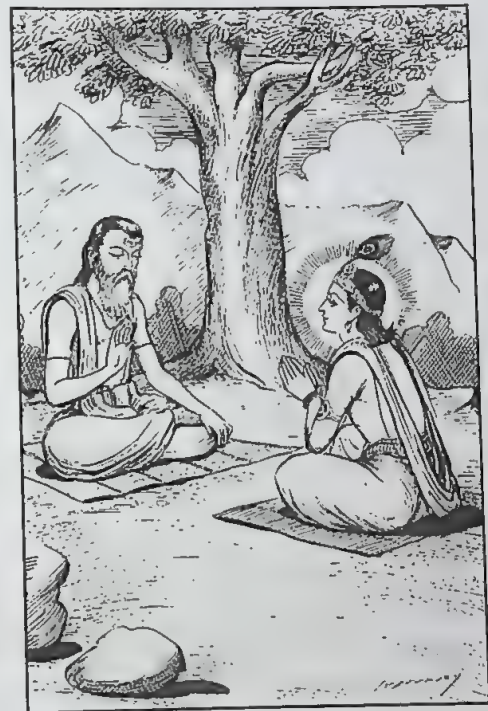
प्रदक्षिणा करके श्रीकृष्णने उन्हें नमस्कार किया॥ ४-५॥

उन मुनिके अवलोकनमात्रसे बुद्धिमान् श्रीकृष्णका सम्पूर्ण देहजनित तथा कर्मजनित मल नष्ट हो गया॥ ६॥

हे विप्रेन्द्रो! महातेजस्वी उपमन्युने भस्मोद्धूलन करके प्रसन्नचित्त होकर क्रमसे अग्नि, वायु आदि मन्त्रोंके द्वारा उन्हें दिव्य पाशुपत ज्ञान प्रदान किया॥ ७½॥

हे द्विजो! मुनिकी कृपासे वे श्रीकृष्ण पाशुपतव्रतमें मान्य हो गये। [अपनी] तपस्यासे एक वर्षके अन्तमें पार्वती तथा गणोंसहित अव्यग्र देव महेश्वरका दर्शन करके उन्होंने अपना पुत्र प्राप्त किया। उसी समयसे प्रशस्त व्रतवाले दिव्य मुनिगण तथा पशुपतिके सभी भक्त सदा उन कृष्णको घेरकर स्थित रहने लगे॥ ८—१०॥

अन्यं च कथयिष्यामि मुक्त्यर्थं प्राणिनां सदा।
सौवर्णीं मेखलां कृत्वा आधारं दण्डधारणम्॥ ११

सौवर्णं पिण्डिकं चापि व्यजनं दण्डमेव च।
नरैः स्त्रियाथ वा कार्यं मषीभाजनलेखनीम्॥ १२

क्षुराकर्त्तरिका चापि अथ पात्रमथापि वा।
पाशुपताय दातव्यं भस्मोद्धूलितविग्रहैः॥ १३

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं वाथ निवेदयेत्।
आत्मवित्तानुसारेण योगिनं पूजयेद् बुधः॥ १४

[हे ऋषियो!] सदा सभी प्राणियोंकी मुक्तिके लिये मैं अन्य व्रतको भी बताऊँगा। सुवर्णमयी मेखला (परिनालिका) बनाकर उसके आधार, दण्डधारण (जलनिवारक बाहरी भाग), पिण्डिक (लिङ्ग), व्यजन, दीक्षादण्ड—यह सब सोनेका बनाना चाहिये; साथ ही मषीपात्रयुक्त लेखनी, छुरी सहित कैंची तथा जलपात्र भी स्वर्णमय बनाकर इन सभी सामग्रियोंको भस्मसे उद्धूलित शरीरवाले पुरुषोंके द्वारा या स्त्रीके द्वारा किसी पशुपति-भक्तको दे दिया जाना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी ही सामग्री समर्पित करे और उस योगीकी पूजा करे॥ ११—१४॥

ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः समस्तकुलसंयुताः।
यान्ति रुद्रपदं दिव्यं नात्र कार्या विचारणा॥ १५

तस्मादनेन दानेन गृहस्थो मुच्यते भवात्।
योगिनां सम्प्रदानेन शिवः क्षिप्रं प्रसीदति॥ १६

राज्यं पुत्रं धनं भव्यमश्वं यानमथापि वा।
सर्वस्वं वापि दातव्यं यदीच्छेन्मोक्षमुत्तमम्॥ १७

अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं साध्यं प्रयत्नतः।
भव्यं पाशुपतं नित्यं संसारार्णवतारकम्॥ १८

[ऐसा दान करनेवाले] वे सभीलोग सम्पूर्ण कुलसहित पापमुक्त होकर दिव्य रुद्रपदको जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अतः गृहस्थ इस दानके द्वारा संसार [चक्र]-से छूट जाता है। योगियोंके लिये यह दान करनेसे शिव शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। यदि कोई उत्तम मोक्ष चाहता हो, तो उसे भव्य राज्य, पुत्र, धन, अश्व, यान—यहाँतक कि सर्वस्वका दान कर देना चाहिये। [इस] अनित्य शरीरसे भव्य, नित्य (शाश्वत) तथा संसार-सागरसे पार करनेवाले पाशुपतव्रतको प्रयत्नपूर्वक अवश्य सिद्ध करना चाहिये॥ १५—१८॥

एतद्वः कथितं सर्वं सङ्क्षेपान्न च संशयः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति॥ १९

[हे ऋषियो!] मैंने संक्षेपमें आपलोगोंको यह सब बता दिया। जो इसे पढ़ता है अथवा सुनता है, वह विष्णुलोकको जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ १९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः॥ १०८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत पूर्वभागमें 'पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णन' नामक एक सौ आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०८॥

॥ समाप्तश्चायं पूर्वभागः॥

॥ श्रीलिङ्गमहापुराणका पूर्वभाग पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीलिङ्गमहापुराण

[उत्तरभाग]

पहला अध्याय

भगवद्गुणगानकी महिमामें कौशिक ब्राह्मणकी कथा

ऋषय ऊचुः

कृष्णस्तुष्यति केनेह सर्वदेवेश्वरेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत सर्वार्थविद्वान्॥ १

ऋषि बोले—हे सूतजी! समस्त देवताओं और ईश्वरोंके ईश्वर भगवान् कृष्ण इस लोकमें किससे सन्तुष्ट होते हैं? आप हम लोगोंको बतायें; आप सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता हैं॥ १॥

सूत उवाच

पुरा पृष्टो महातेजा मार्कण्डेयो महामुनिः।
अम्बरीषेण विप्रेन्द्रास्तद्वदामि यथातथम्॥ २

सूतजी बोले—हे विप्रवरो! पूर्वकालमें अम्बरीषने भी महातेजस्वी महामुनि मार्कण्डेयसे [इस विषयमें] पूछा था; मैं उसे यथार्थरूपसे बता रहा हूँ॥ २॥

अम्बरीष उवाच

मुने समस्तधर्माणां पारगस्त्वं महामते।
मार्कण्डेय पुराणोऽसि पुराणार्थविशारदः॥ ३

अम्बरीष बोले—हे मुने! हे महामते! हे मार्कण्डेयजी! आप समस्त धर्मोंके पूर्ण ज्ञाता, अत्यन्त पुरातन तथा पुराणतत्त्वोंके विद्वान् हैं॥ ३॥

नारायणानां दिव्यानां धर्माणां श्रेष्ठमुत्तमम्।
तत्किं ब्रूहि महाप्राज्ञ भक्तानामिह सुव्रत॥ ४

हे महाप्राज्ञ! नारायणके द्वारा निर्मित दिव्य धर्मोंमें कौन-सा धर्म श्रेष्ठ तथा उत्तम है? हे सुव्रत! उसे आप यहाँपर भक्तोंके कल्याणार्थ बतायें॥ ४॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
स्मरन्नारायणं देवं कृष्णमच्युतमव्ययम्॥ ५

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर [मार्कण्डेयजी] उठ करके दोनों हाथ जोड़कर अविनाशी तथा अच्युत भगवान् नारायण कृष्णका स्मरण करते हुए कहने लगे॥ ५॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु भूप यथान्यायं पुण्यं नारायणात्मकम्।
स्मरणं पूजनं चैव प्रणामो भक्तिपूर्वकम्॥ ६

प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य सममुच्यते।
य एकः पुरुषः श्रेष्ठः परमात्मा जनार्दनः॥ ७

यस्माद् ब्रह्मा ततः सर्वं समाश्रित्यैवमुच्यते।
धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं विदितं मया॥ ८

पुरा त्रेतायुगे कश्चित् कौशिको नाम वै द्विजः।
वासुदेवपरो नित्यं सामगानरतः सदा॥ ९

भोजनासनशय्यासु सदा तद्गतमानसः।
उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः॥ १०

विष्णोः स्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम्।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम्॥ ११

मूर्च्छनास्वरयोगेन श्रुतिभेदेन भेदितम्।
भक्तियोगं समापन्नो भिक्षामात्रं हि तत्र वै॥ १२

तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा।
पद्माख्य इति विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ तदा॥ १३

सकुटुम्बो महातेजा ह्युष्णमन्नं हि तत्र वै।
कौशिको हि तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम्॥ १४

श्रृण्वन्नास्ते स पद्माख्यः काले काले विनिर्गतः।
कालयोगेन सम्प्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च॥ १५

सप्त राजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसम्भवाः।
ज्ञानविद्याधिकाः शुद्धा वासुदेवपरायणाः॥ १६

तेषामपि तथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम्।
शिष्यैश्च सहितो नित्यं कौशिको हृष्टमानसः॥ १७

मार्कण्डेयजी बोले—हे राजन्! सम्यक् प्रकारसे सुनिये; भक्तिपूर्वक [अनुष्ठित किये गये] भगवान् नारायणके स्मरण, पूजन और प्रणाम—इनमेंसे प्रत्येकको अश्वमेधयज्ञके समान फल प्रदान करनेवाला कहा जाता है; क्योंकि एकमात्र वे प्रभु जनार्दन ही परम पुरुष परमात्मा हैं, जिनसे आश्रय लेकर ब्रह्माजी जगत्के स्रष्टा कहे जाते हैं। मैंने जो देखा है तथा जाना है, उसी एकमात्र धर्मका वर्णन करूँगा॥ ६—८॥

प्राचीनकालमें त्रेतायुगमें एक कौशिक नामवाले ब्राह्मण थे; वे नित्य-निरन्तर वासुदेवपरायण रहते हुए सामगानमें तल्लीन रहते थे॥ ९॥

भगवान् विष्णुके उदार चरित्रका बार-बार गान करते हुए वे भोजन करने, बैठने तथा शयनमें सदा उन्हींमें अपना चित्त लगाये रहते थे॥ १०॥

परम पवित्रक्षेत्रस्थ भगवान् विष्णुके मन्दिरमें आकर वे ताल, स्वर और लयसे युक्त, मूर्च्छना और स्वरयोग, बृहद्रथन्तर आदि श्रुतिभेदसे अन्वित भगवान् श्रीहरिका गान करते थे। इस प्रकार भक्तियोगमें सदा स्थित रहकर वे वहींपर भिक्षामात्र ग्रहण करते हुए रहते थे॥ ११-१२॥

उस समय उन्हें वहाँ गाते हुए देखकर 'पद्माख्य' (पद्माक्ष)—इस नामसे विख्यात किसी द्विजने उन्हें अन्न प्रदान किया। तब महातेजस्वी कौशिक अपने कुटुम्बसहित उष्ण अन्नको ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक प्रभु श्रीहरिका गुणगान करते हुए वहींपर स्थित हो गये॥ १३-१४॥

वह पद्माख्य भी सदा उसे सुनता रहता था और समय-समयपर वहाँसे चला भी जाता था। किसी समय कालयोगसे द्विज कौशिकके सात शिष्य वहाँ आये। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यकुलमें उत्पन्न; ज्ञान और विद्यासे परिपूर्ण; विशुद्ध मनवाले तथा भगवान् वासुदेवके अनन्य भक्त थे॥ १५-१६॥

स्वयं पद्माक्षने उन्हें भी अन्नादिसहित उपयोगी पदार्थ प्रदान किये। वे कौशिक प्रसन्नचित्त होकर अपने शिष्योंके साथ वहींपर विष्णुमन्दिरमें प्रभु श्रीहरिका सम्यक् रूपसे सदा गुणगान करते रहते थे॥ १७$^1/_2$॥

विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन् यथाविधि।
तत्रैव मालवो नाम वैश्यो विष्णुपरायणः॥ १८

दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतिमानसः।
मालवी नाम भार्या च तस्य नित्यं पतिव्रता॥ १९

गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समन्ततः।
भर्त्रा सहास्ते सुप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम्॥ २०

कुशस्थलात्समापन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः।
पञ्चाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः॥ २१

साधयन्तो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः।
गानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वन्तो ह्यवसंस्तु ते॥ २२

ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य तत्।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कलिङ्गो वाक्यमब्रवीत्॥ २३

कौशिकाद्य गणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः।
शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि॥ २४

तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह राजानं सान्त्वया गिरा।
न जिह्वा मे महाराजन् वाणी च मम सर्वदा॥ २५

हरेरन्यमपीन्द्रं वा स्तौति नैव च वक्ष्यति।
एवमुक्ते तु तच्छिष्यो वासिष्ठो गौतमो हरिः॥ २६

सारस्वतस्तथा चित्रश्चित्रमाल्यस्तथा शिशुः।
ऊचुस्ते पार्थिवं तद्वद्यथा प्राह च कौशिकः॥ २७

श्रावकास्ते तथा प्रोचुः पार्थिवं विष्णुतत्पराः।
श्रोत्राणीमानि शृण्वन्ति हरेरन्यं न पार्थिव॥ २८

गानकीर्तिं वयं तस्य शृणुमोऽन्यां न च स्तुतिम्।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गायतामिति चाब्रवीत्॥ २९

स्वभृत्यान् ब्राह्मणा ह्येते कीर्तिं शृण्वन्ति मे यथा।
न शृण्वन्ति कथं तस्माद् गायमाने समन्ततः॥ ३०

एवमुक्तास्तदा भृत्या जगुः पार्थिवमुत्तमम्।
निरुद्धमार्गा विप्रास्ते गाने वृत्ते तु दुःखिताः॥ ३१

वहींपर मालव नामक विष्णुपरायण वैश्य प्रसन्नचित्त होकर प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिके लिये दीपमाला अर्पित किया करता था। उस वैश्यकी मालवी नामवाली पतिव्रता भार्या भी श्रीहरिके उस सम्पूर्ण स्थानको सम्यक् प्रकारसे गोमयसे नित्य लीपकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तम गानका श्रवण करती हुई अपने पतिके साथ वहाँ रहती थी॥ १८—२०॥

उसी समय प्रशस्त व्रतवाले पचास श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीहरिका गान सुननेके निमित्त कुशस्थलसे वहाँपर आ गये। गान-विद्याके मूल रहस्यको जाननेवाले वे ब्राह्मण महात्मा कौशिकके कार्योंको सम्पन्न करते हुए और [श्रीहरिका गुणगान] सुनते हुए वहीं रहने लगे॥ २१-२२॥

उस समय उन कौशिकका गान प्रसिद्ध हो गया था, अतः उस प्रसिद्धिको सुनकर राजा कलिङ्गने वहाँ आकर यह वचन कहा—हे कौशिक! आज आप अपने गणोंके साथ मेरे लिये गान कीजिये, जिसे आप सभी लोग तथा कुशस्थलके नागरिक भी सुनें॥ २३-२४॥

उसे सुनकर कौशिकने सान्त्वनाभरी वाणीमें राजासे कहा—हे महाराज! मेरी जिह्वा तथा वाणी भगवान् श्रीहरिके अतिरिक्त किसी अन्यकी यहाँतक कि इन्द्रकी भी स्तुति नहीं करती; अतः यह जिह्वा नहीं बोलेगी॥ २५ $^{1}/_{2}$॥

उनके ऐसा कहनेपर उनके वासिष्ठ, गौतम, हरि, सारस्वत, चित्र, चित्रमाल्य, शिशु आदि जो शिष्यगण थे; उन्होंने भी राजासे वैसा ही कहा, जैसा कौशिकने कहा था। विष्णुपरायण उन श्रोताओंने भी कहा—हे पार्थिव! [हम लोगोंके] ये कान श्रीहरिको छोड़कर किसी दूसरेका गुणगान नहीं सुनते। हम लोग उन्हींका यशोगान सुनते हैं; कोई दूसरी स्तुति नहीं सुनते॥ २६—२८ $^{1}/_{2}$॥

उसे सुनकर राजाने रुष्ट होकर अपने सेवकोंसे कहा—अब तुम लोग गाओ, जिससे ये ब्राह्मण मेरी कीर्ति सुनें। चारों ओरसे गाये जानेवाले मेरे यशको ये कैसे नहीं सुनेंगे?॥ २९-३०॥

तब उनके ऐसा कहनेपर वे भृत्यगण राजाका उत्तम यशोगान करने लगे। गानके आरम्भ होनेपर

काष्ठशङ्कुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि विदधुर्द्विजाः।
कौशिकाद्याश्च तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै॥ ३२
प्रसह्यास्मांस्तु गायेत स्वगानेऽसौ नृपः स्थितः।
इति विप्राः सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः करैः॥ ३३
ततो राजा सुसङ्क्रुद्धः स्वदेशात्तान्यवासयत्।
आदाय सर्वं वित्तं च ततस्ते जग्मुरुत्तराम्॥ ३४
दिशमासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः।
तानागतान् यमो दृष्ट्वा किं कर्तव्यमिति स्म ह॥ ३५
चेष्टितं तत्क्षणे राजन् ब्रह्मा प्राह सुराधिपान्।
कौशिकादीन् द्विजानद्य वासयध्वं यथासुखम्॥ ३६
गानयोगेन ये नित्यं पूजयन्ति जनार्दनम्।
तानानयत भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ॥ ३७
इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनः पुनः।
मालवेति तथा केचित् पद्माक्षेति तथा परे॥ ३८
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तेनैव ते सुराः॥ ३९

कौशिकादींस्ततो दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्रत्युद्गम्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत्॥ ४०
ततः कोलाहलमभूदतिगौरवमुल्बणम्।
ब्रह्मणा चरितं दृष्ट्वा देवानां नृपसत्तम॥ ४१
हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान्।
कौशिकादीन् समादाय मुनीन् देवैः समावृतः॥ ४२
विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेवपरायणः।
तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः॥ ४३

बलपूर्वक अवरुद्ध मार्गवाले वे विप्र बहुत दुःखित हुए और उन्होंने काष्ठकी खूँटियोंसे एक-दूसरेके कानोंको बन्द कर दिया॥ ३१½॥

यह राजा अपने यशके गानमें प्रवृत्त [लिप्त] है और हमको बलपूर्वक गानेको कहेगा। कौशिकादि ब्राह्मणोंने उस राजाकी इस मनोवृत्तिको जानकर अपनी जिह्वाके अग्रभागको अपने हाथोंसे काट लिया॥। ३२-३३॥

तदनन्तर राजाने अत्यन्त कुपित होकर उन्हें अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया। तब अपना सारा धन लेकर वे विप्र चले गये और उत्तर दिशामें पहुँचकर यथासमय स्थूलशरीरके वियोग (मृत्यु)-को प्राप्त हो गये। तब उन्हें आया हुआ देखकर 'अब क्या किया जाय'—यह सोचकर यमराज व्याकुल हो उठे॥ ३४-३५॥

हे राजन्! यमराजकी यह चेष्टा देखकर ब्रह्माजीने देवाधिपोंसे उसी क्षण कहा—'आपलोग कौशिक आदि द्विजोंको अभी सुखमय निवास प्रदान कीजिये।' यदि आप लोग अपना देवत्व चाहते हैं, तो वे विप्र जो [श्रीहरिके] गान तथा चित्तवृत्तिके निरोधके द्वारा भगवान् जनार्दनकी नित्य पूजा करते हैं, उन्हें ले आइये; इससे आप लोगोंका कल्याण होगा॥ ३६-३७॥

[ब्रह्माजीके द्वारा] इस प्रकार कहे गये वे लोकपाल 'हे कौशिक!', कुछ देवता 'हे मालव!' तथा अन्य देवतागण 'हे पद्माक्ष!'—ऐसा बार-बार पुकारते हुए उन विप्रोंके पास पहुँचकर उन्हें साथमें लेकर आकाशमार्गसे शीघ्र ही क्षणभरमें ब्रह्मलोक पहुँच गये॥ ३८-३९॥

तत्पश्चात् कौशिक आदिको देखकर लोकपितामह ब्रह्माने आगे बढ़कर स्वागतके द्वारा समुचितरूपसे उनका अत्यधिक सम्मान किया। हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा [उन विप्रोंके प्रति] किये गये महान् सम्मानको देखकर देवताओंमें परस्पर कोलाहल होने लगा॥ ४०-४१॥

तदनन्तर वासुदेवपरायण भगवान् ब्रह्मा उन श्रेष्ठ देवताओंको ऐसा करनेसे रोककर कौशिक आदि मुनियोंको लेकर देवताओंके साथ शीघ्र ही विष्णुलोक चले गये॥ ४२½॥

ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तैः समाहितैः।
नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः॥ ४४

विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः।
अष्टाशीतिसहस्रैश्च सेव्यमानो महाजनैः॥ ४५

अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः।
भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः॥ ४६

सेव्यमानोऽथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते।
सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे॥ ४७

विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः।
लोककार्ये प्रसक्तानां दत्तदृष्टिश्च माधवः॥ ४८

तस्मिन् कालेऽथ भगवान् कौशिकाद्यैश्च संवृतः।
आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम्॥ ४९

ततो विलोक्य भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः।
कौशिकेत्याह सम्प्रीत्या तान् सर्वांश्च यथाक्रमम्॥ ५०

जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते।
ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन् मयोदितम्॥ ५१

कौशिकस्य इमे विप्राः साध्यसाधनतत्पराः।
हिताय सम्प्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः॥ ५२

मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता ज्ञानतत्त्वार्थकोविदाः।
अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवन्त्विमे॥ ५३

मत्समीपे तथान्यत्र प्रवेशं देहि सर्वदा।
एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः॥ ५४

स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्बन्धो भव मे सदा।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं त्वं समास्व वै॥ ५५

मालवं मालवीं चैवं प्राह दामोदरो हरिः।
मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव॥ ५६

दिव्यरूपधरः श्रीमान् शृण्वन् गानमिहाधिपः।
आस्व नित्यं यथाकामं यावल्लोका भवन्ति वै॥ ५७

वहाँ भगवान् नारायण श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले ज्ञानयोगेश्वर, विष्णुभक्त, एकनिष्ठ, सिद्ध, नारायणके समान विग्रहवाले, दिव्य, चार भुजाएँ धारण करनेवाले, मनोहर, श्रीविष्णुके चिह्नोंसे युक्त, दीप्तिमान् तथा निर्विकार अट्ठासी हजार महापुरुषोंके द्वारा एवं हम लोगों, नारद-सनक आदि मुनियों, अनेकविध निष्पाप प्राणियों तथा दिव्य स्त्रियोंके द्वारा सभी ओरसे सेवित हो रहे थे। वे माधव श्रीहरि मध्य भागमें स्थित हजार द्वारोंवाले, हजार योजन विस्तारवाले, अलौकिक, मणिनिर्मित तथा मनोहर विमानमें स्वच्छ एवं अद्भुत सिंहासनपर विराजमान होकर लोककार्यमें तत्पर लोगोंपर दृष्टि दिये हुए सुशोभित हो रहे थे॥ ४३—४८॥

उसी समय कौशिक आदि मुनियोंसहित भगवान् ब्रह्मा गरुड़ध्वज श्रीहरिके सम्मुख आकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ४९॥

तत्पश्चात् ऐश्वर्यसम्पन्न नारायण भगवान् श्रीहरिने उन सबको देखकर अत्यन्त प्रेमके साथ उन्हें क्रमसे कौशिक आदि [नाम लेकर] पुकारा। इस महान् आश्चर्यके घटित होनेपर वहाँ जयकारकी तीव्र ध्वनि होने लगी॥ ५०½॥

विश्वात्मा विष्णुने ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्मन्! मेरा कथन सुनिये, साध्य-साधनमें तत्पर रहनेवाले ये कुश-स्थल-निवासी विप्र कौशिकका हित करनेके लिये प्रवृत्त हैं। ये ज्ञानके तत्त्वार्थके पण्डित, मेरी कीर्तिके श्रवणमें तत्पर रहनेवाले तथा देवताओंके अनन्य भक्त हैं; ये साध्यदेव हों। इन्हें मेरे समीप तथा अन्यत्र भी सर्वदा प्रवेश दीजिये॥ ५१—५३½॥

ऐसा कहकर प्रभु माधवने कौशिकसे कहा—हे महाप्राज्ञ! आप अपने शिष्योंके साथ सदा मेरे समीप विराजमान रहें। मेरे गणाधिप बनकर अब आप वहीं स्थित रहें, जहाँ मैं रहूँ॥ ५४-५५॥

इसी प्रकार दामोदर श्रीहरिने मालव तथा मालवीसे कहा—'हे मालव! आप मेरे लोकमें अपनी भार्याके साथ दिव्य रूप धारण करके ऐश्वर्यसम्पन्न होकर मेरा यशोगान सुनते हुए राजाके रूपमें प्रतिष्ठित होकर

पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव माधवः।
धनानामीश्वरो भूत्वा यथाकालं हि मां पुनः॥ ५८

आगम्य दृष्ट्वा मां नित्यं कुरु राज्यं यथासुखम्।
एवमुक्त्वा हरिर्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥ ५९

कौशिकस्यास्य गानेन योगनिद्रा च मे गता।
विष्णुस्थले च मां स्तौति शिष्यैरेष समन्ततः॥ ६०

राज्ञा निरस्तः क्रूरेण कलिङ्गेन महीयसा।
स जिह्वाच्छेदनं कृत्वा हरेरन्यं कथञ्चन॥ ६१

न स्तोष्यामीति नियतः प्राप्तोऽसौ मम लोकताम्।
एते च विप्रा नियता मम भक्ता यशस्विनः॥ ६२

श्रोत्रच्छिद्रमथाहत्य शङ्कुभिर्वै परस्परम्।
श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरेः कीर्तिमिति स्म ह॥ ६३

एते विप्राश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च।
मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिमृज्य वै॥ ६४

दीपमालादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम्।
गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम्॥ ६५

तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्म सनातनम्।
पद्माक्षोऽसौ ददौ भोज्यं कौशिकस्य महात्मनः॥ ६६

धनेशत्वमवाप्तोऽसौ मम सान्निध्यमेव च।
एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समाजे लोकपूजितः॥ ६७

तस्मिन् क्षणे समापन्ना मधुराक्षरपेशलैः।
विपञ्चीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः॥ ६८

मन्दं मन्दस्मितादेवी विचित्राभरणान्विता।
गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहा॥ ६९

वृता सहस्रकोटीभिरङ्गनाभिः समन्ततः।
ततो गणाधिपा दृष्ट्वा भुशुण्डीपरिघायुधाः॥ ७०

ब्रह्मादींस्तर्जयन्तस्ते मुनीन् देवान् समन्ततः।
उत्सारयन्तः संहृष्टाधिष्ठिताः पर्वतोपमाः॥ ७१

यथेच्छया निवास कीजिये; जबतक लोक स्थित रहें, तबतक आप यहाँ यथेच्छ रहें'॥ ५६-५७॥

तदनन्तर भगवान् माधवने पद्माक्षसे कहा—आप 'धनद' हो जाइये; धनोंके स्वामी बनकर आप पुनः यथासमय मेरे पास आकर मेरा दर्शन करके सुखपूर्वक सदा राज्य कीजिये॥ ५८१/२॥

ऐसा कहकर श्रीहरि विष्णुने ब्रह्मासे यह कहा—इन कौशिकके गानसे मेरी योगनिद्रा समाप्त हो गयी है। ये अपने शिष्योंके साथ विष्णुस्थलमें सम्यक् रूपसे मेरी स्तुति कर रहे थे। क्रूर तथा अत्यधिक शक्तिशाली राजा कलिङ्गने इन्हें [देशसे] निकाल दिया है। इन्होंने अपनी जिह्वा काटकर 'श्रीहरिके अतिरिक्त किसी अन्यकी स्तुति मैं किसी भी प्रकारसे नहीं करूँगा'—ऐसा निश्चय कर लिया था, अतः ये मेरे लोकको प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार इन संयमी, मेरे भक्त तथा यशस्वी विप्रोंने काष्ठकी खूँटियाँ एक-दूसरेके कानोंमें ठोंककर यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि हमलोग श्रीहरिकी कीर्तिको छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं सुनेंगे। अतएव इन 'विप्रों' ने भी देवत्व तथा मेरा सान्निध्य प्राप्त किया है, ये मालव भी अपनी भार्याके साथमें मेरे मन्दिरको भलीभाँति स्वच्छ करके दीप, माला आदि [उपचारों]-से नित्य मेरी अर्चना करके सावधान होकर मेरी कीर्ति तथा चरितसे युक्त गानका निरन्तर श्रवण किया करते थे; इसीलिये हे ब्रह्मन्! इन्होंने मेरा सनातन लोक प्राप्त किया है। इन पद्माक्षने महात्मा कौशिकको भोजन प्रदान किया था, इसीलिये इन्हें धनेशत्व तथा मेरे सान्निध्यकी प्राप्ति हुई है॥ ५९—६६१/२॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि वहाँ समाजमें लोकपूजित हुए। उसी क्षण मधुर स्वरोंके विशेषज्ञ, वीणाके गुणतत्त्वोंके ज्ञाता तथा वाद्यविद्याके विशारद मनीषियोंके साथ विचित्र आभूषणोंसे मण्डित विष्णुभार्या लक्ष्मीजी मन्द-मन्द मुसकान करती तथा गाती हुई वहाँ आयीं; वे हजारों, करोड़ों अंगनाओंसे घिरी हुई थीं। तब उन्हें देखकर भुशुण्डी तथा परिघ नामक आयुध धारण किये सभी गणाधिप मुनियों, ब्रह्मा आदि देवताओंको

सर्वे वयं हि निर्याताः सार्धं वै ब्रह्मणा सुरैः।
तस्मिन् क्षणे समाहूतस्तुम्बरुर्मुनिसत्तमः॥ ७२
प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैव हि।
तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छासमन्वितम्॥ ७३
जगौ कलपदं हृष्टो विपञ्चीं चाभ्यवादयत्।
नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः ॥ ७४
दिव्यमाल्यैस्तथा शुभ्रैः पूजितो मुनिसत्तमः।
निर्गतस्तुम्बरुर्हृष्टो अन्ये च ऋषयः सुराः॥ ७५
दृष्ट्वा सम्पूजितं यान्तं यथायोगमरिन्दम।
नारदोऽथ मुनिर्दृष्ट्वा तुम्बरोः सत्क्रियां हरेः॥ ७६
शोकाविष्टेन मनसा सन्तप्तहृदयेक्षणः।
चिन्तामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलात्मकः॥ ७७
केनाहं हि हरेर्यास्ये योगं देवीसमीपतः।
अहो तुम्बरुणा प्राप्तं धिङ्मां मूढं विचेतसम्॥ ७८
योऽहं हरेः सन्निकाशं भूतैर्निर्यातितः कथम्।
जीवन् यास्यामि कुत्राहमहो तुम्बरुणा कृतम्॥ ७९
इति सञ्चिन्तयन् विप्रस्तप आस्थितवान् मुनिः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु निरुच्छ्वाससमन्वितः॥ ८०
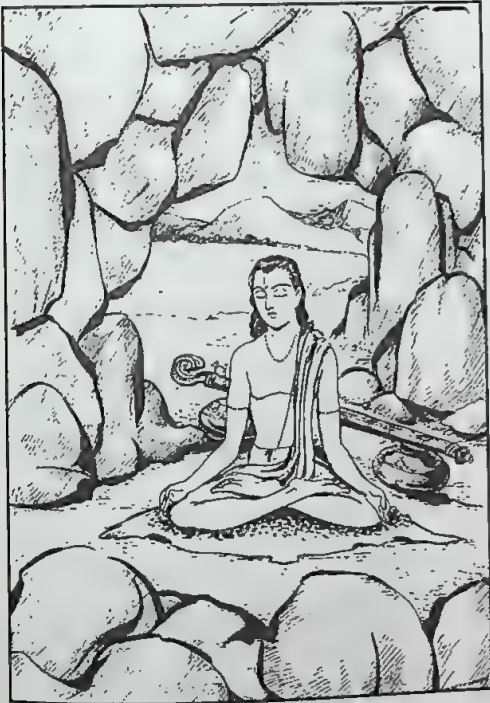
ध्यायन् विष्णुमथाध्यास्ते तुम्बरोः सत्क्रियां स्मरन्।
रोदमानो मुहुर्विद्वान् धिङ्मामिति च चिन्तयन्॥ ८१
तत्र यत्कृतवान् विष्णुस्तच्छृणुष्व नराधिप॥ ८२

सभी ओरसे फटकारते हुए तथा वहाँसे हटाते हुए प्रसन्नचित्त होकर वहाँ स्थित हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंके साथ हमसब वहाँसे निकल गये॥ ६७—७१½॥

उसी समय मुनिश्रेष्ठ तुम्बुरु बुलाये गये और उन्होंने भगवान् विष्णु तथा देवी लक्ष्मीके समीप प्रवेश किया। वहाँ आसीन होकर वे प्रसन्नतापूर्वक नानाविध मूर्च्छनाओंसे युक्त मधुर पदोंका सम्यक् प्रकारसे गान करने लगे तथा वीणा बजाने लगे। तत्पश्चात् अनेक प्रकारके रत्नजटित दिव्य तथा श्रेष्ठ आभूषणों एवं दिव्य तथा मनोहर हारोंसे पूजित होकर मुनिश्रेष्ठ तुम्बुरु प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे निकल आये। हे शत्रुदमन! उन्हें यथोचित रूपसे पूजित होते हुए देखकर अन्य ऋषि एवं देवतागण उनकी प्रशंसा करने लगे॥ ७२—७५½॥

तब भगवान् श्रीहरिके द्वारा गन्धर्व तुम्बुरुके प्रति किये गये सत्कारको देखकर सन्तप्त हृदय तथा नेत्रोंवाले एवं शोक तथा मूर्छासे व्याकुल चित्तवाले नारदमुनि चिन्तित हो उठे। वे शोकाविष्ट मनसे सोचने लगे कि मैं किस प्रकारसे श्रीहरिका सान्निध्य तथा देवी लक्ष्मीका सामीप्य प्राप्त करूँगा; अहो, तुम्बुरुने इसे प्राप्त कर लिया है। मुझ मूर्ख तथा विवेकहीनको धिक्कार है! मैं गणाधिपोंके द्वारा श्रीहरिके पाससे क्यों निकाल दिया गया; अब मैं जीवन धारण करते हुए कहाँ जाऊँगा? अहो, तुम्बुरुने ही ऐसा कर डाला है!॥ ७६—७९॥

ऐसा सोचते हुए विप्र नारद तपमें स्थित हो गये। विद्वान् मुनि नारद भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए, तुम्बुरुके सत्कारका स्मरण करते हुए, बार-बार विलाप करते हुए और 'मुझे धिक्कार है'—ऐसा सोचते हुए [प्राणायामके द्वारा] श्वास रोककर एक हजार दिव्य वर्षोंतक [तपस्यामें] बैठे रहे॥ ८०-८१॥

हे राजन्! इसके बाद भगवान् विष्णुने जो किया, उसे आप सुनें॥ ८२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे कौशिकवृत्तकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'कौशिकवृत्तकथन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवद्गुणगानका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

ततो नारायणो देवस्तस्मै सर्वं प्रदाय वै।
कालयोगेन विश्वात्मा समं चक्रेऽथ तुम्बरोः॥ १

नारदं मुनिशार्दूलमेवं वृत्तमभूत्पुरा।
नारायणस्य गीतानां गानं श्रेष्ठं पुनः पुनः॥ २

गानेनाराधितो विष्णुः सत्कीर्तिं ज्ञानवर्चसी।
ददाति तुष्टिं स्थानं च यथाऽसौ कौशिकस्य वै॥ ३

पद्माक्षप्रभृतीनां च संसिद्धिं प्रददौ हरिः।
तस्मात्त्वया महाराज विष्णुक्षेत्रे विशेषतः॥ ४

अर्चनं गाननृत्याद्यं वाद्योत्सवसमन्वितम्।
कर्तव्यं विष्णुभक्तैर्हि पुरुषैरनिशं नृप॥ ५

श्रोतव्यं च सदा नित्यं श्रोतव्योऽसौ हरिस्तथा।
विष्णुक्षेत्रे तु यो विद्वान् कारयेद्भक्तिसंयुतः॥ ६

गाननृत्यादिकं चैव विष्ण्वाख्यानं कथां तथा।
जातिस्मृतिं च मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम्॥ ७

प्राप्नोति विष्णुसायुज्यं सत्यमेतन्नृपाधिप।
एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ८

किं वदामि च ते भूयो वद धर्मभृतां वर॥ ९

मार्कण्डेयजी बोले—[हे राजन्!] तदनन्तर परमात्मा नारायणने कालयोगसे उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान करके उन मुनिश्रेष्ठ नारदको तुम्बुरुके समान कर दिया। पूर्वकालमें ऐसी घटना हुई थी। नारायणके गीतोंका श्रेष्ठ गान बार-बार करना चाहिये। गानसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि सत्कीर्ति, ज्ञान, ओज, तुष्टि तथा अपना लोक प्रदान करते हैं, जैसे उन्होंने कौशिक, पद्माक्ष आदिको पूर्णरूपसे सिद्धि प्रदान की थी। अतः हे महाराज! हे नृप! आपको विशेष रूपसे विष्णुक्षेत्रमें विष्णुभक्त पुरुषोंके साथ गान, नृत्य आदि तथा वाद्य-उत्सवसे युक्त भगवान्‌का नित्य अर्चन करना चाहिये और उनकी कथा सुननी चाहिये; वे भगवान् श्रीहरि ही सर्वथा श्रवणके योग्य हैं॥ १—५१/२॥

हे राजन्! जो विद्वान् भक्तिपरायण होकर विष्णुक्षेत्रमें गान, नृत्य और विष्णुके आख्यान तथा कथाको सम्पादित कराता है, उसे पूर्वजन्मकी स्मृति, वैराग्य-भावना, मेधा, वैराग्यके प्रति इच्छा और विष्णुसायुज्यकी प्राप्ति हो जाती है; यह सत्य है॥ ६-७१/२॥

हे राजन्! मैंने यह सब आपसे कह दिया, जिसे आपने मुझसे पूछा था। हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! मैं अब आपको और क्या बताऊँ, पूछिये॥ ८-९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विष्णुमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'विष्णुमाहात्म्य' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीनारदजीको गानबन्धु, जाम्बवती आदिसे गानविद्याकी प्राप्ति

अम्बरीष उवाच

मार्कण्डेय महाप्राज्ञ केन योगेन लब्धवान्।
गानविद्यां महाभाग नारदो भगवान् मुनिः॥ १

तुम्बरोश्च समानत्वं कस्मिन् काल उपेयिवान्।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ २

अम्बरीषजी बोले—हे मार्कण्डेय! हे महाप्राज्ञ! हे महाभाग! भगवान् नारदमुनिने किस योगके द्वारा गानविद्या प्राप्त की और उन्होंने किस समय तुम्बुरुकी समानता प्राप्त की, यह सब मुझे बताइये; हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं॥ १-२॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतो मयायमर्थो वै नारदाद्देवदर्शनात्।
स्वयमाह महातेजा नारदोऽसौ महामतिः॥ ३

सन्तप्यमानो भगवान् दिव्यं वर्षसहस्रकम्।
निरुच्छ्वासेन संयुक्तस्तुम्बरोर्गौरवं स्मरन्॥ ४

तताप च महाघोरं तपोराशिस्तपः परम्।
अथान्तरिक्षे शुश्राव नारदोऽसौ महामुनिः॥ ५

वाणीं दिव्यां महाघोषामद्भुतामशरीरिणीम्।
किमर्थं मुनिशार्दूल तपस्तपसि दुश्चरम्॥ ६

उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने रता मतिः।
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुरिति स्मृतः॥ ७

गच्छ शीघ्रं च पश्यैनं गानवित्त्वं भविष्यसि।
इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः॥ ८

मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुं जगाम वै।
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः॥ ९

समासीनास्तु परितो गानबन्धुं ततस्ततः।
गानविद्यां समापन्नः शिक्षितास्तेन पक्षिणा॥ १०

स्निग्धकण्ठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः।
ततो नारदमालोक्य गानबन्धुरुवाच ह॥ ११

प्रणिपत्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत्।
किमर्थं भगवानत्र चागतोऽसि महामते॥ १२

किं कार्यं हि मया ब्रह्मन् ब्रूहि किं करवाणि ते।

नारद उवाच

उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम्॥ १३

मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि पुरा भूतं महाद्भुतम्।
अतीते हि युगे विद्वन्नारायणसमीपगम्॥ १४

मां विनिर्धूय संहृष्टः समाहूय च तुम्बरुम्।
लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोद्गानमुत्तमम्॥ १५

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे निरस्ताः स्थानतोऽच्युताः।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम्॥ १६

मार्कण्डेयजी बोले—मैंने दिव्य दर्शनवाले नारदजीसे यह रहस्य सुना था। उन महातेजस्वी तथा महामति नारदने मुझे स्वयं बताया था॥ ३॥

तपोनिधि भगवान् नारदने कष्ट सहते हुए प्राणायामसे श्वास रोककर तुम्बुरुगन्धर्वके गौरवका स्मरण करते हुए दिव्य हजार वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्या की थी। तत्पश्चात् उन महामुनि नारदने अन्तरिक्षमें तीव्र ध्वनिवाली यह अद्भुत दिव्य आकाशवाणी सुनी—'हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह अत्यन्त कठिन तप किसलिये कर रहे हैं? यदि आपकी मति गानमें संलग्न है, तो आप मानसोत्तरपर्वतपर जाकर वहाँ उलूकको देखिये; उसे गानबन्धु कहा गया है। शीघ्र जाइये और इसका दर्शन कीजिये; इससे आप गानवेत्ता हो जायेंगे'॥ ४—७$^1/_2$॥

[आकाशवाणीके द्वारा] ऐसा कहे गये वे वाणीवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजी आश्चर्यचकित होकर मानसोत्तरपर्वतपर गानबन्धु उलूकके पास गये। गानबन्धुके चारों ओर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अप्सराओंके समूह यत्र-तत्र बैठे हुए थे। वह पक्षी (उलूक) वहाँ प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए मधुर कण्ठस्वरवाले गन्धर्व आदिको गानविद्याकी शिक्षा दे रहा था॥ ८—१०$^1/_2$॥

तदनन्तर नारदजीको देखकर उन्हें प्रणाम करके गानबन्धुने स्वागतके द्वारा उचितरूपसे उनका सत्कार किया और उनसे कहा—'हे महामते! आप भगवन् यहाँ किसलिये आये हैं? हे ब्रह्मन्! मुझसे आपका कौन-सा कार्य है; आप बतायें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'॥ ११-१२$^1/_2$॥

नारदजी बोले—हे परम बुद्धिसम्पन्न उलूकेन्द्र! सुनिये; मैं अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त यथार्थ रूपसे बताऊँगा। पूर्वकालमें एक अत्यन्त विलक्षण घटना घटी थी। हे विद्वन्! मैं बीते युगमें नारायणके पास गया हुआ था; किंतु वे विष्णु मेरा तिरस्कार करके तुम्बुरुको प्रसन्नतापूर्वक बुलाकर भगवती लक्ष्मीके साथ उत्तम गान सुनने लगे। ब्रह्मा आदि सभी देवता उस स्थानसे निष्कासित कर दिये गये, किंतु कौशिक आदिको नहीं निकाला गया

एवमाराध्य सम्प्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम्।
तेनाहमतिदु:खार्तस्तपस्तप्तुमिहागतः ॥ १७

यद्दत्तं यद्धुतं चैव यथा वा श्रुतमेव च।
यदधीतं मया सर्वं कलां नार्हति षोडशीम्॥ १८

विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गानयोगस्य वै ततः।
सञ्चिन्त्याहं तपो घोरं तदर्थं तप्तवान् द्विज॥ १९

दिव्यवर्षसहस्रं वै ततो ह्यशृणुवं पुनः।
वाणीमाकाशसम्भूतां त्वामुद्दिश्य विहङ्गम॥ २०

उलूकं गच्छ देवर्षे गानबन्धुं मतिर्यदि।
गाने चेद्वर्तते ब्रह्मन् तत्र त्वं वेत्स्यसे चिरात्॥ २१

इत्यहं प्रेरितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः।
किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयाव्यय॥ २२

और वे सुखपूर्वक वहाँ बैठकर गानयोगसे श्रीहरिकी आराधना करके गाणपत्यको प्राप्त हुए। इसी कारणसे मैं दु:खसे पीड़ित होकर तप करनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ १३—१७॥

मैंने जो कुछ दान किया है, यज्ञ किया है, कथा-श्रवण किया है और [सद्ग्रन्थोंका] अध्ययन किया है—वह सब भगवान् विष्णुके माहात्म्ययुक्त गानयोगकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं है। हे द्विज! यह सोचकर मैंने उसके लिये एक हजार दिव्य वर्षोंतक कठोर तपस्या की। हे विहंगम! तत्पश्चात् आपको उद्देश्य करके उत्पन्न हुई एक आकाशवाणी मैंने सुनी—'हे देवर्षे! हे ब्रह्मन्! यदि गानमें तुम्हारा अनुराग है तो गानबन्धु उलूकके पास जाओ; वहाँ शीघ्र ही तुम इसका ज्ञान प्राप्त कर लोगे।' उसीसे प्रेरित होकर मैं आपके पास यहाँ आया हूँ। हे अव्यय! मैं क्या करूँ? मैं आपका शिष्य हूँ, अतः मेरी रक्षा कीजिये॥ १८—२२॥

गानबन्धुरुवाच

शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते।
अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम्॥ २३

गानबन्धु बोला—हे नारद! हे महामते! पूर्वकालमें मेरे साथ जो घटित हुआ है, उसे आप सुनें; यह अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ, सभी पापोंको दूर करनेवाला तथा मंगलकारी है॥ २३॥

भुवनेश इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा।
अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेयायुतेन च॥ २४

गवां कोट्यर्बुदे चैव सुवर्णस्य तथैव च।
वाससां रथहस्तीनां कन्याश्वानां तथैव च॥ २५

दत्त्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं प्रतिपालयन्।
निवारयन् स्वके राज्ये गेययोगेन केशवम्॥ २६

अन्यं वा गेययोगेन गायन् यदि स मे भवेत्।
वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वेदैरीड्यः परः पुमान्॥ २७

गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायन्तु नित्यशः।
सूतमागधसङ्घाश्च गीतं ते कारयन्तु वै॥ २८

इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत्।
तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति श्रुतः॥ २९

प्राचीनकालमें भुवनेश—इस नामसे प्रसिद्ध एक धर्मपरायण राजा हुआ। हजार अश्वमेधयज्ञ तथा दस हजार वाजपेययज्ञके द्वारा ब्राह्मणोंको करोड़ों गायों, सुवर्ण, वस्त्र, रथों, हाथियों, कन्याओं तथा अश्वोंका दान देकर उस राजाने पृथ्वीका पालन करते हुए अपने राज्यमें गानयोगके द्वारा भगवान् श्रीहरिकी उपासना करनेसे लोगोंको रोक दिया था। 'यदि कोई गानयोगसे भगवान्‌की उपासना करेगा तो वह निश्चितरूपसे मेरा वध्य होगा, उस परम पुरुषकी स्तुति केवल वेदमन्त्रोंसे ही की जानी चाहिये। गानयोगके द्वारा केवल स्त्रियाँ ही सर्वत्र श्रीहरिका नित्य गान करें और जो सूत तथा मागध लोग हैं, वे गीत करायें'—ऐसी आज्ञा देकर महान् तेजस्वी राजा भुवनेश राज्य-शासन करने लगा॥ २४—२८ $^{1}/_{2}$॥

ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वन्द्वविवर्जितः।
नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमां च हरेः शुभाम्॥ ३०

अभ्यर्च्य च यथान्यायं घृतदध्युत्तरं बहु।
मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य पूपकम्॥ ३१

प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम्॥ ३२

अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गतेनान्तरात्मना।
ततो राज्ञः समादेशाच्चारास्तत्र समागताः॥ ३३

तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समन्ततः।
ब्राह्मणं तं गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङ्न्यवेदयन्॥ ३४

ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मतिः।
राज्यान्निर्यातयामास हृत्वा सर्वं धनादिकम्॥ ३५

प्रतिमां च हरेश्चैव म्लेच्छा हृत्वा ययुः पुनः।
ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान्॥ ३६

स राजा सर्वलोकेषु पूज्यमानः समन्ततः।
क्षुधार्तश्च तथा खिन्नो यममाह सुदुःखितः॥ ३७

क्षुत्तृट् च वर्तते देव स्वर्गतस्यापि मे सदा।
मया पापं कृतं किं वा किं करिष्यामि वै यम॥ ३८

यम उवाच

त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानमोहतः।
हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम्॥ ३९

हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु।
तेन पापेन सम्प्राप्तः क्षुद्रोगस्त्वां सदा नृप॥ ४०

दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप।
गीतवाद्यसमोपेतं गायमानं महामतिम्॥ ४१

हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम्।
उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ॥ ४२

उस राजाके पुरके निकट हरिमित्र—इस नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहता था; वह विष्णुभक्त तथा सभी प्रकारके [राग-द्वेष आदि] द्वन्द्वोंसे रहित था। नदीके तटपर आकर सम्यक् प्रकारसे श्रीहरिकी मनोहर प्रतिमाका अर्चन करके घृत, दधि, अनेकविध मिष्टान्न, खीर तथा पूआका नैवेद्य अर्पणकर उन्हें दण्डवत् प्रणामकर एकाग्रचित्त होकर वह ईश्वरमें आसक्त मनवाला होकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक ताल-स्वर-लयसे युक्त हरि-गान किया करता था॥ २९—३२ $^{1}/_{2}$ ॥

तदनन्तर राजाके आदेशसे उसके अनुचर वहाँ आ गये। उसके पूजन आदिका समस्त सामान चारों ओर फेंककर उस ब्राह्मणको पकड़कर उन्होंने सम्यक् प्रकारसे उसे राजाको सौंप दिया॥ ३३-३४॥

तदनन्तर अत्यन्त दुष्टबुद्धिवाले राजाने उस द्विजश्रेष्ठको डाँट-फटकारकर और उसका धन आदि सब कुछ छीनकर उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया। [ब्राह्मण हरिमित्रके द्वारा पूजित वहाँपर गिरी हुई] हरि-प्रतिमाका हरण करके उसे लेकर म्लेच्छलोग चले गये॥ ३५ $^{1}/_{2}$ ॥

तब सभी लोकोंमें पूजित होता हुआ वह राजा बहुत समय बाद मृत्युको प्राप्त हुआ। [यमलोक पहुँचकर] क्षुधासे पीड़ित तथा खिन्नमनस्क राजाने अत्यन्त दुःखी होकर यमराजसे कहा—'हे देव! मुझ स्वर्गप्राप्तको भी सदा भूख तथा प्यास सता रही है; मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है? हे यम! मैं क्या करूँ?'॥ ३६—३८॥

यम बोले—तुमने अज्ञानमोहित होनेके कारण वासुदेवमें अनुरक्त रहनेवाले हरिमित्रके प्रति पूर्वमें बहुत बड़ा पाप किया था। हे राजन्! भगवान् वासुदेवकी अर्चना आदिके लिये हरिमित्रके प्रति तुमने जो पाप किया है, उसी पापके कारण तुम्हें निरन्तर भूखका रोग संतप्त कर रहा है। तुम्हारा सारा दान, यज्ञ आदि विनष्ट हो गया है। हे नराधिप! गीत-वाद्यसे युक्त होकर हरि-गान करनेवाले महामति हरिमित्रको बुलाकर तुमने उसका धन छीन लिया, साथ ही तुम्हारे अनुचरोंने

तव भृत्यैस्तदा लुप्तं पापं चक्रुस्त्वदाज्ञया।
हरेः कीर्तिं विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम॥ ४३

न गेययोगे गातव्यं तस्मात्पापं कृतं त्वया।
नष्टस्ते सर्वलोकोऽद्य गच्छ पर्वतकोटरम्॥ ४४

पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं तं खादन्नित्यं निकृत्य वै।
तस्मिन् कोणे त्विमं देहं खादन्नित्यं क्षुधान्वितः॥ ४५

महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वन्तरं भवेत्।
मन्वन्तरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं च भविष्यसि॥ ४६

ततः कालेन सम्प्राप्य मानुष्यमवगच्छसि।

गानबन्धुरुवाच

एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ४७

हरिमित्रो विमानेन स्तूयमानो गणाधिपैः।
विष्णुलोकं गतः श्रीमान् सङ्गृह्य गणबान्धवान्॥ ४८

भुवनेशो नृपो ह्यस्मिन् कोटरे पर्वतस्य वै।
खादमानः शवं नित्यमास्ते क्षुत्तृट्समन्वितः॥ ४९

अद्राक्षं तं नृपं तत्र सर्वमेतन्ममोक्तवान्।
समालोक्याहमाज्ञाय हरिमित्रं समेयिवान्॥ ५०

विमानेनार्कवर्णेन गच्छन्तममरैर्वृतम्।
इन्द्रद्युम्नप्रसादेन प्राप्तं मे ह्यायुरुत्तमम्॥ ५१

तेनाहं हरिमित्रं वै दृष्टवानस्मि सुव्रत।
तदैश्वर्यप्रभावेन मनो मे समुपागतम्॥ ५२

गानविद्यां प्रति तदा किन्नरैः समुपाविशम्।
षष्टिं वर्षसहस्राणां गानयोगेन मे मुने॥ ५३

जिह्वा प्रसादिता स्पष्टा ततो गानमशिक्षयम्।
ततस्तु द्विगुणेनैव कालेनाभूदियं मम॥ ५४

गानयोगसमायुक्ता गता मन्वन्तरा दश।
गानाचार्योऽभवं तत्र गन्धर्वाद्याः समागताः॥ ५५

वासुदेव-प्रतिमाके पासमें विद्यमान समस्त उपहार आदिको नष्ट कर दिया; इस प्रकार तुम्हारी आज्ञासे ही उन्होंने पाप किया। हे नृपश्रेष्ठ! [तुमने आज्ञा दे रखी थी कि] 'कोई भी ब्राह्मण श्रीहरिके कीर्तिगानके बिना ही उनकी उपासना करे और गानयोगके द्वारा उनका यशोगान न करे'—अतः तुमने पाप किया है। इससे तुम्हारा सम्पूर्ण लोक नष्ट हो गया है; अतः अब तुम पर्वतके कोटरमें जाओ और वहाँ पहलेसे पड़े हुए अपने शवको नोच-नोचकर नित्य खाते हुए निवास करो। क्षुधासे व्याकुल होकर उस पर्वत-कोटरमें नित्य अपने शवको खाते हुए तुम जबतक मन्वन्तर रहेगा, तबतक उसी घोर नरकमें पड़े रहो। तदनन्तर मन्वन्तर बीत जानेपर तुम पृथ्वीपर जन्म लोगे। [विभिन्न योनियोंमें जन्म लेते हुए पुनः] बहुत समयके बाद मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर तुम ज्ञान प्राप्त करोगे॥ ३९—४६$^{1}/_{2}$॥

गानबन्धु बोला—ऐसा कहकर विद्वान् यम वहीं अन्तर्धान हो गये और ऐश्वर्यशाली हरिमित्र अपने बान्धवगणोंको साथ लेकर गणाधिपोंसे स्तुत होता हुआ विमानसे विष्णुलोक चला गया॥ ४७-४८॥

राजा भुवनेश भूख-प्याससे युक्त होकर अपने शवको नित्य खाता हुआ इसी पर्वतके कोटरमें पड़ा रहता था॥ ४९॥

मैंने उस राजाको वहाँ देखा और उसने ही मुझे यह सब बताया था। यह देखकर तथा सब कुछ जानकर मैं सूर्यके समान प्रभावाले विमानसे जाते हुए तथा देवताओंसे घिरे हुए हरिमित्रके पास गया। इन्द्रद्युम्नके अनुग्रहसे मुझे उत्तम आयु प्राप्त हुई है। हे सुव्रत! उसीके प्रभावसे मैंने हरिमित्रका दर्शन किया है॥ ५०-५१$^{1}/_{2}$॥

उन्हींके ऐश्वर्यके प्रभावसे गानविद्याके प्रति मेरा मन आकृष्ट हुआ। हे मुने! साठ हजार वर्षोंतक मैं किन्नरोंके साथ गानका अभ्यास करता रहा, तब गानयोगसे मेरी जिह्वा पवित्र होकर स्पष्ट हो गयी, तत्पश्चात् मैं गानकी शिक्षा लेने लगा और उससे भी दुगुने समयमें मेरी यह जिह्वा गानयोगसे परिपूर्ण हो गयी। इस प्रकार [गानका अभ्यास करते हुए] दस मन्वन्तर बीत गये; अन्तमें मैं गानका

एते किन्नरसङ्घा वै मामाचार्यमुपागताः।
तपसा नैव शक्या वै गानविद्या तपोधन॥ ५६

तस्माच्छ्रुतेन संयुक्तो मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि।
एवमुक्तो मुनिस्तं वै प्रणिपत्य जगौ तदा॥ ५७

तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य तु।

मार्कण्डेय उवाच

उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः॥ ५८

शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षयत्।
गानबन्धुस्तदाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना॥ ५९

उलूक उवाच

स्त्रीसङ्गमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसङ्गमे।
व्यवहारे तथाहारे त्वर्थानां च समागमे॥ ६०

आये व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्।
न कुञ्चितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः॥ ६१

हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि।
निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं हि कथञ्चन॥ ६२

न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथञ्चन।
स्वाङ्गं निरीक्षमाणेन परं सम्प्रेक्षता तथा॥ ६३

सङ्घट्टे च तथोत्थाने कटिस्थानं न शस्यते।
हासो रोषस्तथा कम्पस्तथान्यत्र स्मृतिः पुनः॥ ६४

नैतानि शस्तरूपाणि गानयोगे महामते।
नैकहस्तेन शक्यं स्यात्तालसङ्घट्टनं मुने॥ ६५

क्षुधार्तेन भयार्तेन तृष्णार्तेन तथैव च।
गानयोगो न कर्तव्यो नान्धकारे कथञ्चन॥ ६६

एवमादीनि चान्यानि न कर्तव्यानि गायता।

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तः स भगवान् स्तेनोक्तैर्विधिलक्षणैः।
अशिक्षयत्तथा गीतं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ ६७

ततः समस्तसम्पन्नो गीतप्रस्तारकादिषु।
विपञ्च्यादिषु सम्पन्नः सर्वस्वरविभागवित्॥ ६८

आचार्य हो गया। वहाँपर पहले गन्धर्व आदि और बादमें ये किन्नरोंके समुदाय मुझे आचार्य मानकर [मेरे पास] आने लगे॥ ५२—५५$^{1}/_{2}$॥

हे तपोधन! गानविद्या तपस्यासे कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती, अतः श्रवण-अभ्याससे युक्त होकर आप मुझसे गानविद्या प्राप्त करें। हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् वासुदेवको नमस्कार करके उस गानको सुनिये। तब ऐसा कहे गये वे मुनि नारद उसे प्रणाम करके गानाभ्यास करने लगे॥ ५६-५७$^{1}/_{2}$॥

मार्कण्डेयजी बोले—उलूकके द्वारा ऐसा कहे गये मुनिश्रेष्ठ नारद शिक्षाक्रमसे युक्त होकर उससे गान सीखने लगे। उस समय गानबन्धु उलूकने [नारदजीसे] कहा—अब आप लज्जासे रहित हो जाइये॥ ५८-५९॥

उलूक बोला—स्त्री-संसर्गमें, गीतमें, द्यूतमें, व्याख्यान देनेमें, व्यवहारमें, आहारमें, अर्थोपार्जनमें तथा आय-व्ययमें मनुष्यको सदा लज्जाका त्याग कर देना चाहिये। शरीरके अंगोंको सिकोड़कर, बहुत आवरण आदिसे शरीरको ढककर, हाथ हिला-हिलाकर, मुँहको विकृत रूपसे खोलकर और जिह्वाको निकालकर कभी नहीं गाना चाहिये। हाथ ऊपर उठाकर, ऊपरकी ओर दृष्टि करके, अपने अंगोंको देखते हुए तथा दूसरेका अवलोकन करते हुए कभी नहीं गाना चाहिये। ताल देनेके लिये और उठनेके लिये कटिका आश्रय प्रशस्य नहीं होता है। हे महामते! गानयोगमें हास, रोष, कम्प तथा अनवधानता—ये सभी रूप प्रशस्त नहीं माने जाते। हे मुने! एक हाथसे ताल दे पाना सम्भव नहीं हो सकता है। भूखसे पीड़ित, भयभीत तथा तृष्णासे व्याकुल मनुष्यको गानयोग नहीं करना चाहिये; अन्धकारमें कभी नहीं गाना चाहिये। गानेवालेको इसी प्रकारके अन्य कार्य भी नहीं करने चाहिये॥ ६०—६६$^{1}/_{2}$॥

मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार उसके द्वारा कहे गये भगवान् नारदने बताये गये गान-लक्षणोंके द्वारा हजार दिव्य वर्षोंतक गीतकी शिक्षा प्राप्त की। इससे वे गीत-प्रस्तार आदिमें पूर्ण पारंगत हो गये और वीणावादन आदिमें ज्ञानसम्पन्न होकर सभी स्वरभेदोंके ज्ञाता बन

अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान् मुनिसत्तमः॥ ६९

ततो गन्धर्वसङ्घाश्च किन्नराणां तथैव च।
मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्ता भवन्ति ते॥ ७०

गानबन्धुं मुनिः प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम्।
त्वां समासाद्य सम्पन्नस्त्वं हि गीतविशारदः॥ ७१

ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमाचार्य करोमि ते।

गानबन्धुरुवाच

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश॥ ७२

ततस्त्रैलोक्यसम्प्लावो भविष्यति महामुने।
तावन्मे त्वायुषो भावस्तावन्मे परमं शुभम्॥ ७३

मनसाध्याहितं मे स्याद्दक्षिणा मुनिसत्तम।

नारद उवाच

अतीतकल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि॥ ७४

स्वस्ति तेऽस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद माम्।

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्त्वा जगामाथ नारदोऽपि जनार्दनम्॥ ७५

गये, मुनिश्रेष्ठ नारदने स्वरोंके छियालीस हजार एक सौ भेद-प्रभेदोंको जान लिया। तभीसे गन्धर्वों तथा किन्नरोंके समूह मुनि नारदसे मिलकर अत्यन्त प्रेमसे भर जाते थे॥ ६७—७०॥

मुनिने गानबन्धु उलूकसे कहा—आपके सान्निध्यमें आकर आपसे श्रेष्ठ गान प्राप्त करके मैं गानविद्यामें निष्णात हो गया हूँ; आप निश्चय ही गीतविशारद हैं। हे ध्वांक्षशत्रो! हे महाप्राज्ञ! हे आचार्य! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?॥ ७११/२॥

गानबन्धु बोला—हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु व्यतीत होते हैं। तत्पश्चात् तीनों लोक जलाप्लावित हो जाते हैं। हे महामुने! ब्रह्माके दिनके समाप्तिपर्यन्त मेरी आयु हो तथा मेरा परम कल्याण हो; आपके द्वारा मनसे ऐसी कामना की जाय—हे मुनिश्रेष्ठ! यही मेरी दक्षिणा है॥ ७२-७३१/२॥

नारदजी बोले—कल्पके व्यतीत होनेपर आप गरुड़ होंगे। हे महाप्राज्ञ! आपका कल्याण हो, आप मुझपर प्रसन्न हों; अब मैं प्रस्थान करूँगा॥ ७४१/२॥

मार्कण्डेयजी बोले—ऐसा कहकर नारदजी भी

श्वेतद्वीपमें विराजमान जनार्दन वासुदेवके पास चले गये

श्वेतद्वीपे हृषीकेशं गापयामास गीतकान्।
तत्र श्रुत्वा तु भगवान्नारदं प्राह माधवः॥ ७६
तुम्बरोर्न विशिष्टोऽसि गीतैरद्यापि नारद।
यदा विशिष्टो भविता तं कालं प्रवदाम्यहम्॥ ७७
गानबन्धुं समासाद्य गानार्थज्ञो भवानसि।
मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे॥ ७८
द्वापरान्ते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः।
देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णो नाम्ना महामते॥ ७९
तदानीं मां समासाद्य स्मारयेथा यथातथम्।
तत्र त्वां गीतसम्पन्नं करिष्यामि महाव्रतम्॥ ८०
तुम्बरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम्।
तावत्कालं यथायोगं देवगन्धर्वयोनिषु॥ ८१
शिक्षयस्व यथान्यायमित्युक्त्वान्तरधीयत।
ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादनतत्परः॥ ८२
देवर्षिर्देवसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः।
तपसां निधिरत्यन्तं वासुदेवपरायणः॥ ८३
स्कन्धे विपञ्चीमासाद्य सर्वलोकांश्चचार सः।
वारुणं याम्यमाग्नेयमैन्द्रं कौबेरमेव च॥ ८४
वायव्यं च तथेशानं संसदं प्राप्य धर्मवित्।
गायमानो हरिं सम्यग्वीणावादविचक्षणः॥ ८५
गन्धर्वाप्सरसां सङ्घैः पूज्यमानस्ततस्ततः।
ब्रह्मलोकं समासाद्य कस्मिंश्चित्कालपर्यये॥ ८६
हाहाहूहूश्च गन्धर्वौ गीतवाद्यविशारदौ।
ब्रह्मणो गायकौ दिव्यौ नित्यौ गन्धर्वसत्तमौ॥ ८७
तत्र ताभ्यां समासाद्य गायमानो हरिं प्रभुम्।
ब्रह्मणा च महातेजाः पूजितो मुनिसत्तमः॥ ८८
तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम्।
चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारदः॥ ८९
ततः कालेन महता गृहं प्राप्य च तुम्बरोः।
वीणामादाय तत्रस्थो ह्यगायत महामुनिः॥ ९०

और वहाँ गीत गाने लगे। उसे सुनकर लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुने नारदसे कहा—हे नारद! आप आज भी गीतोंका गान करनेमें तुम्बुरुसे विशिष्ट नहीं हैं। आप जब उनसे विशिष्ट होंगे, उस समयको मैं बता रहा हूँ। आप गानबन्धुसे शिक्षा प्राप्त करके गानतत्त्वके ज्ञाता हो गये हैं॥ ७५—७७½॥

हे महामते! मैं वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें द्वापरयुगके अन्तमें देवकीके गर्भसे वसुदेवके पुत्रके रूपमें कृष्ण नामसे यदुवंशमें अवतीर्ण होऊँगा। उस समय मेरे पास आकर आप ठीक-ठीक स्मरण कराइयेगा; तब मैं आपको तुम्बुरुके समान ही अतिशय गानसे सम्पन्न तथा महाव्रतसे युक्त कर दूँगा। तबतक आप यथानुकूल देव-गन्धर्वयोनियोंमें समुचित रूपसे शिक्षा प्रदान कीजिये—ऐसा कहकर वे [भगवान् विष्णु] अन्तर्धान हो गये॥ ७८—८१½॥

तदनन्तर वीणावादनमें संलग्न रहनेवाले, देवतुल्य, तपस्याकी निधि तथा वासुदेवमें पूर्णरूपसे आसक्त वे देवर्षि नारद सभी आभरणोंसे विभूषित होकर अपने कन्धेपर वीणा धारण करके सभी लोकोंमें विचरने लगे। वरुण, यम, अग्नि, इन्द्र, कुबेर, वायु तथा ईशान—इन देवताओंकी सभामें पहुँचकर धर्मनिष्ठ तथा वीणावादनमें कुशल वे नारद भगवान् श्रीहरिका गान करते थे॥ ८२—८५॥

तदनन्तर गन्धर्वों तथा अप्सराओंसे पूजित होते हुए वे किसी समय ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए। वहाँ गायन-वादनमें विशारद हाहा-हूहू नामक दो दिव्य श्रेष्ठ गन्धर्व ब्रह्माके गायकके रूपमें सदा विद्यमान रहते थे। वहाँ उन दोनोंके साथमें बैठकर भगवान् श्रीहरिका गान करते हुए महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ नारद ब्रह्माजीके द्वारा पूजित हुए॥ ८६—८८॥

समस्त लोकोंके पितामह उन ब्रह्माको प्रणाम करके नारदजी सभी लोकोंमें इच्छानुसार विचरण करने लगे॥ ८९॥

तदनन्तर बहुत समयके बाद वे महामुनि नारद

स्वरकल्पास्तु तत्रस्थाः षड्जाद्याः सप्त वै मताः।
क्रीडतो भगवान् दृष्ट्वा निर्गतश्च सुसत्वरम्॥ ९१

शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामतिः।
श्रमयोगेन संयुक्तो नारदोऽपि महामुनिः॥ ९२

सप्तस्वराङ्गनाः पश्यन् गानविद्याविशारदः।
आसीद्वीणासमायोगे न तास्तन्व्यः प्रपेदिरे॥ ९३

ततो रैवतके कृष्णं प्रणिपत्य महामुनिः।
विज्ञापयदशेषं तु श्वेतद्वीपे तु यत् पुरा॥ ९४

नारायणेन कथितं गानयोगमनुत्तमम्।
तच्छ्रुत्वा प्राहसन् कृष्णः प्राह जाम्बवतीं मुदा॥ ९५

एतं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्व यथाविधि।
वीणागानसमायोगे तथेत्युक्त्वा च सा हरिम्॥ ९६

प्रहसन्ती यथायोगं शिक्षयामास तं मुनिम्।
ततः संवत्सरे पूर्णे पुनरागम्य माधवम्॥ ९७

प्रणिपत्याग्रतस्तस्थौ पुनराह स केशवः।
सत्यां समीपमागच्छ शिक्षयस्व यथाविधि॥ ९८

तथेत्युक्त्वा सत्यभामां प्रणिपत्य जगौ मुनिः।
तया स शिक्षितो विद्वान् पूर्णे संवत्सरे पुनः॥ ९९

वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिणीसदनं गतः।
अङ्गनाभिस्ततस्ताभिर्दासीभिर्मुनिसत्तमः ॥ १००

उक्तोऽसौ गायमानोऽपि न स्वरं वेत्सि वै मुने।
ततः श्रमेण महता वत्सरत्रयसंयुतम्॥ १०१

शिक्षितोऽसौ तदा देव्या रुक्मिण्यापि जगौ मुनिः।
ततः स्वराङ्गनाः प्राप्य तन्त्रीयोगं महामुनेः॥ १०२

गन्धर्व तुम्बुरुके घर पहुँचकर वीणा लेकरके वहीं स्थित होकर गाने लगे। षड्ज आदि जो सात प्रथम स्वर माने गये हैं, वे वहाँ साक्षात् विद्यमान थे; उन्हें [तुम्बुरुके घरमें] क्रीड़ा करते देखकर भगवान् नारद बड़ी शीघ्रतासे वहाँसे निकल गये॥ ९०-९१॥

तत्पश्चात् महान् बुद्धिसे सम्पन्न महामुनि नारद परिश्रमके साथ बहुत समयतक गान सीखते रहे। गानविद्यामें पारंगत वे नारद सातों स्वरोंकी अंगनाओंका अवलोकन करते हुए सदा वीणा धारण किये गान-साधनामें रत रहते थे; किंतु उनकी वीणाकी तन्त्रियाँ उन स्वरांगनाओंको प्राप्त न कर सकीं॥ ९२-९३॥

तदनन्तर रैवतकपर्वतपर आकर श्रीकृष्णको प्रणाम करके महामुनि नारदने उन्हें वह सब बताया, जो श्वेतद्वीपमें पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने श्रेष्ठ गानयोगके विषयमें उनसे कहा था॥ ९४॥

उसे सुनकर श्रीकृष्णने जाम्बवतीसे हँसते हुए कहा—हे भद्रे! इन मुनिवर [नारद]-को वीणा-गानकी विधिपूर्वक शिक्षा प्रदान करो। तब 'ठीक है' श्रीकृष्णसे हँसते हुए ऐसा कहकर वे मुनिको सम्यक् प्रकारसे शिक्षा देने लगीं॥ ९५-९६ $^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर वे माधवके पास आकर उन्हें प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये। तब केशवने फिर कहा—अब आप सत्यभामाके पास आइये और इनसे विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त कीजिये। तब 'ठीक है'—ऐसा कहकर वे मुनि सत्यभामाको प्रणाम करके गान करने लगे। उन सत्यभामाने भी उन्हें गानशिक्षा प्रदान की। तब एक वर्ष पूर्ण हो जानेपर [रुक्मिणीसे शिक्षा लेनेके लिये] पुनः वासुदेवके द्वारा नियुक्त किये गये वे विद्वान् नारद रुक्मिणीके भवनमें गये॥ ९७—९९ $^{1}/_{2}$॥

तब वहाँकी अंगनाओं और दासियोंने उन मुनिश्रेष्ठसे कहा—हे मुने! इतने समयतक गाते हुए भी आप स्वरका ज्ञान नहीं कर सके। तत्पश्चात् नारदमुनिने उन देवी रुक्मिणीसे भी पूरे तीन वर्षोंतक महान् परिश्रमके साथ शिक्षा प्राप्त की और वे [उत्तम] गान करने लगे;

आहूय कृष्णो भगवान् स्वयमेव महामुनिम्।
अशिक्षयदमेयात्मा गानयोगमनुत्तमम्॥ १०३

ततोऽतिशयमापन्नस्तुम्बरोर्मुनिसत्तमः ।
ततो ननर्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ १०४

उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने।
प्रहस्य ज्ञानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ॥ १०५

एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं मम लोके तथैव च।
नित्यं तुम्बरुणा सार्धं गायस्व च यथातथम्॥ १०६

एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगं चचार सः।
यदा सम्पूजयन् कृष्णो रुद्रं भुवननायकम्॥ १०७

तदा जगौ हरेस्तस्य नियोगाच्छङ्कराय वै।
रुक्मिण्या सह सत्या च जाम्बवत्या महामुनिः॥ १०८

कृष्णेन च नृपश्रेष्ठ श्रुतिजातिविशारदः।
एष वो मुनिशार्दूलाः प्रोक्तो गीतक्रमो मुने॥ १०९

ब्राह्मणो वासुदेवाख्यां गायमानो भृशं नृप।
हरेः सालोक्यमाप्नोति रुद्रगानोऽधिको भवेत्॥ ११०

अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोऽन्यदेव हि।
कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः॥ १११

गायन् शृण्वंस्तमाप्नोति तस्माद्गेयं परं विदुः॥ ११२

तब स्वरांगनाएँ महामुनि नारदकी वीणाके तारोंमें आकर स्थित हो गयीं॥ १००—१०२॥

तदनन्तर अपरिमेय आत्माको धारण करनेवाले स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने महामुनिको बुलाकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ गानविद्याकी शिक्षा प्रदान की। तब मुनिश्रेष्ठ नारद तुम्बुरुसे भी अधिक ज्ञानसम्पन्न हो गये। वे देवर्षि जनार्दन श्रीकृष्णको प्रणाम करके [आनन्दमग्न होकर] नृत्य करने लगे॥ १०३-१०४॥

तदनन्तर भगवान् हृषीकेशने हँसकर कहा—हे महामुने! अब आप गानविद्यामें सबकुछ जान गये हैं; अब आप मेरे सान्निध्यमें रहकर गान किया कीजिये। आपने यह अपना अभिलषित प्राप्त कर लिया है। अब आप भी तुम्बुरुके साथ मेरे लोकमें सम्यक् प्रकारसे नित्य गान कीजिये॥ १०५-१०६॥

तब [श्रीकृष्णके द्वारा] ऐसा कहे गये वे मुनि यथेच्छ विचरण करने लगे। हे नृपश्रेष्ठ! जब श्रीकृष्ण भुवननायक शिवकी पूजा करने लगते थे, उस समय [श्रीकृष्णरूप] उन श्रीहरिके आदेशसे स्वरोंके महाज्ञानी महामुनि नारद रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और श्रीकृष्णके साथ शंकरजीका स्तुति-गान करते थे॥ १०७-१०८$^{1}/_{2}$॥

[सूतजी बोले—] हे श्रेष्ठ मुनिगण! मैंने आपलोगोंको मुनि नारदकी गानविद्या-प्राप्तिका यह क्रम बतला दिया। [मार्कण्डेयजीने कहा—] हे राजन्! वासुदेवकी स्तुतिका अत्यधिक गान करनेवाला ब्राह्मण श्रीहरिका सालोक्य प्राप्त कर लेता है; किंतु रुद्रका स्तुतिगान करनेवाला उससे भी अधिक श्रेष्ठ भगवत्सारूप्य प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत किसी अन्यका गान करनेवाला नरकमें जाता है। मन, वाणी तथा कर्मसे वासुदेवमें ही अनुरक्त होकर उनकी स्तुतिका गान करनेवाला तथा उसे सुननेवाला उन्हींको प्राप्त होता है, अतः गानविद्याको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है॥ १०९—११२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे वैष्णवगीतकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'वैष्णवगीतकथन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

वासुदेवपरायण विष्णुभक्तोंके लक्षण तथा उनकी महिमा

ऋषय ऊचुः

वैष्णवा इति ये प्रोक्ता वासुदेवपरायणाः।
कानि चिह्नानि तेषां वै तन्नो ब्रूहि महामते॥ १
तेषां वा किं करोत्येष भगवान् भूतभावनः।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूत सर्वार्थवित्तम॥ २

सूत उवाच

अम्बरीषेण वै पृष्टो मार्कण्डेयः पुरा मुनिः।
युष्माभिरद्य यत् प्रोक्तं तद्वदामि यथातथम्॥ ३

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् यथान्यायं यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायणः स्थितः॥ ४
विष्णुरेव हि सर्वत्र येषां वै देवता स्मृता।
कीर्त्यमाने हरौ नित्यं रोमाञ्चो यस्य वर्तते॥ ५
कम्पः स्वेदस्तथाक्षेषु दृश्यन्ते जलबिन्दवः।
विष्णुभक्तिसमायुक्तान् श्रौतस्मार्तप्रवर्तकान्॥ ६
प्रीतो भवति यो दृष्ट्वा वैष्णवोऽसौ प्रकीर्तितः।
नान्यदाच्छादयेद्वस्त्रं वैष्णवो जगतोऽरणे॥ ७
विष्णुभक्तमथायान्तं यो दृष्ट्वा सन्मुखस्थितः।
प्रणामादि करोत्येवं वासुदेवे यथा तथा॥ ८
स वै भक्त इति ज्ञेयः स जयी स्याज्जगत्त्रये।
रूक्षाक्षराणि शृण्वन् वै तथा भागवतेरितः॥ ९
प्रणामपूर्वं क्षान्त्या वै यो वदेद्वैष्णवो हि सः।
गन्धपुष्पादिकं सर्वं शिरसा यो हि धारयेत्॥ १०
हरेः सर्वमितीत्येवं मत्त्वासौ वैष्णवः स्मृतः।
विष्णुक्षेत्रे शुभान्येव करोति स्नेहसंयुतः॥ ११
प्रतिमां च हरेर्नित्यं पूजयेत्प्रयतात्मवान्।
विष्णुभक्तः स विज्ञेयः कर्मणा मनसा गिरा॥ १२
नारायणपरो नित्यं महाभागवतो हि सः।
भोजनाराधनं सर्वं यथाशक्त्या करोति यः॥ १३

ऋषिगण बोले—हे महामते! जो वासुदेवपरायण वैष्णव कहे गये हैं, उनके क्या लक्षण हैं; उसे हमें बताइये। हे सूत! हे सर्वतत्त्वज्ञ! भगवान् भूतभावन उन्हें कौन-सी गति प्रदान करते हैं; यह सब हमसे कहिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—आपलोगोंने आज मुझसे जो पूछा है, वही बात पूर्वकालमें अम्बरीषने मार्कण्डेयमुनिसे पूछी थी; [उस समय उन्होंने जो कहा था] उसे मैं यथार्थ रूपसे आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे राजन्! आप मुझसे जो पूछ रहे हैं, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। जहाँ विष्णुभक्त रहता है, वहींपर नारायण विराजमान रहते हैं। जिनके लिये सर्वत्र विष्णु ही देवता कहे गये हैं, भगवान् श्रीहरिका कीर्तन होते समय जिसके शरीरमें सदा रोमांच होने लगता है, कम्पन उत्पन्न हो जाता है, पसीना आने लगता है और नेत्रोंमें अश्रु दिखायी पड़ने लगते हैं; विष्णुकी भक्तिसे युक्त श्रौत-स्मार्त कर्मप्रवर्तक विद्वानोंको देखकर जो आनन्दित हो उठता है, उसे वैष्णव कहा गया है। जगत्‌के दर्शनमें [अपनी रक्षाके निमित्त] वैष्णवको आवश्यक परिधानके अतिरिक्त वस्त्र आदिसे शरीरका आवरण नहीं करना चाहिये॥ ४—७॥

विष्णुभक्तको आता हुआ देखकर जो सामने खड़े होकर उसे वासुदेवतुल्य समझकर प्रणाम आदि करता है, उसे वैष्णव भक्त जानना चाहिये; वह तीनों लोकोंमें विजयी होता है। कठोर वचन सुनता हुआ भी जो भगवद्भावसे युक्त होकर प्रणामपूर्वक धैर्यके साथ बोलता है, वही वैष्णव है॥ ८-९½॥

सब कुछ श्रीहरिका है—ऐसा मानकर जो गन्ध, पुष्प आदिको सिरसे लगाता है, वह वैष्णव कहा गया है। जो विष्णु-क्षेत्रमें प्रेमयुक्त होकर शुभ कर्म ही करता है और एकाग्रचित्त होकर श्रीहरिकी प्रतिमाका नित्य पूजन करता है, उसे मन-वाणी-कर्मसे विष्णुभक्त समझना चाहिये। जो सदा नारायणमें अनुरक्त है, वह परमभागवत है॥ १०—१२½॥

विष्णुभक्तस्य च सदा यथान्यायं हि कथ्यते।
नारायणपरो विद्वान् यस्यान्नं प्रीतमानसः॥ १४

अश्नाति तद्धरेरास्यं गतमन्नं न संशयः।
स्वार्चनादपि विश्वात्मा प्रीतो भवति माधवः॥ १५

महाभागवते तच्च दृष्ट्वासौ भक्तवत्सलः।
वासुदेवपरं दृष्ट्वा वैष्णवं दग्धकिल्विषम्॥ १६

देवापि भीतास्तं यान्ति प्रणिपत्य यथागतम्।
श्रूयतां हि पुरा वृत्तं विष्णुभक्तस्य वैभवम्॥ १७

दृष्ट्वा यमोऽपि वै भक्तं वैष्णवं दग्धकिल्विषम्।
उत्थाय प्राञ्जलिर्भूत्वा ननाम भृगुनन्दनम्॥ १८

तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या वैष्णवान् विष्णुवन्नरः।
स याति विष्णुसामीप्यं नात्र कार्या विचारणा॥ १९

अन्यभक्तसहस्त्रेभ्यो विष्णुभक्तो विशिष्यते।
विष्णुभक्तसहस्त्रेभ्यो रुद्रभक्तो विशिष्यते।
रुद्रभक्तात्परतरो नास्ति लोके न संशयः॥ २०

तस्मात्तु वैष्णवं चापि रुद्रभक्तमथापि वा।
पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये॥ २१

विष्णुभक्तोंके भोजन एवं आराधनकी यथाशक्ति व्यवस्था करनेवाला वास्तविक फलका भागी कहा गया है। नारायणमें भक्ति रखनेवाला विद्वान् प्रसन्नचित्त होकर जिसका भी अन्न खाता है, वह अन्न मानो साक्षात् श्रीहरिके मुखमें चला गया; इसमें संदेह नहीं है॥ १३-१४$^{1}/_{2}$॥

भक्तवत्सल लक्ष्मीपति विश्वात्मा विष्णु अपने पूजनकी अपेक्षा अपने महाभागवत भक्तका पूजन देखकर अधिक प्रसन्न होते हैं। वासुदेवमें भक्ति रखनेवाले पापरहित वैष्णवको देखकर देवता भी भयभीत होकर उसे प्रणाम करके जैसे आते हैं, वैसे ही लौट जाते हैं॥ १५-१६$^{1}/_{2}$॥

विष्णुभक्तके वैभवसे सम्बन्धित एक प्राचीनकालका वृत्तान्त सुनिये। दग्ध पापोंवाले वैष्णव भक्त भृगुपुत्र च्यवनको देखकर यमराजने भी उठ करके दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया था। अतः मनुष्यको चाहिये कि भगवान् विष्णुकी ही भाँति भक्तिपूर्वक वैष्णवोंकी पूजा करे; [जो ऐसा करता है] वह विष्णुका सामीप्य प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १७—१९॥

विष्णुभक्त अन्य देवताओंके भक्तोंसे हजार गुना श्रेष्ठ होता है और विष्णुभक्तोंसे हजार गुना श्रेष्ठ शिवभक्त होता है; रुद्रभक्तसे श्रेष्ठ कोई भी लोकमें नहीं है, इसमें संशय नहीं है। अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ विष्णुभक्त अथवा रुद्रभक्तकी पूजा करनी चाहिये॥ २०-२१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विष्णुभक्तकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'विष्णुभक्तकथन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

विष्णुभक्त राजर्षि अम्बरीषका आख्यान, विष्णुमायाद्वारा नारद एवं पर्वत मुनिका वानरमुख होना तथा इसीका रामावतारमें हेतु बनना

ऋषय ऊचुः

ऐक्ष्वाकुरम्बरीषो वै वासुदेवपरायणः।
पालयामास पृथिवीं विष्णोराज्ञापुरःसरः॥ १
श्रुतमेतन्महाबुद्धे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि।
नित्यं तस्य हरेश्चक्रं शत्रुरोगभयादिकम्॥ २

ऋषिगण बोले—इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न विष्णुभक्त [राजा] अम्बरीष भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीका पालन करते थे—यह हमने सुना है; हे महाबुद्धे! उनके विषयमें आप सब कुछ बताइये। लोकमें ऐसा सुना जाता है कि भगवान् श्रीहरिका

हन्तीति श्रूयते लोके धार्मिकस्य महात्मनः।
अम्बरीषस्य चरितं तत्सर्वं ब्रूहि सत्तम॥ ३
माहात्म्यमनुभावं च भक्तियोगमनुत्तमम्।
यथावच्छ्रोतुमिच्छामः सूत वक्तुं त्वमर्हसि॥ ४

सूत उवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूलाश्चरितं तस्य धीमतः।
अम्बरीषस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं परम्॥ ५
त्रिशङ्कोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता।
अम्बरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता॥ ६
योगनिद्रासमारूढं शेषपर्यङ्कशायिनम्।
नारायणं महात्मानं ब्रह्माण्डकमलोद्भवम्॥ ७
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ८
अर्चयामास सततं वाङ्मनःकायकर्मभिः।
माल्यदानादिकं सर्वं स्वयमेवमचीकरत्॥ ९
गन्धादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा।
भूमेरालेपनादीनि हविषां पचनं तथा॥ १०
तत्कौतुकसमाविष्टा स्वयमेव चकार सा।
शुभा पद्मावती नित्यं वाचा नारायणेति वै॥ ११
अनन्तेत्येव सा नित्यं भाषमाणा पतिव्रता।
दशवर्षसहस्राणि तत्परेणान्तरात्मना॥ १२
अर्चयामास गोविन्दं गन्धपुष्पादिभिः शुचिः।
विष्णुभक्तान् महाभागान् सर्वपापविवर्जितान्॥ १३
दानमानार्चनैर्नित्यं धनरत्नैरतोषयत्।
ततः कदाचित्सा देवी द्वादशीं समुपोष्य वै॥ १४
हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह।
तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः॥ १५
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तस्त्वं ब्रूहि भामिनि।
सा दृष्ट्वा तु वरं वव्रे पुत्रो मे वैष्णवो भवेत्॥ १६
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः।
तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः॥ १७

सुदर्शन चक्र उनके शत्रु, रोग, भय आदिका सदा नाश किया करता था। अतः हे श्रेष्ठ! आप उन धार्मिक तथा महात्मा अम्बरीषके उस सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कीजिये। हे सूत! हम उनके माहात्म्य, अनुभाव तथा श्रेष्ठ भक्तियोगको यथार्थतः सुनना चाहते हैं, आप हमें बतायें॥ १—४॥

सूतजी बोले—हे मुनीन्द्रो! उन बुद्धिमान् अम्बरीषके श्रेष्ठ चरित्र तथा माहात्म्यको आपलोग सुनें, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देनेवाला है॥ ५॥

त्रिशंकुकी प्रिय भार्या तथा अम्बरीषकी माता, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं, नित्य [स्नान आदिसे] शुद्ध होकर योगनिद्रामें लीन रहनेवाले, शेषशय्यापर शयन करनेवाले, ब्रह्माण्डरूपी कमलका प्रादुर्भाव करनेवाले, तमोगुणसे युक्त होनेपर कालरुद्ररूप, रजोगुणसे युक्त होनेपर हिरण्यगर्भ ब्रह्मारूप और सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर सर्वव्यापी तथा सभी देवोंसे नमस्कृत साक्षात् महात्मा नारायण विष्णुकी निरन्तर मन-वाणी-कर्मसे अर्चना करती थीं। माल्य, दान आदि सब कुछ वे स्वयं करती थीं। चन्दन आदि द्रव्योंका घिसना, धूप-दीप आदि, भूमिका लेपन आदि, हवि-द्रव्यको पकाना—ये सब कार्य वे स्वयं सम्पन्न करती थीं। वे कल्याणमयी तथा पतिव्रता रानी पद्मावती प्रतिदिन वाणीसे 'नारायण' और 'अनन्त'—ऐसा निरन्तर उच्चारण करती हुई उन्हीं परमात्मामें संलग्न मनसे दस हजार वर्षोंतक शुद्धतापूर्वक गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे गोविन्दका पूजन किया करती थीं। वे सब प्रकारके पापोंसे रहित महाभाग विष्णुभक्तोंको दान, मान, पूजन तथा धनोंसे नित्य सन्तुष्ट रखती थीं॥ ६—१३$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर किसी समय वे महाभागा देवी द्वादशीका व्रत करके पतिके साथ भगवान् श्रीहरिके [विग्रहके] सम्मुख सो गयीं। वहाँपर [स्वप्नमें] पुरुषोत्तम नारायणने उनसे कहा—हे भद्रे! क्या चाहती हो? हे भामिनि! तुम मुझसे वर माँग लो॥ १४-१५$^{१}/_{२}$॥

तब भगवान्‌को देखकर उन्होंने यह वर माँगा—मुझे विष्णुभक्त, चक्रवर्ती सम्राट्, महातेजस्वी, अपने

सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं न्यवेदयत्।
भक्षयामास संहृष्टा फलं तद्गतमानसा॥ १८

ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्धनम्।
असूत सा सदाचारं वासुदेवपरायणम्॥ १९

शुभलक्षणसम्पन्नं चक्राङ्कितनूरुहम्।
जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै॥ २०

अम्बरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः।
पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महामुनिः॥ २१

मन्त्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकार सः।
संवत्सरसहस्रं वै जपन्नारायणं प्रभुम्॥ २२

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं सूर्यमण्डलमध्यतः।
शङ्खचक्रगदापद्म धारयन्तं चतुर्भुजम्॥ २३

शुद्धजाम्बूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं प्रभुम्॥ २४

श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम्।
ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः॥ २५

आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः।
ऐरावतमिवाचिन्त्यं कृत्वा वै गरुडं हरिः॥ २६

स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम्।
इन्द्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि वरं च ते॥ २७

सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः।

अम्बरीष उवाच

नाहं त्वामभिसन्धाय तप आस्थितवानिह॥ २८

त्वया दत्तं च नेष्यामि गच्छ शक्र यथासुखम्।
मम नारायणो नाथस्तन्नमामि जगत्पतिम्॥ २९

कार्यमें तत्पर रहनेवाला और पवित्र मनवाला पुत्र उत्पन्न हो। तब 'वैसा ही होगा'—यह कहकर जनार्दनने उन्हें एक फल प्रदान किया॥ १६-१७॥

तदनन्तर वे जग गयीं और उस फलको देखकर उन्होंने सारी बात अपने पतिसे कही। इसके बाद उन्हीं प्रभुमें संलग्न चित्तवाली उन्होंने प्रसन्न होकर वह फल खा लिया॥ १८॥

तत्पश्चात् समय आनेपर उन देवीने कुलकी वृद्धि करनेवाले, सदाचारी, वासुदेवपरायण, शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा चक्रांकित केशोंवाले पुत्रको जन्म दिया। पुत्र उत्पन्न हुआ देखकर पिता [त्रिशंकु]-ने उसके सभी [जातकर्म आदि] संस्कार किये॥ १९-२०॥

वह ऐश्वर्यशाली बालक अम्बरीष—इस नामसे लोकमें विख्यात हुआ। पिताकी मृत्यु हो जानेपर उस शोभासम्पन्न महात्मा अम्बरीषका अभिषेक किया गया। तत्पश्चात् मन्त्रियोंको राज्य सौंपकर उन्होंने हृदयकमलके मध्यमें विराजमान, सूर्यमण्डलके मध्यमें स्थित, शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण करनेवाले, चतुर्भुज, विशुद्ध सुवर्णके सदृश कान्तिवाले, ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप, समस्त आभरणोंसे सुशोभित, पीताम्बर धारण करनेवाले, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिह्न धारण करनेवाले, परम पुरुष तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायणका जप करते हुए पूरे एक हजार वर्षतक कठोर तप किया॥ २१—२४$^1/_2$॥

तब सभी देवताओंसे स्तुत तथा सभी लोकोंसे नमस्कृत होनेवाले वे विश्वात्मा गरुड़पर आरूढ़ होकर वहाँ आ गये। उन श्रीहरिने गरुड़को अद्भुत ऐरावतके रूपमें करके स्वयं इन्द्रका रूप धारणकर उसपर आसीन हो उन नृपश्रेष्ठसे कहा—'मैं इन्द्र हूँ, आपका कल्याण हो; मैं आपको कौन-सा वर प्रदान करूँ? सभी लोकोंका ईश्वर मैं आपकी रक्षा करनेके लिये आपके पास आया हूँ'॥ २५—२७$^1/_2$॥

अम्बरीषजी बोले—आपको उद्देश्य करके मैंने यह तप नहीं किया है। हे शक्र! आपके द्वारा प्रदत्त वर मैं नहीं चाहता; अतः आप सुखपूर्वक लौट जाइये। मेरे स्वामी तो नारायण हैं; मैं उन्हीं जगत्पतिको नमस्कार करता हूँ।

गच्छेन्द्र मा कृथास्त्वत्र मम बुद्धिविलोपनम्।
ततः प्रहस्य भगवान् स्वरूपमकरोद्धरिः॥ ३०

शार्ङ्गचक्रगदापाणिः खड्गहस्तो जनार्दनः।
गरुडोपरि सर्वात्मा नीलाचल इवापरः॥ ३१

देवगन्धर्वसङ्घैश्च स्तूयमानः समन्ततः।
प्रणम्य स च सन्तुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम्॥ ३२

प्रसीद लोकनाथेश मम नाथ जनार्दन।
कृष्ण विष्णो जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत॥ ३३

त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनन्तः पुरुषः प्रभुः।
अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविन्दः कमलेक्षणः॥ ३४

महेश्वराङ्गजो मध्ये पुष्करः खगमः खगः।
कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभञ्जनः॥ ३५

आदिदेवः क्रियानन्दः परमात्मात्मनि स्थितः।
त्वां प्रपन्नोऽस्मि गोविन्द जय देवकिनन्दन।
जय देव जगन्नाथ पाहि मां पुष्करेक्षण॥ ३६

नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वमेव शरणं मम।

सूत उवाच

तमाह भगवान् विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम्॥ ३७

तत्सर्वं ते प्रदास्यामि भक्तोऽसि मम सुव्रत।
भक्तिप्रियोऽहं सततं तस्माद्दातुमिहागतः॥ ३८

अम्बरीष उवाच

लोकनाथ परानन्द नित्यं मे वर्तते मतिः।
वासुदेवपरो नित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः॥ ३९

यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन॥ ४०

पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत्।
यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पयामि सुरोत्तमान्॥ ४१

हे इन्द्र! आप चले जाइये, मेरी बुद्धिको भ्रमित मत कीजिये॥ २८-२९१/२॥

तब [इन्द्ररूपधारी] भगवान् विष्णुने हँसकर अपना रूप प्रकट कर दिया। वे सर्वात्मा जनार्दन हाथमें शार्ङ्ग नामक धनुष-चक्र-गदा-खड्ग लिये हुए थे, गरुड़पर आरूढ़ थे और दूसरे नीलपर्वतकी भाँति सुशोभित हो रहे थे। देवताओं तथा गन्धर्वोंके समूह सभी ओरसे उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ३०-३११/२॥

तब प्रसन्नताको प्राप्त वे [अम्बरीष] उन गरुड़ध्वजको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे—हे लोकनाथ! हे ईश! हे मेरे नाथ! हे जनार्दन! हे कृष्ण! हे विष्णो! हे जगन्नाथ! हे सर्वलोकनमस्कृत! [मुझपर] प्रसन्न होइये। आप आदि हैं और आदिरहित भी हैं। आप अनन्त, परम पुरुष, प्रभुतासम्पन्न, अपरिमित, सर्वोपरि, विष्णु, गोविन्द, कमलके समान नेत्रोंवाले, महेश्वरके अंगसे आविर्भूत, नाभिसे कमलकी उत्पत्ति करनेवाले, हृदयाकाशमें योगियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले, खगरूप, कव्यवाह तथा भैरवरूप हैं। आप हव्यवाह, प्रभंजन, आदिदेव, क्रियानन्द, परमात्मा तथा स्वयंमें स्थित हैं। हे गोविन्द! मैं आपके शरणागत हूँ। हे देवकीनन्दन! आपकी जय हो। हे देव! हे जगन्नाथ! आपकी जय हो। हे कमलनयन! मेरी रक्षा कीजिये; आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति नहीं है; आप ही मेरे शरणदाता हैं॥ ३२—३६१/२॥

सूतजी बोले—भगवान् विष्णुने उनसे कहा—आपके मनमें कौन-सी अभिलाषा है; वह सब मैं आपको दूँगा। हे सुव्रत! आप मेरे भक्त हैं, मुझे भक्ति प्रिय है, अतः आपको वर प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ॥ ३७-३८॥

अम्बरीषजी बोले—हे लोकनाथ! हे परानन्द! मेरी सदा यही अभिलाषा रहती है कि मैं मन, वाणी तथा कर्मसे नित्य वासुदेवमें लीन रहूँ। हे विष्णो! हे देव! हे जनार्दन! जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिवके [भक्त] हैं, वैसे ही मैं आपका [भक्त] हो जाऊँ। मैं [सम्पूर्ण] जगत्को विष्णुभक्त बनाकर पृथ्वीका पालन करूँगा, यज्ञ-हवन-

वैष्णवान् पालयिष्यामि निहनिष्यामि शात्रवान्।
लोकतापभये भीत इति मे धीयते मतिः॥ ४२

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु यथेच्छं वै चक्रमेतत्सुदर्शनम्।
पुरा रुद्रप्रसादेन लब्धं वै दुर्लभं मया॥ ४३

ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा।
निहनिष्यति ते नित्यमित्युक्त्वान्तरधीयत॥ ४४

सूत उवाच

ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम्।
प्रविश्य नगरीं रम्यामयोध्यां पर्यपालयत्॥ ४५

ब्राह्मणादींश्च वर्णांश्च स्वस्वकर्मण्ययोजयत्।
नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकल्मषान्॥ ४६

पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः।
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतेन च॥ ४७

पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम्।
गृहे गृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहे गृहे॥ ४८

नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च।
अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति॥ ४९

नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता।
रोगहीनाः प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिताः॥ ५०

अम्बरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम्।
तस्यैवं वर्तमानस्य कन्या कमललोचना॥ ५१

श्रीमती नाम विख्याता सर्वलक्षणसंयुता।
प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना॥ ५२

तस्मिन् काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतश्च वै।
अम्बरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महामतिः॥ ५३

तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि।
अम्बरीषो महातेजाः पूजयामास तावृषी॥ ५४

अर्चन आदिके द्वारा श्रेष्ठ देवताओंको तृप्त करूँगा, वैष्णवजनोंका पालन-पोषण करूँगा और शत्रुओंका संहार करूँगा, प्राणियोंको संताप देनेसे मैं भयभीत रहूँ—मेरी मति ऐसी भावनाको धारण करे॥ ३९—४२॥

श्रीभगवान् बोले—'जैसी आपकी इच्छा है, वैसा ही होगा। प्राचीनकालमें मैंने भगवान् रुद्रकी कृपासे यह दुर्लभ सुदर्शन चक्र प्राप्त किया है। यह आपके ऋषिशाप, दुःख, शत्रु, रोग आदिका सदा नाश करेगा'—ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये॥ ४३-४४॥

सूतजी बोले—तदनन्तर भगवान् नारायणको प्रणाम करके आनन्दसे युक्त राजा [अम्बरीष] रम्य अयोध्या नगरीमें प्रवेश करके प्रजापालन करने लगे। नारायणमें तत्पर रहनेवाले उन राजाने ब्राह्मण आदि वर्णोंको अपने-अपने कर्ममें लगाया। वे राजा अम्बरीष प्रसन्नचित्त होकर विशेष रूपसे निष्पाप विष्णुभक्तोंका पालन करने लगे। एक सौ अश्वमेधयज्ञ तथा एक सौ वाजपेययज्ञ करके वे सागरपर्यन्त इस पृथ्वीका पालन करनेमें तत्पर हो गये॥ ४५—४७१/२॥

उन नृपश्रेष्ठके राज्य-शासन करते रहनेपर घर-घरमें विष्णुका विग्रह स्थापित किया गया; घर-घरमें वेद-ध्वनि, विष्णुके नामका घोष और यज्ञघोष होने लगा। भूमि फसलरहित, तृणविहीन और दुर्भिक्ष आदिसे युक्त नहीं रह गयी। सम्पूर्ण प्रजाएँ नित्य रोग तथा सभी प्रकारके विघ्नोंसे रहित हो गयीं। इस प्रकार महातेजस्वी अम्बरीष पृथ्वीका पालन करते थे॥ ४८—५०१/२॥

इस प्रकार राज्य करते हुए उन राजाके यहाँ कमलके समान नेत्रोंवाली तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जो श्रीमती नामसे विख्यात हुई। देवकन्याके समान सुन्दर वह श्रीमती [कुछ दिनोंमें] कन्यादानके योग्य हो गयी। उस समय राजा अम्बरीषके यहाँ श्रीमान् नारदमुनि तथा महामति पर्वत—ये दोनों आये॥ ५१—५३॥

उन दोनों ऋषियोंको आया हुआ देखकर उन्हें प्रणाम करके महातेजस्वी अम्बरीषने विधिपूर्वक उनका पूजन-सत्कार किया॥ ५४॥

कन्यां तां रममाणां वै मेघमध्ये शतह्रदाम्।
प्राह तां प्रेक्ष्य भगवान्नारदः सस्मितस्तदा॥ ५५

केयं राजन् महाभागा कन्या सुरसुतोपमा।
ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता॥ ५६

राजोवाच

दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः।
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषते शुभा॥ ५७

इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजाः।
पर्वतोऽपि मुनिस्तां वै चकमे मुनिसत्तमाः॥ ५८

अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत्।
रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम्॥ ५९

पर्वतो हि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुः।
तावुभौ सह धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः॥ ६०

उभौ भवन्तौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथं त्वहम्।
करिष्यामि महाप्राज्ञ शृणु नारद मे वचः॥ ६१

मेघमें विद्युत्के समान प्रतीत होनेवाली उस कन्याको क्रीड़ा करती हुई देखकर भगवान् नारदने मुसकराकर राजासे कहा—हे राजन्! महाभाग्यशालिनी, देवकन्याके सदृश तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न यह बाला कौन है? हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! यह बताइये॥ ५५-५६॥

राजा बोले—हे विभो! यह मेरी पुत्री है, जो श्रीमती नामसे प्रसिद्ध है। यह विवाह-कालको प्राप्त हो चुकी है, अतः यह सौभाग्यशालिनी वरका अन्वेषण कर रही है॥ ५७॥

हे ऋषियो! राजाके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ नारद उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगे और हे श्रेष्ठ मुनियो! इसी तरह पर्वतमुनि भी उसे पानेकी प्रबल कामना करने लगे॥ ५८॥

राजाकी अनुमति प्राप्तकर धर्मात्मा नारदने उन्हें
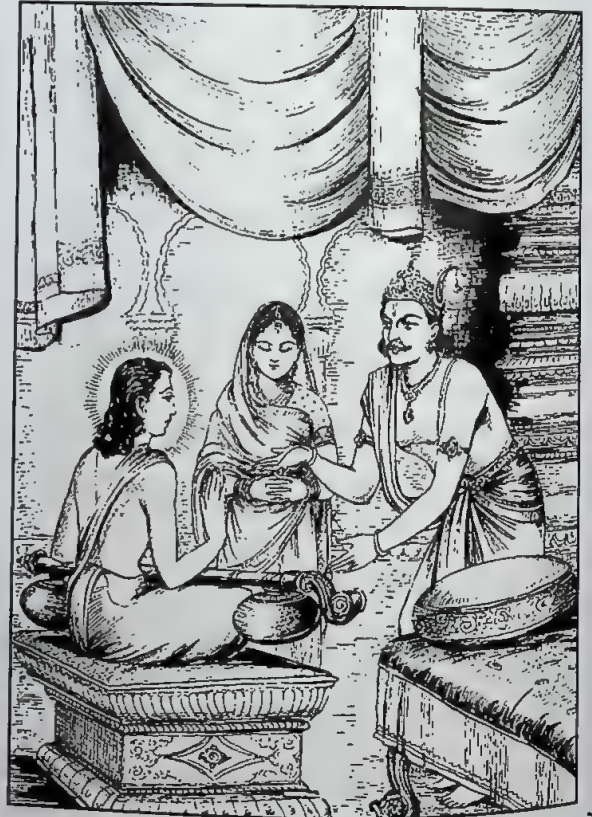
एकान्तमें बुलाकर यह बात कही—'अपनी इस पुत्रीको मुझे दे दीजिये।' पर्वतमुनिने भी राजासे एकान्तमें वैसा ही कहा॥ ५९१/२॥

तब भयसे व्याकुल राजाने उन दोनोंको एक साथ प्रणाम करके कहा—आप दोनों ही मेरी कन्याकी

त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो।
कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा॥ ६२

तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे।
तथेत्युक्त्वा ततो भूयः श्वो यास्याव इति स्म ह॥ ६३

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतिमानसौ।
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानविदां वरौ॥ ६४

विष्णुलोकं ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह॥ ६५

श्रोतव्यमस्ति भगवन्नाथ नारायण प्रभो।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर॥ ६६

ततः प्रहस्य गोविन्दः सर्वानुत्सार्य तं मुनिम्।
ब्रूहीत्याह च विश्वात्मा मुनिराह च केशवम्॥ ६७

त्वदीयो नृपतिः श्रीमानम्बरीषो महीपतिः।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः॥ ६८

परिणेतुमनास्तत्र गतोऽस्मि वचनं शृणु।
पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तव भृत्यस्तपोनिधिः॥ ६९

तामैच्छत्सोऽपि भगवन्नावामाह जनाधिपः।
अम्बरीषो महातेजाः कन्येयं युवयोर्वरम्॥ ७०

लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम्।
इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाहमागतः॥ ७१

आगमिष्यामि ते राजन् श्वः प्रभाते गृहं त्विति।
आगतोऽहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम्॥ ७२

वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा।
तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ७३

तथेत्युक्त्वा स गोविन्दः प्रहस्य मधुसूदनः।
त्वयोक्तं च करिष्यामि गच्छ सौम्य यथागतम्॥ ७४

याचना कर रहे हैं; [ऐसी स्थितिमें] मैं क्या करूँ? हे महाप्राज्ञ! हे नारद! आप मेरी बात सुनें और हे पर्वत! हे प्रभो! आप भी मेरा वचन सुनें, जिसे मैं कह रहा हूँ—'मेरी यह सौभाग्यवती पुत्री आप दोनोंमेंसे जिस एकका वरण कर लेगी, उसे मैं अपनी कन्या दे दूँगा; इसके अतिरिक्त मेरा सामर्थ्य नहीं है'॥ ६०—६२$^{1}/_{2}$॥

'वैसा ही हो'—यह कहनेके बाद 'हम दोनों कल पुनः आयेंगे'—यह कहकर निरन्तर भगवान् विष्णुमें अनुरक्त रहनेवाले तथा ज्ञानियोंमें अग्रणी वे दोनों मुनिश्रेष्ठ प्रसन्नचित्त होकर वहाँसे चले गये॥ ६३-६४॥

तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ नारदने विष्णुलोक पहुँचकर भगवान् हृषीकेशको प्रणाम करके यह वचन कहा—हे भगवन्! हे नाथ! हे नारायण! हे प्रभो! आपको कुछ सुनना है; इसे मैं आपको एकान्तमें बताऊँगा। हे भुवनेश्वर! आपको नमस्कार है॥ ६५-६६॥

तदनन्तर परमात्मा गोविन्द सभी लोगोंको वहाँसे हटाकर हँस करके उन मुनिसे बोले—'कहिये।' तब मुनिने केशवसे कहा—'मेरी बात सुनिये; श्रीमान् राजा अम्बरीष आपके भक्त हैं। श्रीमती नामसे विख्यात उनकी विशाल नेत्रोंवाली पुत्री है। मैं उससे विवाह करनेका इच्छुक हूँ। मैं वहाँ गया था। मेरा वचन सुनिये। आपके भक्त तपोनिधि श्रीमान् ये जो पर्वतमुनि हैं, वे भी उसे चाहते हैं। हे भगवन्! महातेजस्वी राजा अम्बरीषने हम दोनोंसे कहा कि यह कन्या आप दोनोंमेंसे जिस सौन्दर्यसम्पन्नका पतिरूपमें वरण करेगी, उसे मैं कन्या अर्पण कर दूँगा।' जब राजाने हम दोनोंसे ऐसा कहा, तब 'ठीक है; हे राजन्! मैं आपके घर कल प्रातःकाल आऊँगा'—ऐसा कहकर मैं यहाँ आ गया। 'हे जगन्नाथ! अब मैं आपके पास आ गया हूँ; आप मेरा प्रिय कार्य कर दें। हे जगन्नाथ! यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं, तो जिस भी प्रकारसे पर्वतका मुख वानरके मुखके समान हो जाय, वैसा आप कर दें'॥ ६७—७३॥

तब मुसकराकर भगवान् मधुसूदनने 'ठीक है'—ऐसा कहकर [मुनि नारदसे] कहा—हे सौम्य! आपने

एवमुक्त्वा मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम्।
मन्यमानः कृतात्मानं तथायोध्यां जगाम सः॥ ७५
गते मुनिवरे तस्मिन् पर्वतोऽपि महामुनिः।
प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह॥ ७६
वृत्तं तस्य निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः।
गोलाङ्गूलमुखं यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु॥ ७७
तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै।
गच्छ शीघ्रमयोध्यां वै मा वेदीर्नारदस्य वै॥ ७८
त्वया मे संविदं तत्र तथेत्युक्त्वा जगाम सः।
ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा॥ ७९
माङ्गल्यैर्विविधैः सर्वामयोध्यां ध्वजमालिनीम्।
मण्डयामास पुष्पैश्च लाजैश्चैव समन्ततः॥ ८०
अम्बुसिक्तगृहद्वारां सिक्तापणमहापथाम्।
दिव्यगन्धरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः॥ ८१
कृत्वा च नगरीं राजा मण्डयामास तां सभाम्।
दिव्यैर्गन्धैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा॥ ८२
अलङ्कृतां मणिस्तम्भैर्नानामाल्योपशोभिताम्।
परार्घ्यास्तरणोपेतैर्दिव्यैर्भद्रासनैर्वृताम् ॥ ८३
कृत्वा नृपेन्द्रस्तां कन्यां ह्यादाय प्रविवेश ह।
सर्वाभरणसम्पन्नां श्रीरिवायतलोचनाम्॥ ८४
करसम्मितमध्याङ्गीं पञ्चस्निग्धां शुभाननाम्।
स्त्रीभिः परिवृतां दिव्यां श्रीमतीं संश्रितां तदा॥ ८५

जो कहा है, उसे मैं करूँगा; अब आप जैसे आये थे, वैसे ही चले जाइये॥ ७४॥

[भगवान्‌के] ऐसा कहनेपर वे मुनि प्रसन्नतापूर्वक जनार्दनको प्रणाम करके अपनेको धन्य मानते हुए वहाँसे अयोध्या चले गये॥ ७५॥

तत्पश्चात् उन मुनिश्रेष्ठके चले जानेपर महामुनि पर्वतने भी [वहाँ पहुँचकर] भगवान् माधवको प्रणाम करके उन [राजा अम्बरीष]-का सारा वृत्तान्त उनके सम्मुख एकान्तमें कहकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक कहा— हे जगत्पते! नारदका मुख लंगूरके मुखकी भाँति लगने लगे, वैसा आप कर दें॥ ७६-७७॥

यह सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'आपके द्वारा कही गयी बात मैं अवश्य करूँगा, अब आप शीघ्र ही अयोध्या जाइये; किंतु आपके साथ मेरे इस वार्तालापके विषयमें नारदसे वहाँ मत कहियेगा। तब 'ठीक है'— ऐसा कहकर वे [पर्वतमुनि] चले गये॥ ७८ १/२॥

तदनन्तर राजाने उन दोनों मुनिवरोंको आया हुआ जानकर अनेक प्रकारके मांगलिक पदार्थों, पुष्पों तथा लाजा (लावा) आदिके द्वारा एवं ध्वजा-तोरण आदि लगवाकर चारों ओरसे सम्पूर्ण अयोध्याको सजाया। भवनोंके द्वारोंको जलसे सिक्त करके, बाजारों तथा मार्गोंपर जलका छिड़काव कराकर, नगरीको दिव्य गन्ध, रस आदिसे युक्त तथा सुगन्धित धूपोंसे धूपित करके राजाने सम्पूर्ण अयोध्याको मण्डित किया। तदनन्तर राजाने उस स्वयंवर-सभाको विविध प्रकारके दिव्य गन्धों, धूपों तथा रत्नोंसे अलंकृत; मणिनिर्मित स्तम्भों तथा अनेकविध मालाओंसे सुशोभित एवं बहुमूल्य आस्तरणोंसे युक्त दिव्य सिंहासनोंसे आवृत करनेके पश्चात् सभी प्रकारके आभरणोंसे सुसज्जित, लक्ष्मीके समान विशाल नेत्रोंवाली, कृशोदरी, हाथ आदि पाँच अंगोंमें कोमलता धारण करनेवाली, मनोहर मुखमण्डलवाली और अनेक स्त्रियोंसे घिरी तथा संश्रित (सहारा देकर ले जायी जाती हुई) कन्या श्रीमतीको साथमें लेकर उस सभामें प्रवेश किया॥ ७९—८५॥

सभा च सा भूपपतेः समृद्धा
मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुबद्धा
तामाययुस्ते नरराजवर्गाः ॥ ८६

अथापरो ब्रह्मवरात्मजो हि
त्रैविद्यविद्यो भगवान् महात्मा।
सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो
महामुनिर्नारद आजगाम ॥ ८७

तावागतौ समीक्ष्याथ राजा सम्भ्रान्तमानसः।
दिव्यमासनमादाय पूजयामास तावुभौ ॥ ८८

उभौ देवर्षिसिद्धौ तावुभौ ज्ञानविदां वरौ।
समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थं मुनिसत्तमौ ॥ ८९

तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम्।
सुतां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ॥ ९०

अनयोर्यं वरं भद्रे मनसा त्वमिहेच्छसि।
तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ९१

एवमुक्ता तु सा कन्यास्त्रीभिः परिवृता तदा।
मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ॥ ९२

यत्रासीनौ महात्मानौ तत्रागम्य स्थिता तदा।
वीक्ष्यमाणा मुनिश्रेष्ठौ नारदं पर्वतं तथा ॥ ९३

शाखामृगाननं दृष्ट्वा नारदं पर्वतं तथा।
गोलाङ्गूलमुखं कन्या किञ्चित् त्राससमन्विता ॥ ९४

सम्भ्रान्तमानसा तत्र प्रवातकदली यथा।
तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ॥ ९५

अनयोरेकमुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे।
सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तौ नरवानरौ ॥ ९६

मुनिश्रेष्ठं न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा।
अनयोर्मध्यतस्त्वेकमूनषोडशवार्षिकम् ॥ ९७

सर्वाभरणसम्पन्नमतसीपुष्पसन्निभम् ।
दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुङ्गोरस्थलमुत्तमम् ॥ ९८

राजा अम्बरीषकी वह सभा वैभवमयी, अनेकविध श्रेष्ठ मणियों तथा रत्नोंसे चित्रित, उत्तम आसनोंसे सुशोभित, पुष्पमालाओंसे मण्डित और सुव्यवस्थित थी, उस सभामें वे राजागण आये ॥ ८६ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माके ज्येष्ठ पुत्र, वेदत्रयी विद्याके ज्ञाता, ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा महान् आत्मावाले महामुनि नारद पर्वतमुनिसहित वहाँ आ गये ॥ ८७ ॥

उन दोनोंको आया हुआ देखकर व्याकुल-चित्तवाले राजाने दिव्य आसन प्रदानकर उनकी पूजा की। देवर्षियोंमें विख्यात, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा महान् आत्मावाले वे दोनों मुनिवर कन्याप्राप्तिके लिये सम्यक् रूपसे आसनपर विराजमान हो गये ॥ ८८-८९ ॥

उन दोनोंके सम्मुख दण्डवत् प्रणाम करके राजाने मनोहर, कमलके समान नेत्रोंवाली तथा यशस्विनी उस पुत्री श्रीमतीसे कहा—हे भद्रे! इन दोनोंमेंसे जिस वरको तुम मनसे चाहती हो, उसे प्रणाम करके यह माला विधिपूर्वक उसे पहना दो ॥ ९०-९१ ॥

राजाके ऐसा कहनेपर स्त्रियोंसे घिरी हुई सुन्दर नेत्रोंवाली वह कन्या सुवर्णमयी दिव्य माला लेकर, जहाँ वे दोनों महात्मा बैठे थे, वहीं आकर उन मुनि-श्रेष्ठों नारद तथा पर्वतको देखती हुई वहीं स्थित हो गयी ॥ ९२-९३ ॥

नारदको लंगूरके समान मुखवाला तथा पर्वतको वानरके समान मुखवाला देखकर वह कन्या कुछ डर-सी गयी। व्याकुल चित्तवाली वह कन्या वायु-प्रकम्पित कदलीकी भाँति [काँपती हुई] वहाँ स्थित रही। तब उस राजाने उससे कहा—हे वत्से! तुम अब क्या करोगी? हे शुभे! इन दोनोंमेंसे किसी एकको चुनकर उसे माला पहना दो ॥ ९४-९५½ ॥

डरी हुई उस कन्याने पितासे कहा—ये दोनों तो नरवानरकी आकृतिवाले हैं; मुनिश्रेष्ठ नारद तथा पर्वत तो मुझे दिखायी ही नहीं पड़ रहे हैं। [अपितु] इन दोनोंके मध्यमें सोलह वर्षसे थोड़ी कम आयुवाले, समस्त आभरणोंसे सम्पन्न, अतसी-पुष्पके समान [नील]

रेखाङ्कितकटिग्रीवं रक्तान्तायतलोचनम्।
नम्रचापानुकरणपटुभ्रूयुगशोभितम् ॥ ९९

विभक्तत्रिवलीव्यक्तं नाभिव्यक्तशुभोदरम्।
हिरण्याम्बरसंवीतं तुङ्गरत्ननखं शुभम्।
पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम्॥ १००

सुनासं पद्महृदयं पद्मनाभं श्रिया वृतम्।
दन्तपंक्तिभिरत्यर्थं कुन्दकुड्मलसन्निभैः॥ १०१

हसन्तं मां समालोक्य दक्षिणं च प्रसार्य वै।
पाणिं स्थितममुं तत्र पश्यामि शुभमूर्धजम्॥ १०२

सम्भ्रान्तमानसां तत्र वेपतीं कदलीमिव।
स्थितां तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि॥ १०३

एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयं गतः।
कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये ब्रूहि यथातथम्॥ १०४

बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या शुचिस्मिता।
प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे॥ १०५

किं पश्यसि च मे ब्रूहि करे किं वास्य पश्यसि।
कन्या तमाह मालां वै पञ्चरूपामनुत्तमाम्॥ १०६

वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकान्।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ॥ १०७

मनसा चिन्तयन्तौ तौ मायेयं कस्यचिद्भवेत्।
मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः॥ १०८

आगतो न यथा कुर्यात्कथमस्मन्मुखं त्विदम्।
गोलाङ्गूलत्वमित्येवं चिन्तयामास नारदः॥ १०९

पर्वतोऽपि यथान्यायं वानरत्वं कथं मम।
प्राप्तमित्येव मनसा चिन्तामापेदिवांस्तथा॥ ११०

कान्तिवाले, लम्बी भुजाओंवाले, विशाल नेत्रोंवाले, उन्नत तथा उत्तम वक्षःस्थलवाले, रेखायुक्त कटिप्रदेश तथा ग्रीवावाले, रक्त प्रान्तभागसे युक्त विशाल नेत्रोंवाले, झुके हुए धनुषके सदृश टेढ़ी भौहोंसे सुशोभित, [उदरदेशमें] पृथक्-पृथक् तीन वलियोंसे समन्वित, स्पष्ट नाभिसे युक्त सुन्दर उदरवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, उन्नत तथा रत्नकी आभासे युक्त नखवाले, मनोहर कमलके आकारसदृश हाथोंवाले, कमलके समान मुख तथा नेत्रोंवाले, सुन्दर नासिकावाले, पद्मसदृश हृदयदेशवाले, पद्मके समान नाभिवाले, कान्तिमान्, कुन्द-कलीके समान दन्त-पंक्तियोंसे सुशोभित, सुन्दर केशोंवाले और मुझको देखकर मेरी ओर दाहिना हाथ फैलाकर हँसते हुए वहाँपर विराजमान इस [अन्य व्यक्ति]-को देख रही हूँ॥ ९६—१०२॥

तब कदलीकी भाँति काँपते हुए वहाँपर खड़ी उस व्याकुल मनवाली कन्यासे राजाने कहा—हे वत्से! अब तुम क्या करोगी?॥ १०३॥

उसके ऐसा कहनेपर सन्देहमें पड़े नारदमुनिने कहा—हे कन्ये! उसकी कितनी भुजाएँ हैं; सही-सही बताओ। तब पवित्र मुसकानवाली उस कन्याने कहा—मैं [उसके] दो हाथ देख रही हूँ। इसके बाद पर्वतने उससे कहा—हे शुभे! तुम उसके वक्षःस्थलपर क्या देख रही हो और उसके [बायें] हाथमें क्या देख रही हो; मुझे बताओ। इसपर कन्या उनसे बोली—मैं उसके वक्षःस्थलपर सर्वश्रेष्ठ पंचरूप माला तथा हाथमें धनुष-बाण देख रही हूँ॥ १०४—१०६½॥

उसके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे दोनों उत्तम मुनिश्रेष्ठ मनमें सोचते हुए परस्पर कहने लगे कि यह किसीकी माया हो सकती है। लगता है मायावी तथा तस्कर स्वयं जनार्दन ही [कन्या प्राप्त करनेके लिये] निश्चितरूपसे यहाँ आया हुआ है; यदि ऐसा न होता, तो मेरा यह मुख लंगूरके मुखके समान वह क्यों करता?—ऐसा नारदजी सोचने लगे। इसी प्रकार पर्वतमुनि भी मनमें चिन्ता करने लगे कि मुझे यह वानरत्व कैसे प्राप्त हो गया?॥ १०७—११०॥

ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा।
भवद्भ्यां किमिदं तत्र कृतं बुद्धिविमोहजम्॥ १११

स्वस्थौ भवन्तौ तिष्ठेतां यथा कन्यार्थमुद्यतौ।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ॥ ११२

त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथञ्चन।
आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव मा चिरम्॥ ११३

ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्येष्टदेवताम्।
मायामादाय तिष्ठन्तं तयोर्मध्ये समाहितम्॥ ११४

सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसन्निभम्।
दीर्घबाहुं सुपुष्टाङ्गं कर्णान्तायतलोचनम्॥ ११५

पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा मालां तस्मै ददौ हि सा।
अनन्तरं हि सा कन्या न दृष्टा मनुजैः पुनः॥ ११६

ततो नादः समभवत् किमेतदिति विस्मितौ।
तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः॥ ११७

पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वराङ्गना।
श्रीमती सा समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम्॥ ११८

तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्कृतावतिदुःखितौ।
वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुर्भवनं हरेः॥ ११९

तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवान् हरिः।
मुनिश्रेष्ठौ समायातौ गूहस्वात्मानमत्र वै॥ १२०

तथेत्युक्त्वा च सा देवी प्रहसन्ती चकार ह।
नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम्॥ १२१

प्रियं हि कृतवानद्य मम त्वं पर्वतस्य हि।
त्वमेव नूनं गोविन्द कन्यां तां हृतवानसि॥ १२२

तदनन्तर राजाने नारद तथा पर्वतको प्रणाम करके कहा—आप दोनोंने बुद्धि-विमोह उत्पन्न करनेवाला यह क्या कर दिया? कन्याको प्राप्त करनेके लिये तत्पर आप दोनों अब शान्तचित्त होकर बैठिये॥ १११ १/२॥

राजाके ऐसा कहनेपर वे दोनों मुनिश्रेष्ठ कुपित होकर बोले—आप ही मोह कर रहे हैं; हम दोनों बिलकुल नहीं। आपकी यह पुत्री अब हम दोनोंमेंसे किसी एकका अविलम्ब वरण कर ले॥ ११२-११३॥

तत्पश्चात् अपने इष्ट देवताको प्रणाम करके माला लेकर वह उठी और उसने उन दोनोंके बीचमें समाहितचित्त होकर बैठे हुए, समस्त आभरणोंसे सुशोभित, अतसीपुष्पके समान श्याम वर्णवाले, लम्बी भुजाओंवाले, पुष्ट अंगोंवाले तथा कर्णपर्यन्त विशाल नेत्रोंवाले पूर्वसदृश पुरुषको देखकर उसे माला पहना दी। इसके बाद पुनः [वहाँ उपस्थित] मनुष्योंने उस कन्याको नहीं देखा॥ ११४—११६॥

तब वे दोनों मुनि आश्चर्यचकित हो गये कि यह क्या हुआ? इसके बाद वहाँ [लोगोंके बीच] यह ध्वनि होने लगी कि उसे लेकर पुरुषोत्तम श्रीविष्णु अपने लोकको चले गये। पूर्वजन्ममें उस सुन्दर युवतीने उन भगवान्के लिये निरन्तर तप करके [इस जन्ममें] 'श्रीमती' नामवाली कन्याके रूपमें जन्म लिया और फिर वह श्रीविष्णुको प्राप्त हुई॥ ११७-११८॥

तत्पश्चात् [उस श्रीमतीके द्वारा] तिरस्कृत किये गये वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वासुदेव श्रीविष्णुके प्रति अत्यन्त दुःखित होकर उन श्रीहरिके भवन पहुँचे॥ ११९॥

उन दोनोंको आया हुआ देखकर भगवान् श्रीहरिने श्रीमतीसे कहा कि मुनिश्रेष्ठ [नारद तथा पर्वत] आये हैं, अतः तुम अपनेको यहाँ छिपा लो॥ १२०॥

इस पर 'ठीक है'—ऐसा कहकर उस देवीने हँसते हुए वैसा कर दिया। तब सम्मुख दण्डवत् प्रणाम करके नारदने दामोदर श्रीहरिसे कहा—आपने मेरा तथा पर्वतका प्रिय कार्य तो आज कर दिया; हे गोविन्द! हे सुरश्रेष्ठ! अपनी बुद्धिसे हम दोनोंको धोखा देकर तथा विमोहित करके स्वयं आपने ही उस कन्याका हरण

विमोह्यावां स्वयं बुद्ध्या प्रतार्य सुरसत्तम।
इत्युक्तः पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युत।
पाणिभ्यां प्राह भगवान् भवद्भ्यां किमुदीरितम्॥ १२३

कामवानपि भावोऽयं मुनिवृत्तिरहो किल।
एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः॥ १२४

कर्णमूले मम कथं गोलाङ्गूलमुखं त्विति।
कर्णमूले तमाहेदं वानरत्वं कृतं मया॥ १२५

पर्वतस्य मया विद्वन् गोलाङ्गूलमुखं तव।
मया तव कृतं तत्र प्रियार्थं नान्यथा त्विति॥ १२६

पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः।
शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वचः॥ १२७

प्रियं भवद्भ्यां कृतवान् सत्येनात्मानमालभे।
नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः॥ १२८

धनुष्मान् पुरुषः कोऽत्र तां हृत्वा गतवान् किल।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ॥ १२९

मायाविनो महात्मनो बहवः सन्ति सत्तमाः।
तत्र सा श्रीमती नूनमदृष्ट्वा मुनिसत्तमौ॥ १३०

चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितः।
तां तथा नाहमैच्छं वै भवद्भ्यां विदितं हि तत्॥ १३१

इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतिमानसौ।
कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते॥ १३२

दौरात्म्यं तन्नृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनी नारदपर्वतौ॥ १३३

अम्बरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत्।
नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ॥ १३४

किया है॥ १२१-१२२½॥

उनके ऐसा कहनेपर परम पुरुष अच्युत भगवान् विष्णुने दोनों हाथोंसे अपने कान बन्द करके कहा—आप दोनोंने यह क्या कह दिया! अहो, यह तो वासनामय भाव है, जबकि आपलोग मुनिवृत्तिवाले हैं॥ १२३½॥

[भगवान्‌के द्वारा] इस प्रकार कहे गये उन नारद मुनिने वासुदेवसे उनके कर्णमूलमें कहा—आपने मेरा मुख लंगूरके मुखके समान क्यों कर दिया? तब भगवान् उनके कर्णमूलमें बोले—हे विद्वन्! मैंने ही पर्वतका मुख वानर-जैसा और आपका मुख लंगूर-जैसा कर दिया था; यह सब मैंने आपके हितके लिये ही किया था, इसके विपरीत नहीं॥ १२४—१२६॥

पर्वतने भी वही पूछा; तब उन विष्णुने उनसे भी वैसा ही कहा। इसके बाद भगवान् दामोदर श्रवण कर रहे उन दोनोंके समक्ष यह वचन बोले—मैं शपथपूर्वक सत्य कहता हूँ कि मैंने आप दोनोंका हित ही किया है॥ १२७½॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा नारदने कहा—हम दोनोंके मध्यमें स्थित वह कौन धनुर्धारी पुरुष था, जो उस कन्याका हरण करके चला गया था?॥ १२८½॥

यह सुनकर वासुदेवने उन मुनिवरोंसे कहा—'बहुतसे श्रेष्ठ महात्मा लोग भी मायावी हैं। वहाँ निश्चित ही श्रीमतीने आप दोनों ऋषिसत्तमोंको देखकर ही अन्यका वरण किया होगा। मैं हाथमें चक्र धारण किये चार भुजाओंसे युक्त होकर स्थित रहता हूँ, यह तो आप दोनोंको विदित ही है; मैंने उसे प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं की है'॥ १२९—१३१॥

भगवान्‌ने जब उनसे ऐसा कहा, तब उन दोनोंने प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रणाम करके कहा—हे विभो! हे नारायण! हे जगत्पते! इसमें आपका क्या दोष है; इसमें उस राजाकी ही धृष्टता है, उसीने यह माया रची है॥ १३२½॥

ऐसा कहकर वे दोनों मुनि नारद तथा पर्वत वहाँसे चल पड़े। अम्बरीषके यहाँ आकर नारद तथा पर्वतने उन्हें शाप दे दिया। हम दोनों आये थे, फिर भी उसके बादमें

आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि।
मायायोगेन तस्मात्त्वां तमो ह्यभिभविष्यति॥ १३५

तेन चात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं न वेत्स्यसि।
एवं शापे प्रदत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः॥ १३६

नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोः प्रादुरभूत् क्षणात्।
चक्रवित्रासितं घोरं तावुभौ तम अभ्यगात्॥ १३७

ततः सन्त्रस्तसर्वाङ्गौ धावमानौ महामुनी।
पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं दुरासदम्॥ १३८

कन्यासिद्धिरहो प्राप्ता ह्यावयोरिति वेगितौ।
लोकालोकान्तमनिशं धावमानौ भयार्दितौ॥ १३९

त्राहि त्राहीति गोविन्दं भाषमाणौ भयार्दितौ।
विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते॥ १४०

वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन।
त्राह्यावां पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम॥ १४१

ततो नारायणश्चिन्त्य श्रीमाञ्छ्रीवत्सलाञ्छनः।
निवार्य चक्रं ध्वान्तं च भक्तानुग्रहकाम्यया॥ १४२

अम्बरीषश्च मद्भक्तस्तथैतौ मुनिसत्तमौ।
अनयोरस्य च तथा हितं कार्यं मयाधुना॥ १४३

आहूय तत्तमः श्रीमान् गिरा प्रह्लादयन् हरिः।
प्रोवाच भगवान् विष्णुः शृणुतां मे इदं वचः॥ १४४

ऋषिशापो न चैवासीदन्यथा च वरो मम।
दत्तो नृपाय रक्षार्थं नास्ति तस्यान्यथा पुनः॥ १४५

अम्बरीषस्य पुत्रस्य नप्तुः पुत्रो महायशाः।
श्रीमान् दशरथो नाम राजा भवति धार्मिकः॥ १४६

तस्याहमग्रजः पुत्रो रामनामा भवाम्यहम्।
तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो नाम वै भवेत्॥ १४७

शत्रुघ्नो नाम सव्यश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्मृतः।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना॥ १४८

किसी अन्यको बुलाकर आपने माया रचकर उसे अपनी कन्या दे दी है, अतः तमोगुण आपको आक्रान्त कर लेगा; इसके परिणामस्वरूप आप अपनी आत्माको यथार्थरूपमें बिलकुल नहीं जान पायेंगे॥ १३३—१३५ 1/2 ॥

[मुनियोंके द्वारा] यह शाप दे दिये जानेपर एक अन्धकारपुंज उत्पन्न हुआ और राजाकी ओर बढ़ा; तब उसी क्षण भगवान् विष्णुका चक्र प्रकट हो गया। उस चक्रके द्वारा त्रस्त किया गया वह अन्धकारपुंज अब उन मुनियोंकी ओर चल पड़ा॥ १३६-१३७॥

तत्पश्चात् सन्तप्त अंगोंवाले भागते हुए वे दोनों महामुनि अपने पीछे उस चक्र तथा भयानक अन्धकार-पुंजको देखकर कहने लगे—'अहो, हम दोनोंने शीघ्र ही कन्यासिद्धि प्राप्त कर ली।' भयभीत होकर लोकलोकान्तरमें निरन्तर दौड़ते हुए और 'त्राहि-त्राहि'—ऐसा पुकारते हुए विष्णुलोक जाकर गोविन्दसे बोले—हे नारायण! हे जगत्पते! हे वासुदेव! हे हृषीकेश! हे पद्मनाभ! हे जनार्दन! हे पुण्डरीकाक्ष! हे पुरुषोत्तम! आप [सबके] स्वामी हैं; हम दोनोंकी रक्षा कीजिये॥ १३८—१४१॥

अम्बरीष मेरा भक्त है और वैसे ही ये दोनों मुनिश्रेष्ठ भी मेरे भक्त हैं, अतः इस [अम्बरीष]-का तथा इन दोनों [मुनियों]-का इस समय मुझे हित करना चाहिये—यह सोच करके भक्तोंपर कृपा करनेकी अभिलाषासे ऐश्वर्यसम्पन्न वक्षःस्थलपर श्रीवत्स चिह्न धारण करनेवाले, नारायण, श्रीहरि भगवान् विष्णुने चक्र तथा तमोराशिका निवारण करके उस अन्धकारको बुलाकर वाणीसे उसे प्रसन्न करते हुए बोले—मेरी यह बात सुनो, यह ऋषिका शाप नहीं था, अपितु मेरा वरदान ही था, जिसे राजाकी रक्षाके लिये मैंने उन्हें प्रदान किया था; इसके विपरीत और कुछ भी नहीं है। इन राजा अम्बरीषके पुत्रके नातीके पुत्र महायशस्वी तथा ऐश्वर्यशाली 'दशरथ' नामक धर्मात्मा राजा होंगे। मैं उन्हींके 'राम' नामक ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा। मेरा दाहिना हाथ उस समय भरत नामसे और बायाँ हाथ शत्रुघ्न नामसे प्रकट होंगे और ये शेषनाग लक्ष्मणके रूपमें प्रसिद्ध होंगे। उस समय तुम मेरे पास

मुनिश्रेष्ठौ च हित्वा त्वं इति स्माह च माधवः।
एवमुक्तं तमो नाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै॥ १४९

आना और इस समय राजाको तथा इन मुनिवरोंको छोड़कर चले जाओ—उन माधवने [उस अन्धकारसे] ऐसा कहा। भगवान्‌के ऐसा कहनेपर वह अन्धकार उसी क्षण नष्ट हो गया और निवारित किया गया वह विष्णुचक्र पूर्वकी भाँति व्यवस्थित हो गया॥ १४२—१४९१/२ ॥

निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत।
मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ १५०

निर्गतौ शोकसन्तप्तौ ऊचतुस्तौ परस्परम्।
अद्यप्रभृति देहान्तमावां कन्यापरिग्रहम्॥ १५१

न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी।
योगध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ॥ १५२

वे मुनिश्रेष्ठ भयसे मुक्त हो गये और जनार्दनको प्रणाम करके वहाँसे निकल गये। शोकसन्तप्त वे दोनों मुनि आपसमें कहने लगे कि आजसे मृत्युपर्यन्त हम दोनों कन्यापरिग्रह (विवाह) नहीं करेंगे। ऐसा कहकर और प्रतिज्ञा करके वे दोनों ऋषि पूर्वकी भाँति योगध्यानपरायण तथा शुद्धविचारवाले हो गये॥ १५०—१५२॥

अम्बरीषश्च राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम्।
सभृत्यज्ञातिसम्पन्नो विष्णुलोकं जगाम वै॥ १५३

राजा अम्बरीष भी भलीभाँति पृथ्वीका पालन करके अपने सेवकों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित विष्णुलोक चले गये॥ १५३॥

मानार्थमम्बरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः।
रामो दाशरथिर्भूत्वा नात्मवेदीश्वरोऽभवत्॥ १५४

भगवान् विष्णु भी अम्बरीषके मानके लिये तथा दोनों मुनिश्रेष्ठोंके वचनकी रक्षाके लिये दशरथ-पुत्र राम हुए और वे प्रभु अपने स्वरूपको नहीं जान सके॥ १५४॥

मुनयश्च तथा सर्वे भृग्वाद्या मुनिसत्तमाः।
माया न कार्या विद्वद्भिरित्याहुः प्रेक्ष्य तं हरिम्॥ १५५

उन श्रीहरिको देखकर सभी मुनिगण, भृगु आदि मुनिश्रेष्ठ यह कहने लगे कि विद्वानोंको माया नहीं रचनी चाहिये॥ १५५॥

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम्।
मायां विष्णोर्विनिन्द्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतुः॥ १५६

नारद तथा पर्वत भी [अपने द्वारा किये गये] मूर्खतापूर्ण कार्यको दीर्घकालतक सोचकर तथा विष्णुकी मायाकी निन्दा करके रुद्रभक्त हो गये॥ १५६॥

एतद्धि कथितं सर्वं मया युष्माकमद्य वै।
अम्बरीषस्य माहात्म्यं मायावित्वं च वै हरेः॥ १५७

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वापि मानवः।
मायां विसृज्य पुण्यात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥ १५८

इदं पवित्रं परमं पुण्यं वेदैरुदीरितम्।
सायं प्रातः पठेन्नित्यं विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्॥ १५९

[हे मुनियो!] मैंने अम्बरीषका माहात्म्य तथा श्रीहरिका मायावी होना—यह सब आपलोगोंको बता दिया। जो मनुष्य इसे पढ़ता, सुनता अथवा दूसरोंको सुनाता है वह विशुद्ध आत्मावाला होकर मायाका त्याग करके रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो वेदोंके द्वारा कहे गये इस परम पवित्र तथा पुण्यप्रद [आख्यान]-का प्रतिदिन प्रातः तथा सायं पाठ करता है, वह विष्णुसायुज्य प्राप्त करता है॥ १५७—१५९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे श्रीमत्याख्यानं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'श्रीमती-आख्यान' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

भगवान् विष्णुसे अलक्ष्मी (ज्येष्ठा—दरिद्रा) तथा लक्ष्मीका प्रादुर्भाव एवं लक्ष्मी तथा दरिद्राके निवासयोग्य स्थानोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

मायावित्वं श्रुतं विष्णोर्देवदेवस्य धीमतः।
कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात्॥ १
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण तत्त्वतः।

सूत उवाच

अनादिनिधनः श्रीमान् धाता नारायणः प्रभुः॥ २
जगद्द्वैधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः।
विष्णुर्वै ब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान् सनातनान्॥ ३
श्रियं पद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत्।
ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान्॥ ४
अधर्मं च महातेजा भागमेकमकल्पयत्।
अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः॥ ५
ज्येष्ठा तेन समाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः।
अमृतोद्भववेलायां विषानन्तरमुल्बणात्॥ ६
अशुभा सा तथोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम्।

ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः॥ ७
दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभां तदा।
ज्येष्ठां तां परिपूर्णोऽसौ मनसा वीक्ष्य धिष्ठिताम्॥ ८
लोकं चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा।
यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः॥ ९
वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूमस्तथैव च।
भस्माङ्गिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता॥ १०
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इतस्ततः।
ज्येष्ठामेवंविधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः॥ ११

ऋषिगण बोले— देवोंके भी देव धीमान् विष्णुका मायावी होना तो हमलोगोंने सुन लिया। हे लोमहर्षण! अब आप हमलोगोंको यथार्थरूपसे यह बतायें कि देवदेव जनार्दनसे ज्येष्ठा (अलक्ष्मी)-की उत्पत्ति कैसे हुई?॥ १ १/२॥

सूतजी बोले— आदि तथा अन्तसे रहित, ऐश्वर्यशाली, प्रभुतासम्पन्न तथा जगत्के स्वामी नारायण विष्णुने प्राणियोंको व्यामोहमें डालनेके लिये इस जगत्को दो प्रकारका बनाया है। उन महातेजस्वी विष्णुने ब्राह्मणों, वेदों, सनातन वैदिक धर्मों, श्री तथा श्रेष्ठ पद्माकी उत्पत्ति करके एक भाग किया और अशुभ तथा ज्येष्ठा अलक्ष्मी, वेदविरोधी अधम मनुष्यों तथा अधर्मका निर्माण करके एक दूसरा भाग किया॥ २—४ १/२॥

हे श्रेष्ठ द्विजगण! भगवान् जनार्दनने पहले अलक्ष्मीका सृजन करके ही पद्मा (लक्ष्मी)-का सृजन किया है, इसीलिये अलक्ष्मी ज्येष्ठा कही गयी हैं। अमृतकी उत्पत्तिके समय महाभयंकर विष निकलनेके पश्चात् पहले वे ज्येष्ठा अशुभ अलक्ष्मी उत्पन्न हुई, ऐसा सुना गया है। उसके अनन्तर विष्णुभार्या लक्ष्मी पद्मा आविर्भूत हुईं॥ ५—७॥

तब [लक्ष्मीके विवाहसे पूर्व] दुःसह नामक विप्रर्षिने उस अशुभा ज्येष्ठाके साथ विवाह किया तथा उसको परिगृहीत देख स्वयंको परिपूर्ण माना; तब वे मुनि प्रसन्नचित्त होकर उसके साथ लोकमें विचरण करने लगे। हे विप्रो! जिस स्थानपर विष्णु तथा महात्मा शिवके नामका घोष तथा वेदध्वनि होती थी, हवनका धूम दीखता था अथवा अंगोंमें भस्म धारण किये हुए लोग रहते थे, वहाँपर वह अलक्ष्मी भयातुर होकर अपने दोनों कान बन्द करके इधर-उधर भागती हुई जाती थी। उस ज्येष्ठाको इस प्रकारके स्वभाववाली देखकर मुनि दुःसह उद्विग्न हो उठे॥ ८—११॥

तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः।
तपो महद्वने घोरे याति कन्या प्रतिग्रहम्॥ १२
न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः।
योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनिः॥ १३
तत्रायान्तं महात्मानं मार्कण्डेयमपश्यत।
प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत्॥ १४
भार्येयं भगवन् मह्यं न स्थास्यति कथञ्चन।
किं करोमीति विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया॥ १५
प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम्।

इसके बाद वे महामुनि उसके साथ घोर वनमें जाकर कठोर तप करने लगे। वे सोचने लगे कि कन्याका प्रतिग्रह भविष्यमें नहीं करूँगा—ऐसा कहकर और प्रतिज्ञा करके वे ऋषि योगज्ञानपरायण हो गये। [किसी समय] उन विशुद्धात्मा योगीश्वर मुनिने वहाँपर आते हुए मार्कण्डेयजीको देखा। उन महात्मा मुनिको प्रणाम करके ऋषि दुःसहने कहा—हे भगवन्! मेरी यह भार्या मेरे साथ कभी नहीं रहेगी। हे विप्रर्षे! मैं क्या करूँ; अपनी इस भार्याके साथ कहाँ जाऊँ और कहाँ न जाऊँ?॥ १२—१५१/२॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु दुःसह सर्वत्र अकीर्तिरशुभान्विता॥ १६
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता।

मार्कण्डेयजी बोले—हे दुःसह! सुनो, अकीर्ति सर्वत्र अशुभसे युक्त रहती है; यह अतुलनीय अलक्ष्मी 'ज्येष्ठा'—इस नामसे पुकारी जाती है॥ १६१/२॥

नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः॥ १७
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
स्थिता यत्र जना नित्यं मा विशेथाः कथञ्चन॥ १८
नारायण हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव।
अच्युतानन्त गोविन्द वासुदेव जनार्दन॥ १९
रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमो नमः।
नमः शिवतरायेति शङ्करायेति सर्वदा॥ २०
महादेव महादेव महादेवेति कीर्तयेत्।
उमायाः पतये चैव हिरण्यपतये सदा॥ २१
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषाङ्काय नमो नमः।
नृसिंह वामनाचिन्त्य माधवेति च ये जनाः॥ २२
वक्ष्यन्ति सततं हृष्टा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।
वैश्याः शूद्राश्च ये नित्यं तेषां धनगृहादिषु।
आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेथाः कथञ्चन॥ २३
ज्वालामालाकरालं च सहस्रादित्यसन्निभम्।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हन्ति सदाशुभम्॥ २४

जहाँ नारायणके भक्त, वेदमार्गका अनुसरण करनेवाले, रुद्रभक्त, महात्मागण तथा भस्मसे अनुलिप्त शरीरवाले लोग सदा रहते हों, वहाँ तुम कभी भी प्रवेश मत करना। 'हे नारायण! हे हृषीकेश! हे पुण्डरीकाक्ष! हे माधव! हे अच्युतानन्त! हे गोविन्द! हे वासुदेव! हे जनार्दन! हे रुद्र! हे रुद्र! हे रुद्र!' शिवको बार-बार नमस्कार है, शिवतरको नमस्कार है, शंकरको सर्वदा नमस्कार है, हे महादेव! हे महादेव! हे महादेव!—ऐसा कहते रहनेवाले; आप उमापति, हिरण्यपति, हिरण्यबाहु तथा वृषांकको सदा बार-बार नमस्कार है, हे नृसिंह! हे वामन! हे अचिन्त्य! हे माधव!—ऐसा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र प्रसन्न होकर नित्य बोलते रहते हैं; उनके धन-आदि गृहोंमें, उद्यानमें तथा गोष्ठोंमें कभी भी प्रवेश मत करना; क्योंकि विकराल अग्नि-ज्वालाओं तथा हजारों सूर्योंके समान तेजोमय अत्यन्त उग्र विष्णुचक्र उन लोगोंके अमंगलका सदा नाश कर देता है॥ १७—२४॥

स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् हि वर्तते।
तद्धित्वा चान्यमागच्छ सामघोषोऽथ यत्र वा॥ २५
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः।
वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान् विसर्जयेत्॥ २६

जिस घरमें स्वाहाकार तथा वषट्कार होता हो तथा जहाँपर सामवेदकी ध्वनि होती हो, उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाना। जो लोग नित्य वेदाभ्यासमें संलग्न हों, नित्यकर्ममें तत्पर हों तथा वासुदेवकी पूजामें रत हों, उन्हें दूरसे ही त्याग देना॥ २५-२६॥

अग्निहोत्रं गृहे येषां लिङ्गार्चा वा गृहेषु च।
वासुदेवतनुर्वापि चण्डिका यत्र तिष्ठति॥ २७

दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्वपापविवर्जितान्।
नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजन्ति च महेश्वरम्॥ २८

तान् हित्वा व्रज चान्यत्र दुःसह त्वं सहानया।
श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा॥ २९

रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्यं तान् विवर्जयेत्।

दुःसह उवाच

यस्मिन् प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम॥ ३०

त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा।

मार्कण्डेय उवाच

न श्रोत्रिया द्विजा गावो गुरवोऽतिथयः सदा।
यत्र भर्ता च भार्या च परस्परविरोधिनौ॥ ३१

सभार्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः।
देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः॥ ३२

विनिन्द्यो यत्र भगवान् विशस्व भयवर्जितः।
वासुदेवरतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदाशिवः॥ ३३

जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणाम्।
पर्वण्यभ्यर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः॥ ३४

कृष्णाष्टम्यां च रुद्रस्य सन्ध्यायां भस्मवर्जिताः।
चतुर्दश्यां महादेवं न यजन्ति च यत्र वै॥ ३५

विष्णोर्नामविहीना ये सङ्गताश्च दुरात्मभिः।
नमः कृष्णाय शर्वाय शिवाय परमेष्ठिने॥ ३६

ब्राह्मणाश्च नरा मूढा न वदन्ति दुरात्मकाः।
तत्रैव सततं वत्स सभार्यस्त्वं समाविश॥ ३७

वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजादयो न च।
पितृकर्मविहीनांस्तु सभार्यस्त्वं समाविश॥ ३८

जिनके घरमें अग्निहोत्र तथा शिवलिङ्गका पूजन होता हो और जिनके घरोंमें वासुदेव तथा भगवती चण्डिकाकी मूर्ति विराजमान हो, समस्त पापोंसे रहित उन लोगोंको छोड़कर दूर चले जाना। हे दुःसह! जो लोग नित्य तथा नैमित्तिक यज्ञोंके द्वारा महेश्वरकी आराधना करते हैं, उन्हें छोड़कर तुम इसके साथ अन्यत्र चले जाना। जो लोग वैदिकों, ब्राह्मणों, गौओं, गुरुओं, अतिथियों तथा रुद्रभक्तोंकी नित्य पूजा करते हैं, उनके पास मत जाना॥ २७—२९१/२॥

दुःसह बोला—हे मुनिश्रेष्ठ! जिस स्थानमें मेरा प्रवेश हो सके; उसे आप मुझे बतायें, जिससे आपके वचनसे मैं भयरहित होकर इनके घरमें सदा प्रवेश करूँ॥ ३०१/२॥

मार्कण्डेयजी बोले—जिसके घरमें वैदिकों, द्विजों, गौओं, गुरुओं तथा अतिथियोंकी पूजा न होती हो और जहाँ पति-पत्नी एक-दूसरेके विरोधी हों, उसके घरमें तुम निर्भय होकर अपनी भार्याके साथ प्रवेश करो। जहाँपर देवाधिदेव, महादेव तथा तीनों भुवनोंके स्वामी भगवान् रुद्रकी निन्दा होती हो, वहाँ तुम भयरहित होकर प्रवेश करो॥ ३१-३२१/२॥

जहाँ भगवान् वासुदेवके प्रति भक्ति न हो; जहाँ सदाशिव न स्थापित हों; जहाँ मनुष्योंके घरमें जप-होम आदि न होता हो, भस्म-धारण न किया जाता हो, पर्वपर विशेष करके चतुर्दशी तथा कृष्णाष्टमी तिथिपर रुद्रपूजन न होता हो, लोग सन्ध्योपासनके समय भस्मधारण न करते हों; जहाँपर लोग चतुर्दशीके दिन महादेवका यजन न करते हों, जहाँ लोग विष्णुके नाम-संकीर्तनसे विमुख हों; जहाँ लोग दुष्टात्मावाले पुरुषोंके साथ रहते हों; जहाँ ब्राह्मण तथा विकृत मनवाले मनुष्य 'कृष्णको नमस्कार है, परमेष्ठी शर्वको नमस्कार है'—ऐसा नहीं कहते हों, वहींपर तुम अपनी भार्याके साथ सदा प्रवेश करो॥ ३३—३७॥

जहाँ वेदध्वनि, गुरुपूजा आदि न होते हों, उन स्थानोंपर और पितृकर्म (श्राद्ध आदि)-से विमुख लोगोंके यहाँ अपनी भार्यासहित निवास करो।
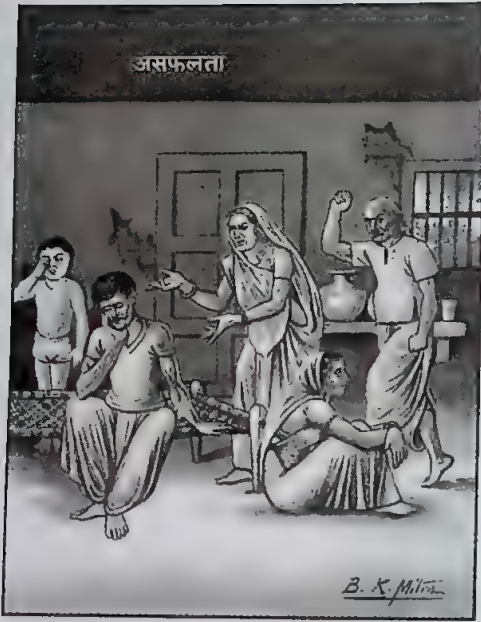
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्तते मिथः।
अनया सार्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः॥ ३९
लिङ्गार्चनं यस्य नास्ति यस्य नास्ति जपादिकम्।
रुद्रभक्तिर्विनिन्दा च तत्रैव विश निर्भयः॥ ४०
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोऽपि वा।
न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्यस्त्वं समाविश॥ ४१
बालानां प्रेक्षमाणानां यत्रादत्त्वा त्वभक्षयन्।
भक्ष्याणि तत्र संहृष्टः सभार्यस्त्वं समाविश॥ ४२
अनभ्यर्च्य महादेवं वासुदेवमथापि वा।
अहुत्वा विधिवद्यत्र तत्र नित्यं समाविश॥ ४३
पापकर्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परम्।
गृहे यस्मिन् समासन्ते देशे वा तत्र संविश॥ ४४
प्राकारागारविध्वंसा न चैवेड्या कुटुम्बिनी।
तद्गृहं तु समासाद्य वस नित्यं हि हृष्टधीः॥ ४५
यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी।
ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समाविश॥ ४६
अगस्त्यार्कादयो वापि बन्धुजीवो गृहेषु वै।
करवीरो विशेषेण नन्द्यावर्तमथापि वा॥। ४७
मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्वं समाविश।
कन्या च यत्र वै वल्ली द्रोही वा च जटी गृहे॥ ४८
बहुला कदली यत्र सभार्यस्त्वं समाविश।
तालं तमालं भल्लातं तित्तिडीखण्डमेव च॥ ४९
कदम्बः खादिरं वापि सभार्यस्त्वं समाविश।
न्यग्रोधं वा गृहे येषामश्वत्थं चूतमेव वा॥ ५०

जिस घरमें रात्रि-वेलामें [लोगोंके बीच] परस्पर कलह होता हो, वहाँ तुम भयमुक्त होकर इसके साथ निरन्तर निवास करो॥ ३८-३९॥

जिसके यहाँ शिवलिङ्गका पूजन न होता हो तथा जिसके यहाँ जप आदि न होते हों, अपितु रुद्रभक्तिकी निन्दा होती हो, वहींपर तुम निर्भय होकर प्रवेश करो। जिस घरमें अतिथि, श्रोत्रिय (वैदिक), गुरु, विष्णुभक्त और गायें न हों, वहाँ तुम अपनी भार्यासहित निवास करो॥ ४०-४१॥

जहाँ बालकोंके देखते रहनेपर उन्हें बिना दिये ही लोग भक्ष्य पदार्थ स्वयं खा जाते हों, उस स्थानपर तुम प्रसन्न होकर सपत्नीक प्रवेश करो। महादेव अथवा भगवान् विष्णुका पूजन न करके तथा विधिपूर्वक हवन न करके जहाँ लोग रहते हों, वहाँ तुम सदा निवास करो॥ ४२-४३॥

जिस घरमें या देशमें पापकृत्यमें संलग्न रहनेवाले, मूर्ख तथा दयाहीन लोग रहते हों, वहाँपर तुम प्रवेश करो। घर और घरकी चहारदीवारीको तोड़नेवाली अर्थात् घरकी मान-मर्यादाको भंग करनेवाली, दुःशीलताके कारण किसी भी प्रकार प्रसन्न न होनेवाली गृहिणी जिस घरमें हो, उस घरमें प्रसन्न मनसे सदा निवास करो॥ ४४-४५॥

जहाँ काँटेदार वृक्ष हों, जहाँ निष्पाव (सेम आदि)-की लता हो और जहाँ पलाशका वृक्ष हो, वहाँ तुम अपनी पत्नीसहित निवास करो। जिनके घरोंमें अगस्त्य, आक आदि दूधवाले वृक्ष, बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-का पौधा, विशेषरूपसे करवीर, नन्द्यावर्त (तगर) और मल्लिकाके वृक्ष हों, उनके घरोंमें तुम पत्नीके साथ प्रवेश करो। जिस घरमें अपराजिता, अजमोदा, निम्ब, जटामांसी, बहुला (नीलका पौधा), केलेके वृक्ष हों, वहाँपर तुम सपत्नीक प्रवेश करो। जहाँ ताल, तमाल, भल्लात (भिलावा), इमली, कदम्ब और खैरके वृक्ष हों, वहाँ तुम अपनी भार्याके साथ प्रवेश करो। जिनके घरोंमें बरगद, पीपल, आम, गूलर तथा

उदुम्बरं वा पनसं सभार्यस्त्वं समाविश।
यस्य काकगृहं निम्बे आरामे वा गृहेऽपि वा॥ ५१

दण्डिनी मुण्डिनी वापि सभार्यस्त्वं समाविश।
एका दासी गृहे यत्र त्रिगवं पञ्चमाहिषम्॥ ५२

षडश्वं सप्तमातङ्गं सभार्यस्त्वं समाविश।
यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डाकिनी॥ ५३

क्षेत्रपालोऽथ वा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश।
भिक्षुबिम्बं च वै यस्य गृहे क्षपणकं तथा॥ ५४

बौद्धं वा बिम्बमासाद्य तत्र पूर्णं समाविश।
शयनासनकालेषु भोजनाटनवृत्तिषु॥ ५५

येषां वदति नो वाणी नामानि च हरेः सदा।
तद्गृहं ते समाख्यातं सभार्यस्य निवेशितुम्॥ ५६

पाषण्डाचारनिरताः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः।
विष्णुभक्तिविनिर्मुक्ता महादेवविनिन्दकाः॥ ५७

नास्तिकाश्च शठा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश।
सर्वस्मादधिकत्वं ये न वदन्ति पिनाकिनः॥ ५८

साधारणं स्मरन्त्येनं सभार्यस्त्वं समाविश।
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शक्रः सर्वसुरेश्वरः॥ ५९

रुद्रप्रसादजाश्चेति न वदन्ति दुरात्मकाः।
ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः शक्रश्च सम एव च॥ ६०

वदन्ति मूढाः खद्योतं भानुं वा मूढचेतसः।
तेषां गृहे तथा क्षेत्रे आवासे वा सदानया॥ ६१

विश भुङ्क्ष्व गृहं तेषां अपि पूर्णमनन्यधीः।
येऽश्नन्ति केवलं मूढाः पक्वमन्नं विचेतसः॥ ६२

स्नानमङ्गलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश।
या नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता॥ ६३

कटहलके वृक्ष हों, उनके यहाँ तुम अपनी भार्याके साथ निवास करो। जिसके निम्बवृक्षमें, बगीचेमें अथवा घरमें कौवोंका निवास हो और जिसके घरमें दण्डधारिणी तथा कपालधारिणी स्त्री हो, उसके यहाँ तुम पत्नीसहित निवास करो॥ ४६—५१ १/२॥

जिस घरमें एक दासी, तीन गायें, पाँच भैंसे, छः घोड़े और सात हाथी हों, वहाँ तुम अपनी भार्यासहित प्रवेश करो। जिस घरमें प्रेतरूपा तथा डाकिनी काली-प्रतिमा स्थापित हो और जहाँ भैरव-मूर्ति हो, वहाँ तुम अपनी पत्नीके साथ प्रवेश करो। जिस घरमें भिक्षुबिम्ब आदि हो, वहाँ तुम यथेच्छ निवास करो। सोने, बैठने, भोजन तथा भ्रमणके समयोंमें जिनकी वाणी (जिह्वा) सदा भगवान् श्रीहरिके नामोंका उच्चारण नहीं करती, उनका घर सपत्नीक तुम्हारे निवास करनेके लिये मैं बता रहा हूँ॥ ५२—५६॥

जहाँ दम्भपूर्ण आचारमें निरत रहनेवाले, श्रुति तथा स्मृतिसे विमुख रहनेवाले, विष्णुभक्तिसे विहीन, महादेवकी निन्दा करनेवाले, नास्तिक तथा शठ लोग हों, वहाँपर तुम पत्नीसहित निवास करो॥ ५७ १/२॥

जो लोग भगवान् शिवको सबसे श्रेष्ठ नहीं कहते हैं और इन्हें साधारण समझते हैं, उनके यहाँ तुम भार्यासहित निवास करो। कलुषित मनवाले जो लोग 'ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा सभी देवताओंके स्वामी इन्द्र—ये रुद्रके प्रसादसे आविर्भूत हैं'—ऐसा नहीं कहते हैं और ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा इन्द्रको इनके समान कहते हैं; साथ ही जो मूढ़ तथा अज्ञानी लोग सूर्यको खद्योत कहते हैं—उनके गृह, क्षेत्र तथा आवासमें तुम सदा इसके साथ निवास करो और पूर्ण रूपसे अनन्यबुद्धि होकर उनके घरमें भोग करो॥ ५८—६१ १/२॥

जो मूर्ख तथा अज्ञानी लोग अकेले ही पका हुआ अन्न खाते हैं और स्नान आदि मंगलकार्योंसे विहीन रहते हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश करो। जो स्त्री

सर्वभक्षरता नित्यं तस्याः स्थाने समाविश।
मलिनास्याः स्वयं मर्त्या मलिनाम्बरधारिणः॥ ६४

मलदन्ता गृहस्थाश्च गृहं तेषां समाविश।
पादशौचविनिर्मुक्ताः सन्ध्याकाले च शायिनः॥ ६५

सन्ध्यायामश्नुते ये वै गृहं तेषां समाविश।
अत्याशनरता मर्त्या अतिपानरता नराः॥ ६६

द्यूतवादक्रियामूढाः गृहं तेषां समाविश।
ब्रह्मस्वहारिणो ये चायोग्यांश्चैव यजन्ति वा॥ ६७

शूद्रान्नभोजिनो वापि गृहं तेषां समाविश।
मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः॥ ६८

परदाररता मर्त्या गृहं तेषां समाविश।
पर्वण्यनर्चाभिरता मैथुने वा दिवा रताः॥ ६९

सन्ध्यायां मैथुनं येषां गृहं तेषां समाविश।
पृष्ठतो मैथुनं येषां श्वानवत् मृगवच्च वा॥ ७०

जले वा मैथुनं कुर्यात्सभार्यस्त्वं समाविश।
रजस्वलां स्त्रियं गच्छेच्चाण्डालीं वा नराधमः॥ ७१

कन्यां वा गोगृहे वापि गृहं तेषां समाविश।
बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः॥ ७२

रुद्रभक्तिविहीना ये गृहं तेषां समाविश।
शृङ्गैर्दिव्यौषधैः क्षुद्रैः शेफ आलिप्य गच्छति॥ ७३

भगद्रावं करोत्यस्मात्सभार्यस्त्वं समाविश।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान्निर्मार्ज्य नयने तदा॥ ७४

ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसङ्काशस्तत्रैवान्तर्द्धिमातनोत् ।
दुःसहश्च तथोक्तानि स्थानानि च समीयिवान्॥ ७५

शौचाचारसे विमुख हो, देहशुद्धिसे रहित हो तथा सभी [भक्ष्याभक्ष्य] पदार्थोंके भक्षणमें तत्पर रहती हो, उसके घरमें तुम नित्य निवास करो॥ ६२-६३१/२॥

जो गृहस्थ मानव स्वयं मलिन मुखवाले, गन्दे वस्त्र धारण करनेवाले तथा मलयुक्त दाँतोंवाले हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश करो। जो लोग अपना पैर नहीं धोते, सन्ध्याके समय शयन करते हैं और सन्ध्यावेलामें भोजन करते हैं, उनके घरमें तुम निवास करो। जो मूर्ख मनुष्य बहुत भोजन करते हैं, अत्यधिक पान करते हैं और जुआ-सम्बन्धी वार्ता करने तथा उसके खेलनेमें तत्पर रहते हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश करो॥ ६४—६६१/२॥

जो लोग ब्राह्मणके धनका हरण करते हैं, अपात्रोंका पूजन करते हैं और शूद्रोंका अन्न खाते हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश करो। जो मनुष्य मद्यपानमें संलग्न रहते हैं, पापपरायण हैं, मांस-भक्षणमें तत्पर रहते हैं और परायी स्त्रियोंमें आसक्त रहते हैं, उनके घरमें तुम निवास करो॥ ६७-६८१/२॥

जो लोग पर्वके अवसरपर भगवान्‌की पूजामें संलग्न नहीं रहते, दिनमें तथा सन्ध्याके समय मैथुन करते हैं, उनके घरमें तुम निवास करो। जो लोग कुत्ते तथा मृगकी भाँति पीछेसे मैथुन करते हैं और जलमें मैथुन करते हैं, उनके यहाँ अपनी भार्यासहित तुम निवास करो। जो नराधम रजस्वला स्त्रीके साथ अथवा चाण्डालीके साथ अथवा कन्याके साथ अथवा गोशालामें सम्भोग करता है; उसके घरमें तुम निवास करो। अधिक कहनेसे क्या लाभ! जो लोग नित्यकर्मसे विमुख तथा रुद्रभक्तिसे रहित हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश करो। कृत्रिम साधनोंसे सम्पन्न होकर जो मनुष्य स्त्रीके पास जाता है और स्त्रीसंसर्ग करता है, उसके यहाँ तुम अपनी भार्यासहित प्रवेश करो॥ ६९—७३१/२॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे ऐश्वर्यशाली तथा ब्रह्मतुल्य ब्रह्मर्षि [मार्कण्डेय] मुनि अपने नेत्र धोकर वहींपर अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् [मार्कण्डेयऋषिके द्वारा] बताये गये स्थानों, विशेष

विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निन्दारतात्मनाम्।
सभार्यो मुनिशार्दूलः सैषा ज्येष्ठा इति स्मृता॥ ७६

दुःसहस्तामुवाचेदं तडागाश्रममन्तरे।
आस्व त्वमत्र चाहं वै प्रवेक्ष्यामि रसातलम्॥ ७७

आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः।
आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्ता तमुवाच सा॥ ७८

किमश्नामि महाभाग को मे दास्यति वै बलिम्।
इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह याः स्त्रियस्त्वां यजन्ति वै॥ ७९

बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासां च गृहं विश।
इत्युक्त्वा त्वाविशत्तत्र पातालं बिलयोगतः॥ ८०

अद्यापि च विनिर्मग्नो मुनिः स जलसंस्तरे।
ग्रामपर्वतबाह्येषु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः॥ ८१

प्रसङ्गाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।
लक्ष्म्या दृष्टस्तया लक्ष्मीः सा तमाह जनार्दनम्॥ ८२

भर्ता गतो महाबाहो बिलं त्यक्त्वा स मां प्रभो।
अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोऽस्तु ते॥ ८३

सूत उवाच

इत्युक्तो भगवान् विष्णुः प्रहस्याह जनार्दनः।
ज्येष्ठामलक्ष्मीं देवेशो माधवो मधुसूदनः॥ ८४

श्रीविष्णुरुवाच

ये रुद्रमनघं शर्वं शङ्करं नीललोहितम्।
अम्बां हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि॥ ८५

मद्भक्तान्निन्दयन्त्यत्र तेषां वित्तं तवैव हि।
येऽपि चैव महादेवं विनिन्द्यैव यजन्ति माम्॥ ८६

मूढा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनं तव।
यस्याज्ञया ह्यहं ब्रह्मा प्रसादाद्वर्तते सदा॥ ८७

ये यजन्ति विनिन्द्यैव मम विद्वेषकारकाः।
मद्भक्ता नैव ते भक्ता इव वर्तन्ति दुर्मदाः॥ ८८

करके देवोंके भी देव विष्णुकी निन्दामें लगे रहनेवाले लोगोंके यहाँ वे मुनिश्रेष्ठ दुःसह अपनी भार्यासहित पहुँचे। किसी समय [एक तड़ाग देखकर] दुःसहमुनिने ये जो ज्येष्ठा नामसे कही गयी हैं, उनसे यह कहा— तुम इस तड़ागके तटपर आश्रममें स्थित पीपलवृक्षमें रहो; मैं रसातलमें प्रवेश करूँगा। अपने दोनोंके निवासयोग्य स्थान देखकर मैं तुम्हारे पास पुनः आ जाऊँगा। उनके ऐसा कहनेपर उस (ज्येष्ठा)-ने उनसे कहा—हे महाभाग! मैं क्या खाऊँगी; मुझे कौन बलि प्रदान करेगा?॥ ७४—७८ १/२ ॥

उसके ऐसा कहनेपर मुनिने उससे कहा—जो स्त्रियाँ बलियों (भोज्यपदार्थों) तथा पुष्प-धूपसे तुम्हारा पूजन करती हैं, उनके घरमें तुम प्रवेश मत करना॥ ७९ १/२ ॥

ऐसा कहकर वे बिल-मार्गसे पातालमें प्रविष्ट हुए। वे मुनि आज भी उस जलसंस्तरमें निमग्न हैं और वह अशुभा अलक्ष्मी ग्राम, पर्वत आदि बाह्य स्थानोंमें रह रही है॥ ८०-८१ ॥

संयोगवश किसी समय उस अलक्ष्मीने देवोंके भी देवेश तथा तीनों लोकोंके स्वामी विष्णुको लक्ष्मीके साथ देख लिया; तब अलक्ष्मीने उन जनार्दनसे कहा—हे प्रभो! हे महाबाहो! मेरे पति मुझे छोड़कर इस बिलमें प्रविष्ट हो गये हैं। हे जगन्नाथ! मैं अनाथ हूँ, अतः आप मुझे आजीविका प्रदान करें; आपको नमस्कार है॥ ८२-८३ ॥

सूतजी बोले—[ज्येष्ठाके द्वारा] ऐसा कहे गये जनार्दन, देवेश्वर, माधव तथा मधुसूदन भगवान् विष्णु उस ज्येष्ठा अलक्ष्मीसे हँसकर कहने लगे॥ ८४॥

श्रीविष्णु बोले—जो लोग अनघ, शर्व, शंकर, नीललोहित भगवान् रुद्र तथा [समस्त] लोकोंको उत्पन्न करनेवाली माता पार्वतीकी और मेरे भक्तोंकी निन्दा करते हैं, उनका धन तुम्हारा ही है। जो लोग महादेवकी निन्दा करके मेरा पूजन करते हैं, मेरे वे भक्त निश्चय ही अज्ञानी तथा अभागे हैं; उनका भी धन तुम्हारा है। जिनकी आज्ञासे तथा कृपासे मैं (विष्णु) तथा ब्रह्मा सदा क्रियाशील रहते हैं, उनका तिरस्कार करके जो लोग मेरा पूजन करते हैं, वे मेरे विद्वेषी हैं; वे मेरे भक्त बिलकुल नहीं हैं, अपितु

तेषां गृहं धनं क्षेत्रमिष्टापूर्तं तवैव हि।

वे मदोन्मत्त हैं और मेरा भक्त होनेका पाखण्ड करते हैं, उनका भी घर, धन, खेत तथा इष्टापूर्त (यज्ञ आदि तथा तालाब, कुआँ खुदवानेका पुण्य कार्य) सब कुछ तुम्हारा है॥ ८५—८८$^{1}/_{2}$॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां परित्यज्य लक्ष्म्यालक्ष्मीं जनार्दनः॥ ८९

जजाप भगवान् रुद्रमलक्ष्मीक्षयसिद्धये।
तस्मात्प्रदेयस्तस्यै च बलिर्नित्यं मुनीश्वराः॥ ९०

विष्णुभक्तैर्न सन्देहः सर्वयत्नेन सर्वदा।
अङ्गनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजाः॥ ९१

सूतजी बोले—ऐसा कहकर उन अलक्ष्मीको विदा करके भगवान् जनार्दन अलक्ष्मीके क्षयकी सिद्धिके लिये लक्ष्मीके साथ रुद्रका जप करने लगे। अतः हे मुनीश्वरो! सभी विष्णुभक्तोंको चाहिये कि वे पूर्ण प्रयत्नसे उस अलक्ष्मीको नित्य-निरन्तर बलि प्रदान करें; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे द्विजो! सभी स्त्रियोंको अनेक प्रकारके बलि-उपचारोंसे सदा [ज्येष्ठा—अलक्ष्मीकी] पूजा करनी चाहिये॥ ८९—९१॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्।
अलक्ष्मीवृत्तमनघो लक्ष्मीवाँल्लभते गतिम्॥ ९२

जो [मनुष्य] इस अलक्ष्मी-वृत्तान्तको पढ़ता है अथवा सुनता है अथवा श्रेष्ठ द्विजोंको सुनाता है, वह पापरहित तथा लक्ष्मीवान् हो जाता है और [शुभ] गति प्राप्त करता है॥ ९२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अलक्ष्मीवृत्तं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अलक्ष्मीवृत्त' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुके अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मन्त्रजपकी महिमामें ऐतरेय ब्राह्मणकी कथा

ऋषय ऊचुः

किं जपान्मुच्यते जन्तुः सर्वलोकभयादिभिः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्॥ १
अलक्ष्मीं वाथ सन्त्यज्य गमिष्यति जपेन वै।
लक्ष्मीवासो भवेन्मर्त्यः सूत वक्तुमिहार्हसि॥ २

ऋषिगण बोले—किस [मन्त्र]-के जपसे प्राणी सम्पूर्ण सांसारिक भय आदिसे मुक्त हो जाता है और समस्त पापोंसे छूटकर परम गति प्राप्त करता है? किस जपके द्वारा मनुष्य अलक्ष्मीका त्याग करके लक्ष्मीयुक्त हो जाता है; हे सूतजी! यह सब आप बतायें॥ १-२॥

सूत उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं वसिष्ठाय महात्मने।
वक्ष्ये सङ्क्षेपतः सर्वं सर्वलोकहिताय वै॥ ३
शृण्वन्तु वचनं सर्वे प्रणिपत्य जनार्दनम्।
देवदेवमजं विष्णुं कृष्णमच्युतमव्ययम्॥ ४
सर्वपापहरं शुद्धं मोक्षदं ब्रह्मवादिनम्।
मनसा कर्मणा वाचा यो विद्वान् पुण्यकर्मकृत्॥ ५

सूतजी बोले—पूर्वकालमें पितामहने महात्मा वसिष्ठसे इस विषयमें जो बताया था, वह सब मैं सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये संक्षेपमें बताऊँगा। आप सभी लोग जनार्दन, देवाधिदेव, अजन्मा, कृष्ण, अच्युत, अव्यय, समस्त पापोंको दूर करनेवाले, विशुद्ध, मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा ब्रह्मवादी विष्णुको प्रणाम करके [मेरा] वचन सुनें॥ ३-४$^{1}/_{2}$॥

नारायणं जपेन्नित्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्।
स्वपन्नारायणं देवं गच्छन्नारायणं तथा॥ ६

भुञ्जन्नारायणं विप्रास्तिष्ठञ्जाग्रत्सनातनम्।
उन्मिषन्निमिषन् वापि नमो नारायणेति वै॥ ७

भोज्यं पेयं च लेह्यं च नमो नारायणेति च।
अभिमन्त्र्य स्पृशन्भुङ्क्ते स याति परमां गतिम्॥ ८

सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च सतां गतिम्।
अलक्ष्मीश्च मया प्रोक्ता पत्नी या दुःसहस्य च॥ ९

नारायणपदं श्रुत्वा गच्छत्येव न संशयः।
या लक्ष्मीर्देवदेवस्य हरेः कृष्णस्य वल्लभा॥ १०

गृहे क्षेत्रे तथावासे तनौ वसति सुव्रताः।
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥ ११

इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः॥ १२

नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु नमो नारायणेति च॥ १३

जपेत् स याति विप्रेन्द्रा विष्णुलोकं सबान्धवः।
अन्यच्च देवदेवस्य शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः॥ १४

मन्त्रो मया पुराभ्यस्तः सर्ववेदार्थसाधकः।
द्वादशाक्षरसंयुक्तो द्वादशात्मा पुरातनः॥ १५

तस्यैवेह च माहात्म्यं सङ्क्षेपात्प्रवदामि वः।
कश्चिदद्द्विजो महाप्राज्ञस्तपस्तप्त्वा कथञ्चन॥ १६

पुत्रमेकं तयोत्पाद्य संस्कारैश्च यथाक्रमम्।
योजयित्वा यथाकालं कृतोपनयनं पुनः॥ १७

अध्यापयामास तदा स च नोवाच किञ्चन।
न जिह्वा स्पन्दते तस्य दुःखितोऽभूद् द्विजोत्तमः॥ १८

जो पुण्य कर्म करनेवाला विद्वान् मन-वचन-कर्मसे पुरुषोत्तमको प्रणाम करके '**नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रका जप करता है; सोते, जागते, चलते, बैठते, भोजन करते, आँखें खोलते तथा मूँदते नारायणका स्मरण करता है; भोज्य, पेय तथा लेह्य पदार्थका स्पर्श करते हुए '**नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसे ग्रहण करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है और सभी पापोंसे मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करता है॥ ५—८१/२॥

मुनि दुःसहकी पत्नी जो मेरे द्वारा अलक्ष्मी कही गयी है, वह 'नारायण' नामको सुनते ही वहाँसे भाग जाती है; इसमें संशय नहीं है और हे सुव्रतो! देवोंके भी देव भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया जो लक्ष्मी हैं, वे [उस मनुष्यके] घर, क्षेत्र, आवास तथा शरीरमें वास करती हैं॥ ९-१०१/२॥

सभी शास्त्रोंका सम्यक् अनुशीलन करके और बार-बार विचार करके यही एक निश्चय किया गया है कि सदा नारायणका ही ध्यान करना चाहिये। अनेक मन्त्रों तथा व्रतोंसे उस मनुष्यको क्या प्रयोजन; क्योंकि यह '**नमो नारायणाय**' मन्त्र सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। अतः हे विप्रेन्द्रो! जो सभी समय '**नमो नारायणाय**' इस मन्त्रको जपता है, वह बन्धु-बान्धवोंसहित विष्णुलोकको प्राप्त होता है॥ ११—१३१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! अब आपलोग देवदेव भगवान् विष्णुके अन्य मन्त्रोंके माहात्म्यका श्रवण करें। मैंने पूर्वकालमें समस्त वेदार्थोंको सिद्ध करनेवाले, बारह वर्णोंसे युक्त, द्वादश आदित्यस्वरूप तथा सनातन मन्त्रका अभ्यास किया था; उसी मन्त्रका माहात्म्य मैं आपलोगोंको संक्षेपमें बता रहा हूँ॥ १४-१५१/२॥

किसी महामनीषी ब्राह्मणने तपस्या करके किसी तरह एक पुत्रको उत्पन्नकर क्रमानुसार उसके सभी संस्कार सम्पन्न किये; यथासमय उसके उपनयनके पश्चात् उस द्विजने उसे अध्ययन कराया, किन्तु वह कुछ भी नहीं

वासुदेवेति नियतमैतरेयो वदत्यसौ।
पिता तस्य तथा चान्यां परिणीय यथाविधि॥ १९
पुत्रानुत्पादयामास तथैव विधिपूर्वकम्।
वेदानधीत्य सम्पन्ना बभूवुः सर्वसम्मताः॥ २०
ऐतरेयस्य सा माता दुःखिता शोकमूर्च्छिता।

उवाच पुत्राः सम्पन्ना वेदवेदाङ्गपारगाः॥ २१
ब्राह्मणैः पूज्यमाना वै मोदयन्ति च मातरम्।
मम त्वं भाग्यहीनायाः पुत्रो जातो निराकृतिः॥ २२
ममात्र निधनं श्रेयो न कथञ्चन जीवितम्।
इत्युक्तः स च निर्गम्य यज्ञवाटं जगाम वै॥ २३
तस्मिन् याते द्विजानां तु न मन्त्राः प्रतिपेदिरे।
ऐतरेये स्थिते तत्र ब्राह्मणा मोहितास्तदा॥ २४
ततो वाणी समुद्भूता वासुदेवेति कीर्तनात्।
ऐतरेयस्य ते विप्राः प्रणिपत्य यथातथम्॥ २५
पूजां चक्रुस्ततो यज्ञं स्वयमेव समागतम्।
ततः समाप्य तं यज्ञमैतरेयो धनादिभिः॥ २६
सर्ववेदान् सदस्याह सषडङ्गान्स समाहितः।
तुष्टुवुश्च तथा विप्रा ब्रह्माद्याश्च तथा द्विजाः॥ २७
ससर्जुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः।
एवं समाप्य वै यज्ञमैतरेयो द्विजोत्तमाः॥ २८
मातरं पूजयित्वा तु विष्णोः स्थानं जगाम ह।
एतद्वै कथितं सर्वं द्वादशाक्षरवैभवम्॥ २९
पठतां शृण्वतां नित्यं महापातकनाशनम्।
जपेद्यः पुरुषो नित्यं द्वादशाक्षरमव्ययम्॥ ३०

बोल पाता था। उसकी जिह्वा किसी भी शब्दका उच्चारण नहीं करती थी, वह ऐतरेय नामक बालक केवल **'वासुदेवाय'**—इस मन्त्रको निरन्तर बोलता था। इससे वह द्विजश्रेष्ठ बहुत दुःखित हुआ॥ १६—१८ $^{1}/_{2}$ ॥

तब उसके पिताने दूसरी स्त्रीसे विधानके साथ विवाह करके उससे विधिपूर्वक पुत्र उत्पन्न किये। वे पुत्र वेदोंका अध्ययन करके सबके मान्य तथा सम्पत्तियुक्त हो गये॥ १९-२०॥

ऐतरेयकी वह माता इससे अत्यन्त दुःखित तथा शोकाकुल होकर [उससे] बोली—'मेरी सौतके पुत्र सम्पन्न हैं तथा वेदवेदांगमें पारंगत हैं; वे ब्राह्मणोंसे पूजित होते हुए अपनी माताको आनन्दित करते हैं। एक तुम हो जो मुझ अभागिनको उद्यमहीन पुत्र उत्पन्न हुए। अब तो मेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है; जीवित रहना किसी भी तरह ठीक नहीं'॥ २१-२२ $^{1}/_{2}$ ॥

[माताके द्वारा] ऐसा कहा गया वह ऐतरेय वहाँसे निकलकर यज्ञमण्डपमें गया। उसके पहुँचते ही [वहाँ उपस्थित] ऋत्विजोंको मन्त्र अवगत नहीं हुए। उस ऐतरेयके वहाँ स्थित रहनेपर सभी ब्राह्मण मोहित हो गये। तब वासुदेव इस नाम-मन्त्रके कीर्तनसे उसके मुखसे मन्त्रमयी वाणी निकलने लगी। [यह देखकर] उन विप्रोंने प्रणाम करके यथाविधि ऐतरेयका पूजन किया। तत्पश्चात् वहाँपर यज्ञदेव स्वयं ही उपस्थित हुए। तब उस यज्ञको पूर्ण करके उन विप्रोंके द्वारा वह ऐतरेय धन आदिसे सम्मानित किया गया। उसने एकनिष्ठ होकर छः अंगोंसहित सभी वेदोंका उस विप्रसभामें कथन किया। [तब हर्षित होकर] सभी ऋत्विज ब्राह्मण आदि तथा द्विजगण उसकी स्तुति करने लगे और सभी खेचर, सिद्ध एवं चारण उसके ऊपर पुष्प-वृष्टि करने लगे॥ २३—२७ $^{1}/_{2}$ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार यज्ञ सम्पन्न करके वह ऐतरेय अपनी माताकी पूजा करके विष्णुलोक चला गया। मैंने यह द्वादशाक्षर मन्त्रका महत्त्व आपलोगोंको बतला दिया। इसे पढ़ने तथा सुननेवालोंके महापापका नाश हो जाता है। जो मनुष्य इस अविनाशी द्वादशाक्षर

स याति दिव्यमतुलं विष्णोस्तत्परमं पदम्।
अपि पापसमाचारो द्वादशाक्षरतत्परः॥ ३१
प्राप्नोति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारणा।
किं पुनर्ये स्वधर्मस्था वासुदेवपरायणाः॥ ३२
दिव्यं स्थानं महात्मानः प्राप्नुवन्तीति सुव्रताः॥ ३३

मन्त्रका नित्य जप करता है, वह भगवान् विष्णुके अनुपम, दिव्य तथा परमपदको प्राप्त होता है। पाप करनेवाला भी यदि इस द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-के जपमें तत्पर रहता है, तो वह परम पद प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये, तो फिर हे सुव्रतो! जो लोग अपने धर्ममें स्थित रहते हुए वासुदेवपरायण हैं, उनकी बात ही क्या; वे महात्मा तो दिव्य स्थान (विष्णुलोक) अवश्य प्राप्त करते हैं॥ २८—३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे द्वादशाक्षरप्रशंसा नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'द्वादशाक्षरप्रशंसा' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शिवमहामन्त्रके जपसे ब्राह्मणपुत्र दुराचारी धुन्धुमूकका शिवकी कृपासे शिवगणत्वको प्राप्त करना

सूत उवाच

अष्टाक्षरो द्विजश्रेष्ठा नमो नारायणेति च।
द्वादशाक्षरमन्त्रश्च परमः परमात्मनः॥ १
मन्त्रः षडक्षरो विप्राः सर्ववेदार्थसञ्चयः।
यश्चों नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥ २
तथा शिवतरायेति दिव्यः पञ्चाक्षरः शुभः।
मयस्कराय चेत्येवं नमस्ते शङ्कराय च॥ ३
सप्ताक्षरोऽयं रुद्रस्य प्रधानपुरुषस्य वै।

सूतजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठो! '**ॐ नमो नारायणाय**' यह अष्टाक्षर मन्त्र तथा द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)—ये परमात्माके श्रेष्ठ मन्त्र हैं। किंतु हे विप्रो! '**ॐ नमः शिवाय**'—यह जो षडक्षर मन्त्र है, वह सभी वेदार्थोंका सारभूत है, उसी प्रकार '**शिवतराय**' तथा '**मयस्कराय**'—ये दिव्य तथा मंगलकारक पंचाक्षरमन्त्र सभी मनोरथोंको प्राप्त करानेवाले हैं और उसी तरह प्रधानपुरुष रुद्रका '**नमस्ते शङ्कराय**'—यह सप्ताक्षर मन्त्र भी सभी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ १—३½॥

ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः॥ ४
मन्त्रैरेतैर्द्विजश्रेष्ठा मुनयश्च यजन्ति तम्।
शङ्करं देवदेवेशं मयस्करमजोद्भवम्॥ ५
शिवं च शङ्करं रुद्रं देवदेवमुमापतिम्।
प्राहुर्नमः शिवायेति नमस्ते शङ्कराय च॥ ६
मयस्कराय रुद्राय तथा शिवतराय च।
जप्त्वा मुच्येत वै विप्रो ब्रह्महत्यादिभिः क्षणात्॥ ७

हे द्विजश्रेष्ठो! ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा इन्द्रसहित सभी देवता, श्रेष्ठ द्विजगण एवं मुनिलोग इन मन्त्रोंसे उन शंकर, देवदेवेश, मयस्कर तथा अजोद्भव शिवका यजन करते हैं और उन्हीं शिवको शंकर, रुद्र, देवदेव तथा उमापति कहते हैं। **नमः शिवाय, नमस्ते शङ्कराय, मयस्कराय, रुद्राय, शिवतराय**—इन मन्त्रोंका जप करके विप्र ब्रह्महत्या आदि [महापातकों]-से क्षणभरमें मुक्त हो जाता है॥ ४—७॥

पुरा कश्चिद्द्विजः शक्तो धुन्धुमूक इति श्रुतः।
आसीत्तृतीये त्रेतायामावर्ते च मनोः प्रभोः॥ ८

पूर्वकालमें प्रभु मनुके तीसरे आवर्त (चतुर्युग)-

मेघवाहनकल्पे वै ब्रह्मणः परमात्मनः।
मेघो भूत्वा महादेवं कृत्तिवाससमीश्वरम्॥ ९

बहुमानेन वै रुद्रं देवदेवो जनार्दनः।
खिन्नोऽतिभाराद्रुद्रस्य निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः॥ १०

विज्ञाप्य शितिकण्ठाय तपश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः।
तपसा परमैश्वर्यं बलं चैव तथाद्भुतम्॥ ११

लब्धवान् परमेशानाच्छङ्करात्परमात्मनः।
तस्मात्कल्पस्तदा चासीन्मेघवाहनसंज्ञया॥ १२

तस्मिन् कल्पे मुनेः शापाद् धुन्धुमूकसमुद्भवः।
धुन्धुमूकात्मजस्तेन दुरात्मा च बभूव सः॥ १३

धुन्धुमूकः पुरासक्तो भार्यया सह मोहितः।
तस्यां वै स्थापितो गर्भः कामासक्तेन चेतसा॥ १४

अमावास्यामहन्येव मुहूर्ते रुद्रदैवते।
अन्तर्वत्नी तदा भार्या भुक्ता तेन यथासुखम्॥ १५

असूत सा च तनयं विशल्याख्या प्रयत्नतः।
रुद्रे मुहूर्ते मन्देन वीक्षिते मुनिसत्तमाः॥ १६

मातुः पितुस्तथारिष्टं स सञ्जातस्तथात्मनः।
ऋषी तमूचतुर्विप्रा धुन्धुमूकं मिथस्तदा॥ १७

मित्रावरुणनामानौ दुष्पुत्र इति सत्तमौ।
वसिष्ठः प्राह नीचोऽपि प्रभावाद्वै बृहस्पतेः॥ १८

पुत्रस्तवासौ दुर्बुद्धिरपि मुच्यति किल्विषात्।
दुःखितो धुन्धुमूकोऽसौ दृष्ट्वा पुत्रमवस्थितम्॥ १९

जातकर्मादिकं कृत्वा विधिवत्स्वयमेव च।
अध्यापयामास च तं विधिनैव द्विजोत्तमाः॥ २०

तेनाधीतं यथान्यायं धौन्धुमूकेन सुव्रताः।
कृतोद्वाहस्तदा गत्वा गुरुशुश्रूषणे रतः॥ २१

के त्रेतायुगमें कोई धुन्धुमूक नामक सामर्थ्यसम्पन्न द्विज था॥ ८॥

मेघवाहन कल्पमें परमात्मा शिवका मेघरूपी वाहन बनकर देवदेव जनार्दन विष्णुने अत्यन्त आदरके साथ उन महादेव कृत्तिवास (व्याघ्रचर्मधारी) ईश्वर रुद्रका वहन किया था। तब रुद्रके अत्यधिक भारसे पीड़ित होनेके कारण वे श्वास-उच्छ्वाससे रहित हो गये। इसके बाद उन कमलनयन विष्णुने शितिकण्ठ शिवको उद्देश्य करके तपस्या की और अपनी तपस्याके द्वारा परमेश्वर तथा परमात्मा शंकरसे परम ऐश्वर्य और अद्भुत बल प्राप्त किया। इसीलिये वह कल्प मेघवाहन नामसे विख्यात हुआ॥ ९—१२॥

उस कल्पमें [पूर्वजन्ममें किसी] मुनिके शापके कारण धुन्धुमूकके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, धुन्धुमूकका वह पुत्र [पिताके दोषके कारण] दुरात्मा हो गया। पूर्वकालमें वह धुन्धुमूक विरक्त होते हुए भी भार्यापर मोहित हो गया और उसने अमावास्या तिथिको दिनमें ही रुद्रदैवत मुहूर्तमें कामासक्त मनसे भार्याके साथ सुखपूर्वक संसर्ग किया और उसमें गर्भ स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् हे मुनिश्रेष्ठो! विशल्या नामक उस [मुनिपत्नी]-ने शनिकी दृष्टिवाले भयंकर मुहूर्तमें अत्यन्त कष्टपूर्वक एक पुत्रको जन्म दिया॥ १३—१६॥

माता, पिता तथा अपने लिये अरिष्टकारी होकर उसने जन्म लिया था। हे विप्रो! मित्र एवं वरुण नामक श्रेष्ठ ऋषियोंने उस धुन्धुमूकसे कहा कि यह दुष्पुत्र है, किंतु वसिष्ठने उससे कहा कि तुम्हारा यह पुत्र नीच तथा दुर्बुद्धि होते हुए भी बृहस्पतिके प्रभावसे पापसे मुक्त हो जायगा॥ १७-१८½॥

हे द्विजश्रेष्ठो! ऐसी दशावाले पुत्रको देखकर वह धुन्धुमूक [बहुत] दुःखित हुआ। उसने विधिपूर्वक उसके जातकर्म आदि संस्कार करके स्वयं उसे सम्यक् प्रकारसे पढ़ाया। उस धुन्धुमूकके पुत्रने भलीभाँति अध्ययन किया। हे सुव्रतो! इसके बाद उसका विवाह कर दिया गया, तब वहाँसे जाकर वह गुरुसेवामें निरत हो गया॥ १९—२१॥

अनेनैव मुनिश्रेष्ठा धौन्धुमूकेन दुर्मदात्।
भुक्त्वान्यां वृषलीं दृष्ट्वा स्वभार्यावद्दिवानिशम्॥ २२

एकशय्यासनगतो धौन्धुमूको द्विजाधमः।
तथा चचार दुर्बुद्धिस्त्यक्त्वा धर्मगतिं पराम्॥ २३

माध्वी पीता तया सार्धं तेन रागविवृद्धये।
केनापि कारणेनैव तामुद्दिश्य द्विजोत्तमाः॥ २४

निहता सा च पापेन वृषली गतमङ्गला।
ततस्तस्यास्तदा तस्य भ्रातृभिर्निहतः पिता॥ २५

माता च तस्य दुर्बुद्धेर्धौन्धुमूकस्य शोभना।
भार्या च तस्य दुर्बुद्धेः श्यालास्ते चापि सुव्रताः॥ २६

राज्ञा क्षणादहो नष्टं कुलं तस्याश्च तस्य च।
गत्वासौ धौन्धुमूकश्च येन केनापि लीलया॥ २७

दृष्ट्वा तु तं मुनिश्रेष्ठं रुद्रजाप्यपरायणम्।
लब्ध्वा पाशुपतं तद्वै पुरा देवान् महेश्वरात्॥ २८

लब्ध्वा पञ्चाक्षरं चैव षडक्षरमनुत्तमम्।
पुनः पञ्चाक्षरं चैव जप्त्वा लक्षं पृथक्पृथक्॥ २९

व्रतं कृत्वा च विधिना दिव्यं द्वादशमासिकम्।
कालधर्मं गतः कल्पे पूजितश्च यमेन वै॥ ३०

उद्धृता च तथा माता पिता श्यालाश्च सुव्रताः।
पत्नी च सुभगा जाता सुस्मिता च पतिव्रता॥ ३१

ताभिर्विमानमारुह्य देवैः सेन्द्रैरभिष्टुतः।
गाणपत्यमनुप्राप्य रुद्रस्य दयितोऽभवत्॥ ३२

तस्मादष्टाक्षरान्मन्त्रात्तथा वै द्वादशाक्षरात्।
भवेत्कोटिगुणं पुण्यं नात्र कार्या विचारणा॥ ३३

हे द्विजश्रेष्ठो! इसी [पूर्वोक्त दोष]-के कारण वह धुन्धुमूकपुत्र किसी शूद्राको देखकर मदोन्मत्त होकर अपनी भार्याके समान उसके साथ दिन-रात भोग करके [उसके पास] पड़ा रहता था। वह द्विजाधम तथा दुर्बुद्धि अपनी परम धर्मगतिका त्याग करके उसके साथ शय्यापर स्थित होकर दुराचारमें रत रहता था। वह कामोद्दीपनके लिये उसके साथ मदिरा भी पीता था॥ २२-२३$^{1}/_{2}$॥

हे द्विजश्रेष्ठो! किसी कारणसे उस शूद्राके साथ उसका विरोध हो गया और उस पापीने अभद्र शूद्राको मार डाला। तब उसके भाइयोंने उस धौन्धुमूकके पिताको मार डाला, इसी प्रकार उन्होंने उस दुर्बुद्धिकी माता, सुन्दर पत्नी तथा उसके सालों (पत्नीके भाइयों)-का भी वध कर दिया। हे सुव्रतो! इस प्रकार क्षणभरमें उसका कुल विनष्ट हो गया और उस शूद्राका सम्पूर्ण कुल भी राजाके द्वारा मार डाला गया॥ २४—२६$^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् जिस किसी तरह वहाँसे निकलकर वह धौन्धुमूक पूर्वकालमें महेश्वर महादेवसे पाशुपतव्रत प्राप्त करके रुद्रजपमें तत्पर मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिके यहाँ प्रारब्धवश पहुँचकर उनसे सर्वश्रेष्ठ पंचाक्षर तथा षडक्षर मन्त्र ग्रहण करके और बादमें उस पंचाक्षर तथा षडक्षर मन्त्रको पृथक्-पृथक् एक लाख बार जपकर और इस प्रकार दिव्य द्वादशमासिक व्रतको विधिपूर्वक करके अन्तमें [आयुके समाप्त होनेपर] मृत्युको प्राप्त हुआ। यमलोकमें यमराजके द्वारा वह बहुत सम्मानित किया गया। हे सुव्रतो! इस प्रकार उसने [शूद्रोंके द्वारा मारे गये] अपने माता, पिता तथा सालोंका उद्धार कर दिया और सुन्दर मुसकानवाली उसकी पतिव्रता भार्या सौभाग्यवती हो गयी। उन सभीके साथ विमानमें बैठकर [रुद्रलोक पहुँचकर] इन्द्रसहित सभी देवताओंसे स्तुत होता हुआ वह गणाध्यक्ष बनकर भगवान् रुद्रका प्रिय हो गया॥ २७—३२॥

अतएव अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मन्त्रोंसे यह [पंचाक्षरमन्त्र] करोड़ों गुना अधिक पुण्यप्रद होता है;

तस्माज्जपेद्धि यो नित्यं प्रागुक्तेन विधानतः।
शक्तिबीजसमायुक्तं स याति परमां गतिम्॥ ३४

इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अतः जो मनुष्य पूर्वमें कहे गये* विधानके अनुसार आदिमें मायाबीज लगाकर इस मन्त्रका नित्य जप करता है, वह परम गति प्राप्त करता है॥ ३३-३४॥

एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥ ३५

स याति ब्रह्मलोकं तु रुद्रजाप्यमनुत्तमम्॥ ३६

[हे मुनियो!] मैंने आपलोगोंसे यह उत्तम कथासार कह दिया, जो [मनुष्य] इस सर्वोत्कृष्ट रुद्रजपसम्बन्धी प्रसंगको पढ़ता है, सुनता है अथवा श्रेष्ठ द्विजोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है॥ ३५-३६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागेऽष्टाक्षरप्रशंसा नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अष्टाक्षरप्रशंसा' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

पशु, पाश एवं पशुपतिकी व्याख्या, पाशुपतयोगका माहात्म्य तथा पशुपाशमोक्षविवरण

ऋषय ऊचुः

देवैः पुरा कृतं दिव्यं व्रतं पाशुपतं शुभम्।
ब्रह्मणा च स्वयं सूत कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ १
पतितेन च विप्रेण धौन्धुमूकेन वै तथा।
कृत्वा जप्त्वा गतिः प्राप्ता कथं पाशुपतं व्रतम्॥ २
कथं पशुपतिर्देवः शङ्करः परमेश्वरः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः॥ ३

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! देवताओंने, ब्रह्माजीने तथा उत्कृष्ट कर्मोंवाले स्वयं विष्णुने पूर्वकालमें इस दिव्य एवं मंगलकारी व्रतको किया था। पतित विप्र धौन्धुमूकने भी इसे करके तथा मन्त्रका जप करके सद्गति प्राप्त की। यह पाशुपतव्रत कैसा है और वे परमेश्वर भगवान् शंकर पशुपति क्यों [कहे जाते] हैं? हमलोगोंको [इस विषयके प्रति] बड़ी जिज्ञासा है; आप हमें बतायें॥ १—३॥

सूत उवाच

पुरा शापाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मपुत्रो महायशाः।
रुद्रस्य देवदेवस्य मरुदेशादिहागतः॥ ४
त्यक्त्वा प्रसादाद्रुद्रस्य उष्ट्रदेहमजाज्ञया।
शिलादपुत्रमासाद्य नमस्कृत्य विधानतः॥ ५
मेरुपृष्ठे मुनिवरः श्रुत्वा धर्ममनुत्तमम्।
माहेश्वरं मुनिश्रेष्ठा ह्यपृच्छच्च पुनः पुनः॥ ६
नन्दिनं प्रणिपत्यैनं कथं पशुपतिः प्रभुः।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्सर्वं च तदाह सः॥ ७
तत्सर्वं श्रुतवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
तस्मादहमनुश्रुत्य युष्माकं प्रवदामि वै॥ ८
सर्वे शृण्वन्तु वचनं नमस्कृत्वा महेश्वरम्।

सूतजी बोले—पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र महायशस्वी सनत्कुमार देवदेव रुद्रके शापसे मुक्त हुए थे। उन भगवान् रुद्रके ही अनुग्रहसे उष्ट्रदेहका त्याग करके वे मरुदेशसे यहाँ (भारतवर्ष) आ गये। पुनः ब्रह्माजीकी आज्ञासे शिलादपुत्र नन्दीके पास मेरुके शिखरपर पहुँचकर उन्हें विधानपूर्वक नमस्कार करके मुनिवरने उनसे सर्वश्रेष्ठ मोक्षधर्मका श्रवणकर पाशुपतव्रतके विषयमें पूछा। हे मुनिश्रेष्ठो! इन नन्दीको बार-बार प्रणाम करके सनत्कुमारने पूछा—प्रभु शिव पशुपति कैसे हुए—यह आप हमसे बतायें। तब उन नन्दीने उन्हें सब कुछ बता दिया। कृष्णद्वैपायन प्रभु व्यासने [सनत्कुमारसे] वह सब सुना और उन [व्यासजी]-से सुन करके अब मैं आपलोगोंसे वही प्रसंग कह रहा हूँ, महेश्वरको नमस्कार करके सभी लोग उस वचनको सुनें॥ ४—८$^{1}/_{2}$॥

* पंचाक्षरमन्त्रका पूर्ण विधान श्रीलिङ्गमहापुराणके पूर्वभागके पचासीवें अध्यायमें वर्णित है।

सनत्कुमार उवाच

कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः॥ ९
कैः पाशैस्ते निबध्यन्ते विमुच्यन्ते च ते कथम्।

शैलादिरुवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्॥ १०

रुद्रभक्तस्य शान्तस्य तव कल्याणचेतसः।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य धीमतः॥ ११

पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः।
तेषां पतित्वाद्भगवान् रुद्रः पशुपतिः स्मृतः॥ १२

अनादिनिधनो धाता भगवान् विष्णुरव्ययः।
मायापाशेन बध्नाति पशुवत्परमेश्वरः॥ १३

स एव मोचकस्तेषां ज्ञानयोगेन सेवितः।
अविद्यापाशबद्धानां नान्यो मोचक इष्यते॥ १४

तमृते परमात्मानं शङ्करं परमेश्वरम्।
चतुर्विंशतितत्त्वानि पाशा हि परमेष्ठिनः॥ १५

तैः पाशैर्मोचयत्येकः शिवो जीवैरुपासितः।
निबध्नाति पशूनेकश्चतुर्विंशतिपाशकैः॥ १६

स एव भगवान् रुद्रो मोचयत्यपि सेवितः।
दशेन्द्रियमयैः पाशैरन्तःकरणसम्भवैः॥ १७

भूततन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः।
इन्द्रियार्थमयैः पाशैर्बद्धा विषयिणः प्रभुः॥ १८

आशु भक्ता भवन्त्येव परमेश्वरसेवया।
भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः॥ १९

तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं पशून् बद्धा महेश्वरः॥ २०

त्रिभिर्गुणमयैः पाशैः कार्यं कारयति स्वयम्।
दृढेन भक्तियोगेन पशुभिः समुपासितः॥ २१

मोचयत्येव तान् सद्यः शङ्करः परमेश्वरः।
भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङ्मनःकायकर्मभिः॥ २२

सनत्कुमार बोले—भगवान् शिव पशुपति कैसे हुए, कौन लोग पशु कहे गये हैं, वे किन पाशोंसे बाँधे जाते हैं और पुनः वे कैसे मुक्त होते हैं?॥ ९$^1/_2$॥

शैलादि बोले—हे सनत्कुमार! मैं रुद्रभक्त, शान्तस्वभाव तथा कल्याणभावनासे युक्त चित्तवाले आपको यह सब यथार्थ रूपमें बताऊँगा। ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जंगमपर्यन्त सभी मायावशवर्ती हैं और धीमान् देवदेव शिवके पशु कहे जाते हैं। उनका स्वामी होनेके कारण भगवान् रुद्र पशुपति कहे गये हैं॥ १०—१२॥

आदि तथा अन्तसे रहित, धारण करनेवाले, अव्यय, षडैश्वर्यसम्पन्न, सर्वव्यापक, परमेश्वर महेश्वर ही इन जीवोंको मोहाभिभूत पशुके समान मायापाशमें बाँधते हैं तथा वे ही ज्ञानयोगसे आराधित होनेपर उन्हें मुक्ति देनेवाले भी हैं; क्योंकि अविद्यापाशमें बँधे जीवोंको मुक्ति देनेवाला परमात्मा परमेश्वर शंकरके अतिरिक्त कोई अन्य है ही नहीं॥ १३-१४$^1/_2$॥

चौबीस तत्त्व ही भगवान् परमेष्ठीके पाश हैं, वे एकमात्र शिव ही जीवोंके द्वारा आराधित होनेपर उन पाशोंसे मुक्त करते हैं। वे भगवान् रुद्र चौबीस पाशोंसे पशुओं (जीवों)-को बाँधते हैं और वे ही सेवित होनेपर बन्धनमुक्त भी करते हैं। दस इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय), अन्तःकरणजन्य भावों [मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त], शब्द आदि पाँच तन्मात्राओं तथा पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों—इन समस्त विषयरूप पाशोंसे भगवान् शिव पशुओंको छुड़ाते हैं। इन इन्द्रियोंके विषयरूप पाशोंसे बँधे हुए विषयग्रस्त लोग परमेश्वर शिवकी सेवासे शीघ्र ही उनके भक्त हो जाते हैं॥ १५—१८$^1/_2$॥

भज—यह धातु सेवा अर्थमें कही गयी है, अतः विद्वज्जनोंने सेवाको भक्ति शब्दसे सम्बन्धित बताया है। ब्रह्मा आदिसे लेकर तृणपर्यन्त सभी पशुओंको [सत्त्व आदि] तीनों गुणरूपी पाशोंसे बाँधकर महेश्वर स्वयं कार्य कराते हैं। पशुओंके द्वारा दृढ़ भक्तियोगसे सम्यक् आराधित होनेपर वे परमेश्वर शंकर उन्हें शीघ्र ही [बन्धनसे] छुड़ा देते हैं॥ १९—२१$^1/_2$॥

मन, वचन तथा कर्मसे [प्रभुका] भजन ही

सर्वकार्येण हेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसी।
सत्यः सर्वग इत्यादि शिवस्य गुणचिन्तना॥ २३

रूपोपादानचिन्ता च मानसं भजनं विदुः।
वाचिकं भजनं धीराः प्रणवादिजपं विदुः॥ २४

कायिकं भजनं सद्भिः प्राणायामादि कथ्यते।
धर्माधर्ममयैः पाशैर्बन्धनं देहिनामिदम्॥ २५

मोचकः शिव एवैको भगवान् परमेश्वरः।
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा इति॥ २६

कीर्त्यन्ते विषयाश्चेति पाशा जीवनिबन्धनात्।
तैर्बद्धाः शिवभक्त्यैव मुच्यन्ते सर्वदेहिनः॥ २७

पञ्चक्लेशमयैः पाशैः पशून् बध्नाति शङ्करः।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥ २८

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं च द्विपदां वराः।
वदन्त्यभिनिवेशं च क्लेशान् पाशत्वमागतान्॥ २९

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्र इति पण्डिताः।
अन्धतामिस्त्र इत्याहुरविद्यां पञ्चधा स्थिताम्॥ ३०

ताञ्जीवान् मुनिशार्दूलाः सर्वांश्चैवाप्यविद्यया।
शिवो मोचयति श्रीमान्नान्यः कश्चिद्विमोचकः॥ ३१

अविद्यां तम इत्याहुरस्मितां मोह इत्यपि।
महामोह इति प्राज्ञा रागं योगपरायणाः॥ ३२

द्वेषं तामिस्त्र इत्याहुरन्धतामिस्त्र इत्यपि।
तथैवाभिनिवेशं च मिथ्याज्ञानं विवेकिनः॥ ३३

तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविधः स्मृतः।
महामोहप्रभेदाश्च बुधैर्दश विचिन्तिताः॥ ३४

अष्टादशविधं चाहुस्तामिस्त्रं च विचक्षणाः।
अन्धतामिस्त्रभेदाश्च तथाष्टादशधा स्मृताः॥ ३५

अविद्ययास्य सम्बन्धो नातीतो नास्त्यनागतः।
भवेद्रागेण देवस्य शम्भोरङ्गनिवासिनः॥ ३६

भक्ति कही गयी है। समस्त प्रपंचोंके पति विष्णुका भी हेतु होनेके कारण वह भक्ति बन्धनको काटनेमें समर्थ है। वे सत्य हैं तथा सर्वव्यापी हैं—शिवके इन गुणोंको जानने तथा उनके रूप और उपादानोंके चिन्तनको विद्वानोंने मानस भजन कहा है और प्रणव (ॐकार)-के जप आदिको उन्होंने वाचिक भजन कहा है, इसी प्रकार सत्पुरुषोंके द्वारा प्राणायाम आदिको कायिक भजन कहा जाता है॥ २२—२४ $^1/_2$ ॥

धर्माधर्ममय पाशोंसे जीवोंका यह बन्धन होता है और एकमात्र वे भगवान् परमेश्वर शिव ही [उन पाशोंसे जीवोंको] मुक्त करनेवाले हैं। चौबीस तत्त्व, मायाके गुण और शब्द आदि विषय—ये जीवको बाँधनेके कारण पाश कहे जाते हैं। उन पाशोंसे बँधे हुए सभी प्राणी शिवभक्तिके द्वारा ही मुक्त होते हैं। [अविद्या आदि] पाँच क्लेशरूप पाशोंसे भी वे शिव जीवोंको बाँधते हैं और वे ही भक्तिके द्वारा भलीभाँति उपासित किये जानेपर पाशोंसे उन्हें मुक्त कर देते हैं॥ २५—२८॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ लोग अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशको जीवोंको बाँधनेवाले [पाँच] क्लेश कहते हैं। पण्डितजन तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र—इन पाँच प्रकारसे अविद्या आदिको स्थित कहते हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! केवल शिव ही उन समस्त जीवोंको अविद्यासे मुक्त कर सकते हैं, उन्हें मुक्त करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। योगपरायण महाज्ञानियोंने अविद्याको तम, अस्मिताको मोह और रागको महामोह कहा है, इसी प्रकार विवेकयुक्त जनोंने द्वेषको तामिस्त्र और मिथ्या ज्ञानरूपी अभिनिवेशको अन्धतामिस्त्र बताया है॥ २९—३३ $^1/_2$ ॥

तमके आठ भेद हैं। मोह आठ प्रकारका कहा गया है। विद्वानोंने महामोहके दस भेद बताये हैं। बुद्धिमान् लोगोंने तामिस्त्रको अठारह भेदोंवाला कहा है। अन्धतामिस्त्रके अठारह प्रकारके भेद बताये गये हैं॥ ३४-३५॥

सर्वान्तर्यामी देवदेव शिवका सम्बन्ध अविद्या तथा रागसे न तो वर्तमानमें है, न पूर्वकालमें रहा है

कालेषु त्रिषु सम्बन्धस्तस्य द्वेषेण नो भवेत्।
मायातीतस्य देवस्य स्थाणोः पशुपतेर्विभोः॥ ३७

तथैवाभिनिवेशेन सम्बन्धो न कदाचन।
शङ्करस्य शरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः॥ ३८

कुशलाकुशलैस्तस्य सम्बन्धो नैव कर्मभिः।
भवेत्कालत्रये शम्भोरविद्यामतिवर्तिनः॥ ३९

विपाकैः कर्मणां वापि न भवेदेव सङ्गमः।
कालेषु त्रिषु सर्वस्य शिवस्य शिवदायिनः॥ ४०

सुखदुःखैरसंस्पृश्यः कालत्रितयवर्तिभिः।
स तैर्विनश्वरैः शम्भुर्बोधानन्दात्मकः परः॥ ४१

आशयैरपरामृष्टः कालत्रितयगोचरैः।
धियांपतिः स्वभूरेष महादेवो महेश्वरः॥ ४२

अस्पृश्यः कर्मसंस्कारैः कालत्रितयवर्तिभिः।
तथैव भोगसंस्कारैर्भगवानन्तकान्तकः॥ ४३

पुंविशेषपरो देवो भगवान् परमेश्वरः।
चेतनाचेतनायुक्तप्रपञ्चादखिलात्परः॥ ४४

लोके सातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यं विलोक्यते।
शिवेनातिशयत्वेन शिवं प्राहुर्मनीषिणः॥ ४५

प्रतिसर्गं प्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम्।
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम्॥ ४६

कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः।
सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः॥ ४७

अनादिरेष सम्बन्धो विज्ञानोत्कर्षयोः परः।
स्थितयोरीदृशः सर्वः परिशुद्धः स्वभावतः॥ ४८

आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि।
प्रयोजनं समस्तानां कार्याणां परमेश्वरः॥ ४९

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोऽपि परः स्मृतः॥ ५०

और न तो भविष्यमें होगा। मायासे परे, देवताओंके भी देव, स्थाणु, पशुपति तथा सर्वैश्वर्यसम्पन्न उन शिवका सम्बन्ध द्वेषसे तीनों कालोंमें नहीं हो सकता। उसी प्रकार शरणदाता तथा कल्याणकारक परमात्मा शिवका सम्बन्ध अभिनिवेशसे भी कभी नहीं सम्भव है। पुण्य तथा पापकर्मोंसे भी अविद्याका अतिवर्तन करनेवाले उन शिवका सम्बन्ध तीनों कालोंमें नहीं है। कल्याण प्रदान करनेवाले सर्वरूप शिवका सम्बन्ध [शुभाशुभ] कर्मोंके फलसे भी तीनों कालोंमें नहीं है॥ ३६—४०॥

वे बोधानन्दस्वरूप परम शिव तीनों कालोंमें विद्यमान रहनेवाले उन विनाशशील सुख-दुःखोंसे स्पर्श होनेयोग्य नहीं हैं। बुद्धिके स्वामी तथा स्वयं प्रकट होनेवाले वे महादेव महेश्वर तीनों कालोंमें अनुभूत होनेवाली कामनाओंसे भी अस्पृश्य हैं। इसी प्रकार कालका विनाश करनेवाले भगवान् शिव तीनों कालोंमें वर्तमान कर्मसंस्कारों तथा भोगसंस्कारोंसे अस्पृश्य हैं॥ ४१—४३॥

वे परमेश्वर भगवान् महादेव सम्पूर्ण जीवोंसे श्रेष्ठ हैं और जड़-चेतनरूप सम्पूर्ण सृष्टिप्रपंचसे परे हैं। जैसे संसारमें ज्ञान और ऐश्वर्यको अत्यन्त श्रेष्ठ रूपमें देखा जाता है, वैसे ही अतिशय कल्याणरूप होनेसे ही मनीषियोंने महादेवको शिव कहा है॥ ४४-४५॥

प्रत्येक सर्गमें उत्पन्न होनेवाले तथा कालसीमामें बँधे सभी ब्रह्माओंको सम्पूर्ण शास्त्रोंका आरम्भमें उपदेश करनेवाले वे शिव ही हैं। कालसीमासे रहित वे सर्वेश्वर शिव कालावच्छेदसे युक्त सभी गुरुओंके भी गुरु हैं॥ ४६-४७॥

देहमें विद्यमान जीव तथा ईश्वरका यह सेवक तथा सेव्यका सम्बन्ध अनादि है। स्वभावसे अत्यन्त निर्मल तथा विश्वरूप वे शिव माया-सम्बन्धसे रहित हैं। [नित्यानन्दस्वरूप होनेके कारण] अपने प्रयोजनके अभावमें भी वे परमेश्वर शिव जीवके प्रति समस्त कार्योंका प्रयोजनरूप अनुग्रह हैं॥ ४८-४९॥

प्रणव उन परमात्मा शिवका वाचक है। यह प्रणव

शम्भोः प्रणववाच्यस्य भावना तज्जपादपि।
या सिद्धिः स्वपराप्राप्या भवत्येव न संशयः॥ ५१

ज्ञानतत्त्वं प्रयत्नेन योगः पाशुपतः परः।
उक्तस्तु देवदेवेन सर्वेषामनुकम्पया॥ ५२

स होवाचैव याज्ञवल्क्यो यदक्षरं गार्ग्ययोगिनः। अभिवदन्ति स्थूलमनन्तं महाश्चर्यमदीर्घमलोहित-ममस्तकमासायमत एवो पुनारसमसङ्गमगन्धमरस-मचक्षुष्कमश्रोत्रमवाङ्मनोतेजस्कमप्रमाणमनुसुख-मनामगोत्रममरमजरमनामयममृतमोंशब्दममृत-मसंवृतमपूर्वमनपरमनन्तमबाह्यं तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति किञ्चन॥ ५३॥

एतत्कालव्यये ज्ञात्वा परं पाशुपतं प्रभुम्।
योगे पाशुपते चास्मिन् यस्यार्थः किल उत्तमे॥ ५४

कृत्वोङ्कारं प्रदीपं मृगय गृहपतिं सूक्ष्ममाद्यन्तरस्थं
संयम्य द्वारवासं पवनपटुतरं नायकं चेन्द्रियाणाम्।
वाग्जालैः कस्य हेतोर्विभटसि तु भयं दृश्यते नैव किंचि-
द्देहस्थं पश्य शम्भुं भ्रमसि किमु परे शास्त्रजालेऽन्धकारे ॥ ५५

एवं सम्यग्बुधैर्ज्ञात्वा मुनीनामथ चोक्तं शिवेन।
असमरसं पञ्चधा कृत्वाभयं चात्मनि योजयेत्॥ ५६

शिव-रुद्र आदि शब्दोंमें श्रेष्ठ कहा गया है। शिवके वाचक प्रणवके जपसे तथा उसकी भावनासे जो सिद्धि होती है, वह अन्य मन्त्रोंके जपसे प्राप्त नहीं होती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०-५१॥

देवदेव आदित्यरूपी शिवने [याज्ञवल्क्यकी तपस्यासे प्रसन्न होकर] सभीकी अनुकम्पासे ज्ञानतत्त्वरूप श्रेष्ठ पाशुपत योगका उपदेश उन्हें दिया था। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्यने गार्गीसे कहा—हे गार्गि! अयोगी लोग नाशशून्य जो शिवतत्त्व है, उसे विराट्रूप, अनन्त तथा अत्यन्त आश्चर्यजनक बताते हैं, किंतु योगीलोग उसे अदीर्घ, अलोहित, मस्तक-विहीन, कभी अस्त न होनेवाला, अतएव नित्यानन्दरस-स्वरूप, स्पर्शशून्य, अगन्ध, अरस (रसविहीन), अचक्षुष्क (नेत्रविहीन), अश्रोत्र (कर्णरहित), मन तथा वाणीसे परे, अतेजस्क (अदाहक), अप्रमाण, सुखकारी, नाम तथा गोत्रसे विहीन, मृत्युरहित, जराशून्य, अनामय (रोगरहित), अमृत (मोक्षरूप) ॐकार शब्दसे प्रतिपाद्य, सुधारूप, अनाच्छादित, पूर्वभागसे शून्य, अपरभागशून्य तथा अन्तरहित कहते हैं। वह ब्रह्म सब कुछ खाता है और वह ब्रह्म कुछ भी नहीं खाता है॥ ५२-५३॥

इस उत्तम पाशुपतयोगमें जिस मनुष्यकी अभिरुचि होती है, वह इस श्रेष्ठ पाशुपत योगको जानकर अन्तकालमें परमेश्वरमें विलीन हो जाता है। ॐकाररूप दीपकको प्रज्वलित करके वायुसे भी अधिक वेगसे गति करनेवाले तथा इन्द्रियोंके स्वामी मनको भलीभाँति नियन्त्रित करके अन्तर्यामी, सूक्ष्म तथा सबके आदिस्वरूप उस परमात्माका अन्वेषण करो। तुम वाग्जालोंमें पड़कर किसलिये वृथा विवाद कर रहे हो। भय तो कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा है। अतः तुम अपनी ही देहमें विद्यमान शम्भुको देखो; अन्धकारमय शास्त्रजालमें क्यों भटक रहे हो? इस प्रकार मुमुक्षुको चाहिये कि वह शिवजीके द्वारा मुनियोंके प्रति कहे गये उपदेशपर विद्वानोंके साथ भलीभाँति विचार करके आनन्दरूप आत्मस्वरूपको पंचकोशसे परे करके अभयरूपी मोक्ष प्राप्त करे॥ ५४—५६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पाशुपतव्रतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'पाशुपतव्रतवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

उमापति शिवके माहात्म्यका वर्णन तथा शिवके आदेशसे ही सृष्टि-पालन आदि सभी कार्योंका संचालन

सनत्कुमार उवाच

भूय एव ममाचक्ष्व महिमानमुमापतेः।
भवभक्त महाप्राज्ञ भगवन्नन्दिकेश्वर॥ १

शैलादिरुवाच

सनत्कुमारसङ्क्षेपात्तव वक्ष्याम्यशेषतः।
महिमानं महेशस्य भवस्य परमेष्ठिनः॥ २
नास्य प्रकृतिबन्धोऽभूद्बुद्धिबन्धो न कश्चन।
न चाहङ्कारबन्धश्च मनोबन्धश्च नोऽभवत्॥ ३
चित्तबन्धो न तस्याभूच्छ्रोत्रबन्धो न चाभवत्।
न त्वचां चक्षुषां वापि बन्धो जज्ञे कदाचन॥ ४
जिह्वाबन्धो न तस्याभूद्घ्राणबन्धो न कश्चन।
पादबन्धः पाणिबन्धो वागबन्धश्चैव सुव्रत॥ ५
उपस्थेन्द्रियबन्धश्च भूततन्मात्रबन्धनम्।
नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः॥ ६
नित्यमुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः।
अनादिमध्यनिष्ठस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥ ७
बुद्धिं सूते नियोगेन प्रकृतिः पुरुषस्य च।
अहङ्कारं प्रसूतेऽस्या बुद्धिस्तस्य नियोगतः॥ ८
अन्तर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयम्भुवः।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि च शासनात्॥ ९
अहङ्कारोऽतिसंसूते शिवस्य परमेष्ठिनः।
तन्मात्राणि नियोगेन तस्य संसुवते प्रभोः॥ १०
महाभूतान्यशेषेण महादेवस्य धीमतः।
ब्रह्मादीनां तृणान्तं हि देहिनां देहसङ्गतिम्॥ ११
महाभूतान्यशेषाणि जनयन्ति शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति सर्वार्थान् बुद्धिस्तस्याज्ञया विभोः॥ १२
अन्तर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयम्भुवः।
स्वभावसिद्धमैश्वर्यं स्वभावादेव भूतयः॥ १३
तस्याज्ञया समस्तार्थानहङ्कारोऽतिमन्यते।
चित्तं चेतयते चापि मनः सङ्कल्पयत्यपि॥ १४
श्रोत्रं शृणोति तच्छक्त्या शब्दस्पर्शादिकं च यत्।
शम्भोराज्ञाबलेनैव भवस्य परमेष्ठिनः॥ १५

सनत्कुमार बोले—हे शिवभक्त! हे महाप्राज्ञ! हे भगवन्! हे नन्दिकेश्वर! आप उमापति शिवजीकी महिमाका पुनः वर्णन कीजिये॥ १॥

शैलादि बोले—हे सनत्कुमार! मैं परमेष्ठी भगवान् महेश्वरकी सम्पूर्ण महिमाको आपसे संक्षेपमें ही कहूँगा। इन शिवजीको प्रकृतिका बन्धन तथा बुद्धिका बन्धन कभी नहीं हुआ, इसी प्रकार अहंकारबन्धन तथा मनोबन्धन भी इन्हें नहीं हुआ। उन्हें न तो चित्तका बन्ध हुआ और न तो श्रोत्रका बन्ध हुआ, उन्हें त्वचा और नेत्रका भी बन्ध कभी नहीं हुआ। हे सुव्रत! उन शिवको जिह्वा, घ्राण, पाद, हाथ, वाणी, जननेन्द्रिय और शब्द आदि पाँच गुणोंका भी कोई बन्धन नहीं हुआ। तत्त्ववेत्ता मुनियोंने नित्य शुद्ध स्वभावके कारण उन शिवको नैसर्गिकरूपसे नित्यबुद्ध तथा नित्यमुक्त बतलाया है॥ २—६$^1/_2$॥

आदि, मध्य तथा अन्तसे रहित परमेष्ठी पुरुषरूप शिवकी आज्ञासे प्रकृति बुद्धिको उत्पन्न करती है और पुनः उन्हीं शिवके आदेशसे इस प्रकृतिकी बुद्धि अहंकारकी उत्पत्ति करती है। अन्तर्यामीरूपसे देहमें स्थित रहनेवाले प्रसिद्ध स्वयम्भू परमेष्ठी शिवके आदेशसे अहंकार दस इन्द्रियों, मन तथा शब्द आदि तन्मात्राओंको उत्पन्न करता है। उन्हीं धीमान् प्रभु महादेवके आदेशसे ये तन्मात्राएँ आकाशादि महाभूतोंको उत्पन्न करती हैं। तदनन्तर शिवकी आज्ञासे ये सब महाभूत ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंके देहको उत्पन्न करते हैं। उन्हीं सर्वव्यापी शिवकी आज्ञासे बुद्धि समस्त अर्थोंका निश्चय करती है॥ ७—१२॥

देहोंमें अन्तर्यामीरूपसे प्रसिद्ध स्वयम्भू शिवका ऐश्वर्य स्वभावसिद्ध है और उनकी विभूतियाँ भी स्वभावसे ही हैं। उन्हीं शिवकी आज्ञासे अहंकार सभी अर्थोंका स्वायत्तीकरण करता है, चित्त स्मरण कराता है और मन संकल्प करता है। कान उन्हींकी शक्तिसे श्रवण करता है। उन्हीं परमेष्ठी प्रभु शम्भुके आज्ञाबलसे

वचनं कुरुते वाक्यं नादानादि कदाचन।
शरीराणामशेषाणां तस्य देवस्य शासनात्॥ १६

करोति पाणिरादानं न गत्यादि कदाचन।
सर्वेषामेव जन्तूनां नियमादेव वेधसः॥ १७

विहारं कुरुते पादो नोत्सर्गादि कदाचन।
समस्तदेहिवृन्दानां शिवस्यैव नियोगतः॥ १८

उत्सर्गं कुरुते पायुर्न वदेत कदाचन।
जन्तोर्जातस्य सर्वस्य परमेश्वरशासनात्॥ १९

आनन्दं कुरुते शश्वदुपस्थं वचनाद्विभोः।
सर्वेषामेव भूतानामीश्वरस्यैव शासनात्॥ २०

अवकाशमशेषाणां भूतानां सम्प्रयच्छति।
आकाशं सर्वदा तस्य परमस्यैव शासनात्॥ २१

निर्देशेन शिवस्यैव भेदैः प्राणादिभिर्निजैः।
बिभर्ति सर्वभूतानां शरीराणि प्रभञ्जनः॥ २२

निर्देशाद्देवदेवस्य सप्तस्कन्धगतो मरुत्।
लोकयात्रां वहत्येव भेदैः स्वैरावहादिभिः॥ २३

नागाद्यैः पञ्चभिर्भेदैः शरीरेषु प्रवर्तते।
अपदेशेन देवस्य परमस्य समीरणः॥ २४

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि।
पाकं च कुरुते वह्निः शङ्करस्यैव शासनात्॥ २५

भुक्तमाहारजातं यत्पचते देहिनां तथा।
उदरस्थः सदा वह्निर्विश्वेश्वरनियोगतः॥ २६

सञ्जीवयन्त्यशेषाणि भूतान्यापस्तदाज्ञया।
अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी॥ २७

चराचराणि भूतानि बिभर्त्येव तदाज्ञया।
आज्ञया तस्य देवस्य देवदेवः पुरन्दरः॥ २८

जीवतां व्याधिभिः पीडां मृतानां यातनाशतैः।
विश्वम्भरः सदाकालं लोकैः सर्वैरलङ्घ्यया॥ २९

देवान् पात्यसुरान् हन्ति त्रैलोक्यमखिलं स्थितः।
अधार्मिकाणां वै नाशं करोति शिवशासनात्॥ ३०

ही शब्द-स्पर्श आदि जो भी हैं, वे अपने-अपने विषयोंमें व्यवहार करते हैं। उन्हीं भगवान् शिवके आदेशसे सभी देहधारियोंकी वाणी बोलनेका काम करती है; वह ग्रहण आदिका कार्य कभी नहीं करती। उन्हीं शिवके [बनाये गये] नियमसे ही सभी प्राणियोंका हाथ ग्रहणका कार्य करता है, वह चलने-फिरनेका कार्य कभी नहीं कर सकता। शिवके आदेशसे सभी प्राणिसमुदायका पैर गमनकार्य करता है, वह [मल आदिका] उत्सर्जन कभी नहीं कर सकता। उन परमेश्वरके आदेशसे सम्पूर्ण प्राणिसमुदायका गुदास्थल उत्सर्जन-कार्य करता है, वह बोलनेका कार्य कभी नहीं करता। उन्हीं सर्वव्यापी ईश्वरके वचन तथा आदेशसे सभी प्राणियोंकी जननेन्द्रिय सदा आनन्द प्रदान करती है॥ १३—२०॥

उन्हीं परमेश्वरके आदेशसे आकाश सभी प्राणियोंको अवकाश प्रदान करता है। उन्हीं शिवके निर्देशसे अपने प्राण आदि भेदोंसे प्रभंजन (वायु) सभी प्राणियोंके शरीरको धारण करता है। सात स्कन्धोंवाला मरुत् उन्हीं देवदेवके निर्देशपर अपने आवह आदि भेदोंसे स्थित होकर लोकयात्रा करता है। यही वायु परम प्रभु शिवकी आज्ञासे नाग आदि पाँच भेदोंसे शरीरोंमें विद्यमान रहता है॥ २१—२४॥

शंकरकी आज्ञासे ही अग्नि देवताओंके लिये हव्य तथा पितरोंके लिये कव्यका वहन करती है और भोजनका परिपाक करती है। उदरमें स्थित अग्नि उन विश्वेश्वरके ही आदेशसे प्राणियोंके द्वारा ग्रहण किये गये सम्पूर्ण आहारको पचाती है। जल उन्हींकी आज्ञासे सभी प्राणियोंको जीवन प्रदान करता है। उनकी श्रेष्ठ आज्ञा सबके लिये अनुल्लंघनीय है। पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे चराचर जीवोंको धारण करती है और उन्हीं देव शिवकी आज्ञासे इन्द्र भी सभी प्राणियोंका पालन करते हैं। यमराज भी उन्हीं शिवकी आज्ञासे जीवित प्राणियोंको व्याधियोंसे तथा मृतलोगोंको सैकड़ों प्रकारकी यातनाओंसे कष्ट प्रदान करते हैं। तीनों लोकोंमें हर समय विद्यमान रहकर भगवान् विष्णु उन्हीं शिवकी सभी लोगोंके द्वारा

वरुणः सलिलैर्लोकान् सम्भावयति शासनात्।
मज्जयत्याज्ञया तस्य पाशैर्बध्नाति चासुरान्॥ ३१

पुण्यानुरूपं सर्वेषां प्राणिनां सम्प्रयच्छति।
वित्तं वित्तेश्वरस्तस्य शासनात्परमेष्ठिनः॥ ३२

उदयास्तमये कुर्वन् कुरुते कालमाज्ञया।
आदित्यस्तस्य नित्यस्य सत्यस्य परमात्मनः॥ ३३

पुष्पाण्यौषधिजातानि प्रह्लादयति च प्रजाः।
अमृतांशुः कलाधारः कालकालस्य शासनात्॥ ३४

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा।
अन्याश्च देवताः सर्वास्तच्छासनविनिर्मिताः॥ ३५

गन्धर्वा देवसङ्घाश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रेषु वेधसः॥ ३६

ग्रहनक्षत्रताराश्च यज्ञा वेदास्तपांसि च।
ऋषीणां च गणाः सर्वे शासनं तस्य धिष्ठिताः॥ ३७

कव्याशिनां गणाः सप्तसमुद्रा गिरिसिन्धवः।
शासने तस्य वर्तन्ते काननानि सरांसि च॥ ३८

कलाः काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः।
ऋत्वब्दपक्षमासाश्च नियोगात्तस्य धिष्ठिताः॥ ३९

युगमन्वन्तराण्यस्य शम्भोस्तिष्ठन्ति शासनात्।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथापरे॥ ४०

देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पञ्चजातयः।
मनुष्याश्च प्रवर्तन्ते देवदेवस्य धीमतः॥ ४१

जातानि भूतवृन्दानि चतुर्दशसु योनिषु।
सर्वलोकनिषण्णानि तिष्ठन्त्यस्यैव शासनात्॥ ४२

चतुर्दशसु लोकेषु स्थिता जाताः प्रजाः प्रभोः।
सर्वेश्वरस्य तस्यैव नियोगवशवर्तिनः॥ ४३

पातालानि समस्तानि भुवनान्यस्य शासनात्।
ब्रह्माण्डानि च शेषाणि तथा सावरणानि च॥ ४४

अनुल्लंघ्य आज्ञासे देवताओंकी रक्षा करते हैं और असुरोंका संहार करते हैं तथा उन्हीं शिवके शासनसे अधार्मिकोंका नाश करते हैं॥ २५—३०॥

उन्हीं शिवकी आज्ञासे वरुणदेव अपने जलसे सभी लोकोंको सन्तुष्ट करते हैं और उन्हींकी आज्ञासे असुरोंको अपने पाशोंसे बाँधते हैं तथा बादमें जलमें डुबा देते हैं। उन परमेष्ठी शिवके ही आदेशसे धनके स्वामी कुबेर समस्त प्राणियोंको उनके पुण्यके अनुसार धन प्रदान करते हैं। उन्हीं शाश्वत तथा सत्यस्वरूप परमात्माकी आज्ञासे सूर्यदेव उदय तथा अस्तरूप कार्यको करते हुए कालनिर्धारण करते हैं। कालके भी काल शिवके ही आदेशसे कलाधार चन्द्रमा पुष्पों, औषधियों तथा जीवोंको आनन्दित करते हैं॥ ३१—३४॥

सभी आदित्य, वसुगण, समस्त रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण तथा अन्य समस्त देवता उन्हीं शिवके शासनसे विनिर्मित हैं। गन्धर्व, देवसमुदाय, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष, राक्षस तथा पिशाच शिवके ही शासनमें स्थित हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारा, यज्ञ, वेद, तप तथा ऋषिगण—ये सब उन्हींके शासनमें अधिष्ठित हैं। पितरोंके समूह, सातों समुद्र, पर्वत, नदियाँ, वन तथा सरोवर भी उन्हींके शासनमें रहते हैं। कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन, रात, ऋतु, वर्ष, पक्ष तथा मास उन्हींके अनुशासनमें अधिष्ठित हैं; उसी प्रकार युग, मन्वन्तर, पर, परार्ध तथा दूसरे अन्य कालभेद भी इन्हीं शम्भुके शासनसे प्रवर्तित होते हैं॥ ३५—४०॥

उन्हीं बुद्धिसम्पन्न देवदेवके शासनसे देवताओंकी [विद्याधर आदि] आठ जातियाँ, पशु-पक्षियोंकी पाँच जातियाँ तथा मनुष्य प्रवर्तित होते हैं। सभी लोकोंमें रहनेवाले इन देवता आदि चौदह योनियोंमें उत्पन्न सभी प्राणीसमूह इन्हीं शिवके शासनमें रहते हैं। चौदह लोकोंमें स्थित रहनेवाली सभी प्रजाएँ उन्हीं परमेश्वर प्रभु शिवके शासनके अधीन रहती हैं॥ ४१—४३॥

पाताल आदि समस्त भुवन तथा [जल आदि] आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्ड इन्हींके शासनसे स्थित हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभीसे युक्त समस्त वर्तमान

वर्तमानानि सर्वाणि ब्रह्माण्डानि तदाज्ञया।
वर्तन्ते सर्वभूताद्यैः समेतानि समन्ततः॥ ४५
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि तदाज्ञया।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः॥ ४६
ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मकैः।
करिष्यन्ति शिवस्याज्ञां सर्वैरावरणैः सह॥ ४७

ब्रह्माण्ड सब प्रकारसे उन्हींकी आज्ञासे स्थित हैं; उन्हींकी आज्ञासे असंख्य ब्रह्माण्ड अनेक पदार्थोंसहित उत्पन्न हुए और समाप्त भी हो गये। इसी प्रकार आगे होनेवाले अनेक ब्रह्माण्ड होंगे और वे अपने सभी पदार्थों तथा आवरणोंके साथ शिवकी आज्ञाका पालन करेंगे॥ ४४—४७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे उमापतेर्महिमवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'उमापतिमहिमावर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् शिव तथा देवी पार्वतीकी विभूतियोंका वर्णन एवं लिङ्गपूजनका माहात्म्य

सनत्कुमार उवाच

विभूतीः शिवयोर्मह्यमाचक्ष्व त्वं गणाधिप।
परापरविदां श्रेष्ठ परमेश्वरभावित॥ १

सनत्कुमार बोले—परापरवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा परमेश्वर शिवको प्राप्त कर लेनेवाले हे गणाधिप! अब आप मुझसे शिव तथा पार्वतीकी विभूतियोंका वर्णन करें॥ १॥

नन्दिकेश्वर उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि विभूतीः शिवयोरहम्।
सनत्कुमार योगीन्द्र ब्रह्मणस्तनयोत्तम॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ तथा योगिप्रवर हे सनत्कुमार! मैं शिव तथा पार्वतीकी विभूतियोंको आपको अवश्य बताऊँगा [वे इस प्रकार हैं—]॥ २॥

परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च प्रकीर्तिता।
शिवमेवेश्वरं प्राहुर्मायां गौरीं विदुर्बुधाः॥ ३

पुरुषं शङ्करं प्राहुर्गौरीं च प्रकृतिं द्विजाः।
अर्थः शम्भुः शिवा वाणी दिवसोऽजः शिवा निशा॥ ४

सप्ततन्तुर्महादेवो रुद्राणी दक्षिणा स्मृता।
आकाशं शङ्करो देवः पृथिवी शङ्करप्रिया॥ ५

समुद्रो भगवान् रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका।
वृक्षः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रिया लता॥ ६

वे परमात्मा शिव (कल्याणरूप) कहे गये हैं तथा वे पार्वती शिवा (कल्याणरूपिणी) कही गयी हैं। विद्वानोंने शिवको ही ईश्वर कहा है तथा पार्वतीको माया कहा है। द्विजोंने शंकरको पुरुष तथा गौरीको प्रकृति बताया है। शिव अर्थस्वरूप हैं तो पार्वती वाणी हैं और शिव दिन हैं तो पार्वती रात हैं। महादेव सप्ततन्तुरूप यज्ञ हैं और रुद्राणीको दक्षिणा कहा गया है। भगवान् शंकर आकाश हैं तथा शंकरप्रिया पार्वती पृथ्वी हैं। भगवान् रुद्र समुद्र हैं और गिरिराजकुमारी उसकी लहरें हैं। शूलको आयुधरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शिव वृक्ष हैं तो हाथमें शूल धारण करनेवाले शिवकी प्रिया पार्वती उसकी लता हैं॥ ३—६॥

ब्रह्मा हरोऽपि सावित्री शङ्करार्धशरीरिणी।
विष्णुर्महेश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरी॥ ७

वज्रपाणिर्महादेवः शची शैलेन्द्रकन्यका।
जातवेदाः स्वयं रुद्रः स्वाहा शर्वार्धकायिनी॥ ८

शिव ब्रह्मा हैं तो शंकरकी अर्धांगिनी पार्वती सावित्री हैं। महेश्वर शिव विष्णु हैं तो परमेश्वरी भवानी लक्ष्मी हैं। महादेव हाथमें वज्र धारण करनेवाले इन्द्र हैं तो पर्वतराजकी

यमस्त्रियम्बको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका।
वरुणो भवगान् रुद्रो गौरी सर्वार्थदायिनी॥ ९

बालेन्दुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोरमा।
चन्द्रार्धमौलिर्यक्षेन्द्रः स्वयमृद्धिः शिवा स्मृता॥ १०

चन्द्रार्धशेखरश्चन्द्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा।
सप्तसप्तिः शिवः कान्ता उमादेवी सुवर्चला॥ ११

षण्मुखस्त्रिपुरध्वंसी देवसेना हरप्रिया।
उमा प्रसूतिर्वै ज्ञेया दक्षो देवो महेश्वरः॥ १२

पुरुषाख्यो मनुः शम्भुः शतरूपा शिवप्रिया।
विदुर्भवानीमाकूतिं रुचिं च परमेश्वरम्॥ १३

भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया।
मरीचिर्भगवान् रुद्रः सम्भूतिर्वल्लभा विभोः॥ १४

विदुर्भवानीं रुचिरां कविं च परमेश्वरम्।
गङ्गाधरोऽङ्गिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता॥ १५

पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कान्ता पिनाकिनः।
पुलहस्त्रिपुरध्वंसी दया कालरिपुप्रिया॥ १६

क्रतुर्दक्षक्रतुध्वंसी सन्नतिर्दयिता विभोः।
त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनुसूया स्मृता बुधैः॥ १७

ऊर्जामाहुरुमां वृद्धां वसिष्ठं च महेश्वरम्।
शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी॥ १८

पुल्लिङ्गशब्दवाच्या ये ते च रुद्राः प्रकीर्तिताः।
स्त्रीलिङ्गशब्दवाच्या याः सर्वा गौर्या विभूतयः॥ १९

सर्वे स्त्रीपुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः।
पदार्थशक्तयो या यास्ता गौरीति विदुर्बुधाः॥ २०

सा सा विश्वेश्वरी देवी स च सर्वो महेश्वरः।
शक्तिमन्तः पदार्था ये स च सर्वो महेश्वरः॥ २१

पुत्री उमा शची हैं। स्वयं रुद्र ही अग्नि हैं तो शिवकी अर्धांगिनी पार्वती स्वाहा हैं। त्रिनेत्र शिव यम हैं तो गिरिपुत्री पार्वती उनकी प्रिया हैं। भगवान् रुद्र वरुण हैं तो समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली पार्वती उनकी भार्या हैं। बालचन्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले शिव वायु हैं तो शिववल्लभा पार्वती उनकी भार्या हैं। मस्तकपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित होनेवाले शिव कुबेर हैं तो साक्षात् शिवा कुबेरपत्नी ऋद्धि कही गयी हैं। अर्धचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाले शिव चन्द्रमा हैं तो रुद्रप्रिया शिवा रोहिणी हैं। भगवान् शिव सूर्यदेव हैं तो उनकी प्रिया भगवती उमा [सूर्यपत्नी] सुवर्चला हैं॥ ७—११॥

त्रिपुरका नाश करनेवाले शिव कार्तिकेय हैं तो शिवप्रिया पार्वती [कार्तिकेयभार्या] देवसेना हैं। भगवान् महेश्वर दक्षप्रजापति हैं तो उमाको प्रसूति जानना चाहिये। शम्भु पुरुष नामक मनु हैं तो शिवप्रिया पार्वती शतरूपा हैं। परमेश्वर शिवको रुचिप्रजापति तथा भवानीको आकूति कहा गया है। भगके नेत्रको विनष्ट करनेवाले शिव भृगु हैं तो त्रिनेत्र शिवकी प्रिया पार्वती ख्याति हैं। भगवान् रुद्र मरीचि हैं तो प्रभु शिवकी प्रिया पार्वती सम्भूति हैं। परमेश्वरको कवि (शुक्र) तथा भवानीको रुचिरा कहा गया है। गंगाधर शिवको अंगिराके रूपमें जानना चाहिये और साक्षात् उमाको स्मृतिके रूपमें समझना चाहिये। चन्द्रशेखर शंकरजी पुलस्त्य हैं तो पिनाकधारी शिवकी प्रिया पार्वती प्रीति हैं। त्रिपुरका विध्वंस करनेवाले शिव ऋषि पुलह हैं तो कालरिपु शिवकी प्रिया उमा दया हैं। दक्षके यज्ञको नष्ट करनेवाले शिव क्रतु हैं तो सर्वव्यापी शिवकी भार्या पार्वती सन्नति हैं। विद्वानोंने तीन नेत्रोंवाले शिवको अत्रि तथा साक्षात् उमाको अनसूया कहा है। महेश्वर शिवको वसिष्ठ तथा श्रेष्ठ उमाको ऊर्जा कहा गया है। [संसारके] सभी पुरुष शिवरूप हैं और सभी स्त्रियाँ महेश्वरी पार्वतीरूपा हैं॥ १२—१८॥

पुल्लिंगशब्दवाची जो भी पदार्थ हैं, वे सब रुद्र कहे गये हैं; स्त्रीलिङ्गशब्दवाची जो भी हैं, वे सब गौरीकी विभूतियाँ हैं। सभी स्त्री-पुरुष उन्हीं दोनोंकी ही विभूतियाँ कही गयी हैं। पदार्थोंकी जो-जो शक्तियाँ हैं, वे सब गौरी

अष्टौ प्रकृतयो देव्या मूर्तयः परिकीर्तिताः।
तथा विकृतयस्तस्या देहबद्धविभूतयः॥ २२

विस्फुलिङ्गा यथा तावदग्नौ च बहुधा स्मृताः।
जीवाः सर्वे तथा शर्वो द्वन्द्वसत्त्वमुपागतः॥ २३

गौरीरूपाणि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम्।
शरीरिणस्तथा सर्वे शङ्करांशा व्यवस्थिताः॥ २४

श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वरः।
विषयित्वं विभुर्धत्ते विषयात्मकतामुमा॥ २५

स्त्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शङ्करवल्लभा।
स्त्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचन्द्रार्धशेखरः॥ २६

दृश्यवस्तु प्रजारूपं बिभर्ति भुवनेश्वरी।
द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखण्डशिखामणिः॥ २७

रसजातमुमारूपं घ्रेयजातं च सर्वशः।
देवो रसयिता शम्भुर्घ्राता च भुवनेश्वरः॥ २८

मन्तव्यवस्तुतां धत्ते महादेवी महेश्वरी।
मन्ता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः॥ २९

बोद्धव्यं वस्तुरूपं च बिभर्ति भववल्लभा।
देवः स एव भगवान् बोद्धा बालेन्दुशेखरः॥ ३०

पीठाकृतिरुमा देवी लिङ्गरूपश्च शङ्करः।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयन्ति सुरासुराः॥ ३१

ये ये पदार्था लिङ्गाङ्कास्ते ते शर्वविभूतयः।
अर्था भगाङ्किता ये ये ते ते गौर्या विभूतयः॥ ३२

स्वर्गपाताललोकान्तब्रह्माण्डावरणाष्टकम्।
ज्ञेयं सर्वमुमारूपं ज्ञाता देवो महेश्वरः॥ ३३

बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरान्तकवल्लभा।
क्षेत्रज्ञत्वमथो धत्ते भगवानन्धकान्तकः॥ ३४

हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है। वह शक्ति विश्वेश्वरी देवी उमा ही हैं और वह समस्त पदार्थ भगवान् महेश्वर ही हैं। शक्तिसे युक्त जो भी पदार्थ हैं, वे सब महेश्वर शिवरूप हैं। आठों प्रकृतियाँ देवीकी मूर्तियाँ हैं और सभी विकृतियाँ उनकी देहबद्ध विभूतियाँ कही गयी हैं। जैसे अग्निमें अनेक विस्फुलिङ्ग बताये गये हैं, वैसे ही द्वन्द्वसत्त्वको प्राप्त शिवमें सभी जीव स्थित हैं। जीवोंके समस्त शरीर गौरीरूप हैं और समस्त जीव शंकरके अंशरूपसे उनमें व्यवस्थित हैं। श्रवणके योग्य सब कुछ उमाका रूप है और उसके श्रोता भगवान् महेश्वर हैं। शिव विषयका आस्वादकत्व धारण करते हैं और पार्वती विषयात्मकता धारण करती हैं। शंकरप्रिया पार्वती सृजन करनेयोग्य सभी वस्तुओंको धारण करती हैं और अर्धबालचन्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले वे विश्वात्मा ही उनके स्त्रष्टा हैं। भुवनेश्वरी उमा समस्त प्रजारूप दृश्य वस्तुओंको धारण करती हैं और चन्द्रखण्डको सिरपर धारण करनेवाले भगवान् विश्वेश्वर उनके द्रष्टा हैं॥ १९—२७॥

सम्पूर्ण रस उमारूप है और शम्भु रस ग्रहण करनेवाले हैं; सूँघनेयोग्य वस्तुसमूह उमारूप है और शिव उसके घ्राता हैं। महादेवी महेश्वरी माननेयोग्य वस्तुता (भाव)-को धारण करती हैं और वे विश्वात्मा महादेव महेश्वर उसका मनन करनेवाले हैं। शिवप्रिया पार्वती बोध करनेयोग्य वस्तुओंको धारण करती हैं और बालचन्द्रको मस्तकपर धारण करनेवाले वे भगवान् शिव उनके बोद्धा हैं। उमा पीठाकृति (जलहरी) हैं और शिव [उसमें स्थित] लिङ्गरूप हैं। देवता तथा दानव लिङ्ग तथा वेदीके रूपमें स्थापित करके प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करते हैं। जो-जो पदार्थ पुरुषचिह्नोंवाले हैं, वे शिवकी विभूतियाँ हैं और जो-जो पदार्थ स्त्रीचिह्नोंवाले हैं, वे गौरीकी विभूतियाँ हैं। स्वर्गसे पाताललोकपर्यन्त आठ आवरणोंवाले ब्रह्माण्डमें जो भी जाननेयोग्य है, वह सब उमारूप है और उसके ज्ञाता भगवान् महेश्वर हैं। त्रिपुरका नाश करनेवाले शिवकी प्रिया देवी [पार्वती] क्षेत्रता (लिङ्गशरीररूपता)-को धारण करती हैं और अन्धकका संहार करनेवाले भगवान् [शिव] क्षेत्रज्ञत्व (जीवरूपत्व)-को धारण करते हैं॥ २८—३४॥

शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्यदेवताः।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥ ३५

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते॥ ३६

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः।
मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति च॥ ३७

विष्णुना रावणं हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम्।
स्थापितं विधिवद्भक्त्या लिङ्गं तीरे नदीपतेः॥ ३८

[जिस राजाके राज्यमें] लोग शिवलिङ्गको छोड़कर अन्य देवताओंका पूजन करते हैं, वह राजा अपने देशसहित रौरव नरकमें जाता है। जो राजा शिवभक्त नहीं है और अन्य देवताओंके प्रति भक्तिपरायण रहता है, वह वैसे ही है, जैसे कोई युवती अपने पतिको छोड़कर परपुरुषोंमें आसक्ति रखती है। ब्रह्मा आदि सभी देवता, बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली राजा, मनुष्य तथा मुनिगण शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं। भगवान् विष्णुने [रामावतारमें] सेनासहित ब्राह्मणपुत्र रावणका संहार करके समुद्रके तटपर विधिपूर्वक

शिवलिङ्गकी स्थापना की थी॥ ३५—३८॥

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा।
भावात्समाश्रितो रुद्रं मुच्यते नात्र संशयः॥ ३९

सर्वे लिङ्गमया लोकाः सर्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिताः।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम्॥ ४०

सर्वाकारौ स्थितावेतौ नरैः श्रेयोऽर्थिभिः शिवौ।
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिन्तनीयौ च सर्वदा॥ ४१
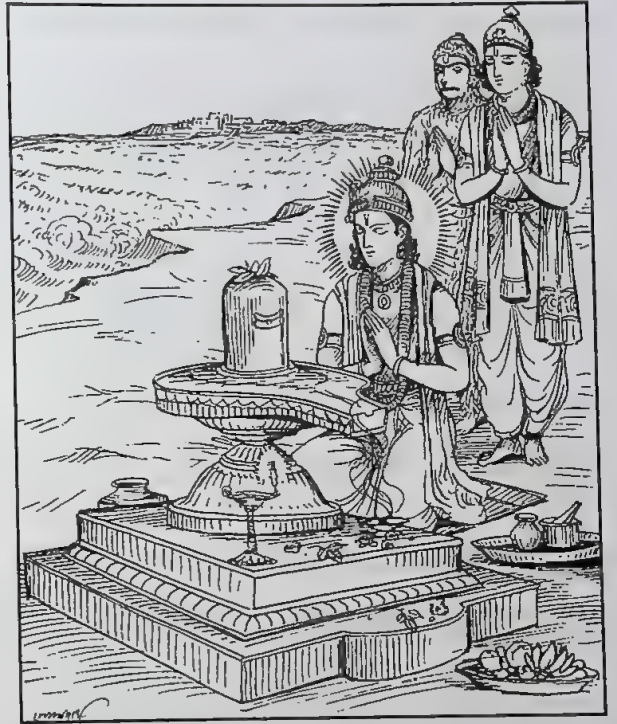
हजारों पाप करके तथा सैकड़ों विप्रोंका वध करके भी जो भक्तिपूर्वक रुद्रका आश्रय ग्रहण करता है, वह मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। समस्त लोक लिङ्गमय है और सभी लिङ्गमें ही स्थित हैं; अतः यदि कोई शाश्वत पदकी इच्छा रखता हो, तो उसे शिवलिङ्गका पूजन अवश्य करना चाहिये। अपने कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको सर्वरूपमें स्थित इन दोनों (शिव-पार्वती)-का सर्वदा पूजन, नमस्कार और चिन्तन करना चाहिये॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवविभूतिमहिमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवविभूतिमहिमावर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका स्वरूप तथा उनकी विश्वरूपता

सनत्कुमार उवाच

मूर्तयोऽष्टौ ममाचक्ष्व शङ्करस्य महात्मनः।
विश्वरूपस्य देवस्य गणेश्वर महामते॥ १

सनत्कुमार बोले—हे गणेश्वर! हे महामते! विश्वरूप महात्मा भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियोंको आप मुझे बतायें॥ १॥

नन्दिकेश्वर उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि महिमानमुमापतेः।
विश्वरूपस्य देवस्य सरोजभवसम्भव॥ २

भूरापोऽग्निर्मरुद् व्योम भास्करो दीक्षितः शशी।
भवस्य मूर्तयः प्रोक्ताः शिवस्य परमेष्ठिनः॥ ३

खात्मेन्दुवह्निसूर्याम्भोधराः पवन इत्यपि।
तस्याष्टमूर्तयः प्रोक्ता देवदेवस्य धीमतः॥ ४

अग्निहोत्रेऽर्पिते तेन सूर्यात्मनि महात्मनि।
तद्विभूतीस्तथा सर्वे देवास्तृप्यन्ति सर्वदा॥ ५

वृक्षस्य मूलसेकेन यथा शाखोपशाखिकाः।
तथा तस्यार्चया देवास्तथा स्युस्तद्विभूतयः॥ ६

नन्दिकेश्वर बोले—हे कमलयोनि (ब्रह्मा)-के पुत्र! मैं उमापति विश्वरूप महादेवकी महिमाका वर्णन आपसे अवश्य करूँगा। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, भास्कर, यजमान तथा चन्द्र—ये परमेष्ठी भगवान् शिवकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। आकाश, आत्मा (जीव), चन्द्र, अग्नि, सूर्य, जल, पृथ्वी, पवन—ये भी उन बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेवकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इसीलिये अग्निमें विधिपूर्वक दी गयी आहुति, सूर्यको प्रदत्त अर्घ्य आदि तथा परमात्माके प्रति समर्पित पदार्थसे उनकी समस्त विभूतियाँ और सभी देवता सदैव तृप्त होते हैं। जिस प्रकार वृक्षके मूलको सींचनेसे उसकी शाखाएँ तथा उपशाखाएँ स्वयं पोषित होती हैं, उसी प्रकार उन शिवकी पूजासे देवगण तथा उनकी विभूतियाँ स्वयं सन्तुष्ट हो जाती हैं॥ २—६॥

तस्य द्वादशधा भिन्नं रूपं सूर्यात्मकं प्रभोः।
सर्वदेवात्मकं याज्यं यजन्ति मुनिपुङ्गवाः॥ ७

उन प्रभु शिवके बारह प्रकारके भिन्न सूर्यात्मक रूप हैं; श्रेष्ठ मुनिगण उसी सर्वदेवात्मक पूज्य रूपका यजन करते हैं॥ ७॥

अमृताख्या कला तस्य सर्वस्यादित्यरूपिणः।
भूतसञ्जीवनी चेष्टा लोकेऽस्मिन् पीयते सदा॥ ८

उन आदित्यरूप भगवान् शिवकी अमृता नामक कला प्राणियोंको जीवन प्रदान करती है; इस लोकमें सभीके लिये प्रिय इस कलाका सदा पान किया जाता है॥ ८॥

चन्द्राख्यकिरणास्तस्य धूर्जटेर्भास्करात्मनः।
ओषधीनां विवृद्ध्यर्थं हिमवृष्टिं वितन्वते॥ ९

सूर्यरूप उन भगवान् शिवकी चन्द्र नामक किरणें औषधियोंकी वृद्धिके लिये हिमवृष्टिका विस्तार करती हैं॥ ९॥

शुक्लाख्या रश्मयस्तस्य शम्भोर्मार्तण्डरूपिणः।
घर्मं वितन्वते लोके सस्यपाकादिकारणम्॥ १०

मार्तण्डरूपी उन शिवकी शुक्ल नामक किरणें फसलोंके पाक आदिकी कारणरूप ऊष्माका लोकमें विस्तार करती हैं॥ १०॥

दिवाकरात्मनस्तस्य हरिकेशाह्वयः करः।
नक्षत्रपोषकश्चैव प्रसिद्धः परमेष्ठिनः॥ ११

उन सूर्यरूप परमेष्ठी शिवकी हरिकेश नामसे

विश्वकर्माह्वयस्तस्य किरणो बुधपोषकः।
सर्वेश्वरस्य देवस्य सप्तसप्तिस्वरूपिणः॥ १२
विश्वव्यच इति ख्यातः किरणस्तस्य शूलिनः।
शुक्रपोषकभावेन प्रतीतः सूर्यरूपिणः॥ १३
संयद्वसुरिति ख्यातो यस्य रश्मिस्त्रिशूलिनः।
लोहिताङ्गं प्रपुष्णाति सहस्त्रकिरणात्मनः॥ १४
अर्वावसुरिति ख्यातो रश्मिस्तस्य पिनाकिनः।
बृहस्पतिं प्रपुष्णाति सर्वदा तपनात्मनः॥ १५
स्वराडिति समाख्यातः शिवस्यांशुः शनैश्चरम्।
हरिदश्वात्मनस्तस्य प्रपुष्णाति दिवानिशम्॥ १६
सूर्यात्मकस्य देवस्य विश्वयोनेरुमापतेः।
सुषुम्णाख्यः सदा रश्मिः पुष्णाति शिशिरद्युतिम्॥ १७

प्रसिद्ध किरण नक्षत्रोंको दीप्ति प्रदान करती है। उन सूर्यस्वरूप सर्वेश्वर प्रभुकी विश्वकर्मा नामक किरण बुधका पोषण करती है। उन शूलधारी सूर्यरूप शिवकी विश्वव्यच—इस नामसे प्रसिद्ध किरण शुक्रके पोषकभावसे प्रतिष्ठित है। उन सूर्यरूप त्रिशूलधारी शिवकी संयद्वसु—इस नामसे प्रसिद्ध किरण मंगलका पोषण करती है। उन सूर्यरूप पिनाकी शिवकी अर्वावसु—इस नामवाली किरण सर्वदा बृहस्पतिका पोषण करती है। सूर्यरूप उन शिवकी स्वराट्—इस नामसे प्रसिद्ध किरण दिन-रात शनैश्चरका पोषण करती है। विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले उमापति सूर्यरूप महादेवकी सुषुम्णा नामक किरण सदा चन्द्रमाका पोषण करती है॥ ११—१७॥

सौम्यानां वसुजातानां प्रकृतित्वमुपागता।
तस्य सोमाह्वया मूर्तिः शङ्करस्य जगद्गुरोः॥ १८
तस्य सोमात्मकं रूपं शुक्रत्वेन व्यवस्थितम्।
शरीरभाजां सर्वेषां देवस्यान्तकशासिनः॥ १९
शरीरिणामशेषाणां मनस्येव व्यवस्थितम्।
वपुः सोमात्मकं शम्भोस्तस्य सर्वजगद्गुरोः॥ २०

उन जगद्गुरु शंकरकी सोम (चन्द्र) नामक मूर्ति समस्त शान्त किरणोंकी प्रकृतिको प्राप्त है। कालपर शासन करनेवाले उन शिवका सोमात्मकरूप सभी देहधारियोंमें शुक्र (वीर्य)-रूपसे व्यवस्थित है। समस्त जगत्के गुरु उन शिवका चन्द्ररूप शरीर ही सभी जीवोंके मनमें प्रतिष्ठित है॥ १८—२०॥

शम्भोः षोडशधा भिन्ना स्थितामृतकलात्मनः।
सर्वभूतशरीरेषु सोमाख्या मूर्तिरुत्तमा॥ २१

चन्द्ररूप शिवकी सोम नामक उत्तम मूर्ति सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंमें सोलह प्रकारके विभिन्न रूपोंमें स्थित है॥ २१॥

देवान् पितॄंश्च पुष्णाति सुधयामृतया सदा।
मूर्तिः सोमाह्वया तस्य देवदेवस्य शासितुः॥ २२

उन देवाधिदेव प्रभुकी 'चन्द्र' नामक मूर्ति अपनी अविनाशी सुधासे देवताओं और पितरोंको सदा तृप्त करती रहती है॥ २२॥

पुष्णात्योषधिजातानि देहिनामात्मशुद्धये।
सोमाह्वया तनुस्तस्य भवानीमिति निर्दिशेत्॥ २३

उन शिवकी सोम नामक मूर्ति प्राणियोंकी देहशुद्धिके लिये समस्त औषधियोंको पोषित करती है; उस मूर्तिको भवानीरूप ही समझना चाहिये॥ २३॥

यज्ञानां पतिभावेन जीवानां तपसामपि।
प्रसिद्धरूपमेतद्वै सोमात्मकमुमापतेः॥ २४
जलानामोषधीनां च पतिभावेन विश्रुतम्।
सोमात्मकं वपुस्तस्य शम्भोर्भगवतः प्रभोः॥ २५

उमापति शिवकी यह चन्द्ररूप मूर्ति यज्ञों, जीवों और तपोंके स्वामीके रूपमें प्रसिद्ध है। उन सर्वशक्तिमान् भगवान् शम्भुका चन्द्ररूप विग्रह जल और औषधियोंके स्वामीके रूपमें विख्यात है॥ २४-२५॥

देवो हिरणमयो मृष्टः परस्परविवेकिनः।
करणानामशेषाणां देवतानां निराकृतिः॥ २६

आत्मा और अनात्मा-सम्बन्धी विचारसम्पन्न जनोंसे सुविचारित जो सदाशिव हैं, वे समस्त इन्द्रियों तथा उनके देवताओंसे अग्राह्य हैं तथा विशुद्ध अमृतरूप हैं॥ २६॥

जीवत्वेन स्थिते तस्मिन् शिवे सोमात्मके प्रभौ।
मधुरा विलयं याति सर्वलोकैकरक्षिणी॥ २७

यजमानाह्वया मूर्तिः शैवी हव्यैरहर्निशम्।
पुष्णाति देवताः सर्वाः कव्यैः पितृगणानपि॥ २८

यजमानाह्वया या सा तनुश्चाहुतिजा तया।
वृष्ट्या भावयति स्पष्टं सर्वमेव परापरम्॥ २९

अन्तःस्थं च बहिःस्थं च ब्रह्माण्डानां स्थितं जलम्।
भूतानां च शरीरस्थं शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी॥ ३०

नदीनाममृतं साक्षान्नदानामपि सर्वदा।
समुद्राणां च सर्वत्र व्यापी सर्वमुमापतिः॥ ३१

सञ्जीविनी समस्तानां भूतानामेव पाविनी।
अम्बिका प्राणसंस्था या मूर्तिरम्बुमयी परा॥ ३२

अन्तःस्थश्च बहिःस्थश्च ब्रह्माण्डानां विभावसुः।
यज्ञानां च शरीरस्थः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी॥ ३३

शरीरस्था च भूतानां श्रेयसी मूर्तिरैश्वरी।
मूर्तिः पावकसंस्था या शम्भोरत्यन्तपूजिता॥ ३४

भेदा एकोनपञ्चाशद्वेदविद्भिरुदाहृताः।
हव्यं वहति देवानां शम्भोर्यज्ञात्मकं वपुः॥ ३५

कव्यं पितृगणानां च हूयमानं द्विजातिभिः।
सर्वदेवमयं शम्भोः श्रेष्ठमग्न्यात्मकं वपुः॥ ३६

वदन्ति वेदशास्त्रज्ञा यजन्ति च यथाविधि।
अन्तःस्थो जगदण्डानां बहिःस्थश्च समीरणः॥ ३७

शरीरस्थश्च भूतानां शैवी मूर्तिः पटीयसी।
प्राणाद्या नागकूर्माद्या आवहाद्याश्च वायवः॥ ३८

ईशानमूर्तेरेकस्य भेदाः सर्वे प्रकीर्तिताः।
अन्तःस्थं जगदण्डानां बहिःस्थं च वियद्विभोः॥ ३९

उन चन्द्ररूप भगवान् शिवके जीवरूपमें आत्मामें निश्चल हो जानेपर समस्त लोकोंपर एकमात्र शासन करनेवाली माया तिरोहित हो जाती है॥ २७॥

शिवकी यजमान नामक मूर्ति हव्य द्रव्योंसे सभी देवताओं तथा कव्य द्रव्योंसे पितरोंको भी निरन्तर सन्तृप्त करती है॥ २८॥

यजमान नामक जो [शिवकी] मूर्ति है, वह आहुतिजन्य वृष्टिसे सभी परापर पदार्थोंको उत्पन्न करती है—यह प्रसिद्ध ही है॥ २९॥

ब्रह्माण्डोंके भीतर तथा बाहर व्याप्त जल तथा प्राणियोंके शरीरमें स्थित जल उन्हीं शिवकी श्रेष्ठ मूर्ति है॥ ३०॥

नदियों, नदों और समुद्रोंके अमृतमय सारे जलके रूपमें सर्वत्र उमापति शिव ही सर्वदा व्याप्त हैं। यह मूर्ति समस्त जीवोंको जीवन प्रदान करनेवाली तथा उन्हें पवित्र करनेवाली है। चन्द्ररूपा उमाके हृदयमें जो मूर्ति स्थित है, वह भगवान् शिवकी जलमयी परामूर्ति ही है॥ ३१-३२॥

ब्रह्माण्डोंके भीतर तथा बाहर व्याप्त और यज्ञविग्रहमें स्थित अग्नि भगवान् शिवकी श्रेष्ठ [अग्निरूप] मूर्ति ही है। जीवोंके शरीरमें भी जठराग्निरूपसे ईश्वर शिवकी कल्याणमयी मूर्ति ही विराजमान है। भगवान् शिवकी जो अग्निरूप मूर्ति है, वह अत्यन्त पूजित है। वेदवेत्ताओंने इसके उनचास भेद बताये हैं। भगवान् शिवका यह अग्निरूप विग्रह द्विजातियोंके द्वारा आहुति प्रदान किये जानेपर देवताओंके लिये हव्य तथा पितरोंके लिये कव्यका वहन करता है। वेद तथा शास्त्रोंको जाननेवाले भगवान् शिवकी अग्निरूप मूर्तिको सर्वदेवमय तथा श्रेष्ठ कहते हैं और विधिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं॥ ३३—३६१/२॥

ब्रह्माण्डोंके भीतर तथा बाहर स्थित और जीवोंके शरीरमें स्थित जो वायु है, वह शिवकी महिमामयी मूर्ति ही है। प्राण आदि, नाग-कूर्म आदि और आहव आदि वायु हैं; वे सब उसी एकमात्र शिवकी मूर्तिके भेद कहे गये हैं॥ ३७-३८१/२॥

शरीरस्थं च भूतानां शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी।
शम्भोर्विश्वम्भरा मूर्तिः सर्वब्रह्माधिदेवता॥ ४०

चराचराणां भूतानां सर्वेषां धारणे मता।
चराचराणां भूतानां शरीराणि विदुर्बुधाः॥ ४१

पञ्चकेनेशमूर्तीनां समारब्धानि सर्वथा।
पञ्चभूतानि चन्द्रार्कावात्मेति मुनिपुङ्गवाः॥ ४२

मूर्तयोऽष्टौ शिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमतः।
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिर्यजमानाह्वया परा॥ ४३

चराचरशरीरेषु सर्वेष्वेव स्थिता तदा।
दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः॥ ४४

यजमानाह्वया मूर्तिः शिवस्य शिवदायिनः।
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैता वन्दनीयाः प्रयत्नतः॥ ४५

श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥ ४६

ब्रह्माण्डोंके भीतर तथा बाहर स्थित और प्राणियोंके देहमें स्थित जो आकाश है, वह सर्वव्यापी शम्भुकी ही महिमायुक्त मूर्ति है। भगवान् शिवकी धरारूप मूर्ति सभी ब्राह्मणोंकी मुख्य देवता है तथा समस्त चराचर प्राणियोंको धारण करनेवाली कही गयी है॥ ३९-४०१/२॥

स्थावर-जंगम प्राणियोंके शरीर भगवान् शिवकी मूर्तियोंके [पृथ्वी, जल आदि] पंचमहाभूत समुदायसे सम्यक् उत्पन्न किये गये हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है। श्रेष्ठ मुनियोंने बताया है कि पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), चन्द्र, सूर्य और आत्मा—ये ही देवदेव धीमान्‌की आठ मूर्तियाँ हैं। उन शिवकी जो आठवीं श्रेष्ठ मूर्ति आत्मा है, वह यजमान नामवाली भी है; यह सभी चराचर प्राणियोंके शरीरोंमें सदा स्थित रहती है। मुनीश्वरोंने दीक्षित ब्राह्मणको भी आत्मा कहा है। इसे ही कल्याणकारी शिवकी यजमान नामक मूर्ति कहा गया है। अपने कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्योंको शिवकी इन कल्याणकी साधनभूता अष्ट-मूर्तियोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये॥ ४१—४६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवविश्वरूपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवविश्वरूपवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् सदाशिवके शर्व, भव आदि आठ स्वरूपों तथा उनकी शक्तियों एवं पुत्रोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि वद मे नन्दिन् महिमानमुमापते।
अष्टमूर्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥ १

नन्दिकेश्वर उवाच

वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापतेः।
अष्टमूर्तेर्जगद्व्याप्य स्थितस्य परमेष्ठिनः॥ २
चराचराणां भूतानां धाता विश्वम्भरात्मकः।
शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः॥ ३
विश्वम्भरात्मनस्तस्य सर्वस्य परमेष्ठिनः।
विकेशी कथ्यते पत्नी तनयोऽङ्गारकः स्मृतः॥ ४

सनत्कुमार बोले—हे नन्दिन्! उमापति परमेष्ठी अष्टमूर्ति महेश्वर शिवकी और भी महिमा मुझे बताइये॥ १॥

नन्दिकेश्वर बोले—मैं जगत्‌को व्याप्त करके स्थित रहनेवाले परमेष्ठी उमापति महेशकी अष्टमूर्तिकी महिमा आपको बताऊँगा। चराचर प्राणियोंको धारण करनेवाले उन पृथ्वीरूप शिवको सभी शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् शर्व—ऐसा कहते हैं॥ २-३॥

उन पृथ्वीरूप परमेष्ठी शर्वकी पत्नी विकेशी कही जाती हैं और पुत्रको अंगारक (मंगल) कहा गया है॥ ४॥

भव इत्युच्यते देवो भगवान् वेदवादिभिः।
सञ्जीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः॥ ५

उमा सङ्कीर्तिता देवी सुतः शुक्रश्च सूरिभिः।
सप्तलोकाण्डकव्यापी सर्वलोकैकरक्षिता॥ ६

वह्न्यात्मा भगवान् देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।
स्वाहा पत्न्यात्मनस्तस्य प्रोक्ता पशुपतेः प्रिया॥ ७

षण्मुखो भगवान् देवो बुधैः पुत्र उदाहृतः।
समस्तभुवनव्यापी भर्ता सर्वशरीरिणाम्॥ ८

पवनात्मा बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते।
ईशानस्य जगत्कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः॥ ९

शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः।
चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्वकामदः॥ १०

व्योमात्मा भगवान् देवो भीम इत्युच्यते बुधैः।
महामहिम्नो देवस्य भीमस्य गगनात्मनः॥ ११

दिशो दश स्मृता देव्यः सुतः सर्गश्च सूरिभिः।
सूर्यात्मा भगवान् देवः सर्वेषां च विभूतिदः॥ १२

रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान् भुक्तिमुक्तिदः।
सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तिदायिनः॥ १३

सुवर्चला स्मृता देवी सुतश्चास्य शनैश्चरः।
समस्तसौम्यवस्तूनां प्रकृतित्वेन विश्रुतः॥ १४

सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृतः।
सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः॥ १५

दयिता रोहिणी प्रोक्ता बुधश्चैव शरीरजः।
हव्यकव्यस्थितिं कुर्वन् हव्यकव्याशिनां तदा॥ १६

यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभुः।
उग्र इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः॥ १७

उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः।
दीक्षापत्नी बुधैरुक्ता सन्तानाख्यः सुतस्तथा॥ १८

वेदवेत्ता लोग जलमूर्ति शिवको भव—ऐसा कहते हैं। विद्वानोंके द्वारा लोगोंको जीवन प्रदान करनेवाले परमात्मा भवकी भार्या देवी उमा कही गयी हैं और उनके पुत्र शुक्र कहे गये हैं॥ ५१/२॥

सभी लोकोंमें व्याप्त रहनेवाले तथा सभी लोकोंके एकमात्र रक्षक अग्निरूप भगवान् शिवको विद्वानोंने पशुपति कहा है। उन परमात्मा पशुपतिकी प्रिय भार्या स्वाहा कही गयी हैं। विद्वानोंके द्वारा भगवान् कार्तिकेय उनके पुत्र कहे गये हैं॥ ६-७१/२॥

समस्त भुवनोंमें व्याप्त रहनेवाले तथा सभी जीवोंका भरण-पोषण करनेवाले पवनरूप शिवको विद्वानोंके द्वारा ईशान—ऐसा कहा जाता है। विद्वानोंके द्वारा पवनात्मा जगत्कर्ता भगवान् ईशानकी पत्नी भगवती शिवा कही गयी हैं और इनके पुत्र मनोजव कहे गये हैं॥ ८-९१/२॥

सभी स्थावर-जंगम प्राणियोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले आकाशरूप भगवान् शिवको विद्वान् भीम—ऐसा कहते हैं। विद्वान् पुरुषोंने दसों दिशाओंको उन महामहिम व्योमात्मा प्रभु भीमकी पत्नियाँ तथा सर्गको उनका पुत्र कहा है॥ १०-१११/२॥

सभीको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले सूर्यरूप भगवान् शिवको देवता लोग भुक्तिमुक्तिदाता भगवान् रुद्र कहते हैं। भक्तोंको भक्ति प्रदान करनेवाले उन सूर्यात्मा रुद्रकी भार्या सुवर्चला कही गयी हैं और शनैश्चर इनके पुत्र कहे गये हैं॥ १२-१३१/२॥

समस्त सौम्य वस्तुओंकी प्रकृतिके रूपमें प्रसिद्ध सोमरूप शिवको विद्वानोंने महादेव—ऐसा कहा है। मनीषियोंने रोहिणीको उन सोमात्मक प्रभु महादेवकी पत्नी और बुधको उनका पुत्र बताया है॥ १४-१५१/२॥

हव्य-कव्य ग्रहण करनेवाले देवताओं तथा पितरोंके लिये हव्य-कव्यकी व्यवस्था करनेवाले यजमानरूप प्रभु शिवको विद्वानोंने उग्र—ऐसा कहा है तथा दूसरे श्रेष्ठ जनोंने उन्हें ईशान भी कहा है। विद्वानोंने दीक्षाको उन यजमानरूप उग्र नामक शिवकी पत्नी बताया है। उनका पुत्र सन्तान नामवाला है॥ १६—१८॥

शरीरिणां शरीरेषु कठिनं कोङ्कणादिवत्।
पार्थिवं तद्वपुर्ज्ञेयं शर्वतत्त्वं बुभुत्सुभिः॥ १९

देहे देहे तु देवेशो देहभाजां यदव्ययम्।
वस्तुद्रव्यात्मकं तस्य भवस्य परमात्मनः॥ २०

ज्ञेयं च तत्त्वविद्भिर्वै सर्ववेदार्थपारगैः।
आग्नेयः परिणामो यो विग्रहेषु शरीरिणाम्॥ २१

मूर्तिः पशुपतिर्ज्ञेया सा तत्त्वं वेत्तुमिच्छुभिः।
वायव्यः परिणामो यः शरीरेषु शरीरिणाम्॥ २२

बुधैरीशेति सा तस्य तनुर्ज्ञेया न संशयः।
सुषिरं यच्छरीरस्थमशेषाणां शरीरिणाम्॥ २३

भीमस्य सा तनुर्ज्ञेया तत्त्वविज्ञानकाङ्क्षिभिः।
चक्षुरादिगतं तेजो यच्छरीरस्थमङ्गिनाम्॥ २४

रुद्रस्यापि तनुर्ज्ञेया परमार्थं बुभुत्सुभिः।
सर्वभूतशरीरेषु मनश्चन्द्रात्मकं हि यत्॥ २५

महादेवस्य सा मूर्तिर्बोद्धव्या तत्त्वचिन्तकैः।
आत्मा यो यजमानाख्यः सर्वभूतशरीरगः॥ २६

मूर्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः।
जातानां सर्वभूतानां चतुर्दशसु योनिषु॥ २७

अष्टमूर्तेरनन्यत्वं वदन्ति परमर्षयः।
सप्तमूर्तिमयान्याहुरीशस्याङ्गानि देहिनाम्॥ २८

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः सर्वभूतशरीरगा।
अष्टमूर्तिममुं देवं सर्वलोकात्मकं विभुम्॥ २९

भजस्व सर्वभावेन श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छसि।
प्राणिनो यस्य कस्यापि क्रियते यद्यनुग्रहः॥ ३०

अष्टमूर्तेर्महेशस्य कृतमाराधनं भवेत्।
निग्रहश्चेत् कृतो लोके देहिनो यस्य कस्यचित्॥ ३१

जीवोंके शरीरोंमें कोंकण आदि स्थलोंकी भाँति जो कठोर पार्थिव भाग है, उसे जिज्ञासुओंको शर्व-तत्त्व समझना चाहिये। प्राणियोंके शरीरमें जो शाश्वत द्रवरूप वस्तु है, वह उन परमात्मा भवका अंश है—ऐसा सभी वेदार्थोंके पारगामी विद्वानों तथा तत्त्वज्ञोंको जानना चाहिये॥ १९-२०१/२॥

प्राणियोंके शरीरोंमें जो तेजोरूप अग्निभाग है, उसे तत्त्वज्ञानकी इच्छावालोंको पशुपतिमूर्ति जाननी चाहिये। जीवोंके शरीरोंमें जो प्राण आदि वायुरूप है, उसे विद्वानोंको उन परमेश्वरकी ईशानमूर्ति समझनी चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ २१-२२१/२॥

सभी जीवोंके शरीरोंमें जो छिद्ररूप [आकाश] भाग है, उसे तत्त्वविज्ञानकी आकांक्षा रखनेवालोंको भीमकी मूर्ति समझनी चाहिये। सभी प्राणियोंके शरीरोंमें चक्षु आदिमें जो सूर्यरूप तेज है, उसे परमार्थके जिज्ञासुओंको रुद्रमूर्ति जाननी चाहिये॥ २३-२४१/२॥

सभी प्राणियोंके शरीरोंमें चन्द्ररूप जो मन है, उसे तत्त्वचिन्तकोंको महादेवकी मूर्ति जाननी चाहिये। सभी जीवोंके शरीरोंमें यजमान नामक जो आत्मा है, उसे परमात्मज्ञानकी कामनावाले लोगोंको उग्र नामक मूर्ति जाननी चाहिये॥ २५-२६१/२॥

महर्षिगण चौदहों योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले समस्त जीवोंमें अष्टमूर्तिकी अभिन्नता बताते हैं और उन्होंने प्राणियोंके शरीरोंको शिवकी सात मूर्तियोंसे समन्वित कहा है। सभी जीवोंके शरीरमें स्थित आत्मा उस शिवकी आठवीं मूर्ति है॥ २७-२८१/२॥

[हे सनत्कुमार!] यदि आप कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं तो इन सर्वलोकस्वरूप तथा सर्वव्यापी अष्टमूर्ति भगवान् शिवकी सब प्रकारसे आराधना कीजिये। जिस किसी भी प्राणीके प्रति जो अनुग्रह किया जाता है, वह अष्टमूर्ति महेश्वरकी ही आराधना की गयी होती है। यदि लोकमें जिस किसी भी जीवको क्लेश दिया जाता है, तो वह मानो अष्टमूर्ति महेशको ही दिया गया। लोकमें यदि जिस किसी भी प्राणीका अनादर किया गया, तो वह मानो सर्वव्यापी अष्टमूर्ति

अष्टमूर्तेर्महेशस्य स एव विहितो भवेत्।
यद्यवज्ञा कृता लोके यस्य कस्यचिदङ्गिनः॥ ३२
अष्टमूर्तेर्महेशस्य विहिता सा भवेद्विभोः।
अभयं यत् प्रदत्तं स्यादङ्गिनो यस्य कस्यचित्॥ ३३
आराधनं कृतं तस्मादष्टमूर्तेर्न संशयः।
सर्वोपकारकरणं प्रदानमभयस्य च॥ ३४
आराधनं तु देवस्य अष्टमूर्तेर्न संशयः।
सर्वोपकारकरणं सर्वानुग्रह एव च॥ ३५
तदर्चनं परं प्राहुरष्टमूर्तेर्मुनीश्वराः।
अनुग्रहणमन्येषां विधातव्यं त्वयाङ्गिनाम्॥ ३६
सर्वाभयप्रदानं च शिवाराधनमिच्छता॥ ३७

महेशका ही अनादर किया गया है। जिस किसी भी प्राणीको जो अभय प्रदान किया जाता है, उससे मानो अष्टमूर्ति शिवकी आराधना कर ली गयी; इसमें सन्देह नहीं है॥ २९—३३½॥

सभीका उपकार करना तथा सबको अभय प्रदान करना अष्टमूर्ति शिवकी ही आराधना है; इसमें संशय नहीं है। सबका उपकार करना तथा सबपर कृपा करना—इसे मुनीश्वरोंने अष्टमूर्तिकी ही परम पूजा बतायी है। अतः [हे सनत्कुमार!] शिवकी प्रसन्नताकी कामना करनेवाले आपको अन्य सभी प्राणियोंपर अनुग्रह तथा उन्हें सर्वविध अभय प्रदान करना चाहिये॥ ३४—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवाष्टमूर्तिवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

भगवान् महेश्वरके पंचब्रह्मात्मक ईशान, तत्पुरुष आदि स्वरूपोंका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

पञ्च ब्रह्माणि मे नन्दिन्नाचक्ष्व गणसत्तम।
श्रेयःकरणभूतानि पवित्राणि शरीरिणाम्॥ १

नन्दिकेश्वर उवाच

शिवस्यैव स्वरूपाणि पञ्च ब्रह्माह्वयानि ते।
कथयामि यथातत्त्वं पद्मयोनेः सुतोत्तम॥ २
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकनिर्माता पञ्चब्रह्मात्मकः शिवः॥ ३
सर्वेषामेव लोकानां यदुपादानकारणम्।
निमित्तकारणं चाहुस्स शिवः पञ्चधा स्मृतः॥ ४
मूर्तयः पञ्च विख्याताः पञ्च ब्रह्माह्वयाः पराः।
सर्वलोकशरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः॥ ५
क्षेत्रज्ञः प्रथमा मूर्तिः शिवस्य परमेष्ठिनः।
भोक्ता प्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः॥ ६
स्थाणोस्तत् पुरुषाख्या च द्वितीया मूर्तिरुच्यते।
प्रकृतिः सा हि विज्ञेया परमात्मगुहात्मिका॥ ७

सनत्कुमार बोले—हे गणोंमें श्रेष्ठ नन्दिन्! जीवोंके लिये कल्याणकारी तथा परम पवित्र पंचब्रह्मोंके विषयमें मुझे बताइये॥ १॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे ब्रह्माजीके उत्तम पुत्र! मैं आपसे शिवजीके पंचब्रह्म नामक स्वरूपोंका यथार्थरूपमें वर्णन कर रहा हूँ। समस्त लोकोंके एकमात्र संहारक, सभी लोकोंके एकमात्र रक्षक तथा समग्र जगत्के एकमात्र स्रष्टा पंचब्रह्मरूप शिव ही हैं॥ २-३॥

जिन्हें सभी लोकोंका उपादानकारण तथा निमित्तकारण कहा गया है, वे शिव पाँच भेदोंवाले बताये गये हैं। सभी लोकोंको शरण प्रदान करनेवाले परमात्मा शिवकी पंचब्रह्म नामक पाँच श्रेष्ठ मूर्तियाँ विख्यात हैं॥ ४-५॥

परमेष्ठी शिवकी पहली मूर्ति क्षेत्रज्ञ है, भोगके योग्य समस्त प्रकृतिवर्गका भोग करनेवाली वह मूर्ति 'ईशान' नामवाली है॥ ६॥

भगवान् शिवकी दूसरी मूर्तिको 'तत्पुरुष' नामसे कहा जाता है। उसे परमात्माकी गुहास्वरूपिणी प्रकृति ही समझना चाहिये॥ ७॥

अघोराख्या तृतीया च शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी।
बुद्धेः सा मूर्तिरित्युक्ता धर्माद्यष्टाङ्गसंयुता॥ ८

शिवकी 'अघोर' नामक तीसरी महिमामयी मूर्ति है; धर्म आदि आठ अंगोंसे युक्त वह बुद्धिकी मूर्ति कही गयी है॥ ८॥

चतुर्थी वामदेवाख्या मूर्तिः शम्भोर्गरीयसी।
अहङ्कारात्मकत्वेन व्याप्य सर्वं व्यवस्थिता॥ ९

शम्भुकी 'वामदेव' नामक चौथी श्रेष्ठ मूर्ति है; वह अहंकाररूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित है॥ ९॥

सद्योजाताह्वया शम्भोः पञ्चमी मूर्तिरुच्यते।
मनस्तत्त्वात्मकत्वेन स्थिता सर्वशरीरिषु॥ १०

शिवकी 'सद्योजात' नामक पाँचवीं मूर्ति कही जाती है, वह सभी प्राणियोंमें मनतत्त्वके रूपमें विराजमान है॥ १०॥

ईशानः परमो देवः परमेष्ठी सनातनः।
श्रोत्रेन्द्रियात्मकत्वेन सर्वभूतेष्ववस्थितः॥ ११

परमेष्ठी शाश्वत परम प्रभु ईशान श्रोत्र-इन्द्रियरूपसे सभी प्राणियोंके भीतर स्थित हैं॥ ११॥

स्थितस्तत्पुरुषो देवः शरीरेषु शरीरिणाम्।
त्वगिन्द्रियात्मकत्वेन तत्त्वविद्भिरुदाहृतः॥ १२

तत्त्ववेत्ताओंने भगवान् तत्पुरुषको त्वक् (त्वचा)-रूपसे जीवोंके शरीरोंमें विराजमान बताया है॥ १२॥

अघोरोऽपि महादेवश्चक्षुरात्मतया बुधैः।
कीर्तितः सर्वभूतानां शरीरेषु व्यवस्थितः॥ १३

विद्वानोंने महादेव अघोरको भी चक्षुरूपसे सभी प्राणियोंके शरीरोंमें व्यवस्थित बताया है॥ १३॥

जिह्वेन्द्रियात्मकत्वेन वामदेवोऽपि विश्रुतः।
अङ्गभाजामशेषाणामङ्गेषु परिधिष्ठितः॥ १४

वामदेव भी समस्त देहधारियोंके शरीरोंमें जिह्वा-इन्द्रियरूपसे विराजमान कहे गये हैं॥ १४॥

घ्राणेन्द्रियात्मकत्वेन सद्योजातः स्मृतो बुधैः।
प्राणभाजां समस्तानां विग्रहेषु व्यवस्थितः॥ १५

विद्वानोंने सद्योजातको घ्राणेन्द्रियरूपसे समस्त प्राणधारियोंके शरीरोंमें विद्यमान बताया है॥ १५॥

सर्वेष्वेव शरीरेषु प्राणभाजां प्रतिष्ठितः।
वागिन्द्रियात्मकत्वेन बुधैरीशान उच्यते॥ १६

भगवान् ईशान विद्वानोंके द्वारा वाक् (वाणी)-इन्द्रियरूपसे सभी प्राणधारियोंके शरीरोंमें प्रतिष्ठित कहे गये हैं॥ १६॥

पाणीन्द्रियात्मकत्वेन स्थितस्तत्पुरुषो बुधैः।
उच्यते विग्रहेष्वेव सर्वविग्रहधारिणाम्॥ १७

भगवान् तत्पुरुष विद्वानोंके द्वारा पाणि-इन्द्रियरूपसे सभी जीवोंके शरीरोंमें विराजमान कहे जाते हैं॥ १७॥

सर्वविग्रहिणां देहे ह्यघोरोऽपि व्यवस्थितः।
पादेन्द्रियात्मकत्वेन कीर्तितस्तत्त्ववेदिभिः॥ १८

तत्त्ववेत्ताओंने भगवान् अघोरको सभी प्राणियोंके शरीरोंमें पाद-इन्द्रियरूपसे अवस्थित बताया है॥ १८॥

पाय्विन्द्रियात्मकत्वेन वामदेवो व्यवस्थितः।
सर्वभूतनिकायानां कायेषु मुनिभिः स्मृतः॥ १९

प्रभु वामदेव मुनियोंके द्वारा सभी प्राणिसमुदायके शरीरोंमें पायु (गुदा)-इन्द्रियरूपसे स्थित कहे गये हैं॥ १९॥

उपस्थात्मतया देवः सद्योजातः स्थितः प्रभुः।
इष्यते वेदशास्त्रज्ञैर्देहेषु प्राणधारिणाम्॥ २०

वेद तथा शास्त्रोंको जाननेवाले लोग भगवान् सद्योजातको जननेन्द्रियरूपसे सभी प्राणधारियोंके शरीरोंमें प्रतिष्ठित बताते हैं॥ २०॥

ईशानं प्राणिनां देवं शब्दतन्मात्ररूपिणम्।
आकाशजनकं प्राहुर्मुनिवृन्दारकप्रजाः॥ २१

प्रमुख मुनियोंने प्राणियोंके स्वामी प्रभु ईशानको शब्दतन्मात्रारूप कहा है और उन्हें आकाशका जनक बताया है॥ २१॥

प्राहुस्तत्पुरुषं देवं स्पर्शतन्मात्रकात्मकम्।
समीरजनकं प्राहुर्भगवन्तं मुनीश्वराः॥ २२

मुनीश्वरोंने भगवान् तत्पुरुषको स्पर्शतन्मात्रारूप कहा है और उन्हें वायुको उत्पन्न करनेवाला बताया है॥ २२॥

रूपतन्मात्रकं देवमघोरमपि घोरकम्।
प्राहुर्वेदविदो मुख्या जनकं जातवेदसः॥ २३

प्रमुख वेदवेत्ताओंने भगवान् अघोरको रूपतन्मात्रात्मक कहा है और उन्हें अग्निका जनक बताया है॥ २३॥

रसतन्मात्ररूपत्वात् प्रथितं तत्त्ववेदिनः।
वामदेवमपां प्राहुर्जनकत्वेन संस्थितम्॥ २४

तत्त्वदर्शी लोगोंने रसतन्मात्रारूपसे विख्यात प्रभु वामदेवको जलके जनकरूपमें प्रतिष्ठित बताया है॥ २४॥

सद्योजातं महादेवं गन्धतन्मात्ररूपिणम्।
भूम्यात्मानं प्रशंसन्ति सर्वतत्त्वार्थवेदिनः॥ २५

समस्त रहस्योंको जाननेवाले [मनीषीगण] महादेव सद्योजातको गन्धतन्मात्रारूप बताते हैं और उन्हें भूमिका जनक कहते हैं॥ २५॥

आकाशात्मानमीशानमादिदेवं मुनीश्वराः।
परमेण महत्वेन सम्भूतं प्राहुरद्भुतम्॥ २६

मुनीश्वरोंने अत्यन्त विस्तारके साथ उत्पन्न होनेके कारण आकाशरूप अद्भुत आदिदेव शिवको 'ईशान' कहा है॥ २६॥

प्रभुं तत्पुरुषं देवं पवनं पवनात्मकम्।
समस्तलोकव्यापित्वात्प्रथितं सूरयो विदुः॥ २७

समस्त लोकोंमें व्याप्त रहनेके कारण पवनरूपसे प्रसिद्ध शिवको विद्वानोंने तत्पुरुष कहा है॥ २७॥

अथार्चिततया ख्यातमघोरं दहनात्मकम्।
कथयन्ति महात्मानं वेदवाक्यार्थवेदिनः॥ २८

वेदमन्त्रोंको जाननेवाले ज्योतिर्मय होनेके कारण अग्निरूपसे प्रसिद्ध महात्मा शिवको अघोर कहते हैं॥ २८॥

तोयात्मकं महादेवं वामदेवं मनोरमम्।
जगत्सञ्जीवनत्वेन कथितं मुनयो विदुः॥ २९

जगत्‌को जीवन प्रदान करनेके गुणसे युक्त कहे गये जलरूप महादेवको मुनियोंने मनोरम वामदेवकी संज्ञा प्रदान की है॥ २९॥

विश्वम्भरात्मकं देवं सद्योजातं जगद्गुरुम्।
चराचरैकभर्तारं परं कविवरा विदुः॥ ३०

श्रेष्ठ कवियोंने चराचर जगत्‌के एकमात्र पालक विश्वम्भर (पृथ्वी)-रूप जगद्गुरु शिवको सद्योजात कहा है॥ ३०॥

पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
शिवानन्दं तदित्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥ ३१

जो [ईशान आदि मूर्तिरूप] पंचब्रह्मात्मक सम्पूर्ण चराचर जगत् है, वह भगवान् शिवका क्रीड़ा-विलास है—ऐसा तत्त्वदर्शी मुनियोंने कहा है॥ ३१॥

पञ्चविंशतितत्त्वात्मा प्रपञ्चे यः प्रदृश्यते।
पञ्चब्रह्मात्मकत्वेन स शिवो नान्यतां गतः॥ ३२

इस जगत्प्रपंचमें पचीस तत्त्वोंसे युक्त जो कुछ दिखायी पड़ता है, वह [ईशान आदि] पंचब्रह्मरूप शिव ही हैं, उनसे अन्य कुछ भी नहीं॥ ३२॥

पञ्चविंशतितत्त्वात्मा पञ्चब्रह्मात्मकः शिवः।
श्रेयोऽर्थिभिरतो नित्यं चिन्तनीयः प्रयत्नतः॥ ३३

अतः अपने कल्याणकी कामना करनेवाले लोगोंको सदा प्रयत्नपूर्वक पचीस तत्त्वोंसे युक्त विग्रहवाले पंचब्रह्मात्मक शिवका चिन्तन करना चाहिये॥ ३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पञ्चब्रह्मकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'पंचब्रह्मकथन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शिवमाहात्म्यका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि शिवमाहात्म्यं समाचक्ष्व महामते।
सर्वज्ञो ह्यसि भूतानामधिनाथ महागुण॥ १

शैलादिरुवाच

शिवमाहात्म्यमेकाग्रः शृणु वक्ष्यामि ते मुने।
बहुभिर्बहुधा शब्दैः कीर्तितं मुनिसत्तमैः॥ २

सदसद्रूपमित्याहुः सदसत्पतिरित्यपि।
तं शिवं मुनयः केचित्प्रवदन्ति च सूरयः॥ ३

भूतभावविकारेण द्वितीयेन स उच्यते।
व्यक्तं तेन विहीनत्वादव्यक्तमसदित्यपि॥ ४

उभे ते शिवरूपे हि शिवादन्यं न विद्यते।
तयोः पतित्वाच्च शिवः सदसत्पतिरुच्यते॥ ५

क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं तथा।
शिवं महेश्वरं केचिन्मुनयस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ६

उक्तमक्षरमव्यक्तं व्यक्तं क्षरमुदाहृतम्।
रूपे ते शङ्करस्यैव तस्मान्न पर उच्यते॥ ७

तयोः परः शिवः शान्तः क्षराक्षरपरो बुधैः।
उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वरः॥ ८

समस्तव्यक्तरूपं तु ततः स्मृत्वा स मुच्यते।
समष्टिव्यष्टिरूपं तु समष्टिव्यष्टिकारणम्॥ ९

वदन्ति केचिदाचार्याः शिवं परमकारणम्।
समष्टिं विदुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं मुनीश्वराः॥ १०

रूपे ते गदिते शम्भोर्नास्त्यन्यद्वस्तुसम्भवम्।
तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः॥ ११

सनत्कुमार बोले—हे महामते! आप और भी शिवमाहात्म्यका वर्णन करें, हे प्राणियोंके अधिनाथ! हे महान् गुणोंवाले! आप सर्वज्ञ हैं॥ १॥

शैलादि बोले—हे मुने! अनेक श्रेष्ठ मुनियोंने अनेक प्रकारसे अपने शब्दोंमें शिवमाहात्म्यका वर्णन किया है; उसे मैं आपको बताऊँगा, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ २॥

कुछ [गौतम आदि] मुनियोंने उन शिवको सत्-असत् रूपवाला कहा है और कुछ विद्वान् उन्हें सत्-असत्का पति भी कहते हैं॥ ३॥

भूतोंके भाव आदि विकारोंसे मुक्त रहनेपर वे शिव व्यक्त तथा सत् कहे जाते हैं और उस [भाव आदि विकार]-से विहीन रहनेपर अव्यक्त तथा असत् कहे जाते हैं। सत् तथा असत्—वे दोनों ही शिवके रूप हैं; शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। उन दोनोंका पति होनेके कारण शिव सदसत्पति (सत् तथा असत्के पति) कहे जाते हैं॥ ४-५॥

कुछ तत्त्वचिन्तक मुनियोंने महेश्वर शिवको क्षर-अक्षररूप तथा क्षर-अक्षरसे परे भी कहा है। अव्यक्तको अक्षर कहा गया है और व्यक्तको क्षर कहा गया है। वे दोनों रूप शिवके ही हैं, क्षराक्षररूप होनेके कारण वे शिव अपरस्वरूप कहे जाते हैं॥ ६-७॥

तत्त्वज्ञानी विद्वान् उन दोनों (व्यक्त तथा अव्यक्त)-से परे होनेके कारण उन शान्त महेश्वर महादेव शिवको क्षराक्षरपर (क्षर तथा अक्षरसे परे) कहते हैं। वह जीव समस्तप्राणिस्वरूप शिवका स्मरण करके मुक्त हो जाता है। कुछ आचार्य परमकारण शिवको समष्टि-व्यष्टिरूप और समष्टि-व्यष्टिका कारण भी कहते हैं। मुनीश्वरोंने अव्यक्तको समष्टि तथा व्यक्तको व्यष्टि कहा है। वे दोनों रूप शिवके ही कहे गये हैं; इसके अतिरिक्त अन्य वस्तु सम्भव नहीं है। योगशास्त्रको जाननेवाले लोग [समष्टि-व्यष्टि] इन दोनोंका ही कारण होनेसे परमेश्वर

उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपी च शिवः कैश्चिदुदाहृतः॥ १२
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान् परमेश्वरः।
चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः॥ १३
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा।
क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयम्भुवः॥ १४
न किञ्चिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः।
अपरब्रह्मरूपं तं परं ब्रह्मात्मकं शिवम्॥ १५
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं प्रभुम्।
भूतेन्द्रियान्तःकरणप्रधानविषयात्मकम् ॥ १६
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम्।
ब्रह्मणी ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयम्भुवः॥ १७
शङ्करस्य परस्यैव शिवादन्यन्न विद्यते।
विद्याविद्यास्वरूपी च शङ्करः कैश्चिदुच्यते॥ १८
धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः।
विद्येति च तमेवाहुरविद्येति मुनीश्वराः॥ १९
प्रपञ्चजातमखिलं ते स्वरूपे स्वयम्भुवः।
भ्रान्तिर्विद्या परं चेति शिवरूपमनुत्तमम्॥ २०
अवापुर्मुनयो योगात्केचिदागमवेदिनः।
अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रान्तिरुच्यते॥ २१
आत्माकारेण संवित्तिर्बुधैर्विद्येति कीर्त्यते।
विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते॥ २२
तृतीयरूपमीशस्य नान्यत्किञ्चन सर्वतः।
व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिवः कैश्चिन्निगद्यते॥ २३
विधाता सर्वलोकानां धाता च परमेश्वरः।
त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तशब्देन सूरयः॥ २४
वदन्त्यव्यक्तशब्देन प्रकृतिं च परां तथा।
कथयन्ति ज्ञशब्देन पुरुषं गुणभोगिनम्॥ २५
तत्त्रयं शाङ्करं रूपं नान्यत्किञ्चिदशाङ्करम्॥ २६

शिवको समष्टिव्यष्टिकारण कहते हैं॥ ८—११½ ॥

कुछ लोगोंने परमात्मा परमज्योतिस्वरूप परमेश्वर भगवान् शिवको क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपवाला बताया है। विद्वानोंने चौबीस तत्त्वोंको क्षेत्र शब्दसे तथा उनका भोग करनेवाले पुरुषको क्षेत्रज्ञ शब्दसे बोधित किया है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ—ये दोनों ही रूप उन्हीं स्वयं आविर्भूत शिवके हैं; शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है—ऐसा मनीषियोंने कहा है॥ १२—१४½ ॥

कुछ लोगोंने आदि तथा अन्तसे रहित महादेव भगवान् शिवको अपरब्रह्म (शब्दब्रह्म)-स्वरूप तथा परब्रह्मरूप भी कहा है। अपरब्रह्मको प्राणियोंके इन्द्रिय-अन्तःकरणके शब्द आदि प्रधान विषयोंके रूपवाला और परब्रह्मको चिदानन्दरूप निर्दिष्ट किया गया है। वे दोनों ही ब्रह्म इन्हीं महेश्वर परमात्मा शंकरके रूप हैं; शिवके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है॥ १५—१७½ ॥

कुछ लोग लोकोंका विधान तथा पालन करनेवाले आदिदेव महेश्वर शिवको विद्या तथा अविद्याके स्वरूपवाला भी कहते हैं। मुनीश्वर लोग उन्हें विद्या कहते हैं और सम्पूर्ण जगत्प्रपंचको अविद्या कहते हैं, स्वयम्भू शिवके ही वे दोनों रूप हैं॥ १८-१९½ ॥

भ्रान्ति, विद्या तथा पर—ये भी शिवके श्रेष्ठ रूप हैं, कुछ वेदवेत्ता मुनियोंने योगके द्वारा इसे प्राप्त किया है। बहुत प्रकारके अर्थोंमें विज्ञानको भ्रान्ति कहा जाता है। विद्वान् लोग सबको आत्मरूपसे जान लेनेको विद्या कहते हैं। विकल्परहित तत्त्वको 'परम' कहा जाता है। ईश्वर शिवका तीसरा अन्य कोई भी रूप नहीं है॥ २०—२२½ ॥

कुछ लोग सभी लोकोंके रचयिता तथा पोषक परमेश्वर शिवको 'व्यक्त-अव्यक्त-ज्ञ' रूपवाला भी कहते हैं। विद्वान् लोग तेईस तत्त्वोंको 'व्यक्त' शब्दसे, परा प्रकृतिको 'अव्यक्त' शब्दसे तथा गुणोंका भोग करनेवाले पुरुषको 'ज्ञ' शब्दसे अभिहित करते हैं। इन तीनोंका समूह शंकरका ही है। शंकरसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है॥ २३—२६ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शङ्करस्य त्रिगुणरूपवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शंकरके त्रिगुणरूपका वर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

विविध नाम-रूपोंमें शिवकी आराधनाकी महिमा

सनत्कुमार उवाच

पुनरेव महाबुद्धे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः॥ १

शैलादिरुवाच

पुनः पुनः प्रवक्ष्यामि शिवरूपाणि ते मुने।
बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः॥ २
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्व्यक्तं कालात्मेति मुनीश्वरैः।
उच्यते कैश्चिदाचार्यैरागमार्णवपारगैः॥ ३
क्षेत्रज्ञं पुरुषं प्राहुः प्रधानं प्रकृतिं बुधाः।
विकारजातं निःशेषं प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि॥ ४
प्रधानव्यक्तयोः कालः परिणामैककारणम्।
तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम्॥ ५
हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणम्।
कथयन्ति शिवं केचिदाचार्याः परमेश्वरम्॥ ६
हिरण्यगर्भः कर्तास्य भोक्ता विश्वस्य पूरुषः।
विकारजातं व्यक्ताख्यं प्रधानं कारणं परम्॥ ७
तेषां चतुष्टयं बुद्धेः शिवरूपचतुष्टयम्।
प्रोच्यते शङ्करादन्यदस्ति वस्तु न किञ्चन॥ ८
पिण्डजातिस्वरूपी तु कथ्यते कैश्चिदीश्वरः।
चराचरशरीराणि पिण्डाख्यान्यखिलान्यपि॥ ९
सामान्यानि समस्तानि महासामान्यमेव च।
कथ्यन्ते जातिशब्देन तानि रूपाणि धीमतः॥ १०
विराट् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते।
हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्लोकात्मको विराट्॥ ११
सूत्राव्याकृतरूपं तं शिवं शंसन्ति केचन।
अव्याकृतं प्रधानं हि तद्रूपं परमेष्ठिनः॥ १२
लोका येनैव तिष्ठन्ति सूत्रे मणिगणा इव।
तत्सूत्रमिति विज्ञेयं रूपमद्भुतविक्रमम्॥ १३

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धे! मुनीश्वरोंके द्वारा बहुत-से नामोंमें अनेक प्रकारसे कहे गये शिवके रूपोंको मैं यथार्थ रूपमें पुनः सुनना चाहता हूँ॥ १॥

शैलादि बोले—हे मुने! मैं मुनीश्वरोंके द्वारा बहुत-से नामोंसे अनेक प्रकारसे कहे गये शिवके रूपोंका वर्णन आपसे पुनः-पुनः करूँगा॥ २॥

वेदरूपी समुद्रके पारगामी कुछ आचार्य तथा मुनीश्वर उन शिवको क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, व्यक्त तथा कालात्मा—ऐसा कहते हैं॥ ३॥

विद्वज्जनोंने पुरुषको क्षेत्रज्ञ, प्रधानको प्रकृति और प्रकृतिके सम्पूर्ण विकारसमूहको व्यक्त कहा है; प्रधान तथा व्यक्तके विस्तारमें एकमात्र कारण काल ही है। ये चारों ही ईश्वरके रूपचतुष्टय हैं॥ ४-५॥

कुछ आचार्य परमेश्वर शिवको हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान तथा व्यक्तरूपवाला भी कहते हैं। इस जगत्‌का कर्ता हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) है, भोक्ता पुरुष (विष्णु) है, समस्त प्रपंच 'व्यक्त' नामवाला है और मुख्य कारण प्रधान है। उन हिरण्यगर्भ आदिका तथा बुद्धि आदिका चतुष्टय भगवान् शिवका रूपचतुष्टय कहा जाता है, शंकरसे भिन्न अन्य कोई भी वस्तु नहीं है॥ ६—८॥

कुछ लोग ईश्वर शिवको पिण्ड तथा जातिरूपवाला कहते हैं। चर तथा अचर समस्त शरीर ही पिण्डपदवाच्य है। उन बुद्धिसम्पन्न शिवके वे जाति, व्यक्ति और द्रव्योंके समस्त रूप ही जातिशब्दवाच्य हैं॥ ९-१०॥

कुछ लोग शिवको विराट् तथा हिरण्यगर्भरूप कहते हैं। हिरण्यगर्भ समस्त लोकोंका कारण है और विराट् लोकस्वरूप है। कुछ लोग उन शिवको सूत्राव्याकृतरूप कहते हैं। परमेष्ठी शिवका वह रूप अव्याकृत तथा प्रधान है। समस्त लोक उनमें उसी भाँति ओतप्रोत हैं, जैसे सूत्रमें मणियाँ, अतः उनके अद्भुत पराक्रमी स्वरूपको सूत्ररूप समझना चाहिये॥ ११—१३॥

अन्तर्यामी परः कैश्चित्कैश्चिदीशः प्रकीर्त्यते।
स्वयंज्योतिः स्वयंवेद्यः शिवः शम्भुर्महेश्वरः॥ १४
सर्वेषामेव भूतानामन्तर्यामी शिवः स्मृतः।
सर्वेषामेव भूतानां परत्वात्पर उच्यते॥ १५
परमात्मा शिवः शम्भुः शङ्करः परमेश्वरः।
प्राज्ञतैजसविश्वाख्यं तस्य रूपत्रयं विदुः॥ १६
सुषुप्ति स्वप्नजाग्रन्तमवस्थात्रयमेव तत्।
विराट् हिरण्यगर्भाख्यमव्याकृतपदाह्वयम्॥ १७
तुरीयस्य शिवस्यास्य अवस्थात्रयगामिनः।
हिरण्यगर्भः पुरुषः काल इत्येव कीर्तिताः॥ १८
तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः।
भवविष्णुविरिञ्चाख्यमवस्थात्रयमीशितुः॥ १९
आराध्य भक्त्या मुक्तिं च प्राप्नुवन्ति शरीरिणः।
कर्ता क्रिया च कार्यं च करणं चेति सूरिभिः॥ २०
शम्भोश्चत्वारि रूपाणि कीर्त्यन्ते परमेष्ठिनः।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रमितिस्तथा॥ २१
चत्वार्येतानि रूपाणि शिवस्यैव न संशयः।
ईश्वराव्याकृतप्राणविराड्भूतेन्द्रियात्मकम् ॥ २२
शिवस्यैव विकारोऽयं समुद्रस्येव वीचयः।
ईश्वरं जगतामाहुर्निमित्तं कारणं तथा॥ २३
अव्याकृतं प्रधानं हि तदुक्तं वेदवादिभिः।
हिरण्यगर्भः प्राणाख्यो विराट् लोकात्मकः स्मृतः॥ २४
महाभूतानि भूतानि कार्याणि इन्द्रियाणि च।
शिवस्यैतानि रूपाणि शंसन्ति मुनिसत्तमाः॥ २५
परमात्मा शिवादन्यो नास्तीति कवयो विदुः।
शिवजातानि तत्त्वानि पञ्चविंशन्मनीषिभिः॥ २६
उक्तानि न तदन्यानि सलिलादूर्मिवृन्दवत्।
पञ्चविंशत्पदार्थेभ्यः शिवतत्त्वं परं विदुः॥ २७
तानि तस्मादनन्यानि सुवर्णकटकादिवत्।
सदाशिवेश्वराद्यानि तत्त्वानि शिवतत्त्वतः॥ २८

कोई-कोई लोग स्वयंज्योतिरूप तथा स्वयंवेद्य ईश परमेश्वर शंकर शम्भुको अन्तर्यामी तथा पर कहते हैं। वे शिव सम्पूर्ण प्राणियोंमें विराजमान हैं, अतः अन्तर्यामी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण वे परमात्मा परमेश्वर शम्भु शंकर शिव 'पर' कहे जाते हैं॥ १४-१५$^{1}/_{2}$॥

प्राज्ञ, तैजस और विश्व नामक उनके तीन रूप कहे गये हैं। इन्हें ही सुषुप्ति, स्वप्न तथा जाग्रत्—तीन अवस्थाएँ भी कहते हैं और ये ही विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत पदके भी वाचक हैं। तीनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहनेवाले उन तुरीयस्वरूप शिवके हिरण्यगर्भ, पुरुष और काल—ये तीनों ही जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारकी कारणरूपा तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं। भव, विष्णु, विरिंचि (ब्रह्मा) नामक तीनों अवस्थाएँ महेश्वरकी ही हैं; भक्तिपूर्वक इनकी आराधना करके प्राणी मुक्ति प्राप्त करते हैं॥ १६—१९$^{1}/_{2}$॥

कर्ता, क्रिया, कार्य तथा करण—ये विद्वानोंके द्वारा परमेष्ठी शिवके चार रूप कहे गये हैं। प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमिति—ये चारों भी शिवके ही रूप हैं; इसमें संशय नहीं है। ईश्वर, अव्याकृत, प्राण, विराट्, भूत, इन्द्रिय और आत्मा—ये सब समुद्रकी तरंगोंकी भाँति शिवके ही विकार हैं॥ २०—२२$^{1}/_{2}$॥

ईश्वरको जगत्का निमित्त कारण कहा गया है। वेदवेत्ताओंने अव्याकृतको प्रधान कहा है। हिरण्यगर्भको ही प्राण नामवाला तथा विराट्को लोकरूप कहा गया है। महाभूत, भूत, कार्य तथा इन्द्रियाँ—श्रेष्ठ मुनिगण इन्हें शिवके रूप कहते हैं॥ २३—२५॥

परमात्मा शिवसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है—ऐसा कवियोंने कहा है। मनीषियोंने [समस्त] पचीस तत्त्वोंको शिवसे ही उत्पन्न बताया है, वे जलसे तरंगकी भाँति उन [शिव]-से अभिन्न हैं। किंतु शिवतत्त्वको पचीस तत्त्वोंसे भी पर कहा गया है। वे [सब तत्त्व] सुवर्णसे कुण्डल आदिकी तरह उनसे अभिन्न हैं। सदाशिव आदि सगुण तत्त्व भी उन्हीं शिवतत्त्वसे

जातानि न तदन्यानि मृद्द्रव्यं कुम्भभेदवत्।
माया विद्या क्रिया शक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियामयी॥ २९

जाताः शिवान्न सन्देहः किरणा इव सूर्यतः।
सर्वात्मकं शिवं देवं सर्वाश्रयविधायिनम्॥ ३०

भजस्व सर्वभावेन श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि॥ ३१

प्रादुर्भूत हैं, वे सब भी मिट्टी तथा घड़ेकी ही भाँति उनसे भिन्न नहीं हैं। माया, विद्या, क्रिया, शक्ति तथा क्रियामयी ज्ञानशक्ति—ये पंचरूप गौरी भी शिवसे ही उसी प्रकार उत्पन्न हुई हैं—जैसे सूर्यसे किरणें। अतः [हे सनत्कुमार!] यदि आप कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं तो सबको आश्रय प्रदान करनेवाले सर्वात्मा भगवान् शिवकी सब प्रकारसे आराधना कीजिये॥ २६—३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवतत्त्वमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवतत्त्वमाहात्म्यवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा देवताओंसे अपने यथार्थ स्वरूपका कथन

सनत्कुमार उवाच

भूयो देवगणश्रेष्ठ शिवमाहात्म्यमुत्तमम्।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिस्त्वद्वाक्यामृतपानतः॥ १

कथं शरीरी भगवान् कस्माद्रुद्रः प्रतापवान्।
सर्वात्मा च कथं शम्भुः कथं पाशुपतं व्रतम्॥ २

कथं वा देवमुख्यैश्च श्रुतो दृष्टश्च शङ्करः।

शैलादिरुवाच

अव्यक्तादभवत्स्थाणुः शिवः परमकारणम्॥ ३

स सर्वकारणोपेत ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः।
देवानां प्रथमं देवं जायमानं मुखाम्बुजात्॥ ४

ददर्श चाग्रे ब्रह्माणं चाज्ञया तमवैक्षत।
दृष्टो रुद्रेण देवेशः ससर्ज सकलं च सः॥ ५

वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च स्थापयामास वै विराट्।
सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमादिदमजायत॥ ६

चरुश्च वह्निर्यज्ञश्च वज्रपाणिः शचीपतिः।
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत्॥ ७

रुद्राध्यायेन ते देवा रुद्रं तुष्टुवुरीश्वरम्।
प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानां मध्यतः प्रभुः॥ ८

सनत्कुमार बोले—हे देवगणोंमें श्रेष्ठ! आपके वचनामृतका बार-बार पान करके भी उसे सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। भगवान् रुद्र शरीरवान् कैसे हुए, वे प्रतापी कैसे हुए, शिवजी सर्वात्मा कैसे हैं, पाशुपतव्रत कैसा है और प्रमुख देवताओंने शंकरजीके विषयमें श्रवण तथा उनका दर्शन कैसे किया?॥ १-२१/२॥

शैलादि बोले—अव्यक्त परमात्मासे संसारमण्डपके स्तम्भ तथा जगत्के परम कारण शिव उत्पन्न हुए। सर्वकारणमय, सर्वोपरि तथा ऋषिरूप उन प्रभुने अपने मुखकमलसे प्रकट हुए देवताओंके आदिदेव ब्रह्माको अपने सम्मुख देखा और सृष्टि करनेकी आज्ञासे उनकी ओर दृष्टिपात किया॥ ३-४१/२॥

रुद्रके द्वारा देखे गये उन ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत्का सृजन किया और तदुपरान्त वर्णाश्रमव्यवस्था स्थापित की। इसके बाद उन विराट्ने यज्ञहेतु सोमकी सृष्टि की। पुनः उस सोमसे ये सब—चरु, अग्नि, यज्ञ, वज्रपाणि इन्द्र, श्रीयुक्त नारायण विष्णु आदि उत्पन्न हुए; इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् सोममय हो गया॥ ५—७॥

तब वे समस्त देवगण रुद्राध्यायसे भगवान् रुद्रकी स्तुति करने लगे। वे प्रभु महेश्वर इन देवताओंका ज्ञान अपहृत करके प्रसन्नमुख होकर इनके मध्य स्थित हो गये।

अपहृत्य च विज्ञानमेषामेव महेश्वरः।
देवा ह्यपृच्छंस्तं देवं को भवानिति शङ्करम्॥ ९

अब्रवीद्भगवान् रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः।
आसं प्रथम एवाहं वर्तामि च सुरोत्तमाः॥ १०

भविष्यामि च लोकेऽस्मिन् मत्तो नान्यः कुतश्चन।
व्यतिरिक्तं न मत्तोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरोत्तमाः॥ ११

नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माहं ब्रह्मणस्पतिः।
दिशश्च विदिशश्चाहं प्रकृतिश्च पुमानहम्॥ १२

त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च च्छन्दोऽहं तन्मयः शिवः।
सत्योऽहं सर्वगः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरवं गुरुः॥ १३

गौरहं गह्वरश्चाहं नित्यं गहनगोचरः।
ज्येष्ठोऽहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽहमपां पतिः॥ १४

आपोऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं वेदिरप्यहम्।
ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः॥ १५

अथर्वणोऽहं मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसां वरः।
इतिहासपुराणानि कल्पोऽहं कल्पनाप्यहम्॥ १६

अक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं क्षमा।
गुह्योऽहं सर्ववेदेषु वरेण्योऽहमजोऽप्यहम्॥ १७

पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहं ततः परम्।
बहिश्चाहं तथा चान्तःपुरस्तादहमव्ययः॥ १८

ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्माविष्णुर्महेश्वरः।
बुद्धिश्चाहमहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च॥ १९

एवं सर्वं च मामेव यो वेद सुरसत्तमाः।
स एव सर्ववित्सर्वं सर्वात्मा परमेश्वरः॥ २०

तत्पश्चात् देवताओंने भगवान् शंकरसे पूछा—आप कौन हैं? तब भगवान् रुद्रने कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! मैं एक पुरातन पुरुष हूँ। सर्वप्रथम मैं ही था, अब भी हूँ और भविष्यमें भी रहूँगा, इस लोकमें मुझसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है। हे श्रेष्ठ देवताओ! अन्य कुछ भी मुझसे भिन्न नहीं है॥ ८—११॥

मैं नित्य हूँ तथा अनित्य भी हूँ। मैं पापशून्य, ब्रह्मा तथा ब्रह्मणस्पति (वेदोंका पालक) हूँ। मैं [पूर्व आदि] दिशाएँ तथा [आग्नेय आदि] विदिशाएँ भी हूँ। मैं प्रकृति हूँ और पुरुष भी हूँ। मैं त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् छन्द हूँ, मैं छन्दराशिसे परिपूर्ण हूँ। मैं कल्याणस्वरूप, सत्यरूप, सर्वगामी, शान्त, त्रेताग्नि (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय)-रूप गौरव और हितोपदेशक हूँ। मैं पृथ्वीरूप हूँ। मैं गह्वर (गुहारूप) तथा आनन्दवन आदिमें सदा प्रत्यक्ष रहनेवाला हूँ। मैं समस्त तत्त्वोंमें ज्येष्ठ तथा वरिष्ठ हूँ, मैं समुद्ररूप हूँ॥ १२—१४॥

भगवान् शिव कहते हैं—मैं जल हूँ, मैं तेज हूँ और मैं परिष्कृत यज्ञभूमिरूप भी हूँ। मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद हूँ। मैं आकाशरूप हूँ। मैं अंगिरसोंमें श्रेष्ठ अथर्वणमन्त्र (चतुर्थ वेदरूप) हूँ। मैं [महाभारत आदि] इतिहास, पुराण तथा कल्प (कर्मप्रयोगरचना) हूँ। मैं कल्पना भी हूँ। मैं अक्षर (कूटस्थरूप) तथा क्षर (नाशवान्) हूँ। मैं क्षान्ति (धैर्य), शान्ति तथा क्षमा हूँ। मैं सभी वेदोंमें गुह्य (संवृतरूप) हूँ। मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मैं अजन्मा भी हूँ॥ १५—१७॥

मैं पवित्र हृदयकमलरूप हूँ, मैं उसका मध्यभाग हूँ तथा उससे पर भी हूँ। मैं बाहर हूँ, भीतर हूँ तथा समक्ष भी हूँ। मैं शाश्वत हूँ। मैं ज्योति हूँ तथा अन्धकार भी हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर हूँ। बुद्धि, अहंकार, तन्मात्राएँ तथा इन्द्रियाँ मैं ही हूँ। हे श्रेष्ठ देवगण! इस प्रकार जो मुझ विश्वरूपको जानता है, वही सर्वज्ञ है, सर्वात्मा है और वह परमेश्वररूप हो जाता है॥ १८—२०॥

गां गोभिर्ब्राह्मणान् सर्वान् ब्राह्मण्येन हवींषि च।
आयुषायुस्तथा सत्यं सत्येन सुरसत्तमाः॥ २१
धर्मं धर्मेण सर्वांश्च तर्पयामि स्वतेजसा।
इत्यादौ भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ २२
नापश्यन्त ततो देवं रुद्रं परमकारणम्।
ते देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायन्ति शङ्करम्॥ २३
सनारायणका देवाः सेन्द्राश्च मुनयस्तथा।
तथोर्ध्वबाहवो देवा रुद्रं स्तुन्वन्ति शङ्करम्॥ २४

हे श्रेष्ठ देवगण! मैं वाणीको वेदोंसे, सभी ब्राह्मणों तथा हवियोंको ब्राह्मण्यसे, आयुको आयुसे, सत्यको सत्यसे, धर्मको धर्मसे और अन्य सबको अपने तेजसे तृप्त करता हूँ—ऐसा कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर जब उन देवताओंने परमकारणरूप रुद्रको नहीं देखा, तब वे उन परमात्मा शंकरका ध्यान करने लगे। नारायण विष्णु तथा इन्द्रसहित सभी देवता और मुनिगण ऊपरकी ओर हाथ उठाकर कल्याणकारी रुद्रकी स्तुति करने लगे॥ २१—२४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवमाहात्म्यवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवान् महेश्वरकी स्तुति

देवा ऊचुः

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
स्कन्दश्चापि तथा चेन्द्रो भुवनानि चतुर्दश।
अश्विनौ ग्रहताराश्च नक्षत्राणि च खं दिशः॥ १
भूतानि च तथा सूर्यः सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा।
प्राणः कालो यमो मृत्युरमृतः परमेश्वरः॥ २
भूतं भव्यं भविष्यच्च वर्तमानं महेश्वरः।
विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमो नमः॥ ३

देवता बोले—जो ये भगवान् रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, कार्तिकेय, इन्द्र, चौदहों भुवन, दोनों अश्विनीकुमार, सभी ग्रह, तारा, नक्षत्र, आकाश तथा दिशाएँ हैं। समस्त प्राणी, सूर्य, चन्द्रमा, आठों ग्रह, प्राण, काल, यम, मृत्यु तथा मोक्षरूप वे परमेश्वर ही हैं। पूर्वकालिक विश्व, उत्पद्यमान सम्पूर्ण संसार, आगे होनेवाले जगत् और वर्तमानकालिक सभी पदार्थ—ये सब वास्तवमें महेश्वर ही हैं। उन्हें बार-बार नमस्कार है॥ १—३॥

त्वमादौ च तथा भूतो भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
अन्ते त्वं विश्वरूपोऽसि शीर्षं तु जगतः सदा॥ ४
ब्रह्मैकस्त्वं द्वित्रिधार्थमधश्च त्वं सुरेश्वरः।
शान्तिश्च त्वं तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुतं हुतम्॥ ५
विश्वं चैव तथाविश्वं दत्तं वादत्तमीश्वरम्।
कृतं चाप्यकृतं देवं परमप्यपरं ध्रुवम्।
परायणं सतां चैव ह्यसतामपि शङ्करम्॥ ६

आदि तथा अन्तमें आप ही प्रादुर्भूत हुए। आप भूर्भुवः स्वः (तीनों व्याहृतियाँ)-स्वरूप हैं। आप विश्वरूप हैं तथा सदा जगत्के शीर्ष हैं। आप अद्वितीय हैं, आप प्रकृतिपुरुष द्विधारूप हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, त्रिधारूप ब्रह्म हैं। आप सबके आधार तथा देवताओंके ईश्वर हैं। शान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि आप ही हैं। हुत, अहुत, विश्व, अविश्व, दत्त, अदत्त, कृत, अकृत, पर, अपर, प्रभु, ईश्वर आप ही हैं। आप शंकर ही साधुओं तथा असाधुओंके आश्रयरूप ब्रह्म हैं॥ ४—६॥

अपामसोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य॥ ७

हम उमासहित सदाशिवके सौन्दर्यामृतका अपने

एतज्जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम्॥ ८

प्राजापत्यं पवित्रं च सौम्यमग्राह्यमव्ययम्।
अग्राह्येणापि वा ग्राह्यं वायव्येन समीरणः॥ ९

सौम्येन सौम्यं ग्रसति तेजसा स्वेन लीलया।
तस्मै नमोऽपसंहर्त्रे महाग्रासाय शूलिने॥ १०

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिताः।
हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः॥ ११

शिरश्चोत्तरतश्चैव पादौ दक्षिणतस्तथा।
यो वै चोत्तरतः साक्षात्स ओङ्कारः सनातनः। १२

ओङ्कारो यः स एवेह प्रणवो व्याप्य तिष्ठति।
अनन्तस्तारसूक्ष्मं च शुक्लं वैद्युतमेव च॥ १३

परं ब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च।
भवान् महेश्वरः साक्षान्महादेवो न संशयः॥ १४

ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओङ्कारः प्रकीर्तितः।
प्राणानवति यस्तस्मात्प्रणवः परिकीर्तितः॥ १५

सर्वं व्याप्नोति यस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः।
ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान्॥ १६

तथान्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम्।
यस्तारयति संसारात्तार इत्यभिधीयते॥ १७

नेत्रपुटोंसे पान करें। फलतः अर्धनारीश्वर भगवान् शिवके दर्शनसे मुक्त हो जायँ। शिवज्योतिको प्राप्तकर दिग्जयी कामादिको हम नहीं जानते; क्योंकि हम शिवाराधकोंका ये कामक्रोधादि शत्रु क्या करेंगे और मरणधर्मा इस शरीरादिकी मृत्यु या अमरतासे भी क्या प्रयोजन?॥ ७॥

यह जगत् शिवरूप है, जो हितकारक, दिव्य, नाशरहित, सूक्ष्म तथा शाश्वत है। आप प्राजापत्य (सर्वजनक), पावन, शान्त, अग्राह्य, अविनाशी, वायुसम्बन्धी स्पर्शगुणके कारण वायुरूप और अग्राह्य मनसे भी ग्राह्य हैं। आप अपने चन्द्रतेजसे भक्तोंके अन्तःकरणको लीलापूर्वक अपनेमें विलीन कर लेते हैं। महत्तत्त्वको भी अपना ग्रास बना लेनेवाले अपसंहर्ता उन भगवान् शूलीको नमस्कार है॥ ८—१०॥

हृदयदेशमें विराजमान तीनों मात्राएँ तथा सभी देवता हृदयके अधिकरण—प्राणमें प्रतिष्ठित हैं। जो प्राणरूप आप सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं, वह नाद नामक अर्धमात्रारूप आप ही हैं॥ ११॥

उत्तरवर्ती शिरस्थानीय अकार, दक्षिणवर्ती पादस्थानीय मकार, मध्यवर्ती मध्यस्थ उकार, यह उत्तरवर्ती अकारसे संश्लिष्ट जो साक्षात् ॐकार है, वह सनातन शिव ही है॥ १२॥

यहाँ यह जो ॐ है, वही प्रणव सर्वव्यापी है [सबको व्याप्त करके रहता है]। अनन्त, तारक, सूक्ष्म, शुक्ल, ज्योतिर्मय, परब्रह्म ईशान अद्वितीय रुद्र भगवान् महेश्वर साक्षात् महादेव हैं, इसमें संशय नहीं है॥ १३-१४॥

यह उच्चारण करते ही सारे शरीरको ऊपरकी ओर खींचता है, अतः इसे ओंकार कहा जाता है और प्राणोंकी रक्षा करता है, अतः प्रणव कहलाता है। यह चराचर जगत्को व्याप्त करता है, इसलिये सर्वव्यापी सनातन कहा जाता है। ब्रह्मा, षडैश्वर्यवान् हरि तथा अन्य इन्द्रादिक भी इसके आदि और अन्तको न पा सके। अतः इन परम कारण रुद्रको अनन्त कहा जाता है। ये संसारसे तारते हैं, अतः तार कहे जाते हैं।

सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठिति।
तस्मात्सूक्ष्मः समाख्यातो भगवान्नीललोहितः॥ १८

नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात्।
स्कन्दतेऽस्य यतः शुक्रं तथा शुक्रमपैति च॥ १९

विद्योतयति यस्तस्माद्वैद्युतः परिगीयते।
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च बृहते च परापरे॥ २०

तस्माद्बृंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेति कीर्तितम्।
अद्वितीयोऽथ भगवांस्तुरीयः परमेश्वरः॥ २१

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशां चक्षुरीश्वरम्।
ईशानमिन्द्रसूरयः सर्वेषामपि सर्वदा॥ २२

ईशानः सर्वविद्यानां यत्तदीशान उच्यते।
यदीक्षते च भगवान्निरीक्ष्यमिति चाज्ञया॥ २३

आत्मज्ञानं महादेवो योगं गमयति स्वयम्।
भगवांश्चोच्यते देवो देवदेवो महेश्वरः॥ २४

सर्वांल्लोकान् क्रमेणैव यो गृह्णाति महेश्वरः।
विसृजत्येष देवेशो वासयत्यपि लीलया॥ २५

एषो हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ २६

उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम्।
यतो वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह॥ २७

तदग्रहणमेवेह यद्वागवदति यत्नतः।
अपरं च परं वेति परायणमिति स्वयम्॥ २८

वदन्ति वाचः सर्वज्ञं शङ्करं नीललोहितम्।
एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुषः पिङ्गलः शिवः॥ २९

स एष स महारुद्रो विश्वं भूतं भविष्यति।
भुवनं बहुधा जातं जायमानमितस्ततः॥ ३०

सदा सूक्ष्मरूपसे सभी शरीरोंमें रहते हैं, अतः भगवान् नीललोहित सूक्ष्म कहलाते हैं। नील और लोहितरूप—प्रधान और पुरुषके संयोगसे इन सदाशिवका शुक्रांश स्कन्दित होता है और परम स्थानको प्राप्त होता है, अतः ये शुक्र कहे जाते हैं॥ १५—१९॥

ये दीप्ति प्रदान करते हैं, अतः वैद्युत कहे जाते हैं। ये [शिव] पर तथा अपर (ऐहिक तथा आमुष्मिक) रूपोंका वर्धन तथा पोषण करते हैं, अतः वर्धन तथा पोषणगुणयुक्त होनेके कारण परब्रह्म कहे गये हैं। ये भगवान् परमेश्वर [स्वजातीय, विजातीय तथा स्वगतभेदशून्य होनेके कारण] अद्वितीय (एक) हैं तथा तुरीय भी हैं॥ २०-२१॥

इन्द्र आदि प्रमुख देवता इन शिवको इस जगत्का स्वामी, देवताओंका चक्षुस्वरूप तथा सभीका नित्य नियन्ता कहते हैं। ये सभी विद्याओंके स्वामी हैं, अतः 'ईशान' कहे जाते हैं। वे देवदेव महेश्वर महादेव स्वेच्छासे सभी भावोंको देखते हैं, अपना अवबोध कराते हैं और स्वयं योगकी प्राप्ति कराते हैं, अतः वे भगवान् कहे जाते हैं॥ २२—२४॥

ये महेश्वर अपनी लीलासे ही क्रमसे सभी लोकोंको अपनेमें लीन करते हैं, उनकी सृष्टि करते हैं तथा उनका पालन भी करते हैं॥ २५॥

ये ही शिव विश्वरूप होकर क्रीड़ा करते हुए सभी दिशाओंके रूपमें स्थित होते हैं। ये अनादिसिद्ध देव ब्रह्माण्डके उदरमें प्रविष्ट होकर स्वयं उत्पन्न होते हैं और आगे भी उत्पन्न होंगे। हे जीवो! ये सभी कालोंको व्याप्त करके स्थित रहते हैं॥ २६॥

अतएव सज्जनोंको इन अविनाशी प्रभुकी प्रयत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिये। इनका वर्णन करनेमें असमर्थ होनेके कारण तत्त्वनिरूपण किये बिना ही मनसहित वाणी लौट आती है। वाणी यत्नपूर्वक इनके विषयमें जो कुछ भी पर, अपर अथवा परायणरूपमें कहती है, वह उनका [वास्तविक] निर्वचन नहीं है। वाणी इन्हें सर्वज्ञ, शंकर तथा नीललोहित कहती है॥ २७-२८$^{1}/_{2}$॥

ये सर्वस्वरूप, पुरुष, पिंगल तथा शिव हैं, इन्हें नमस्कार है। जो अनेक प्रकारसे उत्पन्न हो चुका है,

हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः।
अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वजः॥ ३१

उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वसृग्विश्ववाहनः।
ब्रह्माणं विदधे योऽसौ पुत्रमग्रे सनातनम्॥ ३२

प्रहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानमात्मप्रकाशकम्।
तमेकं पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥ ३३

बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये
विश्वं देवं वह्निरूपं वरेण्यम्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ ३४

महतो यो महीयांश्च ह्यणोरप्यणुरव्ययः।
गुहायां निहितश्चात्मा जन्तोरस्य महेश्वरः॥ ३५

वेश्मभूतोऽस्य विश्वस्य कमलस्थो हृदि स्वयम्।
गह्वरं गहनं तत्स्थं तस्यान्तश्चोर्ध्वतः स्थितः॥ ३६

तत्रापि दह्रं गगनमोङ्कारं परमेश्वरम्।
बालाग्रमात्रं तन्मध्ये ऋतं परमकारणम्॥ ३७

सत्यं ब्रह्म महादेवं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमजोद्भवम्॥ ३८

अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः।
देहं पञ्चविधं येन तमीशानं पुरातनम्॥ ३९

प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहु-
र्यस्मिन् क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च।
तृष्णां छित्त्वा हेतुजालस्य मूलं
बुद्ध्याचिन्त्यं स्थापयित्वा च रुद्रे॥ ४०

उत्पन्न है तथा उत्पन्न होगा—वह सम्पूर्ण प्राणिसमुदायरूप चौदह भुवन इन महारुद्रका ही स्वरूप है॥ २९-३०॥

जो ये हिरण्यबाहु, भगवान्, हिरण्यपति, ईश्वर, अम्बिकापति, ईशान, हेमरेता, वृषध्वज, उमापति, विरूपाक्ष, विश्वसृक् तथा विश्ववाहन संज्ञावाले शिव हैं, उन्होंने सबसे पहले सनातन ब्रह्माको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और उन्हें आत्माको प्रकाशित करनेवाला ज्ञान प्रदान किया॥ ३१-३२½॥

जो धीर पुरुष उन अद्वितीय, पुरुष, बहुतोंके द्वारा आवाहन किये जानेवाले, बहुतोंके द्वारा स्तुत होनेवाले, हृदयके मध्यमें बालके अग्रभागके समान सूक्ष्मरूपसे विराजमान, विश्वेश्वर देव, अग्निरूप तथा सर्वश्रेष्ठ रुद्रको अपनेमें स्थित देखते हैं, उन्हींको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य लोगोंको नहीं॥ ३३-३४॥

जो महान्‌से भी महान् हैं, अणुसे भी सूक्ष्म हैं तथा अव्यय हैं, वे महेश्वर प्राणियोंकी हृदयरूपी गुहामें आत्मरूपसे स्थित हैं। कमलपर स्थित रहनेवाले वे शिव इस विश्वके आलयभूत होते हुए भी प्राणियोंके हृदयमें स्वयं विद्यमान रहते हैं और उस हृदयकमलमें स्थित जो अयोगियोंके लिये दुर्ज्ञेय हृदयाकाश है, उसके भीतर तथा बाहर अग्निशिखाकी भाँति विराजमान हैं। उस अग्निशिखामें भी बालाग्रके समान सूक्ष्म जो दहरसंज्ञक आकाश है, उसके मध्यमें ऋत, परमकारणरूप, सत्य, ब्रह्मरूप, महादेव, पुरुष, अर्धनारीश्वर, ऊर्ध्वरेता, ईशान, त्रिनेत्र तथा अजोद्भव परमेश्वर ओंकाररूपमें स्थित हैं। एक अथवा अनेक रूपोंवाले वे ईश्वर भिन्न-भिन्न योनियोंमें प्रवेश करते हैं, जिसके फलस्वरूप वे अन्नमय आदि पंचविध देह ग्रहण करते हैं—उन पुरातन ईशानको जो धीर पुरुष देखते हैं, उन्हें शान्ति प्राप्त होती है॥ ३५—३९॥

वे [शिव] प्राणोंके भीतर स्थित हैं। उन्हें मनका स्वरूप कहा गया है, जिसमें क्रोध, तृष्णा, क्षमा आदि विद्यमान रहते हैं। भवबन्धनके हेतुके मूल कारणभूत तृष्णाका छेदन करके उसे रुद्रमें स्थापित करके बुद्धिके द्वारा उनका चिन्तन करना चाहिये॥ ४०॥

एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम्।
परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम्॥ ४१
ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम्।
ध्यात्वाग्निना च शोध्याङ्गं विशोध्य च पृथक्पृथक्॥ ४२
पञ्चभूतानि संयम्य मात्राविधिगुणक्रमात्।
मात्राः पञ्च चतस्रश्च त्रिमात्राद्विस्ततः परम्॥ ४३
एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्ते व्यवस्थितम्।
स्थित्वा स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत्॥ ४४

उन्हीं एकमात्र रुद्रको शाश्वत, परमेश्वर, परात्परतरसे भी परात्परतर तथा ध्रुव कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि तथा वायुके जनक सदाशिवका ध्यान करके, अग्निबीज (रं)-से देहका शोधन करके पृथक्-पृथक् पंचभूतोंका विशोधन पुनः मात्राविधि-गुणके क्रमसे पाँच-चार-तीन-दो-एक—इन तन्मात्राओंका संयमन करके द्वादशारचक्रके अन्तमें विराजमान निर्गुण शिवको स्थापित करके तथा स्वयं वहाँ स्थित होकर अमृतरूप होकर पाशुपतव्रत करना चाहिये॥ ४१—४४॥

एतद्व्रतं पाशुपतं चरिष्यामि समासतः।
अग्निमाधाय विधिवदृग्यजुःसामसम्भवैः॥ ४५
उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वयम्।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥ ४६
जुहुयाद्विरजो विद्वान् विरजाश्च भविष्यति।

मैं इस पाशुपतव्रतको संक्षेपमें करूँगा—ऐसा संकल्प करके ऋक्, यजुः, सामके मन्त्रोंसे विधिपूर्वक अग्निस्थापन करके, उपवासपूर्वक स्नान करके शुद्ध होकर शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, शुक्ल माला, शुक्ल चन्दन आदि धारण करके रजोगुणसे मुक्त होकर विद्वान् होम करे; इस प्रकार वह रजोगुणरहित हो जायगा॥ ४५-४६$^{1}/_{2}$॥

वायवः पञ्च शुध्यन्तां वाङ्मनश्चरणादयः॥ ४७
श्रोत्रं जिह्वा ततः प्राणस्ततो बुद्धिस्तथैव च।
शिरः पाणिस्तथा पार्श्वं पृष्ठोदरमनन्तरम्॥ ४८
जङ्घे शिश्नमुपस्थं च पायुर्मेढ्रं तथैव च।
त्वचा मांसं च रुधिरं मेदोऽस्थीनि तथैव च॥ ४९
शब्दः स्पर्शं च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च।
भूतानि चैव शुध्यन्तां देहे मेदादयस्तथा॥ ५०
अन्नं प्राणे मनो ज्ञानं शुध्यन्तां वै शिवेच्छया।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम्॥ ५१
उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः।
अग्निरित्यादिना धीमान् विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत्॥ ५२

शिवकी इच्छासे [मेरे प्राण आदि] पाँचों वायु शुद्ध हों, वाणी, मन, पाद, कान, जिह्वा, प्राण, बुद्धि, सिर, हाथ, पार्श्वभाग, पृष्ठभाग, उदर, दोनों जाँघें, शिश्न, जननेन्द्रिय, गुदा, मेढ्र, त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, अस्थियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी आदि [पंच] महाभूत तथा देहमें स्थित मेद आदि शुद्ध हों; अन्न, प्राण, मन तथा ज्ञान शुद्ध हों—इस प्रकार यथाक्रम आज्य (घृत), समिधा तथा चरुसे विरजाहोम करके रुद्राग्निका उपसंहरणकर यत्नपूर्वक '**अग्निरिति**' मन्त्रसे भस्म ग्रहणकर उसे मल करके बुद्धिमान्‌को अंगोंमें लगाना चाहिये॥ ४७—५२॥

एतत्पाशुपतं दिव्यं व्रतं पाशविमोचनम्।
ब्राह्मणानां हितं प्रोक्तं क्षत्रियाणां तथैव च॥ ५३
वैश्यानामपि योग्यानां यतीनां तु विशेषतः।
वानप्रस्थाश्रमस्थानां गृहस्थानां सतामपि॥ ५४
विमुक्तिर्विधिनानेन दृष्ट्वा वै ब्रह्मचारिणाम्।
अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम्॥ ५५
सोऽपि पाशुपतो विप्रो विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत्।
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान् महापातकसम्भवैः॥ ५६

यह दिव्य पाशुपतव्रत बन्धनसे मुक्ति दिलानेवाला और ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, विशेषरूपसे योग्य (अदुष्ट तथा अपतित) यतियों, वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित रहनेवालों, सत्पुरुष गृहस्थों तथा ब्रह्मचारियोंके लिये हितकर कहा गया है, इस प्रकार विरजादीक्षासहित भस्म धारण करनेसे मुक्ति होती है—ऐसा जानकर '**अग्निरिति**' इत्यादि मन्त्रसे अग्निहोत्रके भस्मको ग्रहण करके उसे मलकर अंगोंमें धारण करना चाहिये; ऐसा करनेवाला

पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः।
वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान् भस्मसंयुतः॥ ५७

भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेन्द्रियः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५८

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूत्यङ्गं पूजयेद्बुधः।
रेरेकारो न कर्तव्यस्तुन्तुन्कारस्तथैव च॥ ५९

न तत्क्षमति देवेशो ब्रह्मा वा यदि केशवः।
मम पुत्रो भस्मधारी गणेशश्च वरानने॥ ६०

तेषां विरुद्धं यत्त्याज्यं स याति नरकार्णवम्।
गृहस्थो ब्रह्महीनोऽपि त्रिपुण्ड्रं यो न कारयेत्॥ ६१

पूजा कर्म क्रिया तस्य दानं स्नानं तथैव च।
निष्फलं जायते सर्वं यथा भस्मनि वै हुतम्॥ ६२

तस्माच्च सर्वकार्येषु त्रिपुण्ड्रं धारयेद्बुधः।
इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा स्तुत्वा देवैः समं प्रभुः॥ ६३

भस्मच्छन्नैः स्वयं छन्नो विरराम विशाम्पते।
अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः॥ ६४

सगणश्चाम्बया सार्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः।
अथ सन्निहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुङ्गवम्॥ ६५

रुद्राध्यायेन सर्वेशं देवदेवमुमापतिम्।
देवोऽपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः॥ ६६

तुष्टोऽस्मीत्याह देवेभ्यो वरं दातुं सुरारिहा॥ ६७

विप्र भी पाशुपत हो जाता है। भस्मसे अनुलिप्त विद्वान् द्विज महापापोंसे होनेवाले दोषोंसे शीघ्र मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। चूँकि अग्निका भस्म वीर्य (तेजरूप) होता है, अतः भस्म धारण करनेवाला वीर्यवान् (तेजस्वी) होता है। भस्मस्नानपरायण, भस्मशायी तथा जितेन्द्रिय विप्र सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवसायुज्य प्राप्त करता है; अतः बुद्धिमान्को चाहिये कि अंगोंमें विभूति (भस्म) धारण करनेवालेकी पूजा करे, उनके प्रति 'रे' अथवा 'तुम' शब्द नहीं बोलना चाहिये; हे वरानने! इसे देवेश शिव सहन नहीं करते हैं, ऐसा कहनेवाले चाहे ब्रह्मा, विष्णु अथवा भस्मधारी मेरे पुत्र गणेश ही क्यों न हों?॥ ५३—६०॥

जो कुछ भी उन पाशुपतव्रत करनेवालोंके विरुद्ध हो, वह त्याज्य है; जो त्याग नहीं करता, वह नरकार्णवमें जाता है। तपस्या आदिसे रहित होते हुए भी जो गृहस्थ त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता है, उसके द्वारा की गयी पूजा, सत्कर्म, क्रिया, दान, स्नान—सब कुछ उसी भाँति निष्फल होता है, जैसे भस्ममें डाली गयी आहुति। अतः बुद्धिमान्को सभी सत्कर्मोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ६१-६२$^{1}/_{2}$॥

हे विशाम्पते! इस प्रकार भस्ममाहात्म्य कहकर स्वयं भस्म धारण किये हुए प्रभु भगवान् ब्रह्मा भस्म धारण किये देवताओंके साथ शिवकी स्तुति करके [ध्यानानन्दमें मग्न होकर] शान्त हो गये। तदनन्तर उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये पशुपति प्रभु महेश्वर गणों तथा पार्वतीके साथ प्रकट हुए। इसके बाद वे देवता वहाँ उपस्थित सुरश्रेष्ठ, सर्वेश, देवदेव, उमापति रुद्रकी रुद्राध्यायसे स्तुति करने लगे। तब देवशत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् वृषभध्वजने कृपापूर्ण दृष्टिसे देवोंको देखकर 'मैं देवताओंको वर प्रदान करनेके लिये सन्तुष्ट हूँ'—ऐसा कहा॥ ६३—६७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'पाशुपतव्रतमाहात्म्यवर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

देवताओं तथा मुनियोंको सूर्यमण्डलमें उमासहित नीललोहित पंचमुख सदाशिवके विराट्स्वरूपका दर्शन होना और उनकी पूजा एवं स्तुति करना

शैलादिरुवाच

तं प्रभुं प्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम्।
अपृच्छन्मुनयो देवाः प्रीतिकण्टकितत्वचः॥ १

देवा ऊचुः

भगवन् केन मार्गेण पूजनीयो द्विजातिभिः।
कुत्र वा केन रूपेण वक्तुमर्हसि शङ्कर॥ २
कस्याधिकारः पूजायां ब्राह्मणस्य कथं प्रभो।
क्षत्रियाणां कथं देव वैश्यानां वृषभध्वज॥ ३
स्त्रीशूद्राणां कथं वापि कुण्डगोलादिनां तु वा।
हिताय जगतां सर्वमस्माकं वक्तुमर्हसि॥ ४

सूत उवाच

तेषां भावं समालोक्य मुनीनां नीललोहितः।
प्राह गम्भीरया वाचा मण्डलस्थः सदाशिवः॥ ५
मण्डले चाग्रतो पश्यन् देवदेवं सहोमया।
देवाश्च मुनयः सर्वे विद्युत्कोटिसमप्रभम्॥ ६
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रं द्वादशाक्षं महाभुजम्।
अर्धनारीश्वरं देवं जटामुकुटधारिणम्॥ ७
सर्वाभरणसंयुक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम्।
रक्ताम्बरधरं सृष्टिस्थितिसंहारकारकम्॥ ८
तस्य पूर्वमुखं पीतं प्रसन्नं पुरुषात्मकम्।
अघोरं दक्षिणं वक्त्रं नीलाञ्जनचयोपमम्॥ ९
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं ज्वालामालासमावृतम्।
रक्तश्मश्रुं जटायुक्तं चोत्तरे विद्रुमप्रभम्॥ १०
प्रसन्नं वामदेवाख्यं वरदं विश्वरूपिणम्।
पश्चिमं वदनं तस्य गोक्षीरधवलं शुभम्॥ ११
मुक्ताफलमयैर्हारैर्भूषितं तिलकोज्ज्वलम्।
सद्योजातमुखं दिव्यं भास्करस्य स्मरारिणः॥ १२

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] प्रसन्न मनवाले उन प्रभु वृषध्वज शिवको प्रणाम करके हर्षसे रोमांचित शरीरवाले मुनियों तथा देवताओंने उनसे पूछा—॥ १॥

देवता बोले—हे भगवन्! द्विजातिगण किस विधिसे, कहाँ और किस रूपसे आपका पूजन करें, हे शंकर! आप बतानेकी कृपा कीजिये। हे प्रभो! किस ब्राह्मणका [आपकी] पूजामें अधिकार है? हे देव! हे वृषध्वज! क्षत्रियों, वैश्यों, स्त्रियों, शूद्रों, कुण्ड-गोलक आदि वर्णसंकर लोगोंका आपकी पूजामें किस प्रकारसे अधिकार है? जगत्के कल्याणके लिये हमें यह सब बतानेका अनुग्रह करें॥ २—४॥

सूतजी बोले—उन देवताओं और मुनियोंकी भक्ति देखकर सूर्यमण्डलमें स्थित नीललोहित सदाशिव गम्भीर वाणीमें बोले। उस अवसरपर सभी देवताओं और मुनियोंने सामने देखा कि सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले देवदेव शिव सूर्यमण्डलमें उमाके साथ विराजमान हैं, करोड़ों विद्युत्के समान उनकी प्रभा है, वे आठ भुजाओं, चार मुखों तथा बारह नेत्रोंसे शोभा पा रहे हैं, वे बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त हैं, वे प्रभु अर्धनारीश्वररूपमें हैं, वे जटाजूटरूपी मुकुट धारण किये हुए हैं, वे सभी आभरणोंसे समन्वित हैं और रक्तवर्णकी माला, चन्दन तथा वस्त्र धारण किये हुए हैं॥ ५—८॥

उनका पूर्वमुख तत्पुरुषसंज्ञक था, जो पीतवर्ण तथा प्रसन्नतासे युक्त था, उनका अघोर नामक दक्षिणमुख नीले अंजनके तुल्य, विकराल दाढ़ोंसे युक्त, अत्यन्त उग्र, ज्वालासमूहसे समावृत, रक्तवर्णकी दाढ़ीसे युक्त और जटाओंसे सुशोभित था, उत्तर दिशामें उनका वामदेव नामक मुख था, जो प्रवालमणिके सदृश प्रभासे युक्त, प्रसन्न, वरदायक तथा विश्वरूप था और उन कामरिपु भास्कररूप शिवका पश्चिममुख सद्योजात नामवाला था, जो गौके दुग्धके समान धवल, सुन्दर, मुक्ताफलसे युक्त

आदित्यमग्रतोऽपश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ।
भास्करं पुरतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्॥ १३

भानुं दक्षिणतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्।
रविमुत्तरतोऽपश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ॥ १४

विस्तारां मण्डले पूर्वे उत्तरां दक्षिणे स्थिताम्।
बोधनीं पश्चिमे भागे मण्डलस्य प्रजापतेः॥ १५

अध्यायनीं च कौबेर्यामेकवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
सर्वाभरणसम्पन्नाः शक्तयः सर्वसम्मताः॥ १६

ब्रह्माणं दक्षिणे भागे विष्णुं वामे जनार्दनम्।
ऋग्यजुःसाममार्गेण मूर्तित्रयमयं शिवम्॥ १७

ईशानं वरदं देवमीशानं परमेश्वरम्।
ब्रह्मासनस्थं वरदं धर्मज्ञानासनोपरि॥ १८

वैराग्यैश्वर्यसंयुक्ते प्रभूते विमले तथा।
सारं सर्वेश्वरं देवमाराध्यं परमं सुखम्॥ १९

सितपङ्कजमध्यस्थं दीप्ताद्यैरभिसंवृतम्।
दीप्तां दीपशिखाकारां सूक्ष्मां विद्युत्प्रभां शुभाम्॥ २०

जयामग्निशिखाकारां प्रभां कनकसप्रभाम्।
विभूतिं विद्रुमप्रख्यां विमलां पद्मसन्निभाम्॥ २१

अमोघां कर्णिकाकारां विद्युतं विश्ववर्णिनीम्।
चतुर्वक्त्रां चतुर्वर्णां देवीं वै सर्वतोमुखीम्॥ २२

सोममङ्गारकं देवं बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम्॥ २३

मन्दं मन्दगतिं चैव समन्तात्तस्य ते सदा।
सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्॥ २४

पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम्।
दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम्॥ २५

हारोंसे सुशोभित, तिलकसे प्रकाशित तथा अत्यन्त दिव्य था॥ ९—१२॥

उन्होंने आगेकी ओर शिवके ही सदृश चार मुखोंवाले आदित्यको, पूर्वकी ओर शिवसदृश चतुर्मुख भगवान् भास्करको, दक्षिणकी ओर शिवतुल्य चतुर्मुख प्रभु भानुको और उत्तरकी ओर शिवके ही समान चतुर्मुख रविको देखा। इसी प्रकार उन देवताओंने सूर्यमण्डलकी पूर्वदिशामें देवी विस्ताराको, दक्षिणमें उत्तराको, पश्चिंमभागमें बोधनीको और उत्तरदिशामें एक मुख तथा चार भुजाओंवाली अध्यायनीको विराजमान देखा। सबकी पूज्य ये शक्तियाँ सभी आभरणोंसे सम्पन्न थीं॥ १३—१६॥

देवताओं तथा मुनियोंने उनके दाहिनी ओर ब्रह्माको और बायीं ओर जनार्दन विष्णुको देखा। उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके क्रमसे [ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुमय रूपमें] तीन विग्रहोंसे सुशोभित सबके स्वामी, वरद, ईशान, वरदायक, परमेश्वर शिवको धर्मज्ञानके आसनपर ब्रह्मासनमें स्थित देखा। उन्होंने वैराग्य तथा ऐश्वर्यसे सुशोभित विशाल तथा विमल आसनपर श्वेत कमलके मध्यमें विराजमान सबके स्वामी, देवताओंके आराध्य, सर्वोपरि तथा सुखदायक शिवको दीप्ता आदि [नौ] शक्तियोंसे आवृत देखा। उन देवताओं और मुनियोंने प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान दीप्ताको, विद्युत्प्रभाके समान शुभ सूक्ष्माको, अग्निशिखाके आकारवाली जयाको, सुवर्णके कान्तिसदृश प्रभाको, विद्रुम (मूँगा)-के समान वर्णवाली विभूतिको, कमलसदृश विमलाको, कमलकी कर्णिकाके रूपवाली अमोघाको, अनेक वर्णोंवाली देवी विद्युत्को, चार मुखों और चार वर्णोंवाली देवी सर्वतोमुखीको, चन्द्रमाको, मंगलको, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ देव बुधको, महान् बुद्धिवाले बृहस्पतिको, तेजोनिधि शुक्रको और मन्दगतिवाले शनैश्चरको सदा उन शिवके चारों ओर स्थित देखा। स्वयं जगत्स्वामी शिवरूप सूर्य, साक्षात् उमारूप चन्द्र और गगनादि पंचमहाभूतरूप भौम आदि पाँच ग्रह हैं, इन्हींसे चराचर जगत् व्याप्त है। इस प्रकार देवदेव उमापति सदाशिवको देखते ही सभी मुनियोंको पूजाविधिका ज्ञान

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा।
अस्तुवन् वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं नीललोहितम्॥ २६

ऋषय ऊचुः

नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे।
मीढुष्टमाय शर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे॥ २७
प्रभूते विमले सारे ह्याधारे परमे सुखे।
नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्करं प्रभुम्॥ २८
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिकामपि॥ २९
विस्तारामुत्तरां देवीं बोधनीं प्रणमाम्यहम्।
आप्यायनीं च वरदां ब्रह्माणं केशवं हरम्॥ ३०
सोमादिवृन्दं च यथाक्रमेण
सम्पूज्य मन्त्रैर्विहितक्रमेण।
स्मरामि देवं रविमण्डलस्थं
सदाशिवं शङ्करमादिदेवम्॥ ३१
इन्द्रादिदेवांश्च तथेश्वरांश्च
नारायणं पद्मजमादिदेवम्।
प्रागाद्यधोर्ध्वं च यथाक्रमेण
वज्रादिपद्मं च तथा स्मरामि॥ ३२
सिन्दूरवर्णाय समण्डलाय
सुवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपङ्कजाय
ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥ ३३
रथं च सप्ताश्वमनूरुवीरं
गणं तथा सप्तविधं क्रमेण।
ऋतुप्रवाहेण च वालखिल्यान्
स्मरामि मन्देहगणक्षयं च॥ ३४
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ
पुनः समाप्यैव तथैव सर्वम्।
उद्वास्य हृत्पङ्कजमध्यसंस्थं
स्मरामि बिम्बं तव देवदेव॥ ३५
स्मरामि बिम्बानि यथाक्रमेण
रक्तानि पद्मामललोचनानि।

हो गया और उन सभी मुनियों तथा देवताओंने हाथ जोड़कर अभिलषित वाणीद्वारा वर प्रदान करनेवाले नीललोहित भगवान् शिवकी स्तुति की॥ १७—२६॥

ऋषिगण बोले—शिव, रुद्र, कद्रुद्र, प्रचेता, मीढुष्टम, शर्व, शिपिविष्ट तथा रंहको नमस्कार है। विशाल, विमल, श्रेष्ठ तथा परम सुखदायक आसनपर विराजमान, नौ शक्तियोंसे आवृत तथा कमलके मध्यमें स्थित भगवान् भास्करको, आदित्य-भास्कर-भानु, रवि, देव तथा दिवाकरको उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या, सावित्रिका, विस्तारा, उत्तरा, देवी बोधनी, वर प्रदान करनेवाली आप्यायनी, ब्रह्मा, केशव तथा हरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २७—३०॥

विहित विधिसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम सोम आदिका सम्यक् पूजन करके मैं सूर्यमण्डलमें विराजमान सदाशिव आदिदेव भगवान् शंकरका स्मरण करता हूँ॥ ३१॥

इन्द्र आदि आठ दिक्पालोंका, उनके अधिदेवताओंका, नारायणका, आदिदेव ब्रह्माका, यथाक्रम पूर्व आदि आठ दिशाओंका, ऊर्ध्व तथा अधः दिशाओंका और वज्र, पद्म आदिका स्मरण करता हूँ॥ ३२॥

सिन्दूरके समान वर्णवाले, मण्डलयुक्त, सुवर्ण तथा हीरेके आभरणोंसे सुशोभित, कमलसदृश नेत्रोंवाले, कमल धारण करनेवाले तथा ब्रह्मा-इन्द्र-नारायणके भी कारणरूप सदाशिवको नमस्कार है॥ ३३॥

मैं सूर्यके रथको, सात घोड़ोंको, पराक्रमी अरुणको, वसन्तादि ऋतुक्रमसे व्यवस्थित सप्तविध गणोंको, वालखिल्य आदि ऋषियोंको तथा मन्देह नामक असुरोंके विनाशको स्मृति-पथपर लाता हूँ॥ ३४॥

हे देवदेव! तिल आदि विविध पदार्थोंसे अग्निमें हवन करके पुनः सम्पूर्ण कृत्यका समापन करके हृदयकमलके मध्य संस्थित आपके बिम्बको मण्डलसे निकालकर मैं स्मरण करता हूँ॥ ३५॥

मैं क्रमशः आपके रक्तबिम्बोंका, पद्मके समान निर्मल नेत्रोंका, दाहिने हाथमें स्थित पद्म, बायें हाथमें स्थित वरद मुद्राका तथा शोभासम्पन्न आभूषणोंका स्मरण करता हूँ॥ ३६॥

आदित्यमग्रतोऽपश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ।
भास्करं पुरतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्॥ १३

भानुं दक्षिणतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्।
रविमुत्तरतोऽपश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ॥ १४

विस्तारां मण्डले पूर्वे उत्तरां दक्षिणे स्थिताम्।
बोधनीं पश्चिमे भागे मण्डलस्य प्रजापतेः॥ १५

अध्यायनीं च कौबेर्यामेकवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
सर्वाभरणसम्पन्नाः शक्तयः सर्वसम्मताः॥ १६

ब्रह्माणं दक्षिणे भागे विष्णुं वामे जनार्दनम्।
ऋग्यजुःसाममार्गेण मूर्तित्रयमयं शिवम्॥ १७

ईशानं वरदं देवमीशानं परमेश्वरम्।
ब्रह्मासनस्थं वरदं धर्मज्ञानासनोपरि॥ १८

वैराग्यैश्वर्यसंयुक्ते प्रभूते विमले तथा।
सारं सर्वेश्वरं देवमाराध्यं परमं सुखम्॥ १९

सितपङ्कजमध्यस्थं दीप्ताद्यैरभिसंवृतम्।
दीप्तां दीपशिखाकारां सूक्ष्मां विद्युत्प्रभां शुभाम्॥ २०

जयामग्निशिखाकारां प्रभां कनकसप्रभाम्।
विभूतिं विद्रुमप्रख्यां विमलां पद्मसन्निभाम्॥ २१

अमोघां कर्णिकाकारां विद्युतं विश्ववर्णिनीम्।
चतुर्वक्त्रां चतुर्वर्णां देवीं वै सर्वतोमुखीम्॥ २२

सोममङ्गारकं देवं बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम्॥ २३

मन्दं मन्दगतिं चैव समन्तात्तस्य ते सदा।
सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्॥ २४

पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम्।
दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम्॥ २५

हारोंसे सुशोभित, तिलकसे प्रकाशित तथा अत्यन्त दिव्य था॥ ९—१२॥

उन्होंने आगेकी ओर शिवके ही सदृश चार मुखोंवाले आदित्यको, पूर्वकी ओर शिवसदृश चतुर्मुख भगवान् भास्करको, दक्षिणकी ओर शिवतुल्य चतुर्मुख प्रभु भानुको और उत्तरकी ओर शिवके ही समान चतुर्मुख रविको देखा। इसी प्रकार उन देवताओंने सूर्यमण्डलकी पूर्वदिशामें देवी विस्ताराको, दक्षिणमें उत्तराको, पश्चिमभागमें बोधनीको और उत्तरदिशामें एक मुख तथा चार भुजाओंवाली अध्यायनीको विराजमान देखा। सबकी पूज्य ये शक्तियाँ सभी आभरणोंसे सम्पन्न थीं॥ १३—१६॥

देवताओं तथा मुनियोंने उनके दाहिनी ओर ब्रह्माको और बायीं ओर जनार्दन विष्णुको देखा। उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके क्रमसे [ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुमय रूपमें] तीन विग्रहोंसे सुशोभित सबके स्वामी, वरद, ईशान, वरदायक, परमेश्वर शिवको धर्मज्ञानके आसनपर ब्रह्मासनमें स्थित देखा। उन्होंने वैराग्य तथा ऐश्वर्यसे सुशोभित विशाल तथा विमल आसनपर श्वेत कमलके मध्यमें विराजमान सबके स्वामी, देवताओंके आराध्य, सर्वोपरि तथा सुखदायक शिवको दीप्ता आदि [नौ] शक्तियोंसे आवृत देखा। उन देवताओं और मुनियोंने प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान दीप्ताको, विद्युत्प्रभाके समान शुभ सूक्ष्माको, अग्निशिखाके आकारवाली जयाको, सुवर्णके कान्तिसदृश प्रभाको, विद्रुम (मूँगा)-के समान वर्णवाली विभूतिको, कमलसदृश विमलाको, कमलकी कर्णिकाके रूपवाली अमोघाको, अनेक वर्णोंवाली देवी विद्युत्को, चार मुखों और चार वर्णोंवाली देवी सर्वतोमुखीको, चन्द्रमाको, मंगलको, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ देव बुधको, महान् बुद्धिवाले बृहस्पतिको, तेजोनिधि शुक्रको और मन्दगतिवाले शनैश्चरको सदा उन शिवके चारों ओर स्थित देखा। स्वयं जगत्स्वामी शिवरूप सूर्य, साक्षात् उमारूप चन्द्र और गगनादि पंचमहाभूतरूप भौम आदि पाँच ग्रह हैं, इन्हींसे चराचर जगत् व्याप्त है। इस प्रकार देवदेव उमापति सदाशिवको देखते ही सभी मुनियोंको पूजाविधिका ज्ञान

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा।
अस्तुवन् वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं नीललोहितम्॥ २६

ऋषय ऊचुः

नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे।
मीढुष्टमाय शर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे॥ २७
प्रभूते विमले सारे ह्याधारे परमे सुखे।
नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्करं प्रभुम्॥ २८
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिकामपि॥ २९
विस्तारामुत्तरां देवीं बोधनीं प्रणमाम्यहम्।
आप्यायनीं च वरदां ब्रह्माणं केशवं हरम्॥ ३०
सोमादिवृन्दं च यथाक्रमेण
सम्पूज्य मन्त्रैर्विहितक्रमेण।
स्मरामि देवं रविमण्डलस्थं
सदाशिवं शङ्करमादिदेवम्॥ ३१
इन्द्रादिदेवांश्च तथेश्वरांश्च
नारायणं पद्मजमादिदेवम्।
प्रागाद्यधोर्ध्वं च यथाक्रमेण
वज्रादिपद्मं च तथा स्मरामि॥ ३२
सिन्दूरवर्णाय समण्डलाय
सुवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपङ्कजाय
ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥ ३३
रथं च सप्ताश्वमनूरुवीरं
गणं तथा सप्तविधं क्रमेण।
ऋतुप्रवाहेण च वालखिल्यान्
स्मरामि मन्देहगणक्षयं च॥ ३४
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ
पुनः समाप्यैव तथैव सर्वम्।
उद्वास्य हृत्पङ्कजमध्यसंस्थं
स्मरामि बिम्बं तव देवदेव॥ ३५
स्मरामि बिम्बानि यथाक्रमेण
रक्तानि पद्मामललोचनानि।

हो गया और उन सभी मुनियों तथा देवताओंने हाथ जोड़कर अभिलषित वाणीद्वारा वर प्रदान करनेवाले नीललोहित भगवान् शिवकी स्तुति की॥ १७—२६॥

ऋषिगण बोले—शिव, रुद्र, कद्रुद्र, प्रचेता, मीढुष्टम, शर्व, शिपिविष्ट तथा रंहको नमस्कार है। विशाल, विमल, श्रेष्ठ तथा परम सुखदायक आसनपर विराजमान, नौ शक्तियोंसे आवृत तथा कमलके मध्यमें स्थित भगवान् भास्करको, आदित्य-भास्कर-भानु, रवि, देव तथा दिवाकरको उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या, सावित्रिका, विस्तारा, उत्तरा, देवी बोधनी, वर प्रदान करनेवाली आप्यायनी, ब्रह्मा, केशव तथा हरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २७—३०॥

विहित विधिसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम सोम आदिका सम्यक् पूजन करके मैं सूर्यमण्डलमें विराजमान सदाशिव आदिदेव भगवान् शंकरका स्मरण करता हूँ॥ ३१॥

इन्द्र आदि आठ दिक्पालोंका, उनके अधिदेवताओंका, नारायणका, आदिदेव ब्रह्माका, यथाक्रम पूर्व आदि आठ दिशाओंका, ऊर्ध्व तथा अधः दिशाओंका और वज्र, पद्म आदिका स्मरण करता हूँ॥ ३२॥

सिन्दूरके समान वर्णवाले, मण्डलयुक्त, सुवर्ण तथा हीरेके आभरणोंसे सुशोभित, कमलसदृश नेत्रोंवाले, कमल धारण करनेवाले तथा ब्रह्मा-इन्द्र-नारायणके भी कारणरूप सदाशिवको नमस्कार है॥ ३३॥

मैं सूर्यके रथको, सात घोड़ोंको, पराक्रमी अरुणको, वसन्तादि ऋतुक्रमसे व्यवस्थित सप्तविध गणोंको, वालखिल्य आदि ऋषियोंको तथा मन्देह नामक असुरोंके विनाशको स्मृति-पथपर लाता हूँ॥ ३४॥

हे देवदेव! तिल आदि विविध पदार्थोंसे अग्निमें हवन करके पुनः सम्पूर्ण कृत्यका समापन करके हृदयकमलके मध्य संस्थित आपके बिम्बको मण्डलसे निकालकर मैं स्मरण करता हूँ॥ ३५॥

मैं क्रमशः आपके रक्तबिम्बोंका, पद्मके समान निर्मल नेत्रोंका, दाहिने हाथमें स्थित पद्म, बायें हाथमें स्थित वरद मुद्राका तथा शोभासम्पन्न आभूषणोंका स्मरण करता हूँ॥ ३६॥

पद्मं च सव्ये वरदं च वामे
करे तथा भूषितभूषणानि॥ ३६
दंष्ट्राकरालं तव दिव्यवक्त्रं
विद्युत्प्रभं दैत्यभयङ्करं च।
स्मरामि रक्षाभिरतं द्विजानां
मन्देहरक्षोगणभर्त्सनं च॥ ३७
सोमं सितं भूमिजमग्निवर्णं
चामीकराभं बुधमिन्दुसूनुम्।
बृहस्पतिं काञ्चनसन्निकाशं
शुक्रं सितं कृष्णतरं च मन्दम्॥ ३८
स्मरामि सव्यमभयं वाममूरुगतं वरम्।
सर्वेषां मन्दपर्यन्तं महादेवं च भास्करम्॥ ३९
पूर्णेन्दुवर्णेन च पुष्पगन्ध-
प्रस्थेन तोयेन शुभेन पूर्णम्।
पात्रं दृढं ताम्रमयं प्रकल्प्य
दास्ये तवार्घ्यं भगवन् प्रसीद॥ ४०
नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये॥ ४१

सूत उवाच

यः शिवं मण्डले देवं सम्पूज्यैवं समाहितः।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने पठेत्स्तवमनुत्तमम्॥ ४२
इत्थं शिवेन सायुज्यं लभते नात्र संशयः॥ ४३

मैं विकराल दाढ़ोंवाले, विद्युत्‌की कान्तिवाले, दैत्योंके लिये भयकारक, ब्राह्मणोंकी रक्षामें संलग्न तथा मन्देह नामक राक्षससमुदायकी भर्त्सना करनेवाले आपके दिव्य मुखका स्मरण करता हूँ॥ ३७॥

श्वेतवर्णवाले चन्द्रमा, अग्निवर्णके तुल्य मंगल, धत्तूर-वृक्षके समान आभावाले चन्द्रपुत्र बुध, सुवर्णकी आभावाले बृहस्पति, श्वेत वर्णवाले शुक्र, अत्यन्त कृष्ण-वर्णवाले शनि—इस प्रकार शनिपर्यन्त सप्तग्रहरूपात्मक सभी ग्रहोंके परम कारण तथा दाहिने हाथमें अभय मुद्रा और बायें हाथको अपने उरुदेशमें स्थित करके वरद मुद्रा धारण करनेवाले भास्कररूप महादेवका स्मरण करता हूँ॥ ३८-३९॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान वर्णवाले तथा पुष्पगन्ध फैलानेवाले पवित्र जलसे पूरित दृढ़ ताम्रपात्रको प्रकल्पित करके मैं आपको अर्घ्य प्रदान करता हूँ। हे भगवन्! प्रसन्न होइये। ईश्वर, कपर्दी, रुद्र, विष्णुरूप, ब्रह्मस्वरूप, सूर्यमूर्ति आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥ ४०-४१॥

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] इस प्रकार जो मनुष्य एकनिष्ठ होकर सूर्यमण्डलमें भगवान् शिवका विधिपूर्वक पूजन करके प्रातः, मध्याह्न तथा सायंवेलामें इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करता है, वह शिवके साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवपूजनवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवपूजनवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

पाशुपतयोग एवं शैवी दीक्षाका वर्णन तथा शिवयोगकी महिमा

सूत उवाच

अथ रुद्रो महादेवो मण्डलस्थः पितामहः।
पूज्यो वै ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः॥ १
वैश्यानां नैव शूद्राणां शुश्रूषां पूजकस्य च।
स्त्रीणां नैवाधिकारोऽस्ति पूजादिषु न संशयः॥ २
स्त्रीशूद्राणां द्विजेन्द्रैश्च पूजया तत्फलं भवेत्।
नृपाणामुपकारार्थं ब्राह्मणाद्यैर्विशेषतः॥ ३
एवं सम्पूजयेयुर्वै ब्राह्मणाद्याः सदाशिवम्।
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवान्तरधात्स्वयम्॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] सूर्यमण्डलमें स्थित पितामह महादेव रुद्र ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंके विशेषरूपसे पूज्य हैं, वे शूद्रोंके पूज्य नहीं हैं, उन्हें तो शिवपूजककी सेवा करनी चाहिये, स्त्रियोंको भी पूजा आदिमें अधिकार नहीं है, इसमें संशय नहीं है। द्विजेन्द्रोंके द्वारा की गयी पूजासे ही स्त्रियों तथा शूद्रोंको मण्डलपूजाका फल प्राप्त हो जाता है। राजाओंके उपकारके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा विशेषरूपसे पूजा की जानी चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण आदिको विधिवत्

ते देवा मुनयः सर्वे शिवमुद्दिश्य शङ्करम्।
प्रणेमुश्च महात्मानो रुद्रध्यानेन विह्वलाः॥ ५
जग्मुर्यथागतं देवा मुनयश्च तपोधनाः।
तस्मादभ्यर्चयेन्नित्यमादित्यं शिवरूपिणम्॥ ६
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा।

ऋषय ऊचुः

रोमहर्षण सर्वज्ञ सर्वशास्त्रभृतां वर॥ ७
व्यासशिष्य महाभाग वाह्नेयं वद साम्प्रतम्।
शिवेन देवदेवेन भक्तानां हितकाम्यया॥ ८
वेदात् षडङ्गादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च सर्वतः।
तपश्च विपुलं तप्त्वा देवदानवदुश्चरम्॥ ९
अर्थदेशादिसंयुक्तं गूढमज्ञाननिन्दितम्।
वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम्॥ १०
शिवेन कथितं शास्त्रं धर्मकामार्थमुक्तये।
शतकोटिप्रमाणेन तत्र पूजा कथं विभोः॥ ११
स्नानयोगादयो वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः।

सूत उवाच

पुरा सनत्कुमारेण मेरुपृष्ठे सुशोभने॥ १२
पृष्टो नन्दीश्वरो देवः शैलादिः शिवसम्मतः।
पृष्टोऽयं प्रणिपत्यैवं मुनिमुख्यैश्च सर्वतः॥ १३
तस्मै सनत्कुमाराय नन्दिना कुलनन्दिना।
कथितं यच्छिवज्ञानं शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः॥ १४
शैवं सङ्क्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम्।
स्तुतिनिन्दादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥ १५
गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम्।

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वभूतेश नन्दीश्वर महेश्वर॥ १६

सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये—ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १—४॥

इसके बाद वे समस्त देवता तथा महान् आत्मावाले मुनिगण कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरको उद्देश्य करके प्रणाम करने लगे। तदनन्तर देवता तथा तपोधन मुनिलोग प्रसन्न होकर रुद्रका ध्यान करते हुए जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। अतएव धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मन-वचन-कर्मसे शिवरूप आदित्यकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ५-६ $^1/_2$॥

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हे सर्वज्ञ! सभी शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! अब आप हमें वाह्नेय (अग्निपुराणोक्त) शिवपूजाकी विधि बताइये। भक्तोंके कल्याणके लिये देवाधिदेव शिवने देवताओं तथा दानवोंके लिये दुश्चर कठोर तप करके षडंग वेदसे तथा सांख्ययोगसे भलीभाँति ग्रहण करके अर्थ-देश आदिसे युक्त, गूढ़, अविवेकियोंके द्वारा निन्दित, वर्णाश्रमकृत धर्मोंसे कहीं-कहीं विपरीत तथा कहीं-कहीं अनुकूल जिस शतकोटि प्रमाणवाले शास्त्रको धर्म-अर्थ-काम-मोक्षहेतु कहा है, उसमें उन सर्वव्यापी शिवकी पूजा, स्नान, योग आदिका क्या विधान है? उसे सुननेकी हमें बड़ी उत्कण्ठा है॥ ७—११ $^1/_2$॥

सूतजी बोले—पूर्वकालमें सनत्कुमारने अत्यन्त सुन्दर मेरुशिखरपर शिवजीके प्रिय शैलादि भगवान् नन्दीश्वरसे यही बात पूछी थी। प्रणाम करके श्रेष्ठ मुनियोंने भी इनसे ऐसा ही पूछा था। हे मुनीश्वरो! तब अपने कुलको आनन्दित करनेवाले नन्दीने उन सनत्कुमारको जिस शिवज्ञानका उपदेश किया था, उसे आपलोग सुनें। स्वयं शिवके द्वारा संक्षिप्त करके परिभाषित किया गया वह शिवज्ञान वेदप्रतिपादित, निन्दा आदिसे रहित, शीघ्र ही श्रद्धा उत्पन्न करनेवाला, गुरुकृपासे प्राप्त होनेवाला, दिव्य तथा अनायास ही मुक्ति देनेवाला है॥ १२—१५ $^1/_2$॥

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! हे सर्वभूतेश! हे नन्दीश्वर! हे महेश्वर! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके

कथं पूजादयः शम्भोर्धर्मकामार्थमुक्तये।
वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागताय मे॥ १७

लिये शिवकी पूजा आदिका क्या विधान है ? हे शैलादे! विनम्रतापूर्वक मुझ आये हुएको यह बतानेकी कृपा कीजिये॥ १६-१७॥

सूत उवाच

सम्प्रेक्ष्य भगवान्नन्दी निशम्य वचनं पुनः।
कालवेलाधिकाराद्यमवदद्वदतां वरः॥ १८

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!]उनकी ओर देखकर तथा पुनः उनका वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् नन्दी समुचित समय उपस्थित जानकर उनसे कहने लगे॥ १८॥

शैलादिरुवाच

गुरुतः शास्त्रतश्चैवमधिकारं ब्रवीम्यहम्।
गौरवादेव संज्ञैषा शिवाचार्यस्य नान्यथा॥ १९
स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते॥ २०

शैलादि बोले—गुरु तथा शास्त्रसे प्राप्त ज्ञानके आधारपर मैं अधिकार (पात्रता)-के विषयमें बता रहा हूँ। गौरवके कारण ही शिवशास्त्रके आचार्यकी 'गुरु'—यह संज्ञा होती है, इसके विपरीत नहीं। जो स्वयं आचरण करता है, [दूसरोंको भी] आचारमें स्थापित करता है तथा शास्त्रके अर्थज्ञानका संग्रह करता है, वह आचार्य कहा जाता है॥ १९-२०॥

तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्यं भस्मशायिनम्।
गुरुमन्वेषयेद्भक्तः सुभगं प्रियदर्शनम्॥ २१
प्रतिपन्नं जनानन्दं श्रुतिस्मृतिपथानुगम्।
विद्ययाभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम्॥ २२
आचारपालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम्।
तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम्॥ २३
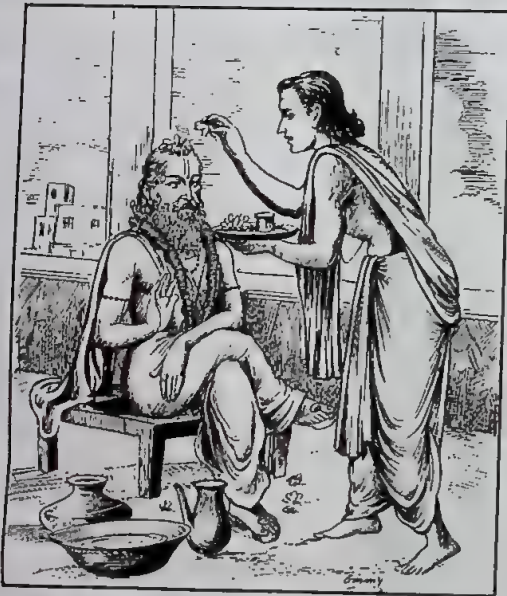
आत्मना च धनेनैव श्रद्धावित्तानुसारतः।
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यथा भवेत्॥ २४
सुप्रसन्ने महाभागे सद्यः पाशक्षयो भवेत्।
गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः॥ २५

अतः भक्तको चाहिये कि वह वेदार्थतत्त्वज्ञ, भस्म धारण करनेवाले, सुशील, प्रिय दर्शनवाले, सम्मानित लोगोंको आनन्दित करनेवाले, श्रुति तथा स्मृतिमें प्रतिपादित मार्गका अनुसरण करनेवाले, विद्यासे अभय प्रदान करनेवाले, लालच तथा चपलतासे रहित, आचारका पालन करनेवाले, धैर्यशाली तथा सन्ध्या आदिकालोंमें समुचित स्थानपर स्थित रहनेवाले आचार्य गुरुका अन्वेषण करे। उस गुरुको प्राप्त करके अनन्य भावसे शिवकी ही भाँति उनका पूजन करना चाहिये। शिष्यको चाहिये कि वह शरीरसे, धनसे तथा श्रद्धा-विश्वासके अनुसार गुरुकी वैसी सेवा करे, जिससे वे प्रसन्न हो जायँ। महाभाग गुरुके प्रसन्न हो जानेपर शीघ्र पाश (बन्धन)-का क्षय हो जाता है। गुरु मान्य हैं, गुरु पूज्य हैं, गुरु साक्षात् सदाशिव ही हैं॥ २१—२५॥

संवत्सरत्रयं वाथ शिष्यान् विप्रान् परीक्षयेत्।
प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः॥ २६
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु।
आकृष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्ति वै॥ २७
ते योग्याः शिवधर्मिष्ठाः शिवधर्मपरायणाः।
संयता धर्मसम्पन्नाः श्रुतिस्मृतिपथानुगाः॥ २८

गुरुको भी चाहिये कि प्रिय वस्तुके प्रदानसे तथा इधर-उधर अनेक कार्योंके लिये आदेशोंद्वारा तीन वर्षोंतक ब्राह्मण-शिष्योंकी परीक्षा करे। उत्तम [शिष्य]-को अधम कार्यमें तथा अधमको उत्तम कार्योंमें नियुक्त करना चाहिये। गुरुके द्वारा आकृष्ट तथा ताड़ित होनेपर भी जो शिष्य विषादको प्राप्त नहीं होते, वे ही शिवधर्मके अधिकारी हैं। शिवधर्मिष्ठ, शिवधर्मपरायण, जितेन्द्रिय, धर्मसम्पन्न, श्रुति-स्मृतिके मार्गका अनुसरण करनेवाले,

सर्वद्वन्द्वसहा धीरा नित्यमुद्युक्तचेतसः।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः॥ २९

आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियंवदाः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्त्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः॥ ३०

शौचाचारगुणोपेता दम्भमात्सर्यवर्जिताः।
योग्या एवं द्विजाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः॥ ३१

एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः।
शोध्या एवंविधाश्चैव तत्त्वानां च विशुद्धये॥ ३२

शुद्धो विनयसम्पन्नो मिथ्याकटुकवर्जितः।
गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति॥ ३३

गुरुश्च शास्त्रवित्प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः।
लोकाचाररतो ह्येवं तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः॥ ३४

सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः।
सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम्॥ ३५

स्वसंवेद्ये परे तत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि।
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम्॥ ३६

प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु स शुद्धः साधयत्यपि।
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः॥ ३७

परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिताः।
पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवः स्मृताः॥ ३८

तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयन्त्यपि।
संवित्तिजननं तत्त्वं परानन्दसमुद्भवम्॥ ३९

तत्त्वं तु विदितं येन स एवानन्ददर्शकः।
न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः॥ ४०

अन्योन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम्।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका॥ ४१

[सुख-दुःख आदि] सभी द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धैर्यशाली, सदा उद्योगशील चित्तवाले, परोपकारमें लगे रहनेवाले, गुरुसेवामें निरत, सरल तथा मृदु स्वभाववाले, स्वस्थचित्त, गुरुके अनुकूल, प्रिय बोलनेवाले, मानरहित, बुद्धिसम्पन्न, स्पर्धाविहीन, कामनाशून्य, शौच-आचार आदि गुणोंसे युक्त, दम्भ तथा मात्सर्यसे विहीन—इस प्रकारके शिवभक्तिपरायण सभी द्विज शिष्य होनेके अधिकारी हैं। [इन्द्रिय आदि चौबीस] तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये मन-वाणी-कर्मसे इन आचरणोंसे सम्पन्न इस प्रकारके शिष्योंका शोधन करना चाहिये। शुद्ध हृदयवाले, विनयसे सम्पन्न, मिथ्या तथा कटुभाषणसे रहित और गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला शिष्य ही गुरुकृपाके योग्य होता है॥ २६—३३॥

शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान्, तपस्वी, लोकप्रिय, लोकाचारमें रत तथा तत्त्वज्ञानी गुरु मोक्ष देनेमें समर्थ बताया गया है। गुरु सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त शास्त्रोंमें निष्णात तथा सभी उपायोंके विधानको जाननेवाला भी हो, किंतु यदि वह आत्मज्ञानसे रहित हो, तो सब कुछ निष्फल है। स्वयं अनुभूत किये जानेवाले परात्मतत्त्वमें जिसकी निश्चित धारणा न हो, उसका अपना ही कल्याण नहीं है, तो उसके द्वारा दूसरेका कल्याण कैसे सम्भव है? जो आत्मज्ञानी द्विज है, वह स्वयं शुद्ध है और दूसरोंको भी शुद्ध कर देता है। तत्त्वहीन गुरुमें बोध कहाँसे होगा और उसका आत्मोद्धार कैसे होगा! जो आत्मज्ञानसे रहित हैं, वे सब पशु कहे गये हैं। पशुतुल्य द्विजके द्वारा जो शिष्य ज्ञानप्रेरित किये जाते हैं, वे सब भी पशु ही कहे गये हैं। अतः जो लोग तत्त्ववेत्ता हैं, वे ही मुक्त हैं और दूसरोंको भी मुक्त कर सकते हैं। आत्मबोध उत्पन्न करनेवाला तत्त्व परानन्दको उत्पन्न करता है। उस तत्त्वको जिसने जान लिया, वही परमानन्दका दर्शन करानेमें समर्थ है, नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता। जो आत्मज्ञानविहीन है, वह दूसरेको कभी नहीं तार सकता, क्या [कोई] शिला दूसरी

योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि।
सद्यः सञ्जायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी॥ ४२

अथवा योगमार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च।
बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च॥ ४३

षडर्धशुद्धिर्विहिता ज्ञानयोगेन योगिनाम्।
शिष्यं परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकं वेदपारगम्॥ ४४

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम्।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कर्णात्कर्णागतेन तु॥ ४५

दीपाद्दीपो यथा चान्यः सञ्चरेद्विधिवद्गुरुः।
भौवनं च पदं चैव वर्णाख्यं मात्रमुत्तमम्॥ ४६

कालाध्वरं महाभाग तत्त्वाख्यं सर्वसम्मतम्।
भिद्यते यस्य सामर्थ्यादाज्ञामात्रेण सर्वतः॥ ४७

तस्य सिद्धिश्च मुक्तिश्च गुरुकारुण्यसम्भवा।
पृथिव्यादीनि भूतानि आविशन्ति च भौवने॥ ४८

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च भावतः।
पदं वर्णाख्यकं विप्र बुद्धीन्द्रियविकल्पनम्॥ ४९

कर्मेन्द्रियाणि मात्रं हि मनो बुद्धिरतः परम्।
अहङ्कारमथाव्यक्तं कालाध्वरमिति स्मृतम्॥ ५०

पुरुषादिविरिञ्च्यन्तमुन्मनत्वं परात्परम्।
तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थबोधकम्॥ ५१

अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धिं शिवात्मिकाम्॥ ५२

शिलाको [नदी आदिसे] पार करा सकती है। जिनका नाममात्रका ज्ञान है, उनकी मुक्ति भी नाममात्रकी होती है॥ ३४—४१॥

योगियोंके दर्शन, स्पर्श तथा भाषणमात्रसे ही बन्धनका नाश करनेवाला अनुग्रह शीघ्र ही होता है। अथवा गुरुको योगमार्गसे शिष्यके देहमें प्रवेश करके योगके द्वारा सभी तत्त्वोंका शोधन करके शिष्यको ज्ञान प्रदान करना चाहिये। योगियोंके लिये ज्ञानयोगसे तीन गुणोंकी शुद्धि विहित है। गुरुको चाहिये कि धर्मको जाननेवाले, धर्मपरायण, वेदमें पारंगत तथा समस्त दोषोंसे रहित ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य शिष्यकी सम्यक् परीक्षा करके ज्ञानसे ज्ञेयको देखकर गुरुपरम्परासे प्राप्त मार्गके द्वारा एक दीपकसे दूसरे दीपककी भाँति विधिपूर्वक उसे बोधमय करे॥ ४२—४५ $^{1}/_{2}$॥

भौवन, पद, वर्ण, मात्रा एवं कालाध्वरसंज्ञक—ये तत्त्व सर्वसम्मत एवं उत्तम हैं। हे महाभाग सनत्कुमार! गुरुके आज्ञामात्रके प्रभावसे जिस शिष्यकी इन तत्त्वोंकी संसारोन्मुखता नष्ट हो जाती है, उसी शिष्यको गुरुकारुण्यसमुत्पन्न सिद्धि और मुक्ति मिल जाती है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पंचमहाभूत भौवन पदवाच्य हैं अथवा इनका समावेश भौवनमें होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये अपने स्वभावसे पद कहलाते हैं। हे विप्र! श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, घ्राण—ये पंचज्ञानेन्द्रियाँ वर्णसंज्ञक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ मात्रसंज्ञक हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—इस अन्तःकरण-चतुष्टयको कालाध्वर कहा गया है। मानवीय आनन्दसे लेकर ब्रह्मानन्दपर्यन्त [ब्रह्मापदपर्यन्त] उन्मनी अवस्था [अमनस्कत्व] श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर है तथा सर्वतत्त्व-प्रकाशक ईशत्व इनसे भी श्रेष्ठ कहा गया है। इस कल्याणस्वरूपा तत्त्वशुद्धिको योगज्ञानशून्य प्राणी नहीं जानता है॥ ४६—५२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवपूजनोपायवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवपूजनोपायवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शिवदीक्षाविधि-वर्णन एवं शिवार्चनका माहात्म्य

सूत उवाच

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः।
अलङ्कृत्य वितानाद्यैरीश्वरावाहनक्षमाम्॥ १

एकहस्तप्रमाणेन मण्डलं परिकल्पयेत्।
आलिखेत्कमलं मध्ये पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ २

चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च।
परिवारेण संयुक्तं बहुशोभासमन्वितम्॥ ३

आवाह्य कर्णिकायां तु शिवं परमकारणम्।
अर्चयेत्सर्वयत्नेन यथाविभवविस्तरम्॥ ४

सूतजी बोले—गन्ध, वर्ण, रस आदिसे भलीभाँति भूमिकी परीक्षा करके ईश्वरके आवाहनयोग्य उस स्थानको वितान (चाँदनी) आदिसे अलंकृत करके वहाँ एक हाथ मापका मण्डल बनाना चाहिये। उसके मध्यमें चूर्णोंके द्वारा पंचरत्नसमन्वित श्वेत या रक्तवर्ण गोल अष्टदल कमलकी रचना करनी चाहिये। तत्पश्चात् [उस कमलकी] कर्णिकामें परिवारसे युक्त, अति शोभामय परम कारण शिवका आवाहन करके अपने सामर्थ्यके अनुसार पूर्ण प्रयत्नसे उनका पूजन करना चाहिये॥ १—४॥

दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां महामुने।
वैराग्यज्ञाननालं च धर्मकन्दं मनोरमम्॥ ५

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली विकरणी तथा।
बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी क्रमात्॥ ६

सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः।
मनोन्मनी महामाया कर्णिकायां शिवासने॥ ७

वामदेवादिभिः सार्धं द्वन्द्वन्यायेन विन्यसेत्।
मनोन्मनं महादेवं मनोन्मन्याथ मध्यतः॥ ८

हे महामुने! कर्णिकाके कमलदलोंमें [अणिमा आदि आठ] सिद्धियाँ स्थित बतायी गयी हैं। वैराग्य-ज्ञानरूप उसका नाल है तथा धर्मरूप उसका मनोरम कन्द (मूल) है। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथिनी और सर्वभूतदमनी—क्रमशः ये आठ शक्तियाँ केसरोंमें स्थित हैं तथा महामायारूपा मनोन्मनी शिवासनरूप कर्णिकामें विराजमान हैं; उन-उन स्थानोंमें उनका ध्यान करना चाहिये। वामदेव आदिके साथ इन वामा आदि आठ शक्तियोंका तथा मध्यमें देवी मनोन्मनीके साथ मनोन्मन महादेवकी दाम्पत्यरूपसे प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥ ५—८॥

सूर्यसोमाग्निसम्बन्धात्प्रणवाख्यं शिवात्मकम्।
पुरुषं विन्यसेद्वक्त्रं पूर्वे पत्रे रविप्रभम्॥ ९

अघोरं दक्षिणे पत्रे नीलाञ्जनचयोपमम्।
उत्तरे वामदेवाख्यं जपाकुसुमसन्निभम्॥ १०

सद्यं पश्चिमपत्रे तु गोक्षीरधवलं न्यसेत्।
ईशानं कर्णिकायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥ ११

सूर्य-चन्द्र-अग्निके सम्बन्धसे प्रणव नामक सूर्यतुल्य प्रभावाले शिवरूप तत्पुरुषका [कमलके] पूर्व पत्रमें न्यास करना चाहिये। नीलांजनसदृश अघोरका दक्षिण पत्रमें, जपाकुसुमके समान वर्णवाले वामदेव नामक शिवका उत्तर पत्रमें, गोदुग्धके समान धवल सद्योजातका पश्चिम पत्रमें और शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले ईशानका कमलकी कर्णिकामें न्यास करना चाहिये॥ ९—११॥

चन्द्रमण्डलसङ्काशं हृदयायेति मन्त्रतः।
वाह्नेये रुद्रदिग्भागे शिरसे धूम्रवर्चसे॥ १२

शिखायै च नमश्चेति रक्ताभे नैर्ऋते दले।
कवचायाञ्जनाभाय इति वायुदले न्यसेत्॥ १३

चन्द्रमण्डलसङ्काशाय हृदयाय नमः—इस मन्त्रसे अग्निकोणके दलमें, **धूम्रवर्चसे शिरसे नमः**—इस मन्त्रसे ईशानकोणके दलमें, **रक्ताभाय शिखायै नमः**—इस मन्त्रसे नैर्ऋत्यकोणके दलमें और **अञ्जनाभाय**

अस्त्रायाग्निशिखाभाय इति दिक्षु प्रविन्यसेत्।
नेत्रेभ्यश्चेति चैशान्यां पिङ्गलेभ्यः प्रविन्यसेत्॥ १४
शिवं सदाशिवं देवं महेश्वरमतः परम्।
रुद्रं विष्णुं विरिञ्चिं च सृष्टिन्यायेन भावयेत्॥ १५
शिवाय रुद्ररूपाय शान्त्यतीताय शम्भवे।
शान्ताय शान्तदैत्याय नमश्चन्द्रमसे तथा॥ १६
वेद्याय विद्याधाराय वह्नये वह्निवर्चसे।
कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायान्तकाय च॥ १७
निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च।
मन्त्रैरेतैर्महाभूतविग्रहं च सदाशिवम्॥ १८
ईशानमुकुटं देवं पुरुषास्यं पुरातनम्।
अघोरहृदयं हृष्टं वामगुह्यं महेश्वरम्॥ १९
सद्यमूर्तिं स्मरेद्देवं सदसद्व्यक्तिकारणम्।
पञ्चवक्त्रं दशभुजमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥ २०
सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम्।
वामं त्रयोदशविधैर्विभिद्य विततं प्रभुम्॥ २१
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम्।
पुरुषं च चतुर्धा वै विभज्य च कलामयम्॥ २२
ईशानं पञ्चधा कृत्वा पञ्चमूर्त्या व्यवस्थितम्।
हंसहंसेति मन्त्रेण शिवभक्त्या समन्वितम्॥ २३
ओङ्कारमात्रमोङ्कारमकारं समरूपिणम्।
आ ई ऊ ए तथा अम्बानुक्रमेणात्मरूपिणम्॥ २४
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्।
अणोरणीयां समजं महतोऽपि महत्तमम्॥ २५
उर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमुमापतिम्।
सहस्रशिरसं देवं सहस्राक्षं सनातनम्॥ २६
सहस्रहस्तचरणं नादान्तं नादविग्रहम्।
खद्योतसदृशाकारं चन्द्ररेखाकृतिं प्रभुम्॥ २७
द्वादशान्ते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रमात्।
हृद्देशेऽवस्थितं देवं स्वानन्दममृतं शिवम्॥ २८

कवचाय नमः—इस मन्त्रसे वायव्यकोणके दलमें न्यास करना चाहिये। **अग्निशिखाभाय अस्त्राय नमः**—इस मन्त्रसे [ऊर्ध्व आदि] दिशाओंमें न्यास करना चाहिये और **पिङ्गलेभ्यो नेत्रेभ्यो नमः**—इस मन्त्रसे ईशान दिशामें न्यास करना चाहिये। तदनन्तर शिव सदाशिव देव महेश्वर रुद्र, विष्णु और विरिंचि (ब्रह्मा)-की सृष्टिके सृजन, पालन और संहारके क्रमसे भावना करनी चाहिये॥ १२—१५॥

शिवाय रुद्ररूपाय शान्त्यतीताय शम्भवे। शान्ताय शान्तदैत्याय नमश्चन्द्रमसे तथा॥ वेद्याय विद्याधाराय वह्नये वह्निवर्चसे। कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायान्तकाय च॥ निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च—इन [पाँच] मन्त्रोंसे ईशानरूप मुकुट, तत्पुरुषरूप मुख, अघोररूप हृदय, वामदेवरूप गुह्यदेश तथा सद्योजातरूप सम्पूर्ण विग्रहवाले, सत्-असत्की अभिव्यक्तिके कारणभूत, पुरातन, प्रसन्न तथा आकाश आदि पंचमहाभूतके विग्रहवाले महेश्वर सदाशिवका स्मरण करना चाहिये, जो पाँच मुख तथा दस भुजाओंसे सुशोभित और अड़तीस कलाओंवाले हैं। कलामय सद्योजातका आठ प्रकारसे विभाग करके, महाप्रभु वामदेवका तेरह भेदोंसे विभाग करके, कलारूपमें स्थित अघोरका आठ प्रकारसे विभाग करके, कलामय तत्पुरुषका चार प्रकारसे विभाग करके और पाँच मूर्तियोंमें व्यवस्थित ईशानका पाँच प्रकारसे विभाग करके उनका ध्यान करना चाहिये। **हंसहंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्**—इस हंसगायत्रीमन्त्रसे शिवभक्तिसे युक्त, ब्रह्मरूप, प्रणवरूप, अकाररूप, ब्रह्मतुल्यरूपवाले, आ-ई-ऊ-ए अर्थात् क्रमसे देवी-गणेश-सूर्य-विष्णुस्वरूप, प्रकृतियुक्त, उत्पत्ति-प्रलयसे रहित, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अजन्मा, महान्से भी महान्, ऊर्ध्वरेता, विरूपाक्ष, उमापति, हजार सिरोंवाले, हजार नेत्रोंवाले, हजार हाथ तथा चरणोंवाले, सनातन, नादान्त (प्रणवरूप), नादप्रतिपाद्य विग्रहवाले, सूर्यके समान आकारवाले, चन्द्ररेखासे युक्त विग्रहवाले, मूर्धा-भ्रूमध्य-तालुमध्य-कण्ठ तथा हृदयमें क्रमसे विराजमान, अपने आनन्दमें मग्न, अमृतस्वरूप,

विद्युद्वलयसङ्काशं विद्युत्कोटिसमप्रभम्।
श्यामं रक्तं कलाकारं शक्तित्रयकृतासनम्॥ २९

सदाशिवं स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम्।
विद्यामूर्तिमयं देवं पूजयेच्च यथाक्रमात्॥ ३०

लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान् पूजयेत्पृथक्।
चरुं च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत्॥ ३१

अर्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्धेन तु होमयेत्।
अघोरेणाथ शिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम्॥ ३२

उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुषं विधिना यजेत्।
पञ्चगव्यं ततः प्राश्य ईशानेनाभिमन्त्रितम्॥ ३३

वामदेवेन भस्माङ्गी भस्मनोद्धूलयेत्क्रमात्।
कर्णयोश्च जपेद्देवीं गायत्रीं रुद्रदेवताम्॥ ३४

ससूत्रं सपिधानं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम्।
तत्पूर्वं हेमरत्नौघैर्वासितं वै हिरण्मयम्॥ ३५

कलशान् विन्यसेत्पञ्च पञ्चभिर्ब्राह्मणैस्ततः।
होमं च चरुणा कुर्याद्यथाविभवविस्तरम्॥ ३६

शिष्यं च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मण्डलस्य तु।
दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम्॥ ३७

अघोरेण यथान्यायमष्टोत्तरशतं पुनः।
घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम्॥ ३८

एवं चोपोषितं शिष्यं स्नातं भूषितविग्रहम्।
नववस्त्रोत्तरीयं च सोष्णीषं कृतमङ्गलम्॥ ३९

दुकूलाद्येन वस्त्रेण नेत्रं बद्ध्वा प्रवेशयेत्।
सुवर्णपुष्पसम्मिश्रं यथाविभवविस्तरम्॥ ४०

ईशानेन च मन्त्रेण कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं प्रभोः।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः॥ ४१

कल्याणकारी, विद्युद्वलयसदृश, करोड़ों विद्युत्के समान प्रभावाले, श्यामरक्त वर्णवाले, गम्भीर आकारवाले, शक्तित्रय (तीनों शक्तियों)-पर विराजमान तीन तत्त्वोंसे युक्त तथा विद्यामूर्ति-स्वरूप भगवान् सदाशिव ईशानका इस प्रकार स्मरण करना चाहिये और यथाक्रमसे उनका पूजन करना चाहिये॥ १६—३०॥

तत्पश्चात् पूर्व आदि दिशाओंसे सम्बन्धित [इन्द्र आदि] लोकपालोंका अस्त्रमन्त्रसे अलग-अलग पूजन करना चाहिये। इसके बाद विधिपूर्वक चरु बनाकर उसका आधा भाग शिवको अर्पित करना चाहिये। शिवको निवेदित करनेके बाद शेष चरुके आधे भागसे हवन कर देना चाहिये। तदनन्तर बचे हुए उत्तम चरुको अघोर मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके भक्षण करनेके लिये शिष्यको दिलाना चाहिये॥ ३१-३२॥

चरुका भक्षण करनेके अनन्तर आचमन करके शुद्ध होकर शिष्यको विधिपूर्वक तत्पुरुषका यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् ईशान मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये गये पंचगव्यका प्राशन करके वामदेवमन्त्रसे सर्वांगमें भस्म धारण करना चाहिये, गुरुको शिष्यके दोनों कानोंमें रुद्रदैवत्य गायत्री (रुद्रगायत्री)-का जप करना चाहिये। होमके पूर्व सूत्रयुक्त, आच्छादनयुक्त, दो वस्त्रोंसे घिरा हुआ तथा हेमरत्नोंसे अधिवासित जो सुवर्णमय अधिवासनमण्डल है, उसमें पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे पाँच कलशोंका स्थापन करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने सामर्थ्यके अनुसार चरुसे होम करना चाहिये॥ ३३—३६॥

इसके बाद शिवध्यानपरायण भक्त शिष्यको मण्डलके दक्षिण भागमें कुशकी शैय्यापर शयन कराना चाहिये। पुनः प्रातःकाल होनेपर अघोरमन्त्रसे विधिपूर्वक घृतकी एक सौ आठ आहुति देकर दुःस्वप्नरूप मलका शोधन करे। इस प्रकार व्रती शिष्यको स्नान कराकर उसके शरीरको भूषित करके, उसे नवीन वस्त्र, उत्तरीय तथा पगड़ी धारण कराकर और उससे समस्त मंगलकृत्य सम्पन्न कराकर दुपट्टा आदिसे उसके नेत्रको बाँधकर उसे मण्डलमें प्रवेश कराये। शिष्य अपने धनसामर्थ्यके अनुसार सुवर्णयुक्त पुष्प अंजलिमें लेकर ईशानमन्त्रसे

केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायणः।
ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने सङ्क्षिपेत्स्वयम्॥ ४२

यस्मिन् मन्त्रे पतेत्पुष्पं तन्मन्त्रस्तस्य सिध्यति।
शिवाम्भसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना॥ ४३

शिष्यमूर्धनि विन्यस्य गन्धाद्यैः शिष्यमर्चयेत्।
वारुणं परमं श्रेष्ठं द्वारं वै सर्ववर्णिनाम्॥ ४४

क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम्।
नेत्रावरणमुन्मुच्य मण्डलं दर्शयेत्ततः॥ ४५

कुशासने तु संस्थाप्य दक्षिणामूर्तिमास्थितः।
तत्त्वशुद्धिं ततः कुर्यात्पञ्चतत्त्वप्रकारतः॥ ४६

निवृत्त्या रुद्रपर्यन्तमण्डमण्डोद्भवात्मज।
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं च यावदव्यक्तगोचरम्॥ ४७

विश्वेश्वरान्तं वै विद्या कलामात्रेण सुव्रत।
तदूर्ध्वमार्गं संशोध्य शिवभक्त्या शिवं नयेत्॥ ४८

समर्चनाय तत्त्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै।
तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा॥ ४९

होमयेदङ्गमन्त्रेण शान्त्यतीतं सदाशिवम्।
सद्यादिभिस्तु शान्त्यन्तं चतुर्भिः कलया पृथक्॥ ५०

शान्त्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ईशानेनाथवा पुनः।
प्रत्येकमष्टोत्तरशतं दिशाहोमं तु कारयेत्॥ ५१

ईशान्यां पञ्चमेनाथ प्रधानं परिगीयते।
समिदाज्यचरूल्लाँजान् सर्षपांश्च यवांस्तिलान्॥ ५२

द्रव्याणि सप्त होतव्यं स्वाहान्तं प्रणवादिकम्।
तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र ईशानेन विधीयते॥ ५३

सहंसेन यथान्यायं प्रणवाद्येन सुव्रत।
अघोरेण च मन्त्रेण प्रायश्चित्तं विधीयते॥ ५४

प्रभुको पुष्पांजलि अर्पित करे और पुनः रुद्राध्याय अथवा केवल प्रणवका उच्चारण करता हुआ शिवके ध्यानमें लीन होकर मण्डलकी तीन प्रदक्षिणा करके देवदेवेशका ध्यान करके पुष्पको ईशान दिशामें स्वयं प्रक्षिप्त कर दे। पुष्प जिस मन्त्रपर गिरे, वही मन्त्र उसके लिये सिद्ध हो जाता है। तदनन्तर मंगल जल तथा अघोरमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मसे शिष्यका स्पर्श करके शिष्यके सिरपर अपना हाथ रखकर गुरुको गन्ध आदि उपचारोंसे शिष्यका पूजन करना चाहिये॥ ३७—४३१/२॥

वरुणसम्बन्धी पश्चिम द्वार प्रवेशके लिये सभी वर्णोंके लिये श्रेष्ठ है और यह विशेष रूपसे क्षत्रियोंके लिये अत्युत्तम कहा गया है। प्रवेशके अनन्तर शिष्यके नेत्रका वस्त्रावरण हटाकर उसे मण्डल दिखाना चाहिये। इसके बाद शिष्यको कुशासनपर बैठाकर दक्षिणामूर्ति शिवका आश्रय लेकर पंचतत्त्वप्रकारसे तत्त्वशुद्धि करनी चाहिये। हे सनत्कुमार! हे सुव्रत! क्रमसे पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंसे लेकर अहंकारपर्यन्त अण्डकी निवृत्तिसे, उस अहंकारसे भी ऊपर अव्यक्तगोचर प्रकृतिपर्यन्त स्थितिके द्वारा तथा ज्ञानकलासे पुरुषतकका ज्ञान करके उससे भी ऊपर परम शिवकी प्राप्तिके मार्गको शिवभक्तिके द्वारा आवरणरहित करके शिष्यको तुरीय शिवतक पहुँचा दे। तत्पश्चात् उन योगेश्वर तत्त्वरूप शिवके समर्चनके लिये प्रकृति, पुरुष, ईश्वर—इन तत्त्वत्रय अथवा अहंकार आदि चार तत्त्वोंके क्रमसे शान्त्यतीत कलामें स्थित सदाशिवके निमित्त ईशानमन्त्रसे होम कर दे, साथ ही पृथक् गणनासे सद्योजात आदि चार मन्त्रोंके द्वारा शान्त्यन्त शिवके लिये होम कर दे; हे मुनिश्रेष्ठ! इसके बाद ईशानमन्त्रसे परम शिवको एक सौ आठ आहुति देकर ऋत्विजोंके द्वारा एक सौ आठ आहुतिसे दिग्देवताहोम कराना चाहिये॥ ४४—५१॥

ईशान दिशामें पाँचवें ईशानमन्त्रसे किया गया याग प्रधान याग कहा जाता है। मन्त्रके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें स्वाहा लगाकर समिधा, घृत, चरु, लाजा (लावा), सरसों, यव, तिल—इन सात द्रव्योंका हवन करना चाहिये। हे विप्र! उनकी पूर्णाहुति ईशानमन्त्रसे की जाती है। हे सुव्रत! प्रणवयुक्त हंसगायत्रीमन्त्रसहित

जयादिस्विष्टपर्यन्तमग्निकार्यं क्रमेण तु।
गुणसंख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत्॥ ५५

भूतानि ब्रह्मभिर्वापि मौनी बीजादिभिस्तथा।
अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौ नियम्य च॥ ५६

षष्ठेन भेदयेदात्मप्रणवान्तं कुलाकुलम्।
अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माणं केशवं हरम्॥ ५७

रुद्रे रुद्रं तमीशाने शिवे देवं महेश्वरम्।
तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद्भवनाशनम्॥ ५८

स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडनं द्वारदर्शनम्।
दीपनं ग्रहणं चैव बन्धनं पूजया सह॥ ५९

अमृतीकरणं चैव कारयेद्विधिपूर्वकम्।
षष्ठान्तं सद्यसंयुक्तं तृतीयेन समन्वितम्॥ ६०

फडन्तं संहृतिः प्रोक्ता पञ्चभूतप्रकारतः।
सद्याद्यषष्ठसहितं शिखान्तं सफडन्तकम्॥ ६१

ताडनं कथितं द्वारं तत्त्वानामपि योगिनः।
प्रधानं सम्पुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम्॥ ६२

आद्येन सम्पुटीकृत्य प्रधानं ग्रहणं स्मृतम्।
प्रधानं प्रथमेनैव सम्पुटीकृत्य पूर्ववत्॥ ६३

बन्धनं परिपूर्णेन प्लावनं चामृतेन च।
शान्त्यतीता ततः शान्तिर्विद्या नाम कलामला॥ ६४

प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासङ्क्रमणं स्मृता।
तत्त्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम्॥ ६५

मन्त्रैः पादैः स्तवं कुर्याद्विशोध्य च यथाविधि।
आद्येन योनिबीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत्॥ ६६

अघोरमन्त्रसे विधिपूर्वक प्रायश्चित्त किया जाता है। जया, अभ्यातान आदिसे लेकर स्विष्टकृत्-होमपर्यन्त अग्निकार्यको तीन प्रकारसे पूर्वोक्त प्रधान होमके साथ युक्त कर देना चाहिये॥ ५२—५५॥

तत्पश्चात् गुरुको चाहिये कि मौन होकर बीजस्वरूप [सद्योजात आदि] वेदमन्त्रोंसे पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंका तथा केवल ईशानमन्त्रसे प्राण-अपान वायुका निरोध करके छठे **'नमो हिरण्यबाहवे०'** इस मन्त्रसे आत्मवाचक प्रणवके अन्तरूप नादसमुदायसे व्याप्त ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करे। तत्पश्चात् ब्रह्मा, केशव तथा रुद्रको अन्योन्य रूपसे उपसंहत करके अर्थात् ब्रह्माको केशवमें, केशवको हरमें विलीन करके संहारमूर्ति हरको रुद्रमें, उन रुद्रको ईशानमें और उन महेश्वर ईशानको शिवमें उपसंहृत करके पुनः सृष्टिक्रमसे भवनाशक रुद्रका चिन्तन करे॥ ५६—५८॥

इसके बाद शिष्यके जीवको रुद्रमें स्थापित करके ताड़न, द्वारदर्शन, दीपन, ग्रहण, पूजासहित बन्धन और अमृतीकरण विधिपूर्वक कराना चाहिये। अघोरमन्त्रके आदिमें सद्योजातमन्त्र और अन्तमें षष्ठ मन्त्र—**'नमो हिरण्यबाहवे०'** तथा सबके अन्तमें 'फट्' शब्द प्रयुक्त करके पृथ्वी आदि पंचभूतोंके प्रकारसे संहृति कही गयी है। सद्योजात आदिमें, इसके बाद **'नमो हिरण्यबाहवे०'** और पुनः अन्तमें 'शिखा' तथा 'फट्' लगा हुआ मन्त्र दीक्षायोगीके लिये ताड़न तथा तत्त्वोंका द्वारदर्शन कहा गया है; अघोरमन्त्रसे सम्पुटित करके प्रधान ईशानमन्त्रको 'दीपन' कहा गया है। सद्योजातमन्त्रसे सम्पुटित करके ईशानमन्त्रको ग्रहण तथा उसी ग्रहणकी ही तरह सद्योजात मन्त्रसे सम्पुटित करके ईशानमन्त्रको बन्धन भी कहा गया है और समग्र त्रियम्बकमन्त्रसे प्लावन अर्थात् अमृतीकरण बताया गया है॥ ५९—६३ $^{1}/_{2}$॥

शान्त्यतीता, प्रतिष्ठा, अमला, विद्या, शान्ति तथा निवृत्ति—ये कलाएँ कही गयी हैं। इनका यथाक्रम परस्पर संक्रमण करके तत्त्व, वर्ण, कला, भुवन, मन्त्र और पद—इन षडध्वोंका शोधन करके और पुनः प्रणव तथा योनिबीज (ह्रीं)-से सम्पुटित करके शिवप्रतिपादक

पूजासम्प्रोक्षणं विद्धि ताडनं हरणं तथा।
संहतस्य च संयोगं विक्षेपं च यथाक्रमम्॥ ६७

अर्चना च तथा गर्भधारणं जननं पुनः।
अधिकारो भवेद्भानोर्लयश्चैव विशेषतः॥ ६८

उत्तमाद्यं तथान्त्येन योनिबीजेन सुव्रत।
उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने॥ ६९

अघोरेण फडन्तेन संसृतिश्च न संशयः।
प्रतितत्त्वं क्रमो ह्येष योगमार्गेण सुव्रत॥ ७०

मुष्टिना चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात्।
विषुवेण तु योगेन निवृत्त्यादि शिवान्तिकम्॥ ७१

एकत्र समतां याति नान्यथा तु पृथक् पृथक्।
नासाग्रे द्वादशान्तेन पृष्ठेन सह योगिनाम्॥ ७२

क्षन्तव्यमिति विप्रेन्द्र देवदेवस्य शासनम्।
हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च॥ ७३

सकूर्चेन सवस्त्रेण तन्तुना वेष्टितेन च।
तीर्थाम्बुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत॥ ७४

संहितामन्त्रितेनैव रुद्राध्यायस्तुतेन च।
सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तं च धार्मिकम्॥ ७५

सोऽपि शिष्यः शिवस्याग्रे गुरोरग्रे च सादरम्।
वह्नेश्च दीक्षां कुर्वीत दीक्षितश्च तथाचरेत्॥ ७६

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद्भगवन्तं सदाशिवम्॥ ७७

मन्त्रोंके द्वारा यथाविधि अर्थका विचार करके स्तवन करना चाहिये॥ ६४—६६॥

पूजासम्प्रोक्षण, ताड़न, हरण, अत्यन्त शुद्ध मनका संयोग, यथाक्रम विक्षेप, अर्चना, गर्भधारण (वागीशीके गर्भमें स्थापन), पुनर्जनन, भानुका अधिकार अर्थात् तत्सदृश ज्ञानका निवारक रूप और विशेषरूपसे अविद्याका नाश होता है—ऐसा जानिये॥ ६७-६८॥

हे सुव्रत! हे महामुने! उद्धार, प्रोक्षण तथा ताड़नमें प्रारम्भमें उत्तम ईशानमन्त्र और इसके अन्तमें योनिबीजके साथ मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये और अन्तमें 'फट्'-से युक्त अघोरमन्त्रके द्वारा संसृति होती है; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! प्रत्येक तत्त्वके लिये योगमार्गके द्वारा यही क्रम निर्धारित है॥ ६९-७०॥

जबतक मुष्टिसदृश प्राणायाममें स्थित रहे, उतने कालको विषुवयोगके द्वारा क्रमसे निवृत्तिकलासे लेकर शिवाकलापर्यन्त व्यतीत करे। साधक नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिर करके योगियोंके चरमावयवभूत मन्त्रसे द्वादशान्त (परम तत्त्व शिव)-के साथ समताको प्राप्त होता है; पृथक्-पृथक् स्थानोंपर दृष्टि रखनेसे नहीं। हे विप्रेन्द्र! दीक्षितको सुख-दुःख आदि द्वन्द्वसमूहोंको सहना चाहिये—ऐसा देवदेव शिवका आदेश है॥ ७१-७२$^1/_2$॥

हे सुव्रत! सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे आदि धातुओंसे निर्मित, कूर्चयुक्त, वस्त्र तथा तन्तुसे वेष्टित, तीर्थजलसे परिपूर्ण, रत्नप्रक्षिप्त, संहिता मन्त्रसे अभिमन्त्रित, रुद्राध्यायसे स्तुत कलशके जलसे पवमान आदि मन्त्रोंके द्वारा धार्मिक शिवभक्त शिष्यका अभिषेक करना चाहिये॥ ७३—७५॥

वह [अभिषिक्त] शिष्य भी शिव, गुरु तथा अग्निके समक्ष आदरपूर्वक दीक्षा ग्रहण करे और दीक्षित होकर बताये जानेवाले नियमोंका पालन करे। चाहे प्राण चला जाय अथवा सिर कट जाय, किंतु भगवान् सदाशिवका पूजन किये बिना भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार दीक्षा प्राप्त करनी चाहिये और यथाविधि शिवपूजन करना चाहिये। तीनों कालोंमें

एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चैव यथाक्रमम्।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥ ७८

(प्रातः, मध्याह्न, सायं) अथवा एक ही समय परमेश्वर शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ७६—७८॥

अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः॥ ७९

सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति।
सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेच्छिवम्॥ ८०

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा।
येऽर्चयन्ति महादेवं ते रुद्रा नात्र संशयः॥ ८१

नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्।
नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात्॥ ८२

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः।
शिवार्चनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्रदः॥ ८३

अग्निहोत्र, समस्त वेद तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ—ये सब शिवलिङ्गके अर्चनकी कलाके अंशके भी तुल्य नहीं हैं। जो एक बार शिवका अर्चन कर लेता है, वह मानो सदा यज्ञ करता है, सदा दान देता है और सदा वायुभक्षणरूप तपस्या करता है। जो लोग प्रतिदिन एक काल, दोनों कालों अथवा तीनों कालोंमें महादेवका पूजन करते हैं, वे रुद्ररूप ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो रुद्ररूप नहीं है; उसे रुद्रका स्पर्श नहीं करना चाहिये; जो रुद्ररूप नहीं है, उसे रुद्रकी पूजा नहीं करनी चाहिये और जो रुद्ररूप नहीं है, उसे रुद्रका नामकीर्तन नहीं करना चाहिये। जो रुद्ररूप नहीं है, वह रुद्रको नहीं प्राप्त कर सकता। [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने [आपसे] संक्षेपमें शिवकी पूजाके लिये अधिकारी होने तथा उसकी विधिका क्रम कह दिया, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ ७९—८३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे दीक्षाविधिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'दीक्षाविधि' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शिवदीक्षा-प्रकरणमें सौरस्नानविधि तथा भास्करार्चाका वर्णन

शैलादिरुवाच

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च।
शिवस्नानं ततः कुर्याद्भस्मस्नानं शिवार्चनम्॥ १

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] सूर्यस्नान-याग आदि कर्म करके ही शिवस्नान तदनन्तर भस्मस्नान और शिवार्चन करना चाहिये॥ १॥

षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत्॥ २

चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः॥ ३

त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्।
दशवारं च षष्ठेन दिशो बन्धः प्रकीर्तितः॥ ४

छठे मन्त्र (ॐ तपः)-से मृत्तिका लेकर भक्तिपूर्वक भूमिपर स्थापित करे, दूसरे मन्त्र (ॐ भुवः)-से जलसे अभ्युक्षण करके तीसरे मन्त्र (ॐ स्वः)-से उसका शोधन करे। तत्पश्चात् चौथे मन्त्र (ॐ महः)-से मृत्तिकाका भाग करे और प्रथम मन्त्र (ॐ भूः)-से शरीरके मलका शोधन करे। तब छठे मन्त्र (ॐ तपः)-से स्नान करके पुनः शेष मृत्तिकाको हाथमें लेकर (ॐ भूः) आदि चारों मन्त्रोंसे उसके तीन भाग करके पुनः मध्य भागको छठें मन्त्रसे सात बार

वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च।
स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्॥ ५

शृङ्गेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा।
सौरैरेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः॥ ६

सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः॥ ७

ॐभूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म
नवाक्षरमयं मन्त्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम्॥ ८

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥ ९

मूलमन्त्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः।
नवाक्षरेण दीप्तास्यं मूलमन्त्रेण भास्करम्॥ १०

पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि यथाक्रमम्।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम्॥ ११

ॐ भूः ब्रह्महृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐ स्वः रुद्रशिखायै ॐ भूर्भुवः स्वःज्वालामालिनीशिखायै ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्।

मन्त्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च।
एतैः शृङ्गादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत्॥ १२

ताम्रकुम्भेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च।
सकुशेन सपुष्पेण मन्त्रैः सर्वैः समाहितः॥ १३

रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम्।
सूर्यश्चेति दिवारात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः॥ १४

अभिमन्त्रित करके मूल मन्त्रसे बायें हाथका स्पर्श करे। दस बार छठे मन्त्रके उच्चारणसे दिग्बन्ध करना बताया गया है॥ २—४॥

बायें हाथसे तीर्थ (जल)-का स्पर्श करके दायें हाथसे शरीरका अनुलेप करके सभी मन्त्रोंसे पुनः स्नान करनेके बाद सूर्यका स्मरण करते हुए शृंगसे, पत्तोंकी दोनियोंसे अथवा पलाशके पत्तेसे समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले तथा मंगलकारी विविध सौरमन्त्रोंसे अभिषेक करना चाहिये। हे सुव्रत! अब मैं सभी देवमन्त्रोंमें सारस्वरूप सूर्यसम्बन्धी बाष्कल आदि तथा अंगमन्त्रोंको सम्यक् प्रकारसे बताऊँगा॥ ५—७॥

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म—यह नवाक्षरमय मन्त्र बाष्कल मन्त्र कहा गया है। भूः आदि सातों लोक प्रलयपर्यन्त नष्ट नहीं होते, अतः उन्हें ऋत [अक्षर] कहा जाता है। सत्य (ब्रह्म) अक्षर (नाशशून्य) है, इस प्रकार प्रणवादि नमःपर्यन्त बाष्कल मन्त्र है॥ ८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥ धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः—यह मन्त्र परमात्मा सूर्यका मूल मन्त्र कहा गया है। नवाक्षर मन्त्रसे तथा मूल मन्त्रसे तेजोमुख सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। अब मैं क्रमसे अंगमन्त्र बता रहा हूँ। अंगमन्त्र आदिमें प्रणव तथा मध्यमें व्याहृतियोंसे युक्त है। **ॐ भूः ब्रह्महृदयाय, ॐ भुवः विष्णुशिरसे, ॐ स्वः रुद्रशिखायै, ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनीशिखायै, ॐ महः महेश्वराय कवचाय, ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः, ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्**—ये विविध सौरमन्त्र कहे गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यको समाहित होकर शृंग आदि पात्रोंसे अथवा कुश तथा पुष्पयुक्त ताम्रकुम्भसे इन सभी मन्त्रोंके द्वारा अपना अभिषेक करना चाहिये॥ ९—१३॥

इसके बाद श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि रक्तवर्णका

आपः पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते।
षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम्॥ १५

वौषडन्तं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम्।
करशाखां तथाङ्गुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत्॥ १६

तले च तर्जन्यङ्गुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत्।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाङ्गैरपि पावितम्॥ १७

सूर्योऽहमिति सञ्चिन्त्य मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्।
वामहस्तगतैरद्भिर्गन्धसिद्धार्थकान्वितैः ॥ १८

कुशपुञ्जेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधा स्थितैः।
आपो हिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम्॥ १९

वामनासापुटेनैव देहे सम्भावयेच्छिवम्।
अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च॥ २०

कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्।
तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः॥ २१

भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत्।
व्यापिनीं च परां ज्योत्स्नां सन्ध्यां सम्यगुपासयेत्॥ २२

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत्।
रक्तचन्दनतोयेन हस्तमात्रेण मण्डलम्॥ २३

सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रं च सगन्धं प्रस्थपूरितम्॥ २४

पूरयेद्गन्धतोयेन रक्तचन्दनकेन च।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥ २५

दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च।
आपूर्य मूलमन्त्रेण नवाक्षरमयेन च।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च॥ २६

वस्त्र धारणकर प्रातःकाल **'सूर्यश्च०'**[१] इस मन्त्रसे, सायंकाल **'अग्निश्च०'**[२]—इस मन्त्रसे और मध्याह्नमें **'आपः पुनन्तु०'**[३]—इस मन्त्रसे विधिपूर्वक आचमन करे, यह आचमनका मन्त्र कहा जाता है। छठे मन्त्र **(ॐ तपः)** इस मन्त्रसे शुद्धि करके ही अतिश्रेष्ठ आद्य वौषडन्त मूलमन्त्रका तथा अनुत्तम नवाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये॥ १४-१५$^1/_2$॥

अंगुष्ठ, मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठिकाका न्यास करे और तर्जनीमें अंगुष्ठका न्यास करे एवं करतल तथा करपृष्ठमें न्यास करे। इस प्रकार पवित्र देहको अंगमन्त्रोंके द्वारा नवाक्षरमय करके 'मैं सूर्य हूँ'—ऐसी भावनाकर यथाक्रम इन मन्त्रोंसे तथा **'आपो हि ष्ठा०'** आदि मन्त्रोंके द्वारा बायें हाथपर स्थित गन्ध-श्वेतसर्षपयुक्त जलसे मूल तथा अग्रभागसहित आठ कुशाके कूर्चसे अपनी देहपर मार्जन करके शेष जल बायें नासापुटसे सूँघकर अपने शरीरमें शिवकी भावना करनी चाहिये। आघ्राण जल (सूँघनेवाले जल)-को अन्तस्थ काले रंगके पापपुरुषके साथ बायें नासिकाछिद्रसे बाहर निकालकर शिलातलपर गिरा हुआ अनुभव करे। तदनन्तर सभी देवताओं, ऋषियों, भूतगणों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। इसके बाद प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालव्यापिनी परा, ज्योत्स्ना, सन्ध्याकी उपासना करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। हे श्रेष्ठ द्विजो! रक्तचन्दनके जलसे भूमिपर एक हाथ मापका सुन्दर तथा वृत्ताकार मण्डल बनाना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर प्रस्थ (सेरभर) परिमाणवाले गन्धयुक्त जलसे पूर्ण होनेवाले ताम्रपात्रको नवाक्षरमय मूलमन्त्रसे गन्धयुक्त जलसे पूर्ण करे और उसे रक्तचन्दन, रक्तपुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग, पंचगव्य अथवा केवल गोघृतसे भरकर दोनों

१. ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २५)

२. ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २४)

३. ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहः स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २३)

कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम्॥ २७

तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसम्मतम्।
दत्त्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियम्बकम्॥ २८

अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद्वै शिवस्नानं मन्त्रमात्रेण भेदितम्॥ २९

दन्तधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेशं वरुणं चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत्॥ ३०

बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं सङ्गृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च॥ ३१

मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत्करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्॥ ३२

अर्घ्यस्य सादनं चैव समासात्परिकीर्तितम्।
बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत्॥ ३३

रक्तपुष्पाणि सङ्गृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभाण्डं च वामतः॥ ३४

ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि॥ ३५

पूर्वोक्तेनाम्बुना सार्धं जलभाण्डे तथैव च।
अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम्॥ ३६

संहितामन्त्रितं कृत्वा सम्पूज्य प्रथमेन च।
तुरीयेणावगुण्ठ्यैव स्थापयेदात्मनोपरि॥ ३७

पाद्यमाचमनीयं च गन्धपुष्पसमन्वितम्।
अम्भसा शोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक्।
संहितां चैव विन्यस्य कवचेनावगुण्ठ्य च॥ ३८

अर्घ्याम्बुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः।
आदित्यं च जपेद्देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ३९

घुटने भूमिपर टेककर देवदेव सूर्यको नमस्कार करके उस ताम्रपात्रको सिरसे लगाकर मूलमन्त्रके द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। दस हजार अश्वमेधयज्ञ करनेपर जो फल बताया गया है, वह फल इस सर्वसम्मत सूर्यार्घ्य देनेसे प्राप्त हो जाता है। अर्घ्य प्रदान करके देवदेव त्रियम्बक शिवकी भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये; अथवा सूर्यका पूजन करके शिवयजनके लिये अग्निस्नान (भस्मस्नान) करना चाहिये। [शिवपूजाके लिये] पूर्वकी भाँति (सूर्यस्नानकी भाँति) शिवस्नान करना चाहिये, इसमें केवल मन्त्रकी भिन्नता है॥ १६—२९॥

सूर्यस्नान तथा शिवस्नानके पूर्व दन्तधावन कर लेना चाहिये। तीर्थमें स्नान करके विघ्नेश्वर गणेश, वरुण तथा गुरुकी अर्चना करनी चाहिये। पुनः तीर्थमें पद्मासन लगाकर तीर्थकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। इसके बाद तीर्थजल लेकर खड़ाऊ धारण करके जलसे सिक्त पवित्र मार्गसे पूजास्थानमें प्रवेशकर [आसनपर विधिवत् बैठकर] पूर्वकी भाँति करन्यास तथा देहन्यास करना चाहिये॥ ३०—३२॥

अर्घ्यस्थापन संक्षेपमें आगे बताया गया है। योगीको चाहिये कि पद्मासन लगाकर प्राणायाम करे॥ ३३॥

कमल आदि रक्तपुष्पोंका संग्रह करके अपने दक्षिणभागमें रखकर वामभागमें जलपात्र स्थापितकर सूर्यकी भावना करे। सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये सूर्यार्घ्य आदिमें ताम्रपात्र उपयोगी हैं। अर्घ्यपात्र लेकर विधिपूर्वक उसका प्रक्षालन करके पूर्वोक्त जलके साथ अर्घ्यद्रव्यसमन्वित अर्घ्यको अस्त्रोदक मन्त्रसे अन्य जलभाण्डमें प्रदान करे। संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित करके सद्योजात मन्त्रसे पूजन करके चतुर्थ मन्त्र (तत्पुरुषमन्त्र)-से अवगुण्ठनकर अपने ऊपर स्थापित करना चाहिये। जलसे शुद्ध किये गये पात्रमें गन्ध-पुष्पयुक्त पाद्य तथा आचमनीय जलको पूर्वकी भाँति पृथक्-पृथक् स्थापित करना चाहिये। संहितामन्त्रसे न्यास करके तथा कवचसे अवगुण्ठन करके अर्घ्यजलसे विशेषरूपसे सभी द्रव्योंका प्रोक्षण करके सभी देवताओंसे नमस्कार किये जानेवाले आदित्य देवका [इस प्रकार] जप करना चाहिये॥ ३४—३९॥

आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः॥ ४०

प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमान्तं हृदा न्यसेत्॥ ४१

अङ्गं प्रविन्यसेच्चैव बीजमङ्कुरमेव च।
नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकण्टकसंयुतम्॥ ४२

दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च।
कर्णिकाकेसरोपेतं दीप्ताद्यैः शक्तिभिर्वृतम्॥ ४३

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात्।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः॥ ४४

भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृताञ्जलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः॥ ४५

मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत्सर्वतोमुखीम्।
आवाहयेत्ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम्॥ ४६

नवाक्षरेण मन्त्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम्।
आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते॥ ४७

मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमनं पृथक्॥ ४८

पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचन्दनमेव च॥ ४९

दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च।
ताम्बूलवर्तिदीपाद्यं बाष्कलेन विधीयते॥ ५०

आग्नेय्यां च तथैशान्यां नैर्ऋत्यां वायुगोचरे।
पूर्वस्यां पश्चिमे चैव षट्प्रकारं विधीयते॥ ५१

नेत्रान्तं विधिनाभ्यर्च्य प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकध्यानमाचरेत्॥ ५२

सर्वे विद्युत्प्रभाः शान्ता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम्।
दंष्ट्राकरालवदनं ह्यष्टमूर्तिं भयङ्करम्॥ ५३

भगवान् सूर्य तेज, ऊर्जा, बल और यशकी वृद्धि करते हैं **(आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति)** इत्यादि यजुर्वेदश्रुति*से भगवान् सूर्यको नमस्कारकर उन्हें विशाल, स्वच्छ, श्रेष्ठ, प्रशस्त तथा अत्यन्त सुखदायक आसन प्रदान करना चाहिये। आग्नेय आदि चारों कोणोंमें मध्यसे अन्ततकको [महः, जनः, तपः, सत्यम्—इन चार] व्याहृतियोंका हृदयमें न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार पूर्वोक्त अंगन्यास भी करना चाहिये। तदनन्तर बीज, अंकुर, छिद्रसहित नाल, सूत्र-कण्टकमय दल, श्वेत-स्वर्णिम तथा रक्तवर्णके दलाग्र, कर्णिका-केसरसे समन्वित तथा दीप्ता आदि शक्तियोंसे युक्त कमलकी भावना करनी चाहिये। [कमलके आठों दलोंमें] दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अघोरा, विकृता—ये सब शुभ आठ शक्तियाँ सूर्यकी ओर मुख करके दोनों हाथ जोड़कर अथवा हाथोंमें कमल धारण करके सभी आभूषणोंसे भूषित होकर क्रमसे स्थित हैं—ऐसी भावना करे और उनके मध्यमें वरदायिनी भगवती गायत्रीको स्थापित करे। तदनन्तर देवीको तथा परमेश्वर भास्करको आवाहित करना चाहिये। भगवान् भास्करको बाष्कलोक्त नवाक्षरमन्त्रसे आवाहित करना चाहिये। आवाहनके समय सन्निधापन इसी मन्त्रसे किया जाता है। महात्मा भास्करको पद्म नामक मुद्रा दिखानी चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रके द्वारा पृथक्-पृथक् अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन प्रदान करना चाहिये॥ ४०—४८॥

इसके बाद पुनः बाष्कलमन्त्रसे अर्घ्यस्नान प्रदान करनेके साथ विधिके अनुसार रक्तकमल, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखवास (एला, लवंग आदि), ताम्बूल, आरती आदि प्रदान किये जाते हैं। तत्पश्चात् अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण, पूर्व तथा पश्चिम दिशामें छः प्रकारका यजन किया जाता है। आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः लगाकर अंगमन्त्रोंके द्वारा नेत्रपर्यन्त उन-उन अंगोंकी पूजा करके अपने हृदयकमलमें न्यास करके उनके प्रतिबिम्बका ध्यान करना चाहिये। उनके हृदय आदि

* यह मन्त्र कृष्ण यजुर्वेदके नारायणोपनिषद्में प्राप्त है।

वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना रक्तस्रगनुलेपना:॥ ५४

रक्ताम्बरधरा: सर्वा मूर्तयस्तस्य संस्थिता:।
समण्डलो महादेव: सिन्दूरारुणविग्रह:॥ ५५

पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयन: प्रभु:।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपन:॥ ५६

इत्थं रूपधरं ध्यायेद्भास्करं भुवनेश्वरम्।
पद्मबाह्ये शुभं चात्र मण्डलेषु समन्तत:॥ ५७

सोममङ्गारकं चैव बुधं बुद्धिमतां वरम्।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रं च भार्गवम्॥ ५८

शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम्।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक्॥ ५९

विवृत्तास्योऽञ्जलिं कृत्वा भृकुटीकुटिलेक्षण:।
शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक्॥ ६०

स्वै:स्वैर्भावै: स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
पूजनीया: प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥ ६१

सप्तसप्तगणांश्चैव बहिर्देवस्य पूजयेत्।
ऋषयो देवगन्धर्वा: पन्नगाप्सरसां गणा:॥ ६२

ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यत:।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छन्दोमयान् विभो:॥ ६३

बालखिल्यगणं चैव निर्माल्यग्रहणं विभो:।
पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत्॥ ६४

अर्घ्यं च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानत:।
आवाहने च पूजान्ते तेषामुद्वासने तथा॥ ६५

सभी अंग विद्युत्के समान कान्तिवाले तथा शान्त हैं, उनका अस्त्र रौद्र कहा गया है, बड़ी दाढ़ोंके कारण उनका मुख विकराल है, वे भयंकर आठ मूर्तियोंसे युक्त हैं, उनके दक्षिण हाथमें वरमुद्रा तथा बायें हाथमें पद्म सुशोभित है, समस्त आभरणोंसे सुशोभित, रक्तवर्णकी माला तथा रक्त अनुलेपसे युक्त तथा रक्तवस्त्र धारण किये उनकी सभी मूर्तियाँ (शक्तियाँ) उनके साथ विराजमान हैं। मण्डलसहित वे महादेव सिन्दूरके समान अरुण विग्रहवाले हैं, हाथमें कमल धारण किये हुए हैं, अमृतमय मुखमण्डलवाले हैं, दो हाथों तथा नेत्रोंसे सम्पन्न हैं, रक्त आभरणोंसे भूषित हैं तथा रक्तवर्णकी माला एवं अनुलेपसे सुशोभित हैं—इस प्रकारका रूप धारण किये हुए भुवनेश्वर भास्करका ध्यान करना चाहिये॥ ४९—५६$^{1}/_{2}$॥

कमलके बाह्य भागमें सभी ओर मण्डलोंमें शुभ चन्द्र, मंगल, बुध, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बृहस्पति, महान् बुद्धिवाले रुद्रपुत्र शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा धूम्रवर्ण कहे जानेवाले केतुका पूजन करना चाहिये। सभी दो नेत्रों एवं दो भुजाओंवाले हैं, राहु केवल ऊर्ध्व शरीर (सिर)-वाला है, वह मुख खोले हुए तथा टेढ़ी भौंहों और कुटिल दृष्टिवाला है, शनैश्चर भयंकर दाँतोंसे युक्त मुखवाला और हाथमें वरद तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं। इनके नामके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें नम: लगाकर धर्म, काम एवं अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ५७—६१॥

सूर्यदेवके मण्डलके बाहर उनचास मरुद्गणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। जो ऋषि, देव, गन्धर्व, नाग, अप्सराएँ, ग्रामणी, यातुधान (राक्षस) तथा यक्ष हैं, उनका भी पूजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यके वेदमय सात अश्वोंकी पूजा पहले करनी चाहिये। प्रभु सूर्यके निर्माल्यग्राही बालखिल्य ऋषिगणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। मूर्तिके आसन तथा देवताकी भी पूजा करनी चाहिये। उन सूर्य आदि देवताओंके आवाहनमें, पूजाके अन्तमें तथा विसर्जनके अन्तमें विधानके अनुसार पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ ६२—६५॥

सहस्त्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा।
बाष्कलं च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत्॥ ६६

कुण्डं च पश्चिमे कुर्याद्वर्तुलं चैव मेखलम्।
चतुरङ्गुलमानेन चोत्सेधाद्विस्तरादपि॥ ६७

एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुण्डे दशाङ्गुलम्॥ ६८

तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्।
गलमेकाङ्गुलं चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥ ६९

तत्प्रमाणेन कुण्डस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमं च कारयेत्॥ ७०

इसके बाद एक हजार, पाँच सौ अथवा एक सौ आठ बार बाष्कल मन्त्रका जप करना चाहिये और पुनः दशांश हवन करना चाहिये। [हवनके लिये] मण्डलके पश्चिमकी ओर वर्तुलाकार कुण्ड बनाना चाहिये और चार अंगुल मापकी ऊँचाई तथा चौड़ाईवाली मेखला बनानी चाहिये। नित्य एवं नैमित्तिक कर्ममें एक हाथ प्रमाणका कुण्ड उत्तम होता है। कुण्डमें अश्वत्थ (पीपल)-के पत्तेके आकारकी दस अँगुल परिमाणकी नाभि बनानी चाहिये; उसके आधे (पाँच अंगुल) प्रमाणवाला और हाथीके ओष्ठके सदृश आकारका कुण्डका अगला भाग (योनि) बताया गया है। एक अंगुल प्रमाणका नाल बनाना चाहिये तथा कुण्डके बाहर दो अँगुल भाग छोड़कर मेखला बनानी चाहिये। इस प्रकार यत्नपूर्वक कुण्ड बनाकर ही बादमें हवन करना चाहिये॥ ६६—७० ॥

षष्ठेनोल्लेखनं कुर्यात्प्रोक्षयेद्वारिणा पुनः।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥ ७१

प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्।
बाष्कलेनैव सम्पूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ७२

बाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रति यजेत्पृथक्।
मूलमन्त्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहुतिर्भवेत्॥ ७३

क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥ ७४

मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करं प्रभुम्।
दशैवाहुतयो देया बाष्कलेन महामुने॥ ७५

अङ्गानां च तथैकैकं संहिताभिः पृथक् पुनः।

छठे मन्त्रसे उल्लेखन करना चाहिये तथा जलसे कुण्डका प्रोक्षण करना चाहिये। तदनन्तर समाहित होकर प्रथम मन्त्रसे कुण्डके मध्यमें आसन कल्पित करना चाहिये और प्रथम मन्त्रसे ही प्रभावती [नामक] शक्तिकी स्थापना करनी चाहिये। क्रमसे गन्ध, पुष्प आदिसे बाष्कलमन्त्रके द्वारा ही विधिवत् पूजन करके, बाष्कलमन्त्रसे ही प्रत्येक क्रियाका पृथक् यजन करना चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रसे विधिपूर्वक पूर्णाहुति होनी चाहिये। क्रमशः इस विधानके द्वारा सूर्यरूपी अग्नि उत्पन्न हो, तब पहले कहे गये विधानके अनुसार अग्निमें पूर्वोक्त कमलका न्यास करना चाहिये। हे महामुने! उस कमलके मुखपर पूर्वकी भाँति प्रभु भास्करकी सम्यक् पूजा करके संहितामन्त्रोंसे एक-एक अंगोंके लिये बाष्कलमन्त्रके द्वारा पृथक्-पृथक् दस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये॥ ७१—७५½ ॥

जयादिस्विष्टपर्यन्तमिध्मप्रक्षेपमेव च॥ ७६

सामान्यं सर्वमार्गेषु पारम्पर्यक्रमेण च।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥ ७७

पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्घ्यं च प्रदक्षिणम्।
अङ्गैः सम्पूज्य सङ्क्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च॥ ७८

जयाहोमसे लेकर स्विष्टकृत्होमपर्यन्त पारम्पर्य क्रमसे सभी मार्गोंमें यज्ञकाष्ठका प्रक्षेप करना चाहिये। अमित आत्मावाले देवदेव भास्करको समस्त पूजा, होम आदिका समर्पण करके उन्हें अर्घ्य प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा करके अंगमन्त्रोंसे उनकी पूजाकर कर्मोंका

शिवपूजां ततः कुर्याद्धर्मकामार्थसिद्धये।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥ ७९

उपसंहार करके अपने हृदयकमलमें विसर्जन करके तथा नमस्कार करनेके अनन्तर धर्म-कामकी सिद्धिके लिये शिवपूजा करनी चाहिये। इस प्रकार संक्षेपमें सूर्यपूजन कहा गया॥ ७६—७९॥

यः सकृद्वा यजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम्।
भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥ ८०

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः।
सर्वैश्वर्यसमोपेतस्तेजसाप्रतिमश्च सः॥ ८१

पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बान्धवैश्च समन्ततः।
भुक्त्वैव विपुलान् भोगानिहैव धनधान्यवान्॥ ८२

यानवाहनसम्पन्नो भूषणैर्विविधैरपि।
कालं गतोऽपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम्॥ ८३

पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः।
वेदवेदाङ्गसम्पन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते॥ ८४

पुनः प्राग्वासनायोगाद्धार्मिको वेदपारगः।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात्॥ ८५

जो [मनुष्य] देवदेव जगद्गुरु परमात्मा भास्करका एक बार भी यजन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। वह पूर्णरूपसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, सभी पापोंसे रहित हो जाता है, सभी ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो जाता है और अप्रतिम तेजस्वी हो जाता है। वह पुत्र, पौत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धव, धन-धान्य, यान-वाहन, भूषण आदिसे सम्पन्न होकर इस लोकमें विपुल सुखोंका सम्यक् भोग करके मृत्युको प्राप्त होनेपर सूर्यके साथ अनन्त कालतक आनन्द प्राप्त करता है। पुनः वहाँसे इस लोकमें जन्म लेकर धार्मिक राजा होता है अथवा वेदवेदांगसे सम्पन्न ब्राह्मण होता है। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके दृढ़ संस्कारके कारण धर्मपरायण तथा वेदमें पारंगत वह मनुष्य भगवान् सूर्यकी ही भलीभाँति उपासना करके सूर्यसायुज्य प्राप्त करता है॥ ८०—८५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तत्त्वशुद्धिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'तत्त्वशुद्धिवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

हृदयदेशमें भगवान् शिवकी मानसपूजा एवं न्यासयोगका वर्णन

शैलादिरुवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि शिवार्चनमनुत्तमम्।
त्रिसन्ध्यमर्चयेदीशमग्निकार्यं च शक्तितः॥ १

शैलादि बोले—हे सनत्कुमार! अब मैं आपको अत्युत्तम शिव-पूजनकी विधि बताऊँगा। तीनों कालोंमें भगवान् महेश्वरका पूजन करना चाहिये और सामर्थ्यानुसार हवन भी करना चाहिये॥ १॥

शिवस्नानं पुरा कृत्वा तत्त्वशुद्धिं च पूर्ववत्।
पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्थानं समाहितः॥ २

प्राणायामत्रयं कृत्वा दाहनाप्लावनानि च।
गन्धादिवासितकरो महामुद्रां प्रविन्यसेत्॥ ३

सर्वप्रथम शिवस्नान करके पूर्वकी भाँति तत्त्वशुद्धि करे और हाथमें पुष्प आदि लेकर पूजास्थानमें प्रवेश करके समाहितचित्त हो तीन प्राणायाम करके दाहन, आप्लावन आदि शुद्धि करके गन्ध आदिसे हाथोंको सुगन्धित करके [योगशास्त्रमें कही गयी] महामुद्राकी रचना करनी चाहिये॥ २-३॥

विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्नेरपि यत्नतः।
अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रासम्भवां तनुम्॥ ४

अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार तथा पंचतन्मात्राओंसे

शिवामृतेन सम्पूतं शिवस्य च यथातथम्।
अधोनिष्ठ्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति॥ ५
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्।
हृत्पद्मकर्णिकायां तु देवं साक्षात्सदाशिवम्॥ ६
पञ्चवक्त्रं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम्।
प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रं च शशाङ्ककृतशेखरम्॥ ७
बद्धपद्मासनासीनं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
ऊर्ध्वं वक्त्रं सितं ध्यायेत्पूर्वं कुङ्कुमसन्निभम्॥ ८
नीलाभं दक्षिणं वक्त्रमतिरक्तं तथोत्तरम्।
गोक्षीरधवलं दिव्यं पश्चिमं परमेष्ठिनः॥ ९
शूलं परशुखड्गं च वज्रं शक्तिं च दक्षिणे।
वामे पाशाङ्कुशं घण्टां नागं नाराचमुत्तमम्॥ १०
वरदाभयहस्तं वा शेषं पूर्ववदेव तु।
सर्वाभरणसंयुक्तं चित्राम्बरधरं शिवम्॥ ११
ब्रह्माङ्गविग्रहं देवं सर्वदेवोत्तमोत्तमम्।
पूजयेत्सर्वभावेन ब्रह्माङ्गैर्ब्रह्मणः पतिम्॥ १२
उक्तानि पञ्च ब्रह्माणि शिवाङ्गानि शृणुष्व मे।
शक्तिभूतानि च तथा हृदयादीनि सुव्रत॥ १३
ॐ ईशानः सर्वविद्यानां हृदयाय शक्तिबीजाय नमः।
ॐ ईश्वरः सर्वभूतानाममृताय शिरसे नमः॥ १४
ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः।
ॐ ब्रह्मणोऽधिपतये कालचण्डमारुताय कवचाय नमः॥ १५
ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्तये नेत्राय नमः।
ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट् फट्॥ १६
ॐ सद्योजाताय भवे भवे नातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय शिवमूर्तये नमः। ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय परापराय शिवाय शिवतमाय नमः॥ १७
कथितानि शिवाङ्गानि मूर्तिविद्या च तस्य वै।
ब्रह्माङ्गमूर्तिं विद्याङ्गसहितां शिवशासने॥ १८

उत्पन्न शरीरको प्रयत्नपूर्वक शुद्ध ज्ञानसे तथा ज्ञानाग्निसे दग्ध करके कल्याणमय अमृतके द्वारा शिवके योग्य पवित्र देह बनाये। ग्रीवासे एक वितस्ति नीचे तथा नाभिसे एक वितस्ति ऊपर हृदयदेश विराजमान है, उसीको विश्वका महान् स्थान समझना चाहिये; उसी हृदयकमलकी कर्णिकामें साक्षात् भगवान् सदाशिवका ध्यान करना चाहिये। वे पाँच मुखों तथा दस भुजाओंसे युक्त हैं, सभी आभरणोंसे सुशोभित हैं, उन्होंने प्रत्येक मुखमें तीन नेत्र धारण कर रखा है, उनके मस्तकपर चन्द्रमा विराजमान है, वे बद्ध पद्मासन लगाकर बैठे हुए हैं, शुद्ध स्फटिकके समान उनका वर्ण है, उनका ऊर्ध्व मुख श्वेतवर्ण है, पूर्व मुख कुंकुमसदृश है, दक्षिण मुख नील आभावाला है और उत्तर मुख अत्यन्त रक्तवर्ण है। उन परमेष्ठी शिवका पश्चिम मुख गोदुग्धके समान धवल तथा दिव्य है। उन्होंने दाहिने हाथमें शूल, परशु, खड्ग, वज्र तथा शक्ति और बायें हाथमें पाश, अंकुश, घंटा, नाग तथा श्रेष्ठ नाराच धारण कर रखा है, वे समस्त आभरणोंसे समन्वित हैं, अद्भुत वस्त्र पहने हुए हैं और वरद तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए हैं—इस प्रकार सद्योजात आदि अंगविग्रहवाले, सभी देवताओंमें अतिश्रेष्ठ तथा ब्रह्माके पति भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये तथा [सद्योजातादि] ब्रह्ममन्त्रोंसे सम्यक् प्रकारसे उनका पूजन करना चाहिये॥ ४—१२॥

हे सुव्रत! पंचब्रह्म और शिवांग पहले ही कहे गये हैं; अब शक्तिभूत हृदय आदि मन्त्रोंको सुनिये। **ॐ ईशानः सर्वविद्यानां हृदयाय शक्तिबीजाय नमः। ॐ ईश्वरः सर्वभूतानाममृताय शिरसे नमः। ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः। ब्रह्मणोऽधिपतये कालचण्डमारुताय कवचाय नमः। ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्तये नेत्राय नमः। ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट् फट्। ॐ सद्योजाताय भवे भवे नातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय शिवमूर्तये नमः। ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय परापराय शिवाय शिवतमाय नमः**—ये शिवांगमन्त्र, उनके मूर्तिमन्त्र तथा विद्यामन्त्र

सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अङ्गानि सर्ववेदेषु सारभूतानि सुव्रत॥ १९
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।
नवाक्षरमयं मन्त्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकेऽस्मिंस्ततो ह्यक्षरमुच्यते।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोऽन्तकम्॥ २०
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥ २१
मूलमन्त्रमिति प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः।
नवाक्षरेण दीप्ताद्या मूलमन्त्रेण भास्करम्॥ २२
पूजयेदङ्गमन्त्राणि कथयामि समासतः।
वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन तु मध्यमम्॥ २३
ॐ भूः ब्रह्मणे हृदयाय नमः। ॐ भुवः विष्णवे शिरसे नमः। ॐ स्वः रुद्राय शिखायै नमः। ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिन्यै देवाय नमः। ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः। ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यो नमः। ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नमः।
एवं प्रसङ्गादेवेह सौराणि कथितानि ह।
शैवानि च समासेन न्यासयोगेन सुव्रत॥ २४
इत्थं मन्त्रमयं देवं पूजयेद्धृदयाम्बुजे।
नाभौ होमं तु कर्तव्यं जनयित्वा यथाक्रमम्॥ २५
मनसा सर्वकार्याणि शिवाग्नौ देवमीश्वरम्।
पञ्चब्रह्माङ्गसम्भूतं शिवमूर्तिं सदाशिवम्॥ २६
रक्तपद्मासनासीनं शकलीकृत्य यत्नतः।
मूलेन मूर्तिमन्त्रेण ब्रह्माङ्गाद्यैस्तु सुव्रत॥ २७
समिदाज्याहुतीर्हुत्वा मनसा चन्द्रमण्डलात्।
चन्द्रस्थानात्समुत्पन्नां पूर्णधारामनुस्मरेत्॥ २८
पूर्णाहुतिविधानेन ज्ञानिनां शिवशासने।
शिवं वक्त्रगतं ध्यायेत्तेजोमात्रं च शाङ्करम्॥ २९
ललाटे देवदेवेशं भ्रूमध्ये वा स्मरेत्पुनः।
यच्च हृत्कमले सर्वं समाप्य विधिविस्तरम्॥ ३०

कहे गये हैं। विद्यांगसहित ब्रह्मांग-मूर्तिको शिवशास्त्रमें विद्यमान जानना चाहिये। हे सुव्रत! सभी वेदोंके सारभूत सूर्यसम्बन्धी बाष्कल आदि तथा अंगमन्त्रोंको मैं [प्रसंगवश फिरसे] बताऊँगा॥ १३—१९॥

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म—यह नौ अक्षरोंवाला बाष्कलमन्त्र कहा गया है। चूँकि नष्ट नहीं होता, अतः इस लोकमें उसे अक्षर कहा जाता है। आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमःसे युक्त मन्त्रको सत्य तथा अक्षर कहा गया है। **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः**—यह महात्मा भास्करका मूलमन्त्र कहा गया है। नवाक्षरमन्त्रसे दीप्ता आदि शक्तियोंकी तथा मूलमन्त्रसे भास्करकी पूजा करनी चाहिये। अब संक्षेपमें अंगमन्त्र बता रहा हूँ। अंगमन्त्र आदिमें प्रणव तथा मध्यमें व्याहृतियोंसे युक्त है। **ॐ भूः ब्रह्मणे हृदयाय नमः, ॐ भुवः विष्णवे शिरसे नमः, ॐ स्वः रुद्राय शिखायै नमः, ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिन्यै देवाय नमः, ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः, ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यो नमः, ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नमः**। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने यहाँ प्रसंगवश संक्षेपमें न्यासयोगसे सौर तथा शैव मन्त्रोंको कह दिया॥ २०—२४॥

इस प्रकार हृदयकमलमें मन्त्रमय भगवान् शिवकी पूजा करे तथा नाभिस्थानमें यथाविधि अग्नि उत्पन्न करके होम करे; सभी कार्य मनसे ही सम्पन्न करना चाहिये। रक्तकमलके आसनपर बैठे हुए पंचब्रह्मांगसम्भूत कल्याणमूर्ति भगवान् सदाशिवको सकलीकृत करके यत्नपूर्वक मूलमन्त्र, मूर्तिमन्त्र, ब्रह्ममन्त्र और अंगमन्त्रोंसे शिवाग्निमें मनसे ही समिधा और घृतकी आहुति प्रदान करके ज्ञानियोंके लिये शिवशास्त्रमें कही गयी तथा चन्द्रमण्डलमें चन्द्रस्थानसे उत्पन्न अमृतधाराका पूर्णाहुतिके विधानसे स्मरण करना चाहिये। कल्याणकारी तेजोमय शिव मेरे मुखमें प्रविष्ट हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये। ललाटमें अथवा भ्रूमध्यस्थानमें उन देवदेवेश शिवका

शुद्धदीपशिखाकारं भावयेद्भवनाशनम्।

लिङ्गे च पूजयेद्देवं स्थण्डिले वा सदाशिवम्॥ ३१

स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक समस्त कृत्य सम्पन्न करके अपने हृदयकमलमें शुद्ध दीपशिखाके आकारवाले भवनाशक शिवकी भावना करनी चाहिये और शिवलिङ्ग अथवा स्थण्डिलमें प्रभु सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २५—३१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवार्चनविधिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवार्चनविधिवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

न्यास एवं तत्त्वशुद्धिपूर्वक विविध उपचारोंसे भगवान् सदाशिवका पूजन और शिवार्चाका माहात्म्य

शैलादिरुवाच

व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवेन कथितं पुरा॥ १

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] मैं शिवशास्त्रमें कही गयी रीतिसे शिवपूजा-विधिका वर्णन संक्षेपमें कर रहा हूँ, जिसे पूर्व कालमें स्वयं शिवजीने कहा था॥ १॥

अथोभौ चन्दनचर्चितौ हस्तौ वौषडन्तेनाद्यञ्जलिं कृत्वा मूर्तिविद्याशिवादीनि जप्त्वा अङ्गुष्ठादिकनिष्ठिकान्त ईशानाद्यं कनिष्ठिकादिमध्यमान्तं हृदयादितृतीयान्तं तुरीयमङ्गुष्ठेनानामिकया पञ्चमं तलद्वयेन षष्ठं तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां नाराचास्त्रप्रयोगेण पुनरपि मूलं जप्त्वा तुरीयेणावगुण्ठ्य शिवहस्तमित्युच्यते॥ २

शिवार्चना तेन हस्तेन कार्या॥ ३

[शिवस्नान और भस्मस्नानके पश्चात्] दोनों हाथोंको चन्दनसे चर्चित करके अन्तमें 'वौषट्' से युक्त मूलमन्त्रके द्वारा अंजलि बाँधकर मूर्ति, विद्या और अंगमन्त्रोंका जप करके अँगुष्ठसे कनिष्ठिकापर्यन्त ईशान आदि पाँच मन्त्रोंका न्यास करे। [न्यासक्रम इस प्रकार है—] पूर्वोक्त अंगमन्त्रोंमेंसे सद्योजातसे लेकर तीसरे अघोर मन्त्रोंका कनिष्ठिका, तर्जनी और मध्यमामें न्यास करे; चौथे मन्त्र (तत्पुरुषमन्त्र)-का अंगुष्ठमें और पाँचवें मन्त्रका अनामिकामें और छठे मन्त्रका दोनों हाथोंके दोनों तलोंमें न्यास करे। इसके पश्चात् तर्जनी तथा अंगुष्ठके योगसे नाराच अस्त्र मुद्रा बनाये और फिर मूलमन्त्र (पंचाक्षरमन्त्र)-का जप करके चतुर्थ मन्त्रसे अवगुण्ठन करे; इसे ही शिवहस्त कहा जाता है, उसी हाथसे शिवपूजन करना चाहिये॥ २-३॥

तत्त्वगतमात्मानं व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्ववत्॥ ४

तत्त्वोंमें विद्यमान आत्माको व्यवस्थित करके पूर्वकी भाँति तत्त्वशुद्धि करनी चाहिये। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशपर्यन्त पंचकोशोंका अतिक्रमण करके अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति और ब्रह्मका भी उल्लंघनकर शुद्धकोटि (ब्रह्म)-के समीप अमृतधारासहित सुषुम्णा मार्गसे अपनी आत्माको स्थापित करके सर्वप्रथम

क्ष्माम्भोऽग्निवायुव्योमान्तं पञ्चचतुःशुद्धकोट्यन्ते धारासहितेन व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्वं कुर्यात्॥ ५

तत्त्वशुद्धिः षष्ठेन सद्येन तृतीयेन फडन्ताद्धराशुद्धिः ॥ ६

षष्ठसहितेन सद्येन तृतीयेन फडन्तेन वारितत्त्वशुद्धिः ॥ ७

वाह्नेयतृतीयेन फडन्तेनाग्निशुद्धिः ॥ ८

वायव्यचतुर्थेन षष्ठसहितेन फडन्तेन वायुशुद्धिः ॥ ९

षष्ठेन ससद्येन तृतीयेन फडन्तेनाकाशशुद्धिः ॥ १०

उपसंहृत्यैवं सद्यषष्ठेन तृतीयेन मूलेन फडन्तेन ताडनं तृतीयेन सम्पुटीकृत्य ग्रहणं मूलमेव योनिबीजेन सम्पुटीकृत्वा बन्धनं बन्धः ॥ ११

एवं क्षान्तातीतादिनिवृत्तिपर्यन्तं पूर्ववत्कृत्वा प्रणवेन तत्त्वत्रयकमनुध्याय आत्मानं दीपशिखाकारं पुर्यष्टकसहितं त्रयातीतं शक्तिक्षोभेणामृतधारां सुषुम्णायां ध्यात्वा ॥ १२

शान्त्यतीतादिनिवृत्तिपर्यन्तानां चान्तर्नादबिन्द्वकारो-कारमकारान्तं शिवं सदाशिवं रुद्रविष्णुब्रह्मान्तं सृष्टिक्रमेणामृतीकरणं ब्रह्मन्यासं कृत्वा पञ्चवक्त्रेषु पञ्चदशनयनं विन्यस्य मूलेन पादादिकेशान्तं महामुद्रामपि बद्ध्वा शिवोऽहमिति ध्यात्वा शक्त्यादीनि विन्यस्य हृदि शक्त्या बीजाङ्कुरा-नन्तरात्ससुषिरसूत्रकण्टकपत्रकेसरधर्मज्ञानवैराग्यै-श्वर्यसूर्यसोमाग्निवामा-ज्येष्ठा-रौद्रीकाली-कल-

तत्त्वशुद्धि करनी चाहिये ॥ ४-५ ॥

तत्त्वशुद्धि इस प्रकार होती है—अन्तमें फट्से युक्त छठे '**नमो हिरण्यबाहवे०**' मन्त्र, सद्योजातमन्त्र तथा तृतीय अघोरमन्त्रसे पृथ्वीतत्त्वकी शुद्धि होती है, फडन्त षष्ठ मन्त्रसहित सद्योजात और तृतीय अघोरमन्त्रसे जलतत्त्वकी शुद्धि होती है, फडन्त अग्निसम्बन्धी तृतीय अघोरमन्त्रसे अग्नितत्त्वकी शुद्धि होती है, फडन्त षष्ठ मन्त्रसहित वायुसम्बन्धी चतुर्थ तत्पुरुषमन्त्रसे वायुतत्त्वकी शुद्धि होती है और फडन्त सद्योजातसहित षष्ठ तथा तृतीय अघोर-मन्त्रसे आकाशतत्त्वकी शुद्धि होती है ॥ ६—१० ॥

इस प्रकार पूर्वोक्तका उपसंहार करके सद्योजातमन्त्रके साथ षष्ठ '**नमो हिरण्यबाहवे०**' और तृतीय '**अघोरेभ्यो०**' मन्त्रके साथ फडन्त मूलमन्त्र [पंचाक्षरी]-से ताड़न करे। तृतीय [अघोरेभ्यो०] मन्त्रसे सम्पुटित मूल [पंचाक्षरी] मन्त्रद्वारा ग्रहण करे। योनि [ह्रीं] बीजद्वारा सम्पुटितकर मूल [पंचाक्षरी]-से दिग्बन्ध करे ॥ ११ ॥

इक्कीसवें अध्यायमें कहे गये क्षांतातीतादिसे निवृत्तिकलातक सब विधान पूर्ण करके प्रणवद्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप दीपशिखाकार आत्माका ध्यान करके शुद्ध चैतन्यरूपको मूलाधारादि पुर्यष्टकके साथ त्रयातीत [विश्व तैजस, प्राज्ञादिसे परे] स्वयंका कुण्डलिनीप्रबोध होनेसे सुषुम्णामें अमृतधारारूपमें ध्यान करे। इसी प्रकार नाद, बिन्दु, अकार, उकार तथा मकारका जिनमें अन्त होता है और जो रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मासे भी अतीत हैं, उन कल्याणकारी सदाशिवका शान्त्यातीता आदिसे निवृत्तिपर्यन्त [पाँच] कलाओंका ध्यान करके सृष्टिक्रमसे अमृतीकरण तथा ब्रह्मन्यासकर उनके पाँच मुखोंमें पन्द्रह नेत्रोंका न्यास करे और मूल मन्त्र (पंचाक्षरमन्त्र)-के द्वारा पादसे केशपर्यन्त न्यास करके महामुद्रा बाँधकर 'मैं शिव हूँ'—ऐसा ध्यान करे, पुनः शक्ति आदिका न्यास करके हृदयाकाशमें शक्तिके साथ बीज, अंकुर, व्यवधानरहित छिद्र, सूत्र, कण्टक, पत्र, केसर और कर्णिकायुक्त कमलका ध्यान करके उसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सूर्य, चन्द्र, अग्निका तथा उसके

विकरणीबलविकरणीबलप्रमथनीसर्वभूतदमनीः केसरेषु कर्णिकायां मनोन्मनीमपि ध्यात्वा॥ १३

केसरोंमें वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी और सर्वभूतदमनीका तथा उसकी कर्णिकामें मनोन्मनी शक्तिका भी ध्यान करे॥ १२-१३॥

आसनं परिकल्प्यैवं सर्वोपचारसहितं बहिर्योगोपचारेणान्तःकरणं कृत्वा नाभौ वह्निकुण्डे पूर्ववदासनं परिकल्प्य सदाशिवं ध्यात्वा बिन्दुतोऽमृतधारां शिवमण्डले निपतितां ध्यात्वा ललाटे महेश्वरं दीपशिखाकारं ध्यात्वा आत्मशुद्धिरित्थं प्राणापानौ संयम्य सुषुम्णया वायुं व्यवस्थाप्य षष्ठेन तालुमुद्रां कृत्वा दिग्बन्धं कृत्वा षष्ठेन स्थानशुद्धिर्वस्त्रादिदिपूतान्तरर्घ्यपात्रादिषु प्रणवेन तत्त्वत्रयं विन्यस्य तदुपरि बिन्दुं ध्यात्वा त्वम्भसा विपूर्य द्रव्याणि च विधाय अमृतप्लावनं कृत्वा पाद्यपात्रादिषु तेषामर्घ्यवदासनं परिकल्प्य संहितयाभिमन्त्र्याद्येनाभ्यर्च्य द्वितीयेनामृतीकृत्वा तृतीयेन विशोध्य चतुर्थेनावगुण्ठ्य पञ्चमेनावलोक्य षष्ठेन रक्षां विधाय चतुर्थेन कुशपुञ्जेनार्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य आत्मानमपि द्रव्याणि पुनरर्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य सपुष्पेण सर्वद्रव्याणि पृथक्पृथक् शोधयेत्॥ १४

बहिर्योगके उपचारसे अन्तःकरण सामग्री करके पूर्वोक्त प्रकारसे समस्त उपचारसहित आसन कल्पितकर नाभिमें वह्निकुण्डके मध्य पूर्वकी भाँति आसन परिकल्पित करके उसके ऊपर सदाशिवका चिन्तनकर ललाटमें दीपशिखाके आकारवाले महेश्वरका ध्यान करके बिन्दुसे शिवमण्डलमें गिरती हुई अमृतधाराका ध्यान करे—इस रूपसे आत्मशुद्धि होती है। प्राण तथा अपानको संयमित करके सुषुम्णाद्वारा वायुको व्यवस्थितकर षष्ठ मन्त्रसे खेचरी मुद्रा बनाकर षष्ठ मन्त्रसे ही दिग्बन्ध करे—इस प्रकारसे शरीरशुद्धि होती है। तदनन्तर वस्त्र आदिके द्वारा सम्यक् पोंछकर पवित्र किये गये अर्घ्यपात्र आदिमें प्रणवके द्वारा तत्त्वत्रयका न्यास करके उनके ऊपर बिन्दुका ध्यानकर जलसे पूर्ण करके पूजाद्रव्योंको व्यवस्थितकर अमृतप्लावन करके पाद्यपात्रोंमें तत्त्व आदिके लिये अर्घ्यकी भाँति आसनकी कल्पना करे; तत्पश्चात् संहितामन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रथम मन्त्रसे उनका अभ्यर्चन, द्वितीय मन्त्रसे अमृतीकरण, तृतीय मन्त्रसे विशोधन, चतुर्थ मन्त्रसे अवगुण्ठन, पंचम मन्त्रसे अवलोकन और षष्ठ मन्त्रसे रक्षाविधान करे, इसके बाद चतुर्थ मन्त्रसे कुशकूर्चके द्वारा अपने ऊपर तथा द्रव्योंके ऊपर भी अर्घ्यजलसे अभ्युक्षण करके पुनः पुष्पयुक्त अर्घ्यजलसे सभी द्रव्योंका पृथक्-पृथक् शोधन करे॥ १४॥

सद्येन गन्धं वामेन वस्त्रम्। अघोरेण आभरणं पुरुषेण नैवेद्यम्। ईशानेन पुष्पाणि अथाभिमन्त्रयेत्॥ १५

शिवगायत्र्या शेषं प्रोक्षयेत्॥ १६

पञ्चामृतपञ्चगव्यादीनि ब्रह्माङ्गमूलाद्यैरभिमन्त्रयेत्॥ १७

पृथक्पृथङ्मूलेनार्घ्यं धूपं दत्त्वाचमनीयं च तेषामपि

तत्पश्चात् सद्योजातमन्त्रसे गन्धको, वामदेवमन्त्रसे वस्त्रको, अघोरमन्त्रसे आभरणको, तत्पुरुषमन्त्रसे नैवेद्यको और ईशानमन्त्रसे पुष्पोंको अभिमन्त्रित करना चाहिये; शिवगायत्रीसे शेष अन्य द्रव्योंका प्रोक्षण करना चाहिये। पंचामृत, पंचगव्य आदि पदार्थोंके ब्रह्ममन्त्र, अंगमन्त्र, मूलमन्त्र (पंचाक्षर बीजमन्त्र) आदिसे अभिमन्त्रित करना चाहिये। पुनः पृथक्-पृथक् उन गन्ध आदि पूजोपचारोंको मूलमन्त्रके द्वारा अर्घ्य, धूप, आचमनीय

धेनुमुद्रां च दर्शयित्वा कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रेण रक्षां च विधाय द्रव्यशुद्धिं कुर्यात्॥ १८

आदि अर्पण करके उन्हें धेनुमुद्रा दिखाकर कवचसे अवगुण्ठन और अस्त्र-मन्त्रसे रक्षाविधान करके द्रव्यशुद्धि करनी चाहिये॥ १५—१८॥

अर्घ्योदकमग्रे हृदा गन्धमादायास्त्रेण विशोध्यं पूजाप्रभृतिकरणं रक्षान्तं कृत्वैवं द्रव्यशुद्धिं पूजासमर्पणान्तं मौनमास्थाय पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वमन्त्राणि प्रणवादिनमोऽन्ताज्जपित्वा पुष्पाञ्जलिं त्यजेन्मन्त्रशुद्धिरित्थम्॥ १९

सर्वप्रथम हृदयमन्त्रके द्वारा अर्घ्योदकयुक्त गन्ध लेकर अस्त्रमन्त्रसे शोधन करके पूजनोपयोगी साधन सम्प्रोक्षणसे लेकर [भूतापसारण, दिग्रक्षणादि] रक्षाविधान करके ही द्रव्यशुद्धि करे; तब पूजासमर्पणके अन्ततक मौन धारण करके अन्तमें पुष्पांजलि ग्रहण करके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमःसे युक्त सभी पूजा-मन्त्रोंको जपकर पुष्पांजलि छोड़ देनी चाहिये—इस प्रकार मन्त्रशुद्धि होती है॥ १९॥

अग्रे सामान्यार्घ्यपात्रं पयसापूर्य गन्धपुष्पादिना संहितयाभिमन्त्र्य धेनुमुद्रां दत्त्वा कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रेण रक्षयेत्। पूजां पर्युषितां गायत्र्या समभ्यर्च्य सामान्यार्घ्यं दत्त्वा गन्धपुष्पधूपाचमनीयं स्वधान्तं नमोऽन्तं वा दत्त्वा ब्रह्मभिः पृथक्पृथक्-पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा फडन्तास्त्रेण निर्माल्यं व्यपोह्य ईशान्यां चण्डमभ्यर्च्यासनमूर्तिं चण्डं सामान्यास्त्रेण लिङ्गपीठं शिवं पाशुपतास्त्रेण विशोध्य मूर्ध्नि पुष्पं निधाय पूजयेल्लिङ्गशुद्धिः॥ २०

अपने आगे सामान्य अर्घ्यपात्रको जलसे पूर्ण करके उसमें गन्ध-पुष्प आदि डालकर संहितामन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित करे और धेनुमुद्रा दिखाकर कवचसे अवगुण्ठन करके अस्त्रमन्त्रसे रक्षा करे। पूर्व दिनके पूजित शिवलिङ्गकी गायत्रीसे अर्चना करके सामान्य अर्घ्य प्रदानकर स्वधा अथवा नमः अन्तमें लगाकर गन्ध, पुष्प, धूप, आचमनीय आदि उपचार अर्पित करके ब्रह्ममन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् पुष्पांजलि प्रदान करे; इसके बाद फडन्त अस्त्रमन्त्रसे निर्माल्य उतारकर ईशान दिशामें चण्डका अर्भ्यचन करके आसनमूर्ति चण्डका सामान्य अस्त्रमन्त्रसे और लिङ्गपीठ (योनि) तथा शिवलिङ्गका पाशुपतास्त्रमन्त्रसे विशोधन करके लिङ्गके मस्तकपर पुष्प रखकर पूजन करे; इस प्रकार लिङ्गशुद्धि होती है॥ २०॥

आसनं कूर्मशिलायां बीजाङ्कुरं तदुपरि ब्रह्मशिलायामनन्तनालसुषिरे सूत्रपत्रकण्टककर्णिकाकेसर-धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यसूर्यसोमाग्निकेसरशक्तिं मनोन्मनीं कर्णिकायां मनोन्मनेनानन्तासनायेति समासेनासनं परिकल्प्य तदुपरि निवृत्त्यादिकलामयं षड्विधसहितं कर्मकलाङ्गदेहं सदाशिवं भावयेत्॥ २१

तत्पश्चात् कूर्मपृष्ठके आसन और उसके ऊपर बीजांकुर, पुनः उसके ऊपर ब्रह्मशिलापर छिद्रयुक्त अनन्त नालके भीतर सूत्र, दल, कण्टक, कर्णिका, केसर, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वामा आदि [पूर्वकथित आठ] शक्तियाँ और कर्णिकामें मनोन्मनसहित मनोन्मनीका ध्यान करे। पुनः **'अनन्तासनाय नमः'**—इस मन्त्रसे संक्षेपमें आसन कल्पित करके उसके ऊपर निवृत्ति आदि कलायुक्त षट्कोशसहित वेदमूर्ति सदाशिवका चिन्तन करे॥ २१॥

उभाभ्यां सपुष्पाभ्यां हस्ताभ्यामङ्गुष्ठेन पुष्पमापीड्य

तदनन्तर दोनों हाथोंमें पुष्प ग्रहणकर अँगुष्ठसे

आवाहनमुद्रया शनैः शनैः हृदयादिमस्तकान्तमारोप्य हृदा सह मूलं प्लुतमुच्चार्य सद्येन बिन्दुस्थानादभ्यधिकं दीपशिखाकारं सर्वतोमुखहस्तं व्याप्यव्यापकमावाह्य स्थापयेत्॥ २२

पुष्पको दबाकर आवाहनमुद्राके द्वारा धीरे-धीरे हृदयसे मस्तकपर्यन्त आरोपण करके हृदयमन्त्रसहित मूलमन्त्र (पंचाक्षरमन्त्र)-को उच्च स्वरमें उच्चारित करके बिन्दुस्थानसे भी अधिक दीपशिखाकार और सभी ओर मुख तथा हाथ करके व्याप्त उन व्यापक परमेश्वरको सद्योजातमन्त्रसे आवाहितकर स्थापित करना चाहिये॥ २२॥

पूर्वहृदा शिवशक्तिसमवायेन परमीकरणममृतीकरणं हृदयादिमूलेन सद्येनावाहनं हृदा मूलोपरि वामेन स्थापनं हृदा मूलोपरि अघोरेण सन्निरोधं हृदा मूलोपरि पुरुषेण सान्निध्यं हृदा मूलेन ईशानेन पूजयेदिति उपदेशः॥ २३

पञ्चमन्त्रसहितेन यथापूर्वमात्मनो देहनिर्माणं तथा देवस्यापि वह्नेश्चैवमुपदेशः॥ २४

पहले हृदयमन्त्रसे शिवशक्तिके तादात्म्यसे एकीकरण तथा अमृतीकरण करे; पुनः हृदयमन्त्रपूर्वक मूलमन्त्रसहित सद्योजातमन्त्रसे आवाहन करके हृदयमन्त्र तथा मूलमन्त्रयुक्त वामदेवमन्त्रसे स्थापन और इसी प्रकार हृदयमन्त्र एवं मूलमन्त्रसहित अघोर मन्त्रसे सन्निरोधन करे; इसके बाद हृदयमन्त्र तथा मूलमन्त्रसहित तत्पुरुषमन्त्रसे सान्निध्य करे। तदनन्तर हृदयमन्त्र और मूलमन्त्रयुक्त ईशानमन्त्रसे पूजन करे—यह उपदेश है। पूर्वमें जिस प्रकार पाँच मन्त्रोंसे अपना देहनिर्माण किया, उसी प्रकार देवता तथा अग्निका भी देहनिर्माण करना चाहिये—ऐसा उपदेश है॥ २३-२४॥

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारान्तमापाद्य स्वधान्तमाचमनीयं सर्वं नमस्कारान्तं वा स्वाहाकारान्तमर्घ्यं मूलेन पुष्पाञ्जलिं वौषडन्तेन सर्वं नमस्कारान्तं हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण वा पूजयेत्॥ २५

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्धूपाचमनीयं षष्ठेन पुष्पावसरणं विसर्जनं मन्त्रोदकेन मूलेन संस्नाप्य सर्वद्रव्याभिषेकमीशानेन प्रतिद्रव्यमष्टपुष्पं दत्त्वैवमर्घ्यं च गन्धपुष्पधूपाचमनीयं फडन्तास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन संस्नाप्य पिष्टामलकादिभिः॥ २६

उष्णोदकेन हरिद्राद्येन लिङ्गमूर्तिं पीठसहितां विशोध्य गन्धोदकहिरण्योदकमन्त्रोदकेन रुद्राध्यायं पठमानः नीलरुद्रत्वरितरुद्रपञ्चब्रह्मादिभिः नमः शिवायेति स्नापयेत्॥ २७

मूलमन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**)-को नमस्कारान्त बोलकर सदाशिवके प्रतिबिम्बका ध्यान करके, आचमनीय देते समय मन्त्रको स्वधान्त अथवा सब कुछ नमस्कारान्त ही करे। अर्घ्यदानमें मूलमन्त्रको स्वाहान्त बोले, पुष्पांजलि वौषट्‌युक्त मूलमन्त्रसे अथवा सर्वत्र नमस्कारान्त हृदयमन्त्रसे, ईशानमन्त्रसे, रुद्रगायत्रीसे अथवा '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मूलमन्त्रसे पूजा करे। तत्पश्चात् पुष्पांजलि देकर धूप तथा आचमनीय अर्पण करे। इसके बाद षष्ठ मन्त्रसे पुष्पोंको उतारकर पूजाका विसर्जन करके मूलमन्त्रद्वारा शुद्ध जल, पंचामृत आदि द्रव्योंसे स्नान कराये। प्रत्येक द्रव्यके स्नानमें ईशानमन्त्रसे आठ-आठ पुष्पांजलि देकर अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, आचमनीय आदि अर्पण करे; पुनः फडन्त अस्त्रमन्त्रसे पूजाद्रव्योंको [शिवलिङ्गसे] हटाकर पिसे हुए आमलक आदिसे युक्त शुद्ध जलसे मूलमन्त्रके द्वारा स्नान कराकर हरिद्रा आदिके चूर्णसे युक्त उष्ण जलसे पीठसहित शिवलिङ्गका शोधनकर गन्ध-हिरण्यसमन्वित अभिमन्त्रित जलके द्वारा रुद्राध्यायका पाठ करते हुए एवं नीलरुद्र, त्वरितरुद्र, पंचब्रह्म तथा नमः शिवाय—इन मन्त्रोंसे

मूर्ध्नि पुष्पं निधायैवं न शून्यं लिङ्गमस्तकं कुर्यादत्र श्लोकः ॥ २८

यस्य राष्ट्रे तु लिङ्गस्य मस्तकं शून्यलक्षणम्।
तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्षं वाहनक्षयः ॥ २९

तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये।
शून्ये लिङ्गे स्वयं राजा राष्ट्रं चैव प्रणश्यति ॥ ३०

एवं सुस्नाप्यार्घ्यं च दत्त्वा सम्मृज्य वस्त्रेण गन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारादींश्च मूलेन दद्यात् ॥ ३१

धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन प्रधानेनोपरि पूजनं पवित्रीकरणमित्युक्तम् ॥ ३२

आरार्तिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनावगुण्ठितानि षष्ठेन रक्षितानि लिङ्गोपरि लिङ्गे च लिङ्गस्याधः साधारणं च दर्शयेत् ॥ ३३

मूलेन नमस्कारं विज्ञाप्यावाहनस्थापनसन्निरोधसान्निध्यपाद्याचमनीयार्घ्यगन्धपुष्पधूपनैवेद्याचमनीयहस्तोद्वर्तनमुखवासाद्युपचारयुक्तं ब्रह्माङ्गभोगमार्गेण पूजयेत् ॥ ३४

सकलध्यानं निष्कलस्मरणं परावरध्यानं मूलमन्त्रजपः। दशांशं ब्रह्माङ्गजपसमर्पणमात्मनिवेदनस्तुतिनमस्कारादयश्च गुरुपूजा च पूर्वतो दक्षिणे विनायकस्य ॥ ३५

आदौ चान्ते च सम्पूज्यो विघ्नेशो जगदीश्वरः।
दैवतैश्च द्विजैश्चैव सर्वकर्मार्थसिद्धये ॥ ३६

यः शिवं पूजयेदेवं लिङ्गे वा स्थण्डिलेऽपि वा।
स याति शिवसायुज्यं वर्षमात्रेण कर्मणा ॥ ३७

स्नान कराना चाहिये ॥ २५—२७ ॥

शिवलिङ्गके मस्तकपर पुष्प रखकर ही अभिषेक करना चाहिये; लिङ्गमस्तकको शून्य नहीं रखना चाहिये। इस सम्बन्धमें यह श्लोक है—जिस राजाके राष्ट्रमें लिङ्गका मस्तक बिल्वपत्र या पुष्पसे शून्य रहता है, उसके यहाँ लक्ष्मीशून्यता, महारोग, दुर्भिक्ष तथा वाहनोंका क्षय होता है। अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्विधपुरुषार्थकी प्राप्तिके लिये राजाको चाहिये कि शिवलिङ्गके मस्तकको शून्य न रखे; लिङ्गके शून्य रहनेपर स्वयं राजा तथा राष्ट्र—दोनों ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २८—३० ॥

इस प्रकार सम्यक् स्नान कराकर अर्घ्य अर्पण करके वस्त्रसे [शिवलिङ्गको] भलीभाँति पोंछकर मूलमन्त्रके द्वारा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, अलंकार, धूप, आचमनीय, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करना चाहिये। शिवलिङ्गके मस्तकपर केवल प्रणवके द्वारा पूजनको पवित्रीकरण कहा गया है। आरती तथा दीप, धेनुमुद्रा बनाकर कवचसे अवगुण्ठनकर तथा षष्ठ मन्त्रसे रक्षण करके लिङ्गके मस्तकपर, लिङ्गके मध्य भागमें तथा लिङ्गके अधोभागमें प्रदर्शित करना चाहिये। मूल मन्त्रसे नमस्कार करके आवाहन, स्थापन, सन्निरोधन, सान्निध्य, पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, हस्तोद्वर्तन, मुखवास आदि उपचार निवेदित करके ब्रह्ममन्त्रस्वरूप पाद आदि अंगोंकी उपचारक्रमसे पूजा करनी चाहिये ॥ ३१—३४ ॥

पूजाके अनन्तर सकल (सगुण) ध्यान, निष्कल (निर्गुण) ध्यान, परावर ध्यान, मूलमन्त्रजप, ब्रह्ममन्त्र तथा अंगमन्त्रका दशांशजप, समर्पण, आत्मनिवेदन, स्तुति, नमस्कार आदि करके पूर्वभागमें गुरुपूजा तथा दक्षिण भागमें विनायक गणपतिकी पूजा करनी चाहिये। देवताओं तथा ब्राह्मणोंको समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये आदिमें तथा अन्तमें जगत्के स्वामी विघ्नेश्वर श्रीगणेशकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

जो लिङ्गमें अथवा स्थण्डिलमें शिवकी पूजा करता है, वह केवल एक ही वर्षमें अपने इस कर्मके

लिङ्गार्चकश्च षण्मासान्नात्र कार्या विचारणा।
सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा दण्डवत्प्रणमेद्बुधः॥ ३८

प्रभावसे शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। केवल शिवलिङ्गकी पूजा करनेवाला छः मासमें ही शिवसायुज्य प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् भक्तको चाहिये कि [पूजाके अनन्तर] सात प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करे॥ ३७-३८॥

प्रदक्षिणक्रमपादेन अश्वमेधफलं शतम्।
तस्मात्सम्पूजयेन्नित्यं सर्वकर्मार्थसिद्धये॥ ३९

भोगार्थी भोगमाप्नोति राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्।
पुत्रार्थी तनयं श्रेष्ठं रोगी रोगात्प्रमुच्यते॥ ४०

यान् यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः॥ ४१

प्रदक्षिणामें एक-एक पगके द्वारा सौ-सौ अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। अतः समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये सम्यक् प्रकारसे [भगवान् शिवकी] नित्य पूजा करनी चाहिये। [इस पूजनसे] भोगकी अभिलाषा रखनेवाला भोग-सुख प्राप्त करता है, राज्यकी कामना करनेवाला राज्य प्राप्त करता है, पुत्रकी इच्छा रखनेवाला उत्तम पुत्र प्राप्त करता है और रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य जिन-जिन मनोरथोंको सोचता है, उन्हें प्राप्त कर लेता है॥ ३९—४१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लिङ्गार्चनविधानं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'लिङ्गार्चनविधान' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

शिवहोमार्चाके लिये कुण्ड-मेखला-निर्माण, अरणिमन्थन, पात्रासादन, आज्यसंस्कार, अग्निसंस्कार तथा हवन-विधानका वर्णन

शैलादिरुवाच

शिवाग्निकार्यं वक्ष्यामि शिवेन परिभाषितम्।
जनयित्वाग्रतः प्राचीं शुभे देशे सुसंस्कृते॥ १

पूर्वाग्रमुत्तराग्रं च कुर्यात्सूत्रत्रयं शुभम्।
चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे कुर्यात्कुण्डानि यत्नतः॥ २

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं शैव-अग्निकार्यका वर्णन करूँगा, जिसे [स्वयं] शिवजीने कहा है। सर्वप्रथम [दिक्साधनके विधानसे] पूर्व दिशाका निर्धारण करके शुभ तथा परिष्कृत भूमिपर पवित्र तीन सूत पूर्वाग्र तथा तीन सूत उत्तराग्र रखकर चतुष्कोणीय निर्मित की गयी भूमिमें यत्नपूर्वक कुण्ड बनाना चाहिये॥ १-२॥

नित्यहोमाग्निकुण्डं च त्रिमेखलसमायुतम्।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलायामा मेखला हस्तमात्रतः॥ ३

हस्तमात्रं भवेत्कुण्डं योनिः प्रादेशमात्रतः।
अश्वत्थपत्रवद्योनिं मेखलोपरि कल्पयेत्॥ ४

नित्यहोमके लिये तीन मेखलाओंसे युक्त अग्निकुण्ड होना चाहिये। तीनों मेखलाएँ एक हाथ प्रमाणकी तथा चार अँगुल, तीन अँगुल और दो अँगुल ऊँचाईकी बनानी चाहिये। कुण्ड एक हाथ प्रमाणका होना चाहिये तथा योनि प्रादेशमात्र (अँगूठे तथा तर्जनी अँगुलीके बीचकी दूरी) होनी चाहिये। मेखलाके ऊपर अश्वत्थ (पीपल)-के पत्तेके आकारकी योनि बनानी चाहिये॥ ३-४॥

कुण्डमध्ये तु नाभिः स्यादष्टपत्रं सकर्णिकम्।
प्रादेशमात्रं विधिना कारयेद्ब्रह्मणः सुत॥ ५

षष्ठेनोल्लेखनं प्रोक्तं प्रोक्षणं वर्मणा स्मृतम्।
नेत्रेणालोक्य वै कुण्डं षड्रेखाः कारयेद्बुधः॥ ६

प्रागायतेन विप्रेन्द्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्तराग्राः शिवा रेखाः प्रोक्षयेद्वर्मणा पुनः॥ ७

शमीपिप्पलसम्भूतामरणीं षोडशाङ्गुलाम्।
मथित्वा वह्निबीजेन शक्तिन्यासं हृदैव तु॥ ८

प्रक्षिपेद्विधिना वह्निमन्वाधाय यथाविधि।
तूष्णीं प्रादेशमात्रैस्तु याज्ञिकैः शकलैः शुभैः॥ ९

परिसम्मोहनं कुर्याज्जलेनाष्टसु दिक्षु वै।
परिस्तीर्य विधानेन प्रागाद्येवमनुक्रमात्॥ १०

उत्तराग्रं पुरस्ताद्धि प्रागग्रं दक्षिणे पुनः।
पश्चिमे चोत्तराग्रं तु सौम्ये पूर्वाग्रमेव तु॥ ११

ऐन्द्रे चैन्द्राग्नमावाह्य याम्य एवं विधीयते।
सौम्यस्योपरि चान्द्राग्नं वारुणाग्नमधस्ततः॥ १२

द्वन्द्वरूपेण पात्राणि बर्हिःष्वासाद्य सुव्रत।
अधोमुखानि सर्वाणि द्रव्याणि च तथोत्तरे॥ १३

तस्योपरि न्यसेद्दर्भाञ्छिवं दक्षिणतो न्यसेत्।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण पश्चाद्धोमं समाचरेत्॥ १४

प्रोक्षणीपात्रमादाय पूरयेदम्बुना पुनः।
प्रादेशमात्रौ तु कुशौ स्थापयेदुदकोपरि॥ १५

प्लावयेच्च कुशाग्रं तु वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः।
विकीर्य सर्वपात्राणि सुसम्प्रोक्ष्य विधानतः॥ १६

प्रणीतापात्रमादाय पूरयेदम्बुना पुनः।
अन्योदककुशाग्रैस्तु सम्यगाच्छाद्य सुव्रत॥ १७

हे ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार! कुण्डके मध्यमें नाभि होनी चाहिये; उसे विधिपूर्वक अष्टदलीय, कर्णिकायुक्त और प्रादेशमात्र प्रमाणकी निर्मित करानी चाहिये। अस्त्रमन्त्रसे उल्लेखन करना कहा गया है तथा कवचमन्त्रसे प्रोक्षण करना बताया गया है; बुद्धिमान्‌को चाहिये कि कुण्डको नेत्रमन्त्रसे देखकर छः रेखाएँ बनाये। हे विप्रेन्द्र! पूर्वाग्र तीन रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरस्वरूप हैं और उत्तराग्र रेखाएँ शिवस्वरूप हैं। इसके बाद कवचमन्त्रसे पुनः प्रोक्षण करना चाहिये॥ ५—७॥

शमीगर्भस्थ पीपलके काष्ठकी बनी हुई सोलह अँगुल प्रमाणकी अरणीद्वारा वह्निबीज (रं)-से मन्थन करके और हृदयमन्त्रसे शक्तिन्यास करके अग्नि उत्पन्न करनी चाहिये। इसके बाद मौन होकर विधिपूर्वक उसे अग्निकुण्डमें रख देना चाहिये। विधानके अनुसार अग्न्याधान करके शान्तिपूर्वक प्रादेशप्रमाणके यज्ञसम्बन्धी शुभ काष्ठकी समिधाओंको उसपर प्राक् आदिके क्रमसे विधिपूर्वक व्यवस्थित करके जलके द्वारा आठों दिशाओंमें परिसम्मोहन करना चाहिये। पूरबमें उत्तराग्र, दक्षिणमें पूर्वाग्र, पश्चिममें उत्तराग्र और उत्तरमें पूर्वाग्र कुश बिछाना चाहिये॥ ८—११॥

पूर्व दिग्भागमें इन्द्राग्निदैवतका आवाहन करके दक्षिण दिग्भागमें यामाग्नि, उत्तर दिग्भागमें चान्द्राग्नि और इसके बाद पश्चिम दिग्भागमें वारुणाग्निका आवाहन किया जाता है। हे सुव्रत! पात्रोंको द्वन्द्वरूपमें अधोमुख करके कुशाओंपर रखकर तथा सभी द्रव्योंको उत्तर भागमें रखकर उसके ऊपर कुशोंको रख देना चाहिये। दक्षिण भागमें शिवको स्थापित करना चाहिये; इसके बाद मूलमन्त्रसे पूजन करना चाहिये, तत्पश्चात् विधिपूर्वक हवन करना चाहिये॥ १२—१४॥

तदनन्तर प्रोक्षणीपात्र लेकर उसे जलसे भर देना चाहिये और फिर प्रादेशप्रमाणके दो कुशोंको जलके ऊपर स्थापित कर देना चाहिये। अग्नि तथा सूर्यकी किरणोंसे कुशाग्रको प्लावित करना चाहिये। तदनन्तर सभी पात्रोंको फैलाकर विधिपूर्वक प्रोक्षण करके प्रणीतापात्रको लेकर उसे पुनः जलसे पूर्ण करना

हस्ताभ्यां नासिकं पात्रमैशान्यां दिशि विन्यसेत्।
आज्याधिश्रयणं कुर्यात्पश्चिमोत्तरतः शुभम्॥ १८

भस्ममिश्रांस्तथाङ्गारान् ग्राहयेत्सकलेन वै।
पश्चिमोत्तरतो नीत्वा तत्र चाज्यं प्रतापयेत्॥ १९

कुशानग्नौ तु प्रज्वाल्य पर्यग्निं त्रिभिराचरेत्।
तान् सर्वांस्तत्र निःक्षिप्य चाग्रे चाज्यं निधापयेत्॥ २०

अङ्गुष्ठमात्रौ तु कुशौ प्रक्षाल्य विधिनैव तु।
पर्यग्निं च ततः कुर्यात्तैरेव नवभिः पुनः॥ २१

पर्यग्निं च पुनः कुर्यात्तदाज्यमवरोपयेत्।
अथापकर्षयेत्पात्रं क्रमेणोत्तरपश्चिमे॥ २२

संयुज्य चाग्निं काष्ठेन प्रक्षाल्यारोप्य पश्चिमे।
आज्यस्योत्पवनं कुर्यात्पवित्राभ्यां सहैव तु॥ २३

पृथगादाय हस्ताभ्यां प्रवाहेण यथाक्रमम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु उभाभ्यां मूलविद्यया॥ २४

अभ्युक्ष्य दापयेदग्नौ पवित्रे घृतपङ्क्तिते।
सौवर्णं स्रुक्स्रुवं कुर्याद्रत्निमात्रेण सुव्रत॥ २५

राजतं वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम्।
अथवा याज्ञिकैर्वृक्षैः कर्तव्यौ स्रुक्स्रुवावुभौ॥ २६

अरत्निमात्रमायामं तत्पोत्रे तु बिलं भवेत्।
षडङ्गुलपरीणाहं दण्डमूलं महामुने॥ २७

तदर्धं कण्ठनालं स्यात्पुष्करं मूलवद्भवेत्।
गोबालसदृशं दण्डं स्रुवाग्रं नासिकासमम्॥ २८

पुटद्वयसमायुक्तं मुक्ताद्येन प्रपूरितम्।
षट्त्रिंशदङ्गुलायाममष्टाङ्गुलसविस्तरम् ॥ २९

चाहिये। हे सुव्रत! इसके बाद जलमें रखी अन्य कुशाओंके द्वारा उसे भलीभाँति आच्छादित करके दोनों हाथोंसे नासिकापर्यन्त उस पात्रको उठाकर ईशान दिशामें स्थापित कर देना चाहिये॥ १५—१७॥

तत्पश्चात् वायव्य कोणमें शुभ आज्याश्रयण (घृतस्थापन) करना चाहिये। भस्मयुक्त अंगारोंको लेना चाहिये और उसे वायव्य दिशामें रखकर उसके ऊपर घृतको तपाना चाहिये। तदनन्तर कुशोंको अग्निमें प्रज्वलित करके तीन कुशोंसे पर्यग्निकरण करना चाहिये। फिर उन सभी कुशोंको उस कुण्डमें डालकर घृतको अपने सम्मुख रख लेना चाहिये। इसके बाद अँगुष्ठप्रमाणके दो कुशोंको विधिवत् प्रक्षालित करके उन कुशोंसे तथा अन्य नौ कुशोंसे पर्यग्नि करनी चाहिये, इसके बाद फिर पर्यग्नि करनी चाहिये। तदनन्तर घृतको अग्निपरसे उतार लेना चाहिये और घृतपात्रको क्रमसे उत्तर-पश्चिम दिशामें रख देना चाहिये॥ १८—२२॥

तदनन्तर उपवेषणकाष्ठद्वारा अग्निका संयोजन करके पश्चिम दिशामें रखकर उसे प्रक्षालित करके दोनों हाथोंकी अँगुष्ठ और अनामिका अँगुलियोंद्वारा याज्ञिकोक्त पद्धतिके अनुसार दो पवित्रियोंको ग्रहण करके मूलमन्त्रके द्वारा आज्योत्पवन करना चाहिये। उसके बाद घृतसे भीगी हुई दोनों पवित्रियोंका अभ्युक्षण करके उन्हें अग्निमें डाल देना चाहिये॥ २३-२४$^{1}/_{2}$॥

हे सुव्रत! सोने अथवा चाँदीका स्रुक्-स्रुव बनाना चाहिये, जो एक हाथ लम्बा हो तथा सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हो अथवा यज्ञीय वृक्षोंसे ही स्रुक्-स्रुवाका निर्माण करना चाहिये॥ २५-२६॥

स्रुव एक हाथ प्रमाणका और उसके मुखपर गहरा गर्त होना चाहिये। हे महामुने! उस स्रुवका दण्डमूल छः अँगुल चौड़ा और कण्ठनाल तीन अँगुल चौड़ा होना चाहिये। उसका मुख भी मूलकी भाँति बनाना चाहिये। स्रुवका दण्ड गायकी पूँछके सदृश ऊपर मोटा और क्रमशः नीचेकी ओर पतला होना चाहिये; उसका अग्रभाग नासिकाके समान दो पुटोंसे युक्त तथा मुक्ता आदिसे समन्वित होना चाहिये॥ २७-२८$^{1}/_{2}$॥

उत्सेधस्तु तदर्धं स्यात्सूत्रेण समितं ततः।
सप्ताङ्गुलं भवेदास्यं विस्तरायामतः पुनः॥ ३०

त्रिभागैकं भवेदग्रं कृत्वा शेषं परित्यजेत्।
कण्ठं च द्व्यङ्गुलायामं विस्तारं चतुरङ्गुलम्॥ ३१

वेदिरष्टाङ्गुलायामा विस्तारस्तत्प्रमाणतः।
तस्य मध्ये बिलं कुर्याच्चतुरङ्गुलमानतः॥ ३२

बिलं सुवर्तितं कुर्यादष्टपत्रं सुकर्णिकम्।
परितो बिलबाह्ये तु पट्टिकार्धाङ्गुलेन तु॥ ३३

तद्बाह्ये च विनिद्रं तु पद्मपत्रविचित्रितम्।
यवद्वयप्रमाणेन तद्बाह्ये पट्टिका भवेत्॥ ३४

वेदिकामध्यतो रन्ध्रं कनिष्ठाङ्गुलमानतः।
खातं यावन्मुखान्तः स्याद् बिलमानं तु निम्नगम्॥ ३५

दण्डं षडङ्गुलं नालं दण्डाग्रे दण्डिकात्रयम्।
अर्धाङ्गुलविवृद्ध्या तु कर्तव्यं चतुरङ्गुलम्॥ ३६

त्रयोदशाङ्गुलायामं दण्डमूले घटं भवेत्।
द्व्यङ्गुलस्तु भवेत्कुम्भो नाभिं विद्याद्दशाङ्गुलम्॥ ३७

वेदिमध्ये तथा कृत्वा पादं कुर्याच्च द्व्यङ्गुलम्।
पद्मपृष्ठसमाकारं पादं वै कर्णिकाकृतिम्॥ ३८

गजोष्ठसदृशाकारं तस्य पृष्ठाकृतिर्भवेत्।
अभिचारादिकार्येषु कुर्यात्कृष्णायसेन तु॥ ३९

पञ्चविंशत्कुशैनैव स्रुक्स्रुवौ मार्जयेत्पुनः।
अग्रमग्रेण संशोध्य मध्यं मध्येन सुव्रत॥ ४०

मूलं मूलेन विधिना अग्नौ ताप्य हृदा पुनः।
आज्यस्थाली प्रणीता च प्रोक्षणी तिस्र एव च॥ ४१

सौवर्णी राजती वापि ताम्री वा मृन्मयी तु वा।
अन्यथा नैव कर्तव्यं शान्तिके पौष्टिके शुभे॥ ४२

पूर्णाहुतिमें प्रयुक्त होनेवाला स्रुव छत्तीस अँगुल लम्बा, आठ अँगुल चौड़ा और चार अँगुल मोटा बनाना चाहिये। सूतके द्वारा उसे सम कर लेना चाहिये। उस स्रुवका मुख सात अँगुल चौड़ा होना चाहिये और बारह अँगुल लम्बा होना चाहिये। स्रुव का कण्ठ दो अँगुल लम्बा और चार अँगुल चौड़ा होना चाहिये॥ २९—३१॥

वेदी आठ अँगुल लम्बी तथा उतने ही प्रमाणकी अर्थात् आठ अँगुल चौड़ी होनी चाहिये। उसके मध्यमें चार अँगुल प्रमाणका गर्त बनाना चाहिये। गर्त पूर्णरूपसे गोल, अष्टदलयुक्त और सुन्दर कर्णिकामय निर्मित करना चाहिये। उस गर्तके बाहर चारों ओर आधे अँगुलप्रमाणकी पट्टिका, पट्टिकाके बाहर विकसित सुन्दर कमल और पुनः उसके बाहर दो यव-प्रमाणकी पट्टिकाकी रचना करनी चाहिये॥ ३२—३४॥

वेदीके मध्यमें कनिष्ठा अँगुलिके प्रमाणसे मुखपर्यन्त गम्भीर प्रवाहवाला छिद्र होना चाहिये। दण्डका मूल छः अँगुल-प्रमाणका होना चाहिये, दण्डके अग्रभागमें चार अँगुलके बीच आधे अँगुलकी वृद्धिसे तीन दण्डिकाएँ बनानी चाहिये। दण्डके अग्रभागमें तेरह अँगुलके विस्तारमें घट (शिर) होना चाहिये, उसका कण्ठ दो अँगुल और नाभि अर्थात् मध्य भाग दस अँगुल होना चाहिये। वेदीके मध्यमें वैसे ही दस अँगुलकी पद्मपृष्ठके आकारकी नाभि बनाकर दो अँगुल-प्रमाणका कर्णिकाके आकृतिसदृश पाद बनाना चाहिये। उस स्रुवके पृष्ठकी आकृति हाथीके ओष्ठके आकारसदृश होनी चाहिये। अभिचार आदि कर्मोंमें कृष्ण लौहसे स्रुक्-स्रुवका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर पचीस कुशोंके द्वारा स्रुक्-स्रुवका मार्जन करना चाहिये। हे सुव्रत! [स्रुक्-स्रुवके] अग्रभागको कुशके अग्रभागसे, मध्यभागको मध्य भागसे और मूलको मूलसे शोधित करके पुनः भलीभाँति हृदयमन्त्रका उच्चारण करके अग्निमें उन्हें तपाना चाहिये॥ ३५—४०½॥

आज्यस्थाली, प्रणीता और प्रोक्षणी—ये तीनों ही पात्र सोने, चाँदी, ताम्र अथवा मिट्टीके होने चाहिये। शान्तिक तथा पौष्टिक शुभ कर्ममें अन्य धातुके पात्रोंका

आयसी त्वभिचारे तु शान्तिके मृन्मयी तु वा।
षडङ्गुलं सुविस्तीर्णं पात्राणां मुखमुच्यते॥ ४३

प्रोक्षणी द्व्यङ्गुलोत्सेधा प्रणीता द्व्यङ्गुलाधिका।
आज्यस्थाली ततस्तस्या उत्सेधो द्व्यङ्गुलाधिकः॥ ४४

यैः समिद्भिर्हुतं प्रोक्तं तैरेव परिधिर्भवेत्।
मध्याङ्गुलपरीणाहा अवक्रा निर्व्रणाः समाः॥ ४५

द्वात्रिंशदङ्गुलायामास्तिस्त्रः परिधयः स्मृताः।
द्वात्रिंशदङ्गुलायामैस्त्रिंशद्दर्भैः परिस्तरेत्॥ ४६

चतुरङ्गुलमध्ये तु ग्रथितं तु प्रदक्षिणम्।
अभिचारादिकार्येषु शिवाग्न्याधानवर्जितम्॥ ४७

अकोमलाः स्थिरा विप्र सङ्ग्राह्यास्त्वाभिचारिके।
समग्राः सुसमाः स्थूलाः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः॥ ४८

अवक्रा निर्व्रणाः स्निग्धा द्वादशाङ्गुलसम्मिताः।
समिधस्थं प्रमाणं हि सर्वकार्येषु सुव्रत॥ ४९

गव्यं घृतं ततः श्रेष्ठं कापिलं तु ततोऽधिकम्।
आहुतीनां प्रमाणं तु स्रुवं पूर्णं यथा भवेत्॥ ५०

अन्नमक्षप्रमाणं स्याच्छुक्तिमात्रेण वै तिलः।
यवानां च तदर्धं स्यात्फलानां स्वप्रमाणतः॥ ५१

क्षीरस्य मधुनो दध्नः प्रमाणं घृतवद्भवेत्।
चतुःस्रुवप्रमाणेन स्रुचा पूर्णाहुतिर्भवेत्॥ ५२

तदर्धं स्विष्टकृत्प्रोक्तं शेषं सर्वमथापि वा।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव शिवाग्नौ जुहुयात्सदा॥ ५३

लौकिकाग्नौ महाभाग मोहनोच्चाटनादयः।
शिवाग्निं जनयित्वा तु सर्वकर्मणि सुव्रत॥ ५४

प्रयोग नहीं करना चाहिये। अभिचार (जारण, मारण आदि)-कर्ममें लौहकी और शान्तिकर्ममें मृत्तिकाकी आज्यस्थाली, प्रणीता और प्रोक्षणीपात्र प्रयुक्त करना चाहिये; इन पात्रोंका मुख छः अँगुल चौड़ा होना चाहिये—ऐसा कहा जाता है। प्रोक्षणी दो अँगुल ऊँची, प्रणीता चार अँगुल ऊँची और आज्यस्थाली उससे भी दो अँगुल अधिक अर्थात् छः अँगुल ऊँची होनी चाहिये॥ ४१—४४॥

जिन समिधाओंसे हवन बताया गया है, उन्हींसे परिधि बनानी चाहिये। मध्य अँगुलीतुल्य चौड़ी, सीधी व्रणरहित, सम तथा बत्तीस अँगुल लम्बी तीन परिधियाँ कही गयी हैं। चार अँगुलके बीच प्रदक्षिणक्रमसे ग्रथितरूपसे बत्तीस-बत्तीस अँगुल लम्बे तीस कुशोंसे परिस्तरण करना चाहिये। अभिचार आदि कार्योंमें शिवाग्न्याधानसे वर्जित कर्म करना चाहिये। हे विप्र! अभिचारकर्ममें कठोर और दृढ़ समिधाएँ लेनी चाहिये, किंतु शुभ कर्ममें पूर्णरूपसे सम, कनिष्ठा अँगुलिके सदृश मोटी, सीधी, व्रणरहित, कोमल तथा बारह अँगुल लम्बी समिधाएँ ग्रहण करनी चाहिये। हे सुव्रत! सभी कार्योंमें समिधाका यही प्रमाण सुनिश्चित किया गया है॥ ४५—४९॥

हवनके लिये गोघृत श्रेष्ठ होता है, किंतु कपिला गोका घृत उससे भी श्रेष्ठ माना गया है। आहुतिका प्रमाण उतना ही है, जितनेमें स्रुव पूर्णरूपसे भरा हुआ हो। अन्न (चरु)-का प्रमाण एक अक्ष (कर्ष) तथा तिलका प्रमाण एक शुक्ति (सीप) होना चाहिये। जौका प्रमाण उसका आधा अर्थात् आधी शुक्ति और फलोंका प्रमाण अपने इच्छानुसार होना चाहिये। दुग्ध, मधु और दहीका प्रमाण घृतके बराबर होना चाहिये। चार स्रुवसे स्रुक्को भरकर आहुति देनेसे पूर्णाहुति होती है। उसके आधे अर्थात् दो स्रुव-परिमाणके द्वारा अथवा अवशिष्ट भागद्वारा हवनको स्विष्टकृत् कहा गया है॥ ५०—५२½॥

शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंमें सदा शिवाग्निमें ही हवन करना चाहिये, किंतु हे महाभाग! मोहन, उच्चाटन आदि [अभिचार-कर्म]-से सम्बन्धित हवन लौकिकाग्निमें

सप्त जिह्वाः प्रकल्प्यैव सर्वकार्याणि कारयेत्।
अथवा सर्वकार्याणि जिह्वामात्रेण सिध्यति॥ ५५

शिवाग्निरिति विप्रेन्द्रा जिह्वामात्रेण साधकः॥ ५६

ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगायै शान्तिकपौष्टिकमोक्षादि-फलप्रदायै स्वाहा॥ ५७

ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा॥ ५८

ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐन्द्रजिह्वायै स्वाहा॥ ५९

ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषणमोहनायै स्वाहा॥ ६०

ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा॥ ६१

ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शान्तिकायै पौष्टिकायै स्वाहा॥ ६२

ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा॥ ६३

ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा॥ ६४

एतावद्वह्निसंस्कारमथवा वह्निकर्मसु।
नैमित्तिके च विधिना शिवाग्निं कारयेत्पुनः॥ ६५

निरीक्षणं प्रोक्षणं ताडनं च षष्ठेन फडन्तेन अभ्युक्षणं चतुर्थेन खननोत्किरणं षष्ठेन पूरणं समीकरणमाद्येन सेचनं वौषडन्तेन कुट्टनं षष्ठेन सम्मार्जनोपलेपने तुरीयेण कुण्डपरिकल्पनं निवृत्त्या त्रिभिरेव कुण्डपरिधानं चतुर्थेन कुण्डार्चनमाद्येन रेखाचतुष्टय-सम्पादनं षष्ठेन फडन्तेन वज्रीकरणं चतुष्पदा-पादनमाद्येन एवं कुण्डसंस्कारमष्टादशविधम्॥ ६६

होते हैं। हे सुव्रत! समस्त कर्मोंमें शिवाग्नि उत्पन्न करके सात जिह्वाओंकी कल्पना करके ही सभी कार्य करने चाहिये अथवा शिवाग्नि जिह्वामात्रसे ही सिद्ध हो जाती है, अतः हे विप्रेन्द्रो! साधकको चाहिये कि जिह्वामात्रसे ही समस्त कार्य सम्पन्न करे॥ ५३—५६॥

[सात जिह्वाओंका स्वरूप इस प्रकार बताया जाता है—] **ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगायै शान्तिकपौष्टिकमोक्षादिफलप्रदायै स्वाहा।**

ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा।

ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐन्द्रजिह्वायै स्वाहा।

ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषणमोहनायै स्वाहा।

ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा।

ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शान्तिकायै पौष्टिकायै स्वाहा।

ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा—ये सात जिह्वामन्त्र हैं और **ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा**—यह प्रधान मन्त्र है॥ ५७—६४॥

इस विधिसे वह्निसंस्कार करना चाहिये। अथवा वह्निकार्योंमें और नैमित्तिक कर्ममें विधिपूर्वक शिवाग्नि उत्पन्न करनी चाहिये। [उसकी विधि इस प्रकार है—] फडन्त षष्ठ मन्त्रसे निरीक्षण, प्रोक्षण और ताड़न; चतुर्थ मन्त्रसे अभ्युक्षण; षष्ठ मन्त्रसे खनन तथा उत्किरण; आद्यमन्त्रसे पूरण तथा समीकरण; वौषडन्त आद्यमन्त्रसे सेचन; षष्ठ मन्त्रसे कुट्टन; तुरीय (चतुर्थ) मन्त्रसे सम्मार्जन तथा उपलेपन; अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन तीन मन्त्रोंसे कुण्डपरिकल्पन; चतुर्थ मन्त्रसे कुण्डका परिधान (मेखलाकरण); आद्य (प्रथम) मन्त्रसे कुण्डका अर्चन फडन्त षष्ठ मन्त्रसे रेखाचतुष्टयकरण और प्रथम मन्त्रसे वज्रीकरण और ऐन्द्राग्न आदि चारों देवोंका स्थापन प्रथम मन्त्रसे—इस प्रकार अठारह प्रकारके इन कुण्डसंस्कारोंको करना

कुण्डसंस्कारानन्तरमक्षपाटनं षष्ठेन विष्टरन्यासमाद्येन वज्रासने वागीश्वर्यावाहनम्॥ ६७

ॐ ह्रीं वागीश्वरीं श्यामवर्णां विशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम्। ऋतुमतीं वागीश्वरशक्तिमावाहयामि॥ ६८

ॐ वागीश्वरीं पूजयामि॥ ६९

ॐ पुनर्वागीश्वरावाहनम्॥ ७०

एकवक्त्रं चतुर्भुजं शुद्धस्फटिकाभं वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटामुकुटमण्डितं सर्वाभरणभूषितमावाहयामि॥ ७१

ॐ ईं वागीश्वराय नमः। आवाहनस्थापनसन्निधानसन्निरोधपूजान्तं वागीश्वरीं सम्भाव्य गर्भाधानवह्निसंस्कारम्॥ ७२

अरणीजनितं कान्तोद्भवं वा अग्निहोत्रजं वा ताम्रपात्रे शरावे वा आनीय निरीक्षणताडनाभ्युक्षणप्रक्षालनमाद्येन क्रव्यादाशिवपरित्यागोऽपि प्रथमेन वह्नेस्त्रैकारणं जठरभ्रूमध्यादावाह्याग्निं त्रैकारणमूर्तावाग्नेयेन उद्दीपनमाद्येन पुरुषेण संहितया धारणा धेनुमुद्रां तुरीयेणावगुण्ठ्य जानुभ्यामवनिं गत्वा शरावोत्थापनं कुण्डोपरि निधाय प्रदक्षिणमावर्त्य तुरीयेणात्मसम्मुखां वागीश्वरीं गर्भनाड्यां गर्भाधानान्तरीयेण कमलप्रदानमाद्येन वौषडन्तेन कुशार्घ्यं दत्त्वा इन्धनप्रदानमाद्येन प्रज्वालनं गर्भाधानं च सद्येनाद्येन पूजनं पुंसवनं वामेन पूजनं द्वितीयेन सीमन्तोन्नयनमघोरेण तृतीयेन पूजनम्॥ ७३

चाहिये॥ ६५-६६॥

कुण्डसंस्कारके पश्चात् षष्ठ मन्त्रसे अक्षपाटन और प्रथम मन्त्रसे विष्टरन्यास करके वज्रासन (हीरेके आसन)-पर भगवती वागीश्वरीका आवाहन करना चाहिये। [वागीश्वरीके आवाहनका मन्त्र इस प्रकार है—] **ॐ ह्रीं वागीश्वरीं श्यामवर्णां विशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम्। ऋतुमतीं वागीश्वरशक्तिमावाहयामि। वागीश्वरीं पूजयामि।** इसके अनन्तर वागीश्वरका आवाहन करना चाहिये। [मन्त्र इस प्रकार है—] **एकवक्त्रं चतुर्भुजं शुद्धस्फटिकाभं वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटामुकुटमण्डितं सर्वाभरणभूषितमावाहयामि। ॐ ईं वागीश्वराय नमः।** इस प्रकार आवाहन, स्थापन, सन्निधान तथा सन्निरोध पूजापर्यन्त करके वागीश्वरीको सत्कृतकर गर्भाधान, वह्निसंस्कार करना चाहिये॥ ६७—७२॥

[संस्कारविधि इस प्रकार है—] अरणीसे उत्पन्न, सूर्यकान्तमणिसे उत्पन्न अथवा अग्निहोत्रसे उत्पन्न अग्निको ताम्रपात्र या मिट्टीके शराव (कसोरा)-में लाकर आद्यमन्त्रसे निरीक्षण, ताड़न, अभ्युक्षण तथा प्रक्षालन करके पुनः आद्य मन्त्रसे ही क्रव्यादांश तथा अशिवका परित्यागकर जठर और भ्रूमध्यसे वह्निके त्रैकारण (त्रिवर्गसाधन)-का आवाहन करके उस आवाहित मूर्तिमें वह्निमन्त्रसे उद्दीपन करके तत्पुरुषमन्त्रसहित आद्यमन्त्रके द्वारा धारणा तथा संहितामन्त्रसे धेनुमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये। तत्पश्चात् चतुर्थ मन्त्रसे अवगुण्ठन करके दोनों घुटनोंको भूमिपर टेककर कसोरेको उठाकर कुण्डके ऊपर रखकर चतुर्थ मन्त्रसे प्रदक्षिणक्रमसे चारों ओर घुमाकर अपने सम्मुख विराजमान वागीश्वरीका ध्यान करके गर्भनालमें गर्भाधानकी रीतिसे वौषडन्त आद्यमन्त्रसे कमल प्रदान करके कुशार्घ्य देकर तथा प्रथम मन्त्रसे ईंधन देकर सद्योजातमन्त्रसे प्रज्वालन तथा गर्भाधान करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम सद्योजातमन्त्रसे पूजन, वामदेवमन्त्रसे पुंसवन, उसी द्वितीय मन्त्रसे पुनः पूजन, अघोरमन्त्रसे सीमन्तोन्नयन और पुनः उसी तृतीय मन्त्रसे पूजन करना चाहिये॥ ७३॥

अवयवव्याप्तिर्वक्त्रोद्घाटनं वक्त्रनिष्कृतिरिति तृतीयेन गर्भजातकर्मपुरुषेण पूजनं तुरीयेण षष्ठेन प्रोक्षणं सूतकशुद्धये चाग्निसूनुरक्षाकुशास्त्रेण वक्त्रेणाऽग्नौ मूलमीशाग्रं नैर्ऋतिमूलं वायव्याग्रं वायव्यमूलमीशाग्रमिति कुशास्तरणमिति पूर्वोक्तमिध्ममग्रमूलघृताक्तं लालापनोदाय षष्ठेन जुहुयात्॥ ७४

पञ्चपूर्वातिक्रमेण परिधिविष्टरन्यासोऽपि आद्येन विष्टरोपरि हिरण्यगर्भहरनारायणानपि पूजयेत्॥ ७५

इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेत्॥ ७६

वज्रावर्तपर्यन्तानपि पूजयेत्॥ ७७

वागीश्वरवागीश्वरीपूजाद्येनमुद्वास्य हुतं विसर्जयेत्॥ ७८

स्रुक्स्रुवसंस्कारमथो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् स्रुक् स्रुवं च हस्तद्वये गृहीत्वा संस्थापनमाद्येन ताडनमपि स्रुक्स्रुवोपरि दर्भानुलेखनमूलमध्यमाग्रेण त्रित्वेन स्रुक्शक्तिं स्रुवमपि शम्भुं दक्षिणपार्श्वे कुशोपरि शक्तये नमः शम्भवे नमः॥ ७९

ततो ह्यन्तिसूत्रेण स्रुक्स्रुवौ तुरीयेण वेष्टयेदर्चयेच्च॥ ८०

धेनुमुद्रां दर्शयित्वा तुरीयेणावगुण्ठ्य षष्ठेन रक्षां विधाय स्रुक्स्रुवसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः॥ ८१

पुनराज्यसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत्॥ ८२

आज्यप्रतापनमैशान्यां वा षष्ठेन वेद्युपरि विन्यस्य घृतपात्रं वितस्तिमात्रं कुशपवित्रं वामहस्ताङ्गुष्ठा-

अंगोंकी व्याप्ति, वक्त्रोद्घाटन और वक्त्रनिष्कृति तृतीय मन्त्रसे करना चाहिये। गर्भजातकर्म तत्पुरुषमन्त्रसे, पूजन चतुर्थ मन्त्रसे, सूतकशुद्धिके लिये प्रोक्षण षष्ठ मन्त्रसे और अग्निरूप पुत्रकी रक्षा कुशास्त्र मन्त्रसे करे। तत्पश्चात् वक्त्रमन्त्रसे अग्निकोणमें कुशमूल, ईशानमें कुशका अग्रभाग, नैर्ऋत्यमें कुशमूल, वायव्यमें अग्रभाग, वायव्यमें कुशमूल और ईशानमें अग्रभाग—इस भाँति पूर्वोक्त रीतिसे कुशास्तरण करके घृतमें भींगी हुई समिधाका अग्निकी लालानिवृत्तिके लिये षष्ठ मन्त्रसे हवन करना चाहिये॥ ७४॥

वामदेव आदि चार मन्त्रोंसे परिधियुक्त विष्टरका स्थापन करके आद्यमन्त्रसे विष्टरके ऊपर ब्रह्मा, शिव तथा नारायणका पूजन करना चाहिये। इसी प्रकार इन्द्र आदि लोकपालों तथा वज्रसे लेकर त्रिशूलपर्यन्त उनके आठ आयुधोंकी भी पूजा करनी चाहिये। वागीश्वर तथा वागीश्वरीकी पूजा आदि करके इन वागीश्वरका उद्वासनकर होमद्रव्यका हवन करना चाहिये॥ ७५—७८॥

इसके पश्चात् स्रुक्-स्रुवका संस्कार बताया जाता है—पूर्वकी भाँति निरीक्षण, प्रोक्षण, ताड़न, अभ्युक्षण आदि करके दोनों हाथोंमें स्रुक्-स्रुव ग्रहणकर प्रथम मन्त्रसे संस्थापन तथा ताड़न करके स्रुक्-स्रुवके ऊपर कुशके मूल, मध्य और अग्रभागसे तीन प्रकारसे अनुलेखन करके स्रुक्को शक्ति और स्रुवको शिव मानकर उन्हें दक्षिण भागमें कुशके ऊपर '**शक्तये नमः**', '**शम्भवे नमः**'—इन मन्त्रोंके द्वारा स्थापित करना चाहिये॥ ७९॥

तदनन्तर समीपवर्ती सूत्रसे स्रुक्-स्रुवको चतुर्थ मन्त्रका उच्चारण करके वेष्टित करना चाहिये और पुनः अर्चन करना चाहिये। इसके बाद धेनुमुद्रा दिखाकर चतुर्थ मन्त्रसे अवगुण्ठन तथा षष्ठ मन्त्रसे रक्षाकर्म सम्पन्न करके स्रुक्-स्रुव संस्कार करना चाहिये॥ ८०-८१॥

आज्यसंस्कार पूर्वमें बताया गया है, पूर्वकी भाँति निरीक्षण, प्रोक्षण, ताड़न, अभ्युक्षण आदि करना चाहिये। इसके बाद षष्ठ मन्त्रसे ईशानकोणमें घृतको तपाकर घृतपात्रको वेदीके ऊपर रखकर वितस्तिमात्र (बारह

नामिकाग्रं गृहीत्वा दक्षिणाङ्गुष्ठानामिकामूलं गृहीत्वाग्निज्वालोत्पवनं स्वाहान्तेन तुरीयेण पुनः षड् दर्भान् गृहीत्वा पूर्ववत्स्वात्मसम्प्लवनं स्वाहान्तेनाद्येन कुशद्वयपवित्रबन्धनं चाद्येन घृते न्यसेदिति पवित्रीकरणम्॥ ८३

दर्भद्वयं प्रगृह्याग्निप्रज्वालनं घृतं त्रिधा वर्तयेत्। सम्प्रोक्ष्याग्नौ निधापयेदिति नीराजनम्॥ ८४

पुनर्दर्भान् गृहीत्वा कीटकादि निरीक्ष्यार्घ्येण सम्प्रोक्ष्य दर्भानग्नौ निधाय इत्यवद्योतनम्॥ ८५

दर्भद्वयं गृहीत्वाग्निज्वालया घृतं निरीक्षयेत्॥ ८६

दर्भेण गृहीत्वा तेनाग्रद्वयेन शुक्लपक्षद्वयेनाद्येनेति कृष्णपक्षसम्पातनं घृतं त्रिभागेन विभज्य स्रुवेणैकभागेनाज्येनाग्नये स्वाहा द्वितीयेनाज्येन सोमाय स्वाहा आज्येन ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा आज्येनाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा॥ ८७

पुनः कुशेन गृहीत्वा संहिताभिमन्त्रेण नमोऽन्तेनाभिमन्त्रयेत्॥ ८८

अभिमन्त्र्य धेनुमुद्राप्रदर्शनकवचावगुण्ठनास्त्रेण रक्षाम्। अथ संस्कृते निधापयेद् आज्यसंस्कारः॥ ८९

आज्येन स्रुग्वदनेन चक्राभिघारणं शक्तिबीजादीशानमूर्तये स्वाहा। पूर्ववत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा अघोरहृदयाय स्वाहा वामदेवाय गुह्याय स्वाहा सद्योजातमूर्तये स्वाहा। इति वक्त्रोद्घाटनम्॥ ९०

ईशानमूर्तये तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय स्वाहा अघोरहृदयाय वामगुह्याय

अंगुल) कुशाके पवित्रकका अग्रभाग अपने वाम हस्तके अँगुष्ठ और अनामिकासे ग्रहण करके तथा दक्षिण हस्तके अँगुष्ठ और अनामिकासे पवित्रकका मूल ग्रहण करके स्वाहान्त चतुर्थ मन्त्रसे अग्निज्वालाका उत्प्लवन करना चाहिये। इसके बाद छः कुश लेकर स्वाहान्त प्रथम मन्त्रसे पूर्वकी भाँति अपने देहमें सम्प्लवन करके दो कुशोंका पवित्रक बनाकर प्रथम मन्त्रसे उसे घृतमें डाल देना चाहिये—यह पवित्रीकरण है॥ ८२-८३॥

घृतप्लुत दो दर्भ लेकर उसे प्रज्वलित करके घृतके ऊपर तीन बार घुमाये और पुनः सम्प्रोक्षण करके अग्निमें डाल दे—यह नीराजन है। पुनः दर्भोंको लेकर कीट आदि देख करके अर्घ्यजलसे सम्प्रोक्षण करके दर्भोंको अग्निमें डाल देना चाहिये—यह अवद्योतन है। दो दर्भ लेकर अग्निमें प्रज्वलित करके घृतको देखे—यह निरीक्षण है॥ ८४—८६॥

इसके बाद अन्य दर्भके साथ दो पवित्रक लेकर उनमें शुक्लपक्षद्वयकी भावना करे तथा उन दोनोंके सहित घृतको सद्योजातमन्त्रसे पृथक् कर दे, शेषको कृष्णपक्षकी भावनासे पृथक् करे; इस प्रकार घीको तीन भागोंमें विभक्त करके स्रुवद्वारा घृतके एक भागको '**अग्नये स्वाहा**', घृतके द्वितीय भागको '**सोमाय स्वाहा**' और घृतके तृतीय भागको '**अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा**' तथा अवशिष्ट घृतको '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—ऐसा कहकर होम करे॥ ८७॥

तत्पश्चात् कुशयुक्त पवित्रक लेकर अन्तमें नमः लगाकर संहिता मन्त्रसे घृतको अभिमन्त्रित करना चाहिये। अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा प्रदर्शित करे। कवचसे अवगुण्ठन और अस्त्रमन्त्रसे रक्षण करना चाहिये, इसके बाद संस्कारित पवित्रकोंको अग्निमें डाल देना चाहिये—यह आज्यसंस्कार है॥ ८८-८९॥

स्रुवमें भरकर लिये गये घृतसे शक्तिबीजमन्त्र (ह्रीं)-के द्वारा आहुति दे—यह चक्राभिघारण है। इसके बाद **ईशानमूर्तये स्वाहा, तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा, अघोरहृदयाय स्वाहा, वामदेवगुह्याय स्वाहा,**

सद्योजातमूर्तये स्वाहा इति वक्त्रसन्धानम्॥ ९१

ईशानमूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा इति वक्त्रैक्यकरणम्॥ ९२

शिवाग्निं जनयित्वैवं सर्वकर्माणि कारयेत्।
केवलं जिह्वया वापि शान्तिकाद्यानि सर्वदा॥ ९३

गर्भाधानादिकार्येषु वह्नेः प्रत्येकमव्यय।
दश आहुतयो देया योनिबीजेन पञ्चधा॥ ९४

शिवाग्नौ कल्पयेद्दिव्यं पूर्ववत्परमासनम्।
आवाहनं तथा न्यासं यथा देवे तथार्चनम्॥ ९५

मूलमन्त्रं सकृज्जप्त्वा देवदेवं प्रणम्य च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा सगर्भं सर्वसम्मतम्॥ ९६

परिषेचनपूर्वं च तदिध्ममभिघार्य च।
जुहुयादग्निमध्ये तु ज्वलितेऽथ महामुने॥ ९७

आघारावपि चाधाय चाज्येनैव तु षण्मुखे।
आज्यभागौ तु जुहुयाद्विधिनैव घृतेन च॥ ९८

चक्षुषी चाज्यभागौ तु चाग्नये च तथोत्तरे।
आत्मनो दक्षिणे चैव सोमायेति द्विजोत्तम॥ ९९

प्रत्यङ्मुखस्य देवस्य शिवाग्नेर्ब्रह्मणः सुत।
अक्षि वै दक्षिणं चैव चोत्तरं चोत्तरं तथा॥ १००

दक्षिणं तु महाभाग भवत्येव न संशयः।
आज्येनाहुतयस्तत्र मूलेनैव दशैव तु॥ १०१

चरुणा च यथावद्धि समिद्भिश्च तथा स्मृतम्।
पूर्णाहुतिं ततो दद्यान्मूलमन्त्रेण सुव्रत॥ १०२

सर्वावरणदेवानां पञ्चपञ्चैव पूर्ववत्।
ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च॥ १०३

सद्योजातमूर्तये स्वाहा—इन [पाँच] मन्त्रोंसे आहुति दे—यह वक्त्रोद्घाटन है। **ईशानमूर्तये तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा, तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय स्वाहा, अघोरहृदयाय वामगुह्याय सद्योजातमूर्तये स्वाहा**—इन मन्त्रोंसे आहुति दे—यह वक्त्रसन्धान है। **ईशानमूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा**—इस मन्त्रसे आहुति दे—यह वक्त्रैक्यकरण है॥ ९०—९२॥

इस प्रकार शिवाग्नि उत्पन्न करके समस्त कार्य सम्पन्न करने चाहिये अथवा केवल अग्निजिह्वासे भी शान्तिक आदि कार्य सदा करने चाहिये। हे अव्यय! गर्भाधान आदि प्रत्येक संस्कारोंमें योनिबीजसे अग्निमें दस-दस या पाँच-पाँच आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये॥ ९३-९४॥

शिवाग्निमें पूर्वकी भाँति परम दिव्य आसन कल्पित करना चाहिये और उसपर देवका आवाहन, स्थापन तथा पूजन करना चाहिये। हे महामुने! मूलमन्त्रका एक बार जप करके देवदेवको प्रणामकर फिर तीन बार सर्वसम्मत सगर्भ प्राणायाम करके परिषेचनपूर्वक उस समिधाको आघारहोमको उद्देश्य करके प्रज्वलित अग्निके मध्यमें हवन करना चाहिये॥ ९५—९७॥

स्रुवमें दो-दो आघारहोम-निमित्तक तथा आज्यभाग-होमनिमित्तक आहुतियाँ लेकर विधिपूर्वक सद्योजात आदि छः मन्त्ररूप मुखवाली अग्निमें उनका हवन करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! **अग्नये स्वाहा**—ऐसा कहकर अपने उत्तरमें एवं **सोमाय स्वाहा**—ऐसा कहकर अपने दक्षिणमें नेत्रस्वरूप दोनों आज्यभागोंकी आहुतियाँ देनी चाहिये। हे ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार! हे महाभाग! पश्चिमकी ओर मुखवाले शिवाग्निरूप महादेवका दाहिना नेत्र उत्तरकी ओर तथा बायाँ नेत्र दक्षिणकी ओर होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९८—१००१/२॥

घृत, चरु तथा समिधाओंसे मूलमन्त्रके द्वारा यथाविधि दस आहुतियाँ देनी चाहिये—ऐसा कहा गया है। हे सुव्रत! तदनन्तर मूल मन्त्रसे पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिये। ईशान आदि मन्त्रोंके क्रमसे तथा

प्रायश्चित्तमघोरेण स्वेष्टान्तं पूर्ववत्स्मृतम्।
त्रिप्रकारं मया प्रोक्तमग्निकार्यं सुशोभनम्॥ १०४

शक्तिबीज (ह्रीं)-के क्रमसे सभी आवरण देवताओंके लिये पूर्वकी भाँति पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। अघोरमन्त्रसे प्रायश्चित्तहोम तथा स्विष्टकृत्पर्यन्त पूर्वकी भाँति कहा गया है। इस प्रकार मैंने अत्यन्त सुन्दर तीन प्रकारके अग्निकार्यका वर्णन कर दिया॥ १०१—१०४॥

यथावसरमेवं हि कुर्यान्नित्यं महामुने।
जीवितान्ते लभेत्स्वर्गं लभते अग्निदीपनम्॥ १०५

नरकं चैव नाप्नोति यस्य कस्यापि कर्मणः।
अहिंसकं चरेद्धोमं साधको मुक्तिकाङ्क्षकः॥ १०६

हृदिस्थं चिन्तयेदग्निं ध्यानयज्ञेन होमयेत्।
देहस्थं सर्वभूतानां शिवं सर्वजगत्पतिम्॥ १०७

तं ज्ञात्वा होमयेद्भक्त्या प्राणायामेन नित्यशः।
बाह्यहोमप्रदाता तु पाषाणे दर्दुरो भवेत्॥ १०८

हे महामुने! जो [मनुष्य] यथासमय नित्य इसे करता है, वह मृत्युके अनन्तर स्वर्ग प्राप्त करता है, अग्निके समान दीप्ति प्राप्त करता है। किसी भी प्रकारके कर्मके लिये उसे नरककी प्राप्ति नहीं होती है। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)-की इच्छावाला अहिंसक (परनाशशून्य) होम करे और मुक्तिकी इच्छावाला शिवाग्निको अपने हृदयमें स्थित समझकर चिन्तन करे एवं ध्यानयज्ञके द्वारा हवन करे। सभी प्राणियोंके देहमें स्थित तथा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी उन शिवको जानकर प्राणायामके द्वारा भक्तिपूर्वक प्रतिदिन हवन करना चाहिये। शिवध्यानसे रहित होकर होम करनेवाला पाषाणमें मेढक होता है॥ १०५—१०८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे शिवाग्निकार्यवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'शिवाग्निकार्यवर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

शिवलिङ्गमें अघोरार्चनकी विधि और उसका माहात्म्य

शैलादिरुवाच

अथवा देवमीशानं लिङ्गे सम्पूजयेच्छिवम्।
ब्राह्मणः शिवभक्तश्च शिवध्यानपरायणः॥ १
अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम्।
उद्धूलयेद्धि सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम्॥ २
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्री ह्युदङ्मुखः।
अथों नमः शिवायेति तनुं कृत्वात्मनः पुनः॥ ३
देवं च तेन मन्त्रेण पूजयेत्प्रणवेन च।
सर्वस्मादधिका पूजा अघोरेशस्य शूलिनः॥ ४

शैलादि बोले—[हे सनत्कुमार!] शिवभक्त ब्राह्मणको चाहिये कि भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर होकर शिवलिङ्गमें परमेश्वर शिवका विधिवत् पूजन करे। **'अग्निरिति०'**—इस मन्त्रसे अग्निहोत्रजन्य भस्म लेकर पादतलसे मस्तकपर्यन्त सभी अंगोंमें उसे लगाये। इसके बाद उत्तराभिमुख हो ब्रह्मसूत्री होकर ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे। तत्पश्चात् **'ॐ नमः शिवाय'**—इस मन्त्रसे अपने देहको शुद्ध करके मूलमन्त्र तथा प्रणवसे शिवका पूजन करना चाहिये; अघोरेश्वर शिवकी पूजा सबसे बढ़कर है॥ १—४॥

सामान्यं यजनं सर्वमग्निकार्यं च सुव्रत।
मन्त्रभेदः प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च॥ ५

हे सुव्रत! समस्त पूजन तथा अग्निकार्य पूर्वकी भाँति हैं। उन प्रभुके मन्त्रोंमें भेद तथा भगवान् अघोरका

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ ६

अघोरेभ्यः प्रशान्तहृदयाय नमः। अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा। घोरघोरतरेभ्यः ज्वाला-मालिनीशिखायै वषट्। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः पिङ्गलकवचाय हुम्। नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वषट्। सहस्त्राक्षाय दुर्भेदाय पशुपतास्त्राय हुं फट्।

स्नात्वाचम्य तनुं कृत्वा समभ्युक्ष्याघमर्षणम्।
तर्पणं विधिना चार्घ्यं भानवे भानुपूजनम्॥ ७

समं चाघोरपूजायां मन्त्रमात्रेण भेदितम्।
मार्गशुद्धिस्तथा द्वारि पूजां वास्त्वधिपस्य च॥ ८

कृत्वा करं विशोध्याग्रे स शुभासनमास्थितः।
नासाग्रकमले स्थाप्य दग्धाक्षः क्षुभिकाग्निना॥ ९

वायुना प्रेर्य तद्भस्म विशोध्य च शुभाम्भसा।
शक्त्यामृतमये ब्रह्मकलां तत्र प्रकल्पयेत्॥ १०

अघोरं पञ्चधा कृत्वा पञ्चाङ्गसहितं पुनः।
इत्थं ज्ञानक्रियामेवं विन्यस्य च विधानतः॥ ११

न्यासस्त्रिनेत्रसहितो हृदि ध्यात्वा वरासने।
नाभौ वह्निगतं स्मृत्वा भ्रूमध्ये दीपवत्प्रभुम्॥ १२

शान्त्या बीजाङ्कुरानन्तधर्माद्यैरपि संयुते।
सोमसूर्याग्निसम्पन्ने मूर्तित्रयसमन्विते॥ १३

वामादिभिश्च सहिते मनोन्मन्याप्यधिष्ठिते।
शिवासनेत्ममूर्तिस्थमक्षयाकाररूपिणम् ॥ १४

अष्टत्रिंशत्कलादेहं त्रितत्त्वसहितं शिवम्।
अष्टादशभुजं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्॥ १५

ध्यान अब कहा जायगा। मन्त्र इस प्रकार है— **अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः। अघोरेभ्यः प्रशान्तहृदयाय नमः। अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा। घोरघोरतरेभ्यः ज्वालामालिनीशिखायै वषट्। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः पिङ्गलकवचाय हुम्। नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वषट्। सहस्त्राक्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फट्**—[इन छः मन्त्रोंसे अंगन्यास करे]। पूजाविधि इस प्रकार है—स्नान करके आचमनकर शरीरका मार्जन, अघमर्षण, तर्पण, विधिपूर्वक सूर्यार्घ्य तथा सूर्यपूजन पूर्वकी भाँति करे; अघोर पूजामें केवल मन्त्रका भेद है॥ ५—७॥

मार्गशुद्धि, द्वारपूजा तथा वास्तुपतिकी पूजा करके पूजकको चाहिये कि पवित्र आसनपर बैठ जाय और सर्वप्रथम हाथ शुद्ध करके नासाग्रके पास करकमलमें भस्म स्थापित करके क्षुभिकाग्नि (विरक्तिरूप अग्नि)-से समस्त विषयोंको दग्ध करके उस भस्मको वायुसे प्रेरितकर पवित्र जलसे उसका शोधनकर ब्रह्ममय उस भस्ममें शक्तिसहित ब्रह्मकलाकी भावना करे॥ ८—१०॥

अघोरमन्त्रको पाँच भागोंमें विभक्त करके उसे पंचांगभस्मविलेपनयुक्त करना चाहिये। इस प्रकार ज्ञानयुक्त क्रियाका विधानपूर्वक न्यास करके अघोरमूर्तिसहित न्यास करना चाहिये और हृदयमें श्रेष्ठ आसनपर विराजमानरूपमें ध्यान करके नाभिमें अग्निके मध्य स्थित स्मरण करके भ्रूमध्यमें दीपशिखाके आकारवाले प्रभुका चिन्तन करना चाहिये॥ ११-१२॥

शान्तिसहित बीज, अंकुर, अनन्त तथा धर्म आदिसे युक्त, सोम, सूर्य तथा अग्निसे सम्पन्न, तीन मूर्तियोंसे समन्वित; वामा आदि आठ शक्तियोंसे संयुक्त तथा मनोन्मनीसे भी अधिष्ठित शिवासनपर अघोरमूर्ति परमेश्वर शिवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे आत्ममूर्तिमें स्थित हैं, अक्षयाकार स्वरूप हैं, अड़तीस कलाओंसे परिपूर्ण विग्रहवाले हैं, तीन तत्त्वोंसे युक्त हैं, अठारह भुजाओंसे सम्पन्न हैं, गजचर्मका उत्तरीय धारण

सिंहाजिनाम्बरधरमघोरं परमेश्वरम्।
द्वात्रिंशाक्षररूपेण द्वात्रिंशच्छक्तिभिर्वृतम्॥ १६
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्कृतम्।
कपालमालाभरणं सर्पवृश्चिकभूषणम्॥ १७
पूर्णेन्दुवदनं सौम्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
चन्द्ररेखाधरं शक्त्या सहितं नीलरूपिणम्॥ १८
हस्ते खड्गं खेटकं पाशमेके
रत्नैश्चित्रं चाङ्कुशं नागकक्षाम्।
शरासनं पाशुपतं तथास्त्रं
दण्डं च खट्वाङ्गमथापरे च॥ १९
तन्त्रीं च घण्टां विपुलं च शूलं
तथापरे डामरुकं च दिव्यम्।
वज्रं गदां टङ्कमेकं च दीप्तं
समुद्गरं हस्तमथास्य शम्भोः॥ २०
वरदाभयहस्तं च वरेण्यं परमेश्वरम्।
भावयेत्पूजयेच्चापि वह्नौ होमं च कारयेत्॥ २१

किये हुए हैं, सिंहचर्मको वस्त्ररूपमें धारण किये हुए हैं, बत्तीस अक्षरोंके रूपमें बत्तीस शक्तियोंसे आवृत हैं, समस्त प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत हैं, सभी देवता उन्हें नमस्कार कर रहे हैं, वे नरमुण्डकी माला पहने हुए हैं, सर्पों तथा बिच्छुओंको आभूषणरूपमें धारण किये हुए हैं, पूर्णचन्द्रके समान उनका मुखमण्डल है, वे सौम्य स्वभाववाले हैं, करोड़ों चन्द्रमाके तुल्य कान्तिसे युक्त हैं, मस्तकपर चन्द्रकला धारण किये हुए हैं, शक्तिसहित सुशोभित हो रहे हैं, नीलवर्णवाले हैं, उनकी दाहिनी ओरकी आठ भुजाओंमें खड्ग-खेटक-पाश-रत्नमय अंकुश-नागकक्षा-शरासनयुक्त पाशुपतास्त्र-दण्ड और खट्वांग तथा बायीं ओरकी आठ भुजाओंमें तन्त्री-घण्टा-विशाल शूल-दिव्य डमरू-वज्र-गदा-टंक और प्रदीप्त मुद्गर हैं। वे वरेण्य परमेश्वर शेष दो हाथोंमें वरद और अभय मुद्रा धारण किये हुंए हैं—इस प्रकारकी भावना करनी चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये और अन्तमें अग्निमें हवन करना चाहिये॥ १३—२१॥

होमश्च पूर्ववत्सर्वो मन्त्रभेदश्च कीर्तितः।
अष्टपुष्पादि गन्धादि पूजास्तुतिनिवेदनम्॥ २२
अन्तर्बलिं च कुण्डस्य वाह्नेयेन विधानतः।
मण्डलं विधिना कृत्वा मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्॥ २३
रुद्रेभ्यो मातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो विश्वगणेभ्यः क्षेत्रपालेभ्यः अथ वायुवरुणदिग्भागे क्षेत्रपालबलिं क्षिपेत्॥
अर्घ्यं गन्धं पुष्पं च धूपं दीपं च सुव्रताः।
नैवेद्यं मुखवासादि निवेद्यं वै यथाविधि॥ २४
विज्ञाप्यैवं विसृज्याथ अष्टपुष्पैश्च पूजनम्।
सर्वसामान्यमेतद्धि पूजायां मुनिपुङ्गवाः॥ २५
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चादि सुव्रत।
अघोरार्चाविधानं च लिङ्गे वा स्थण्डिलेऽपि वा॥ २६
स्थण्डिलात्कोटिगुणितं लिङ्गार्चनमनुत्तमम्।
लिङ्गार्चनरतो विप्रो महापातकसम्भवैः॥ २७

सम्पूर्ण होमकर्म पूर्ववत् होता है, केवल मन्त्रोंमें भेद कहा गया है। अष्टपुष्पांजलि, गन्ध, पुष्पके साथ पूजा, स्तुति, निवेदन तथा कुण्डकी अन्तर्बलि (होम) वह्निपुराणोक्त विधानसे करना चाहिये। पुनः विधिपूर्वक मण्डलकी रचना करके यथाक्रम **रुद्रेभ्यो मातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो विश्वगणेभ्यः क्षेत्रपालेभ्यः [नमः]**—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके वायव्य तथा पश्चिम दिशामें क्षेत्रपालबलि प्रदान करनी चाहिये। [सूतजी बोले—] हे सुव्रतो! तदनन्तर अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मुखवास आदि विधिपूर्वक निवेदित करना चाहिये। ये सब उपचार समर्पित करके अष्टपुष्पांजलियोंके द्वारा विसर्जनकर प्रार्थना करनी चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठो! पूजामें यह सब सामान्य विधि है। [शैलादि बोले—] हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें अघोरपूजनका विधान कहा है। शिवलिङ्ग अथवा स्थण्डिलमें भी अघोरपूजनका विधान है, किंतु स्थण्डिलकी अपेक्षा लिङ्गमें पूजन करोड़ों गुना

पापैरपि न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा।
लिङ्गस्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम्॥ २८

अर्चनादधिकं नास्ति ब्रह्मपुत्र न संशयः।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चनमुत्तमम्॥ २९

वर्षकोटिशतेनापि विस्तरेण न शक्यते॥ ३०

श्रेष्ठ होता है। लिङ्गार्चनमें संलग्न विप्र महापातकोंके द्वारा लगनेवाले पापोंसे भी कमलके पत्रपर स्थित जलकी भाँति लिप्त नहीं होता है। लिङ्गका दर्शन पुण्यप्रद होता है, दर्शनसे अधिक उत्तम लिङ्गका स्पर्श है, किंतु लिङ्गार्चनसे बढ़कर कुछ भी नहीं है, हे ब्रह्मपुत्र! इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार मैंने संक्षेपमें उत्तम अघोरार्चनका वर्णन कर दिया; करोड़ों वर्षोंमें भी विस्तारके साथ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ २२—३०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अघोरार्चनवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अघोरार्चनवर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

राजाओंको विजयप्राप्ति करानेवाले विजयमण्डलके निर्माण तथा पूजनकी विधि एवं जयाभिषेकका वर्णन; स्वायम्भुव मनु और विभिन्न देवताओंके जयाभिषेकका विवरण

ऋषय ऊचुः

प्रभावो नन्दिनश्चैव लिङ्गपूजाफलं श्रुतम्।
श्रुतिभिः सम्मितं सर्वं रोमहर्षण सुव्रत॥ १

जयाभिषेक ईशेन कथितो मनवे पुरा।
हिताय मेरुशिखरे क्षत्रियाणां त्रिशूलिना॥ २

तत्कथं षोडशविधं महादानं च शोभनम्।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत बुद्धिमतां वर॥ ३

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धं पुरा कृत्वा मनुः स्वायम्भुवः प्रभुः।
मेरुमासाद्य देवेशमस्तवीन्नीललोहितम्॥ ४

तपसा च विनीताय प्रहृष्टः प्रददौ भवः।
दिव्यं दर्शनमीशानस्तेनापश्यत्तमव्ययम्॥ ५

नत्वा सम्पूज्य विधिना कृताञ्जलिपुटः स्थितः।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाच च ननाम च॥ ६

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हे सुव्रत! हमलोगोंने [भगवान्] नन्दीका प्रभाव तथा वेदप्रतिपादित लिङ्गपूजाका फल—यह सब [आपसे] सुन लिया॥ १॥

त्रिशूलधारी महेश्वर शिवने क्षत्रियोंके कल्याणके लिये पूर्व कालमें मेरुपर्वतके शिखरपर स्वायम्भुव मनुको जयाभिषेकका उपदेश किया था, उसे बतायें; और हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सूतजी! उत्तम षोडशविध महादानका विधान क्या है—यह सब आप कृपापूर्वक हमलोगोंको बतायें॥ २-३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें प्रभु स्वायम्भुव मनुने जीवच्छ्राद्ध करके मेरुशिखरपर पहुँचकर देवेश्वर नीललोहितका स्तवन किया था॥ ४॥

तब उनकी तपस्यासे भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और उन्होंने उन विनम्र मनुको दिव्य दृष्टि प्रदान की; फलतः उन्होंने अव्यय शिवको देखा और उन्हें प्रणाम करके विधिवत् पूजा करके दोनों हाथ जोड़े हुए वे स्थित हो गये। मनुने शिवजीको पुनः प्रणाम किया और हर्षयुक्त गद्गद वाणीमें उनसे कहा—॥ ५-६॥

देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर।
जीवच्छ्राद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम्॥ ७
पूजितश्च ततो देवो दृष्टश्चैव मयाधुना।
शक्राय कथितं पूर्वं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ ८
जयाभिषेकं देवेश वक्तुमर्हसि मे प्रभो।

सूत उवाच

तस्मै देवो महादेवो भगवान्नीललोहितः॥ ९
जयाभिषेकमखिलमवदत्परमेश्वरः ।

श्रीभगवानुवाच

जयाभिषेकं वक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया॥ १०
अपमृत्युजयार्थं च सर्वशत्रुजयाय च।
युद्धकाले तु सम्प्राप्ते कृत्वैवमभिषेचनम्॥ ११
स्वपतिं चाभिषिच्यैव गच्छेद्योद्धुं रणाजिरे।
विधिना मण्डपं कृत्वा प्रपां वा कूटमेव वा॥ १२
नवधा स्थापयेद्वह्निं ब्राह्मणो वेदपारगः।
ततः सर्वाभिषेकार्थं सूत्रपातं च कारयेत्॥ १३
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः।
सहस्राणां द्वयं तत्र शतानां च चतुष्टयम्॥ १४
शेषमेव शुभं कोष्ठं तेषु कोष्ठं तु संहरेत्।
बाह्ये वीथ्यां पदं चैकं समन्तादुपसंहरेत्॥ १५
अङ्गसूत्राणि सङ्गृह्य विधिना पृथगेव तु।
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः॥ १६
प्रागाद्यं दक्षिणाद्यं च षट्त्रिंशत्संहरेत्क्रमात्।
प्रागाद्याः पङ्क्तयः सप्त दक्षिणाद्यास्तथा पुनः॥ १७
तस्मादेकोनपञ्चाशत्पङ्क्तयः परिकीर्तिताः।
नव पङ्क्तीर्हरेन्मध्ये गन्धगोमयवारिणा॥ १८
कमलं चालिखेत्तत्र हस्तमात्रेण शोभनम्।
अष्टपत्रं सितं वृत्तं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥ १९

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे भुवनेश्वर! आपको नमस्कार है। हे महादेव! आपकी कृपासे मैंने अपना जीवच्छ्राद्ध कर लिया। मैंने आपकी पूजा की, उससे मुझे इस समय आप प्रभुका दर्शन प्राप्त हुआ है। हे देवेश! आपने प्राचीन कालमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाले जयाभिषेकका उपदेश इन्द्रको किया था; हे प्रभो! उसे मुझे भी बतानेकी कृपा कीजिये॥ ७-८$^1/_2$॥

सूतजी बोले—तदनन्तर नीललोहित भगवान् परमेश्वर महादेवने उन मनुको सम्पूर्ण जयाभिषेकका उपदेश किया॥ ९$^1/_2$॥

श्रीभगवान् बोले—राजाओंके हितकी कामनासे, अकाल मृत्युसे बचने तथा सभी शत्रुओंको जीतनेके लिये मैं आपसे जयाभिषेकका वर्णन करूँगा। युद्ध-काल उपस्थित होनेपर यथाविधि जयाभिषेक करके तथा अपने स्वामी राजसेनाधिपतिका अभिषेक करके ही युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें जाना चाहिये॥ १०-११$^1/_2$॥

विधिपूर्वक मण्डप, पानीयशाला तथा निश्चल स्थान बनाकर वेदके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको नौ प्रकारकी वह्निकी स्थापना करनी चाहिये। तदनन्तर सम्पूर्ण अभिषेकके लिये मण्डपमें रेखाकरण करना चाहिये॥ १२-१३॥

पूर्वसे पश्चिम तथा दक्षिणसे उत्तरकी ओर रँगे हुए सूतसे रेखाएँ बनायें, जिससे दो हजार चार सौ कोष्ठ होंगे। सभी शुभ कोष्ठोंको बनाकर उनमेंसे शेष शुभ कोष्ठोंको लेकर बाहरवाली पंक्तिमें सब ओरसे एक-एक पदको ले॥ १४-१५॥

इसके बाद अंगसूत्र लेकर विधिपूर्वक पृथक् प्रागाद्य तथा दक्षिणाद्य रँगा हुआ सूत डालना चाहिये; प्रागाद्य तथा दक्षिणाद्य छत्तीस रेखाएँ बनानी चाहिये। पुनः प्रागाद्य सात पंक्तियाँ और दक्षिणाद्य सात पंक्तियाँ बनाये, इस प्रकार उनचास पंक्तियाँ कही गयी हैं। उसके मध्य भागमें नौ पंक्तियाँ ग्रहण करनी चाहिये। गन्ध तथा गोमययुक्त जलसे लीपकर उसमें एक हाथ

अष्टाङ्गुलप्रमाणेन कर्णिकाहेमसन्निभा।
चतुरङ्गुलमानेन केसरस्थानमुच्यते॥ २०

प्रमाणके सुन्दर, अष्टदलोंवाले, श्वेत, गोलाकार तथा कर्णिका-केसरसे युक्त कमलकी रचना करनी चाहिये। कर्णिका आठ अंगुल प्रमाणकी तथा सुवर्णके समान होनी चाहिये; केसरका स्थान चार अंगुल प्रमाणका बताया गया है॥ १६—२०॥

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च यथाक्रमम्।
आग्नेयादिषु कोणेषु स्थापयेत्प्रणवेन तु॥ २१

अव्यक्तादीनि वै दिक्षु गात्राकारेण वै न्यसेत्।
अव्यक्तं नियतः कालः काली चेति चतुष्टयम्॥ २२

सितरक्तहिरण्याभकृष्णा धर्मादयः क्रमात्।
हंसाकारेण वै गात्रं हेमाभासेन सुव्रताः॥ २३

आग्नेय आदि कोणोंमें प्रणव मन्त्रके द्वारा क्रमानुसार धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्यकी स्थापना करनी चाहिये। साथ ही चारों दिशाओंमें अव्यक्त, नियत, काल और कालीको बाह्य पत्राकाररूपमें स्थापित करना चाहिये। हे सुव्रतो! धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य—ये चारों क्रमसे श्वेत, रक्त, स्वर्णकी आभावाले तथा कृष्णवर्णवाले होने चाहिये और गात्र (बाह्यपत्र) हंसाकार तथा सुवर्णसदृश होना चाहिये॥ २१—२३॥

आधारशक्तिमध्ये तु कमलं सृष्टिकारणम्।
बिन्दुमात्रं कलामध्ये नादाकारमतः परम्॥ २४

नादोपरि शिवं ध्यायेदोङ्काराख्यं जगद्गुरुम्।
मनोन्मनीं च पद्माभं महादेवं च भावयेत्॥ २५

वामादयः क्रमेणैव प्रागाद्याः केसरेषु वै।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली विकरणी तथा॥ २६

बला प्रमथिनी देवी दमनी च यथाक्रमम्।
वामदेवादिभिः सार्धं प्रणवेनैव विन्यसेत्॥ २७

आधारशक्तिके मध्यमें सृष्टिकारणरूप कमलकी तथा कलामध्यमें बिन्दुमात्र नादाकारकी कल्पना करे; तत्पश्चात् उस नादके ऊपर ओंकारसंज्ञक जगद्गुरु शिवका ध्यान करना चाहिये और मनोन्मनी तथा पद्मकी आभावाले महादेवकी भावना करनी चाहिये। तदनन्तर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी और सर्वभूतदमनी—इन वामा आदि आठ शक्तियोंका वामदेव आदि अष्ट शिव-मूर्तियोंके साथ प्रणवके उच्चारणपूर्वक पूर्वादिके क्रमसे केसरोंमें न्यास करना चाहिये॥ २४—२७॥

नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने॥ २८

रुद्राय कालरूपाय कलाविकरणाय च।
बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च॥ २९

मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमो नमः।
मन्त्रैरेतैर्यथान्यायं पूजयेत्परिमण्डलम्॥ ३०

'नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने॥ रुद्राय कालरूपाय कलाविकरणाय च। बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च॥ मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमो नमः।'—इन मन्त्रोंसे विधानके अनुसार परिमण्डलका पूजन करना चाहिये॥ २८—३०॥

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु॥ ३१

तृतीयावरणे चैव चतुर्विंशदनुक्रमात्।
पिशाचवीथिर्वै मध्ये नाभिवीथिः समन्ततः॥ ३२

मन्त्रैरेतैर्यथान्यायं पिशाचानां प्रकीर्तिता।
अष्टोत्तरसहस्रं तु पदमष्टारसंयुतम्॥ ३३

प्रथम आवरणका वर्णन कर दिया गया; अब द्वितीय आवरणके विषयमें सुनिये। द्वितीय आवरणमें कुल सोलह शक्तियाँ होती हैं और तृतीय आवरणमें क्रमसे चौबीस शक्तियाँ होती हैं। मध्यमें पिशाचवीथि और चारों ओर नाभिवीथि है; यह पिशाचोंकी वीथि कही गयी है, इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंसे इनकी सम्यक् पूजा करनी चाहिये॥ ३१-३२½॥

तेषु तेषु पृथक्त्वेन पदेषु कमलं क्रमात्।
कल्पयेच्छालिनीवारगोधूमैश्च यवादिभिः॥ ३४

तण्डुलैश्च तिलैर्वाथ गौरसर्षपसंयुतैः।
अथवा कल्पयेदेतैर्यथाकालं विधानतः॥ ३५

अष्टपत्रं लिखेत्तेषु कर्णिकाकेसरान्वितम्।
शालीनामाढकं प्रोक्तं कमलानां पृथक् पृथक्॥ ३६

तण्डुलानां तदर्धं स्यात्तदर्धं च यवादयः।
द्रोणं प्रधानकुम्भस्य तदर्धं तण्डुलाः स्मृताः॥ ३७

तिलानामाढकं मध्ये यवानां च तदर्धकम्।
अथाम्भसा समभ्युक्ष्य कमलं प्रणवेन तु॥ ३८

तेषु सर्वेषु विधिना प्रणवं विन्यसेत्क्रमात्।
एवं समाप्य चाभ्युक्ष्य पदसाहस्रमुत्तमम्॥ ३९

कलशानां सहस्राणि हैमानि च शुभानि च।
उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राजतानि वा॥ ४०

ताम्रजानि यथान्यायं प्रणवेनार्घ्यवारिणा।
द्वादशाङ्गुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम्॥ ४१

वर्तितं तु तदर्धेन नाभिस्तस्य विधीयते।
कण्ठं तु द्व्यङ्गुलोत्सेधं विस्तरं चतुरङ्गुलम्॥ ४२

ओष्ठं च द्व्यङ्गुलोत्सेधं निर्गमं द्व्यङ्गुलं स्मृतम्।
तत्तद्वै द्विगुणं दिव्यं शिवकुम्भे प्रकीर्तितम्॥ ४३

यवमात्रान्तरं सम्यक्तन्तुना वेष्टयेद्धि वै।
अवगुण्ठ्य तथाभ्युक्ष्य कुशोपरि यथाविधि॥ ४४

पूर्ववत्प्रणवेनैव पूरयेद्गन्धवारिणा।
स्थापयेच्छिवकुम्भाढ्यं वर्धनीं च विधानतः॥ ४५

मध्यपद्मस्य मध्ये तु सकूर्चं साक्षतं क्रमात्।
आवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेन तु॥ ४६

[अब कलशस्थापनकी विधि बतायी जा रही है—] अष्टकोणीय एक हजार आठ पद वहाँ परिमण्डलमें बनाने चाहिये। तत्पश्चात् उन-उन पदोंमें अलग-अलग क्रमसे कर्णिका तथा केसरसे युक्त अष्टदल कमलको शालि (धान), नीवार, गोधूम, यव, तण्डुल, तिल, श्वेत सर्षप (सरसों)-के द्वारा निर्मित करना चाहिये; अथवा समयसे इनमें जो उपलब्ध हो जाय, उसीसे विधानपूर्वक कमलकी रचना करनी चाहिये। प्रत्येक कमलके लिये शालि-धानका परिमाण एक आढक बताया गया है; तण्डुलका परिमाण उसका आधा और जौ आदिका परिमाण उसका भी आधा होना चाहिये। प्रधान कुम्भका प्रमाण एक द्रोण होना चाहिये। इसके लिये चावल उसका आधा बताया गया है। तिलका परिमाण एक आढक और जौका परिमाण उसका आधा होना चाहिये॥ ३३—३७$^1/_2$॥

इस प्रकार कमलकी रचना करके जलसे प्रणवके द्वारा उसका प्रोक्षणकर उन सबमें विधिपूर्वक क्रमसे प्रणवका न्यास करना चाहिये। ऐसा करनेके अनन्तर पवित्र सभी हजार पदोंका प्रोक्षण करके बताये गये लक्षणोंवाले स्वर्ण, रजत या ताम्रके हजार शुभ कलशोंको व्यवस्थित कराना चाहिये और प्रणवका उच्चारण करके अर्घ्य-जलसे प्रोक्षण करना चाहिये॥ ३८—४०$^1/_2$॥

[अब कलशका मान निरूपित किया जाता है—] कलशके उदरका विस्तार बारह अंगुलका वृत्ताकार बताया गया है। उसकी नाभि छः अंगुलकी होनी चाहिये। कलशका कण्ठ दो अंगुल ऊँचा तथा चार अंगुल चौड़ा होना चाहिये। उसका ओष्ठ दो अंगुल ऊँचा तथा निर्गम (जल निकलनेका मार्ग) दो अंगुल प्रमाणका बताया गया है। दिव्य शिवकुम्भ उन-उन प्रमाणोंसे दूने प्रमाणका बताया गया है। कलशको जौके बराबर मोटे सूत्रसे भली-भाँति वेष्टित कर देना चाहिये। इसके बाद अवगुण्ठन तथा अभ्युक्षण करके कुशके ऊपर रखकर विधिपूर्वक पूर्वकी भाँति प्रणवमन्त्रका उच्चारण करके गन्धयुक्त जलसे कलशको पूरित करे और कूर्च तथा अक्षतसहित मध्यपद्मके ऊपर शिवकुम्भको

हैमेन चित्ररत्नेन सहस्रकलशं पृथक्।
शिवकुम्भे शिवं स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च॥ ४७

विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ४८

मन्त्रेणानेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम्।
वर्धन्यां देवि गायत्र्या देवीं संस्थाप्य पूजयेत्॥ ४९

गणाम्बिकायै विद्महे महातपायै धीमहि।
तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥ ५०

प्रथमावरणे चैव वामाद्याः परिकीर्तिताः।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ५१

शक्तयः षोडशैवात्र पूर्वाद्यन्तेषु सुव्रत।
ऐन्द्रव्यूहस्य मध्ये तु सुभद्रां स्थाप्य पूजयेत्॥ ५२

भद्रामाग्नेयचक्रे तु याम्ये तु कनकाण्डजाम्।
अम्बिकां नैर्ऋते व्यूहे मध्यकुम्भे तु पूजयेत्॥ ५३

श्रीदेवीं वारुणे भागे वागीशां वायुगोचरे।
गोमुखीं सौम्यभागे तु मध्यकुम्भे तु पूजयेत्॥ ५४

रुद्रव्यूहस्य मध्ये तु भद्रकर्णां समर्चयेत्।
ऐन्द्राग्निविदिशोर्मध्ये पूजयेदणिमां शुभाम्॥ ५५

याम्यपावकयोर्मध्ये लघिमां कमले न्यसेत्।
राक्षसान्तकयोर्मध्ये महिमां मध्यतो यजेत्॥ ५६

वरुणासुरयोर्मध्ये प्राप्तिं वै मध्यतो यजेत्।
वरुणानिलयोर्मध्ये प्राकाम्यं कमले न्यसेत्॥ ५७

वित्तेशानिलयोर्मध्ये ईशित्वं स्थाप्य पूजयेत्।
वित्तेशेशानयोर्मध्ये वशित्वं स्थाप्य पूजयेत्॥ ५८

ऐन्द्रेशेशानयोर्मध्ये यजेत्कामावसायकम्।
द्वितीयावरणं प्रोक्तं तृतीयावरणं शृणु॥ ५९

विधानपूर्वक स्थापित करे तथा खड्गाकार एक वर्धनी भी स्थापित करे। इसके बाद दो वस्त्रोंसे उसे वेष्टित करके स्वर्णरचित अथवा विचित्र रत्नादिसे सज्जित कमलद्वारा आच्छादित करे, इसके बाद उन सहस्र कलशोंको भी पृथक्से आवेष्टित एवं आच्छादित करे। शिवकुम्भमें शिवगायत्री और प्रणवद्वारा शिवकी स्थापना करे।

'विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'*—इस मन्त्रसे सर्वदा रुद्रका सान्निध्य बताया गया है। देवीगायत्रीके द्वारा वर्धनीमें भगवती गौरीकी स्थापना करके उनका पूजन करना चाहिये। **'गणाम्बिकायै विद्महे महातपायै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्।'**—यह देवीगायत्री है॥ ४१—५०॥

प्रथम आवरणमें वामा आदि शक्तियाँ पहले ही बतायी गयी हैं। प्रथम आवरण कह दिया गया है, अब द्वितीय आवरणके विषयमें सुनिये। हे सुव्रत! पूर्व आदि दिशाओंमें सोलह शक्तियाँ विद्यमान हैं। पूर्व दिशामें सुभद्राकी स्थापना करके उनकी पूजा करनी चाहिये। आग्नेय चक्रमें भद्रा, दक्षिण दिशामें कनकाण्डजा और नैर्ऋत्यकोणमें कुम्भके मध्य अम्बिकाकी पूजा करनी चाहिये। पश्चिम दिशामें श्रीदेवी, वायव्य कोणमें वागीशा तथा उत्तर दिशामें कुम्भके मध्य गोमुखीका पूजन करना चाहिये। ईशानकोणमें भद्रकर्णाकी अर्चना करनी चाहिये। पूर्व दिशा तथा अग्निकोणके मध्यमें मंगलमयी अणिमाकी पूजा तथा दक्षिण दिशा और अग्निकोणके मध्य कमलमें लघिमाकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण और नैर्ऋत्यकोणके मध्यमें महिमाकी पूजा और नैर्ऋत्य तथा पश्चिम दिशाके मध्यमें प्राप्तिकी पूजा करनी चाहिये। पश्चिम दिशा तथा वायव्यकोणके मध्यमें कमलमें प्राकाम्यका न्यास करना चाहिये और वायव्यकोण तथा उत्तर दिशाके मध्य ईशित्वकी स्थापना करके उसका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उत्तर और ईशानकोणके मध्य वशित्वका न्यास करके उसका पूजन करना चाहिये और ईशानकोण तथा पूर्व दिशाके

* तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्—यह रुद्रगायत्री मन्त्र है।

शक्तयस्तु चतुर्विंशत्प्रधानकलशेषु च।
पूजयेद्व्यूहमध्ये तु पूर्ववद्विधिपूर्वकम्॥ ६०

दीक्षां दीक्षायिकां चैव चण्डां चण्डांशुनायिकाम्।
सुमतिं सुमत्यायीं च गोपां गोपायिकां तथा॥ ६१

अथ नन्दं च नन्दायीं पितामहमतः परम्।
पितामहायीं पूर्वाद्यं विधिना स्थाप्य पूजयेत्॥ ६२

एवं सम्पूज्य विधिना तृतीयावरणं शुभम्।
सौभद्रं व्यूहमासाद्य प्रथमावरणे क्रमात्॥ ६३

प्रागाद्यं विधिना स्थाप्य शक्त्यष्टकमनुक्रमात्।
द्वितीयावरणे चैव प्रागाद्यं शृणु शक्तयः॥ ६४

षोडशैव तु अभ्यर्च्य पद्ममुद्रां तु दर्शयेत्।
बिन्दुका बिन्दुगर्भा च नादिनी नादगर्भजा॥ ६५

शक्तिका शक्तिगर्भा च परा चैव परापरा।
प्रथमावरणेऽष्टौ च शक्तयः परिकीर्तिताः॥ ६६

चण्डा चण्डमुखी चैव चण्डवेगा मनोजवा।
चण्डाक्षी चण्डनिर्घोषा भृकुटी चण्डनायिका॥ ६७

मनोत्सेधा मनोध्यक्षा मानसी माननायिका।
मनोहरी मनोह्लादी मनःप्रीतिर्महेश्वरी॥ ६८

द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः।
सौभद्रः कथितो व्यूहो भद्रं व्यूहं शृणुष्व मे॥ ६९

ऐन्द्री हौताशनी याम्या नैर्ऋती वारुणी तथा।
वायव्या चैव कौबेरी ऐशानी चाष्टशक्तयः॥ ७०

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
हरिणी च सुवर्णा च काञ्चनी हाटकी तथा॥ ७१

रुक्मिणी सत्यभामा च सुभगा जम्बुनायिका।
वाग्भवा वाक्पथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधीः॥ ७२

वेदमाता हिरण्याक्षी द्वितीयावरणे स्मृता।
भद्राख्यः कथितो व्यूहः कनकाख्यं शृणुष्व मे॥ ७३

मध्य कामावसायित्वका पूजन करना चाहिये। यह द्वितीय आवरणपूजन मैंने कह दिया, अब तृतीय आवरणपूजनके विषयमें सुनिये॥ ५१—५९॥

प्रधान कलशों (अष्ट दिक्पाल-कलशों)-में चौबीस शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। व्यूहके मध्य द्वितीय व्यूहकी भाँति सोलह शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। उनके अतिरिक्त दीक्षा, दीक्षायिका, चण्डा, चण्डांशुनायिका, सुमति, सुमत्यायी, गोपा तथा गोपायिका—इन आठ शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। उक्त चौबीस शक्तियोंकी पूजाके अनन्तर नन्द-नन्दायी, पितामह-पितामहायी—इनकी पूर्व आदि दिशाओंमें विधिपूर्वक स्थापना करके पूजा करनी चाहिये॥ ६०—६२॥

इस प्रकार शुभ तृतीय आवरणकी विधिपूर्वक पूजा करके प्रथम आवरणमें सौभद्र व्यूहको प्राप्तकर आठ शक्तियोंको क्रमसे पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापितकर विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। अब द्वितीय आवरणमें प्रागाद्य शक्तियोंको सुनिये। इन सोलहोंका अर्चन करके पद्ममुद्रा दिखानी चाहिये। बिन्दुका, बिन्दुगर्भा, नादिनी, नादगर्भजा, शक्तिका, शक्तिगर्भा, परा तथा परापरा—ये आठ शक्तियाँ प्रथम आवरणमें कही गयी हैं। चण्डा, चण्डमुखी, चण्डवेगा, मनोजवा, चण्डाक्षी, चण्डनिर्घोषा, भृकुटी, चण्डनायिका, मनोत्सेधा, मनोध्यक्षा, मानसी, माननायिका, मनोहरी, मनोह्लादी, मनःप्रीति और महेश्वरी—ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरणमें बतायी गयी हैं। मैंने सौभद्रव्यूहका वर्णन कर दिया, अब भद्रव्यूहके विषयमें सुनिये॥ ६३—६९॥

ऐन्द्री, हौताशनी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायव्या, कौबेरी तथा ऐशानी—ये आठ शक्तियाँ हैं। प्रथम आवरण बता दिया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। हरिणी, सुवर्णा, कांचनी, हाटकी, रुक्मिणी, सत्यभामा, सुभगा, जम्बुनायिका, वाग्भवा, वाक्पथा, वाणी, भीमा, चित्ररथा, सुधी, वेदमाता तथा हिरण्याक्षी—ये द्वितीय आवरणकी शक्तियाँ कही गयी हैं। भद्राख्य व्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब कनक नामक व्यूहके विषयमें सुनिये॥ ७०—७३॥

वज्रं शक्तिं च दण्डं च खड्गं पाशं ध्वजं तथा।
गदां त्रिशूलं क्रमशः प्रथमावरणे स्मृताः॥ ७४
युद्धा प्रबुद्धा चण्डा च मुण्डा चैव कपालिनी।
मृत्युहन्त्री विरूपाक्षी कपर्दा कमलासना॥ ७५
दंष्ट्रिणी रङ्गिणी चैव लम्बाक्षी कङ्कभूषणी।
सम्भावा भाविनी चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः॥ ७६
कथितः कनकव्यूहो ह्यम्बिकाख्यं शृणुष्व मे।
खेचरी चात्मनासा च भवानी वह्निरूपिणी॥ ७७
वह्निनी वह्निनाभा च महिमामृतलालसा।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः सर्वसम्मताः॥ ७८
क्षमा च शिखरा देवी ऋतुरत्ना शिला तथा।
छाया भूतपनी धन्या इन्द्रमाता च वैष्णवी॥ ७९
तृष्णा रागवती मोहा कामकोपा महोत्कटा।
इन्द्रा च बधिरा देवी षोडशैताः प्रकीर्तिताः॥ ८०
कथितश्चाम्बिकाव्यूहः श्रीव्यूहं शृणु सुव्रत।
स्पर्शा स्पर्शवती गन्धा प्राणापाना समानिका॥ ८१
उदाना व्याननामा च प्रथमावरणे स्मृताः।
तमोहता प्रभामोघा तेजिनी दहिनी तथा॥ ८२
भीमास्या जालिनी चोषा शोषिणी रुद्रनायिका।
वीरभद्रा गणाध्यक्षा चन्द्रहासा च गह्वरा॥ ८३
गणमाताम्बिका चैव शक्तयः सर्वसम्मताः।
द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव यथाक्रमात्॥ ८४
श्रीव्यूहः कथितो भद्रं वागीशं शृणु सुव्रत।
धारा वारिधरा चैव वह्निकी नाशकी तथा॥ ८५
मर्त्यातीता महामाया वज्रिणी कामधेनुका।
प्रथमावरणेऽप्येवं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥ ८६
पयोष्णी वारुणी शान्ता जयन्ती च वरप्रदा।
प्लाविनी जलमाता च पयोमाता महाम्बिका॥ ८७
रक्ता कराली चण्डाक्षी महोच्छुष्मा पयस्विनी।
माया विद्येश्वरी काली कालिका च यथाक्रमम्॥ ८८
षोडशैव समाख्याताः शक्तयः सर्वसम्मताः।
व्यूहो वागीश्वरः प्रोक्तो गोमुखो व्यूह उच्यते॥ ८९

वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा और त्रिशूल—ये क्रमानुसार प्रथम आवरणकी [आयुधरूप] शक्तियाँ कही गयी हैं। युद्धा, प्रबुद्धा, चण्डा, मुण्डा, कपालिनी, मृत्युहन्त्री, विरूपाक्षी, कपर्दा, कमला, आसना, दंष्ट्रिणी, रंगिणी, लम्बाक्षी, कंकभूषणी, सम्भावा तथा भाविनी—ये [द्वितीय आवरणकी] सोलह शक्तियाँ बतायी गयी हैं। कनकव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब अम्बिका नामक व्यूहके विषयमें सुनिये। खेचरी, आत्मनासा, भवानी, वह्निरूपिणी, वह्निनी, वह्निनाभा, महिमा और अमृतलालसा—ये प्रथम आवरणकी आठ सर्वसम्मत शक्तियाँ कही गयी हैं। उसी प्रकार क्षमा, शिखरादेवी, ऋतुरत्ना, शिला, छाया, भूतपनी, धन्या, इन्द्रमाता, वैष्णवी, तृष्णा, रागवती, मोहा, कामकोपा, महोत्कटा, इन्द्रा और बधिरादेवी—ये सोलह शक्तियाँ [द्वितीय आवरणकी] कही गयी हैं॥ ७४—८०॥

हे सुव्रत! अम्बिकाव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब श्रीव्यूहका श्रवण कीजिये। स्पर्शा, स्पर्शवती, गन्धा, प्राणा, अपाना, समाना, उदाना और व्याना—प्रथम आवरणकी ये आठ शक्तियाँ कही गयी हैं। उसी तरह तमोहता, प्रभा, अमोघा, तेजिनी, दहिनी, भीमास्या, जालिनी, उषा, शोषिणी, रुद्रनायिका, वीरभद्रा, गणाध्यक्षा, चन्द्रहासा, गह्वरा, गणमाता और अम्बिका—यथाक्रम ये सोलह सर्वसम्मत शक्तियाँ द्वितीय आवरणकी बतायी गयी हैं॥ ८१—८४॥

हे सुव्रत! कल्याणकारी श्रीव्यूहका वर्णन कर दिया, अब वागीशव्यूहके विषयमें सुनिये। धारा, वारिधरा, वह्निकी, नाशकी, मर्त्यातीता, महामाया, वज्रिणी तथा कामधेनुका—ये आठ शक्तियाँ प्रथम आवरणकी बतायी गयी हैं। पयोष्णी वारुणी, शान्ता, वरप्रदायिनी जयन्ती, प्लाविनी, जलमाता, पयोमाता, महाम्बिका, रक्ता, कराली, चण्डाक्षी, महोच्छुष्मा, पयस्विनी, माया, विद्येश्वरी, काली, कालिका—क्रमसे ये सोलह सर्वसम्मत शक्तियाँ द्वितीय आवरणकी कही गयी हैं। वागीश नामक व्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब गोमुखव्यूह बता रहा

शङ्किनी हालिनी चैव लङ्कावर्णा च कल्किनी।
यक्षिणी मालिनी चैव वमनी च रसात्मनी॥ ९०
प्रथमावरणे चैव शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।
चण्डा घण्टा महानादा सुमुखी दुर्मुखी बला॥ ९१
रेवती प्रथमा घोरा सैन्या लीना महाबला।
जया च विजया चैव अपरा चापराजिता॥ ९२
द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु।
कथितो गोमुखीव्यूहो भद्रकर्णीं शृणुष्व मे॥ ९३
महाजया विरूपाक्षी शुक्लाभाकाशमातृका।
संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती॥ ९४
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिताः।
पिपीलिका पुण्यहारी अशनी सर्वहारिणी॥ ९५
भद्रहा विश्वहारी च हिमा योगेश्वरी तथा।
छिद्रा भानुमती छिद्रा सैंहिकी सुरभी समा॥ ९६
सर्वभव्या च वेगाख्या शक्तयः षोडशैव तु।
महाव्यूहाष्टकं प्रोक्तमुपव्यूहाष्टकं शृणु॥ ९७
अणिमाव्यूहमावेष्ट्य प्रथमावरणे क्रमात्।
ऐन्द्रा तु चित्रभानुश्च वारुणी दण्डिरेव च॥ ९८
प्राणरूपी तथा हंसः स्वात्मशक्तिः पितामहः।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ९९
केशवो भगवान् रुद्रश्चन्द्रमा भास्करस्तथा।
महात्मा च तथा ह्यात्मा ह्यन्तरात्मा महेश्वरः॥ १००
परमात्मा ह्यणुर्जीवः पिङ्गलः पुरुषः पशुः।
भोक्ता भूतपतिर्भीमो द्वितीयावरणे स्मृताः॥ १०१
कथितश्चाणिमाव्यूहो लघिमाख्यं वदामि ते।
श्रीकण्ठोऽन्तश्च सूक्ष्मश्च त्रिमूर्तिः शशकस्तथा॥ १०२
अमरेशः स्थितीशश्च दारतश्च तथाष्टमः।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १०३
स्थाणुर्हरश्च दण्डेशो भौक्तीशः सुरपुङ्गवः।
सद्योजातोऽनुग्रहेशः क्रूरसेनः सुरेश्वरः॥ १०४
क्रोधीशश्च तथा चण्डः प्रचण्डः शिव एव च।
एकरुद्रस्तथा कूर्मश्चैकनेत्रश्चतुर्मुखः॥ १०५
द्वितीयावरणे रुद्राः षोडशैव प्रकीर्तिताः।
कथितो लघिमाव्यूहो महिमां शृणु सुव्रत॥ १०६
अजेशः क्षेमरुद्रश्च सोमोंऽशो लाङ्गली तथा।
दण्डारुश्चार्धनारी च एकान्तश्चान्त एव च॥ १०७

हूँ। शंकिनी, हालिनी, लंकावर्णा, कल्किनी, यक्षिणी, मालिनी, वमनी, रसात्मनी—ये आठ शक्तियाँ प्रथम आवरणमें कही गयी हैं। चण्डा, घण्टा, महानादा, सुमुखी, दुर्मुखी, बला, रेवती, प्रथमा, घोरा, सैन्या, लीना, महाबला, जया, विजया, अजिता और अपराजिता—ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरणमें कही गयी हैं। गोमुखव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब भद्रकर्णीव्यूहके विषयमें सुनिये॥ ८५—९३॥

महाजया, विरूपाक्षी, शुक्लाभा, आकाशमातृका, संहारी, जातहारी, दंष्ट्राली और शुष्करेवती—ये प्रथम आवरणकी आठ शक्तियाँ बतायी गयी हैं। पिपीलिका, पुण्यहारी, अशनी, सर्वहारिणी, भद्रहा, विश्वहारी, हिमा, योगेश्वरी, छिद्रा, भानुमती, छिद्रा, सैंहिकी, सुरभी, समा, सर्वभव्या तथा वेगा—द्वितीय आवरणकी ये सोलह शक्तियाँ हैं। यह आठ महाव्यूहोंका वर्णन किया गया, अब आठ उपव्यूहोंको सुनिये॥ ९४—९७॥

अणिमाव्यूहको आवेष्टित करके प्रथम आवरणमें क्रमसे ऐन्द्रा, चित्रभानु, वारुणी, दण्डि, प्राणरूपी, हंस, स्वात्मशक्ति और पितामह—ये शक्तियाँ हैं। प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। केशव, भगवान् रुद्र, चन्द्रमा, भास्कर, महात्मा, आत्मा, अन्तरात्मा, महेश्वर, परमात्मा, सूक्ष्म जीव, पिंगल, पुरुष, पशु, भोक्ता, भूतपति तथा भीम—ये शक्तियाँ द्वितीय आवरणमें कही गयी हैं। अणिमाव्यूह कह दिया गया, अब लघिमा नामक व्यूहका वर्णन आपसे करता हूँ। श्रीकण्ठ, अन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, शशक, अमरेश, स्थितीश और आठवाँ दारत—[ये आठ शक्तियाँ हैं।] प्रथम आवरण कह दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। स्थाणु, हर, दण्डेश, सुरश्रेष्ठ भौक्तीश, सद्योजात, अनुग्रहेश, क्रूरसेन, सुरेश्वर, क्रोधीश, चण्ड, प्रचण्ड, शिव, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र तथा चतुर्मुख—द्वितीय आवरणमें ये ही सोलह रुद्र बताये गये हैं। हे सुव्रत! लघिमाव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब महिमाव्यूहका श्रवण कीजिये॥ ९८—१०६॥

अजेश, क्षेमरुद्र, सोम, अंश, लांगली, दण्डारु, अर्धनारी, एकान्त, अन्त, भुजंग नामक पाली, पिनाकी,

पाली भुजङ्गनामा च पिनाकी खड्गिरेव च।
काम ईशस्तथा श्वेतो भृगुः षोडश वै स्मृताः॥ १०८
कथितो महिमाव्यूहः प्राप्तिव्यूहं शृणुष्व मे।
संवर्तो लकुलीशश्च वाडवो हस्तिरेव च॥ १०९
चण्डयक्षो गणपतिर्महात्मा भृगुजोऽष्टमः।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ११०
त्रिविक्रमो महाजिह्वो ऋक्षः श्रीभद्र एव च।
महादेवो दधीचश्च कुमारश्च परावरः॥ १११
महादंष्ट्रः करालश्च सूचकश्च सुवर्धनः।
महाध्वांक्षो महानन्दो दण्डी गोपालकस्तथा॥ ११२
प्राप्तिव्यूहः समाख्यातः प्राकाम्यं शृणु सुव्रत।
पुष्पदन्तो महानागो विपुलानन्दकारकः॥ ११३
शुक्लो विशालः कमलो बिल्वश्चारुण एव च।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ११४
रतिप्रियः सुरेशानश्चित्राङ्गश्च सुदुर्जयः।
विनायकः क्षेत्रपालो महामोहश्च जङ्गलः॥ ११५
वत्सपुत्रो महापुत्रो ग्रामदेशाधिपस्तथा।
सर्वावस्थाधिपो देवो मेघनादः प्रचण्डकः॥ ११६
कालदूतश्च कथितो द्वितीयावरणं स्मृतम्।
प्राकाम्यः कथितो व्यूह ऐश्वर्यं कथयामि ते॥ ११७
मङ्गला चर्चिका चैव योगेशा हरदायिका।
भासुरा सुरमाता च सुन्दरी मातृकाष्टमी॥ ११८
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु।
गणाधिपश्च मन्त्रज्ञो वरदेवः षडाननः॥ ११९
विदग्धश्च विचित्रश्च अमोघो मोघ एव च।
अश्वीरुद्रश्च सोमेशश्चोत्तमोदुम्बरस्तथा॥ १२०
नारसिंहश्च विजयस्तथा इन्द्रगुहः प्रभुः।
अपाम्पतिश्च विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्॥ १२१
ऐश्वर्यः कथितो व्यूहो वशित्वं पुनरुच्यते।
गगनो भवनश्चैव विजयो ह्यजयस्तथा॥ १२२
महाजयस्तथाङ्गारो व्यङ्गारश्च महायशाः।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु॥ १२३
सुन्दरश्च प्रचण्डेशो महावर्णो महासुरः।
महारोमा महागर्भः प्रथमः कनकस्तथा॥ १२४
खरजो गरुडश्चैव मेघनादोऽथ गर्जकः।
गजश्च च्छेदको बाहुस्त्रिशिखो मारिरेव च॥ १२५

खड्गि, काम, ईश, श्वेत तथा भृगु—ये सोलह कहे गये हैं। यह महिमाव्यूह कह दिया गया, अब मुझसे प्राप्तिव्यूहका श्रवण कीजिये। संवर्त, लकुलीश, वाडव, हस्ति, चण्डयक्ष, गणपति, महात्मा और आठवाँ भृगुज—[ये आठ प्रथम आवरणके देवता हैं।] प्रथम आवरण कह दिया गया, अब द्वितीय आवरणको सुनिये। त्रिविक्रम, महाजिह्व, ऋक्ष, श्रीभद्र, महादेव, दधीच, कुमार, परावर, महादंष्ट्र, कराल, सूचक, सुवर्धन, महाध्वांक्ष, महानन्द, दण्डी तथा गोपाल—[ये सोलह द्वितीय आवरणके देवता हैं]॥ १०७—११२॥

हे सुव्रत! प्राप्तिव्यूह बता दिया गया, प्राकाम्यव्यूहका श्रवण कीजिये। पुष्पदन्त, महानाग, विपुलानन्दकारक, शुक्ल, विशाल, कमल, बिल्व तथा अरुण—[ये आठ प्रथम आवरणके देवता हैं।] प्रथम आवरणका वर्णन कर दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। रतिप्रिय, सुरेशान, चित्रांग, सुदुर्जय, विनायक, क्षेत्रपाल, महामोह, जंगल, वत्सपुत्र, महापुत्र, ग्रामदेशाधिप, सर्वावस्थाधिप, देव, मेघनाद, प्रचण्डक तथा कालदूत—ये सोलह देवता कहे गये हैं। इसे द्वितीय आवरण कहा गया है। प्राकाम्यव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब आपको ऐश्वर्यव्यूह बता रहा हूँ॥ ११३—११७॥

मंगला, चर्चिका, योगेशा, हरदायिका, भासुरा, सुरमाता, सुन्दरी तथा आठवीं मातृका—ये [आठ शक्तियाँ] प्रथम आवरणमें कही गयी हैं। अब द्वितीय आवरण सुनिये। गणाधिप, मंत्रज्ञ, वरदेव, षडानन, विदग्ध, विचित्र, अमोघ, मोघ, अश्वीरुद्र, सोमेश, उत्तमोदुम्बर, नारसिंह, विजय, इन्द्रगुह, प्रभु तथा अपाम्पति—इस प्रकार इसे द्वितीय आवरण कहा गया है। ऐश्वर्यव्यूह कह दिया गया, अब वशित्वव्यूह बताया जा रहा है। गगन, भवन, विजय, अजय, महाजय, अंगार, व्यंगार तथा महायश—ये प्रथम आवरणके देवता बताये गये हैं, अब द्वितीय आवरण सुनिये। सुन्दर, प्रचण्डेश, महावर्ण, महासुर, महारोमा, महागर्भ, प्रथम, कनक, खरज, गरुड़, मेघनाद, गर्जक, गज, छेदकबाहु, त्रिशिख तथा मारि। [ये सोलह देवता द्वितीय आवरणके

वशित्वं कथितो व्यूहः शृणु कामावसायिकम्।
विनादो विकटश्चैव वसन्तोऽभय एव च॥ १२६
विद्युन्महाबलश्चैव कमलो दमनस्तथा।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १२७
धर्मश्चातिबलः सर्पो महाकायो महाहनुः।
सबलश्चैव भस्माङ्गी दुर्जयो दुरतिक्रमः॥ १२८
वेतालो रौरवश्चैव दुर्धरो भोग एव च।
वज्रः कालाग्निरुद्रश्च सद्योनादो महागुहः॥ १२९
द्वितीयावरणं प्रोक्तं व्यूहश्चैवावसायिकः।
कथितः षोडशो व्यूहो द्वितीयावरणं शृणु॥ १३०
द्वितीयावरणे चैव दक्षव्यूहे च शक्तयः।
प्रथमावरणे चाष्टौ बाह्ये षोडश एव च॥ १३१
मनोहरा महानादा चित्रा चित्ररथा तथा।
रोहिणी चैव चित्राङ्गी चित्ररेखा विचित्रिका॥ १३२
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणं शृणु।
चित्रा विचित्ररूपा च शुभदा कामदा शुभा॥ १३३
क्रूरा च पिङ्गला देवी खड्गिका लम्बिका सती।
दंष्ट्राली राक्षसी ध्वंसी लोलुपा लोहितामुखी॥ १३४
द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव समासतः।
दक्षव्यूहः समाख्यातो दाक्षव्यूहं शृणुष्व मे॥ १३५
सर्वासती विश्वरूपा लम्पटा चामिषप्रिया।
दीर्घदंष्ट्रा च वज्रा च लम्बोष्ठी प्राणहारिणी॥ १३६
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
गजकर्णाश्वकर्णा च महाकाली सुभीषणा॥ १३७
वातवेगरवा घोरा घना घनरवा तथा।
वरघोषा महावर्णा सुघण्टा घण्टिका तथा॥ १३८
घण्टेश्वरी महाघोरा घोरा चैवातिघोरिका।
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः॥ १३९
दाक्षव्यूहः समाख्यातश्चण्डव्यूहं शृणुष्व मे।
अतिघण्टा चातिघोरा कराला करभा तथा॥ १४०
विभूतिर्भोगदा कान्तिः शङ्खिनी चाष्टमी स्मृता।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीया वरणे शृणु॥ १४१

हैं]॥ ११८—१२५॥

वशित्वव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब कामावसायित्वव्यूहका श्रवण कीजिये। विनाद, विकट, वसन्त, अभय, विद्युत्, महाबल, कमल तथा दमन—[ये आठ देवता प्रथम आवरणके हैं।] प्रथम आवरण बता दिया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। धर्म, अतिबल, सर्प, महाकाय, महाहनु, सबल, भस्मांगी, दुर्जय, दुरतिक्रम, वेताल, रौरव, दुर्धर, भोग, वज्र, कालाग्निरुद्र सद्योनाद तथा महागुह—[ये द्वितीय आवरणके देवता हैं।] द्वितीय आवरण कह दिया गया। आवसायिक व्यूहका भी वर्णन कर दिया गया। इस प्रकार सोलह व्यूहवाले आवरणके विषयमें बता दिया गया, अब दूसरे आवरणका श्रवण कीजिये॥ १२६—१३०॥

दूसरे आवरणमें दक्षव्यूह प्रथम है, जिसके पहले आवरणमें आठ शक्तियाँ हैं और बाह्य आवरणमें सोलह शक्तियाँ हैं। मनोहरा, महानादा, चित्रा, चित्ररथा, रोहिणी, चित्रांगी, चित्ररेखा तथा विचित्रिका—ये [आठ] शक्तियाँ प्रथम आवरणमें कही गयी हैं; अब दूसरा आवरण सुनिये। चित्रा, विचित्ररूपा, शुभदा, कामदा, शुभा, क्रूरा, पिंगला, देवी, खड्गिका, लम्बिका, सती, दंष्ट्राली, राक्षसी, ध्वंसी, लोलुपा और लोहितामुखी—द्वितीय आवरणमें ये सोलह शक्तियाँ बतायी गयी हैं। दक्षव्यूह संक्षेपमें बता दिया गया, अब मुझसे दाक्षव्यूहका श्रवण कीजिये॥ १३१—१३५॥

सर्वासती, विश्वरूपा, लंपटा, आमिषप्रिया, दीर्घदंष्ट्रा, वज्रा, लम्बोष्ठी तथा प्राणहारिणी—[ये दक्षव्यूहके प्रथम आवरणकी शक्तियाँ हैं।] प्रथम आवरण कह दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। गजकर्णा, अश्वकर्णा, महाकाली, सुभीषणा, वातवेगरवा, घोरा, घना, घनरवा, वरघोषा, महावर्णा, सुघण्टा, घण्टिका, घण्टेश्वरी, महाघोरा, घोरा तथा अतिघोरिका—द्वितीय आवरणमें ये सोलह [शक्तियाँ] बतायी गयी हैं। दाक्षव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब मुझसे चण्डव्यूह सुनिये। अतिघण्टा, अतिघोरा, कराला, करभा, विभूति, भोगदा, कान्ति तथा आठवीं शंखिनी—ये प्रथम आवरणकी शक्तियाँ कही गयी हैं,

पत्रिणी चैव गान्धारी योगमाता सुपीवरा।
रक्ता मालांशुका वीरा संहारी मांसहारिणी॥ १४२
फलहारी जीवहारी स्वेच्छाहारी च तुण्डिका।
रेवती रङ्गिणी सङ्गा द्वितीये षोडशैव तु॥ १४३
चण्डव्यूहः समाख्यातश्चण्डाव्यूहस्तथोच्यते।
चण्डी चण्डमुखी चण्डा चण्डवेगा महारवा॥ १४४
भ्रुकुटी चण्डभूश्चैव चण्डरूपाष्टमी स्मृता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १४५
चन्द्रघ्राणा बला चैव बलजिह्वा बलेश्वरी।
बलवेगा महाकाया महाकोपा च विद्युता॥ १४६
कङ्काली कलशी चैव विद्युता चण्डघोषिका।
महाघोषा महारावा चण्डभानङ्गचण्डिका॥ १४७
चण्डायाः कथितो व्यूहो हरव्यूहं शृणुष्व मे।
चण्डाक्षी कामदा देवी सूकरी कुक्कुटानना॥ १४८
गान्धारी दुन्दुभी दुर्गा सौमित्रा चाष्टमी स्मृता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १४९
मृतोद्भवा महालक्ष्मीर्वर्णदा जीवरक्षिणी।
हरिणी क्षीणजीवा च दण्डवक्त्रा चतुर्भुजा॥ १५०
व्योमचारी व्योमरूपा व्योमव्यापी शुभोदया।
गृहचारी सुचारी च विषाहारी विषार्तिहा॥ १५१
हरव्यूहः समाख्यातो हराया व्यूह उच्यते।
जम्भाच्युता च कङ्कारी देविका दुर्धरा वहा॥ १५२
चण्डिका चपला चेति प्रथमावरणे स्मृताः।
चण्डिका चामरी चैव भण्डिका च शुभानना॥ १५३
पिण्डिका मुण्डिनी मुण्डा शाकिनी शाङ्करी तथा।
कर्तरी भर्तरी चैव भागिनी यज्ञदायिनी॥ १५४
यमदंष्ट्रा महादंष्ट्रा कराला चेति शक्तयः।
हरायाः कथितो व्यूहः शौण्डव्यूहं शृणुष्व मे॥ १५५
विकराली कराली च कालजङ्घा यशस्विनी।
वेगा वेगवती यज्ञा वेदाङ्गा चाष्टमी स्मृता॥ १५६
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
वज्रा शङ्खातिशङ्खा वा बला चैवाबला तथा॥ १५७
अञ्जनी मोहिनी माया विकटाङ्गी नली तथा।
गण्डकी दण्डकी घोणा शोणा सत्यवती तथा॥ १५८

अब द्वितीय आवरण सुनिये। पत्रिणी, गान्धारी, योगमाता, सुपीवरा, रक्ता, मालांशुका, वीरा, संहारी, मांसहारिणी, फलहारी, जीवहारी, स्वेच्छाहारी, तुण्डिका, रेवती, रंगिणी तथा संगा—ये सोलह [शक्तियाँ] द्वितीय आवरणमें कही गयी हैं॥ १३६—१४३॥

चण्डव्यूह कह दिया गया, अब चण्डाव्यूह बताया जाता है। चण्डी, चण्डमुखी, चण्डा, चण्डवेगा, महारवा, भ्रुकुटी, चण्डभू तथा आठवीं शक्ति चण्डरूपा बतायी गयी है। प्रथम आवरण कह दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। चन्द्रघ्राणा, बला, बलजिह्वा, बलेश्वरी, बलवेगा, महाकाया, महाकोपा, विद्युता, कंकाली, कलशी, विद्युता, चण्डघोषिका, महाघोषा, महारावा, चण्डभा, अनंग-चण्डिका—[ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरणमें कही गयी हैं।] चण्डाव्यूहका वर्णन मैंने कर दिया, अब हरव्यूहके विषयमें मुझसे सुनिये। चण्डाक्षी, कामदादेवी, सूकरी, कुक्कुटानना, गान्धारी, दुन्दुभी, दुर्गा और आठवीं शक्ति सौमित्रा कही गयी है। प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। मृतोद्भवा, महालक्ष्मी, वर्णदा, जीवरक्षिणी, हरिणी, क्षीणजीवा, दण्डवक्त्रा, चतुर्भुजा, व्योमचारी, व्योमरूपा, व्योमव्यापी, शुभोदया, गृहचारी, सुचारी, विषाहारी और विषार्तिहा—[ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरणमें बतायी गयी हैं]॥ १४४—१५१॥

हरव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब हराव्यूह बताया जा रहा है। जंभा, अच्युता, कंकारी, देविका, दुर्धरा, वहा, चण्डिका तथा चपला—[ये आठ शक्तियाँ] प्रथम आवरणमें कही गयी हैं। चण्डिका, चामरी, भण्डिका, शुभानना, पिण्डिका, मुण्डिनी, मुण्डा, शाकिनी, शांकरी, कर्तरी, भर्तरी, भागिनी, यज्ञदायिनी, यमदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा तथा कराला—[ये द्वितीय आवरणकी सोलह] शक्तियाँ हैं। हराव्यूह कह दिया गया, अब शौण्डव्यूह मुझसे सुनिये। विकराली, कराली, कालजंघा, यशस्विनी, वेगा, वेगवती, यज्ञा तथा आठवीं शक्ति वेदांगा बतायी गयी है। प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। वज्रा, शंखा, अतिशंखा, बला, अबला, अंजनी, मोहिनी, माया, विकटांगी, नली, गण्डकी,

कल्लोला चेति क्रमशः षोडशैव यथाविधि।
शौण्डव्यूहः समाख्यातः शौण्डाया व्यूह उच्यते॥ १५९
दन्तुरा रौद्रभागा च अमृता सकुला शुभा।
चलजिह्वार्यनेत्रा च रूपिणी दारिका तथा॥ १६०
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
खादिका रूपनामा च संहारी च क्षमान्तका॥ १६१
कण्डिनी पेषिणी चैव महात्रासा कृतान्तिका।
दण्डिनी किङ्करी बिम्बा वर्णिनी चामलाङ्गिनी॥ १६२
द्रविणी द्राविणी चैव शक्तयः षोडशैव तु।
कथितो हि मनोरम्यः शौण्डाया व्यूह उत्तमः॥ १६३
प्रथमाख्यं प्रवक्ष्यामि व्यूहं परमशोभनम्।
प्लविनी प्लावनी शोभा मन्दा चैव मदोत्कटा॥ १६४
मन्दाक्षेपा महादेवी प्रथमावरणे स्मृताः।
कामसन्दीपिनी देवी अतिरूपा मनोहरा॥ १६५
महावशा मदग्राहा विह्वला मदविह्वला।
अरुणा शोषणा दिव्या रेवती भाण्डनायिका॥ १६६
स्तम्भिनी घोररक्ताक्षी स्मररूपा सुघोषणा।
व्यूहः प्रथम आख्यातः स्वायम्भुव यथा तथा॥ १६७
कथितं प्रथमाव्यूहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे।
घोरा घोरतराघोरा अतिघोराघनायिका॥ १६८
धावनी क्रोष्टुका मुण्डा चाष्टमी परिकीर्तिता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १६९
भीमा भीमतराभीमा शस्ता चैव सुवर्तुला।
स्तम्भिनी रोदनी रौद्रा रुद्रवत्यचलाचला॥ १७०
महाबला महाशान्तिः शाला शान्ता शिवाशिवा।
बृहत्कक्षा महानासा षोडशैव प्रकीर्तिता॥ १७१
प्रथमायाः समाख्यातो मन्मथव्यूह उच्यते।
तालकर्णी च बाला च कल्याणी कपिला शिवा॥ १७२
इष्टिस्तुष्टिः प्रतिज्ञा च प्रथमावरणे स्मृताः।
ख्यातिः पुष्टिकरी तुष्टिर्जला चैव श्रुतिर्धृतिः॥ १७३
कामदा शुभदा सौम्या तेजिनी कामतन्त्रिका।
धर्मा धर्मवशा शीला पापहा धर्मवर्धिनी॥ १७४

दण्डकी, घोणा, शोणा, सत्यवती तथा कल्लोला—ये क्रमशः सोलह शक्तियाँ हैं। शौण्डव्यूह कह दिया गया, अब शौण्डाव्यूह कहा जाता है॥ १५२—१५९॥

दन्तुरा, रौद्रभागा, अमृता, शुभ सकुला, चलजिह्वा, आर्यनेत्रा, रूपिणी तथा दारिका—[प्रथम आवरणमें ये आठ शक्तियाँ हैं।] प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। खादिका, रूपनामा, संहारी, क्षमा, अन्तका, कण्डिनी, पेषिणी, महात्रासा, कृतान्तिका, दण्डिनी, किंकरी, बिम्बा, वर्णिनी, अमलांगिनी, द्रविणी तथा द्राविणी—ये सोलह शक्तियाँ कही गयी हैं। मैंने इस मनोरम उत्तम शौण्डाव्यूहका वर्णन कर दिया॥ १६०—१६३॥

इसके बाद मैं प्रथम नामक परम सुन्दर व्यूहका वर्णन करूँगा। प्लविनी, प्लावनी, शोभा, मन्दा, मदोत्कटा, मन्दा, आक्षेपा तथा महादेवी—ये पहले आवरणकी [शक्तियाँ] कही गयी हैं। देवी कामसंदीपनी, अतिरूपा, मनोहरा, महावशा, मदग्राहा, विह्वला, मदविह्वला, अरुणा, शोषणा, दिव्या, रेवती, भाण्डनायिका, स्तम्भिनी, घोररक्ताक्षी, स्मररूपा तथा सुघोषणा—[ये दूसरे आवरणकी शक्तियाँ कही गयी हैं।] हे स्वायम्भुव! प्रथम व्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब मैं प्रथमा व्यूहका वर्णन करूँगा, उसे मुझसे सुनिये। घोरा, घोरतरा, अघोरा, अतिघोरा, अघनायिका, धावनी, क्रोष्टुका और आठवीं मुण्डा—[ये पहले आवरणकी शक्तियाँ] कही गयी हैं। पहला आवरण कह दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। भीमा, भीमतरा, अभीमा, उत्तम सुवर्तुला, स्तम्भिनी, रोदनी, रौद्रा, रुद्रवती, अचलाचला, महाबला, महाशान्ति, शाला, शान्ता, शिवाशिवा, बृहत्कक्षा, महानासा—[दूसरे आवरणकी] ये सोलह शक्तियाँ कही गयी हैं॥ १६४—१७१॥

प्रथमा व्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब मन्मथव्यूह कहा जाता है। तालकर्णी, बाला, कल्याणी, कपिला, शिवा, इष्टि, तुष्टि तथा प्रतिज्ञा—ये पहले आवरणकी शक्तियाँ कही गयी हैं। ख्याति, पुष्टिकरी, तुष्टि, जला, श्रुति, धृति, कामदा, शुभदा, सौम्या, तेजिनी, कामतन्त्रिका, धर्मा, धर्मवशा, शीला, पापहा तथा धर्मवर्धिनी—[ये सोलह शक्तियाँ दूसरे आवरणकी

मन्मथः कथितो व्यूहो मन्मथायाः शृणुष्व मे।
धर्मरक्षा विधाना च धर्मा धर्मवती तथा॥ १७५
सुमतिर्दुर्मतिर्मेधा विमला चाष्टमी स्मृता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १७६
शुद्धिर्बुद्धिर्द्युतिः कान्तिर्वर्तुला मोहवर्धिनी।
बला चातिबला भीमा प्राणवृद्धिकरी तथा॥ १७७
निर्लज्जा निर्घृणा मन्दा सर्वपापक्षयङ्करी।
कपिला चातिविधुरा षोडशैताः प्रकीर्तिताः॥ १७८
मन्मथायिक उक्तस्ते भीमव्यूहं वदामि च।
रक्ता चैव विरक्ता च उद्वेगा शोकवर्धिनी॥ १७९
कामा तृष्णा क्षुधा मोहा चाष्टमी परिकीर्तिता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १८०
जया निद्रा भयालस्या जलंतृष्णोदरी दरा।
कृष्णा कृष्णाङ्गिनी वृद्धा शुद्धोच्छिष्टाशनी वृषा॥ १८१
कामना शोभिनी दग्धा दुःखदा सुखदावली।
भीमव्यूहः समाख्यातो भीमायीव्यूह उच्यते॥ १८२
आनन्दा च सुनन्दा च महानन्दा शुभङ्करी।
वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरथा॥ १८३
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
मनोन्मनी मनःक्षोभा मदोन्मत्ता मदाकुला॥ १८४
मन्दगर्भा महाभासा कामानन्दा सुविह्वला।
महावेगा सुवेगा च महाभोगा क्षयावहा॥ १८५
क्रमिणी क्रामणी वक्रा द्वितीयावरणे स्मृताः।
कथितं तव भीमायीव्यूहं परमशोभनम्॥ १८६
शाकुनं कथयाम्यद्य स्वायम्भुव मनोत्सुकम्।
योगा वेगा सुवेगा च अतिवेगा सुवासिनी॥ १८७
देवी मनोरयावेगा जलावर्ता च धीमती।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १८८
रोधिनी क्षोभिणी बाला विप्राशेषासुशोषिणी।
विद्युता भासिनी देवी मनोवेगा च चापला॥ १८९
विद्युज्जिह्वा महाजिह्वा भृकुटी कुटिलानना।
फुल्लज्वाला महाज्वाला सुज्वाला च क्षयान्तिका॥ १९०
शाकुनः कथितो व्यूहः शाकुनायाः शृणुष्व मे।
ज्वालिनी चैव भस्माङ्गी तथा भस्मान्तगा तता॥ १९१

हैं।] मन्मथव्यूह कह दिया गया, अब मन्मथाव्यूहको मुझसे सुनिये। धर्मरक्षा, विधाना, धर्मा, धर्मवती, सुमति, दुर्मति, मेधा तथा आठवीं शक्ति विमला कही गयी है। पहला आवरण बता दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। शुद्धि, बुद्धि, द्युति, कान्ति, वर्तुला, मोहवर्धिनी, बला, अतिबला, भीमा, प्राणवृद्धिकरी, निर्लज्जा, निर्घृणा, मन्दा, सर्वपापक्षयंकरी, कपिला तथा अतिविधुरा—ये सोलह [शक्तियाँ] बतायी गयी हैं॥ १७२—१७८॥

मैंने आपसे मन्मथाव्यूहका वर्णन कर दिया, अब भीमव्यूह बता रहा हूँ। रक्ता, विरक्ता, उद्वेगा, शोकवर्धिनी, कामा, तृष्णा, क्षुधा तथा आठवीं शक्ति मोहा कही गयी है। यह पहला आवरण कह दिया, अब दूसरा आवरण सुनिये। जया, निद्रा, भया, आलस्या, जलतृष्णोदरी, दरा, कृष्णा, कृष्णांगिनी, वृद्धा, शुद्धोच्छिष्टाशनी, वृषा, कामना, शोभिनी, दग्धा, दुःखदा तथा सुखदावली—[ये सोलह शक्तियाँ कही गयी हैं।] भीमव्यूहका वर्णन कर दिया गया, अब भीमायीव्यूह बताया जाता है। आनन्दा, सुनन्दा, महानन्दा, शुभंकरी, वीतरागा, महोत्साहा, जितरागा तथा मनोरथा—[ये आठ शक्तियाँ प्रथम आवरण की हैं।] प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। मनोन्मनी, मनःक्षोभा, मदोन्मत्ता, मदाकुला, मन्दगर्भा, महाभासा, कामा, आनन्दा, सुविह्वला, महावेगा, सुवेगा, महाभोगा, क्षयावहा, क्रमिणी, क्रामिणी तथा वक्रा—ये दूसरे आवरणमें बतायी गयी हैं; मैंने आपसे अत्यन्त सुन्दर भीमायीव्यूहके विषयमें कह दिया॥ १७९—१८६॥

हे स्वायम्भुव! अब मैं मनोहर शाकुनव्यूह बताता हूँ। योगा, वेगा, सुवेगा, अतिवेगा, देवी सुवासिनी, मनोरयावेगा, जलावर्ता और धीमती—[ये प्रथम आवरणकी आठ शक्तियाँ बतायी गयी हैं।] प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। रोधिनी, क्षोभिणी, बाला, विप्रा-शेषासुशोषिणी, विद्युता, देवी भासिनी, मनोवेगा, चापला, विद्युज्जिह्वा, महाजिह्वा, भृकुटी, कुटिलानना, फुल्लज्वाला, महाज्वाला, सुज्वाला और क्षयान्तिका; यह शाकुनव्यूह कह दिया गया, अब मुझसे शाकुनाव्यूह सुनिये। ज्वालिनी, भस्मांगी, भस्मांतगा,

भाविनी च प्रजा विद्या ख्यातिश्चैवाष्टमी स्मृता।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ १९२
उल्लेखा च पताका च भोगा भोगवती खगा।
भोगभोगव्रता योगा भोगाख्या योगपारगा॥ १९३
ऋद्धिर्बुद्धिर्धृतिः कान्तिः स्मृतिः साक्षाच्छ्रुतिर्धरा।
शाकुनाया महाव्यूहः कथितः कामदायकः॥ १९४
स्वायम्भुव शृणु व्यूहं सुमत्याख्यं सुशोभनम्।
परेष्टा च परादृष्टा ह्यमृता फलनाशिनी॥ १९५
हिरण्याक्षी सुवर्णाक्षी देवी साक्षात्कपिञ्जला।
कामरेखा च कथितं प्रथमावरणं शृणु॥ १९६
रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नदा रत्नमालिनी।
रत्नशोभा सुशोभा च महाशोभा महाद्युतिः॥ १९७
शाम्बरी बन्धुरा ग्रन्थिः पादकर्णा करानना।
हयग्रीवा च जिह्वा च सर्वभासेति शक्तयः॥ १९८
कथितः सुमतिव्यूहः सुमत्या व्यूह उच्यते।
सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्रातिरौरवा॥ १९९
विस्फुलिङ्गा विलिङ्गा च कृतान्ता भास्करानना।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ २००
रागा रङ्गवती श्रेष्ठा महाक्रोधा च रौरवा।
क्रोधनी वसनी चैव कलहा च महाबला॥ २०१
कलन्तिका चतुर्भेदा दुर्गा वै दुर्गमानिनी।
नाली सुनाली सौम्या च इत्येवं कथितं मया॥ २०२
गोपव्यूहं वदाम्यत्र शृणु स्वायम्भुवाखिलम्।
पाटली पाटवी चैव पाटी विटिपिटा तथा॥ २०३
कङ्कटा सुपटा चैव प्रघटा च घटोद्भवा।
प्रथमावरणं चात्र भाषया कथितं मया॥ २०४
नादाक्षी नादरूपा च सर्वकारी गमागमा।
अनुचारी सुचारी च चण्डनाडी सुवाहिनी॥ २०५
सुयोगा च वियोगा च हंसाख्या च विलासिनी।
सर्वगा सुविचारा च वञ्चनी चेति शक्तयः॥ २०६
गोपव्यूहः समाख्यातो गोपायीव्यूह उच्यते।
भेदिनी च्छेदिनी चैव सर्वकारी क्षुधाशनी॥ २०७
उच्छुष्मा चैव गान्धारी भस्माशी वडवानला।
प्रथमावरणं चैव द्वितीयावरणं शृणु॥ २०८

तता, भाविनी, प्रजा, विद्या तथा आठवीं शक्ति ख्याति बतायी गयी है। पहला आवरण बता दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। उल्लेखा, पताका, भोगा, भोगवती, खगा, भोगभोगव्रता, योगा, भोगाख्या, योगपारगा, ऋद्धि, बुद्धि, धृति, कान्ति, स्मृति, श्रुति और धरा—[ये सोलह शक्तियाँ कही गयी हैं।] कामनाओंको पूर्ण करनेवाला यह महान् शाकुनाव्यूह कह दिया गया॥ १८७—१९४॥

हे स्वायम्भुव! अब सुमति नामक अति सुन्दर व्यूहको सुनिये। [इसके प्रथम आवरणमें ये आठ शक्तियाँ हैं—] परेष्टा, परादृष्टा, अमृता, फलनाशिनी, हिरण्याक्षी, सुवर्णाक्षी, देवी कपिंजला तथा कामरेखा। पहला आवरण बता दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। रत्नद्वीपा, सुद्वीपा, रत्नदा, रत्नमालिनी, रत्नशोभा, सुशोभा, महाशोभा, महाद्युति, शाम्बरी, बन्धुरा, ग्रन्थि, पादकर्णा, करानना, हयग्रीवा, जिह्वा और सर्वभासा—ये [सोलह] शक्तियाँ हैं। सुमतिव्यूह कह दिया गया, अब सुमत्याव्यूह बताया जाता है। सर्वाशी, महाभक्षा, महादंष्ट्रा, अतिरौरवा, विस्फुलिङ्गा, विलिङ्गा, कृतान्ता तथा भास्करानना [ये पहले आवरणकी आठ शक्तियाँ हैं]। प्रथम आवरण बता दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। रागा, रंगवती, श्रेष्ठा, महाक्रोधा, रौरवा, क्रोधनी, वसनी, कलहा, महाबला, कलन्तिका, चतुर्भेदा, दुर्गा, दुर्गमानिनी, नाली, सुनाली तथा सौम्या—इस प्रकार मैंने यह [दूसरा आवरण] कह दिया॥ १९५—२०२॥

हे स्वायम्भुव! अब मैं गोपव्यूह बता रहा हूँ; आप वह सब सुनिये। पाटली, पाटवी, पाटी, विटिपिटा, कंकटा, सुपटा, प्रघटा तथा घटोद्भवा [प्रथम आवरणमें ये आठ शक्तियाँ हैं]। मैंने पहला आवरण बता दिया। नादाक्षी, नादरूपा, सर्वकारी, गमा, अगमा, अनुचारी, सुचारी, चण्डनाड़ी, सुवाहिनी, सुयोगा, वियोगा, हंसा, विलासिनी, सर्वगा, सुविचारा तथा वंचनी—ये शक्तियाँ [दूसरे आवरणकी] हैं; गोपव्यूह बता दिया गया, अब गोपायीव्यूहका वर्णन किया जाता है। भेदिनी, छेदिनी, सर्वकारी, क्षुधाशनी, उच्छुष्मा, गान्धारी, भस्माशी तथा वड़वानल [ये पहले आवरणकी आठ शक्तियाँ हैं]।

अन्धा बाह्वासिनी बाला दीपाक्षमा तथैव च।
अक्षा त्र्यक्षा च हल्लेखा हृद्गतामायिकापरा॥ २०९
आमयासादिनी भिल्ली सह्यासह्या सरस्वती।
रुद्रशक्तिर्महाशक्तिर्महामोहा च गोनदी॥ २१०
गोपायी कथितो व्यूहो नन्दव्यूहं वदामि ते।
नन्दिनी च निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च यथाक्रमम्॥ २११
विद्या नासा खग्रसिनी चामुण्डा प्रियदर्शिनी।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ २१२
गृह्या नारायणी मोहा प्रजा देवी च चक्रिणी।
कङ्कटा च तथा काली शिवाद्योषा ततः परम्॥ २१३
विरामा या च वागीशी वाहिनी भीषणी तथा।
सुगमा चैव निर्दिष्टा द्वितीयावरणे स्मृता॥ २१४
नन्दव्यूहो मया ख्यातो नन्दाया व्यूह उच्यते।
विनायकी पूर्णिमा च रङ्कारी कुण्डली तथा॥ २१५
इच्छा कपालिनी चैव द्वीपिनी च जयन्तिका।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिताः॥ २१६
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
पावनी चाम्बिका चैव सर्वात्मा पूतना तथा॥ २१७
छगली मोदिनी साक्षाद्देवी लम्बोदरी तथा।
संहारी कालिनी चैव कुसुमा च यथाक्रमम्॥ २१८
शुक्रा तारा तथा ज्ञाना क्रिया गायत्रिका तथा।
सावित्री चेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्॥ २१९
नन्दायाः कथितो व्यूहः पैतामहमतः परम्।
नन्दिनी चैव फेत्कारी क्रोधा हंसा षडङ्गुला॥ २२०
आनन्दा वसुदुर्गा च संहारा ह्यमृताष्टमी।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ २२१
कुलान्तिकानला चैव प्रचण्डा मर्दिनी तथा।
सर्वभूताभया चैव दया च वडवामुखी॥ २२२
लम्पटा पन्नगा देवी कुसुमा विपुलान्तका।
केदारा च तथा कूर्मा दुरिता मन्दरोदरी॥ २२३
खड्गचक्रेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्।
व्यूहः पैतामहः प्रोक्तो धर्मकामार्थमुक्तिदः॥ २२४
पितामहाया व्यूहं च कथयामि शृणुष्व मे।
वज्रा च नन्दना शावा राविका रिपुभेदिनी॥ २२५
रूपा चतुर्था योगा च प्रथमावरणे स्मृताः।
भूतानादा महाबाला खर्परा च तथापरा॥ २२६

प्रथम आवरण बता दिया गया, अब द्वितीय आवरण सुनिये। अन्धा, बाह्वासिनी, बाला, दीपाक्षमा, अक्षा, त्र्यक्षा, हल्लेखा, हृद्गतामायिकापरा, आमयासादिनी, भिल्ली, सह्यासह्या, सरस्वती, रुद्रशक्ति, महाशक्ति, महामोहा और गोनदी॥ २०३—२१०॥

गोपायीव्यूहके विषयमें बता दिया, अब आपको नन्दव्यूह बता रहा हूँ। नन्दिनी, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, नासा, खग्रसिनी, चामुण्डा तथा प्रियदर्शिनी [ये पहले आवरणकी शक्तियाँ हैं]। पहला आवरण कह दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। गृह्या, नारायणी, मोहा, प्रजादेवी, चक्रिणी, कंकटा, काली, शिवा, आद्या, उषा, विरामा, वागीशी, वाहिनी, भीषणी, सुगमा तथा निर्दिष्टा—ये [सोलह शक्तियाँ] दूसरे आवरणमें कही गयी हैं। मैंने नन्दव्यूह बता दिया, अब नन्दाव्यूह बताता हूँ। विनायकी, पूर्णिमा, रंकारी, कुण्डली, इच्छा, कपालिनी, द्वीपिनी तथा जयन्तिका—ये आठ शक्तियाँ प्रथम आवरणमें बतायी गयी हैं। पहला आवरण बता दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। पावनी, अम्बिका, सर्वात्मा, पूतना, छगली, मोदिनी, देवी लम्बोदरी, संहारी, कालिनी, कुसुमा, शुक्रा, तारा, ज्ञाना, क्रिया, गायत्री तथा सावित्री—ये क्रमसे [सोलह देवियाँ] हैं। इसे [नन्दाव्यूहका] द्वितीय आवरण कहा गया है॥ २११—२१९॥

नन्दाव्यूह कह दिया, अब इसके बाद पैतामहव्यूह बताता हूँ। नन्दिनी, फेत्कारी, क्रोधा, हंसा, षडंगुला, आनन्दा, वसुदुर्गा तथा संहारामृता आठवीं शक्ति बतायी गयी हैं। यह प्रथम आवरण कह दिया गया, अब दूसरा आवरण सुनिये। कुलान्तिका, अनला, प्रचण्डा, मर्दिनी, सर्वभूताभया, दया, वड़वामुखी, लम्पटा, पन्नगा देवी, कुसुमा, विपुलान्तका, केदारा, कूर्मा, दुरिता, मन्दरोदरी, खड्गचक्रा—यह द्वितीय आवरण सम्यक् रूपसे कहा गया है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले पैतामहव्यूहका वर्णन कर दिया, अब मैं पितामहाव्यूह बता रहा हूँ; इसे मुझसे सुनिये। वज्रा, नन्दना, शावा, राविका, रिपुभेदिनी, रूपा, चतुर्था तथा योगा—ये शक्तियाँ प्रथम आवरणमें बतायी गयी हैं। भूतानादा,

भस्मा कान्ता तथा वृष्टिर्द्विभुजा ब्रह्मरूपिणी।
सैह्या वैकारिका जाता कर्ममोटी तथापरा॥ २२७

महामोहा महामाया गान्धारी पुष्पमालिनी।
शब्दापी च महाघोषा षोडशैव तथान्तिमे॥ २२८

महाबाला, खर्परा, भस्मा, कान्ता, वृष्टि, द्विभुजा ब्रह्मरूपिणी, सैह्या, वैकारिका, जाता, कर्ममोटी, महामोहा, महामाया, पुष्पमाला धारण करनेवाली गान्धारी, शब्दापी, महाघोषा—ये सोलह शक्तियाँ दूसरे आवरणमें बतायी गयी हैं॥ २२०—२२८॥

सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः।
पद्मशङ्खधराः शान्ता रक्तस्रग्वस्त्रभूषणाः॥ २२९

सर्वाभरणसम्पूर्णा मुकुटाद्यैरलङ्कृताः।
मुक्ताफलमयैर्दिव्यै रत्नचित्रैर्मनोरमैः॥ २३०

विभूषिता गौरवर्णा ध्येया देव्यः पृथक्पृथक्।

ये सभी देवियाँ दो भुजाओंसे युक्त, बालसूर्यके समान प्रभावाली, [हाथोंमें] कमल तथा शंख धारण करनेवाली, शान्तस्वभाव, रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्रसे विभूषित, समस्त आभूषणोंसे परिपूर्ण, मोतियोंसे जटित दिव्य मुकुट आदिसे अलंकृत, भाँति-भाँतिके अद्भुत तथा मनोरम रत्नोंसे विभूषित और गौरवर्णवाली हैं। इन देवियोंका पृथक्-पृथक् ध्यान करना चाहिये॥ २२९-२३०½॥

एवं सहस्रकलशं ताम्रजं मृन्मयं तु वा॥ २३१

पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तं रुद्रक्षेत्रे प्रतिष्ठितम्।
भवाद्यैर्विष्णुना प्रोक्तैर्नाम्नां चैव सहस्रकैः॥ २३२

सम्पूज्य विन्यसेदग्रे सेचयेद्बाणविग्रहम्।
अभिषिच्य च विज्ञाप्य सेचयेत्पृथिवीपतिम्॥ २३३

एवं सहस्रकलशं सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
चत्वारिंशन्महाव्यूहं सर्वलक्षणलक्षितम्॥ २३४

इस प्रकार ताँबे अथवा मिट्टीके बने तथा पूर्वकथित लक्षणोंसे युक्त हजार कलशोंको रुद्रक्षेत्रमें प्रतिष्ठित करे। विष्णुके द्वारा कहे हुए 'भव' आदि हजार नामोंसे [प्रत्येक कलशमें] पूजन करके सम्मुख बाणविग्रह (बाणलिङ्ग) स्थापित करके अभिषेक करना चाहिये। अभिषेक-प्रार्थना करके पृथ्वीपतिका अभिषेचन करना चाहिये। इस प्रकार चालीस महाव्यूहोंवाला तथा सभी लक्षणोंसे सम्पन्न यह हजार कलशोंसे अभिषेचन सभी सिद्धियोंको देनेवाला है॥ २३१—२३४॥

सर्वेषां कलशं प्रोक्तं पूर्ववद्धेमनिर्मितम्।
सर्वे गन्धाम्बुसम्पूर्णपञ्चरत्नसमन्विताः॥ २३५

तथा कनकसंयुक्ता देवस्य घृतपूरिताः।
क्षीरेण वाथ दध्ना वा पञ्चगव्येन वा पुनः॥ २३६

ब्रह्मकूर्चेन वा मध्यमभिषेको विधीयते।
रुद्राध्यायेन रुद्रस्य नृपतेः शृणु सत्तम॥ २३७

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ २३८

मन्त्रेणानेन राजानं सेचयेदभिषेचितम्।
होमं च मन्त्रेणानेन अघोरेणाघहारिणा॥ २३९

सभी कलशोंके मध्यमें पूर्वोक्त प्रमाणका स्वर्णनिर्मित कलश बताया गया है। सभी कलश सुगन्धित जलसे परिपूर्ण तथा पंचरत्नोंसे समन्वित होने चाहिये। रुद्रदेवके कलश स्वर्णयुक्त तथा घृतपूरित होने चाहिये। गायके दूध, दही, पंचगव्य अथवा ब्रह्मकूर्चसे रुद्रका मध्य-अभिषेक किया जाता है। हे सत्तम! रुद्रका अभिषेक रुद्राध्यायसे किया जाता है; अब राजाके अभिषेकके विषयमें सुनिये। **'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥'**—इस मन्त्रके द्वारा मूर्धाभिषिक्त राजाका अभिसेचन करना चाहिये और इसी पापनाशक अघोर मन्त्रसे होम भी करना चाहिये॥ २३५—२३९॥

प्रागाद्यं देवकुण्डे वा स्थण्डिले वा घृतादिभिः।
समिदाज्यचरुं लाजशालिनीवारतण्डुलैः॥ २४०

देवकुण्डमें अथवा स्थण्डिलमें घृतसे सिक्त लाजा, शालि, नीवार तथा तण्डुलसहित समिधा और चरुकी एक

अष्टोत्तरशतं हुत्वा राजानमधिवासयेत्।
पुण्याहं स्वस्ति रुद्राय कौतुकं हेमनिर्मितम्॥ २४१
भसितं च मृणालेन बन्धयेद्दक्षिणे करे।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ २४२
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।
मन्त्रेणानेन राजानं सेचयेद्वाथ होमयेत्॥ २४३
सर्वद्रव्याभिषेकं च होमद्रव्यैर्यथाक्रमम्।
प्रागाद्यं ब्रह्मभिः प्रोक्तं सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम्॥ २४४
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ २४५
स्वाहान्तं पुरुषेणैवं प्राक्कुण्डं होमयेद्द्विजः।
अघोरेण च याम्ये च होमयेत्कृष्णवाससा॥ २४६
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय
नमो रुद्राय नमः।
इत्याद्युक्तक्रमेणैव जुहुयात्पश्चिमे नरः॥ २४७
सद्येन पश्चिमे होमः सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम्।
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः॥ २४८
भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः।
स्वाहान्तं जुहुयादग्नौ मन्त्रेणानेन बुद्धिमान्॥ २४९
आग्नेय्यां च विधानेन ऋचा रौद्रेण होमयेत्।
जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादिना ततः।
नैर्ऋते पूर्ववद्द्रव्यैः सर्वैर्होमो विधीयते॥ २५०
मन्त्रेणानेन दिव्येन सर्वसिद्धिकरेण च।
निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग राक्षसभेदन॥ २५१
रुधिराज्यार्द्र नैर्ऋत्यै स्वाहा नमः स्वधा नमः।
यथेष्टं विधिना द्रव्यैर्मन्त्रेणानेन होमयेत्॥ २५२
यम्यां हि विविधैर्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः।
ईशान्यामथ पूर्वोक्तैर्द्रव्यैर्होममथाचरेत्॥ २५३
ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यम्बकाय।
शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ २५४

सौ आठ आहुति देकर पूर्वाभिमुख राजाका अधिवासन करना चाहिये। तदनन्तर रुद्रके लिये पुण्याहवाचन तथा स्वस्तिवाचन करके भस्म तथा मृणालसहित स्वर्णनिर्मित कंकण राजाके दाहिने हाथमें बाँधना चाहिये। इसके बाद **'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'**—इस मन्त्रसे राजाका अभिषेक करना चाहिये और इसके बाद हवन करना चाहिये॥ २४०—२४३॥

क्रमानुसार लाजा आदि होमद्रव्योंसे सर्वद्रव्याभिषेक करना चाहिये। प्राक् आदिके क्रमसे पंचब्रह्म मन्त्रोंके द्वारा सभी द्रव्योंसे हवन करना बताया गया है। **'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्'**—इस तत्पुरुषमन्त्रके अन्तमें स्वाहा जोड़कर द्विजको पूर्व दिशाके कुण्डमें हवन करना चाहिये। कृष्णवस्त्रधारी आचार्यको अघोरमन्त्रसे दक्षिण दिशामें हवन करना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्यको चाहिये कि **'वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः'**—इस मन्त्रसे उक्त क्रमके अनुसार पश्चिम कुण्डमें हवन करे। यथाक्रम सद्योजात मन्त्रसे समस्त द्रव्योंसे उसके पार्श्ववर्ती उत्तर दिशामें होम किया जाना चाहिये; **'सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः। भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः स्वाहा'**—इस मन्त्रके द्वारा बुद्धिमान्‌को अग्निमें आहुति डालनी चाहिये॥ २४४—२४९॥

तदनन्तर **'यो रुद्रो यो अग्नौ०'**—इस मन्त्रके साथ **'जातवेदसे सुनवाम सोमम्०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा विधानपूर्वक अग्निकोणके कुण्डमें हवन करे। इसके बाद **'निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग राक्षसभेदन रुधिराज्यार्द्र नैर्ऋत्यै स्वाहा नमः स्वधा नमः'**—इस सर्वसिद्धिकारक दिव्य मन्त्रके द्वारा नैर्ऋत्यकोणमें पूर्वकी भाँति सभी द्रव्योंसे होम किया जाता है। हे द्विजश्रेष्ठो! वायव्यकोणके कुण्डमें ईशानमन्त्रद्वारा विविध द्रव्योंसे हवन करे, हवनका मन्त्र है—**'ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यम्बकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।'** इसी प्रकार ईशानकोणके कुण्डमें भी ईशानमन्त्रके ही

प्रधानं पूर्ववद्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः।
प्रतिद्रव्यं सहस्रेण जुहुयान्नृपसन्निधौ॥ २५५

स्वयं वा जुहुयादग्नौ भूपतिः शिववत्सलः।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्॥ २५६

प्रायश्चित्तमघोरेण शेषं सामान्यमाचरेत्।
कृताधिवासं राजानं शङ्खभेर्यादिनिस्वनैः॥ २५७

जयशब्दरवैर्दिव्यैर्वेदघोषैः सुशोभनैः।
सेचयेत्कूर्चतोयेन प्रोक्षयेद्वा नृपोत्तमम्॥ २५८

रुद्राध्यायेन विधिना रुद्रभस्माङ्गधारिणम्।
शङ्खचामरभेर्याद्यं छत्रं चन्द्रसमप्रभम्॥ २५९

शिबिकां वैजयन्तीं च साधयेन्नृपतेः शुभाम्।
राज्याभिषेकयुक्ताय क्षत्रियायेश्वराय वा॥ २६०

नृपचिह्नानि नान्येषां क्षत्रियाणां विधीयते।
प्रमाणं चैव सर्वेषां द्वादशाङ्गुलमुच्यते॥ २६१

पलाशोदुम्बराश्वत्थवटाः पूर्वादितः क्रमात्।
तोरणाद्यानि वै तत्र पट्टमात्रेण पट्टिकाः॥ २६२

अष्टमाङ्गुलसंयुक्तदर्भमालासमावृतम् ।
दिग्ध्वजाष्टकसंयुक्तं द्वारकुम्भैः सुशोभनम्॥ २६३

हेमतोरणकुम्भैश्च भूषितं स्नापयेन्नृपम्।
सर्वोपरि समासीनं शिवकुम्भेन सेचयेत्॥ २६४

तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि।
तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥ २६५

मन्त्रेणानेन विधिना वर्धन्या गौरिगीतया।
रुद्राध्यायेन वा सर्वमघोरायाथ वा पुनः॥ २६६

दिव्यैराभरणैः शुक्लैर्मुकुटाद्यैः सुकल्पितैः।
क्षौमवस्त्रैश्च राजानं तोषयेन्नियतं शनैः॥ २६७

द्वारा पूर्वकथित द्रव्योंसे हवन करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठो! प्रधान कुण्डमें भी ईशानमन्त्रके द्वारा पूर्ववत् सभी द्रव्योंसे हवन करना चाहिये। [आचार्यको] प्रत्येक कुण्डमें एक-एक हजार आहुति राजाकी सन्निधिमें प्रदान करनी चाहिये; अथवा '**ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्**'—इस मन्त्रसे शिवभक्तिपरायण राजा अग्निमें स्वयं आहुति प्रदान करे॥ २५०—२५६॥

प्रायश्चित्त अघोरमन्त्रसे करना चाहिये तथा अवशिष्ट कर्म अन्य यागके समान करना चाहिये। शंख-भेरी आदिकी ध्वनि, जयकारकी ध्वनि तथा मंगलमय दिव्य वेद-ध्वनिके बीच रुद्राध्यायका पाठ करके अधिवासित राजाका कूर्च-जलसे अभिषेक करना चाहिये अथवा रुद्राक्ष एवं भस्म धारण किये हुए नृपश्रेष्ठका प्रोक्षण करना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्यको चाहिये कि राजाके लिये शंख, चामर, भेरी, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् छत्र, पालकी, शुभ ध्वजा आदि साधन प्रस्तुत करे। राज्याभिषेकके योग्य क्षत्रियके लिये अथवा देवताके लिये ही ये सब राजचिह्न हैं; अन्य क्षत्रियोंके लिये अभिषेकका विधान नहीं है। पूर्वादि क्रमसे [चारों दिशाओंमें] पलाश, गूलर, पीपल और बरगदकी शाखाएँ बाँधनी चाहिये और [अभिषेक-मण्डपमें] तोरण आदि तथा रेशमके वस्त्रकी पट्टिका लगा देनी चाहिये। इसमें पलाश आदि सभीकी शाखाओंका प्रमाण बारह अंगुल बताया गया है। अभिषेक-मण्डपको आठ-आठ अंगुल प्रमाणवाले दर्भोंकी मालासे समावृत, आठों दिशाओंमें ध्वजासे अलंकृत, द्वारकुम्भोंसे सुशोभित तथा सुवर्णके तोरणमय कलशोंसे विभूषित करके राजाको स्नान कराना चाहिये। '**तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥**'— इस मन्त्रके द्वारा शिवकुम्भके जलसे, गौरीगायत्री मन्त्रके द्वारा वर्धनीके जलसे और रुद्राध्याय अथवा अघोरमन्त्रके द्वारा सभी कुम्भोंके जलसे सर्वोच्च आसनपर विराजमान राजाका अभिषेक करना चाहिये॥ २५७—२६६॥

तदनन्तर उत्तम प्रकारसे निर्मित किये गये उज्ज्वल

अष्टषष्टिपलेनैव हेम्ना कृत्वा सुदर्शनम्।
नवरत्नैरलङ्कृत्य दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः॥ २६८

दशधेनु सवस्त्रं च दद्यात्क्षेत्रं सुशोभनम्।
शतद्रोणतिलं चैव शतद्रोणांश्च तण्डुलान्॥ २६९

शयनं वाहनं शय्यां सोपधानां प्रदापयेत्।
योगिनां चैव सर्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम्॥ २७०

अशेषांश्च तदर्धेन शिवभक्तांस्तदर्धतः।
महापूजां ततः कुर्यान्महादेवस्य वै नृपः॥ २७१

मुकुट आदि दिव्य आभूषणों तथा रेशमी वस्त्रोंसे राजाको विभूषित करना चाहिये। राजाको चाहिये कि [इस अवसरपर] अड़सठ पल प्रमाणका एक सुदर्शन चक्र बनवाकर उसे नौ रत्नोंसे जटित कराकर गुरुको दक्षिणा प्रदान करे; साथ ही वस्त्रसहित दस गायें तथा उत्तम भूमि प्रदान करे। सौ द्रोण तिल, सौ द्रोण चावल, वाहन, विस्तर तथा तकियासहित शय्या भी [गुरुको] प्रदान करना चाहिये। योगियोंके लिये सुवर्णके तीस पलका दान बताया गया है और अन्य सामग्रियाँ आधी देनी चाहिये तथा शिवभक्तोंको उससे भी आधी प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर राजाको महादेवकी महापूजा करनी चाहिये॥ २६७—२७१॥

एवं समासतः प्रोक्तं जयसेचनमुत्तमम्।
एवं पुराभिषिक्तस्तु शक्रः शक्रत्वमागतः॥ २७२

ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः।
अम्बिका चाम्बिकात्वं च सौभाग्यमतुलं तथा॥ २७३

सावित्री च तथा लक्ष्मीर्देवी कात्यायनी तथा।
नन्दिनाथ पुरा मृत्यू रुद्राध्यायेन वै जितः॥ २७४

अभिषिक्तोऽसुरः पूर्वं तारकाख्यो महाबलः।
विद्युन्माली हिरण्याक्षो विष्णुना वै विनिर्जितः॥ २७५

नृसिंहेन पुरा दैत्यो हिरण्यकशिपुर्हतः।
स्कन्देन तारकाद्याश्च कौशिक्या च पुराम्बया॥ २७६

सुन्दोपसुन्दतनयौ जितौ दैत्येन्द्रपूजितौ।
वसुदेवसुदेवौ तु निहतौ कृतकृत्यया॥ २७७

स्नानयोगेन विधिना ब्रह्मणा निर्मितेन तु।
दैवासुरे दितिसुता जिता देवैरनिन्दिताः॥ २७८

स्नाप्यैव सर्वभूपैश्च तथान्यैरपि भूसुरैः।
प्राप्ताश्च सिद्धयो दिव्या नात्र कार्या विचारणा॥ २७९

इस प्रकार मैंने उत्तम जयाभिषेकका वर्णन संक्षेपमें कर दिया। पूर्वकालमें इसी प्रकारसे अभिषिक्त होकर इन्द्रने इन्द्रत्व प्राप्त किया था। इसी प्रकार ब्रह्माको ब्रह्मत्व, विष्णुको विष्णुत्व तथा अम्बिकाको अम्बिकात्व प्राप्त हुआ था। सावित्री, भगवती लक्ष्मी तथा कात्यायनीने भी [इसी अभिषेकके प्रभावसे] अतुल सौभाग्य प्राप्त किया था। पूर्व कालमें रुद्राध्यायसे अभिषिक्त होकर नन्दीने मृत्युको भी जीत लिया था। इसी अभिषेकके प्रभावसे महाबली असुर तारक तथा विद्युन्माली देवताओंसे अजेय हो गये थे और भगवान् विष्णुने हिरण्याक्षको पराजित किया था। इसी प्रकार इसी स्नानयोगसे प्राचीनकालमें नृसिंहने दैत्य हिरण्यकशिपुका वध किया था, कार्तिकेयने तारक आदिका संहार किया था, अम्बा कौशिकीने बड़े-बड़े दैत्योंके द्वारा पूजित सुन्द-उपसुन्दके पुत्रोंको जीत लिया था और कृतकृत्याने वसुदेव तथा सुदेवका वध किया था। विधिपूर्वक ब्रह्माके द्वारा निर्मित इसी स्नानयोग (जयाभिषेक)-से देवासुर-संग्राममें देवताओंने प्रतापी दितिपुत्रोंको जीता था। सभी राजा तथा अन्य ब्राह्मणोंने भी अभिषिक्त होकर अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २७२—२७९॥

अहोऽभिषेकमाहात्म्यमहो शुद्धसुभाषितम्।
येनैवमभिषिक्तेन सिद्धैर्मृत्युर्जितस्त्विति॥ २८०

इस अभिषेकका ऐसा माहात्म्य! यह कैसा पवित्र सुभाषित है कि जिसके द्वारा अभिषिक्त होनेके कारण

कल्पकोटिशतेनापि यत्पापं समुपार्जितम्।
स्नात्वैवं मुच्यते राजा सर्वपापैर्न संशयः॥ २८१

व्याधितो मुच्यते राजा क्षयकुष्ठादिभिः पुनः।
स नित्यं विजयी भूत्वा पुत्रपौत्रादिभिर्युतः॥ २८२

जनानुरागसम्पन्नो देवराज इवापरः।
मोदते पापहीनश्च प्रियया धर्मनिष्ठया॥ २८३

उद्देशमात्रं कथितं फलं परमशोभनम्।
नृपाणामुपकाराय स्वायम्भुव मनो मया॥ २८४

सिद्धिको प्राप्त हुए लोगोंने मृत्युतकको जीत लिया। इस विधिसे स्नान करके कोई राजा करोड़ों कल्पोंमें भी जो पाप संचित किया गया हो, उन सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। क्षय-कुष्ठ आदि व्याधियोंसे राजा छुटकारा पा जाता है, वह विजयी होकर सदा पुत्र-पौत्र आदिसे सम्पन्न रहता है, प्रजाजनोंके अनुरागसे युक्त रहता है, दूसरे इन्द्रकी भाँति सुशोभित होता है तथा पापहीन रहते हुए अपनी धर्मनिष्ठ पत्नीके साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे स्वायम्भुव मनु! राजाओंके उपकारके लिये ही मैंने संक्षेपमें [जयाभिषेकका] वर्णन किया है, इसका फल अत्यन्त कल्याणकारक है॥ २८०—२८४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अभिषेकविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अभिषेकविधि' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुके प्रति सनत्कुमारप्रोक्त षोडश* महादानोंमें तुलापुरुषदानकी विधिका वर्णन

सूत उवाच

स्नात्वा देवं नमस्कृत्य देवदेवमुमापतिम्।
दिव्येन चक्षुषा रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्॥ १

दृष्ट्वा तुष्टाव वरदं रुद्राध्यायेन शङ्करम्।
देवोऽपि तुष्ट्या निर्वाणं राज्यान्ते कर्मणैव तु॥ २

तवास्तीति सकृच्चोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत।
स्वायम्भुवो मनुर्देवं नमस्कृत्य वृषध्वजम्॥ ३

आरुरोह महामेरुं महावृषमिवेश्वरः।
तत्र देवं हिरण्याभं योगैश्वर्यसमन्वितम्॥ ४

सूतजी बोले—तदनन्तर इस विधिसे स्नान करके देवदेव उमापति नीललोहित भगवान् रुद्रको नमस्कारकर तथा दिव्य दृष्टिसे उन्हें देखकर वे स्वायम्भुव मनु रुद्राध्यायके द्वारा वरदायक शंकरकी स्तुति करने लगे। भगवान् शिव भी उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर '[दीर्घकालतक] राज्य करके अन्तमें सत्कर्मसे तुम्हारा मोक्ष होगा'—ऐसा एक बार कहकर वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ १-२$^{1}/_{2}$॥

वृषभध्वज भगवान् शिवको नमस्कार करके स्वायम्भुव मनु मेरुशृंगपर उसी प्रकार आरूढ़ हुए, जैसे

* सर्ग-प्रतिसर्गरूप पंचलक्षणात्मक पुराणोंके वर्ण्य-विषयमें दान-विधानका विस्तारसे निरूपण हुआ है, जिसका संग्रह परवर्ती निबन्धग्रन्थों—कृत्यकल्पतरु (दानखण्ड), हेमाद्रि (चतुर्वर्गचिन्तामणि), दानमयूख तथा दानसागर आदिमें विस्तारसे हुआ है। श्रीलिङ्गमहापुराणके उत्तरभागके अट्ठाईसवें अध्यायसे चौवालीसवें अध्यायतक सत्रह अध्यायोंमें षोडश महादानोंका वर्णन संक्षेपमें आया है। इसकी पूर्ण जानकारीके लिये उपर्युक्त निबन्धग्रन्थ, मत्स्य, अग्नि आदि पुराणों तथा दानपद्धतियोंका अवलोकन करना चाहिये। पुराणोंमें षोडश महादानोंके नामोंमें अन्तर भी प्राप्त होता है। श्रीलिङ्गमहापुराणमें षोडश महादानोंके अन्तर्गत जिन दानोंका परिगणन हुआ है, उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१-तुलापुरुष, २-हिरण्यगर्भ, ३-तिलपर्वत तथा सूक्ष्म तिलपर्वत, ४-सुवर्णमेदिनी, ५-कल्पपादप, ६-गणेशेश, ७-सुवर्णधेनु, ८-लक्ष्मी, ९-तिलधेनु, १०-गोसहस्र, ११-हिरण्याश्व, १२-कन्या, १३-हिरण्यवृष, १४-सुवर्णगज, १५-लोकपालाष्टक तथा १६-ब्रह्मा-विष्णु-महेश-मूर्तिदान।

सनत्कुमारं वरदमपश्यद्ब्रह्मणः सुतम्।
नमश्चकार वरदं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम्॥ ५

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महाद्युतिः।
सोऽपि दृष्ट्वा मनुं देवो हृष्टरोमाभवन्मुनिः॥ ६

सनत्कुमारः प्राहेदं घृणया च घृणानिधे।

सनत्कुमार उवाच

दृष्ट्वा सर्वेश्वराच्छान्ताच्छङ्करान्नीललोहितात्॥ ७

लब्ध्वाभिषेकं सम्प्राप्तो विवक्षुर्वद यद्यपि।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ ८

विज्ञापयामास कथं कर्मणा निर्वृतिर्विभो।
वक्तुमर्हसि चास्माकं कर्मणा केवलेन च॥ ९

ज्ञानेन निर्वृतिः सिद्धा विभो मिश्रेण वा क्वचित्।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा श्रुतिसारविदां निधिः॥ १०

सनत्कुमारो भगवान् कर्मणा निर्वृतिं क्रमात्।
मिश्रेण च क्रमादेव क्षणाज्ज्ञानेन वै मुने॥ ११

पुरामानेन चोष्ट्रत्वमगमं नन्दिनः प्रभोः।
शापात्पुनः प्रसादाद्धि शिवमभ्यर्च्य शङ्करम्॥ १२

प्रसादान्नन्दिनस्तस्य कर्मणैव सुतो ह्यहम्।
श्रुत्वोत्तमां गतिं दिव्यामवस्थां प्राप्तवानहम्॥ १३

शिवार्चनप्रकारेण शिवधर्मेण नान्यथा।
राज्ञां षोडशदानानि नन्दिना कथितानि च॥ १४

धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं कर्मणैव महात्मना।
तुलादिरोहणाद्यानि शृणु तानि यथातथम्॥ १५

सदाशिव महावृषभपर आरूढ़ होते हैं। वहाँपर उन्होंने स्वर्णकी आभावाले, योगके प्रतापसे युक्त तथा वर प्रदान करनेवाले ब्रह्मापुत्र सनत्कुमारको देखा। [उन्हें देखकर] महातेजस्वी मनुने उन वरदायक, ब्रह्मज्ञानी तथा ब्रह्मरूप [सनत्कुमार]-को नमस्कार किया और दोनों हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की। मनुको देखकर मुनि सनत्कुमार भी हर्षके कारण पुलकित हो उठे और 'हे कृपानिधे!' इस प्रकार सम्बोधित करके दयापूर्वक उनसे कहने लगे॥ ३—६$^{1}/_{2}$॥

सनत्कुमार बोले—शान्तस्वभाववाले नीललोहित सर्वेश्वर शिवका दर्शन करके उनसे जयाभिषेक प्राप्त करके आप यहाँ आये हैं। यदि आप कुछ और पूछनेके इच्छुक हैं, तो पूछिये। तब उनका वचन सुनकर दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करके मनुने कहा—हे विभो! कर्मके द्वारा मुक्ति कैसे हो सकती है? हे विभो! आप हम लोगोंको कृपा करके यह बतायें कि केवल कर्मसे अथवा ज्ञानसे अथवा ज्ञान-कर्मके मिश्रित प्रभावसे किस प्रकार मुक्ति मिलती है?॥ ७—९॥

उनका वचन सुनकर वेदरहस्योंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारने कहा—हे मुने! कर्मके द्वारा क्रमसे मुक्ति हो जाती है, कर्मयुक्त ज्ञानसे भी क्रमशः मुक्ति होती है, किंतु शुद्ध ज्ञानसे क्षणमात्रमें मोक्ष हो जाता है॥ १०-११॥

पूर्वकालमें प्रभु नन्दीका अपमान करनेके कारण उनके शापसे मैं ऊँटकी योनिको प्राप्त हो गया था; पुनः उन्हींकी कृपासे कल्याणकारी भगवान् शिवका अर्चन करके उस शिवार्चनरूप कर्मके कारण ही मैं ब्रह्माजीका पुत्र हुआ और उन्हीं नन्दीके अनुग्रहसे उत्तम मुक्तिमार्गका श्रवण करके शिवधर्मरूप शिवार्चनकी रीतिसे दिव्य अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२-१३$^{1}/_{2}$॥

महात्मा नन्दिकेश्वरने राजाओंको [दानरूप] कर्मके द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिके लिये तुलारोहण आदि सोलह दानोंका वर्णन किया है; उन्हें आप यथाविधि सुनिये॥ १४-१५॥

ग्रहणादिषु कालेषु शुभदेशेषु शोभनम्।
विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव च॥ १६
यथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः।
कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः॥ १७
अष्टहस्तेन वा कार्या सप्तहस्तेन वा पुनः।
द्विहस्ता सार्धहस्ता वा वेदिका चातिशोभना॥ १८
द्वादशस्तम्भसंयुक्ता साधुरम्या भ्रमन्तिका।
परितो नव कुण्डानि चतुरस्राणि कारयेत्॥ १९
ऐन्द्रिकेशानयोर्मध्ये प्रधानं ब्रह्मणः सुत।
अथवा चतुरस्रं च योन्याकारमतः परम्॥ २०
स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्रा योन्याकाराणि कारयेत्।
अर्धचन्द्रं त्रिकोणं च वर्तुलं कुण्डमेव च॥ २१
षडस्रं सर्वतो वापि त्रिकोणं पद्मसन्निभम्।
अष्टास्रं सर्वमाने तु स्थण्डिलं केवलं तु वा॥ २२
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुस्तोरणभूषितम्।
दिग्गजाष्टकसंयुक्तं दर्भमालासमावृतम्॥ २३
अष्टमङ्गलसंयुक्तं वितानोपरिशोभितम्।
तुलास्तम्भद्रुमाश्चात्र बिल्वादीनि विशेषतः॥ २४
बिल्वाश्वत्थपलाशाद्याः केवलं खादिरं तु वा।
येन स्तम्भः कृतः पूर्वं तेन सर्वं तु कारयेत्॥ २५
अथवा मिश्रमार्गेण वेणुना वा प्रकल्पयेत्।
अष्टहस्तप्रमाणं तु हस्तद्वयसमायुतम्॥ २६
तुलास्तम्भस्य विष्कम्भोऽनाहतस्त्रिगुणो मतः।
द्व्यङ्गुलेन विहीनं तु सुवृत्तं निर्व्रणं तथा॥ २७

ग्रहण आदि कालोंमें तीर्थ आदि उत्तम स्थानोंमें* बीस हाथ, अठारह हाथ अथवा सोलह हाथ-प्रमाणका सुन्दर कूटयुक्त मण्डप बनाकर उसके मध्यमें नौ हाथ, आठ हाथ, सात हाथ, दो हाथ अथवा डेढ़ हाथ विस्तारवाली एक अत्यन्त सुन्दर वेदिकाका निर्माण कराना चाहिये। उसके चारों ओर बारह स्तम्भ हों और एक सुन्दर तथा रम्य तुला स्थापित कर देनी चाहिये। उसके चारों ओर नौ चौकोर कुण्डोंका निर्माण कराना चाहिये। हे ब्रह्मपुत्र! पूर्व तथा ईशानकोणके मध्य प्रधान कुण्ड बनाना चाहिये, जो चौकोर या योनिके आकारका हो। हे विप्रेन्द्रो! स्त्रियोंके लिये कुण्ड योनिके आकारवाले ही बनाने चाहिये। कुण्ड अर्धचन्द्र, त्रिकोण, वर्तुल, षडस्र, त्रिकोण, पद्माकार तथा अष्टास्र बनाना चाहिये अथवा कुण्डोंके स्थानपर स्थण्डिल ही बना लेना चाहिये॥ १६—२२॥

चार द्वारोंसे समन्वित, चार तोरणोंसे सुशोभित, आठों दिशाओंमें अष्ट दिग्गजोंसे समन्वित, दर्भमालासे युक्त, आठ मंगलोंसे संयुक्त और ऊपर वितान (चँदोवा)-से सुशोभित मण्डपका निर्माण कराना चाहिये। तुलास्तम्भ विशेषरूपसे बिल्व वृक्षोंके होने चाहिये। बेल, पीपल, पलाश अथवा खदिर (खैर)-की लकड़ीके स्तम्भ बनाने चाहिये। जिस वृक्षकी लकड़ीका प्रथम स्तम्भ हो, उसीसे अन्य भी निर्मित करने चाहिये अथवा अनेक काष्ठोंके मिश्रणसे अथवा केवल बाँससे ही स्तम्भ आदि बना लेने चाहिये। आठ हाथ-प्रमाणका स्तम्भ होना चाहिये; उसका दो हाथ भाग भूमिमें गाड़ देना चाहिये। तुलास्तम्भका ऊपरी अनाच्छादित भाग आच्छादित भागका तीन गुना

---

* अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥
युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु। संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च॥
सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च। यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने॥
द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते। तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपारामसरित्सु वा॥
गृहे वाथ वने वापि तडागे रुचिरे तथा। महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा॥ (मत्स्यपुराण २७४। १९—२३)

संसारभयसे भीत मनुष्यको अयन-परिवर्तनके समय, विषुवयोगमें, पुण्यदिनों, व्यतीपात, दिनक्षय तथा युगादि तिथियोंमें, सूर्य-चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर, मन्वन्तरके प्रारम्भमें, संक्रान्तिके दिन, वैधृतियोगमें, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, पर्वके दिन, द्वादशी तथा अष्टका (हेमन्त-शिशिर ऋतुओंके कृष्णपक्षकी चारों अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही गयी हैं) तिथियोंमें, यज्ञ-उत्सव तथा विवाहके अवसरपर, दुःस्वप्नके देखने या किसी अद्भुत उत्पातादिके होनेपर, यथेष्ट द्रव्य या ब्राह्मणके मिल जानेपर या जब जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, किसी तीर्थ, मन्दिर या गोशालामें, कूप, बगीचा या नदीके तटपर, अपने घरपर या पवित्र वनमें अथवा पवित्र तालाबके किनारे इन महादानोंको देना चाहिये।

उभयोरन्तरं चैव षड्ढस्तं नृपते स्मृतम्।
द्वयोश्चतुर्हस्तकृतमन्तरं स्तम्भयोरपि॥ २८

षड्ढस्तमन्तरं ज्ञेयं स्तम्भयोरुपरि स्थितम्।
वितस्तिमात्रं विस्तारो विष्कम्भस्तावदुत्तरम्॥ २९

स्तम्भयोस्तु प्रमाणेन उत्तरद्वारसम्मितम्।

षट्त्रिंशन्मात्रसंयुक्तं व्यायामं तु तुलात्मकम्॥ ३०

विष्कम्भमष्टमात्रं तु यवपञ्चकसंयुतम्।
षट्त्रिंशन्मात्रनाभं स्यान्निर्माणाद्वर्तुलं शुभम्॥ ३१

अग्रे मूले च मध्ये च हेमपट्टेन बन्धयेत्।
पट्टमध्ये प्रकर्तव्यमवलम्बनकत्रयम्॥ ३२

ताम्रेण च प्रकर्तव्यमवलम्बनकत्रयम्।
आरेण वा प्रकर्तव्यमायसं नैव कारयेत्॥ ३३

मध्ये चोर्ध्वमुखं कार्यमवलम्बः सुशोभनः।
रश्मिभिस्तोरणाग्रे वा बन्धयेच्च विधानतः॥ ३४

जिह्वामेकां तुलामध्ये तोरणं तु विधीयते।
उत्तरस्य च मध्ये च शङ्कुं दृढमनुत्तमम्॥ ३५

वितानेनोपरि च्छाद्य दृढं सम्यक्प्रयोजयेत्।
शङ्कोः सुषिरसम्पन्नं वलयं कारयेन्मुने॥ ३६

तुलामध्ये वितानेन तुलया लम्बके तथा।
वलयेन प्रयोक्तव्यं कुण्डलं वावलम्बनम्॥ ३७

सुदृढं च तुलामध्ये नवमाङ्गुलमानतः।
पट्टस्यैव तु विस्तारं पञ्चमात्रप्रमाणतः॥ ३८

अपरौ सुदृढौ पिण्डौ शुभद्रव्येण कारयेत्।
शिक्याधस्तात्प्रकर्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ।
सहस्रेण तु कर्तव्यौ पलानां धारकावुभौ॥ ३९

शताष्टकेन वा कुर्यात्पलैः षट्शतमेव वा।
चतुस्तालं च कर्तव्यो विस्तारो मध्यमस्तथा॥ ४०

बताया गया है। तुलाका दूसरा स्तम्भ पूर्ण गोलाकार तथा व्रणरहित होना चाहिये। हे राजन्! नीचेसे दोनों स्तम्भोंमें परस्पर दो अंगुल कम छः हाथका अन्तर कहा गया है; दोनों स्तम्भोंके बीच चार हाथका भी अन्तर रखा जा सकता है। दोनों स्तम्भोंके ऊपरी भागोंके बीच छः हाथका अन्तर जानना चाहिये। दोनों स्तम्भोंका विस्तार एक वितस्ति (बारह अंगुल) होना चाहिये और उतने ही परिमाणका दूसरा विष्कम्भ भी होना चाहिये॥ २३—२९॥

ऊपरके भागमें तुलाकी छड़ दोनों स्तम्भोंकी लम्बाईके अनुकूल हो और तुलाका सन्तुलन करनेवाले छड़की लम्बाई छत्तीस अंगुल होनी चाहिये। विष्कम्भ आठ अंगुल और पाँच यव हो। नाभि छत्तीस अंगुल लम्बी होनी चाहिये और इसे गोल तथा सुन्दर बनाना चाहिये। सिरेपर, मध्यमें और नीचेके भागमें सोनेका पट्ट लगाना चाहिये। मध्यके पट्टमें तीन अवलम्बक लगाने चाहिये। इन अवलम्बकोंको ताम्रका अथवा पीतलका बनाना चाहिये; लोहेका कदापि नहीं बनाना चाहिये॥ ३०—३३॥

पट्टको बीचमें लगानेका अवलम्ब सुन्दर हो तथा उसका मुख ऊपरकी ओर होना चाहिये। तोरणके ऊपरी सिरेपर इसे डोरियोंसे विधिवत् बाँध देना चाहिये। तुलाके मध्यमें तोरण बनाया जाता है, जो जिह्वाके आकारका होता है। उत्तर तथा दक्षिणके मध्यमें एक दृढ़ एवं सुन्दर शंकु होना चाहिये; वितानके सिरेपर दृढ़तापूर्वक इसे भलीभाँति लगा देना चाहिये। हे मुने! शंकुके वलयको छिद्रयुक्त बनाना चाहिये। तुलामध्यमें आलम्बनार्थ वितानके साथ वलय अथवा कुण्डलाकृतिविशेषका प्रयोग करना चाहिये। तुलाके पट्टके बीचसे नौ अंगुल मानमें इसे दृढ़तापूर्वक जड़ देना चाहिये; बँधनेवाले पट्टका विस्तार पाँच वितस्ति होना चाहिये॥ ३४—३८॥

शुभ द्रव्यसे दो अन्य सुदृढ़ गोलक बनवाने चाहिये। लटकनेवाली डोरीके नीचे पाँच प्रादेश (अंगुष्ठ तथा तर्जनीके बीचकी दूरी) विस्तारवाले दो धारक (पलड़े) बनवाने चाहिये; उन्हें एक हजार पल सुवर्णसे बनवाना चाहिये अथवा आठ सौ अथवा छः सौ पलोंसे बनवाना चाहिये। तुलाका मध्यम विस्तार चार ताल

सार्धत्रितालविस्तारः कलशस्य विधीयते।
बध्नीयात्पञ्चपात्रं तु त्रिमात्रं षट्कमुच्यते॥ ४१

चतुर्द्वारसमोपेतं द्वारमङ्गुलमात्रकम्।
कुण्डलैश्च समोपेतैः शुक्लशुद्धसमन्वितैः॥ ४२

कुण्डले कुण्डले कार्यं शृङ्खलापरिमण्डलम्।
शृङ्खलाधारवलयमवलम्बेन योजयेत्॥ ४३

प्रादेशं वा चतुर्मात्रं भूमेस्त्यक्त्वावलम्बयेत्।
घटौ पुरुषमात्रौ तु कर्तव्यौ शोभनावुभौ॥ ४४

तौ वालुकाभिः सम्पूर्य शिवं तत्र विनिःक्षिपेत्।
द्विहस्तमात्रमवटे स्थापनीयौ प्रयत्नतः॥ ४५

निःशेषं पूरयेद्विद्वान् वालुकाभिः समन्ततः।
येन निश्चलतां गच्छेत्तेन मार्गेण कारयेत्॥ ४६

श्रूयतां परमं गुह्यं वेदिकोपरिमण्डलम्।
अष्टमाङ्गुलसंयुक्तं मङ्गलाङ्कुरशोभितम्॥ ४७

फलपुष्पसमाकीर्णं धूपदीपसमन्वितम्।
वेदिमध्ये प्रकर्तव्यं दर्पणोदरसन्निभम्॥ ४८

आलिखेन्मण्डलं पूर्वं चतुर्द्वारसमन्वितम्।
शोभोपशोभासम्पन्नं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥ ४९

वर्णजातिसमोपेतं पञ्चवर्णं तु कारयेत्।
वज्रं प्रागन्तरे भागे आग्नेय्यां शक्तिमुज्ज्वलाम्॥ ५०

आलिखेद्दक्षिणे दण्डं नैर्ऋत्यां खड्गमालिखेत्।
पाशश्च वारुणे लेख्यो ध्वजं वै वायुगोचरे॥ ५१

कौबेर्यां तु गदा लेख्या ऐशान्यां शूलमालिखेत्।
शूलस्य वामदेशेन चक्रं पद्मं तु दक्षिणे॥ ५२

एवं लिखित्वा पश्चाच्च होमकर्म समाचरेत्।
प्रधानहोमं गायत्र्या स्वाहा शक्राय वह्नये॥ ५३

यमाय राक्षसेशाय वरुणाय च वायवे।
कुबेरायेश्वरायाथ विष्णवे ब्रह्मणे पुनः॥ ५४

(मध्यमासे अंगुष्ठके बीचकी दूरी) प्रमाणवाला बनाना चाहिये। कलशका विस्तार साढ़े तीन तालका बनानेका विधान है। वहाँपर एक विस्तृत पात्र बाँधना चाहिये; उसे तीन अथवा छः अवधृति प्रमाणवाला कहा जाता है। वह चार छिद्रोंसे युक्त हो तथा प्रत्येक छिद्र एक अंगुल प्रमाणका हो। वह छिद्र श्वेत तथा शुद्ध द्रव्योंसे युक्त कुण्डलोंसे समन्वित हो। प्रत्येक कुण्डलमें जंजीर बाँध देनी चाहिये। कुण्डलमें बँधी हुई जंजीरको तुलादण्डके अवलम्ब (वलय)-से जोड़ देना चाहिये। भूमिसे प्रादेशमात्र अथवा चार अंगुल छोड़कर पलड़ोंको लटकाना चाहिये॥ ३९—४३१/२॥

पुरुषप्रमाण (फैलानेपर दोनों हाथोंके बीचकी दूरी)-वाले दो सुन्दर घट बनाने चाहिये और उन दोनोंको बालूसे भरकर उनमें शिवकी स्थापना करनी चाहिये। दो हाथ गहरे गड्ढेमें उन घटोंको प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना चाहिये और गड्ढोंके रिक्त भागको चारों ओरसे बालूसे इस प्रकार भर देना चाहिये कि वे स्थिर हो जायँ॥ ४४—४६॥

अब परम रहस्यकी बात सुनिये। वेदीके ऊपर आठ अंगुल प्रमाणवाला, मांगलिक अंकुरोंसे सुशोभित, फल-पुष्पोंसे परिपूर्ण एवं धूप-दीपसे समन्वित परिमण्डल बनाना चाहिये। वेदीके मध्यमें दर्पणके उदरभागके समान मण्डल बनाना चाहिये। पहले चार द्वारोंसे युक्त, शोभा तथा उपशोभासे सम्पन्न एवं कर्णिका-केसरसे समन्वित मण्डलकी रचना करनी चाहिये, उसे नानाविध रंगोंसे युक्त अथवा पाँच रंगोंसे बनाना चाहिये॥ ४७—४९१/२॥

मण्डलके पूर्वदिशामें वज्र, अग्निकोणमें उज्ज्वल शक्ति, दक्षिणमें दण्ड, नैर्ऋत्यकोणमें खड्ग, पश्चिममें पाश, वायव्यकोणमें ध्वज, उत्तरमें गदा और ईशानकोणमें शूल तथा शूलके वामभागमें चक्र एवं दक्षिण भागमें पद्मकी रचना करनी चाहिये। इस प्रकार आयुधोंकी रचना करके बादमें होमकर्म करना चाहिये॥ ५०—५२१/२॥

प्रधान होम गायत्रीमन्त्रसे करना चाहिये; इसके बाद **ॐ शक्राय स्वाहा, ॐ वह्नये स्वाहा, ॐ यमाय स्वाहा, ॐ राक्षसेशाय स्वाहा, ॐ वरुणाय स्वाहा,**

स्वाहान्तं प्रणवेनैव होतव्यं विधिपूर्वकम्।
स्वशाखाग्निमुखेनैव जयादिप्रतिसंयुतम्॥ ५५

स्विष्टान्तं सर्वकार्याणि कारयेद्विधिवत्तदा।
सर्वहोमाग्रहोमे च समित्पालाशमुच्यते।
एकविंशतिसंख्यातं मन्त्रेणानेन होमयेत्॥ ५६

अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वस्तथैव च।

समिद्धोमश्च चरुणा घृतस्य च यथाक्रमम्।
शुक्लान्नपायसं चैव मुद्‍गान्नं चरवः स्मृताः॥ ५७

सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥ ५८

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम्।

गायत्र्या च प्रधानस्य समिद्धोमस्तथैव च।
चरुणा च तथाज्यस्य शक्रादीनां च होमयेत्॥ ५९

वज्रादीनां च होतव्यं सहस्रार्धं ततः क्रमात्।
ब्रह्म जज्ञेति मन्त्रेण ब्रह्मणे विष्णवे पुनः॥ ६०

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
अयं विशेषः कथितो होममार्गः सुशोभनः।
दूर्वया क्षीरयुक्तेन पञ्चविंशत्पृथक्पृथक्॥ ६१

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ६२

ॐ वायवे स्वाहा, ॐ कुबेराय स्वाहा, ॐ ईश्वराय स्वाहा, ॐ विष्णवे स्वाहा तथा **ॐ ब्रह्मणे स्वाहा**—इन मन्त्रोंको बोलकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। उस समय अपनी शाखामें उक्त अग्निविधानके अनुसार जयाहोमसे लेकर स्विष्टकृत् होमपर्यन्त सभी कार्य विधिवत् कराना चाहिये। सभी होमों तथा प्रधान होममें पलाशकी समिधा बतायी गयी है। इस मन्त्रसे इक्कीस आहुतियाँ देकर होम करना चाहिये—**अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहा।** समिधाहोम चरु तथा घृतसे यथाक्रम करना चाहिये; श्वेत अन्नका पायस तथा कृशरान्न—ये चरु कहे गये हैं। एक हजार, उसका आधा (पाँच सौ) अथवा एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये॥ ५३—५८॥

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ (यजु० १९। ३८) **अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्॥** (यजु० २६। ९) **अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्॥** (यजु० ८। ३८) **प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम्॥** (कृष्णयजु० १। ८। १४) इन मन्त्रोंसे आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। रुद्रगायत्रीमन्त्रसे समिधाओंके द्वारा प्रधान देवताके लिये हवन करना चाहिये; चरु तथा घृतसे इन्द्र आदि देवताओंके लिये हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् क्रमसे वज्र आदिके निमित्त पाँच सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। ब्रह्माके लिये **'ब्रह्म जज्ञानं'***—इस मन्त्रसे और विष्णुके लिये **'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'**—इस मन्त्रसे होम करना चाहिये; यह परम सुन्दर मुख्य होमविधान कहा गया है। क्षीरयुक्त दूर्वाके द्वारा पृथक्-पृथक् पचीस आहुतियाँ **'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय**

* ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ (यजु० १३। ३)

दूर्वाहोमः प्रशस्तोऽयं वास्तुहोमश्च सर्वथा।
प्रायश्चित्तमघोरेण सर्पिषा च शतं शतम्॥ ६३

ब्रह्माणं दक्षिणे वामे विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्।
मध्ये देव्या समं ज्ञेयमिन्द्रादिगणसंवृतम्॥ ६४

आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्।
उषां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिमेव च॥ ६५

पञ्चप्रकारविधिना खखोल्काय महात्मने।
विष्टरां सुभगां चैव वर्धनीं च प्रदक्षिणाम्॥ ६६

आप्यायनीं च सम्पूज्य देवीं पद्मासने रविम्।
प्रभूतं वाथ कर्तव्यं विमलं दक्षिणे तथा॥ ६७

सारं पश्चिमभागे च आराध्यं चोत्तरे यजेत्।
मध्ये सुखं विजानीयात्केसरेषु यथाक्रमम्॥ ६८

दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलां क्रमात्।
अमोघां विद्युतां चैव मध्यतः सर्वतोमुखीम्॥ ६९

सोममङ्गारकं चैव बुधं गुरुमनुक्रमात्।
भार्गवं च तथा मन्दं राहुं केतुं तथैव च॥ ७०

पूजयेद्धोमयेदेवं दापयेच्च विशेषतः।
योगिनो भोजयेत्तत्र शिवतत्त्वैकपारगान्॥ ७१

दिव्याध्ययनसम्पन्नान् कृत्वैवं विधिविस्तरम्।
होमे प्रवर्तमाने च पूर्वदिक्स्थानमध्यमे॥ ७२

आरोहयेद्विधानेन रुद्राध्यायेन वै नृपम्।
धारयेत्तत्र भूपालं घटिकैकां विधानतः॥ ७३

यजमानो जपेन्मन्त्रं रुद्रगायत्रिसंज्ञकम्।
घटिकार्धं तदर्धं वा तत्रैवासनमारभेत्॥ ७४

आलोक्य वारुणं धीमान् कूर्चहस्तः समाहितः।
नृपश्च भूषणैर्युक्तः खड्गखेटकधारकः॥ ७५

स्वस्तिरित्यादिभिश्चादावन्ते चैव विशेषतः।
पुण्याहं ब्राह्मणैः कार्यं वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ७६

मामृतात्॥' मन्त्रसे देनी चाहिये। ये दूर्वाहोम तथा वास्तु-होम सर्वथा प्रशस्त हैं। घृतके द्वारा अघोर मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ प्रदान करके प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ५९—६३॥

[देवतामण्डलके] दाहिने भागमें ब्रह्मा, बायें भागमें विष्णु, मध्यमें देवी पार्वतीके साथ इन्द्र आदि गणोंसे आवृत विश्वगुरु शिवको जानना चाहिये। [ग्रहमण्डलका निरूपण किया जा रहा है—] आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, भगवान् दिवाकर, उषा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या तथा सावित्री—पंच प्रकार विधिसे '**महात्मने खखोल्काय नमः**'—ऐसा कहकर इनकी स्थापना-पूजा करनी चाहिये। विष्टरा, सुभगा, वर्धनी, प्रदक्षिणा तथा देवी आप्यायनीकी पूजा करके पद्मासनपर रविकी पूजा करनी चाहिये। प्रारम्भमें प्रभूतकी, दक्षिणमें विमलकी, पश्चिम भागमें सारकी, उत्तरमें आराध्यकी तथा मध्यमें सुखकी पूजा करनी चाहिये। कमलके दलोंमें क्रमशः दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युताको और मध्यमें सर्वतोमुखीको जानना चाहिये। तत्पश्चात् चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतुकी स्थापना करके इनके निमित्त पूजन-हवन-दान कराना चाहिये। इस प्रकार सभी विधान विस्तारपूर्वक करके इस अवसरपर शिवतत्त्वके पारगामी विद्वान् एवं वेदाध्ययनसे सम्पन्न योगियोंको भोजन कराना चाहिये॥ ६४—७१$^{1}/_{2}$॥

हवन-कार्यके आरम्भ हो जानेपर पूर्वदिशाके मध्यभागमें रुद्राध्यायका पाठ करते हुए विधानपूर्वक राजाको तुलापर चढ़ाये और विधानपूर्वक वहाँ राजाको एक घड़ीतक बैठाये रखे। उस समय यजमान [राजा] रुद्रगायत्री नामक मन्त्रका जप करे। वह एक घटिकाका आधा अथवा उसके भी आधे समयतक आसन लगाये रखे। सूर्यबिम्बको देखकर बुद्धिमान् ब्राह्मण समाहितचित्त होकर हाथमें कूर्च धारण किये रहे एवं सभी आभूषणोंसे युक्त राजा हाथमें खड्ग तथा खेटक धारण किये रहे। कर्मके आदि तथा अन्तमें वेदवेदांगमें पारंगत ब्राह्मणोंके द्वारा विशेषरूपसे स्वस्तिवाचनके साथ पुण्याहवाचन

जयमङ्गलशब्दादिब्रह्मघोषैः सुशोभनैः।
नृत्यवाद्यादिभिर्गीतैः सर्वशोभासमन्वितैः॥ ७७
स्वमेवं चन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र विक्षिपेत्।
तुलाधारौ समौ वृत्तौ तुलाभारः सदा भवेत्॥ ७८
शतनिष्काधिकं श्रेष्ठं तदर्धं मध्यमं स्मृतम्।
तस्यार्धं च कनिष्ठं स्यात्त्रिविधं तत्र कल्पितम्॥ ७९
वस्त्रयुग्ममथोष्णीषं कुण्डलं कण्ठशोभनम्।
अङ्गुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम्॥ ८०
एतानि चैव सर्वाणि प्रारम्भे धर्मकर्मणि।
पाशुपतव्रतायाथ भस्माङ्गाय प्रदापयेत्॥ ८१
पूर्वोक्तभूषणं सर्वं सोष्णीषं वस्त्रसंयुतम्।
दद्यादेतत्प्रयोक्तृभ्य आच्छादनपटं बुधः॥ ८२
दक्षिणां च शतं सार्धं तदर्धं वा प्रदापयेत्।
योगिनां चैव सर्वेषां पृथङ्निष्कं प्रदापयेत्॥ ८३
यागोपकरणं दिव्यमाचार्याय प्रदापयेत्।
इतरेषां यतीनां तु पृथङ्निष्कं प्रदापयेत्॥ ८४
तुलारोहसुवर्णं च शिवाय विनिवेदयेत्।
प्रासादं मण्डपं चैव प्राकारं भूषणं तथा॥ ८५
सुवर्णपुष्पं पटहं खड्गं वै कोशमेव च।
कृत्वा दत्त्वा शिवायाथ किञ्चिच्छेषं च बुद्धिमान्॥ ८६
आचार्येभ्यः प्रदातव्यं भस्माङ्गिभ्यो विशेषतः।
बन्दीकृतान् विसृज्याथ कारागृहनिवासिनः॥ ८७
सहस्रकलशैस्तत्र सेचयेत्परमेश्वरम्।
घृतेन केवलेनापि देवदेवमुमापतिम्॥ ८८
पयसा वाथ दध्ना वा सर्वद्रव्यैरथापि वा।
ब्रह्मकूर्चेन वा देवं पञ्चगव्येन वा पुनः॥ ८९
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गोमयं प्रणवेन वा।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णोति वै दधि॥ ९०
तेजोऽसीत्याज्यमीशानमन्त्रेणैवाभिषेचयेत्।
देवस्यत्वेति देवेशं कुशाम्बुकलशेन वै॥ ९१
रुद्राध्यायेन वा सर्वं स्नापयेत्परमेश्वरम्।
सहस्रकलशं शम्भोर्नाम्नां चैव सहस्रकैः॥ ९२

किया जाना चाहिये और जय आदि मांगलिक शब्दों, परम सुन्दर वेदध्वनियों तथा सब प्रकारकी शोभासे युक्त नृत्य-वाद्य-गीत आदिके साथ उत्तर दिशाभागमें स्थित पलड़ेपर अपने भारके बराबर सुवर्ण रखे, ताकि तुलाके दोनों पलड़े समान हो जायँ; इस प्रकार तुलाभार सदा अक्षय बना रहे। सौ निष्कसे अधिक परिमाणवाली तुला श्रेष्ठ, पचास निष्कवाली मध्यम और पचीस निष्कवाली कनिष्ठ कही गयी है—इस प्रकार तुला तीन प्रकारकी कही गयी है॥ ७२—७९॥

अग्रपूजाके प्रारम्भमें दोनों वस्त्र, उष्णीष, कुण्डल, कण्ठहार, अँगूठी तथा मणिबन्धभूषण (कंकण)—ये सभी वस्तुएँ भस्मराग धारण किये हुए पाशुपतव्रतमें निरत शैवाचार्यको प्रदान कराने चाहिये। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि पूर्वोक्त आभूषण, वस्त्रयुक्त उष्णीष एवं उत्तरीय—यह सब ऋत्विजोंको प्रदान करे और एक सौ पचास अथवा उसका आधा निष्क सुवर्णकी दक्षिणा प्रदान करे। साथ ही सभी योगियोंको अलगसे सुवर्णमुद्रा प्रदान करे। इस अवसरपर दिव्य यागोपकरण आचार्यको प्रदान करे और अन्य यतियोंको पृथक् रूपसे सुवर्णमुद्रा प्रदान करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि तुलापर रखे हुए सुवर्ण तथा प्रासाद, मण्डप, प्राकार, आभूषण, सुवर्णपुष्प, पटह, खड्ग, कोश—इन सबको एकत्र करके इनमेंसे कुछ भाग बचाकर शिवको प्रदान कर दे और बचे हुए भागको विशेषरूपसे भस्मधारी आचार्योंको प्रदान करे। कारागारमें स्थित बन्दियोंको मुक्त करके सहस्र कलशोंके जलसे अथवा केवल घृतसे, दूधसे, दहीसे अथवा नारिकेल आदिके जलसे देवदेव परमेश्वर उमापतिका अभिषेक करना चाहिये; अथवा ब्रह्मकूर्चके द्वारा पंचगव्यसे शिवजीका अभिषेक करना चाहिये। गायत्रीमन्त्रसे गोमूत्र, प्रणवमन्त्रसे गोमय, '**आप्यायस्व०**'—मन्त्रसे दूध, '**दधिक्राव्णो०**'—मन्त्रसे दही तथा '**तेजोऽसीति०**'—मन्त्रसे घृत ग्रहणकर ईशानमन्त्रसे ही अभिषेक करना चाहिये। '**देवस्य त्वा०**'—इस मन्त्रके द्वारा कलशमें स्थित कुशाम्बुसे देवेशका अभिषेक करे अथवा रुद्राध्यायके द्वारा परमेश्वर शिवका अभिषेक करे। भगवान् विष्णुके द्वारा

विष्णुना कथितैर्वापि तण्डिना कथितैस्तु वा।
दक्षेण मुनिमुख्येन कीर्तितैरथ वा पुनः॥ ९३

कहे गये[१] अथवा [शिवभक्त] तण्डीके द्वारा कहे गये[२] अथवा मुनिश्रेष्ठ दक्षके द्वारा कहे गये[३] शिवके हजार नामोंसे हजार कलशोंके जलसे शिवका अभिषेक करे॥ ८०—९३॥

महापूजा प्रकर्तव्या महादेवस्य भक्तितः।
शिवार्चकाय दातव्या दक्षिणा स्वगुरोः सदा॥ ९४

देहार्णवं च सर्वेषां दक्षिणा च यथाक्रमम्।
दीनान्धकृपणानां च बालवृद्धकृशातुरान्॥ ९५

भोजयेच्च विधानेन दक्षिणामपि दापयेत्॥ ९६

भक्तिपूर्वक अपने गुरु महादेवकी सदा महापूजा करनी चाहिये और शिवपूजकको दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। तुलाद्रव्य और दक्षिणा यथाक्रम ऋत्विज् आदि तथा दीनों, अन्धों, दरिद्रोंको देनी चाहिये; साथ ही बालकों, वृद्धों, निर्बलों तथा रोगियोंको विधान-पूर्वक भोजन कराना चाहिये और दक्षिणा भी देनी चाहिये॥ ९४—९६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तुलापुरुषदानविधिर्नामाष्टाविंशत्तमोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'तुलापुरुषदानविधि' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

षोडशमहादानान्तर्गत हिरण्यगर्भदानकी विधि

सनत्कुमार उवाच

तुला ते कथिता ह्येषा आद्या सामान्यरूपिणी।
हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि द्वितीयं सर्वसिद्धिदम्॥ १

सनत्कुमार बोले—मैंने आपसे प्रथमतः सामान्यरूपसे तुलादानका वर्णन कर दिया; अब समस्त सिद्धियोंको देनेवाले हिरण्यगर्भदानके विषयमें बताऊँगा॥ १॥

अधःपात्रं सहस्रेण हिरण्येन विधीयते।
ऊर्ध्वपात्रं तदर्धेन मुखं संवेशमात्रकम्॥ २

हैममेवं शुभं कुर्यात्सर्वालङ्कारसंयुतम्।
अधःपात्रे स्मरेद्देवीं गुणत्रयसमन्विताम्॥ ३

इसके लिये हजार स्वर्ण-मुद्राओंसे एक नीचेका पात्र बनाना चाहिये और उसके आधे अर्थात् पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राओंसे उसके प्रवेश-प्रमाण मुखवाला ऊर्ध्वपात्र (ढक्कन) निर्मित कराना चाहिये। उस शुभ स्वर्णपात्रको सभी अलंकारोंसे विभूषित करना चाहिये॥ २१/२॥

चतुर्विंशतिकां देवीं ब्रह्मविष्ण्वग्निरूपिणीम्।
ऊर्ध्वपात्रे गुणातीतं षड्विंशकमुमापतिम्॥ ४

आत्मानं पुरुषं ध्यायेत्पञ्चविंशकमग्रजम्।
पूर्वोक्तस्थानमध्येऽथ वेदिकोपरि मण्डले॥ ५

तत्पश्चात् नीचेके मुख्य पात्रमें त्रिगुणात्मिका, चतुर्विंशति-तत्त्वस्वरूपिणी तथा ब्रह्मा-विष्णु-अग्निस्वरूपा भगवतीका ध्यान करे और ऊपरके पात्रमें छब्बीसवें तत्त्वरूप गुणातीत उमापति सदाशिवका और पचीसवें तत्त्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुषका ध्यान करे॥ ३-४१/२॥

तदनन्तर पूर्वकी भाँति बताये गये स्थानमें वेदी तथा मण्डल बनाकर पात्रको लेकर शालि (धान)-के ऊपर

१. भगवान् विष्णुद्वारा कथित यह शिवसहस्रनाम श्रीलिङ्गमहापुराणके पूर्वभागके ९८वें अध्यायमें है।
२. शिवभक्त तण्डीप्रोक्त यह शिवसहस्रनाम श्रीलिङ्गमहापुराणके पूर्वभागके ६५वें अध्यायमें वर्णित है।
३. मुनिश्रेष्ठ दक्षद्वारा कथित शिवसहस्रनाम 'शिवरहस्य' नामक ग्रन्थमें वर्णित है।

शालिमध्ये क्षिपेन्नीत्वा नववस्त्रैश्च वेष्टयेत्।
माषकल्केन चालिप्य पञ्चद्रव्येण पूजयेत्॥ ६
ईशानाद्यैर्यथान्यायं पञ्चभिः परिपूजयेत्।
पूर्ववच्छिवपूजा च होमश्चैव यथाक्रमम्॥ ७

स्थापित कर देना चाहिये और उसे नवीन वस्त्रोंसे ढँक देना चाहिये। पुनः माष (उड़द)-के उबटनसे आलेप करके पंचोपचारोंसे ईशान आदि पाँच मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक उस पात्रकी पूजा करनी चाहिये। शिवपूजा तथा होम भी पूर्वकी भाँति क्रमानुसार करना चाहिये॥ ५—७॥

देवीं गायत्रिकां जप्त्वा प्रविशेत्प्राङ्मुखः स्वयम्।
विधिनैव तु सम्पाद्य गर्भाधानादिकां क्रियाम्॥ ८
कृत्वा षोडशमार्गेण विधिना ब्राह्मणोत्तमः।
दूर्वाङ्कुरैस्तु कर्तव्या सेचना दक्षिणे पुटे॥ ९
औदुम्बरफलैः सार्धमेकविंशत्कुशोदकम्।
ईशान्यां तावदेवात्र कुर्यात् सीमन्तकर्मणि॥ १०
उद्वहेत्कन्यकां कृत्वा त्रिंशन्निष्केण शोभनाम्।
अलङ्कृत्य तथा हुत्वा शिवाय विनिवेदयेत्॥ ११
अन्नप्राशनके विद्वान् भोजयेत्पायसादिभिः।
एवं विश्वजितान्ता वै गर्भाधानादिकाः क्रियाः॥ १२
शक्तिबीजेन कर्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
शेषं सर्वं च विधिवत्तुलाहेमवदाचरेत्॥ १३

भगवती गायत्रीका जप करके पूर्वाभिमुख बैठ जाय और स्वयं श्रेष्ठ आचार्य गर्भाधान आदि सोलह संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करके दूर्वाके अंकुरोंसे दक्षिण पुटमें सेचन करे। गूलरके फलोंसहित इक्कीस कुशाके जलसे ईशान दिशामें सीमन्तकर्म करे। तीस निष्क परिमाणकी सुवर्णकी सुन्दर कन्या बनाकर उसे [भूषण-वस्त्र आदिसे] अलंकृत करके हवनकर भगवान् शिवको अर्पित करे। विद्वान्‌को चाहिये कि अन्नप्राशन-संस्कारमें पायस (खीर) आदिका भोजन कराये। इस प्रकार वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको गर्भाधानसे लेकर विश्वजित्पर्यन्त उन सभी संस्कारोंको शक्तिबीजके साथ करना चाहिये। शेष सभी कृत्य स्वर्ण-तुलादानकी भाँति विधिवत् करना चाहिये॥ ८—१३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे हिरण्यगर्भदानविधिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'हिरण्यगर्भदानविधि' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

तिलपर्वतदानविधि

सनत्कुमार उवाच

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम्।
पूर्वोक्तस्थानकाले तु कृत्वा सम्पूज्य यत्नतः॥ १
सुसमे भूतले रम्ये वेदिना च विवर्जिते।
दशतालप्रमाणेन दण्डं संस्थाप्य वै मुने॥ २
अद्भिः सम्प्रोक्ष्य पश्चाद्धि तिलांस्त्वस्मिन् विनिक्षिपेत्।
पञ्चगव्येन तं देशं प्रोक्षयेद् ब्राह्मणोत्तमः॥ ३

सनत्कुमार बोले—हे मुने! अब मैं उत्तम तिलपर्वतदानका विधिवत् वर्णन करूँगा। पूर्वमें बताये गये स्थान तथा कालमें प्रयत्नपूर्वक पूजन करके तिलपर्वतका दान करे। वेदीरहित सुन्दर समतल भूमिपर दस ताल* प्रमाणका दण्ड स्थापित करके जल छिड़ककर उसपर तिलराशि रखे; श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि पंचगव्यसे उस स्थानका प्रोक्षण करे॥ १—३॥

मण्डलं कल्पयेद्विद्वान् पूर्ववत्सुसमन्ततः।
नववस्त्रैश्च संस्थाप्य रम्यपुष्पैर्विकीर्य च॥ ४
तस्मिन् सञ्चयनं कार्यं तिलभारैर्विशेषतः।
दण्डप्रादेशमुत्सेधमुत्तमं परिकीर्तितम्॥ ५

तदनन्तर विद्वान् पूर्ववत् चारों ओर गोल मण्डल बनाये। नये वस्त्रोंको रखकर उसपर सुन्दर पुष्प बिखेरकर वहाँ तिलके बीजोंके भारोंका ढेर लगाये। तिलराशि स्थापित किये गये दण्डसे प्रादेशमात्र ऊपर

* अंगुष्ठसे मध्यमाके बीचकी दूरीको एक ताल कहा जाता है। (वायुपुराण ८। १०३)

चतुरङ्गुलहीनं तु मध्यमं मुनिपुङ्गवाः।
दण्डतुल्यं कनिष्ठं स्याद्दण्डहीनं न कारयेत्॥ ६

वेष्टयित्वा नवैर्वस्त्रैः परितः पूजयेत्क्रमात्।
सद्यादीनि प्रविन्यस्य पूजयेद्विधिपूर्वकम्॥ ७

अष्टदिक्षु च कर्तव्याः पूर्वोक्ता मूर्तयः क्रमात्।
त्रिनिष्केन सुवर्णेन प्रत्येकं कारयेत्क्रमात्॥ ८

दक्षिणा विधिना कार्या तुलाभारवदेव तु।
होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो यथावन्मुनिसत्तमाः॥ ९

अर्चयेद्देवदेवेशं लोकपालसमावृतम्।
तिलपर्वतमध्यस्थं तिलपर्वतरूपिणम्॥ १०

शिवार्चना च कर्तव्या सहस्रकलशादिभिः।
दर्शयेत्तिलमध्यस्थं देवदेवमुमापतिम्॥ ११

पूजयित्वा विधानेन क्रमेण च विसर्जयेत्।
श्रोत्रियाय दरिद्राय दापयेत्तिलपर्वतम्॥ १२

एवं तिलनगः प्रोक्तः सर्वस्मादधिकः परः॥ १३

हो, तो उसे उत्तम कहा गया है। हे श्रेष्ठ मुनियो! दण्डसे चार अंगुल कम रहनेपर मध्यम तथा दण्डके बराबर होनेपर कनिष्ठ श्रेणीका होता है। तिलके ढेरको दण्डसे नीचे नहीं करना चाहिये। इस तिलपर्वतको नवीन वस्त्रोंसे चारों ओरसे लपेटकर क्रमसे पूजन करना चाहिये। वहाँ 'सद्योजात' आदि पंचब्रह्मोंको क्रमसे स्थापित करके विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वमें कही गयी मूर्तियोंको आठों दिशाओंमें क्रमसे स्थापित करना चाहिये; प्रत्येक मूर्तिको तीन निष्क सुवर्णसे निर्मित कराना चाहिये॥ ४—८॥

तुलाभारके कृत्यकी भाँति इसमें दक्षिणा देनी चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! इस दानमें पूर्वकी भाँति यथावत् होम करना भी बताया गया है। लोकपालोंसे आवृत, तिल पर्वतके मध्यमें विराजमान तथा तिलपर्वतरूपी देवदेवेश्वर शिवका पूजन करना चाहिये। हजार कलशोंसे शिवकी अर्चना करनी चाहिये। अपने इष्टजनोंको तिलके मध्यमें स्थित देवाधिदेव उमापतिका दर्शन कराना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक उनका पूजन करके विसर्जन करना चाहिये। तत्पश्चात् उस तिलपर्वतको धनहीन श्रोत्रिय [ब्राह्मण]-को दिला देना चाहिये। इस प्रकार मैंने आपसे तिलपर्वतके दानका वर्णन कर दिया; यह सभी दानोंसे श्रेष्ठ है॥ ९—१३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तिलपर्वतदानं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'तिलपर्वतदान' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

सूक्ष्म तिलपर्वतदानकी विधि

सनत्कुमार उवाच

अथान्यं पर्वतं सूक्ष्ममल्पद्रव्यं महाफलम्।
द्रव्यमात्रोपसंयुक्ते काले मध्यं विधीयते॥ १

गोमयालिप्तभूमौ तु ह्यम्बराणि प्रकीर्य च।
तन्मध्ये निक्षिपेद्धीमांस्तिलभारत्रयं शुभम्॥ २

सनत्कुमार बोले—अब एक अन्य सूक्ष्म तिलपर्वतके दानके विषयमें बताता हूँ, जो व्ययमें अल्प द्रव्यवाला, किंतु महान् फल प्रदान करनेवाला है। जब भी व्यक्ति द्रव्यसे सम्पन्न हो जाय, तब इस पवित्र कृत्यको करे॥ १॥

बुद्धिमान् पुरुषको गोमयसे विधिवत् लीपी गयी भूमिपर वस्त्र बिछाकर उसके मध्यमें तीन भार विशुद्ध तिल स्थापित करना चाहिये॥ २॥

पद्ममष्टदलं कुर्यात्कर्णिकाकेसरान्वितम्।
दशनिष्केण तत्कार्यं तदर्धार्धेन वा पुनः॥ ३

तिलमध्ये न्यसेत्पद्मं पद्ममध्ये महेश्वरम्।
आराध्य विधिवद्देवं वामादीनि प्रपूजयेत्॥ ४

शक्तिरूपं सुवर्णेन त्रिनिष्केण तु कारयेत्।
न्यासं तु परितः कुर्याद्विघ्नेशान् परिभागतः॥ ५

पूर्वोक्तहेममानेन विघ्नेशानपि कारयेत्।
तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ६

तदनन्तर कर्णिका तथा केसरसे युक्त सुवर्णका अष्टदल कमल बनाना चाहिये। इसे दस निष्क अथवा उसके आधे अथवा उसके भी आधे प्रमाणवाले सुवर्णसे निर्मित करना चाहिये। इस [अष्टदल] कमलको तिलके मध्य रखना चाहिये और कमलके बीच शिवजीकी विधिवत् आराधना करके उनकी वामदेव आदि मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। तीन निष्क सुवर्णके द्वारा शक्तिकी प्रतिमा बनानी चाहिये। इसी प्रकार आठों दिशाओंमें अष्ट विनायकोंकी स्थापना करनी चाहिये। पूर्वमें कहे गये तीन निष्क सुवर्णसे विघ्नेश्वरोंकी भी प्रतिमा बनानी चाहिये। विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा क्रमसे उनकी पूजा करके दानादि शेष क्रियाएँ पूर्वोक्त क्रमसे करें॥ ३—६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सूक्ष्मपर्वतदानविधानवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'सूक्ष्मपर्वतदानविधानवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सुवर्णपृथ्वीमहादानविधि

सनत्कुमार उवाच

जपहोमार्चनादानाभिषेकाद्यं च पूर्ववत्।
सुवर्णमेदिनीदानं प्रवक्ष्यामि समासतः॥ १

पूर्वोक्तदेशकाले तु कारयेन्मुनिभिः सह।
लक्षणेन यथापूर्वं कुण्डे वा मण्डलेऽथ वा॥ २

सनत्कुमार बोले—अब मैं सुवर्णमेदिनीदानका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। जप, होम, पूजा, दान, अभिषेक आदि कृत्य पूर्वोक्त देशकालमें पूर्वकी भाँति मुनियोंके द्वारा सम्पन्न कराये जाने चाहिये। यह कार्य पूर्वकथित लक्षणकी भाँति कुण्डमें या मण्डलमें किया जाना चाहिये॥ १-२॥

मेदिनीं कारयेद्दिव्यां सहस्रेणापि वा पुनः।
एकहस्ता प्रकर्तव्या चतुरस्रा सुशोभना॥ ३

सप्तद्वीपसमुद्राद्यैः पर्वतैरभिसंवृता।
सर्वतीर्थसमोपेता मध्ये मेरुसमन्विता॥ ४

अथवा मध्यतो द्वीपं नवखण्डं प्रकल्पयेत्।
पूर्ववन्निखिलं कृत्वा मण्डले वेदिमध्यतः॥ ५

सप्तभागैकभागेन सहस्राद्विधिपूर्वकम्।
शिवभक्ते प्रदातव्या दक्षिणा पूर्वचोदिता॥ ६

एक हजार सुवर्णमुद्राओंसे अथवा उसके आधे अथवा उसके आधेसे दिव्य पृथ्वीका आकार बनाना चाहिये। उसे चौकोर, अत्यन्त सुन्दर तथा एक हाथ लम्बी-चौड़ी बनाये। वह सात द्वीपों, समुद्रों तथा पर्वतोंसे घिरी हुई हो; सभी तीर्थोंसे युक्त हो तथा मध्यमें मेरुसे सुशोभित हो। मध्य भागमें नौखण्डोंके साथ जम्बूद्वीपका निर्माण करे। मण्डलमें वेदीके मध्य पूर्वकी भाँति सम्पूर्ण कृत्य करके सहस्र स्वर्णमुद्राओंके सातवें भागको शिवभक्तको विधिपूर्वक देना चाहिये; इसमें

सहस्रकलशाद्यैश्च शङ्करं पूजयेच्छिवम्।
सुवर्णमेदिनीप्रोक्तं लिङ्गेऽस्मिन् दानमुत्तमम्॥ ७

दक्षिणा पूर्वकी भाँति बतायी गयी है। हजार कलश आदिके द्वारा कल्याणकारी भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। इस लिङ्गपुराणमें कहा गया सुवर्णमेदिनीदान अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ ३—७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सुवर्णमेदिनीदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'सुवर्णमेदिनीदान' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

कल्पपादपदानविधि

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि कल्पपादपमुत्तमम्।
शतनिष्केण कृत्वैवं सर्वशाखासमन्वितम्॥ १

शाखानां विविधं कृत्वा मुक्तादामाद्यलम्बनम्।
दिव्यैर्मारकतैश्चैव चाङ्कुराग्रं प्रविन्यसेत्॥ २

प्रवालं कारयेद्विद्वान् प्रवालेन द्रुमस्य तु।
फलानि पद्मरागैश्च परितोऽस्य सुशोभयेत्॥ ३

मूलं च नीलरत्नेन वज्रेण स्कन्धमुत्तमम्।
वैडूर्येण द्रुमाग्रं च पुष्परागेण मस्तकम्॥ ४

गोमेदकेन वै कन्दं सूर्यकान्तेन सुव्रत।
चन्द्रकान्तेन वा वेदिं द्रुमस्य स्फटिकेन वा॥ ५

वितस्तिमात्रमायामं वृक्षस्य परिकीर्तितम्।
शाखाष्टकस्य मानं च विस्तारं चोर्ध्वतस्तथा॥ ६

तन्मूले स्थापयेल्लिङ्गं लोकपालैः समावृतम्।
पूर्वोक्तवेदिमध्ये तु मण्डले स्थाप्य पादपम्॥ ७

पूजयेद्देवमीशानं लोकपालांश्च यत्नतः।
पूर्ववज्जपहोमाद्यं तुलाभारवदाचरेत्॥ ८

निवेदयेद्द्रुमं शम्भोर्योगिनां वाथ वा नृप।
भस्माङ्गिभ्योऽथ वा राजा सार्वभौमो भविष्यति॥ ९

सनत्कुमार बोले—अब मैं उत्तम कल्पवृक्षदानका वर्णन करूँगा। सौ निष्क सुवर्णसे सभी शाखाओंसे युक्त एक कल्पवृक्ष बनाकर उसकी समस्त शाखाओंमें मोतियोंकी माला लटकाकर दिव्य मरकत मणिसे अंकुरका अग्रभाग बनाये। विद्वान्को चाहिये कि प्रवाल (मूँगे)-से वृक्षका किसलय बनाये और उसमें चारों ओर पद्मराग मणियोंसे फल बनाये। नीलमणिसे उस वृक्षका मूल, हीरेसे सुन्दर स्कन्ध (तना), वैदूर्य मणिसे वृक्षका अग्रभाग और पुष्पराग (पुखराज)-से मस्तक बनाये। हे सुव्रत! गोमेदसे वृक्षका कन्द और सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त अथवा स्फटिक मणिसे वृक्षके चारों ओर वेदी बनाये॥ १—५॥

कल्पवृक्षकी ऊँचाई एक वितस्ति (बारह अंगुल) कही गयी है। उसकी आठ शाखाओंका विस्तार इतने ही प्रमाणवाला होना चाहिये। उस वृक्षके मूलमें लोकपालोंसहित शिवलिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। मण्डलमें पूर्वोक्त वेदीके मध्यमें कल्पवृक्षको स्थापित करके प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिव तथा लोकपालोंकी पूजा करनी चाहिये। जप, होम आदि पूर्वकी भाँति तुलादानके समान ही करना चाहिये। हे राजन्! अन्तमें इस वृक्षको शिवजीको अर्पण कर देना चाहिये अथवा भस्मधारी योगियोंको दान कर देना चाहिये। इसे करनेवाला मनुष्य अगले जन्ममें सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा होगा॥ ६—९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे कल्पपादपदानविधिर्नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'कल्पपादपदानविधि' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

गणेशेशदानविधि

सनत्कुमार उवाच

गणेशेशं प्रवक्ष्यामि दानं पूर्वोक्तमण्डपे।
सम्पूज्य देवदेवेशं लोकपालसमावृतम्॥ १

विश्वेश्वरान् यथाशास्त्रं सर्वाभरणसंयुतान्।
दशनिष्केण वै कृत्वा सम्पूज्य च विधानतः॥ २

अष्टदिक्ष्वष्टकुण्डेषु पूर्ववद्धोममाचरेत्।
पञ्चावरणमार्गेण पारम्पर्यक्रमेण च॥ ३

सप्तविप्रान् समभ्यर्च्य कन्यामेकां तथोत्तरे।
दापयेत्सर्वमन्त्राणि स्वैःस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्॥ ४

दत्त्वैवं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ५

सनत्कुमार बोले—अब मैं गणेशेशदानका वर्णन करूँगा। पूर्वमें बतायी गयी रीतिसे निर्मित किये गये मण्डपमें लोकपालोंसहित देवदेवेश्वर सदाशिवका पूजन करके दस निष्क सुवर्णसे आठों दिक्पालोंकी प्रतिमा बनाकर उन्हें यथाशास्त्र सभी आभरणोंसे विभूषित करके विधिपूर्वक उनका पूजनकर आठों दिशाओंमें आठ कुण्डोंमें पंचावरण मार्गसे तथा परम्पराक्रमसे पूर्वकी भाँति होम करना चाहिये॥ १—३॥

तत्पश्चात् सात विप्रोंकी तथा उत्तर दिशामें एक कन्याकी विधिपूर्वक पूजा करके अनुक्रमसे अपने-अपने देवतामन्त्रोंसे सभी देवप्रतिमाओंका दान कर देना चाहिये। इस प्रकार दान करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४-५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे गणेशेशदानविधिनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'गणेशेशदानविधिनिरूपण' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

सुवर्णधेनुदानविधि

सनत्कुमार उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिक्रमम्।
सर्वपापप्रशमनं ग्रहदुर्भिक्षनाशनम्॥ १

उपसर्गप्रशमनं सर्वव्याधिनिवारणम्।
निष्काणां च सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत्॥ २

तदर्धेनापि वा सम्यक् तदर्धार्धेन वा पुनः।
शतेन वा प्रकर्तव्या सर्वरूपगुणान्विता॥ ३

गोरूपं सुखुरं दिव्यं सर्वलक्षणसंयुतम्।
खुराग्रे विन्यसेद्वज्रं शृङ्गे वै पद्मरागकम्॥ ४

भ्रुवोर्मध्ये न्यसेद्दिव्यं मौक्तिकं मुनिसत्तमाः।
वैडूर्येण स्तनाः कार्या लाङ्गूलं नीलतः शुभम्॥ ५

सनत्कुमार बोले—अब मैं आपसे हेमधेनुके दानकी विधिका वर्णन करूँगा; यह सभी पापोंका नाश करनेवाला, ग्रह तथा दुर्भिक्षका शमन करनेवाला, उपद्रवोंको शान्त करनेवाला और समस्त व्याधियोंको दूर करनेवाला है॥ १½॥

हजार सुवर्णमुद्राओंसे एक गौ बनानी चाहिये; अथवा उसके आधे अथवा उसके भी आधे अथवा एक सौ स्वर्णमुद्राओंसे सभी लक्षणों तथा गुणोंसे समन्वित धेनुका निर्माण कराना चाहिये। वह गोप्रतिमा सुन्दर खुरोंवाली, दिव्य तथा सभी लक्षणोंसे युक्त होनी चाहिये॥ २-३½॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! खुरोंके अग्र भागमें हीरा तथा सींगोंमें पद्मराग लगाना चाहिये और दोनों भौंहोंके

दन्तस्थाने प्रकर्तव्यः पुष्परागः सुशोभनः।
पशुवत्कारयित्वा तु वत्सं कुर्यात्सुशोभनम्॥ ६

मध्यमें दिव्य मोती लगाना चाहिये। वैदूर्य मणिसे स्तनोंको तथा नीलरत्नसे शुभ पुच्छको भूषित करना चाहिये। दाँतोंमें परम सुन्दर पुष्पराज लगाना चाहिये। साथ ही दस निष्क सुवर्णसे गायकी भाँति एक सुन्दर बछड़ा बनवाकर उसे सभी रत्नोंसे विभूषित करना चाहिये॥ ४—६१/२॥

सुवर्णदशनिष्केण सर्वरत्नसुशोभितम्।
पूर्वोक्तवेदिकामध्ये मण्डलं परिकल्प्य तु॥ ७

तन्मध्ये सुरभिं स्थाप्य सवत्सां सर्वतत्त्ववित्।
सवत्सां सुरभिं तत्र वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥ ८

सम्पूजयेद्गां गायत्र्या सवत्सां सुरभिं पुनः।

तत्पश्चात् सर्वतत्त्वविद् पुरुषको चाहिये कि पूर्वमें बतायी गयी विधिसे निर्मित वेदिकाके मध्य मण्डल बनाकर उसके मध्यमें बछड़ेसहित धेनुको रखकर बछड़ेसहित उस गौको दो वस्त्रोंसे वेष्टित कर दे और गायत्रीमन्त्रसे बछड़ेसहित उस सुरभि गौकी पूजा करे॥ ७-८१/२॥

अथैकाग्निविधानेन होमं कुर्याद्यथाविधि॥ ९

समिदाज्यविधानेन पूर्ववच्छेषमाचरेत्।
शिवपूजा प्रकर्तव्या लिङ्गं स्नाप्य घृतादिभिः॥ १०

गामालभ्य च गायत्र्या शिवायादापयेच्छुभाम्।
दक्षिणा च प्रकर्तव्या त्रिंशन्निष्का महामते॥ ११

इसके बाद अग्निविधानसे समिधा तथा घृतसे विधिपूर्वक होम करना चाहिये; शेष कार्य पूर्वकी भाँति करना चाहिये। तत्पश्चात् शिवलिङ्गको घृत आदिसे स्नान कराकर शिव-पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर गौका स्पर्श करके गायत्रीमन्त्रका उच्चारणकर उस मंगलमयी धेनुको शिवको अर्पण कर देना चाहिये। हे महामते! तीस निष्क सुवर्णकी दक्षिणा भी देनी चाहिये॥ ९—११॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे हेमधेनुदानविधिनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'हेमधेनुदानविधिनिरूपण' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

ऐश्वर्यप्रद महालक्ष्मीदानविधि

सनत्कुमार उवाच

लक्ष्मीदानं प्रवक्ष्यामि महदैश्वर्यवर्धनम्।
पूर्वोक्तमण्डपे कार्यं वेदिकोपरिमण्डले॥ १

श्रीदेवीमतुलां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि।
सहस्रेण तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥ २

अष्टोत्तरशतेनापि सर्वलक्षणसंयुताम्।
मण्डले विन्यसेल्लक्ष्मीं सर्वालङ्कारसंयुताम्॥ ३

सनत्कुमार बोले—अब मैं महान् ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाले लक्ष्मीदानका वर्णन करूँगा। पूर्वकी भाँति बताये गये विधानसे निर्मित मण्डपमें बनायी गयी वेदीके ऊपर यह दानकर्म करना चाहिये। हजार स्वर्णमुद्राओं अथवा उसके आधे अथवा उसके आधे अथवा एक सौ आठ स्वर्णमुद्राओंसे विधिपूर्वक अनुपम तथा सभी लक्षणोंसे युक्त श्रीदेवीप्रतिमा बनाकर उन लक्ष्मीजीको सभी अलंकारोंसे विभूषित करके मण्डलमें स्थापित करना चाहिये॥ १—३॥

तस्यास्तु दक्षिणे भागे स्थण्डिले विष्णुमर्चयेत्।
अर्चयित्वा विधानेन श्रीसूक्तेन सुरेश्वरीम्॥ ४

अर्चयेद्विष्णुगायत्र्या विष्णुं विश्वगुरुं हरिम्।
आराध्य विधिना देवीं पूर्ववद्धोममाचरेत्॥ ५

समिद्धुत्वा विधानेन आज्याहुतिमथाचरेत्।
पृथगष्टोत्तरशतं होमयेद्ब्राह्मणोत्तमैः॥ ६

आहूय यजमानं तु तस्याः पूर्वदिशि स्थले।
तस्मै तां दर्शयेद्देवीं दण्डवत्प्रणमेत्क्षितौ॥ ७

प्रणम्य विष्णुं तत्रस्थं शिवं पूर्ववदर्चयेत्।
तस्या विंशतिभागं तु दक्षिणा परिकीर्तिता॥ ८

तदर्धांशं तु दातव्यमितरेषां यथार्हतः।
ततस्तु होमयेच्छम्भुं भक्तो योगी विशेषतः॥ ९

उनके दक्षिण भागमें स्थण्डिलके ऊपर श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। श्रीसूक्तसे विधानपूर्वक सुरेश्वरीकी पूजा करके विष्णुगायत्रीसे विश्वगुरु भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। देवीकी विधिपूर्वक आराधना करके पूर्वकी भाँति होम करना चाहिये। सर्वप्रथम विधिपूर्वक समिधासे हवन करके बादमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको घृतकी पृथक् एक सौ आठ आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ ४—६॥

तत्पश्चात् यजमानको बुलाकर उन देवीके पूर्वदिशाभागमें उसे बिठाकर उन देवीका दर्शन कराना चाहिये। वह यजमान भी पृथ्वीपर देवीको दण्डवत् प्रणाम करे। इसके बाद वहाँ प्रतिष्ठित विष्णुको प्रणाम करके पूर्वकी भाँति शिवकी पूजा करनी चाहिये। आचार्यके लिये उस मूर्तिके बीसवें भागके तुल्य दक्षिणा बतायी गयी है। उसका आधा अर्थात् बीसवें भागका आधा यथायोग्य अन्य [शिवभक्तों]-को दान करना चाहिये। तदनन्तर भक्त-योगी आचार्यको विशेष-रूपसे भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये होम कराना चाहिये॥ ७—९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लक्ष्मीदानविधिनिरूपणं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'लक्ष्मीदानविधिनिरूपण' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

तिलधेनुदानविधिनिरूपण

सनत्कुमार उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलधेनुविधिक्रमम्।
पूर्वोक्तमण्डपे कुर्याच्छिवपूजां तु पश्चिमे॥ १

तस्याग्रे मध्यतो भूमौ पद्ममालिख्य शोभनम्।
वस्त्रैराच्छादितं पद्मं तन्मध्ये विन्यसेच्छुभम्॥ २

तिलपुष्पं तु कृत्वाथ हेमपद्मं विनिक्षिपेत्।
त्रिंशन्निष्केण कर्तव्यं तदर्धार्धेन वा पुनः॥ ३

सनत्कुमार बोले—अब मैं तिलधेनुदानके विधिक्रमका वर्णन करूँगा। पूर्वमें बताये गये नियमसे निर्मित मण्डपमें पश्चिम भागमें शिवपूजा करनी चाहिये। उसके आगे मध्यमें भूमिपर सुन्दर कमल बनाकर उसे वस्त्रोंसे आच्छादित कर देना चाहिये। उसके मध्यमें उत्तम तिलपुष्प स्थापित करना चाहिये। हेमपद्म (सुवर्णकमल) बनाकर उसे मध्यमें रख देना चाहिये। यह हेमपद्म तीस निष्क सुवर्णसे अथवा उसके आधे अर्थात् पन्द्रह निष्क अथवा उसके भी आधे अर्थात्

पञ्चनिष्केण कर्तव्यं तदर्धार्धेन वा पुनः।
तमाराध्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ४

पद्मस्योत्तरदिग्भागे विप्रानेकादश न्यसेत्।
तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥ ५

आच्छादनोत्तरासङ्गं विप्रेभ्यो दापयेत्क्रमात्।
उष्णीषं च प्रदातव्यं कुण्डले च विभूषिते॥ ६

हेमाङ्गुलीयकं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो विधानतः।
एकं दश च वस्त्राणि तेषामग्रे प्रकीर्य च॥ ७

तेषु वस्त्रेषु निःक्षिप्य तिलाद्यानि पृथक्पृथक्।
कांस्यपात्रं शतपलं विभिद्यैकादशांशकम्॥ ८

इक्षुदण्डं च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।
गोशृङ्गे तु हिरण्येन द्विनिष्केण तु कारयेत्॥ ९

रजतेन तु कर्तव्याः खुरा निष्कद्वयेन तु।
एवं पृथक्पृथक् दत्त्वा तत्तिलेषु विनिक्षिपेत्॥ १०

रुद्रैकादशमन्त्रैस्तु रुद्रेभ्यो दापयेत्तदा।
पद्मस्य पूर्वदिग्भागे विप्रान् द्वादश पूजितान्॥ ११

एतेनैव तु मार्गेण तेषु श्रद्धासमन्वितः।
द्वादशादित्यमन्त्रैश्च दापयेदेवमेव च॥ १२

पूर्ववद्दक्षिणे भागे विप्रान् षोडश संस्थितान्।
मूर्तिं विघ्नेशमन्त्रैश्च दापयेत्पूर्ववत्पुनः॥ १३

यजमानेन कर्तव्यं सर्वमेतद्यथाक्रमम्।
केवलं रुद्रदानं वा आदित्येभ्योऽथ वा पुनः॥ १४

मूर्त्यादीनां च वा देयं यथाविभवविस्तरम्।
पद्मं विन्यस्य राजासौ शेषं वा कारयेन्नृपः॥ १५

दक्षिणा च प्रदातव्या पञ्चनिष्केण भूषणम्॥ १६

साढ़े सात निष्क सुवर्णसे बनाना चाहिये, अथवा पाँच निष्क सुवर्णसे अथवा उसके आधे भागसे अथवा उसके भी आधे भागसे उस कमलका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उस हेमपद्मके विग्रहका ध्यान करके गन्ध, पुष्प आदिसे क्रमपूर्वक उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ १—४॥

उस पद्मके उत्तर दिग्भागमें ग्यारह ब्राह्मणोंको बैठाना चाहिये और क्रमसे गन्ध, पुष्प आदिसे विधिपूर्वक उनका पूजन करके उन विप्रोंको क्रमसे वस्त्र तथा उत्तरीय प्रदान करना चाहिये; उन्हें पगड़ी भी देनी चाहिये। तत्पश्चात् दो रत्नमय कुण्डल और सुवर्णकी अँगूठी ब्राह्मणोंको विधानपूर्वक प्रदान करके उनके आगे ग्यारह वस्त्र फैलाकर उन वस्त्रोंपर अलग-अलग तिल आदि, सौ पलके बनाये हुए ग्यारह कांस्यपात्र और इक्षुदण्ड रखकर ब्राह्मणोंको प्रदान करना चाहिये॥ ५—८½॥

दो निष्क सुवर्णसे गायकी दो सींगें बनाये तथा दो निष्क परिमाणकी चाँदीसे उसके खुर बनाये और सबको पृथक्-पृथक् उन तिलोंपर रख दे। इसके बाद रुद्रके ग्यारह मन्त्रोंसे ग्यारह रुद्रोंको तिलधेनु अर्पण कर दे। इसी प्रकार उस पद्मकी पूर्व दिशामें बारह विप्रोंकी पूजा करके श्रद्धायुक्त होकर द्वादश आदित्यके मन्त्रोंसे उन्हें तिलधेनु अर्पण करे। दक्षिण दिशामें स्थित सोलह विप्रोंकी पूजा करके पूर्वकी भाँति विघ्नेश-मन्त्रोंसे उन्हें तिलधेनु प्रदान करे। यह समस्त कार्य यजमानके द्वारा यथाक्रम सम्पन्न किया जाना चाहिये। रुद्रोंको अथवा आदित्योंको दानकर अपने सामर्थ्यके अनुसार मूर्ति आदिकी दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार राजाको चाहिये कि पद्म-स्थापन करके शेष कार्य आचार्यद्वारा करवाये। अन्तमें पाँच निष्क सुवर्णका भूषण अर्पण करके आचार्यको दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये॥ ९—१६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तिलधेनुदानविधिनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'तिलधेनुदानविधिनिरूपण' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

महादानोंमें परिगणित गोसहस्रदानकी विधि

सनत्कुमार उवाच

गोसहस्रप्रदानं च वदामि शृणु सुव्रत।
गवां सहस्रमादाय सवत्सं सगुणं शुभम्॥ १

तास्त्वभ्यर्च्य यथाशास्त्रमष्टौ सम्यक्प्रयत्नतः।
तासां शृङ्गाणि हेम्नाथ प्रतिनिष्केण बन्धयेत्॥ २

खुरांश्च रजतेनैव बन्धयेत्कण्ठदेशतः।
प्रतिनिष्केण कर्तव्यं कर्णे वज्रं च शोभनम्॥ ३

सनत्कुमार बोले—हे सुव्रत! अब मैं गोसहस्रदानकी विधि बताता हूँ; इसे सुनिये। उत्तम लक्षणोंसे युक्त, मंगलमयी तथा बछड़ोंसहित एक हजार गायें लाकर उनकी पूजा करके उनमेंसे आठ गायोंकी शास्त्रविधिसे प्रयत्नपूर्वक सम्यक् पूजा करे। तत्पश्चात् उनकी सींगोंमें एक निष्क सुवर्ण बाँध दे और खुरोंमें भी एक-एक निष्क सुवर्ण बाँध दे। उनके कण्ठमें एक निष्क सुवर्णका कण्ठाभूषण पहनाये तथा कानोंको सुन्दर हीरेसे अलंकृत करे॥ १—३॥

शिवाय दद्याद्विप्रेभ्यो दक्षिणां च पृथक्पृथक्।
दशनिष्कं तदर्धं वा तस्यार्धार्धमथापि वा॥ ४

यथाविभवविस्तारं निष्कमात्रमथापि वा।
वस्त्रयुग्मं च दातव्यं पृथग्विप्रेषु शोभनम्॥ ५

गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः।

तत्पश्चात् इन्हें शिवको अर्पण कर दे। ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् दस निष्क अथवा उसका आधा अथवा उसके आधेका आधा अथवा एक निष्क सुवर्ण अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये और प्रत्येक ब्राह्मणको एक जोड़ा सुन्दर वस्त्र प्रदान करना चाहिये। दत्तचित्त होकर आराधना करके उन्हें उत्तम गौएँ प्रदान करनी चाहिये॥ ४-५१/२॥

एवं दत्त्वा विधानेन शिवमभ्यर्च्य शङ्करम्॥ ६

जपेदग्रे यथान्यायं गवां स्तवमनुत्तमम्।
गावो ममाग्रतो नित्यं गावो नः पृष्ठतस्तथा॥ ७

हृदये मे सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम्।
इति कृत्वा द्विजाग्र्येभ्यो दत्त्वा गत्वा प्रदक्षिणम्॥ ८

तद्रोमवर्षसंख्यानि स्वर्गलोके महीयते॥ ९

इस प्रकार विधानपूर्वक दान करके कल्याणकारी भगवान् शिवका अर्चनकर गौओंके आगे इस उत्तम स्तवनका सम्यक् प्रकारसे पाठ करना चाहिये—'**गावो ममाग्रतो नित्यं गावो नः पृष्ठतस्तथा। हृदये मे सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम्॥**' अर्थात् गायें नित्य मेरे आगे रहें, गायें हमारे पीछेकी ओर रहें, गायें सदा मेरे हृदयमें रहें और मैं गायोंके मध्य निवास करूँ—ऐसा पाठ करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गायें प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा करे। इस प्रकारसे दान करनेवाला मनुष्य उन गायोंके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ६—९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे गोसहस्रप्रदानं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'गोसहस्रप्रदान' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

हिरण्याश्वदानविधि

सनत्कुमार उवाच

हिरण्याश्वप्रदानं च वदामि विजयावहम्।
अश्वमेधात्पुनः श्रेष्ठं वदामि शृणु सुव्रत॥ १

अष्टोत्तरसहस्रेण अष्टोत्तरशतेन वा।
कृत्वाश्वं लक्षणैर्युक्तं सर्वालङ्कारसंयुतम्॥ २

पञ्चकल्याणसम्पन्नं दिव्याकारं तु कारयेत्।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाङ्गैश्च समन्वितम्॥ ३

सर्वायुधसमोपेतमिन्द्रवाहनमुत्तमम्।
तन्मध्यदेशे संस्थाप्य तुरङ्गं स्वगुणान्वितम्॥ ४

उच्चैःश्रवसकं मत्वा भक्त्या चैव समर्चयेत्।
तस्य पूर्वदिशाभागे ब्राह्मणं वेदपारगम्॥ ५

सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कं प्रदापयेत्।
स चाश्वः शिवभक्ताय दातव्यो विधिनैव तु॥ ६

सुवर्णाश्वं प्रदत्त्वा तु आचार्यमपि पूजयेत्।
यथाविभवविस्तारं पञ्चनिष्कमथापि वा॥ ७

दीनान्धकृपणानाथबालवृद्धकृशातुरान्।
तोषयेदन्नदानेन ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥ ८

एतद्यः कुरुते भक्त्या दानमश्वस्य मानवः।
ऐन्द्रान् भोगांश्चिरं भुक्त्वा रुचिरैश्वर्यवान् भवेत्॥ ९

सनत्कुमार बोले—अब मैं विजयकी प्राप्ति करानेवाले हिरण्याश्वदानकी विधि बताता हूँ; हे सुव्रत! अश्वमेधयज्ञसे भी श्रेष्ठ इस दानका वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनें॥ १॥

एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ निष्क सुवर्णसे एक अश्वका निर्माण करके उसे सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त अलंकारोंसे सुशोभित, पंच-कल्याणसम्पन्न (श्वेतवर्णके चारों पाद तथा श्वेतवर्णके मुखवाला) और दिव्य आकृतिवाला बनाना चाहिये। साथ ही सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त, समस्त अंगोंवाला तथा सभी प्रकारके आयुधोंसे सुशोभित एक उत्तम इन्द्ररथ बनाकर उसके अग्रभागके मध्यस्थानमें सुन्दर गुणोंवाले उस अश्वको स्थापित करके उसे 'उच्चैःश्रवा' अश्व मानकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये॥ २—४$^{1}/_{2}$॥

उसके पूर्व दिशा भागमें वेदके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको आसीन करके उन्हें इन्द्र मानकर उनकी पूजाकर पाँच निष्क सुवर्ण प्रदान करे और वह सुवर्ण-अश्व विधिपूर्वक शिवभक्त विप्रको दे दे। अपने सामर्थ्यके अनुसार सुवर्ण-अश्व प्रदान करके आचार्यकी पूजा करे अथवा पाँच निष्क सुवर्ण प्रदान करे। तत्पश्चात् दीनों, अन्धों, असहायों, बालकों, वृद्धों, दुर्बलों तथा रोगियों और विशेषकर ब्राह्मणोंको अन्नदानके द्वारा सन्तुष्ट करे॥ ५—८॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस सुवर्ण-अश्वका दान करता है, वह दीर्घकालतक इन्द्रतुल्य सुखोंका भोग करके महान् ऐश्वर्यशाली हो जाता है॥ ९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे हिरण्याश्वदानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'हिरण्याश्वदान' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

कन्यादानविधि

सनत्कुमार उवाच

कन्यादानं प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
कन्यां लक्षणसम्पन्नां सर्वदोषविवर्जिताम्॥ १

मातापित्रोस्तु संवादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत्।
आत्मीकृत्याथ संस्नाप्य वस्त्रं दत्त्वा शुभं नवम्॥ २

भूषणैर्भूषयित्वाथ गन्धमाल्यैरथार्चयेत्।
निमित्तानि समीक्ष्याथ गोत्रनक्षत्रकादिकान्॥ ३

उभयोश्चित्तमालोक्य उभौ सम्पूज्य यत्नतः।
दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने॥ ४

साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे।
दासदासीधनाढ्यं च भूषणानि विशेषतः॥ ५

क्षेत्राणि च धनं धान्यं वासांसि च प्रदापयेत्।
यावन्ति देहे रोमाणि कन्यायाः सन्ततौ पुनः॥ ६

तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ ७

सनत्कुमार बोले—अब मैं सभी दानोंमें अतिश्रेष्ठ कन्यादानका वर्णन करूँगा। किसी कन्याके माता-पितासे बात-चीत करके उन्हें अत्यधिक धन देकर समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सभी दोषोंसे रहित उस कन्याको अपनी पुत्री बना ले। इसके बाद उसे स्नान कराकर सुन्दर तथा नवीन वस्त्र प्रदान करके आभूषणोंसे अलंकृतकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे॥ १-२$^1/_2$॥

तत्पश्चात् शकुन, गोत्र, नक्षत्र आदिका सम्यक् विचार करके कन्या तथा वरके अन्तःकरणकी अनुकूलता देखकर उन दोनोंकी प्रयत्नपूर्वक विधिवत् पूजाकर उस श्रोत्रिय, तपस्वी, वेदपारंगत तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मणको विधानपूर्वक वह कन्या अर्पित कर दे। साथ ही दास, दासी, आभूषण, भूमि, धन, धान्य तथा वस्त्र भी प्रदान करे। इस दानको करनेवाला मनुष्य उस कन्याके तथा उसकी संतानोंके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३—७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे कन्यादानविधिर्नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'कन्यादानविधि' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

हिरण्यवृषमहादानविधि

सनत्कुमार उवाच

हिरण्यवृषदानं च कथयामि समासतः।
वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाथ कारयेत्॥ १
तदर्धार्धेन वा धीमांस्तदर्धार्धेन वा पुनः।
अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्मरूपिणम्॥ २
ललाटे कारयेत्पुण्ड्रमर्धचन्द्रकलाकृतिम्।
स्फटिकेन तु कर्त्तव्यं खुरं तु रजतेन वै॥ ३
ग्रीवां तु पद्मरागेण ककुद्गोमेदकेन च।
ग्रीवायां घाण्टवलयं रत्नचित्रं तु कारयेत्॥ ४

सनत्कुमार बोले—अब मैं हिरण्यवृषके दानका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार सुवर्णमुद्रासे वृषभकी एक प्रतिमा बनानी चाहिये अथवा बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उसके आधेके आधे भागसे अथवा उसके भी आधेके आधे भागसे अथवा एक सौ आठ सुवर्णमुद्रासे धर्मरूपी वृषभका निर्माण करे॥ १-२॥

उसके ललाटपर स्फटिकमणिका अर्धचन्द्राकार पुण्ड्र सुशोभित करे। उसका खुर चाँदीसे, ग्रीवा पद्मरागमणिसे और ककुद् गोमेदसे बनाये। तदनन्तर

वृषाङ्कं कारयेत्तत्र किङ्किणीवलयावृतम्।
पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले॥ ५

वृषेन्द्रं स्थापयेत्तत्र पश्चिमामुखमग्रतः।
ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजम्॥ ६

वृषेन्द्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः।
तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि।
तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥ ७

मन्त्रेणानेन सम्पूज्य वृषं धर्मविवृद्धये।
होमयेच्च घृतान्नाद्यैर्यथाविभवविस्तरम्॥ ८

वृषभः पूज्य दातव्यो ब्राह्मणेभ्यः शिवाय वा।
दक्षिणा चैव दातव्या यथावित्तानुसारतः॥ ९

एतद्यः कुरुते भक्त्या वृषदानमनुत्तमम्।
शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते॥ १०

उसकी ग्रीवामें रत्नजटित घण्टियोंकी माला पहनाये। इसके बाद छोटी-छोटी घण्टियोंकी मालासे आवृत करके शिवकी एक मूर्ति बनाये। तत्पश्चात् पूर्वमें कही गयी रीतिसे स्थान तथा कालमें वेदिकाके ऊपर मण्डलमें उस वृषेन्द्रको पश्चिमाभिमुख करके स्थापित करे॥ ३—५ $^{1}/_{2}$ ॥

तदनन्तर उस वृषभपर आरूढ़ उन वृषध्वज शिवजीकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः नमस्कार करके समाहितचित्त होकर वृषगायत्रीमन्त्रसे वृषेन्द्रकी पूजा करे। '**तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्**'—इस मन्त्रसे वृषभकी विधिपूर्वक पूजा करके धर्मकी अभिवृद्धिके लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार घृत-अन्न आदिसे हवन करे। इस प्रकार सम्यक् पूजन करके उस वृषभको शिवजीको अथवा ब्राह्मणोंको अर्पित कर दे। अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस अत्युत्तम वृषदानको करता है, वह शिवका अनुचर होकर उन्हींके साथ आनन्द प्राप्त करता है॥ ६—१०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सुवर्णवृषदानं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'सुवर्णवृषदान' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

सुवर्णगजदानविधि

सनत्कुमार उवाच

गजदानं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः।
द्विजाय वा शिवायाथ दातव्यः पूज्य पूर्ववत्॥ १

गजं सुलक्षणोपेतं हैमं वा राजतं तु वा।
सहस्रनिष्कमात्रेण तदर्धेनापि कारयेत्॥ २

तदर्धार्धेन वा कुर्यात्सर्वलक्षणभूषितम्।
पूर्वोक्तदेशकाले च देवाय विनिवेदयेत्॥ ३

अष्टम्यां वा प्रदातव्यं शिवाय परमेष्ठिने।
ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये॥ ४

सनत्कुमार बोले—अब मैं क्रमके अनुसार सुवर्णगजदानका यथावत् वर्णन करूँगा। पूर्वकी भाँति उसका विधिवत् पूजन करके उसे शिवजीको अथवा ब्राह्मणको अर्पित कर देना चाहिये॥ १॥

शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सुवर्ण अथवा चाँदीका गज एक हजार निष्क परिमाणसे अथवा उसके आधे अर्थात् पाँच सौ निष्कसे बनवाना चाहिये; अथवा उसके आधेके भी आधे परिमाणसे सभी लक्षणोंसे युक्त गजका निर्माण कराना चाहिये और पूर्वोक्त देश तथा कालमें उसे महादेवको अर्पित करना चाहिये। [पूर्वोक्त देशकालके अभावमें] उसे परमेष्ठी शिवको अष्टमी तिथिमें अर्पण

शिवमुद्दिश्य दातव्यं शिवं सम्पूज्य पूर्ववत्।
एतद्यः कुरुते दानं शिवभक्तिसमाहितम्॥ ५

स्थित्वा स्वर्गे चिरं कालं राजा गजपतिर्भवेत्॥ ६

करना चाहिये अथवा शिवको उद्देश्य करके किसी धनहीन श्रोत्रिय अग्निहोत्री ब्राह्मणको इसे प्रदान करना चाहिये; पूर्वकी भाँति भगवान् शिवका सम्यक् पूजन करके इसे प्रदान करना चाहिये। जो मनुष्य शिवभक्तिसे युक्त होकर इस गजदानको करता है, वह स्वर्गमें दीर्घकालतक निवास करके [अगले जन्ममें] गजपति (सार्वभौम) राजा होता है॥ २—६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे गजदानविधानवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'गजदानविधानवर्णन' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

लोकपालाष्टकमहादानविधि

सनत्कुमार उवाच

लोकपालाष्टकं दिव्यं साक्षात्परमदुर्लभम्।
सर्वसम्पत्करं गुह्यं परचक्रविनाशनम्॥ १

स्वदेशरक्षणं दिव्यं गजवाजिविवर्धनम्।
पुत्रवृद्धिकरं पुण्यं गोब्राह्मणहितावहम्॥ २

सनत्कुमार बोले—अब मैं लोकपालाष्टकदानका वर्णन करता हूँ; जो दिव्य, परम दुर्लभ, समस्त सम्पदाओंको प्रदान करनेवाला, गोपनीय, शत्रुके राज्यका विनाश करनेवाला, अपने देशकी रक्षा करनेवाला, प्रशस्त, हाथी-घोड़े आदिकी वृद्धि करनेवाला, पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाला, पुण्यदायक तथा गो-ब्राह्मणका कल्याण करनेवाला है॥ १-२॥

पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले।
मध्ये शिवं समभ्यर्च्य यथान्यायं यथाक्रमम्॥ ३

दिग्विदिक्षु प्रकर्तव्यं स्थण्डिलं वालुकामयम्।
अष्टौ विप्रान् समभ्यर्च्य वेदवेदाङ्गपारगान्॥ ४

जितेन्द्रियान् कुलोद्भूतान् सर्वलक्षणसंयुतान्।
शिवाभिमुखमासीनानाहतेष्वम्बरेषु च॥ ५

वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्लोकपालकमन्त्रकैः।
गन्धपुष्पैः सुधूपैश्च ब्राह्मणानर्चयेत्क्रमात्॥ ६

पूर्वोक्त देशकालमें वेदीके ऊपर मण्डलका निर्माण करके उसके मध्यमें शिवको स्थापित करके उनकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनेके अनन्तर आठों दिशाओंमें बालुकामय स्थण्डिल बनाना चाहिये। तत्पश्चात् उन आठों वेदियोंपर नवीन वस्त्रके आसनोंपर वेदवेदांगमें पारंगत, जितेन्द्रिय, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न आठ विप्रोंको शिवाभिमुख आसीन करके उनका पूजन करे। दिव्य वस्त्रों तथा आभूषणोंसे अलंकृत करके गन्ध, पुष्प एवं उत्तम धूप—इन उपचारोंसे लोकपाल-मन्त्रोंके द्वारा उन ब्राह्मणोंकी क्रमसे पूजा करनी चाहिये॥ ३—६॥

पूर्वतो होमयेदग्नौ लोकपालकमन्त्रकैः।
समिद्घृताभ्यां होतव्यमग्निकार्यं क्रमेण वा॥ ७

एवं हुत्वा विधानेन आचार्यः शिववत्सलः।
यजमानं समाहूय सर्वाभरणभूषितान्॥ ८

तदनन्तर पूर्वकी भाँति अग्निमें होम करना चाहिये; लोकपालमन्त्रोंके द्वारा घृत तथा समिधासे क्रमपूर्वक अग्निकार्य (हवन) करना चाहिये। इस प्रकार विधानपूर्वक हवन करके शिवभक्त आचार्यको चाहिये कि यजमानको बुलाकर उसके द्वारा सभी आभरणोंसे भूषित विप्रोंकी

तेन तान् पूजयित्वाथ द्विजेभ्यो दापयेद्धनम्।
पृथक्पृथक् तन्मन्त्रैश्च दशनिष्कं च भूषणम्॥ ९

दशनिष्केण कर्तव्यमासनं केवलं पृथक्।
स्नपनं तत्र कर्तव्यं शिवस्य विधिपूर्वकम्॥ १०

दक्षिणा च प्रदातव्या यथाविभवविस्तरम्।
एवं यः कुरुते दानं लोकेशानां तु भक्तितः।
लोकेशानां चिरं स्थित्वा सार्वभौमो भवेद्बुधः॥ ११

पूजा करवाकर उन लोकपालमन्त्रोंके द्वारा उन्हें पृथक्-पृथक् द्रव्य तथा दस निष्क सुवर्णका आभूषण दिलाये। साथ ही दस निष्क परिमाणका आसन भी प्रदान करे। वहाँ विधिपूर्वक शिवजीको स्नान कराये। तत्पश्चात् अपने सामर्थ्यके अनुसार आचार्यको दक्षिणा प्रदान करे। जो मनुष्य इस विधिसे भक्ति-पूर्वक लोकपालोंका दान करता है, वह दीर्घकालतक लोकपालोंके समीप निवास करके बुद्धिमान् तथा चक्रवर्ती राजा होता है॥ ७—११॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लोकपालाष्टकदानविधानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'लोकपालाष्टकदानविधानवर्णन' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

त्रिमूर्तिदानविधि

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
पूर्वोक्तदेशकाले च मण्डपे च विधानतः॥ १

प्रणयात्कुण्डमध्ये च स्थण्डिले शिवसन्निधौ।
पूर्वं विष्णुं समासाद्य पद्मयोनिमतः परम्॥ २

मन्त्राभ्यां विधिनोक्ताभ्यां प्रणवादिसमन्त्रकम्।
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ ३

ब्रह्मब्राह्मणवृद्धाय ब्रह्मणे विश्ववेधसे।
शिवाय हरये स्वाहा स्वधा वौषट् वषट् तथा॥ ४

पूजयित्वा विधानेन पश्चाद्धोमं समाचरेत्।
सर्वद्रव्यं हि होतव्यं द्वाभ्यां कुण्डविधानतः॥ ५

ऋत्विजौ द्वौ प्रकर्तव्यौ गुरुणा वेदपारगौ।
तानुद्दिश्य यथान्यायं विप्रेभ्यो दापयेद्धनम्॥ ६

शतमष्टोत्तरं तेभ्यः पृथक्पृथगनुत्तमम्।
वस्त्राभरणसंयुक्तं सर्वालङ्कारसंयुतम्॥ ७

सनत्कुमार बोले—अब मैं समस्त दानोंमें अत्युत्तम अन्य [त्रिमूर्ति] दानका वर्णन करूँगा। पूर्वोक्त काल और स्थानमें भलीभाँति मण्डप तथा वेदीका निर्माण करे। इसके बाद भक्तिपूर्वक शिवकुण्डके समीप स्थण्डिलपर शिवजीको स्थापित करके उनके पार्श्वभागमें पहले विष्णुको, बादमें पद्मयोनि ब्रह्माको स्थापित करके सप्रणव शिवमन्त्रसहित विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—**नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ ब्रह्मब्राह्मणवृद्धाय ब्रह्मणे विश्ववेधसे। शिवाय हरये स्वाहा स्वधा वौषट् वषट् तथा**॥ १—४॥

इस प्रकार विधानपूर्वक पूजन करके बादमें होम करना चाहिये। ब्रह्मा तथा विष्णु—इन दोनोंके लिये पृथक्-पृथक् कुण्डकी व्यवस्था करके सम्पूर्ण होम-द्रव्यका हवन करना चाहिये। आचार्यको चाहिये कि वेदके पारगामी दो ऋत्विजोंको नियुक्त करे। उन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको उद्देश्य करके ब्राह्मणोंको समुचित दक्षिणा-द्रव्य दिलाना चाहिये। वस्त्राभूषण और सभी अलंकारोंके साथ एक सौ आठ उत्तम स्वर्ण-मुद्राएँ पृथक्-पृथक् उन विप्रोंको प्रदान करनी

गुरुरेको हि वै श्रीमान् ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः।
तेषां पृथक्पृथग्देयं भोजयेद्ब्राह्मणानपि॥ ८
शिवार्चना च कर्तव्या स्नपनादि यथाक्रमम्॥ ९

चाहिये। श्रीमान् गुरु (आचार्य) एक हैं, फिर भी उन्हें साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव मानकर पृथक्-पृथक् तीनों मूर्तियोंका दान करना चाहिये और अन्य ब्राह्मणों एवं दीन-दुःखियोंको भोजन कराना चाहिये। इसके अनन्तर अभिषेक आदि शिवार्चन यथाक्रम करना चाहिये॥ ५—९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विष्णुदानविधानवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'विष्णुदानविधानवर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

जीवितावस्थामें किये जानेवाले जीवच्छ्राद्धका विधान*

ऋषय ऊचुः

एवं षोडश दानानि कथितानि शुभानि च।
जीवच्छ्राद्धक्रमोऽस्माकं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ १

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] इस प्रकार आपने कल्याणकारी सोलह दानोंके विषयमें बता दिया, अब आप हमें जीवच्छ्राद्धकी विधि बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धविधिं वक्ष्ये समासात्सर्वसम्मतम्।
मनवे देवदेवेन कथितं ब्रह्मणा पुरा॥ २
वसिष्ठाय च शिष्टाय भृगवे भार्गवाय च।
शृण्वन्तु सर्वभावेन सर्वसिद्धिकरं परम्॥ ३
श्राद्धमार्गक्रमं साक्षाच्छ्राद्धार्हाणामपि क्रमम्।
विशेषमपि वक्ष्यामि जीवच्छ्राद्धस्य सुव्रताः॥ ४

सूतजी बोले—मैं सर्वसम्मत जीवच्छ्राद्ध-विधिका संक्षेपमें वर्णन करूँगा। इसे पूर्वकालमें देवदेव ब्रह्माने स्वायम्भुव मनु, पूज्य वसिष्ठ, भृगु तथा भार्गवको बताया था। आपलोग पूर्ण मनोयोगसे समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले उस श्राद्धके विषयमें सुनें। हे सुव्रतो! मैं अतिश्रेष्ठ श्राद्धमार्गकी विधि, साक्षात् श्राद्धके योग्य पुरुषोंका क्रम और जीवच्छ्राद्धकी विशेष विधिका भी वर्णन कर रहा हूँ॥ २—४॥

पर्वते वा नदीतीरे वने वायतनेऽपि वा।
जीवच्छ्राद्धं प्रकर्तव्यं मृतकाले प्रयत्नतः॥ ५
जीवच्छ्राद्धे कृते जीवो जीवन्नेव विमुच्यते।
कर्म कुर्वन्नकुर्वन् वा ज्ञानी वाज्ञानवानपि॥ ६
श्रोत्रियोऽश्रोत्रियो वापि ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा।
वैश्यो वा नात्र सन्देहो योगमार्गगतो यथा॥ ७

मनुष्यको वृद्धावस्थामें पर्वतपर, नदीके तटपर, वनमें अथवा देवालयमें प्रयत्नपूर्वक जीवच्छ्राद्ध करना चाहिये। जीवच्छ्राद्ध कर लेनेपर प्राणी जीवित रहते ही मुक्त हो जाता है; वह कर्म करे अथवा न करे, ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, श्रोत्रिय हो अथवा अश्रोत्रिय, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य कोई भी हो—वह योगमार्गको प्राप्त योगीकी भाँति मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५—७॥

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गन्धवर्णरसादिभिः।
शल्यमुद्धृत्य यत्नेन स्थण्डिलं सैकतं भुवि॥ ८

[जीवच्छ्राद्धकी विधि बतायी जाती है—] गन्ध, वर्ण, रस आदिके द्वारा भूमिकी विधिवत् परीक्षा करके यत्नपूर्वक शल्य (दोष) निकालकर उस भूमिपर

* इस अध्यायमें जीवच्छ्राद्धका माहात्म्य एवं संक्षेपमें श्राद्धकी विधि आयी है, किंतु वर्तमानमें जीवच्छ्राद्धकी जो प्रक्रिया उपलब्ध होती है, वह इससे भिन्न है। गीताप्रेससे 'जीवच्छ्राद्धपद्धति' नामसे एक पुस्तक प्रकाशित है, जिसमें जीवच्छ्राद्ध-सम्बन्धी समस्त प्रक्रिया पूर्णरूपसे उपलब्ध है, जिज्ञासुजनोंको उसका अवलोकन करना चाहिये।

मध्यतो हस्तमात्रेण कुण्डं चैवायतं शुभम्।
स्थण्डिलं वा प्रकर्तव्यमिषुमात्रं पुनः पुनः॥ ९
उपलिप्य विधानेन चालिप्याग्निं विधाय च।
अन्वाधाय यथाशास्त्रं परिगृह्य च सर्वतः॥ १०
परिस्तीर्य स्वशाखोक्तं पारम्पर्यक्रमागतम्।
समाप्याग्निमुखं सर्वं मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम्॥ ११
सम्पूज्य स्थण्डिले वह्नौ होमयेत्समिदादिभिः।
आदौ कृत्वा समिद्धोमं चरुणा च पृथक्पृथक्॥ १२
घृतेन च पृथक्पात्रे शोधितेन पृथक्पृथक्।
जुहुयादात्मनोद्धृत्य तत्त्वभूतानि सर्वतः॥ १३
ॐ भूः ब्रह्मणे नमः॥ १४॥ ॐ भूः ब्रह्मणे स्वाहा॥ १५॥ ॐ भुवः विष्णवे नमः॥ १६॥ ॐ भुवः विष्णवे स्वाहा॥ १७॥ ॐ स्वः रुद्राय नमः॥ १८॥ ॐ स्वः रुद्राय स्वाहा॥ १९॥ ॐ महः ईश्वराय नमः॥ २०॥ ॐ महः ईश्वराय स्वाहा॥ २१॥ ॐ जनः प्रकृतये नमः॥ २२॥ ॐ जनः प्रकृत्यै स्वाहा॥ २३॥ ॐ तपः मुद्गलाय नमः॥ २४॥ ॐ तपः मुद्गलाय स्वाहा॥ २५॥ ॐ ऋतं पुरुषाय नमः॥ २६॥ ॐ ऋतं पुरुषाय स्वाहा॥ २७॥ ॐ सत्यं शिवाय नमः॥ २८॥ ॐ सत्यं शिवाय स्वाहा॥ २९॥ ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय देवाय भूर्नमः॥ ३०॥ ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय भूः स्वाहा॥ ३१॥ ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वस्य देवस्य पत्न्यै भूर्नमः॥ ३२॥ ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वपत्न्यै भूः स्वाहा॥ ३३॥ ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवो नमः॥ ३४॥ ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवः स्वाहा॥ ३५॥ ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य देवस्य पत्न्यै भुवो नमः॥ ३६॥ ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य पत्न्यै भुवः स्वाहा॥ ३७॥ ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वरों नमः॥ ३८॥

बालूकी वेदी बनाये और उस वेदीके मध्य एक हाथ-प्रमाणका लम्बा-चौड़ा सुन्दर कुण्ड अथवा अरत्नि (कुहनीसे कनिष्ठिका अँगुलीतककी दूरी)-प्रमाणवाला स्थण्डिल बनाये। उसे बार-बार अत्यन्त स्निग्ध (चिकना) करके गोमयसे लीपकर अपने-अपने वेदोंकी शाखाओंके परम्परागत मन्त्रोंसे अग्निस्थापन करके तीन समिधाएँ लेकर हूयमान सभी देवताओंका आवाहनकर पुनः कुशास्तरण करे। विधिवत् पूजन करके स्थण्डिलपर अग्निमें यज्ञकी समिधाओंके द्वारा होम करे; पहले समिधासे हवन करके बादमें चरुसे तथा घृतसे पृथक्-पृथक् हवन करे। आज्यस्थालीमें शुद्ध किये हुए घृतसे तत्त्वभूतोंको मनसे विचार करके चारों ओर अलग-अलग हवन करना चाहिये॥ ८—१३॥

[पूजन-हवनमन्त्रोंको क्रमशः बताया जाता है—]

ॐ भूः ब्रह्मणे नमः। ॐ भूः ब्रह्मणे स्वाहा। ॐ भुवः विष्णवे नमः। ॐ भुवः विष्णवे स्वाहा। ॐ स्वः रुद्राय नमः। ॐ स्वः रुद्राय स्वाहा। ॐ महः ईश्वराय नमः। ॐ महः ईश्वराय स्वाहा। ॐ जनः प्रकृतये नमः। ॐ जनः प्रकृत्यै स्वाहा। ॐ तपः मुद्गलाय नमः। ॐ तपः मुद्गलाय स्वाहा। ॐ ऋतं पुरुषाय नमः। ॐ ऋतं पुरुषाय स्वाहा। ॐ सत्यं शिवाय नमः। ॐ सत्यं शिवाय स्वाहा। ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय देवाय भूर्नमः। ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वाय भूः स्वाहा। ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वस्य देवस्य पत्न्यै भूर्नमः। ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गन्धं शर्वपत्न्यै भूः स्वाहा। ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवो नमः। ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवः स्वाहा। ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य देवस्य पत्न्यै भुवो नमः। ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य पत्न्यै भुवः स्वाहा। ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वरों नमः। ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय

ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वः स्वाहा॥ ३९॥ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य पत्न्यै स्वरों नमः॥ ४०॥ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै स्वः स्वाहा॥ ४१॥ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्राय देवाय महर्नमः॥ ४२॥ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्राय देवाय महः स्वाहा॥ ४३॥ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महरों नमः॥ ४४॥ ॐ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महः स्वाहा॥ ४५॥ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनो नमः॥ ४६॥ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनः स्वाहा॥ ४७॥ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य पत्न्यै जनो नमः॥ ४८॥ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य देवस्य पत्न्यै जनः स्वाहा॥ ४९॥ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपो नमः॥ ५०॥ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपः स्वाहा॥ ५१॥ रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपो नमः॥ ५२॥ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपः स्वाहा॥ ५३॥ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं नमः॥ ५४॥ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं स्वाहा॥ ५५॥ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं नमः॥ ५६॥ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं स्वाहा॥ ५७। पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवाय सत्यं नमः॥ ५८॥ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवस्य सत्यं स्वाहा॥ ५९॥ ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं नमः॥ ६०॥ ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं स्वाहा॥ ६१॥ ॐ शिवाय नमः॥ ६२॥ ॐ शिवाय सत्यं स्वाहा॥ ६३॥

एवं शिवाय होतव्यं विरिञ्च्याद्यं च पूर्ववत्।
विरिञ्चाद्यं च पूर्वोक्तं सृष्टिमार्गेषु सुव्रताः॥ ६४
पुनः पशुपतेः पत्नीं तथा पशुपतिं क्रमात्।
सम्पूज्य पूर्ववन्मन्त्रैर्होतव्यं च क्रमेण वै॥ ६५

नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वः स्वाहा। रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य पत्न्यै स्वरों नमः। रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै स्वः स्वाहा। उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्राय देवाय महर्नमः। उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्राय देवाय महः स्वाहा। उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महरों नमः। ॐ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महः स्वाहा। भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनो नमः। भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनः स्वाहा। भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य पत्न्यै जनो नमः। भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य देवस्य पत्न्यै जनः स्वाहा। ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपो नमः। ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपः स्वाहा। रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपो नमः। ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपः स्वाहा। महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं नमः। महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं स्वाहा। महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं नमः। महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं स्वाहा। पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवाय सत्यं नमः। पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवस्य सत्यं स्वाहा। ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं नमः। ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं स्वाहा। ॐ शिवाय नमः। ॐ शिवाय सत्यं स्वाहा॥ १४—६३॥

इस प्रकार सर्वप्रथम विरिंचि (ब्रह्मा) आदि [पचीस] देवताओंका पूजन करके पूर्वोक्त क्रमसे मोक्षके लिये हवन करना चाहिये। हे सुव्रतो! विरिंचि आदिका पूजन-हवन सृष्टिक्रमसे करनेके अनन्तर क्रमसे पूर्वकी भाँति पशुपतिकी पत्नी तथा पशुपतिका सम्यक् पूजन

चर्वन्तमाज्यपूर्वं च समिदन्तं समाहितः॥ ६६
ॐ शर्व धरां मे छिन्धि घ्राणे गन्धं छिन्धि मेघं जहि भूः स्वाहा॥ ६७॥ भुवः स्वाहा॥ ६८
स्वः स्वाहा॥ ६९॥ भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥ ७०

एवं पृथक्पृथग्घुत्वा केवलेन घृतेन वा।
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥ ७१

विरजा च घृतेनैव शतमष्टोत्तरं पृथक्।
प्राणादिभिश्च जुहुयाद्घृतेनैव तु केवलम्॥ ७२

ॐ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा॥ ७३

प्राणाधिपतये रुद्राय वृषान्तकाय स्वाहा॥ ७४

ॐ भूः स्वाहा॥ ७५॥ ॐ भुवः स्वाहा॥ ७६

ॐ स्वः स्वाहा॥ ७७॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥ ७८

एवं क्रमेण जुहुयाच्छ्राद्धोक्तं च यथाक्रमम्।
सप्तमेऽहनि योगीन्द्राञ्छ्राद्धार्हानपि भोजयेत्॥ ७९

शर्वादीनां च विप्राणां वस्त्राभरणकम्बलान्।
वाहनं शयनं यानं कांस्यताम्रादिभाजनम्॥ ८०

हैमं च राजतं धेनुं तिलान् क्षेत्रं च वैभवम्।
दासीदासगणश्चैव दातव्यो दक्षिणामपि॥ ८१

पिण्डं च पूर्ववद्दद्यात्पृथगष्टप्रकारतः।
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयेच्च सदक्षिणम्॥ ८२

एकं वा योगनिरतं भस्मनिष्ठं जितेन्द्रियम्।
त्र्यहं चैव तु रुद्रस्य महाचरुनिवेदनम्॥ ८३

विशेष एवं कथित अशेषश्राद्धचोदितः।
मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्॥ ८४

नित्यनैमित्तिकादीनि कुर्याद्वा सन्त्यजेत्तु वा।
बान्धवेऽपि मृते तस्य शौचाशौचं न विद्यते॥ ८५

सूतकं च न सन्देहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति।
पश्चाज्जाते कुमारे च स्वे क्षेत्रे चात्मनो यदि॥ ८६

करके समाहितचित्त होकर मन्त्रोंके द्वारा चरु, आज्य और समिधासे हवन करना चाहिये॥ ६४—६६॥

[हवनके मन्त्र इस प्रकार हैं—] **ॐ शर्व धरां मे छिन्धि घ्राणे गन्धं छिन्धि मेघं जहि भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा। भूर्भुवः स्वः स्वाहा**—इन मन्त्रोंके द्वारा समिधा आदिसे अथवा केवल घृतसे एक हजार अथवा पाँच सौ अथवा एक सौ आठ पृथक्-पृथक् आहुतियाँ प्रदान करके विरजासंज्ञक दीक्षामन्त्रोंके द्वारा घृतसे आहुति देनी चाहिये। तत्पश्चात् प्राणादि मन्त्रोंके द्वारा केवल घृतसे एक सौ आठ आहुति डालनी चाहिये। [प्राणादि मन्त्र ये हैं—] **ॐ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा। प्राणाधिपतये रुद्राय वृषान्तकाय स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा**॥ ६७—७८॥

इस प्रकार श्राद्धोक्त रीतिसे यथाक्रम हवन करे। तदनन्तर सातवें दिन योगियों तथा श्राद्धयोग्य ब्राह्मणोंको भोजन कराये। शर्व आदि अष्ट देवताओंके नामोंसे आठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें वस्त्र, आभूषण, कम्बल, वाहन, शय्या, यान, कांस्य-ताम्र आदिके पात्र, सोना, चाँदी, गो, तिल, भूमि, धन और दासीदाससमूह—यह सब प्रदान करना चाहिये और दक्षिणा भी देनी चाहिये। शर्व आदि अष्टमूर्तियोंके प्रकारसे आठ पिण्ड भी प्रदान करे। हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे अथवा एक ही योगपरायण, भस्मनिष्ठ तथा जितेन्द्रिय [शिवभक्त]-को ही भोजन कराये। तीन दिनतक भगवान् रुद्रको महाचरु निवेदित करे। जीवच्छ्राद्धके विषयमें शास्त्रवर्णित विशेष बातें मैंने बता दीं—॥ ७९—८३ १/२॥

जीवच्छ्राद्ध करनेवाला व्यक्ति नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको करे अथवा त्याग दे और उसके मृत हो जानेपर कोई उसका श्राद्ध करे अथवा न करे; क्योंकि वह तो स्वयं जीवन्मुक्त है। बन्धु-बान्धवके मर जानेपर उसे शौचाशौच तथा सूतक नहीं लगता, वह स्नानमात्रसे शुद्ध हो जाता है;

तस्य सर्वं प्रकर्तव्यं पुत्रोऽपि ब्रह्मविद्भवेत्।
कन्यका यदि सञ्जाता पश्चात्तस्य महात्मनः॥ ८७

एकपर्णा इव ज्ञेया अपर्णा इव सुव्रता।
भवत्येव न सन्देहस्तस्याश्चान्वयजा अपि॥ ८८

मुच्यन्ते नात्र सन्देहः पितरो नरकादपि।
मुच्यन्ते कर्मणानेन मातृतः पितृतस्तथा॥ ८९

कालं गते द्विजे भूमौ खनेच्चापि दहेत्तु वा।
पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते॥ ९०

कर्मणा चोत्तरेणैव गतिरस्य न विद्यते।
ब्रह्मणा कथितं सर्वं मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ९१

पुनः सनत्कुमाराय कथितं तेन धीमता।
कृष्णद्वैपायनायैव कथितं ब्रह्मसूनुना॥ ९२

प्रसादात्तस्य देवस्य वेदव्यासस्य धीमतः।
ज्ञातं मया कृतं चैव नियोगादेव तस्य तु॥ ९३

एतद्वः कथितं सर्वं रहस्यं ब्रह्मसिद्धिदम्।
मुनिपुत्राय दातव्यं न चाभक्ताय सुव्रताः॥ ९४

इसमें सन्देह नहीं है। अपनी पत्नीसे बादमें यदि अपना पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो उसका सम्पूर्ण संस्कार करना चाहिये; वह पुत्र भी ब्रह्मवेत्ता होता है। हे सुव्रतो! यदि बादमें उस महात्माके कन्या उत्पन्न हुई, तो उस कन्याको एकपर्णा अथवा अपर्णा (पार्वती)-के समान जानना चाहिये। उस कन्याके वंशमें उत्पन्न होनेवाले भी मुक्त हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उस व्यक्तिके इस [जीवच्छ्राद्ध] कर्मके द्वारा उसके मातृपक्ष तथा पितृपक्षके पितर भी नरकसे मुक्त हो जाते हैं। [जीवच्छ्राद्ध कर चुके] ऐसे द्विजके मर जानेपर उसे भूमिमें गाड़ दिया जाय अथवा उसका दाह-संस्कार कर दिया जाय; पुत्रके द्वारा उसका सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कृत्य करनेसे उसे कोई दोष नहीं लगता है। मृत्युके अनन्तर उसके लिये कोई क्रिया आवश्यक नहीं है॥ ८४—९०१/२॥

[सूतजीने कहा—हे ऋषियो!] ब्रह्माजीने पुण्यात्मा मुनियोंसे यह सब कहा था; फिर उन बुद्धिमान् ब्रह्माने इसे सनत्कुमारको बताया। तदनन्तर ब्रह्मपुत्र उन सनत्कुमारने कृष्णद्वैपायन व्यासजीसे इसका कथन किया। इसके अनन्तर उन बुद्धिसम्पन्न भगवान् वेदव्यासकी कृपासे मैंने इसे जाना और उन्हींके आदेशसे ब्रह्मसिद्धि प्रदान करनेवाला यह सम्पूर्ण रहस्य मैंने आप लोगोंको बताया। हे सुव्रतो! इसे किसी मुनिपुत्रको ही प्रदान करना चाहिये, अभक्तको नहीं॥ ९१—९४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे जीवच्छ्राद्धविधिर्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४५॥
॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'जीवच्छ्राद्धविधि' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

लिङ्गमें सभी देवताओंकी स्थितिका वर्णन और लिङ्गार्चनसे सभीके पूजनका फलनिरूपण

ऋषय ऊचुः

जीवच्छ्राद्धविधिः प्रोक्तस्त्वया सूत महामते।
मूर्खाणामपि मोक्षार्थमस्माकं रोमहर्षण॥ १

रुद्रादित्यवसूनां च शक्रादीनां च सुव्रत।
प्रतिष्ठा कीदृशी शम्भोर्लिङ्गमूर्तेश्च शोभना॥ २

ऋषिगण बोले—हे विशाल बुद्धिवाले सूतजी, हे रोमहर्षण! आपने अज्ञानियोंके भी मोक्षके लिये हमलोगोंसे जीवच्छ्राद्धकी विधिका वर्णन किया। हे सुव्रत! रुद्र, आदित्य, वसु, इन्द्र आदि देवता तथा शिवजीकी लिङ्गमूर्तिकी सुन्दर प्रतिष्ठा किस प्रकार होती है;

विष्णोः शक्रस्य देवस्य ब्रह्मणश्च महात्मनः।
अग्नेर्यमस्य निर्ऋतेर्वरुणस्य महाद्युतेः॥ ३
वायोः सोमस्य यक्षस्य कुबेरस्यामितात्मनः।
ईशानस्य धरायाश्च श्रीप्रतिष्ठाथ वा कथम्॥ ४
दुर्गाशिवाप्रतिष्ठा च हैमवत्याश्च शोभना।
स्कन्दस्य गणराजस्य नन्दिनश्च विशेषतः॥ ५
तथान्येषां च देवानां गणानामपि वा पुनः।
प्रतिष्ठालक्षणं सर्वं विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥ ६

विष्णु, इन्द्रदेव, भगवान् ब्रह्मा, अग्नि, यम, निर्ऋति, महातेजस्वी वरुण, वायु, सोम, यक्ष, अमित आत्मावाले कुबेर, ईशान तथा पृथ्वीकी उत्तम प्रतिष्ठा कैसे की जाती है; दुर्गा, शिवा, हैमवती, कार्तिकेय, गणनाथ नन्दी तथा अन्य देवताओं और गणोंकी शोभन प्रतिष्ठा किस प्रकार होती है, इनकी प्रतिष्ठा-विधिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १—६॥

भवान् सर्वार्थतत्त्वज्ञो रुद्रभक्तश्च सुव्रत।
कृष्णद्वैपायनस्यासि साक्षात्त्वमपरा तनुः॥ ७
सुमन्तुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च परमर्षयः।
गुरुभक्तिं तथा कर्तुं समर्थो रोमहर्षणः॥ ८
इति व्यासस्य विपुला गाथा भागीरथीतटे।
एकः समो वा भिन्नो वा शिष्यस्तस्य महाद्युतेः॥ ९
वैशम्पायनतुल्योऽसि व्यासशिष्येषु भूतले।
तस्मादस्माकमखिलं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ १०

हे सुव्रत! आप समस्त अर्थतत्त्वके ज्ञाता और रुद्रभक्त हैं। आप कृष्णद्वैपायन व्यासकी साक्षात् दूसरी मूर्ति हैं। 'सुमन्तु, जैमिनि तथा पैल परम ऋषिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं; रोमहर्षण उन्हींके सदृश गुरुभक्ति करनेमें समर्थ हैं—इस प्रकारकी विशद वाणी गंगातटपर व्यासजीने स्वयं प्रकट की थी।' उन महातेजस्वीके समान अथवा उन्हींके रूपवाले आप उनके शिष्य हैं। पृथ्वीतलपर व्यासजीके शिष्योंमें आप वैशम्पायनके समान हैं, अतः इस समय आप हमलोगोंको सम्पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें॥ ७—१०॥

एवमुक्त्वा स्थितेष्वेव तेषु सर्वेषु तत्र च।
बभूव विस्मयोऽतीव मुनीनां तस्य चाग्रतः॥ ११
अथान्तरिक्षे विपुला साक्षाद्देवी सरस्वती।
अलं मुनीनां प्रश्नोऽयमिति वाचा बभूव ह॥ १२
सर्वं लिङ्गमयं लोकं सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेत्पूजयेच्च तत्॥ १३
लिङ्गस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना।
आशु ब्रह्माण्डमुद्भिद्य निर्गच्छेदविशङ्कया॥ १४

ऐसा कहकर उन सभीके शान्त हो जानेपर मुनियों तथा उन सूतजीके समक्ष विस्मयकारी घटना हुई, अन्तरिक्षमें साक्षात् महादेवी सरस्वती इस वाणीके साथ प्रकट हुईं कि 'मुनियोंका यह प्रश्न समीचीन है, सम्पूर्ण लोक लिङ्गमय है और सब कुछ लिङ्गमें ही प्रतिष्ठित है, अतः सब कुछ छोड़कर उसीका स्थापन तथा पूजन करना चाहिये। लिङ्गस्थापनरूप पुण्यकर्ममें स्थापित अत्यन्त विस्तृत खड्गके द्वारा शीघ्र ही ब्रह्माण्डका भेदन करके [वह लिङ्गस्थापक] निःशंक भावसे मुक्त हो जाता है'॥ ११—१४॥

उपेन्द्राम्भोजगर्भेन्द्रयमाम्बुधनदेश्वराः।
तथान्ये च शिवं स्थाप्य लिङ्गमूर्तिं महेश्वरम्॥ १५
स्वेषु स्वेषु च पक्षेषु प्रधानास्ते यथा द्विजाः।
ब्रह्मा हरश्च भगवान् विष्णुर्देवी रमा धरा॥ १६
लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा धरा दुर्गा शची तथा।
रुद्राश्च वसवः स्कन्दो विशाखः शाख एव च॥ १७

हे द्विजो! लिङ्गमूर्ति महेश्वर शिवकी स्थापना करके जैसे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर ईश्वर (स्वामी) हो गये, वैसे ही अन्य लोग भी अपने-अपने पक्षोंमें प्रधान हुए हैं। ब्रह्मा, शम्भु, भगवान् विष्णु, देवी रमा, धरा, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, धरा, दुर्गा, शची, सभी रुद्र, सभी वसु, कार्तिकेय, विशाख, शाख,

नैगमेशश्च भगवाँल्लोकपाला ग्रहास्तथा।
सर्वे नन्दिपुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः॥ १८
पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सुप्रभाः।
आदित्या वसवः सांख्या अश्विनौ च भिषग्वरौ॥ १९
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पशवः पक्षिणो मृगाः।
ब्रह्मादिस्थावरान्तं च सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्॥ २०
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिङ्गमव्ययम्।
यत्नेन स्थापितं सर्वं पूजितं पूजयेद्यदि॥ २१

भगवान् नैगमेश, समस्त लोकपाल, ग्रह, नन्दी आदि गण, प्रभु गणपति, पितर, मुनिगण, कान्तिमान् कुबेर आदि यक्ष, सभी आदित्य, वसु, सांख्य, वैद्यश्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, साध्यगण, पशु, पक्षी और मृग—ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सब कुछ लिङ्गमें प्रतिष्ठित है, अतः सब कुछ छोड़कर यत्नपूर्वक यदि शाश्वत लिङ्गकी स्थापना करे, तो सबकी स्थापना हो जाती है और यदि पूजन करे, तो सबकी पूजा हो जाती है॥ १५—२१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लिङ्गपूजनवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥
॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'लिङ्गपूजनवर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

लिङ्गमूर्तिकी प्रतिष्ठाकी विधि

सूत उवाच

इति निशम्य कृताञ्जलयस्तदा
दिवि महामुनयः कृतनिश्चयाः।
शिवतरं शिवमीश्वरमव्ययं
मनसि लिङ्गमयं प्रणिपत्य ते॥ १
सकलदेवपतिर्भगवानजो
हरिरशेषपतिर्गुरुणा स्वयम्।
मुनिवराश्च गणाश्च सुरासुरा
नरवराः शिवलिङ्गमयाः पुनः॥ २
श्रुत्वैवं मुनयः सर्वे षट्कुलीयाः समाहिताः।
सन्त्यज्य सर्वं देवस्य प्रतिष्ठां कर्तुमुद्यताः॥ ३
अपृच्छन् सूतमनघं हर्षगद्गदया गिरा।
लिङ्गप्रतिष्ठां विपुलां सर्वे ते शंसितव्रताः॥ ४

सूतजी बोले—यह आकाशवाणी सुनकर दृढ़ संकल्पवाले उन मुनियोंने दोनों हाथ जोड़ लिये। परम कल्याणमय, लिङ्गमय तथा अविनाशी भगवान् शिवको मनमें प्रणाम करके सभी देवताओंके पति इन्द्र, ब्रह्मा, सबके स्वामी भगवान् विष्णु, देवगुरु बृहस्पतिसहित सभी श्रेष्ठ मुनि, सभी गण, देवता, असुर और श्रेष्ठ मनुष्य—इन सभीने अपनेको शिवलिङ्गमय अनुभव किया॥ १-२॥

यह सुनकर छहों कुलोंके सभी मुनि सब कुछ छोड़कर समाहितचित्त हो लिङ्गप्रतिष्ठा करनेके लिये उद्यत हुए। संयत व्रतवाले उन सभी मुनियोंने हर्षयुक्त गद्गद वाणीमें पुण्यात्मा सूतजीसे महती लिङ्गप्रतिष्ठाकी विधि पूछी॥ ३-४॥

सूत उवाच

प्रतिष्ठां लिङ्गमूर्तेर्वो यथावदनुपूर्वशः।
प्रवक्ष्यामि समासेन धर्मकामार्थमुक्तये॥ ५
कृत्वैव लिङ्गं विधिना भुवि लिङ्गेषु यत्नतः।
लिङ्गमेकतमं शैलं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥ ६
हेमरत्नमयं वापि राजतं ताम्रजं तु वा।
सवेदिकं ससूत्रं च सम्यग्विस्तृतमस्तकम्॥ ७
विशोध्य स्थापयेद्भक्त्या सवेदिकमनुत्तमम्।
लिङ्गवेदी उमा देवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः॥ ८

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मैं आप लोगोंसे संक्षेपमें लिङ्गमूर्तिकी प्रतिष्ठाकी विधिका अनुक्रमसे यथावत् वर्णन करूँगा। पृथ्वीलोकमें कहे जानेवाले शैल आदि लिङ्गोंमें पाषाणका, हेमरत्नमय अथवा ताम्रका एक जलहरीसमेत और पंचसूत्र आदिसे युक्त तथा विस्तृत मस्तकवाला ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक उत्तम लिङ्ग बनाकर उसे भलीभाँति शोधित करके वेदीसमेत भक्तिपूर्वक स्थापित करे।

तयोः सम्पूजनादेव देवी देवश्च पूजितौ।
प्रतिष्ठया च देवेशो देव्या सार्धं प्रतिष्ठितः॥ ९

तस्मात्सवेदिकं लिङ्गं स्थापयेत्स्थापकोत्तमः॥ १०

लिङ्गकी वेदी भगवती उमा हैं और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं। उन दोनों (वेदी तथा लिङ्ग)-की प्रतिष्ठासे देवी पार्वतीसहित देवेश्वर शिव प्रतिष्ठित हो जाते हैं और उन दोनोंके पूजनसे देवी पार्वती तथा भगवान् शिव स्वयं पूजित हो जाते हैं। अतः श्रेष्ठ स्थापकको वेदीसहित लिङ्गकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥ ५—१०॥

मूले ब्रह्मा वसति भगवान् मध्यभागे च विष्णुः
सर्वेशानः पशुपतिरजो रुद्रमूर्तिर्वरेण्यः।
तस्माल्लिङ्गं गुरुतरतरं पूजयेत्स्थापयेद्वा
यस्मात्पूज्यो गणपतिरसौ देवमुख्यैः समस्तैः॥ ११

गन्धैः स्त्रग्धूपदीपैः स्नपनहुतबलिस्तोत्रमन्त्रोपहारैर्नित्यं
येऽभ्यर्चयन्ति त्रिदशवरतनुं लिङ्गमूर्तिं महेशम्। गर्भा-
धानादिनाशक्षयभयरहिता देवगन्धर्वमुख्यैः सिद्धै-
र्वन्द्याश्च पूज्या गणवरनमितास्ते भवन्त्यप्रमेयाः॥ १२

तस्माद्भक्त्योपचारेण स्थापयेत्परमेश्वरम्।
पूजयेच्च विशेषेण लिङ्गं सर्वार्थसिद्धये॥ १३

शिवलिङ्गके मूलमें ब्रह्मा, मध्यभागमें भगवान् विष्णु और अग्रभागमें सर्वेश्वर रुद्रमूर्ति वरेण्य पशुपति शिव निवास करते हैं। अतः यदि कोई अतिश्रेष्ठ शिवलिङ्गकी स्थापना अथवा पूजा करे, तो वह सभी प्रधान देवताओंका पूज्य और शिवजीका प्रधान गण हो जाता है। जो लोग गन्ध, माल्य, धूप, दीप, स्नान, हवन, नैवेद्य-समर्पण, स्तोत्र, मन्त्र तथा उपहारोंसे देवताओंमें श्रेष्ठ विग्रहवाले लिङ्गमूर्ति महेश्वरका अर्चन करते हैं, वे जन्म-मरण, नाश, क्षय आदिके भयसे रहित हो जाते हैं; प्रधान देवताओं तथा गन्धर्वों और सिद्धोंके वन्दनीय तथा पूजनीय हो जाते हैं; श्रेष्ठ शिवगणोंके नमस्कारयोग्य हो जाते हैं और अपरिमित प्रभाववाले हो जाते हैं। अतः सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये सभी उपचारोंसे भक्तिपूर्वक महेश्वरकी और विशेषरूपसे लिङ्गमूर्तिकी स्थापना तथा पूजा करनी चाहिये॥ ११—१३॥

समर्च्य स्थापयेल्लिङ्गं तीर्थमध्ये शिवासने।
कूर्चवस्त्रादिभिर्लिङ्गमाच्छाद्य कलशैः पुनः॥ १४

लोकपालादिदैवत्यैः सकूर्चैः साक्षतैः शुभैः।
उत्कूर्चैः स्वस्तिकाद्यैश्च चित्रतन्तुकवेष्टितैः॥ १५

वज्रादिकायुधोपेतैः सवस्त्रैः सपिधानकैः।
लक्षयेत्परितो लिङ्गमीशानेन प्रतिष्ठितम्॥ १६

सम्यक् अर्चन करके तीर्थमें शिवासनपर लिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। कूर्च-वस्त्र आदिसे लिङ्गको आच्छादित करके कूर्चयुक्त, अक्षतयुक्त, स्वस्तिक आदिसे सुशोभित, सुन्दर तन्तुसे वेष्टित, वज्र आदि आयुधोंसे संयुक्त, वस्त्रयुक्त तथा पिधानसमन्वित लोकपाल आदि देवोंके कलशोंसे, ईशानमन्त्रसे प्रतिष्ठित शिवलिङ्गका चारों ओरसे रक्षण करे॥ १४—१६॥

धूपदीपसमोपेतं वितानविततताम्बरम्।
लोकपालध्वजैश्चैव गजादिमहिषादिभिः॥ १७

चित्रितैः पूजितैश्चैव दर्भमाला च शोभना।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा तया बाह्ये च वेष्टयेत्॥ १८

एक विशाल मण्डपका निर्माण कराये, जो धूप-दीप आदिसे सदा युक्त रहे, पूजित गज-महिष आदिके चित्रोंसे युक्त रहे, लोकपाल आदिके ध्वजोंसे सुशोभित रहे। उस मण्डपके बाहर चारों ओरसे सभी लक्षणोंसे सम्पन्न सुन्दर दर्भमाला वेष्टित कर देनी चाहिये॥ १७-१८॥

ततोऽधिवासयेत्तोये धूपदीपसमन्विते।
पञ्चाहं वा त्र्यहं वाथ एकरात्रमथापि वा॥ १९

वेदाध्ययनसम्पन्नो नृत्यगीतादिमङ्गलैः।
किङ्किणीरवकोपेतं तालवीणारवैरपि॥ २०

ईक्षयेत्कालमव्यग्रो यजमानः समाहितः।
उत्थाप्य स्वस्तिकं ध्यायेन्मण्डपे लक्षणान्विते॥ २१

संस्कृते वेदिसंयुक्ते नवकुण्डेन संवृते।
पूर्वोक्तविधिना युक्ते सर्वलक्षणसंयुते॥ २२

अष्टमण्डलसंयुक्ते दिग्ध्वजाष्टकसंयुते।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतैः कुण्डैः प्रागादितः क्रमात्॥ २३

प्रधानं कुण्डमीशान्यां चतुरस्रं विधीयते।
अथवा पञ्चकुण्डैकं स्थण्डिलं चैकमेव च॥ २४

तदनन्तर उस शिवलिङ्गको पाँच रात अथवा तीन रात अथवा एक रात ही धूप-दीपसे समन्वित जलमें अधिवासित करना चाहिये। यजमानको चाहिये कि वेदाध्ययनपरायण रहते हुए नृत्य, गीत आदि मंगलोंसे, किंकिणीकी ध्वनिसे तथा तालवीणाके स्वरोंसे मण्डपको युक्त रखे और अव्यग्र भावसे समय व्यतीत करे। प्रतिष्ठाके समय जलमेंसे शिवलिङ्गको निकालकर समाहितचित्त होकर पुण्याहवाचन करे और लिङ्गको मण्डपमें रखे, जो लक्षणोंसे युक्त हो; भलीभाँति परिष्कृत हो; वेदीसे युक्त हो; नौ कुण्डोंसे आवृत हो; पूर्वोक्त विधिसे सभी लक्षणोंसे समन्वित हो; आठों दिग्पालोंके निमित्त आठ मण्डलोंसे सम्पन्न हो और आठों दिशाओंमें लगायी गयी ध्वजाओंसे सुशोभित हो। पूर्व दिशासे क्रमसे प्रारम्भ करके पूर्वोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न कुण्डोंसे यह मण्डप युक्त हो। ईशान दिशामें प्रधान कुण्ड बनाया जाता है, जो चौकोर होता है अथवा पाँच कुण्ड एक ओर हों और एक स्थण्डिल हो॥ १९—२४॥

यज्ञोपकरणैः सर्वैः शिवार्चायां हि भूषणैः।
वेदिमध्ये महाशय्यां पञ्चतूलीप्रकल्पिताम्॥ २५

कल्पयेत्काञ्चनोपेतां सितवस्त्रावगुण्ठिताम्।
प्रकल्प्यैवं शिवं चैव स्थापयेत्परमेश्वरम्॥ २६

शिवकी अर्चामें समस्त यज्ञोपकरणों तथा भूषणोंसे युक्त महाशय्या वेदीके मध्य व्यवस्थित करनी चाहिये, जो पासमें रखे हुए पाँच बत्तियोंवाले दीपकसे सुशोभित हो, सुवर्ण-पट्टियोंसे युक्त हो और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित हो—ऐसी व्यवस्था करके परमेश्वर शिवको स्थापित करना चाहिये॥ २५-२६॥

प्राक्शिरस्कं न्यसेल्लिङ्गमीशानेन यथाविधि।
रत्नन्यासे कृते पूर्वं केवलं कलशं न्यसेत्॥ २७

लिङ्गमाच्छाद्य वस्त्राभ्यां कूर्चेन च समन्ततः।
रत्नन्यासे प्रसक्तेऽथ वामाद्या नव शक्तयः॥ २८

नवरत्नं हिरण्याद्यैः पञ्चगव्येन संयुतैः।
सर्वधान्यसमोपेतं शिलायामपि विन्यसेत्॥ २९

लिङ्गके शिरोभागको पूर्वकी ओर ईशान मन्त्रके द्वारा विधिपूर्वक स्थापित करना चाहिये। रत्नन्यास करनेके बाद मुख्य कलशको स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् लिङ्गको दो वस्त्रोंद्वारा कुशसहित चारों ओरसे लपेटकर उसपर रखना चाहिये। रत्नन्यास हो जानेके अनन्तर वाम आदि नौ शक्तियोंको स्थापित करना चाहिये। पंचगव्यसे युक्त हिरण्य (सुवर्ण)-सहित नौ रत्नों, पंचगव्य तथा सब प्रकारके धान्य भी आधारशिलापर रखना चाहिये॥ २७—२९॥

स्थापयेद्ब्रह्मलिङ्गं हि शिवगायत्रिसंयुतम्।
केवलं प्रणवेनापि स्थापयेच्छिवमव्ययम्॥ ३०

भक्तको चाहिये कि शिवगायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्रह्मलिङ्गको स्थापित करे अथवा केवल

ब्रह्मजज्ञानमन्त्रेण ब्रह्मभागं प्रभोस्तथा।
विष्णुगायत्रिया भागं वैष्णवं त्वथ विन्यसेत्॥ ३१

सूत्रे तत्त्वत्रयोपेते प्रणवेन प्रविन्यसेत्।
सर्वं नमः शिवायेति नमो हंसः शिवाय च॥ ३२

रुद्राध्यायेन वा सर्वं परिमृज्य च विन्यसेत्।
स्थापयेद्ब्रह्मभिश्चैव कलशान् वै समन्ततः॥ ३३

वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान् पूर्वोक्तविधिसंयुतान्।
मध्यकुम्भे शिवं देवीं दक्षिणे परमेश्वरीम्॥ ३४

स्कन्दं तयोश्च मध्ये तु स्कन्दकुम्भे सुचित्रिते।
ब्रह्माणं स्कन्दकुम्भे वा ईशकुम्भे हरिं तथा॥ ३५

अथवा शिवकुम्भे च ब्रह्माङ्गानि च विन्यसेत्।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः॥ ३६

ब्रह्माण्येवं समासेन हृदयादीनि चाम्बिका।
वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान् पूर्वोक्तविधिसंयुतान्॥ ३७

वर्धन्यां स्थापयेद्देवीं गन्धतोयेन पूर्य च।
हिरण्यं रजतं रत्नं शिवकुम्भे प्रविन्यसेत्॥ ३८

वर्धन्यामपि यत्नेन गायत्र्यङ्गैश्च सुव्रताः।
विद्येश्वरान् दिशां कुम्भे ब्रह्मकूर्चेन पूरिते॥ ३९

अनन्तेशादिदेवांश्च प्रणवादिनमोऽन्तकम्।
नववस्त्रं प्रतिघटमष्टकुम्भेषु दापयेत्॥ ४०

विद्येश्वराणां कुम्भेषु हेमरत्नादि विन्यसेत्।
वक्त्रक्रमेण होतव्यं गायत्र्यङ्गक्रमेण च॥ ४१

जयादिस्विष्टपर्यन्तं सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
सेचयेच्छिवकुम्भेन वर्धन्या वैष्णवेन च॥ ४२

पैतामहेन कुम्भेन ब्रह्मभागं विशेषतः।
विद्येश्वराणां कुम्भैश्च सेचयेत्परमेश्वरम्॥ ४३

प्रणवके द्वारा भी अव्यय शिवको स्थापित करे। प्रभुकी वेदिकाके अधोभागको **ब्रह्म जज्ञानं०** (यजु० १३। ३)मन्त्रके द्वारा तथा मध्य भागको विष्णुगायत्रीमन्त्रके द्वारा विन्यास करे। वेदिकाके ऊर्ध्व-पूर्व-पश्चिम भागका विन्यास प्रणवमन्त्रके द्वारा करे। **नमः शिवाय** तथा **नमो हंसः शिवाय** अथवा रुद्राध्यायमन्त्रके द्वारा शिवलिङ्गको शोधित करके स्थापित करे। कलशोंको चारों ओर पंचब्रह्म-मन्त्रोंसे स्थापित करना चाहिये॥ ३०—३३॥

[अब प्रतिमाके स्थापनकी विधि कही जा रही है—] पूर्वोक्त विधिसे वेदीके मध्यमें उन सबको स्थापित करना चाहिये। मध्य कुम्भपर शिवको और दक्षिण कुम्भपर परमेश्वरी देवी शिवाको रखना चाहिये। उन दोनोंके बीचमें अतिसुन्दर स्कन्दकुम्भपर स्कन्द (कार्तिकेय)-को रखे अथवा ब्रह्माको स्कन्दकुम्भपर रखे अथवा विष्णुको ईशकुम्भपर रखे अथवा ब्रह्मांगको शिवकुम्भपर रखे; शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु और पितामह—ये ही ब्रह्मांग हैं, हृदय आदि तथा अम्बिका—इन सबको वेदीके मध्यमें पूर्वोक्त रीतिसे स्थापित करे॥ ३४—३७॥

सुगन्धित जलसे वर्धनीकुम्भको भरकर उसमें देवीको स्थापित करे। शिवकुम्भमें स्वर्ण, चाँदी और रत्न डालने चाहिये। हे सुव्रतो! वर्धनीकुम्भमें भी यत्नपूर्वक गायत्री और अंगमन्त्रोंद्वारा विद्येश्वरों तथा अष्ट दिक्पालोंको स्थापित करना चाहिये। अनन्त, ईश आदि अन्य देवताओंके नामके आदिमें प्रणव (ॐ) तथा अन्तमें नमः लगाकर ब्रह्मकूर्चसे पूरित दिशा-कुम्भमें स्थापित करे। आठ कुम्भोंमेंसे प्रत्येक कुम्भको नवीन वस्त्रसे ढक दे। विद्येश्वरोंके कुम्भोंमें सुवर्ण, रत्न आदि डाल दे। गायत्रीके अंगन्यास मन्त्रोंद्वारा ईशान आदिके मुख क्रमसे जया आदिसे लेकर स्विष्टपर्यन्त हवन आदि सभी कर्म पूर्वकी भाँति करना चाहिये। शिवकुम्भसे, वर्धनीकुम्भसे, विष्णुकुम्भसे, पितामह-कुम्भसे तथा विद्येश्वरोंके कुम्भोंसे परमेश्वर शिवका अभिषेक करना चाहिये; ब्रह्मकुम्भसे विशेषकर ब्रह्मभागका अभिषेक करना चाहिये॥ ३८—४३॥

विन्यसेत्सर्वमन्त्राणि पूर्ववत्सुसमाहितः।
पूजयेत्स्नपनं कृत्वा सहस्त्रादिषु सम्भवैः॥ ४४

दक्षिणा च प्रदातव्या सहस्त्रपणमुत्तमम्।
इतरेषां तदर्धं स्यात्तदर्धं वा विधीयते॥ ४५

वस्त्राणि च प्रधानस्य क्षेत्रभूषणगोधनम्।
उत्सवश्च प्रकर्तव्यो होमयागबलिः क्रमात्॥ ४६

नवाहं वापि सप्ताहमेकाहं च त्र्यहं तथा।
होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो नित्यमभ्यर्च्य शङ्करम्॥ ४७

देवानां भास्करादीनां होमं पूर्ववदेव तु।
अभ्यन्तरे तथा बाह्ये वह्नौ नित्यं समर्चयेत्॥ ४८

य एवं स्थापयेल्लिङ्गं स एव परमेश्वरः।
तेन देवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा॥ ४९
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ५०

स्वस्थचित्त होकर ईशान आदि मन्त्रोंका पूर्वकी भाँति क्रमसे विन्यास करना चाहिये और हजार कुम्भोंसे स्नान कराकर पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आचार्यको एक हजार पणोंकी उत्तम दक्षिणा देनी चाहिये; अन्य लोगोंको उसकी आधी अथवा उसकी भी आधी दक्षिणा देनेका विधान है। शिवका प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रधान ऋत्विज्को वस्त्र, भूमि, आभूषण, धेनु आदि देना चाहिये। इसमें महान् उत्सव करना चाहिये और होम, याग तथा बलि क्रमसे नौ दिन अथवा सात दिन अथवा तीन दिन अथवा एक दिन करना चाहिये। प्रतिदिन शिवका पूजन करके पूर्वकी भाँति होम करना बताया गया है। सूर्य आदि देवताओंके निमित्त होम पूर्ववत् करना चाहिये। आभ्यन्तर अग्नि (हृदयाग्नि) तथा बाह्य अग्निमें नित्य शिवका हवन करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार लिङ्गस्थापन करता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है। ऐसा करके उसने मानो सभी देवताओं, रुद्रों, ऋषियों तथा अप्सराओंकी स्थापना तथा पूजा कर ली और चराचरसहित तीनों लोकोंका पूजन कर लिया॥ ४४—५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लिङ्गस्थापनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'लिङ्गस्थापन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

देवताओंकी प्रतिमाओंकी संक्षेपमें प्रतिष्ठा-विधि तथा विविध देवताओंके गायत्रीमन्त्र

सूत उवाच

सर्वेषामपि देवानां प्रतिष्ठामपि विस्तरात्।
स्वैर्मन्त्रैर्यागकुण्डानि विन्यस्यैकैकमेव च॥ १
स्थापयेदुत्सवं कृत्वा पूजयेच्च विधानतः।
भानोः पञ्चाग्निना कार्यं द्वादशाग्निक्रमेण वा॥ २
सर्वकुण्डानि वृत्तानि पद्माकाराणि सुव्रताः।
अम्बाया योनिकुण्डं स्याद्वर्धन्येका विधीयते॥ ३
शक्तीनां सर्वकार्येषु योनिकुण्डं विधीयते।
गायत्रीं कल्पयेच्छम्भोः सर्वेषामपि यत्नतः।

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] अब मैं अन्य देवताओंकी भी प्रतिष्ठाका विस्तारसे वर्णन करता हूँ। देवताओंके अपने-अपने मन्त्रोंसे यागकुण्डका निर्माण करके प्रत्येक देवताकी स्थापना करनी चाहिये और उत्सव मनाकर विधानपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यका स्थापन पंचाग्नि अथवा द्वादश-अग्निक्रमसे करना चाहिये। हे सुव्रतो! सूर्यस्थापनमें सभी कुण्ड गोल तथा पद्मके आकारके बनाने चाहिये॥ १-२$^{1}/_{2}$॥

भगवतीके स्थापनमें योनिकुण्ड होना चाहिये और इसमें एक वर्धनी भी स्थापित करनी चाहिये।

सर्वे रुद्रांशजा यस्मात्सङ्क्षेपेण वदामि वः॥ ४
तत्पुरुषाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि।
तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥ ५
गणाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि।
तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥ ६
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ७
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्॥ ८
महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि।
तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्॥ ९
तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे वेदपादाय धीमहि।
तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥ १०
हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि।
तन्नो नन्दी प्रचोदयात्॥ ११
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥ १२
महाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥ १३
समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनैकेन धीमहि।
तन्नो धरा प्रचोदयात्॥ १४
वैनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि।
तन्नो गरुडः प्रचोदयात्॥ १५
पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि।
तन्नः स्त्रष्टा प्रचोदयात्॥ १६
शिवास्यजायै विद्महे देवरूपायै धीमहि।
तन्नो वाचा प्रचोदयात्॥ १७
देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि।
तन्नः शक्रः प्रचोदयात्॥ १८
रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि।
तन्नो वह्निः प्रचोदयात्॥ १९

देवियोंके सभी कार्योंमें योनिकुण्ड ही बनाया जाता है। शम्भुकी तथा सभी देवताओंकी गायत्रीको यत्नपूर्वक कल्पित करना चाहिये। सभी देवता रुद्रके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं। अतः सभी देवताओंकी भिन्न-भिन्न गायत्री हैं; मैं उन्हें संक्षेपमें आप लोगोंको बताता हूँ—

तत्पुरुषाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥

गणाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्॥

महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्॥

तीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे वेदपादाय धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥

हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि। तन्नो नन्दी प्रचोदयात्॥

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥

महाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥

समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनैकेन धीमहि। तन्नो धरा प्रचोदयात्॥

वैनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि। तन्नो गरुडः प्रचोदयात्॥

पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि। तन्नः स्त्रष्टा प्रचोदयात्॥

शिवास्यजायै विद्महे देवरूपायै धीमहि। तन्नो वाचा प्रचोदयात्॥

देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि। तन्नः शक्रः प्रचोदयात्॥

रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि। तन्नो वह्निः प्रचोदयात्॥

वैवस्वताय विद्महे दण्डहस्ताय धीमहि।
तन्नो यमः प्रचोदयात्॥ २०
निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि।
तन्नो निर्ऋतिः प्रचोदयात्॥ २१
शुद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि।
तन्नो वरुणः प्रचोदयात्॥ २२
सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि।
तन्नो वायुः प्रचोदयात्॥ २३
यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि।
तन्नो यक्षः प्रचोदयात्॥ २४
सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ २५
कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि।
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥ २६
एवं प्रभिद्य गायत्रीं तत्तदेवानुरूपतः।
पूजयेत्स्थापयेत्तेषामासनं प्रणवं स्मृतम्॥ २७
अथवा विष्णुमतुलं सूक्तेन पुरुषेण वा।
विष्णुं चैव महाविष्णुं सदाविष्णुमनुक्रमात्॥ २८
स्थापयेद्देवगायत्र्या परिकल्प्य विधानतः।
वासुदेवः प्रधानस्तु ततः सङ्कर्षणः स्वयम्॥ २९
प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धश्च मूर्तिभेदास्तु वै प्रभोः।
बहूनि विविधानीह तस्य शापोद्भवानि च॥ ३०
सर्वावर्तेषु रूपाणि जगतां च हिताय वै।
मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः॥ ३१
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की तथैव च।
तथान्यानि न देवस्य हरेः शापोद्भवानि च॥ ३२
तेषामपि च गायत्रीं कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत्।
गुह्यानि देवदेवस्य हरेर्नारायणस्य च॥ ३३
विज्ञानानि च यन्त्राणि मन्त्रोपनिषदानि च।
पञ्चब्रह्माङ्गजानीह पञ्चभूतमयानि च॥ ३४
नमो नारायणायेति मन्त्रः परमशोभनः।
हरेरष्टाक्षराणीह प्रणवेन समासतः॥ ३५

वैवस्वताय विद्महे दण्डहस्ताय धीमहि। तन्नो यमः प्रचोदयात्॥

निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि। तन्नो निर्ऋतिः प्रचोदयात्॥

शुद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि। तन्नो वरुणः प्रचोदयात्॥

सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि। तन्नो वायुः प्रचोदयात्॥

यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि। तन्नो यक्षः प्रचोदयात्॥

सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥

इस प्रकार उन-उन देवताओंके अनुरूप पृथक्-पृथक् गायत्रीका उच्चारणकर उनका स्थापन तथा पूजन करना चाहिये। प्रणवको उनका आसन कहा गया है। अथवा अतुलनीय विष्णुका स्थापन-पूजन पुरुषसूक्तसे करे। विष्णु, महाविष्णु तथा सदाविष्णुकी कल्पना करके अनुक्रमसे विष्णुगायत्रीके द्वारा विधानपूर्वक उनकी स्थापना करनी चाहिये। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये उन प्रभुकी व्यूहमूर्तियोंके भेद हैं। सत्ययुग आदि युगोंमें लोकोंके कल्याणके लिये शापोंके कारण उनके अनेकविध अवतार हुए हैं। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की तथा और भी उन प्रभुके अन्य अवतार शापके कारण हुए हैं। उनकी भी गायत्रीकी कल्पना करके उनकी स्थापनाकर पूजन करना चाहिये। शिवजी और भगवान् विष्णुके गुप्तरूप, यन्त्र, मन्त्र, उपनिषद्, पृथ्वी आदि पंचभूतमय मूर्तियों और सद्योजात आदि पंचब्रह्मोंका स्थापन करके पूजन करना चाहिये॥ ३—३४॥

प्रणवसहित **नमो नारायणाय** (**ॐ नमो नारायणाय**)—यह विष्णुका अत्यन्त उत्तम अष्टाक्षर

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय प्रधानाय अनिरुद्धाय वै नमः॥ ३६

एवमेकेन मन्त्रेण स्थापयेत्परमेश्वरम्।
बिम्बानि यानि देवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥ ३७

प्रतिष्ठा चैव पूजा च लिङ्गवन्मुनिसत्तमाः।
रत्नविन्याससहितं कौतुकानि हरेरपि॥ ३८

अचले कारयेत्सर्वं चलेऽप्येवं विधानतः।
तन्नेत्रोन्मीलनं कुर्यान्नेत्रमन्त्रेण सुव्रताः॥ ३९

क्षेत्रप्रदक्षिणं चैव आरामस्य पुरस्य च।
जलाधिवासनं चैव पूर्ववत्परिकीर्तितम्॥ ४०

कुण्डमण्डपनिर्माणं शयनं च विधीयते।
हुत्वा नवाग्निभागेन नवकुण्डे यथाविधि॥ ४१

अथवा पञ्चकुण्डेषु प्रधाने केवलेऽथ वा।
प्रतिष्ठा कथिता दिव्या पारम्पर्यक्रमागता॥ ४२

शिलोद्भवानां बिम्बानां चित्राभासस्य वा पुनः।
जलाधिवासनं प्रोक्तं वृषेन्द्रस्य प्रकीर्तितम्॥ ४३

प्रासादस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठा परिकीर्तिता।
प्रासादाङ्गस्य सर्वस्य यथाङ्गानां तनोरिव॥ ४४

वृषाग्निमातृविघ्नेशकुमारानपि यत्नतः।
श्रेष्ठां दुर्गां तथा चण्डीं गायत्र्या वै यथाविधि॥ ४५

प्रागाद्यं स्थापयेच्छम्भोरष्टावरणमुत्तमम्।
लोकपालगणेशाद्यानपि शम्भोः प्रविन्यसेत्॥ ४६

उमा चण्डी च नन्दी च महाकालो महामुनिः।
विघ्नेश्वरो महाभृङ्गी स्कन्दः सौम्यादितः क्रमात्॥ ४७

इन्द्रादीन् स्वेषु स्थानेषु ब्रह्माणं च जनार्दनम्।
स्थापयेच्चैव यत्नेन क्षेत्रेशं वेशगोचरे॥ ४८

मन्त्र है। '**ॐ नमो वासुदेवाय, ॐ नमः सङ्कर्षणाय, ॐ नमः प्रद्युम्नाय, ॐ नमः प्रधानाय, ॐ नमः अनिरुद्धाय**'—इस प्रकार उन-उन मन्त्रोंमेंसे एकके द्वारा परमेश्वर विष्णुका स्थापन करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनिगण! परमेष्ठी शिवके जो रूप पूर्वमें बताये जा चुके हैं, उनकी भी प्रतिष्ठा तथा पूजा लिङ्गकी ही भाँति करनी चाहिये। विष्णुकी भी प्रतिष्ठामें [शिवप्रतिष्ठाकी भाँति] रत्नविन्याससहित मंगलोत्सव करना चाहिये। अचल प्रतिष्ठामें जो किया जाता है, वह सब चलमूर्तिकी भी प्रतिष्ठामें विधानपूर्वक करना चाहिये। हे सुव्रतो! उन सावयव मूर्तियोंका नेत्रोन्मीलन नेत्रमन्त्रसे करे। उद्यान, नगर तथा क्षेत्रकी प्रदक्षिणा तथा जलाधिवासन पूर्वकी भाँति कहा गया है। कुण्ड-मण्डपनिर्माण तथा शयन भी पूर्वकी भाँति किया जाता है। नवाग्निभागसे नौ कुण्डोंमें अथवा पाँच कुण्डोंमें अथवा केवल प्रधान कुण्डमें आहुति देकर हवन करे। मैंने परम्पराक्रमसे प्राप्त यह दिव्य प्रतिष्ठा कही है। पाषाणकी बनायी गयी मूर्तियोंका जलाधिवासन करना चाहिये, किंतु चित्रित प्रतिमाओंका जलाधिवासन नहीं करना चाहिये और वृषेन्द्रकी मूर्तिका अधिवासन अवश्य करना चाहिये। देवालय-प्रतिष्ठामें तथा उसके भागोंकी प्रतिष्ठामें उसी तरहकी प्रतिष्ठा-विधि बतायी गयी है, जैसी शरीरके अंगोंकी॥ ३५—४४॥

वृष, अग्नि, मातृका, विघ्नेश (गणपति), कुमार (कार्तिकेय), श्रेष्ठा, दुर्गा तथा चण्डी—ये आठ शिव-प्रतिष्ठाके आवरण-देवता हैं; इनकी भी अपनी-अपनी गायत्रीसे यथाविधि पूर्व आदिके क्रमसे प्रतिष्ठा करनी चाहिये। शिवके प्रासादके चारों ओर लोकपाल, गणपति आदिकी भी स्थापना करनी चाहिये। उत्तर दिशासे लेकर क्रमसे उमा, चण्डी, नन्दी, महाकाल, महामुनि [लकुलीश], विघ्नेश्वर, महाभृंगी और स्कन्दकी स्थापना करनी चाहिये। इन्द्र आदि लोकपालों, ब्रह्मा तथा जनार्दनकी स्थापना अपनी-अपनी दिशाओंमें और क्षेत्रपालकी स्थापना ईशानकोणमें यत्नपूर्वक करनी

सिंहासने ह्यनन्तादीन् विद्येशामपि च क्रमात्।
स्थापयेत्प्रणवेनैव गुह्याङ्गादीनि पङ्कजे॥ ४९

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तं चलस्थापनमुत्तमम्।
सर्वेषामपि देवानां देवीनां च विशेषतः॥ ५०

चाहिये। अनन्त आदि तथा वागीश्वरीकी स्थापना सिंहासनपर और धर्म आदिकी स्थापना कमलके आसनपर प्रणवके साथ करनी चाहिये। इस प्रकार मैंने संक्षेपमें समस्त देवताओं तथा विशेषरूपसे देवियोंकी उत्तम चलप्रतिष्ठाका वर्णन कर दिया॥ ४५—५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे चलमूर्तिस्थापनवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'चलमूर्तिस्थापनवर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

अघोरेश्वररूप भगवान् शिवके निमित्त किये गये जप, हवन एवं पूजनका फल

ऋषय ऊचुः

अघोरेशस्य माहात्म्यं भवता कथितं पुरा।
पूजां प्रतिष्ठां देवस्य भगवन् वक्तुमर्हसि॥ १

सूत उवाच

अघोरेणाङ्गयुक्तेन विधिवच्च विशेषतः।
प्रतिष्ठालिङ्गविधिना नान्यथा मुनिपुङ्गवाः॥ २

तथाग्निपूजां वै कुर्याद्यथा पूजा तथैव च।
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥ ३

तिलैर्होमः प्रकर्तव्यो दधिमध्वाज्यसंयुतैः।
घृतसक्तुमधूनां च सर्वदुःखप्रमार्जनम्॥ ४

व्याधीनां नाशनं चैव तिलहोमस्तु भूतिदः।
सहस्रेण महाभूतिः शतेन व्याधिनाशनम्॥ ५

सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जपेन च न संशयः।
अष्टोत्तरशतेनैव त्रिकाले च यथाविधि॥ ६

अष्टोत्तरसहस्रेण षण्मासाज्जायते ध्रुवम्।
सिद्धयो नैव सन्देहो राज्यमण्डलिनामपि॥ ७

सहस्रेण ज्वरो याति क्षीरेण च जुहोति यम्।
त्रिकालं मासमेकं तु सहस्रं जुहुयात्पयः॥ ८

मासेन सिध्यते तस्य महासौभाग्यमुत्तमम्।
सिद्ध्यते चाब्दहोमेन क्षौद्राज्यदधिसंयुतम्॥ ९

ऋषिगण बोले—[हे भगवन्!] आपने पहले अघोरेशके माहात्म्यका वर्णन किया है; अब उनकी पूजा तथा प्रतिष्ठाका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! अंगयुक्त अघोरमन्त्रसे शिवलिङ्ग-प्रतिष्ठाकी विधिसे सम्यक् प्रकारसे अघोरेशकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये; अन्य प्रकारसे नहीं। जैसे लिङ्गपूजा होती है, वैसे ही अग्निपूजा भी करनी चाहिये। दधि, मधु तथा घृतसे युक्त तिलोंसे एक हजार अथवा पाँच सौ अथवा एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। घृत, सत्तू तथा मधुका हवन सभी दुःखोंको दूर करनेवाला तथा व्याधियोंका नाश करनेवाला है। तिलका होम ऐश्वर्य-प्रदायक है। तिलके एक हजार हवनसे महान् ऐश्वर्य और एक सौ हवनसे व्याधिनाश होता है। त्रिकाल विधिपूर्वक अघोर-मन्त्रके एक सौ आठ जपसे मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। इसके एक हजार आठ जपसे छः माहके भीतर ही सभी सामन्त राजाओंको भी निश्चित रूपसे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ २—७॥

जिस व्यक्तिके निमित्त दुग्धसे हजार बार आहुति दी जाती है, उसका ज्वर समाप्त हो जाता है। यदि कोई मनुष्य एक माहतक तीनों कालोंमें दुग्धकी हजार आहुति प्रदान करे, तो महीनेभरमें उसे अत्युत्तम

यवक्षीराज्यहोमेन जातितण्डुलकेन वा।
प्रीयेत भगवानीशो ह्यघोरः परमेश्वरः॥ १०

सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और मधु, घृत तथा दधिके मिश्रणका नित्य वर्षपर्यन्त हवन करनेसे मनुष्य सिद्ध हो जाता है। जौ, दुग्ध, घृत और जातिपुष्पके समान श्वेत चावलके होमसे भगवान् अघोर परमेश्वर शिव प्रसन्न होते हैं॥ ८—१०॥

दध्ना पुष्टिर्नृपाणां च क्षीरहोमेन शान्तिकम्।
षण्मासं तु घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम्॥ ११

राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेण तु।
यवहोमेन चायुष्यं घृतेन च जयस्तदा॥ १२

सर्वकुष्ठक्षयार्थं च मधुनाक्तैश्च तण्डुलैः।
जुहुयादयुतं नित्यं षण्मासान्नियतः सदा॥ १३

आज्यं क्षीरं मधुश्चैव मधुरत्रयमुच्यते।
समस्तं तुष्यते तस्य नाशयेद्वै भगन्दरम्॥ १४

केवलं घृतहोमेन सर्वरोगक्षयः स्मृतः।
सर्वव्याधिहरं ध्यानं स्थापनं विधिनार्चनम्॥ १५

एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तमघोरस्य महात्मनः।
प्रतिष्ठा यजनं सर्वं नन्दिना कथितं पुरा॥ १६

ब्रह्मपुत्राय शिष्याय तेन व्यासाय सुव्रताः॥ १७

छः मासतक नित्य दधिके हवनसे राजाओंको पुष्टि प्राप्त होती है, दुग्धके हवनसे शान्ति होती है और घृतके हवनसे उनके सभी रोगोंका नाश होता है। वर्षपर्यन्त तिलोंके हवनसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है, जौके हवनसे आयु प्राप्त होती है और घृतके हवनसे विजय मिलती है। सभी प्रकारके कुष्ठोंके नाशके लिये नियमसे युक्त रहकर छः मासतक प्रतिदिन मधुमिश्रित चावलोंसे दस हजार आहुति प्रदान करनी चाहिये। घृत, दुग्ध और मधुको मधुरत्रय कहा जाता है। इसके हवनसे उस व्यक्तिका भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है और सभी लोग उस व्यक्तिसे सन्तुष्ट रहते हैं। केवल घृतके होमसे सभी रोगोंका नष्ट होना बताया गया है। भगवान् अघोरका ध्यान, स्थापन तथा विधिपूर्वक पूजन समस्त कष्टोंको दूर करनेवाला है। हे सुव्रतो! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें परमात्मा अघोरके स्थापन तथा पूजनके विषयमें सब कुछ बता दिया, जिसे पूर्वकालमें नन्दीने ब्रह्मपुत्र शिष्य सनत्कुमारसे कहा था और फिर उन्होंने व्यासजीको बताया था॥ ११—१७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागेऽघोरेशप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अघोरेशप्रतिष्ठाविधानवर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

विभिन्न कामनाओंके लिये अघोरमन्त्रसिद्धिका विधान

ऋषय ऊचुः

निग्रहः कथितस्तेन शिववक्त्रेण शूलिना।
कृतापराधिनां तं तु वक्तुमर्हसि सुव्रत॥ १

त्वया न विदितं नास्ति लौकिकं वैदिकं तथा।
श्रौतं स्मार्तं महाभाग रोमहर्षण सुव्रत॥ २

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! कल्याणरूप मुखवाले भगवान् शिवने अपने अपराध करनेवालोंके लिये जिस दण्डविधानका वर्णन किया है; उसे आप हमें बतानेकी कृपा करें। हे महाभाग! हे रोमहर्षण! हे सुव्रत! लौकिक, वैदिक, श्रौत तथा स्मार्त—कोई भी बात आपको अविदित नहीं है॥ १-२॥

सूत उवाच

पुरा भृगुसुतेनोक्तो हिरण्याक्षाय सुव्रताः।
निग्रहोऽघोरशिष्येण शुक्रेणाक्षयतेजसा॥ ३

तस्य प्रसादाद्दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान्।
त्रैलोक्यमखिलं जित्वा सदेवासुरमानुषम्॥ ४

उत्पाद्य पुत्रं गणपं चान्धकं चारुविक्रमम्।
रराज लोके देवेन वराहेण निषूदितः॥ ५

सूतजी बोले—हे सुव्रतो! पूर्वकालमें अघोरके शिष्य परम तेजस्वी भृगुपुत्र शुक्राचार्यने हिरण्याक्षको इस निग्रह (दण्डविधान)-का उपदेश किया था। उसके प्रभावसे दैत्यराज हिरण्याक्ष प्रतापी हो गया और देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको जीतकर महान् पराक्रमी तथा गणाधिपति अन्धक नामक पुत्रको उत्पन्न करके संसारमें राज्य करने लगा। बादमें वाराहरूपधारी भगवान् विष्णुने उसका वध कर दिया॥ ३—५॥

स्त्रीबाधां बालबाधां च गवामपि विशेषतः।
कुर्वतो नास्ति विजयो मार्गेणानेन भूतले॥ ६

तेन दैत्येन सा देवी धरा नीता रसातलम्।
तेनाघोरेण देवेन निष्फलो निग्रहः कृतः॥ ७

संवत्सरसहस्रान्ते वराहेण च सूदितः।
तस्मादघोरसिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्नैव बाधयेत्॥ ८

स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपि न कारयेत्।

पृथ्वीलोकमें इस [अनीतिपूर्ण] मार्गसे स्त्री, बालक तथा विशेषकर गौओंको पीड़ा पहुँचानेवालेकी विजय नहीं होती। वह दैत्य देवी पृथ्वीको रसातलमें उठा ले गया था। इस कारण देव अघोरने उसके [पृथ्वी-हरणस्वरूप] निग्रहको निष्फल कर दिया। एक हजार वर्षके पश्चात् भगवान् वाराहके द्वारा वह मारा गया। अतः अघोरसिद्धिके लिये ब्राह्मणों तथा विशेषकर स्त्रियोंको पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिये; गौओंको तो कभी नहीं पीड़ित करना चाहिये॥ ६—८१/२॥

गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यमतिगुह्यं वदामि वः॥ ९

आततायिनमुद्दिश्य कर्तव्यं नृपसत्तमैः।
ब्राह्मणेभ्यो न कर्तव्यं स्वराष्ट्रेशस्य वा पुनः॥ १०

अतीव दुर्जये प्राप्ते बले सर्वे निषूदिते।
अधर्मयुद्धे सम्प्राप्ते कुर्याद्विधिमनुत्तमम्॥ ११

अघृणेनैव कर्तव्यो ह्यघृणेनैव कारयेत्।
कृतमात्रे न सन्देहो निग्रहः सम्प्रजायते॥ १२

[हे मुनियो!] गोपनीयसे भी परम गोपनीय रहस्य मैं आप लोगोंको बता रहा हूँ। श्रेष्ठ राजाओंको चाहिये कि अपनेको मारनेके लिये उद्यत आततायीके लिये यह निग्रह-विधान करे। ब्राह्मणोंके लिये तथा अपने राष्ट्रके स्वामीके लिये इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। महान् पराजयकी स्थिति आ जानेपर, सम्पूर्ण सेनाके नष्ट हो जानेपर अथवा [शत्रुद्वारा] अधर्म युद्ध किये जानेपर इस अत्युत्तम विधानको करना चाहिये। इस निग्रह-विधिको क्रूर व्यक्ति ही करे अथवा इसे किसी क्रूर स्वभाववाले ब्राह्मणसे कराये। इसके कर लिये जानेपर निग्रह हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ९—१२॥

लक्षमात्रं पुमाञ्जप्त्वा अघोरं घोररूपिणम्।
दशांशं विधिना हुत्वा तिलेन द्विजसत्तमाः॥ १३

सम्पूज्य लक्षपुष्पेण सितेन विधिपूर्वकम्।
बाणलिङ्गेऽथवा वह्नौ दक्षिणामूर्तिमाश्रितः॥ १४

सिद्धमन्त्रोऽन्यथा नास्ति द्रष्टा सिद्ध्यादयः पुनः।
सिद्धमन्त्रः स्वयं कुर्यात्प्रेतस्थाने विशेषतः॥ १५

हे श्रेष्ठ द्विजो! भयंकर रूपवाले अघोर मन्त्रका एक लाख जप करके और विधिपूर्वक तिलके द्वारा उसके दशांश (दस हजार)-से हवन करके और पुनः बाणलिङ्ग, अग्नि अथवा दक्षिणामूर्ति प्रतिमापर एक लाख श्वेत पुष्पोंके अर्पणद्वारा विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सिद्धमन्त्र हो जाता है; अन्यथा उसका मन्त्र सिद्ध

मातृस्थानेऽपि वा विद्वान् वेदवेदाङ्गपारगः।
केवलं मन्त्रसिद्धो वा ब्राह्मणः शिवभावितः॥ १६

कुर्याद्विधिमिमं धीमानात्मनोऽर्थं नृपस्य वा।
शूलाष्टकं न्यसेद्विद्वान् पूर्वादीशानकान्तकम्॥ १७

त्रिशिखं च त्रिशूलं च चतुर्विंशच्छिखाग्रतः।
अघोरविग्रहं कृत्वा सङ्कुलीकृतविग्रहः॥ १८

सर्वनाशकरं ध्यात्वा सर्वकर्माणि कारयेत्।
कालाग्निकोटिसङ्काशं स्वदेहमपि भावयेत्॥ १९

शूलं कपालं पाशं च दण्डं चैव शरासनम्।
बाणं डमरुकं खड्गमष्टायुधमनुक्रमात्॥ २०

अष्टहस्तश्च वरदो नीलकण्ठो दिगम्बरः।
पञ्चतत्त्वसमारूढो ह्यर्धचन्द्रधरः प्रभुः॥ २१

दंष्ट्राकरालवदनो रौद्रदृष्टिर्भयङ्करः।
हुंफट्कारमहाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखः॥ २२

त्रिनेत्रं नागपाशेन सुबद्धमुकुटं स्वयम्।
सर्वाभरणसम्पन्नं प्रेतभस्मावगुण्ठितम्॥ २३

भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च डाकिनीभिश्च राक्षसैः।
संवृतं गजकृत्त्या च सर्पभूषणभूषितम्॥ २४

वृश्चिकाभरणं देवं नीलनीरदनिस्वनम्।
नीलाञ्जनाद्रिसङ्काशं सिंहचर्मोत्तरीयकम्॥ २५

ध्यायेदेवमघोरेशं घोरघोरतरं शिवम्।
षट्त्रिंशदुक्तमात्राभिः प्राणायामेन सुव्रताः॥ २६

महामुद्रासमायुक्तः सर्वकर्माणि कारयेत्।
सिद्धमन्त्रश्चिताग्नौ वा प्रेतस्थाने यथाविधि॥ २७

नहीं होता। वेद-वेदांगमें पारंगत विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि सिद्धमन्त्र होनेके लिये इसे प्रेतस्थान अथवा मातृस्थानमें स्वयं करे; अथवा मन्त्रसिद्ध शिवभक्त बुद्धिमान् ब्राह्मण अपने अथवा राजाके उपकारके लिये इस विधिको सम्पन्न करे॥ १३—१६१/२॥

[अब निग्रहविधान बताया जाता है] विद्वान् व्यक्ति पूर्वसे आरम्भ करके ईशान [उत्तर-पूर्व] कोणपर समाप्त होनेवाले आठों दिशाओंमें आठ शूल स्थापित करे। त्रिशूलोंके चौबीस किनारोंके सिरोंपर तीन शिखावाले त्रिशूल बनाये। ऐसा त्रिशूलधारी अघोर-विग्रह बनाकर स्वयं संकुचित विग्रहवाला होकर सबका नाश करनेवाले अघोरेश्वरका ध्यान करनेके पश्चात् सभी कार्य करे। साधकको भी चाहिये कि अपने शरीरको करोड़ कालाग्निके समान अनुभव करे॥ १७—१९॥

उन्होंने शूल, कपाल, पाश, दण्ड, धनुष, बाण, डमरू तथा खड्ग-क्रमसे ये आठ आयुध धारण कर रखे हैं; वरदायक वे प्रभु आठ भुजाओंसे युक्त हैं; उनका कण्ठ नील वर्णका है, वे दिगम्बर हैं; वे पृथ्वी आदि पंचतत्त्वोंसे समन्वित नन्दिकेश्वरपर आरूढ़ हैं; उन प्रभुने अपने मस्तकपर अर्धचन्द्रमाको धारण कर रखा है; वे विशाल दंष्ट्राओंसे युक्त भयावह मुखवाले हैं; वे भयानक दृष्टिवाले हैं; वे भयंकर हैं; वे हुं-फट् इन महाशब्दोंसे सभी दिशाओंको मुखरित कर रहे हैं; वे तीन नेत्रोंसे सम्पन्न हैं; उन्होंने नागपाशसे अपने मुकुटको भलीभाँति बाँध रखा है; वे सभी प्रकारके आभरणोंसे सम्पन्न हैं; वे चिताभस्म लगाये हुए हैं; वे भूतों, प्रेतों, पिशाचों, डाकिनियों तथा राक्षसोंसे घिरे हुए हैं; वे गजचर्म पहने हुए हैं; सर्प तथा बिच्छूके आभूषणसे अलंकृत हैं; वे जलमय मेघोंके समान गर्जन कर रहे हैं; वे नीलांजनके पर्वतसदृश विग्रहवाले हैं; वे सिंहचर्मका उत्तरीय धारण किये हुए हैं—हे सुव्रतो! पूरक, कुम्भक, रेचक-भेदसे कही गयी छत्तीस मात्राओंके साथ प्राणायामके द्वारा इस प्रकारके अत्यन्त भयंकर रूपवाले अघोरेश्वर भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये। साधकको चाहिये कि महामुद्रासे युक्त होकर समस्त कृत्य सम्पन्न करे॥ २०—२६१/२॥

स्थापयेन्मध्यदेशे तु ऐन्द्रे याम्ये च वारुणे।
कौबेर्यां विधिवत्कृत्वा होमकुण्डानि शास्त्रतः॥ २८
आचार्यो मध्यकुण्डे तु साधकाश्च दिशासु वै।
परिस्तीर्य विलोमेन पूर्ववच्छूलसम्भृतः॥ २९
कालाग्निपीठमध्यस्थः स्वयं शिष्यैश्च तादृशैः।
ध्यात्वा घोरमघोरेशं द्वात्रिंशाक्षरसंयुतम्॥ ३०
विभीतकेन वै कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
पीठे न्यस्य नृपेन्द्रस्य शत्रुमङ्गारकेण तु॥ ३१
कुण्डस्याधः खनेच्छत्रुं ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः।
अधोमुखोर्ध्वपादं तु सर्वकुण्डेषु यत्नतः॥ ३२
श्मशानाङ्गारमानीय तुषेण सह दाहयेत्।
तत्राग्निं स्थापयेत्तूष्णीं ब्रह्मचर्यपरायणः॥ ३३

सिद्धमन्त्र-साधक चिताग्निमें अथवा प्रेतस्थानमें यथाविधि मूर्ति स्थापित करे। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओंमें और मध्यमें पाँच होमकुण्ड विधिवत् शास्त्रानुसार बनाकर अग्नि स्थापित करे। आचार्य मध्यदेशके कुण्डके सामने और अन्य ऋत्विज् चारों दिशाओंके कुण्डोंके सामने बैठें। वह कुशोंको विलोम क्रमसे बिछाकर शूलको पकड़ ले। वह स्वयं कालाग्निपीठके मध्य अपने ही सदृश शिष्योंके साथ बैठे। तत्पश्चात् बत्तीस अक्षरोंवाले अघोरमन्त्रसे अघोरेश्वरका ध्यान करके बहेड़ेकी शाखाके बारह अंगुल मापके टुकड़े करके अपने राजाके शत्रुकी प्रतिकृति बनाकर कुण्डमें अंगारके साथ पीठपर रखकर वह ब्राह्मण क्रोधयुक्त होकर कुण्डके अन्दर ऊपरकी ओर पैर तथा नीचेकी ओर मुख करके उस प्रतिकृतिको सभी कुण्डोंमें यत्नपूर्वक गाड़ दे। तदनन्तर श्मशानसे अग्नि लाकर धानकी भूसीके साथ जला दे। साधक ब्रह्मचर्यपरायण होकर मौन-भावसे वहाँ अग्नि स्थापित करे॥ २७—३३॥

मायूरास्त्रेण नाभ्यां तु ज्वलनं दीपयेत्ततः।
कञ्चुकं तुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिसमन्वितैः॥ ३४
रक्तवस्त्रसमं मिश्रैर्होमद्रव्यैर्विशेषतः।
हस्तयन्त्रोद्भवैस्तैलैः सह होमं तु कारयेत्॥ ३५
अष्टोत्तरसहस्रं तु होमयेदनुपूर्वशः।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां समारभ्य यथाक्रमम्॥ ३६
अष्टम्यन्तं तथाङ्गारमण्डलस्थानवर्जितः।
एवं कृते नृपेन्द्रस्य शत्रवः कुलजैः सह॥ ३७
सर्वदुःखसमोपेताः प्रयान्ति यमसादनम्।

तत्पश्चात् रक्तवस्त्र ओढ़कर साधक कुण्डकी नाभिमें मयूरास्त्रसे, भूसी तथा कपासके बीजोंसे अग्निको प्रज्वलित करे, इसके बाद हाथके यन्त्रसे निकाले गये विविध तेलों तथा रक्तवस्त्रके साथ अन्य हवन-सामग्रियोंको मिश्रित करके शिष्यके साथ होम करे। कृष्णपक्षमें चतुर्दशीसे आरम्भ करके अष्टमीतक क्रमशः एक हजार आठ बार हवन करे; अंगार-मण्डलकी जगहका स्पर्श न करे। इस कर्मके सम्पन्न कर लेनेपर उस राजाके शत्रु अपने परिवारजनोंसहित सभी कष्टोंसे पीड़ित होकर यमलोकको प्राप्त होते हैं॥ ३४—३७१/२॥

मन्त्रेणानेन चादाय नृकपाले नखं तथा। ३८
केशं नृणां तथाङ्गारं तुषं कञ्चुकमेव च।
चीरच्छटां राजधूलीं गृहसम्मार्जनस्य वा॥ ३९
विषसर्पस्य दन्तानि वृषदन्तानि यानि तु।
गवां चैव क्रमेणैव व्याघ्रदन्तनखानि च॥ ४०
तथा कृष्णमृगाणां च बिडालस्य च पूर्ववत्।
नकुलस्य च दन्तानि वराहस्य विशेषतः॥ ४१
दंष्ट्राणि साधयित्वा तु मन्त्रेणानेन सुव्रताः।
जपेदष्टोत्तरशतं मन्त्रं चाघोरमुत्तमम्॥ ४२

हे सुव्रतो! इस अघोर मन्त्रका जप करते हुए नाखून, मनुष्यका बाल, अंगार, भूसी, साँपके केंचुल, वस्त्रसे झाड़ी गयी धूल, राजमार्गकी धूल, गृहसम्मार्जनकी धूल, विषैले साँपके दाँत, बैलोंके दाँत, गायके दाँत, बाघके दाँत और नाखून, काले हिरन-बिल्ली-नेवले तथा विशेषकर सूअरके दाँतको मृत मनुष्यके कपालमें ले करके और इसी मन्त्रसे इन सबको साधकर उत्तम अघोर मन्त्रको एक सौ आठ बार जपना चाहिये॥ ३८—४२॥

तत्कपालं नखं क्षेत्रे गृहे वा नगरेऽपि वा।
प्रेतस्थानेऽपि वा राष्ट्रे मृतवस्त्रेण वेष्टयेत्॥ ४३
शत्रोरष्टमराशौ वा परिविष्टे दिवाकरे।
सोमे वा परिविष्टे तु मन्त्रेणानेन सुव्रताः॥ ४४
स्थाननाशो भवेत्तस्य शत्रोर्नाशश्च जायते।
शत्रुं राज्ञः समालिख्य गमने समवस्थिते॥ ४५
भूतले दर्पणप्रख्ये वितानोपरि शोभिते।
चतुस्तोरणसंयुक्ते दर्भमालासमावृते॥ ४६
वेदाध्ययनसम्पन्ने राष्ट्रे वृद्धिप्रकाशके।
दक्षिणेन तु पादेन मूर्ध्नि सन्ताडयेत्स्वयम्॥ ४७
एवं कृते नृपेन्द्रस्य शत्रुनाशो भविष्यति।
स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य यः कुर्यादाभिचारिकम्॥ ४८
स आत्मानं निहत्यैव स्वकुलं नाशयेत्कुधीः।
तस्मात्स्वराष्ट्रगोप्तारं नृपतिं पालयेत्सदा॥ ४९
मन्त्रौषधिक्रियाद्यैश्च सर्वयत्नेन सर्वदा।
एतद्रहस्यं कथितं न देयं यस्य कस्यचित्॥ ५०

हे सुव्रतो! सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण लगनेपर या शत्रुकी आठवीं राशिमें इनके होनेपर इसी मन्त्रसे नख आदिसे युक्त उस कपालको शववस्त्रके टुकड़ेमें लपेट ले और उसे शत्रुके खेत, घर, श्मशानभूमि, नगर या देशमें गाड़ दे। ऐसा करनेपर वह शत्रु अपने पदसे च्युत हो जायगा और उसका नाश हो जायगा। विजयके लिये गमनकाल उपस्थित होनेपर अपने राजाके शत्रुके चित्रको दर्पण-सदृश भूमिपर, जो वितानसे सुशोभित हो, चार तोरणोंसे युक्त हो, कुशकी मालाओंसे सुशोभित हो और जहाँ राष्ट्रकी समृद्धिका सूचक वैदिक मन्त्रोच्चार हो रहा हो, लिख करके आचार्य अपने दाहिने पैरसे शत्रुके सिरपर प्रहार करे; ऐसा करनेपर अपने राजाके शत्रुका नाश हो जायगा। जो व्यक्ति अपने देशके राजाको उद्देश्य करके यह अभिचार-कर्म करता है, वह दुर्बुद्धि अपनेको नष्ट करके अपने कुलका नाश कर डालता है। अतः आचार्यको सदा मन्त्रों, औषधियों तथा अनुष्ठानोंके द्वारा सभी प्रयत्नोंसे अपने देशकी रक्षा करनेवाले राजाकी निरन्तर रक्षा करनी चाहिये। [हे ऋषियो!] मैंने जो यह रहस्य आपलोगोंसे कहा, इसे जिस किसीको नहीं देना चाहिये॥ ४३—५०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागेऽघोरमन्त्रसाधनशत्रुनाशविधानवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'अघोरमन्त्रसाधनशत्रुनाशविधानवर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

भगवान् शिवकी संहारिका शक्ति—वज्रेश्वरीविद्याके माहात्म्यमें वृत्रासुरकी उत्पत्तिकी कथा

ऋषय ऊचुः

निग्रहोऽघोररूपोऽयं कथितोऽस्माकमुत्तमम्।
वज्रवाहनिकां विद्यां वक्तुमर्हसि सत्तम॥ १

ऋषिगण बोले—हे सत्तम! आपने भयंकररूपवाले इस उत्तम निग्रहके विषयमें हम लोगोंको बता दिया; अब वज्रवाहनिकाविद्याका वर्णन करनेकी कृपा कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

वज्रवाहनिका नाम सर्वशत्रुभयङ्करी।
अनया सेचयेद्वज्रं नृपाणां साधयेत्तथा॥ २
वज्रं कृत्वा विधानेन तद्वज्रमभिषिच्य च।
अनया विद्यया तस्मिन् विन्यसेत्काञ्चनेन च॥ ३
ततश्चाक्षरलक्षं च जपेद्विद्वान् समाहितः।
वज्री दशांशं जुहुयाद्वज्रकुण्डे घृतादिभिः॥ ४

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] वज्रवाहनिका नामक यह विद्या सभी शत्रुओंके लिये भयंकर है। इस विद्यासे वज्रका सेचन करे और उसे राजाओंको समर्पित करे। विधानपूर्वक वज्रका निर्माण करके और इस विद्यासे वज्रको जलद्वारा सिंचित करके उस वज्रपर स्वर्णसे मन्त्र लिखना चाहिये। तत्पश्चात् विद्वान्को

तद्वज्रं गोपयेन्नित्यं दापयेन्नृपतेस्ततः।
तेन वज्रेण वै गच्छञ्छत्रूञ्जीयाद्रणाजिरे॥ ५

पुरा पितामहेनैव लब्धा विद्या प्रयत्नतः।
देवी शक्रोपकारार्थं साक्षाद्वज्रेश्वरी तथा॥ ६

पुरा त्वष्टा प्रजानाथो हतपुत्रः सुरेश्वरात्।
विद्यया हरतः सोममिन्द्रवैरेण सुव्रताः॥ ७

तस्मिन् यज्ञे यथाप्राप्तं विधिनोपकृतं हविः।
तदैच्छत महाबाहुर्विश्वरूपविमर्दनः॥ ८

मत्पुत्रमवधीः शक्र न दास्ये तव शोभनम्।
भागं भागार्हता नैव विश्वरूपो हतस्त्वया॥ ९

इत्युक्त्वा चाश्रमं सर्वं मोहयामास मायया।
ततो मायां विनिर्भिद्य विश्वरूपविमर्दनः॥ १०

प्रसह्य सोममपिबत्सगणैश्च शचीपतिः।
ततस्तच्छेषमादाय क्रोधाविष्टः प्रजापतिः॥ ११

इन्द्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहेत्यग्नौ जुहाव ह।
ततः कालाग्निसङ्काशो वर्तनाद्वृत्रसंज्ञितः॥ १२

प्रादुरासीत्सुरेशारिर्दुद्राव च वृषान्तकः।
ततः किरीटी भगवान् परित्यज्य दिवं क्षणात्॥ १३

सहस्रनेत्रः सगणो दुद्राव भयविह्वलः।
तदा तमाह स विभुर्हृष्टो ब्रह्मा च विश्वसृट्॥ १४

त्यक्त्वा वज्रं तमेतेन जहीत्यरिमरिन्दमः।
सोऽपि सन्नह्य देवेन्द्रो देवैः सार्धं महाभुजः॥ १५

निहत्य चाप्रयत्नेन गतवान् विगतज्वरः।
तस्माद्वज्रेश्वरीविद्या सर्वशत्रुभयङ्करी॥ १६

चाहिये कि दत्तचित्त होकर अक्षरोंकी संख्याके बराबर लाख संख्यामें जप करे। वज्रीको उस जपका दशांश घृत आदिसे वज्राकार कुण्डमें हवन करना चाहिये। उस वज्रकी नित्य रक्षा करनी चाहिये और बादमें उसे राजाको प्रदान कर देना चाहिये। उस वज्रसहित रणभूमिमें जानेवाला वह राजा शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है॥ २—५॥

पूर्वकालमें पितामह ब्रह्माने इन्द्रपर उपकार करनेके लिये भगवान् महेश्वरसे इस साक्षात् देवी वज्रेश्वरीविद्याको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त किया था। हे सुव्रतो! विश्वरूपसे प्राप्त विद्याके बलपर विश्वरूपविमर्दक महाबाहु इन्द्र उस यज्ञमें विधिपूर्वक दी हुई हवि (सोमरस)-को जब चाहने लगे, तब हतपुत्र प्रजापति त्वष्टाने इन्द्रसे कहा—'हे शक्र! तुमने मेरे पुत्रका वध किया है, अतः मैं तुम्हारा श्रेष्ठ भाग तुम्हें नहीं दूँगा। तुम अपना भाग प्राप्त करनेयोग्य नहीं हो; क्योंकि तुम्हारे द्वारा विश्वरूपका वध किया गया है'—ऐसा कहकर त्वष्टाने अपनी मायासे सम्पूर्ण आश्रमको मोहित कर दिया। तब विश्व-रूपका वध करनेवाले शचीपति इन्द्रने उस मायाका भेदन करके बलपूर्वक अपने गणोंके साथ सोमका पान कर लिया। तत्पश्चात् अवशिष्ट सोमको लेकर क्रोधाविष्ट प्रजापति त्वष्टाने **'इन्द्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहा'**—ऐसा कहकर अग्निमें उसे होम कर दिया। उसी क्षण हवनकुण्डसे कालाग्निसदृश असुर प्रकट हुआ, जो अपने व्यवहारके कारण वृत्र संज्ञावाला हुआ। उस इन्द्रशत्रुने उन्हें दौड़ा लिया। तब किरीटधारी तथा हजार नेत्रोंवाले भगवान् इन्द्र स्वर्ग छोड़कर भयसे व्याकुल हो अपने गणोंसहित भाग चले [और वे ब्रह्माके पास गये]॥ ६—१३ $^{१}/_{२}$॥

तब विश्वका सृजन करनेवाले प्रभु ब्रह्माने उनसे कहा—हे शत्रुसंहारक! वज्र त्यागकर आप इस मन्त्र (वज्रेश्वरीविद्या)-के द्वारा उस शत्रुका वध कीजिये। तब शत्रुनाशक वे महाभुज देवेन्द्र भी सावधान होकर देवताओंके साथ बिना प्रयत्न ही उसे मारकर चिन्तामुक्त

मन्देहा राक्षसा नित्यं विजिता विद्ययैव तु।
तां विद्यां सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रमोचनीम्॥ १७

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ फट् जहि हुं फट्
छिन्धि भिन्धि जहि हन हन स्वाहा।
विद्या वज्रेश्वरीत्येषा सर्वशत्रुभयङ्करी।
अनया संहृतिः शम्भोर्विद्यया पुनिपुङ्गवाः॥ १८॥

होकर वहाँसे चले गये॥ १४-१५ १/२ ॥

अतः वज्रेश्वरीविद्या सब प्रकारके शत्रुओंके लिये भयंकर है। मन्देह नामक राक्षस इसी विद्याके द्वारा सदा पराजित हुए। सभी पापोंका नाश करनेवाली उस विद्याको मैं बता रहा हूँ—'**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ फट् जहि हुं फट् छिन्धि भिन्धि जहि हन हन स्वाहा**'—यह वज्रेश्वरीविद्या है, जो सब प्रकारके शत्रुओंके लिये भयंकर है। हे मुनिश्रेष्ठो! इसी विद्याके द्वारा शिवजी [विश्वका] संहार करते हैं॥ १६—१८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे वज्रेश्वरीविद्यावर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'वज्रेश्वरीविद्यावर्णन' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय

वज्रेश्वरीविद्याकी सिद्धिका विधान

ऋषय ऊचुः

श्रुता वज्रेश्वरी विद्या ब्राह्मी शक्रोपकारिणी।
अनया सर्वकार्याणि नृपाणामिति नः श्रुतम्॥ १
विनियोगं वदस्वास्या विद्याया रोमहर्षण।

सूत उवाच

वश्यमाकर्षणं चैव विद्वेषणमतः परम्॥ २
उच्चाटनं स्तम्भनं च मोहनं ताडनं तथा।
उत्सादनं तथा छेदं मारणं प्रतिबन्धनम्॥ ३
सेनास्तम्भनकादीनि सावित्र्या सर्वमाचरेत्।
आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि॥ ४
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्।
उद्वास्यानेन मन्त्रेण गन्तव्यं नान्यथा द्विजाः॥ ५
प्रतिकार्यं तथा बाह्यं कृत्वा वश्यादिकां क्रियाम्।
उद्वास्य वह्निमाधाय पुनरन्यं यथाविधि॥ ६
देवीमावाह्य च पुनर्जपेत्सम्पूजयेत्पुनः।
होमं च विधिना वह्नौ पुनरेव समाचरेत्॥ ७

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हमलोगोंने इन्द्रका उपकार करनेवाली ब्रह्माकी वज्रेश्वरीविद्याका श्रवण किया। इसके द्वारा राजाओंके सब कार्य सिद्ध होते हैं—ऐसा हमने सुना है; अब आप इस विद्याके विनियोगका वर्णन करें॥ १ १/२ ॥

सूतजी बोले—सावित्रीमन्त्रके द्वारा वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन, ताड़न, उत्सादन, छेदन, मारण, प्रतिबन्धन, सेनास्तम्भन आदि क्रियाएँ तथा अन्य सब कुछ करना चाहिये [आवाहन-मन्त्र इस प्रकार है—] '**आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि।**' [विसर्जन-मन्त्र इस प्रकार है—] '**ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्।**' हे द्विजो! शत्रुके प्रति समस्त बाह्य तथा वश्य आदि क्रियाएँ करके इस मन्त्रसे उद्वासन (विसर्जन) करके ही बाहर जाना चाहिये; इसके विपरीत नहीं करना चाहिये। देवीका विसर्जन करनेके अनन्तर पुनः विधिपूर्वक दूसरी अग्निकी स्थापना करके देवीका आवाहनकर फिरसे जप तथा पूजन करना चाहिये।

सर्वकार्याणि विधिना साधयेद्विद्यया पुनः।
जातीपुष्पैश्च वश्यार्थी जुहुयादयुतत्रयम्॥ ८

घृतेन करवीरेण कुर्यादाकर्षणं द्विजाः।
विद्वेषणं विशेषेण कुर्याल्लाङ्गलकस्य च॥ ९

तैलेनोच्चाटनं प्रोक्तं स्तम्भनं मधुना स्मृतम्।
तिलेन मोहनं प्रोक्तं ताडनं रुधिरेण च॥ १०

खरस्य च गजस्याथ उष्ट्रस्य च यथाक्रमम्।
स्तम्भनं सर्षपेणापि पाटनं च कुशेन च॥ ११

मारणोच्चाटने चैव रोहीबीजेन सुव्रताः।
बन्धनं त्वहिपत्रेण सेनास्तम्भमतः परम्॥ १२

कुनट्या नियतं विद्यात्पूजयेत्परमेश्वरीम्।
घृतेन सर्वसिद्धिः स्यात्पयसा वा विशुद्ध्यते॥ १३

तिलेन रोगनाशश्च कमलेन धनं भवेत्।
कान्तिर्मधूकपुष्पेण सावित्र्या ह्ययुतत्रयम्॥ १४

जयादिप्रभृतीन् सर्वान् स्विष्टान्तं पूर्ववत्स्मृतम्।
एवं सङ्क्षेपतः प्रोक्तो विनियोगोऽतिविस्तृतः॥ १५

जपेद्वा केवलां विद्यां सम्पूज्य च विधानतः।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ १६

इसके बाद अग्निमें विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। इस प्रकार इस विद्याके द्वारा सभी कार्य सिद्ध करना चाहिये॥ २—७१/२॥

शत्रुको वशमें करनेकी इच्छावालेको जाती पुष्पोंसे तीस हजार आहुति देनी चाहिये। हे द्विजो! घृत तथा करवीर (कनेर)-के पुष्पके हवनसे आकर्षण-कृत्य करना चाहिये और विद्वेषणकर्मके लिये लांगलक पुष्पका हवन करना चाहिये। तैलके हवनसे उच्चाटन तथा मधुके हवनसे स्तम्भन बताया गया है। इसी प्रकार तिलके हवनसे मोहन तथा पशु-शोणितके हवनसे ताड़न बताया गया है। हे सुव्रतो! सरसोंके द्वारा हवनसे स्तम्भन, कुशके द्वारा हवनसे पाटन, रोहीके बीजके द्वारा हवनसे मारण-उच्चाटन, अहिपत्र (नागवल्लीपत्र)-के द्वारा बन्धन और कुनटी (मनःशिला)-के द्वारा हवनसे सेनास्तम्भन कृत्यकी सिद्धि जाननी चाहिये। इस प्रकार नियमपूर्वक परमेश्वरीका पूजन करना चाहिये। [अब सात्त्विक कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले हवन-द्रव्योंको बताया जाता है—] घृतके हवनसे सब प्रकारकी सिद्धि होती है और दुग्धके हवनसे साधक शुद्ध हो जाता है। तिलके होमसे रोगका नाश हो जाता है, कमलपुष्पके हवनसे धन प्राप्त होता है और महुएके पुष्पके हवनसे कान्ति प्राप्त होती है। प्रत्येक हवनमें तीस हजार सावित्री-मन्त्रका उच्चारण होना चाहिये। जया, अभ्यातान तथा राष्ट्रभृत् होम करके अन्तमें स्विष्टकृत् होम पूर्ववत् कहा गया है। [हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपमें अत्यन्त विस्तारवाले इस विनियोगका वर्णन कर दिया। अथवा [हवन न होनेकी स्थितिमें] केवल विधिपूर्वक वज्रेश्वरीविद्याका पूजन करके उसका जप करना चाहिये; ऐसा करनेवाला समस्त सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ८—१६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे वश्याकर्षणादिप्रयोगवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'वश्याकर्षणादिप्रयोगवर्णन' नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

मृत्युंजयहवन-विधान

ऋषय ऊचुः

मृत्युञ्जयविधिं सूत ब्रह्मक्षत्रविशामपि।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके कल्याणके लिये आप हमलोगोंको मृत्युंजयविधि बतानेकी कृपा कीजिये; हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं॥ १॥

सूत उवाच

मृत्युञ्जयविधिं वक्ष्ये बहुना किं द्विजोत्तमाः।
रुद्राध्यायेन विधिना घृतेन नियुतं क्रमात्॥ २
सघृतेन तिलेनैव कमलेन प्रयत्नतः।
दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा॥ ३
चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापि वा।
जुहुयात्कालमृत्योर्वा प्रतीकारः प्रकीर्तितः॥ ४

सूतजी बोले—हे उत्तम द्विजो! मैं [आपलोगोंको] मृत्युंजय विधान बताऊँगा; बहुत कहनेसे क्या लाभ! रुद्राध्यायके मन्त्रोंद्वारा घृतसे एक लाख बार क्रमशः हवन करे अथवा घृतमिश्रित तिलसे, कमल पुष्पसे, गायके घी तथा दूधसे मिश्रित दूर्वासे, मधुसे, घृतयुक्त चरुसे अथवा केवल दुग्धसे ही प्रयत्नपूर्वक हवन करना चाहिये। इस विधानको कालमृत्यु अथवा महामृत्युका प्रतीकार कहा गया है॥ २—४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे मृत्युञ्जयविधिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'मृत्युंजयविधिवर्णन' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

मृत्युहर त्रियम्बकमन्त्रका माहात्म्य तथा मन्त्रका व्याख्यान

सूत उवाच

त्रियम्बकेण मन्त्रेण देवदेवं त्रियम्बकम्।
पूजयेद्बाणलिङ्गे वा स्वयम्भूतेऽपि वा पुनः॥ १
आयुर्वेदविदैर्वापि यथावदनुपूर्वशः।
अष्टोत्तरसहस्रेण पुण्डरीकेण शङ्करम्॥ २
कमलेन सहस्रेण तथा नीलोत्पलेन वा।
सम्पूज्य पायसं दत्त्वा सघृतं चौदनं पुनः॥ ३
मुद्गान्नं मधुना युक्तं भक्ष्याणि सुरभीणि च।
अग्नौ होमश्च विपुलो यथावदनुपूर्वशः॥ ४
पूर्वोक्तैरपि पुष्पैश्च चरुणा च विशेषतः।
जपेद्वै नियुतं सम्यक् समाप्य च यथाक्रमम्॥ ५
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयेद्वै सदक्षिणम्।
गवां सहस्रं दत्त्वा तु हिरण्यमपि दापयेत्॥ ६

सूतजी बोले—बाणलिङ्गमें अथवा स्वयम्भूलिङ्गमें त्रियम्बकमन्त्रके द्वारा देवाधिदेव त्रियम्बककी पूजा करनी चाहिये। आयुर्वेदके ज्ञाताओंको चाहिये कि पूर्वोक्त विधिसे एक हजार आठ श्वेत कमलोंसे अथवा एक हजार रक्तकमलोंसे अथवा एक हजार नील कमलोंसे शंकरजीका पूजन करके खीर, घृतयुक्त ओदन (भात), मधुमिश्रित मुद्गान्न तथा अन्य सुगन्धित भक्ष्य-पदार्थ अर्पण करके पूर्व अध्यायमें कथित घृत आदि द्रव्योंके क्रमसे, पूर्वोक्त पुष्पोंसे और विशेषकर चरुसे यथाविधि अग्निमें दस हजार हवन करना चाहिये और एक लाख जप करना चाहिये। सम्यक् प्रकारसे उचित क्रममें सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करके हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिये; हजार गायें प्रदान करके स्वर्ण भी देना चाहिये॥ १—६॥

एतद्वः कथितं सर्वं सरहस्यं समासतः।
शिवेन देवदेवेन शर्वेणात्युग्रशूलिना॥ ७

कथितं मेरुशिखरे स्कन्दायामिततेजसे।
स्कन्देन देवदेवेन ब्रह्मपुत्राय धीमते॥ ८

साक्षात्सनत्कुमारेण सर्वलोकहितैषिणा।
पाराशर्याय कथितं पारम्पर्यक्रमागतम्॥ ९

इस प्रकार मैंने रहस्यसहित सम्पूर्ण बातें संक्षेपमें आप लोगोंको बता दीं। अत्यन्त उग्र शूल धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् शिवने मेरु शिखरपर अमित तेजवाले कार्तिकेयजीको इसे बताया था। तत्पश्चात् देवोंके देव उन कार्तिकेयने बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको बताया और पुनः उन लोकहितैषी सनत्कुमारने इसे पराशरपुत्र व्यासको बताया; इस प्रकार परम्पराक्रमसे यह प्रकाशमें आया॥ ७—९ ॥

शुके गते परंधाम दृष्ट्वा रुद्रं त्रियम्बकम्।
गतशोको महाभागो व्यासः पर ऋषिः प्रभुः॥ १०

स्कन्दस्य सम्भवं श्रुत्वा स्थिताय च महात्मने।
त्रियम्बकस्य माहात्म्यं मन्त्रस्य च विशेषतः॥ ११

कथितं बहुधा तस्मै कृष्णद्वैपायनाय वै।
तत्सर्वं कथयिष्यामि प्रसादादेव तस्य वै॥ १२

त्रियम्बक रुद्रका दर्शन करके शुकदेवजीके मोक्षपद प्राप्त कर लेनेके अनन्तर महाभाग महर्षि भगवान् व्यासजी शोकको प्राप्त हुए। उस समय स्कन्दके प्रादुर्भावको सुनकर वहाँपर स्थित महात्मा कृष्णद्वैपायन व्यासजीको सनत्कुमारने त्रियम्बकमन्त्रके माहात्म्यको बहुत प्रकारसे बताया था। मैं उन्हींकी कृपासे आप लोगोंको वह सब बताऊँगा॥ १०—१२ ॥

देवं सम्पूज्य विधिना जपेन्मन्त्रं त्रियम्बकम्।
मुच्यते सर्वपापैश्च सप्तजन्मकृतैरपि॥ १३

सङ्ग्रामे विजयं लब्ध्वा सौभाग्यमतुलं भवेत्।
लक्षहोमेन राज्यार्थी राज्यं लब्ध्वा सुखी भवेत्॥ १४

पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नियुतेन न संशयः।
धनार्थी प्रयुतेनैव जपेदेव न संशयः॥ १५

धनधान्यादिभिः सर्वैः सम्पूर्णः सर्वमङ्गलैः।
क्रीडते पुत्रपौत्रैश्च मृतः स्वर्गे प्रजायते॥ १६

नानेन सदृशो मन्त्रो लोके वेदे च सुव्रताः।
तस्मात्त्रियम्बकं देवं तेन नित्यं प्रपूजयेत्॥ १७

महादेवकी सम्यक् पूजा करके विधिपूर्वक त्रियम्बकमन्त्रका जप करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य सात जन्मोंके किये गये सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; संग्राममें विजय प्राप्त करके वह अतुलनीय सौभाग्य प्राप्त करता है। राज्यकी कामना करनेवाला व्यक्ति एक लाख हवनसे राज्य प्राप्त करके सुखी हो जाता है। पुत्रकी इच्छावाला एक लाख होमसे पुत्र प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। धन चाहनेवालेको एक करोड़ त्रियम्बक-मन्त्रका जप करना चाहिये और देव त्रियम्बककी सदा पूजा करनी चाहिये; उससे वह मनुष्य सभी प्रकारके मंगलोंसहित पुत्र-पौत्रोंके साथ सुखमय जीवन व्यतीत करता है और मृत्युके अनन्तर स्वर्गमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रतो! इस त्रियम्बकमन्त्रके समान इस लोकमें तथा वेदमें कोई भी मन्त्र नहीं है। अतः इस मन्त्रसे भगवान् त्रियम्बककी नित्य पूजा करनी चाहिये—ऐसा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका आठ गुना फल होता है॥ १३—१७½ ॥

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत्।
त्रयाणामपि लोकानां गुणानामपि यः प्रभुः॥ १८

[त्रियम्बक शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—]

वेदानामपि देवानां ब्रह्मक्षत्रविशामपि।
अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकः॥ १९

तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्नेरग्नित्रयस्य च।
अम्बा उमा महादेवो ह्यम्बकस्तु त्रियम्बकः॥ २०

यह तीनों लोकों, तीनों गुणों, तीनों वेदों, तीनों देवताओं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य—इन तीनों वर्णोंका स्वामी है। यह अकार, उकार और मकार—इन तीन मात्राओंका वाचक है। चन्द्र, सूर्य तथा वह्नि—इन तीनों अग्नियोंकी अम्बा (माता) उमा हैं। महादेव इन सबके अम्बक (पिता) हैं, अतः यह त्रियम्बक मन्त्र है॥ १८—२०॥

सुपुष्पितस्य वृक्षस्य यथा गन्धः सुशोभनः।
वाति दूरात्तथा तस्य गन्धः शम्भोर्महात्मनः॥ २१

तस्मात्सुगन्धो भगवान् गन्धारयति शङ्करः।
गान्धारश्च महादेवो देवानामपि लीलया॥ २२

सुगन्धस्तस्य लोकेऽस्मिन् वायुर्वाति नभस्तले।
तस्मात्सुगन्धिस्तं देवं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्॥ २३

जिस प्रकार पुष्पित वृक्षकी अत्यन्त सुन्दर गन्ध बहुत दूरसे ही फैलती है, उसी प्रकार उन परमात्मा शिवकी गन्ध जगत्में सर्वत्र व्याप्त रहती है, अतः भगवान् शिव सुगन्ध हैं। वे महादेव शंकर अपनी लीलासे देवताओंको भी सुगन्धित करते हैं। जब वायु आकाशमण्डलमें प्रवाहित होती है, तब उन शिवकी सुगन्ध जगत्में फैलती है। अतः सुगन्धिमय होनेसे उन प्रभुको 'सुगन्धि' तथा 'पुष्टिवर्धन' कहा जाता है॥ २१—२३॥

यस्य रेतः पुरा शम्भोर्हरेर्योनौ प्रतिष्ठितम्।
तस्य वीर्यादभूदण्डं हिरणमयमजोद्भवम्॥ २४

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ भूर्भुवःस्वर्महस्तपः।
सत्यलोकमतिक्रम्य पुष्टिर्वीर्यस्य तस्य वै॥ २५

पञ्चभूतान्यहङ्कारो बुद्धिः प्रकृतिरेव च।
पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः॥ २६

पूर्वकालमें जिन शम्भुका तेज (वीर्य) भगवान् विष्णुकी योनिमें स्थापित हुआ, उनके उस तेजसे सुवर्णमय अण्ड निर्मित हुआ, जो ब्रह्माकी उत्पत्तिका कारण बना। उनके वीर्यका पोषण चन्द्रमा, सूर्य, सभी नक्षत्र, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, तपःलोक और सत्यलोकसे भी आगे बढ़कर हुआ; उन्हींके बीजसे पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति—ये सब पुष्टिको प्राप्त हुए। अतः वे शिव पुष्टिवर्धन संज्ञावाले हैं॥ २४—२६॥

तं पुष्टिवर्धनं देवं घृतेन पयसा तथा।
मधुना यवगोधूममाषबिल्वफलेन च॥ २७

कुमुदार्कशमीपत्रगौरसर्षपशालिभिः ।
हुत्वा लिङ्गे यथान्यायं भक्त्या देवं यजामहे॥ २८

ऋतेनानेन मां पाशाद्बन्धनात्कर्मयोगतः।
मृत्योश्च बन्धनाच्चैव मुक्षीय भव तेजसा॥ २९

उर्वारुकाणां पक्वानां यथा कालादभूत्पुनः।
तथैव कालः सम्प्राप्तो मनुना तेन यत्नतः॥ ३०

घृत, दुग्ध, मधु, जौ, गेहूँ, उड़द, बेलका फल, कुमुद, अर्क, शमीपत्र, श्वेत सरसों तथा शालिधानसे विधिपूर्वक हवन करके हम शिवलिङ्गमें उन पुष्टिवर्धन भगवान् शिवकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। हे भव! इस पूजनविधिके प्रभावसे हम कर्मजन्य पाशबन्धनसे और मृत्युबन्धनसे मुक्त हो जायँ। जैसे यथासमय पके हुए ककड़ी-फल (फूट)-की उसके वृक्षसे मुक्ति हो जाती है, वैसे ही कालके उपस्थित होनेपर उस मन्त्रके प्रभावसे काल-बन्धनसे हमारी मुक्ति हो जाय॥ २७—३०॥

एवं मन्त्रविधिं ज्ञात्वा शिवलिङ्गं समर्चयेत्।
तस्य पाशक्षयोऽतीव योगिनो मृत्युनिग्रहः॥ ३१

त्रियम्बकसमो नास्ति देवो वा घृणयान्वितः।
प्रसादशीलः प्रीतश्च तथा मन्त्रोऽपि सुव्रताः॥ ३२

तस्मात्सर्वं परित्यज्य त्रियम्बकमुमापतिम्।
त्रियम्बकेण मन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः॥ ३३

सर्वावस्थां गतो वापि मुक्तोऽयं सर्वपातकैः।
शिवध्यानान्न सन्देहो यथा रुद्रस्तथा स्वयम्॥ ३४

हत्वा भित्त्वा च भूतानि भुक्त्वा चान्यायतोऽपि वा।
शिवमेकं सकृत्स्मृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३५

इस प्रकार मन्त्रकी विधिको जानकर शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उस योगीके पाश (बन्धन)-का पूर्णरूपसे विनाश और उसके मृत्युका निग्रह हो जाता है। हे सुव्रतो! त्रियम्बकके समान कोई अन्य देवता दयालु नहीं हैं; वे सरलतासे प्रसन्न होनेवाले तथा प्रेममय हैं, उनका मन्त्र भी वैसा ही है। अतः सब कुछ छोड़कर दत्तचित्त होकर त्रियम्बकमन्त्रसे उमापति त्रियम्बककी पूजा करनी चाहिये। किसी भी दशाको प्राप्त मनुष्य शिवके ध्यानसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और जैसे रुद्र हैं; वैसे ही स्वयं हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। प्राणियोंका छेदन-भेदन करके तथा अन्यायपूर्वक वस्तुओंका भोग करके भी मनुष्य एकमात्र शिवका केवल एक बार ध्यान करके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१—३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सार्थत्रियम्बकमन्त्रवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें 'सार्थत्रियम्बकमन्त्रवर्णन' नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

योगमार्गके द्वारा भगवान् महेश्वरके ध्यानकी विधि, पाँच प्रकारके योग, शिवपाशुपत-योगकी महिमा, श्रीलिङ्गमहापुराणका परिचय तथा श्रीलिङ्गमहापुराणके श्रवण एवं पठनका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

कथं त्रियम्बको देवो देवदेवो वृषध्वजः।
ध्येयः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं योगमार्गेण सुव्रत॥ १
पूर्वमेवापि निखिलं श्रुतं श्रुतिसमं पुनः।
विस्तरेण च तत्सर्वं सङ्क्षेपाद्वक्तुमर्हसि॥ २

सूत उवाच

एवं पैतामहेनैव नन्दी दिनकरप्रभः।
मेरुपृष्ठे पुरा पृष्टो मुनिसङ्घैः समावृतः॥ ३
सोऽपि तस्मै कुमाराय ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः।
मिथः प्रोवाच भगवान् प्रणताय समाहितः॥ ४

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं पुरा महादेवो भगवान्नीललोहितः।
गिरिपुत्र्याम्बया देव्या भगवत्यैकशय्यया॥ ५
पृष्टः कैलासशिखरे हृष्टपुष्टतनूरुहः।

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये योगमार्गके द्वारा तीन नेत्रोंवाले, देवोंके भी देव तथा वृषकी ध्वजावाले भगवान् शिवका ध्यान किस प्रकार करना चाहिये? पूर्वमें भी हम आपसे वेदतुल्य जो सम्पूर्ण प्रसंग विस्तारपूर्वक सुन चुके हैं, वह सब संक्षेपमें बतानेकी कृपा कीजिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे सुव्रतो! इसी प्रकार पूर्वकालमें मेरुपर्वतके शिखरपर ब्रह्मापुत्र सनत्कुमारने सूर्यके समान प्रभावाले तथा मुनियोंसे घिरे हुए नन्दीसे पूछा था। तब भगवान् नन्दी भी उन विनम्र ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारसे समाहितचित्त होकर कहने लगे॥ ३-४॥

नन्दिकेश्वर बोले—यही बात पूर्व समयमें कैलास शिखरपर एक ही शय्यापर साथ-साथ विराजमान हिमालयपुत्री भगवती देवी पार्वतीने पुलकित रोमोंवाले

श्रीदेव्युवाच

योगः कतिविधः प्रोक्तस्तत्कथं चैव कीदृशम्॥ ६

ज्ञानं च मोक्षदं दिव्यं मुच्यन्ते येन जन्तवः।

श्रीभगवानुवाच

प्रथमो मन्त्रयोगश्च स्पर्शयोगो द्वितीयकः॥ ७

भावयोगस्तृतीयः स्यादभावश्च चतुर्थकः।
सर्वोत्तमो महायोगः पञ्चमः परिकीर्तितः॥ ८

ध्यानयुक्तो जपाभ्यासो मन्त्रयोगः प्रकीर्तितः।
नाडीशुद्ध्यधिको यस्तु रेचकादिक्रमान्वितः॥ ९

समस्तव्यस्तयोगेन जयो वायोः प्रकीर्तितः।
बलस्थिरक्रियायुक्तो धारणाद्यैश्च शोभनैः॥ १०

धारणात्रयसन्दीप्तो भेदत्रयविशोधकः।
कुम्भकावस्थितोऽभ्यासः स्पर्शयोगः प्रकीर्तितः॥ ११

मन्त्रस्पर्शविनिर्मुक्तो महादेवं समाश्रितः।
बहिरन्तर्विभागस्थस्फुरत्संहरणात्मकः ॥ १२

भावयोगः समाख्यातश्चित्तशुद्धिप्रदायकः।
विलीनावयवं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ १३

शून्यं सर्वं निराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते।
अभावयोगः सम्प्रोक्तश्चित्तनिर्वाणकारकः॥ १४

नीरूपः केवलः शुद्धः स्वच्छन्दं च सुशोभनः।
अनिर्देश्यः सदालोकः स्वयंवेद्यः समन्ततः॥ १५

स्वभावो भासते यत्र महायोगः प्रकीर्तितः।
नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वचित्तसमुत्थितः॥ १६

निर्मलः केवलो ह्यात्मा महायोग इति स्मृतः।
अणिमादिप्रदाः सर्वे सर्वे ज्ञानस्य दायकाः॥ १७

उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यमेषु योगेष्वनुक्रमात्।
अहं सङ्गविनिर्मुक्तो महाकाशोपमः परः॥ १८

भगवान् नीललोहित महादेवसे पूछा था॥ ५१/२॥

श्रीदेवी बोलीं—योग कितने प्रकारका कहा गया है, उसका स्वरूप कैसा है तथा वह किस प्रकारका है? वह दिव्य तथा मोक्षदायक ज्ञान कैसा है, जिसके द्वारा प्राणी [बन्धनसे] मुक्त हो जाते हैं?॥ ६१/२॥

श्रीभगवान् बोले—पहला मन्त्रयोग है, दूसरा स्पर्शयोग है, तीसरा भावयोग है और चौथा अभाव-योग है; पाँचवाँ महायोग है, जो सर्वोत्तम कहा गया है॥ ७—८॥

ध्यानसे युक्त जपका अभ्यास मन्त्रयोग कहा गया है। रेचक आदि प्राणायामके द्वारा नाड़ियोंका शुद्धीकरण समस्त-व्यस्त-योगसे प्राणका विजय कहा गया है। वाजीकरण क्रियासे युक्त [वीर्यस्तम्भनरूप] शोभन धारणादि अंगोंसे सम्पन्न, सात्त्विक आदि त्रिविध धारणासे प्रकाशित, विश्व-प्राज्ञ-तैजसरूप भेदत्रयका शोधक, कुम्भकमें स्थित ध्यानाभ्यास ही स्पर्शयोग कहा गया है। मन्त्र तथा स्पर्शयोगसे पृथक्, महादेवपर अवलम्बित, बाहर तथा भीतरकी दशाके स्फुरण तथा संहरणसे युक्त और चित्तको शुद्धि प्रदान करनेवाला योग भावयोग कहा गया है। चराचर सम्पूर्ण जगत् जिसमें विलीन है, जिसमें सम्पूर्ण स्वरूपका शून्य तथा आभासहीन रूपमें चिन्तन किया जाता है, चित्तका निर्वाण करनेवाले उस योगको अभावयोग कहा गया है। जो रूपहीन, अद्वितीय, निर्मल, स्वतन्त्र, अत्यन्त सुन्दर, अनिर्देश्य, सर्वदा प्रकाशमान, हर प्रकारसे स्वयं जाननेयोग्य है तथा जिसमें अपनी आत्माकी सत्ता भासित होती है, उसे महायोग कहा गया है। आत्मा सदा प्रकाशित है, स्वयं ज्योतिर्मय है, सम्पूर्ण चित्तोंसे ऊपर उठा हुआ है, विशुद्ध है तथा अद्वितीय है—यह अनुभव होना महायोग कहा गया है॥ ९—१६१/२॥

ये सभी योग अणिमा आदि सिद्धियोंको देनेवाले तथा ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। इन योगोंमें क्रमशः एकके बाद दूसरेमें पूर्वकी अपेक्षा वैशिष्ट्य है। यह महायोग अहंके संगसे रहित, महान् आकाशके तुल्य,

सर्वावरणनिर्मुक्तो ह्यचिन्त्यः स्वरसेन तु।
ज्ञेयमेतत्समाख्यातमग्राह्यमपि दैवतैः॥ १९

प्रविलीनो महान् सम्यक् स्वयंवेद्यः स्वसाक्षिकः।
चकास्त्यानन्दवपुषा तेन ज्ञेयमिदं मतम्॥ २०

परीक्षिताय शिष्याय ब्राह्मणायाहिताग्नये।
धार्मिकायाकृतघ्नाय दातव्यं क्रमपूर्वकम्॥ २१

गुरुदैवतभक्ताय अन्यथा नैव दापयेत्।
निन्दितो व्याधितोऽल्पायुस्तथा चैव प्रजायते॥ २२

दातुरप्येवमनघे तस्माज्ज्ञात्वैव दापयेत्।
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो मद्भक्तो मत्परायणः॥ २३

साधको ज्ञानसंयुक्तः श्रौतस्मार्तविशारदः।
गुरुभक्तश्च पुण्यात्मा योग्यो योगरतः सदा॥ २४

एवं देवि समाख्यातो योगमार्गः सनातनः।
सर्ववेदागमाम्भोजमकरन्दः सुमध्यमे॥ २५

पीत्वा योगामृतं योगी मुच्यते ब्रह्मवित्तमः।
एवं पाशुपतं योगं योगैश्वर्यमनुत्तमम्॥ २६

अत्याश्रममिदं ज्ञेयं मुक्तये केन लभ्यते।
तस्मादिष्टैः समाचारैः शिवार्चनरतैः प्रिये॥ २७

इत्युक्त्वा भगवान् देवीमनुज्ञाप्य वृषध्वजः।
शङ्कुकर्णं समासाद्य युयोजात्मानमात्मनि॥ २८

शैलादिरुवाच

तस्मात्त्वमपि योगीन्द्र योगाभ्यासरतो भव।
स्वयम्भुव परा मूर्तिर्नूनं ब्रह्ममयी वरा॥ २९

सर्वोत्कृष्ट, समस्त आवरणोंसे मुक्त और यथार्थतः अचिन्त्य है। उस ज्ञानको देवताओंके द्वारा भी अग्राह्य कहा गया है। यह परमात्मामें विलीन कर देनेवाला, महान्, स्वयंवेद्य तथा स्वयं अपना साक्षी है और आनन्दपूर्ण शरीरसे प्रकाशित होनेवाला है। यह अहंकाररहित पुरुषके द्वारा ही जाननेयोग्य है। [मेरे द्वारा उपदिष्ट] इस मत (ज्ञान)-को परीक्षा किये गये शिष्य, अग्निहोत्री ब्राह्मण, धर्मपरायण, कृतज्ञ और गुरु-देवताके प्रति भक्ति रखनेवाले व्यक्तिको ही प्रदान करना चाहिये; अन्यको कभी नहीं देना चाहिये। अनधिकारी व्यक्ति निन्दित, रोगसे पीड़ित तथा अल्प आयुवाला होता है और इसे प्रदान करनेवालेकी भी यही दशा होती है; हे अनघे! इसलिये पूर्णरूपसे परीक्षा करके ही इसे देना चाहिये। इसे प्राप्त करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण आसक्तियोंसे रहित, मेरा भक्त, मेरे प्रति परायण, साधक, ज्ञानवान्, श्रुति-स्मृतिसम्बन्धी कर्मोंका ज्ञान रखनेवाला, गुरुमें भक्ति रखनेवाला, पुण्यात्मा, योग्यतासम्पन्न तथा सर्वदा योगमें निरत रहनेवाला होता है॥ १७—२४॥

हे देवि! हे सुमध्यमे! इस प्रकार यह योगमार्ग सनातन और समस्त वेद तथा आगमरूपी कमलका मकरन्द कहा गया है। इस योगरूपी अमृतका पान करके ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ योगी [भवबन्धनसे] मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह पाशुपतयोग समस्त योगोंका ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला तथा सर्वोत्कृष्ट है। इसे ब्रह्मचर्य आदि किसी आश्रमकी अपेक्षा न रखनेवाला जानना चाहिये। अतः हे प्रिये! यह सभी प्राणियोंके हितकी कामना करनेवाले शिवपूजापरायण लोगोंको किसी अनिर्वचनीय सौभाग्यसे ही मुक्तिके लिये प्राप्त होता है। ऐसा कहनेके पश्चात् वृषध्वज भगवान् शिव देवी पार्वतीसे आज्ञा लेकर और अपने गण शंकुकर्णको द्वारपर नियुक्त करके स्वयं समाधिमें लीन हो गये॥ २५—२८॥

शैलादि बोले—अतएव हे योगीन्द्र! आप भी योगाभ्यासमें संलग्न हो जाइये। स्वयंभू शिवकी परामूर्ति

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मोक्षार्थी पुरुषोत्तमः।
भस्मस्नायी भवेन्नित्यं योगे पाशुपते रतः॥ ३०

ध्येया यथाक्रमेणैव वैष्णवी च ततः परा।
माहेश्वरी परा पश्चात्सैव ध्येया यथाक्रमम्॥ ३१

योगेश्वरस्य या निष्ठा सैषा संहृत्य वर्णिता॥ ३२

सूत उवाच

एवं शिलादपुत्रेण नन्दिना कुलनन्दिना।
योगः पाशुपतः प्रोक्तो भस्मनिष्ठेन धीमता॥ ३३

सनत्कुमारो भगवान् व्यासायामिततेजसे।
तस्मादहमपि श्रुत्वा नियोगात्सत्रिणामपि॥ ३४

कृतकृत्योऽस्मि विप्रेभ्यो नमो यज्ञेभ्य एव च।
नमः शिवाय शान्ताय व्यासाय मुनये नमः॥ ३५

ग्रन्थैकादशसाहस्त्रं पुराणं लैङ्गमुत्तमम्।
अष्टोत्तरशताध्यायमादिमांशमतः परम्॥ ३६

षट्चत्वारिंशदध्यायं* धर्मकामार्थमोक्षदम्।
अथ ते मुनयः सर्वे नैमिषेयाः समाहिताः॥ ३७

प्रणेमुर्देवमीशानं प्रीतिकण्टकितत्वचः।
शाखां पौराणिकीमेवं कृत्वैकादशिकां प्रभुः॥ ३८

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवानिदं वचनमब्रवीत्।
लैङ्गमाद्यन्तमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि॥ ३९

द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्।
तपसा चैव यज्ञेन दानेनाध्ययनेन च॥ ४०

या गतिस्तस्य विपुला शास्त्रविद्या च वैदिकी।
कर्मणा चापि मिश्रेण केवलं विद्ययापि वा॥ ४१

निवृत्तिश्चास्य विप्रस्य भवेद्भक्तिश्च शाश्वती।
मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः॥ ४२

निश्चितरूपसे श्रेष्ठ तथा ब्रह्ममयी है। अतः मोक्षकी कामना करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषको पूर्ण प्रयत्नसे भस्म-स्नान करके पाशुपतयोगमें नित्य संलग्न रहना चाहिये। सर्वप्रथम ब्राह्मी शक्तिका ध्यान करना चाहिये, इसके बाद परा वैष्णवी शक्तिका और तत्पश्चात् परा माहेश्वरी शक्तिका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार योगेश्वर शिवकी जो पराकाष्ठा है, उसका मैंने संक्षेपमें वर्णन कर दिया॥ २९—३२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने कुलको आनन्द प्रदान करनेवाले भस्मधारी शिलादपुत्र बुद्धिमान् नन्दीने सनत्कुमारसे पाशुपतयोगका वर्णन किया। भगवान् सनत्कुमारने अमित तेजवाले व्यासजीको इसे बताया और उनसे सुनकर उनके आदेशसे मैंने यज्ञ-सत्रमें उपस्थित मुनियोंको बताया। मैं कृतकृत्य हूँ। विप्रोंको नमस्कार है, यज्ञोंको नमस्कार है, शान्त शिवको नमस्कार है और व्यासमुनिको नमस्कार है॥ ३३—३५॥

यह उत्तम श्रीलिङ्गपुराण ग्यारह हजार श्लोकोंमें निबद्ध है। इसके प्रथम भागमें एक सौ आठ अध्याय हैं और उत्तर भागमें पचपन अध्याय हैं। यह पुराण धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। तब प्रसन्नताके कारण रोमांचित नैमिषारण्यवासी उन सभी मुनियोंने एकाग्रचित्त होकर भगवान् ईशान (शिव)-को प्रणाम किया। पुराणोंकी ग्यारहवीं शाखाकी रचना करके स्वयंभू तथा प्रभुतासम्पन्न भगवान् ब्रह्माने यह वचन कहा था—'जो मनुष्य इस सम्पूर्ण श्रीलिङ्गपुराणको आदिसे अन्ततक पढ़ता है, सुनता है अथवा द्विजोंको सुनाता है, वह परमगति प्राप्त करता है। तपस्यासे, यज्ञसे, दानसे, वेदाध्ययनसे, उत्तम कर्मसे, कर्म तथा ज्ञानके मिश्रित प्रभावसे अथवा केवल ज्ञानसे उसकी जो गति होती है, वह इस पुराणके पठन-श्रवणसे हो जाती है; उसे विपुल शास्त्रविद्या तथा वैदिकी विद्या प्राप्त हो जाती है; उस विप्रको शाश्वत शिवभक्ति मिल जाती है; उसका मोक्ष हो जाता है और उस महात्माकी श्रद्धा

* अत्र षट् च नव च चत्वारिंशच्च षट्चत्वारिंशदिति मध्यमपदलोपिसमासो ज्ञेयः।

वंशस्य चाक्षया विद्या चाप्रमादश्च सर्वतः।
इत्याज्ञा ब्रह्मणस्तस्मात्तस्य सर्वं महात्मनः॥ ४३

ऋषय प्रोचुः

ऋषेः सूतस्य चास्माकमेतेषामपि चास्य च।
नारदस्य च या सिद्धिस्तीर्थयात्रारतस्य च॥ ४४

प्रीतिश्च विपुला यस्मादस्माकं रोमहर्षण॥ ४५

सा सदास्तु विरूपाक्षप्रसादात्तु समन्ततः।
एवमुक्तेषु विप्रेषु नारदो भगवानपि॥ ४६

कराभ्यां सुशुभाग्राभ्यां सूतं पस्पर्शिवांस्त्वचि।
स्वस्त्यस्तु सूत भद्रं ते महादेवे वृषध्वजे॥ ४७

श्रद्धा तवास्तु चास्माकं नमस्तस्मै शिवाय च॥ ४८

मुझमें, नारायणमें तथा शिवमें हो जाती है। उसके वंशमें अक्षय विद्या सुलभ रहती है और हर प्रकारसे अप्रमाद विद्यमान रहता है।' यह ब्रह्माजीकी आज्ञा है, अतः यह सब उन्हीं महात्माकी कृपासे हुआ है॥ ३६—४३॥

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! आप ऋषि सूतको, हम मुनियोंको, तीर्थयात्रामें रत इन नारदको, जो महान् सिद्धि तथा भगवत्प्रीति प्राप्त हुई; वह विरूपाक्ष भगवान् शिवकी कृपासे चारों ओर विद्यमान रहे। विप्रोंके ऐसा कहनेपर भगवान् नारदने भी अपने पवित्र हाथोंके अग्रभागसे सूतजीके शरीरका स्पर्श किया और इस प्रकार कहा—हे सूतजी! आपका मंगल हो, आपका कल्याण हो, वृषध्वज महादेवमें आपकी तथा हमलोगोंकी श्रद्धा रहे; उन भगवान् शिवको नमस्कार है—'**नमस्तस्मै शिवाय च**'॥ ४४—४८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पाशुपतयोगमार्गवर्णने लिङ्गपुराणश्रवणपठनमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत उत्तरभागमें पाशुपतयोगमार्गवर्णनके प्रसंगमें 'लिङ्गपुराणश्रवणपठनमाहात्म्यवर्णन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

॥ सम्पूर्णमिदं श्रीलिङ्गमहापुराणम्॥

॥ श्रीलिङ्गमहापुराण पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट

[वाराणसी-माहात्म्य]

[धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंकी परम्परामें पं० लक्ष्मीधरभट्ट-विरचित 'कृत्यकल्पतरु' अत्यन्त प्राचीन, बहुश्रुत तथा अत्यधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसके प्रणेता पं० लक्ष्मीधर कान्यकुब्जनरेश गोविन्दचन्द्रके महामन्त्री थे। पं० लक्ष्मीधरका समय १२वीं शताब्दी है। परवर्ती निबन्धकारोंने कृत्यकल्पतरुके वचनोंको अपने ग्रन्थोंमें सादर उपन्यस्त किया है। चतुर्वर्गचिन्तामणि-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके प्रणेता 'हेमाद्रि' तो इस ग्रन्थ तथा पं० लक्ष्मीधरके वैदुष्यसे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने इन्हें 'भगवान्' शब्दसे सम्बोधित किया है।

'कृत्यकल्पतरु' धर्मशास्त्रीय कृत्योंके संग्रहका एक विशाल ग्रन्थ है। यह ब्रह्मचारिकाण्ड, गृहस्थकाण्ड, श्राद्धकाण्ड, दानकाण्ड, शुद्धिकाण्ड, व्यवहारकाण्ड, शान्तिकाण्ड, आचारकाण्ड तथा तीर्थविवेचनकाण्ड आदि कई काण्डोंमें विभक्त है। तत्तत् काण्डोंमें स्मृतियों तथा पुराणोंमें आये हुए धर्मशास्त्रीय विषयों जैसे—वर्णाश्रमधर्म, श्राद्ध, दान, प्रायश्चित्त, शान्ति, सदाचार तथा तीर्थविवेचन आदिका एक स्थानपर संग्रह हुआ है, इससे यह सौविध्य प्राप्त होता है कि एक ही स्थानपर विभिन्न स्मृतियों तथा पुराणादिमें उपन्यस्त तत्तद् विषयोंका संग्रह देखनेको मिल जाता है।

कृत्यकल्पतरुका तीर्थविवेचनकाण्ड प्रमुख तीर्थोंके माहात्म्यका महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसमें मुख्यरूपसे वाराणसी, प्रयाग, गंगा, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, मथुरा, उज्जयिनी, बदरिकाश्रम, द्वारका, केदार तथा नैमिषारण्य आदि तीर्थोंके माहात्म्य तथा तीर्थयात्रा आदिकी विधि विस्तारसे दी गयी है। इसमें अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीका तथा यहाँके गुह्यायतनों, लिङ्गों, वापी, कुण्डों तथा ह्रदोंका जो वर्णन दिया गया है, वह विविध पुराणों आदिसे संग्रहीत है। विशेष बात यह है कि इस ग्रन्थमें लिङ्गपुराणके नामसे सोलह अध्यायोंमें लगभग दो हजार श्लोकोंमें वाराणसीका माहात्म्य उपलब्ध है, किंतु यह सामग्री वर्तमानमें उपलब्ध लिङ्गपुराणके संस्करणोंमें प्राप्त नहीं है। वर्तमानमें जो लिङ्गपुराण उपलब्ध होता है, वह पूर्वभाग तथा उत्तरभाग नामसे दो खण्डोंमें विभक्त है। इसके पूर्वभागके ९२वें अध्यायमें १९० श्लोकोंमें वाराणसी तथा यहाँके तीर्थोंका जो माहात्म्य आया है, वह पूर्वोक्त कृत्यकल्पतरुके संग्रहसे भिन्न है।

कृत्यकल्पतरु १२वीं शताब्दीका अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है। उस समय लिङ्गपुराणका जो संस्करण उपलब्ध था, उसमेंसे ही ग्रन्थकारने सामग्री संगृहीत की होगी। लिङ्गपुराणकी श्लोकसंख्या स्वयं लिङ्गपुराणने तथा नारदादि पुराणोंने ग्यारह हजार बतायी है, परंतु वर्तमानमें लगभग आठ हजारके आस-पास श्लोक मिलते हैं। साथ ही लिङ्गपुराणके नामसे अरुणाचलमाहात्म्य, पंचाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्त्रनाम तथा रुद्राक्षमाहात्म्य आदि प्रकरणोंका भी उल्लेख प्राप्त होता है, किंतु ये प्रकरण वर्तमान संस्करणोंमें अनुपलब्ध हैं। कालातिरेकसे वर्तमानमें पुराणोंके संस्करणोंमें कुछ परिवर्तन आ गया है। कई माहात्म्य तथा प्रकरण आदि ऐसे हैं, जो उन-उन पुराणोंके नामसे प्राप्त तो होते हैं, किंतु वर्तमानमें वे उस पुराणमें उपलब्ध नहीं होते। उदाहरणके लिये प्रसिद्ध सत्यनारायणकथाकी पुष्पिकामें 'इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे' यह मिलता है, किंतु यह कथा वर्तमानमें प्राप्त रेवाखण्डमें प्राप्त नहीं होती। प्रसिद्ध माघमाहात्म्य वायुपुराणके नामसे मिलता है, किंतु वायुपुराणमें नहीं मिलता। ऐसे ही अध्यात्मरामायणको ब्रह्माण्डपुराणका अंश माना जाता है, किंतु वर्तमान ब्रह्माण्डपुराणके संस्करणमें वह प्राप्त नहीं होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी समयमें पुराणादिका जो प्राचीन स्वरूप था, उसमें वह सब गुम्फित था। यही बात लिङ्गपुराणके वाराणसी-माहात्म्यके विषयमें भी है।

इस कृत्यकल्पतरुमें उद्धृत वाराणसी-माहात्म्य अत्यन्त महत्त्वका है, इसके अध्ययनसे प्राचीन समयके वाराणसीके लिङ्गायतनों एवं तीर्थोंके वास्तविक स्वरूपके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। काशीखण्ड आदिमें जो वाराणसीके विषयमें सामग्री उपलब्ध होती है, उससे भी विशिष्ट सामग्री इस प्राचीन लिङ्गमहापुराणमें

मिलती है। अतः यह वर्णन बड़े महत्त्वका है। वहाँ वाराणसी-माहात्म्य-सम्बन्धी सामग्री कहीं स्फुट रूपमें तथा कहीं अध्यायोंमें उपनिबद्ध है, किंतु अध्यायोंमें श्लोकसंख्याका अंकन नहीं है। भगवान् शिव तथा देवी पार्वतीके प्रधान संवादके रूपमें उपलब्ध वह सामग्री तीसरे अध्यायसे अठारहवें अध्यायतक वहाँ दी गयी है, किंतु सुविधाकी दृष्टिसे तीसरे अध्यायको प्रथम अध्याय मानकर सम्पूर्ण सामग्री जिस रूपमें तथा जिस क्रममें कृत्यकल्पतरुमें उपलब्ध है, उसी रूपमें तथा उसी क्रममें श्लोक-संख्या अंकितकर मूल श्लोकोंसहित उसका हिन्दीभावानुवाद यहाँ दिया जा रहा है। इसे पढ़कर भगवद्भक्तों तथा श्रद्धालुजनोंमें भगवान् साम्बसदाशिवके प्रति विशेष श्रद्धा जाग्रत् होगी तथा आशा है कि सभी पाठक महानुभाव इससे लाभ उठायेंगे—सम्पादक]

पहला अध्याय

अविमुक्तक्षेत्रकी महिमा और वहाँ स्थित लिङ्गायतनोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि उपायज्ञानसाधनम्।
यानि तीर्थानि चोक्तानि व्योमतन्त्रे पुरा मया॥ १
तेषामप्यधिकं तीर्थमविमुक्तं महामुने।
सर्वतीर्थानि च मया तस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठिताः॥ २
न कदाचिन्मया मुक्तं स्थानं च सततं मुने।
सर्वतीर्थमयं पुण्यं गुह्याद् गुह्यतरं महत्॥ ३
स्थानानां चैव सर्वेषामादिभूतं महेश्वरम्।
यत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिसत्तम॥ ४
अनेनैव शरीरेण प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम्।
तत्र चैव तु सम्भूतो ज्ञानं प्राप्नोति मानवः॥ ५
गच्छ वाराणसीं शीघ्रं यत्र देवः सनातनः।
देवताभिः समस्ताभिस्तत्र देवः पिनाकधृक्॥ ६
स्तूयते वरदो देवैर्ब्रह्मादिभिरभीक्ष्णशः।
तत्रासिर्वरणा चैव निम्नगे सिद्धसेविते॥ ७
बहुजन्माप्तपापानां दुष्टानां देहिनां भुवि।
क्षालनं कुरुते देवि सा नदी यत्र जाह्नवी॥ ८
या दृशा सर्वथा स्वर्गे सा नदीनां सरिद्वरा।
या माता सर्वभूतानां सा गङ्गा यत्र निम्नगा॥ ९
अविमुक्तं परं क्षेत्रं शङ्करस्य सदैव हि।
तत्र स्थानं प्रसिद्धं च त्रैलोक्ये शूलपाणिनः॥ १०
निम्नगाभ्यां पुरी सा च नाम्ना वाराणसी मुने।
कृतस्नानेन देवेन ओङ्कारे संस्थितेन वा।
तस्मिन् काले वरो दत्तो देवदेवेन शम्भुना॥ ११

ईश्वर बोले—हे महामुने! अब मैं आपको ज्ञानप्राप्तिका अन्य साधन बताऊँगा। मैंने पूर्वमें व्योमतन्त्रमें जिन तीर्थोंका वर्णन किया था, उन सबसे बढ़कर अविमुक्त तीर्थ है। मैंने समस्त तीर्थोंको उस [अविमुक्त] स्थानमें स्थापित कर दिया है॥ १-२॥

हे मुने! मैं यहाँ सतत स्थित रहता हूँ, मैंने कभी भी इस स्थानका त्याग नहीं किया; यह सभी तीर्थोंसे युक्त, पुण्यप्रद, गुह्यसे भी गुह्यतर तथा महान् है॥ ३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरका यह स्थान सभी स्थानोंके आदिमें प्रादुर्भूत हुआ, जहाँ मुनियोंने परम सिद्धि प्राप्त की और इसी शरीरसे उत्तम निर्वाण प्राप्त किया। वहाँपर उत्पन्न हुआ मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है॥ ४-५॥

आप शीघ्र वाराणसी जाइये, जहाँ सनातन देव [शिवजी] समस्त देवताओंके साथ विद्यमान हैं। ब्रह्मा आदि देवता वर प्रदान करनेवाले पिनाकधारी शिवकी वहाँ निरन्तर स्तुति करते हैं। वहाँ सिद्धोंके द्वारा सेवित 'असि' तथा 'वरणा' [नामक] दो नदियाँ हैं॥ ६-७॥

हे देवि! वहाँ गंगा नदी पृथ्वीतलपर दुष्ट प्राणियोंके अनेक जन्मोंके अर्जित पापोंका क्षालन करती हैं। जो सदा स्वर्गमें दृष्टिगत होती हैं तथा जो सभी प्राणियोंकी माता हैं, वे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा नदी वहाँ विद्यमान हैं॥ ८-९॥

वहाँ शंकरजीका सदैव परम अविमुक्तक्षेत्र है, वह शूलपाणि शिवजीका तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध निवास-स्थान है। हे मुने! दोनों [वरणा तथा असि] नदियोंसे युक्त होनेके कारण वह पुरी 'वाराणसी' नामसे विख्यात है। स्नान करनेके अनन्तर ओंकारमें संस्थित देवदेव

देवदेव उवाच

ये स्मरिष्यन्ति तत्स्थानमविमुक्तं सदा नराः।
निर्धूतसर्वपापास्ते भविष्यन्ति गणोपमाः॥ १२

आगमिष्यन्ति ये द्रष्टुं ये जना योजनेन तु।
ते ब्रह्महत्यां मोक्ष्यन्ति भविष्यन्ति ममानुगाः॥ १३

विदित्वा भङ्गुरं लोकं येऽस्मिन्वत्स्यन्ति मे पुरे।
अन्तकालेऽपि वत्स्यन्ति तेषां भवति मोक्षदम्॥ १४

मोक्षः सुदुर्लभो यस्मात् संसारश्चातिभीषणः।
अश्मना चरणौ भित्त्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥ १५

सर्वावस्थोऽपि यो मर्त्यो वाराणस्यां वसेत्सदा।
स यां गतिमवाप्नोति पुण्यदानैर्न सा गतिः॥ १६

दुर्लभा तपसा सा च मर्त्यानां मुनिसत्तम।
तत्र विप्र व्रज शीघ्रं मनस्स्थैर्यं यदीच्छसि॥ १७

मनसः स्थैर्यहेतुत्वं शृणुष्व गदतो मम।
दक्षिणं चोत्तरं चैव तस्मिन् स्थाने स्थितं सदा॥ १८

विषुवं चैव मध्यस्थं देवानामपि दुर्लभम्।
कलौ युगे तु मर्त्यानां स्थानं मोक्षावहेतुकम्॥ १९

भक्तिमाराधनेनैव स्नानपूजनतर्पणैः।
चातुर्वर्ण्यविभागस्य शरीरं वैश्वरं पदम्॥ २०

पिङ्गला नाम या नाडी आग्नेयी सा प्रकीर्तिता।
शुष्का सरिच्च सा ज्ञेया लोलार्को यत्र तिष्ठति॥ २१

इडानाम्नी च या नाडी सा सौम्या सम्प्रकीर्तिता।
वरणा नाम सा ज्ञेया केशवो यत्र संस्थितः॥ २२

आभ्यां मध्ये तु या नाडी सुषुम्ना च प्रकीर्तिता।
मत्स्योदरी च सा ज्ञेया विषुवं तत्प्रकीर्तितम्॥ २३

भगवान् शम्भुने उस समय इस प्रकार वर प्रदान किया था॥ १०-११॥

देवदेव बोले—जो मनुष्य उस अविमुक्त स्थानका सदा स्मरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त हो जायँगे और मेरे गणोंके तुल्य हो जायँगे॥ १२॥

जो लोग मेरा दर्शन करनेके लिये [यहाँ] आयेंगे, वे एक योजन दूर रहनेपर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जायेंगे और मेरे अनुचर बन जायेंगे॥ १३॥

संसारको विनाशशील जानकर जो लोग मेरे इस पुरमें निवास करेंगे अथवा मृत्युके समय ही [यहाँ] निवास करेंगे, उनके लिये यह मोक्षप्रद होगा॥ १४॥

चूँकि मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है और संसार अति भयंकर है, अतः पत्थरसे [अपने] दोनों पैरोंको भंग करके मनुष्यको वाराणसीमें निवास करना चाहिये॥ १५॥

किसी भी अवस्थावाला जो मनुष्य सदा वाराणसीमें निवास करता है, वह जो गति प्राप्त करता है, वह गति पुण्य तथा दानोंसे भी सम्भव नहीं है। हे मुनिश्रेष्ठ! वह [गति] मनुष्योंके लिये तपस्यासे भी परम दुर्लभ है॥ १६ $^1/_2$॥

अतः हे विप्र! यदि आप मनकी स्थिरता [शान्ति] चाहते हैं, तो शीघ्र ही वहाँ जाइये; [वहाँ जानेसे] मनकी स्थिरताका कारण सुनिये; मैं बता रहा हूँ॥ १७ $^1/_2$॥

उस पुरमें दक्षिण तथा उत्तर स्थान स्थित हैं; उसके मध्यमें विषुवक्षेत्र स्थित है, जो देवताओंको भी दुर्लभ है। कलियुगमें तो यह स्थान मनुष्योंके लिये मोक्षका साधनस्वरूप है; आराधना, स्नान, पूजन तथा तर्पणके द्वारा यहाँ [शिवकी] भक्ति करनी चाहिये। चारों वर्णोंमेंसे कोई भी व्यक्ति यहाँ इस ईश्वरपदको प्राप्त कर लेता है॥ १८—२०॥

पिंगला नामक जो नाडी है, वह आग्नेयी कही गयी है; उसे शुष्क सरित् (नदी) जानना चाहिये, जहाँ लोलार्क-कुण्ड स्थित है॥ २१॥

इडा नामक जो नाडी है, वह सौम्य कही गयी है; उसे वरणा नामवाली जानना चाहिये, जहाँ केशव विराजमान हैं। इन दोनों [पिंगला, इडा]-के मध्यमें जो नाडी है, वह सुषुम्ना कही गयी है; उसे मत्स्योदरी नामवाली जानना चाहिये, उसे विषुव कहा गया है॥ २२-२३॥

श्रुत्वा कलियुगं घोरमल्पायुषमधार्मिकम्।
सिद्धक्षेत्रं न सेवन्ते जायन्ते च म्रियन्ति च॥ २४

लिङ्गरूपधरास्तीर्थे दृगिचण्डेश्वरादयः।
अविमुक्ते स्थिताः सर्वे शुद्ध्यन्ते पापकर्मिणः॥ २५

अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः।
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम्॥ २६

अन्तकाले मनुष्याणां भिद्यमानेषु मर्मसु।
वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते॥ २७

येऽविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तानां प्रीतिदायकाः।
कर्णजापं प्रयच्छन्ति दृगिचण्डेश्वरादयः॥ २८

अविमुक्तं महत्क्षेत्रं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
सर्वपापक्षयकरं साक्षाच्छिवपुरं महत्॥ २९

श्मशानं परमं विद्धि क्षेत्राणां परमं तथा।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु प्रविष्टस्तत्र वै पुमान्॥ ३०

वाराणस्यां तु यः कश्चित् प्रविष्टो ब्रह्मघातकः।
तिष्ठते क्षेत्रबाह्ये तु निर्गते गृह्यते पुनः॥ ३१

लिङ्गरूपधरा मूर्ताः सप्तकोट्यस्तु सर्वतः।
अविमुक्ते स्थिता रुद्रा भक्तानां सिद्धिदायकाः॥ ३२

कृत्तिवाससमारभ्य क्रोशं क्रोशं चतुर्दिशम्।
योजनं तत्र तत्क्षेत्रं गणै रुद्रैश्च संवृतम्॥ ३३

तस्य मध्ये यदा लिङ्गं भूमिं भित्त्वा समुत्थितम्।
मध्यमेश्वरनामाख्यं ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ ३४

अस्मादारभ्य लिङ्गात्तु क्रोशं क्रोशं चतुर्ष्वपि।
योजनं विद्धि तत्क्षेत्रं मृत्युकालेऽमृतप्रदम्॥ ३५

एवं क्षेत्रस्य संन्यासः पुराणे परिकीर्तितः।
अस्मात्तु परतो देवि विहारो नैव विद्यते॥ ३६

कलियुगको भयंकर, अल्पायु तथा अधार्मिक समझकर भी जो लोग इस सिद्धक्षेत्रका सेवन नहीं करते हैं, वे ही बार-बार जन्म लेते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं। लिङ्गरूपधारी दृगिचण्डेश्वर आदि इस अविमुक्त तीर्थमें स्थित रहते हैं; पापकर्म करनेवाले सभी लोग यहाँ शुद्ध हो जाते हैं॥ २४-२५॥

अविमुक्त परम क्षेत्र है; [इस] अविमुक्तक्षेत्रमें परा गति प्राप्त होती है, अविमुक्तक्षेत्रमें परा सिद्धि मिलती है और अविमुक्तक्षेत्रमें परमपद प्राप्त होता है॥ २६॥

मृत्युके समय मर्मोंके भेदे जानेपर वायुके द्वारा प्रेरित किये गये मनुष्योंको स्मृति नहीं रह जाती है॥ २७॥

भक्तोंको प्रीति प्रदान करनेवाले जो दृगिचण्डेश्वर आदि रुद्र अविमुक्तमें स्थित हैं, वे [भक्तोंके] कानमें तारक मन्त्र प्रदान करते हैं॥ २८॥

अविमुक्तक्षेत्र महान्, पुण्य करनेवालोंके द्वारा सेवित, सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा साक्षात् शिवका महान् पुर है। श्मशानको परम क्षेत्र जानिये; यह सभी क्षेत्रोंमें महान् है। वहाँ प्रविष्ट हुआ मनुष्य शीघ्र ही पापसे मुक्त हो जाता है॥ २९-३०॥

जो कोई भी ब्रह्मघाती वाराणसीमें प्रवेश करता है, तो उसी समय उसकी ब्रह्महत्या क्षेत्रके बाहर ही रह जाती है और पुनः उस व्यक्तिके इस क्षेत्रसे बाहर चले जानेपर वह ब्रह्महत्या उसे पुनः घेर लेती है॥ ३१॥

लिङ्गरूप धारण किये हुए मूर्तिमान् सात करोड़ रुद्र अविमुक्तक्षेत्रमें सभी ओर स्थित हैं; वे भक्तोंको सिद्धि देनेवाले हैं॥ ३२॥

कृत्तिवाससे आरम्भ करके कोस-कोसकी दूरीपर चारों दिशाओंमें योजन-परिमाणमें वह क्षेत्र गणों तथा रुद्रोंसे घिरा हुआ है। उसके मध्यमें भूमिका भेदन करके जो लिङ्ग प्रकट हुआ है, उसे सभी देवता तथा असुर मध्यमेश्वर नामवाला कहते हैं॥ ३३-३४॥

इस लिङ्गसे आरम्भ करके चारों दिशाओंमें कोस-कोसकी दूरीपर योजनभर उस [अविमुक्त] क्षेत्रको जानिये; वह क्षेत्र मृत्युकालमें अमरता प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार पुराणमें इस क्षेत्रका माहात्म्य बताया गया है; हे देवि! इस क्षेत्रसे बढ़कर [कोई भी] आनन्दका स्थान नहीं है॥ ३५-३६॥

देव्युवाच

वाराणस्यां तु किं गुह्यं स्थानं किं च तव प्रियम्।
किं रहस्यं च लिङ्गानां के ह्रदास्तत्र विश्रुताः॥ ३७

के कूपाः कानि कुण्डानि लिङ्गानां स्थापकाश्च के।
कस्मिन् स्थाने कृतं कर्म ज्ञाननिष्ठं प्रजायते।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं यदनुग्रहभागहम्॥ ३८

देवदेव उवाच

रुचिरं स्थानमासाद्य अविमुक्तं तु मे गृहम्।
न कदाचिन्मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥ ३९

अनेनैव प्रकारेण अविमुक्तं तु कथ्यते।
अविशब्देन पापं तु कथ्यते वेदवादिभिः।
तेन पापेन तत् क्षेत्रं वर्जितं वरवर्णिनि॥ ४०

सिद्धाः पाशुपताः श्रेष्ठास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
उपासते च मां नित्यं तस्मिन् स्थाने स्थिताः सदा॥ ४१

पूर्वोत्तरे दिग्विभागे तस्मिन् क्षेत्रे तु सुन्दरि।
सुरासुरैः स्तुतश्चाहं तत्र स्थाने यशस्विनि॥ ४२

दिव्यं वर्षसहस्रं तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः।
उत्पन्नं मम लिङ्गं तु भित्त्वा भूमिं यशस्विनि॥ ४३

तेषामनुग्रहार्थाय लोकानां भक्तिभावतः।
वाराणस्यां महादेवि तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ४४

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि पशुपाशैर्विमुच्यते॥ ४५

कूपस्तत्रैव संल्लग्नो महादेवस्य चैव हि।
तत्रोपस्पर्शनाद्देवि लभेद्वागीश्वरीं गतिम्॥ ४६

तत्र वाराणसी देवी स्थिता विग्रहरूपिणी।
मानवानां हितार्थाय स्थिता कूपस्य पश्चिमे॥ ४७

वाराणसीं तु यो दृष्ट्वा भक्त्या चैव नमस्यति।
तस्य तुष्टा च सा देवी वसतिं च प्रयच्छति॥ ४८

महादेवस्य पूर्वेण गोप्रेक्षमिति विश्रुतम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि पूर्वोक्तं फलमाप्नुयात्॥ ४९

देवी बोलीं—वाराणसीमें कौन-सा गुह्य स्थान है, कौन-सा स्थान आपको प्रिय है, लिङ्गोंका क्या रहस्य है, वहाँ कौन-से प्रसिद्ध सरोवर हैं, कौन-कौन कूप हैं, कौन-कौन कुण्ड हैं, लिङ्गोंके स्थापक कौन हैं और किस स्थानमें किया गया कर्म ज्ञानमें निष्ठा उत्पन्न करनेवाला होता है? यदि मैं अनुग्रहकी भागिनी होऊँ, तो मुझे यह सब बतायें॥ ३७—३८॥

देवदेव बोले—मैंने इस सुन्दर अविमुक्तक्षेत्रको प्राप्तकर इसे अपना गृह (निवासस्थान) बनाया। मैंने कभी भी इसका त्याग नहीं किया, इसलिये इसे अविमुक्त कहा गया है। वेदवादियोंके द्वारा 'अवि' शब्दसे पापको कहा जाता है। हे वरवर्णिनि! वह क्षेत्र उस पापसे रहित है; इस प्रकारसे यह अविमुक्त कहा जाता है॥ ३९-४०॥

सिद्धजन तथा श्रेष्ठ पाशुपत भक्त मेरे प्रति निष्ठावान् तथा परायण होकर उस स्थानमें रहकर नित्य मेरी उपासना करते हैं॥ ४१॥

हे सुन्दरि! उस क्षेत्रमें पूर्वोत्तर दिशामें देवताओं तथा असुरोंके द्वारा मेरी स्तुति की गयी थी। हे यशस्विनि! उस स्थानमें दिव्य हजार वर्षोंतक अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति की गयी थी; तब हे यशस्विनि! उन सभीके भक्तिभावसे प्रसन्न होकर उनपर अनुग्रह करनेहेतु भूमिका भेदन करके मेरा लिङ्ग प्रकट हुआ और हे महादेवि! वाराणसीमें उस स्थानपर मैं स्थित हो गया। हे देवि! उस लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४२—४५॥

हे देवि! वहींपर महादेवके समीप एक कूप है; वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वागीश्वरी गति (सारस्वतलोक) प्राप्त करता है॥ ४६॥

वहाँपर कूपके पश्चिमभागमें मनुष्योंके कल्याणके लिये विग्रहरूप धारणकर देवी वाराणसी विराजमान हैं॥ ४७॥

[देवी] वाराणसीका दर्शन करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार करता है, उसके ऊपर प्रसन्न होकर वे देवी उसे काशीवास प्रदान करती हैं॥ ४८॥

हे सुश्रोणि! महादेवके पूर्वमें गोप्रेक्ष नामक स्थान प्रसिद्ध है, जिसके दर्शनसे मनुष्य पूर्वोक्त फल प्राप्त

ईश्वर उवाच

गोप्रेक्षस्योत्तरेणाथ अनसूयाख्यलिङ्गकम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि गतिं च लभते पराम्॥ ५०

पश्चान्मुखं च तल्लिङ्गमनसूयाप्रतिष्ठितम्।
अनसूयेश्वरस्याग्रे गणेश्वरमिति स्मृतम्॥ ५१

तेन दृष्टेन लभते गणेशस्य सलोकताम्।
गणेश्वरात् पश्चिमेन हिरण्यकशिपुः पुरा॥ ५२

स्थापयामास मे लिङ्गं कूपस्यैव समीपतः।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं सिद्धेश्वरं स्मृतम्॥ ५३

दर्शनादेव मे लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
अन्यदायतनं भद्रे शृणुष्व गदतो मम॥ ५४

वृषभेश्वरनामानं लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
पूर्वामुखं महेशानि गोप्रेक्षस्य तु नैर्ऋते।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि अभीष्टं फलमाप्नुयात्॥ ५५

गोप्रेक्षस्य दक्षिणतः स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
दधीचेश्वरनामानं सर्वकामफलप्रदम्॥ ५६

दधीचेश्वरसामीप्ये दक्षिणे वरवर्णिनि।
अत्रिणा स्थापितं लिङ्गं दैवमार्तिहरं शुभम्॥ ५७

अत्रीश्वराद्दक्षिणतः सूर्यखण्डमुखेऽपि च।
मधुकैटभाभ्यां सुश्रोणि लिङ्गसंस्थापनं कृतम्॥ ५८

तत्र पश्चान्मुखो देवि विसमन्थाः प्रपठ्यते।
पूर्वामुखं कैटभस्य लिङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ५९

गोप्रेक्षकस्य पूर्वेण लिङ्गं वै बालकेश्वरम्।
बालकेश्वरसामीप्ये विज्वरेश्वरसंज्ञितम्॥ ६०

तेन दृष्टेन सुश्रोणि ज्वरो नश्यति तत्क्षणात्।
विज्वरेश्वरपूर्वेण वेदेश्वरमिति श्रुतम्॥ ६१

ईशानाभिमुखं लिङ्गं कोणे तस्य मुखानि वै।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि चतुर्वेदो भवेद्द्विजः॥ ६२

करता है अर्थात् भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ४९॥

ईश्वर बोले—हे देवि! गोप्रेक्षके उत्तरमें अनसूया नामक लिङ्ग है; उसका दर्शन करके मनुष्य परा गतिको प्राप्त करता है। पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग [देवी] अनसूयाके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ५०१/२॥

अनसूयेश्वर-लिङ्गके आगे गणेश्वर [लिङ्ग] बताया गया है, उसके दर्शनसे मनुष्य गणेशजीका सालोक्य प्राप्त करता है॥ ५११/२॥

हिरण्यकशिपुने पूर्वकालमें गणेश्वरके पश्चिममें कूपके पासमें ही मेरे लिङ्गकी स्थापना की थी। हे देवि! उसीके पश्चिममें सिद्धेश्वरलिङ्ग बताया गया है; दर्शन-मात्रसे मेरा वह लिङ्ग सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाला है॥ ५२-५३१/२॥

हे भद्रे! अन्य आयतन (लिङ्ग)-के विषयमें सुनिये; मैं बता रहा हूँ। हे महेशानि! वहींपर वृषभेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, जो पूर्वकी ओर मुखवाला है तथा गोप्रेक्षके नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम)-में स्थित है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है॥ ५४-५५॥

गोप्रेक्षके दक्षिणमें सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला दधीचेश्वर नामक उत्तम लिङ्ग स्थापित है॥ ५६॥

हे वरवर्णिनि! दधीचेश्वरलिङ्गके समीपमें दक्षिण दिशामें [मुनि] अत्रिके द्वारा शिवजीका लिङ्ग स्थापित किया गया है; यह दैविक कष्टको दूर करनेवाला तथा मंगलकारक है॥ ५७॥

हे सुश्रोणि! अत्रीश्वरके दक्षिणमें सूर्यखण्डमुखमें भी मधु तथा कैटभके द्वारा लिङ्गकी स्थापना की गयी है। हे देवि! वहाँपर मधुके द्वारा स्थापित लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला कहा जाता है और कैटभके द्वारा स्थापित त्रिलोक-प्रसिद्ध लिङ्ग पूर्वकी ओर मुखवाला है॥ ५८-५९॥

गोप्रेक्षके पूर्वमें बालकेश्वरलिङ्ग है। बालकेश्वरके समीपमें विज्वरेश्वर नामक लिङ्ग है; हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे ज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है॥ ६०१/२॥

विज्वरेश्वरके पूर्वमें वेदेश्वर लिङ्ग है—ऐसा कहा गया है; वह लिङ्ग ईशानकी ओर मुखवाला है, उसके कोणमें [अनेक] मुख हैं। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे

वेदेश्वरस्योत्तरतः स्वयं तिष्ठति केशवः।
क्षेत्रस्य कारणं चास्य क्षेत्रज्ञ इति चोच्यते॥ ६३

तेन दृष्टेन सुश्रोणि सर्वं दृष्टं चराचरम्।
तत्समीपे तु सुश्रोणि लिङ्गं मे सङ्गमेश्वरम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि शिष्टैः सह समागमः॥ ६४

सङ्गमेशस्य पूर्वेण लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्।
ब्रह्मणा स्थापितं भद्रे प्रयागमिति कीर्त्यते॥ ६५

तेन दृष्टेन लभते ब्रह्मणः पदमुत्तमम्।
तत्र सा शाङ्करी देवी ब्रह्मवृक्षेऽवतिष्ठते॥ ६६

शान्तिं करोति सर्वेषां ये च तीर्थनिवासिनः।
अतः परं तु संवेद्यं गङ्गावरणसङ्गमम्॥ ६७

श्रवणद्वादशीयोगो बुधवारे यदा भवेत्।
तदा तस्मिन्नरः स्नात्वा सन्निहत्या फलं लभेत्॥ ६८

श्राद्धं कृत्वा तु यस्तत्र तस्मिन् काले यशस्विनि।
तारयित्वा पितॄन् सर्वान् विष्णुलोकं स गच्छति॥ ६९

वरणायास्तटे पूर्वे कुम्भीश्वरमिति स्मृतम्।
कुम्भीश्वरात्तु पूर्वेण कालेश्वरमिति स्मृतम्॥ ७०

कालेश्वरस्योत्तरतो महातीर्थं वरानने।
कपिलाह्रदनामानं ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ ७१

तस्मिन् ह्रदे तु यः स्नानं कुर्याद्भक्तिपरायणः।
वृषध्वजं च वै दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत्॥ ७२

नरकस्थास्ततो देवि पितरः सपितामहाः।
पितृलोकं प्राप्नुवन्ति तस्मिन् श्राद्धे कृते तु वै॥ ७३

गयायां चाष्टगुणितं पुण्यं प्रोक्तं महर्षिभिः।
तस्मिन् श्राद्धे कृते भद्रे पितॄणामनृणो भवेत्॥ ७४

पश्चिमे तु दिशाभागे महादेवस्य भामिनि।
स्कन्देन स्थापितं लिङ्गं मम भक्त्या सुरेश्वरि॥ ७५

तेन दृष्टेन गच्छन्ति स्कन्दस्यैव सलोकताम्।
तत्र शाखैर्विशाखैश्च नैगमीयैश्च सुन्दरि।
स्थापितानि च लिङ्गानि गणैः सर्वैर्बहूनि च॥ ७६

द्विज चारों वेदोंका ज्ञाता हो जाता है॥ ६१-६२॥

वेदेश्वरके उत्तरमें स्वयं केशव विराजमान हैं; वे इस क्षेत्रके कारणभूत क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। हे सुश्रोणि! उनके दर्शनसे समस्त चराचर [जगत्] दृष्टिगत हो जाता है॥ ६३$^1/_2$॥

हे सुश्रोणि! उनके समीपमें मेरा संगमेश्वरलिङ्ग विद्यमान है; उसके दर्शनसे हे सुश्रोणि! सज्जनोंके साथ समागम होता है॥ ६४॥

संगमेश्वरके पूर्वमें चारमुखवाला लिङ्ग है; हे भद्रे! ब्रह्माके द्वारा स्थापित किया गया वह प्रयाग नामसे पुकारा जाता है। उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। वहाँपर वे शांकरीदेवी ब्रह्मवृक्षमें विद्यमान हैं और जो लोग तीर्थमें निवास करनेवाले हैं, उन सबको वे शान्ति प्रदान करती हैं। इसके बाद गंगा तथा वरणाके संगमको जानना चाहिये॥ ६५—६७॥

जब बुधवारके दिन श्रवण-द्वादशीका योग उपस्थित हो, उस समय उसमें स्नान करके मनुष्य क्षेत्रसन्निधिका फल प्राप्त करता है। हे यशस्विनि! उस कालमें वहाँपर जो [मनुष्य] श्राद्ध करता है, वह समस्त पितरोंका उद्धार करके विष्णुलोक जाता है॥ ६८-६९॥

वरणाके पूर्व-तटपर कुम्भीश्वर [लिङ्ग] बताया गया है। कुम्भीश्वरके पूर्वमें कालेश्वर [लिङ्ग] कहा गया है। हे वरानने! कालेश्वरके उत्तरमें सभी देवताओं तथा असुरोंके द्वारा कपिलाह्रद नामक महातीर्थ कहा गया है। जो [मनुष्य] उस ह्रद (सरोवर)-में भक्ति-परायण होकर स्नान करता है और वृषध्वजका दर्शन करता है, वह राजसूय [यज्ञ]-का फल प्राप्त करता है॥ ७०—७२॥

हे देवि! वहाँ श्राद्ध किये जानेपर नरकमें स्थित पितामहसहित सभी पितर पितृलोक प्राप्त करते हैं। महर्षियोंने वहाँ किये गये श्राद्धको गयामें किये गये श्राद्धसे आठ गुना पुण्यप्रद बताया है। हे भद्रे! वहाँ श्राद्ध करनेपर मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है॥ ७३-७४॥

हे भामिनि! हे सुरेश्वरि! महादेवके पश्चिम दिशाभागमें स्कन्दने भक्तिपूर्वक मेरा लिङ्ग स्थापित किया है; उसके दर्शनसे लोग स्कन्दका सालोक्य प्राप्त करते हैं। हे सुन्दरि! वहाँ शाख, विशाख तथा नैगमीय—

स्कन्देश्वरस्योत्तरतो बलभद्रप्रतिष्ठितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि अनन्तफलमाप्नुयात्॥ ७७

स्कन्देश्वराद्दक्षिणतो महालिङ्गं प्रतिष्ठितम्।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं स्थापितं नन्दिना पुरा॥ ७८

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि नन्दिलोकमवाप्नुयात्।
नन्दीश्वरात् पश्चिमतो लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ७९

स्वर्लीनसदृशं भद्रे नन्दिपित्रा प्रतिष्ठितम्।
शिलाक्षेश्वरनामानं सुरसङ्घैः प्रपूजितम्॥ ८०

अन्यत्तत्र तु विख्यातं हिरण्याक्षेश्वरं विभुम्।
हिरण्याक्षेण दैत्येन स्थापितं मम भक्तितः॥ ८१

हिरण्याख्यस्य सामीप्ये अन्यैर्देवैः सहस्रशः।
स्थापितानि च लिङ्गानि भक्त्या चैव फलार्थिभिः॥ ८२

अन्यद्वै देवदेवस्य स्थितं पश्चान्मुखं स्मृतम्।
तत्र स्थाने वरारोहे हिरण्याक्षस्य दक्षिणे॥ ८३

तेषां पश्चिमदिग्भागे अट्टहासं स्थितं शुभम्।
मुखं लिङ्गं तु तद्देवि पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ८४

प्रसन्नवदने देवि सर्वपातकनाशकम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऐशानं लोकमाप्नुयात्॥ ८५

अट्टहाससमीपेन पश्चिमेन यशस्विनि।
मित्रावरुणनामानौ पूर्वद्वारे व्यवस्थितौ॥ ८६

मित्रावरुणलोकस्तु तयोः सन्दर्शनाद्भवेत्।
अन्यत्तत्रैव विख्यातं वसिष्ठेशमिति स्थितम्॥ ८७

स्थापितं तत्र तल्लिङ्गं याज्ञवल्क्येन वै पुरा।
चतुर्मुखं च तल्लिङ्गं सर्वपापक्षयकरम्॥ ८८

अन्यत्तत्रैव संलग्नं मैत्रेय्या स्थापितं शुभम्।
तेन दृष्टेन लभते परं ज्ञानं सुदुर्लभम्॥ ८९

इन सभी गणोंके द्वारा मेरे बहुत-से लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ ७५-७६॥

हे देवेशि! स्कन्देश्वरके उत्तरमें बलभद्रजीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है; उसके दर्शनसे मनुष्य अनन्त फल प्राप्त करता है। स्कन्देश्वरके दक्षिणमें महालिङ्ग विराजमान है; पूर्वकालमें नन्दीने पश्चिमकी ओर मुखवाले उस लिङ्गको स्थापित किया था। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य नन्दीका लोक प्राप्त करता है॥ ७७-७८ $^{1}/_{2}$ ॥

नन्दीश्वरके पश्चिममें पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! स्वर्लीनसदृश शिलाक्षेश्वर नामक वह लिङ्ग नन्दीके पिताके द्वारा स्थापित किया गया है, जो देवसमुदायके द्वारा पूजित है॥ ७९-८०॥

वहाँपर हिरण्याक्षदैत्यने मेरी भक्तिसे हिरण्याक्षेश्वर नामक अन्य प्रसिद्ध तथा सर्वव्यापी लिङ्गकी भी स्थापना की है। फलकी आकांक्षावाले अन्य देवताओंके द्वारा हिरण्याक्षेश्वरके समीपमें भक्तिपूर्वक हजारों लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ ८१-८२॥

हे वरारोहे! उस स्थानपर हिरण्याक्षके दक्षिणमें देवदेव [शिव]-का अन्य पश्चिममुखवाला लिङ्ग भी बताया गया है॥ ८३॥

उनके पश्चिम दिशाभागमें अट्टहास नामक शुभ लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह मुखलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये हुए विराजमान है, हे प्रसन्न मुखवाली देवि! वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है; हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईशानलोक प्राप्त करता है॥ ८४-८५॥

हे यशस्विनि! अट्टहासके समीप पश्चिममें पूर्वद्वारपर मित्रावरुण नामक दो लिङ्ग स्थित हैं; उन दोनोंके दर्शनसे मित्रावरुणलोक प्राप्त होता है। वहींपर वसिष्ठेश नामक अन्य प्रसिद्ध लिङ्ग भी विराजमान है॥ ८६-८७॥

पूर्वकालमें [महर्षि] याज्ञवल्क्यने भी लिङ्गको स्थापित किया था; चार मुखोंवाला वह लिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८८॥

वहींपर समीपमें मैत्रेयीके द्वारा स्थापित अन्य शुभ लिङ्ग विद्यमान है; उसके दर्शनसे मनुष्य अति दुर्लभ परम ज्ञान प्राप्त करता है॥ ८९॥

याज्ञवल्क्येश्वरस्यापि पश्चिमे पश्चिमाननम्।
प्रह्लादेश्वरनामानमद्वैतफलदायकम्।
प्रह्लादेश्वरात् पुरतः स्वयंलीनं तु तिष्ठति॥ ९०

स्वर्लीनेश्वरनामानं सुमहाफलदायकम्।
ज्ञानविज्ञाननिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्॥ ९१

या गतिर्विहिता तेषां स्वर्लीने तु मृतस्य च।
स्वर्लीनात् पुरतो लिङ्गं स्थितं पूर्वमुखं शुभम्॥ ९२

वैरोचनेश्वरं नाम स्थापितं दैत्यसूनुना।
तस्य चैवोत्तरे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्मृतम्॥ ९३

बलिना स्थापितं तत्तु शिवालोकपरायणम्।
अन्यच्चैतत् स्थिरं लिङ्गं बाणेश्वर इति स्थितम्॥ ९४

राक्षसी तु महाभीमा नाम्ना शालकटङ्कटा।
तया च स्थापितं भद्रे तस्य चोत्तरतः शुभम्॥ ९५

अन्यदायतनं पुण्यं तस्मिन् स्थाने यशस्विनि।
हिरण्यगर्भं विख्यातं पुण्यं तस्यापि दर्शनम्॥ ९६

मोक्षेश्वरं तु तत्रैव स्वर्गेश्वरमतः परम्।
एतौ दृष्ट्वा सुरेशानि स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥ ९७

वासुकीश्वरनामानं तयोश्चोत्तरतः शुभम्।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम्॥ ९८

तस्यैव पूर्वखण्डे तु वासुकेस्तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नातो वरारोहे रोगैर्नैवाभिभूयते॥ ९९

तस्यैव च समीपे तु चन्द्रेण स्थापितं शुभम्।
चन्द्रेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं विद्येश्वरं शुभम्॥ १००

लभेद्वैद्याधरं लोकं तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ १०१

याज्ञवल्क्येश्वरके भी पश्चिम भागमें पश्चिमकी ओर मुखवाला प्रह्लादेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है; यह अद्वैत फल देनेवाला है। प्रह्लादेश्वरके सामने स्वयंलीन स्वर्लीनेश्वर नामक लिङ्ग विराजमान है; यह अत्यधिक फल प्रदान करनेवाला है। ज्ञान-विज्ञानमें निष्ठ तथा परम आनन्दकी अभिलाषा करनेवालोंकी जो गति होती है, वह गति स्वर्लीन [तीर्थ]-में मरनेवालेकी होती है॥ ९०-९१$^{1}/_{2}$॥

स्वर्लीनके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला वैरोचनेश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थित है; यह दैत्य-पुत्रद्वारा स्थापित किया गया है॥ ९२$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! उसके उत्तरमें भी पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग बताया गया है; शिवालोक प्रदान करनेवाला वह [लिङ्ग] बलिके द्वारा स्थापित किया गया है। वहाँ बाणेश्वर नामक अन्य स्थिर लिङ्ग भी विराजमान है॥ ९३-९४॥

हे भद्रे! शालकटंकटा नामक [एक] महाभयंकर राक्षसी थी, उसके द्वारा उस [बाणेश्वर]-के उत्तरमें शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ९५॥

हे यशस्विनि! हिरण्यगर्भ नामसे प्रसिद्ध अन्य पुण्यप्रद आयतन [लिङ्ग] भी उस स्थानपर विद्यमान है; उसका भी दर्शन पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ ९६॥

हे सुरेशानि! इसके बाद वहींपर मोक्षेश्वर तथा स्वर्गेश्वर विद्यमान हैं; इनका दर्शन करके स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ ९७॥

उन दोनोंके उत्तरमें वासुकीश्वर नामक चार मुखवाला शुभ लिङ्ग स्थित है; वह लिङ्ग समस्त कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ९८॥

उसीके पूर्वभागमें वासुकिका उत्तम तीर्थ विद्यमान है; हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्य रोगोंसे आक्रान्त नहीं होता है॥ ९९॥

उसीके समीपमें चन्द्रमाके द्वारा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। चन्द्रेश्वरके पूर्वमें विद्येश्वर नामक शुभ लिङ्ग विद्यमान है; उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य विद्याधरका लोक प्राप्त करता है॥ १००-१०१॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे अविमुक्तक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'अविमुक्तक्षेत्रमाहात्म्यवर्णन' नामक प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

मातृमण्डल और आकाशलिङ्गका वर्णन

देव्युवाच

कथं वीरेश्वरो देव एतदिच्छामि वेदितुम्।
कथयस्व प्रसादेन देवदेव महेश्वर॥ १

ईश्वर उवाच

इह आसीत्पुरा राजा नियुक्तिर्नाम विश्रुतः।
तस्य भार्या महादेवि अरजा नाम विश्रुता॥ २

एकः पुत्रस्तया जातः कालेन बहुना तदा।
पादे द्वितीये सम्भूते मूलनक्षत्रसंज्ञके॥ ३

मन्त्रिभिश्च तदा देवि उक्ता तत्रेशभामिनी।
जातोऽयं दारको देवि पापनक्षत्रसम्भवः॥ ४

तस्मात्त्याज्यस्तु बालोऽयं राज्ञा चैव हितार्थिना।
एवमुक्ता तु सा देवि मन्त्रिभिर्हितकाम्यया॥ ५

ध्यात्वा चाधोमुखी दीना प्रतिपेदे महेश्वरीम्।
प्रोवाचेदं तदा धात्रीं बालं गृह्णीष्व मा चिरम्॥ ६

स्वर्लीनस्योत्तरे पार्श्वे मातृभ्यश्च समर्पितम्।
रक्षतामिति बालोऽयं मम पुत्र इत्यब्रवीत्॥ ७

राज्ञ्यास्तु वचनं सर्वं कृतं धातृकया तदा।
मातॄणां हि तदा बालं निक्षेप्तुमुपचक्रमे॥ ८

कदाचित्कालपर्याये मातृभिः परिचिन्तितम्।
अस्माकं पुत्रतां प्राप्त एष बालो न संशयः॥ ९

अस्माभिर्गन्तुमारब्धं खेचरीचक्रमुत्तमम्।
ब्रह्माणी चाब्रवीद्देवि योगपीठं तु नीयताम्॥ १०

योगपीठेन दृष्टेन बालो राज्यक्षमो भवेत्।
सर्वाभिर्मातृभिश्चाथ तद्वाक्यमभिनन्दितम्॥ ११

नीतो विद्याधरं लोकं योगपीठं च दर्शितम्।
आश्वासितो मातृगणैः स्पृष्टः तत्र स बालकः॥ १२

कथ्यतां पूर्ववृत्तान्तः पुत्र बालकुमारक।
कस्य त्वं पूर्णचन्द्राभ कथं प्राप्तोऽसि नो गृहम्।
एवमुक्तस्तदा बालो न किञ्चित्प्रत्यभाषत॥ १३

देवी बोलीं—हे देव! वीरेश्वर कैसे उत्पन्न हुए, मैं यह जानना चाहती हूँ; हे देवदेव! हे महेश्वर! आप कृपापूर्वक यह बतायें॥ १॥

ईश्वर बोले—हे महादेवि! इस लोकमें पूर्वकालमें नियुक्ति नामसे प्रसिद्ध [एक] राजा था, उसकी भार्या अरजा नामसे विख्यात थी॥ २॥

बहुत समयके बाद उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मूल नक्षत्रके दूसरे चरणमें उसके उत्पन्न होनेपर मन्त्रियोंने राजाकी पत्नीसे कहा—हे देवि! यह बालक पापनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है, अतः [अपने] कल्याणकी इच्छावाले राजाको इस बालकका त्याग कर देना चाहिये॥ ३–४$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! हितकी कामनासे मन्त्रियोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दुःखी होकर नीचेकी ओर मुख की हुई उस रानीने ध्यान करके महेश्वरीकी शरण ली॥ ५$^{1}/_{2}$॥

तब उसने धात्रीसे यह कहा—तुम बालकको शीघ्र ग्रहण करो और स्वर्लीनके उत्तरभागमें इसे मातृकाओंको समर्पित कर दो तथा [उनसे] कहो कि मेरे इस पुत्रकी रक्षा कीजिये॥ ६–७॥

तदनन्तर धात्रीने रानीके समस्त वचनका पालन किया और उस बालकको मातृकाओंके पास रखनेका उपक्रम किया॥ ८॥

तब किसी समय कालपर्यायसे मातृकाओंने सोचा कि यह बालक हमलोगोंके पुत्रत्वको प्राप्त हो चुका है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ९॥

अब हमलोग उत्तम खेचरीचक्रको जाना आरम्भ करें। इसके बाद हे देवि! ब्रह्माणीने कहा कि इसे योगपीठ ले जाओ, योगपीठके दर्शनसे [यह] बालक राज्य प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। तत्पश्चात् सभी मातृकाओंने उस बातका समर्थन किया॥ १०–११॥

वे उसे विद्याधरलोक ले गयीं और उसे योगपीठका दर्शन कराया। इसके बाद मातृगणोंने उसे आश्वस्त किया और उस बालकसे पूछा—हे पुत्र! हे बालकुमार! अपना पूर्ववृत्तान्त बताओ॥ १२$^{1}/_{2}$॥

हे पूर्णचन्द्रके समान आभावाले! तुम किसके पुत्र हो और हमलोगोंके घर कैसे आये? तब उनके ऐसा कहनेपर उस बालकने कुछ नहीं कहा॥ १३॥

पञ्चमुद्रोवाच

तथा राज्यक्षमो बालस्तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
एवं श्रुत्वा तु तत्सर्वा मातरोऽभिमुखाभवन्॥ १४
एवं भविष्यतीत्युक्त्वा तुष्टो वै खेचरीगणः।
गच्छ पुत्र स्वयं राज्यं पालयस्व यथासुखम्॥ १५
बालेन प्रार्थिताः सर्वाः प्रजाकामेन सुन्दरि।
यदाहं भविता चोर्व्यां सर्वलोकेषु पार्थिवः॥ १६
अवतारस्तदा कार्यो मद्भक्त्या परया तदा।
एवं वै प्रार्थिताः सर्वा मातरो लोकमातरः॥ १७
अवतेरुर्यथायोगं कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्।
पञ्चमुद्रा तु बालं तमनयन्नगरं पुनः॥ १८
आगत्य च यथायोगमर्धरात्रे व्यवस्थितम्।
अवतेरुस्तदा हृष्टाः पञ्चमुद्रा विमातरः॥ १९
बालेन पूजिताः सर्वाः प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
पूजां गृहीत्वा बालस्य आकाशं तु पुनर्गताः॥ २०
अद्यापि दृश्यते व्योम्नि मातॄणां गणमण्डलम्।
निरीक्ष्यते पुण्यकर्मा उत्तराभिमुखं स्थितम्॥ २१
यदेतद्दृश्यते व्योम्नि मातॄणां तु समीपतः।
आकाशलिङ्गमित्युक्तमयं स्वर्लीन उच्यते॥ २२
यथाकाशे तथा भूमौ एवं सर्वत्र दृश्यते।
एवमालोक्य तं सर्वं गगने मातृमण्डलम्॥ २३
मातॄणां तु प्रभावेण नरो भवति सिद्धिभाक्।
ततः प्रभृति देवेशि अस्मिन् क्षेत्रे व्यवस्थिता॥ २४
विपद्भियागता यस्माद्विकटा प्रोच्यते बुधैः।
बालो वीरत्वमापन्नो मत्प्रसादाद्यशस्विनि॥ २५
बालेन चाप्यहं देवि अस्मिन् देशे सुखोषितः॥ २६

पंचमुद्रा बोली—यह बालक जिस भी तरह राज्य करनेमें समर्थ हो, वैसा तुम करो। यह सुनकर वे सभी माताएँ अभिमुख हुईं और बोलीं—'ऐसा ही होगा'—यह कहकर खेचरीसमुदाय प्रसन्न हो गया॥ १४१/२॥

उन्होंने कहा—'हे पुत्र! अब जाओ और सुखपूर्वक अपने राज्यका पालन करो'॥ १५॥

हे सुन्दरि! तब प्रजाकी कामनावाले बालकने सभी माताओंसे प्रार्थना की कि जब मैं पृथ्वीपर सभी लोकोंका राजा बनूँ, तब मेरी परम भक्तिसे आपलोग अवतार ग्रहण करें॥ १६१/२॥

इस प्रकार [उसके द्वारा] प्रार्थित सभी लोकमातृस्वरूपा मातृकाओंने समयानुसार कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथिको अवतार लिया। पंचमुद्रा उस बालकको पुनः नगरमें ले गयीं॥ १७-१८॥

वहाँ आ करके वे यथायोग अर्धरात्रिमें व्यवस्थित हो गयीं। तब पंचमुद्रा तथा विमाताओंने प्रसन्न होकर अवतार लिया॥ १९॥

इसके बाद उस बालकने विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करके सभी माताओंकी पूजा की और बालककी पूजा ग्रहण करके वे पुनः आकाशमें चली गयीं॥ २०॥

मातृगणोंका समूहमण्डल आज भी आकाशमें देखा जाता है। पुण्यकर्मवाला व्यक्ति उत्तराभिमुखस्थित उस मण्डलको देख सकता है॥ २१॥

मातृकाओंके समीप आकाशमें जो यह देखा जाता है, उसे आकाशलिङ्ग कहा गया है; इसीको स्वर्लीन कहा जाता है॥ २२॥

जैसे यह आकाशमें वैसे ही पृथ्वीपर दिखायी पड़ता है; इस प्रकार यह सर्वत्र दिखायी देता है। इस तरह उस सम्पूर्ण मातृमण्डलको आकाशमें देखकर मनुष्य मातृगणोंके प्रभावसे सिद्धिका भागी हो जाता है॥ २३१/२॥

हे देवेशि! उसी समयसे वे देवी इस क्षेत्रमें विराजमान हो गयीं; वे विपत्तिके भयसे आयीं, अतः विद्वान् लोग उन्हें विकटा कहते हैं। हे यशस्विनि! वह बालक मेरी कृपासे वीरत्वसे युक्त हो गया और मैं भी बालकके साथ इस स्थानपर सुखपूर्वक रहने लगा॥ २४—२६॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सगरेश्वर, भद्रेश्वर, शूलेश्वर, नारदेश्वर, वरणेश्वर तथा कोटीश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

वायव्ये तु दिशाभागे तस्य पीठस्य सुन्दरि।
सगरेण पुरा देवि तस्मिन् देशे प्रतिष्ठितम्॥ १

चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम्।
तस्यैवोत्तरपूर्वेण नाम्ना वालीश्वरं शुभम्॥ २

वालिना स्थापितं लिङ्गं कपिना सुमहात्मना।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि तिर्यग्योनिं न गच्छति॥ ३

तस्य चोत्तरदिग्भागे सुग्रीवस्य महात्मनः।
लिङ्गं तस्य शुभं भद्रे सर्वकिल्विषनाशनम्॥ ४

तथा हनुमतात्रैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम्।
सगरात्पश्चिमेनैव लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठितम्॥ ५

मम भक्त्या च सुश्रोणि अश्विभ्यां परमेश्वरि।
तस्यैवोत्तरपार्श्वे तु भद्रदोहमिति स्मृतम्॥ ६

गवां क्षीरेण सञ्जातं सर्वपातकनाशनम्।
कपिलानां सहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
तत्फलं लभते मर्त्यः स्नातस्तत्र न संशयः॥ ७

पूर्वभाद्रपदायुक्ता पौर्णमासी यदा भवेत्।
तदा पुण्यतमः कालो ह्यश्वमेधफलप्रदः॥ ८

ह्रदस्य पश्चिमे तीरे भद्रेश्वरमिति स्थितम्।
तं दृष्ट्वा मानवो भद्रे गोलोकं लभते ध्रुवम्॥ ९

भद्रेश्वरस्य दिग्भागे नैर्ऋते तु यशस्विनि।
उपशान्तशिवं नाम ख्यातं सर्वसुरासुरैः॥ १०

उपशान्तस्य देवस्य उत्तरे वरवर्णिनि।
चक्रेश्वरमिति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ११

पश्चिमाभिमुखं देवि ह्रदस्तस्यैव चाग्रतः।
तस्मिन् ह्रदे नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्॥ १२

शिवलोकमवाप्नोति भावितेनान्तरात्मना।
तस्य पश्चिमदिग्भागे शूलेश्वरमिति स्थितम्॥ १३

ईश्वर बोले—हे सुन्दरि! हे देवि! उस पीठके वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशाभागमें उस स्थानपर पूर्वकालमें सगरके द्वारा चार मुखवाला लिङ्ग स्थापित किया गया है; वह लिङ्ग समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ १$^1/_2$॥

उसीके उत्तर-पूर्वमें परम महात्मा कपि वालिके द्वारा वालीश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य तिर्यक् (पशु-पक्षी)-योनि नहीं प्राप्त करता है॥ २-३॥

उसके उत्तर दिशाभागमें महात्मा सुग्रीवके द्वारा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है; हे भद्रे! वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है और यहींपर हनुमान्‌जीने भी उत्तम लिङ्गकी स्थापना की है॥ ४$^1/_2$॥

हे सुश्रोणि! हे परमेश्वरि! वहींपर सगरेश्वरके पश्चिममें दोनों अश्विनीकुमारोंने भक्तिपूर्वक मेरे लिङ्गकी स्थापना की है॥ ५$^1/_2$॥

उसीके उत्तरभागमें भद्रदोह [लिङ्ग] बताया गया है; गायोंके दुग्धसे निर्मित वह लिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान किया हुआ मनुष्य हजार कपिला गायोंके दानका जो फल होता है, उस फलको प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६-७॥

पूर्वभाद्रपदसे युक्त पूर्णिमा जब हो, उस समयका पुण्यतम काल अश्वमेधयज्ञका फल देनेवाला होता है॥ ८॥

[उस] ह्रद (सरोवर)-के पश्चिम तटपर भद्रेश्वर [लिङ्ग] स्थित है; हे भद्रे! उसका दर्शन करके मनुष्य निश्चित रूपसे गोलोक प्राप्त करता है॥ ९॥

हे यशस्विनि! भद्रेश्वरके नैर्ऋत्य दिशाभागमें उपशान्तशिव नामक लिङ्ग बताया गया है। हे वरवर्णिनि! उपशान्तदेवके उत्तरमें सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत पश्चिमकी ओर मुखवाला चक्रेश्वरलिङ्ग कहा गया है। हे देवि! उसीके आगे [एक] सरोवर है; उस सरोवरमें स्नान करके तथा भक्तियुक्त मनसे महेश्वरकी पूजा करके मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है॥ १०—१२$^1/_2$॥

उसके पश्चिम दिशाभागमें शूलेश्वरलिङ्ग विराजमान

शूलयन्त्रं पुरा न्यस्तं स्नानार्थं वरवर्णिनि।
ह्रदस्तत्र समुत्पन्नो देवदेवस्य चाग्रतः॥ १४

स्नानं कृत्वा ह्रदे तस्मिन् दृष्ट्वा शूलेश्वरं प्रभुम्।
रुद्रलोकमवाप्नोति त्यक्त्वा संसारसागरम्॥ १५

है; पूर्वकालमें वहाँ शूलयन्त्र स्थापित किया गया है। हे वरवर्णिनि! वहाँ देवदेवके समक्ष स्नानके लिये ह्रद उत्पन्न हुआ है; उस ह्रदमें स्नान करके तथा भगवान् शूलेश्वरका दर्शनकर मनुष्य संसार-सागरका त्याग करके रुद्रलोक प्राप्त करता है॥ १३—१५॥

शूलेश्वरस्य पूर्वेण अन्यदायतनं शुभम्।
तप्तं तत्र तपस्तीव्रं नारदेन सुरर्षिणा॥ १६

स्थापितं मम लिङ्गं तु कुण्डस्य पुरतः शुभम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै नारदेश्वरम्॥ १७

संसारमाया या घोरा तां तरेन्नात्र संशयः।

शूलेश्वरके पूर्वमें दूसरा शुभ आयतन (तीर्थ) स्थित है, देवर्षि नारदने वहाँ घोर तपस्या की थी। कुण्डके सामने मेरा [एक] शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। उस कुण्डमें स्नान करके नारदेश्वरका दर्शन करके मनुष्य जो घोर संसारमाया है, उसे पार कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६-१७$^1/_2$॥

नारदेशस्य पूर्वेण नाम्ना धर्मेश्वरं शुभम्॥ १८

स्थापितं मम लिङ्गं तु कुण्डस्य पुरतः शुभे।
वायव्ये तु दिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि॥ १९

विनायकमिति ख्यातं कुण्डं तत्र शुभोदकम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैव विनायकम्॥ २०

सर्वविघ्नविनिर्मुक्तो ह्यस्मिन् क्षेत्रे वसेच्चिरम्।

हे शुभे! नारदेश्वरके पूर्वमें तथा कुण्डके सामने ही धर्मेश्वर नामक मेरा शुभ लिङ्ग स्थापित किया गया है। हे सुन्दरि! उन देवके वायव्य (पश्चिम-उत्तर) दिशाभागमें विनायक बताये गये हैं, वहाँपर पवित्र जलवाला एक कुण्ड है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा विनायकका दर्शनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर इस क्षेत्रमें चिरकालतक वास करता है॥ १८—२०$^1/_2$॥

विनायकस्य संलग्न उत्तरेण यशस्विनि॥ २१

ह्रदस्तत्र सुविख्यातोऽमरको नाम नामतः।
दक्षिणेन तु कुण्डस्य मुखलिङ्गं तु तिष्ठति॥ २२

तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चामरकेश्वरम्।
अज्ञानाच्चैव यत्किञ्चिदिह क्षेत्रे तु यत्कृतम्॥ २३

विलयं याति तत्सर्वं दृष्ट्वा तल्लिङ्गमुत्तमम्।

हे यशस्विनि! विनायकके समीपमें उत्तर दिशामें वहाँपर अति प्रसिद्ध ह्रद है और उस कुण्डके दक्षिणमें अमरक नामसे विख्यात मुखलिङ्ग स्थित है; उस कुण्डमें स्नान करके और उस उत्तम अमरकेश्वरलिङ्गका दर्शन करके [मनुष्यके द्वारा] इस क्षेत्रमें अज्ञानपूर्वक जो भी [पाप] किया गया रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है॥ २१-२३$^1/_2$॥

तस्य चोत्तरदिग्भागे नातिदूरे यशस्विनि॥ २४

वरणायास्तटे शुद्धे लिङ्गं तत्रैव संस्थितम्।
वरणेश्वरं तु विख्यातं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ २५

हे यशस्विनि! उसके उत्तर दिशामें वहींपर समीपमें ही वरणाके पवित्र तटपर एक लिङ्ग स्थित है; वरणेश्वर नामसे विख्यात वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ २४-२५॥

तस्मिन् पाशुपतः सिद्ध अश्वपादो यशस्विनि।
अनेनैव शरीरेण शाश्वतीं सिद्धिमागतः॥ २६

हे यशस्विनि! अश्वपाद नामक सिद्ध पाशुपत उसमें इसी शरीरसे शाश्वत सिद्धिको प्राप्त हुए हैं॥ २६॥

ममापि तत्र सान्निध्यं तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि गन्धर्वत्वं च विन्दति॥ २७

हे यशस्विनि! वहाँ उस लिङ्गमें [सदा] मेरा भी सान्निध्य रहता है; हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे गन्धर्वत्वकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

तस्य पश्चिमदिग्भागे नाम्ना शैलेश्वरं शुभम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि पूर्वोक्तं लभते फलम्॥ २८

हे देवि! उसके पश्चिम दिशाभागमें शैलेश्वर नामक शुभ लिङ्ग है; उसका दर्शन करके मनुष्य पूर्वोक्त [समस्त] फल प्राप्त करता है॥ २८॥

दक्षिणे चापि तस्यैव कोटीश्वरमिति स्थितम्।
यत्र सा दृश्यते देवि विश्रुता भीष्मचण्डिका॥ २९

बीभत्सविकृते भीमे श्मशाने वसते सदा।
तेन सा प्रोच्यते देवि विश्रुता भीष्मचण्डिका॥ ३०

कोटितीर्थेषु यः स्नात्वा कोटीश्वरमथार्चयेत्।
गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥ ३१

तत्फलं सकलं तस्य स्नानेनैकेन सुन्दरि।
कोटीश्वरस्य पूर्वेण ऋषिसङ्घैः प्रतिष्ठितम्॥ ३२

तेन लिङ्गेन दृष्टेन दृष्टं स्यात् सचराचरम्॥ ३३

हे देवि! उसीके दक्षिणमें कोटीश्वर [नामक] लिङ्ग भी स्थित है, जहाँ वे प्रसिद्ध भीष्मचण्डिका दिखायी देती हैं॥ २९॥

हे देवि! वे सदा बीभत्स रूपवाले भयानक श्मशानमें वास करती हैं, इसलिये वे प्रसिद्ध भीष्मचण्डिका कही जाती हैं॥ ३०॥

कोटितीर्थोंमें स्नान करके कोटीश्वरका पूजन करना चाहिये। हे सुन्दरि! मनुष्य करोड़ों गायोंके दानसे जो फल प्राप्त करता है, वह सम्पूर्ण फल उसे यहाँपर मात्र एक बार स्नान करनेसे प्राप्त हो जाता है॥ ३१ $^{1}/_{2}$॥

कोटीश्वरके पूर्वमें ऋषियोंके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है; उस लिङ्गके दर्शनसे चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगत हो जाता है॥ ३२-३३॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

कपालमोचन, ऋणमोचन एवं कपिलेश्वर आदि तीर्थोंका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

कोटीश्वरस्य देवस्य आग्नेय्यां दिशि संस्थितः।
श्मशानस्तम्भसंज्ञेति विख्यातः सुप्रतिष्ठितः॥ १

मानवास्तत्र पात्यन्ते इह यैर्दुष्कृतं कृतम्।
यत्र स्तम्भे सदा देवि अहं तिष्ठामि भामिनि॥ २

तत्र गत्वा तु यः पूजां मम देवि करिष्यति।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेच्च परमां गतिम्॥ ३

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि महातीर्थं यशस्विनि।
कपालमोचनं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ४

कपालं पतितं तत्र स्नातस्य मम सुन्दरि।
तस्मिन् स्नातो वरारोहे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ५

कपालेश्वरनामानं तस्मिंस्तीर्थे व्यवस्थितम्।
अश्वमेधमवाप्नोति दर्शनात्तस्य सुन्दरि॥ ६

तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा वरारोहे ऋणैर्मुक्तो भवेन्नरः॥ ७

ईश्वर बोले—देवकोटीश्वरके आग्नेय दिशामें प्रसिद्ध तथा सुप्रतिष्ठित श्मशानस्तम्भ स्थित है। वहाँपर वे मनुष्य गिराये जाते हैं, जिन्होंने इस लोकमें बुरा कर्म किया है॥ १ $^{1}/_{2}$॥

हे भामिनि! हे देवि! मैं उस स्तम्भमें सदा विराजमान हूँ। हे देवि! वहाँ जाकर जो मेरी पूजा करेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जायगा और परम गति प्राप्त करेगा॥ २-३॥

हे यशस्विनि! अब मैं तुम्हें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कपालमोचन नामक महातीर्थके विषयमें बताऊँगा॥ ४॥

हे सुन्दरि! वहाँ स्नान करते हुए मेरा कपाल गिर पड़ा था; हे वरारोहे! उसमें स्नान करनेवाला ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है॥ ५॥

उस तीर्थमें कपालेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है; हे सुन्दरि! उसके दर्शनसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ६॥

उसीके उत्तरमें पासमें ही त्रैलोक्यप्रसिद्ध एक तीर्थ है, हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्य [सभी] ऋणोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

ऋणमोचनकं नाम्ना विख्यातं भुवि सुन्दरि।
त्रीणि लिङ्गानि तिष्ठन्ति तत्रैव मम सुन्दरि॥ ८
तानि दृष्ट्वा तु सुश्रोणि नश्यति त्रिविधम् ऋणम्।
दक्षिणे तु दिशाभागे तस्य तीर्थस्य सुन्दरि॥ ९
अङ्गारेश्वरनामानं मुखलिङ्गं व्यवस्थितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवि कुण्डस्य पुरतः स्थितम्॥ १०
अङ्गारेण यदा योगश्चतुर्थ्यामष्टमीषु वा।
तीर्थे तस्मिन्नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मङ्गलेश्वरम्॥ ११
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तो यत्र तत्राभिजायते।
तस्यैव च समीपस्थमुत्तरेण यशस्विनि॥ १२
लिङ्गं तु सुमहत् पुण्यं विश्वकर्मप्रतिष्ठितम्।
पश्चिमाभिमुखं दृष्ट्वा सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात्॥ १३
बुधेश्वरं तु तत्रैव दृष्ट्वा भक्त्या दृढव्रतः।
सर्वान् कामानवाप्नोति दृष्ट्वा देवं बुधेश्वरम्॥ १४
बुधेश्वराद्दक्षिणतो लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्।
महामुण्डेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ १५
तस्य देवस्य पुरतः कूपस्तिष्ठति वै शुभः।
तस्य कूपस्य सा देवी उपरिष्टात् स्थिता शुभा॥ १६
स्नानार्थं तत्र सा क्षिप्ता माला मुण्डमयी मया।
तेन सम्प्रोच्यते देवि महामुण्डेति मानवैः॥ १७
खट्वाङ्गं तत्र वै क्षिप्तं स्नानार्थं वरवर्णिनि।
खट्वाङ्गेश्वर नाम्ना तु स्थितं तत्रैव सुव्रते॥ १८
भुवनेश्वरनाम्ना तु लिङ्गं देवि फलप्रदम्।
उत्तराभिमुखं लिङ्गं कुण्डाद्वै दक्षिणे तटे॥ १९
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै भुवनेश्वरम्।
न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते॥ २०
दक्षिणे भुवनेशस्य कुण्डमन्यच्च तिष्ठति।
नाम्ना विमलमीशं च लिङ्गं तस्यैव पूर्वतः॥ २१
वैमल्यं तु नरा यान्ति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्।
तत्र स्नात्वा वरारोहे मोदते दिवि दैवतैः॥ २२

हे सुन्दरि! वह [तीर्थ] ऋणमोचन नामसे पृथ्वीलोकमें विख्यात है। हे सुन्दरि! वहींपर मेरे तीन लिङ्ग स्थित हैं; हे सुश्रोणि! उनका दर्शन करनेसे तीनों प्रकारके ऋण विनष्ट हो जाते हैं॥ ८१/२॥

हे सुन्दरि! उस तीर्थके दक्षिण दिशाभागमें अंगारेश्वर नामक मुखलिङ्ग विराजमान है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके सामने स्थित है॥ ९-१०॥

जब अंगार [मंगल]-के साथ चतुर्थी अथवा अष्टमीका योग हो, तब उस तीर्थमें स्नान करके तथा मंगलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी रहे, व्याधियोंसे पूर्णतः मुक्त हो जाता है॥ १११/२॥

हे यशस्विनि! इसीके समीप उत्तर दिशामें विश्वकर्माके द्वारा स्थापित महापुण्यप्रद पश्चिमाभिमुख लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लेता है॥ १२-१३॥

वहींपर देव बुधेश्वरका भक्तिपूर्वक दर्शन करके दृढ व्रतवाला भक्त सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ १४॥

बुधेश्वरके दक्षिणमें सभी सिद्धियोंको देनेवाला महामुण्डेश्वर नामक चतुर्मुखलिङ्ग है॥ १५॥

उन देवके समक्ष [एक] शुभ कूप विद्यमान है, उस कूपके ऊपर वे कल्याणमयी देवी विराजमान हैं। स्नानके लिये वहाँ मेरे द्वारा वह मुण्डमयी माला प्रक्षिप्त की गयी है, अतः हे देवि! मनुष्य उन्हें महामुण्डा कहते हैं॥ १६-१७॥

हे वरवर्णिनि! स्नानहेतु वहींपर खट्वांग भी प्रक्षिप्त किया गया है; हे सुव्रते! वहींपर खट्वांगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १८॥

हे देवि! वहाँ कुण्डके दक्षिण तटपर भुवनेश्वर नामक फलदायक लिङ्ग विराजमान है; वह लिङ्ग उत्तरकी ओर मुखवाला है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा भुवनेश्वरका दर्शन करके मनुष्य दुर्गति नहीं प्राप्त करता है और पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९-२०॥

भुवनेश्वरके दक्षिणमें एक अन्य कुण्ड भी स्थित है, उसीके पूर्वमें विमलीश नामक लिङ्ग है॥ २१॥

उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। हे वरारोहे! वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्दित रहता है॥ २२॥

तस्मिन् पाशुपतः सिद्धस्त्र्यम्बको नाम वै मुनिः।
अनेनैव शरीरेण रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ २३
तस्याङ्गारककुण्डस्य पश्चिमेन यशस्विनि।
महदायतनं पुण्यं भृगुणा स्थापितं पुरा॥ २४
यस्तदायतनं दृष्ट्वा अर्चितं स्तुतिपूर्वकम्।
शिवलोकाच्च ते पुण्यान्न च्यवन्ति कदाचन॥ २५
दक्षिणेन तु तस्यैव अन्यदायतनं शुभम्।
नन्दीशेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ २६
तस्य दर्शनमात्रेण व्रतं पाशुपतं लभेत्।
तत्र सिद्धो महात्मा वै कपिलर्षिर्महातपाः॥ २७
त्रिकालमर्चयद्देवं गुहाशायी यतात्मवान्।
एवं वर्षसहस्रेण तस्य तुष्टोऽस्म्यहं प्रिये॥ २८
मम देवि प्रसादेन साङ्ख्यवेत्ता महायशाः।
कपिलेश्वरस्याधस्ताद्गुहा तत्रैव संस्थिता।
तां गुहां वीक्षते यो वै न स पापेन लिप्यते॥ २९

देव्युवाच

कपिलेश्वरं कथं देवमोङ्कारेश्वरसंज्ञितम्।
कथयस्व प्रसादेन देवदेव महेश्वर॥ ३०

ईश्वर उवाच

त्रीणि लिङ्गानि गुह्यानि वाराणस्यां मम प्रिये।
येषां चैव तु सान्निध्यं मम चैव सुरेश्वरि॥ ३१
एवं चान्यप्रकारेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
क्रमान्मात्रा समुद्दिष्टा नन्दीशस्य तु सुन्दरि॥ ३२
अकारे च स्थितो विष्णुः पञ्चायतनसंस्थितः।
उकारो ब्रह्मणो रूपं तस्य दक्षिणतः प्रिये॥ ३३
नन्दीशेश्वरनामाहमुत्तरेण व्यवस्थितः।
तं च देवि तदोङ्कारं मम रूपं सुरेश्वरि॥ ३४
मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
मत्स्योदर्यास्तु कूलेऽहमुत्तरे चोत्तरे प्रिये॥ ३५
नन्दीशेश्वरनामाहमुत्तरेण व्यवस्थितः।
नन्दीशं परमं ब्रह्म नन्दीशं परमा गतिः॥ ३६
नन्दीशं परमं स्थानं दुःखसंसारमोचनम्।
अप्रकाश्यमिदं कान्ते तव स्नेहात् प्रकाशितम्॥ ३७
अन्यथा गोपनीयं तु मम भक्तिविवर्जिते।
युगे सप्तदशे देवि कृत्वा चैकां वसुन्धराम्॥ ३८

उस स्थानपर त्र्यम्बक नामक सिद्ध पाशुपतमुनिने इसी शरीरसे रुद्रलोक प्राप्त किया था॥ २३॥

हे यशस्विनि! उस अंगारककुण्डके पश्चिममें पूर्वकालमें महर्षि भृगुके द्वारा [एक] पुण्यप्रद विशाल आयतन (लिङ्ग) स्थापित किया गया है। उस लिङ्गका दर्शन करके जो लोग स्तुतिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं, वे पुण्यमय शिवलोकसे कभी च्युत नहीं होते हैं॥ २४-२५॥

उसीके दक्षिणमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ नन्दीशेश्वर नामक अन्य शुभ लिङ्ग स्थित है; उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पाशुपतव्रत प्राप्त करता है। वहाँपर सिद्ध, महात्मा तथा महातपस्वी ऋषि कपिलने गुहामें रहकर जितेन्द्रिय होकर शिवजीकी त्रिकाल पूजा की थी, हे प्रिये! इस प्रकार एक हजार वर्षके अनन्तर मैं उनपर प्रसन्न हो गया और हे देवि! मेरी कृपासे वे महायशस्वी सांख्यवेत्ता हो गये। वहींपर कपिलेश्वरके नीचे [वह] गुहा स्थित है; जो उस गुहाका दर्शन करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है॥ २६—२९॥

देवी बोलीं—हे देवदेव! हे महेश्वर! देव कपिलेश्वर किस प्रकार ओंकारेश्वर नामवाले हुए? कृपापूर्वक इसे बताइये॥ ३०॥

ईश्वर बोले—हे प्रिये! हे सुरेश्वरि! वाराणसीमें मेरे तीन गुह्य लिङ्ग हैं, जिनमें मेरा सदा सान्निध्य रहता है॥ ३१॥

हे सुन्दरि! इस प्रकार क्रमसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वररूप तीन मात्राएँ नन्दीश्वरकी कही गयी हैं॥ ३२॥

पंचायतनमें विराजमान विष्णु अकारमें स्थित हैं और हे प्रिये! ब्रह्माका रूप उकार उनके दक्षिणमें है॥ ३३॥

मैं नन्दीशेश्वर नामसे उत्तरमें स्थित हूँ। हे देवि! हे सुरेश्वरि! वही ओंकार मेरा रूप है, मनुष्योंके कल्याणके लिये मैं उस स्थानपर विराजमान हूँ॥ ३४$^1/_2$॥

हे प्रिये! मैं मत्स्योदरीके उत्तर तटपर उत्तर दिशामें नन्दीशेश्वर नामसे स्थित हूँ। नन्दीश परम ब्रह्म हैं, नन्दीश परम गति हैं, नन्दीश परम पद हैं और वे दुःखरूप सागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं॥ ३५-३६$^1/_2$॥

हे कान्ते! यह रहस्य [सर्वथा] अप्रकाश्य है, मैंने तुम्हारे स्नेहके कारण इसे बताया है, मेरी भक्तिसे रहित व्यक्तिसे इसे गुप्त रखना चाहिये। हे देवि! सत्रहवें युगमें

संहारं तु तपः कृत्वा अस्मिन् देशे समागतः।
ओङ्कारमूर्तिमास्थाय त्रिभेदेन स्थितो ह्यहम्॥ ३९

सर्वेषामेव सिद्धानां तत् स्थानं परिकीर्तितम्।
तस्मिँल्लिङ्गं शिवः साक्षात् स्वयमेव व्यवस्थितः॥ ४०

पूर्वामुखं तु तं देवं सिद्धसङ्घैः प्रपूजितम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ ४१

वामदेवस्तु सावर्णिरघोरः कपिलस्तथा।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्ता योगे पाशुपते स्थिताः॥ ४२

अन्ये च ऋषयो देवा यक्षगन्धर्वगुह्यकाः।
युगे युगे गमिष्यन्ति तस्मिन् स्थाने स्थितः सदा॥ ४३

दिव्या हि सा परा मूर्तिः कपिलेश्वरसंज्ञिता।
कदाचिदस्य देवस्य दर्शने जाह्नवी प्रिये॥ ४४

मत्स्योदरीं समायाति तत्र स्नानं तु मोक्षदम्।
आराध्य कपिलेशं तु त्रैलोक्यपालनक्षमाः॥ ४५

भवन्ति पुरुषा देवि मम नित्यं च वल्लभाः।
ओङ्कारं तत्परं ब्रह्म सकलं निष्कलं स्थितम्॥ ४६

रुद्रलोकस्य तद्द्वारं रहस्यं परिकीर्तितम्।
कपिलेश्वरस्याधस्ताद्दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ४७

मत्स्योदरीं समेष्यन्ति तीर्थानि सह सागरैः।
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च॥ ४८

पक्षे पक्षे समेष्यन्ति चतुर्दश्यष्टमीषु च।
मत्स्योदर्यां यदा गङ्गा पश्चिमे कपिलेश्वरे॥ ४९

समायाति महादेवि स च योगः सुदुर्लभः।
तस्मिन् स्नानं महाभागे अश्वमेधसहस्रदम्॥ ५०

तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं कपिलेशस्य कीर्तितम्।
न कस्यचिद्देयं च गोपनीयं प्रयत्नतः॥ ५१

तत्रैव अक्षरं ब्रह्म नादेयं परिकीर्तितम्॥ ५२

सम्पूर्ण पृथ्वीको एक करके (जलाप्लावित करके) तथा संहाररूप तप करके मैं इस स्थानपर आ गया और ओंकाररूप धारणकर तीन रूपोंमें स्थित हो गया हूँ॥ ३७—३९॥

वह सभी सिद्धोंका स्थान कहा गया है। उस लिङ्गमें स्वयं साक्षात् शिव विराजमान हैं॥ ४०॥

पूर्वकी ओर मुखवाला वह ओंकारेश्वर नामक लिङ्ग सिद्धोंके द्वारा पूजित है तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ४१॥

वहाँपर वामदेव, सावर्णि, अघोर तथा कपिल पाशुपतयोगमें स्थित होकर परम सिद्धिको प्राप्त हुए॥ ४२॥

अन्य ऋषि, देवता, यक्ष, गन्धर्व तथा गुह्यक युग-युगमें उस स्थानपर जायँगे, मैं सदा वहाँ स्थित रहूँगा। कपिलेश्वर नामक वह मूर्ति परम दिव्य है॥ ४३½॥

हे प्रिये! कभी-कभी इन प्रभुके दर्शनके लिये गंगा मत्स्योदरी स्थानपर आती हैं, वहाँ स्नान करना मोक्षदायक होता है॥ ४४½॥

हे देवि! कपिलेश्वरकी आराधना करके मनुष्य तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाते हैं और सदा मेरे प्रिय बने रहते हैं। वे ओंकारेश्वर परब्रह्म हैं और निष्कल होते हुए भी सकल (साकार)-रूपमें स्थित हैं॥ ४५-४६॥

वह लिङ्ग रुद्रलोकका रहस्यमय द्वार कहा गया है। हे वरवर्णिनि! कपिलेश्वरके नीचे दक्षिणमें मत्स्योदरीमें साठ हजार करोड़ तथा साठ सौ करोड़ तीर्थ सभी सागरोंके साथ प्रत्येक पक्षकी अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथिको आते हैं॥ ४७-४८½॥

हे महादेवि! जब कपिलेश्वरके पश्चिममें मत्स्योदरीमें गंगा आती हैं, तब वह योग परम दुर्लभ होता है, हे महाभागे! उसमें [किया गया] स्नान हजार अश्वमेधयज्ञका फल देनेवाला होता है॥ ४९-५०॥

[हे देवि!] उस कपिलेश्वरलिङ्गका माहात्म्य कह दिया गया। इसे जिस किसीको नहीं बताना चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये, वहींपर नादेय अक्षर ब्रह्म कहा गया है॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे कपिलेश्वरमाहात्म्ये ओङ्कारनिर्णयो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'कपिलेश्वरमाहात्म्यमें ओंकारनिर्णय' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

कपिलेश्वरमें सिद्धि प्राप्त करनेवाले मुनियोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

तत्र स्थाने तु ये सिद्धास्तान् प्रवक्ष्याम्यहं पुनः।
महापाशुपता श्रेष्ठा मम पुत्रा महौजसः॥ १

अनन्यमनसः शुद्धाः सेवितोऽहं पुरा सदा।
शीतातपविनिर्मुक्तं प्रासादैरुपशोभितम्॥ २

कैलासपृष्ठे देवस्य यादृग्देवि गृहं शुभम्।
तदभ्यधिकरूपं तु कृत्वा देवस्य मन्दिरम्॥ ३

सेव्यते सिद्धतुल्यैस्तु सर्वसिद्धानुकम्पिभिः।
तदा सिद्धिरनुप्राप्ता निर्वाणाया गतिः पुरा॥ ४

कपिलेश्वरस्य चैवाग्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्मृतम्।
उद्दालक ऋषिस्तत्र सिद्धिं परमिकां गतः॥ ५

अन्यत् पश्चान्मुखं लिङ्गं स्थितं तत्र तथोत्तरे।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धः पाराशर्यो महामुनिः॥ ६

अन्यत्तत्रैव संलग्ने स्थितं पश्चान्मुखं शुभम्।
तस्मिन्नायतने सिद्धो महाज्ञानी हि बाष्कलिः॥ ७

तस्यैव तु समीपस्थं स्थितं पूर्वामुखं प्रिये।
तत्र पाशुपतः सिद्धो भाववृत्तस्तु वै मुनिः॥ ८

तस्यैव पश्चिमे देवि मुखलिङ्गं तु तिष्ठति।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्त अरुणिर्नाम नामतः॥ ९

पश्चिमे अरुणीशस्य अन्यल्लिङ्गं तु तिष्ठति।
अस्मिन् पाशुपताचार्यो योगसिद्धो महामुनिः॥ १०

अन्यत्तत्रैव संलग्नं दक्षिणे लिङ्गमुत्तमम्।
तत्र सिद्धिं गतो देवि कौस्तुभो नाम वै ऋषिः॥ ११

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
महापाशुपतः सिद्धः सावर्णिस्तत्र वै मुनिः॥ १२

तस्याग्रे तु महल्लिङ्गं स्थितं पूर्वामुखं शुभम्।
अस्मिँल्लिङ्गे शिवः साक्षात् स्वयमेव व्यवस्थितः॥ १३

ईश्वर बोले—[हे देवि!] उस स्थानमें जो सिद्ध हुए हैं, अब मैं उनके विषयमें बताऊँगा। महापाशुपत, श्रेष्ठ, महातेजस्वी, अनन्य चित्तवाले तथा विशुद्धात्मा मेरे पुत्र वहाँ रहते हैं, उन्होंने पूर्वकालमें सदा मेरी सेवा की थी॥ १$^{1}/_{2}$॥

हे देवि! कैलासशिखरपर शीत-आतपसे रहित तथा महलोंसे सुशोभित भगवान् शिवका जैसा सुन्दर भवन है, उससे भी अधिक रूपवाला शिवमन्दिर बनाकर सिद्धतुल्य तथा सभी सिद्धोंपर अनुकम्पा करनेवालोंके द्वारा वह स्थान सेवित होता है, उस समय जो निर्वाणगति है, उन्होंने उस सिद्धिको प्राप्त किया॥ २—४॥

कपिलेश्वरके आगे पश्चिमाभिमुख लिङ्ग बताया गया है, वहाँ ऋषि उद्दालक परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे॥ ५॥

वहाँ उत्तर दिशामें पश्चिमकी ओर मुखवाला दूसरा लिङ्ग भी स्थित है, उस लिङ्गमें महामुनि पाराशर्य (व्यास) पूर्ण रूपसे सिद्ध हुए॥ ६॥

वहींपर समीपमें पश्चिमकी ओर मुखवाला दूसरा शुभ लिङ्ग विराजमान है, उस स्थानपर बाष्कलि [मुनि] सिद्ध तथा महाज्ञानी हुए॥ ७॥

हे प्रिये! उसीके समीपमें [अन्य] पूर्वमुख लिङ्ग स्थित है, वहाँ पशुपतिके भक्त मुनि भाववृत्त सिद्ध हुए॥ ८॥

हे देवि! उसीके पश्चिममें मुखलिङ्ग स्थित है, वहाँ अरुणि नामवाले ऋषिने परम सिद्धि प्राप्त की॥ ९॥

अरुणीशके पश्चिममें दूसरा लिङ्ग भी स्थित है, यहाँपर महामुनि पाशुपताचार्य योगमें सिद्ध हुए। वहींपर दक्षिण दिशामें समीपमें ही एक दूसरा उत्तम लिङ्ग विराजमान है, हे देवि! वहाँपर कौस्तुभ नामक ऋषिने सिद्धि प्राप्त की॥ १०-११॥

उसके दक्षिण भागमें पूर्वकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, वहाँ महापाशुपत मुनि सावर्णि सिद्ध हुए॥ १२॥

उसके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला महान् तथा

ओङ्कारमूर्तिमास्थाय स्थितोऽहं तत्र सुव्रते।
चत्वारो मुनयः सिद्धास्तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि॥ १४

वामदेवस्तु सावर्णिरघोरः कपिलस्तथा।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धा नन्दीशस्य प्रभावतः॥ १५

तस्य देवस्य चाधस्ताद्गुहा सिद्धैस्तु वन्दिता।
श्रीमुखी नाम सा ज्ञेया योगसिद्धैस्तु सेविता॥ १६

तत्र पाशुपताः श्रेष्ठा मम लिङ्गार्चने रताः।
तेषां चैव निवासार्थं सा गुहा निर्मिता मया॥ १७

तस्य द्वारे तु सुश्रोणि सिद्ध अघोरो महामुनिः।
अनेनैव शरीरेण रुद्रत्वं गतवान् मुनिः॥ १८

तत्र गत्वा त्रिरात्रं तु क्षपयेदेकमानसः।
नरो वा यदि वा नारी संसारं न विशेत् पुनः॥ १९

अघोरेश्वरदेवस्य चोत्तरे कूपमुत्तमम्।
तस्योपस्पर्शनाद्देवि वाजपेयं च विन्दति॥ २०

उत्तम लिङ्ग स्थित है। इस लिङ्गमें स्वयं साक्षात् शिव व्यवस्थित हैं, हे सुव्रते! मैं ओंकारमूर्ति धारण करके वहाँ स्थित हूँ। हे यशस्विनि! उस लिङ्गमें चार मुनि सिद्ध हुए हैं। वामदेव, सावर्णि, अघोर तथा कपिल उस लिङ्गमें नन्दीशके प्रभावसे सिद्ध हुए॥ १३-१५॥

उन प्रभुके नीचे सिद्धोंद्वारा वन्दित एक गुहा है, योगसिद्धोंके द्वारा सेवित उस गुहाको श्रीमुखी नामवाली जानना चाहिये॥ १६॥

वहाँ श्रेष्ठ पाशुपत [भक्त] मेरे लिङ्गार्चनमें संलग्न रहते हैं, मैंने उन्हींके निवासके लिये उस गुहाका निर्माण किया है॥ १७॥

हे सुश्रोणि! उसके द्वारपर महामुनि अघोर सिद्ध हुए हैं, वे मुनि इसी शरीरसे रुद्रत्वको प्राप्त हुए॥ १८॥

वहाँ जाकर कोई पुरुष अथवा स्त्री यदि एकाग्रचित्त होकर [उपवासपूर्वक] तीन रात व्यतीत करे, तो वह पुनः संसारमें प्रवेश नहीं करता है॥ १९॥

अघोरेश्वरदेवके उत्तरमें एक उत्तम कूप स्थित है, हे देवि! उसमें स्नान करनेसे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है॥ २०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

श्रीकण्ठ, ओंकारेश्वर और बृहस्पतीश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
यत्र साक्षात्स्वयं भद्रे रममाणं तु सर्वदा॥ १

मत्स्योदरीतटे रम्ये सुरसिद्धनमस्कृते।
रोचते मे सदा वासस्तस्मिन्नायतने शुभे॥ २

स्थानानामेव सर्वेषामतिरम्यं मम प्रियम्।
यत्र पाशुपता देवि मम लिङ्गार्चने रताः॥ ३

मम पुत्रास्तु ते सर्वे ब्रह्मचर्येण संयुताः।
शान्ता दान्ता जितक्रोधा सिद्धास्तत्र न संशयः॥ ४

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! हे भद्रे! अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य आयतनका वर्णन करूँगा, जहाँ सर्वदा साक्षात् स्वयं मैं विहार करता हूँ॥ १॥

मत्स्योदरीके मनोहर तटपर देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा नमस्कृत उस शुभ आयतनमें सदा निवास करना मुझे अच्छा लगता है॥ २॥

हे देवि! वह सभी स्थानोंसे अधिक रम्य तथा मुझे [अत्यन्त] प्रिय है, जहाँ पशुपतिके भक्त मेरे लिङ्गार्चनमें रत रहते हैं। वहाँ ब्रह्मचर्यसे युक्त, शान्त, जितेन्द्रिय तथा क्रोधपर विजय प्राप्त किये हुए वे मेरे सभी पुत्र सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३-४॥

लोभादिविषयासक्तो नरकाच्च निवर्तते।
मम लिङ्गानि पुण्यानि पूजयति सदात्र यः॥ ५

यहाँपर जो सदा मेरे पुण्यप्रद लिङ्गकी पूजा करता है, वह लोभ आदि विषयोंमें आसक्त होनेपर भी नरकसे छूट जाता है॥ ५॥

तेषां मध्ये तु तत्रैव लिङ्गं वै पश्चिमामुखम्।
श्रीकण्ठनाम विख्यातं कपिलेश्वरदक्षिणे॥ ६

तस्मिन् पाशुपतः सिद्धः क्रतुध्वज इति स्मृतः।
मम चैव प्रसादेन योगैश्वर्यमवाप्नुयात्॥ ७

उनके मध्यमें वहींपर कपिलेश्वरके दक्षिणमें श्रीकण्ठ नामसे विख्यात पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसमें पाशुपत क्रतुध्वज सिद्ध हुए हैं—ऐसा कहा गया है, और उन्होंने मेरी कृपासे योगैश्वर्य प्राप्त किया था॥ ६-७॥

तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पूर्वमुखं स्थितम्।
तस्मिँल्लिङ्गे तु जाबालः सिद्धिं परमिकां गतः॥ ८

हे भद्रे! उसीके आगे पूर्वकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गमें [ऋषि] जाबाल परम सिद्धिको प्राप्त हुए॥ ८॥

अपरं चैव लिङ्गं तु तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं देवानामपि दुर्लभम्॥ ९

तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो मुनिः कालिकवृक्षियः।
सर्वेषामेव सिद्धानामुत्तमोत्तमसंस्थितः॥ १०

उसके दक्षिणमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ ओंकारेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग स्थित है, वहाँ मुनि कालिकवृक्षिय परम सिद्धिको प्राप्त हुए और सभी सिद्धोंमें श्रेष्ठतम हो गये॥ ९-१०॥

तस्यैव दक्षिणे भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
तस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धो गार्ग्यश्च सुमहातपाः॥ ११

हे भद्रे! उसीके दक्षिणमें पश्चिमकी ओर मुखवाला [एक] लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गमें परम तपस्वी गार्ग्य सिद्ध हुए हैं॥ ११॥

पञ्चायतनमेतं ते मया च कथितं शुभे।
न कस्यचिन्मयाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम्॥ १२

हे शुभे! मैंने तुमसे इस पंचायतनका वर्णन किया, मैंने इस अत्यन्त अद्भुत रहस्यको किसीको भी नहीं बताया है॥ १२॥

पञ्चब्रह्मेति विख्यातमेतदद्यापि सुन्दरि।
एतस्मात्कारणाद्देवि पञ्चायतनमुच्यते॥ १३

हे सुन्दरि! यह आज भी पंचब्रह्म नामसे विख्यात है, हे देवि! इसी कारणसे इसे पंचायतन कहा जाता है॥ १३॥

चतुराश्रमिणां पुण्यं यत्फलं प्रतिपठ्यते।
तत्फलं सकलं प्रोक्तं पञ्चायतनदर्शनात्॥ १४

चारों आश्रमियोंके लिये जो भी पुण्यफल कहा गया है, वह समस्त फल पंचायतनका दर्शन करनेमात्रसे बताया गया है॥ १४॥

इदं पाशुपतं श्रेष्ठं मदीयव्रतचारिणाम्।
योगिनां मोक्षलिप्सूनां संसारभयनाशनम्॥ १५

मेरा व्रत करनेवालोंके लिये यह श्रेष्ठ पाशुपतव्रत है और मोक्षकी इच्छावाले योगियोंके लिये संसारभयका नाश करनेवाला है॥ १५॥

नराणामल्पबुद्धीनां पापोपहतचेतसाम्।
भेषजं परमं प्रोक्तं पञ्चायतनमुत्तमम्॥ १६

तस्माद्यत्नं सदा कुर्यात्पञ्चायतनदर्शने।
पञ्चायतनसामीप्ये कूपस्तिष्ठति सुन्दरि॥ १७

तस्मिन् कूप उपस्पृश्य दीक्षाफलमवाप्नुयात्।
तस्मिन् दक्षिणदिग्भागे रुद्रवासः प्रकीर्तितः॥ १८

यह उत्तम पंचायतन अल्प बुद्धिवाले तथा पापसे नष्ट चित्तवाले मनुष्योंके लिये महान् औषध कहा गया है। अतः पंचायतनके दर्शनका सदा प्रयत्न करना चाहिये। हे सुन्दरि! पंचायतनके समीपमें एक कूप स्थित है, उस कूपमें मार्जन-स्नान करके मनुष्य [शिव-] दीक्षाका फल

रुद्रस्योत्तरपार्श्वे तु पञ्चायतनदक्षिणे।
तत्र कुण्डं महत् प्रोक्तं महापातकनाशनम्॥ १९

तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा अभीष्टं फलमाप्नुयात्।
चतुर्दश्यां यदा योग आर्द्रानक्षत्रसंयुतः॥ २०

तदा पुण्यतमः कालस्तस्मिन् स्नाने महाफलम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रुद्रं च भामिनि॥ २१

यत्र तत्र मृतो देवि रुद्रलोकं तु गच्छति।
पूर्वामुखस्थितश्चाहं तस्मिँल्लिङ्गे महेश्वरि॥ २२

रुद्राणां कोटिजप्येन यत्फलं प्रतिपद्यते।
तत्फलं लभते भद्रे तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ २३

रुद्रस्य च समीपे तु ऋषिभिः स्थापितानि च।
लिङ्गानि मम सुश्रोणि सर्वकामफलानि च॥ २४

रुद्रस्य नैर्ऋते भागे महालयमिति स्मृतम्।
दर्शनाच्च पदं तस्य महाभाग्यस्य सुन्दरि॥ २५

तत्र स्थाने शुभे रम्ये स्वयं तिष्ठति पार्वती।
तस्यैव चाग्रतो देवि कूपस्तिष्ठति निर्मलम्॥ २६

पितरस्तत्र तिष्ठन्ति ये दिव्या ये च मानुषाः।
तस्मिन् कूप उपस्पृश्य जलं सङ्गृह्य भामिनि॥ २७

पिण्डस्तत्र प्रदातव्यो मम देवि पदस्पृहः।
श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत अन्नाद्येनोदकेन च॥ २८

पिण्डः कूपे तु तत्रैव प्रेक्षप्तव्यः शुभानने।
एवं कृत्वा तु यस्तस्मिंस्तीर्थे रुद्रमहालये॥ २९

एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोकं स गच्छति।
तत्र वैतरणी नाम दीर्घिका पश्चिमामुखी॥ ३०

तस्यां स्नात्वा वरारोहे नरकं न च पश्यति।
खण्डस्फुटितसंस्कारं यस्तत्र कुरुते शुभे॥ ३१

रुद्रलोकोऽक्षयस्तस्य सर्वकालं यशस्विनि।
महालयस्योत्तरेण लिङ्गानि सुमहान्ति च॥ ३२

प्राप्त करता है। उसके दक्षिण दिशाभागमें रुद्रवास कहा गया है॥ १६—१८॥

वहाँपर रुद्रके उत्तरभागमें तथा पंचायतनके दक्षिणमें महापापोंका नाश करनेवाला एक विशाल कुण्ड बताया गया है, उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है। जब चतुर्दशी तिथिमें आर्द्रा नक्षत्रसे संयुक्त योग हो, तब पुण्यतम काल होता है, उस समय उस [कुण्ड]-में स्नान करनेसे महान् फल होता है। हे भामिनि! हे देवि! उस तीर्थमें स्नान करके तथा रुद्रका दर्शन करके जहाँ कहीं भी मनुष्य मरता है, [तत्काल] रुद्रलोकको जाता है॥ १९—२१ $^{1}/_{2}$॥

हे महेश्वरि! मैं उस लिङ्गमें पूर्वकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ। हे भद्रे! करोड़ों रुद्रोंका जप करनेसे जो फल होता है, वह फल उस लिङ्गके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है॥ २२-२३॥

हे सुश्रोणि! रुद्रके समीपमें समस्त वांछित फल प्रदान करनेवाले [अनेक] लिङ्ग ऋषियोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं। रुद्रके नैर्ऋत्य दिशामें महालय बताया गया है, हे सुन्दरि! उसके दर्शनसे महाभाग्यका पद प्राप्त होता है॥ २४-२५॥

उस शुभ तथा रम्य स्थानपर स्वयं पार्वती विराजमान हैं। हे देवि! उसीके आगे निर्मल कूप स्थित है। जो दिव्य तथा मानुष पितर हैं, वे वहाँ रहते हैं। हे भामिनि! हे देवि! मेरे लोककी इच्छा रखनेवालेको चाहिये कि उस कूपमें स्नान करके जल लेकर वहाँ पिण्डदान करे॥ २६-२७ $^{1}/_{2}$॥

हे शुभानने! अन्न आदिसे तथा उस जलसे श्राद्ध करना चाहिये और वहींपर कूपमें पिण्डको छोड़ देना चाहिये। जो उस रुद्रमहालय तीर्थमें इस प्रकारसे [श्राद्ध] करता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंसहित रुद्रलोकको जाता है। वहाँपर पश्चिमकी ओर मुखवाली वैतरणी नामक दीर्घिका (बावली) है, हे वरारोहे! उसमें स्नान करके मनुष्यको नरक नहीं देखना पड़ता है॥ २८—३० $^{1}/_{2}$॥

हे शुभे! हे यशस्विनि! जो वहाँपर खण्डस्फुटित-संस्कार करता है, उसे सदाके लिये अक्षय रुद्रलोक प्राप्त होता है। महालयके उत्तरमें अति महान् लिङ्ग विद्यमान

देवैः सर्वैर्महाभागैः स्थापितानि शुभार्थिभिः।
पश्चिमे तु दिशाभागे रुद्रकुण्डस्य भामिनि॥ ३३

लिङ्गं तत्र स्थितं शुभ्रं देवाचार्य प्रतिष्ठितम्।
बृहस्पतीश्वरं नाम सर्वदुःखविनाशनम्॥ ३४

पितृभिः स्थापितं लिङ्गं तटे कूपस्य दक्षिणे।
तेन पूजितमात्रेण पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः॥ ३५

हैं, जो मंगलकी कामनावाले सभी महाभाग्यशाली देवताओंके द्वारा स्थापित किये गये हैं॥ ३१-३२$^{1}/_{2}$॥

हे भामिनि! वहाँ रुद्रकुण्डके पश्चिम दिशाभागमें एक शुभ्र लिङ्ग स्थित है, सभी दुःखोंका नाश करनेवाला बृहस्पतीश्वर नामक वह लिङ्ग देवताओंके आचार्य (बृहस्पति)-के द्वारा स्थापित किया गया है॥ ३३-३४॥

कूपके दक्षिण तटपर पितरोंके द्वारा [एक] लिङ्ग स्थापित किया गया है, उसके पूजनमात्रसे पितर तृप्त हो जाते हैं॥ ३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

कामेश्वर, भीष्मेश्वर, वालखिल्येश्वर, सनकेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, दधीचेश्वर तथा कालेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं श्रेष्ठं कालिपुर्यां सुरेश्वरि।
दक्षिणेन स्थितं देवं रुद्रवासस्य सुन्दरि॥ १

कामेश्वरमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम्।
तप्तं तत्र तपस्तीव्रं कामदेवेन वै पुरा॥ २

कुण्डं तदुद्भवं देवि पद्मोत्पलसमन्वितम्।
कुण्डस्यैव तटे रम्ये उत्तमे वरवर्णिनि॥ ३

लिङ्गं तत्र स्थितं दिव्यं पश्चिमाभिमुखं प्रिये।
गन्धधूपनमस्कारैर्मुखवाद्यैश्च सर्वशः॥ ४

यो मामर्चयते तत्र तस्य तुष्याम्यहं सदा।
तुष्टे तु मयि देवेशि सर्वान् कामाँल्लभेत सः॥ ५

ततः प्रभृति वै तस्मिन्नन्येऽपि सुरपुङ्गवाः।
आराधयन्तो मां तस्मिंस्तीर्थं वक्तुं महातपाः॥ ६

यस्य यस्य यदा कामस्तत्र तं तं ददाम्यहम्।
ददामि सर्वकामांश्च धर्मं मोक्षं तथैव च॥ ७

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! हे सुन्दरि! कालिपुरीमें रुद्रवासके दक्षिणमें दूसरा श्रेष्ठ आयतन भी स्थित है, कामेश्वर नामसे विख्यात वह लिङ्ग सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १$^{1}/_{2}$॥

पूर्वकालमें वहाँ कामदेवने घोर तपस्या की थी, इससे हे देवि! कमलोंसे युक्त एक कुण्ड वहाँ उत्पन्न हो गया। हे वरवर्णिनि! हे प्रिये! वहाँ कुण्डके ही रम्य तथा उत्तम तटपर पश्चिमकी ओर मुखवाला दिव्य लिङ्ग स्थित है। वहाँपर जो [व्यक्ति] गन्ध, धूप, नमस्कार तथा मुखवादनके द्वारा विधिवत् मेरा अर्चन करता है, उसके ऊपर मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ, हे देवेशि! मेरे प्रसन्न हो जानेपर वह सभी इच्छित फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ २—५॥

उसी समयसे दूसरे श्रेष्ठ देवता भी उस लिङ्गमें मेरी आराधना करते हुए वहाँ निवास करते हैं, महान् तपस्वी भी उस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ६॥

जिस किसीकी भी जो कामना होती है, मैं उस कामनाको पूर्ण करता हूँ। मैं सभी कामनाओं, धर्म तथा मोक्षको प्रदान करता हूँ॥ ७॥

तस्मादन्येऽपि ये केचित्तीर्थे तस्मिन् जनाः स्थिताः।
आराधयन्ते देवेशं कामेशं चैव सर्वदा॥ ८
यो यस्य मनसः कामः तं तमाप्नोति निश्चितम्।
कामेश्वरसमीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ९
तत्र स्नात्वा वरारोहे रुद्रस्यानुचरो भवेत्।
चैत्रे मासि सिते पक्षे त्रयोदश्यां तु मानवाः॥ १०
स्नानं ये च प्रकुर्वन्ति ते कामसदृशा नराः।
कामेश्वरं सदा लिङ्गं योऽर्चयतीह मानवः॥ ११
लभेद्विद्याधरं लोकमेवमेव न संशयः।
कामेश्वरस्य पूर्वेण नाम्ना पञ्चालकेश्वरम्॥ १२
धनदस्य तु पुत्रेण पूजितोऽहं सुरेश्वरि।
क्षेत्रं मम प्रियं ज्ञात्वा तस्मिन् देशे व्यवस्थितः॥ १३
आराधयति मां नित्यं मम पूजारतः सदा।
पञ्चालेश्वरनामाहं तस्मिन् देशे व्यवस्थितः॥ १४
नराणां धनदानं तु करिष्यामि यशस्विनि।
तत्र पूर्वमुखं देवि मुखलिङ्गं तु तिष्ठति॥ १५
पञ्चकेश्वरनामाहं तत्र देवि प्रतिष्ठितः।
कूपस्तस्यैव चाग्रे तु पावनः सर्वदेहिनाम्॥ १६
तस्मिन् स्थाने स्थिता देवि अघोरेशेति नामतः।
मानवानां हितार्थाय स्वयं तत्र व्यवस्थिता॥ १७
नव लिङ्गानि गुह्यानि स्थापितानि तु किन्नरैः।
पञ्चकेश्वरपूर्वेण दिवाकरनिशाकरौ॥ १८
लिङ्गानि तानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च।
दक्षिणेन तु तस्यैव अन्धकेशेति नामतः॥ १९
तत्र लिङ्गं महत्पुण्यमन्धकेन प्रतिष्ठितम्।
मम चैव प्रसादेन गतोऽसौ परमां गतिम्॥ २०
पश्चिमे तु दिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि।
नाम्ना देवेश्वरं लिङ्गं कामकुण्डस्य दक्षिणे॥ २१
अहमेव सदा भद्रे तस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः।
भीष्मेश्वरं तु तत्रैव सिद्धेश्वरमतः परम्॥ २२
गङ्गेश्वरं तु तत्रैव यमुनेश्वरमेव च।
मण्डलेश्वरं तु तत्रैव ऊर्वशीलिङ्गमुत्तमम्॥ २३

अतः अन्य जो कोई भी लोग उस तीर्थमें रहते हैं, वे देवेश कामेश्वरकी सदा आराधना करते हैं॥ ८॥

उस समय जिसकी जो भी कामना होती है, वह [व्यक्ति] उस-उस कामनाको निश्चित रूपसे प्राप्त करता है। हे वरवर्णिनि! कामेश्वरके समीपमें दक्षिणमें जो कुण्ड है, हे वरारोहे! चैत्रमासमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको उसमें स्नान करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है। जो मनुष्य उसमें स्नान करते हैं, वे कामदेवके समान हो जाते हैं॥ ९-१०१/२॥

जो मनुष्य यहाँपर कामेश्वरलिङ्गकी सदा पूजा करता है, वह विद्याधरलोक प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १११/२॥

कामेश्वरके पूर्वमें पंचालकेश्वर नामक लिङ्ग है, हे सुरेश्वरि! मैं वहाँ धनद (कुबेर)-के पुत्रके द्वारा पूजित हूँ। मेरा प्रिय क्षेत्र जानकर वह उस देशमें स्थित रहकर प्रतिदिन मेरी आराधना करता है और सदा मेरी पूजामें संलग्न रहता है। हे यशस्विनि! मैं उस स्थानमें पंचालेश्वर नामसे स्थित हूँ और मनुष्योंको धनका दान करता हूँ॥ १२—१४१/२॥

हे देवि! वहाँ पूर्वकी ओर मुखवाला मुखलिङ्ग विराजमान है, हे देवि! मैं वहाँ पंचकेश्वर नामसे स्थित हूँ। उसीके आगे सभी देहधारियोंको पवित्र करनेवाला एक कूप स्थित है॥ १५-१६॥

हे देवि! उस स्थानपर अघोरेशा—इस नामसे भगवती स्थित हैं, वे मनुष्योंके कल्याणके लिये वहाँ स्वयं विराजमान हैं। वहाँ किन्नरोंके द्वारा नौ गुह्य लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। पंचकेश्वरके पूर्वमें सूर्य-चन्द्रलिङ्ग स्थित हैं॥ १७-१८॥

वे लिङ्ग पुण्यप्रद तथा सभी पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। वहाँपर उसीके दक्षिणमें अन्धकेश—इस नामवाला महापुण्यप्रद लिङ्ग है, यह अन्धकके द्वारा स्थापित किया गया है, मेरी कृपासे वह [अन्धक] वहाँ परम गतिको प्राप्त हुआ था॥ १९-२०॥

हे सुन्दरि! उस देवके पश्चिम दिशाभागमें तथा कामकुण्डके दक्षिणमें देवेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! मैं ही उस स्थानपर सदा विराजमान हूँ। वहींपर भीष्मेश्वर तथा सिद्धेश्वर स्थित हैं॥ २१-२२॥

वहींपर गंगेश्वर तथा यमुनेश्वर हैं। वहींपर

अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महात्मभिः।
तानि दृष्ट्वा तु मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २४

मण्डलेश्वरसामीप्ये मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
शान्तेन स्थापितं लिङ्गं सर्वपापहरं शुभम्॥ २५

वायव्ये तु दिशाभागे द्रोणेश्वरसमीपतः।
वालखिल्येश्वरं नाम सुखदं सर्वदेहिनाम्॥ २६

तच्च पश्चान्मुखं लिङ्गं कामकुण्डस्य पश्चिमे।
वालखिल्येश्वरं दृष्ट्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २७

तस्यैव चाग्रतो भद्रे मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
वाल्मीकेश्वरनामानं तं च दृष्ट्वा न शोचति॥ २८

तस्यैव कामकुण्डस्य पुरा संस्थापितं तटे।
लिङ्गं तत्र महापुण्यं च्यवनेन प्रतिष्ठितम्॥ २९

तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञानवान् जायते नरः।
वालखिल्येश्वरस्यैव दक्षिणे वरवर्णिनि॥ ३०

नाम्ना वातेश्वरं देवं सर्वपातकनाशनम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि वायुलोकं च गच्छति॥ ३१

अग्नीश्वरं तु तत्रैव भरतेशं तथैव च।
वरुणेशं तथा चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ३२

एतान् दृष्ट्वा महादेवि यथेष्टां गतिमाप्नुयात्।
अन्यदायतनं पुण्यं सनकेन प्रतिष्ठितम्॥ ३३

सनकेश्वरनामानं सर्वसिद्धामरार्चितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि राजसूयफलं लभेत्॥ ३४

धर्मेश्वरं तु तत्रैव दक्षिणे वरवर्णिनि।
नाम्ना धर्मेश्वरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥ ३५

अन्यत्तत्रैव लिङ्गं तु ऋषिभिः स्थापितं पुरा।
सनकेश्वरस्योत्तरतो नाम्ना गरुडकेश्वरम्॥ ३६

सिद्धिकामेन सुश्रोणि स्थापितं गरुडेन तु।
गरुडेश्वरस्य पुरतः स्थापितं ब्रह्मसूनुना॥ ३७

मण्डलेश्वर तथा उत्तम उर्वशीलिङ्ग विद्यमान हैं॥ २३॥

[हे देवि!] वहाँपर महात्माओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं, उनका दर्शन करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ २४॥

मण्डलेश्वरके समीपमें मुखलिङ्ग स्थित है, सभी पापोंका नाश करनेवाला वह शुभ लिङ्ग 'शान्त' के द्वारा स्थापित किया गया है॥ २५॥

वायव्य दिशाभागमें द्रोणेश्वरके समीप वालखिल्येश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह सभी प्राणियोंको सुख देनेवाला है॥ २६॥

कामकुण्डके पश्चिममें स्थित वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है, वालखिल्येश्वरका दर्शन करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। हे भद्रे! उसीके आगे वाल्मीकेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है, उसका दर्शन करके मनुष्य शोकयुक्त नहीं होता है॥ २७-२८॥

उसी कामकुण्डके तटपर पूर्वकालमें [महर्षि] च्यवनके द्वारा स्थापित किया गया महापुण्यप्रद लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य ज्ञानी हो जाता है॥ २९½॥

हे वरवर्णिनि! वालखिल्येश्वरके दक्षिणमें सभी पापोंका नाश करनेवाला वातेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य वायुलोकको जाता है॥ ३०-३१॥

वहींपर अग्नीश्वर, भरतेश तथा सभी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला वरुणेश—ये लिङ्ग स्थित हैं, हे महादेवि! इनका दर्शन करके मनुष्य अभीष्ट गति प्राप्त करता है। वहाँ दूसरा पुण्यप्रद लिङ्ग भी स्थित है, जो [महामुनि] सनकके द्वारा स्थापित किया गया है, सनकेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी सिद्धों तथा देवताओंके द्वारा पूजित है। हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य राजसूययज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ३२—३४॥

हे वरवर्णिनि! वहींपर दक्षिण दिशामें धर्मेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह धर्मेश्वरलिङ्ग सभी वांछित फलोंको प्रदान करनेवाला है। वहींपर पूर्वकालमें ऋषियोंके द्वारा स्थापित किया गया अन्य लिङ्ग भी स्थित है। हे सुश्रोणि! सनकेश्वरके उत्तरमें गरुडकेश्वर नामक लिङ्ग है, जो सिद्धिकी इच्छावाले गरुडके द्वारा

भक्त्या सनत्कुमारेण स्थापितोऽहं वरानने।
तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः॥ ३८

तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे सनन्देन प्रतिष्ठितम्।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्यते सिद्धिरुत्तमा॥ ३९

तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे स्थापितं ह्यासुरीश्वरम्।
तथैव पञ्चशिखिना स्थापितं च महात्मना॥ ४०

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु नातिदूरे व्यवस्थितम्।
शनैश्चरेण तत्रैव मुखलिङ्गं प्रतिष्ठितम्॥ ४१

शनैश्चरेश्वरं नाम सर्वलोकनमस्कृतम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि रोगैर्नैवाभिभूयते॥ ४२

अन्यच्चैव महापुण्यं काशीपुर्यां महाशये।
मार्कण्डेयस्तु विख्यातो मम चैव सदा प्रियः॥ ४३

तस्य लिङ्गस्य चाग्रे तु पश्चिमेन यशस्विनि।
मार्कण्डेयह्रदो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ ४४

मार्कण्डेयह्रदे स्नात्वा किं भूयः परिशोचति।
स्नानं दानं जपो होमः श्राद्धं च पितृतर्पणम्॥ ४५

तत्सर्वमक्षयं तत्र भवतीति न संशयः।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैव चतुर्मुखम्॥ ४६

रुद्रलोकः सदा तस्य पुनरावृत्तिदुर्लभः।
मार्कण्डेश्वरसामीप्ये उत्तरेण यशस्विनि॥ ४७

कूपो वै तिष्ठते तत्र सर्वतीर्थवरोऽनघे।
कूपस्य चोत्तरेणैव कुण्डमध्ये यशस्विनि॥ ४८

कुण्डेश्वरमिति ख्यातं सर्वसिद्धैस्तु वन्दितम्।
दीक्षां पाशुपतीं तीर्त्वा द्वादशाक्षरेण यत्फलम्॥ ४९

तत्फलं लभते देवि ब्राह्मणस्तु न संशयः।
कुण्डस्य पश्चिमे तीरे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ५०

स्कन्देन स्थापितं देवि ब्रह्मलोकगतिप्रदम्।
मार्कण्डेयस्य पूर्वेण नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ५१

स्थापित किया गया है॥ ३५-३६ १/२ ॥

गरुडेश्वरके सामने एक लिङ्ग स्थित है, हे वरानने! ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारने भक्तिपूर्वक [वहाँ] मुझे स्थापित किया था, हे देवेशि! उस [लिङ्ग]-के दर्शनसे मनुष्य ज्ञानसम्पन्न हो जाता है॥ ३७-३८ ॥

उसीके उत्तरभागमें [मुनि] सनन्दके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग है, उसके दर्शनमात्रसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है॥ ३९ ॥

उसीके दक्षिण भागमें आसुरीश्वर लिङ्ग स्थापित है, वह महात्मा पंचशिखिके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ४० ॥

वहींपर उसके दक्षिणभागमें समीपमें ही शनैश्चरके द्वारा स्थापित किया गया मुखलिङ्ग स्थित है, वह शनैश्चरेश्वर नामक लिङ्ग सभी लोकोंद्वारा नमस्कृत है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य रोगोंसे पीड़ित नहीं होता है॥ ४१-४२ ॥

हे महाशये! काशीपुरीमें अन्य महापुण्यप्रद लिङ्ग भी है, वह मार्कण्डेय नामसे विख्यात है और सर्वदा मेरा प्रिय है॥ ४३ ॥

हे यशस्विनि! उस लिङ्गके आगे पश्चिममें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेयह्रद (कुण्ड) है, मार्कण्डेयह्रदमें स्नान करके मनुष्य किसी प्रकारके शोकसे सन्तप्त नहीं रहता है। वहाँ किया गया स्नान, दान, जप, होम, श्राद्ध तथा पितृतर्पण—सब कुछ अक्षय होता है, इसमें सन्देह नहीं है। उस कुण्डमें स्नान करके तथा चतुर्मुखका दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करानेवाले रुद्रलोकको जाता है॥ ४४—४६ १/२ ॥

हे यशस्विनि! हे अनघे! मार्कण्डेश्वरके समीपमें उत्तर दिशामें वहाँ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ एक कूप विद्यमान है। हे यशस्विनि! कूपके उत्तरमें ही कुण्डके मध्यमें सभी सिद्धोंसे वन्दित कुण्डेश्वर—इस नामसे विख्यात लिङ्ग स्थित है॥ ४७-४८ १/२ ॥

हे देवि! द्वादशाक्षरके द्वारा पाशुपत दीक्षा प्राप्त करके ब्राह्मण जो फल पाता है, उस फलको उसके दर्शनमात्रसे प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। कुण्डके पश्चिम तटपर पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह [लिङ्ग] स्कन्दके द्वारा स्थापित किया गया है, वह ब्रह्मलोककी गति प्रदान

शाण्डिल्येश्वरनामानं स्थितं तत्रैव सुन्दरि।
मुखलिङ्गं तु तं भद्रे पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ५२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि पशुपाशैः प्रमुच्यते।
अस्यैव दक्षिणे पार्श्वे नाम्ना भद्रेश्वरं स्मृतम्॥ ५३

तत्र पश्चान्मुखं लिङ्गं स्थापितं च ब्रह्मर्षिभिः।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि ब्राह्मण्यं लभते नरः॥ ५४

अन्यच्चैव महादेवि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
यो वै पूर्वं मया तुभ्यं कपालीशः प्रवर्तितः॥ ५५

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गानि कथयाम्यहम्।
तत्र देवी स्वयं देवी श्रीर्वै तिष्ठति सर्वदा॥ ५६

श्रीकुण्डमिति विख्यातं तत्र कुण्डे वरानने।
तस्मिन् कुण्डेश्वरी देवी वरदा सर्वदेहिनाम्॥ ५७

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवीं महाश्रियम्।
श्रिया न रहितः सो वै यत्र तत्राभिजायते॥ ५८

श्रियश्चोत्तरपार्श्वे तु कपालीशस्य दक्षिणे।
तत्र लिङ्गं महाभागे महालक्ष्म्या प्रतिष्ठितम्॥ ५९

पूर्वाभिमुखोऽहं तस्मिन् कुण्डस्यैव तु दक्षिणे।
स्नात्वा कुण्डे तु वै देवि तल्लिङ्गं ह्यर्चयिष्यति॥ ६०

नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु।
चामरासक्तहस्ताभिः स्त्रीभिः परिवृतः सदा॥ ६१

तिष्ठते सुविमानस्थो यावदाभूतसम्प्लवम्।
इह लोके यदा याति लक्ष्मीवान् रूपसंयुतः॥ ६२

धनधान्यसमायुक्तः कुले महति जायते।
स्वर्गलोकस्य तद्द्वारं रहस्यं देवनिर्मितम्॥ ६३

यदा मत्स्योदरीं यान्ति देवलोकाद्दिवौकसः।
तदा तेनैव मार्गेण स्त्रीभिः परिवृतः सुखम्॥ ६४

तेन सा प्रोच्यते देवि महाश्रीर्वरवर्णिनि।
एतत्तुभ्यं मया देवि रहस्यं परिकीर्तितम्॥ ६५

करनेवाला है॥ ४९-५०१/२॥

मार्कण्डेयके पूर्व समीपमें ही शाण्डिलेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे सुन्दरि! वहींपर मुखलिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित है॥ ५१-५२॥

हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य पशुपाशोंसे मुक्त हो जाता है। इसीके दक्षिण भागमें भद्रेश्वर नामक लिङ्ग कहा गया है, पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग ब्रह्मर्षियोंके द्वारा स्थापित किया गया है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य ब्राह्मण्य प्राप्त करता है। हे महादेवि! अब मैं क्रमसे अन्य लिङ्गोंका वर्णन करूँगा॥ ५३-५४१/२॥

मैंने पूर्वमें आपसे जिस कपालीशके विषयमें बताया था, उसके दक्षिण दिशाभागमें स्थित लिङ्गोंको मैं बता रहा हूँ। हे देवि! वहाँपर स्वयं भगवती श्री सर्वदा विराजमान हैं॥ ५५-५६॥

हे वरानने! वहाँ श्रीकुण्ड बताया गया है, उस कुण्डमें सभी प्राणियोंको वर देनेवाली कुण्डेश्वरी देवी विराजमान हैं॥ ५७॥

उस कुण्डमें स्नान करके तथा देवी महालक्ष्मीका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी रहता है, लक्ष्मीसे विहीन नहीं होता है॥ ५८॥

हे महाभागे! उस श्रीके उत्तरभागमें तथा कपालीशके दक्षिणमें महालक्ष्मीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ५९॥

मैं कुण्डके दक्षिणमें पूर्वाभिमुख होकर स्थित हूँ। हे देवि! उस कुण्डमें स्नान करके यदि कोई पुरुष या स्त्री उस लिङ्गका अर्चन करेगा, तो उसके पुण्यफलको सुनो, वह प्रलयपर्यन्त हाथोंमें चँवर धारण की हुई स्त्रियोंसे सदा घिरा हुआ रहकर उत्तम विमानमें स्थित रहता है और जब इस लोकमें जन्म लेता है, तब लक्ष्मीवान्, रूपवान् तथा धनधान्यसे युक्त होकर महान् कुलमें उत्पन्न होता है। वह [कुण्ड] स्वर्गलोकका देवनिर्मित रहस्यमय द्वार है॥ ६०—६३॥

जब देवतालोग देवलोकसे मत्स्योदरीमें जाते हैं, तब उसी मार्गसे वह मनुष्य स्त्रियोंसे घिरा हुआ सुखपूर्वक प्रवेश करता है। हे देवि! हे वरवर्णिनि! इसीलिये वे महाश्री कही जाती हैं। हे देवि! मैंने यह

तस्य विष्णुध्रुवस्यैव पश्चिमाया दिशः स्थितम्।
स्थापितं मम लिङ्गं तु दधीचेन महर्षिणा॥ ६६

दधीचेश्वरनामानं ख्यातं सर्वसुरासुरैः।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि ऐश्वरं लोकमाप्नुयात्॥ ६७

दक्षिणे तु तदा तत्र गायत्र्या स्थापितं पुरा।
गायत्र्या दक्षिणे चैव सावित्र्या स्थापितं पुनः॥ ६८

एतौ पश्चान्मुखौ लिङ्गौ मम देवि प्रियौ सदा।
अस्य चैव तु पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ६९

मत्स्योदरीतटे रम्ये स्थितं सत्पतयेश्वरम्।
तेन दृष्टेन सुश्रोणि उत्तमां सिद्धिमाप्नुयात्॥ ७०

लक्ष्मीलिङ्गस्य देवेन लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
उग्रेश्वरे महत्पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ७१

तेन दृष्टेन सुश्रोणि भवेज्जातिस्मरो नरः।
तस्यैव दक्षिणे देवि महत्कुण्डं व्यवस्थितम्॥ ७२

स्नात्वा कनखले यद्वत्पुण्यमुक्तं यशस्विनि।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा फलमाप्नोति तत्समम्॥ ७३

दधीचेशात्पश्चिमतो नाम्ना तु धनदेश्वरम्।
यत्र देवि तपस्तप्तं धनदेन महात्मना॥ ७४

तत्र कुण्डं महादेवि धनदेशस्य धीमतः।
तत्र स्नात्वा नरो देवि धनदेशं च पश्यति॥ ७५

तस्य तुष्टः कुबेरस्तु देवत्वं सम्प्रयच्छति।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि सुरासुरैः॥ ७६

तानि दृष्ट्वातिपुण्यानि स्वर्गलोकं व्रजेन्नरः।
धनदेशात् पश्चिमतो नाम्ना तु करवीरकम्॥ ७७

तेन दृष्टेन देवेशि सिद्धिं प्राप्नोति मानवः।
पुण्यानि तत्र लिङ्गानि स्थितानि परमेश्वरि॥ ७८

तस्य वायव्यकोणे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
मारीचेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम्॥ ७९

रहस्य आपको बता दिया॥ ६४-६५॥

उसी विष्णुध्रुवके पश्चिम दिशामें महर्षि दधीचके द्वारा स्थापित किया गया मेरा लिङ्ग स्थित है। वह लिङ्ग सभी देवताओं तथा असुरोंके द्वारा दधीचेश्वर नामसे कहा गया है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईश्वरका लोक प्राप्त करता है॥ ६६-६७॥

उसके दक्षिणमें पूर्वकालमें गायत्रीके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग स्थित है और गायत्रीके दक्षिणमें सावित्रीके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग स्थित है। हे देवि! ये दोनों लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाले हैं तथा मेरे सर्वदा प्रिय हैं। इसके पूर्वमें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ६८-६९॥

यह सत्पतयेश्वर नामक लिङ्ग मत्स्योदरीके रम्य तटपर स्थित है, हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है॥ ७०॥

लक्ष्मीलिङ्गके पास देवताके द्वारा पश्चिमकी ओर मुखवाला उग्रेश्वर नामक महापुण्यप्रद तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग स्थित है, हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे मनुष्य जातिस्मर (पूर्वजन्मकी स्मृतिवाला) हो जाता है॥ ७१½॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें एक विशाल कुण्ड स्थित है, हे यशस्विनि! कनखलमें स्नान करनेसे जो पुण्य कहा गया है, मनुष्य उस कुण्डमें स्नान करके उसके समान फल प्राप्त कर लेता है॥ ७२-७३॥

हे देवि! दधीचेश्वरके पश्चिममें धनदेश्वर नामक लिङ्ग है, जहाँ महात्मा धनदने तपस्या की थी। हे महादेवि! वहाँपर बुद्धिमान् धनदेश्वरका कुण्ड स्थित है, हे देवि! जो मनुष्य उसमें स्नान करके धनदेश्वरका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर कुबेर उसे देवत्व प्रदान करते हैं॥ ७४-७५½॥

[हे देवि!] वहाँपर देवताओं तथा असुरोंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं, उन महापुण्यप्रद लिङ्गोंका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। हे देवेशि! धनदेश्वरके पश्चिममें करवीरक नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनसे मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। हे परमेश्वरि! वहाँ [अन्य] पुण्यप्रद लिङ्ग भी स्थित हैं॥ ७६—७८॥

उस [करवीरक]-के वायव्यकोणमें पश्चिमकी

तस्य चैवाग्रतो देवि स्थापितं कुण्डमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या भ्राजते भास्करो यथा॥ ८०

मारीचेशात्पश्चिमतो लिङ्गमिन्द्रेश्वरं महत्।
पश्चिमाभिमुखं देवि कुण्डस्य तटसंस्थितम्॥ ८१

इन्द्रेश्वराद्दक्षिणतो वापी कर्कोटकस्य च।
तत्र वीरजले स्नात्वा दृष्ट्वा कर्कोटकेश्वरम्॥ ८२

नागानां चाधिपत्यं तु जायते नात्र संशयः।
कर्कोटकाद्दक्षिणतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८३

दृगिचण्डेश्वरं नाम ब्रह्महत्यापहारकम्।
तत्र पाशुपतः सिद्धः कौथुमिर्नाम नामतः॥ ८४

ज्ञानं पाशुपतं प्राप्य रुद्रलोकमितो गतः।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं कुण्डस्योत्तरतः स्थितम्॥ ८५

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृगिचण्डेश्वरस्य तु।
रुद्रलोकमवाप्नोति त्यक्त्वा संसारसागरम्॥ ८६

तस्य पूर्वेण देवेशि दीर्घिकायास्तटे शुभे।
अग्नीश्वरं तु नामानं सर्वपापक्षयङ्करम्॥ ८७

तं दृष्ट्वा मानवो देवि अग्निलोकं तु गच्छति।
तस्यैव पूर्वदिग्भागे नाम्ना ह्याम्नातकेश्वरम्॥ ८८

तं दृष्ट्वा मनुजो भद्रे रुद्रस्यानुचरो भवेत्।
एकलिङ्गं तु तद्विद्यात् सूक्ष्मं च वरवर्णिनि॥ ८९

तस्यैवाम्नातकेशस्य दक्षिणे नातिदूरतः।
कुण्डं तदुद्भवं दिव्यं सुरलोकप्रदायकम्॥ ९०

उर्वशीश्वरनामानं स्थितं पश्चान्मुखं भुवि।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि गणत्वं लभते ध्रुवम्॥ ९१

कुण्डस्य नैर्ऋते भागे नातिदूरे कथञ्चन।
उर्वशीशसमीपे तु तालकर्णेश्वरं स्मृतम्॥ ९२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि चण्डस्यैति सलोकताम्।
तस्यैव तु समीपे तु लिङ्गानि स्थापितानि च॥ ९३

ओर मुखवाला मारीचेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ७९॥

हे देवि! उसके आगे एक उत्तम कुण्ड स्थापित किया गया है, उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सूर्यके समान दीप्तिमान् हो जाता है॥ ८०॥

मारीचेश्वरके पश्चिममें इन्द्रेश्वर नामक महान् लिङ्ग है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके तटपर स्थित है॥ ८१॥

इन्द्रेश्वरके दक्षिणमें कर्कोटककी वापी है, उस वीरजलमें स्नान करके तथा कर्कोटकेश्वरका दर्शन करके [मनुष्यको] नागोंका आधिपत्य प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है॥ ८२½॥

कर्कोटकेश्वरके दक्षिण समीपमें ही ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला दृगिचण्डेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वहाँपर पाशुपत कौथुमि नामवाले ऋषि सिद्धिको प्राप्त हुए और पाशुपत ज्ञान प्राप्त करके यहाँसे रुद्रलोकको गये॥ ८३-८४½॥

पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग कुण्डके उत्तरमें स्थित है, वहाँपर दृगिचण्डेश्वरके कुण्डमें स्नान करके मनुष्य संसारसागरका त्यागकर रुद्रलोक प्राप्त करता है॥ ८५-८६॥

हे देवेशि! उसके पूर्वमें कुण्डके उत्तम तटपर सभी पापोंका नाश करनेवाला अग्नीश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य अग्निलोकको जाता है॥ ८७½॥

उसीके पूर्व दिशाभागमें आम्नातकेश्वर नामक लिङ्ग है, हे भद्रे! उसका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है। हे वरवर्णिनि! उसे सूक्ष्म एकलिङ्ग जानना चाहिये॥ ८८-८९॥

उसी आम्नातकेश्वरके दक्षिण समीपमें ही देवलोककी प्राप्ति करानेवाला दिव्य कुण्ड स्थित है॥ ९०॥

वहाँ पश्चिमकी ओर मुखवाला उर्वशीश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य निश्चित रूपसे गणत्व प्राप्त करता है॥ ९१॥

कुण्डके नैर्ऋत्यभागमें समीपमें ही उर्वशीश्वरके पासमें तालकर्णेश्वरलिङ्ग बताया गया है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य चण्डका सालोक्य प्राप्त करता है॥ ९२½॥

गणैस्तु मम धर्मज्ञैः श्रेष्ठानि सुमहान्ति च।
तस्य पूर्वेण कूपस्तु तिष्ठते सुमहान् प्रिये॥ ९४

तस्मिन् कूपे जलं स्पृश्य पूतो भवति मानवः।
चण्डेश्वरस्य पूर्वं तु स्थितं चित्रेश्वरं शुभम्॥ ९५

तेन दृष्टेन देवेशि चित्रस्य समतां व्रजेत्।
चित्रेश्वरसमीपे तु स्थितं कालेश्वरं महत्॥ ९६

तेन दृष्टेन देवेशि कालं वञ्चति मानवः॥ ९७

देव्युवाच

कथं कालेश्वरो देवः केन वा वञ्चितः प्रभुः।
कस्मिन् स्थाने तु कः सिद्धस्तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर॥ ९८

ईश्वर उवाच

तस्मिन् स्थाने पुरा भद्रे पिङ्गाक्षो नाम वै मुनिः।
ज्ञानस्य वक्ता पञ्चार्थे लोके पाशुपतः स्थितः॥ ९९

तेन चैव पुरा भद्रे लिङ्गेऽस्मिन् स प्रसादितः।
ततो लिङ्गप्रभावेण कालं वञ्चितवान् मुनिः॥ १००

नान्ततो दृश्यते काल ईश्वरासक्तचेतसः।
तत्र स्थित्वा तु सुमहत्कालं यः कालयेत्प्रजाः॥ १०१

न तस्य क्रमितुं शक्तः कालो वै घोररूपिणः।
ततः प्रभृति येऽन्येऽपि तस्मिन्नायतने स्थिताः॥ १०२

तेषां नाक्रमते कालः वर्षलक्षायुतैरपि।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि रहस्यं वरवर्णिनि॥ १०३

तस्य देवस्य चाग्रे तु कूपस्तिष्ठति वै श्रुतः।
तत्र कालोदकं नाम उदकं देवि तिष्ठति॥ १०४

तस्यैव प्राशनाद्देवि पूतो भवति मानवः।
यैस्तु तत्रोदकं पीतं नरैः स्त्रीभिश्च कर्मभिः॥ १०५

स्वयं देवेन शर्वेण त्रिशूलाङ्केन चाङ्कितः।
न तेषां परिवर्तो वै कल्पकोटिशतैरपि॥ १०६

यत्पीत्वा भवबन्धोत्थभयं मुञ्चन्ति मानवाः।
एतद्देवि रहस्यं तु कालोदकमुदाहृतम्॥ १०७

[हे देवि!] उसीके समीपमें मेरे धर्मज्ञ गणोंके द्वारा श्रेष्ठ तथा अति महान् लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। हे प्रिये! उसके पूर्वमें एक अति महान् कूप स्थित है, उस कूपके जलका स्पर्श करके मनुष्य पवित्र हो जाता है॥ ९३-९४ $^1/_2$॥

चण्डेश्वरके पूर्वमें शुभ चित्रेश्वरलिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य चित्रकी समता प्राप्त करता है। चित्रेश्वरके समीपमें महान् कालेश्वरलिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य कालको भी वंचित कर देता है॥ ९५—९७॥

देवी बोलीं—हे सुरेश्वर! प्रभु कालेश्वरदेव किस प्रकार तथा किसके द्वारा वंचित किये गये और किस स्थानपर कौन सिद्ध हुआ? इसे मुझे बताइये॥ ९८॥

ईश्वर बोले—हे भद्रे! पूर्वकालमें उस स्थानमें पंचभूतात्मक लोकमें ज्ञानके वक्ता पशुपतिभक्त पिंगाक्ष नामक मुनि रहते थे॥ ९९॥

हे भद्रे! उन्होंने ही पूर्वकालमें इस लिङ्गमें शिवको प्रसन्न किया था, इसीलिये उन मुनिने लिङ्गके प्रभावसे कालको वंचित किया॥ १००॥

ईश्वरमें आसक्त चित्तवालेको अन्ततक काल दृष्टिगत नहीं होता है। [हे देवि!] वहाँ सन्तानसहित रहकर जो दीर्घकालतक समय व्यतीत करता है, घोररूपी काल उसपर आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं होता है॥ १०१ $^1/_2$॥

उसी समयसे जो अन्य लोग भी उस आयतनमें स्थित रहते हैं, लाखों वर्षोंमें भी काल उनपर आक्रमण नहीं कर सकता है। हे वरवर्णिनि! मैं आपको दूसरा रहस्य भी बताऊँगा॥ १०२-१०३॥

उस लिङ्गके आगे एक प्रसिद्ध कूप स्थित है, हे देवि! वहाँपर कालोदक नामक उदक स्थित है, हे देवि! उसके प्राशन (पान)-से मनुष्य पवित्र हो जाता है। जिन पुरुषों तथा स्त्रियोंने पुण्यकर्मोंके प्रभावसे उस जलका पान कर लिया, उन्हें मानो स्वयं भगवान् शिवने त्रिशूलांकसे अंकित कर दिया, सैकड़ों-करोड़ कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता है। उसका पान करके मनुष्य भवबन्धनसे होनेवाले भयसे मुक्त हो जाते हैं॥ १०४-१०६ $^1/_2$॥

हे देवि! मैंने इस रहस्यमय कालोदकका वर्णन

दर्शनात्तस्य देवस्य महापातकिनोऽपि ये।
तेऽपि भोगान् समश्नन्ति न तेषां क्रमते भवः॥ १०८

कर दिया। [हे देवि!] जो महापातकी हैं, वे भी उस देवके दर्शनसे सुखोंको प्राप्त करते हैं और संसार उनपर आक्रमण नहीं करता है॥ १०७-१०८॥

तल्लिङ्गं सर्वलिङ्गानामुत्तमं परिकीर्तितम्।
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य रुद्रत्वं याति मानवः॥ १०९

वह लिङ्ग सभी लिङ्गोंमें श्रेष्ठ कहा गया है, उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य रुद्रत्व प्राप्त करता है॥ १०९॥

तत्र वापि हि यद्दत्तं दानं रुद्ररतात्मनाम्।
तद्वै महाफलं तेषां यच्छते भावितात्मनाम्॥ ११०

वहाँपर जो भी दान किया जाता है, वह उन भक्तिमय चित्तवालों तथा रुद्रमें रत मनवालोंको महाफल प्रदान करता है॥ ११०॥

खण्डस्फुटितसंस्कारं तत्र कुर्वन्ति ये नराः।
रुद्रलोकं समासाद्य मोदन्ते सुखिनः सदा॥ १११

जो मनुष्य वहाँपर खण्डस्फुटित संस्कार करते हैं, वे रुद्रलोक प्राप्त करके सदा आनन्दित तथा सुखी रहते हैं॥ १११॥

सिद्धिलिङ्गाश्रमं भग्नं दृष्ट्वा राज्ञे निवेदयेत्।
स्वतो वा परतो वापि ये कुर्वन्ति यथा तथा॥ ११२

ते भोगानां नराः पात्रमन्ते मोक्षस्य भाजनाः।
मोक्षप्रदायिनं लिङ्गं यत्कार्यार्थस्य लिप्सया॥ ११३

जो सिद्धिलिङ्गाश्रमको भग्न देखकर [उसके उद्धारके लिये] राजासे निवेदन करता है और जो लोग स्वयं अथवा दूसरोंके माध्यमसे इसे व्यवस्थित करते हैं, वे मनुष्य सुखोंके भागी होते हैं और अन्तमें मोक्षके भाजन होते हैं॥ ११२ $^{1}/_{2}$॥

राजप्रतिग्रहासक्ताः कृतकान् पूजयन्ति ये।
ते रुद्रशापनिर्दग्धाः पतन्ति नरके ध्रुवम्॥ ११४

राजप्रतिग्रहमें निरत जो लोग अपने स्वार्थकी अभिलाषासे मोक्ष प्रदान करनेवाले लिङ्गका पूजन-सत्कार आदि नहीं करते हैं, अपितु कृतघ्नोंका सम्मान करते हैं, वे रुद्रके शापसे दग्ध होकर निश्चित रूपसे नरकमें पड़ते हैं॥ ११३-११४॥

ये पुनः सिद्धिलिङ्गानां प्रासादानां स्वशक्तितः।
कुर्वन्ति पूजां सत्कारं ते मुक्ता नात्र संशयः॥ ११५

जो लोग अपने सामर्थ्यके अनुसार सिद्धिलिङ्गोंके प्रासादोंका पूजन तथा सत्कार करते हैं; वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११५॥

कालेश्वरे तु यो देवि नरः कारयते पुरम्।
एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोके वसेच्चिरम्॥ ११६

हे देवि! जो मनुष्य कालेश्वरमें पुरका निर्माण कराता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंसहित रुद्रलोकमें दीर्घकालतक वास करता है॥ ११६॥

तत्र पूजा जपो होमः कालेशे क्रियते हि यत्।
तत्र दीपप्रदानेन ज्ञानचक्षुर्भवेन्नरः॥ ११७

प्राप्नोति धूपदानेन तत्स्थानं रुद्रसेवितम्।

वहाँ कालेश्वरमें जो भी पूजन, जप, होम किया जाता है, वह फलदायक होता है। वहाँ दीपदान करनेसे मनुष्य ज्ञानचक्षु हो जाता है और धूपदानसे रुद्रसेवित स्थान प्राप्त करता है॥ ११७ $^{1}/_{2}$॥

जागरं ये प्रकुर्वन्ति कालेशस्यैव चाग्रतः॥ ११८
ते मृता वृषभारूढाः शूलहस्तास्त्रिलोचनाः।
भूत्वा रुद्रसमा भद्रे रुद्रलोकं तु ते गताः॥ ११९

जो लोग कालेश्वरके समक्ष [रात्रि] जागरण करते हैं, हे भद्रे! वे मरनेपर वृषभपर आरूढ होकर हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए तीन नेत्रोंसे युक्त हो रुद्रतुल्य होकर रुद्रलोकको जाते हैं॥ ११८-११९॥

बहुनात्र किमुक्तेन कालेशे देवि यत्कृतम्।
तत्सर्वमक्षयं देवि पुनर्जन्मनि जन्मनि॥ १२०

हे देवि! अधिक कहनेसे क्या लाभ, हे देवि! कालेश्वरमें जो भी किया जाता है, वह सब कुछ जन्म-जन्ममें अक्षय होता है॥ १२०॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयो विस्तरतो मया।
न कस्यचिदिहाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः॥ १२१

मैंने यह सब विस्तारसे आपसे कह दिया, मैंने इसे किसीको भी नहीं बताया था, आपको इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये॥ १२१॥

कालेश्वरस्य देवस्य शिवस्यायतनं शुभम्।
कालेश्वरसमीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि॥ १२२

मृत्युना स्थापितं लिङ्गं सर्वरोगविनाशनम्।

यह कालेश्वर देव शिवका आयतन [अत्यन्त] शुभ है। हे वरवर्णिनि! कालेश्वरके समीप दक्षिण दिशामें मृत्युके द्वारा स्थापित किया गया लिङ्ग विद्यमान है, वह सभी रोगोंका नाश करनेवाला है॥ १२२^१/_२॥

कूपस्य चोत्तरे भागे महालिङ्गानि सुव्रते॥ १२३

एकं दक्षेश्वरं नाम द्वितीयं कश्यपेश्वरम्।
पश्चान्मुखं तु यल्लिङ्गं तद्दक्षेश्वरसंज्ञकम्॥ १२४

हे सुव्रते! कूपके उत्तरभागमें [अनेक] महालिङ्ग स्थित हैं। उनमें एक दक्षेश्वर तथा दूसरा कश्यपेश्वर नामक लिङ्ग है। जो पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग है, वह दक्षेश्वर नामवाला है॥ १२३-१२४॥

दक्षेश्वरस्य पूर्वेण महाकालस्तु तिष्ठति।
कुण्डे स्नानं नरः कृत्वा महाकालं तु योऽर्चयेत्॥ १२५

अर्चितं तेन सुश्रोणि जगदेतच्चराचरम्।

दक्षेश्वरके पूर्वमें महाकाल स्थित हैं। हे सुश्रोणि! जो मनुष्य कुण्डमें स्नान करके महाकालका अर्चन करता है, उसने मानो इस चराचर जगत्का पूजन कर लिया॥ १२५½॥

दक्षिणस्यां दिशि तथा तस्य कुण्डस्य वै तटे॥ १२६

स्थापितं देवलिङ्गं तु अन्तकेन महात्मना।
महत्फलमवाप्नोति तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ १२७

उसके दक्षिण दिशामें तथा कुण्डके तटपर ही महात्मा अन्तकके द्वारा देवलिङ्ग स्थापित किया गया है, उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य महान् फल प्राप्त करता है॥ १२६-१२७॥

अन्तकेश्वरसामीप्ये लिङ्गं वै दक्षिणे स्थितम्।
शक्रेश्वरेति नामानं स्थापितं शक्रहस्तिना॥ १२८

अन्तकेश्वरके समीप दक्षिणमें शक्रेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह शक्रहस्तीके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १२८॥

तस्यैव दक्षिणे भागे मातलीश्वरमुत्तमम्।
संस्थापितं मातलिना सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ १२९

उसीके दक्षिण भागमें उत्तम मातलीश्वर [नामक] लिङ्ग है, सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाला वह लिङ्ग मातलिके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १२९॥

देवस्य चाग्रतः कुण्डे तत्र तीर्थं वरानने।
हस्तिपालेश्वरस्याग्रे कुण्डे तिष्ठति भामिनि॥ १३०

तप्तं यत्र पुरा भद्रे अन्तकेनान्तकारिणा।
हस्तीश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १३१

विजयेश्वरनामानं सुरसिद्धैस्तु पूजितम्।
महाकालस्य कुण्डं तु उत्तरे वरवर्णिनि॥ १३२

हे वरानने! वहाँपर देवके आगे कुण्डमें एक तीर्थ विद्यमान है, हे भामिनि! हस्तिपालेश्वरके आगे कुण्डमें वह स्थित है, जहाँ हे भद्रे! अन्त (मृत्यु) करनेवाले अन्तकके द्वारा पूर्वकालमें तप किया गया था। हस्तीश्वरके पूर्वमें देवताओं तथा सिद्धोंद्वारा पूजित विजयेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे वरवर्णिनि! उत्तरमें महाकालका कुण्ड है॥ १३०—१३२॥

बलिनाराधितश्चाहं तस्मिन् स्थाने तु पार्वति।
बलिकुण्डं तु विख्यातं वाराणस्यां मम प्रियम्॥ १३३

तस्य कुण्डस्य पूर्वेण लिङ्गं स्थापितवान् बलिः॥ १३४

हे पार्वति! बलिने उस स्थानमें मेरी आराधना की थी। वाराणसीमें मेरा प्रिय बलिकुण्ड विख्यात है, उस कुण्डके पूर्वमें बलिने मेरे लिङ्गकी स्थापना की थी॥ १३३-१३४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

कृत्तिवासेश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका वर्णन

विद्याविघ्नेश्वरा रुद्राः शिवा ये च प्रकीर्तिताः।
कृत्तिवासेश्वरो यत्र तत्र सर्वे व्यवस्थिताः॥ १

तस्मिन् स्थाने महादैत्यो हस्ती भूत्वा ममान्तिकम्।
तस्य कृत्तिं विदार्याशु करिणं स्वञ्जनप्रभम्॥ २

वासं तु कृतवान् पूर्वं कृत्तिवासस्ततो ह्यहम्।
अविमुक्ते स्थितश्चाहं तस्मिन् स्थाने महामुने॥ ३

लिङ्गं दारुवने गुह्यमृषिसङ्घैस्तु पूजितम्।
पश्चिमाभिमुखश्चाहं तस्मिन्नायतने स्थितः॥ ४

अन्तकेश्वरलिङ्गं तु मम चाग्रे स्थितं शुभम्।
उत्तरे मम लिङ्गं तु स्थापितं शक्रहस्तिना॥ ५

मातलीश्वरलिङ्गं तु दक्षिणेन स्थितं मम।
मम पूर्वेण कूपस्तु नानासिद्धिसमन्वितः॥ ६

अणिमाद्यास्तथाष्टौ च सिद्धयस्तत्र संस्थिताः॥ ७

ये ते पाशुपतास्तत्र मध्यमेश्वरसंस्थिताः।
तेषामनुग्राहार्थं च कृत्तिवासाः स्थितः पुरा॥ ८

रुद्राणां तु शरीरं तु मध्यमेश्वरमीश्वरम्।
कृत्तिवासाः शिवः प्राहुरेतद्गुह्यतरं मम॥ ९

अन्ये च बहवः सिद्धा ऋषयस्तत्र संस्थिताः।
उपासन्ति च मां नित्यं मद्भावगतमानसाः॥ १०

वाराणस्यां प्रमुच्यन्ते ये जनास्तत्र संस्थिताः।
कृमिकीटाः प्रमुच्यन्ते महापातकिनश्च ये॥ ११

स्मरणाद्विप्र लिङ्गस्य पापं वै भस्मसाद्भवेत्॥ १२

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं ये यजन्ति शुभान्विताः।
ते रुद्रस्य शरीरे तु प्रविष्टा अपुनर्भवाः॥ १३

अनेनैव शरीरेण प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम्।
बहूनि तत्र तीर्थानि संख्या कर्तुं न शक्यते॥ १४

[ईश्वर बोले—] जो विद्याविघ्नेश्वर रुद्र शिव कहे गये हैं, वे सब जहाँ कृत्तिवासेश्वर हैं, वहाँ स्थित हैं॥ १॥

उस स्थानमें एक महादैत्य हाथी बनकर मेरे पास आया था, तब मैंने अंजनकी प्रभावाले उस हाथीको शीघ्र ही विदीर्ण करके उसके चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण कर लिया, तबसे मैं कृत्तिवास नामवाला हो गया और हे महामुने! मैं उस अविमुक्त स्थानमें स्थित हूँ॥ २-३॥

दारुवनमें ऋषियोंद्वारा पूजित एक गुह्य लिङ्ग है, मैं उस आयतनमें पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ॥ ४॥

मेरे सामने शुभ अन्तकेश्वरलिङ्ग स्थित है। मेरे उत्तरमें शक्रहस्तीके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ५॥

मातलीश्वरलिङ्ग मेरे दक्षिणमें स्थित है। मेरे पूर्वमें विविध सिद्धियोंसे युक्त एक कूप विराजमान है, अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ वहाँ विद्यमान हैं॥ ६-७॥

जो भी पाशुपत हैं, वे वहाँ मध्यमेश्वरमें रहते हैं, उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये मैं कृत्तिवासरूपमें वहाँ स्थित हूँ॥ ८॥

भगवान् मध्यमेश्वर रुद्रोंके शरीर हैं। कृत्तिवास ही शिव हैं। इसे मेरा परम गुह्य लिङ्ग कहा गया है॥ ९॥

अन्य बहुत-से सिद्ध ऋषि वहाँ रहते हैं और मेरी भक्तिसे युक्त चित्तवाले होकर नित्य मेरी उपासना करते हैं॥ १०॥

जो लोग वाराणसीमें वहाँ रहते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। कृमि-कीट तथा [अन्य] जो महापातकी हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं। हे विप्र! लिङ्गके स्मरणसे पाप भस्मसात् हो जाता है॥ ११-१२॥

कल्याणकी कामनावाले जो लोग कृत्तिवासेश्वर-लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे रुद्रके शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और पुनर्जन्मरहित हो जाते हैं, वे इसी शरीरसे उत्तम निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं॥ १३½॥

दशकोटिसहस्राणि तीर्थान्यत्रैव वै मुने।
कृत्तिवासेश्वरो यत्र तत्र सर्वे व्यवस्थिताः॥ १५
तस्मिँल्लिङ्गे तु सान्निध्यं त्रिकालं नात्र संशयः।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणामप्रकाश्यं कृतं मया॥ १६
यत्र तीर्थान्यनेकानि कृतानि बहुभिर्द्विजैः।
पुलस्त्याद्यैर्महाभागैर्लोमशाद्यैर्महात्मभिः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं न जानन्ति सुरासुराः॥ १७

भृगुरुवाच

कृते त्रेताद्वापरे च कलौ च परमेश्वरम्।
महागुह्यातिगुह्यं च संसारार्णवतारकम्॥ १८
केन कार्येण देवेश त्वयेदं न प्रकाशितम्।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गमविमुक्ते तु संस्थितम्॥ १९

ईश्वर उवाच

दशकोटिसहस्राणि आगच्छन्ति दिने दिने।
धर्मक्रियाविनिर्मुक्ताः सत्यशौचविवर्जिताः॥ २०
देवद्विजगुरून्नित्यं निन्दन्तो भक्तिवर्जिताः।
मायामोहसमायुक्ता दम्भमोहसमन्विताः॥ २१
शूद्रान्ननिरता विप्रा विह्वला रतिलालसाः।
कृत्तिवासेश्वरं प्राप्य ते सर्वे विगतज्वराः॥ २२
संसारभयनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः।
सुखेन मोक्षमायान्ति यथा सुकृतिनस्तथा॥ २३
दिव्यैर्विमानैरारूढाः किङ्किणीरवकान्वितैः।
देवानां भुवनं लभ्यं ते यान्ति परमं पदम्॥ २४
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षो लभ्येत वा न वा।
एकेन जन्मना तत्र कृत्तिवासे तु लभ्यते॥ २५
पूर्वजन्मकृतं पापं तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्।
तत्र सिद्धेश्वरं नाम मुखलिङ्गं तु संस्थितम्॥ २६
अन्तकेश्वरदेवस्य स्थितं चैवोत्तरेण तु।
आलयं सर्वसिद्धानां तत्स्थानं परमं महत्॥ २७
अव्ययं शाश्वतं दिव्यं विरजं ब्रह्मणालयम्।
शक्तिमूर्तिस्थितं शान्तं शिवं परमकारणम्॥ २८
अव्यक्तं शाश्वतं सूक्ष्मं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं महत्॥ २९

वहाँ अनेक तीर्थ हैं, उनकी संख्या नहीं बतायी जा सकती है, हे मुने! वहींपर दस हजार करोड़ तीर्थ हैं। जहाँ कृत्तिवासेश्वरलिङ्ग है, वहाँ वे सभी [तीर्थ] विद्यमान हैं॥ १४-१५॥

उस लिङ्गमें त्रिकाल उनका सान्निध्य रहता है, इसमें सन्देह नहीं है। मैंने ब्रह्मा, विष्णु तथा सुरेन्द्रसे भी इसे प्रकाशित नहीं किया॥ १६॥

जहाँ बहुत-से द्विजों तथा पुलस्त्य, लोमश आदि भाग्यशाली महात्माओंके द्वारा अनेक तीर्थ निर्मित किये गये हैं, उस कृत्तिवासेश्वरलिङ्गको देवता तथा असुर भी नहीं जानते हैं॥ १७॥

भृगु बोले—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुगमें यह परम ऐश्वर्यसम्पन्न और गुह्य-से-गुह्य लिङ्ग संसारसागरसे पार करनेवाला है, हे देवेश! आपने अविमुक्त [क्षेत्र]-में स्थित इस कृत्तिवासेश्वर लिङ्गको किस कारणसे प्रकाशित नहीं किया?॥ १८-१९॥

ईश्वर बोले—दस हजार करोड़ तीर्थ यहाँ प्रतिदिन आते हैं, धर्मक्रियासे विहीन, सत्य-शौचसे रहित, देवताओं, द्विजों तथा गुरुओंकी सदा निन्दा करनेवाले, भक्तिहीन, मायामोहसे युक्त, दम्भ-मोहसे समन्वित, शूद्रोंके अन्नका सेवन करनेवाले, विह्वल तथा रतिकी लालसावाले सभी विप्र कृत्तिवासेश्वरमें आकर सन्तापरहित हो जाते हैं॥ २०—२२॥

संसारके भयसे मुक्त तथा सभी पापोंसे रहित होकर वे पुण्यात्माओंकी भाँति सुखपूर्वक मोक्ष प्राप्त करते हैं॥ २३॥

सुन्दर किंकिणियोंकी ध्वनिसे समन्वित दिव्य विमानोंमें बैठकर वे देवताओंके लिये सुलभ परम पद प्राप्त करते हैं। हजारों जन्मोंमें मोक्ष मिले अथवा नहीं, किंतु कृत्तिवासमें एक ही जन्ममें [मोक्ष] प्राप्त हो जाता है॥ २४-२५॥

उस लिङ्गके दर्शनसे पूर्वजन्ममें किया गया पाप नष्ट हो जाता है। वहाँ सिद्धेश्वर नामक मुखलिङ्ग भी स्थित है, वह अन्तकेश्वरदेवके उत्तरमें है। वह स्थान सभी सिद्धोंका आलय, अति महान्, अव्यय, शाश्वत, दिव्य, विशुद्ध, ब्रह्मका आलय, शक्ति-मूर्तिस्थित, शान्त, कल्याणमय, परमकारणस्वरूप, अव्यक्त, सनातन, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मसे भी परम सूक्ष्म है॥ २६—२९॥

ईश्वर उवाच

एतद्दारुवनस्थानं कलौ देवस्य गीयते।
परात्परं तु यज्ज्ञानं मोक्षमार्गप्रदायकम्॥ ३०
प्राप्यते द्विजशार्दूल कृत्तिवासे न संशयः।
कृते तु त्र्यम्बकं प्रोक्तं त्रेतायां कृत्तिवाससम्॥ ३१
माहेश्वरं तु देवस्य द्वापरे नाम गीयते।
हस्तिपालेश्वरं नाम कलौ सिद्धैस्तु गीयते॥ ३२
दण्डिरूपधरेणैव देवदेवेन शम्भुना।
द्विजेष्वनुग्रहश्चात्र तत्र स्थाने कृतः पुरा॥ ३३
युगे युगे तु तत्त्वज्ञा ब्राह्मणाः शान्तचेतसः।
उपासते च मां नित्यं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ ३४
आदेहपतनाद्विप्रास्तस्मिन् क्षेत्र उपासकाः।
जपन्ति रुद्राध्यायं ते स शिवः कृत्तिवाससम्॥ ३५
तेषां देवः सदा तुष्टो दिव्यान् लोकान् प्रयच्छति।
ये ते जप्ता मया रुद्राः शङ्कुकर्णालये पुरा॥ ३६
तेऽविमुक्ते तु तिष्ठन्ति कृत्तिवासे न संशयः।
द्वारं यत् सांख्ययोगानां सा तेषां वसतिः स्मृता॥ ३७
श्यामास्तु पुरुषा रौद्रा वैद्युता हरिपिङ्गलाः।
अशरीराः शरीरा ये ते च सृष्टा मया पुरा॥ ३८
नीलकण्ठाः श्वेतमुखा बिम्बोष्ठाश्च कपर्दिनः।
हरित्केशाः शृङ्गिणश्च लम्बोष्ठास्तिग्महेतयः॥ ३९
असंख्याः परिसंख्यातास्तथान्ये च सहस्रशः।
तेऽविमुक्ते तु तिष्ठन्ति कृत्तिवाससमीपतः॥ ४०
रुद्राणां तु शिवो ज्ञेयं कृत्तिवासेश्वरं परम्।
तेन तैः प्रेरिता यान्ति दुष्प्रापमकृतात्मभिः॥ ४१
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्बिषम्।
अविमुक्ते तु वस्तव्यं जप्तव्यं शतरुद्रियम्॥ ४२
कृत्तिवासेश्वरो देवो द्रष्टव्यश्च पुनः पुनः।
यदीच्छेत्तारकं ज्ञानं शाश्वतं चामृतप्रदम्॥ ४३
एतत्सर्वं प्रकर्तव्यं यदीच्छेन्मामकं पदम्॥ ४४
गजवक्त्रः स्वयम्भूतस्तिष्ठत्यत्र विनायकः।
कूष्माण्डराजशम्भुश्च जयन्तश्च मदोत्कटः॥ ४५

ईश्वर बोले—यह दारुवन स्थान कलियुगमें शिवका स्थान कहा जाता है। हे द्विजश्रेष्ठ! जो मोक्षमार्ग देनेवाला परात्पर ज्ञान है, वह कृत्तिवासमें प्राप्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। सत्ययुगमें [शिवका नाम] त्र्यम्बक तथा त्रेतामें कृत्तिवास कहा गया है॥ ३०-३१॥

द्वापरमें शिवका नाम माहेश्वर कहा जाता है। कलियुगमें सिद्धोंके द्वारा शिवका नाम हस्तिपालेश्वर कहा जाता है॥ ३२॥

पूर्वकालमें देवदेव शम्भुने दण्डीका रूप धारण करके उस स्थानपर द्विजोंपर अनुग्रह किया था। शान्त चित्तवाले तत्त्वज्ञ ब्राह्मण प्रत्येक युगमें [वहाँ] नित्य मेरी उपासना करते हैं और शतरुद्रिय मन्त्रका जप करते हैं॥ ३३-३४॥

वे उपासक विप्र देहके पतनपर्यन्त (मृत्युकालतक) उस क्षेत्रमें रुद्राध्यायका जप करते हैं, वे कृत्तिवासेश्वर भगवान् शिव उनके ऊपर प्रसन्न होकर उन्हें सदा दिव्य लोक प्रदान करते हैं। मैंने पूर्वकालमें शंकुकर्णालयमें जिन रुद्रोंका जप किया था, वे अविमुक्त [क्षेत्र] कृत्तिवासमें स्थित हैं, इसमें संशय नहीं है। जो सांख्ययोगोंका द्वार है, वह उन सबका निवासस्थान कहा गया है॥ ३५—३७॥

मैंने पूर्वकालमें श्याम, रौद्र, वैद्युत, हरिपिंगल, अशरीरी, शरीरी, नीलकण्ठ, श्वेतमुख, बिम्बोष्ठ, कपर्दी, हरित्केश, शृंगी, लम्बोष्ठ, तिग्महेति नामवाले जिन असंख्य तथा अन्य हजारों पुरुषोंकी सृष्टि की थी, वे कृत्तिवासके समीप अविमुक्तमें रहते हैं॥ ३८—४०॥

श्रेष्ठ कृत्तिवासेश्वरको रुद्रोंका शिव जानना चाहिये, अतः उन [रुद्रों]-के द्वारा प्रेरित किये गये भक्त पुण्यरहित आत्मावालोंके द्वारा दुष्प्राप्य लोकको जाते हैं॥ ४१॥

[इसलिये] अनेक पापोंसे युक्त इस मानवशरीरको नश्वर समझकर अविमुक्तमें वास करना चाहिये, शतरुद्रियमन्त्रका जप करना चाहिये और बार-बार कृत्तिवासेश्वरदेवका दर्शन करना चाहिये॥ ४२ $^1/_2$॥

यदि कोई शाश्वत तथा अमृत प्रदान करनेवाले तारक ज्ञानकी इच्छा करता हो और यदि मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो उसे यह सब करना चाहिये॥ ४३-४४॥

यहाँपर स्वयम्भू गजानन, विनायक, कूष्माण्डराज-

सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद्विकटाः कुब्जवामनाः।
यत्र नन्दी महाकालः चित्रघण्टो महेश्वरः॥ ४६
दृगिचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः।
एते चान्ये च बहवो गणा रुद्रेश्वराय वै॥ ४७
रक्षन्ति सततं सर्वे अविमुक्तं हि मे गृहम्।
अयनं तूत्तरं ज्ञेयं दृगिचण्डेश्वरं मम॥ ४८
दक्षिणं शङ्कुकर्णं तु ओङ्कारं विषुवं मम।
दशकोट्यस्तु तीर्थानां संविशन्त्यथ पर्वणि॥ ४९
रहस्यं विप्रमन्त्राणां गोपनीयं प्रयत्नतः।
यच्च पाशुपतं प्रोक्तं पदं सम्यङ्निषेवितम्॥ ५०
पूजनात्तदवाप्नोति षण्मासाभ्यन्तरेण तु।
ममैव प्रीतिरतुला तस्मिन्नायतने सदा॥ ५१
अन्ये च बहवस्तत्र सिद्धलिङ्गाश्च सुव्रते।
सर्वेषामेव स्थानानां तत्स्थानं तु ममाधिकम्।
ज्ञात्वा कलियुगं घोरमप्रकाश्यं कृतं मया॥ ५२
न सा गतिः प्राप्यते यज्ञदानै-
र्तीर्थाभिषेकैर्न तपोभिरुग्रैः।
अन्यैश्च धर्मैर्विविधैः शुभैर्वा
या कृत्तिवासे तु जितेन्द्रियैश्च॥ ५३
दर्शनाद्देवदेवस्य ब्रह्महापि प्रमुच्यते।
स्पर्शने पूजने चैव सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ५४
श्रद्धया परया देवं येऽर्चयन्ति सनातनम्।
फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः॥ ५५
पुष्पैः फलैस्तथान्यैश्च भक्ष्यैरुच्चावचैस्तथा।
क्षीरेण मधुना चैव तोयेन सह सर्पिषा॥ ५६
तर्पयन्ति परं लिङ्गमर्चयन्ति देवं शुभम्।
हुडुङ्कारनमस्कारैः नृत्यगीतैस्तथैव च॥ ५७
मुखवाद्यैरनेकैश्च स्तोत्रमन्त्रैस्तथैव च।
उपोष्य रजनीमेकां भक्त्या परमया हरम्॥ ५८
ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्।
भूता हि चैत्रमासस्य अर्चयेत्परमेश्वरम्॥ ५९
स वित्तेशपुरं प्राप्य क्रीडयेत् यक्षराडिव।
वैशाखस्य चतुर्दश्यां योऽर्चयेत्प्रयतः शिवम्॥ ६०

शम्भु, जयन्त तथा मदोत्कट स्थित हैं॥ ४५॥

यहाँ कुछ सिंह-व्याघ्रके समान मुखवाले, विकट, टेढ़े तथा बौने [गण] भी विद्यमान हैं। यहाँ नन्दी, महाकाल, चित्रघण्ट, महेश्वर, दृगिचण्डेश्वर, घण्टाकर्ण, महाबल—ये सब तथा रुद्रेश्वरके अन्य बहुत-से गण मेरे अविमुक्त गृहकी निरन्तर रक्षा करते हैं॥ ४६-४७ १/२ ॥

दृगिचण्डेश्वरको मेरा उत्तर अयन, शंकुकर्णको दक्षिण अयन और ओंकारको मेरा विषुव जानना चाहिये। दस करोड़ तीर्थ पर्वके अवसरपर यहाँ प्रवेश करते हैं॥ ४८-४९॥

विप्र-मन्त्रोंके रहस्यको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। भलीभाँति निषेवित जो पाशुपतपद कहा गया है, वह इसके पूजनसे छः महीनोंके भीतर ही प्राप्त हो जाता है। उस आयतनमें मेरी अतुलनीय प्रीति सर्वदा रहती है॥ ५०-५१॥

हे सुव्रते! वहाँपर अन्य बहुत-से सिद्ध लिङ्ग स्थित हैं। वह स्थान मेरे सभी स्थानोंसे बढ़कर है। कलियुगको भयानक जानकर मैंने इसे प्रकाशित नहीं किया॥ ५२॥

जो गति जितेन्द्रिय लोग कृत्तिवासमें प्राप्त करते हैं, वह गति यज्ञों, दानों, तीर्थों, अभिषेकों, घोर तपों तथा अन्य विविध शुभ धर्मोंके द्वारा भी लोग नहीं प्राप्त कर सकते हैं॥ ५३॥

देवदेवके दर्शनसे ब्राह्मणका वध करनेवाला भी [पापसे] मुक्त हो जाता है, [देवदेवका] स्पर्श तथा पूजन करनेसे व्यक्ति सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ५४॥

जो लोग फाल्गुनमासके कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथिको एकाग्रचित्त होकर परम श्रद्धाके साथ सनातन देवका अर्चन करते हैं; पुष्पों, फलों, अनेकविध भक्ष्य पदार्थों, दुग्ध, मधु, जल तथा घृतसे शुभ लिङ्गदेवको तृप्त करते हैं और एक रात उपवास करके महान् भक्तिसे हुडुङ्कार, नमस्कार, नृत्य, गीत, मुखवाद्य तथा विविध स्तोत्र-मन्त्रोंसे शिवको तृप्त करते हैं, वे सदाशिवके अनामय परम स्थानको प्राप्त करते हैं॥ ५५—५८ १/२ ॥

जो मनुष्य चैत्रमासकी चतुर्दशीको परमेश्वरका अर्चन करता है, वह कुबेरलोक प्राप्त करके यक्षराजकी

वैशाखं लोकमासाद्य तस्यैवानुचरो भवेत्।
ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां योऽर्चयेच्छ्रद्धया हरम्॥ ६१

सोऽग्निलोकमवाप्नोति यावदाचन्द्रतारकम्।
चतुर्दश्यां शुचौ मासि योऽर्चयेत्तु सुरेश्वरम्॥ ६२

सूर्यस्य लोके सुसुखी क्रीडते यावदीप्सितम्।
श्रावणस्य चतुर्दश्यां कामलिङ्गं समर्चितम्॥ ६३

स याति वारुणं लोकं क्रीडते चाप्सरैः सह।
मासि भाद्रपदे युक्तमर्चयित्वा तु शङ्करम्॥ ६४

पुष्पैः फलैश्च विविधै रुद्रस्यैति सलोकताम्।
पितृपक्षे चतुर्दश्यां पूजयित्वा महेश्वरम्॥ ६५

प्राप्यते पितृलोकं तु क्रीडते पूजितस्तु तैः।
प्रबोधमासे देवेशमर्चयित्वा महेश्वरम्॥ ६६

स चन्द्रलोकमाप्नोति क्रीडते यावदीप्सितम्।
बहुले मार्गशीर्षस्य अर्चयित्वा पिनाकिनम्॥ ६७

विष्णुलोकमवाप्नोति क्रीडते कालमक्षयम्।
अर्चयित्वा तथा पुष्ये स्थाणुं तुष्टेन चेतसा॥ ६८

प्राप्नोति नैर्ऋतं स्थानं तेन वै सह मोदते।
माघे समर्चयित्वा वै पुष्पमूलफलैः शुभैः॥ ६९

प्राप्नोति शिवलोकं तु त्यक्त्वा संसारसागरम्।
कृत्तिवासेश्वरं देवमर्चयेत्तु प्रयत्नतः॥ ७०

अविमुक्ते च वस्तव्यं यदीच्छेन्मामकं पदम्॥ ७१

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि
धन्याविमुक्ते तु नरा वसन्ति।
स्वर्गापवर्गस्य पदस्य लिङ्गं
ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ ७२

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं पुण्यं काशिपुर्यां वरानने।
धन्वन्तरिः पुरा जातः काशिराजगृहे शुभे॥ ७३

भाँति क्रीड़ा करता है॥ ५९½॥

जो वैशाखमासकी चतुर्दशीके दिन संयत होकर शिवकी पूजा करता है, वह स्कन्दलोक प्राप्त करके उन्हींका अनुचर हो जाता है। जो ज्येष्ठमासमें चतुर्दशी तिथिको श्रद्धा-पूर्वक शिवका पूजन करता है, वह चन्द्र-तारोंकी स्थिति-पर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है॥ ६०-६१½॥

जो आषाढ़ महीनेमें चतुर्दशी तिथिको सुरेश्वरका अर्चन करता है, वह सूर्यलोकमें इच्छित समयतक सुखी रहते हुए क्रीडा करता है। जो श्रावणमासकी चतुर्दशी तिथिको काम-लिङ्गका अर्चन करता है, वह वरुणलोकको जाता है और वहाँ अप्सराओंके साथ क्रीडा करता है॥ ६२-६३½॥

भाद्रपदमासमें भक्तिपूर्वक विविध पुष्पों तथा फलोंके द्वारा शंकरकी पूजा करके मनुष्य रुद्रका सालोक्य प्राप्त करता है। [आश्विनमासमें] पितृपक्षमें चतुर्दशी तिथिको महेश्वरका पूजन करके मनुष्य पितरोंका लोक प्राप्त करता है और पूजित होकर उनके साथ क्रीडा करता है॥ ६४-६५½॥

प्रबोध (कार्तिक)-मासमें देवेश महेश्वरकी पूजा करके वह चन्द्रलोक प्राप्त करता है और इच्छित समयतक वहाँ विहार करता है। मार्गशीर्षमासकी चतुर्दशी तिथिको पिनाकधारी शिवका अर्चन करके मनुष्य विष्णुलोक प्राप्त करता है और अक्षयकालतक वहाँ क्रीडा करता है॥ ६६-६७½॥

पौष महीनेमें प्रसन्न मनसे स्थाणु (शिव)-की पूजा करके मनुष्य निर्ऋतिलोक प्राप्त करता है और उनके साथ आनन्द करता है। माघमासमें शुभ पुष्प-मूल-फलोंके द्वारा शिवकी पूजा करके मनुष्य संसारसागरका त्यागकर शिवलोक प्राप्त करता है॥ ६८-६९½॥

यदि कोई मेरा लोक चाहता हो, तो उसे प्रयत्नपूर्वक कृत्तिवासेश्वरदेवकी पूजा करनी चाहिये और अविमुक्त [क्षेत्र]-में वास करना चाहिये॥ ७०-७१॥

सिद्धलोग यह गीत गाते हैं कि जो मनुष्य अविमुक्तमें वास करते हैं और स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले कृत्तिवासेश्वरलिङ्गकी शरण ग्रहण करते हैं, वे धन्य हैं॥ ७२॥

ईश्वर बोले—हे वरानने! काशीपुरीमें अन्य

तेन भद्रे तथा काले अहमाराधितः शुभे।
भृङ्गीशेश्वरनामानं लिङ्गं तत्र स्थितं मम॥ ७४

पश्चान्मुखः स्थितश्चाहं कूपस्तु मम चाग्रतः।
तिष्ठन्त्योषधयस्तत्र सर्वा ह्यमृतसम्भवाः॥ ७५

क्षिप्तास्तस्मिन् पुरा काले वैद्यराजेन सुन्दरि।
तेन तत्प्रोच्यते स्थानं वैद्यनाथं महेश्वरि॥ ७६

तस्मिन् कूपे तु ये देवि पानीयं पिबते नरः।
व्याधिभिः सम्प्रमुच्यन्ते वैद्यनाथप्रभावतः॥ ७७

कूपस्य चोत्तरे भागे हरिकेश्वरसंज्ञकम्।
रोगैश्चापि प्रमुच्यन्ते हरिकेश्वरदर्शनात्॥ ७८

तुङ्गेशस्य समीपे तु दक्षिणे वरवर्णिनि।
शैवं तडागमाख्यातं शिवेनाधिष्ठितं शुभम्॥ ७९

पश्चिमे तु तटे रम्ये स्थितोऽहं तत्र सुव्रते।
पश्चिमाभिमुखो भद्रे तस्मिन् स्थाने व्यवस्थितः॥ ८०

शिवेश्वर इति ख्यातो भक्तानां वरदायकः।
शिवेश्वराद्दक्षिणतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८१

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं स्थापितं जमदग्निना।
जमदग्निलिङ्गात्पश्चिमतो नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ ८२

भैरवेश्वरविख्यातं सुरासुरनमस्कृतम्।
तत्र दुर्गा स्थिता भद्रे ममापि हि भयङ्करा॥ ८३

नृत्यमाना तु सा देवी लिङ्गस्यैव समीपतः।
भैरवेशं तु तं दृष्ट्वा संसारे न पतेत्पुनः॥ ८४

तस्यैव भैरवेशस्य कूपस्तिष्ठति चोत्तरे।
तस्योपस्पर्शनं कृत्वा सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ ८५

कूपस्य पश्चिमे भागे लिङ्गं तिष्ठति भामिनि।
शुकेश्वरमिति ख्यातं स्थापितं व्याससूनुना॥ ८६

तं दृष्ट्वा मानवो देवि वैराग्यमपि विन्दति।
तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे तडागं यत्र तिष्ठति॥ ८७

पुण्यप्रद आयतन भी हैं। पूर्वकालमें काशिराजके शुभ गृहमें धन्वन्तरि उत्पन्न हुए थे॥ ७३॥

हे भद्रे! उन्होंने शुभ कालमें मेरी आराधना की थी। वहाँपर मेरा भृंगीशेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। मैं वहाँ पश्चिमकी ओर मुख किये हुए स्थित हूँ और मेरे सामने एक कूप है। वहाँ अमृतसे उत्पन्न सभी औषधियाँ विद्यमान हैं॥ ७४-७५॥

हे सुन्दरि! पूर्वकालमें वैद्यराजके द्वारा औषधियाँ उस कूपमें डाली गयी थीं, इसीलिये हे महेश्वरि! उस स्थानको वैद्यनाथ कहा जाता है॥ ७६॥

हे देवि! जो मनुष्य उस कूपका जल पीते हैं, वे वैद्यनाथके प्रभावसे व्याधियोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ७७॥

[उस] कूपके उत्तरभागमें हरिकेश्वर नामक लिङ्ग है, हरिकेश्वरके भी दर्शनसे मनुष्य रोगोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ७८॥

हे वरवर्णिनि! दक्षिण दिशामें तुंगेश्वरके समीप शिवके द्वारा अधिष्ठित एक उत्तम शैव तडाग बताया गया है॥ ७९॥

हे सुव्रते! वहाँ रम्य पश्चिमी तटपर मैं स्थित हूँ। हे भद्रे! भक्तोंको वर प्रदान करनेवाला मैं उस स्थानमें पश्चिमाभिमुख होकर स्थित हूँ और शिवेश्वर—इस नामसे विख्यात हूँ। शिवेश्वरके दक्षिणमें [महर्षि] जमदग्निके द्वारा स्थापित एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। जमदग्निलिङ्गके पश्चिममें देवताओं तथा असुरोंसे नमस्कृत भैरवेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग स्थित है॥ ८०—८२$^{१}/_{२}$॥

हे भद्रे! वहाँ मेरे लिङ्गके ही समीपमें नृत्य करती हुई वे भयंकर देवी दुर्गा स्थित हैं। उन भैरवेश्वरका दर्शन करके मनुष्य पुनः संसारमें नहीं आता है॥ ८३-८४॥

उन्हीं भैरवेश्वरके उत्तरमें एक कूप स्थित है, उसमें स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ८५॥

हे भामिनि! कूपके पश्चिम भागमें व्यासपुत्रके द्वारा स्थापित शुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य वैराग्य भी प्राप्त कर लेता है॥ ८६$^{१}/_{२}$॥

तत्र स्नात्वा वरारोहे कृतकृत्यो भवेन्नरः।
नैर्ऋते तु दिशाभागे शुकेशस्य तु सुन्दरि॥ ८८

स्थापितं मुखलिङ्गं तु व्यासेनापि महर्षिणा।
व्यासेश्वरं तु विख्यातमृषिसङ्घैस्तु वन्दितम्॥ ८९

व्यासकुण्डे नरः स्नात्वा अर्चयित्वा सुरान् पितॄन्।
अक्षयाँल्लभते लोकान् यत्र तत्राभिकाङ्क्षितान्॥ ९०

व्यासतीर्थसमीपे तु पश्चिमेन यशस्विनि।
घण्टाकर्णह्रदं नाम सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ ९१

स्नानं कृत्वा ह्रदे तस्मिन् व्यासस्यैव तु दर्शनात्।
यत्र तत्र मृतो वापि वाराणस्यां मृतो भवेत्॥ ९२

तत्र देवि तनुं त्यक्त्वा लभेद्गाणेश्वरीं गतिम्।
घण्टाकर्णसमीपे तु उत्तरेण यशस्विनि॥ ९३

पुण्यमप्सरसां ख्यातं पञ्चचूडाविनिर्मितम्।
पञ्चचूडाह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा चैव तमीश्वरम्॥ ९४

स्वर्गलोकं नरो याति पञ्चचूडाप्रियः सदा।
तस्य चोत्तरदेशे तु अशोकवनसंस्थितम्॥ ९५

अशोकवनमध्यस्थं तत्र कुण्डं शुभोदकम्।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा विलोकश्चैव जायते॥ ९६

विलोकाच्चोत्तरे भागे नाम्ना मन्दाकिनी शुभा।
स्वर्गलोके तु सा पुण्या किं पुनर्मानुषे शुभे॥ ९७

यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं देवि सर्वदा।
लिङ्गं तत्र स्वयं भूतं क्षेत्रमध्ये तु सुन्दरि॥ ९८

ईश्वर उवाच

मन्दाकिनीजले स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम्।
एकविंशकुलोपेतो रुद्रलोके वसेच्चिरम्॥ ९९

एतत्किल सदा प्राहुः पितरः सपितामहाः।
योऽपि चास्मत्कुले जातो मन्दाकिन्या जलोद्गतः॥ १००

हे वरारोहे! वहाँ उसके उत्तरभागमें एक तडाग स्थित है, जहाँ स्नान करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ८७१/२॥

हे सुन्दरि! शुकेश्वरके नैर्ऋत दिशाभागमें महर्षि व्यासके द्वारा मुखलिङ्ग स्थापित किया गया है, व्यासेश्वर नामसे विख्यात वह [लिङ्ग] ऋषियोंके द्वारा वन्दित है॥ ८८-८९॥

वहाँ व्यासकुण्डमें स्नान करके तथा देवताओं और पितरोंका अर्चन करके मनुष्य अभीष्ट अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है॥ ९०॥

हे यशस्विनि! व्यासतीर्थके समीप पश्चिममें समस्त सुख प्रदान करनेवाला घण्टाकर्ण नामक ह्रद विद्यमान है। उस ह्रदमें स्नान करके तथा व्यासका दर्शन करके मनुष्य जहाँ कहीं भी मरता है, वह मानो वाराणसीमें मृत्यु प्राप्त करता है। हे देवि! वहाँपर शरीरका त्याग करके मनुष्य गाणेश्वरीगति प्राप्त करता है॥ ९१-९२१/२॥

हे यशस्विनि! घण्टाकर्णके समीप उत्तरदिशामें पंचचूडाके द्वारा निर्मित अप्सराओंका पुण्यप्रद ह्रद बताया गया है, पंचचूडाह्रदमें स्नान करके तथा उन ईश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गलोक जाता है और सर्वदा पंचचूडाका प्रिय बना रहता है॥ ९३-९४१/२॥

उसके उत्तरभागमें अशोकवन स्थित है, वहाँपर अशोकवनके मध्यमें पवित्र जलवाला कुण्ड स्थित है। उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य [वहाँपर विद्यमान] विलोकतीर्थस्वरूप हो जाता है॥ ९५-९६॥

विलोकके उत्तरभागमें शुभ मन्दाकिनी विद्यमान है। हे देवि! स्वर्गलोकमें स्थित वह पुण्यमयी [मन्दाकिनी] नदी यदि इस शुभ मनुष्यलोकमें है, तो फिर कहना ही क्या, जहाँ सर्वदा देवदेव [शिवका] सान्निध्य रहता है। हे सुन्दरि! वहाँ क्षेत्रके मध्यमें लिङ्ग स्वयं आविर्भूत हुआ है॥ ९७-९८॥

ईश्वर बोले—मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके मध्यमेश्वरका दर्शनकर मनुष्य [अपने] इक्कीस कुलोंसहित दीर्घकालतक रुद्रलोकमें वास करता है॥ ९९॥

पितामहोंसहित पितृगणोंने यह सर्वदा कहा है कि

भोजयेच्च यतो विप्रान् यतीन् पाशुपतान् बुधः।
स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ १०१

पिण्डनिर्वापणं चैव सर्वं भवति चाक्षयम्।
क्षेत्रस्य चास्य सङ्क्षेपान्मया ते कथितं स्फुटम्॥ १०२

दक्षिणं भूमिभागं तु मध्यमेशस्य यद्भवेत्।
तत्र पूर्वामुखं लिङ्गं विश्वेदेवैः प्रतिष्ठितम्॥ १०३

पश्चान्मुखं तु देवेशं वीरभद्रप्रतिष्ठितम्।
पश्चान्मुखेन दृष्टेन वीरभद्रसलोकताम्॥ १०४

तयोस्तु दक्षिणे देवि भद्रकालीह्रदं स्मृतम्।
कुण्डस्य पश्चिमे तीरे शौनकेन प्रतिष्ठितम्॥ १०५

मतङ्गेश्वरनामानं लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ १०६
मतङ्गेश्वरकोणे तु वायव्ये तु यशस्विनि।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि नरैस्तत्र महात्मभिः॥ १०७

तस्यैव दक्षिणे भागे जयन्तेन प्रतिष्ठितम्।
देवराजस्य पुत्रेण आत्मनो जयमिच्छता॥ १०८

ब्रह्मतारेश्वरं चैवं तस्मिन् स्थाने सुरेश्वरि।
पितृभिः याज्ञवल्क्येन तत्र लिङ्गं प्रतिष्ठितम्॥ १०९

तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धिकूटः प्रकीर्तितः।
सिद्धाः पाशुपतास्तत्र मम लिङ्गार्चने रताः॥ ११०

तेषां वै तत्र कूटोऽयं सिद्धकूटः स सिध्यते।
तत्र ध्यानरताः केचिज्जपं कुर्वन्ति चापरे॥ १११

स्वाध्यायमन्ये कुर्वन्ति तपः कुर्वन्ति चापरे।
आकाशशयनं केचित्केचिद्भावं समाश्रिताः॥ ११२

अधोमुखास्तथैवान्ये धूमपेयास्तथापरे।
प्रदक्षिणान्ये कुर्वन्ति काष्ठमौनं तथापरे॥ ११३

कुर्वन्ति पुष्पाहरणं गडूकानां तथा परे।
तैः सर्वैः स्थापितं लिङ्गमर्चापूजनतत्परैः॥ ११४

हमारे कुलमें उत्पन्न जो कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके पाशुपत विप्रों तथा यतियोंको भोजन कराता है, उसका स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, पिण्डनिर्वापण—यह सब अक्षय हो जाता है॥ १००-१०१$^1/_2$॥

मैंने इस क्षेत्रका माहात्म्य आपसे संक्षेपमें बता दिया। मध्यमेश्वरके दक्षिणमें जो भूमिभाग है, वहाँ विश्वेदेवोंके द्वारा स्थापित एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग है और वीरभद्रके द्वारा स्थापित पश्चिमाभिमुख लिङ्ग भी है, उस पश्चिमाभिमुख देवेशके दर्शनसे मनुष्य वीरभद्रका सालोक्य प्राप्त करता है॥ १०२—१०४॥

हे देवि! उन दोनोंके दक्षिणमें भद्रकालीह्रद बताया गया है। वहींपर उस कुण्डके पश्चिमी तटपर शौनकके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है। मतंगेश्वर नामक लिङ्ग भी वहींपर स्थित है, पूर्वकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला है॥ १०५-१०६॥

हे यशस्विनि! वहाँ मतंगेश्वरके वायव्यकोणमें महात्मा पुरुषोंके द्वारा [अनेक] लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। उसीके दक्षिणभागमें अपनी विजयकी कामना करनेवाले देवराजपुत्र जयन्तके द्वारा [एक] लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ १०७-१०८॥

हे सुरेश्वरि! उस स्थानमें ब्रह्मतारेश्वर [लिङ्ग] विद्यमान है, वह लिङ्ग पितरों तथा याज्ञवल्क्यके द्वारा स्थापित किया गया है॥ १०९॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें सिद्धिकूट बताया गया है, वहाँपर सिद्धपाशुपत मेरे लिङ्गके अर्चनमें संलग्न रहते हैं॥ ११०॥

वहाँ उनका जो कूट है, वह सिद्धकूट कहा जाता है। वहाँपर कुछ लोग ध्यानपरायण रहते हैं, दूसरे लोग जप करते हैं, अन्य लोग स्वाध्याय करते हैं, कुछ लोग तप करते हैं, कुछ लोग आकाशशयन करते हैं, कुछ लोग भक्तिभावमें लीन रहते हैं, कुछ लोग अधोमुख होकर स्थित रहते हैं, कुछ लोग धूम ग्रहण करते हुए तपमें रत रहते हैं, कुछ लोग प्रदक्षिणा करते रहते हैं, कुछ लोग काष्ठकी भाँति मौन रहते हैं और कुछ लोग गडूकके पुष्पोंको एकत्र करनेमें संलग्न रहते हैं। अर्चन-पूजनमें तत्पर उन सभीके द्वारा वहाँ लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ १११—११४॥

तेषां तत्र तदा भक्तिं ज्ञात्वा देवे हि सुव्रते।
सान्निध्यं कृतवानस्मिंस्तदनुग्रहकाम्यया॥ ११५

हे सुव्रते! उस समय वहाँपर लिङ्गके प्रति उन सबकी भक्ति जानकर मैंने अनुग्रहकी इच्छासे उस लिङ्गमें वास किया॥ ११५॥

सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वपापहरं शुभम्।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सिद्धकूटे व्यवस्थितम्॥ ११६

सिद्धेश्वर नामसे विख्यात तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला वह शुभ लिङ्ग पूर्वकी ओर मुख किये सिद्धकूटमें स्थित है॥ ११६॥

मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
देवस्य पश्चिमे भागे वापी तिष्ठति सुन्दरि॥ ११७

तत्र वापीजले स्नात्वा दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं नरः।
अस्मिन् क्षेत्रे तु निर्माल्यं पापं सङ्क्रमते तु यत्॥ ११८

तत् सर्वं विलयं याति सिद्धेश्वरस्य दर्शनात्॥ ११९

मैं मनुष्योंके कल्याणके लिये उस स्थानपर स्थित हूँ। हे सुन्दरि! उस लिङ्गके पश्चिमभागमें [एक] वापी विद्यमान है, वहाँ वापीके जलमें स्नान करके तथा सिद्धेश्वरका दर्शन करके मनुष्य इस क्षेत्रमें पापरहित हो जाता है। उसे जो भी पाप लिप्त किये होता है, वह सब सिद्धेश्वरके दर्शनसे विनष्ट हो जाता है॥ ११७—११९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

व्याघ्रेश्वर, दण्डीश्वर, जैगीषव्येश्वर तथा शातातपेश्वर आदि लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

सिद्धकूटस्य पूर्वेण देवं पश्चान्मुखं स्थितम्।
व्याघ्रेश्वरेति विख्यातं सर्वदेवैः स्तुतं शुभे॥ १

ईश्वर बोले—हे शुभे! सिद्धकूटके पूर्वमें व्याघ्रेश्वर नामसे विख्यात एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह सभी देवताओंके द्वारा स्तुत है॥ १॥

तेन दृष्टेन लभते उत्तमं पदमव्ययम्।
व्याघ्रेश्वराद्दक्षिणे च स्वयम्भूस्तत्र तिष्ठति॥ २

दिव्यं लिङ्गं तु तत्रस्थं देवानामपि दुर्लभम्।
रहस्यं सर्वदेवानां भूमिं भित्त्वा तु चोत्थितम्॥ ३

तेन लिङ्गेन दृष्टेन पूजितेन स्तुतेन च।
कृतकृत्यो भवेद्देवि संसारे न पुनर्विशेत्॥ ४

उसके दर्शनसे मनुष्य उत्तम अव्यय (शाश्वत) पद प्राप्त करता है। वहाँ व्याघ्रेश्वरके दक्षिणमें स्वयम्भू लिङ्ग स्थित है। वहाँपर विद्यमान वह दिव्य लिङ्ग देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, देवताओंके लिये रहस्यमय वह लिङ्ग भूमिका भेदन करके प्रकट हुआ है। हे देवि! उस लिङ्गके दर्शन, पूजन तथा स्तवनसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और संसारमें पुनः जन्म नहीं लेता है॥ २—४॥

पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं ज्येष्ठस्थानमिदं शुभम्।
मानवानां हितार्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ५

वह लिङ्ग पूर्वाभिमुख है, यह शुभ ज्येष्ठस्थान कहा जाता है। मैं मनुष्योंके हितके लिये उस स्थानमें स्थित हूँ॥ ५॥

अस्याग्रे देवदेवेशि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पश्चान्मुखं तु तं देवि पञ्चचूडा शुभेक्षणा॥ ६

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु नाम्ना प्रहसितेश्वरम्।
तं दृष्ट्वा लभते देवि आनन्दं ब्रह्मणः पदम्॥ ७

तस्योत्तरे तु देवेशि पुण्यं लिङ्गं त्वया कृतम्।
निवासेति च विख्यातं सर्वेषामेव योगिनाम्॥ ८

तेन दृष्टेन देवेशि योगं विन्दति शाङ्करम्।
चतुःसमुद्रविख्यातः कूपस्तिष्ठति सुन्दरि॥ ९

चतुःसमुद्रस्नानेन यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं सकलं तस्य उदकस्पर्शनाच्छुभे॥ १०

तत्रैव त्वं महादेवि रममाणा मया सह।
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति भक्तियुक्ताश्च मानवाः॥ ११

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १२

ईश्वर उवाच

कूपस्य उत्तरे देवि व्याघ्रेशस्य तु दक्षिणे।
तिष्ठते तत्र वै लिङ्गं पूर्वामुखं च सुन्दरि॥ १३

दण्डीश्वरमिति ख्यातं वरदं सर्वदेहिनाम्।
तेन दृष्टेन लभ्येत ऐश्वरं पदमव्ययम्॥ १४

तस्योत्तरे तडागं च देवि सर्वत्र विश्रुतम्।
सन्ध्याप्रणामकुपिता यदा तस्मिन् सुरेश्वरि॥ १५

बहुरूपं समास्थाय देवदेवः स्वयं हरः।
दण्डकश्च तदा क्षिप्तो देवाग्रे स प्रभाकरः॥ १६

तेन तत्र कृतं दिव्यं तडागं लोकविश्रुतम्।
क्रोधेन प्रस्थिता देवि तुहिनाचलसम्मुखम्॥ १७

तावदस्य तदग्रे वै तडागं महदद्भुतम्।
तं दृष्ट्वा तु तदा देवि निवृत्ता पुनरेव वा॥ १८

हे देवदेवेशि! इसके आगे मुखलिङ्ग विराजमान है। हे देवि! शुभ नेत्रोंवाली पंचचूडाने पश्चिमकी ओर मुखवाले उस लिङ्गको स्थापित किया है॥ ६॥

उसके दक्षिण भागमें प्रहसितेश्वर नामक लिङ्ग है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य आनन्दप्रद ब्रह्मलोक प्राप्त करता है॥ ७॥

हे देवेशि! उसके उत्तरमें आपके द्वारा निवास नामसे विख्यात सभी योगियोंके लिये एक पुण्यप्रद लिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य शांकरयोग प्राप्त करता है॥ $८^{१}/_{२}$॥

हे सुन्दरि! वहाँ चतुःसमुद्र नामसे प्रसिद्ध एक कूप स्थित है। हे शुभे! मनुष्य चारों समुद्रोंमें स्नान करनेसे जो फल पाता है, वह सम्पूर्ण फल उस [चतुःसमुद्रकूप]-के जलके स्पर्श करनेसे उसे प्राप्त होता है॥ ९—१०॥

हे महादेवि! आप वहींपर मेरे साथ विहार करती हैं। जो मनुष्य भक्तिसे युक्त होकर आपकी पूजा करेंगे, करोड़ों कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होगा॥ ११-१२॥

ईश्वर बोले—हे देवि! हे सुन्दरि! वहाँपर कूपके उत्तरमें तथा व्याघ्रेशके दक्षिणमें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वह दण्डीश्वर नामसे विख्यात है तथा सभी प्राणियोंको वर देनेवाला है, उसके दर्शनसे ईश्वरका शाश्वत पद प्राप्त होता है॥ १३-१४॥

हे देवि! उसके उत्तरमें सर्वत्र प्रसिद्ध एक तडाग है। हे सुरेश्वरि! सन्ध्याकालमें प्रणाम न करनेके कारण जब तुम कुपित हुई, तब देवाधिदेवने स्वयं अनेक रूप धारण करके देवताओंके सम्मुख ज्योतिर्मय दण्डको फेंका, उसने वहाँ लोकप्रसिद्ध तडाग बना दिया। हे देवि! जब तुमने क्रोधपूर्वक हिमालयके सम्मुख प्रस्थान किया, उसी समय उसके आगे अत्यन्त अद्भुत तडाग मिला। हे देवि! उसे देखकर तुम पुनः वापस आ गयी और हे देवेशि! हे भामिनि! उसके बाद घरमें प्रवेश करके वहींपर स्थित हो गयी। देवाधिदेवके दण्डके वहाँ गिरनेपर महान् सरोवर हो गया। अतः जो पुराणवेत्ता

वेश्म प्रविश्य देवेशि स्थिता तत्रैव भामिनि।
दण्डेन देवदेवस्य स्थितेन सुमहत्सरः॥ १९

दण्डखातमिति प्राहुर्ये पुराणविदो जनाः।
तस्मात्स्नानं तु कर्तव्यं तत्रैव श्रेय इच्छया॥ २०

तत्र स्नाने कृते देवि कृतकृत्यो भवेन्नरः।
दण्डखाते नरः स्नात्वा तर्पयित्वा स्वकान् पितॄन्॥ २१

नरकस्थास्तु ये देवि पितृलोके वसन्ति ते।
पिशाचत्वं गता ये च नराः पापेन कर्मणा॥ २२

तेषां पिण्डप्रदानेन देहस्योद्धरणं स्मृतम्।
दण्डखाते नरः स्नात्वा किं भूयः परिशोचति॥ २३

यस्य स्मरणमात्रेण पापसङ्घातपञ्जरम्।
नश्यते शतधा देवि दण्डखातस्य दर्शनात्॥ २४

तस्य दण्डस्य माहात्म्यं पुण्यं शृणु महायशः।
सूर्योपरागे देवेशि नरा आयान्ति सुव्रते॥ २५

कुरुक्षेत्रं महत्पुण्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
निवृत्ते ग्रहणे देवि कुरुक्षेत्रात्परं पदम्॥ २६

दण्डखातं समायान्ति आत्मशुद्ध्यर्थकारणम्।
दर्शनात्तस्य खातस्य कृतकृत्योऽभिजायते॥ २७

अन्यदायतनं तत्र मम देवि महेश्वरि।
जैगीषव्येश्वरं नाम स्थापितं सुमहात्मना॥ २८

जैगीषव्यगुहा तस्मिन् देवदेवस्य सन्निधौ।
त्रिकालमर्चयँल्लिङ्गं भक्त्या तद्भावितात्मना॥ २९

एवमाराधितो देवि जैगीषव्येण धीमता।
तस्य पृष्टश्चाहं देवि सर्वान् कामान् प्रदत्तवान्।
तस्मात्तु सुकृतं लिङ्गं पूजयिष्यन्ति ये नराः॥ ३०

ज्ञानं तेषां ध्रुवं देवि अचिराज्जायते भुवि।
त्रिरात्रं तत्र कृत्वा वै यो नरः पूजयिष्यति॥ ३१

गुह्यं प्रविश्यते चैव ज्ञानयुक्तो भवेन्नरः।
तस्य वै पश्चिमे भागे सिद्धकूपस्तु दक्षिणे॥ ३२

लोग हैं, वे उसे 'दण्डखात'—इस नामसे पुकारने लगे हैं। अतः मनुष्यको [अपने] कल्याणकी कामनासे वहाँपर स्नान करना चाहिये॥ १५—२०॥

हे देवि! वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। [हे देवि!] दण्डखातमें स्नान करके मनुष्यको अपने पितरोंका तर्पण करना चाहिये। हे देवि! जो [पितर] नरकमें स्थित हैं, वे [तर्पणके प्रभावसे] पितृलोकमें वास करते हैं। अपने पापकर्मसे जो [पितृगण] पिशाचत्वको प्राप्त हुए हैं, वहाँ पिण्डदान करनेसे उनके देहका उद्धार कहा गया है॥ २१-२२१/२॥

दण्डखातमें स्नान करके मनुष्य भला कैसे सन्तप्त रह सकता है? हे देवि! जिस दण्डखातके स्मरणमात्रसे तथा दर्शनसे पापसमूहका पंजर सैकड़ों भागोंमें होकर विनष्ट हो जाता है, उस दण्डखातके माहात्म्य तथा पुण्यप्रद महायशका श्रवण कीजिये॥ २३-२४१/२॥

हे देवेशि! हे सुव्रते! सूर्यग्रहणके अवसरपर मनुष्य महापुण्यप्रद तथा सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत कुरुक्षेत्रमें आते हैं और हे देवि! ग्रहणके समाप्त होनेपर वे कुरुक्षेत्रसे परम पदस्वरूप तथा आत्मशुद्धिके कारणभूत दण्डखातमें आते हैं, उस दण्डखातके दर्शनसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ २५—२७॥

हे देवि! हे महेश्वरि! वहाँ परम महात्मा [जैगीषव्य]-के द्वारा स्थापित किया गया जैगीषव्येश्वर नामक अन्य आयतन भी है। उसमें जैगीषव्यकी गुहा स्थित है, वहाँ देवदेवकी सन्निधिमें उन्होंने भक्तिपूर्वक शिवमें आसक्त चित्तसे लिङ्गका त्रिकाल अर्चन किया था॥ २८-२९॥

हे देवि! इस प्रकार बुद्धिमान् जैगीषव्यके द्वारा मेरी आराधना की गयी, तब हे देवि! उनके माँगनेपर मैंने उनकी सभी कामनाओंको पूर्ण किया। इसलिये हे देवि! पृथ्वीलोकमें जो मनुष्य इस पुण्यप्रद लिङ्गकी पूजा करते हैं, उन्हें निश्चित रूपसे शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य वहाँ तीन रात्रि [उपवासपूर्वक] व्यतीत करके लिङ्गका पूजन करता है, वह गूढतत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है और ज्ञानसम्पन्न हो जाता है॥ ३०-३११/२॥

पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं देवलेन प्रतिष्ठितम्।
तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः॥ ३३

तस्यैव च समीपस्थं शतकालप्रतिष्ठितम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे नातिदूरे तपस्विनि॥ ३४

मुखलिङ्गं तु तद्भद्रे पश्चिमाभिमुखं शुभे।
शातातपेश्वरं नाम स्थापितं च महर्षिणा॥ ३५

तेन दृष्टेन लभते गतिमिष्टाञ्च शाश्वतीम्।
तस्य पश्चिमदिग्भागे महालिङ्गं च तिष्ठति॥ ३६

हेतुकेश्वरनामानं सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
तस्यैव दक्षिणे भागे मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ३७

कणादेश्वरनामानं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्।
सिद्धस्तत्र महाभागे कणादस्तु ऋषिः पुरा॥ ३८

कूपस्तत्र समीपस्थः पुण्यदः सर्वदेहिनाम्।
कणादेशाद्दक्षिणेन अन्यदायतनं शुभम्॥ ३९

पश्चान्मुखन्तु भूतीशं सर्वपापप्रणाशनम्।
तस्यैव पश्चिमे भागे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४०

चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गमाषाढं नाम विश्रुतम्।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महान्ति च॥ ४१

तेषां पूर्वेण लिङ्गं तु दैत्येन स्थापितं पुरा।
तेन दृष्टेन देवेशि पुत्रवान् जायते नरः॥ ४२

भारभूतेश्वरं देवं तत्र दक्षिणतः स्थितम्।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं भारभूतेश्वरं प्रिये॥ ४३

व्यासेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
पराशरेण मुनिना स्थापितं मम भक्तितः॥ ४४

पश्चान्मुखं तु तद्देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
अत्रिणा स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण च॥ ४५

उसके पश्चिमभागमें एक सिद्धकूप है। उसके दक्षिणमें [महर्षि] देवलके द्वारा स्थापित एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य ज्ञानवान् हो जाता है॥ ३२-३३॥

हे तपस्विनि! उसके दक्षिण दिशाभागमें अधिक दूरीपर नहीं, अपितु उसके समीपमें ही शतकालके द्वारा स्थापित एक लिङ्ग है॥ ३४॥

हे भद्रे! वह मुखलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है। हे शुभे! शातातपेश्वर नामक वह लिङ्ग महर्षि शातातपके द्वारा स्थापित किया गया है, उसके दर्शनसे मनुष्य वांछित तथा शाश्वत गति प्राप्त करता है। उसके पश्चिम दिशाभागमें सभी सिद्धियोंका फल प्रदान करनेवाला हेतुकेश्वर नामक महालिङ्ग स्थित है। उसीके दक्षिणभागमें मुखलिङ्ग स्थित है॥ ३५—३७॥

कणादेश्वर नामक वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुख किये स्थित है। हे महाभागे! पूर्वकालमें ऋषि कणाद वहाँपर सिद्धिको प्राप्त हुए थे॥ ३८॥

वहाँ समीपमें ही सभी प्राणियोंको पुण्य प्रदान करनेवाला कूप विद्यमान है। कणादेश्वरके दक्षिणमें दूसरा शुभ आयतन है, वह पश्चिमकी ओर मुखवाला तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसीके पश्चिम भागमें एक पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है, वह चतुर्मुखलिङ्ग आषाढ नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ अन्य महालिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं॥ ३९—४१॥

उनके पूर्वमें प्राचीन कालमें [एक] दैत्यके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है॥ ४२॥

उसके दक्षिणमें भारभूतेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे प्रिये! वह भारभूतेश्वरलिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है॥ ४३॥

व्यासेश्वरके पूर्वमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसे पराशरमुनिने मेरी भक्तिसे स्थापित किया है॥ ४४॥

हे देवि! वहाँ पश्चिमकी ओर मुखवाला एक मुखलिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! मेरी भक्तिसे युक्त मुनि

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वशास्त्रप्रदायकम्।
व्यासेश्वरस्य पूर्वेण द्वौ लिङ्गौ तत्र सुव्रते॥ ४६

स्थापितौ देवदेवेशि शङ्खेन लिखितेन च।
तौ दृष्ट्वा मानवो भद्रे ऋषिलोकमवाप्नुयात्॥ ४७

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं गुह्यं यशस्विनि।
लिङ्गं विश्वेश्वरं नाम सर्वदेवैस्तु वन्दितम्॥ ४८

तेन दृष्टेन लभ्येत व्रतात्पाशुपतात्फलम्।
पूर्वोत्तरदिशाभागे तस्य देवस्य सुन्दरि॥ ४९

अवधूतं महत्तीर्थं सर्वपापापनुत्तमम्।
तस्य पूर्वेण संल्लग्नं नाम्ना पशुपतीश्वरम्॥ ५०

तस्य दर्शनमात्रेण पशुयोनिं न गच्छति।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ ५१

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं पञ्चमुखं स्थितम्।
ऋषिणा स्थापितं भद्रे गोभिलेन महात्मना॥ ५२

तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऋषिलोकं स गच्छति।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ५३

विद्याधराधिपतिना कृतं जीमूतवाहिना॥ ५४

अत्रिके द्वारा वह लिङ्ग स्थापित किया गया है। पश्चिमकी ओर मुखवाला वह लिङ्ग सभी शास्त्रोंका ज्ञान देनेवाला है॥ ४५१/२॥

हे सुव्रते! हे देवदेवेशि! व्यासेश्वरके पूर्वमें वहाँ शंख तथा लिखित [मुनिद्वय]-के द्वारा दो लिङ्ग स्थापित किये गये हैं, हे भद्रे! उन दोनोंका दर्शन करके मनुष्य ऋषिलोक प्राप्त करता है॥ ४६-४७॥

हे यशस्विनि! देवदेवका अन्य गुह्य स्थान भी है, विश्वेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी देवताओंद्वारा वन्दित है। उसके दर्शनसे मनुष्य पाशुपतव्रतसे होनेवाला फल प्राप्त करता है॥ ४८१/२॥

हे सुन्दरि! उस लिङ्गके पूर्वोत्तर दिशाभागमें सभी पापोंका नाश करनेवाला अवधूत नामक उत्तम महातीर्थ विद्यमान है। उसके पूर्वमें समीपमें ही पशुपतीश्वर नामक लिङ्ग है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पशुयोनिमें नहीं जाता है। वह लिङ्ग चतुर्मुख है तथा पश्चिमकी ओर मुख किये स्थित है॥ ४९—५१॥

हे भद्रे! उसके दक्षिण दिशाभागमें पंचमुख लिङ्ग स्थित है, महान् आत्मावाले ऋषि गोभिलने उसे स्थापित किया है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ऋषिलोकको जाता है। हे देवि! उसीके पश्चिममें विद्याधरोंके अधिपति जीमूतवाहीके द्वारा स्थापित किया गया पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग स्थित है॥ ५२—५४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे गुह्यायतनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

गभस्तीश्वर तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य एवं कलशेश्वरलिङ्गकी उत्पत्ति-कथा

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं देवि वाराणस्यां मम प्रिये।
गभस्तीश्वरनामानं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १
सूर्येण स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण वै।
तस्मिन् ममापि सान्निध्यं नित्यमेव यशस्विनि॥ २

ईश्वर बोले—हे प्रिये! वाराणसीमें मेरा दूसरा आयतन भी है। गभस्तीश्वर नामक वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है, हे भद्रे! मेरी भक्तिसे युक्त होकर सूर्यने उसे स्थापित किया है। हे यशस्विनि! उसमें भी सर्वदा मेरा सान्निध्य रहता है॥ १-२॥

ऐशानीं मूर्तिमास्थाय तत्र स्थाने स्थितो ह्यहम्।
तं दृष्ट्वा मानवो देवि ऐशानं लोकमाप्नुयात्॥ ३

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु दधिकर्णह्रदं स्थितम्।
उत्तरे कूपमेवं तु तस्य नामस्य सुन्दरि॥ ४

दधिकर्णेश्वरं देवं मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पूर्वामुखं तु देवेशि गभस्तीशस्य चोत्तरे॥ ५

दक्षिणेन गभस्तीशाद्वाराणस्यां तु सुव्रते।
मानवानां हितार्थाय त्वं च तत्र व्यवस्थिता॥ ६

आराधयन्ति देवि त्वामुत्तराभिमुखीं स्थिताम्।
ये च त्वा पूजयिष्यन्ति तस्मिन् स्थाने स्थितो ह्यहम्॥ ७

तेषां त्वं विविधाँल्लोकान् सम्प्रदास्यसि मोदते।
जागरं ये प्रकुर्वन्ति तवाग्रे दीपधारिणः॥ ८

तेषां त्वमक्षयाँल्लोकान् वितरिष्यसि भामिनि।
आलयं ये प्रकुर्वन्ति तवार्थे वरवर्णिनि॥ ९

तेषां त्वमक्षयाँल्लोकान् प्रयच्छसि न संशयम्।
आलयं ये प्रकुर्वन्ति भूमिं सम्मार्जयन्ति च॥ १०

तेषामष्टसहस्रस्य सुवर्णस्य फलं लभेत्।
त्वामुद्दिश्य तु यो देवि ब्राह्मणान् ब्राह्मणीश्च ह॥ ११

भोजयिष्यति यो देवि तस्य पुण्यफलं शृणु।
तव लोके वसेत्कल्पमिहैवागच्छते पुनः॥ १२

नरो वा यदि वा नारी सर्वभोगसमन्वितौ।
धनधान्यसमायुक्तौ जायेते च महाकुले॥ १३

सुभगौ दर्शनीयौ च रूपयौवनदर्पितौ।
भवेतामीदृशौ देवि सर्वसौखस्य भाजने॥ १४

मानुषं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्।
येन दृष्टासि सुश्रोणि तस्य जन्मभयं कुतः॥ १५

मायापुर्यां तु ललितां दृष्ट्वा यल्लभते फलम्।
तत्फलं तस्य देवेशि यस्त्वां तत्र निरीक्षयेत्॥ १६

पृथ्वीं प्रदक्षिणं कृत्वा यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं ललितायां च वाराणस्यां न संशयः॥ १७

ईशानका स्वरूप धारण करके मैं उस स्थानमें स्थित हूँ, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य ईशानका लोक प्राप्त करता है॥ ३॥

उसके दक्षिणभागमें दधिकर्णह्रद स्थित है। हे सुन्दरि! उत्तरमें उसीके नामका कूप विद्यमान है। हे देवेशि! गभस्तीश्वरके उत्तरमें पूर्वकी ओर मुखवाला दधिकर्णेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है॥ ४-५॥

हे सुव्रते! वाराणसीमें गभस्तीशके दक्षिणमें मानवोंके कल्याणके लिये [स्वयं] आप विराजमान हैं और उस स्थानमें मैं भी स्थित हूँ। हे देवि! जो लोग वहाँ उत्तरकी ओर मुख करके विराजमान आपकी आराधना करते हैं तथा आपकी पूजा करते हैं, उन्हें प्रसन्न होकर आप विविध लोक प्रदान करती हैं॥ ६-७½॥

हे भामिनि! आपके सामने दीप धारण किये हुए जो लोग जागरण करते हैं, उन्हें आप अक्षय लोक प्रदान करती हैं। हे वरवर्णिनि! जो लोग आपके लिये आलयका निर्माण करते हैं, उन्हें आप अक्षय लोक प्रदान करती हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८-९½॥

जो लोग आलयका निर्माण करते हैं तथा वहाँकी भूमिका सम्मार्जन करते हैं, उन्हें आठ हजार स्वर्णमुद्राकी प्राप्ति होती है। हे देवि! आपको उद्देश्य करके जो ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणियोंको भोजन कराता है, उसके पुण्यफलको सुनिये—वह कल्पपर्यन्त आपके लोकमें वास करता है, इसके बाद इस लोकमें आता है! पुरुष हो अथवा स्त्री—वे सभी प्रकारके भोगोंसे युक्त तथा धनधान्यसे समन्वित रहते हैं और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होते हैं। हे देवि! वे सौभाग्यशाली, दर्शनीय, रूपयौवनसे सम्पन्न तथा सभी प्रकारके सुखोंके भाजन होते हैं॥ १०—१४॥

हे सुश्रोणि! विद्युत्-सम्पाततुल्य चंचल दुर्लभ मनुष्यशरीर प्राप्त करके जिसने आपका दर्शन कर लिया, उसे जन्मका भय कहाँसे हो सकता है? मायापुरीमें ललिता [देवी]-का दर्शन करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, हे देवेशि! यदि वह यहाँपर आपका दर्शन करे, तो उसे वही फल प्राप्त हो जाता है॥ १५-१६॥

पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह वाराणसीमें ललिताकी प्रदक्षिणासे प्राप्त कर

तेन ते नाम विख्यातं तथा मुखनिरीक्षिणी।
मुखप्रेक्षणिकां दृष्ट्वा सौभाग्यं चोत्तमं लभेत्॥ १८

माघे मासि चतुर्थ्यां तु तस्मिन् काल उपोषितः।
अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत्॥ १९

तस्यर्द्धिमत् कुलं देवि त्रैलोक्ये याति दुर्लभम्।
मुखप्रेक्षा चोत्तरतो द्वौ लिङ्गौ तत्र विश्रुतौ॥ २०

पश्चान्मुखौ तु तौ देवि वृत्रत्वाष्ट्रेश्वरावुभौ।
काञ्चनीं पृथिवीं दत्त्वा यत्पुण्यं लभते नरः॥ २१

सुवर्णस्य च यत्पुण्यं लिङ्गयोर्दर्शनेन तत्।
त्रिरात्रं यः प्रकुरुते तत्रैव वरवर्णिनि॥ २२

गौरीलोकोऽक्षयस्तस्य पुनरावृत्तिदुर्लभः।
तस्माद्यत्नः सदा कार्यः सर्वदर्शनकाङ्क्षया॥ २३

ललितायाश्चोत्तरेण चर्चिकाधिष्ठिता शुभा।
मानवानां हितार्थाय वरदा सर्वदेहिनाम्॥ २४

चर्चिकायास्तथैवाग्रे तिष्ठते लिङ्गमुत्तमम्।
पूर्वामुखं तु तद्देवि रेवन्तेन प्रतिष्ठितम्॥ २५

तस्याग्रतो वरारोहे लिङ्गं पञ्चनदीश्वरम्।
पश्चान्मुखं तु तद्देवि सर्वस्नानफलप्रदम्॥ २६

ललितायाश्च संलग्नं पूर्वे कूपस्तु तिष्ठति।
तस्मिन् कूपे जलं स्पृष्ट्वा अतिरात्रफलं लभेत्॥ २७

ततो दक्षिणतो देवि तीर्थं पञ्चनदं स्मृतम्।
नरः पञ्चनदे स्नात्वा दृष्ट्वा लिङ्गं गभस्तिनः॥ २८

अनन्तं फलमाप्नोति यत्र तत्राभिजायते।
उपमन्युश्च सुश्रोणि लिङ्गं स्थापितवांस्तथा॥ २९

मुखानि तस्य तिष्ठन्ति तस्मिँल्लिङ्गे यशस्विनि।
तच्च पश्चान्मुखं देवि ललितादक्षिणेन तु॥ ३०

लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

अतः आपका नाम मुखनिरीक्षिणी विख्यात हो गया, मुखप्रेक्षिणीका दर्शन करके मनुष्य उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है॥ १८॥

हे देवि! माघमासमें चतुर्थी तिथिमें उस समय उपवास करके तथा पूजन करके जो वहाँपर जागरण करता है, हे देवि! वह तीनों लोकोंमें समृद्धिशाली तथा दुर्लभ कुलमें जन्म लेता है॥ १९½॥

मुखप्रेक्षाके उत्तरदिशामें दो प्रसिद्ध लिङ्ग हैं, हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाले वे दोनों लिङ्ग वृत्रेश्वर तथा त्वाष्ट्रेश्वर नामवाले हैं। सुवर्णमयी भूमिका दान करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है और सुवर्णके दानका जो पुण्य होता है, वह पुण्यफल उन दोनोंके दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। हे वरवर्णिनि! जो वहाँपर तीन रात व्यतीत करता है, उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति न करानेवाले अक्षय गौरीलोककी प्राप्ति होती है। इसलिये इन सबके दर्शनकी अभिलाषाके लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये॥ २०—२३॥

ललिताके उत्तरमें मनुष्योंके कल्याणके लिये सभी प्राणियोंको वर देनेवाली शुभ चर्चिका [देवी] विराजमान हैं। इसी प्रकार चर्चिकाके आगे एक उत्तम लिङ्ग स्थित है, हे देवि! पूर्वकी ओर मुखवाला वह [लिङ्ग] रेवन्तके द्वारा स्थापित किया गया है॥ २४-२५॥

हे वरारोहे! उसके आगे पंचनदीश्वर नामक लिङ्ग है। हे देवि! पश्चिमकी ओर मुखवाला वह [लिङ्ग] समस्त स्नानोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ २६॥

ललिताके समीपमें पूर्वकी ओर एक कूप स्थित है, उस कूपके जलका स्पर्श करके मनुष्य अतिरात्रयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ २७॥

हे देवि! उसके दक्षिणमें पंचनद [नामक] तीर्थ बताया गया है, [उस] पंचनदमें स्नान करके तथा गभस्तीश्वरका दर्शन करके मनुष्य जहाँ-कहीं भी हो, अनन्त फल प्राप्त करता है॥ २८½॥

हे सुश्रोणि! उपमन्युने एक लिङ्ग स्थापित किया है, हे यशस्विनि! उस लिङ्गमें उसके मुख स्थित हैं। हे देवि! पश्चिमाभिमुख वह लिङ्ग ललिताके दक्षिणमें

तेन दृष्टेन देवेशि न पुनर्जन्मभाग्भवेत्।
तस्यैव तु समीपे तु पश्चिमे वरवर्णिनि॥ ३१

अन्यल्लिङ्गं तु सुश्रोणि व्याघ्रपादप्रतिष्ठितम्।
तस्य सन्दर्शनाद्देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३२

गभस्तीशाग्रतो देवि विश्वकर्मप्रतिष्ठितम्।
अन्यानि तत्र लिङ्गानि स्थापितानि महात्मभिः॥ ३३

गभस्तीशस्य लिङ्गस्य नैर्ऋते वरवर्णिनि।
शशाङ्केश्वरनामानं लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ३४

गन्धर्वनगरं गत्वा राज्ञा चित्ररथेन हि।
तेन दृष्टेन देवेशि ईप्सितं फलमाप्नुयात्॥ ३५

चित्रेश्वरात् पश्चिमतो लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
जैमिनिस्थापितं पूर्वं महापातकनाशनम्॥ ३६

अग्रे तु जैमिनीशस्य कृतं लिङ्गं सुमन्तुना।
अन्यैश्च ऋषिभिस्तत्र लिङ्गानि सुबहूनि च॥ ३७

तेषां तु दक्षिणे भागे लिङ्गं पश्चान्मुखस्थितम्।
बुधेश्वरं तथा कोणे सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ ३८

बुधेश्वरात्तु कोणेन वायव्ये नातिदूरतः।
रावणेश्वरनामानं स्थापितं राक्षसेन तु॥ ३९

है। हे देवेशि! उस [लिङ्ग]-के दर्शनसे मनुष्य पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता है॥ २९-३०½॥

हे वरवर्णिनि! उसीके समीप पश्चिममें दूसरा लिङ्ग विद्यमान है, हे सुश्रोणि! वह [महर्षि] व्याघ्रपादके द्वारा स्थापित किया गया है, हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२॥

हे देवि! गभस्तीशके आगे विश्वकर्माके द्वारा स्थापित लिङ्ग विद्यमान है। वहाँपर महात्माओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं॥ ३३॥

हे वरवर्णिनि! गभस्तीशके लिङ्गके नैर्ऋतभागमें शशाङ्केश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। गन्धर्व-नगर जाकर राजा चित्ररथने लिङ्ग स्थापित किया था, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य अभीष्ट फल प्राप्त करता है॥ ३४-३५॥

चित्रेश्वरके पश्चिममें महापातकोंका नाश करनेवाला एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसे पूर्वकालमें [महर्षि] जैमिनिने स्थापित किया था। जैमिनीशके आगे [ऋषि] सुमन्तुके द्वारा स्थापित लिङ्ग विद्यमान है। वहाँ अन्य ऋषियोंने भी बहुत-से लिङ्ग स्थापित किये हैं॥ ३६-३७॥

उनके दक्षिणभाग कोणमें सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाला बुधेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। बुधेश्वरके वायव्यकोणमें समीपमें ही राक्षस
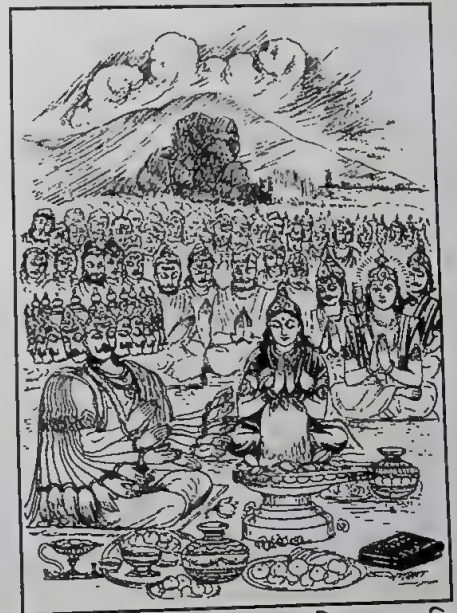
रावणके द्वारा रावणेश्वर नामक लिङ्ग स्थापित किया

रावणेश्वरपूर्वे तु लिङ्गं देवि चतुर्मुखम्।
तेन दृष्टेन देवेशि यातुधानैर्न हन्यते॥ ४०

रावणेशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
वराहेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम्॥ ४१

वराहेशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
तस्यैवाराधनाद्देवि षण्मासाद्योगमाप्नुयात्॥ ४२

तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं वै दक्षिणामुखम्।
गालवेश्वरनामानं गुरुभक्तिप्रदायकम्॥ ४३

गालवेश्वरदेवस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अयोगसिद्धिनामानं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥ ४४

तस्यैव दक्षिणे देवि नाम्ना वातेश्वरं शुभम्।
तस्यैव चाग्रतो देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ४५

सोमेश्वरेति विख्यातं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं सर्वव्याधिक्षयो भवेत्।
तस्यैव नैर्ऋते भागे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ४६

अङ्गारेश्वरनामानं सर्वसिद्धैर्नमस्कृतम्।
पूर्वेण तस्य देवस्य लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ ४७

कुक्कुटेश्वरनामानं गतिसौख्यप्रदायकम्।
तस्यैव चोत्तरे देवि पाण्डवैः सुमहात्मभिः॥ ४८

पञ्च लिङ्गानि पुण्यानि पश्चिमाभिमुखानि तु।
तेषामेते तु देवेशि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४९

संवर्तेश्वरनामानं स्थापितं यन्महर्षिणा।
ममैवात्यन्तसान्निध्यं तस्मिँल्लिङ्गे सुरेश्वरि॥ ५०

तल्लिङ्गमर्चयेद्यो वै तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
संवर्तेशात् पश्चिमतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ५१

श्वेतेश्वरं तु विख्यातं श्वेतेन स्थापितं पुरा।
तेन दृष्टेन लिङ्गेन गाणपत्यं लभेद् ध्रुवम्॥ ५२

गया है॥ ३८-३९॥

हे देवि! रावणेश्वरके पूर्वमें एक चतुर्मुख लिङ्ग है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य राक्षसोंके द्वारा नहीं मारा जा सकता है॥ ४०॥

रावणेश्वरके दक्षिणमें सभी पापोंका नाश करनेवाला वराहेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वराहेश्वरके दक्षिणमें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! मनुष्य उसकी आराधनासे छः महीनेमें योग प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें गुरुभक्ति प्रदान करनेवाला गालवेश्वर नामक दक्षिणाभिमुख लिङ्ग विद्यमान है॥ ४३॥

गालवेश्वरदेवके समीपमें सभी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला अयोगसिद्धि नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके दक्षिणमें वातेश्वर नामक शुभ लिङ्ग विद्यमान है। हे देवि! उसीके आगे मुखलिङ्ग स्थित है, वह लिङ्ग सोमेश्वर नामसे विख्यात है तथा पश्चिमाभिमुख स्थित है। उन देवदेवेशका दर्शन करनेसे सभी व्याधियोंका नाश हो जाता है॥ ४४-४५½॥

उसीके नैर्ऋतभागमें सभी सिद्धोंसे नमस्कृत अंगारेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसके पूर्वमें शिवजीका कुक्कुटेश्वर नामक अन्य लिङ्ग स्थित है, वह गति तथा सुख प्रदान करनेवाला है॥ ४६-४७½॥

हे देवि! उसीके उत्तरमें महात्मा पाण्डवोंके द्वारा पश्चिमाभिमुख पाँच पुण्यप्रद लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। हे देवेशि! उनके सामने संवर्तेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, जिसे महर्षि [संवर्त]-ने स्थापित किया है। हे सुरेश्वरि! उस लिङ्गमें मेरा अत्यन्त सान्निध्य रहता है। जो उस लिङ्गका अर्चन करता है, सिद्धि उसके हाथमें स्थित रहती है॥ ४८—५०½॥

संवर्तेश्वरके पश्चिममें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वह श्वेतेश्वर नामसे विख्यात है, उसे पूर्वकालमें श्वेत [मुनि]-ने स्थापित किया था। उस लिङ्गके दर्शनसे मनुष्य निश्चित रूपसे गाणपत्य प्राप्त करता है॥ ५१-५२॥

पश्चिमे तस्य दिग्भागे कलशेश्वरसंज्ञितम्।
कलशादुत्थितं लिङ्गं कालस्य भयदायकम्॥ ५३

उसके पश्चिम दिशाभागमें कलशसे उत्पन्न कलशेश्वर नामक लिङ्ग है, वह कालको भी भय प्रदान करनेवाला है॥ ५३॥

सूर्य उवाच

कथं कालस्य भयदं कलशादुत्थितः कथम्।
एतद्देव समाचक्ष्व यदनुग्रहवान् मयि॥ ५४

सूर्य बोले—वह [कलशेश्वरलिङ्ग] कालके लिये कैसे भयदायक है और कलशसे किस प्रकार प्रकट हुआ, हे देव! यदि आप मेरे प्रति कृपालु हैं, तो इसे बतायें॥ ५४॥

विष्णुरुवाच

तस्यैव देवदेवस्य प्रभावं शृणु भास्कर।
श्वेतो नाम महातेजा ऋषिः परमधार्मिकः॥ ५५

पूजयामास सततं लिङ्गं त्रिपुरघातिनः।
तस्य पूजाप्रसक्तस्य कदाचित्कालपर्यये॥ ५६

आजगाम तमुद्देशं कालः परमदारुणः।
रक्तान्तनयनो घोरः सर्पयष्टिकरो महान्॥ ५७

दंष्ट्राकरालो विकृतो भिन्नाञ्जनसमप्रभः।
रक्तवासा महाकायः सर्वाभरणभूषितः॥ ५८

विष्णु बोले—हे भास्कर! उस देवदेवके प्रभावको सुनो। श्वेत नामक महातेजस्वी तथा परम धार्मिक ऋषिने त्रिपुरका विनाश करनेवाले शिवजीके लिङ्गकी निरन्तर पूजा की। किसी समय पूजामें संलग्न उन मुनिके पास महाभयानक काल आया। वह पूर्ण रक्तनेत्रोंवाला, महाभयंकर, हाथमें सर्प-यष्टि धारण किये हुए, विकराल दाढ़ोंवाला, विकृत, अंजनके समान प्रभावाला, रक्त वस्त्र धारण किये हुए, विशाल देहवाला तथा सभी आभरणोंसे विभूषित था॥ ५५—५८॥

पाशहस्तस्तदाभ्येत्य श्वेते पाशमवासृजत्।
कण्ठार्पितेन पाशेन श्वेतः कालमथाब्रवीत्॥ ५९

क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व मम त्रिभुवनान्तक।
निवर्तयाम्यहं यावत् पूजनं मन्मथद्विषः॥ ६०

हाथमें पाश धारण किये हुए उस कालने आ करके श्वेतके ऊपर पाश फेंका। तब कण्ठमें लिपटे हुए उस पाशसे बद्ध श्वेतने कालसे कहा—हे त्रिभुवनविनाशक! तुम क्षणभर मेरी प्रतीक्षा करो, जबतक मैं कामदेवके शत्रु शिवकी पूजा सम्पन्न न कर लूँ॥ ५९-६०॥

तमब्रवीत्तदा कालः प्रहसन् वै सुरेश्वर।
न श्रुतं तत्त्वया मन्ये वृद्धानां ज्ञातजन्मनाम्॥ ६१

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम्॥ ६२

हे सुरेश्वर! तब कालने हँसते हुए उनसे कहा—मैं समझता हूँ कि तुमने ज्ञातजन्मा वृद्धोंका यह कथन नहीं सुना है कि कलका कार्य आज ही और अपराह्णका कार्य पूर्वाह्णमें कर लेना चाहिये। मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती है, चाहे उसका कार्य पूर्ण हो गया हो अथवा न हुआ हो॥ ६१-६२॥

गर्भे वाप्यथवा बाल्ये वार्द्धके यौवने तथा।
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं लीयते मया॥ ६३

प्राणी गर्भमें हो अथवा बाल्यावस्थामें, यौवनावस्था अथवा वृद्धावस्थामें हो—उसके आयु तथा कर्मके क्षीण होनेपर मैं उसका लय कर देता हूँ॥ ६३॥

नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपः।
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवाः॥ ६४

मृत्यु तथा जरासे ग्रसित मनुष्योंकी रक्षा न तो औषधि, न मन्त्र, न होम, न जप अथवा न तो मनुष्य ही कर सकते हैं॥ ६४॥

बहूनीन्द्रसहस्राणि पितामहशतानि च।
मयातीतानि कर्तव्यो नात्र मन्युस्त्वयानघ॥ ६५

अनेक हजार इन्द्र तथा सैकड़ों पितामह मेरे सामने व्यतीत हो गये, हे अनघ! तुम्हें इस विषयमें क्रोध नहीं करना चाहिये॥ ६५॥

विधत्स्व पूजनं चास्य महादेवस्य शूलिनः।
देहन्यासो बहुविधो मया वै श्वेत कारितः॥ ६६

स्वयं प्रभुर्न चैवाहं कर्मायत्तगतिर्मम।
कर्मणा हि तथा नाशो नास्ति भूतस्य कस्यचित्॥ ६७

तुम इन शूलधारी महादेवका पूजन सम्पन्न कर लो। हे श्वेत! मैंने अनेकविध देहन्यास कराया। चूँकि मैं स्वयं प्रभु नहीं हूँ और मेरी गति कर्मके अधीन है, कर्मके आधारपर किसी भी प्राणीका नाश नहीं होता है॥ ६६-६७॥

कर्ममार्गानुसारेण धात्राहं सम्प्रयोजितः।
नयामि सर्वमाक्रम्य नीयमानस्त्रिलोचने॥ ६८

विधाताके द्वारा मैं भी कर्ममार्गके अनुसार नियुक्त किया गया हूँ। सबको ले जानेवाला मैं सभीपर आक्रमण करके उन्हें त्रिनेत्र शिवके पास ले जाता हूँ॥ ६८॥

एवमुक्तस्तु कालेन नीयमानस्त्रिलोचनम्।
जगाम सर्वभावेन शरणं भक्तवत्सलम्॥ ६९

कालके इस प्रकार कहनेपर वे उसके द्वारा ले जाये जाते हुए श्वेतमुनि पूर्णरूपसे भक्तवत्सल त्रिलोचनकी शरणको प्राप्त हुए॥ ६९॥

श्वेते तु शरणं प्राप्ते लिङ्गं सत्रिपुरान्तकम्।
चिन्तयामास कालस्य वधोपायं सुरेश्वरः॥ ७०

तब श्वेतके त्रिपुरान्तकसहित लिङ्गके शरणागत होनेपर सुरेश्वर [शिव] कालके वधका उपाय सोचने लगे॥ ७०॥

कलशं यत् स्थितं तस्य उदकेन प्रपूरितम्।
तं भित्त्वा तु समुत्तस्थौ क्रोधविस्फारितेक्षणः॥ ७१

तृतीयलोचनज्वालाप्रकाशितजगत्त्रयः।
दृष्टमात्रस्तदा तस्य कालो वीक्षणतेजसा॥ ७२

सहसा भस्मभूतः स सर्वभूतनिबर्हणः।
श्वेतस्य गत्वा सामीप्यं गणेशत्वं तथैव च॥ ७३

कृत्वा विनिग्रहं कालं तत्रैवान्तरधीयत।
ततः प्रभृति देवेशि कालः सङ्कलयेत् प्रजाः॥ ७४

वहाँपर उन श्वेतका जो जलपूर्ण कलश था, उसका भेदन करके क्रोधसे विस्फारित नेत्रोंवाले शिव प्रकट हो गये, उस समय वे अपने तीसरे नेत्रकी ज्वालासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रहे थे। तब उन्हें देखते ही उनके नेत्रके तेजसे सभी प्राणियोंका अन्त करनेवाला वह काल सहसा भस्म हो गया। इसके बाद श्वेतके पास जाकर शिवने उन्हें गणेशत्व प्रदान किया और कालका विनिग्रह करके वे वहीं अन्तर्धान हो गये। हे देवेशि! तभीसे काल प्रजाओंको संकलित करता है॥ ७१—७४॥

न कश्चित् पश्यते लोके विदेहत्वाज्जगत्त्रये।
तस्मात्तत्र स्वयंभूतो देवदेवः सुरारिहा॥ ७५

श्वेतस्य कलशं भित्त्वा कलशेश्वरमुच्यते।
तस्मात्तत्र स्थितं देवं यो निरीक्षति मानवः॥ ७६

उसके विदेहत्वके कारण तीनों लोकोंमें कोई भी उसे देख नहीं पाता है। देवशत्रुओंका संहार करनेवाले देवदेव [शिव] श्वेतके कलशका भेदन करके वहाँ स्वयं प्रकट हुए, इसलिये वे कलशेश्वर कहे जाते हैं। अतः हे भामिनि! जो मनुष्य वहाँपर स्थित देव (लिङ्ग)-का दर्शन करता है, उसका जन्म, मृत्यु, जरा,

जन्ममृत्युजराव्याधिर्नश्यते तस्य भामिनि।
यत्र श्वेतकृतं लिङ्गं भक्त्या योऽर्चयते नरः॥ ७७

जन्ममृत्युभयं भित्त्वा संसारं न विशेत्पुनः॥ ७८

व्याधि—यह सब नष्ट हो जाता है॥ ७५-७६½॥

जो मनुष्य वहाँ श्वेतमुनिके द्वारा स्थापित किये गये लिङ्गका भक्तिपूर्वक अर्चन करता है, वह जन्म-मृत्युके भयका भेदन करके पुनः संसारमें प्रवेश नहीं करता है॥ ७७-७८॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कलशेश्वरके समीपस्थ लिङ्गोंके माहात्म्यका वर्णन

ईश्वर उवाच

उत्तरे तस्य देवस्य चित्रगुप्तेश्वरं स्थितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवं वाराणस्यां सुरेश्वरि॥ १

चित्रगुप्तं न पश्येत योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
पश्चिमे चित्रगुप्तस्य अन्यल्लिङ्गं स्थितं शुभे॥ २

छायया स्थापितं लिङ्गं तं दृष्ट्वा नातपं भवेत्।
विनायकश्च तत्रैव पश्चिमेन यशस्विनि॥ ३

तस्य दर्शनमात्रेण विघ्नैर्नैवाभिभूयते।
कुण्डं तस्य तु पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४

मुखलिङ्गं तु तद्देवि विरूपाक्षं स्वयं प्रिये।
दक्षिणेन तु तस्यैव कूपस्तिष्ठति भामिनि॥ ५

दर्शनात्तस्य कूपस्य यमद्वारं न पश्यति।
कूपं चापि स्थितं तत्र उपस्पर्शनपुण्यदम्॥ ६

अन्यानि तत्र लिङ्गानि सुरैः संस्थापितानि च।
दक्षिणे कलशेशस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ७

गुहेश्वरेति नामानं सर्वपुण्यफलप्रदम्।
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे द्वावेतौ तत्र संस्थितौ॥ ८

उत्तमेश्वरनामानं वामदेवमतः परम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ९

कम्बलाश्वतराक्षं तु गन्धर्वपददायकम्।
अपरं तस्य देवस्य लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १०

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! वाराणसीमें उस लिङ्गके उत्तरमें पश्चिमकी ओर मुखवाला चित्रगुप्तेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १॥

यहाँपर जो मनुष्य चित्रगुप्तेश्वरका दर्शन करता है, उसे पुनः संसारको नहीं देखना पड़ता है। हे शुभे! चित्रगुप्तके पश्चिममें छायाके द्वारा स्थापित किया गया अन्य लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गका दर्शन करनेसे आतपका कष्ट नहीं होता है। हे यशस्विनि! वहींपर पश्चिममें विनायक विद्यमान हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य विघ्नोंसे बाधित नहीं होता है॥ २-३½॥

उनके पूर्वमें एक कुण्ड तथा पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! हे प्रिये! वह स्वयं विरूपाक्ष नामक मुखलिङ्ग है। हे भामिनि! उसीके दक्षिणमें एक कूप स्थित है, उस कूपके दर्शनसे मनुष्य यमका द्वार नहीं देखता है। वहाँ जो कूप स्थित है, उसमें स्नान करना पुण्यप्रद है॥ ४—६॥

वहाँपर देवताओंके द्वारा अन्य लिङ्ग भी स्थापित किये गये हैं। कलशेशके दक्षिणमें समस्त पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला गुहेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसीके दक्षिणभागमें वहाँपर उत्तमेश्वर तथा वामदेव नामक—ये दो लिङ्ग स्थित हैं॥ ७-८½॥

हे देवि! उसीके पश्चिममें गन्धर्वपद प्रदान करनेवाला कम्बलाश्वतराक्ष नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। वहाँ उन प्रभुका दूसरा पश्चिमाभिमुख लिङ्ग

नलकूबरेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
तस्यैव दक्षिणे देवि मणिकर्णी च विश्रुता॥ ११

तस्य चाग्रे महत्तीर्थं सर्वपातकनाशनम्।
मणिकर्णीश्वरं देवं कुण्डमध्ये च तिष्ठति॥ १२

अनेनैव तु देहेन सिध्यते तस्य दर्शनात्।
तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १३

परिमेश्वरनामानं पूजनादजरो भवेत्।
तस्यैव च समीपस्थं लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १४

धर्मराजेन सुश्रोणि स्थापितं पापनाशनम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि लिङ्गमन्यच्चतुर्मुखम्॥ १५

निर्जरेश्वरनामानं व्याधीनां नाशनं परम्।
तस्य नैर्ऋतकोणे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १६

पितामहाश्चातिकायाः स्नाता ये शुभकर्मिणः।
पिण्डं दत्त्वा तथोक्तं च दृष्ट्वा देवं नदीश्वरम्॥ १७

ब्रह्मलोकात्तु ते पुण्या न च्यवन्ति कदाचन।
दक्षिणे तस्य देवस्य लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ १८

वारुणेश्वरनामानं स्थापितं वरुणेन हि।
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ १९

बाणेन दैत्यराजेन स्थापितं मम भक्तितः।
तस्यैव दक्षिणे देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २०

कूष्माण्डेश्वरनामानं सर्वधर्मफलप्रदम्।
तस्यैव पूर्वतो देवि राक्षसेन प्रतिष्ठितम्॥ २१

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु गङ्गया स्थापितेन तु।
गङ्गेश्वरेति नामानं सुरलोकप्रदायकम्॥ २२

तस्योत्तरेण देवेशि निम्नगाभिस्ततः शुभे।
लिङ्गानि स्थापितानीह गङ्गातीरे यशस्विनि॥ २३

वैवस्वतेश्वरं नाम दृष्ट्वा मृत्युभयापहम्।
वैवस्वतात्पश्चिमे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २४

स्थित है, नलकूबरेश्वर नामक वह लिङ्ग सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०१/२॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें प्रसिद्ध मणिकर्णी विद्यमान है और उसके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला महातीर्थ स्थित है। मणिकर्णीश्वरदेव कुण्डके मध्यमें स्थित हैं, उनके दर्शनसे इसी शरीरसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ११-१२१/२॥

उसके उत्तर दिशाभागमें परिमेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, उसके पूजनसे मनुष्य जरारहित हो जाता है॥ १३१/२॥

हे सुश्रोणि! उसीके समीपमें धर्मराजके द्वारा स्थापित पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह पापोंका नाश करनेवाला है। हे देवि! उसीके पश्चिममें निर्जरेश्वर नामक अन्य चतुर्मुख लिङ्ग विद्यमान है, वह श्रेष्ठ लिङ्ग व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥ १४-१५१/२॥

उसके नैर्ऋत्यकोणमें एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। शुभ कर्मवाले जो पितामह तथा अतिकाय आदि हैं, वे पुण्यशाली लोग यहाँ स्नान करके शास्त्रोक्त विधिसे पिण्डदान करके तथा नदीश्वरलिङ्गका दर्शन करके ब्रह्मलोकसे कभी च्युत नहीं होते हैं॥ १६-१७१/२॥

उस लिङ्गके दक्षिणमें वरुणके द्वारा स्थापित वारुणेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिणभागमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, मेरी भक्तिसे युक्त होकर दैत्यराज बाणने उसे स्थापित किया है॥ १८-१९१/२॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें सभी धर्मोंका फल प्रदान करनेवाला कूष्माण्डेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके पूर्वमें राक्षसके द्वारा स्थापित एक लिङ्ग विद्यमान है॥ २०-२१॥

उसके दक्षिणभागमें गंगाके द्वारा स्थापित गंगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, वह देवलोक प्रदान करनेवाला है। हे देवेशि! हे शुभे! हे यशस्विनि! उसके उत्तरमें यहाँपर नदियोंके द्वारा गंगाके तटपर [अनेक] लिङ्ग स्थापित किये गये हैं॥ २२-२३॥

वहाँ वैवस्वतेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करनेसे

आदित्यैः स्थापितं भद्रे आत्मनः श्रेयसोऽर्थिभिः।
तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २५

वज्रेश्वरेति नामाख्यं सर्वपातकनाशनम्।
तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २६

कनकेश्वरनामानं गुह्यं देवि सनातनम्।
छायेव दृश्यते लिङ्गे स्थाप्यमाने यशस्विनि॥ २७

छायां च पश्यते यो वै न स पापेन लिप्यते।
तस्यैव चाग्रतो देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ २८

तारकेश्वरनामानं सर्वपापहरं शुभम्।
पूजनाच्चास्य लिङ्गस्य ज्ञानावाप्तिर्भवेन्नृणाम्॥ २९

अपरं तत्र देवेशि कनकेश्वरसंज्ञितम्।
पूजनात्स्वयमेवात्र हिरण्यं संप्रयच्छति॥ ३०

कनकेश्वरस्योत्तरेण नाम्ना च मनुजेश्वरम्।
मुखलिङ्गं पश्चिमतः सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३१

तस्यैव चाग्रतो देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
इन्द्रेण स्थापितं देवि मम भक्त्या प्रतिष्ठितम्॥ ३२

तस्य दर्शनमात्रेण देवि ज्ञानं प्रवर्तते।
तस्यैव दक्षिणे देवि रम्भया सम्प्रतिष्ठितम्॥ ३३

मुखलिङ्गं च तं देवि दक्षिणाभिमुखं स्थितम्।
इन्द्रेश्वरस्योत्तरेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ३४

शच्या च स्थापितं भद्रे देवराजस्य भार्यया।
तस्योत्तरदिशाभागे लोकपालैः प्रतिष्ठितम्॥ ३५

अन्यानि तत्र लिङ्गानि देवासुरमरुद्गणैः।
यक्षैर्नागैश्च गन्धर्वैः किन्नराप्सरसां गणैः॥ ३६

लोकपालैः सुरैश्चैव लिङ्गानि स्थापितानि तु।
तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं महापातकनाशनम्॥ ३७

पूर्वामुखं तु तं भद्रे फाल्गुनेन प्रतिष्ठितम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे महापाशुपतेश्वरम्॥ ३८

मृत्युका भय दूर हो जाता है। वैवस्वतके पश्चिममें पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २४॥

हे भद्रे! अपने कल्याणकी इच्छावाले आदित्योंके द्वारा वह स्थापित किया गया है। हे भद्रे! उसीके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला वज्रेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २५½॥

हे भद्रे! हे देवि! उसीके आगे कनकेश्वर नामक गुह्य तथा सनातन पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे यशस्विनि! उस स्थापित लिङ्गमें छाया-जैसी दिखायी देती है, जो उसमें छायाका दर्शन करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है। हे देवि! उसीके आगे सभी पापोंका नाश करनेवाला तारकेश्वर नामक पूर्वाभिमुख शुभ लिङ्ग स्थित है, इस लिङ्गके पूजनसे मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ २६—२९॥

हे देवेशि! वहाँ कनकेश्वर नामक दूसरा लिङ्ग है, इसके पूजनसे यह स्वयं सुवर्ण प्रदान करता है॥ ३०॥

कनकेश्वरके उत्तरमें सभी पापोंको नष्ट करनेवाला मनुजेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है॥ ३१॥

हे देवि! उसीके आगे एक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! इन्द्रने मेरी भक्तिसे उसे स्थापित किया है। हे देवि! उसके दर्शनमात्रसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है॥ ३२½॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें रम्भाके द्वारा मुखलिङ्ग स्थापित किया गया है, हे देवि! वह दक्षिणाभिमुख स्थित है। इन्द्रेश्वरके उत्तरमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे भद्रे! देवराजकी पत्नी शचीने उसे स्थापित किया है। उसके उत्तर दिशाभागमें लोकपालोंके द्वारा लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ३३—३५॥

देवताओं, असुरों, मरुद्गणों, यक्षों, नागों, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, लोकपालों तथा सुरोंके द्वारा वहाँपर अनेक लिङ्ग स्थापित किये गये हैं। उसीके दक्षिणमें महापातकोंका नाश करनेवाला पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे भद्रे! वह फाल्गुनके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ३६-३७½॥

तेन दृष्टेन देवेशि सर्वज्ञानस्य भाजनम्।
तस्यैव पश्चिमे देवि समुद्रेण प्रतिष्ठितम्॥ ३९

उसके दक्षिण दिशाभागमें महापाशुपतेश्वर [नामक] लिङ्ग स्थित है। हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य सम्पूर्ण ज्ञानका भाजन हो जाता है। हे देवि! उसीके पश्चिममें समुद्रके द्वारा एक लिङ्ग स्थापित किया गया है॥ ३८-३९॥

तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे ईशानं लोकविश्रुतम्।
आत्मानमुद्धरेद्देवि लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ ४०

उसीके दक्षिणभागमें लोकप्रसिद्ध पश्चिमाभिमुख ईशानलिङ्ग स्थित है, हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य अपना उद्धार कर लेता है॥ ४०॥

तस्यापि देवि पूर्वेण वाराणस्यां तु लाङ्गलिः।
मोक्षप्रदं तु तल्लिङ्गं सर्वैश्वर्यमयं शुभम्॥ ४१

हे देवि! उसके भी पूर्वमें वाराणसीके अन्तर्गत लांगलि नामक लिङ्ग है, सभी ऐश्वर्योंसे युक्त और शुभ वह लिङ्ग मोक्ष देनेवाला है॥ ४१॥

ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम्।
ब्राह्मणानां हितार्थाय तस्मिन् देशे स्थितो ह्यहम्॥ ४२

कलियुगको भयंकर, हाहाकारसे युक्त तथा अचेतन जानकर मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस स्थानमें स्थित हूँ॥ ४२॥

दिव्या हि सा परा मूर्तिर्दिव्यज्ञानं हि तत् स्मृतम्।
अनुग्रहाय विप्राणां योजयिष्ये व्रतेन तु॥ ४३

वह मूर्ति दिव्य है तथा उसे दिव्यज्ञान कहा गया है। विप्रोंपर अनुग्रह करनेके लिये मैं उन्हें [पाशुपत] व्रतसे युक्त करता हूँ॥ ४३॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एतेषां हि विभेदस्तु भिन्नाश्चैव पृथक् पृथक्॥ ४४

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति—इनमें परस्पर भेद है और ये भिन्न-भिन्न रूपोंमें पृथक् रूपसे स्थित हैं॥ ४४॥

ज्ञानेन रहिताः सर्वे पुनरावर्तकाः स्मृताः।
ब्राह्मणानां हितार्थाय ज्ञानं चैव प्रकाशितम्॥ ४५

ज्ञानरहित ये सब बार-बार जन्म लेनेवाले कहे गये हैं। ब्राह्मणोंके हितके लिये मैंने पाशुपतका ज्ञान प्रकाशित किया है॥ ४५॥

वेदाः सर्वे समादाय षडङ्गाः सपदक्रमाः।
सर्वाणि योगशास्त्राणि दध्ना चैव घृतेन च॥ ४६

तथा वेदे महाभागे व्रतं पाशुपतं प्रिये।
षण्मासैस्तु महाभागे योगैश्वर्यं प्रवर्तते॥ ४७

हे महाभागे! हे प्रिये! जो छः अंगों और पद एवं क्रमसहित सभी वेद तथा सभी योगशास्त्र हैं, उन्हें लेकर दधिसे घृतकी भाँति वेदमें पाशुपतव्रतको प्रकाशित किया गया है। हे महाभागे! पाशुपतव्रत करनेपर छः महीनेमें योगैश्वर्य प्राप्त होता है॥ ४६-४७॥

यस्य यस्य प्रभावोऽस्ति योगस्यैव व्रतस्य च।
योगज्ञेषु हि तिष्ठेत धर्मं सुखं हि तेषु च॥ ४८

जिसके-जिसके योग तथा व्रतका प्रभाव होता है, उन्हीं योगज्ञानियोंमें धर्म तथा सुख स्थित रहते हैं॥ ४८॥

ब्राह्मणानां समो धर्मो दमो वाथ यशस्विनि।
अहिंसा चैव सत्यं च विद्याभिगम एव च॥ ४९

हे यशस्विनि! धर्म, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, सत्य तथा विद्याध्ययन—ये सब ब्राह्मणोंके लिये समानरूपसे विहित हैं॥ ४९॥

मैत्रो वै ब्राह्मणो नित्यं गतिं प्राप्नोति चोत्तमाम्।
भस्मशायी तु तिष्ठेत अन्तस्सवनकृत्तथा॥ ५०

सभीसे मित्रताका भाव रखनेवाला ब्राह्मण सदा उत्तम गति प्राप्त करता है। पाशुपतव्रतीको चाहिये कि

लिङ्गनिर्माल्यधारी च यतिस्स्वायतने वसेत्।
जपगीतहुडुङ्कारस्तुतिकृत्यपरः सदा॥ ५१

भावनाद्देवदेवस्य दक्षिणां मूर्तिमास्थितः।
अकस्मात्तत्र मूत्रं तु पुरीषं वा न संक्षिपेत्॥ ५२

स्त्रीशूद्रौ नाभिभाषेत शूद्रान्नं वर्जयेत् सदा।
शूद्रान्नरसपुष्टस्य निष्कृतिस्तस्य कीदृशी॥ ५३

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यान्नमन्नमित्याहुः शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम्॥ ५४

तस्माद्वर्जेत तद्देवि यदीच्छेन्मामकं पदम्।
श्मशानवासी धर्मात्मा यथालब्धेन वर्तते॥ ५५

लभेत रुद्रसायुज्यं सदा रुद्रमनुस्मरन्।
षण्मासाल्लभते ज्ञानमस्मिन् क्षेत्रे विशेषतः॥ ५६

नित्यं पूजयते देवं ध्रुवं मोक्षं न संशयः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः सिद्धायतनपूजकाः॥ ५७

तेषां मोक्षो मयाख्यातस्तत्र यैर्मानुषैः कृताः।
द्वाविंशे परिवर्ते तु वाराणस्यां महाव्रते॥ ५८

नाम्ना तु नकुलीशेति तस्मिन् स्थाने स्थितो ह्यहम्।
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवकीर्णं दिवौकसः॥ ५९

अत्र स्थानेऽपि देवेशि मम पुत्रा दिवौकसः।
वक्त्रानिर्मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तथापरः॥ ६०

अस्मिन् माहेश्वरं योगं प्राप्य योगगतिं पराम्।
नकुलीशाख्यदेवस्य लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ६१

चतुर्भिः पुरुषैर्युक्तं तल्लिङ्गं तच्च संस्थितम्।
तद् दृष्ट्वा मानवो देवि रुद्रस्यैव सलोकताम्॥ ६२

नकुलीशेश्वरं देवं कपिलेश्वरमेव च।
पञ्चायतनमेतत्तु यत्तु पूर्वमुदाहृतम्॥ ६३

भस्मधारण किये रहे, अन्तर्याग करनेवाला तथा लिङ्गनिर्माल्यधारी यतिको अपने निवासस्थानमें रहना चाहिये। शिवकी भावना करके उन देवाधिदेवकी दक्षिणामूर्तिमें आस्था रखकर जप, गीत, हुडुङ्कार, स्तुति आदि कृत्योंमें सदा संलग्न रहना चाहिये। सहसा मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ५०—५२॥

स्त्री तथा शूद्रसे भाषण नहीं करना चाहिये और शूद्रके अन्नका सदा त्याग करना चाहिये। शूद्रके अन्न तथा रससे पुष्ट व्यक्तिकी निष्कृति कैसे हो सकती है?॥ ५३॥

ब्राह्मणका अन्न अमृत तथा क्षत्रियका अन्न दुग्ध कहा गया है। वैश्यके अन्नको अन्न कहा गया है और शूद्रके अन्नको रुधिर कहा गया है॥ ५४॥

अतः हे देवि! यदि कोई मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो उसे शूद्रके अन्नका त्याग कर देना चाहिये और श्मशानवासी तथा धर्मात्मा होकर यथोपलब्ध अन्नसे निर्वाह करना चाहिये॥ ५५॥

सर्वदा रुद्रका स्मरण करनेवाला रुद्रका सायुज्य प्राप्त करता है और विशेष रूपसे इस क्षेत्रमें छः महीनेमें ही ज्ञान प्राप्त करता है॥ ५६॥

जो शिवजीकी नित्य पूजा करता है, वह निश्चित रूपसे मोक्ष प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। सिद्धलिङ्गोंकी पूजा करनेवाले राग-द्वेषसे मुक्त होते हैं॥ ५७॥

जो मनुष्य वहाँ सिद्ध आयतनोंकी पूजामें संलग्न रहते हैं, मेरे द्वारा उनका मोक्ष बताया गया है। हे महाव्रते! मैं बाईसवें चतुर्युगीमें वाराणसीमें नकुलीश नामसे उस स्थानमें स्थित रहूँगा। देवतालोग कलियुगमें उस लिङ्गमें आविर्भूत मेरा दर्शन करेंगे॥ ५८-५९॥

हे देवेशि! इस स्थानपर भी स्वर्गमें निवास करनेवाले वक्त्रानि, मधुपिंग, श्वेतकेतु नामवाले मेरे पुत्र इस लिङ्गमें माहेश्वरयोग प्राप्त करके श्रेष्ठ योगगतिको प्राप्त हुए। नकुलीश नामक देवका लिङ्ग पूर्वाभिमुख स्थित है। वह लिङ्ग चार पुरुषोंसे युक्त होकर स्थित है। हे देवि! उसका तथा नकुलीशेश्वर और कपिलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका सालोक्य प्राप्त करता है। यही पंचायतन है, जिसे

रहस्यं परमं वेदं मम व्रतनिषेवणम्।
तेषां न कथनीयोऽहं ये मद्भक्तिविवर्जिताः॥ ६४

शक्रः पाशुपते चोक्तं पदे सम्यङ्निषेवितम्।
तत् पदं विन्दते देवि दृष्टैरेव न संशयः॥ ६५

प्रीतिमान् सततं देवि एभिर्दृष्टैश्च जायते।
अविमुक्तं महाक्षेत्रं सिद्धसङ्घनिषेवितम्॥ ६६

अत्र पूजयते देवि ध्रुवं मोक्षो न संशयः।
सिद्धिकामास्तथा सिद्धिं यास्यन्ति द्विजसत्तमाः॥ ६७

इह दत्तं सदाक्षय्यं भविष्यति महात्मनाम्।
द्विजानां धर्मनित्यानां मम व्रतनिषेविणाम्॥ ६८

एकाहमुपवासं यः करिष्यति यशस्विनि।
फलं वर्षशतस्येह लभते मत्परायणः॥ ६९

पहले ही कह दिया गया है॥ ६०—६३॥

मेरा यह व्रत-सेवन परम रहस्यमय है, जो मेरी भक्तिसे रहित हैं, उनसे मेरे विषयमें नहीं बताना चाहिये॥ ६४॥

पाशुपतपदमें सम्यक् व्रतनिषेवण कहा गया है। हे देवि! इन्द्रने इन लिङ्गोंके दर्शनसे उस पदको प्राप्त किया था, इसमें सन्देह नहीं है। इन लिङ्गोंके दर्शनसे मनुष्य सदा शिवमें प्रीति रखनेवाला हो जाता है॥ ६५½॥

अविमुक्त महाक्षेत्र है तथा सिद्धगणोंके द्वारा सेवित है, हे देवि! जो यहाँ [शिवका] पूजन करता है, उसका निश्चित रूपसे मोक्ष हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। सिद्धिकी इच्छावाले द्विजश्रेष्ठ यहाँ सिद्धि प्राप्त करेंगे॥ ६६-६७॥

मेरा व्रत करनेवाले धर्मनिष्ठ महात्माओं तथा द्विजोंको यहाँ दिया हुआ दान सदा अक्षय होगा। हे यशस्विनि! जो व्यक्ति मेरे प्रति परायण होकर यहाँ एक दिन उपवास करता है, वह सौ वर्षके उपवासका फल प्राप्त करता है॥ ६८-६९॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

अविमुक्त तथा उसके समीपस्थ लिङ्गोंका माहात्म्य-वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
यत्र वै देवदेवस्य रुचिरं स्थानमीप्सितम्॥ १

नीयमानं पुरा देवि तल्लिङ्गं शशिमौलिनः।
राक्षसैरन्तरिक्षस्थैर्व्रजमानं सुसत्वरम्॥ २

अस्मिन् देशे यदायातास्तदा देवेन चिन्तितम्।
अविमुक्ते न मोक्षस्तु कथं मे सम्भविष्यति॥ ३

इममर्थं तु देवेशो यावच्चिन्तयते प्रभुः।
तावत् कुक्कुटशब्दस्तु तस्मिन् देशे समुत्थितः॥ ४

ईश्वर बोले—हे सुरेश्वरि! अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य आयतनका वर्णन करूँगा, जो देवदेवका रुचिर अभीष्ट स्थान है॥ १॥

हे देवि! पूर्वकालमें अन्तरिक्षमें स्थित राक्षसोंके द्वारा चन्द्रशेखर शिवका वह लिङ्ग शीघ्रतापूर्वक लाया गया॥ २॥

जब वे राक्षस इस स्थानमें आये, तब शिवजीने सोचा कि अब मेरे अविमुक्तमें मोक्ष सम्भव नहीं है, तो फिर यह कैसे होगा? जब वे देवेश प्रभु इस बातको सोच रहे थे, उसी समय उस स्थानमें कुक्कुटका शब्द

शब्दं श्रुत्वा तु तं देवि राक्षसास्त्रस्तचेतसः।
लिङ्गमुत्सृज्य भीतास्ते प्रभातसमये गताः॥ ५

गतैस्तु राक्षसैर्देवि लिङ्गं तत्रैव संस्थितम्।
स्थाने तु रुचिरे शुभ्रे देवदेवः स्वयं प्रभुः॥ ६

अविमुक्तस्तत्र मध्ये अविमुक्तं ततः स्मृतम्॥ ७

तदाविमुक्ते तु सुरैर्हरस्य
नाम स्मृतं पुण्यतमाक्षराढ्यम्।
मोक्षप्रदं स्थावरजङ्गमानां
ये प्राणिनः पञ्चतां यत्र याताः॥ ८

कुक्कुटाश्चापि देवेशि तस्मिन् स्थाने स्थिताः सदा।
अद्यापि तत्र दृश्यन्ते पूज्यमानाः शुभार्थिभिः॥ ९

अविमुक्तं सदा लिङ्गं योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १०

देवस्य दक्षिणे भागे वापी तिष्ठति शोभना।
तस्यास्तथोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ११

पीतमात्रेण तेनैव उदकेन यशस्विनि।
त्रीणि लिङ्गानि वर्धन्ते हृदये पुरुषस्य तु॥ १२

एतद्गुह्यं महादेवि न देयं यस्य कस्यचित्।
दण्डपाणिस्तु तत्रस्थो रक्षते तज्जलं सदा॥ १३

पश्चिमं तीरमासाद्य देवदेवस्य शासनात्।
पूर्वेण तारको देवो जलं रक्षति सर्वदा॥ १४

नन्दीशश्चोत्तरेणैव महाकालस्तु दक्षिणे।
रक्षते तज्जलं नित्यं मद्भक्तानां तु मोहनम्॥ १५

विष्णुरुवाच

ममापि सा परा देवि तनुरापोमयी शुभा।
अप्राप्या दुर्लभा देवि मानवैरकृतात्मभिः॥ १६

होने लगा॥ ३-४॥

हे देवि! उस शब्दको सुनकर सन्तप्त मनवाले वे राक्षस डरकर लिङ्गको छोड़कर प्रभात वेलामें चले गये॥ ५॥

हे देवि! राक्षसोंके चले जानेपर वह लिङ्ग वहींपर स्थित हो गया। उस सुन्दर तथा शुभ्र स्थानमें स्वयं देवदेव प्रभु विराजमान हो गये। उसके मध्यमें वे अविमुक्तरूपमें स्थित हुए, इसलिये उसे अविमुक्त कहा गया है॥ ६-७॥

अविमुक्तमें देवताओंके द्वारा शिवका नाम पुण्यतम अक्षरोंसे युक्त कहा गया है, स्थावर-जंगमोंमें जो प्राणी वहाँ पंचत्वको प्राप्त होते हैं, उनके लिये यह मोक्षप्रद है॥ ८॥

हे देवेशि! उस स्थानमें कुक्कुट सदा रहते हैं, [अपने] कल्याणकी कामना करनेवाले लोगोंके द्वारा पूजित होते हुए वे [कुक्कुट] आज भी वहाँ देखे जाते हैं॥ ९॥

जो मनुष्य यहाँ अविमुक्तलिङ्गका सदा दर्शन करेगा, उसका पुनर्जन्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी नहीं होगा॥ १०॥

उस लिङ्गके दक्षिणभागमें एक सुन्दर [ज्ञान-] वापी है, उसका जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ११॥

हे यशस्विनि! उस जलके पानमात्रसे ही पुरुषके हृदयमें तीन लिङ्ग उत्पन्न होते हैं॥ १२॥

हे महादेवि! इस रहस्यको जिस-किसीको भी नहीं बताना चाहिये। देवदेवकी आज्ञासे पश्चिम तटपर आकर वहाँ विद्यमान दण्डपाणि उस जलकी सदा रक्षा करते हैं। पूर्वमें तारकदेव सदा जलकी रक्षा करते हैं। उत्तरमें नन्दीश तथा दक्षिणमें महाकाल मेरे भक्तोंके लिये प्रिय उस जलकी नित्य रक्षा करते हैं॥ १३—१५॥

विष्णु बोले—हे देवि! वह श्रेष्ठ तथा शुभ जलमयी मूर्ति मेरी ही है। हे देवि! वह दुर्लभ मूर्ति

यैस्तु तत्र जलं पीतं कृतार्थास्ते तु मानवाः।
तेषां तु तारकं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः॥ १७

वापीजले नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै दण्डनामकम्।
अविमुक्तं ततो दृष्ट्वा कैवल्यं लभते क्षणात्॥ १८

अविमुक्तस्य चाग्रे तु लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
प्रीतिकेश्वरनामानं प्रीतिं यच्छति शाश्वतीम्॥ १९

अविमुक्तोत्तरेणैव लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अविमुक्तं च तं देवि नाम्ना वै मोक्षकेश्वरम्॥ २०

तेन दृष्टेन देवेशि ज्ञानवान् जायते नरः।
तस्य चोत्तरतो देवि लिङ्गं चैव चतुर्मुखम्॥ २१

वरुणेश्वरनामानं पापानां भयमोचनम्।
पूर्वेण तस्य संलग्नं मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ २२

सुवर्णाक्षेश्वरं नाम यज्ञानां फलदायकम्।
तस्य चैवोत्तरे गौरी स्वयं तिष्ठति पुण्यदा॥ २३

तस्यास्तु दर्शनाद्देव्याः सौभाग्यं जायते परम्।
दक्षिणे तस्य देवस्य निकुम्भो नाम वै गणः॥ २४

तं दृष्ट्वा मानुषो देवि क्षेत्रवासं तु विन्दति।
विनायकश्च तत्रैव पश्चिमेन यशस्विनि॥ २५

तस्य दर्शनमात्रेण विघ्नैर्नैवाभिभूयते।
निकुम्भस्य तु पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्॥ २६

मुखलिङ्गं तु तं देवि विजयाख्यं स्वयं प्रिये।
दक्षिणेन तु तत्रैव शुक्रेश्वरमिति स्मृतम्॥ २७

मुखलिङ्गं तु तं भद्रे शुक्रेण स्थापितं पुरा।
पूर्वामुखं तु तं भद्रे शिवलोकप्रदायकम्॥ २८

तस्यैव चोत्तरे देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति।
पश्चान्मुखं तु तं देवि देवयान्या तु स्थापितम्॥ २९

पापात्मा मनुष्योंके द्वारा अप्राप्य है॥ १६॥

जिन्होंने उस जलका पान कर लिया, वे मनुष्य धन्य हैं और उनमें तारक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १७॥

उस वापीके जलमें स्नान करके दण्डपाणिका दर्शनकर और इसके बाद अविमुक्त [लिङ्ग]-का दर्शन करके मनुष्य क्षणभरमें कैवल्य प्राप्त करता है॥ १८॥

अविमुक्तके आगे प्रीतिकेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह शाश्वत प्रीति प्रदान करता है। अविमुक्तके उत्तरमें ही एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह भी अविमुक्त है तथा मोक्षकेश्वर नामसे प्रसिद्ध है॥ १९-२०॥

हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य ज्ञानी हो जाता है। हे देवि! उसके उत्तरमें पापियोंके भयका नाश करनेवाला वरुणेश्वर नामक चतुर्मुख लिङ्ग विद्यमान है॥ २१ $^{1}/_{2}$॥

उसके पूर्वमें समीपमें ही यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाला सुवर्णाक्षेश्वर नामक मुखलिङ्ग स्थित है। उसीके उत्तरमें पुण्यदायिनी स्वयं गौरी स्थित हैं, उन देवीके दर्शनसे परम सौभाग्य प्राप्त होता है॥ २२-२३ $^{1}/_{2}$॥

उस [सुवर्णाक्षेश्वर] देवके दक्षिणमें निकुम्भ नामक गण विद्यमान है, हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य क्षेत्रवास प्राप्त करता है। हे यशस्विनि! वहींपर पश्चिममें विनायक स्थित हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य विघ्नोंसे बाधित नहीं होता है॥ २४-२५ $^{1}/_{2}$॥

निकुम्भके पूर्वमें एक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवि! हे प्रिये! वह साक्षात् विजय नामक मुखलिङ्ग है। वहींपर दक्षिणमें शुक्रेश्वर नामक मुखलिङ्ग बताया गया है, हे भद्रे! शुक्राचार्यने उसे पूर्वकालमें स्थापित किया था। हे भद्रे! वह पूर्वाभिमुख है तथा शिवलोक प्रदान करनेवाला है॥ २६—२८॥

हे देवि! उसीके उत्तरमें पश्चिमकी ओर मुखवाला एक मुखलिङ्ग स्थित है, हे देवि! वह देवयानीके द्वारा स्थापित किया गया है॥ २९॥

तस्यैव चाग्रतो भद्रे लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
कचेन स्थापितं भद्रे देवाचार्यस्य सूनुना॥ ३०

हे भद्रे! उसीके आगे पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे भद्रे! देवताओंके आचार्य बृहस्पतिके पुत्र कचके द्वारा वह स्थापित किया गया है॥ ३०॥

तस्यैव च समीपे तु कूपस्तिष्ठति सुव्रते।
तस्योपस्पर्शनाद्देवि सर्वमेधफलं लभेत्॥ ३१

हे सुव्रते! उसीके समीपमें एक कूप स्थित है, हे देवि! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सभी यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ ३१॥

तस्यैव पश्चिमे भागे देवो देवी च तिष्ठतः।
भक्तिदौ तौ तु सर्वेषां येऽपि दुष्कृतिनो नराः॥ ३२

उसीके पश्चिमभागमें देव (शिव) तथा देवी (पार्वती) स्थित हैं। जो बुरा कर्म करनेवाले मनुष्य हैं, उन सबको भी वे भक्ति देनेवाले हैं॥ ३२॥

शुक्रेश्वरस्य पूर्वेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
अनर्केश्वरनामानं मोक्षदं सर्वदेहिनाम्॥ ३३

तस्यैव पूर्वतो भागे गणैस्तु परिवारितम्।
गणेश्वरमिति ख्यातं सर्वहर्षप्रदायकम्॥ ३४

शुक्रेश्वरके पूर्वमें सभी प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला अनर्केश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसीके पूर्वभागमें गणोंसे घिरा हुआ गणेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग विद्यमान है, वह सभीको हर्ष प्रदान करनेवाला है॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीराम, दत्तात्रेय, हरिकेश, प्रियव्रत तथा ब्रह्माजीद्वारा स्थापित लिङ्गोंका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यदायतनं वक्ष्ये वाराणस्यां सुरेश्वरि।
रामेण स्थापितं लिङ्गं लङ्कायाश्चागतेन हि॥ १

ईश्वर बोले—अब मैं वाराणसीमें स्थित अन्य लिङ्गोंका वर्णन करूँगा। लंकासे लौटकर श्रीरामचन्द्रजीने एक लिङ्ग स्थापित किया है॥ १॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
त्रिपुरान्तकरं नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥ २

उसके दक्षिणभागमें सभी पापोंका नाश करनेवाला त्रिपुरान्तकर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २॥

तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं दत्तात्रेयप्रतिष्ठितम्।
ज्ञानं चोत्पद्यते देवि तस्य लिङ्गस्य दर्शनात्॥ ३

उसीके दक्षिणमें [महर्षि] दत्तात्रेयद्वारा स्थापित लिङ्ग है, हे देवि! उस लिङ्गके दर्शनसे ज्ञान उत्पन्न होता है॥ ३॥

तस्य पश्चिमदिग्भागे हरिकेशेश्वरं शुभम्।
तत्रैवाराधितो देवि हरिकेशेन सुव्रते॥ ४

हरिकेशेश्वरं देवं सर्वकिल्विषनाशनम्।
तस्य पश्चिमदिग्भागे गोकर्णं नाम विश्रुतम्॥ ५

उसके पश्चिम दिशाभागमें हरिकेशेश्वर नामक शुभ लिङ्ग है। हे देवि! हे सुव्रते! हरिकेशने वहाँपर मेरी आराधना की थी। हरिकेशेश्वरलिङ्ग सभी पापोंका नाश करनेवाला है। उसके पश्चिम-दिशाभागमें गोकर्ण नामक प्रसिद्ध तीर्थ विद्यमान है॥ ४-५॥

तत्र स्नातो वरारोहे राजते देवि चन्द्रवत्।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं काशिपुर्यां च सुव्रते॥ ६

हे वरारोहे! हे देवि! वहाँ स्नान किया हुआ मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित होता है। हे सुव्रते! काशीपुरीमें

उत्तरं सर्वसिद्धानामनन्तफलदायकम्।
देवदेवस्य चैवाग्रे तडागं देवविश्रुतम्॥ ७

तत्र स्नातो वरारोहे राजते देवि चन्द्रवत्।
तस्यैव पश्चिमे तीरे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ८

देवेन स्थापितं भद्रे मम भक्तिपरेण वै।
तस्यैव चाग्रतो देवि कुण्डं तिष्ठति भामिनि॥ ९

तस्मिन् स्नातो वरारोहे देवलोकमवाप्नुयात्।
देवेश्वरस्योत्तरेण पिशाचैः स्थापितं पुरा॥ १०

पिशाचेश्वरनामानं मोक्षदं सर्वदेहिनाम्।
ध्रुवेशस्याग्रतो देवि मुखलिङ्गं च तिष्ठति॥ ११

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं तीरे कुण्डस्य भामिनि।
वैद्यनाथं तु तं विद्यात् सर्वसौख्यप्रदायकम्॥ १२

तस्यैव नैर्ऋते भागे मनुना स्थापितं पुरा।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं तस्य कुण्डस्य दक्षिणे॥ १३

तेन दृष्टेन सुश्रोणि सर्वपापक्षयो भवेत्।
वैद्यनाथस्य पूर्वेण लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ १४

मुचुकुन्देश्वरं नाम देवानां तु वरप्रदम्।
प्रियव्रतस्य तद्देवि सर्वयज्ञफलप्रदम्॥ १५

तस्यैव दक्षिणे देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
सर्वपापप्रशमनं गौतमेशं च नामतः॥ १६

तेन दृष्टेन देवेशि सामवेदफलं लभेत्।
तस्यैव दक्षिणे देवि विभाण्डेश्वरसंज्ञितम्॥ १७

ऋष्यशृङ्गेश्वरं नाम तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
तस्यैव पूर्वतो देवि ब्रह्मेश्वरमिति स्मृतम्॥ १८

ब्रह्मेश्वराच्च कोणेन पिशाचेश्वरसंज्ञितम्।
पश्चिमाभिमुखं देवि पर्जन्येश्वरनामतः॥ १९

उत्तरकी ओर सभी सिद्धोंको अनन्त फल देनेवाला पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उस देवदेवके आगे देवविश्रुत तडाग विद्यमान है॥ ६-७॥

हे वरारोहे! हे देवि! वहाँ स्नान किया हुआ मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशमान् हो जाता है। हे भद्रे! उसीके पश्चिम तटपर मेरी भक्तिसे युक्त देवताके द्वारा स्थापित पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ८½॥

हे देवि! हे भामिनि! उसीके आगे एक कुण्ड स्थित है। हे वरारोहे! उसमें स्नान करनेवाला देवलोक प्राप्त करता है। देवेश्वरके उत्तरमें पूर्वकालमें पिशाचोंके द्वारा स्थापित पिशाचेश्वर नामक लिङ्ग है, वह सभी प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०½॥

हे देवि! ध्रुवेशके आगे पश्चिमाभिमुख मुखलिङ्ग स्थित है, हे भामिनि! वह लिङ्ग कुण्डके तटपर विद्यमान है। सभी प्रकारका सुख प्रदान करनेवाले उस लिङ्गको वैद्यनाथ नामवाला जानना चाहिये॥ ११-१२॥

उसीके नैर्ऋतकोणमें पूर्वकालमें मनुके द्वारा स्थापित पूर्वाभिमुख लिङ्ग है, वह लिङ्ग कुण्डके दक्षिणमें स्थित है। हे सुश्रोणि! उसके दर्शनसे सभी पापोंका नाश हो जाता है॥ १३½॥

वैद्यनाथके पूर्वमें देवताओंको वर प्रदान करनेवाला मुचुकुन्देश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह लिङ्ग [राजा] प्रियव्रतके सभी यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १४-१५॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें समस्त पापोंका नाश करनेवाला गौतमेश नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, हे देवेशि! उसके दर्शनसे मनुष्य सामवेदका फल प्राप्त करता है। हे देवि! उसीके दक्षिणमें विभाण्डेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है॥ १६-१७॥

उसके दक्षिणमें ऋष्यशृंगेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उसीके पूर्वमें ब्रह्मेश्वरलिङ्ग बताया गया है॥ १८॥

ब्रह्मेश्वरके कोणमें पिशाचेश्वर नामक लिङ्ग है। हे देवि! पर्जन्येश्वर नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ १९॥

पर्जन्येश्वरनामानं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
पर्जन्येश्वरपूर्वेण नाम्ना तु नहुषेश्वरम्॥ २०

नहुषेश्वरपूर्वेण देवदेवी च तिष्ठति।
विशालाक्षीति विख्याता भक्तानां तु फलप्रदा॥ २१

तस्यैव दक्षिणे भागे जरासन्धेश्वरं स्थितम्।
चतुर्मुखं तु तल्लिङ्गं दृष्ट्वा देवि फलप्रदम्॥ २२

तस्यैव दक्षिणे देवि भोगदा सर्वदेहिनाम्।
भोगा ललितका देवि सर्वसिद्धिप्रदायिका॥ २३

जरासन्धेश्वरस्याग्रे लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
हिरण्याक्षेश्वरं नाम हिरण्यफलदायकम्॥ २४

तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं ययातीश्वरनामतः।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम्॥ २५

तस्यैव पश्चिमे भागे ब्रह्मेशस्य समीपतः।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं दृष्ट्वा वेदफलं लभेत्॥ २६

अगस्त्यस्य समीपे तु मुखलिङ्गं तु तिष्ठति।
विश्वावसुस्तु गन्धर्वो लिङ्गं स्थापितवान् पुरा॥ २७

अगस्त्येश्वरपूर्वेण मुण्डेशो नाम नामतः।
पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं वीरसिद्धिप्रदं नृणाम्॥ २८

तस्यैव दक्षिणे देवि विधिस्तिष्ठति पार्वति।
विधिना स्थापितं लिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम्॥ २९

विधीश्वराद्दक्षिणेन तीर्थं सर्वत्र विश्रुतम्।
दशाश्वमेधिकं नाम लिङ्गं तत्र स्वयं स्थितम्॥ ३०

तं दृष्ट्वा मानवो देवि अश्वमेधफलं लभेत्।
दशाश्वमेधाच्चोत्तरतो मातरस्तत्र संस्थिताः॥ ३१

तासां मुखे तु तत्कुण्डं तिष्ठते वरवर्णिनि।
तत्र स्नानं नरः कुर्यान्नारी वा पुरुषोऽपि वा॥ ३२

पर्जन्येश्वर नामक लिङ्ग भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। पर्जन्येश्वरके पूर्वमें नहुषेश्वर नामक लिङ्ग है। नहुषेश्वरके पूर्वमें देव-देवी स्थित हैं, विशालाक्षी नामसे विख्यात वे [सभी] भक्तोंको फल प्रदान करनेवाली हैं॥ २०-२१॥

उसीके दक्षिणभागमें जरासन्धेश्वर नामक चतुर्मुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! उस लिङ्गका दर्शन करनेसे वह [समस्त] फल प्रदान करता है॥ २२॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें सभी प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाली भोगा ललितका स्थित हैं, हे देवि! वे सभी सिद्धियाँ देनेवाली हैं॥ २३॥

जरासन्धेश्वरके आगे सुवर्णका फल प्रदान करनेवाला हिरण्याक्षेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ २४॥

उसीके दक्षिणमें ययातीश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग विद्यमान है, वह लिङ्ग सभी कामनाओंका फल देनेवाला है॥ २५॥

उसीके पश्चिमभागमें ब्रह्मेशके समीप पश्चिमकी ओर मुखवाला एक लिङ्ग स्थित है, उस लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य वेदोंका फल प्राप्त करता है॥ २६॥

अगस्त्यके समीपमें एक मुखलिङ्ग स्थित है, पूर्वकालमें गन्धर्व विश्वावसुने उस लिङ्गको स्थापित किया था॥ २७॥

अगस्त्येश्वरके पूर्वमें मुण्डेश नामसे प्रसिद्ध पश्चिमकी ओर मुखवाला लिङ्ग विद्यमान है, वह लिङ्ग मनुष्योंको वीरसिद्धि प्रदान करनेवाला है॥ २८॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें विधि [लिङ्ग] स्थित है, हे पार्वति! विधि (ब्रह्मा)-के द्वारा स्थापित वह लिङ्ग पश्चिमाभिमुख स्थित है॥ २९॥

विधीश्वरके दक्षिणमें सर्वत्र प्रसिद्ध एक तीर्थ है, वहाँपर दशाश्वमेधिक नामक लिङ्ग स्वयं स्थित है। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य अश्वमेधका फल प्राप्त करता है॥ ३०$^1/_2$॥

दशाश्वमेधके उत्तरमें वहाँपर मातृकाएँ स्थित हैं, हे वरवर्णिनि! उनके मुखमें एक कुण्ड स्थित है। वहाँ जो

ईप्सितं फलमाप्नोति मातॄणां च प्रसादतः।
अगस्त्येशाद्दक्षिणतो लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ३३

पुलस्त्येश्वरनामानं सर्वारोग्यविवर्धनम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गमन्यच्च तिष्ठति॥ ३४

पुष्पदन्तेश्वरं नाम सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
तस्यैवाग्रे तु कोणे तु लिङ्गानि सुमहान्ति च॥ ३५

देवर्षिगणपुष्टानि सर्वसिद्धिकराणि च।
तस्यैव पूर्वदिग्भागे महदाश्चर्यदायकम्॥ ३६

पञ्चोपचारपूजायां स्वप्नसिद्धिं करिष्यति।
लिङ्गं सिद्धेश्वरं नाम पूर्वाभिमुखसंस्थितम्॥ ३७

मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष हो, स्नान करता है, वह मातृकाओंकी कृपासे वांछित फल प्राप्त करता है। अगस्त्येशके दक्षिणमें सभी प्रकारके आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला पुलस्त्येश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ३१—३३१/२ ॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला पुष्पदन्तेश्वर नामक एक अन्य लिङ्ग स्थित है। उसीके आगे कोणमें महान् लिङ्ग विद्यमान हैं; वे देवर्षियोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाले हैं। उसीके पूर्व दिशाभागमें महान् आश्चर्यजनक लिङ्ग विद्यमान हैं। सिद्धेश्वर नामक पूर्वाभिमुख स्थित वह लिङ्ग पंचोपचारपूजाके द्वारा स्वप्नसिद्धि प्रदान करता है॥ ३४—३७॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

हरिश्चन्द्रेश्वर, नैर्ऋतेश्वर, अम्बरीषेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, कपर्दीश्वर, अंगारेश्वर तथा छागलेश्वर आदि लिङ्गोंकी महिमाका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि हरिश्चन्द्रेश्वरं शुभम्।
यत्र सिद्धो महात्मा वै हरिश्चन्द्रो महाबलः॥ १

तं दृष्ट्वा मानवो देवि रुद्रस्य पदमाप्नुयात्।
पूर्वामुखं तु तल्लिङ्गं स्वर्गलोकप्रदायकम्॥ २

हरिश्चन्द्रेश्वराद्देवि अन्यल्लिङ्गं तु पश्चिमे।
पूर्वामुखं तु तं देवि नाम्ना वै नैर्ऋतेश्वरम्॥ ३

तस्य सन्दर्शनाद्देवि कैवल्यं ज्ञानमाप्नुयात्।
तस्यैव दक्षिणे लिङ्गं पूर्वामुखमवस्थितम्॥ ४

नाम्ना ह्याङ्गिरसेशं तद्वैराग्यसुखदायकम्।
तस्यैव दक्षिणे देवि क्षेमेश्वरमनुत्तमम्॥ ५

तस्य दक्षिणदिग्भागे केदारं नाम विश्रुतम्।
तं दृष्ट्वा मनुजो देवि रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥ ६

ईश्वर बोले—अब मैं हरिश्चन्द्रेश्वर नामक अन्य शुभ लिङ्गका वर्णन करूँगा, जहाँपर महाबली हरिश्चन्द्र सिद्ध महात्मा हुए थे॥ १॥

हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य रुद्रका पद प्राप्त करता है। वह पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्वर्गलोक प्रदान करनेवाला है॥ २॥

हे देवि! हरिश्चन्द्रेश्वरके पश्चिममें दूसरा पूर्वाभिमुख एक लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह नैर्ऋतेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। हे देवि! उसके दर्शनसे मनुष्य कैवल्यज्ञान प्राप्त करता है। उसीके दक्षिणमें आंगिरसेश नामसे प्रसिद्ध पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह वैराग्यसुख प्रदान करनेवाला है॥ ३-४१/२ ॥

हे देवि! उसीके दक्षिणमें अत्युत्तम क्षेमेश्वर [लिङ्ग] विद्यमान है। उसके दक्षिण दिशाभागमें केदार नामक प्रसिद्ध लिङ्ग है। हे देवि! उसका दर्शन

केदाराद्दक्षिणे चैव लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्।
नीलकण्ठेति नामानं सुरलोकप्रदायकम्॥ ७

तस्यैव वायवे कोणे अम्बरीषेश्वरं शुभम्।
तस्य दक्षिणदिग्भागे लिङ्गं वै दक्षिणामुखम्॥ ८

नाम्ना कालञ्जरं देवं सर्वपातकनाशनम्।
तस्यैव दक्षिणे भागे लोलार्को नाम वै रविः॥ ९

तस्य दर्शनमात्रेण सूर्यलोकमवाप्नुयात्।
लोलार्कात् पश्चिमे भागे दुर्गादेवी च तिष्ठति॥ १०

मानवानां हितार्थाय कूटे क्षेत्रस्य दक्षिणे।
दुर्गायाः पश्चिमे देवि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ ११

असितेन च तद्देवि भक्त्या वै संप्रतिष्ठितम्।
शुष्कनद्यास्तु नाम्ना वै शुष्केश्वरमिति स्मृतम्॥ १२

शुष्केश्वरात् पश्चिमेन नाम्ना तु जनकेश्वरम्।
जनकेन महाभागे भक्त्या चापि प्रतिष्ठितम्॥ १३

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं दर्शनादव्यथः शुभे।
तस्यैव चोत्तरे भागे नातिदूरे यशस्विनि॥ १४

शङ्कुकर्णेश्वरं नाम लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति।
तस्य दर्शनमात्रेण व्रतसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ १५

शुष्केश्वराच्चोत्तरेण लिङ्गं पश्चान्मुखं स्थितम्।
सिद्धेश्वरेति नामानं कुण्डस्यैव तटस्थितम्॥ १६

तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा सिद्धेश्वरं तु वै।
सर्वासामेव सिद्धीनां पारं गच्छति मानवः॥ १७

वायव्ये तु दिशाभागे शङ्कुकर्णेश्वरस्य तु।
माण्डव्येशमिति ख्यातं सुरसिद्धैस्तु वन्दितम्॥ १८

तस्य चैव समीपे तु स्वयं देवश्च तिष्ठति।
गणैः परिवृतो देवि देव्या सह महाप्रभुः॥ १९

द्वारे स्वे तिष्ठते देवि स्वयं क्षेत्रं च रक्षति।
देवस्य चोत्तरे भागे नातिदूरे व्यवस्थितम्॥ २०

मुखलिङ्गं तु तत्रैव लिङ्गं पूर्वामुखं शुभे।
तस्यैव चोत्तरे पार्श्वे छागलेश्वरसंज्ञितम्॥ २१

करके मनुष्य रुद्रका अनुचर हो जाता है॥ ५-६॥

केदारके ही दक्षिणमें देवलोक प्रदान करनेवाला नीलकण्ठ नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है॥ ७॥

उसीके वायव्य कोणमें अम्बरीषेश्वर नामक शुभ लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिण दिशाभागमें कालंजर नामक दक्षिणाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८१/२॥

उसीके दक्षिण भागमें लोलार्क नामक सूर्यदेव विद्यमान हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। लोलार्कके पश्चिमभागमें तथा क्षेत्रके दक्षिणमें कूटपर मनुष्योंके हितके लिये दुर्गादेवी स्थित हैं। हे देवि! दुर्गाके पश्चिममें पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। हे देवि! वह लिङ्ग महात्मा असितके द्वारा भक्तिपूर्वक स्थापित किया गया है॥ ९—१११/२॥

शुष्क नदीके नामसे शुष्केश्वर लिङ्ग भी बताया गया है। शुष्केश्वरके पश्चिममें जनकेश्वर नामक लिङ्ग विद्यमान है। हे महाभागे! जनकके द्वारा भक्तिपूर्वक उसे स्थापित किया गया है। हे शुभे! वह लिङ्ग पश्चिमकी ओर मुखवाला है, उसके दर्शनसे मनुष्य व्यथारहित हो जाता है॥ १२-१३१/२॥

हे यशस्विनि! उसीके उत्तरभागमें समीपमें वहींपर शंकुकर्णेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके व्रतकी सिद्धि हो जाती है॥ १४-१५॥

शुष्केश्वरके उत्तरमें सिद्धेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग स्थित है, वह कुण्डके तटपर ही स्थित है। वहाँपर कुण्डमें स्नान करके तथा सिद्धेश्वरका दर्शन करके मनुष्य समस्त सिद्धियोंके पार चला जाता है॥ १६-१७॥

शंकुकर्णेश्वरके वायव्य दिशाभागमें देवताओं तथा सिद्धोंसे वन्दित माण्डव्येश नामक लिङ्ग विद्यमान है॥ १८॥

उसके समीपमें स्वयं देव [शिवजी] स्थित हैं। हे देवि! वे महाप्रभु [वहाँ] गणों तथा देवी [पार्वती]-से घिरे रहकर अपने द्वारपर विराजमान रहते हैं और स्वयं क्षेत्रकी रक्षा करते हैं॥ १९१/२॥

देवके उत्तरभागमें समीपमें ही वहाँपर एक मुख-लिङ्ग है, हे शुभे! वह लिङ्ग पूर्वाभिमुख है। उसीके उत्तरभागमें छागलेश्वर नामक पश्चिमाभिमुख लिङ्ग

पश्चान्मुखं तु तल्लिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
अन्यदायतनं देवि पश्चिमेन यशस्विनि॥ २२

कपर्दीश्वरनामानमुत्तमं सर्वदायकम्।
तस्य पूर्वेण सुश्रोणि लिङ्गं पूर्वामुखं स्थितम्॥ २३
हरितेश्वरनामानं सर्वपापक्षयङ्करम्।

कात्यायनेश्वरं नाम तस्य दक्षिणतः स्थितम्।
तेन दृष्टेन मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ २४

अन्यत्तस्यैव पार्श्वे तु अङ्गारेश्वरसंज्ञितम्।
तडागं चापि तत्रस्थमङ्गारेश्वरसंज्ञितम्॥ २५

तस्य दक्षिणदिग्भागे नातिदूरे व्यवस्थितम्।
मुकुरेश्वरनामानं सर्वयात्राफलप्रदम्॥ २६

पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं कुण्डस्य पुरतः स्थितम्।
तस्य कुण्डस्य पार्श्वे तु छागलेश्वरसंज्ञितम्॥ २७

तस्य दर्शनमात्रेण योगैश्वर्यं प्रवर्तते।
अन्यानि सन्ति लिङ्गानि शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८

न मया तानि चोक्तानि बहुत्वान्नामधेयतः।
सप्तकोट्यस्तु लिङ्गानि अस्मिन् स्थाने स्थिता भुवि॥ २९

तेषां दर्शनमात्रेण ज्ञानं चोत्पद्यते क्षणात्।
उद्देशमात्रं कथितं मया तुभ्यं वरानने॥ ३०

न शक्यं विस्तराद्वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि।
एतानि सिद्धलिङ्गानि कूपाः पुण्या ह्रदास्तथा॥ ३१

वाप्यो नद्योऽथ कुण्डानि मया ते परिकीर्तिताः।
एतेषु चैव यः स्नानं करिष्यति समाहितः॥ ३२

लिङ्गानि स्पर्शयित्वा च संसारे न विशेत् पुनः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च॥ ३३

तेषां मध्ये तु ये श्रेष्ठा मया ते कथिता शुभे।
तीर्थयात्रा वरारोहे कथिता पापनाशिनी॥ ३४

येन चैषा कृता देवि सोऽवश्यं मुक्तिभाग्भवेत्॥ ३५

स्थित है। वह सभी सिद्धियाँ देनेवाला है। हे देवि! उसके पश्चिममें अन्य आयतन स्थित है। हे यशस्विनि! कपर्दीश्वर नामक वह उत्तम आयतन (लिङ्ग) सब कुछ प्रदान करनेवाला है॥ २०—२२$^{1}/_{2}$ ॥

हे सुश्रोणि! उसके पूर्वमें सभी पापोंका नाश करनेवाला हरितेश्वर नामक पूर्वाभिमुख लिङ्ग स्थित है। उसके दक्षिणमें कात्यायनेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है, उसके दर्शनसे मनुष्य समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ २३-२४॥

उसीके पासमें अंगारेश्वर नामक अन्य लिङ्ग विद्यमान है और वहींपर अंगारेश्वर नामक तडाग भी स्थित है॥ २५॥

उसके दक्षिण दिशाभागमें समीपमें ही सभी यात्राओंका फल प्रदान करनेवाला मुकुरेश्वर नामक लिङ्ग स्थित है। पश्चिमाभिमुख वह लिङ्ग कुण्डके सामने स्थित है। उस कुण्डके पासमें छागलेश्वर नामक लिङ्ग विद्यमान है, उसके दर्शनमात्रसे योगैश्वर्य प्राप्त होता है। वहाँपर अन्य सैकड़ों-हजारों लिङ्ग स्थित हैं, बहुत-से होनेके कारण नाम लेकर मैंने उन्हें नहीं बताया। पृथ्वीपर इस स्थानमें सात करोड़ लिङ्ग हैं, उनके दर्शनमात्रसे क्षणभरमें ज्ञान उत्पन्न हो जाता है॥ २६—२९$^{1}/_{2}$ ॥

हे वरानने! मैंने संक्षेपमें आपको बताया है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता है। मैंने आपसे इन सिद्धलिङ्गों, कूपों, पवित्र ह्रदों, वापियों, नदियों तथा कुण्डोंका वर्णन कर दिया। जो एकाग्रचित्त होकर इन [कुण्ड आदि]-में स्नान करता है तथा लिङ्गोंका स्पर्श करता है, वह संसारमें पुनः प्रवेश नहीं करता है॥ ३०—३२$^{1}/_{2}$ ॥

हे शुभे! पृथ्वीपर तथा अन्तरिक्षमें जो तीर्थ हैं, उनमें जो श्रेष्ठ हैं, उनका वर्णन मैंने कर दिया। हे वरारोहे! मैंने पापोंका नाश करनेवाली तीर्थयात्राको भी बता दिया, हे देवि! जिसने इसे कर लिया, वह अवश्य ही मुक्तिका भागी होता है॥ ३३—३५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

चतुर्दशायतन, अष्टायतन तथा पंचायतनयात्राका वर्णन

ईश्वर उवाच

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि महाभाग्यं वरानने।
चतुर्दशायतनं कृत्वा अष्टायतनमेव च॥ १

पञ्चायतनमेवं तु ललिता च विनायकः।
नवदुर्गास्तथा प्रोक्ता एतत् कृत्यं वरानने॥ २

रहस्यमेतत् कथितं न देयं यस्य कस्यचित्।
शैलेशं प्रथमं दृष्ट्वा स्नात्वा वै वरणां नदीम्॥ ३

स्नानं तु सङ्गमे कृत्वा दृष्ट्वा वै सङ्गमेश्वरम्।
स्वर्लीने तु कृतस्नानो दृष्ट्वा स्वर्लीनमीश्वरम्॥ ४

मन्दाकिन्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम्।
हिरण्यगर्भे स्नातस्तु दृष्ट्वा चैव तु ईश्वरम्॥ ५

मणिकर्ण्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैशानमीश्वरम्।
तस्मिन् कूप उपस्पृश्य दृष्ट्वा गोप्रेक्षमीश्वरम्॥ ६

कपिलायां ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा वै वृषभध्वजम्।
उपशान्तस्य देवस्य दक्षिणे कूपमुत्तमम्॥ ७

तस्मिन् कूपे उपस्पृश्य दृष्ट्वोपशान्तमीश्वरम्।
पञ्चचूडाह्रदे स्नात्वा ज्येष्ठस्थानं ततोऽर्चयेत्॥ ८

चतुःसमुद्रकूपे तु स्नात्वा देवं ततोऽर्चयेत्।
देवस्याग्रे तु कूपस्य तत्रोपस्पर्शने कृते॥ ९

ततोऽर्चयेत देवेशं शुद्धेश्वरमतः परम्।
दण्डखाते नरः स्नात्वा व्यादेशं तु ततोऽर्चयेत्॥ १०

शौनकेश्वरकुण्डे तु स्नानं कृत्वा ततोऽर्चयेत्।
जम्बुकेश्वरनामानं दृष्ट्वा चैव यशस्विनि॥ ११

दृष्ट्वा न जायते मर्त्यः संसारे दुःखसागरे।
प्रतिपत्प्रभृति देवेशि यावत् कृष्णचतुर्दशीम्॥ १२

ईश्वर बोले—हे वरानने! अब मैं अन्य महाभाग्यप्रद लिङ्गोंका वर्णन करूँगा। चतुर्दशायतन, अष्टायतन, पंचायतन, ललिता, विनायक तथा जो नौ दुर्गा हैं—इन सबको मैं बता चुका हूँ। हे वरानने! इस यात्राको करना चाहिये और इस बताये गये रहस्यको जिस-किसीसे प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ १-२½॥

सर्वप्रथम शैलेशका दर्शन करके तथा वरणानदीमें स्नान करके पुनः संगममें स्नानकर तथा संगमेश्वरका दर्शन करके, इसके बाद स्वर्लीनमें स्नान करके तथा स्वर्लीनेश्वरका दर्शन करके पुनः मन्दाकिनीमें स्नान करके तथा मध्यमेश्वरका दर्शन करके पुनः हिरण्यगर्भमें स्नान करके तथा ईश्वरका दर्शन करके इसके बाद मणिकर्णीमें स्नान करके तथा भगवान् ईशानका दर्शन करके पुनः [वहाँपर] उस कूपमें स्नान करके तथा गोप्रेक्षेश्वरका दर्शन करके, पुनः कपिलाह्रदमें स्नान करके तथा वृषभध्वजका दर्शन करके उपशान्तदेवके दक्षिणमें स्थित जो उत्तम कूप है, उस कूपमें स्नान करके तथा उपशान्तेश्वरका दर्शन करनेके अनन्तर पंचचूडाह्रदमें स्नान करके मनुष्यको ज्येष्ठस्थानका अर्चन करना चाहिये॥ ३—८॥

इसके बाद चतुःसमुद्रकूपमें स्नान करके देव (लिङ्ग)-का दर्शन-पूजन करना चाहिये। देवके आगे स्थित कूपके जलसे स्नान करनेके बाद देवेश शुद्धेश्वरका अर्चन करना चाहिये। इसके पश्चात् दण्डखातमें स्नान करके मनुष्यको व्यादेशका पूजन करना चाहिये॥ ९-१०॥

पुनः शौनकेश्वरकुण्डमें स्नान करके उस लिङ्गका अर्चन करना चाहिये। हे यशस्विनि! जम्बुकेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य दुःखसागररूपी संसारमें पुनः जन्म नहीं लेता है। हे देवेशि! हे शुभे! प्रतिपदासे आरम्भ करके कृष्णचतुर्दशीतक क्रमसे इस महान्

एतत्क्रमेण कर्तव्यं महदायतनं शुभे।
अतः परं प्रवक्ष्यामि अष्टायतनमुत्तमम्॥ १३

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि लाङ्गलीशं ततो व्रजेत्।
तं दृष्ट्वा तु ततो देवि आषाढीशं ततोऽर्चयेत्॥ १४

दृष्ट्वा चाषाढिनं देवि भारभूतं ततो व्रजेत्।
तं दृष्ट्वा तु ततो देवं गच्छेद्वै त्रिपुरान्तकम्॥ १५

तं दृष्ट्वापि ततो देवि नकुलीशं ततो व्रजेत्।
दक्षिणे नकुलीशस्य त्र्यम्बकं च ततो व्रजेत्॥ १६

अष्टायतनमेवं हि मया ते परिकीर्तितम्।
अष्टायतनमेतद्धि करिष्यन्ति हि ये नराः॥ १७

ते मृतापि बहिः क्षेत्रे रुद्रलोकस्य भाजनाः॥ १८

ईश्वर उवाच

पूर्वं चैव मया देवि पञ्चायतनमुत्तमम्।
रोचते मे सदा वासः पञ्चायतन उत्तमे॥ १९

एषां दिगुत्तरा देवि वाराणस्यां सदा प्रिये।
मम चोत्तरतो नित्यमस्मिन् स्थाने विशेषतः॥ २०

एकान्तवासिनो विप्रा भस्मनिष्ठा दृढव्रताः।
तेषां तु चोत्तमं स्थानं तद्वदन्ति च केचन॥ २१

दिव्या हि सा परा मूर्तिरोङ्कारे ह स्थितः सदा।
उत्पत्तिस्थितिकालेऽहं तस्मिन्नायतने स्थितः॥ २२

एवं च यो विजानाति न स पापेन लिप्यते।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिः सत्यं नान्यतश्शुभे॥ २३

शीघ्रं तत्र च संयातु यदीच्छेन्मामकं पदम्।
एवं ते कथितं देवि पुनर्विस्तरतो मया॥ २४

ईश्वर उवाच

अविमुक्तं च स्वर्लीनं तथा मध्यमकं शुभम्।
एतत् त्रिकण्टकं नाम मृत्युकालेऽमृतप्रदम्॥ २५

चतुर्दशायतनको सम्पन्न करना चाहिये॥ ११-१२१/२॥

अब मैं उत्तम अष्टायतनको बताऊँगा। हे देवि! उसका दर्शन करके मनुष्यको लांगलीशके स्थानमें जाना चाहिये। हे देवि! उसका दर्शन करनेके बाद आषाढीशका अर्चन करना चाहिये॥ १३-१४॥

हे देवि! आषाढीशका दर्शन करनेके बाद भारभूतेश्वरके पास जाना चाहिये। उसका दर्शन करके त्रिपुरान्तकदेवके पास जाना चाहिये॥ १५॥

हे देवि! उसका दर्शन करके नकुलीशके पास जाना चाहिये। इसके बाद नकुलीशके दक्षिणमें स्थित त्र्यम्बकके पास जाना चाहिये॥ १६॥

[हे देवि!] इस प्रकार मैंने आपको अष्टायतनके विषयमें बता दिया। जो मनुष्य इस अष्टायतनका दर्शन-पूजन करेंगे, वे इस क्षेत्रके बाहर मरनेपर भी रुद्रलोकके भाजन होंगे॥ १७-१८॥

ईश्वर बोले—हे देवि! मैं पहले ही उत्तम पंचायतनका वर्णन कर चुका हूँ। उत्तम पंचायतनमें निवास करना मुझे अच्छा लगता है॥ १९॥

हे देवि! हे प्रिये! वाराणसीमें इनके उत्तर दिशामें और मेरे उत्तरमें इस स्थानपर भस्म धारण करके दृढव्रतमें स्थित होकर विप्रलोग सदा एकान्तवास करते हैं। कुछ लोग उसे उनका उत्तम स्थान बताते हैं॥ २०-२१॥

वह मूर्ति दिव्य तथा श्रेष्ठ है, मैं सदा उस ओंकारेश्वरमें स्थित हूँ। उत्पत्ति तथा स्थितिके समय मैं उस आयतनमें स्थित रहता हूँ॥ २२॥

जो इस बातको जानता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता है। हे शुभे! यह सत्य है, सत्य है, सत्य है—तीन बार सत्य है, यह अन्यथा नहीं है॥ २३॥

यदि कोई मेरे लोककी इच्छा करता हो, तो शीघ्र ही वहाँ जाय। हे देवि! इस प्रकार मैंने विस्तारपूर्वक फिरसे आपको यह बता दिया॥ २४॥

ईश्वर बोले—अविमुक्तेश्वर, स्वर्लीनेश्वर तथा शुभ मध्यमेश्वर—ये त्रिकण्टक नामवाले हैं तथा

कारणं तस्य क्षेत्रस्य मया ते कथितं शुभे।
इयं वाराणसी पुण्या श्रेष्ठा पाशुपती स्थली।
सर्वेषां चैव जन्तूनां हेतुर्मोक्षस्य सुन्दरि॥ २६

अविमुक्तं च स्वर्लीनमोङ्कारं चण्डमीश्वरम्।
मध्यमं कृत्तिवासं च षडङ्गमीश्वरं स्मृतम्॥ २७

अविमुक्ते महाक्षेत्रे गुह्यमेतत्परं मम।
सोपदेशेन ज्ञातव्यं यदीच्छेत् परमं पदम्॥ २८

एतद्रहस्यमाहात्म्यं न देयं यस्य कस्यचित्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्राकालं च सर्वदा॥ २९

चैत्रमासे तु देवैस्तु यात्रेयं च कृता शुभा।
तस्यैव कामकुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३०

वैशाखे दैत्यराजैस्तु यात्रेयं च कृता पुरा।
विमलेश्वरकुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३१

ज्येष्ठमासेऽपि सिद्धैस्तु यात्रेयं च कृता पुरा।
रुद्रवासस्य कुण्डे तु स्नानपूजनतत्परैः॥ ३२

आषाढे चाऽपि गन्धर्वैर्यात्रेयं च कृता मम।
श्रिया देव्यास्तु कुण्डस्थैः स्नानपूजनतत्परैः॥ ३३

विद्याधरैस्तु यात्रेयं श्रावणे मासि तत्परैः।
लक्ष्मीकुण्डस्य संस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३४

पितृभिश्चाऽपि यात्रेयमाश्विने मासि तत्परैः।
कपिलाह्रदसंस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३५

ऋषिभिश्चापि यात्रेयं कार्तिके मासि तत्परैः।
मार्कण्डेयह्रदस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३६

विद्याधरैश्च यात्रेयं मासि मार्गशिरे कृता।
कपालमोचनस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः॥ ३७

गुह्यकैश्चैव यात्रेयं पुष्यमासे तु तत्परैः।
पिशाचैश्चैव यात्रेयं माघमासे च तत्परैः॥ ३८

मृत्युकालमें अमृत (अमरत्व) प्रदान करनेवाले हैं॥ २५॥

हे शुभे! मैंने उस क्षेत्रके महत्त्वका कारण आपको बता दिया। यह वाराणसी पुण्यमयी, श्रेष्ठ तथा पशुपतिके भक्तोंकी स्थली है और हे सुन्दरि! यह सभी प्राणियोंके मोक्षकी हेतु है॥ २६॥

अविमुक्तेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, ओंकारेश्वर, चण्डेश्वर, मध्यमेश्वर, कृत्तिवासेश्वर—यह षडंग लिङ्ग कहा गया है॥ २७॥

अविमुक्त महाक्षेत्रमें यह मेरा परम गुह्य स्थान है, यदि कोई परम पद चाहता है, तो उसे उपदेशपूर्वक इसे जानना चाहिये॥ २८॥

इस रहस्यमय माहात्म्यको जिस-किसीसे भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। अब मैं यात्राकालका वर्णन करूँगा॥ २९॥

उसीके कामकुण्डमें स्नान तथा पूजनमें तत्पर देवताओंने चैत्रमासमें इस शुभ यात्राको किया था॥ ३०॥

विमलेश्वर कुण्डके स्नान-पूजनमें तत्पर दैत्यराजोंने वैशाखमासमें इस यात्राको पूर्वकालमें किया था॥ ३१॥

रुद्रवासकुण्डके स्नान-पूजनमें तत्पर सिद्धोंने ज्येष्ठमासमें पूर्वकालमें इस यात्राको किया था॥ ३२॥

श्रीदेवीके कुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर रहनेवाले गन्धर्वोंके द्वारा आषाढ़मासमें मेरी यह यात्रा की गयी थी॥ ३३॥

लक्ष्मीकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर विद्याधरोंने श्रावण महीनेमें इस यात्राको किया था॥ ३४॥

कपिलाह्रदमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पितरोंने आश्विनमासमें इस यात्राको किया था। मार्कण्डेयह्रदमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर ऋषियोंने कार्तिकमासमें यह यात्रा की थी॥ ३५-३६॥

कपालमोचनमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर विद्याधरोंने मार्गशीर्षमासमें यह यात्रा की थी। गुह्यकोंने समाहित होकर पौषमासमें यह यात्रा की थी। पिशाचोंने समाहित होकर माघमासमें इस यात्राको किया था॥ ३७-३८॥

धनदेश्वरकुण्डस्थैः स्नानपूजनतत्परैः।
यक्षेशैश्चापि यात्रेयं माघमासे च तत्परैः॥ ३९

कोटितीर्थे तु संस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः।
पिशाचैश्चैव यात्रेयं फाल्गुने मासि तत्परैः॥ ४०

गोकर्णकुण्डसंस्थैश्च स्नानपूजनतत्परैः।
पिशाचैस्तु यदा यस्मिन् फाल्गुनस्य चतुर्दशीम्॥ ४१

तेन सा प्रोच्यते देवि पिशाची नाम विश्रुता।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रायां निष्कृतिः परा॥ ४२

उदकुम्भास्तु दातव्या मिष्टान्नेन समन्विताः।
तेन देवि तदा प्राप्तं पूर्वोक्तं फलमेव च॥ ४३

अतः परं प्रवक्ष्यामि यात्रायां च वरानने।
शुक्लपक्षे तृतीयायां तव यात्रा महाफला॥ ४४

यत्र गौरी तु द्रष्टव्या तां च शृणु वरानने।
स्नानं कृत्वा तु गन्तव्यं गोप्रेक्षे तु यशस्विनि॥ ४५

अहनि कालिका देवी अर्चितव्या प्रयत्नतः।
ज्येष्ठस्थाने ततो गौरी अर्चितव्या प्रयत्नतः॥ ४६

तस्मात् स्थानात्तु गन्तव्यमविमुक्तस्य चोत्तरे।
तत्र देवी सदा गौरी पूजितव्या च भक्तितः॥ ४७

अन्या वापि परा प्रोक्ता संवर्तललिता शुभा।
द्रष्टव्या चापि सा देवी सर्वकामफलप्रदा॥ ४८

सर्वकामानवाप्नोति यदि ध्यायेत मानवः।
ततस्तु भोजयेद्विप्रान् शिवभक्तान् शुचिव्रतान्॥ ४९

वासैः सदक्षिणैश्चैव यथार्हमतिपुष्कलैः।
पञ्चगौरीं तु यः कृत्वा भक्त्या देवि समाहितः॥ ५०

सर्वांश्चैव रसान् गन्धान् गौरीमुद्दिश्य ब्राह्मणे॥ ५१

धनदेश्वरकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर यक्षेशोंने भी समाहित होकर माघमासमें यह यात्रा की थी। कोटितीर्थमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पिशाचोंने समाहित होकर फाल्गुनमासमें इस यात्राको किया था॥ ३९-४०॥

गोकर्णकुण्डमें स्थित होकर स्नान-पूजनमें तत्पर पिशाचोंने समाहित होकर फाल्गुनमासकी चतुर्दशी तिथिको यह यात्रा की थी, इसलिये हे देवि! वह प्रसिद्ध पिशाची नामवाली कही जाती है। अब मैं यात्रामें श्रेष्ठ निष्कृतिके विषयमें बताऊँगा॥ ४१-४२॥

हे देवि! [यात्रामें] मिष्टान्नसे युक्त उदकुम्भोंका दान करना चाहिये, उससे पूर्वकथित [समस्त] फल प्राप्त होता है॥ ४३॥

हे वरानने! अब मैं यात्राके लिये तिथिको बताऊँगा, शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें आपकी यात्रा महाफल प्रदान करती है॥ ४४॥

हे वरानने! जहाँ गौरीका दर्शन होता है, उस [यात्रा]-को सुनो। हे यशस्विनि! स्नान करके गोप्रेक्षमें जाना चाहिये और दिनमें प्रयत्नपूर्वक कालिकादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद ज्येष्ठस्थानमें प्रयत्नपूर्वक गौरीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४५-४६॥

पुनः उस स्थानसे अविमुक्तके उत्तरमें जाना चाहिये और वहाँ सदा भक्तिपूर्वक देवी गौरीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

श्रेष्ठ तथा शुभ अन्य संवर्त-ललिता भी बतायी गयी हैं, समस्त कामनाओंका फल देनेवाली उन देवीका भी दर्शन करना चाहिये। यदि मनुष्य उनका ध्यान करता है, तो वह सभी वांछित फल प्राप्त करता है॥ ४८ $^{1}/_{2}$॥

तत्पश्चात् शुद्ध व्रतवाले शिवभक्त विप्रोंको अपने सामर्थ्यके अनुसार पर्याप्त दक्षिणा तथा वस्त्रके साथ भोजन कराना चाहिये। हे देवि! जो समाहितचित्त होकर पंचगौरीका दर्शन-पूजन करके गौरीको उद्देश्यकर

उत्तमं श्रेय आप्नोति सौभाग्येन समन्वितम्।
विनायकान् प्रवक्ष्यामि अस्य क्षेत्रस्य विघ्नदान्॥ ५२

ढुण्ढिं तु प्रथमं दृष्ट्वा तथा कोणविनायकम्।
देव्या विनायकं चैव गोप्रेक्षे हस्तिनं स्मृतम्॥ ५३

विनायकं तथैवान्यं सिन्दूरं नाम विश्रुतम्।
चतुर्थो देवि द्रष्टव्य एवं पञ्च विनायकाः॥ ५४

लड्डुकाश्च प्रदातव्या एतानुद्दिश्य ब्राह्मणे।
एतेन चैव धर्मेण सिद्धिमान् जायते नरः॥ ५५

अतः परं प्रवक्ष्यामि चण्डिकाः क्षेत्ररक्षिकाः।
दक्षिणे रक्षते दुर्गा नैर्ऋते चोत्तरेश्वरी॥ ५६

अङ्गारेशी पश्चिमे च वायव्ये भद्रकालिका।
उत्तरे भीष्मचण्डी च महामुण्डा च सा ततः॥ ५७

ऊर्ध्वकेशी समायुक्ता शाङ्करी सर्वतः स्मृता।
ऊर्ध्वकेशी च आग्नेय्यां चित्रघण्टाथ मध्यतः॥ ५८

एताश्च चण्डिका देवि योऽत्र द्रक्ष्यति मानवः।
तस्य तुष्टाश्च ताः सर्वाः क्षेत्रं रक्षन्ति तत्पराः॥ ५९

विघ्नं कुर्वन्ति सततं पापानां देवि सर्वदा।
तस्माच्चैव सदा पूज्याश्चण्डिकाः सविनायकाः॥ ६०

यदीच्छेत् सततं देवि वाराणस्यां शुभां स्थितिम्।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तस्मिन् क्षेत्रे सुरेश्वरि॥ ६१

तिस्रो नद्यस्तु तत्रस्था वहन्ति च शुभोदकाः।
यासां दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या निवर्तते॥ ६२

एका पितामहस्रोता मन्दाकिनी तथापरा।
मत्स्योदरी तृतीया च एतास्तिस्रस्तु पुण्यदाः॥ ६३

ब्राह्मणको समस्त रस तथा गन्ध समर्पित करता है, वह सौभाग्ययुक्त उत्तम कल्याणकी प्राप्ति करता है। अब मैं इस क्षेत्रके विघ्नदायक विनायकोंका वर्णन करूँगा॥ ४९—५२॥

हे देवि! सर्वप्रथम ढुंढि [विनायक]-का दर्शन करके कोणविनायक, देवीविनायक, गोप्रेक्षमें प्रसिद्ध हस्तीविनायक तथा अन्य चौथे सिन्दूर नामसे विख्यात विनायकका दर्शन करना चाहिये। इस प्रकार ये पाँच विनायक हैं। इन्हें उद्देश्य करके ब्राह्मणोंको मोदक प्रदान करना चाहिये। इस धर्मकृत्यके द्वारा मनुष्य सिद्धिसे युक्त हो जाता है॥ ५३—५५॥

इसके बाद मैं क्षेत्रकी रक्षा करनेवाली चण्डिकाओंका वर्णन करूँगा। दक्षिणमें दुर्गा, नैर्ऋतकोणमें उत्तरेश्वरी, पश्चिममें अंगारेशी, वायव्यकोणमें भद्रकालिका, उत्तरमें भीष्मचण्डी तथा इसके अनन्तर महामुण्डा रक्षा करती हैं॥ ५६-५७॥

ऊर्ध्वकेशी तथा शांकरी सब ओरसे रक्षा करनेवाली कही गयी हैं। ऊर्ध्वकेशी अग्निकोणमें तथा चित्रघण्टा मध्यमें रक्षा करती हैं॥ ५८॥

हे देवि! जो मनुष्य इन चण्डिकाओंका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर वे सब [चण्डिकाएँ] तत्पर होकर क्षेत्रकी रक्षा करती हैं और हे देवि! उसके पापोंको निरन्तर नष्ट करती हैं। इसलिये हे देवि! यदि कोई वाराणसीमें सतत शुभ स्थितिको चाहता है, तो उसे विनायकोंसहित चण्डिकाओंकी पूजा सदा करनी चाहिये॥ ५९-६०½॥

हे सुरेश्वरि! अब मैं उस क्षेत्रमें स्थित अन्य तीर्थोंको बताऊँगा। पवित्र जलवाली तीन नदियाँ वहाँ स्थित हैं और [सदा] प्रवाहित होती रहती हैं, जिनके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या दूर हो जाती है॥ ६१-६२॥

पहली पितामहस्रोता, दूसरी मन्दाकिनी, तीसरी मत्स्योदरी—ये तीनों [नदियाँ] पुण्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ६३॥

मन्दाकिनी तथा पुण्या मध्यमेश्वरसंस्थिता।
पितामहस्त्रोतिका च अविमुक्ते तु पुण्यदा॥ ६४

मत्स्योदरी च ओङ्कारे पुण्यदा सर्वदैवतैः।
तस्मिन् स्थाने यदि गङ्गा आगमिष्यति भामिनि॥ ६५

तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः।
वरणासिक्तसलिले जाह्नवी जलमिश्रिते॥ ६६

तत्र नादेश्वरे पुण्ये स्नातः किमनुशोचति।
तस्मिन् काले च तत्रैव स्नानं देवि कृतं मया॥ ६७

पुण्यमयी मन्दाकिनी [नदी] मध्यमेश्वरमें स्थित हैं, पुण्यदायिनी पितामहस्त्रोता अविमुक्तेश्वरमें हैं और पुण्यप्रदा मत्स्योदरी सभी देवताओंके साथ ओंकारेश्वरमें स्थित हैं। हे भामिनि! जब गंगा उस स्थानमें आती हैं, तब देवताओंके लिये भी दुर्लभ वह पुण्यतम काल होता है। वरणाके जलसे सिक्त तथा गंगाके जलसे मिश्रित वहाँ पुण्यप्रद नादेश्वरमें स्नान करके मनुष्यको कौन-सा सन्ताप रह जाता है? हे देवि! उस समय वहींपर मैंने स्नान किया था॥ ६४—६७॥

तेन हस्ततलाद्देवि कपालं पतितं क्षणात्।
कपालमोचनं नाम तत्रैव सुमहत्सरः॥ ६८

हे देवि! उस समय हस्ततलसे क्षणभरमें [मेरा] कपाल गिर पड़ा, उससे वहींपर कपालमोचन नामक एक महान् सरोवर हो गया॥ ६८॥

पावनं सर्वसत्त्वानां पुण्यदं सर्वदेहिनाम्।
ओङ्कारेश्वरनामानं तत्र स्नानं कृतं मया॥ ६९

तेन स प्रोच्यते देव ओङ्कारेश्वरनामतः।
मत्स्योदरीजले गङ्गा ओङ्कारेश्वरसन्निधौ॥ ७०

तदा तस्मिन् जले स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
मत्स्योदरी जले स्नात्वा दृष्ट्वा चोङ्कारमीश्वरम्॥ ७१

शोकमोहजरामृत्युर्न च तं स्पृशते पुनः॥ ७२

सभी जीवोंको पवित्र करनेवाला तथा सभी देहधारियोंको पुण्य प्रदान करनेवाला ओंकारेश्वर नामक जो तीर्थ है, वहाँ भी मैंने स्नान किया था, इसलिये वह लिङ्ग ओंकारेश्वर नामसे पुकारा जाता है। ओंकारेश्वरकी सन्निधिमें मत्स्योदरीके जलमें जब गंगा मिलती हैं, उस समय उस जलमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। मत्स्योदरीके जलमें स्नान करने तथा ओंकारेश्वरका दर्शन करनेसे उस मनुष्यको शोक, मोह, जरा तथा मृत्यु—ये सब स्पर्श भी नहीं करते हैं॥ ६९—७२॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

काशीमें लिङ्गार्चनकी महिमा

विष्णुरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो देवी विस्मयोत्फुल्ललोचना।
ओङ्कारदर्शनार्थं वै कपिलेशमुपागता॥ १

विष्णु बोले—यह सुनकर प्रफुल्लित नेत्रोंवाली वे देवी ओंकारेश्वरका दर्शन करनेके लिये कपिलेश्वरमें आ गयीं॥ १॥

तस्मात्त्वमपि देवेशं पूजयस्व सदाशिवम्।
एतत्परममानन्दं प्राप्स्यते परमं पदम्॥ २

अतः आप भी देवेश सदाशिवका पूजन कीजिये, इससे आपको परम आनन्द तथा परम पद प्राप्त होगा॥ २॥

एतच्छ्रुत्वा परं गुह्यं सकाशाच्चक्रपाणिनः।
ओङ्कारमर्चयेद्देवं सदा तद्गतमानसः॥ ३

सूर्य उवाच

तस्मात्त्वमपि दुर्धर्षमाराधय सुरेश्वरम्।
तेन तत्पदमाप्नोषि यदन्यैरपि दुर्लभम्॥ ४

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा वाराणस्यामुपागतः।
तत्र देवि तदोङ्कारं दृष्ट्वा चैव प्रणम्य च॥ ५

आराधनपरो भूत्वा लिङ्गं स्थाप्य चतुर्मुखम्।
देवदेवसकाशाद्वै कृतकृत्यो भवेच्छुचिः॥ ६

यः सम्प्राप्य महत्तत्त्वमीश्वरे कृतनिश्चयः।
तस्मात्त्वमपि गार्ग्य यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि॥ ७

आराधयस्व देवेशं मनसः स्थैर्यमात्मनः।
तस्मिंस्तु यः शिवः साक्षादोङ्कारेश्वरसंज्ञितः॥ ८

एतद्गुह्यस्य माहात्म्यं तव स्नेहान्महामुने।
अकारं च उकारं च मकारं च प्रकीर्तितः॥ ९

अस्मिँल्लिङ्गे तु संसिद्धो मुनिकालिकवृक्षयः।
अकारस्तत्र विज्ञेयो विष्णुलोकगतिप्रदः॥ १०

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु ओङ्काराख्येति कीर्तितः।
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो देवाचार्यो बृहस्पतिः॥ ११

उकारं तत्र विज्ञेयं ब्रह्मणः पदमव्ययम्।
तस्य चोत्तरदिग्भागे मकारं विष्णुसंज्ञकम्॥ १२

तस्मिँल्लिङ्गे च संसिद्धः कपिलर्षिर्महामुनिः।
तस्मात्त्वमपि गार्ग्य मनस्स्थैर्यं यदीच्छसि॥ १३

लिङ्गस्याराधने यत्नं कुरुष्व नियतव्रतः।
विद्यां पाशुपतीं प्राप्य तस्मिन् स्तुत्ये व्यपाश्रयः॥ १४

निर्ममो निरहङ्कारः पदमाप्नोषि शाश्वतम्।
एतच्छ्रुत्वा वचः स्तुत्वा याज्ञवल्क्यस्य दर्शिताः॥ १५

वाराणसीं समभ्येत्य पञ्चायतनमुत्तमम्।
आराध्यमानो देवेशस्तस्मिन् स्थाने स्थितः सदा॥ १६

यह परम रहस्य सुनकर चक्रपाणि विष्णुके पाससे आकर वे शिवमें आसक्तचित्त होकर प्रभु ओंकारेश्वरका अर्चन निरन्तर करने लगे॥ ३॥

सूर्य बोले—अतः आप भी दुर्धर्ष सुरेश्वरकी आराधना कीजिये, इसके द्वारा आप उस पदको प्राप्त कर लोगे, जो अन्य लोगोंसे दुर्लभ है॥ ४॥

भगवान् सूर्यका वचन सुनकर वे वाराणसीमें आ गये और हे देवि! वहाँपर ओंकारेश्वरका दर्शन करके उन्हें प्रणामकर आराधनापरायण होकर देवदेवके पास चतुर्मुखलिङ्गकी स्थापना करके कृतकृत्य तथा पवित्र हो गये और महत्तत्त्वकी प्राप्ति करके ईश्वरमें निश्चय बुद्धिवाले हो गये। अतः हे गार्ग्य! यदि आप भी कल्याण तथा अपने मनकी स्थिरता चाहते हैं, तो देवेशकी आराधना कीजिये। जो साक्षात् शिव हैं, वे ही ओंकारेश्वर नामसे उस स्थानमें विराजमान हैं॥ ५—८॥

हे महामुने! मैंने आपके स्नेहके कारण ही इस लिङ्गके माहात्म्यको बताया है। यह अकार, उकार तथा मकारसे युक्त कहा गया है। मुनि कालिकवृक्षिय इस लिङ्गमें सिद्ध हुए हैं। उसमें अकारको विष्णुलोककी गति प्रदान करनेवाला जानना चाहिये॥ ९-१०॥

उसके दक्षिणभागमें ही ओंकार नामक लिङ्ग बताया गया है। वहाँ देवाचार्य बृहस्पति परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं॥ ११॥

उसमें उकारको ब्रह्माका अव्यय पद देनेवाला जानना चाहिये। उसके उत्तरदिशामें विष्णुसंज्ञक मकारको जानना चाहिये, उस लिङ्गमें महामुनि ऋषि कपिल सिद्ध हुए हैं। अतः हे गार्ग्य! यदि आप भी मनकी शान्ति चाहते हैं तो व्रतमें स्थित होकर लिङ्गकी आराधनाके लिये प्रयत्न कीजिये। अनन्यचित्तवाला, मोहरहित तथा अहंकारशून्य होकर उसकी उपासना करनेपर पाशुपतीविद्या प्राप्त करके आप शाश्वत पद प्राप्त कर लेंगे॥ १२—१४ $^{१}/_{२}$॥

यह वचन सुनकर याज्ञवल्क्यकी मन्त्रसंहिताओंकी स्तुति करके वे वाराणसीमें आकर उत्तम पंचायतनकी

तस्मादन्येऽपि ये केचिल्लिङ्गस्याराधने रताः।
तेषां वै पश्चिमे काले ज्ञानमुत्पद्यते सदा॥ १७

एवं ज्ञात्वा तु यो मर्त्यः सदा लिङ्गार्चने रतः।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १८

तस्माद्वै सम्प्रदायाच्च अर्चितव्यं प्रयत्नतः।
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम्॥ १९

लिङ्गं योऽर्चयते विप्र आत्मानं स समुद्धरेत्।
आत्मानं घातयेन्नित्यं यो न लिङ्गं समर्चयेत्॥ २०

आराधना करने लगे, उस स्थानमें सबके द्वारा आराधित होनेवाले देवेश सदा स्थित रहते हैं॥ १५-१६॥

अतः जो कोई दूसरे लोग भी लिङ्गकी आराधनामें संलग्न रहते हैं, उन्हें अन्तिम समयमें ज्ञानका उदय हो जाता है॥ १७॥

इसे जानकर जो मनुष्य लिङ्गके अर्चनमें सदा रत रहता है, सौ करोड़ कल्पोंमें भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ १८॥

अतः विद्युत्-सम्पातके समान चंचल (अस्थिर) दुर्लभ मानवशरीर प्राप्त करके शैवविधानके अनुसार प्रयत्नपूर्वक लिङ्गका अर्चन करना चाहिये। जो विप्र लिङ्गका अर्चन करता है, वह अपना उद्धार कर लेता है और जो लिङ्गका अर्चन नहीं करता है, वह अपनेको विनष्ट कर लेता है॥ १९-२०॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये गुह्यायतनवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीलिङ्गमहापुराणके अन्तर्गत वाराणसी-माहात्म्यमें 'गुह्यायतनवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

॥ श्रीलिङ्गमहापुराण-परिशिष्ट पूर्ण हुआ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : २३३६९९७

Code 1985